भाग 3 VOLUME

वेदविज्ञान-आलोक:™

(महर्षि ऐतरेय महीदास प्रणीत - ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

Cosmology Plasma Physics Astrophysics String Theory

Vaidic Rashmi Theory

Quantum Field Theory Particle Physics Nuclear Physics

A VAIDIC THEORY OF UNIVERSE

(A Big Challenge to Modern Theoretical Physics)

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

।। ऋग्वेद ।।
।। यजुर्वेद ।।
।। सामवेद ।।
।। अथर्ववेद ।।

महर्षि आद्य ब्रह्मा से लेकर..
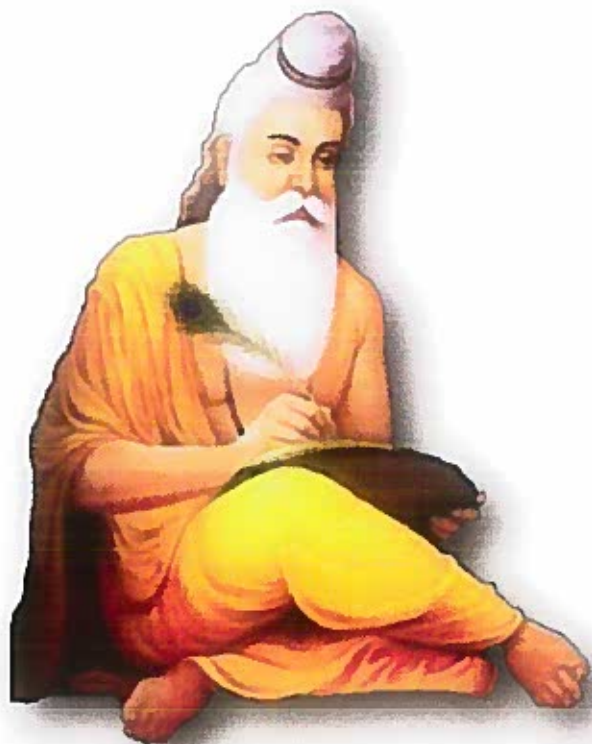
..दयानन्द पर्यन्त आर्ष परम्परा

ओ३म्

तिथि ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी विक्रम सम्वत् २०७५, दिनांकः २०, जून २०१८
उपराष्ट्रपति आवास पर 'वेदविज्ञान-आलोकः' ग्रन्थ का विमोचन करते हुए
महामहिम उपराष्ट्रपति श्रीमान् एम. वेंकैया नायडू जी

चित्र में (बांए से दांए) - श्री जयसिंह गहलोत (जोधपुर), श्री अशोक सिसोदिया (भरतपुर), माता श्रीमती प्रकाश देवी (फर्रुखाबाद), श्री सतीश कौशिक (फर्रुखाबाद), श्री सुरेशचन्द्र आर्य (अहमदाबाद), श्री बलबीरसिंह मलिक (फरीदाबाद), महामहिम उपराष्ट्रपति जी, आचार्य श्री अग्निव्रत नैष्ठिक (भीनमाल), श्री विशाल आर्य (भीनमाल), श्री किशनलाल गहलोत (जोधपुर), श्री अभिषेक आर्य (डूंगरराम दर्जी) (भीनमाल)

।। ओ३म् ।।

भाग – 3

वेदविज्ञान–आलोकः™

(महर्षि ऐतरेय महीदास प्रणीत – ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

A VAIDIC THEORY OF UNIVERSE

(A Big Challenge to Modern Theoretical Physics)

व्याख्याता एवं पुरस्कर्त्ता

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

(वैदिक वैज्ञानिक)

संपादक एवं डिज़ाइनर

विशाल आर्य (अग्नियश वेदार्थी)

(M.Sc., Theoretical Physics, University of Delhi)

प्रकाशक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास
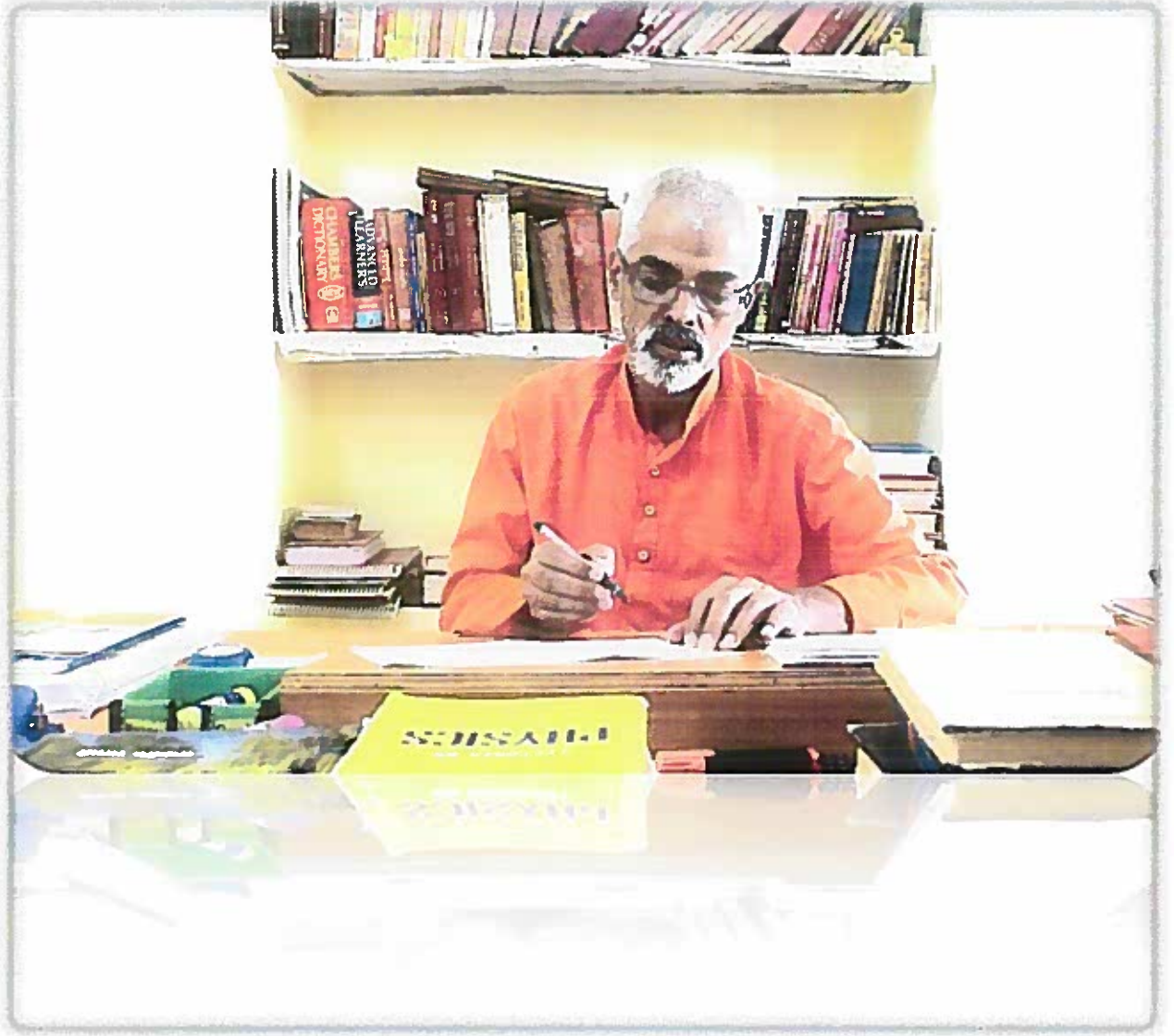
आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

(वैदिक वैज्ञानिक)

प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

एवं

आचार्य, वैदिक एवं आधुनिक भौतिक शोध संस्थान

समर्पणम्

मैं इस ग्रन्थ को विश्वभर के भौतिक वैज्ञानिकों, वेदानुसन्धानकर्त्ताओं, प्रबुद्ध व विचारशील धर्माचार्यों, मानव-एकता के स्वप्नद्रष्टाओं, सुविचारशील समाजशास्त्रियों, तर्कसम्मत पंथ निरपेक्षता के समर्थकों, वैज्ञानिक बुद्धि के धनी उद्योगपतियों, शिक्षा- शास्त्रियों, भारत के प्रतिभासम्पन्न राष्ट्रवादियों एवं सभी प्रबुद्ध युवा एवं युवतियों की सेवा में भारतवर्ष के प्राचीन वैज्ञानिक गौरव को पुनः प्राप्त कराने एवं सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की भावना से सप्रेम समर्पित करता हूँ।

सावधानी

मैं इस ग्रन्थ के पाठकों को यह सावधानी वर्तने का भी परामर्श देता हूँ कि इसे किसी अन्य भाषा में अनूदित करके पढ़ने का प्रयास नहीं करें, अन्यथा मेरे भावों को यथार्थरूप में समझे बिना ग्रन्थ का अनुवाद त्रुटिपूर्ण होने की पूर्ण आशंका है।

–लेखक (व्याख्याता एवं पुरस्कर्त्ता)

सन्दर्भ ग्रन्थ संकेत सूची

क्र.सं.	ग्रन्थ नाम	संकेत
1.	अथर्ववेद संहिता	अथर्व.
2.	अनुभ्रमोच्छेदन	–
3.	अमरकोष	अ.को.
4.	अष्टाध्यायी भाष्य (आचार्य सुदर्शनदेव)	अष्टा.भा.
5.	आपस्तम्व श्रौतसूत्र	आप.श्रौ.
6.	आप्टेकोश	आप्टेकोश
7.	आर्याभिविनय	–
8.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	–
9.	आश्वलायन गृहसूत्रम्	आश्व.गृह्य.
10.	आश्वलायन श्रौतसूत्र	आश्व.श्रौ.
11.	उणादि कोश	उ.को.
12.	ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका	ऋ.भा.भू.
13.	ऋग्वेद महाभाष्य	–
14.	ऋग्वेद संहिता	ऋ.
15.	ऐतरेय आरण्यक	ऐ.आ.
16.	ऐतरेय ब्राह्मण	ऐ.
17.	कठोपनिषद्	कठ.उ.
18.	कपिष्ठल संहिता	क.
19.	काठक संकलन	काठ.संक.
20.	काठक संहिता	काठ.
21.	काण्व संहिता	का.सं.
22.	काण्वीय शतपथ	काश.
23.	कात्यायन श्रौतसूत्र	का.श्रौ.
24.	कौषीतकि ब्राह्मण	कौ.ब्रा.
25.	गीता	–
26.	गोकरुणानिधि	–
27.	गोपथ ब्राह्मण (पूर्वभाग/उत्तरभाग)	गो.पू./उ.
28.	छान्दोग्योपनिषद्	छां.उ.
29.	जैमिनीय ब्राह्मण	जै.ब्रा.
30.	जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण	जै.उ.
31.	ताण्ड्य महाब्राह्मण	तां.
32.	तैत्तिरीय आरण्यक	तै.आ.
33.	तैत्तिरीय उपनिषद्	तै.उ.
34.	तैत्तिरीय ब्राह्मण	तै.ब्रा.
35.	तैत्तिरीय संहिता	तै.सं.
36.	दैवत ब्राह्मण	दै.
37.	ध्यान-योग-प्रकाश	–
38.	नारदीय शिक्षा	ना.शि.
39.	निघण्टु	निघं.

40.	निघण्टु निर्वचनम्	निघं.नि.
41.	निरुक्तम्	नि.
42.	न्याय दर्शन	न्या.द.
43.	पाणिनीय अष्टाध्यायी	पा.अ.
44.	पिंगल छन्द शास्त्र	पिं.छ.शा.
45.	ब्रह्मसूत्र	ब्र.सू.
46.	ब्राह्मणोद्धार कोश	ब्रा.उ.को.
47.	मनुस्मृति	मनु.
48.	महर्षि दयानन्द ऋग्वेद भाष्य	म.द.ऋ.भा.
49.	महर्षि दयानन्द यजुर्वेद भाष्य	म.द.य.भा.
50.	महाभारत	महा.
51.	माण्डूक्य उपनिषद्	माण्डू.उ.
52.	मीमांसा दर्शन	मीमांसा
53.	मुण्डकोपनिषद्	मुण्ड.उ.
54.	मैत्रायणी संहिता	मै.
55.	यजुर्वेद संहिता	यजु.
56.	योगदर्शनम्	यो.द.
57.	वर्णोच्चारण शिक्षा	–
58.	वाक्यपदीयम्	–
59.	वाचस्पत्यम् कोश	–
60.	वाजसनेय संहिता	वा.सं.
61.	वैदिक इतिहासार्थ निर्णय	–
62.	वैदिक कोश (आचार्य राजवीर शास्त्री)	वै.को. – आ. राजवीर शास्त्री
63.	वैदिक वाङ्मय का इतिहास	–
64.	वैदिक सम्पत्ति	–
65.	वैशेषिक दर्शन	वै.द.
66.	व्यवहारभानु	
67.	व्याकरण महाभाष्य	महाभाष्य
68.	शतपथ ब्राह्मण	श.
69.	श्रौत-यज्ञ-मीमांसा	–
70.	शांखायन आरण्यक	शां.आ.
71.	श्वेताश्वर उपनिषद्	श्वेता.उ.
72.	सत्यार्थ प्रकाश	स.प्र.
73.	सन्मार्ग दर्शन	–
74.	संस्कार विधि	सं.वि.
75.	संस्कृत धातु कोश	सं.धा.को.
76.	सामविधान ब्राह्मण	सा.वि.ब्रा.
77.	सामवेद संहिता	साम.
78.	साम्वपञ्चाशिका	–
79.	सांख्य दर्शन	सां.द.
80.	सुश्रुत संहिता	सु.सं.
81.	स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	–
82.	षड्विंश ब्राह्मण	ष.

भाग (VOLUME)

।। ओ३म् ।।

अथ चतुर्थपञ्चिका

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

उत्पत्ति, दृश्य व डार्क पदार्थ की उत्पत्ति, ऋतु व मास रश्मियों की उत्पत्ति, गुरुत्वादि मूल वल, ग्रेवीटॉन, ईश्वर-प्रकृति की भूमिका, विद्युत्, द्रव्य-ऊर्जा का स्वरूप व उत्पत्ति का विज्ञान वर्णित है।

२०. विंशोऽध्यायः 1131

इसमें द्वादशाह के प्रथम दो अहन्, प्रथम एवं द्वितीय अहन् के प्रातः एवं माध्यन्दिन सवन के शस्त्र, अवशिष्ट शस्त्र के रूप में विद्युत् चुम्वकीय तरंगों की उत्पत्ति, विद्युत् आवेश युक्त मूलकणों की उत्पत्ति, विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति, डार्क एनर्जी, विद्युत् चुम्वकीय वल, विद्युत् व गुरुत्व वल सम्वन्ध, क्वाण्टाज् आदि का विज्ञान वर्णित है।

षोडशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

वंधन। प्राथमिक प्राणों की दो प्रकार की गतियाँ। प्राण एवं उप प्राण की गतियों में भेद। छन्दादि रश्मियों की पृथक् एवं विचित्र गति। सूर्य के दोनों भागों की पृथक्-२ गतियाँ। द्विपदा और त्रिष्टुप् के मेल से अनुष्टुप्-वज्र का निर्माण। द्विपदा-जगती-जागत-पशु। तारों के वाहरी भाग में जगती की प्रधानता। द्विपदा और जगती के मेल से अनुष्टुप्-वज्र का उत्पन्न होना तथा केन्द्रीय भाग के वल में और भी वृद्धि होना। अतिच्छन्द-अष्टि-शक्वरी। रिसी हुई अक्षर रश्मियों के संघात से अति शक्तिशाली और व्यापक अतिच्छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना। अतिच्छन्द रश्मियों से सभी प्रकार की छन्द रश्मियों का व्याप्त और उत्पन्न होना। इनसे वज्र रश्मियों का पूर्ण विनाश।

१६.४ महानाम्नी-उपसर्ग, षोडशी। विभिन्न छन्द रश्मियों से अनुष्टुप् छन्द रश्मियों का निर्माण। डार्क एनर्जी की वाधा को दूर करने में अनुष्टुप् रश्मियों की विशेष भूमिका, द्रव्य, ऊर्जा व आकाश की अपेक्षा प्राण व छन्द रश्मियों की सूक्ष्मता। विभिन्न अनुष्टुप् रश्मियों का भ्रान्त होना, नौ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों द्वारा भ्रान्त अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को व्यवस्थित मार्ग प्रदान करना, ब्रह्माण्ड में हल्के भूरे रंग का उत्पन्न होना, विद्युत् की समृद्धि, तीव्र ध्वनि की उत्पत्ति। गतश्री-अविहृत-विहृत-षोडशी-पाप्मा। कॉस्मिक मेघ का निर्माण व उसमें डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी की वाधा व उनका मिश्रण। विभिन्न दृश्य कणों का अव्यवस्थित दोलायमान होना। कॉस्मिक मेघ के वाहर डार्क पदार्थ व एनर्जी का कार्य। उसके वाधक कार्य का निवारण। ब्रध्न-विष्टप। डार्क एनर्जी के प्रतिकर्षण वल को नियन्त्रित करने वाली छन्द रश्मियों की सुरक्षा हेतु एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि की उत्पत्ति, तारे के अन्दर पदार्थ के आवागमन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका। डार्क एनर्जी निरोधक विभिन्न अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को त्रिष्टुप् रश्मि द्वारा वल प्रदान करना, इसके द्वारा तारों के अन्दर तीव्र विक्षोभ और हलचल। अनुष्टुप् रश्मियों के साथ अन्य छन्द रश्मियों का आकर्षित होकर जुड़ना, सूक्ष्म विखरी हुई छन्द रश्मियों द्वारा अनुष्टुप् रश्मियों का निर्माण। 935

१६.५ देव, असुर, इन्द्र, अहन्, रात्रि, मृत्यु। दृश्य पदार्थ और डार्क पदार्थ दोनों की प्रारम्भिक मिश्र अवस्था। डार्क एनर्जी के कारण विभिन्न कणों का कम्पित होना तथा दो कणों के वीच में अनिवार्य अवकाश का रहना। निवित्-पुरोरुक् धाय्या। मिश्रित डार्क पदार्थ और दृश्य पदार्थ को पृथक करने के लिए विभिन्न छन्द रश्मियों और विद्युत्, ऊष्मा आदि की उत्पत्ति। पर्य्याय, अपिशर्वरी। डार्क एनर्जी के दुष्प्रभाव को दूर करने में छन्द रश्मियों की प्रक्रिया के तीन चरण। 947

१६.६ डार्क एनर्जी निरोधक अनुष्टुप् रश्मियों के साथ तीन त्रिष्टुप् रश्मियों की उत्पत्ति। पर्य्याय-अश्व-गौ-अनः-रथ-वासः-हिरण्य-मणि। डार्क एनर्जी को नियंत्रित करने के लिए त्रिष्टुप् एवं अनुष्टुप् आदि रश्मियों के क्रिया- 952

विज्ञान के तीन चरण। पवमान-अन्ध-रात्रि-अहन्। प्रारम्भिक अप्रकाशित पदार्थ के प्रकाशित होकर सृष्टि निर्माण में भाग लेने का विज्ञान। तारों के निर्माण का विज्ञान। द्रव्य और ऊर्जा के संयोग का विज्ञान। सीमित संख्या वाली छन्द रश्मियों का मूल कणों से असीमित रश्मियों और पदार्थों का निर्माण। कारणरूप सूक्ष्मतम पदार्थ की अपरिमितता एवं कार्यरत पदार्थ की परिमितता।

अथ १६.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. देवा वै प्रथमेनाह्नेन्द्राय वज्रं समभरंस्तं द्वितीयेनाह्नाऽसिंचंस्तं तृतीयेनाह्ना प्रायच्छंस्तं चतुर्थेऽहन् प्राहरत् तस्माच्चतुर्थेऽहन् षोळशिनं शंसति।।

{अहन् = त्रैष्टुभम् अहः (काठ.६.८), अहर्वै वियच्छन्दः (श.८.५.२.५), अहर्वाहतम् (ऐ.५.३०), अहरेव सविता (गो.पू.१.३३)}

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि वज्ररूप रश्मियों के विविध और चरणवद्ध रूपों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि देव अर्थात् मन एवं वाक् तत्त्व किंवा प्राथमिक प्राण प्रथम अहन् अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक तत्त्व के द्वारा इन्द्र के लिए अर्थात् इन्द्र तत्त्व जिस शक्ति के द्वारा असुर रश्मियों को नियन्त्रित करता है, उस शक्ति के निर्माण के लिए वज्ररूप **सूक्ष्म** वाग् रश्मियों को एकत्र करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सबसे **सूक्ष्म वज्र रश्मियां प्राण नामक प्राथमिक प्राण के द्वारा संचित सूक्ष्म दैवी वाग् रश्मियों के रूप में होती हैं। ये रश्मियां वियत् अर्थात् विशेषरूप से नियन्त्रित की हुई तीक्ष्ण रूप में होती हैं। इस क्रिया के पश्चात् द्वितीय वज्र, द्वितीय अहन् अर्थात् त्रिष्टुप् वा बृहती छन्द रश्मियों के द्वारा संचित की हुई सूक्ष्म दैवी वाग् रश्मियों के रूप में प्रकट होता है। यह इनका नियन्त्रित और तीक्ष्णरूप वज्ररूप रश्मियों का द्वितीय रूप है।** इसके पश्चात् **तृतीय अहन् अर्थात् विद्युत् और वायु के रूप में वे पूर्वोक्त रश्मियां परिवर्तित होकर वज्रधारी इन्द्र तत्त्व के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं।** इसे ही देवों द्वारा इन्द्र को वज्र प्रदान करना कहते हैं। इसके पश्चात् चतुर्थ अहन् अर्थात् **अग्नि और विद्युत् के संयुक्त रूप में परिवर्तित होकर वज्ररूप रश्मियों का असुर आदि पदार्थों पर प्रहार होता है। इस प्रकार वज्र का यह रूप ही वस्तुतः पूर्ण रूप है** और इस रूप को उत्पन्न करने के लिए राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से इन्द्रदेवताक ऋग्वेद १.८४ सूक्त की उत्पत्ति होती है। जिसका प्रभाव निम्नानुसार है-

(१) असा॑वि॒ सोम॑ इन्द्र ते॒ शवि॑ष्ठ धृष्ण॒वा ग॑हि।
आ त्वा॑ पृणक्त्वि॒न्द्रि॒यं रजः॒ सूर्यो॒ न र॒श्मिभिः॑।।१।। (ऋ.१.८४.१)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेज और वल से युक्त होते हुए अन्य छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करने वाला होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों को अवशोषित करके तीक्ष्ण वल से युक्त होकर सूर्य की किरणों के समान प्रकाशित होता है और विभिन्न पदार्थों को भी अपने वल से पूर्ण करता है।

(२) इन्द्र॒मिद्धरी॑ वह॒तोऽ प्र॑तिधृष्टशवसम्।
ऋषी॑णां च स्तु॒तीरुप॑ य॒ज्ञं च॒ मानु॑षाणाम्।।२।। (ऋ.१.८४.२)।

इसका छन्द विराडनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्, परन्तु वल कुछ मृदु और अधिक प्रकाशयुक्त। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न ऋषि प्राणों अर्थात् प्राणापानादि प्राथमिक प्राणों एवं मानुष अर्थात् सूत्रात्मा वायु के द्वारा प्रकाशित होकर अदम्य वल से युक्त होकर विभिन्न पदार्थों के संगतीकरण के लिए आकर्षण और प्रतिकर्षण दो वलों को प्राप्त होता है।

(३) आ ति॑ष्ठ वृत्रहन्रथं॑ यु॒क्ता ते॒ ब्रह्म॑णा॒ हरी॑।

अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना।।३।। (ऋ.१.८४.३)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव प्रथम ऋचा के समान। इसके अन्य प्रभाव से {वग्नुः = वाङ्नाम (निघं.१.११)। अर्वाचीनम् = नूतनम् (तु.म.द.ऋ.भा.७.४१.६)} असुर तत्त्व का हनन करने वाला वह इन्द्र तत्त्व विद्युत् से युक्त दो प्रकार के वलों के द्वारा नवीन और रमणीय किरणों में स्थित होता है। {ग्रावाणः = पशवो वै ग्रावाणः (तां.६.६.१३), प्राणा वै ग्रावाणः (श.१४.२.२.३३), वज्रो वै ग्रावा (श.११.५.६.७), यज्ञमुखं ग्रावाणः (मै.४.५.२)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाग् रश्मियों के साथ यज्ञोन्मुख वज्र रश्मियों को प्रकाशित करता हुआ धारण करता है।

(४) इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने।।४।। (ऋ.१.८४.४)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पराक्रमी प्राण-रश्मियों को इस अन्तरिक्ष में सव ओर से प्राप्त करता है और विभिन्न सोम रश्मियों को अपने साथ अवशोषित करके महान् एवं अविनाशी सक्रियपन को प्राप्त करता है।

(५) इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः।।५।। (ऋ.१.८४.५)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न उत्पन्न मरुद् रश्मियों को अवशोषित करके सक्रिय और श्रेष्ठ वल से युक्त होता है। यह वल किसी पदार्थ को दवाने अथवा प्रतिरोध करने में विशिष्ट भूमिका निभाता है। विभिन्न मरुद् रश्मियां उन इन्द्र रश्मियों की ओर झुकती हुई आती हैं, इससे इन्द्र तत्त्व और भी प्रकाशित हो उठता है।

(६) नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे।।६।। (ऋ.१.८४.६)

इसका छन्द भुरिगुष्णिक् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व वलवती ऊष्मा से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अति उत्कृष्ट वल रश्मियों से युक्त होता है। इससे अधिक वलयुक्त अन्य कोई पदार्थ इस ब्रह्माण्ड को व्याप्त नहीं करता।

(७) य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग।।७।। (ऋ.१.८४.७)

इसका छन्द उष्णिक् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्, परन्तु वल की न्यूनता। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने शीघ्रकारी वल के द्वारा दाता परमाणुओं को दूसरे परमाणुओं से संगत करता है और स्वयं निश्चल सामर्थ्य से युक्त सदैव ही रहता है।

(८) कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग।।८।। (ऋ.१.८४.८)

इसका छन्द उष्णिक् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {क्षुम्पम् = क्षुम्पति गतिकर्मा (निघं.२.१४), सर्पः फणम् (म.द.ऋ.भा.१.८४.८)} वह इन्द्र तत्त्व अपनी शीघ्रकारी गतियों द्वारा मनुष्य नामक अनियमित गति वा आयु वाले प्राणों को कव चलाता है, यह निश्चित नहीं होता, जैसे- सांप फन को चलाता है और उसका निश्चित नियम जाना नहीं जा सकता। वस्तुतः यह इस ऋचा का भाव है। इसके प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विचित्र गतियों से युक्त होकर कार्य करता है।

(९) यश्चिद्धि त्वां बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग।।९।। (ऋ.१.८४.९)

इसका छन्द उष्णिक् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {आविवासति = परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} विभिन्न सोम रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व शीघ्रगामी होकर अनेक कणों के सब ओर विचरण करता है और अति उग्र बलों को प्राप्त करता है।

(१०) स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम्।।१०।। (ऋ.१.८४.१०)

इसका छन्द विराडास्तारपंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व चमकता हुआ, सर्वत्र फैलता हुआ व्यापक क्षेत्र में सक्रिय होता है। इसके अन्य प्रभाव से बलवर्षक इन्द्र तत्त्व के साथ-२ गमन करने वाली विभिन्न वाग् रश्मियां अनेक पदार्थों को प्रभावित और सक्रिय करती हैं। इसके साथ ही वे व्याप्ति गुण वाली विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिथुन करती हैं।

(११) ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्।।११।। (ऋ.१.८४.११)

इसका छन्द आस्तारपंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्, किन्तु प्रकाश की मात्रा कम। इसके अन्य प्रभाव से {पृशनायुवः = आत्मनः स्पर्शमिच्छन्त्यः (म.द.ऋ.भा.१.८४.११)। पृश्निः = विचित्रचिह्नः (तु.म.द.य.भा.२४.१५), अन्तरिक्षम् (म.द.ऋ.भा.५.५२.१६), पृश्नयो मारुताः (मै.३.१३.१२), वाग्वै पृश्निः (काठ.३४.१)। सायकः = वज्रनाम (निघं.२.२०)} उस इन्द्र तत्त्व की विचित्र स्वभाव वाली रश्मियां, जो सूक्ष्म मरुद् रश्मियों के रूप में विद्यमान होती हैं, वे आकाश तत्त्व को स्पर्श करती हुई चलती हैं। वे रश्मियां स्वयं को ही स्पर्श करती हुई अर्थात् उलट-पलट कर अपना स्पर्श करना चाहती हुई चलती हैं। वे रश्मियां अपनी वज्ररूप किरणसमूह को प्रेरित करती हुई वाग् रश्मियों के अनुकूल सोम तत्त्व को सिद्ध करती हैं अर्थात् उन्हें तेजस्वी बनाकर परस्पर संगत होने के लिए प्रेरित करती हैं।

(१२) ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्।।१२।। (ऋ.१.८४.१२)

इसका छन्द विराडास्तारपंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सपर्यन्ति = सपर्यति परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} उस इन्द्र तत्त्व, जो कि स्वयं प्रकाशमान होता है, प्रकाशयुक्त सूक्ष्म रश्मियां विभिन्न संयोज्य कणों के साथ संगत होकर उनमें दाबयुक्त बल को संचरित करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न वाग् रश्मियों के रूप में अनेक प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करती हैं।

(१३) इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव।।१३।। (ऋ.१.८४.१३)

इसका छन्द निचृद्गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेज व बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से निश्चल बलयुक्त इन्द्र तत्त्व ९९ प्रकार की अस्थिर किरणों से सूक्ष्म वायुओं को धारण करके असुर तत्त्व के मेघों को नष्ट करता है। ९९ प्रकार की रश्मियां निम्न प्रकार सम्भव हैं-

(अ) २.३६.३ में दर्शायी हुई ९० प्रकार की दास पत्नी नाम की रश्मियां, जिनके विषय में ऋग्वेद ३.१२.६ में संकेत है, जिसके आधार पर हमने ९० प्रकार की रश्मियों की गणना वहाँ की है। उस गणना में हम यहाँ यह संशोधन करना चाहेंगे कि "ओम्', 'भूः', 'भुवः', 'सुवः" इनको ६ अक्षर रश्मियों को तूष्णीशंस रूप में ग्रहण न करके इन्हें ४ दैवी छन्द रश्मियों के रूप में ग्रहण करें। इस प्रकार ये ९० छन्द रश्मियों के स्थान पर ८८ छन्द रश्मियां हो जाती हैं। इनमें १० प्राथमिक प्राण एवं १ सूत्रात्मा वायु मिलाकर ९९ रश्मियां हो जाती हैं।

(आ) यह छन्द निचृद् गायत्री होने से हम आसुरी और दैवी को छोड़कर शेष ६ निचृद् गायत्री में अर्थात् निचृद् याजुषी गायत्री के ५, निचृद् प्राजापत्या गायत्री के ७, निचृद् साम्नी गायत्री के ११, निचृद् आर्ची गायत्री के १७, निचृद् आर्षी गायत्री के २३, निचृद् ब्राह्मी गायत्री के ३५ व इसके अतिरिक्त दैवी गायत्री का १ अक्षर मिलाकर कुल ९९ अक्षर होते है।

ऐसे ये दोनों प्रकार से इन्द्र तत्त्व की ९९ अस्थिर किरणें मानी गई हैं, ऐसा हमारा मत है।

(१४) इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति।।१४।। (ऋ.१.८४.१४)

इसका छन्द निचृद्गायत्री होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {शर्यणावति = शर्यणोऽन्तरिक्षदेशस्तस्याऽदूरमवे (स्थाने) (म.द.ऋ.भा.१.८४.१४)} वह इन्द्र तत्त्व आकाश में स्थित शीघ्रगामी आसुर मेघों के हिंसक अंगों को छेदता हुआ व्याप्त होता है।

(१५) अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे।।१५।। (ऋ.१.८४.१५)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। {अपीच्यम् = अपीच्यमपचितं अपगतम् अपहितम्, अन्तर्हितं वा (नि.४.२४)} इसके अन्य प्रभाव से इस अन्तरिक्ष में तेजस्विनी भेदक किरणों के अन्दर विद्यमान प्रकाश विभिन्न गृह अर्थात् ऋतु रश्मियों से युक्त परमाणुओं वा सभी परमाणुओं में व्याप्त होता है। इसके साथ ही वह प्रकाश, जो नष्ट हो गया है वा पलायन कर गया है, वह भी ऋतु रश्मियों में प्राप्त होता है।

(१६) को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्।।१६।। (ऋ.१.८४.१६)

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र भेदक शक्तिसम्पन्न होता है। {शिमी = कर्मनाम (निघं.२.१)। दुर्हृणायवः = शत्रुभिर्दुर्लभं हृणं प्रसह्यकरणं येषां ते दुर्हृणाः, त इवाचरन्तीति दुर्हृणायवः (म.द.ऋ.भा.१.८४.१६)। दुर्हृणायून् = दुराधर्षान् (नि.१४.२५), (दुराधर्षः = दुःखेन धर्षितुं योग्यः (तु.म.द.ऋ.भा.६.४६.७)। हृत्स्वसः = येहृत्स्वस्यन्ति बाणान् तान् (म.द.ऋ.भा.१.८४.१६)। आसन्निषून् = आसने प्राप्ता बाणाः यैः, तान् (म.द.ऋ.भा.१.८४.१६)। भामिनः = भानुमत (नि.१३.३८ - वै.को. से उद्धृत)।} इसके अन्य प्रभाव से प्रजापति अर्थात् मनस्तत्त्व विभिन्न कर्मों तथा रश्मियों से युक्त विभिन्न प्राणों के बल से दुर्धर्ष रश्मियों से युक्त, जो असुरादि तत्त्वों के मध्य प्रहार करती हैं तथा प्रकाशित पदार्थ हेतु हितकारिणी होती हैं, को इन्द्र व असुर संग्राम में युक्त करता है। वह सभी दृश्य रश्मियों को समृद्ध व प्राणवान् करता है।

(१७) क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय।।१७।। (ऋ.१.८४.१७)

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्, किन्तु तेज अधिक व तीक्ष्णता न्यून {इभः = एतीति (उ.को.३.१५३)} इसके अन्य प्रभाव से वह मनस्तत्त्व ही मूलतः गति करता है। {ईषतीति गतिकर्मा (निघं.२.१४)। तुजः वज्रनाम (निघं.२.२० - वै.को. से उद्धृत)} प्राणरूप तत्त्व ही वलयुक्त किया जाता है। वही प्राण कम्पन करता है एवं वही प्राण इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करता है। वही प्राण व मन सभी उत्पन्न पदार्थों के समीप व्याप्त होते हैं और वे ही गति करने में मुख्य हेतु होते हैं। वे ही विभिन्न छन्द मरुद् रश्मियों को विस्तार प्रदान करके विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को प्रकाशित व नियन्त्रित करते हैं।

(१८) को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः।।१८।। (ऋ.१.८४.१८)

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् परन्तु प्रकाश की मात्रा में कुछ न्यूनता। इसके अन्य प्रभाव से {होत्राः = वाङ्नाम (निघं.१.११), यज्ञनाम (निघं.३.१७)} मन व प्राण तत्त्व से युक्त वाक्तत्त्व विभिन्न तेजस्विनी मास रश्मियों से अग्नि तत्त्व को प्रकाशित व ऐश्वर्ययुक्त करता है। वे दोनों तत्त्व ही दृढ़ ऋतु रश्मियों में क्रिया व प्रकाश को उत्पन्न करते हैं। विभिन्न देव वा प्रकाशित पदार्थ इन्हीं के द्वारा शीघ्रता से सब ओर व्याप्त होते एवं अच्छी प्रकार प्रकाशित होते हैं।

(१९) त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शंविष्ठ मर्त्यम्।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः।।१९।। (ऋ.१.८४.१९)

इसका छन्द आर्ची त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपेक्षाकृत समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से शीघ्रकारी परमबलयुक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुतों को प्रकाशित करता तथा विभिन्न अल्पायु कणों को भी तेजस्वी बनाता है। बलसम्पन्नता की दृष्टि से इन्द्र तत्त्व सर्वश्रेष्ठ है।

(२०) मा ते राधांसि मा त ऊतयों वसोऽस्मान्कदा चना दंभन्।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ।।२०।। (ऋ.१.८४.२०)

इसका छन्द पंक्ति होने से इन्द्र तत्त्व विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से सबको बसाने वाला इन्द्र तत्त्व जिस-२ पदार्थ के साथ संगत है, वह-२ पदार्थ विभिन्न प्रतिरोधक बलों को सहन करने में समर्थ होता है। उसकी रक्षणीय व गतिप्रदात्री शक्ति सभी परमाणुओं को समर्थ बनाती है। जैसे **सूत्रात्मा वायु विभिन्न प्रकाश रश्मियों को सभी प्रकार के प्राण प्रदान करता है, उसी प्रकार इन्द्र तत्त्व भी ऐसा करता है।**

इन बीस ऋचाओं को आचार्य सायण ने महर्षि आश्वलायन के वचन "अथ षोळशी असावि सोम इन्द्र ते......." (आश्व.श्रौ.६.२.१-२) के प्रमाण से षोडशी शस्त्र की संज्ञा दी है। वस्तुतः वज्र तथा सूर्य को षोडशी कहते हैं, यह हम ३.४१.२ में अवगत हो चुके हैं। षोडशी पर विशेष विचार हम आगामी कण्डिकाओं में करेंगे। यहाँ इतना अवगत हुआ कि इन बीस छन्द रश्मियों, जो स्वयं बारह प्रकार की हैं, के उत्पन्न होने पर वज्ररूप रश्मियों का पूर्ण रूप प्रकट हो पाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करने वाली तीक्ष्ण रश्मियों के कुल चार चरण होते हैं। इनमें सर्वप्रथम मन एवं वाक् तत्त्व अथवा प्राण तत्त्व सूक्ष्म दैवी वाग् रश्मियों को एकत्र करते हैं। उसके पश्चात् त्रिष्टुप् वा बृहती छन्द रश्मियां दैवी वाग् रश्मियों को एकत्र व तीक्ष्ण करती हैं। इसके पश्चात् ये एकत्र रश्मियां विद्युत् वा वायु के संयुक्त रूप में प्रकट होती हैं। इसके पश्चात् चतुर्थ चरण में धनंजय प्राण से बीस विविध छन्द रश्मियां, जिनमें ५ अनुष्टुप्, ४ उष्णिक्, ४ पंक्ति, ३ गायत्री तथा ४ त्रिष्टुप् होती हैं, उत्पन्न होती हैं। इनसे विद्युत् व ऊष्मा तरंगें तीक्ष्णरूप धारण करती हैं। प्रकाश की मात्रा भी तीक्ष्ण होती है। विभिन्न परमाणु आदि कणों की भेदनक्षमता तीव्र हो उठती है। इस समय विद्युत् तरंगें विचित्र गति से विभिन्न कणों को गति प्रदान करती हैं। ये तरंगें विशाल अन्तरिक्ष में व्यापकता से फैल जाती हैं। इन तरंगों की गति परस्पर उलट-पलट कर एक-दूसरे को स्पर्श करती हुई अनुभव होती है। ये तरंगें ६६ प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करती हैं। **सभी प्रकार की गति व कम्पन का मूल कारण मनस्तत्त्व व प्राण नामक प्राथमिक प्राण है।** बल की दृष्टि से इन्द्र अर्थात् वायु व विद्युत् का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। **विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सूत्रात्मा वायु के सहयोग से विभिन्न प्राणों से संयुक्त होती हैं।।**

२. वज्रो वा एष यत्षोळशी; तद् यच्चतुर्थेऽहन् षोळशिनं शंसति, वज्रमेव तत्प्रहरति, द्विषते भ्रातृव्याय वधं, योऽस्य स्तृत्यस्तस्मै स्तर्तवै।।
वज्रो वै षोळशी पशव उक्थानि; तं परस्तादुक्थानां पर्यस्य शंसति।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त जो बीस छन्द रश्मियां हैं, वे षोडशी वज्ररूप ही होती हैं। जो चतुर्थ अहन्

अर्थात् अग्नि व विद्युत् के रूप में इस षोडशी रूप रश्मिसमूह का प्रकाशन होता है, वह वज्र अर्थात् तीव्र ऊष्मा व विद्युत् से युक्त तीक्ष्ण रश्मियों के रूपों में होता है। उपर्युक्त बीस छन्द रश्मियां, जो बारह प्रकार की होती हैं, वे वज्र प्रहार के रूप में उत्पन्न होती हैं। ये किरणें उन असुर रश्मियों, जो देव पदार्थ, जो विभिन्न संगति क्रियाओं को सम्पन्न करने वाले वा सम्पन्न कर रहे होते हैं, के विनाश वा नियन्त्रित करने के लिए ही उत्पन्न होती हैं। यहाँ यह विशेष है कि पूर्वोक्त कण्डिका में जो चार चरणों की चर्चा की गई है, उनमें से प्रथम तीन चरण असुर तत्त्व के निवारण में पूर्ण समर्थ नहीं होते हैं, जबकि यह चतुर्थ चरण ही व्यवहारिक वज्ररूप में होता है, जो असुर तत्त्व पर प्रहार करता है।।

पूर्व अध्याय के अन्तिम खण्ड में हम लिख चुके हैं कि वह असुर तत्त्व मैत्रावरुण आदि उक्थों में आश्रय लेता है। वे उक्थ पशु अर्थात् मरुद् रश्मियों के रूप में ही होते हैं। वे पूर्ववर्णित उक्थ अर्थात् मरुद् रश्मिसमूह तीन प्रकार के हैं, जैसा कि वहाँ हम लिख चुके हैं। इन्हीं मरुद् रश्मियों में वह असुर तत्त्व प्रतिष्ठित होता है। जब उपर्युक्त वज्र रश्मियां असुर तत्त्व पर प्रहार करती हैं, तब वे उन्हीं उक्थ रूप मरुद् रश्मिसमूहों के ऊपर क्रमशः प्रहार करती हैं, जिससे वह असुर तत्त्व इन तीनों ही आश्रयों से निष्कासित होता जाता है। **यहाँ यह रहस्य उद्घाटित होता है। कि जब वज्ररूप रश्मियों का प्रहार असुर रश्मियों पर होना होता है, उस समय वह प्रहार वस्तुतः उन असुर रश्मियों पर प्रत्यक्ष नहीं होता है, बल्कि उनके आश्रय रूप मरुद् रश्मिसमूहों पर क्रमशः होता है। इस प्रहार से उन आश्रयभूत मरुद् रश्मिसमूहों में भारी हलचल उत्पन्न हो जाती है, जिससे उनके अन्दर आश्रय प्राप्त किया हुआ असुर तत्त्व भी विक्षुब्ध होकर वहाँ से दूर चला जाता है।** इसके कारण विभिन्न पदार्थों में संयोगादि प्रक्रिया सम्यग् रूपेण चलने लगती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– पूर्वोक्त बीस छन्द रश्मियां ही ऊष्मा व विद्युत् का तीक्ष्ण रूप धारण करके डार्क एनर्जी पर प्रहार करके संयोग आदि प्रक्रियाओं की बाधाओं को दूर करती हैं। इस संघर्ष की प्रक्रिया यह है कि डार्क एनर्जी पूर्व अध्याय के अन्तिम खण्ड में वर्णित मरुद् रश्मियों में आश्रित होती है। **ऊष्मा व विद्युत् युक्त तीक्ष्ण रश्मियां जब डार्क एनर्जी के प्रबल प्रक्षेपक बल के विरुद्ध उस पर आक्रमण करती हैं, उस समय वे सीधे डार्क एनर्जी पर प्रहार नहीं करके उनकी आश्रयरूप मरुद्रश्मियों पर ही चरणबद्ध तरीके से प्रहार करती हैं। इस तीक्ष्ण प्रहार से मरुद् रश्मियों में भारी विक्षोभ हो जाता है, जिससे डार्क एनर्जी उनके अन्दर से निकल कर दूर चली जाती है** अर्थात् अपना बाधक प्रभाव खो देती हैं।।

३. तं यत्परस्ताद् उक्थानां पर्यस्य शंसति, वज्रेणैव तत्षोळशिना पशून् परिगच्छति, तस्मात् पशवो वज्रेणैव षोळशिना परिगता मनुष्यानभ्युपावर्तन्ते तस्मादश्वो वा पुरुषो वा गौर्वा हस्ती वा परिगत एव स्वयमात्मनेऽत एव वाचाऽभिषिद्ध उपावर्त्तते, वज्रमेव षोळशिनं पश्यन् वज्रेणैव षोळशिना परिगतो वाग्घि वज्रो वाक्षोळशी।।

{मनुष्यः = अनृतसंहिता मनुष्या इति (ऐ.१.६), वहिः प्राणो वै मनुष्यः (तै.सं.६.१.१.४), मेधाविनाम (निघं.३.१५ - वै.को. से उद्धृत), व्यानेन मनुष्या (इडा दाधार) (तै.सं.१.७.२.१)। हस्तिनः = किरणः (म.द.ऋ.भा.१.६४.७)}

व्याख्यानम्– पूर्वोक्त षोडशीरूप छन्द रश्मियों के रूप में मरुद् रश्मियों पर जो तीक्ष्ण प्रहार होता है और इससे असुर तत्त्व को नियन्त्रित किया जाता है, उस प्रक्रिया को यहाँ विस्तार से बतलाते हैं। वे उपर्युक्त बीस छन्दरूपी रश्मियां जब पूर्वोक्त मरुद् रश्मिसमूह रूप उक्थों पर प्रहार करती हैं, उस समय वे रश्मियां उन मरुतों को सब ओर से घेर लेती हैं किंवा वे उन मरुद् रश्मियों को घेरती हुई ही उत्पन्न होती हैं। वे छन्द रश्मिरूप वज्र किरणें उनके परितः चक्कर लगाती हुई उन्हें पूर्णतः आच्छादित कर देती हैं। इस प्रकार उनका प्रहार करना सहसा व सीधी सरल दिशा में न होकर मरुद् रश्मियों के निकट सीधे गिरते-२ मण्डलाकार घूम कर आच्छादित करके होता है। इस विषय में आचार्य सायण ने

महर्षि आश्वलायन के इन वचनों को उद्धृत किया है-

"ऊर्ध्वं स्तोत्रियानुरूपाभ्यां तदेव शस्यं विहरेत्।।
पादान्व्यवधायार्धर्चशः शंसेत्।।
पूर्वासां पूर्वाणि पदानि।। गायत्र्यः पङ्क्तिभिः।।
पङ्क्तीनां तु द्वे द्वे पदे शिष्येते ताभ्यां प्रणुयात्।।" (आश्व.श्रौ.६.३.२-६)

यहाँ पूर्वोक्त छन्द वज्र रश्मियों के पर्यस्य अर्थात् उनके चक्राकार घूमते हुए मरुद् रश्मियों को घेरने की प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। इस पर आचार्य सायण ने लिखा है-
"तदेतदुदाहृय प्रदर्श्यते-

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे।।२।। (ऋ.१.१६.२)

इत्येषा गायत्री -

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी।।३।। (ऋ.१.८२.३)

योऽयमध्ययनपाठः सोऽविहृतः। विहृतपाठस्तूच्यते - 'इमा धाना घृतस्नुवः सुसंदृशं त्वा वयम्। हरी इहो. पवक्षतो मघवन् वन्दिषीमहीन्द्रं सुखतमे रथे प्र नूनं पूर्णवन्धुरः। स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरोम्' अनेन प्रकारेण विपर्यस्य शंसेत्।"

यहाँ महर्षि आश्वलायन के वचनों के अनुसार सायण ने गायत्री एवं विराडास्तारपंक्ति इन दो छन्द रश्मियों का परस्पर मिश्रीभाव रखते हुए बोलने का विधान किया है, उससे इतना ही ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त बीस छन्द वज्र रश्मियों का मण्डलाकार घूमना आदि क्रियाएं भी इसी शैली से दो-२ ऋचाओं के मिश्रीभाव को प्राप्त होकर ही सम्पूर्ण पर्यस्य क्रिया के रूप में प्रकट होती हैं। इसका भाव स्पष्ट है कि वे बीस छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे से उलझती-संगत होती हुई वज्ररूप में प्रकट होती हैं। जब वज्ररूप छन्द रश्मियां पूर्वोक्त मरुद् रश्मिसमूह रूप उक्थों पर प्रहार करती हैं, उस समय वे मरुद् रश्मियां उन छन्द रश्मियों से घिरी हुई ही मनुष्य नामक पदार्थ के निकट आकर चक्कर लगाती रहती हैं। मनुष्य नामक पदार्थ के विषय में ऋषियों का कथन है- "मनुष्या वै विश्वेदेवाः" (काठ.१९.१२), "अनृतसंहिता वै मनुष्या इति" (ऐ.१.६), "अनृतं मनुष्याः" (श.१.१.१.४), "व्यानेन मनुष्यान् (इडा दाधार)" (तै.सं.१.७.२.२)। इनका आशय है कि सभी देव पदार्थ जब अनृत के साथ संयुक्त होते हैं, उस समय वे मनुष्य कहलाते हैं। अनृत के विषय में ऋषियों का मन्तव्य है- "ते देवाः सत्यमभवन्, अनृतमसुराः" (मै.१.९.३)। "एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्।" (तां.८.६.१३), "अनृतेनासुरान् (प्रजापतिरसृजत)" (काठ.९.११)। इन वचनों से संकेत मिलता है कि अनृत एक पदार्थ का नाम है। इसे वाक् तत्त्व का छिद्र कहा है। 'छिद्रम्' पद की व्युत्पत्ति करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है- "छिद्यते तत्तत्" (उ.को.२.१३), "छिनत्ति यत् तत्" (म.द.य.भा.१२.५४)। इससे संकेत मिलता है कि मनस्तत्त्व द्वारा अनियन्त्रित प्राणापान व प्राणोदान किंवा छन्द रश्मियों रूप सूक्ष्म असुर तत्त्व ही अनृत कहलाते हैं। **जो पदार्थ इस असुर तत्त्व के साथ संगत होते हैं किंवा इनसे आक्रान्त होते हैं, उन पदार्थों को 'मनुष्य' कहते हैं।** असुर तत्त्व से आक्रान्त होने से इस पदार्थ के परमाणुओं की गति भी अनृत अर्थात् अनियमित हो जाती है, इस कारण इनमें संयोगादि प्रक्रिया अत्यल्प होती है। वज्ररूप बीस छन्द रश्मियों के प्रहार से असुर तत्त्व की आश्रयभूत मरुद् रश्मियां इन असुराक्रान्त परमाणुओं के पास आकर चक्कर लगाने लगती हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियों में सर्वाधिक बल और ओज सम्पन्न अश्वरूप मरुद् रश्मियां, विभिन्न गायत्री आदि छन्दरूप पुरुष रश्मियां, प्राणों से निर्मित विभिन्न रश्मि, संयोज्य अणु एवं जगती आदि छन्द रश्मियों रूप 'गौ' नामक कण वा तरंगें, धारण और आकर्षण शक्तिसम्पन्न प्राणापान वा उदानापान की शक्तियों से युक्त विभिन्न हस्तीरूप मरुद् रश्मियां उपर्युक्त असुराक्रान्त परमाणुओं के पास आकर चक्कर लगाने लगती हैं। इस प्रकार वज्ररूप वाग् रश्मियों के कारण ही विभिन्न प्रकार के रश्मि आदि पदार्थ असुर तत्त्व से आक्रान्त परमाणुओं के निकट आकर उन्हें अनेकविध बल और तेज प्रदान करके असुर तत्त्व से मुक्त करते हैं। इसके साथ ही उन वज्ररूप रश्मियों के द्वारा रोके जाते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ परस्पर संगत होकर विभिन्न क्रियाओं और पदार्थों को सम्पादित करते हैं। इन षोडशी संज्ञक वज्ररूप छन्द रश्मियों से आच्छादित मरुत् इन्हीं वज्र रश्मियों

के द्वारा आकर्षित होकर उपर्युक्त मनुष्य नामक पदार्थों के चारों ओर व्याप्त होते हैं। इस प्रकार इस सम्पूर्ण प्रक्रिया का मूल कारण वाक् तत्त्व है। यही वाक् तत्त्व षोडशी रूप छन्द रश्मियों के रूप में प्रकाशित होता है और यही वाक् तत्त्व वज्ररूप होकर विभिन्न रश्मियों को रोकता, संगत करता और असुर रश्मियों को दूर करता है। इस विषय में सायण ने ऐतरेय आरण्यक (२.१.६) को उद्धृत करते हुए लिखा है-

"तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम्"।

इसका आशय हमारे मत में यह है {दाम = ददातीति (उ.को.४.१४६), दमनसाधनम् (म.द.ऋ.भा.१.१६२.८)} कि इस सृष्टि में वाक् तत्त्व की प्रकाशित दातृगुण सम्पन्न रश्मियों की व्याप्ति से इसी प्रकार के वाक् तत्त्व की रश्मियां परस्पर संगत होकर सम्पूर्ण पदार्थ को अपने बंधन में बांधे रखती हैं। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि ये **वाग् रश्मियां पूर्वोक्त मनुष्य नामक पदार्थ को व्यान तत्त्व के द्वारा ही धारण करती हैं**।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त २० छन्द रश्मियां जब ऊष्मा और विद्युत् के रूप में डार्क एनर्जी पर प्रहार करती है, तब वह वस्तुतः डार्क एनर्जी पर प्रत्यक्ष प्रहार नहीं बल्कि डार्क एनर्जी की आधारभूत मरुद् रश्मियों पर क्रमशः प्रहार करती हैं। उस प्रहार से वे मरुद् रश्मियां पूर्णरूप से उन छन्द रश्मियों से आच्छादित हो जाती हैं। इसके साथ ही वे प्रहारक छन्द रश्मियां परस्पर मिश्रित होकर मरुद् रश्मियों पर प्रहार करती हैं, जिससे वे मरुद् रश्मियां डार्क एनर्जी को त्यागकर उसके प्रभाव से प्रक्षिप्त हो रहे विभिन्न कणों वा रश्मियों के चारों ओर चक्कर लगाने लगती हैं। इसके साथ ही अन्य विभिन्न छन्दादि रश्मियां और विकिरण भी उन कणों वा रश्मियों को आच्छादित करके असुर तत्त्व के प्रभाव से मुक्त करती हैं, जिससे उनके अन्दर डार्क एनर्जी का प्रक्षेपक प्रभाव समाप्त होकर संयोगादि प्रक्रियाएं तीव्र होने लगती हैं।।

४. तदाहुः किं षोळशिनः षोळशित्वमिति? षोळशः स्तोत्राणां, षोळशः शस्त्राणां, षोळशभिरक्षरैरादत्ते, षोळशभिः प्रणौति, षोळशपदां निविदं दधाति, तत्षोळशिनः षोळशित्वम्।।
द्वे वा अक्षरे अतिरिच्येते षोळशिनोऽनुष्टुभमभिसंपन्नस्य वाचो वाव तौ स्तनौ, सत्यानृते वाव ते।।
अवत्येनं सत्यं नैनमनृतं हिनस्ति य एवं वेद।।१।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों के प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त २० छन्द रश्मियों का समूहरूप शस्त्र षोडशी क्यों कहलाता है? वहाँ २० छन्द रश्मियां कुल १२ प्रकार के छन्दों से युक्त हैं। ऐसी स्थिति में उन रश्मियों का १६ की संख्या से कोई साम्य प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता। तब इन्हें षोडशी क्यों कहा जाता है? इसके उत्तर में महर्षि कहते हैं कि **किसी भी तारे को षोडशी ही कहते हैं,** क्योंकि प्रत्येक तारे में शस्त्र और स्तोत्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूहों की संख्या १६-१६ ही होती है। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए ३.४१.२ अवश्य पठनीय है। इसी प्रसंग में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "एतत् त्रयं सह क्रियते ग्रहः स्तोत्रं शस्त्रम्" (श.८.१.३.४)। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रह, शस्त्र और स्तोत्र तीनों ही प्रकार की रश्मियां साथ-२ कार्य करती हैं। इनमें ग्रहों की संख्या भी कुल १६ ही होती है, जिसमें ७ प्राण यथा प्राण-अपान-व्यान- उदान-समान-मन एवं वाक् अथवा मन-वाक् के स्थान पर धनंजय व सूत्रात्मा वायु के अतिरिक्त अन्तर्याम आदि ९ ग्रह, ये कुल मिलाकर १६ ग्रह होते हैं। इस विषय में खण्ड ३.२-३ द्रष्टव्य हैं। इस प्रकार इन १६ ग्रहों के कारण भी तारे को षोडशी कह सकते हैं। इसके भाष्य में आचार्य सायण ने लिखा है-

"किं चास्मिञ्छस्त्रे होत्रा संपादिताया अनुष्टुभः पूर्वार्धगतानि षोडशाक्षराण्युच्चार्य अवस्यति, उत्तरार्धगतानि षोडशाक्षराण्युच्चार्य 'प्रणौति' प्रणवमुच्चारयति। किं च 'अस्य मदे जरितः' इत्यादिका षोडशपदोपेता निवित् शस्त्रमध्ये प्रक्षिप्यते। अतो बहुधा षोडशसंख्यायोगाद् अयं प्रयोगः षोळशिनामोपेतः।"

इससे हमारे मत में यह सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त २० छन्द रश्मियों में से प्रारम्भिक ५ छन्द

रश्मियां अनुष्टुप् हैं। हम जानते हैं कि अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के दोनों अर्धभागों में १६-१६ अक्षर विद्यमान होते हैं। यहाँ आचार्य सायण ने अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के पूर्वार्ध के पश्चात् अवसान और उत्तरार्ध के पश्चात् प्रणव के उच्चारण का विधान बतलाया है। इन रश्मियों के उत्पन्न होते समय इस प्रक्रिया के होने का हम खण्डन नहीं करते, परन्तु ऐसा होना तो सभी छन्द रश्मियों में आवश्यक है। तब इस कण्डिका से ऐसा आशय ग्रहण करना हमें उचित प्रतीत नहीं होता। यहाँ "आदत्ते" क्रियापद से हमें यह प्रतीत होता है कि **अनुष्टुप् छन्द रश्मियां अपने पूर्वार्ध के द्वारा अन्य विभिन्न रश्मियों का ग्रहण करती हैं।** इसकी ग्राह्य शक्ति के कारण ही इस छन्द का नाम ही अनुष्टुप् होता है, जैसा कि कहा गया है-

"अनुष्टुबनुस्तोमनात्" (दै.३.७), "अनुष्टुब् मित्रस्य (पत्नी)" (मै.१.६.२)।

इस प्रकार "षोळशभिरक्षरैरादत्ते" का यही अर्थ है कि अनुष्टुप् छन्द रश्मियां अपने पूर्वार्ध के द्वारा ही अन्य सभी पदार्थों के साथ संगत होती हैं। कदाचित् पूर्वार्ध का अन्तिम अक्षर ही संयोग का केन्द्र होता है। इसी प्रकार "षोळशभिः" "प्रणौति" का तात्पर्य हमारी दृष्टि में यह है कि अनुष्टुप् छन्द रश्मि के उत्तरार्ध के द्वारा यह छन्द रश्मि अन्य रश्मि आदि पदार्थों को प्रकाशित किंवा बल प्रदान करती है। मानो इस रश्मि की सूक्ष्म बल रश्मियां इसके अन्तिम अक्षर से स्नायु की भांति जुड़ी होती हैं। इसी कारण महर्षि ने अन्यत्र कहा है- "अनुष्टुप् (प्राणस्य) स्नावानि" (ऐ.आ.२.१.६)। इसके पश्चात् सायण का यह कथन उचित प्रतीत होता है कि इस शस्त्र रूप २० छन्द रश्मियों के मध्य में १६ पद युक्त "अस्ये मदे जरितः........." निविद् रश्मि का प्रक्षेप किया जाता है। यह निविद् छन्द रश्मि पूर्व रूप से २० छन्द रश्मियों को अभिव्याप्त करके उन्हें परस्पर जोड़े रखती है, इस कारण ही इसे निवित् कहते हैं। इस प्रकार इन २० छन्द रश्मियों का १६ संख्या से अनेकविध साम्य होने से इसे षोडशी वज्र कहते हैं।।

जब कभी ३४ अक्षरयुक्त स्वराडनुष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है, तब इसके दो अक्षर बढ़े हुए होते हैं। वे दोनों अक्षर षोडशी अनुष्टुप् छन्द रश्मि के रूप में विद्यमान वाक् तत्त्व के दो स्तनरूप होते हैं, जो निर्माणाधीन तारे आदि लोकों में घोर गर्जना करते हुए उसमें विद्यमान पदार्थ को विशेषरूप से कंपाते किंवा विक्षुब्ध करते हैं। इन लोकों के अन्दर विद्यमान विभिन्न संयोज्य पदार्थ ध्वनि तरंगों से युक्त हो जाते हैं। इसलिए ऋषियों ने कहा है- "यद् (अन्नाद्यम्) अभ्यस्तनयत् तत् स्तनयो स्तनत्वम् (जै.ब्रा. २.२२८), यद् (अश्वो मेध्यः) विधूनुते तत् स्तनयति" (तै.सं.७.५.२५.२)।

उस समय उस कॉस्मिक पदार्थ में श्वेत रंग का प्रकाश उत्पन्न होता है। इसी कारण कहा है- "अग्निर्वा अश्वः श्वेतः" (श.३.६.२.५)। इन स्तनरूप अक्षरों को 'सत्य' और 'अनृत' कहने का तात्पर्य यह है कि ये अनुष्टुप् छन्द रश्मियां, जो विशुद्ध रूप से योषा एवं वाक् के रूप में ही विद्यमान होती हैं, ऐसी ये वाग् रश्मियां 'सत्य' रूपी अक्षर को सम्यक् प्रकार से धारण करके सत्यरूपी प्राथमिक प्राणों को अपने निकट संगत करके 'अनृत' रूपी अक्षर के द्वारा 'अनृत' से ही उत्पन्न असुर तत्त्व को दबाने का कार्य करती हैं। साथ ही विभिन्न देव पदार्थों को रोककर उन्हें अपने साथ संगत करने में समर्थ होती हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "वाग्वा अनुष्टुप् (तै.सं.६.६.११.५), ते देवा अश्विनोः पूषन् वाचः सत्यँ संनिधायानृतेनासुरानभ्यभवन्..........अनृतेनैव भ्रातृव्यानभिभूय वाचः सत्यमवरुन्धे" (तै.ब्रा.१.८.३.३-४)।

इस प्रकार की स्थिति बनने पर सत्य अर्थात् विभिन्न **प्राणरूप देव** पदार्थ विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं की रक्षा करते हैं, विभिन्न पदार्थों की गति में वृद्धि, उनके **आकर्षण आदि** बल, दीप्ति परस्पर संयोगादि क्रियाओं आदि को समृद्ध करते हैं तथा अनृतरूप **असुर तत्त्व इन क्रियाओं** को बाधा नहीं पहुँचाते हैं, क्योंकि उनका प्रक्षेपक आदि बल उपर्युक्तानुसार **निष्प्रभ** हो चुका होता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के अन्तर्गत ७ मूल प्राण तत्त्वों के द्वारा ६ प्रकार के बल उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार कुल बलों की संख्या १६ हो जाती है। तारों के अन्दर १६-१६ प्रकार के पृथक्-२ गुणयुक्त छन्द रश्मिसमूह भी विद्यमान होते हैं। सभी छन्द रश्मियों को **'ओम्'** रूपी सूक्ष्म रश्मि बांधे रखती है। तारों में विद्यमान अनुष्टुप् छन्द रश्मियां अपने मध्य भाग के अन्तिम सूक्ष्मतम अवयव द्वारा दूसरी छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त रहती हैं तथा अनुष्टुप् छन्द रश्मि के अन्तिम भाग द्वारा सूक्ष्म बल रश्मियां प्रवाहित होती रहती हैं। इन सभी छन्द रश्मियों को **'ओम्'** रश्मि के साथ-२ एक और संधानक

रश्मि परस्पर जोड़े रखती है। कुछ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां सूर्यादि तारों में अनेक प्रकार की ध्वनि तरंगें मृदु और तीव्र रूप में उत्पन्न करती हैं और वे रश्मियां दृश्य पदार्थ को आकर्षित व धारण करती हुई डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक और तीव्र प्रतिकर्षण वल को नियन्त्रित करके उनको दृश्य पदार्थ से दूर करती रहती हैं, जिसके कारण विभिन्न कणों व रश्मियों का परस्पर संयोग, उनके आकर्षणादि वल एवं प्रकाश ऊष्मा आदि में भारी वृद्धि होती है।।

इति १६.१ समाप्तः

ॐ अथ १६.२ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. गौरिवीतं षोळशिसाम कुर्वीत तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामस्तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतं, तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् गौरिवीतं षोळशिसाम कुरुते।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं कि पूर्वोक्त षोडशी संज्ञक छन्द रश्मियों के मध्य गौरिवीत नामक सूक्ष्म साम रश्मियों को उत्पन्न वा धारण किया जाता है। यहाँ गौरिवीत साम उन सूक्ष्म रश्मियों का नाम है, जो पूर्वोक्त खण्ड की अन्तिम कण्डिका में वर्णित स्वराडनुष्टुप् छन्द रश्मि के अतिरिक्त दो अक्षरों के रूप में वाक् तत्त्व के स्तन के रूप में कही गई है। उस कण्डिका में भी "अतिरिच्येते" पद से भी यही संकेत मिलता है। इस विषय में ऋषियों के कुछ वचन इस प्रकार हैं-

"अतिरिक्तंगौरीवितम् (तां.१८.६.१६), देवा वै वाचं व्यभजन्त तस्याः यो रसोऽत्यरिच्यत तद्गौरीवितमभवत् (तां.५.७.१), ब्रह्म यद्देवा व्यकुर्वत ततो यदत्यरिच्यत तद् गौरीवितमभवत् (तां.६.२.३)"।

इन तीनों वचनों से यह सिद्ध होता है कि जब विभिन्न छन्द रश्मियां परस्पर संगत होते हुए विभिन्न प्रकार से विकृत होकर नाना पदार्थों को उत्पन्न करती हैं, तब उनके कुछ अक्षररूप सूक्ष्म प्राण पृथक् होकर अन्तरिक्ष में रिस जाते हैं। उन्हीं अक्षररूप प्राणों को यहाँ गौरिवीत कहा है। इसे ही छन्द रश्मियों का रस भी कहा है। इस विषय में एक अन्य ऋषि का भी कथन है-

"रसो वै गौरिवीतम् (जै.ब्रा.३.२६१), वाचो वै रसोऽत्यक्षरत् तद् गौरिवीतमभवत्" (जै.ब्रा.३.१८)।

निघण्टुकार ने १.११ में 'गौरी' शब्द को वाङ्नाम में पढ़ा है। इससे सिद्ध है कि अक्षररूप सूक्ष्म गौरिवीत नाम की वाग् रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों के अन्दर व्याप्त होती हुई उनके साथ ही रमण करती हैं। इस प्रकार की 'गौरी' नामक छन्द रश्मियां तारों के अन्दर तीव्रता से जलती हुई गौर वर्ण का तेज उत्पन्न करती हैं। इस बात का संकेत इन आर्ष वचनों से भी मिलता है- "गौरी रोचतेर्ज्वलतिकर्मणः" (नि.११.३६)। **उधर कहा गया है-** "स (प्रजापतिः) हैवं षोडशधाऽऽत्मानं विकृत्य सार्धं समैत्, तद् यत् सार्धं समैत् तत्साम्नस्सामत्वम्" (जै.उ.१.१५.३.७)।

इस कारण यहाँ महर्षि ऐतरेय कहते हैं कि वैद्युत तेज एवं प्रकाश आदि की तीव्रता के लिए इन अक्षररूप सूक्ष्म रश्मियों का विशेष योगदान रहता है। जब तारे आदि लोकों में ये सूक्ष्म साम रश्मियां पूर्णरूप से व्याप्त और सक्रिय हो जाती हैं, उस समय उस लोक के अन्दर ऊष्मा और प्रकाश के साथ विद्युत् भी अनेक प्रकार के रूप धारण करती हुई प्रकाशित होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के अन्दर कार्यरत विभिन्न छन्द रश्मियां विभिन्न प्रकार से विकृत और संयुक्त होकर नाना क्रियाओं को सम्पादित करती हैं। उनमें से किन्हीं-२ छन्द रश्मियों की सूक्ष्म अवयव रूप अति सूक्ष्म रश्मियां मुक्त होकर विभिन्न छन्द रश्मियों के बीच उसी प्रकार विचरण करती हैं, जिस प्रकार विद्युत् सुचालक धातुओं में मुक्त इलेक्ट्रॉन्स विचरण करते हैं। वे सूक्ष्म रश्मियां सभी बड़ी छन्द रश्मियों के बीच व्याप्त होकर उन्हें तेजस्वी बनाती हैं। इन्हीं के कारण तारों के अन्दर विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होकर तारों को तेजस्वी और तप्त बनाती हैं। इन्हीं के कारण तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार की विद्युत् धाराओं और विद्युत् क्षेत्रों का निर्माण होता है और इन्हीं के कारण तारों में लघु वा विशाल विस्फोट भी होते रहते हैं।।

२. नानदं षोळशिसाम कर्तव्यमित्याहुरिन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत्; तमस्मै प्राहरत्, तमभ्यहनत्, सोऽभिहतो व्यनदत्, यद् व्यनदत् तन्नानदं सामाभवत् तन्नानदस्य नानदत्वम्; अभ्रातृव्यं वा एतद् भ्रातृव्यहा साम यन्नानदम्।।
अभ्रातृव्यो भ्रातृव्यहा भवति य एवं विद्वान्नानदं षोळशिसाम कुरुते।।
तद् यदि नानदं कुर्युरविहृतः षोळशी शंस्तव्योऽविहृतासु हि तासु स्तुवते; यदि गौरिवीतं विहृतः षोळशी शंस्तव्यो विहृतासु हि तासु स्तुवते।।२।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का कथन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त षोडशी शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के अन्दर 'नानदसाम' नाम की सूक्ष्म रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। इस विषय में वे कहते हैं कि जब इन्द्र तत्त्व षोडशी रश्मिसमूह रूप वज्ररूपी तीक्ष्ण किरणों के द्वारा निर्माणाधीन तारे को घेरे हुए वृत्रासुर नामक विशाल बाधक मेघ समूह पर तीक्ष्ण आक्रमण करता है और ऐसा करने के लिए पूर्व खण्ड की प्रथम कण्डिका में वर्णित चारों चरणों की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। इनसे वह इन्द्र तत्त्व ऊपर अर्थात् तारों के केन्द्र के बाहर की ओर स्थित असुर तत्त्व की ओर वेगपूर्वक उठता हुआ उस पर अपनी तीक्ष्ण वज्ररूप किरणों से प्रहार करता है। इस प्रहार से वह असुर तत्त्व छिन्न-भिन्न हो जाता है। इस अत्यन्त भेदक क्रिया के साथ ही छिन्न-भिन्न होता हुआ वह असुर तत्त्व महान् गर्जना करता है। उस गर्जना से ही नानदसाम नामक सूक्ष्म रश्मियां उत्पन्न होती हैं, क्योंकि ये रश्मियां नाद करते हुए असुर तत्त्व से उत्पन्न होती हैं, इस कारण ही इसको 'नानदसाम' कहते हैं। इस विषय में अन्य आर्ष वचन भी ऐसी ही सम्मति देते हैं-

"नानदेन वा इन्द्रो वृत्रं नानद्यमानमहन्। यन् नानद्यमानमहंस्तन्नानदस्य नानदत्वम्। (जै.ब्रा.३.८०), इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रं हनानीति तस्मा एतामनुष्टुभमपहरसं प्रायच्छत्त्या नास्तृणुत यदस्तृतो व्यनदत्तन्नानदस्य नानददत्वम्" (तां.१२.१३.४)।

ताण्ड्य ब्राह्मण के इस कथन से {हरः = ज्वलतोनाम (निघं.१.१७), वीर्यं वै हरः (श.४.५.३.४)} संकेत मिलता है कि निर्माणाधीन तारे के अन्दर दौड़ता हुआ इन्द्र तत्त्व पूर्वोक्त षोडशी संज्ञक अनुष्टुप् रश्मियों के तेज के द्वारा असुर तत्त्व पर आक्रमण करता हैं, जिसके कारण वह आसुर मेघ तीव्र रूप से थर-थराता हुआ गम्भीर नाद उत्पन्न करता है। उस समय उस नाद से सूक्ष्म साम रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे ही नानदसाम कहलाती हैं। वे इस प्रकार की नानदसाम रश्मियां सम्पूर्ण असुर पदार्थ में व्याप्त हो जाती हैं और वह असुर पदार्थ उन नानदसाम रश्मियों को कोई क्षति नहीं पहुँचा सकता। यहाँ एक पक्ष यह भी विदित होता है कि ये नानदसाम रश्मियां असुर तत्त्व के नाद से उत्पन्न न होकर उस नाद के उत्पन्न होते समय इन्द्र तत्त्व किंवा वज्र रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। इनके उत्पन्न होते समय ही असुर तत्त्व नाद करता हुआ छिन्न-भिन्न होता है। इस कारण इन्हें नानदसाम कहते हैं। कण्डिका में विद्यमान "भ्रातृव्यहाँ" इस शब्द में हन् धातु के अर्थ हिंसा और गति दोनों ही सम्भव हैं। गति अर्थ ग्रहण करके हमने पूर्व पक्ष प्रस्तुत किया है, कि वे नानदसाम रश्मियां सम्पूर्ण असुर पदार्थ में व्याप्त हो जाती है। यहाँ हिंसा अर्थ ग्रहण करने पर यह सिद्ध होगा कि ये नानदसाम रश्मियां वज्र के साथ संयुक्त होकर उस असुर तत्त्व का विनाश करती हैं। इसकी पुष्टि अगली कण्डिका से भी होती है।।

ये नानदसाम रश्मियां जब षोडशी अनुष्टुप् छन्द रश्मियों रूपी वज्र में उत्पन्न होती हैं, उस समय वह क्षेत्र असुर तत्त्व से रहित हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वे रश्मियां असुर तत्त्व के अन्दर व्याप्त होकर उसे नष्ट वा निराकृत कर देती हैं। इन रश्मियों पर उस असुर पदार्थ का कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।।

जिस समय नानदसाम रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उस समय षोडशी नामक पूर्वोक्त छन्द रश्मियां अविहृत रूप में ही सक्रिय रहती हैं, अर्थात् वे पृथक्-२ छन्द रश्मियों के रूप में ही विद्यमान होती हैं, न कि पूर्व खण्ड में वर्णित मिश्रीभाव लिए हुए कार्य करती हैं, और जब पूर्वोक्त गौरिवीत साम रश्मियां उन षोडशी अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के अन्दर उत्पन्न होती हैं, उस समय वे परस्पर मिश्रित सी होती

हुई, परन्तु दूर-२ फैलती हुई उत्पन्न होती हैं। इस समय छन्द रश्मियां परस्पर मिलती-जुलती हुई भी पृथक्-२ खण्डों में दूर-२ विद्यमान होती हुई फैली हुई रहती हैं, जिसके कारण ये अपेक्षाकृत कम तीक्ष्ण होती हैं, जबकि नानद साम रश्मियों के समय वे छन्द रश्मियां एक-दूसरे से मिली हुई न होने पर भी परस्पर निकटता बनाये रखकर तीक्ष्णरूप धारण करके असुर तत्त्व का नाश करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब विद्युत् और ऊष्मा से युक्त तरंगों का डार्क एनर्जी पर भीषण प्रहार होता है, उस समय डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के अन्दर तीव्र थर-थराहट उत्पन्न होती है। इसके साथ ही अति गम्भीर घोष उत्पन्न होता है। उस घोषयुक्त तीक्ष्ण प्रहार के कारण डार्क एनर्जी तारों से दूर चली जाती है। इस कारण उन तारों के मध्य होने वाली क्रियाएं निरापद रूप से सम्पन्न होने लगती हैं। जब यह गम्भीर नाद उत्पन्न होता है, उस समय पूर्वोक्त २० छन्द रश्मियां पृथक् परन्तु अत्यन्त निकटता से सटी हुई रहकर तीक्ष्ण प्रहार करती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

ॐ इति १६.२ समाप्तः ॐ

ॐ अथ १६.३ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अथातश्छन्दांस्येव व्यतिषजति; 'आ त्वा वहन्तु हरय', 'उपो षु शृणुही गिर' इति गायत्रीश्च पङ्क्तीश्च व्यतिषजति, गायत्रो वै पुरुषः, पाङ्क्ताः पशवः, पुरुषमेव तत्पशुभिर्व्यतिषजति, पशुषु प्रतिष्ठापयति, यदु गायत्री च पङ्क्तिश्च ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचो रूपादनुष्टुभो रूपाद् वज्ररूपान्नैति।।

{तेनो = तेनैव (आ. सायण)}

व्याख्यानम्– पूर्व दोनों खण्डों में गौरिवीत साम रश्मियों की उत्पत्ति और व्याप्ति के समय जो षोडशी छन्द रश्मियां विहृत रूप से अर्थात् फैली हुई अवस्था में परस्पर मिश्रित होती हैं, उनके मिश्रित होने का प्रकार इस कण्डिका में बतलाया गया है। इसी कण्डिका के आधार पर आचार्य सायण ने प्रथम खण्ड के भाष्य में उदाहरण देकर समझाया है। यहाँ महर्षि जिन छन्द रश्मियों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं, वे छन्द रश्मियां प्रथम खण्ड की प्रथम कण्डिका में वर्णित छन्द रश्मियों से भिन्न हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि षोडशी शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूह अनेक प्रकार के होते हैं। इसी कारण यहाँ अन्य रश्मियों को उदाहृत किया है। इस विषय में महर्षि लिखते हैं कि काण्वो मेधातिथि ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये। इन्द्र त्वा सूरचक्षसः।।१।।
इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे।।२।।
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये।।३।। (ऋ.१.१६.१-३)

का मिश्रीभाव राहूगणो गोतम ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं निचृदास्तार पंक्ति छन्दस्क

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथाइव।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी।।१।। (ऋ.१.८२.१)

एवं इसी ऋषि और देवता वाली विराडास्तारपंक्ति एवं निचृदास्तारपंक्ति छन्दस्क

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी।।३।।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी।।४।। (ऋ.१.८२.३-४)

के साथ होता है। इन तीसरी और चौथी ऋचाओं का ग्रहण हमने आचार्य सायण के भाष्य के आधार पर किया है। इस प्रकार ये तीन गायत्री छन्द रश्मियां तीन पंक्ति छन्द रश्मियों के साथ क्रमशः मिश्रित होती हैं। इस मिश्रण का स्वरूप प्रथम खण्ड में द्रष्टव्य है, जिसे हमने सायण भाष्य से उद्धृत किया है। इस कण्डिका का उद्देश्य केवल गायत्री और पंक्ति छन्द रश्मियों के मिश्रण के क्रम को समझाना

मात्र है, न कि उसकी उत्पत्ति और स्वरूप आदि का वर्णन करना। इस कारण हमने इन रश्मियों के स्वरूप और प्रभाव को नहीं दर्शाया है। यहाँ महर्षि पुरुष का सम्बन्ध गायत्री तथा पशु का संबंध पंक्ति छन्द रश्मियों से मानते हैं। इस विषय में हमारा मत यह है कि किसी भी निर्माणधीन **तारे का केन्द्रीय भाग ही पुरुष कहलाता है**। इसका संकेत "अपां गर्भः पुरुषः स यज्ञः" (गो.पू.१.३६) से भी मिलता है। इस आर्ष वचन का तात्पर्य यह है कि संघनित होते हुए विभिन्न प्राणों का केन्द्रीय अथवा गर्भरूप क्षेत्र पुरुष कहलाता है। यही केन्द्रीय भाग सम्पूर्ण लोक का प्रेरक एवं विभिन्न तत्त्वों का उत्पादक होने से सविता कहलाता है, इसी कारण कहा है- "पुरुष (एव) सविता" (जै.उ.४.१२.१.७)। यही केन्द्रीय भाग अति तेजस्वी होकर विभिन्न प्रकार के संयोज्य पदार्थसमूह को धारण करता है, इसीलिए एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा- "अथैष पुरुषो हिरण्ययो यजमानलोकमेवैष दाधार" (मै.३.२.६)। महर्षि याज्ञवल्क्य का वचन "पुरुषो वै संवत्सरः" (श.१२.२.४.१) भी तारे को पुरुष सिद्ध करता है। इन कथनों से यह प्रकाशित होता है कि इसी भाग में गायत्री छन्द रश्मियों की विशेष प्रधानता होती है। इसी कारण पुरुष संज्ञक इस क्षेत्र को 'गायत्र' कहा गया है।

अब हम 'पशु' शब्द पर विचार करते हैं। इस विषय में कुछ आर्ष वचनों को उद्धृत करते हैं-

"पशवः पृष्ठ्यानि (कौ.ब्रा.२१.५), पशवो वै पूषा (मै.१.८.५; तां.१८.१.१६), पशवो वै देवानां प्रियास्तन्वः (मै.१.७.२), पशवो वाऽअन्नम् (श.४.६.८.१), पशव आदित्यः (क.४१.११; ४४.६ - ब्रा. उ.को. से उद्धृत)"। इन प्रमाणों से संकेत मिला है कि तारे 'पशु' भी कहाते हैं परन्तु उनका वह भाग, जो केन्द्रीय भाग के बहिःस्थ होता है, वही विशाल भाग पशुसंज्ञक होता है। यही भाग केन्द्रीय भाग का पोषक अन्नरूप होता है, क्योंकि यहीं से पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होता रहता है। तारों का पृष्ठ भाग इसी भाग की बाहरी सीमा के रूप में होता है। यह भाग केन्द्रीय भाग की अपेक्षा अत्यन्त विशाल व विस्तृत होता है। यहाँ इस भाग को पाङ्क्त कहने का तात्पर्य यह है कि इस भाग में पङ्क्ति छन्द रश्मियों की विशेष प्रधानता होती है। यद्यपि ऋषियों का कथन है-

"पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दांसि" (तां.४.४.६)। तथापि इनमें पंक्ति छन्द रश्मियों की ही प्रधानता होती है।

यहाँ 'पुरुष' का अर्थ प्राण तथा 'पशु' का अर्थ मरुत् भी हो सकता है। इस कारण प्राथमिक प्राणों का गायत्री छन्द रश्मियों के साथ और मरुद् एवं छन्द रश्मियों का विशेष सम्बन्ध पंक्ति छन्द रश्मियों के साथ होता है। जब उपर्युक्त प्रकार से गायत्री और पंक्ति छन्द रश्मियों का परस्पर मिश्रीभाव होता है, उसके कारण प्राथमिक प्राणों और मरुदादि रश्मियों का मिश्रीभाव होता है। इसके साथ ही तारों के केन्द्रीय भाग के साथ शेष भाग का संगतीकरण होता है। वह केन्द्रीय भाग बाहरी भाग के अन्दर विभिन्न बलों के माध्यम से प्रतिष्ठित हो जाता है। जब एक गायत्री एक पंक्ति के साथ संयुक्त होती है, तब वे दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के समान प्रभावकारी होती हैं। इस कारण वह सम्पूर्ण लोक अनुष्टुप् छन्द रश्मियों अर्थात् वाग् रूपी वज्र रश्मियों से युक्त हो जाता है अर्थात् वह इनसे वियुक्त कभी नहीं होता और ये ही वज्र रश्मियां असुर तत्त्व के आधार विभिन्न मरुतों को उनसे पृथक् कर देती हैं, जिसके कारण असुर तत्त्व निराश्रित और निष्प्रभावी हो जाता है और वे मरुत् तारे आदि लोकों में आत्मसात् हो जाते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारे आदि प्रकाशित लोकों के अन्दर सभी प्रकार की छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिनमें से केन्द्रीय भाग में गायत्री एवं शेष भाग में पंक्ति रश्मियों की प्रधानता होती है। इसके साथ ही केन्द्रीय भाग में प्राथमिक प्राण रश्मियों और शेष भाग में छन्द-मरुद् रश्मियों की प्रधानता होती है। तारों के शेष विशाल भाग में एवं उसके बाहरी क्षेत्र में डार्क एनर्जी अपना प्रक्षेपक प्रभाव विशेषरूप से प्रकट करती है, उस समय गायत्री और पंक्ति छन्द रश्मियां मिश्रित होकर अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। ये अनुष्टुप् छन्द रश्मियां अत्यन्त गर्म विद्युत् तरंगों को उत्पन्न करती हैं। वे गर्म विद्युत् तरंगें डार्क एनर्जी से संघर्ष करके उसे बहिष्कृत और प्रभावहीन कर देती हैं। विभिन्न तारा-मण्डलों के अन्दर गायत्री और पंक्ति रश्मियों के मेल से उष्ण विद्युत् तरंगें उत्पन्न होकर डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करती हुई सदैव विचरती रहती हैं।।
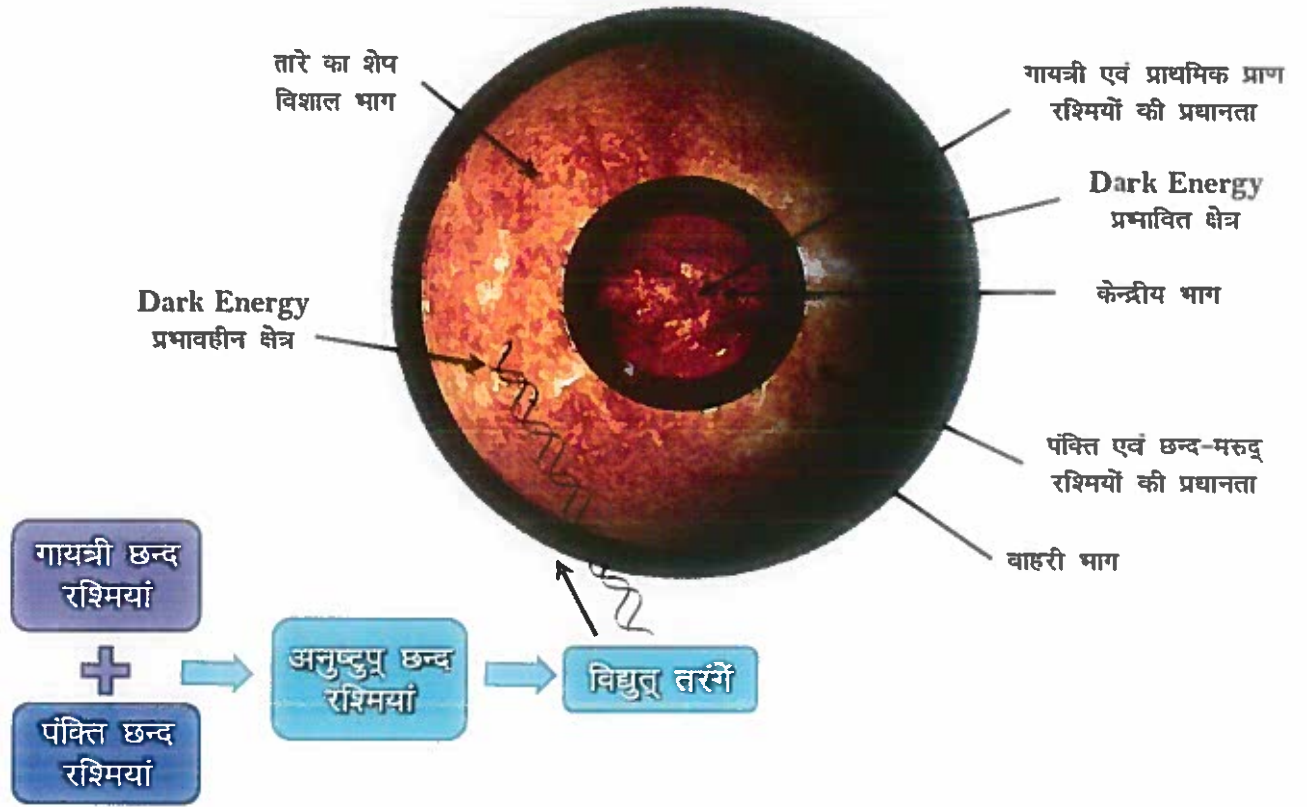
चित्र १६.१ उष्ण विद्युत् तरंगों की उत्पत्ति तथा उनके द्वारा डार्क एनर्जी पर नियन्त्रण

२. 'यदिन्द्र पृतनाज्ये' 'अयं ते अस्तु हर्यतः' इत्युष्णिहश्च बृहतीश्च व्यतिषजत्यौष्णिहो वै पुरुषो, बार्हताः पशवः, पुरुषमेव तत्पशुभिर्व्यतिषजति, पशुषु प्रतिष्ठापयति; यदुष्णिक् च बृहती च ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचो रूपादनुष्टुभो रूपाद् वज्ररूपान्नैति।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि पर्वत काण्व ऋषि अर्थात् विभिन्न सन्धि व पालन कर्मों के परिपूर्ण सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न प्राण रश्मि विशेष से उत्पन्न इन्द्रदेवताक, निचृदुष्णिक् एवं दो उष्णिक्

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः। आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः।।२५।।

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः। आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः।।२६।।

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे। आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः।।२७।। (ऋ.८.१२.२५-२७)

एवं विश्वामित्र ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक, दो निचृत् बृहती एवं एक बृहती

अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः। जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम्।।१।।

हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः। विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः।।२।।

यामिन्द्रो हरिंधायसं पृथिवीं हरिंवर्पसम्।
अधांरयद्धरितोर्भूरि भोजंनं ययोंरन्तर्हरिश्चरंत्॥३॥ (ऋ.३.४४.१-३)

के मिश्रीभाव की चर्चा करते हैं। ये उष्णिक् छन्द रश्मियां बृहती छन्द रश्मियों से परस्पर क्रमशः मिल जाती हैं। यह प्रक्रिया भी उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार गायत्री और पंक्ति छन्द रश्मियों के परस्पर मिलने की प्रक्रिया उपर्युक्तानुसार होती है। अब हम उष्णिक् छन्द रश्मियों पर विचार करते हैं। इस विषय में ऋषियों ने कहा है-

"उष्णिक् छन्दस्तच्चक्षुः (मै.२.१३.१४), उष्णिगुत्स्नानात् स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वोष्णीषिणो वेत्यौपमिकम् (दै.३.४), ग्रीवा उष्णिहः (श.८.६.२.११)"।

जैसा कि हम जानते हैं कि पूर्वोक्त पुरुष संज्ञक केन्द्रीय भाग अत्यन्त उष्ण और तेजस्वी होता है। इस कारण वह उस लोक के चक्षु के समान होता है, जैसा कि कहा गया है- "कनीनिके अग्निष्टोमौ" (तै.सं.७.२.६.१; तां.१०.४.२)। हम यह पूर्व में लिख चुके हैं कि तारे के केन्द्रीय भाग को अग्निष्टोम कहते हैं। वे ऐसे केन्द्रीय भाग आँख की पुतली के समान होते हैं। इसी केन्द्र को यहाँ दैवत ब्राह्मण 'उष्णीषिण' संज्ञा देता है। इससे संकेत मिलता है कि उष्णिक् छन्द रश्मियों से सम्पन्न वह केन्द्रीय भाग रूपी पुरुष बाहरी भाग से पगड़ी की भाँति आवेष्टित रहता है। यहाँ महर्षि शेष विशाल पशु संज्ञक भाग को बार्हत कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में पंक्ति के साथ-२ बृहती छन्द रश्मियां भी व्यापक स्तर पर विद्यमान होती हैं। इस बात का संकेत हम पूर्व कण्डिका के व्याख्यान में भी कर चुके हैं। बृहती छन्द रश्मियों का सूर्यादि लोकों के साथ सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों ने कहा है-

"बृहती हि संवत्सरः (श.६.४.२.१०), बृहत्यां वा असावादित्यः श्रियां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितस्तपति (गो.उ.५.७)"।

ये बृहती छन्द रश्मियां विभिन्न लोकों की सीमाओं का निर्माण करती हैं, इसी कारण ऋषि ने कहा है- "बृहती मर्य्या ययेमान् लोकान् व्यापामेति तद् बृहत्या बृहत्त्वम्" (तां.७.४.३)। जब किसी तारे आदि लोकों के अन्दर उष्णिक् और बृहती छन्द रश्मियां परस्पर संगत होने लगती हैं, उस समय उन लोकों के केन्द्रीय और शेष भाग मानो परस्पर संगत होने लगते हैं। इसके साथ ही इन लोकों के अन्दर प्राथमिक प्राण रूपी पुरुष मरुद् एवं छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर उन्हीं में प्रतिष्ठित होने लगता है। जब बृहती और उष्णिक् दोनों छन्द रश्मियां परस्पर संगत होती हैं, तब वे अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं। फिर वे अनुष्टुप् छन्द रश्मियां वाग् रूपी वज्र के रूप में प्रकट होकर असुर तत्त्व का विनाश करती हैं। शेष पूर्ववत् समझें॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारे आदि प्रकाशित लोकों के केन्द्रीय भाग में उष्णिक् छन्द रश्मियां एवं बाहरी भाग में बृहती छन्द रश्मियां विशेषरूप से विद्यमान होती हैं। उष्णिक् छन्द रश्मियों के कारण केन्द्रीय भाग में उष्णता एवं प्रकाश अत्यधिक होता है, साथ ही यह भाग ग्रीवारूप होकर बाहरी भाग से आये हुए पदार्थ को निगलता रहता है एवं अपने प्रबल गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सम्पूर्ण लोक को बांधे रखता है। तारे का शेष विशाल भाग बृहती छन्द रश्मियों के कारण अपनी परिधि का निर्माण करता है। जब तारे के अन्दर उष्णिक् और बृहती छन्द रश्मियां परस्पर मिश्रित होने लगती हैं, उस समय तारे के दोनों भाग अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ता से बंध जाते हैं। इनके मिश्रित होने पर अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है और वे रश्मियां पूर्वोक्त अनुसार सम्पूर्ण पदार्थ से डार्क एनर्जी को बहिष्कृत करती हैं॥

३. 'आ धूर्ष्वस्मै' 'ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाण' इति द्विपदां च त्रिष्टुभं च व्यतिषजति; द्विपाद् वै पुरुषो वीर्यं त्रिष्टुप्, पुरुषमेव तद्वीर्येण व्यतिषजति, वीर्ये प्रतिष्ठापयति, तस्मात् पुरुषो वीर्ये प्रतिष्ठितः सर्वेषां पशूनां वीर्यवत्तमो यदु द्विपदा च विंशत्यक्षरा त्रिष्टुप् च, ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचोरूपाद् अनुष्टुभोरूपाद् वज्ररूपान्नैति॥

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि वसिष्ठ ऋषि से उत्पन्न विश्वेदेवा-देवताक एवं आर्ची गायत्री

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरंण्यबाहुः।।४।। (ऋ.७.३४.४)

एवं वसिष्ठ ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क

ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोंऽ र्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः।।२।। (ऋ.७.२९.२)

के मिश्रीभाव की चर्चा करते हैं। इनमें से प्रथम छन्द रश्मि द्विपदा है। यहाँ पुरुष को द्विपाद कहा गया है। इसका आशय इस प्रकार है-

(१) प्राथमिक प्राणों की गतियाँ व मार्ग दो प्रकार के होते हैं।
(२) प्राण और उप प्राण दोनों की गति पृथक्-२ होती है और ये दोनों ही दो पाद के रूप में होते हैं।
(३) प्राण एवं उप प्राण दोनों मिलकर एक पाद और सूत्रात्मा वायु दूसरे पाद के रूप में हो सकता है।
(४) तारों का केन्द्रीय भाग प्राथमिक प्राण एवं छन्द रश्मियों रूपी दो पादों पर प्रतिष्ठित होता है।
(५) इस भाग में दो प्रकार की गतियाँ घूर्णन और परिक्रमण विद्यमान होती है।

यहाँ महर्षि त्रिष्टुप् को वीर्य कहते हैं। इसका कारण यह है कि ये छन्द रश्मियां तीव्र तेज और वल से युक्त होती हैं। जव इन द्विपाद और त्रिष्टुप् दोनों छन्द रश्मियों का परस्पर संगम होता है, उस समय पुरुषरूपी प्राण एवं केन्द्रीय भाग तीव्र तेज और वल से युक्त होते हैं किंवा वे उस तीव्र तेज और वल में ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इन्हीं छन्द रश्मियों के कारण किंवा इनका प्राथमिक प्राणों से संयोग होने के कारण केन्द्रीय भाग और प्राण तत्त्व सर्वाधिक तेजस्वी और वलवान् भाग होते हैं। इनका वल किसी भी मरुद् वा छन्द रश्मि से, साथ ही तारे के वाहरी भाग से वहुत अधिक होता है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि तारों के केन्द्रीय भाग को ही द्विपाद क्यों कहा? जवकि शेष विशाल भाग भी घूर्णन और परिक्रमण इन दो प्रकार की गतियों से युक्त होता है। इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि इस भाग में इन दो प्रकार की गतियों के अतिरिक्त भी अन्य अनेक प्रकार की गतियाँ भी विद्यमान होती हैं, जो अत्यन्त प्रवल आकर्षण वल के कारण घनीभूत केन्द्रीय भाग में नहीं होती। इसलिए केन्द्रीय भाग को ही द्विपाद कहा गया है। जव उपर्युक्त द्विपदा और त्रिष्टुप् छन्द रश्मि का परस्पर संगम होता है, तव उनसे भी अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनका प्रभाव भी पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में आर्ची गायत्री रश्मियां तथा वाहरी भाग में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां विशेषरूप से विद्यमान होती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग सम्पूर्ण तारे के साथ अपने अक्ष पर घूर्णन करने के साथ-२ किसी विशाल लोक की भी परिक्रमा करते हैं। प्राणापान आदि रश्मियों की गतियाँ भी दो प्रकार की होती हैं। इनमें भी प्राण और उप प्राण दोनों पृथक्-२ स्वभाव वाले होते हैं, साथ ही इन १० प्राणों का स्वभाव सूत्रात्मा वायु से भिन्न होता है। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां सबसे अधिक वलवान् और तेजस्वी होती हैं। जव ये रश्मियां प्राथमिक प्राणों के साथ संयुक्त हो जाती हैं, उस समय वे प्राथमिक प्राण अत्यधिक वलसम्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण से तारों के केन्द्रीय भाग में गुरुत्वीय वल एवं विद्युत् चुम्वकीय वल सर्वोच्च स्तर पर होते हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां एवं आर्ची गायत्री रश्मियां दोनों मिलकर अनुष्टुप् छन्द रश्मियों एवं तीव्र ऊष्मायुक्त विद्युत् तरंगों को उत्पन्न करती हैं, जो डार्क एनर्जी से संघर्ष करके उसे पूर्वोक्तानुसार निष्प्रभावी वनाती हैं।।

४. 'एष ब्रह्मा','प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी' इति द्विपदाश्च जगतीश्च व्यतिषजति, द्विपाद् वै पुरुषो जागताः पशवः, पुरुषमेव तत् पशुभिर्व्यतिषजति, पशुषु प्रतिष्ठापयति, तस्मात् पुरुषः पशुषु प्रतिष्ठित, अत्ति चैनान् अधि च तिष्ठति, वशे चास्य; यदु द्विपदा च षोळशाक्षरा जगती च, ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो

वाचो रूपादनुष्टुभो रूपाद् वज्ररूपान्नैति।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि 'ऐश्वरयो धिष्ण्याः' ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं साम्नी अनुष्टुप् (द्विपदा)

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे।।२।। (साम.४३८)

एवं वरुः सर्वहरिर्वैन्द्रः ऋषि से उत्पन्न हरिस्तुतिदेवताक एक जगती एवं दो निचृज्जगती छन्दस्क

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म्।
घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑।।१।।

हरिं॒ हि योनि॑म॒भि ये स॒मस्व॑रन्हि॒न्वन्तो॒ हरी॑ दि॒व्यं यथा॒ सदः॑।
आ यं पृ॒णन्ति॒ हरि॑भि॒र्न धे॒नव॒ इन्द्रा॑य शू॒षं हरि॑वन्तमर्चत।।२।।

सो अ॑स्य॒ वज्रो॒ हरि॑तो॒ य आ॑य॒सो हरि॒र्निका॑मो॒ हरि॒रा गभ॑स्त्योः।
द्यु॒म्नी सु॑शि॒प्रो हरि॑मन्युसायक॒ इन्द्रे॒ नि रू॒पा हरि॑ता मिमिक्षिरे।।३।। (ऋ.१०.९६.१-३)

के मिश्रीभाव की चर्चा करते हैं। यहाँ सामवेद के मंत्र का छन्द सामवेद भाष्यकार पं. तुलसीराम स्वामी ने द्विपदा पंक्ति माना है। इस मन्त्र में १६ अक्षर हैं, इस कारण इसे द्विपदा पंक्ति भी मान सकते हैं, क्योंकि पंक्ति छन्द के दो पादों में १६ अक्षर माने जा सकते हैं परन्तु इस मंत्र के पूर्व और पश्चात् के अनेक मंत्रों का छन्द भी यही माना है, जबकि उनमें अक्षरों की संख्या २० और २२ भी है। इस कारण हमने इसे साम्नी अनुष्टुप् माना है। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में 'एष ब्रह्मा' के साथ-२ इसके आगे के दो मंत्रों को भी ऋग्वेद की उपर्युक्त ऋचाओं के साथ मिश्रित होना लिखा है। ये दोनों मंत्र २२-२२ अक्षर वाले हैं। इस कारण इस कण्डिका में वर्णित "द्विपदा च षोळशाक्षरा" का २२ अक्षरों वाले मंत्रों के ग्रहण से विरोध होता है। इस कारण हमारा मत है कि यहाँ ग्रन्थकार ने "एष ब्रह्मा य....... विस्रुतयो यथापथ इन्द्र .... इति तिस्रो द्विपदाः" (आश्व.श्रौ.६.२.६) में वर्णित मंत्रों का ही विधान किया है, न कि सामवेद के एक तृच का। इनमें से प्रथम मंत्र सामवेद संहिता में विद्यमान है, जबकि अन्य दो मंत्र महर्षि आश्वलायन के इस ग्रन्थ में ही उपलब्ध हैं। ये तीनों द्विपदा मंत्र ही ऋग्वेद के उपर्युक्त मंत्रों के साथ क्रमशः मिश्रित होते हैं। यहाँ भी महर्षि पुरुष को द्विपाद् कहते हैं, जिसका आशय पूर्व कण्डिका के समान समझें। पशुओं अर्थात् मरुद् रश्मियों को किंवा तारे के बाहरी विशाल भाग को 'जागत' कहने का तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र में जगती छन्द रश्मियां विशेषरूप से विद्यमान होती हैं। जब उपर्युक्तानुसार जगती और द्विपदा छन्द रश्मियां परस्पर मिश्रित होती हैं, तब तारे का केन्द्रीय भाग शेष भाग के साथ दृढ़ता से संयुक्त होने लगता है किंवा उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसके साथ ही प्राथमिक प्राणरूपी पुरुष भी जगती रश्मियों के साथ प्रतिष्ठित हो जाते हैं और ऐसा करके वे प्राथमिक प्राण जगती छन्द रश्मियों को अपने अधिकार में लेकर उन्हें नियन्त्रित व अवशोषित करने लगते हैं। इसी कारण तारों का केन्द्रीय भाग बाहरी भाग में विद्यमान मरुदादि रश्मियों को अवशोषित करते हुए बाहरी भाग पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। जब ये द्विपदा और जगती छन्द रश्मियां परस्पर संयुक्त होती हैं, तब वे अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं। वे अनुष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्ववत् वज्र का कार्य करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के केन्द्रीय भाग में द्विपदा रश्मियां एवं बाहरी भाग में जगती रश्मियों की प्रधानता होती है। जब इन दोनों का मिश्रण होता है, तब तारे के दोनों भाग परस्पर और भी अधिक दृढ़ता से बंधने लगते हैं। जगती रश्मियों के कारण तारे के बाहरी विशाल भाग में ऊर्जा का उत्सर्जन और अवशोषण तीव्रता से होता है। द्विपदा रश्मियों का केन्द्रीय भाग में प्रभाव लगभग पूर्ववत् होता है। इन दोनों के मिश्रित होने के कारण तारों का केन्द्रीय भाग गुरुत्वादि बलों से प्रबलता से युक्त होकर

शेष भाग को अपने नियन्त्रण में रखता है, साथ ही इनके मिश्रण से अनुष्टुप् छन्द रश्मियां तीव्र ऊष्मा और विद्युत् के रूप में प्रकट होकर डार्क एनर्जी के दुष्प्रभाव को पूर्वोक्तानुसार दूर करती हैं।।

५. 'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरम्', 'प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्' इत्यतिच्छन्दसः शंसति, च्छन्दसां वै यो रसोऽत्यक्षरत्, सोऽतिच्छन्दसमभ्यत्यक्षरत्, तदतिच्छन्दसोऽति-च्छन्दस्त्वं, सर्वेभ्यो वा एष च्छन्दोभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी, तद् यदतिच्छन्दसः शंसति, सर्वेभ्य एवैनं तच्छन्दोभ्यः संनिर्मिमीते।।
सर्वेभ्यश्छन्दोभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद।।३।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं क्रमशः अष्टि, निचृदति शक्वरी एवं स्वराट् शक्वरी

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं। सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः।।१।।

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी। अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत। सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः।।२।।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु। सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः।।३।। (ऋ.२.२२.१-३)

एवं सुदाः पैजवन ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं शक्वरी छन्दस्क

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।।१।।

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।।२।।

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते
रातिर्ददिर्वसु। नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।।३।। (ऋ.१०.१३३.१-३)

के मिश्रीभाव की चर्चा करते हैं। इन सभी अतिच्छन्दों के विषय में महर्षि लिखते हैं कि ब्रह्माण्ड में उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों के कुछ अक्षर उनके रसरूप होकर बाहर स्रवित हो जाते हैं। वे परस्पर बड़ी संख्या में मिलकर अतिच्छन्दों का रूप धारण करते हैं। अष्टि एवं शक्वरी आदि अतिच्छन्द ही कहलाते हैं। **इनको अतिच्छन्द इसलिए कहते हैं, क्योंकि ये अतिरिक्त अक्षरों के संघात से निर्मित होते हैं।** हम इस अध्याय के प्रथम खण्ड में स्वराड् अनुष्टुप् छन्द के दो अक्षररूप अवयवों के अन्तरिक्ष में रिसने की चर्चा कर चुके हैं। इसी प्रकार रिसे हुए अक्षर ही परस्पर मिलकर अतिच्छन्दों का निर्माण करते हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं कि षोडशी रूप तारे आदि लोक एवं वज्र रश्मियां सभी प्रकार के छन्दों से निर्मित होती हैं। प्रत्येक प्रकार की वज्र रश्मियों एवं छन्द रश्मियों में भेद हो सकता है, परन्तु सभी छन्द रश्मियां विभिन्न संघातों के रूप में वज्र रश्मियों के निर्माण में काम अवश्य आती हैं। यहाँ इन अतिच्छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने से कोई भी तारा अथवा नेब्यूला सभी छन्द रश्मियों से युक्त हो जाता है, क्योंकि ये छन्द रश्मियां सभी छन्द रश्मियों से युक्त होती हैं। इसका कारण यह है कि एक तो इन रश्मियों में सभी छन्द रश्मियों से स्रवित अक्षर संघात रूप से विद्यमान होते हैं, दूसरे इन छन्द रश्मियों में अक्षरों की संख्या बहुत अधिक होने से ये दो से अधिक छन्द रश्मियों के संघात के रूप में

व्यवहार करती हैं। इन छन्द रश्मियों के विषय में अन्य ऋषियों ने भी प्रायः यही आशय ग्रहण किया है, यथा- "अतिच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दाँसि अभिभवति (जै.ब्रा.२.४८), एषा वै सर्वाणि छन्दाँसि यदतिच्छन्दाः (श.३.३.२.११), अतिछन्दो वै छन्दसामायतनम् (गो.पू.५.४), वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिछन्दाः (तै.सं.५.२.१.५; काठ.२४.५), सर्वाणि वै छन्दाँस्यतिछन्दाः (मै.३.७.४)"।

इन वचनों का यही आशय है कि ये अतिच्छन्द रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों को अभिभूत वा नियन्त्रित करती हैं। ये सभी छन्द रश्मियों के आवास एवं आश्रयरूपी शरीर के समान होती हैं। इनमें सभी छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं और आवश्यक होने पर इस सृष्टि में इन रश्मियों से सभी छन्द रश्मियां प्रकट भी हो सकती हैं। इस कारण इनके उत्पन्न होने से कोई भी लोक सभी छन्द रश्मियों से समृद्ध होता है। इस प्रकरण में दो प्रकार के अतिच्छन्दों की चर्चा की गई है- प्रथम अष्टि नामक अतिच्छन्द, जो अपने विशाल फैलाव के द्वारा सभी छन्द रश्मियों वा लोकों को व्याप्त कर लेता है। दूसरी छन्द रश्मि है शक्वरी, जिसका अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य २१.२७ में 'शक्वरीः = शक्तिनिमिता गाः' लिखा है। उनके इस अर्थ की पुष्टि में अनेक आर्ष प्रमाण विद्यमान हैं-

"बाहुनाम (निघं.२.४), गोनाम (निघं.२.११), शक्वर्य ऋचः शक्नोतेः तद् यद् आभिर्वृत्रमशकद् हन्तुं तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वमिति विज्ञायते (नि.१.८), यदिमाँल्लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिदं किंच तच्छक्वर्योऽभवँस्तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम् (ऐ.५.७), एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद् हन्तुं तद् यदाभिर्वृमशकद् हन्तुं तस्माच्छक्वर्यः (कौ.ब्रा.२३.२), वज्रः शक्वर्यः (तां.१२.१३.१४)"।

इन सभी प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि इस प्रकार की छन्द रश्मियां अत्यधिक शक्तिशाली होती हैं, जो असुर तत्त्व को नष्ट करने के लिए सबसे शक्तिशाली वज्र के समान होती हैं। इस प्रकार इन सभी अतिच्छन्द रश्मियों के उत्पन्न और व्याप्त होने पर षोडशी संज्ञक तारे आदि लोक षोडशी संज्ञक वज्र रश्मियों के द्वारा असुर तत्त्व को नष्ट वा नियन्त्रित करके समृद्धि को प्राप्त होते हैं।।+।।

विशेष ज्ञातव्य-

(१) इस खण्ड में वज्र रूप तीक्ष्ण रश्मियों के निर्माण और उनके द्वारा असुर तत्त्व के नियन्त्रण वा विनाश का विस्तृत वर्णन है। इस खण्ड में वर्णित सभी छन्द रश्मियों का देवता इन्द्र होने से यह स्पष्ट होता है कि इस खण्ड में वर्णित प्रत्येक क्रिया से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण और समृद्ध होता है। इस खण्ड में गायत्री से लेकर जगती तक सभी छन्द रश्मियों की विद्यमानता है। इसके साथ ही अति व्यापक अतिच्छन्द रश्मियों के कारण सभी रश्मियों का व्यापक और समृद्ध प्रभाव इस खण्ड में वर्णित है। यहाँ असुर तत्त्व के महाशक्तिशाली प्रक्षेपक और प्रतिरोधक प्रभाव को दूर करने के लिए तीक्ष्ण बलों की प्रचुरता है।

(२) इस खण्ड में हमने **'पुरुष'** का अर्थ तारों का केन्द्रीय भाग ग्रहण किया है। इसके स्थान पर हम **'पुरुष'** शब्द से सम्पूर्ण तारे का ग्रहण भी कर सकते हैं और **'पशु'** शब्द से तारे की अन्तिम सीमा के निकट और उसके बाहरी भाग में व्याप्त सोम तत्त्व अर्थात् मरुद् रश्मियों का भी ग्रहण कर सकते हैं।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब तारों अथवा नेब्यूलाओं में विभिन्न छन्द रश्मियों में से कुछ सूक्ष्म रश्मियां मूल रश्मि को छोड़कर पृथक् विचरण करने लगती हैं, उस समय वे पृथक् विचरती हुई सूक्ष्म छन्द रश्मियां परस्पर संघात को प्राप्त होकर अति शक्तिशाली छन्द रश्मियों को जन्म देती हैं। ये छन्द रश्मियां सम्पूर्ण लोक एवं उनके अन्दर व्याप्त सभी छन्द रश्मियों को अपने आश्रय में ले लेती हैं अर्थात् वे उनका आवास बन जाती हैं। जब कभी आवश्यक होता है, तब ये विशाल रश्मियां विभाजित होकर कई छन्द रश्मियों में परिवर्तित हो सकती हैं। ये छन्द रश्मियां डार्क एनर्जी को नष्ट वा नियन्त्रित करने में सबसे शक्तिशाली हथियार का कार्य करती हैं। इस खण्ड में वर्णित सभी प्रकार की छन्द रश्मियां विद्युत् और ऊष्मा को तीव्रता से समृद्ध करती हैं, जिससे तारों का ताप तीव्रतम स्तर पर पहुँच जाता है। डार्क एनर्जी पूर्णतः नियन्त्रित हो जाती है।।

इति १६.3 समाप्तः

꧁ अथ १६.४ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. महानाम्नीनामुपसर्गानुपसृजति।।
अयं वै लोकः प्रथमा महानाम्न्यन्तरिक्षलोको द्वितीयाऽसौ लोकस्तृतीया, सर्वेभ्यो वा एष लोकेभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी, तद् यन्महानाम्नीनामुपसर्गानुपसृजति, सर्वेभ्य एवैनं तल्लोकेभ्यः संनिर्मिमीते।।
सर्वेभ्यो लोकेभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद।।

{महानाम्न्यः = अथो इमे वै लोका महानाम्न्यः इमे महान्तः (ऐ.५.७), आपो वै महानाम्न्यः.... इम उ लोका महानाम्न्यः (जै.ब्रा.३.११४), महान् घोष आसीत् (वृत्रवधसमये) तन्महानाम्न्यः (शक्वर्य्यः) (तां.१३.४.१), यन् (इन्द्रः) महान्तम् (वृत्रम्) अहंस्तस्मान् महानाम्न्यः (जै.ब्रा.३.१११), वज्रो वै महानाम्न्यः (ष.३.११)। उप+सृज् विसर्गे = उड़ेलना, संसक्त करना, संयुक्त करना, व्याकुल करना, उत्पन्न करना, नष्ट करना, क्रियान्वित करना (आप्टेकोष)}

व्याख्यानम्- पूर्व खण्ड की अन्तिम कण्डिका में अतिच्छन्दों की चर्चा है। उसके पूर्व विभिन्न छन्दों से मिलकर अनुष्टुप् छन्दों के निर्माण की चर्चा है और उसी अनुष्टुप् के वज्र के समान व्यवहार करने और उसके द्वारा असुर तत्त्व के विनाश की चर्चा है। इधर तैत्तिरीय संहिता (३.४.६.७) में "प्रजापतिरनुष्टुप्" कहकर मानो किसी भी द्युलोक को अनुष्टुप् प्रधान ही कहा है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब सभी छन्द रश्मियों से अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न हो सकती हैं, तब अतिच्छन्द रश्मियों से अनुष्टुप् छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना भी निश्चित रूप से सम्भव है, अन्यथा वह लोक अनुष्टुम्मय नहीं हो पाएगा। यहाँ महर्षि इसी प्रकरण को प्रस्तुत करते हैं। यहाँ वर्णित महानाम्नी सामवेद के दोनों आर्चिकों के बीच में उत्पन्न होती हैं। ये महानाम्नी नामक छन्द निम्नानुसार हैं-

(१) "विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः। शिक्षा शचीनांपते पूर्वीणां पुरूवसो।।
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वाऽ३न्नांशुः। प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे।।
एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः। शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व।।" (साम.६४१-६४३)

(२) "विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्।।
यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः। चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि।।
ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्।।" (साम.६४४-६४६)

(३) "इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्। स नः स्वर्षदति द्विषः। स नः स्वर्षदति द्विषः।।
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय। सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते।
वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे।।

प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै। शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः।।" (साम.६४७-६४९)

सामवेद के इन ६ मंत्रों को तीन महानाम्नी ऋचाओं के रूप में माना जाता है। इसे हमने पं. तुलसीराम स्वामी के सामवेद भाष्य से ग्रहण किया है। इनके अनुसार आचार्य सायण आदि का भी यही मत है। श्री स्वामी आदि ने इन ऋचाओं को शक्वरी छन्दस्क माना है, जिनके अन्तर्गत वीच-२ में कुछ पद उपसर्ग के रूप में माने गये हैं। तीनों महानाम्नी ऋचाओं के पश्चात् एक ऋचा को पंच पुरीष पद के रूप में स्वीकार किया है। वह ऋचा है-

"एवाह्येऽ३ऽ३ऽ३व। एवां ह्यग्ने। एवा हीन्द्र। एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः। ओं एवा हि देवाः।।" (साम.६५०)

विशेष जानकारी के लिए पं. तुलसीराम स्वामी का भाष्य देखें।

अव हम इस विषय में महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करते हैं- "प्रचेतन प्रचेतयाहि पिब मत्स्व क्रतुच्छन्द ऋतं बृहत्सुम्न आधेहि नो वसवित्यनुष्टुप्।" (आश्व.श्रौ.६.२.६)

महानाम्नी ऋचाओं के विषय में महर्षि आश्वलायन ने कहा है- "अनुष्टुभमतिच्छन्दःस्ववदध्यात्।" "द्वितीयतृतीययोस्तृतीययोः पादयोरवसानत उपदध्यात्प्रचेतनेति पूर्वस्यां प्रचेतयेत्युत्तरस्याम्।" (आश्व.श्रौ.६.३.११-१२)

शाक्वरं चेत्पृष्ठं महानाम्न्यः स्तोत्रियः। ता अध्यर्धकारं नव प्रकृत्या तिस्रो भवन्ति। (आश्व.श्रौ.७.१२.१०)

इस अन्तिम वचन से यह सिद्ध होता है कि महानाम्नी ऋचाएं, जो संख्या में तीन होती हैं, वे मूलतः शक्वरी छन्द रश्मियां होती हैं। ये ऋचाएं ६ ऋचाओं के ३-३ के तीन समूह में होती हैं। इस विषय में पं. तुलसीराम स्वामी ने अपने सामवेद हिन्दी भाष्य में किसी प्राचीन आर्ष ग्रन्थ के तीन श्लोकों को उद्धृत करते हुए लिखा है-

"ऐन्द्र्य एता महानाम्न्यः शक्वर्यो वा विकर्षिताः। पञ्चभिः सहिता अन्ते पुरीषपदनामभिः।।१।।
एताः प्रकृतितस्तिस्र उपसर्गैस्तु संयुताः। नवसंख्या इति प्राहुर्वेदाध्ययनशालिनः।।२।।
ऐतरेयब्राह्मणेऽपि शस्त्रे षोडशिनामके। तिस्रः प्रोक्ता महानाम्न्यस्त्रैलोक्यात्मत्रिवर्णनात्।।३।।"

श्लोकार्थ - "ये महानाम्नी एक प्रकार से शक्वरी छन्द की ऋचाएं हैं, जिनका इन्द्र देवता है और जिनके अन्त में पुरीष पद नाम से प्रसिद्ध ५ पद हैं।।१।। ये मूल में तीन (३) ऋचाएं हैं परन्तु उपसर्गों के सहित वेदपाठी लोग इन्हें (६) नव करके पढ़ते हैं।।२।। ऐतरेय ब्राह्मण षोडशी शस्त्र में भी तीन (३) ही महानाम्नी कही हैं, त्रैलोक्यात्मा के विशेष वर्णन से।।३।।"

इन तीनों महानाम्नी ऋचाओं में महर्षि आश्वलायन के अनुसार पांच प्रमुख पदों या पद समूहों को उपसर्ग कहा है, वे हैं- (१) प्रचेतन, (२) प्रचेतया, (३) आ याहि पिब मत्स्व, (४) क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्, (५) सुम्न आ धेहि नो वसो।

इन सभी में कुल मिलाकर ३२ अक्षर हैं, जो एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इस ब्रह्माण्ड में कभी-२ ये पांचों उपसर्ग अविहत अर्थात् परस्पर लगातार अर्थात् संयुक्त अवस्था में उत्पन्न होते हैं और कभी-२ ये उपसर्ग अन्य अतिच्छन्द शाक्वर्यादि के साथ पृथक्-२ रूप में संयुक्त होकर महानाम्नी ऋचाओं के रूप में प्रकट होते हैं, जैसा कि सामवेद संहिता में उपर्युक्तानुसार उद्धृत किया है। ये उपसर्ग नामक रश्मियां इसलिए 'उपसर्ग' कहलाती हैं, क्योंकि ये सूक्ष्म रश्मियां विभिन्न अतिच्छन्द रश्मियों को संसिक्त करती हुई नाना प्रकार के संयोगों को प्राप्त करके विभिन्न अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हुई वज्र रश्मियों का रूप धारण करती हैं, जिनसे असुर तत्त्व का विनाश होता है।

अव अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की इस प्रकार उत्पत्ति के विषय में लिखते हैं-

पूर्व खण्ड में वर्णित इन्द्रदेवताक एवं अष्टिश्छन्दस्क

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत्।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं। सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः।।१।। (ऋ.२.२२.१)

इस ऋचा में ६४ अक्षर होने से विना किसी उपसर्ग अवयव को मिलाये दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति स्वयमेव हो सकती है, जबकि इससे अगली ऋचा

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी। अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत। सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः।।२।। (ऋ.२.२२.२)

में ६० अक्षर होने से इसमें "प्रचेतन" उपसर्ग मिलाकर दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति आवश्यकतानुसार होती है। यही मत आचार्य सायण का है। इसी प्रकार इससे अगली ऋचा

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु। सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः।।३।। (ऋ.२.२२.३)

जिसमें ५८ अक्षर हैं, उसमें "प्रचेतया" उपसर्ग मिलकर ३१-३१ अक्षर के दो निचृदनुष्टुप् छन्द उत्पन्न हो जाते हैं। आचार्य सायण ने पूर्वोद्धृत इन्द्रदेवताक

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।।१।। (ऋ.१०.१३३.१)

में "आ याहि पिब मत्स्व" उपसर्ग मिलाकर २ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की बात कही है। इस विषय में हमें २ विराडनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति स्पष्ट प्रतीत होती है। इससे अगली ऋचा

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।।२।। (ऋ.१०.१३३.२)

में ५३ अक्षर हैं, जिसमें "क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्" उपसर्ग मिलाने से १ निचृत् तथा १ विराडनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती है। इसी प्रकार अन्त में इससे अगली ऋचा

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते
रातिर्ददिर्वसु। नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।।३।। (ऋ.१०.१३३.३)

में ५४ अक्षर हैं, जिसमें "सुम्न आ धेहि नो वसो" उपसर्ग मिलाने से २ निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। अनुष्टुप् रश्मियों के इन युग्मों में कुछ परिवर्तन भी सम्भव है, जैसे २ निचृदनुष्टुप् के स्थान पर १ विराडनुष्टुप् एवं १ अनुष्टुप् का उत्पन्न होना भी मान सकते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझें। इस प्रकार पूर्व खण्ड में वर्णित सभी छन्द रश्मियों में महानाम्नी रश्मियों के उपसर्ग मिलाकर नाना प्रकार के अनुष्टुप् छन्द उत्पन्न होते हैं।।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि अप्रकाशित कण वा लोकों में प्रथम महानाम्नी ऋचा, अन्तरिक्ष लोक अर्थात् आकाश तत्त्व किंवा अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न सूक्ष्म पदार्थों में द्वितीय महानाम्नी ऋचा एवं प्रकाशित कण वा लोकों में तृतीय महानाम्नी ऋचा की विशेष प्रधानता होती है किंवा इनके निर्माण में इन्हीं ऋचाओं एवं इनमें उत्पन्न विभिन्न उपसर्ग संज्ञक रश्मियों की महती भूमिका होती है। यहाँ षोडशी पद से दो अर्थों का प्रकाश होता है-

(१) विभिन्न छन्द रश्मियों से निर्मित वज्र रश्मियां, जो असुर तत्त्व का विनाश वा नियन्त्रण करती हैं। इस प्रकार की रश्मियों का तीनों लोकों के द्वारा निर्मित होने का अर्थ यह है कि स्थूल वज्र रूप रश्मियों में प्रकाशित-अप्रकाशित तरंगों के साथ-२ आकाश तत्त्व का भी संयोग रहता है किंवा इनमें तीनों ही महानाम्नी ऋचाएं विद्यमान हो सकती हैं।

(२) यहाँ 'षोडशी' शब्द का अर्थ पूर्वोक्तानुसार कोई तारामण्डल अथवा तारा ग्रहण किया जा सकता

है। किसी भी तारे में प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थ एवं आकाश तत्त्व विद्यमान होते हैं किंवा इन्हीं के द्वारा उस तारे की सृष्टि होती है। इसी प्रकार किसी भी तारामण्डल में न केवल इन पदार्थों की विद्यमानता होती है, अपितु प्रकाशित और अप्रकाशित विशाल लोकों के समूह के रूप में ही इनका अस्तित्त्व होता है।

इस कारण से इन महानाम्नी ऋचाओं के उपसर्गों के विभिन्न ऋचाओं के साथ पूर्वोक्तानुसार संयोजित करने से विभिन्न प्रकार के अनुष्टुप् छन्दों का निर्माण होता है, जिनके कारण अथवा जिनकी प्रधानता के कारण तीनों लोकों वा कणों का निर्माण होकर इस सृष्टि का निर्माण होता है।।

इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर यह ब्रह्माण्ड तीनों प्रकार के कणों वा लोकों के द्वारा समृद्ध होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न लोकों के निर्माण में यद्यपि सभी प्रकार की छन्द रश्मियों की भूमिका होती है, परन्तु विभिन्न छन्द रश्मियां अनेक प्रकार के संयोगों को प्राप्त करके प्रायः अनुष्टुप् रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। सृष्टि रचना के क्रम में जब कभी भी डार्क एनर्जी अति प्रक्षेपक प्रभाव से पदार्थ के संघनित होकर लोकों के निर्माण में बाधा डालती है, उस समय अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उस बाधा को दूर करने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। डार्क एनर्जी के प्रभाव को नियन्त्रित वा नष्ट करने के लिए अनुष्टुप् आदि छन्द रश्मियों से युक्त विभिन्न किरणों का प्रहार होता है। इन किरणों में प्रकाश, ऊष्मा और विद्युत् का संयुक्त समावेश होता है। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भी तीन प्रकार के पदार्थ मुख्यतः विद्यमान हैं, जैसे- प्रकाशित और अप्रकाशित पदार्थ अर्थात् द्रव्य, ऊर्जा एवं आकाश तत्त्व। ध्यातव्य है कि विभिन्न प्राण और छन्दादि रश्मियां इन तीनों पदार्थों की अपेक्षा भी सूक्ष्म तत्त्व हैं। अनुष्टुप् आदि छन्द रश्मियों के निर्माण की कुछ प्रक्रियाओं को समझने के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

२. प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषमर्चत प्रार्चत, यो व्यर्तीरफाणयदिति प्रज्ञाता अनुष्टुभः शंसति, तद् यथेह चेह चापथेन चरित्वा पन्थानं पर्यवेयात् तादृक् तद् यत्प्रज्ञाता अनुष्टुभः शंसति।।

व्याख्यानम्- पूर्व प्रक्रियाओं के पश्चात् महर्षि लिखते हैं कि महानाम्नी आदि पूर्वोक्त छन्द रश्मियों की उत्पत्ति एवं उनकी क्रियाशीलता के उपरान्त भी सर्ग-प्रक्रिया सम्यग्रीत्या नहीं चल पा रही थी। कहीं-२ उन प्रक्रियाओं में कुछ विचलन व दोष आ रहे थे। कुछ छन्द रश्मियों के मार्ग भ्रान्त हो रहे थे। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि पूर्वोक्तानुसार विभिन्न छन्द रश्मियों से अनुष्टुबादि रश्मियों की उत्पत्ति तथा उनसे असुर तत्त्व निवारण की प्रक्रिया भी भ्रान्त हो रही थी, जिसके कारण संयोगादि प्रक्रिया कुछ-२ कहीं-२ अस्त व्यस्त हो रही थी। उस समय प्रियमेध ऋषि अर्थात् सबके साथ सहजता से संयुक्त होने के स्वभाव वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक निम्नलिखित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) प्रप्र॑ वस्त्रिष्टुभमिषं॑ मन्दद्वी॑रायेन्द॑वे। धिया वो॑ मेधसा॑तये पुरन्ध्या विवा॑सति।।१।। (ऋ.८.६९.१)

इसका छन्द विराडनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी व बलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से {विवासति = परिचरणकर्मा (निघं.३.५)। पुरन्धिः = पुरन्धी द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)} मन्द-२ गति व कान्ति वाले प्राथमिक प्राणरूप वीरों तथा सोम रश्मियों को धारण करने हेतु विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अच्छे प्रकार उत्पन्न होती हैं। इसके साथ ही {मेधः = पशुर्वै मेधः (ऐ.२.६), यज्ञनाम (निघं.३.१७), मेधा धननाम (निघं.२.१०), मेधो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.९.१२.१)} विभिन्न क्रियाओं, प्रकाशित व अप्रकाशित कणों की उत्पत्ति हेतु विभिन्न संयोग-वियोग के लिए यह छन्द रश्मि विभिन्न रश्मियों के चारों ओर विचरण करने लगती है।

(२) नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्। पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि।।२।। (ऋ.८.६९.२)

इसका छन्द निचृदुष्णिक होने से इन्द्र तत्त्व व ऊष्मा में वृद्धि होती है। इसके साथ ही इसके अन्य प्रभाव से {ओदती = उषोनाम (निघं.१.८)। नदम् = नदः स्तोतृनाम (निघं.३.१६), नदति अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)} इन्द्रतत्त्वमिश्रित ऊष्मा विविध प्रकार के सुन्दर प्रकाशयुक्त पदार्थों एवं मिश्रणामिश्रण क्रियाओं को प्रकाश प्रदान करती है, साथ ही वह इन्द्रतत्त्वमिश्रित ऊष्मा विभिन्न अप्राप्तव्य रश्मियों की भी रक्षा करती है।

(३) ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः।।३।। (ऋ.८.६९.३)

इसका छन्द प्रथम ऋचा के समान होने के साथ-२ इसके अन्य प्रभाव से {सूददोहाः = प्राणो वै सूददोहाः (श.७.१.१.२६)। पृश्निः = वाग् वै पृश्निः (काठ.३४.१)} उस प्रकाशित इन्द्र तत्त्व से युक्त, जो तीनों लोक प्रकाशित होते हैं। उन तीनों लोकों में जो भी विट् संज्ञक रश्मियां विद्यमान हैं, वे सभी विचित्र स्वभाव वाली विभिन्न वाग् रश्मियों के समान सोम रश्मियों को परिपक्व करती हैं। वे रश्मियां प्राण रश्मियों के समान व्यवहार करती हैं।

(४) अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत।।८।। (ऋ.८.६९.८)

इसका छन्द पाद- निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से इस ऋचा का उत्पादक प्राण विभिन्न पदार्थों को व्यापक स्तर पर प्रकाशित करता है।

(५) अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्।।९।। (ऋ.८.६९.९)।

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {चनः = भोग्यमन्नम् (म.द.य.भा.२०.८९)। पिंगाः = (पिजि वर्णे = हल्के रंग की पुट देना, स्पर्श करना, चमकना, चोट पहुँचाना - आप्टेकोष)} ब्रह्माण्ड में अर्थात् पूर्वोक्त कॉस्मिक पदार्थ में 'गर्ग' इस प्रकार के शव्दयुक्त तीव्र ध्वनि उत्पन्न होती है। अव स्वराति अर्थात् विभिन्न पदार्थों का निग्रह करने वाली विद्युत् समृद्ध होती है। विभिन्न किरणों को धारण करने वाला इन्द्र तत्त्व सनिस्वनत् = सव ओर विभिन्न विभाजक किरणों को उत्पन्न करता है। परि चनिष्कदक = पिंगल वर्णयुक्त चमकीले उस पदार्थ व तीव्र भेदक संयोज्य कण {कदि आह्वाने रोदने च} परस्पर एक-दूसरे को आकर्षित करते हुए घोर शव्द करते हैं। उस ऐसे शक्तिशाली इन्द्र तत्त्व को वाक् तत्त्व उत्कृष्टता से नियन्त्रित रखता है।

(६) आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे।।१०।। (ऋ.८.६९.१०)।

इसका छन्द प्रथम ऋचा के समान होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। {अप+स्फुर = चमक उठना (आप्टेकोष) ग्रभ् = ग्रह उपादाने (ग्रभ् वैदिक रूप है- आप्टेकोष)} विभिन्न गतिशील एवं प्रकाशहीन रश्मियां प्रकाशित सोम रश्मियों पर सव ओर से गिर कर इन्द्र तत्त्व की रक्षा वा समृद्धि करती हैं।

(७) यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत।।१३।। (ऋ.८.६९.१३)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {तक्वा स्तेननाम (निघं.३.२४), वपुः = रूपनाम (निघं.३.७), उदकनाम (निघं.१.१२), वपुर्हि पशवः (ऐ.५.६)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न भ्रान्त रश्मियां परस्पर संगत होने लगती हैं। इसके उपरान्त विभिन्न रूपवती मरुद्रश्मियां असुर

तत्त्व से मुक्त होने लगती हैं।

(८) अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा।।१४।। (ऋ.८.६६.१४)

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु। {ओहते = वहति प्रापयति (म.द.ऋ.भा.५.४२.१०)। कनीनः = कनी दीप्तिकान्तिगतिषु - धातोर्बाहुलकादौणादिक ईनकः (क्) प्रत्ययः (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)} इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सभी असुर रश्मियों को नियन्त्रित कर लेता है तथा वह विभिन्न सोमादि पदार्थों को वहन करता हुआ उन्हें परस्पर संगत करता है। उसके पश्चात् वह देदीप्यमान सोम पदार्थ विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा विविध विभाजक क्रियाओं से युक्त होकर उत्पादक गुणों से युक्त होता है।

(९) अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम्।।१५।। (ऋ.८.६६.१५)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {अर्भकः = ह्रस्वनाम (निघं.३.२), अर्भके अवृद्धे (नि.४.१५)। पक्षत् = (पक्ष परिग्रहे) नवम् = (णु स्तुतौ), नवते गतिकर्मा (निघं.२.१४)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न रश्मियां न तो अति ह्रस्व वलयुक्त होती हैं और न अति चपल ही होती हैं, वल्कि प्रकाश व गति से सम्यग्रूपेण युक्त होकर रमणीय स्वरूपयुक्त होती हैं। वे रश्मियां पालक प्राणों व अन्तरिक्ष के अन्दर विचरण करती हुई गति व शुद्धि से युक्त व्यापक क्रियाओं को समृद्ध करती हैं।

इस प्रकार ये नौ प्रकार की अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये सभी रश्मियां प्रज्ञात अर्थात् स्पष्ट व विशेष प्रकाशमान होती हैं। इनके कारण पूर्वोक्त विभिन्न क्रियाओं में कहीं भटकाव आया होता है, उसे ये दूर करती हैं, जिसके कारण वे अपने वास्तविक व वाञ्छनीय व्यवहार को पुनः प्राप्त करती हैं। यहाँ महर्षि उपमा से समझाते हुए कहते हैं कि जैसे कोई भ्रान्त पथिक किसी अभिज्ञ पुरुष के मार्गदर्शन से अपने उचित मार्ग को प्राप्त कर लेता है, वैसे ही इन नौ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा भ्रान्त रश्मियां समुचित क्रियाओं व मार्गों को पुनः प्राप्त कर लेती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं में जव अनुष्टुप् आदि छन्द रश्मियां नाना व्यवहारों को जन्म देती हैं, उस समय किन्हीं कारणों से उन रश्मियों का मार्ग भ्रान्त हो जाता है। उस समय नौ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर भ्रान्त व अस्त-व्यस्त छन्दादि रश्मियों को व्यवस्थित करती हैं। इन रश्मियों के प्रभाव से कॉस्मिक पदार्थ में विद्युत्-युक्त वायुरूप इन्द्र तीव्रता से अनेक छन्द रश्मियों को वल प्रदान करता है। पदार्थ में हल्के भूरे व पीले रंग की दीप्ति उत्पन्न होती है। विभिन्न दुर्वल व लघु रश्मियां सवल व दीर्घत्व प्राप्त करती हैं तथा विभिन्न अति चंचल छन्द रश्मियों की चंचलता समाप्त होकर उन्हें सम्यक् शक्ति प्रदान करती हैं। तीव्र ध्वनि तरंगें व्यापक पैमाने पर उत्पन्न होने लगती हैं। इसका कारण तीव्र विद्युत् का अति सक्रिय होना होता है। विद्युत् आवेशित कणों के उत्पादन में तेजी आती है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

३. स यो व्याप्तो गतश्रीरिव मन्येताविहृतं षोळशिनं शंसयेन्नेच्छन्दसां कृच्छ्रादवपद्या इत्यथ यः पाप्मानमपजिघांसुः स्याद् विहृतं षोळशिनं शंसयेद्, व्यतिषक्त इव वै पुरुषः पाप्मना व्यतिषक्तमेवास्मै तत्पाप्मानं शमलमपहन्ति।।
अप पाप्मानं हते य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण की चर्चा करते हैं कि जव अति विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त कॉस्मिक मेघ में विद्यमान पदार्थ गतश्री के समान प्रकाशमान होते हैं, उस समय पूर्वोक्त षोडशी छन्द रश्मियां अविहृत रूप

में उत्पन्न व प्रकाशित होती हैं अर्थात् वे परस्पर पृथक्-२ परन्तु सन्निकट रूप में उत्पन्न व प्रकाशित होती हैं। यहाँ 'गतश्रीः' शब्द का अर्थ यह है कि उस पदार्थ में (निर्माणाधीन तारे व लोक समूह में) पूर्वोक्त शक्वर्यादि रश्मियां अति तेजस्वी व तीक्ष्ण रूप में सर्वत्र व्यापक हो चुकी होती हैं। उस समय सम्पूर्ण पदार्थ अत्यन्त तेजस्वी व विक्षुब्ध अवस्था में विद्यमान होता है। यहाँ 'गतश्रीः' का अर्थ ३.४८.३ में वर्णित तीन प्रकार के पदार्थों के रूप में भी ग्रहणीय है। वहाँ असुर-तत्त्व-मुक्त देव-पदार्थ, विट् संज्ञक सूक्त वा जगती छन्द रश्मियां तथा निविद् रूप सूक्ष्म रश्मियां तथा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को 'गतश्रीः' कहा है। ध्यातव्य है कि गतश्री पदार्थों के उत्पन्न व व्याप्त होने पर ही शक्वर्यादि छन्द रश्मियां भी व्याप्त होती हैं किंवा शक्वर्यादि की उत्पत्ति के समय ये गतश्री पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यहाँ इसी स्थिति में षोडशी संज्ञक छन्द रश्मियों के अविहृत अर्थात् पृथक्-२ परन्तु निकटतायुक्त रूप में उत्पन्न होने की चर्चा है। इन रश्मियों के इस प्रकार उत्पन्न होने से उस वज्र रश्मिसमूह के विहृत अर्थात् मिश्रीभावयुक्त परन्तु विस्तृत फैले क्षेत्र में उत्पन्न होने से उत्पन्न कठिनाई से वचा जा सकता है। अव विचारणीय विषय यह है कि वज्र रश्मिसमूह यदि विहृत रूप में उत्पन्न होवे, तो छन्द रश्मियों को क्या वाधा आ सकती है? इस विषय में हमारा मत है कि जव षोडशी साम इस फैले हुए परन्तु रश्मियों के मिश्रीभाव के रूप में होता है, उस समय वह गौरिवीति साम रश्मियों के रूप में होता है। गौरिवीत रश्मियों के विषय में ४.२.१ पठनीय है। ये रश्मियां यद्यपि विद्युत् व ऊष्मा से युक्त होती हैं पुनरपि वे न्यून शक्ति वाली होती हैं। इस कारण वे असुर तत्त्व के पूर्ण विनाश अर्थात् नियन्त्रण में सक्षम नहीं हो पाने से विशाल असुर मेघ को नष्ट नहीं कर पाती हैं, वल्कि उनमें वल का प्रतिरोध कार्य करता रहता है। इसके कारण कॉस्मिक मेघ पातोत्पात क्रियाओं से संत्रस्त रहता है। इस कारण जव पाप्मा अर्थात् असुर तत्त्व को नियन्त्रित करना अनिवार्य हो, तव अविहृत षोडशी साम रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इसका तात्पर्य है कि उस समय षोडशी रश्मियां परस्पर प्रत्यक्षतः असंयुक्त, परन्तु अति निकटस्थ तीक्ष्ण रूप में उत्पन्न होती हैं। उस समय 'नानद' साम की उत्पत्ति होती है। यह नानद साम उत्पन्न होते समय गम्भीर गर्जना उत्पन्न करता है। उस गर्जना से युक्त तीक्ष्ण रश्मियां असुर तत्त्व को विनष्ट वा नियन्त्रित कर लेती हैं। ध्यातव्य है कि विहृत व अविहृत अर्थात् गौरिवीत व नानद साम (देखें- ४.२.१) दोनों ही असुर तत्त्व पर प्रहार करते हैं। इनमें से विहृत गौरवीत रश्मियां फैली हुई होने से व्यापक क्षेत्र में प्रहार करके सूक्ष्मांश में विद्यमान असुर तत्त्व को छिन्न-भिन्न करती हैं, परन्तु उसके उपरान्त भी असुर तत्त्व आवरक मेघ रूप में रह ही जाता है, जिसके कारण कॉस्मिक मेघ वार-२ वाहरी विशाल आसुर मेघ से त्रस्त होकर विक्षुब्ध होता हुआ विखण्डित हो सकता है। ऐसे समय अविहृत नानद रश्मियां तीव्र प्रहार करके विशाल मेघरूप में व्याप्त असुर तत्त्व को भी नष्ट करने में सक्षम होती हैं। इस प्रकार यहाँ असुर तत्त्व के दो रूप सिद्ध होते हैं। **एक असुर तत्त्व विशाल मेघरूप में कॉस्मिक मेघ को घेरे रहता है और दूसरा कॉस्मिक मेघस्थ पदार्थ में सूक्ष्मांश में व्याप्त रहता है।** इन दोनों ही असुर पदार्थों को नष्ट वा नियन्त्रित करने हेतु क्रमशः अविहृत नानद सामरूप षोडशी तथा विहृत गौरिवीत सामरूप षोडशी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती हैं। यहाँ 'गतश्री' अवस्था अर्थात् कॉस्मिक मेघ के वाहरी भाग में स्थित आसुर मेघ के विनाश हेतु नानद (अविहृत) रश्मियों तथा कॉस्मिक मेघ के अन्दर सूक्ष्मांश में व्याप्त असुर रश्मियों के विनाश हेतु गौरिवीत (विहृत) रश्मियों की उत्पत्ति की चर्चा है।

प्रश्न यह है कि हमने 'गतश्री' से ऐसे कॉस्मिक मेघ का ग्रहण क्यों किया है, जो मेघ रूप धारण कर चुका है परन्तु वाहर से आसुर मेघ के प्रहारों से त्रस्त वना हुआ है। इसके समाधान में हमारा मत है कि इस विषय में सर्वप्रथम 'गतश्री' के दो प्रकार के अर्थ ३.४८.३ में पठनीय हैं। उसी सन्दर्भ में 'गतश्री' वह पदार्थ है, जिसके अन्दर विभिन्न शक्वर्यादि तीक्ष्ण तेजस्वी रश्मियां उत्पन्न हो चुकी हैं, जिसके कारण असुर तत्त्व का प्रहार सूक्ष्म ही रह जाने से वह पदार्थ कॉस्मिक मेघरूप में विद्यमान होता है, पुनरपि उसके वाहरी क्षेत्र में दूसरे प्रतिरोधक व प्रतिकर्षक मेघ के रूप में असुर पदार्थ उसे घेरे रहता है, जो उसे वाहर से ही वार-२ मथता हुआ विखण्डित करने का प्रयास करता है। ऐसा इस कारण होता है कि उस कॉस्मिक मेघ के वाहरी भागस्थ पदार्थ में विभिन्न प्राणादि रश्मियां क्षीण अवस्था में ही विद्यमान होती हैं। इस कारण यहाँ गतश्री के दोनों ही अर्थ ग्रहणीय हैं अर्थात् 'गम्' धातु के अर्थ 'प्राप्त करना' व 'चले जाना' दोनों ही यहाँ सार्थक हैं।।

इस प्रकार की दोनों विहृत व अविहृत अवस्था वाली षोडशी रश्मियों की उत्पत्ति होने पर असुर

तत्त्व पूर्ण रूप से विनष्ट वा नियंत्रित हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब कॉस्मिक पदार्थ अर्थात् विभिन्न रश्मियां व कण परस्पर संगत होकर संघनित रूप धारण करके कॉस्मिक मेघ का रूप धारण कर लेता है, उस समय डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ उस कॉस्मिक मेघ में दो प्रकार से व्याप्त हो जाता है। एक तो उस कॉस्मिक मेघस्थ पदार्थ के अन्दर विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ में मिश्रित हो जाता है। विभिन्न मूल कणों व तरंगों को आवृत्त करके उन्हें परस्पर संगत होने में वह डार्क एनर्जी बाधा बनती है, क्योंकि वह उन कणों वा तरंगों के मध्य प्रतिकर्षण व प्रतिरोधक बल उत्पन्न करके उन्हें परस्पर संगत नहीं होने देती। इतना होने पर भी कॉस्मिक पदार्थ एक सीमा तक तो संघनित हो ही चुका होता है। उसमें मूल कण व छन्दादि रश्मियां एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें तो सघन मात्रा में विद्यमान रहती हैं, पुनरपि उनमें मूलकणों के संगम से एटम, मॉलिक्यूल्स आदि के निर्माण में सूक्ष्म डार्क एनर्जी बाधा डालती है। डार्क एनर्जी का दूसरा बृहद् रूप वह है, जो उस कॉस्मिक मेघ को चारों ओर से आवृत्त करके उस पर अपने तीव्र प्रतिकर्षक व प्रक्षेपक बल का प्रहार करता रहता है, जिसके कारण वह कॉस्मिक मेघ विक्षुब्ध होकर कभी भी फट भी सकता है। डार्क एनर्जी के इन दोनों रूपों में से प्रथम सूक्ष्म रूप को नष्ट करने हेतु सूक्ष्म छन्द रश्मियां परस्पर मिश्रित होती परन्तु फैली हुई अवस्था में उत्पन्न होती हैं, जो कण-२ के अन्दर व्याप्त डार्क एनर्जी के प्रभाव से हटाती हैं। इन रश्मियों से विद्युत् व ऊष्मा के साथ तेज की उत्पत्ति होती है। डार्क एनर्जी के दूसरे अर्थात् बृहद् मेघरूप को नष्ट करने हेतु वे सूक्ष्म छन्द रश्मियां परस्पर पृथग्भाव रखते हुए परन्तु परस्पर अति निकटता से गमन करती हुई अति तीक्ष्ण रूप में उत्पन्न होती हैं। इनके कारण घोर गर्जना उत्पन्न होती है, जो डार्क एनर्जी के विशाल क्षेत्र में थरथराहट उत्पन्न करके उसे छिन्न भिन्न कर देती है। इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ डार्क एनर्जी के दुष्प्रभाव से पूर्ण मुक्त हो जाता हैं।।

४. 'उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपम्' इत्युत्तमया परिदधाति, स्वर्गो वै लोको ब्रध्नस्य विष्टपं, स्वर्गमेव तल्लोकं यजमानं गमयति।।

{ब्रध्नः = महन्नाम (निघं.३.३), बन्धु+नक् - ब्रधादेश इति (आप्टेकोष), महान्तः सूर्य्यः (म.द.ऋ.भा.७.४४.३), असौ वा आदित्यो ब्रध्नः (काठ.३२.२; तै.ब्रा.३.६.४.१)। विष्टपम् = व्याप्तिम् (म.द.य.भा.१४.२३), अन्तरिक्षम् (तु.म.द.ऋ.भा.१.४६.३)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त षोडशी शस्त्र की सभी छन्द रश्मियां, जिनमें इस खण्ड में वर्णित महानाम्नी के अतिरिक्त पूर्वोक्त ६ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां भी सम्मिलित हैं, की उत्पत्ति के अन्त में पूर्वोक्त प्रियमेध ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं निचृत् अनुष्टुप् छन्दस्क

उद्यद् ब्रध्नस्य॑ विष्टपं॑ गृहमिन्द्र॑श्च गन्व॑हि।
मध्वः॑ पीत्वा स॑चेवहि त्रिः स॒प्त सख्यु॑ः पदे।।७।। (ऋ.८.६९.७)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज व बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {उद्गन्वहि = उद्गच्छाव इति सायण-वेदभाष्यम्} सम्पूर्ण लोक को बांधने वाले कॉस्मिक मेघ वा तारे के केन्द्रीय भाग के गृहरूप विष्टप अर्थात् व्यापक वह सम्पूर्ण लोक एवं उसके निकटस्थ आकाश तत्त्व व इनमें व्यापक इन्द्रतत्त्व दोनों ही उत्कृष्टता से साथ-२ गमन करते हैं, साथ ही वे दोनों ही केन्द्रीय भाग के ऊपर भी पृथक् गति से गमन करते हैं। वे दोनों ही मधु अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियों को अवशोषित करके इक्कीस पदार्थों से बने समान रूप से प्रकाशित होने वाले सम्पूर्ण तारे के रूप में संयुक्त होते हैं। यहाँ इक्कीस पदार्थों का विवेचन ऋषियों ने अनेकत्र किया है, यथा -

"एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः" (ऐ.१.३०)
"द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्तवस्त्रयो लोकास्तद् विंशतिरेषऽएवैकविंशो य एष (सूर्य्यः) तपति।" (श.१.३.५.११)

असौ वा आदित्य एकविंशः (तै.ब्रा.१.५.१०.६), एकविंशोऽग्निष्टोमः (तां.१६.१३.४)

यहाँ स्पष्टतः वारह मास रश्मियां, पांच ऋतु रश्मियां, तीन लोक अर्थात् 'भूः', 'भूवः', 'स्वः' नामक महाव्याहृतिरूप रश्मियां किंवा प्रकाशित-अप्रकाशित कण एवं आकाशतत्त्व, इन कुल वीस पदार्थों के संघात से इक्कीसवां पदार्थ सूर्य्य उत्पन्न होता है।

यहाँ इस छन्द रश्मि को परिधानीया कहा है अर्थात् यह छन्द रश्मि पूर्वोत्पन्न पूर्वोक्त सभी छन्द रश्मियों को सव ओर से आच्छादित कर लेती है। अव ऋषि कहते हैं कि ब्रध्नरूपी सम्पूर्ण लोक केन्द्रीय भाग की व्याप्ति किंवा गृहरूप होता है, वह स्वर्ग लोक अर्थात् केन्द्रीय भाग के समान ही प्रकाशमान् होता है। इस भाग में भी केन्द्रीय भाग के समान इन्द्र तत्त्व एवं आकाशतत्त्व का मिश्रित रूप सम्पूर्ण पदार्थ को वांधे रखता है, साथ ही गुरुत्वीय वल से यह पदार्थ परस्पर वंधा रहता है। इस अनुष्टुप् छन्द ऋचा से विभिन्न संलयनीय पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर ले जाये जाते हैं। वस्तुतः पूर्वोक्त सभी छन्द रश्मियों को धारण व सुरक्षित करके यह छन्द रश्मि सम्पूर्ण पदार्थ को संलयनार्थ प्रेरित करती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– पूर्वोक्त अनेक छन्द रश्मियां, जो डार्क एनर्जी के प्रतिरोधक व प्रतिकर्षण वल को दूर करने में काम आती हैं, उन सभी छन्द रश्मियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है, जो पूर्वोत्पन्न छन्द रश्मियों को चारों ओर से आवृत्त कर लेती है। इससे आवृत्त होने पर उन छन्द रश्मियों की तीव्रता व कार्य क्षमता वढ़ जाती है। तारों के केन्द्रीय भाग व शेष भाग को आकाश तत्त्व के साथ वांधे रखने में इस छन्द रश्मि की विशेष भूमिका होती है। तारे के अन्दर विद्यमान हाइड्रोजन आदि नाभिकों को संलयनार्थ केन्द्रीय भाग की ओर ले जाने में इसकी भूमिका होती है, साथ ही तारों के अन्दर व वाहर विद्यमान डार्क एनर्जी के दुष्प्रभाव को दूर करने में यह उन रश्मियों की सहायता करती है।।

५. 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्'–इति यजति।।
सर्वेभ्यो वा एष सवनेभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी, तद् यद् 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्'– इति यजति, पीतवद्वै प्रातःसवनं, प्रातःसवनादेवैनं तत् संनिर्मिमीते।।
'अथो इदं सवनं केवलं त' इति, माध्यन्दिनं वै सवनं केवलं, माध्यन्दिनादेवैनं तत्सवनात् संनिर्मिमीते।।
'ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्रेति' मद्वद्वै तृतीयसवनम्, तृतीयसवनादेवैनं तत्संनिर्मिमीते।।
'सत्रा वृषंजठर आ वृषस्व' इति वृषण्वद्वै षोळशिनो रूपम्, सर्वेभ्यो वा एष सवनेभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी; तद् यद् 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्' इति यजति, सर्वेभ्य एवैनं तत्सवनेभ्यः संनिर्मिमीते।।
सर्वेभ्यः सवनेभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद।।

व्याख्यानम्– पूर्वोक्त प्रक्रिया के उपरान्त बरुः सर्वहरिर्वेन्द्र ऋषि {बरुः = भरुः छान्दस प्रयोग इति मे मतम् = भरति बिभर्ति वेति भरुः (उ.को.१.७)} अर्थात् सवके हरणशील, भर्त्ता एवं शासनकर्ता मनस्तत्त्व से हरिस्तुति देवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व।।१३।। (ऋ.१०.९६.१३)

छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसे महर्षि ने याज्या कहा है, इसका तात्पर्य यह है कि यह रश्मि पूर्वोक्त सभी छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर उन्हें वल प्रदान करती है। इसके छान्दस व दैवत प्रभाव से विभिन्न प्रकार की हरणशील रश्मियां तीव्र तेज व वल के साथ प्रकाशित होने लगती हैं।

इसका अन्य प्रभाव अगली कण्डिकाओं में वर्णित है।।

{सुतम् = सुतेषु सोमेषु (नि.५.२२), अन्ननाम (निघं.२.७)} षोडशी संज्ञक कोई भी तारा तीनों सवनों से मिलकर बनता है। इसी प्रकार षोडशी संज्ञक वज्र रश्मियों का निर्माण भी तीनों सवनों अर्थात् प्रातःसवन, माध्यन्दिन व तृतीय सवन, जो क्रमशः गायत्री, त्रिष्टुप् व जगती छन्द रश्मियों के रूप होते हैं, से मिल कर बनता है। यहाँ प्रश्न यह है कि पूर्व में षोडशी वज्र का बीज अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से निर्मित बताया, जबकि यहाँ अनुष्टुप् रश्मियों का संकेत भी नहीं है। इसके उत्तर में हमारा मत है कि गायत्री छन्द रश्मियां अनुष्टुप् के समान ही स्वरूप व प्रभाव वाली होती हैं, इस कारण गायत्री में ही अनुष्टुप् का ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में आर्ष ग्रन्थों का मत है- "गायत्री वै सा यानुष्टुप्" (कौ.ब्रा.१०.५)। तारों के अन्दर भी इन तीन किंवा चार छन्द रश्मियों की विशेष प्रधानता होने से इन्हें तीनों सवनों से निर्मित कहा गया है।

जब उपर्युक्त त्रिष्टुप् छन्द का प्रथम पाद 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्' उत्पन्न होता है, तब उसके प्रभाव से विभिन्न हरणशील बल व तेज रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों तथा संयोज्य कणों वा रश्मियों को अवशोषित करने लगता है। उस समय प्रातःसवन संज्ञक अर्थात् गायत्री रश्मियों को भी वह इन्द्र तत्त्व किंवा वह त्रिष्टुप् छन्दरश्मि पाद अपने अन्दर अवशोषित करने लगता है। जब एकमात्र गायत्री छन्द की अवस्था होती है, वही प्रातःसवन कहाती है। वह अवस्था अव्यक्तवत् प्रायः शांत होती है। इस अवस्था को पी जाने का तात्पर्य है कि इस त्रिष्टुप् पाद के प्रभाव से प्रबल इन्द्र तत्त्व उत्पन्न होकर उस अवस्था को भंग करके तेजस्वी व अधिक सक्रिय बना देता है। अप्रकाशित ठंडी सोम रश्मियां तेजोमयी, तीव्र बल व गति से युक्त हो उठती हैं। प्रातःसवन के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- "अयं वै लोकः (पृथिवी) प्रातःसवनम्" (श.१२.८.२.८)। इसका आशय है कि प्रातःसवन की अवस्था अप्रकाशित जैसी होती है। इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के प्रथम पाद से यह अवस्था समाप्त हो जाती है, इसे ही यहाँ प्रातःसवन का पी जाना लिखा है। यह पीया हुआ प्रातःसवन अर्थात् त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों द्वारा शोषित गायत्री रश्मियां ही षोडशीरूप वज्र रश्मियों का निर्माण करती हैं अर्थात् वे ही त्रिष्टुप् के साथ संगत होकर वज्ररूप में प्रकट होती हैं। षोडशी संज्ञक तारे का निर्माण भी इसी युग्म से होता है। इस प्रकार षोडशी के दोनों अर्थों को सार्थकता प्राप्त होती है।।

इसके पश्चात् इसी त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के पाद "अथो इदं सवनं केवलं ते" की उत्पत्ति होती है, किंवा इस द्वितीय पाद के प्रभाव व स्वरूप की चर्चा करते हैं। इस पाद के प्रभाव से माध्यन्दिन-सवन तथा अन्य त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ही विशेष प्रभावित होती हैं। इस त्रिष्टुप्-पाद से अन्य त्रिष्टुप् छन्द और भी समृद्ध होते हैं। उनके तेज व बल इस त्रिष्टुप् छन्द के पाद के कारण और भी तीक्ष्ण व सतेज होने लगते हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां एकाकी माध्यन्दिन सवन से ही सम्बन्ध रखती हैं। इसके प्रभाव से इन्द्र तत्त्व और अधिक तीव्र तेजस्वी होता है। उस इन्द्र तत्त्व की हरणशील रश्मियां और अधिक तीक्ष्ण व तेजस्विनी होती हैं। इस कारण षोडशी संज्ञक वज्र रश्मियां वा तारे आदि लोक इन्हीं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से निर्मित होते हैं। इस समय तारों की अवस्था अधिक प्रकाशयुक्त व तप्त होती है। उनमें भारी हलचल-विक्षोभ उत्पन्न होता है। इस समय अन्तरिक्षस्थ प्रत्येक पदार्थ प्रदीप्त होने लगता है। विभिन्न मरुद् रश्मियां अति सक्रिय व तेजस्विनी हो उठती हैं।।

तदनन्तर इसी त्रिष्टुप् छन्द का तृतीय पाद "ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र" के प्रभाव व स्वरूप की चर्चा करते हैं। इसके प्रभाव से {ममत् = प्रमादयन्ती (म.द.ऋ.भा.४.१८.८)} इन्द्र तत्त्व के द्वारा संयोग वा अवशोषण से सोम रश्मियां अति तृप्त व सक्रिय हो उठती हैं। इस अवस्था में तारों के अन्दर विभिन्न पदार्थ मस्त होकर नृत्य करते हुए अति सक्रिय हो उठते हैं। यह तृतीय-सवन की अवस्था कहलाती है। इस समय जगती छन्द रश्मियां प्रधानता से विद्यमान होती हैं। इन जगती छन्द रश्मियों से जब इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के तृतीय पाद का संयोग होता है, उस समय वे संयुक्त वा संगत जगती छन्द रश्मियां अति सक्रिय होने लगती हैं। इस कारण विभिन्न कणों वा अग्नि के परमाणुओं की उत्सर्जन व अवशोषण की क्रियाएं तीव्र हो उठती हैं। इन ऐसी तीव्र क्रियाओं से ही मानो षोडशी संज्ञक तारे का निर्माण होता है। जगती छन्द रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"जगती वै छन्दसां परमं पोषं पुष्टा" (तां.२१.१०.६), "बलं वीर्यमुपरिष्टाज्जगती" (कौ.ब्रा.११.

२), "बलं वै वीर्यं जगती" (कौ.ब्रा.११.२)।

इससे संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों को भी बल वीर्य प्रदान करने में सक्षम होती हैं, इस कारण इस त्रिष्टुप् के तृतीय पाद से संयुक्त वा संगत जगती छन्द रश्मियां षोडशी संज्ञक वज्र का भी निर्माण करती हैं। इस समय सोम रश्मियां मधुमती होती हैं अर्थात् विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों, विशेषकर प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होती हैं। अब इसके अन्तिम चतुर्थपाद "सन्ना वृषञ्जठर आ वृषस्व" के प्रभाव व स्वरूप की चर्चा करते हैं। {सत्रा = सत्यनाम (निघं.३.२०)। जठरम् = मध्यं वै जठरम् (श.७.१.१.२२), जायतेऽस्मादिति जठरम् (उ.को.५.३८), जठरमुदरं भवति, जग्धमस्मिन् ध्रियते धीयते वा (नि.४.७), उदरस्थमग्निम् (म.द.ऋ.भा.६.६७.७)} इसके प्रभाव से बलशाली इन्द्र तत्त्व सदा ही समस्त लोक में विशेषकर उसके मध्य भाग में स्थित विभिन्न पदार्थों को अपने बल से सींचता रहता है। इसके कारण षोडशी संज्ञक तारे अथवा वज्र रश्मिसमूह का रूप 'वृषण्वत्' हो जाता है अर्थात् तारों के अन्दर विद्यमान सभी छन्दादि रश्मियां वेग व बल से विशेषरूप से युक्त होने लगती हैं। वे परस्पर एक-दूसरे को अपने बल व तेज से सींचती हुई सतत तीव्र सक्रिय रहती हैं। इसी प्रकार का प्रभाव वज्र रश्मियों पर भी होता है। इस प्रकार षोडशी संज्ञक तारे अथवा वज्र रश्मियां, तीनों ही सवनों अर्थात् गायत्री, त्रिष्टुप् व जगती रश्मियों तथा प्रकाशित-अप्रकाशित कण व आकाश तत्त्व के सम्मिश्रण से निर्मित होती हैं। इस कारण इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के द्वारा पूर्वोक्त विभिन्न छन्द रश्मियों के संगत होने से तीनों सवनों की सक्रियता एवं बल में वृद्धि होकर तारों व वज्र रश्मियों का सम्यग् निर्माण होता है।।+।।

इस प्रकार विभिन्न छन्द रश्मियों के इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के साथ संगत हो जाने से तारे व वज्र रश्मियां, दोनों ही निर्मित व समृद्ध होते हैं तथा इनके समृद्ध होने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समृद्ध हो उठता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त सभी छन्द रश्मियों, विशेषकर अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के साथ संगत किया जाता है अर्थात् एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि सभी अनुष्टुप् रश्मियों में मिश्रित होकर उन्हें तेज व बल प्रदान करती है। इस क्रिया के फलस्वरूप कॉस्मिक मेघ की प्रथम अप्रकाशित अवस्था से अन्तिम तेजस्विनी अवस्था तक विद्यमान सभी प्रकार के कण व तरंगें अति ऊर्जावान् हो उठती हैं। विभिन्न कण परस्पर संगत हो उठते हैं। उनमें विद्युत् चुम्बकीय बल, प्रबल नाभिकीय बल एवं गुरुत्व बल सभी उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं। सभी अप्रकाशित पदार्थ प्रकाश व ऊष्मा से युक्त होकर अति तप्त व देदीप्यमान हो उठते हैं। सम्पूर्ण पदार्थ में भारी हलचल, तीव्र विक्षोभ व विस्फोट होने लगते हैं। सभी कण इतने ऊर्जावान् हो उठते हैं कि मानो वे नृत्य करते हुए सम्पूर्ण तारे के अन्दर इधर-उधर सतत दौड़ते रहते हैं। विद्युत् कणों की अति विस्तृत व तीव्र धाराएं बहने लगती हैं। केन्द्रीय भाग में इन बलों की प्रबलता सर्वाधिक होती है। विभिन्न कणों व विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का परस्पर संघर्षण होकर उनका उत्सर्जन व अवशोषण तीव्रता से होने लगता है। सम्पूर्ण तारे के अन्दर सभी स्तर वाले ऐसे विद्युत् व ऊष्मा से युक्त तीक्ष्ण विकिरण उत्पन्न हो जाते हैं, जो डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक व प्रतिकर्षक प्रभाव को पूर्ण विनष्ट व नियन्त्रित कर देते हैं, इसके कारण तारों में हो रही नाभिकीय संलयनादि अनेक संगतीकरण की क्रियाएं तीव्रता एवं व्यापकता के साथ होने लगती हैं।।

६. महानाम्नीनां पंचाक्षरानुपसर्गानुपसृजत्येकादशाक्षरेषु पादेषु; सर्वेभ्यो वा एष च्छन्दोभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी; तद् यन्महानाम्नीनां पंचाक्षरानुपसर्गानुपसृजत्येकादशाक्षरेषु पादेषु, सर्वेभ्य एवैनं तच्छन्दोभ्यः संनिर्मिमीते।। सर्वेभ्यश्छन्दोभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद।।४।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि पूर्वोक्त "अपाः पूर्वेषां हरिवः......." त्रिष्टुप् छन्द रश्मि की विभिन्न क्रियाओं एवं उसके साथ-२ अन्य प्रक्रियाओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त महानाम्नी संज्ञक छन्द रश्मियों से पांच अक्षर वाले दैवीपंक्तिश्छन्दस्क उपसर्ग संज्ञक सूक्ष्म रश्मियों को इस त्रिष्टुप् छन्द

रश्मि के प्रत्येक ग्यारह अक्षर वाले पाद के साथ संयुक्त कर देता है। ध्यातव्य है कि महानाम्नी छन्द रश्मियों के उपसर्ग पूर्वोक्तानुसार हैं- "१. प्रचेतन, २. प्रचेतया, ३. आ याहि पिब मत्स्व, ४. क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्, ५. सुम्न आ धेहि नो वसो।" इनमें से कोई उपसर्ग पांच अक्षर का नहीं है। ऐसी स्थिति में या तो महानाम्नी संज्ञक ऋचाएं पूर्वोक्त तीन के अतिरिक्त अन्य भी हैं, जो वेद संहिताओं में उपलब्ध नहीं हैं अथवा अन्तिम तीन उपसर्गों को विभाजित करके पंचाक्षर उपसर्ग निर्मित होते हैं। हमारे मत में इन से 'आ याहि पिबः' 'आ याहि मत्स्व', 'सुम्न आ धेहि', 'धेहि नो वसो' ये पंचाक्षर उपसर्ग हो सकते हैं। ये सभी इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के प्रत्येक पाद के साथ संयुक्त होकर ६४ अक्षर वाली अतिच्छन्द रश्मि का निर्माण करते हैं, जो दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के युग्म के रूप में होती है। इस प्रकार इस त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के इस नवीन रूप द्वारा सम्पूर्ण तारे में अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता हो जाती है, जिसके कारण वह तारा सभी छन्द रश्मियों को अपने अन्दर व्याप्त करता है। हम पूर्व में लिख चुके हैं कि अनुष्टुप् छन्द रश्मि सभी छन्द रश्मियों की योनि रूप है, इस कारण ही यह आनुष्टुभ हुआ षोडशी लोक सभी छन्द रश्मियों से निर्मित कहा गया है। इसी प्रकार षोडशी संज्ञक वज्र रश्मियां आनुष्टुभ रूप धारण करती हैं, तब वे भी सभी छन्द रश्मियों से निर्मित कही गई हैं। इस प्रकार तारे व वज्र के निर्माण व स्वरूप में पर्याप्त समानता है। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "संवत्सरो वज्रः" (श.३.४.४.१६) ऋषियों ने इससे भी आगे कहा- "त्रयो वा इमे लोका वज्रा एते" (जै.ब्रा.१.३०४) वस्तुतः न केवल तारों, अपितु पृथिव्यादि सभी लोकों के निर्माण में वज्र की भूमिका अनिवार्य होती है। इस प्रकार की स्थिति बनने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विभिन्न लोकों व वज्र रश्मियों से समृद्ध होता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ अन्य अतिदीर्घ छन्द रश्मियों में से रिसती हुई दैवी पंक्ति छन्द रश्मियां मिश्रित होकर अनुष्टुप् छन्द रश्मियों का निर्माण करती हैं। इस कारण तारे आदि लोकों तथा डार्क एनर्जी निरोधक विद्युत् व ऊष्मा से मिश्रित सभी विकिरणों में सभी प्रकार की छन्द रश्मियों के गुण विद्यमान होते हैं। जहाँ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां होती हैं, वहाँ उनके साथ अन्य छन्द रश्मियां भी संयुक्त हो जाती हैं। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग पठनीय है।।

इति १६.४ समाप्तः

ॐ अथ १६.५ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुरास्ते समावद्वीर्या एवासन्न व्यावर्तन्त, सोऽब्रवीद् इन्द्रः-कश्चाहं चेमानितो असुरान् रात्रीमन्ववेष्याव इति; स देवेषु न प्रत्यविन्ददबिभयू रात्रस्तमसो मृत्योस्तस्माद्धाप्येतर्हि नक्तं यावन्मात्रमिवैवापक्रम्य बिभेति; तम इव हि रात्रिर्मृत्युरिव।।

{अहन् = अहर्वार्हतम् (ऐ.५.३०), त्रैष्टुभमहः (काठ.६.८)}

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि देवासुर पदार्थ की पुनः प्रकारान्तर से चर्चा करते हैं। पूर्व में षोडशी वज्र रश्मियों द्वारा असुर तत्त्व के विनाश वा नियन्त्रण की चर्चा की थी, अव देवासुर की चर्चा करते हुए कहते हैं कि देव पदार्थ अर्थात् प्रकाशित पदार्थ किंवा प्राणादि पदार्थ अहन् का आश्रय लेते हैं। यहाँ 'अहन्' पद के अनेक अर्थ हैं, इस कारण अहन् का आश्रय लेने का आशय है कि विभिन्न प्राणादि पदार्थ एवं इनसे युक्त प्रकाशित पदार्थ, प्रधानतः प्राण नामक प्राण तत्त्व का आश्रय लेता है। इससे अग्रिम चरण में यह पदार्थ वृहती व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की वियच्छन्द अवस्था अर्थात् जिसमें ये छन्द रश्मियां दूर-२ अर्थात् पृथक्-२ विद्यमान होती हैं, में विद्यमान होता है। इसमें छन्द रश्मियां पृथक्-२ परन्तु शक्तिशाली व तीक्ष्ण रूप में होती हैं। इस विषय में खण्ड ४.२.१ में गौरिवीत व नानद साम के स्वरूप में विशेष जान सकते हैं। जव छन्द रश्मियां परस्पर पृथक्-२ विद्यमान होती हुई सघन रूप में विद्यमान होती हैं, उस समय वे अधिक तीक्ष्ण होती हैं, जैसा कि नानद साम में दर्शाया है। जव ये छन्द रश्मियां परस्पर मिश्रित वा उलझी हुई, परन्तु विरलरूप में होती हैं, तव वे दुर्वल होती हैं, जैसा कि गौरिवीत साम में होता है। ये दोनों ही परिस्थितियों क्रमशः वियच्छन्द व संयच्छन्द कहलाती हैं। देव पदार्थ ऐसी ही वियच्छन्द अवस्था में आश्रय लेते हैं। उधर असुर अर्थात् अप्रकाशित ठंडे वायु रात्रि में आश्रय लेते हैं अर्थात् इसमें अपान प्राण की प्रधानता होती है। इसके साथ ही {रात्रिः = आनुष्टुभी रात्रि (मै.३.६.५), सोमो रात्रिः (श.३.४.४.१५)} वह असुरपदार्थ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की संयच्छन्द अर्थात् परस्पर मिश्रीभाव लिए एवं विस्तृत फैली हुई अवस्था में आश्रय पाते हैं। यह अवस्था कदाचित् सोम तत्त्व की भी होने से सोम को भी रात्रि कहा है। इस कारण **असुर पदार्थ का आश्रय सोम तथा देव पदार्थ का आश्रय अग्नि भी कहा है।** ये देवासुर पदार्थ दोनों ही समान रूप से वलशाली होते हैं। देव आकर्षण वल से युक्त होता है, तो असुर प्रक्षेपक व प्रतिकर्षण वल से युक्त होता है। उस समय देव व असुरों के आश्रयभूत पदार्थ भी परस्पर मिले हुए थे। वे परस्पर पृथक्-२ नहीं हो पा रहे थे। उस समय इन्द्र तत्त्व अतिदुर्वल रूप में ही विद्यमान था, कोई भी देव पदार्थ इन्द्र तत्त्व को ऐसा शक्तिशाली वनाने में समर्थ नहीं था, जो असुर तथा असुर तत्त्व के आश्रयभूत पदार्थ को देव पदार्थ व देव पदार्थ के आश्रयभूत पदार्थ से पृथक् कर सके। उस समय असुर पदार्थ की आश्रयभूत रात्रिरूप अवस्था में अपान प्राण की प्रधानता के कारण असुर पदार्थ देव पदार्थ को कंपाने लगा। इस अवस्था में अनुष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्वोक्त प्रकार से संयत् अवस्था में होने के कारण हीनवल होती हैं तथा प्राणादि पदार्थ भी विद्यमान नहीं होने से इसे मृत्यु अवस्था कहा है। महर्षि यास्क ने रात्रि के पर्यायवाची 'नक्तम्' जो, यहाँ भी विद्यमान है, का निर्वचन करते हुए लिखा है- "नक्ता इति रात्रिनाम। अनक्ति भूतान्यवश्यायेना अपि वा नक्ताव्यक्तवर्णा" (नि.८.१०)। इसका आशय है कि इस अवस्था में विभिन्न रश्मियां अव्यक्त, अस्पष्ट व धुंधली होती हैं। वर्तमान में भी ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी इस प्रकार की अवस्था होती है, वह अंधकारपूर्ण होती है। उसमें अपान तत्त्व की अधिकता से विभिन्न पदार्थ अपनी

स्थिति परिवर्तित होते ही कम्पन करने लगते हैं अर्थात् वे परस्पर संयोगार्थ प्रवृत्त हो ही नहीं पाते। वे अपने स्थान से हिलते ही अपान तत्त्व के प्रतिकर्षण वल से संयोग नहीं कर पाते, वल्कि अनिष्ट रूप से कम्पन करने लगते हैं। जव तक इन प्रतिकर्षक वलों का भेदन नहीं हो जाता, तव तक संयोग प्रक्रिया नहीं हो पाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के प्रारम्भ की अवस्था में दृश्य पदार्थ एवं डार्क मैटर-डार्क एनर्जी, दोनों परस्पर मिश्रित जैसे होते हैं। यहाँ मिश्रण का तात्पर्य सर्वथा मिश्रित नहीं, वल्कि इसका आशय यही है कि दोनों का कार्य व निवास क्षेत्र पृथक्-२ नहीं था। दोनों की अपनी पृथक्-२ स्वभाव वाली ऊर्जा होती है। इन दोनों का वल समान होता है। दृश्य पदार्थ आकर्षण तथा डार्क ऊर्जा वा पदार्थ प्रतिकर्षण वल युक्त होता है। इन दोनों को पृथक्-२ करना अनिवार्य होता है, परन्तु ऐसा नहीं हो पाता है। जव दृश्य ऊर्जा प्रवल हो, उसी समय डार्क ऊर्जा को पृथक् कर सकती है। इसके मिश्रितरूप में दृश्य पदार्थ भी डार्क एनर्जी के प्रभाव से अस्त-व्यस्त कम्पन करने लगता है। कहीं आकर्षण व कहीं प्रतिकर्षण वल का अनुभव करके दृश्य पदार्थ न तो परस्पर संयुक्त होकर सृष्टि रचना के काम आ पाता है, और न दूर ही हो पाता है। इस कारण सम्पूर्ण पदार्थ में मूलकण वा तरंगें मानो दोलन करते रहते हैं। वर्तमान ब्रह्माण्ड में जहाँ भी डार्क एनर्जी विद्यमान है, वह इसी प्रकार विभिन्न पदार्थों को कंपाती वा प्रतिकर्षित करती रहती है। जव एक एटम वा मूल कण वा अणु परस्पर अति निकट आते हैं, तव वे परस्पर आकर्षित होते हुए भी एक निश्चित सीमा पर आकर रुक जाते हैं और एक-दूसरे को प्रतिकर्षित करने लगते हैं। कभी भी दो कण पूर्णतः स्पर्श नहीं कर सकते। इसका कारण यही है कि प्रत्येक कण सदैव डार्क एनर्जी के सूक्ष्म आवरण से ढका होता है। वह आवरण ही किसी कण को दूसरे से सर्वथा संयुक्त नहीं होने देता। जितनी-२ दूरी कम होती है, वह आवरण कम होने से होती है। संयुक्त कणों में भी कुछ न कुछ अवकाश होता ही है।।
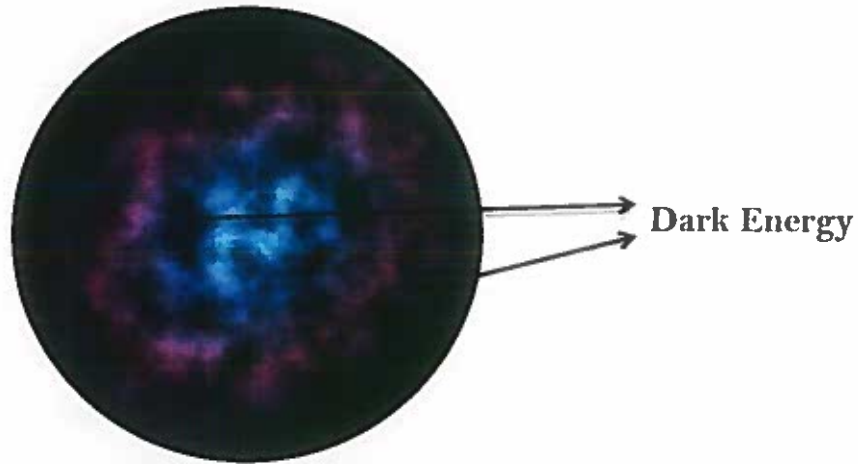
चित्र १६.२ कॉस्मिक मेघ की प्रारम्भिक अवस्था

२. तं वै छन्दांस्येवान्ववायंस्तं यच्छन्दांस्येवान्ववायंस्तस्मादिन्द्रश्चैव च्छन्दांसि च रात्रीं वहन्ति; न निविच्छस्यते, न पुरोरुङ्, न धाय्या, नान्या देवतेन्द्रश्च; ह्येव च्छन्दांसि च रात्रीं वहन्ति।।

व्याख्यानम्- जव देव व असुर पदार्थ परस्पर पृथक् नहीं हो पा रहे होते हैं, उस समय इन्द्र तत्त्व के साथ विभिन्न छन्द रश्मियां गमन करने लगती हैं। वे गायत्र्यादि छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व का अनुगमन करती हैं। यहाँ प्रश्न यह है कि क्या उस समय इन्द्रतत्त्व तीक्ष्ण रूप में उत्पन्न हो जाता है? यदि हाँ,

तब देव पदार्थ असुर पदार्थ से इन्द्र के वज्र प्रहार के द्वारा पृथक् क्यों नहीं हो पाता? इस विषय में हमारा मत है कि उस समय इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप में उत्पन्न नहीं हो पाता, बल्कि उस समय ऐसी छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें छन्द तो सभी हों, परन्तु सभी इन्द्रदेवताक नहीं हों, जिससे इन्द्र तत्त्व समृद्ध हो सके। ध्यातव्य है कि इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियां ही रात्रि अवस्था अर्थात् अन्धकार अवस्था को दूर करने में सक्षम होती हैं। इसके साथ ही ये रश्मियां ही अंधकारपूर्ण सोम रश्मियों को वहन करती तथा उन्हें असुर तत्त्व से मुक्त करके प्रकाशित करती हैं। इसी अवस्था वा प्रक्रिया को अतिरात्र कहा जाता है। इसी कारण प्रकाशित लोकों को ३.४१.२ में अतिरात्र कहा गया है, जिसका अर्थ है कि पदार्थ की वह अवस्था, जो रात्रिरूप तमसावस्था का अतिक्रमण करके प्रकाशयुक्त हो जाती है, अतिरात्र कही जाती है। उस समय न तो निविद्, न पुरोरुक्, न धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियों की सक्रियता होती है और न इन्द्र तत्त्व से इतर-देवताक छन्द रश्मियों की ही उत्पत्ति होती है, बल्कि इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों की ही उत्पत्ति होती है। अन्य रश्मियां असुर तत्त्व से देव पदार्थ को पृथक् करने में सक्षम नहीं होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- दृश्य व डार्क पदार्थ वा डार्क एनर्जी सबके परस्पर मिश्रित होने की पूर्वावस्था में इन दोनों पदार्थों को परस्पर पृथक् करने के लिए ऐसी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिनसे विद्युत् युक्त वायु की वृद्धि होती हो। सम्पूर्ण पदार्थ में विद्युदावेशित कणों वा विकिरणों में तीव्र वृद्धि होने से डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी के प्रभाव को दूर किया जाता है और एतदर्थ इन पदार्थों को बाहर धकेल दिया जाता है। इनके कारण कॉस्मिक पदार्थ विद्युत्, ऊष्मा व प्रकाश से संयुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ डार्क पदार्थ को निष्कासित वा नियन्त्रित करने में सक्षम नहीं होता है।।

३. तान् वै पर्यायैरेव पर्यायमनुदन्त; यत्पर्यायैः पर्यायमनुदन्त, तत्पर्यायाणां पर्यायत्वम्।।
तान् वै प्रथमेनैव पर्यायेण पूर्वरात्रादनुदन्त, मध्यमेन मध्यरात्राद् उत्तमेनापररात्रात्।। अपिशर्वर्या अनुस्मसीत्यब्रुवन्नपिशर्वराणि खलु वा एतानि छन्दांसीति ह स्माहैतानि हीन्द्रं रात्रेस्तमसो मृत्योर्बिभ्यतमत्यपारयंस्तदपिशर्वराणामपिशर्वरत्वम्।।५।।

{शर्वरीः = रात्रिनाम (निघं.१.७), शृणाति हिनस्ति प्रकाशमिति शर्वरी (उ.को.२.१२३)। अपिशर्वरः = निश्चितो रात्र्यन्धकारः (तु.म.द.ऋ.भा.३.६.७)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों के द्वारा सोम पदार्थ से असुर तत्त्व कैसे दूर होता है, इसकी ही यहाँ प्रक्रिया बतलाते हुए कहते हैं कि इन्द्रतत्त्व की समृद्धिकारिणी गायत्र्यादि छन्द रश्मियां इन्द्रतत्त्व के साथ मिलकर किंवा इन्द्र तत्त्व के रूप में प्रकट होकर सोम रश्मियों के चारों ओर घूम-२ कर असुर पदार्थ से संघर्ष करती हैं। वे रश्मियां बारी-२ से सम्पूर्ण रात्रिरूप सोम पदार्थ में घूम-२ कर क्रमशः असुर तत्त्व को सोम पदार्थ से पृथक् करके देव पदार्थ को असुर पदार्थ के प्रभाव से मुक्त करती हैं। यहाँ 'पर्य्याय' शब्द के दो अर्थ हैं- १. चारों ओर घूमना वा चक्कर लगाना २. बारी अथवा चरण। वे रश्मियां चारों ओर से सोम पदार्थ को घेर कर चक्कर लगाते हुए सम्पूर्ण क्षेत्र में घूमती हैं और इस प्रक्रिया से ही एक-२ क्षेत्र से वा स्तर से सोम पदार्थ को, साथ ही देव पदार्थ को असुर तत्त्व से मुक्त करती हैं। इस प्रकार से असुर तत्त्व से मुक्ति की प्रक्रिया को 'पर्य्याय' कहते हैं। इस विषय में अन्य ऋषियों का कथन है- "तान् (असुरान् देवाः) समन्तं पर्य्यायं प्राणुदन्त यत्पर्यायं प्राणुदन्त तत्पर्य्यायाणां पर्य्यायत्वम्" (तां.६.१.३)। "यत्पर्य्यायमघ्नंस्तत्पर्य्यायाणां पर्य्यायत्वम्" (जै.ब्रा.१.२०८)। निर्माणाधीन तारों के अन्दर भी असुर तत्त्व के निवारण वा निष्कासन की यही प्रक्रिया सतत चलती रहती है।।

यह प्रक्रिया मुख्यतः तीन चरणों में पूर्ण होती है। सर्वप्रथम उपर्युक्तानुसार वे ऐन्द्री रश्मियां

सोमपदार्थ रूपी रात्रि से असुर तत्त्व को निष्कासित करती हैं। तदुपरान्त वे संयच्छन्दावस्था को प्राप्त अनुष्टुप् छन्द रश्मियों रूपी रात्रि से असुर तत्त्व को निराकृत करती हैं और अन्त में अपानतत्त्व नामक रात्रि से असुर तत्त्व को हटाती हैं। इसी प्रकार सर्वप्रथम वे ऐन्द्री रश्मियां निर्माणाधीन तारों के तल व उसके बाहरी भाग में आवरक मेघरूप असुर तत्त्व को निराकृत करती हैं। तदुपरान्त तारों के बाहरी विशाल लोक से और अन्त में उसके केन्द्रीय भाग से किंवा इसकी विपरीत प्रक्रिया द्वारा असुर तत्त्व को सम्पूर्ण तारे से बहिष्कृत कर देती हैं। इन सबकी प्रक्रिया यही है कि वे ऐन्द्री छन्द रश्मियां विभिन्न रश्मि वा कणों को घेर कर उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए उस पदार्थ को असुर तत्त्व से मुक्त कर देती हैं।।

{स्मसि = स्मः (म.द.ऋ.भा.१.५७.५), भवामः (म.द.ऋ.भा.१.२६.१)} पूर्वोक्त संघर्ष अर्थात् ऐन्द्री छन्द रश्मियों के द्वारा असुर तत्त्व के निष्कासन के विषय में छन्द व इन्द्र तत्त्व के संवाद की शैली द्वारा महर्षि इस विषय को समझाते हैं कि वे छन्द रश्मियां ही पूर्वोक्त रात्रि के तीनों चरणों में इन्द्र तत्त्व के साथ रहती हैं। जब असुर तत्त्व के प्रहार व प्रतिकर्षक बल से दुर्बल इन्द्र तत्त्व व इससे संयुक्त सभी पदार्थ संत्रस्त हो रहे थे, उस समय इन छन्द रश्मियों ने ही इन्द्र तत्त्व को समृद्ध व शक्तिशाली बनाकर असुर तत्त्व को निराकृत करके देवपदार्थ को तेजस्वी व संयोगोन्मुख बनाया था और प्रकाश व सक्रियता की हिंसा करने वाली रात्रिरूप शर्वरी अवस्था से सम्पूर्ण देव पदार्थ को पार लगाया था। इस कारण महर्षि इन ऐन्द्री छन्द रश्मियों को 'अपिशर्वरी' संज्ञा देते हैं। यहाँ 'अपि' उपसर्ग के विषय में महर्षि यास्क का कथन विचारणीय है- ''अपीति संसर्गम्'' (नि.१.३)। इससे स्पष्ट है कि इन छन्द रश्मियों की 'अपि-शर्वरी' संज्ञा का आशय यह है, कि ये रश्मियां 'शर्वरी' अर्थात् असुर तत्त्व की आश्रयदात्री रात्री अर्थात् सोमादि पदार्थ से संसर्ग करके उनके चारों ओर परिक्रमण करके उसे असुर तत्त्व से पृथक् करने में इन्द्र तत्त्व का साथ देती हैं।।
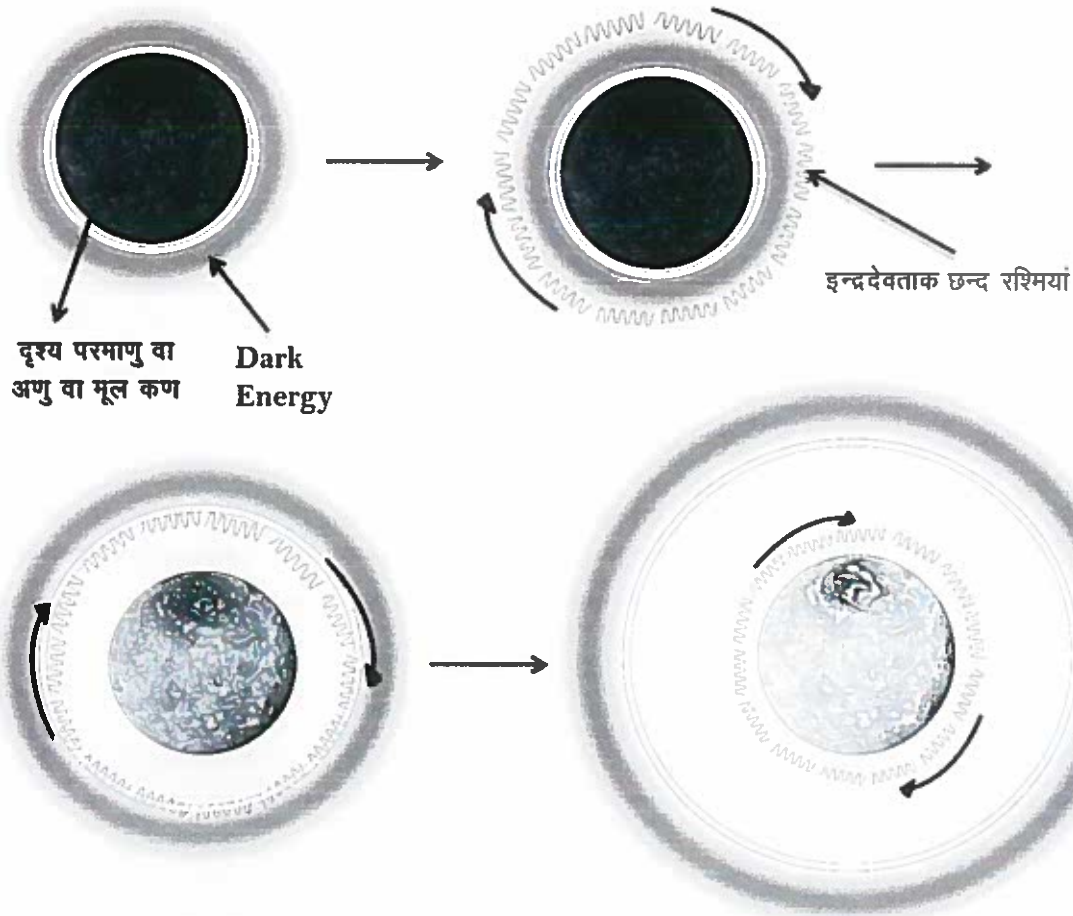
चित्र १६.२ दृश्य-परमाणुओं वा अणुओं से डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ को दूर करने की प्रक्रिया

वैज्ञानिक भाष्यसार- डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ को दूर करने हेतु जो पूर्वोक्त छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होकर विद्युत्-ऊष्मा की तीक्ष्ण रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उनकी कार्यविधि बताते हुए कहते हैं कि वे रश्मियां विभिन्न दृश्य-परमाणुओं वा अणुओं किंवा मूल कणों को चारों ओर से घेर लेती हैं और तेजी से उनकी परिक्रमा करने लगती हैं। इस क्रिया से वे कण अत्यन्त ऊर्जावान् हो उठते हैं, जिससे वे डार्क एनर्जी के प्रतिकर्षण बल को निष्प्रभावी कर देते हैं तथा संयोगादि प्रक्रियाओं में बाधक बनने वाले डार्क पदार्थ को भी निराकृत कर देते हैं। यह प्रक्रिया तीन चरणों में होती है। सूक्ष्म, मध्यम व स्थूल स्तर पर क्रमशः यह क्रिया होती रहती है। एक साथ सब स्थानों व स्तरों पर यह क्रिया नहीं होती है। निर्माणधीन तारों के अन्दर केन्द्रीय भाग, मध्य विशाल भाग एवं बहिर्भाग में यह प्रक्रिया क्रमशः ही प्रभावकारिणी होती है।।

इति १६.५ समाप्तः

ॐ अथ १६.६ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. पान्त मा वो अन्धस इत्यन्धस्वत्याऽनुष्टुभा रात्रीं प्रतिपद्यते।।
आनुष्टुभी वै रात्रिरेतद् रात्रिरूपम्।।
अन्धस्वत्यः पीतवत्यो मद्वत्यस्त्रिष्टुभो याज्या भवन्त्यभिरूपा, यद् यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम्।।

{कक्षः = कषति हिनस्तीति (उ.को.३.६२)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त क्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ऐन्द्री छन्द रश्मियों में सर्वप्रथम श्रुतकक्ष ऋषि अर्थात् मन्दगति से चलने तथा भेदकशक्ति वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक तथा विराडनुष्टुप् छन्दस्क

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत। विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्।।१।। (ऋ.८.९२.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से सभी प्रतिरोधक असुर पदार्थों को दबाने वाला, विभिन्न संयोज्य पदार्थों को अपने बल से अवशोषित व रक्षित करने वाला, अनेक प्रकार के कर्मों को करने में सक्षम व्यापक तेजस्वी इन्द्र तत्त्व सब ओर प्रकाशित होने लगता है। यहाँ 'अन्धः' पद रात्रि वाचक भी है, इससे वह इन्द्र तत्त्व उस तमोमयी रात्रि अवस्था को अवशोषित कर लेता है। इस ऋचा में 'अन्धः' पद होने से यह आनुष्टुभी ऋचा रूप रश्मि रात्रि अर्थात् अप्रकाशित सोम तत्त्व की ओर प्रवाहित होती हुई तथा उसे असुर तत्त्व से मुक्त करती हुई तेजस्वी बनाती है किंवा इस प्रक्रिया को प्रारम्भ करती है। रात्रि भी आनुष्टुभी कही गई है। इस प्रकार अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को इन अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से ही तेजयुक्त किया जाता है। आनुष्टुभी रात्रि अवस्था से असुर तत्त्व के निष्कासन में प्रारम्भिक रूप से इसी स्तर की अर्थात् आनुष्टुभी छन्द रश्मियां ही विशेष उपयुक्त होती हैं, इस कारण इस ऋचा की उत्पत्ति की चर्चा है।।+।।

पूर्व खण्ड में तीन पर्य्यायों (स्तरों) में असुर तत्त्व निवारण की चर्चा हैं। यहाँ उसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि तीन पर्य्यायों में तीन पृथक्-२ याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो अन्य ऋचाओं के साथ संयुक्त हो जाती हैं। ये याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां निम्नलिखित हैं-

(१) गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से इन्द्रदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि।।१।। (ऋ.२.१४.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी और तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अमत्रम् = सुपात्रम् (म.द.ऋ.भा.४.२३.६)} विभिन्न प्राणतत्त्व सोम तत्त्व को अपने रक्षणादि कर्मों से सींचते हैं और इन्द्र तत्त्व उस ऐसे रक्षित सोम तत्त्व को अवशोषित करता किंवा उसे असुर तत्त्व से मुक्त करता है। प्राणों के सिंचन से सोम तत्त्व के असुर तत्त्व से मुक्त होने और इन्द्र तत्त्व द्वारा अवशोषित होने में सरलता रहती है। इस ऋचा में 'अन्धः' पद विद्यमान होने से इसे

'अन्धस्वती' कहा है। इसे 'मद' व 'पीति' की विद्यमानता से यह 'मद्वती' व 'पीतवती' भी है।

(२) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क

अपा॑य्यस्यान्ध॑सो मदा॑य मनी॑षिणः सुवानस्य प्रय॑सः।
यस्मि॒न्निन्द्रः॑ प्रदिवि॑ वावृधान ओको॑ द॒धे ब्र॑ह्मण्यन्त॑श्च नरः॑।।१।। (ऋ.२.१९.१)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् परन्तु कुछ अधिक तेजस्वी। इसके अन्य प्रभाव से {मनीषी = मनस्-ईषिन् पदयोः समासे कृते शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्, ईषिन=ईष गतिहिंसादर्शनेषु (भ्वा.) धातोस्ताच्छील्ये णिनिः। (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)। ब्रह्मण्यन्तः = महद्धनं कामयमानाः (म.द.भाष्य)} इन्द्र तत्त्व द्वारा धारण किए विशाल क्षेत्र में विद्यमान मनस्तत्त्व द्वारा प्रेरित विभिन्न नयनकर्त्ता वायु की रश्मियां विद्युत् से संगत होकर उत्पन्न विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करने लगती हैं। यह ऋचा भी अन्धस्वती, मद्वती एवं पीतवती है।

(३) विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक्तत्त्व से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क

तिष्ठा॒ हरी॒ रथ॒ आ यु॒ज्यमा॑ना या॒हि वा॒युर्न नि॒युतो॑ नो॒ अच्छ॑।
पिबा॒स्यन्धो॑ अ॒भिसृ॑ष्टो अ॒स्मे इन्द्र॒ स्वाहा॑ ररि॒मा ते॒ मदा॑य।।१।। (ऋ.३.३५.१)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों के साथ अपनी आकर्षण व प्रतिकर्षण रूपी दो रश्मियों के साथ संयुक्त होता है। वह वायु के समान सभी पदार्थों से पूर्णरूपेण युक्त होकर सबको प्रेरित करता हुआ विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करके विभिन्न परमाणुओं को तृप्त व सक्रिय करता है। यह ऋचा भी अन्धस्वती, पीतवती एवं मद्वती है।

इस प्रकार ये तीनों छन्द रश्मियां इन तीन शब्दों से युक्त होकर संगतीकरण के अनुरूप ही होती हैं। इस कारण ये सर्गयज्ञ को समृद्ध करती हैं तथा असुर तत्त्व को बाहर निकालने में समर्थ होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- डार्क एनर्जी व डार्क मैटर को दृश्य पदार्थ से पृथक् करने में क्रियारत विभिन्न अनुष्टुप् रश्मियों की उत्पत्ति के साथ-२ तीन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ये रश्मियां पूर्वोक्त अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर विद्युत्, ऊष्मा व प्रकाश को अति तीव्र बना देती हैं, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ प्रकाशित व तप्त हो उठता है। उस समय प्रत्येक पदार्थ उच्च ऊर्जा से सम्पन्न हो जाता है, जिससे अप्रकाशित पदार्थ भी तीव्र तप्त हो उठता है। इस प्रक्रिया में तीव्र वैद्युत कणों व विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के तीव्र प्रहार से डार्क एनर्जी दूर हटा दी जाती है। इसके कारण विभिन्न कण, जो अस्त-व्यस्त दोलायमान हो रहे थे, वे व्यवस्थित होकर परस्पर संघात को प्राप्त करके तारे का निर्माण करने लगते हैं।।

२. प्रथमेन पर्यायेण स्तुवते, प्रथमान्येव पदानि पुनराददते, यदेवैषामश्वा गाव आसंस्तदेवैषां तेनाददते।।
मध्यमेन पर्यायेण स्तुवते, मध्यमान्येव पदानि पुनराददते; यदेवैषामनो रथा आसंस्तदेवैषां तेनाददते।।
उत्तमेन पर्यायेण स्तुवते, उत्तमान्येव पदानि पुनराददते; यदेवैषां वासो हिरण्यं मणिरध्यात्ममासीत्, तदेवैषां तेनाददते।।
आ द्विषतो वसु दत्ते निरेनमेभ्यः सर्वेभ्यो लोकेभ्यो नुदते, य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- इस खण्ड की प्रथम कण्डिका में प्रथम पर्याय के शस्त्र की चर्चा की गई है। इस कण्डिका में उसी प्रथम पर्याय के स्तोत्र की चर्चा करते हुए प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। यहाँ आचार्य सायण ने स्तोत्र के रूप में जिस ऋचा को उद्धृत किया है, उसके आधार पर हम इस कण्डिका को व्याख्यात करते हैं-

पूर्व शस्त्र संज्ञक

पान्तमा वो अन्धंस इन्द्रंमभि प्र गांयत। विश्वासाहं शतक्रंतुं मंहिंष्ठं चर्षणीनाम्।।१।। (ऋ.८.९२.१)

के साथ-२ उसी ऋषि और देवता वाली एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क

पुरुहूतं पुंरुष्टुतं गांथान्यं१ सनंश्रुतम्। इन्द्र इतिं ब्रवीतन।।२।। (ऋ.८.९२.२)

की उत्पत्ति होती है और इसकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है कि इसके प्रथम तीनों पद "पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यम्" दो वार लगातार आवृत्त होते हैं। यहाँ आचार्य सायण ने केवल दो पदों की आवृत्ति को ही स्वीकारा है, परन्तु यहाँ "प्रथमानि पदानि" में वहुवचन का प्रयोग होने से हमारे मत में तीन पदों का ग्रहण करना चाहिए। इस छन्द रश्मि के दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व भेदक वल और तेज से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक स्तर पर विभिन्न पदार्थों को आकृष्ट और प्रकाशित करता है एवं विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को वहन करता है। वह इन्द्र तत्त्व सनातन प्राथमिक प्राणों के द्वारा गतिशील होता हुआ भली-भाँति प्रकाशित होता है। इस छन्द रश्मि के प्रथम तीनों पाद ग्यारह अक्षर के होते हैं। इस कारण ये इस गायत्री छन्द रश्मि के अतिरिक्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के एक पाद का कार्य करते हुए तीव्र तेज और वल को उत्पन्न करते हैं और ये तीनों पद, जो त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के एक पाद के वरावर होते हैं, एक पृथक् छन्द रश्मि का रूप धारण कर लेते हैं। यह अतिरिक्त छन्द रश्मि असुर तत्त्व के अन्दर प्रविष्ट होकर उनके अन्दर स्थित व्यापनशील वल, वेग आदि गुण एवं उनमें विद्यमान सूक्ष्म वाग् रश्मियों को हर लेती है। जिसके कारण असुर तत्त्व का प्रभाव कम होता चला जाता है। पूर्व में जो असुर तत्त्व के नियन्त्रण की चर्चा की गई है, उसी प्रक्रिया को यहाँ स्पष्ट किया गया है।।

प्रथम पर्याय (चरण) के पश्चात् मध्यम पर्याय के स्तोत्र की चर्चा करते है। इस स्तोत्र के रूप में इरिम्बिठिः काण्व ऋषि {बिठि = बिठ इति मे मतम्। बिठमन्तरिक्षम् (नि.६.३०)} अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष किंवा स्वयं सूत्रात्मा वायु, जो आकाश तत्त्व को प्रेरित करता है, से उत्पन्न इन्द्रदेवताक निचृद् गायत्री छन्दस्क

अयं तं इन्द्र सोमो निपूंतो अधिं बर्हिषिं। एहींमस्य द्रवा पिबं।।११।। (ऋ.८.१७.११)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व भेदक शक्तिसम्पन्न और तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आकाश में विद्यमान असुर तत्त्व मिश्रित सोम तत्त्व को निकटता से अवशोषित करने लगता है। इस छन्द रश्मि के मध्यम पद "निपूतो अधि बर्हिषि...", जो इस गायत्री छन्द रश्मि के एक पाद के रूप में विद्यमान होते हैं, की आवृत्ति दो वार होती है। इस कारण एक अतिरिक्त गायत्री छन्द रश्मि प्रकाशित हो उठती है। {अनः = मेघः (नि.११.४७), वायु (नि.११.४७), अन्तरिक्षरूपमिव वा एतद्यदनः (काश.४.३.४.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} इसके कारण इस स्तोत्र की शक्ति और भी वढ़ जाती है। यह अतिरिक्त गायत्री छन्द रश्मि असुर तत्त्व की सेचनकर्त्री वायवीय अवस्था के अन्दर प्रविष्ट हो जाती है। इसके कारण असुर तत्त्व की वह अवस्था और उसके वज्र के समान कर्म और गमनागमन व्यवहार दुर्वल वा नष्ट हो जाते हैं। इसके कारण वह असुर पदार्थ और भी दुर्वल हो जाता है।।

तदुपरान्त तृतीय पर्याय (चरण) की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस अन्तिम पर्याय में विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं यवमध्या गायत्री छन्दस्क

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्व१स्य गिर्वणः।।१०।। (ऋ.३.५१.१०)

की उत्पत्ति होती है। इसके देवत और छान्दस प्रभाव से {मध्यम् = प्रजा वै पशवो मध्यम् (श.१.६.१.१७)} विभिन्न मरुद् एवं छन्दादि रश्मियां संयोग-वियोग आदि प्रक्रिया से विशेष संयुक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाग् रश्मियों से संयुक्त होकर विभिन्न परमाणुओं को अपने वल से अवशोषित करता हुआ असुर तत्त्व से उनकी रक्षा करता है। इस छन्द रश्मि के अन्तिम पद "पिबा त्वस्य गिर्वणः" की दो वार आवृत्ति होती है। ये कुल सात अक्षर हैं। इसके कारण यह उष्णिक् छन्द रश्मि के एक पाद किंवा सम्पूर्ण उष्णिक् छन्द रश्मि के समान व्यवहार करते हैं, जिसके कारण इन्द्र तत्त्व के साथ ऊष्मा की भी वृद्धि होती है। यह सप्तपदी अतिरिक्त छन्द रश्मि असुर तत्त्व के अन्दर प्रविष्ट होती जाती है। {मणिः = मणति शब्दयतीति मणिः (उ.को.४.११६)। आत्मा = आत्मा त्रिष्टुप् (श.६.२.१.२४), आत्मा पंक्तिः (जै.ब्रा.२.५८), आत्मा वै बृहती (ऐ.६.२८; गो.उ.६.८)} यह छन्द रश्मि उस असुर तत्त्व के निवास स्थान, सूक्ष्म मरुद् रश्मियों, असुर तत्त्व में ध्वनि उत्पन्न करने वाले विशेष प्रकार के पदार्थों एवं उस असुर तत्त्व में विद्यमान बृहती, त्रिष्टुप् एवं पंक्ति आदि छन्द रश्मियों एवं असुर पदार्थ की 'हिरण्य' अर्थात् गमन एवं भेदक शक्ति का हरण कर लेती है। यहाँ हमने "हिरण्यम्" पद से गमन एवं भेदक शक्ति का ग्रहण किया है। इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं- "क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यम् (श.१३.२.२.१७), आयुर्हि हिरण्यम् (श.४.३.४.२४)" उधर 'आयुम्' पद का अर्थ महर्षि दयानन्द अपने ऋग्वेद भाष्य (१.३१.११ - वै.को. से उद्धृत) में "यन्तं गच्छन्तम्" करते हैं। ये प्रमाण हमारे मत की पुष्टि करते हैं, इस प्रकार असुर तत्त्व के प्रभाव को पूर्णतः समाप्त वा नियन्त्रित किया जाता है।।

इस प्रकार तीनों पर्यायों के द्वारा देव तत्त्व, असुर तत्त्व से पृथक् हो जाता है और असुर तत्त्व को वाहर निष्कासित कर दिया जाता है। विभिन्न छन्द रश्मियां एवं लोक असुर तत्त्व से मुक्त हो जाते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- डार्क एनर्जी के प्रभाव को नष्ट वा नियंत्रित करने के लिए अन्ततः तीन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की भी उत्पत्ति होती है। इनके साथ ही इनकी अंश रूप कुछ अन्य रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। उस समय विद्युत् और ऊष्मा अति तीव्र और भेदक शक्ति सम्पन्न हो जाती हैं। ये सूक्ष्म रश्मियां डार्क पदार्थ और डार्क एनर्जी के भीतर प्रविष्ट होकर तीव्र प्रहार करती हैं, जिसके कारण सर्वप्रथम उस पदार्थ का बल और वेग कम हो जाता है, जिसके कारण उसकी प्रतिकर्षण शक्ति क्षीण हो जाती है। इसके वाद ये रश्मियां डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ के अन्दर विद्यमान बृहती, त्रिष्टुप् एवं पंक्ति छन्द रश्मियों का हरण कर लेती हैं, जिससे उसकी भेदक शक्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार दृश्य पदार्थ उस डार्क पदार्थ से मुक्त हो जाता है।।

३. पवमानवदहरित्याहुर्न रात्रिः पवमानवती; कथमुभे पवमानवती भवतः? केन ते समावद्भाजौ भवतः?।।

यदेवेन्द्राय मद्वने सुतमिदं वसो सुतमन्ध इदं ह्यन्वोजसा सुतमिति स्तुवन्ति च शंसन्ति च, तेन रात्रिः पवमानवती, तेनोभे पवमानवती भवतः, तेन ते समावद्भाजौ भवतः।।

{पवमानः = यज्ञमुखं वै पवमानः (मै.३.८.१०)। समा = शुद्धा (तु.म.द.ऋ.भा.४.५७.७), प्रजा (तु.म.द.य.भा.४०.८)}

व्याख्यानम्- यहाँ यह प्रश्न किया गया है कि 'अहन्' अर्थात् विभिन्न प्रकार के देव पदार्थ किंवा प्रकाशित प्राणादि पदार्थ यज्ञोन्मुख होते हैं अर्थात् इनमें संयोगादि की प्रक्रियाएं तीव्र होती हैं। ये शुद्ध और स्पष्ट रूप में विद्यमान रहते हुए गतिशील होते हैं, जबकि 'रात्रि' अर्थात् सोम आदि पदार्थ एवं असुर तत्त्व से आक्रान्त पदार्थ न तो यज्ञोन्मुख होते हैं, न ही वे शुद्ध और स्पष्ट रूप में रहते हुए

गतिशील ही होते हैं, तब किस कारण से दोनों ही प्रकार के पदार्थ पवमान हो जाते हैं अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया में वे रात्रिरूप पदार्थ भी कैसे यज्ञोन्मुख होने के लिए शुद्धरूप वाले और गतिशील हो जाते हैं? कैसे वे दोनों ही प्रकार के पदार्थ समान स्वभाव वाले होकर विभिन्न प्रजा अर्थात् पदार्थों को उत्पन्न करते हैं? यहाँ साररूप प्रश्न यह है कि दो विरोधी स्वभाव वाले पदार्थ कैसे इस सृष्टि निर्माण के लिए परस्पर संगत होते हैं। यहाँ आचार्य सायण ने भाष्य करते हुए लिखा है- "बहिष्पवमानः, माध्यन्दिनः पवमानः, आर्भवः पवमानश्चेत्येवमहनि पवमानस्तोत्रत्रयं विद्यते, न तु रात्रौ तदस्ति, अत उभयो पवमानत्वं कथं सिध्यति? तदसिद्धौ च केनोपायेनाहश्च रात्रिश्चेत्येते समावद्भाजौ भवतः समानभागयुक्ते भवतः? इति प्रश्नावादिन आहुः"। इन तीनों प्रकार के पवमानों के विषय में इस ग्रन्थ में हम पूर्व में लिख चुके हैं। इस प्रसंग में आचार्य सायण का कथन भी युक्तिसंगत है।।

इसका उत्तर देते हुए ऋषि कहते हैं कि असुराक्रान्त पदार्थ में तीन ऋचाओं की उत्पत्ति होती है-

(१) पूर्वोक्त श्रुतकक्ष ऋषि से इन्द्रदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः। अर्कमर्चन्तु कारवः।।१६।। (ऋ.८.९२.१९)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण और तेजस्वी होता है। इसके लिए विभिन्न सोम रश्मियां तृप्त और सक्रिय हुई सब ओर प्रकाशित होती हैं। {कारुः = स्तोतृनाम (निघं.३.१६)। अर्कः = प्राणो वा ऽअर्कः (श.१०.४.१.२३), आदित्यो वा ऽअर्कः (श.१०.६.२.६), वज्रनाम (निघं.२.२०), अन्ननाम (निघं.२.७), अर्चनीयः स्तोमः (तु.नि.६.२३)} ऐसी वे तेजस्विनी रश्मियां वज्र एवं अन्न का रूप होकर विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करने में समर्थ होती हैं, इन्द्र तत्त्व को और भी अधिक प्रकाशित करती हैं।

(२) मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु, जिसे प्रियमेध और आङ्गिरस भी कहा जा सकता है, से इन्द्रदेवताक गायत्री छन्दस्क

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन्ररिमा ते।।१।। (ऋ.८.२.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव को पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से किसी के भी द्वारा निष्कम्प इन्द्र तत्त्व, जिसमें विभिन्न क्रियाओं का वास होता है, विभिन्न तमोमय पदार्थों का अवशोषण कर लेता है।

(३) विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक और यवमध्या गायत्री छन्दस्क

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्व१स्य गिर्वणः।।१०।। (ऋ.३.५१.१०)

की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में इसी खण्ड में वर्णित उत्तम पर्याय पठनीय है

इन तीनों ही ऋचाओं में 'सुत' शब्द विद्यमान है। इस विषय में महर्षि यास्क ने कहा है- "सुतेषु सोमेषु" (नि.५.२२) उधर महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "सोमो वै पवमानः" (श.२.२.३.२२)। इस कारण ये उपर्युक्त तीनों ऋचाएं सुतवती होने से पवमानवती ही हो जाती हैं, जिनके कारण रात्रि अर्थात् असुराक्रान्त सोमादि पदार्थ भी पवमान स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं। इन छन्द रश्मियों से सोम तत्त्व इन्द्र तत्त्व के द्वारा अवशोषित होने से प्रकाशित हो उठता है। सर्वत्र तेजस्वी अवस्था उत्पन्न होती है। इस कारण रात्रि अर्थात् असुराक्रान्त पदार्थ भी देवपदार्थ की भाँति यज्ञोन्मुख और शुद्ध व स्पष्ट रूप में प्रकट होकर गतिशील होने लगते हैं। इससे दोनों विपरीत प्रकृति वाले पदार्थ समान प्रकृति वाले होकर सर्ग निर्माणार्थ संगत होने लगते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि जब प्रारम्भ में दृश्य पदार्थ व डार्क पदार्थ

परस्पर मिश्रित तथा डार्क एनर्जी एवं डार्क पदार्थ से संयुक्त पदार्थ अप्रकाशित व संयोगादि प्रक्रियाओं से रहित होता है, तब वह कैसे दृश्य व संयोज्य गुणों को प्राप्त करके सृष्टि रचना में काम आता है? इसके उत्तर में महर्षि ने कहा है कि ऐसा करने के लिए तीन गायत्री रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके प्रभाव से विद्युत् व प्रकाशादि की उत्पत्ति विशेषरूप से होती है। इसके कारण समस्त अप्रकाशित पदार्थ भी प्रकाशित व आकर्षणादि बलों से युक्त होने लगता है। इस कारण सम्पूर्ण पदार्थ दृश्य पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है तथा डार्क पदार्थादि, जो दृश्य पदार्थ का रूप धारण नहीं कर सकते, वे दृश्य पदार्थ की क्रियाओं को बाधित भी नहीं कर पाते तथा दृश्य पदार्थ से पृथक् रहकर उसके साथ संयोगादि कर्म नहीं कर सकते। इस प्रकार समस्त दृश्य पदार्थ सृष्टि रचना में काम आता है। यद्यपि अदृश्य किंवा डार्क पदार्थ का सृष्टि प्रक्रिया में अपना योगदान रहता ही है परन्तु वह प्रत्यक्षरूपेण परस्पर संयुक्त होकर लोकों का निर्माण नहीं कर पाता। हमारे मत में यहाँ **'रात्रि'** का अर्थ अप्रकाशित अर्थात् द्रव्य तथा प्रकाशित अर्थात् ऊर्जा भी ग्रहणीय है। द्रव्य एवं ऊर्जा की मिश्रणावस्था से पृथक्-२ होने की प्रक्रिया का भी यहाँ वर्णन है। जिस प्रकार दृश्य पदार्थ व डार्क एनर्जी आदि कभी पूर्णतः पृथक् नहीं होते, वैसे ही द्रव्य व ऊर्जा भी पूर्णतः पृथक् नहीं होते।।

४. पंचदशस्तोत्रमहरित्याहुर्न रात्रिः पंचदशस्तोत्रा; कथमुभे पंचदशस्तोत्रे भवतः, केन ते समावद्भाजौ भवतः? इति।।
द्वादश स्तोत्राण्यपिशर्वराणि तिसृभिर्देवताभिः संधिना राथन्तरेण स्तुवते; तेन रात्रिः पंचदशस्तोत्रा, तेनोभे पंचदशस्तोत्रे भवतः, तेन ते समावद्भाजौ भवतः।।

व्याख्यानम्- महर्षि यहाँ कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि 'अहन्' प्रकाशित (देव) पदार्थ पन्द्रह स्तोत्रयुक्त होता है, जबकि 'रात्रि' संज्ञक सोम आदि पदार्थ पन्द्रह स्तोत्रयुक्त नहीं होता है। इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- "अग्निष्टोमस्तोत्राणि द्वादश, उक्थ्यस्तोत्राणि त्रीणि, एतान्यहनि प्रयुज्यन्ते। तस्मादहः पंचदशस्तोत्रोपेतम्, रात्रौ तु न तानि विद्यन्ते कथं पंचदशस्तोत्रसाम्येन तयोर्भागसाम्यं सिध्यति? इति प्रश्नः"। ३.३६.३ में अग्निष्टोम प्रक्रिया में बारह स्तोत्र संज्ञक रश्मिसमूहों की चर्चा की गई है और ३.५०.१ में मैत्रावरुणादि तीन उक्थ्य रश्मियों की चर्चा की गई है। ये दोनों मिलाकर प्रकाशित पदार्थ के पन्द्रह स्तोत्र यहाँ कहे गये हैं। यहाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि हमने पूर्व में उक्थ्य रश्मियों को अप्रकाशित मानकर उनमें असुर तत्त्व का आश्रय लेना स्वीकार किया है, तब यहाँ इन्हीं उक्थ्य रश्मियों को प्रकाशित पदार्थ के स्तोत्र कैसे कहा है? इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि यद्यपि उक्थ्य रश्मियों का क्षेत्र अग्निष्टोम संज्ञक अति तेजस्वी क्षेत्र की अपेक्षा अप्रकाशित माना जा सकता है, तदपि वे पूर्णतः अप्रकाशित नहीं होते। इस कारण इनको यहाँ प्रकाशित पदार्थों के स्तोत्र के रूप में स्वीकार किया है। उधर रात्रि संज्ञक अप्रकाशित सोम पदार्थ जब इस प्रकार पन्द्रह स्तोत्र रश्मिसमूहों वाला नहीं होता, तब भी इन दोनों ही को पन्द्रह स्तोत्र रश्मिसमूहों वाला क्यों कहते है? और कैसे ये दोनों प्रकार के पदार्थ समान स्वरूप वाले होकर शुद्ध रूप में प्रकट होकर नाना पदार्थों को उत्पन्न करते हैं?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि 'रात्रि' को 'अपि-शर्वरी' भी कहते हैं, जैसा कि पूर्व खण्ड की अन्तिम कण्डिका में बतलाया गया है। इस 'अपि-शर्वरी' नामक 'रात्रि' रूप पदार्थ की बारह शस्त्ररूप छन्द रश्मियां वर्णित की गई हैं, इन्हें उसी खण्ड में देख सकते हैं। क्योंकि हम जानते हैं कि शस्त्र के अनुकूल स्तोत्र रश्मियां भी होती हैं। इस कारण यहाँ रात्रिरूप सोम पदार्थ के बारह स्तोत्र रूप स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। पूर्वोक्त उक्थ्य नामक तीन स्तोत्र संधि रूप होते हैं, जो रात्रि और अहन् दोनों के मध्य सामान्य माने जाते हैं। इस विषय में एक अन्य तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है-

"त्रीण्युक्थ्यानि त्रिदेवत्यः सन्धिः।। यथा वा अह्न उक्थान्येवमेषरात्रेः सन्धिर्नानारूपाण्यह्न उक्थानि नानारूपा एते तृचा भवन्ति।। रथंतरं प्रतिष्ठाकामाय सन्धिं कुर्यात्।। इयं वै रथन्तरमस्यामेव प्रतितिष्ठति।। बृहत् स्वर्गकामाय सन्धिं कुर्यात्।।" (तां.६.१.२६-३०)

इसका तात्पर्य है कि तीनों उक्थ्य स्तोत्र तीन देवताओं वाले संधि रूप होते हैं। इनके देवता

वरुण, वृहस्पति और विष्णु खण्ड ३.५० में दर्शाये हैं। किसी भी तारे के स्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए यह सन्धिरूप क्षेत्र किंवा उक्थ रूप स्तोत्र रश्मियां रथन्तर स्वरूप वाली होती हैं। इस रथन्तर के विषय में ऋषियों ने कहा है-

वाग्वै रथन्तरम् (ऐ.४.२८), देवरथो वै रथन्तरम् (तां.७.७.१३), अग्निर्वै रथन्तरम् (ऐ.५.३०)

इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां वाग्रूप होती हैं और अग्नि तत्त्व को सम्मिलित करते हुए देव पदार्थ को वहन करती हैं। इस प्रकार की रश्मिरूप संधि से अन्ततः विशाल स्वर्गलोक का निर्माण होता है अर्थात् तारे के विशाल केन्द्रीय भाग की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार रात्रि रूप सोम पदार्थ भी पन्द्रह स्तोत्र रश्मियों वाला माना जाता है, इस कारण दोनों ही प्रकार के पदार्थ पन्द्रह स्तोत्र रश्मियों वाले होने से समान स्वरूप वाले होते हैं। इस कारण वे दोनों ही शुद्ध रूप में प्रकाशित होकर नाना पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम सम्पूर्ण पदार्थ अप्रकाशित ही होता है। धीरे-२ केन्द्रीय भागों का निर्माण होने लगता है, वह भाग सर्वाधिक तेजस्वी और गर्म होता है। शेष विशाल भाग पूर्व में कम गर्म एवं कम तेजस्वी परन्तु धीरे-२ केन्द्रीय भाग से आने वाली विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों के कारण प्रदीप्त और तप्त होता जाता है। इसके वाहर अर्थात् तारों के तल के वाहरी भाग में चारों ओर अप्रकाशित रश्मियां वड़ी मात्रा में विद्यमान होती हैं, जो शनैः-२ तारों के वाहरी तल के द्वारा प्रविष्ट होकर उस पदार्थ में सम्मिलित हो जाती हैं। तारों के दोनों भागों के वीच विद्युत् चुम्वकीय तरंगों एवं हाइड्रोजन के नाभिक आदि पदार्थों का आदान-प्रदान विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों के कारण सम्भव हो पाता है। ये छन्द रश्मिसमूह कुल ३० की संख्या में होते हैं। यह संख्या इसी प्रसंग में समझनी चाहिए।।

५. परिमितं स्तुवन्त्यपरिमितमनुशंसति; परिमितं वै भूतमपरिमितं भव्यमपरिमितस्यावरुद्ध्या इति।।
अति शंसति स्तोत्रमति वै प्रजात्मानमति पशवस्तद् यत् स्तोत्रमति शंसति यदेवास्यात्यात्मानं तदेवास्यैतेनावरुन्धेऽवरुन्धे।।६।।

व्याख्यानम्- इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों किंवा विकिरणों की संख्या स्वरूप की दृष्टि से परिमित होती है, जवकि उन रश्मियों वा विकिरणों का अनुशंसन अर्थात् आवृत्ति अपरिमित संख्या में होती है। अपरिमित आवृत्तियों के कारण ही इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति सम्भव हो पाती है। भूत अर्थात् उत्पन्न पदार्थ परमाणु स्वरूप भेद से परिमित संख्या में होते हैं, परन्तु वह पदार्थ, जो परमाणु रूप में परिवर्तित हो सकता है, वह अपरिमित मात्रा में होता है। इस कारण से उस अपरिमित पदार्थ को परमाणु रूप में परिवर्तित करने के लिए विभिन्न छन्द रश्मियों की अपरिमित आवृत्तियां होती रहती हैं। उन आवृत्तियों से वह अपरिमित अतिसूक्ष्म पदार्थ अवरुद्ध वा घनीभूत होकर परमाणु रूप में परिवर्तित होता रहता है। विभिन्न छन्द रश्मियों की आवृत्तियाँ उन छन्द रश्मियों की संख्या का अतिक्रमण करके वार-२, कहीं-२ पाद मात्र की आवृत्ति अधिक वार होकर अपरिमित मात्रा को प्राप्त होती है। प्रजा और पशुओं की संख्या स्तोत्ररूप रश्मिसमूहों की अपेक्षा अधिक होने का तात्पर्य यह है कि एक ही छन्द रश्मिसमूह वार-२ विभिन्न प्रकार से आवृत्त होकर नाना प्रकार के कार्यरूप पदार्थों, जिनमें दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार के पदार्थ विद्यमान हैं, को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार से सूक्ष्म देवी रश्मियां विभिन्न प्रकार से भिन्न-२ मात्रा में आवृत्त होकर अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार अधिक वार एवं विभिन्न प्रकार से आवृत्त होने का अर्थ यह है कि कोई भी रश्मि स्वयं को नाना प्रकार से अवरुद्ध किंवा संपीडित करके नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करती है। यदि इस प्रकार वार-२ आवृत्ति न हो, तो इस ब्रह्माण्ड की रचना सम्भव नहीं है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड का मूल पदार्थ, जिसको वर्तमान विज्ञान किसी भी प्रकार की तकनीक से कभी नहीं जान सकता, वार-२ विकृत और स्पन्दित होकर नये-२ पदार्थों का निर्माण करता रहता

है। **मूल पदार्थ में अनेक परिवर्तनों के पश्चात् वर्तमान विज्ञान के मूल कणों की उत्पत्ति होती है। इन मूल कणों की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार की छन्दादि रश्मियों के संपीडित एवं अनेक बार आवृत्त होने से होती है।** इस ब्रह्माण्ड में छन्द रश्मियां स्वरूप की दृष्टि से बहुत सीमित संख्या में ही विद्यमान हैं, परन्तु बार-२ आवृत्त होने के कारण उनकी संख्या इस ब्रह्माण्ड में असीमित है। जिस प्रकार किसी सितार वा वीणा में कुछ एक तार ही होते हैं, पर उनमें उत्पन्न होने वाले कम्पनों की बार-२ आवृत्ति से असंख्य स्वर उत्पन्न हो सकते हैं। इस **ब्रह्माण्ड में मूल कणों की संख्या भी परिमित ही होती है, लेकिन ये कण जिस मूल पदार्थ से निर्मित होते हैं, वह पदार्थ अपरिमित और अतिसूक्ष्म मात्रा में सर्वत्र व्यापक है।** इसी प्रकार विभिन्न लोकों के रूप में विद्यमान मूल कणों की मात्रा अन्तरिक्ष में बिखरे हुए मूल कणों की अपेक्षा न्यून ही होती है। इस सृष्टि में **सीमित प्रकार के मूलकण और एटम्स, असीमित प्रकार के अणुओं को उत्पन्न करते हैं।** इसमें भी उन कणों और एटम्स के मेल की मात्रा और आवृत्ति का ही भेद है।।

ॐ इति १६.६ समाप्तः ॐ

ॐ इति षोडशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

सप्तदशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व।।

अनुक्रमणिका

की प्रक्रिया।

१७.५ ब्रह्मणस्पति, मूलकणों, विद्युत् चुम्बकीय तरंगों और विभिन्न लोकों के निर्माण में त्रिष्टुप् छन्द रश्मि की भूमिका। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों को संपीडित करने में भूमिका। इसी प्रक्रिया में पुनः गायत्री और त्रिष्टुप् अथवा विराट् छन्द रश्मि की भूमिका। 994

१७.६ चतुर्विंश-अहन्-संवत्सर-अर्द्धमास-स्तोम, सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भ से गायत्री-उष्णिक् और अनुष्टुप् रश्मियों की उत्पत्ति, उनकी २४ आवृत्तियों से सृष्टि का प्रारम्भ। उक्थ्य-स्तोत्र-पशु-संवत्सर। २४ छन्द रश्मियों से धीरे-२ संपीडन क्रिया प्रारम्भ, अग्नि और सोम की उत्पत्ति। दृश्य पदार्थ, डार्क पदार्थ एवं डार्क एनर्जी की उत्पत्ति। विभिन्न छन्द रश्मियों का वार-२ आवृत्त होना। अग्निष्टोम-संवत्सर छन्द रश्मियों की वार-२ आवृत्ति से विभिन्न लोकों एवं कणों का निर्माण।

१७.७ वृहद्रथन्तर-संवत्सर-सृष्टि के प्रारम्भ में अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की भूमिका। तारों के निर्माण में छः सोम रश्मियाँ (वृहत्, रथन्तर, वैरूप, वैराज, शाक्वर, और रैवत)। विभिन्न रश्मियों के त्रिकों का निर्माण, उनसे मूलकणों एवं क्वान्टाज् का निर्माण, इन्हीं से धीरे-२ तारों एवं नेव्यूलाओं का निर्माण, विभिन्न छन्द रश्मियों की भूमिका। तारों के द्रव्यमान और आकार पर नियन्त्रण का विज्ञान। 1000

१७.८ चतुर्विंश-महाव्रत-संवत्सर-निष्केवल्य-अतिरात्र-प्रायणीय-उदयनीय। २४ छन्द रश्मियों को और उपर्युक्त त्रिक रश्मियों को नियन्त्रित करने के लिए त्रिष्टुप् रश्मियों की भूमिका। प्राण, अपान एवं सूत्रात्मा द्वारा नियन्त्रित विद्युत् डार्क एनर्जी का प्रतिरोध एवं नियन्त्रण, तारों के आकार एवं द्रव्यमान के नियन्त्रण में नौ त्रिष्टुप् रश्मियों की भूमिका। तारों का अवरोधन एवं उद्बोधन, तारों के द्रव्यमान एवं आकार के नियन्त्रण में प्राणापान की भूमिका। 1006

अथ १७.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीं; तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छंस्तस्या एतत्सहस्रं वहतुमन्वाकरोद्,-यदेतदाश्विनमित्याचक्षतेऽनाश्विनं हैव, तद्यदर्वाक्सहस्रम्; तस्मात् तत्सहस्रं वैव शंसेद् भूयो वा।।

{सूर्या = वाङ्नाम (निघं.१.११), सूर्यस्य पत्नी (नि.१२.७), सूर्यस्य दीप्तिः (म.द.ऋ.भा.१.१६७.५)। सावित्री = छन्दांसि सावित्री (गो.पू.१.३३; जै.उ.४.१२.१.७), अन्तरिक्षं सावित्री (गो.पू.१.३३), आकाशस्सावित्री (जै.उ.४.१२.१.५)। वहतुम् = वहति प्राप्नोति स्त्रियमिति वहतुर्भर्ता, तम् (म.द.य.भा.१७.६७), वोढारम् (म.द.ऋ.भा.४.५८.६), प्रापकम् (म.द.ऋ.भा.१.१८४.३), वहनम् (नि.१२.११)। सोमोराजाः = प्राणो वै सोमो राजा (जै.ब्रा.१.३६१), प्राणो हि सोमः (काठ.३५.१६; क.४७.१४)}

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरणों में से एक चरण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मनस्तत्त्वरूप प्रजापति से सूर्या सावित्री नामक दुहिता उत्पन्न होती है। यहाँ विभिन्न छन्द रश्मियां ही सूर्या-सावित्री कहलाती हैं। इनमें भी गायत्री छन्द रश्मियां विशेषरूप से सबकी प्रेरक होने से सूर्या-सावित्री कहलाती हैं, इसलिए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "एतां गायत्रीमेव सावित्रीम्" (श.११.५.४.१३)। गायत्री छन्द रश्मियों के विषय में ऋषियों ने कहा है गायत्री छन्दसाम् (मुखम्) (तां.६.१.६), गायत्री वै छन्दसामग्रं ज्यैष्ठ्यम् (जै.ब्रा.२.२२७), शिरो गायत्री (मै.३.३.५), वीर्यं गायत्री (श.१.३.५.४), 'गायत्री छन्दः' (प्रजापतिः शीर्षत एव मुखतोऽसृजत) (जै.ब्रा.१.६८)। इन वचनों से प्रमाणित है कि गायत्री छन्द रश्मियां मनस्तत्त्व के द्वारा सर्वप्रथम उत्पन्न होती हैं, इसलिए इनका स्थान सभी छन्द रश्मियों में श्रेष्ठ होता है। इनकी प्रेरणा से ही अन्य छन्द रश्मियां कार्य करती हैं। इनको प्रजापति रूप मनस्तत्त्व की दुहिता इसलिए कहा है, क्योंकि ये रश्मियां मनस्तत्त्व को दुहती रहती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये गायत्री एवं अन्य सभी रश्मियां मनस्तत्त्व से उत्पन्न होकर मनस्तत्त्व में स्थित होती हुई मनस्तत्व से ही निरन्तर प्रेरणा और बल प्राप्त करती हैं। इसी कारण ऋषियों ने मन के विषय में अनेकत्र कहा है- "मन एव सविता" (गो.पू.१.३३; जै.उ.४.१२.१.१५), 'मनसा हि वाग्धृता' (तै.सं.६.१.७.२), 'मनो वै पूर्वमथ वाक्' (जै.ब्रा.१.१२८)। मनस्तत्त्व द्वारा इन छन्द रश्मियों के धारण और पोषण की प्रक्रिया भी अति कठिन और जटिल होती है, इस कारण भी इन्हें दुर्हिता अर्थात् दुहिता कहा गया है। ये कमनीय स्वभाव वाली रश्मियों के रूप में होती हैं। मनस्तत्त्व रूप प्रजापति इन्हें सोम राजा के साथ संगत करना प्रारम्भ करता है। यहाँ सोम राजा का अर्थ प्राण तत्त्व है। यहाँ विशेषकर प्राण नामक प्राथमिक प्राण का ही ग्रहण करना उचित प्रतीत होता है। हम जानते हैं कि वाक् और प्राण तत्त्व दोनों परस्पर संगत होकर ही कार्य करने में सक्षम होते हैं, इसी कारण ऋषियों ने कहा है- वाक् च वै प्राणश्च मिथुनम् (श.१.४.१.२), वाक् प्राणेन संहिता (ऐ.आ.३.१.६)। इस कारण सोम राजा का अर्थ प्राणतत्त्व ग्रहण करना और सूर्या-सावित्री रूप दुहिता का अर्थ छन्द रश्मियां ग्रहण करना, फिर इन दोनों का परस्पर संगम सर्वथा समीचीन है। सर्ग प्रक्रिया में जब यह घटना घटती है, उस समय अन्य सभी देव भी वहाँ उपस्थित वा विद्यमान हो जाते हैं। इस विषय में हमारा मत यह है कि प्राण नामक प्राथमिक प्राण के अतिरिक्त सभी प्राथमिक प्राण एवं सूत्रात्मा वायु ही यहाँ 'देव' शब्द से संबोधित किये गए हैं। उस समय मनस्तत्त्व रूपी प्रजापति उन सभी प्राणतत्त्वों को भी अपने साथ संगत कर लेता है, इसलिए उन्हें वर कहा है। इसके पश्चात् मनस्तत्त्व अपनी दुहिता रूप सूक्ष्म छन्द रश्मियों के

साथ संगत करने के लिए आश्विन् वहतु को प्रस्तुत करता है अर्थात् प्राण, अपान एवं उदान नामक प्राथमिक प्राणों को एक सहस्र वार आवृत्त करता है। इस प्रकार उन सभी प्राथमिक प्राण रश्मियों में विशेष वल उत्पन्न हो जाता है। उसके पश्चात् वे प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त हो जाती हैं, जिसके कारण इनकी प्रजारूप असंख्य प्रकार की द्वितीयक छन्द रश्मियां उत्पन्न होने लगती हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं **कि प्राण, अपान और उदान की आवृत्ति एक हजार बार अवश्य होनी चाहिए, अन्यथा उनमें उत्पन्न बल उन छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत नहीं कर सकता।** इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं- इममेव लोकमाश्विनेन (श.१२.८.२.३२)। यहाँ 'लोक' शव्द का अर्थ छन्द ग्रहण करना चाहिए, जैसा कि कहा है- छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)। इस विषय में एक अन्य ऋषि ने भी कहा है- आश्विनमन्वाह तदमुं लोकम् आप्नोति (कौ.ब्रा.११.२)। यहाँ महर्षि पुनः वल देते हुए कहते हैं कि **प्राणापानोदान की आवृत्ति एक हजार बार से अधिक तो हो सकती है, पर न्यून नहीं।** इस आश्विन के विषय में ऋषियों का अन्यत्र भी कहना है- आश्विनः श्रोत्रम् (मै.४.५.६), श्रोत्रं चात्मा चाश्विनः (काठ.२७.५; ऐ.२.२६)। यह हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं कि 'श्रोत्र' शव्द का अर्थ आकाश भी है। इससे यह संकेत मिलता है कि आकाश तत्त्व की उत्पत्ति इसी प्रक्रिया से होती है, फिर आकाश तत्त्व उन छन्द रश्मियों को धारण करता है। आकाश तत्त्व द्वारा धारित वे छन्द रश्मियां स्वयं आकाश एवं सावित्री कहलाती हैं। यही आकाश तत्त्व कालान्तर में सूक्ष्मतम मूल कणों से लेकर विशालतम लोकों को भी धारण करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के प्रारम्भ में मनस्तत्त्व से सूक्ष्म गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इसके साथ ही प्राथमिक प्राण रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। जब वाग् (गायत्री) रश्मियां तथा प्राण रश्मियों का परस्पर मेल होता है, उसके पश्चात् ही सृष्टि प्रक्रिया आगे वढ़ती है। इनके मेल के विना किसी भी पदार्थ का निर्माण होना सम्भव नहीं है। इन दोनों के मिलने के लिए एक अनिवार्य शर्त यह है कि प्राण, अपान, उदान रश्मियों की न्यूनतम एक हजार वार आवृत्ति होवें, इसके विना सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां सूक्ष्म गायत्री आदि रश्मियों को अपने साथ संगत करने में समर्थ नहीं होती हैं। इसी समय ही अर्थात् प्राणापान व उदान रश्मियों की एक हजार आवृत्ति तथा विभिन्न प्राणों के संगम से अन्य छन्द रश्मियां आकाश तत्त्व के रूप में प्रकट होती हैं। यही आकाश तत्त्व कालान्तर में उत्पन्न छन्दादि रश्मियों, मूलकणों व लोक-लोकान्तरों को धारण करता है। ध्यातव्य है कि **आकाश तत्त्व शून्य (Nothing) नहीं है, बल्कि यह प्राण तत्त्वों से मिश्रित विभिन्न छन्द रश्मियों का रूप है।।**

२. प्राश्य घृतं शंसेत्, यथा ह वा इदमनो वा रथो वाऽक्तो वर्तत एवं हैवाक्तो वर्त्तते।। शकुनिरिवोत्पतिष्यन्नाह्वयीत।।

{घृतम् = एतद्रूपा वै पशवो यद् घृतम् (क.३७.६), तेजो वा एतत् पशूनां यद् घृतम् (ऐ.८.२०), तेजो वै घृतम् (तै.सं.२.२.६.४; मै.१.६.८), पशवो घृतम् (मै.१.१०.७), घृङ्ङ्करोत् तद् घृतस्य घृतत्वम् (काठ.२४.७)। अक्तः = (अंजू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु धातोः क्तः प्रत्ययः)। शकुनिः = शकुनिः शक्नोत्युन्नेतुमात्मानम् शक्नोति नदितुमिति वा शक्नोति तकितुमिति वा सर्वतः शङ्करोऽस्विति वा शक्नोतेर्वा (नि.६.३)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रक्रिया में जो एक हजार वार प्राणापानोदान की आवृत्ति की चर्चा है, उस विषय में एक अनिवार्य शर्त वतलाते हुए ऋषि कहते हैं कि इन प्राण तत्त्वों की आवृत्ति से पहले विभिन्न पशुओं अर्थात् छन्द रश्मियों को विशेष तेजस्वी और व्यापक वनाया जाता है और इस कार्य के लिए ब्रह्माण्ड में 'घृम्' रूप अतिसूक्ष्म छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह छन्द रश्मि सभी छन्द रश्मियों को अच्छी प्रकार व्याप्त कर लेती है। इसके कारण वे सभी छन्द रश्मियां तेजस्विनी हो उठती हैं। जिस प्रकार से पूर्व में प्राणापानादि को एक हजार वार आवृत्त करके तेजस्वी वनाया जाता है, उसके पश्चात् ही वे छन्द रश्मियों के साथ संगत होने योग्य हो पाते हैं। उसी प्रकार छन्द रश्मियों को भी 'घृम्' रूप

सूक्ष्म रश्मियों की व्याप्ति से उत्पन्न तेज द्वारा तेजस्विनी बनाया जाता है, तभी दोनों परस्पर संगत हो पाते हैं। {रथम् = वज्रो वै रथः (तै.सं. ५.४.११.२), (वज्रो घृतम् - काठ.२०.५)} यहाँ महर्षि कहते हैं कि जिस प्रकार और जिस स्तर पर 'अनः' रूप वायु अर्थात् प्राणापान आदि रश्मियां एवं रथ अर्थात् 'घृम्' रूप सूक्ष्म वज्र रश्मियां व्यक्त और तेजस्वी रूप धारण करती हैं और वे आकाश तत्त्व को भी व्यक्त रूप प्रदान करने का प्रयत्न करती हैं। उसी प्रकार उसी स्तर पर विभिन्न छन्द रश्मियां भी व्यक्त और तेजस्वी रूप को प्राप्त करती हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ 'व्यक्त' शब्द का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि उसे किसी भी मानव तकनीक से प्रत्यक्ष किया जा सके। यहाँ केवल तात्पर्य यह है कि ये सभी रश्मियां स्पष्टतया प्रकट होकर सक्रिय हो उठती हैं।।

पूर्वोक्त प्राणापानोदान रश्मियों रूप आश्विन किस प्रकार से छन्द रश्मियों से संगत होता है, इस प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि इस हेतु पूर्वोक्त आहाव संज्ञक 'शोंसावोम्' छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। और यह 'आहाव' संज्ञक रश्मि ही छन्द रश्मियों के साथ प्राण रश्मियों के संगत होने में सन्धि वा सेतु का कार्य करती है। अब यह 'आहाव' संज्ञक रश्मि कैसे उत्पन्न होती है, इस विषय में कहते हैं कि एक हजार बार पूर्वोक्त प्राणों की आवृत्ति से वे प्राण रश्मियां ऊपर उठने, छन्द रश्मियों को प्रकाशित करने और उन्हें सम्यक् रूप से नियन्त्रण में लेने की क्षमता प्राप्त कर लेती हैं। उस समय 'आहाव' संज्ञक रश्मि उत्पन्न होती है। हमने यहाँ 'शकुनिः' शब्द के निर्वचन में 'नद्' धातु का अर्थ प्रकाशित करना लिखा है। इस विषय में निघण्टुकार ने लिखा है "नदति अर्चतिकर्मा" (निघं.३.१४)। उधर निरुक्त ५.२ में कहा है "ऋषिर्नदो भवति नदतेः स्तुतिकर्मणः"। इन प्रमाणों से हमारे विचारों की पुष्टि होती है, साथ ही यह भी संकेत मिलता है कि कण्डिका में विद्यमान 'शकुनिः' पद ऋषि अर्थ में प्रयुक्त है। इधर हम यह भी जानते हैं कि प्राणापानादि प्राथमिक प्राण भी ऋषि संज्ञक होते हैं, इस कारण हमने 'शकुनि' शब्द का अर्थ 'प्राणोपानोदान' जो ग्रहण किया है, वह सर्वथा आर्षमत-सम्मत है। ये प्राण रश्मियां 'आहाव' संज्ञक रश्मियों के साथ उड़ती हुई सी छन्द रश्मियों के साथ संगत होने के लिए प्रवाहित हो उठती हैं। इसका दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार से बाज पक्षी उड़ने के लिए उद्यत होते समय अपने शरीर विशेषकर गर्दन और पंखों को सिकोड़कर फिर पूरी शक्ति से पैरों से भूमि को दबाते हुए उड़ जाता है, उसी प्रकार ये प्राणापानादि रश्मियां भी इसी प्रकार से पहले सिकुड़कर फिर पूरे बल के साथ 'आहाव' संज्ञक रश्मियों को उत्पन्न एवं अपने साथ संगत करती हुई सहसा छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत कर लेती हैं। यहाँ 'शकुनिः' पद के निर्वचन में केवल सामर्थ्य की ही चर्चा नहीं है, अपितु उसे शंकर कहकर यह भी स्पष्ट किया गया है, कि उसकी उड़ने की प्रक्रिया मंगल व नियन्त्रणकारी भी है अर्थात् उसका नियन्त्रण विध्वंसक नहीं होता। इस प्रकार महर्षि ने इस कण्डिका में उन प्राण रश्मियों की 'शकुनि' शब्द से तुलना करके गम्भीर ऊहा का परिचय दिया है, इससे वे बतलाना चाहते हैं कि प्राण रश्मियों का छन्द रश्मियों पर नियन्त्रण किंवा उनके साथ संगम उन छन्द रश्मियों के लिए विध्वंसक नहीं होता अपितु शामक होकर उन्हें सृष्टि प्रक्रिया में अनुकूलता से जोड़ता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में जब प्राथमिक प्राण रश्मियों का छन्द रश्मियों के साथ संगम होता है, उस समय दोनों प्रकार की रश्मियों का तेजस्वी होना अनिवार्य है। प्राथमिक प्राण रश्मियां बार-२ आवृत्त होने से तेजस्विनी होती हैं, जबकि छन्द रश्मियां कुछ अन्य सूक्ष्म रश्मियों के कारण तेजस्विनी होती हैं। उसके पश्चात् ही दोनों रश्मियां परस्पर संगत हो पाती हैं। जिस प्रकार गर्म धातु गर्म धातु के साथ ही मिश्रित हो सकती है, ठंडी धातु के साथ कदापि नहीं, उसी प्रकार तेजस्विनी रश्मियां तेजस्विनी रश्मियों के साथ ही संगत हो जाती हैं। ठंडी धातु ठंडी धातु के साथ भी संगत नहीं होती उसी प्रकार तेजहीन रश्मियां तेजहीन रश्मियों के साथ भी संगत नहीं हो पातीं। **आकाश तत्व का निर्माण भी तेजस्वी एवं स्पष्ट रश्मियों के द्वारा ही एवं उसी समय होता है। आकाश तत्त्व भी सर्वथा तेजहीन नहीं होता। इस तेज का तात्पर्य यह नहीं कि आकाश भी विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के समान होता है।** आकाश तत्त्व की दीप्ति मानव तकनीक द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो सकती है। जब प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों के साथ संगत होती हैं, तब वे इस संगति के लिए पूर्ण समर्थ हो चुकी होती हैं तथा पक्षी के उड़ने की भाँति प्रथम सिकुड़ती पुनः पूर्ण बल के साथ छन्द रश्मियों को अपने साथ सहसा ही संगत करने लगती हैं। इस प्रक्रिया में दोनों रश्मियां पूर्णतः निरापद क्रियाओं को सम्पादित करती हैं।।

३. तस्मिन् देवा न समजानत,-ममेदमस्तु ममेदमस्त्विति; ते संजानाना अब्रुवन्नाजिमस्यायामहै, स यो न उज्जेष्यति, तस्येदं भविष्यतीति; तेऽग्नेरेवाधि गृहपतेरादित्यं काष्ठामकुर्वत, तस्मादाग्नेयी प्रतिपद्भवत्याश्विनस्य 'अग्निर्होता गृहपतिः स राजा' इति।।

{संजानाना = (सम्+ज्ञा = मेलजोल से रहना)। आजिम् = आजिरिति संग्रामनाम (निघं.२.१७), प्राप्तम् (तु.म.द.ऋ.भा.१.१३०.८)। गृहपतिः = प्रजापतिरेव गृहपतिरासीत् (जै.ब्रा.३.३७४), वायुर्गृहपतिरिति हैक आहुः सोऽन्तरिक्षस्य लोकस्य गृहपतिः (ऐ.५.२५)। काष्ठाः = दिशः (तु.म.द.य.भा.६.१३), संग्रामनाम (निघं.२.१७), दिननाम (निघं.१.६)। गृहाः = गृहा गार्हपत्यः (मै.१.५.१०), गृहा वै प्रतिष्ठा (श.१.१.१.१६)}

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रक्रिया के उपरान्त भी सभी देव पदार्थ अर्थात् प्राथमिक प्राण एवं छन्द रश्मियां परस्पर संगत नहीं हो पा रहे थे अर्थात् दोनों ही प्रकार के पदार्थ पूर्वोक्त प्रकार से तेजस्वी होने के उपरान्त भी परस्पर पूर्ण रूप से मिश्रित नहीं हो पा रहे थे। वे प्राथमिक प्राण छन्द रश्मियों के साथ संगत होने के लिए अति तीव्रता से गति करते हुए परस्पर स्पर्धा कर रहे थे, जिससे प्राण और छन्दों की संगति की सम्यक् व्यवस्था सुनिश्चित नहीं हो रही थी। यहाँ महर्षि ने देवों के परस्पर संवाद को चेतनवत् दर्शाया है, जो कि उसकी अपनी विशिष्ट शैली है। इस संवाद का आशय यह है कि वे सभी देव पदार्थ अर्थात् प्राणापानोदान के अतिरिक्त अन्य सभी प्राथमिक प्राण एक साथ प्रकाशित होते हुए आश्विन वहतु अर्थात् प्राणापानोदान की सहस्र आवृत्तियों से उत्पन्न तेज में व्याप्त होने लगे और उनमें से जिस प्राण रश्मि ने उत्कृष्टता से उस आश्विन तेज को प्राप्त कर लिया, वही छन्द रश्मियों के साथ संगत होने में समर्थ हो सकी। वे प्राण रश्मियां गार्हपत्य अग्नि अर्थात् अपने आधार रूप मनस्तत्त्व किंवा प्राणापानादि से ऊपर उठकर आदित्य अर्थात् विभिन्न छन्द रश्मियों की दिशाओं की ओर प्रवाहित होती हुई उनके साथ संगत होने लगती हैं। आदित्य एवं छन्द रश्मियों का सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों ने कहा है 'त्रैष्टुभो वा एष य एष (आदित्यः) तपति' (कौ.ब्रा.२५.४), त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः (तां.४.६.२३), जगती छन्द आदित्यो देवता श्रेणी (श.१०.३.२.६)। इसी आधार पर हमने 'आदित्य' शब्द का अर्थ छन्द रश्मियां ग्रहण किया है। इसके पश्चात् इस संगति और सम्पीडन के कारण अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति होती है और उस समय इस प्रक्रिया के प्रथम चरण में भरद्वाज बार्हस्पत्य वा वीतहव्य ऋषि अर्थात् {वीति = (वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु)} सूत्रात्मा वायु रूपी बृहस्पति से उत्पन्न प्राण नामक प्राथमिक प्राण किंवा प्रक्षेपक बलों से युक्त उदान वा अपान प्राण से अग्निदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा।।१३।। (ऋ.६.१५.१३)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विशेष तेज और बल से युक्त अग्नि के परमाणु उत्पन्न होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व होता रूप धारण करके विभिन्न सूक्त रूप रश्मिसमूहों एवं ऋतु रश्मियों का पालन और रक्षण करता है। महर्षि ऐतरेय महीदास ने 'गृह' शब्द का अर्थ ऋतु और सूक्त किया है, यथा- ऋतवो गृहाः (ऐ.५.२५), गृहा सूक्तम् (ऐ.३.२३)। वह अग्नि प्रकाशित होता हुआ सभी उत्पन्न पदार्थों को जन्म देता है। वह अग्नि विनाशी और अविनाशी दोनों प्रकार के पदार्थों का अतिशय मेल करने वाला होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्राण रश्मियों और छन्द रश्मियों के तेजस्वी होने के उपरान्त भी कई कारणों से वे परस्पर पूर्ण रूप से संगत नहीं हो पाती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियों में छन्द रश्मियों के साथ संगत होने के लिए स्पर्धा प्रारम्भ हो जाती है, जिसके कारण प्राण रश्मियों में संघर्षण प्रारम्भ हो

जाता है जिससे इस प्रक्रिया में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। उसके पश्चात् विभिन्न प्राण रश्मियां तेजस्वी होकर छन्द रश्मियों की ओर प्रवाहित होने लगती हैं। ये वे ही प्राण रश्मियां होती हैं, जो प्राण, अपान एवं उदान रश्मियों के तेज से व्याप्त होती हैं। इनके छन्द रश्मियों के साथ संगत होने पर उनका संपीडन प्रारम्भ हो जाता है और ये **संपीडित छन्द रश्मियां ही फोटोन्स का रूप धारण करती हैं।** आधुनिक भौतिक विज्ञान फोटोन्स को अनादि कण मानता है। इस कारण इसकी उत्पत्ति के विषय में वर्तमान विज्ञान विचार नहीं करता, किन्तु इस ग्रन्थ में पूर्व में भी अनेकत्र फोटोन्स के निर्माण प्रक्रिया की चर्चा है। **इन फोटोन्स में त्रिष्टुप् रश्मि की प्रधानता होती है।।**

४. तद्धैक आहुः-'अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम्' इत्येतया प्रतिपद्येत।।
'दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य' इति प्रथमयैव ऋचा काष्ठामाप्नोतीति।।
तत्तन्नादृत्यम्, य एनं तत्र ब्रूयाद् अग्निमिति वै प्रत्यपाद्यग्निमापत्स्यतीति, शश्वत् तथा स्यात्।।
तस्माद् 'अग्निर्होता गृहपतिः स राजा' इत्येतयैव प्रतिपद्येत, गृहपतिवती प्रजातिमती शान्ता; सर्वायुः सर्वायुत्वाय।।
सर्वमायुरेति य एवं वेद।।१।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा।।१३।। (ऋ.६.१५.१३)

छन्द रश्मि के स्थान पर सर्वप्रथम 'त्रित' ऋषि अर्थात् सबको तारने वाले प्राणापानोदान किंवा प्राणापानव्यान से अग्निदेवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य।।३।। (ऋ.१०.७.३)

की उत्पत्ति होती है। इस ऋचा में विद्यमान "दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य" पाद रश्मि के द्वारा छन्द रश्मियों की सीमा वा सम्पर्क प्राप्त हो जाता है। इस कारण पूर्वोक्त छन्द रश्मि का उत्पन्न होना सत्य नहीं है। हम यहाँ इस छन्द रश्मि के प्रभाव का वर्णन इस कारण नहीं कर रहे हैं, क्योंकि इस मत का खण्डन महर्षि ने अगली कण्डिकाओं में किया है।।+।।

इस मत का खण्डन करते हुए महर्षि लिखते हैं कि यह मत उचित नहीं है। इसका कारण बताते हुए महर्षि कहते हैं कि यदि यहाँ "अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम्" इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति होवे, तो अग्नि तत्त्व अत्यन्त प्रबल हो उठेगा, क्योंकि इस ऋचा में 'अग्नि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है, इसके साथ ही यहाँ 'सूर्य' शब्द भी विद्यमान है। इन सबके कारण अग्नि तत्त्व अत्यन्त तीक्ष्ण हो उठेगा, जिससे वह अन्य पदार्थों के साथ संयुक्त नहीं हो सकेगा। यहाँ सभी प्रकार की रश्मियां भी अत्यन्त तीव्र और चंचल हो उठेंगी, जिससे वे परस्पर संगत होने में समर्थ नहीं हो सकेंगी। इस कारण यहाँ इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति का होना उपयुक्त नहीं है।।

इस कारण महर्षि अपने मत की पुनः पुष्टि करते हुए कहते हैं कि "अग्निर्होता गृहपतिः स राजा......" की ही यहाँ उत्पत्ति होती है। इस ऋचा में 'अग्नि' पद का प्रयोग एक बार ही हुआ है, जिससे अग्नि तत्त्व समृद्ध तो होगा परन्तु पूर्व ऋचा की अपेक्षा अति तीक्ष्ण नहीं होगा। इस ऋचा में 'गृहपतिः' पद की विद्यमानता से विभिन्न सूक्त रूप छन्द रश्मियां पालित और रक्षित हो सकेंगी एवं इस ऋचा में "जनी प्रादुर्भावे" धातु की विद्यमानता से विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति की प्रक्रिया तेज होती

है और वह प्रक्रिया शान्त अर्थात् नियन्त्रित अवस्था में होती है। इस ऋचा में विद्यमान 'यजू' धातु भी विभिन्न पदार्थों के संगतीकरण में अपनी भूमिका निभाती है, जिसके कारण विभिन्न पदार्थ पूर्ण आयु को प्राप्त करते हुए परस्पर संगत होने लगते हैं। इस ऋचा के द्वारा ही यह स्थिति उत्पन्न होती है कि सभी पदार्थ पूर्ण आयु को प्राप्त करते हुए मर्यादित तेज को प्राप्त करके नाना पदार्थों को जन्म देते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया में फोटोन्स की उत्पत्ति के लिए हर कोई छन्द रश्मि समर्थ नहीं होती। उस समय उत्पन्न **विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, जो कि प्रथम बार ही उत्पन्न हो रही हैं, अत्यन्त उच्च ऊर्जा वाली नहीं होती, क्योंकि यदि अति ऊर्जा वाली तरंगें प्रथम अवस्था में ही उत्पन्न हो जायें, तो समस्त मूल पदार्थ अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठेगा, जिससे विभिन्न प्रकार की रश्मियां परस्पर संगत और सम्पीडित होकर आधुनिक विज्ञान के मूल कणों का निर्माण नहीं कर पायेंगी।** हमारी दृष्टि में वर्तमान विज्ञान द्वारा जानी गयी गामा (γ) किरणों की अपेक्षा रेडियो किरणें पहले उत्पन्न होती हैं। इस कारण सृष्टि प्रक्रिया के प्राथमिक चरण में पदार्थ अपेक्षाकृत शान्त और नियन्त्रित होता है। अतितीव्र प्रकाश और उच्च ऊष्मा आदि की उत्पत्ति बाद में होती है और वर्तमान विज्ञान के **मूलकण भी बाद में ही उत्पन्न होते हैं।।**

ॐ इति १७.१ समाप्तः ॐ

ॐ अथ १७.२ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तासां वै देवतानामाजिं धावन्तीनामभिसृष्टानामग्निर्मुखं प्रथमः प्रत्यपद्यत, तमश्विनावन्वागच्छतां, तमब्रूतामपोदिह्यावां वा इदं जेष्याव इति; स तथेत्यब्रवीत् तस्य वै ममेहाप्यस्त्विति; तथेति; तस्मा अप्यत्राकुरुताम्; तस्मादाग्नेयमाश्विने शस्यते।।
ता उषसमन्वागच्छताम्, तामब्रूतामपोदिह्यावां वा इदं जेष्याव इति; सा तथेत्यब्रवीत् तस्यै वै ममेहाप्यस्त्विति; तथेति; तस्या अप्यत्राकुरुतां तस्मादुषस्यमाश्विने शस्यते।।
ताविन्द्रमन्वागच्छताम्, तमब्रूतामावां वा इदं मघवंजेष्याव इति, न ह तं दधृषतुरपोदिहीति वक्तुं; स तथेत्यब्रवीत् तस्य वै ममेहाप्यस्त्विति; तथेति, तस्मा अप्यत्राकुरुतां, तस्मादैन्द्रमाश्विने शस्यते।।
तदश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्, यदश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्; तस्मादेतदाश्विनमित्याचक्षते।।
अश्नुते यद् यत्कामयते य एवं वेद।।
तदाहुर्यच्छस्यत आग्नेयं शस्यत उषस्यं शस्यत ऐन्द्रमथ कस्मादेतदाश्विनमित्याचक्षत इत्यश्विनौ हि तदुदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्, यदश्विना उदजयतामश्विनाश्नुवाताम्; तस्मादेतदाश्विनमित्याचक्षते।।
अश्नुते यद् यत्कामयते य एवं वेद।।२।।

{अभिसृष्टाः = अभितः प्रवृत्ता इति सायणः}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जब सभी देव अर्थात् प्राणापानोदान के अतिरिक्त अन्य सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों की ओर अभिमुख होकर तीव्रता से गमन करने लगती हैं, उस समय अग्नि अर्थात् विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति होती है। जैसा कि हम पूर्व में भी लिख चुके हैं कि सर्वप्रथम दुर्बलतम विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों (अग्नि तत्त्व) की उत्पत्ति होती है। इसके साथ ही विद्युत् तत्त्व का प्रादुर्भाव हो जाता है। विद्युत् के उत्पन्न होने के पश्चात् ही सृष्टि प्रक्रिया विशेष गतिशील होती है। इस विषय में वेद का कथन है-

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला।।५४।। (यजु.२३.५४)

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे।।११।। (ऋ.४.१.११)

इसका भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विद्युत् को सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला बताया है। यहाँ महर्षि ऐतरेय महीदास लिखते हैं कि अग्नि तत्त्व के साथ अश्विन् अर्थात् प्राणापानोदान रश्मियां

भी साथ ही आती हैं। **अग्नि का कोई भी परमाणु इन प्राण रश्मियों के बिना न तो निर्मित हो सकता है और न ही जीवित रह सकता है।** अश्विन् संज्ञक ये प्राणापानोदान रश्मियां अग्नि के परमाणुओं को अपने नियन्त्रण में लिये रहती हैं। इनका अग्नि के परमाणुओं पर नियन्त्रण इस प्रकार होता है कि प्राण और उदान दोनों ही अग्नि के परमाणुओं को अपान द्वारा कुछ दूरी पर स्थित होकर नियन्त्रित किये रहते हैं। यद्यपि अग्नि के परमाणुओं पर प्राणापानोदान का नियन्त्रण होता है और वे अग्नि के परमाणु से कुछ बाहर की ओर स्थित होते हैं, पुनरपि वह सम्पूर्ण निकाय अग्नि के परमाणु का ही भाग होता है, इस विषय में हमारा मत यह भी है कि प्राणापानोदान में से प्राणतत्त्व की रश्मियां अग्नि के परमाणु के अन्दर सदैव प्रवाहित होती रहती हैं। यह बात हम अनेकत्र पूर्व में भी लिख चुके हैं कि प्राणतत्त्व नामक प्राण की रश्मियां मूलकणों के अन्दर सतत प्रवाहित होती रहती हैं। यहाँ अग्नि के परमाणु के विषय में दूर रहने का तात्पर्य विशेषकर अपान और उदान के लिए प्रतीत होता है। जब अग्नि के परमाणु की उत्पत्ति होती है, उस समय प्राणापानोदान की सहस्र आवृत्तियों के मध्य अग्निदेवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, किंवा इन्हीं छन्द रश्मियों के संपीडित होने से अग्नि के परमाणु का निर्माण होता है। प्राथमिक स्थिति में अग्नि के परमाणु दुर्बल शक्ति वाले होते है, उन्हें यहाँ अग्नि कहा गया है।।

पूर्वोक्त अग्नि वा विद्युत् के परमाणुओं की उत्पत्ति के पश्चात् उषा की उत्पत्ति होती है। इसका तात्पर्य है कि द्वितीय चरण में शोभन कान्ति से युक्त उष्णता लिए हुए अग्नि के अपेक्षाकृत सबल परमाणुओं की उत्पत्ति होती है। इन परमाणुओं के साथ भी प्राणापानोदान प्राण रश्मियां भी संयुक्त रहती हैं, इन प्राण रश्मियों का अग्नि के उषारूप परमाणुओं के साथ इस प्रकार संयोग रहता है, कि वे उन अग्नि-उषा परमाणुओं को नियन्त्रित भी कर सकें। इनकी नियन्त्रण की प्रक्रिया पूर्वोक्त अनुसार ही है। प्राणापानोदान सहित उषा के परमाणु का एक निकाय उषा परमाणु रूप ही होता है, भले ही **पूर्णरूप से प्राणापानोदान से नियन्त्रित क्यों न हो। उषा के परमाणुओं के निर्माणकाल में उषादेवताक छन्द रश्मियों की ही उत्पत्ति होती है, किंवा उषादेवताक छन्द रश्मियां ही संपीडित होकर उषा के परमाणु का रूप ग्रहण करती हैं।।**

उपर्युक्त प्रक्रिया के उपरान्त इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इन्द्र तत्त्व विद्युत् अग्नि का ही सर्वाधिक तीक्ष्ण रूप है। इन्द्र तत्त्व के परमाणु अत्यन्त शक्तिशाली होते हैं, पूर्व की भाँति प्राणापानोदान रश्मियां इन्द्र तत्त्व के परमाणुओं के साथ भी संयुक्त होती हैं और वे प्राण रश्मियां मघवान् संज्ञक इन्द्र तत्त्व, जो ब्रह्माण्ड में अनेक पदार्थों को नियन्त्रित करने में समर्थ होता है, को भी अपने नियन्त्रण में रखती हैं। उषा और पूर्व अग्नि तत्त्व के नियन्त्रण की प्रक्रिया से इन्द्र तत्त्व के नियन्त्रण की प्रक्रिया में भेद यह है कि वे प्राणापानोदान विशेषकर अपानोदान रश्मियां इन्द्र तत्त्व के परमाणुओं को दूर से धारण करने में समर्थ नहीं हो पातीं बल्कि वे इन्द्र के परमाणुओं को निकट से ही धारण करते हुए नियन्त्रित करती हैं। यहाँ भी पूर्ववत् सम्पूर्ण निकाय इन्द्र के परमाणु का ही रूप होता है अर्थात् प्राणापानोदान रश्मियां इन्द्र के परमाणुओं का अनिवार्य भाग होती हैं। इन्द्र परमाणुओं की उत्पत्ति के समय प्राणापानोदान की सहस्र आवृत्ति होते हुए इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों की ही उत्पत्ति होती है किंवा वे इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियां ही संपीडित होकर इन्द्र के परमाणुओं का रूप धारण करती हैं।।

इस प्रकार की प्रक्रिया में अग्नि के तीनों रूप- अग्नि, उषा एवं इन्द्र अश्विन् अर्थात् प्राणापानोदान के द्वारा ही नियन्त्रित होते हैं, इसके साथ ही वे प्राणापानोदान रश्मियां उन अग्नि के तीनों प्रकार के परमाणुओं में व्याप्त भी होती हैं। हमारे मत में ये प्राण रश्मियां ही अग्नि, उषा, एवं इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों को संपीडित करके उन्हें परमाणु रूप प्रदान करती हैं। इस प्रकार इन तीनों प्राण रश्मियों रूपी अश्विन् तत्त्व का ही इन आग्नेय परमाणुओं के निर्माण में सर्वविध सहयोग रहता है। इस कारण इन छन्द रश्मियों को भी आश्विन शस्त्र कहते हैं, क्योंकि यह अश्विन् की ही प्रजा है। जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- "प्रजा शस्त्रम्" (श.५.२.२.२०)।।

इस प्रकार इन अश्विन् प्राण रश्मियों की उपर्युक्त प्रक्रियाओं के द्वारा अग्नि के जिस स्वरूप के परमाणुओं का निर्माण वांछित होता है, वह यथावत् होता रहता है।।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब इस प्रक्रिया में क्रमशः अग्नि, उषा और इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, न कि अश्विन्-देवताक छन्द रश्मियों की, तब क्यों उन छन्द रश्मिसमूहों को आश्विन शस्त्र कहा जाता है? क्यों इन्हें अग्नि, उषा और इन्द्र शस्त्र नहीं कहा जाता? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इन सभी छन्द रश्मियों को प्राणापानोदान रूपी अश्विन् ही व्याप्त करते हैं, वे ही इन्हें संपीडित करते हैं और वे ही इन्हें नियन्त्रित करते हैं। इस कारण इन सभी छन्द रश्मिसमूहों को आश्विन शस्त्र किंवा आश्विन प्रजा कहा जाता है।

वस्तुतः इन तीन प्राण रश्मियों के बिना इन तीनों ही प्रकार के परमाणुओं की उत्पत्ति आदि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जब यह तीनों प्रकार की प्राण रश्मियां पूर्वोक्तानुसार सहस्रवार आवृत्त होती हैं, उस समय वे जिन भी छन्द रश्मियों को संगत और संपीडित करना चाहती हैं, वे उनमें व्याप्त होकर अग्नि के विविध परमाणुओं का निर्माण करती हैं। इनके निर्माण के पश्चात् ही सृष्टि प्रक्रिया सम्यक् रूपेण समृद्ध होती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड में जब विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियां विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं आकाश तत्त्व के द्वारा संपीडित होती हैं, तब विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का निर्माण होता है। यह बात हम पूर्व में भी लिख चुके हैं, यहाँ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के विभिन्न रूपों की उत्पत्ति की चर्चा है। इस क्रम में सर्वप्रथम दुर्बल तरंगों की उत्पत्ति होती है, जिन्हें आधुनिक भौतिक विज्ञान की भाषा में रेडियो तरंगें कहा जा सकता है। इसके पश्चात् ऊष्मा और प्रकाश की तरंगें उत्पन्न होती हैं, जिनमें विभिन्न वर्ण विद्यमान होते हैं। अन्त में एक्स एवं गामा किरणें उत्पन्न होती हैं, जो अत्यन्त शक्तिशाली होती हैं। **इन किरणों के क्वान्टाज् विभिन्न छन्द रश्मियों के प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं आकाशतत्त्व के द्वारा संपीडित होने से उत्पन्न होते हैं। सभी प्रकार के क्वान्टाज् प्राथमिक प्राण रश्मियों द्वारा विशेषकर प्राण, अपान और उदान नामक रश्मियों द्वारा नियन्त्रित होते हुए धनंजय प्राण द्वारा गतिशील होते हैं।** यह प्राण ही सभी प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का सबसे प्रमुख वाहन होता है। इसी के कारण विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सर्वाधिक गतिशील होती हैं। विभिन्न प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा अर्थात् आवृत्ति इस बात पर निर्भर करती है कि उन तरंगों के क्वान्टाज् किन छन्द रश्मियों के संपीडन से उत्पन्न हुए हैं, और इस बात पर भी निर्भर होती है कि प्राण, अपान, उदान आदि रश्मियों के साथ उन छन्द रश्मियों का निकाय किस प्रकार बना और नियन्त्रित होता है। आधुनिक विज्ञान विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की पृथक् आवृत्ति के आधार पर प्रकाश, ऊष्मा, पराबैंगनी, गामा, रेडियो आदि तरंगों का विभाजन मानता है और इनके भी परस्पर असंख्य स्तरों को स्वीकार करता है। प्रकाश के मुख्यतः सात रंग, वस्तुतः असंख्य रंग इन तरंगों की आवृत्ति पर ही निर्भर करते हैं, परन्तु आवृत्तियों के भेद और क्वान्टाज् के निर्माण का कारण आधुनिक विज्ञान को ज्ञात नहीं है परन्तु वैदिक विज्ञान इससे बहुत आगे जाकर नाना छन्द रश्मियों के संपीडन से नाना तरंगों की उत्पत्ति विशेषकर क्वान्टाज् की उत्पत्ति का गम्भीर विज्ञान प्रस्तुत करता है।।

॥ इति १७.२ समाप्तः ॥

ॐ अथ १७.३ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्, तासां प्राजमानो योनिमकूलयत्; तस्मात् ता न विजायन्ते।।
गोभिररुणरुषा आजिमधावत्, तस्मादुषस्यागतायामरुणमिवैव प्रभात्युषसो रूपम्।।
अश्वरथेनेन्द्र आजिमधावत्; तस्मात् स उच्चैर्घोष उपब्दिमान् क्षत्रस्य रूपमैन्द्रो हि सः।।
गर्दभरथेनाश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवातां; यदश्विना उदजयताश्विनावाश्नुवातां; तस्मात् स सृतजवो दुग्धदोहः सर्वेषामेतर्हि वाहनानामनाशिष्ठो रेतसस्त्वस्य वीर्यं नाहरतां; तस्मात् स द्विरेता वाजी।।

{अकूलयत् = (कूल आवरणे) 'गर्दभः = गर्दयति शब्दं करोतीति (उ.को.३.१२२), पापीयान् ह्यश्वाद् गर्दभः' (तै.सं.५.१.२.२-३), भस्मन एव गर्दभोऽसृज्यत, तस्मात्स भस्मनः प्रतिरूपः (जै.ब्रा.३.२६४), (भस्म = प्रदीपकं तेजः, भस भर्त्सनदीप्त्योः, 'भक्षणदीप्त्योः' इति प्राचीनाः, सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)।}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को आगे वढ़ाते हुए कहते हैं कि अग्नि अर्थात् विद्युत्, जो प्रारम्भिक रूप में अर्थात् न्यून वल के साथ उत्पन्न होता है, अश्वतरी के रथ में सवार होकर गमन करता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह अग्नि जिस समय उत्पन्न होता है, उस समय वह अति व्यापक एवं तीव्र आशुगामी तरंगों के रूप में होता है। ये आग्नेय किरणें कृष्णवर्ण की होती हैं, साथ ही इनके अन्दर आकर्षण वल भी यत्किंचित् मात्रा में विद्यमान् होता है। इस प्रकार के अग्नि के परमाणु ऐसी तीव्रगामी रश्मियों यथा धनंजय आदि पर सवार होकर चलते हैं, जिनकी गति ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक होती है। यहाँ धनंजय प्राण रश्मियों को ही अश्वतरी कहा गया है, ऐसा हमारा मत है। वे अग्नि के परमाणु उन धनंजय आदि रश्मियों के योनिरूप स्थान, जिनसे कि वे किन्हीं अन्य रश्मियों को उत्पन्न कर सकते हैं, को अपने अन्दर ढांप लेते हैं। इस कारण वे धनंजय आदि रश्मियां और उनके साथ गमन करने वाली अग्नि-किरणें विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न नहीं कर सकतीं। यद्यपि सभी प्रकार के अग्नि के परमाणु धनंजय प्राण रश्मियों के द्वारा ही गतिशील होते हैं परन्तु इन धनंजय रश्मियों के योनिरूप स्थान को इस प्रकार पूर्णतया आच्छादित नहीं करते कि वे किसी भी प्रकार की रश्मियों को उत्पन्न न कर सकें। यही अन्य आग्नेय परमाणुओं से इन आग्नेय परमाणुओं का भेद है। यहाँ 'आजिम् अधावत्' का तात्पर्य यह है कि ये अग्नि के परमाणु गति और क्षेपण गुणों को प्राप्त करते हुए शुद्ध रूप में प्रकट हो जाते हैं और उसी गतिशील और शुद्धावस्था में धनंजय आदि रश्मियों की उत्पादक शक्ति को प्रतिवन्धित करते हैं।।

उषा संज्ञक आग्नेय किरणें सव ओर से चमकती हुई छन्द रश्मियों के संपीडित रूप में गति और क्षेपण आदि गुणों से युक्त होकर विशुद्ध रूप में प्रकाशित होती हैं। इस कारण से जहाँ-जहाँ भी ये रश्मियां व्याप्त होती हैं, वहाँ-२ प्रकाश और ऊष्मा की लालिमा भी व्याप्त हो जाती है। यही उषा का रूप है। यहाँ लालिमा का अर्थ यह नहीं है कि इन रश्मियों में अन्य कोई वर्ण नहीं होता। महर्षि यास्क के अनुसार "अरुण आरोचनः" (नि.५.२०)। इससे स्पष्ट है कि 'अरुण' शब्द का अर्थ केवल

लालिमायुक्त प्रकाश ही नहीं, वल्कि प्रत्येक प्रकार की दीप्ति को भी अरुण कहा जाता है और वही दीप्ति इन अग्नि के परमाणुओं में भासती है। इस प्रकार की दीप्ति मानव तकनीक से देखने योग्य होती है।।

अग्नि के तीव्ररूप इन्द्र की चर्चा करते हुए कहते हैं कि ये किरणें अति वेग के साथ विशेष वलसम्पन्न और रथ रूपी वज्र रश्मियों की तीक्ष्णता से युक्त होती हैं। अपने इस स्वरूप में गति और क्षेपण के तीव्र गुणों का प्रकाश करती हुई ये किरणें शुद्ध रूप में प्रकाशित होती हैं। ये किरणें जव उत्पन्न होती हैं, तव गम्भीर घोष के साथ उत्पन्न होती हैं। इस कारण इन किरणों के साथ सदैव ध्वनि तरंगें भी विद्यमान रहती हैं। इन किरणों को क्षत्ररूप कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि इन किरणों की भेदन क्षमता पूर्वोत्पन्न किरणों से अधिक होती है। {उपब्दिः = वाङ्नाम (निघं.१.११)} यद्यपि ध्वनि तरंगें सभी पूर्वोक्त किरणों में भी विद्यमान होती हैं, किन्तु इन्हीं को उपब्दिमान् क्यों कहा? इसके उत्तर मे हमारा मत यह है कि इनकी उत्पत्ति के समय सवसे गम्भीर घोष उत्पन्न होता है, साथ ही इनके साथ गमन करती हुई वाग् रश्मियां सर्वाधिक तीक्ष्ण होती हैं। इसी कारण इन्हें उपब्दिमान् कहा है।।

अश्विन् में गर्दभरथ से इस प्रक्रिया पर विजय पाई- इसका आशय हमारी दृष्टि में यह है कि प्राण, अपान, रमणीय और कमनीय उदान रश्मियों द्वारा सभी प्रकार के विकिरणों पर नियन्त्रण करते हैं। यहाँ गर्दभरथ उन तेजस्वी रश्मियों को कहते हैं, जो ध्वनि उत्पन्न करने के साथ-२ विभिन्न रश्मियों को अपने अन्दर अवशोषित करने और उन्हें वार-२ ऊपर-नीचे हिलाने-डुलाने में समर्थ होती हैं। हमारी दृष्टि में ये रश्मियां उदान ही कहलाती हैं। उदान रश्मियों के वारे में ऋषियों का कथन है- "उदानो वै त्रिककुप् छन्दः (श.८.५.२.४), उदानो वै नियुतः (श.६.२.२.६), एति ('आ' इति) उदानः (श.१.४.१.५)" उधर ककुप् को निघण्टु १.६ में दिशावाची नामों में पढ़ा है, इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि उदान प्राण रश्मियां व्यापक स्तर पर प्रकाशमान होती हैं, इसके साथ ही वे **उदान रश्मियां तीन दिशाओं से छन्द रश्मियों को धारण कर लेती हैं।** उदान प्राण के विषय में वामन आप्टे ने अपने संस्कृत-हिन्दी कोष में एक श्लोक इस प्रकार उद्धृत किया है-

"स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं गात्रनेत्रप्रकोपनः, उद्वेजयति मर्माणि उदानो नाम मारुतः।"

इससे यह भी सिद्ध होता है कि शरीर के अन्दर शब्द उच्चारण की क्रिया में इसी प्राण की भूमिका होती है, इस कारण **गर्दभ और उदान दोनों ही रश्मियां हमें एक ही प्रतीत होती हैं।** इस प्रकार यहाँ महर्षि का कथन है कि प्राण और अपान नामक अश्विन् इन उदान रश्मियों के रथ अर्थात् तीव्र रूप के द्वारा सभी प्रकार के विकिरणों को अपने नियन्त्रण में रखते हैं, इसी कारण हमने पूर्व खण्ड में 'अश्विन्' शब्द का अर्थ प्राणापानोदान करके तीनों ही प्राण रश्मियों का ग्रहण किया है। **ये प्राणापान रश्मियां उदान रश्मि के द्वारा ही विभिन्न विकिरणों के अन्दर व्याप्त होती हैं,** क्योंकि ये प्राणापान रश्मियां इस उदान रश्मि के द्वारा ही विकिरणों को नियन्त्रित करती और उनमें व्याप्त होती हैं, इस कारण वे उदान रश्मियां प्राणापान का {आशिष्ठाः = अतिशयेनाऽऽशुगामिनः (म.द.ऋ.भा.२.२४.१३)। जवम् = (जवति गतिकर्मा - निघं.२.१४)} संपीडित छन्द रश्मियों पर नियन्त्रण हो जाने के पश्चात् वेगरहित होकर सम्पूर्ण छन्द रश्मि में व्याप्त हो जाती हैं। इसका तात्पर्य है कि संपीडित छन्द रश्मि पर प्राणापान के नियन्त्रण करने की प्रक्रिया के दौरान उदान रश्मियां अपने वेग और वल से पूर्णतया युक्त होकर अपनी महती भूमिका निभाती हैं, परन्तु जैसे ही प्राणापान का नियन्त्रण स्थापित हो जाता है, वे उदान रश्मियां वेगरहित होकर संपीडित छन्द रश्मियों में फैल जाती हैं। इस कारण उनका जो अतिशय वेग था, वह समाप्त हो जाता है। यहाँ ऐसा संकेत मिलता है कि उदान रश्मियों का वेग अन्य प्राण रश्मियों की अपेक्षा (धनंजय वायु को छोड़कर) सर्वाधिक होता है। इस प्रक्रिया में उदान रश्मियों के वल में कोई कमी नहीं आती, जिसके कारण वे प्राणापान के साथ मिलकर संपीडित छन्द रश्मियों को वाँधें अवश्य रखती हैं। यहाँ गर्दभ अर्थात् उदान रश्मियों को द्विरेतावाजी कहकर दो प्रकार के वलों से युक्त वताया है, उसका आशय यह है कि वे उदान रश्मियां अग्नि के परमाणुओं, जो संपीडित छन्द रश्मियों के रूप में ही होते हैं, पर दो प्रकार के वल का प्रयोग करती हैं। उनमें से प्रथम है- पूर्वोक्तानुसार अग्नि के परमाणुओं पर नियन्त्रण में प्रयुक्त वल तथा दूसरा वल उन अग्नि के परमाणुओं के उत्थान और पतन में काम आता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– कम ऊर्जा वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अर्थात् रेडियो तरंगें जिस समय उत्पन्न होती हैं, उस समय भी ब्रह्माण्ड में ऊष्मा उत्पन्न हो चुकी होती है, भले ही वह अति न्यून क्यों न हो। इन किरणों का कोई रंग नहीं होता अथवा इन्हें कृष्ण वर्ण की माना जा सकता है। ये किरणें दूसरी सूक्ष्म किरणों को उत्पन्न नहीं करतीं अर्थात् इनमें किन्हीं पदार्थ विशेष को उत्पन्न करने की क्षमता नहीं होती, जबकि अन्य विद्युत् चुम्बकीय तरंगें इस क्षमता से युक्त होती हैं। इस सृष्टि में विभिन्न कणों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया में अवरक्त किरणें, प्रकाश, पराबैंगनी, एक्स (x) एवं गामा (γ) सभी विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अपनी भूमिका निभाती हैं अथवा निभा सकती हैं, परन्तु रेडियो किरणें ऐसा नहीं कर सकतीं। प्रकाश और ऊष्मा किरणें इनसे अधिक शक्तिशाली परन्तु गामा आदि किरणों की अपेक्षा न्यून शक्ति वाली होती हैं। गामा किरणों की उत्पत्ति के समय उच्च ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होती हैं। इसके साथ ही गामा किरणों के गमन के समय भी इनमें सूक्ष्म ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। **सभी प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को प्राण, अपान और उदान रश्मियां नियन्त्रित किये रहती हैं।** जब किन्हीं छन्द रश्मियों को संपीडित करके विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज् का निर्माण होता है, उस समय सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां इस कार्य को सम्पन्न करती हैं किन्तु प्राण, अपान और उदान की भूमिका विशेष होती है। **क्वान्टाज् के निर्माण के पश्चात् उदान प्राण रश्मियां उसमें व्याप्त होकर वेग रहित हो जाती हैं, किन्तु नियन्त्रण कार्य में इन्हीं का सबसे अधिक योगदान होता है।** ये प्राण और अपान के साथ मिलकर विकिरणों के स्वरूप को बनाये रखती हैं साथ ही उनके उत्सर्जन एवं अवशोषण में इन्हीं की विशेष भूमिका होती है।।

२. तदाहुः सप्त सौर्याणि च्छन्दांसि शंसेद् यथैवाग्नेयं यथोषस्यं यथाश्विनम्; सप्त वै देवलोकाः, सर्वेषु देवलोकेषु राध्नोतीति।।
तत्तन्नादृत्यम्; त्रीण्येव शंसेत्, त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोका एषामेव लोकानामभिजित्यै।।
तदाहु 'उदुत्यं जातवेदसम्' इति सौर्याणि प्रतिपद्येतेति।।
तत्तन्नादृत्यम्; यथैव गत्वा काष्ठामपराध्नुयात्, तादृक् तत्।।

व्याख्यानम्– यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते है कि जैसे पूर्वोक्त प्रकरण में अग्नि, उषा और इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियां अग्नि के पृथक्-२ स्वरूप को उत्पन्न करने के लिए पृथक्-२ चरणों में उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार सूर्यदेवताक सात छन्द रश्मिसमूहों की उत्पत्ति भी होती है, क्योंकि देवों के लोक सात ही हैं, जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है– "चतस्त्रो दिशस्त्रय इमे लोका एते वै सप्त देवलोकाः" (श.१०.२.४.४) इसका आशय यह है कि चार दिशाएँ, पृथिवी, द्यौ एवं अन्तरिक्ष ये सात ही विभिन्न देव पदार्थों के निवास स्थान होने से देव लोक कहलाते हैं। इनको समृद्ध करने के लिए ही सात छन्द रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं, जिनका देवता सूर्य होता है।।

महर्षि इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि यह मत स्वीकार्य नहीं है। वे कहते हैं कि इस प्रसंग में सूर्यदेवताक तीन ही छन्द रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है, सात छन्द रश्मिसमूह की नहीं, क्योंकि इस प्रसंग में पृथिवी, द्यौ एवं अन्तरिक्ष तीन ही देवलोक प्रमुख हैं और वे तीनों देवलोक त्रिवृत् ही हैं। इसलिए सूर्यदेवताक तीन ही सूक्त रश्मियों की उत्पत्ति होती है, सात की नहीं। यहाँ त्रिवृत् का अर्थ आचार्य सायण ने सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण किया है। इस प्रसंग में इस अर्थ से हम सहमत नहीं हैं, क्योंकि तीन सूक्त रश्मियों से ही इन तीन गुणों का सम्बन्ध हो सकता है, सात सूक्त रश्मियों से नहीं, यह विज्ञान सम्मत कथन नहीं। वस्तुतः इन तीन गुणों का सम्बन्ध इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु से है, केवल मात्रा की न्यूनाधिकता का ही भेद होता है। इस कारण हमारे मत में तीन लोकों के त्रिवृत् होने का तात्पर्य यह है कि तीनों ही लोक पूर्वोक्त अग्नि, उषा और इन्द्र नामक रश्मियों से युक्त होते हैं, इनमें केवल मात्रा का भेद ही होता है। इन तीनों लोकों के सम्यक् नियंत्रण के लिए तीन ही सूक्त रश्मियों की उत्पत्ति होती है, न कि सात की। यहाँ हमने छन्द के स्थान पर सूक्त अथवा छन्द रश्मिसमूह

का ग्रहण इस कारण किया है, क्योंकि अगली कण्डिका में एक ऋचा को उद्धृत करके उसे बहुवचनान्त सौर्याणि पद से संबोधित किया है, इस कारण एक छन्द रश्मि से यहाँ एक सूक्त का ग्रहण किया गया है। यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त सूर्यदेवताक तीन छन्द रश्मियों में से सर्वप्रथम प्रस्कण्व ऋषि अर्थात् प्रकृष्ट रूप से सक्रिय सूत्रात्मा वायु से सूर्यदेवताक निचृद् गायत्री छन्दस्क -

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥१॥ (ऋ.१.५०.१)

इत्यादि सूक्त की उत्पत्ति होती है॥+॥

इस मत का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं कि यह मत स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि इस सूक्त की छन्द रश्मियों के सर्वप्रथम उत्पन्न होने से विभिन्न छन्द रश्मियां प्राथमिक प्राणों के द्वारा संपीडित होना प्रारम्भ होते ही भ्रान्त हो सकती हैं, जिसके कारण उनका संपीडन सम्यक् रूपेण न होने से अग्नि के परमाणुओं की यथावत् उत्पत्ति नहीं हो पाती। इस कारण से इस सूक्त की उत्पत्ति सर्वप्रथम नहीं होती है। छन्द रश्मियों की यह भ्रान्ति क्यों होती है? इस कारण पर हम अगली कण्डिकाओं में विचार करेंगे॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, तारों के निर्माण के पूर्व ही विभिन्न छन्द रश्मियों के संपीडन से उत्पन्न हो जाती हैं। उसके पश्चात् तीन प्रकार के छन्द रश्मिसमूह उत्पन्न होकर तारों के निर्माण की प्रक्रिया को जन्म देते हैं। इन तीनों छन्द रश्मियों की उत्पत्ति का भी एक निश्चित क्रम होता है, जो अगली कण्डिकाओं में वर्णित है। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें न केवल सूर्यादि तारों अपितु पृथिवी आदि अप्रकाशित लोकों एवं सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त रहती हैं। **हमारे मत में सृष्टि के प्रारम्भ में विभिन्न मूलकणों की उत्पत्ति से पूर्व छन्द रश्मियों एवं प्राण रश्मियों के संपीडन से विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति होती है। इसके उपरान्त इन विद्युत् चुम्बकीय तरंगों से ही विभिन्न मूलकणों की उत्पत्ति होती है॥**

३. 'सूर्यो नो दिवस्पात्वित्येतेनैव प्रतिपद्येत; यथैव गत्वा काष्ठामभिपद्येत तादृक् तत्॥
'उदु त्यं जातवेदसम्' इति द्वितीयं शंसति॥
'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' इति त्रैष्टुभमसौ वाव चित्रं देवानामुदेति, तस्मादेतच्छंसति॥
'नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे' इति जागतं; तद्वाशीःपदमाशिषमेवैतेनाशास्त आत्मने च यजमानाय च॥३॥

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि अपना मत प्रस्तुत करते हुए इस बात पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं कि उपर्युक्त प्रकरण में कौन सी छन्द रश्मियां किस क्रम से उत्पन्न हुआ करती हैं। यद्यपि पूर्वोक्त कण्डिकाओं में तीन सूक्तों (रश्मिसमूह) की उत्पत्ति की बात महर्षि ने की है, लेकिन यहाँ चार सूक्तों का वर्णन इन चार कण्डिकाओं में किया गया है, जिनसे से एक सूक्त की तेरह छन्द रश्मियों में से केवल नौ छन्द रश्मियों का ग्रहण है, न कि उस सम्पूर्ण सूक्त का। अब यहाँ चक्षुः सौर्य ऋषि {निविद् = सौर्य्या वा एता देवता यन्निविदः (ऐ.३.११)। नृचक्षसः = देवा वै नृचक्षसः (श.८.४.२.५)} अर्थात् प्रकाशक निविद् रश्मियों से सूर्यदेवताक निम्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं-

(१) सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः॥१॥ (ऋ.१०.१५८.१)

इसका छन्द आर्चीस्वराड् गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न विकिरण विशेष तेजस्वी

होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सूर्य में स्थित विभिन्न प्राण रश्मियां, आकाश में स्थित प्राण वायु रश्मियां और अप्रकाशित कणों में स्थित विद्युत् उनकी रक्षा करती है।

(२) जोषां सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति। पाहि नो दिद्युतः पतंन्त्याः।।२।। (ऋ.१०.१५८.२)

इसका छन्द स्वराड् गायत्री होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सूर्य आदि लोकों के अन्दर विभिन्न विद्युत् प्रवाह अनेकों प्रकार की संयोग-वियोग प्रक्रियाओं को जन्म देकर सूर्य को तेजस्वी वनाये रखते हैं।

(३) चक्षुर्नो देवः संविता चक्षुर्न उत पर्वतः। चक्षुर्धाता दधातु नः।।३।। (ऋ १०.१५८.३)

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् परन्तु प्रकाश की मात्रा कुछ न्यून। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राथमिक प्राण एवं विभिन्न रश्मियों के घनीभूत मेघ तथा विभिन्न छन्द रश्मियां विभिन्न निविद् रश्मियों को धारण करके प्रकाशमान हो उठती हैं।

(४) चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः। सं चेदं वि च पश्येम।।४।। (ऋ १०.१५८.४)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् किन्तु भेदक शक्ति अपेक्षाकृत अधिक। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न रश्मियां परस्पर संगत होकर प्रकाश को विस्तृत करके सव पदार्थों को प्रकाशित करती हैं, साथ ही विभिन्न प्रकार के परमाणुओं में परस्पर आकर्षण वल भी समृद्ध होता है।

(५) सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य। वि पंश्येम नृचक्षसः।।५।। (ऋ.१०.१५८.५)

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् किन्तु भेदक शक्ति कम और प्रकाश की मात्रा अधिक होती है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार की अग्नि रश्मियां विभिन्न देव अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों को विशेष आकर्षित किये रहती हैं।

इस कण्डिका में महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त तीन सूक्त रश्मियों में यह प्रथम सूक्त रश्मिसमूह है, जिसमें पांच छन्द रश्मियां विद्यमान हैं। इनकी ही उत्पत्ति इस प्रकरण में सर्वप्रथम होती है। इनके कारण विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं छन्द रश्मियों के संघात वनने अर्थात् अग्नि के परमाणुओं के निर्माण की प्रक्रिया समृद्ध होती है।।

इसके पश्चात् महर्षि ने ऋग्वेद १.५० सूक्त की नौ छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना लिखा है। विभिन्न गायत्री छन्दस्क ये नौ रश्मियां पृथक् सूक्त के रूप में न होकर उपर्युक्त सूक्त रश्मियों की अनुगामिनी होकर संश्लिष्ट रहती हैं, ऐसा हमारा मत है। ऐसा न मानने पर आगामी कण्डिकाओं में वर्णित दो सूक्त रश्मिसमूहों को मिलाकर चार सूक्त हो जाते हैं, जिनका कि पूर्वोक्त तीन सूक्तों के कथन से विरोध होगा। इस कारण हमारा कथन युक्तिसंगत है। दूसरा कारण यह भी है कि अग्रिम दोनों सूक्त भिन्न-२ छन्दों वाले हैं, परन्तु इस सूक्त और पूर्वोक्त सूक्त में छन्दों की समानता भी है। अव हम इन नौ छन्द रश्मियों का क्रमशः वर्णन करते हैं। ये सभी रश्मियां प्रस्कण्व ऋषि अर्थात् विशेष सक्रिय सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न होती हैं। इनका देवता सूर्य है। ये छन्द रश्मियां निम्नानुसार हैं-

(१) उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्।।१।। (ऋ.१.५०.१)

इसका देवता निचृद् गायत्री होने से इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्रकाश रश्मियां भेदक वलसम्पन्न होती हैं।, इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न अग्नि रश्मियां वस्तुमात्र में विद्यमान प्राण रश्मियों को प्राप्त वा वहन करते हुए सवके लिए कमनीय होती हैं।

(२) अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे।।२।। (ऋ.१.५०.२)

इसका देवता पिपीलिका मध्या निचृद् गायत्री होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {तायुः = स्तेननाम (निघं.३.२४), सूर्यपालक वायु (तु.म.द.ऋ.भा.१.५०.२)} विभिन्न अक्तु अर्थात् व्यक्त पदार्थों के साथ अविनाशी पदार्थ सदैव संलग्न रहते हैं, उसी प्रकार सबके प्रकाशक सूर्यादि लोकों के साथ ऐसे वायु, जो अपने तीक्ष्ण बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों का हरण करने में समर्थ होते हैं, सदैव संयुक्त-वियुक्त होते रहते हैं।

(३) अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा।।३।। (ऋ.१.५०.३)

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्व की अपेक्षा कुछ मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार की प्रकाशमान और क्रियावान् अग्नि रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के अनुकूल वर्त्तमान होती हैं।

(४) तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्।।४।। (ऋ.१.५०.४)

इसका छन्द पिपीलिका मध्या निचृद् गायत्री होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाश रश्मियां व्यापकरूप से प्रकाशमान सुन्दर दीप्तियों से युक्त एवं विभिन्न परमाणुओं को प्रकाशित करने वाली होती हैं।

(५) प्रत्यङ्देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे।।५।। (ऋ.१.५०.५)

इसका छन्द यवमध्या विराड् गायत्री होने से इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से विभिन्न रश्मियां संयोगादि गुणों से युक्त एवं अधिक प्रकाशशील होती हैं। इनके अन्य प्रभाव से प्राथमिक प्राणों से उत्पन्न और उन्हीं से व्याप्त वे प्रकाश रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों में व्याप्त होकर सर्वत्र प्रकाशित होती हैं।

(६) येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि।।६।। (ऋ.१.५०.६)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव प्रथम रश्मि के समान समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वरुणः = यः प्राणः स वरुणः (गो.उ.४.११), व्यानो वरुणः (श.१२.९.१.१६), अपानो वरुणः (श.८.४.२.६)} प्राणापानोदान, जो सबको गति देने वाले एवं सबको शुद्ध करने वाले होते है, अपनी सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा सबको अनुकूलता से आकर्षित करते हुए धारण और पुष्ट करते हैं।

(७) वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य।।७।। (ऋ.१.५०.७)

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकाश रश्मियां प्राणापानादि रश्मियों के मेल से विभिन्न कणों का व्यापक रूप से निर्माण करती हुई विशाल लोकों के निर्माण हेतु अपने आकर्षण से उन कणों को प्रेरित करती हैं।

(८) सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण।।८।। (ऋ.१.५०.८)

इसका छन्द पिपीलिका मध्या निचृद् गायत्री होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न तेजस्विनी रश्मियां प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, धनंजय, और सूत्रात्मा वायु - इन सात रश्मियों से युक्त होकर सात स्वरूपों वाली रश्मियां विभिन्न प्रकार से प्रकाशित होने लगती हैं।

(९) अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः।।९।। (ऋ.१.५०.९)

इसका छन्द भी उपर्युक्तवत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उपुर्यक्त अविनाशी किरणें विभिन्न पदार्थों का शोधन करने वाली होती हैं और उन पदार्थों से संयुक्त होकर इन्हें भी तेजस्वी स्वरूप प्रदान करती हैं।

इस प्रकार ये नौ गायत्री छन्द रश्मियां पूर्वोक्त पाँच गायत्री छन्द रश्मियों के साथ मिलकर एक सूक्त के समान व्यवहार करती हैं।।

तदुपरान्त आङ्गिरसः कुत्स ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न अतितीक्ष्ण प्राण विशेष से सूर्यदेवताक निम्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति एक सूक्त के रूप में होती है-

(१) चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुंणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावांपृथिवी अन्तरिंक्षं सूर्यं आत्मा जगंतस्तस्थुषंश्च।।१।। (ऋ.१.११५.१)

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से अग्नि के परमाणु अतिभेदक शक्तिसम्पन्न, बल और तेज से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु विभिन्न प्राथमिक प्राणों में से विशेषकर प्राण तथा अपान रश्मियों को उत्कृष्टता से प्राप्त करके विचित्र रूप को प्राप्त करते हैं। वे अग्नि के परमाणु गतिमान और स्थिर पृथिवी, द्यौ और अन्तरिक्ष आदि सबको परिपूर्ण करते हैं।

(२) सूर्यो देवीमुषसं रोचंमानां मर्यो न योषांमभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरों देवयन्तों युगानिं वितन्वते प्रतिं भद्रायं भद्रम्।।२।। (ऋ.१.११५.२)

इसका छन्द उपर्युक्तवत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राणों से युक्त चित्र-विचित्र रंग उत्पन्न करने वाले अग्नि के विभिन्न परमाणु अपने नियत मार्गों पर दौड़ते हुए अप्रकाशित परमाणुओं से संयुक्त होने का सतत प्रयास करते हैं। इसके साथ ही विभिन्न प्रकाशमान मरुद् रश्मियां उन अग्नि के परमाणुओं से मिलकर विभिन्न संयोजक कर्मों का विस्तार करती हैं।

(३) भद्रा अश्वां हरितः सूर्यस्य चित्रा एतंग्वा अनुमाद्यांसः।
नमस्यन्तों दिव आ पृष्ठमंस्थुः परि द्यावांपृथिवी यंन्ति सद्यः।।३।। (ऋ.१.११५.३)

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् किन्तु कुछ मृदु एवं अधिक प्रकाशमान। इसके अन्य प्रभाव से {एतग्वाः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} वे पूर्वोक्त अग्नि परमाणु चित्र-विचित्र गति एवं बलों से युक्त होकर द्यौ एवं पृथिवी लोक को सब ओर से व्याप्त करते हैं। ये अग्नि-परमाणु अन्य परमाणुओं के साथ पृष्ठ भाग से संयुक्त होते हैं और वहीं ठहर जाते हैं।

(४) तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्मंहित्वं मध्या कर्तोर्वितंतं सं जंभार।
यदेदयुंक्त हरितंः सधस्थादाद्रात्री वासंस्तनुते सिमस्मैं।।४।। (ऋ.१.११५.४)

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् किन्तु प्रकाशशीलता कुछ न्यून। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु तारों के मध्य व्याप्त होकर महान् प्रकाश का निर्माण करते हुए उसका सब ओर से हरण करते हैं अर्थात् उसे नियत मर्यादा में बाँधे रखने में सहायक होते हैं। वे अग्नि के परमाणु सम्पूर्ण द्युलोक में अपना विस्तार करते हैं।

(५) तन्मित्रस्य वरुंणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृंणुते द्योरुपस्थें।
अनन्तमन्यद्रुशंदस्य पाजंः कृष्णमन्यद्धरितः सं भंरन्ति।।५।। (ऋ.१.११५.५)

इसका छन्द उपर्युक्तवत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु प्रकाशमान प्राण तथा अपान के समीपस्थ होकर अनेक प्रकार के रूप प्रकट करते हैं। उनके लाल, काले, हरे आदि रूपों के साथ-२ एक पृथक्-२ असंख्य प्रकार के बलों को धारण करते हैं।

(६) अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।६।। (ऋ.१.११५.६)

इसका छन्द प्रथम ऋचा के समान होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव तद्वत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राण आदि प्राथमिक रश्मियां उत्कृष्टता से गमन करते हुए अग्नि के परमाणुओं को असुर तत्त्व से मुक्त रखती हैं। प्राण एवं उदान रश्मियां विभिन्न वाग् रश्मियों को अपने साथ बाँधकर अनेक प्रकार के प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं को बार-२ उत्पन्न करती हैं।

इस प्रकार ये छः त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां प्राथमिक प्राण रश्मियों को उत्कृष्टता के साथ गति प्रदान करती हैं, जिससे वे अनेक प्रकार के तीव्र बलों को उत्पन्न करके अग्नि के नाना प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करती हैं।।

अन्त में तृतीय सूक्त के रूप में सौर्योऽभितपा ऋषि अर्थात् विशेष अभितप्त प्राणादि रश्मियों से सूर्यदेवताक निम्नलिखित छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं-

(१) नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत।।१।। (ऋ.१०.३७.१)

इसका छन्द पादनिचृज्जगती होने से पूर्वोत्पन्न अग्नि-परमाणु तीव्रता के साथ विभिन्न परमाणुओं के साथ संयुक्त-वियुक्त होते हुए नृत्य करने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशमान प्राण और अपान की तीक्ष्ण रश्मियां विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को सूर्यादि लोकों के निर्माण के लिए प्रेरित करते हुए अपने मार्गों पर गमन करती हैं।

(२) सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः।।२।। (ऋ.१०.३७.२)

इसका छन्द पूर्वोक्त होने से छान्दस और दैवत प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उन प्राणापानों की अविनाशी दीप्ति आग्नेय और पार्थिव परमाणुओं की सब ओर से रक्षा करती है, उन प्राण रश्मियों की विभिन्न धाराएँ विभिन्न प्रकार के स्थिर, गतिशील और प्रकाशित पदार्थों को उत्कृष्टता से गति प्रदान करती हुई सब ओर फैलाती हैं।

(३) न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य।।३।। (ऋ.१०.३७.३)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से छान्दस और दैवत प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {रथर्यति = गतिकर्मा (निघं.२.१४), प्रदिवः = पुराणनाम (निघं.३.२७)। एतशः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} वे अग्नि के परमाणु अपनी पतनशील और आशुगामी प्रवृत्तियों के द्वारा सब ओर गमन करते हैं। वे अग्नि के परमाणु अपने से पूर्व उत्पन्न अप्रकाशित अर्थात् असुर पदार्थों में व्याप्त नहीं होते हैं, जबकि वे अग्नि के परमाणु प्राचीनकणों वा रश्मियों का अनुवर्तन करते हैं।

(४) येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव।।४।। (ऋ.१०.३७.४)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से छान्दस और दैवत प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। {अमिवाः = देवाश्वा इति वा (नि.१२.४४)। अनिराः = नितरां दातुमयोग्याः (म.द.य.भा.११.४७)} इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु प्रकाशित होकर सब पदार्थों को अंधकार से मुक्त करते हैं। इसके साथ ही वे परमाणु विभिन्न अन्य परमाणुओं के अन्दर विद्यमान शिथिलता, असंयोज्यता और आकर्षणविहीनता आदि दुरितों को दूर करते हैं।

(५) विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु।
यद्द्य त्वा सूर्योपब्रवामहे तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम्।।५।। (ऋ.१०.३७.५)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से छान्दस और दैवत प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। {अहेडमानः = अक्रुध्यन (नि. ४.२५)} इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व, जो तीव्र प्रेरक शक्तिसम्पन्न होता है, अति उत्तेजित अवस्था को न प्राप्त करता हुआ विभिन्न क्रियाओं की सृष्टि प्रक्रियाओं की रक्षा करता है। वह अग्नि तत्त्व अपने अन्दर व्यान प्राण को धारण करता हुआ अनुकूलता से गति प्राप्त करके विभिन्न कर्मों को प्रकाशित करता है।

(६) तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि।।६।। (ऋ.१०.३७.६)

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्वोक्त की अपेक्षा कुछ मृदु परन्तु अधिक प्रकाशमान होता है। {जरते अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४), यजमानो जरिता (ऐ.३.३८)} इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित और अप्रकाशित कण, विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियां आदि विभिन्न पदार्थ परस्पर एक-दूसरे के तेजरूप आकर्षण के द्वारा सम्यक् गति करते हैं। वे सभी पदार्थ अग्नि के परमाणुओं को अच्छी प्रकार एवं उचित समृद्धि के साथ प्रकाशित करते हैं।

(७) विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य।।७।। (ऋ.१०.३७.७)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु उत्तम रूप से मनस्तत्त्व से संयुक्त होकर सुन्दर प्रकाश और संयोज्यता आदि गुणों से सम्पन्न होकर दीर्घजीवी होते हैं। वे अग्नि के परमाणु असुर तत्त्व से अप्रभावित रहते हुए उत्कृष्ट गमन करके विभिन्न अप्रकाशित परमाणुओं को प्रेरित करते हैं।

(८) महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य।।८।। (ऋ.१०.३७.८)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पाजः = अन्ननाम (निघं.२.७), बलनाम (निघं.२.९), पालनात् (नि.६.१२)} वे अग्नि के परमाणु महान् और विलक्षण ज्योति को धारण करके प्रकाशमान होते हुए विभिन्न प्रकाशित पदार्थों में अपने बल और रक्षण आदि से प्रतिष्ठित रहते हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां इन परमाणुओं को प्रकाशित करती हैं।

(९) यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि।।९।। (ऋ.१०.३७.९)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वस्यसा = (वस्यः = वशीयः - म.द.ऋ.भा.७.३२.१९)} वे अग्नि के परमाणु अपनी प्रेरणा से सृष्टि के सभी कणों वा लोकों को गति प्रदान करते हैं। वे परमाणु व्यक्त और प्रकाशित पदार्थों में निवास करते हैं। वे अपनी आकर्षणशील रश्मियों के द्वारा सब पदार्थों को असुर तत्त्व से मुक्त करके प्राणापान के द्वारा श्रेष्ठ नियन्त्रण शक्ति को प्राप्त करते हैं।

(१०) शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम्।।१०।। (ऋ.१०.३७.१०)

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से अग्नि तत्त्व अत्यन्त भेदक शक्तिसम्पन्न और तेजस्वी हो उठता है।

{घृणः = अहर्नाम (निघं.१.९), ज्वलतोनाम (निघं.१.१७), क्रोधनाम (निघं.२.१३)। हिमा = रात्रिनाम (निघं.१.७)} इसके अन्य प्रभाव से अग्नितत्त्व का तेज एवं उसकी उष्णता प्राणतत्त्व के द्वारा नियन्त्रित होती है। सबके प्रेरक प्राणों के द्वारा तारों के सभी क्षेत्र सम्यक् तेज और ताप से युक्त होकर विचित्र प्रकार के अनेक तत्त्वों को धारण करते हैं। तारों के केन्द्रीय भाग, बाहरी भाग और सुदूर अन्तरिक्ष में वे अग्नि के परमाणु सर्वत्र प्राणों द्वारा नियन्त्रित होकर गमन करते हैं।

(११) अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन॥११॥ (ऋ.१०.३७.११)

इसका छन्द जगती होने से अग्नि के परमाणु तीव्रता से गमन करते हुए विभिन्न कणों के साथ संयुक्त होने लगते हैं। {रपः = रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः (नि.४.२१)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां दो पाद वाली और चार पाद वाली छन्द रश्मियों को सुव्यवस्थित करने में सहायक होती हैं। वे प्राण रश्मियां उन छन्द रश्मियों को बल प्रदान करती, कहीं उनको वेग प्रदान करती, उनको बाधक असुर तत्त्वों से दूर करके सम्यक् रूप से धारण करती और कहीं हानिकारक छन्द रश्मियों को अवशोषित वा नष्ट करती हैं।

(१२) यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम्।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन॥१२॥ (ऋ.१०.३७.१२)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव भी पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां वाक् तत्त्व एवं मनस्तत्त्व के साथ संयुक्त होकर विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को व्यापक स्तर पर प्रज्वलित करती हैं और जो असंयोज्य परमाणु एवं विध्वंसक रश्मियां जहाँ कहीं भी विद्यमान होती हैं, उनमें इन गुणों को भी वे ही प्राथमिक प्राण रश्मियां प्राप्त कराती हैं अर्थात् देव और असुर दोनों ही तत्त्वों का प्राथमिक कारण मूल रश्मियां हैं।

इस प्रकार ये बारह छन्द रश्मियां पूर्वोक्त प्रकरण में तीसरे सूक्त के रूप में उत्पन्न होती हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं कि इन छन्द रश्मियों में 'आशिः' पद विद्यमान होने से यह सूक्त विभिन्न अग्नि परमाणुओं एवं उनसे संयुक्त होने वाले परमाणुओं के लिए अनुकूल होती हैं। यहाँ यद्यपि 'आशिः' पद प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान नहीं है, तदपि 'आशिमहि' एवं "आशितम्" पदों की विद्यमानता से ही महर्षि ने 'आशिः' पद का ग्रहण किया है। इस प्रकरण में उपर्युक्त कण्डिकाओं से विभिन्न छन्द रश्मियों के ग्रहण करने में महर्षि आश्वालयन के वचन निर्देशक का कार्य करते हैं। वे वचन हैं- उदिते सौर्याणि प्रतिपद्यते॥ सूर्यो नो दिव उदुत्यं जातवेदसमिति नव चित्रं देवानां नमो मित्रस्य......॥ (आश्व.श्रौ.६.५.१७-१८)॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया में तारों आदि के निर्माण कार्य में मुख्यरूप से गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इसके साथ ही विभिन्न पदार्थों की संधानक मास रश्मियां भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। विभिन्न प्रकार के मूलकण एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें इन्हीं सबसे उत्पन्न होती हैं। विभिन्न मूलकणों के अनेक क्रियाकलापों के पीछे विद्युत् चुम्बकीय तरंगों और विद्युत् आवेश की महती भूमिका होती है। इन सबके निर्माण में विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के बीच परस्पर न्यूनाधिक आकर्षण बल अवश्य विद्यमान होता है। इस ब्रह्माण्ड में मानव तकनीक से प्रत्यक्ष हो सकने वाले सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ परोक्ष एवं अव्यक्त कारणरूप पदार्थों से न केवल निर्मित होते हैं, अपितु उनके साथ संयुक्त भी रहते हैं। साथ ही वे अव्यक्त सूक्ष्म पदार्थ व्यक्त पदार्थों के अन्दर सदैव आवागमन करते हुए उन पर पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं। **इस सृष्टि में जो भी बल जहाँ भी दिखाई देता है, वह सब अव्यक्त सूक्ष्म पदार्थों के कारण ही होता है।** इन अव्यक्त सूक्ष्म पदार्थों में **प्राणापानोदान** विशेष प्रमुख है। विशाल से भी विशाल लोकों के निर्माण में भी इन तीनों की मूलभूत भूमिका होती है। इस ब्रह्माण्ड में वर्तमान वैज्ञानिक विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को छः भागों में विभाजित करते हैं, वे इस प्रकार हैं- Gamma rays, X-rays, Ultraviolet radiations, Visible Light, Infrared radiation, Radio waves, ये विभाग

स्थूल रूप से किये जाते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से इनके असंख्य विभाग होते हैं। इन सब विभागों का मूल कारण ही प्राण और छन्द रश्मियों के परस्पर संघात के प्रकार पर निर्भर करता है। **जब कोई भी फोटोन किसी इलेक्ट्रान आदि कथित मूलकण के साथ संयुक्त होता है, तब वह उस कण के उत्तरी या दक्षिणी भाग से ही संयुक्त होता है।** विभिन्न तारों के अन्दर अथवा अन्तरिक्ष में जो भी विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विद्यमान होती हैं, वे सभी प्राण रश्मियों के द्वारा ही नियन्त्रित होती हैं। डार्क एनर्जी और डार्क मैटर आदि पदार्थ भी इन प्राण रश्मियों के द्वारा भिन्न प्रकार से संचालित और नियन्त्रित होते हैं।।

इति १७.3 समाप्तः

अथ १७.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुः सूर्यो नातिशस्यो, बृहती नातिशस्या, यत्सूर्यमतिशंसेद् ब्रह्मवर्चसमतिपद्येत; यद्बृहतीमतिशंसेत् प्राणानतिपद्येतेति।।
'इन्द्र क्रतुं न आ भर' इत्यैन्द्रं प्रगाथं शंसति।।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहीति।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जब विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा छन्द रश्मियां संपीडित होकर अग्नि के विभिन्न परमाणुओं का निर्माण करती हैं, इसके साथ ही इस प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, उस समय यह संपूर्ण प्रक्रिया एक मर्यादा और व्यवस्था का पालन करती है। यद्यपि निर्माण की प्रत्येक प्रक्रिया की अपनी एक मर्यादा और व्यवस्था होती है, इस मर्यादा और व्यवस्था का उल्लंघन करके संसार का कोई पदार्थ कभी निर्मित नहीं हो सकता। **यह मर्यादा और व्यवस्था एक चेतन और सर्वोच्च सत्ता परमात्मा के अधीन होती है। वही संपूर्ण सृष्टि का अंतिम और मूल प्रेरक और नियामक तत्त्व है।** यहाँ उसी व्यवस्था के प्रसंग में महर्षि कहते हैं कि **प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा निश्चित प्रकार की छन्द रश्मियों का निश्चित मात्रा में ही संपीडन होता है। अग्नि की उत्पत्ति के समय यह संपीडन इस प्रकार होता है, जिससे कि अग्नि के परमाणु विधिवत् उत्पन्न हो सकें।** इस प्रक्रिया में कोई अतिक्रमण नहीं होता। छन्द एवं प्राण रश्मियों की मात्रा का यदि अतिक्रमण हो जाये, तो अग्नि के परमाणुओं का निर्माण नहीं हो सकेगा। यदि इन रश्मियों की संख्या कम होगी अर्थात् प्राण रश्मियों की संख्या और छन्द रश्मियों की संख्या एवं बल के उचित अनुपात से कम होगी, तो छन्द रश्मियां सम्यक् रूप से संपीडित नहीं हो पाएंगी और यदि प्राण रश्मियों की संख्या छन्द रश्मियों की संख्या के उचित अनुपात से अधिक होगी किंवा वे अधिक सबल होंगी, तब छन्द रश्मियां जल अथवा पृथिवी के परमाणुओं में परिवर्तित हो जायेंगी। इन दोनों ही परिस्थितियों में उनका स्वरूप तेजस्वी नहीं रहेगा। यहाँ महर्षि यह भी कहते हैं कि इस संपीडन क्रिया को गति व शक्ति देने के लिए जो पूर्वोक्त विभिन्न प्रेरक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे बृहती छन्द रश्मि का अतिक्रमण नहीं करतीं अर्थात् बृहती छन्द रश्मि अवश्य ही उनमें विद्यमान होती है, क्योंकि यह ही छन्द रश्मि विभिन्न परमाणुओं को एक आकार वा क्षेत्र प्रदान करती है। यदि यह बृहती छन्द रश्मि अतिक्रमित हो जाय अर्थात् उसकी विद्यमानता न हो, तो प्राथमिक प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को संपीडित करने में सक्षम नहीं हो पायेंगी, जिसके कारण अग्नि के परमाणुओं की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। इस कण्डिका का एक अन्य आशय यह भी है कि अग्नि के परमाणुओं की उत्पत्ति में सूर्यदेवताक छन्द रश्मियों का अतिक्रमण नहीं हो सकता अर्थात् उनकी उत्पत्ति अवश्य होती है। ऐसा न होने पर अग्नि के परमाणुओं की उत्पत्ति संभव नहीं हो सकती। इसके साथ ही एक अन्य शर्त यह भी है कि अग्नि तत्त्व के निर्माण में पूर्वोक्त गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों की भूमिका के साथ-२ बृहती छन्द रश्मियों की भी अनिवार्य भूमिका होती है। ऐसा न होने पर भी परमाणु स्वरूप की उत्पत्ति संभव नहीं। इन बृहती छन्द रश्मियों की चर्चा अग्रिम कण्डिकाओं में की गई है।।

बृहती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पूर्वोक्त प्रसंग में चर्चा करते हुए महर्षि लिखते हैं कि वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक प्रगाथ अर्थात् दो ऋचाओं की उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।

शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि।।२६।। (ऋ.७.३२.२६)

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अत्यन्त शक्तिशाली होकर छन्द रश्मियों के संपीडन में महती भूमिका निभाता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनेक छन्द रश्मियों को इसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार मनरूपी पिता पुत्ररूपी प्राथमिक प्राण रश्मियों को सब ओर से धारण करता है। {शिक्षा = (शिक्षति दानकर्मा - निघं.३.१९)} विभिन्न रश्मियों को आकर्षित एवं प्रतिकर्षित करने वाला वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों की ज्योति को प्राप्त करके विभिन्न गन्तव्य मार्गों व स्थानों में संपीडित हो रही विभिन्न छन्द रश्मियों को अपना बल प्रदान करता है।

(२) मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि।।२७।। (ऋ.७.३२.२७)

इसका छन्द बृहती होने से इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत् किन्तु अपेक्षाकृत कुछ मृदु। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न गुप्त बाधक असुर रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके, विभिन्न संपीडनीय छन्द रश्मियों की बाधाओं को दूर करके प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा संपीडित होने में सहयोग प्रदान करता है।

इस प्रकार ये दोनों छन्द रश्मियां बृहती होने से पूर्वोक्त छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर अग्नि के परमाणुओं के निर्माण में सहयोग प्रदान करती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के निर्माण की प्रक्रिया में छन्द रश्मियां संपीडक प्राण रश्मियों की अपेक्षा जब अधिक प्रबल होती हैं, तब वे संपीडित नहीं हो पाती और वे बिखरकर उसी अवस्था में बनी रहती हैं। इसके विपरीत **जब छन्द रश्मियां संपीडक प्राण रश्मियों की अपेक्षा आवश्यकता से अधिक दुर्बल होती हैं, तब वे अत्यधिक संपीडित होकर विद्युत्, चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज् के स्थान पर अन्य मूलकणों का निर्माण करती हैं।** इसके कारण विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति दोनों ही स्थितियों में नहीं हो पाती। इसके साथ ही इस प्रक्रिया में बृहती छन्द रश्मियों की भी अनिवार्य भूमिका होती है। ये रश्मियां ही प्राथमिक प्राण रश्मियों में व्याप्त होकर विभिन्न मूल कणों अथवा क्वान्टाज् को एक आकार प्रदान करती हैं, भले ही वह आकार मानव तकनीक से जाना न जा सके।।

२. असौ वाव ज्योतिस्तेन सूर्यं नातिशंसति।।
यदु बार्हतः प्रगाथस्तेन बृहतीं नातिशंसति।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को स्पष्ट करते हुए महर्षि लिखते हैं कि सूर्यदेवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति से ही ज्योति अर्थात् प्रकाश की उत्पत्ति होती है। इस विषय में अन्य ऋषियों का कथन भी हम यहाँ उद्धृत करते हैं- अथ सूर्यमुदीक्षते। सैषा गतिरेषा प्रतिष्ठा। (श.१.६.३.१५), अधि द्यौर्नामास्य मृतेन विष्टा.......विश्वे ते देवा गोप्तारः, सूर्योऽधिपतिः। (मै.२.८.१४), अयुक्त सप्त शुन्ध्युवस्सूरो रथस्य नप्त्यः ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः सप्त। त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण। (काठ.६.१६), अर्वाङ् सूर्यस्तपति (काठ.२६.७), असौ वाऽ आदित्यो बृहज्ज्योतिः (श.६.३.१.१५), एतद्वै 'ज्योतिरुत्तमं' य एष (सूर्यः) तपति। (जै.ब्रा.२.६८) इन सभी कथनों से स्पष्ट है कि प्रकाश का सूर्यदेवताक छन्द रश्मियों से कारण कार्य का सम्बन्ध है, इस कारण इन छन्द रश्मियों का अतिक्रमण नहीं हो सकता अर्थात् इनकी उत्पत्ति होना अनिवार्य है।

इसके अतिरिक्त समुचित मात्रा में संपीडित छन्द रश्मियां ही ज्योति उत्पन्न कर सकती हैं, इस कारण संपीडन की मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता अर्थात् प्राण रश्मियों और छन्द रश्मियों का समुचित अनुपात और बल ही अग्नि के परमाणुओं को उत्पन्न कर सकता है। उपर्युक्त प्रगाथ की प्रथम छन्द रश्मि में 'ज्योतिः' एक अवयवरूपी रश्मि के रूप में विद्यमान है, यह अवश्य ही इस प्रक्रिया को ज्योति अर्थात् सूर्य का अतिक्रमण नहीं करने देता, यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है।।

पूर्व खण्ड में उत्पन्न छन्द रश्मियों में बृहती छन्दस्क रश्मियां विद्यमान नहीं हैं, इस कारण इस खण्ड में वर्णित उपर्युक्त दोनों छन्द रश्मियां बृहती होने से बृहती छन्द रश्मियों का अनतिक्रमण हो जाता है अर्थात् ये छन्द रश्मियों इस प्रसंग में वर्णित विभिन्न छन्द रश्मियों के साथ सहयोग करके परमाणु अवस्था को निर्मित करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्व भाष्यसार में समाहित है।।

३. 'अभि त्वा शूर नोनुम' इति राथन्तरीं योनिं शंसति; राथन्तरेण वै संधिनाश्विनाय स्तुवते; तद् यद् राथन्तरीं योनिं शंसति रथन्तरस्यैव सयोनित्वाय।। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमित्यसौ वाव स्वर्दृक् तेन सूर्यं नातिशंसति।। यदु बार्हतः प्रगाथस्तेन बृहतीं नातिशंसति।।

व्याख्यानम्- इसी क्रम में पूर्वोक्त ऋषि एवं देवता वाली दो छन्द रश्मियां निम्नानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) अभि त्वां शूर नोनुमोऽ दुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।२२।। (ऋ.७.३२.२२)

इसका छन्द स्वराडनुष्टुप् वा विराड् बृहती होने से इन्द्र तत्त्व अनुकूल तेज एवं बल को ग्रहण करके विभिन्न रश्मियों को बांधने में सहयोग करता है। इस प्रकरण में इसका छन्द विराड् बृहती ग्रहण करना ही अधिक उपयुक्त है। इसके अन्य प्रभाव से तीव्र गतिशील एवं विक्रान्त इन्द्रतत्त्व गतिशील एवं गतिहीन किंवा कम गतिशील परमाणुओं को नियन्त्रित करता है और उन्हें निर्माणाधीन तारों के केन्द्र की ओर अतृप्त रश्मियों की भाँति सब ओर से प्रेरित करता है।

(२) न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।।२३।। (ऋ.७.३२.२३)

इसका छन्द महर्षि दयानन्द ने निचृद्पंक्ति माना है, जबकि महर्षि ऐतरेय महीदास ने इसे बृहती ही माना है। हम यहाँ ग्रन्थकार के मत को ही स्वीकार करके पादनिचृद् बृहती ही ग्रहण कर रहे हैं। इसका दैवत तथा छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् किन्तु कुछ तीक्ष्ण एवं प्रकाश की न्यूनता। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णता से प्रकाशित होकर अग्नि तत्त्व के परमाणुओं को ही उत्पन्न करने में सहायक बनता है, न कि पृथिवी आदि परमाणुओं के निर्माण में। इस इन्द्र तत्त्व को संपीडनीय विभिन्न छन्द रश्मियां अपनी ओर सम्यक् रूप से आकर्षित करती हैं।

इन दोनों बृहती छन्द रश्मियों को राथन्तरी योनि नाम दिया है। उधर एक अन्य ऋषि का कहना है- "एतद्वै रथन्तरस्य स्वमायतनं यद् बृहती" (तां.४.४.१०) यहाँ दोनों ही ऋषियों का मत स्पष्टरूपेण यह संकेत करता है कि ये दोनों छन्द रश्मियां रथन्तर रश्मियों का निवास स्थान हैं।

रथन्तर रश्मियों के विषय में अन्य ऋषियों का कथन है- अथ रथन्तरम्। रेतः सिक्तिरेव सा (जै.ब्रा.१.३०५), यद्रथन्तरं तच्छाक्वरम् (ऐ.४.१३), रथन्तरमेतत्परोक्षं यच्छक्वर्यः (तां.१३.२.८), वज्रो वै रथन्तरम् (जै.ब्रा.२.१६६), वाग् रथन्तरम् (जै.ब्रा.१.१२८,३२६; ३.३१६), वाग्वै रथन्तरम् (जै.ब्रा.१.२३०), गायत्रं वै रथन्तरम् (तां.५.१.१५) इन आर्ष वचनों से यह सिद्ध होता है कि विभिन्न तीक्ष्ण रश्मियां, जो मूलतः गायत्री छन्द रश्मियों से उत्पन्न होती हैं, वे विभिन्न छन्द रश्मियों में अपने तेज और बल का अव्यक्त रूप से संचरण करती रहती हैं। ये रश्मियां अपने तेजस्वी स्वरूप के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों एवं उनके द्वारा सम्पन्न हो रही विभिन्न क्रियाओं को गति देती हैं। ऐसी वे तेजस्विनी रश्मियां इन उपर्युक्त बृहती छन्द रश्मियों के अन्दर व्याप्त वा विद्यमान हो जाती हैं। ये बृहती छन्द रश्मियां सन्धिरूप होकर सबको सम्यग् रूप से धारण करती हुई परस्पर संगत करती हैं। ऐसा करके अश्विन् अर्थात् प्राणापानोदान द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों को संपीडित करने से अग्नि के परमाणुओं के

निर्माण की प्रक्रिया समृद्ध होती है। इन राथंतरी योनिरूप इन बृहती छन्द रश्मियों के प्रभाव से अन्य विभिन्न रथन्तर संज्ञक रश्मियां अर्थात् गायत्री छन्द आदि रश्मियां सयोनिरूप होकर एक क्षेत्र विशेष में संपीडित होने लगती हैं। उनके इस संपीडन से अश्विन् अर्थात् प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के कणों का निर्माण होने लगता है। यहाँ 'प्रगाथ' शब्द की पूर्व से अनुवृत्ति समझनी चाहिए।।

उपर्युक्त दोनों बृहती छन्द रश्मियों में से प्रथम छन्द रश्मि में तृतीय पाद "ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम्" के प्रभाव को हम ऊपर दर्शा ही चुके हैं। यहाँ महर्षि यह बतलाना चाहते हैं कि इसमें विद्यमान "स्वर्दृक" पद सूर्य का ही वाचक है, इस कारण से यह पदरूप रश्मि पूर्वोक्त क्रियाओं को सूर्य का अतिक्रमण नहीं करने देती अर्थात् इनके प्रभाव से तेजस्विता में वृद्धि होती है और विभिन्न परमाणु तारों के केन्द्रीय भाग की ओर तेजी से प्रवाहित होने लगते हैं।।

पूर्वोक्तानुसार समझें कि यह रश्मिद्वय कैसे बृहती का अतिक्रमण नहीं होने देता।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के निर्माण में उत्पन्न कुछ बृहती रश्मियां ऐसी होती हैं, जिनके अन्दर अनेक अति शक्तिशाली रश्मियां समायी हुई होती हैं। वे बृहती रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को धारण भी करती हैं और संगत भी। इन सब छन्द रश्मियों को गायत्री छन्द रश्मियां अपने तेज और बल के सूक्ष्म संचरण के द्वारा उत्तेजित और प्रेरित भी करती हैं, जिसके कारण विभिन्न तारों के अन्दर संलयनीय पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर तेजी से प्रवाहित होने लगते हैं, जिससे तारों के अन्दर ऊर्जा की उत्पत्ति की प्रक्रिया तेज होती है।।

४. 'बहवः सूरचक्षसः' इति मैत्रावरुणं प्रगाथं शंसत्यहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुण उभे वा एषोऽहोरात्रे आरभते योऽतिरात्रमुपैति; तद् यन्मैत्रावरुणं प्रगाथं शंसत्यहोरात्रयोरेवैनं तत्प्रतिष्ठापयति।।
'सूरचक्षसः' इति तेन सूर्यं नातिशंसति; यदु बार्हतः प्रगाथस्तेन बृहतीं नातिशंसति।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से मैत्रावरुण देवता वाली (महर्षि दयानन्द ने देवता "आदित्याः" माना है) दो छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। वे निम्नानुसार हैं-

(१) बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः।। (ऋ.७.६६.१०)

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से प्राणापानोदान रश्मियां तीव्र बल के साथ छन्द रश्मियों को संपीडित करती हैं। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां तारों के निर्माण के समय सम्पूर्ण पदार्थ को भी घनीभूत करने में सहयोग करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {सूरचक्षसः = सूरख्यान वा सूरप्रज्ञा वा (निघं.११.१६)} वे प्राणापानोदान अग्नि के विभिन्न परमाणुओं को प्रकृष्टता से उत्पन्न करने वाले अग्रणी वाक् रश्मियों से युक्त होकर ऋत अर्थात् मनस्तत्त्व रूपी कारण के द्वारा समृद्ध होने वाले होते हैं। वे तीनों प्राण रश्मियां सब ओर वर्तमान ऐश्वर्य और कर्मों के द्वारा विभिन्न संयोग-वियोग प्रक्रियाओं को बहुत प्रकार से संपीडित करती हैं।

(२) वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम्।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत।। (ऋ.७.६६.११)

इसका छन्द स्वराड् बृहती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् किन्तु कुछ मृदु एवं प्रकाश कुछ अधिक। इसके अन्य प्रभाव से {शरत् = स्वधा वै शरद् (श.१३.८.१.४), अन्नं वै शरद् (मै.१.६.६), यद्विद्योतते तच्छरदः रूपम् (श.२.२.३.८)} वे नियन्त्रक और प्रकाशक प्राणोपान रश्मियां व्यान

रश्मियों को अपने अन्दर धारण करने वाली शरद् रश्मियों एवं विभिन्न मास तथा छन्द रश्मियों को अपने अन्दर धारण तथा संपीडित करके व्यक्त अग्नि के परमाणुओं को द्विविध प्रकार से धारण करती हैं। इस प्रसंग में 'मित्र' का तात्पर्य 'अहन्' अर्थात् संयच्छन्द तथा 'वरुण' का अर्थ 'रात्रि' अर्थात् वियच्छन्द होता है। इससे स्पष्ट है कि घनीभूत छन्द रश्मियों को 'मित्र' तथा बिखरी हुई छन्द रश्मियों को 'वरुण' कहते हैं। इसके साथ ही 'मित्र' का अर्थ प्राण रश्मियां एवं 'वरुण' का अर्थ अपान व उदान रश्मियां ग्रहण करना सर्वज्ञात है। इसके अतिरिक्त हम किसी तारे के केन्द्रीय भाग को 'अहन्' तथा शेष भाग को 'रात्रि' भी लिख चुके हैं। जब तारों के बाहरी विशाल भाग से अथवा बाहरी अन्तरिक्ष से विभिन्न सूक्ष्म पदार्थ तारों के केन्द्रीय भाग अथवा शेष विशाल भाग में प्रविष्ट होते हैं किंवा विभिन्न छन्द आदि रश्मियां अंधकार अवस्था को त्यागकर प्रकाशित अवस्था को प्राप्त करने की ओर बढ़ती हैं, उस समय वे प्राणापानोदान रश्मियां सघन एवं बिखरी दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करना आरम्भ कर देती हैं। इसके साथ ही वे देव और असुर पदार्थ को भी अपने साथ संगत करती हैं, जिसके कारण आकर्षण-प्रतिकर्षण वा प्रक्षेपण सभी बलों का सम्यक् भाग विद्यमान रहता है। ये दोनों छन्द रश्मियां भी प्राणापानोदान के साथ-२ इन सबमें व्याप्त हो जाती हैं। इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न पदार्थ प्राणापानोदान के साथ-२ सघन और विरल छन्द रश्मियों में एवं तारों के केन्द्रीय एवं बाहरी भागों में व्याप्त होने लगते हैं, जिसके कारण एक स्तर पर अग्नि के परमाणुओं का निर्माण होने लगता है और दूसरे स्तर पर तारों का निर्माण होने लगता है। इस प्रसंग में उपर्युक्त दोनों प्रगाथों सहित कुल तीन प्रगाथों अर्थात् छन्द युग्मों का विधान महर्षि आश्वलायान ने भी किया है। उनका वचन है- "इन्द्र क्रतुं न आभर। अभि त्वा शूर नोनुमो बहवः सूरचक्षस इति प्रगाथाः।" (आश्व.श्रौ.६.५.१८)।।

उपर्युक्त दो छन्द रश्मियों में से प्रथम छन्द रश्मि में विद्यमान 'सूरचक्षसः' पदरूप रश्मि सूर्य का अतिक्रमण नहीं होने देती अर्थात् अग्नि के परमाणुओं वा सूर्यादि तारों के निर्माण में इस पदरश्मि की विशेष भूमिका है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्याख्यान भाग में वर्णित बृहती रश्मियां न केवल विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के उत्पन्न होते समय अपनी भूमिका निभाती हैं, अपितु कॉस्मिक पदार्थ को संघनित करके तारों वा नेब्यूलाओं के निर्माण के समय भी अपनी भूमिका निभाती हैं। इसी प्रकार अपान और उदान रश्मियां भी दोनों ही चरणों में अपनी भूमिका निभाती हैं। वस्तुतः विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज़, अन्य अनेकों मूलकण एवं विभिन्न आकाशीय पिण्डों वा विशाल लोकों, इन सबके निर्माण की प्रक्रिया स्थूल रूप से मूलतः एक समान होती है। प्राण, अपान एवं उदान रश्मियां न केवल दृश्य पदार्थ अपितु डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी के साथ भी विद्यमान होती हैं। ये ही प्राणादि रश्मियां सघन और विरल सभी प्रकार के पदार्थों के साथ सदैव भिन्न-२ प्रकार से संगत रहती हैं।।

५. 'मही द्यौः पृथिवी च नः' 'ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति' द्यावापृथिवीये शंसति द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे इयमेवेह प्रतिष्ठाऽसावमुत्र तद् यद् द्यावापृथिवीये शंसति प्रतिष्ठयोरेवैनं तत्प्रष्ठिापयति।।
'देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः' इति तेन सूर्यं नातिशंसति।।
यदु गायत्री च जगती च ते द्वे बृहत्यौ; तेन बृहतीं नातिशंसति।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से द्यावापृथिवीदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क-

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः।।१३।। (ऋ.१.२२.१३)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के कण

वा रश्मियां तेजस्वी और सवल होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों प्रकार के पदार्थ धारण एवं पोषण गुणों से युक्त होकर पारस्परिक संयोग-वियोग की प्रक्रियाओं को सव ओर से पूर्ण करते हैं। उस समय उस पदार्थ में विभिन्न प्रकार के कण और रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ तेजी से संघात करते हुए दौड़ती रहती हैं।

इसी समय दीर्घतमा ऋषि अर्थात् प्राण, उदान एवं सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से द्यावापृथिवीदेवताक एवं विराड् जगती छन्दस्क

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥१॥ (ऋ.१.१६०.१)

की उत्पत्ति होती है। दीर्घतमा ऋषि के विषय में १.१५.१ पठनीय है। इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों पदार्थ अतिक्रियाशील होकर दूर-२ तक गतिमान होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से नित्य कारण से युक्त धारण गुणसम्पन्न, क्रान्तदर्शी रहस्यमय ढंग से उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया को सहज वनाने वाले वल और दीप्ति से युक्त विद्युत् एवं आकाश तत्त्व विभिन्न कणों को अपने अन्दर धारण करते हैं। वे विद्युत् एवं आकाश तत्त्व ही प्रकाश वा सूर्यादि लोकों को उत्पन्न करते हैं।

ये दोनों द्यावापृथिवी देवता वाली छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न प्रकाशित व अप्रकाशित पदार्थों को अपने अन्दर प्रतिष्ठित करती हैं। इस कण्डिका में 'इह' से तात्पर्य सभी पदार्थों की वर्तमान अवस्था से है तथा 'अमुत्र' शब्द का तात्पर्य है आगामी सृष्टि प्रक्रिया में उत्पन्न सभी पदार्थ, इन दोनों ऋचाओं के प्रभाव से दोनों ही प्रकार के पदार्थ प्रभावित होते हैं, साथ ही इन छन्द रश्मियों में वे आश्रय पाते हैं॥

उपर्युक्त जगती छन्द रश्मि के अन्तिम पाद 'देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः' में 'सूर्य' पद होने से पूर्वोक्तवत् सूर्य का अतिक्रमण नहीं हो पाता अर्थात् अग्नि के परमाणु अथवा सूर्यादि तारों की उत्पत्ति में यह विशेष सहायक है। इसके प्रभाव से प्रकाश और ऊष्मा विशेषरूप से समृद्ध होते हैं॥

उपर्युक्त दोनों छन्द रश्मियों में से एक गायत्री तथा एक जगती छन्द रश्मि है। इन दोनों को मिलाकर दो वृहती छन्द रश्मियों का प्रभाव होता है, क्योंकि दोनों के कुल अक्षर चौवीस+अड़तालीस = वहत्तर अक्षर होते हैं। जो दो वृहती छन्द रश्मियों के वरावर हैं। जव ये दोनों छन्द रश्मियां साथ-२ उत्पन्न होती हैं। तव दो वृहती छन्द रश्मियों का प्रभाव उत्पन्न करके पूर्वोक्तवत् प्राणापानोदान के साथ मिलकर विभिन्न छन्द रश्मियों को संपीडित करके और आकार प्रदान करके अग्नि के परमाणुओं एवं तद्वत लोकों के निर्माण में भी सहायक होती हैं। इन दोनों छन्द रश्मियों के विषय में महर्षि आश्वलायन ने भी संकेत किया है। "मही द्यौः पृथिवी च नस्ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवा" (आश्व.श्रौ.६.५.१८)॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया के दौरान एक गायत्री एवं एक जगती रश्मि भी उत्पन्न होती है, जिसके कारण विभिन्न कणों एवं तरंगों का पारस्परिक संघात, ऊर्जा का उत्सर्जन एवं अवशोषण, आयनों का वनना एवं टूटना आदि प्रक्रियाएँ तीव्र हो उठती हैं। सम्पूर्ण पदार्थ में होने वाली हलचल तीव्र होने लगती है। रहस्यमय ढंग से उत्पन्न विद्युत् एवं आकाश तत्त्व दोनों ही विभिन्न कणों और तरंगों को धारण करते हैं। मूलकणों और विद्युत् चुम्वकीय तरंगों के निर्माण को धारण करते हैं। मूलकणों और विद्युत् चुम्वकीय तरंगों के निर्माण से लेकर विभिन्न तारों तथा अन्य आकाशीय पिण्डों तक निर्माण की प्रक्रिया में इन दोनों छन्द रश्मियों का योगदान रहता है। ये दोनों छन्द रश्मियां मिलकर दो वृहती जैसा प्रभाव उत्पन्न करके विभिन्न क्वान्टाज्, विभिन्न मूलकण एवं छोटे-वड़े सभी लोकों के वनते समय उनकी वाहरी परिधियों के निर्माण में सहायक होती हैं॥

६. 'विश्वस्य देवी मृचयस्य जन्मनो न या रोषाति न ग्रभत्'-इति द्विपदां शंसति॥ चितैधमुक्थमिति ह स्म वा एतदाचक्षते, यदेतदाश्विनम्; निर्ऋतिर्ह स्म पाशिन्युपास्ते, यदैव होता परिधास्यति; अथ पाशान् प्रतिमोक्ष्यामीति; ततो वा एतां

बृहस्पतिर्द्विपदामपश्यन्न या रोषाति न ग्रभदिति; तया निर्ऋत्याः पाशिन्या अधराचः पाशानपास्यत् तद् यदेतां द्विपदां होता शंसति निर्ऋत्या एव तत्पाशिन्या अधराचः पाशानपास्यति स्वस्त्येव होतोन्मुच्यते सर्वायुः सर्वायुत्वाय।।
सर्वमायुरेति य एवं वेद।।
मृचयस्य जन्मन इत्यसौ वाव मर्चयतीव; तेन सूर्यं नातिशंसति।।
यदु द्विपदा, पुरुषच्छन्दसं सा सर्वाणि च्छन्दांस्यभ्याप्ता; तेन बृहतीं नातिशंसति।।४।।

व्याख्यानम्- {मृचयस्य = (मर्च, शब्दार्थः = सुमार्ग पर लाना - तु.म.द.ऋ.भा.२.२३.७, साफ करना - आप्टेकोष), निर्ऋतिः = पाप्मा वै निर्ऋतिः (श.७.२.१.३), घोरा वै निर्ऋतिः (श.७.२.१.११)। अधराक् = पतनशील वा पतित (वै.को.उपाध्याय - नाग प्रकाशन)}

इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी वचन है- 'विश्वस्य देवीमृचयस्य जन्मनोऽनयारोषातिन ग्रभदिति द्विपदा।' (आश्व.श्रौ.६.५.१८) यह छन्द द्विपाद विराड् गायत्री है, इसके लिए देखें पिंगलछन्दशास्त्र ३.१६ पर हलायुध भट्ट की वृत्ति। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से होने वाले प्रभाव के विषय में अगली कण्डिका में विस्तार से वर्णन किया गया है।।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि आश्विन अर्थात् प्राणापानोदान का वल, जो विभिन्न छन्द आदि रश्मियों को वांधता व संपीडित करता है, वह अनेक ऋचाओं के साथ संगत होने से उक्थ कहलाता है। यह वल विभिन्न छन्द रश्मियों, जो तेजस्वी पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए प्रदीप्त ईन्धन के समान कार्य करती हैं, को उचित क्रमानुसार संचित करता है। दूसरी ओर यह वल वाधक रश्मियों को नष्ट करने **के लिए चिता के समान कार्य करता है अर्थात् यह उन वाधक रश्मियों को आकर्षित करके उन्हें नष्ट कर देता है या नियन्त्रित कर लेता है।** यहाँ महर्षि कहते हैं कि इस सृष्टि में सर्वत्र निर्ऋति अर्थात् वाधक असुर तत्त्व रश्मियां विद्यमान रहती हैं। वे अपने पाशों अर्थात् वन्धन शक्ति के द्वारा विभिन्न तरंगों वा कणों को अपने प्रतिकर्षण वा प्रक्षेपक वल के द्वारा संयोग आदि क्रियाओं से विमुख कर देती हैं। वड़े-२ लोकों में विस्फोट भी कर सकती हैं। इस सृष्टि प्रक्रिया में विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की श्रृंखला में जव परिधानीय छन्द रश्मि उत्पन्न होती है, उसी समय असुर रश्मियों का प्रहार होता है। परिधानीय छन्द रश्मि के विषय में पूर्व में अनेकत्र हम वर्णन कर चुके हैं। यहाँ एक गम्भीर वैज्ञानिक रहस्य यह है कि असुरतत्त्व के आक्रमण का समय यहाँ स्पष्ट किया गया है। **जब परिधानीय छन्द रश्मि पर असुर रश्मियों का तीव्र प्रहार होता है किंवा कोई परमाणु किसी अन्य परमाणु के साथ संयोगार्थ आगे बढ़ते हुआ उसे निकटता से घेर कर चक्राकार घूमना प्रारम्भ करता है, उस समय ही असुर रश्मियां उस पर तीक्ष्ण प्रहार करके उस परमाणु को दूर फेंक सकती हैं** तथा परिधानीय छन्द रश्मि को दूर हटाकर उसके द्वारा धारण करने योग्य छन्द रश्मियों को विखेर सकती हैं। इस अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए बृहस्पति ऋषि अर्थात् {बृहस्पतिः = एष (प्राणः) उ एव बृहस्पतिः (श. १४.४.१.२२), अथ यस्सोऽपान आसीत् स बृहस्पतिरभवत् (जै.उ.२.१.१.४)} प्राणापान से उपर्युक्त द्विपदा छन्द रश्मि उत्पन्न हो जाती है। यह छन्द रश्मि संयोगार्थ गमन करते हुए विभिन्न प्राणों अथवा कणों को न तो चोट पहुँचाती है, और न उन्हें अपने साथ संयुक्त ही करती है। इसका तात्पर्य यह है कि यह द्विपदा छन्द रश्मि संयोज्य रश्मि वा कणों को कोई वाधा नहीं पहुँचाती है। तव यह रश्मि क्या करती है? इस विषय में ऋषि लिखते हैं कि उपर्युक्त प्रक्रिया में परिधानीय छन्द रश्मियों किंवा परमाणुओं के ऊपर जैसे ही असुर रश्मियां पतित होती अर्थात् आक्रमण करती हैं, वैसे ही यह द्विपदा छन्द रश्मि प्राणापान से उत्पन्न होते ही असुर रश्मियों के वाधक पाशों को निराकृत कर देती है और जव उस निर्ऋति रूप असुर तत्त्व के वाधक पाश निराकृत हो जाते हैं, उस समय जो संयोग प्रक्रिया होने वाली थी, सम्यक् रूपेण सम्पन्न हो जाती है। इसके कारण वे संयोज्य पदार्थ सर्वायु हो जाते हैं अर्थात् उनका वांछित संयोग और उनसे उत्पन्न विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ क्षणिक या अल्पायु न होकर पूर्ण आयु को प्राप्त करते हैं। जव कहीं ब्रह्माण्ड में इस द्विपदा छन्द रश्मि की इस प्रकार उत्पत्ति होती है, उस समय पूर्ण आयु अर्थात् दीर्घायु कण और रश्मियों की उत्पत्ति होती है। अल्पायु अर्थात् क्षणिक आयु वाले कणों वा रश्मियों की नहीं और वह संयोगादि प्रक्रिया भी दीर्घकाल तक निरापद रूप से चलती

रहती है।।+।।

इस द्विपदा छन्द रश्मि में 'मृचयस्य जन्मनः' पदों की विद्यमानता से विभिन्न उत्पन्न पदार्थ सतत गतिशील रहने में सहयोग प्राप्त करते हैं। वे पदार्थ (अर्थात् संपीडित छन्द रश्मियां) इतनी तीव्र गति करते हैं कि वे अग्नि के परमाणुओं का स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् वे शुद्ध, तेजस्वी और सतत गतिशील होने वाले बनकर सूर्य अर्थात् अग्नि का ही रूप धारण कर लेते हैं। इस कारण महर्षि ने इनको सूर्य का अनतिक्रमण करने वाला बताया है।।

यह द्विपदा छन्द रश्मि पुरुष के समान है, इस विषय में अन्य ऋषियों ने कहा है- पुरुषो द्विपदाः (तै.ब्रा.३.६.१२.३), प्रतिष्ठा द्विपदा (जै.ब्रा.२.५८), द्विपाद्यजमानः (तै.सं.५.३.८.३; मै.१.५.१०), द्विपाद्वै पुरुषः (ऐ.४.३; तै.ब्रा.३.६.१२.३) इसका तात्पर्य यह है कि यह छन्द रश्मि वृषारूप होकर अन्य सभी छन्द रश्मियों में व्याप्त हो जाती है, जिसके कारण सभी रश्मियां इस सृष्टि यज्ञ में अपनी आहुतियाँ देने के लिए तत्पर हो उठती हैं। ध्यातव्य है कि पूर्व में हमने कहा कि यह द्विपदा छन्द रश्मि न किसी को चोट पहुँचाती है और न अपने साथ बाँधती है, अतः यहाँ इस छन्द रश्मि का अन्य छन्द रश्मियों के साथ व्याप्त होना बाधाजनक नहीं, बल्कि उनकी क्रियाओं को अनुकूल बल प्रदान करने के लिए ही होता है, क्योंकि यह द्विपदा रश्मियां सबमें व्याप्त हो जाती हैं, इसलिए यह बृहती छन्द रश्मि का भी प्रभाव उत्पन्न करती है। जैसा कि बृहती के विषय में एक अन्य महर्षि का कथन है- बृहती (छन्दः) बृहती बृंहतेर्वृद्धिकर्मणः (दै.३.११), बृहती मर्या ययेमान् लोकान् व्यापामेति तद् बृहत्या बृहत्त्वम् (तां.७.४.३) इससे यह सिद्ध होता है कि ये द्विपदा छन्द रश्मियां अग्नि आदि के परमाणु अथवा लोकों के निर्माण में पूर्वोक्त बृहती छन्द रश्मि के समान अपना योगदान देती हैं। इस कारण इन रश्मियों को बृहती का अनतिक्रमण करने वाली कहा है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न क्वान्टाज्, मूलकण और लोकों आदि के निर्माण में जब संपीडन क्रिया प्रारम्भ होती है, तब प्राण, अपान, उदान रश्मियां दो प्रकार से कार्य करती हैं- १. ये रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को संपीडित करके बाँध लेती हैं। २. संपीडित छन्द रश्मियों में सबको आवृत्त करके धारण करने वाली छन्द रश्मि जैसे ही उत्पन्न होकर अपना कार्य प्रारम्भ करती है अथवा जब दो या दो से अधिक कण अथवा आयन जैसे ही परस्पर संयुक्त होने के लिए एक-दूसरे का परिक्रमण करना प्रारम्भ करते हैं अथवा एक कण दूसरे का परिक्रमण करना प्रारम्भ करता है, वैसे ही वहाँ विद्यमान डार्क एनर्जी की रश्मियां उस छन्द रश्मि अथवा परिक्रमण करते हुए संयोज्य कण पर अपना प्रक्षेपक प्रहार करती हैं, जिससे वह संयोग बाधित हो सकता है। इस प्रहार को रोकने के लिए प्राणापानोदान तत्काल ही एक छन्द रश्मि को उत्पन्न करके डार्क एनर्जी के प्रहार को रोक देते हैं।

इस प्रकार ये प्राणापानोदान रश्मियां सृष्टि की प्रत्येक क्रिया में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और इनसे उत्पन्न छन्द रश्मि अन्य छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें तेज और बल से सम्पन्न करने के साथ-२ बाँधे भी रखती है। इस छन्द रश्मि की सहायता से बने हुए कणों की आयु दीर्घ होती है।।
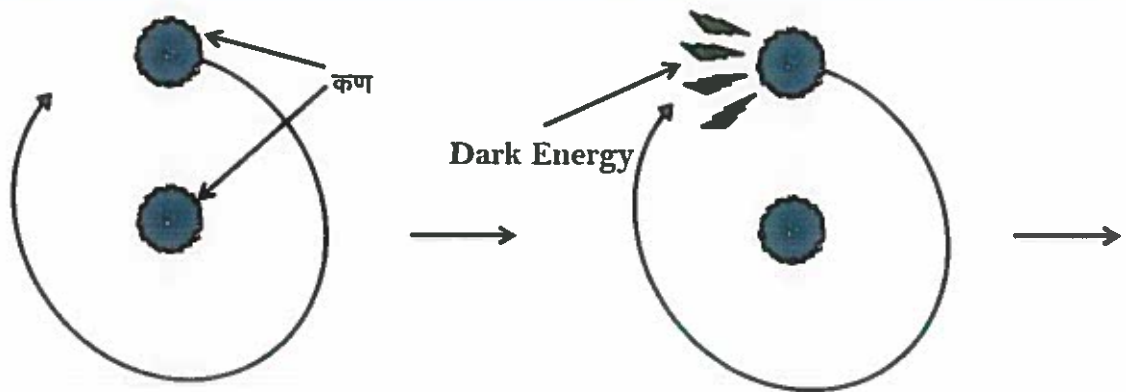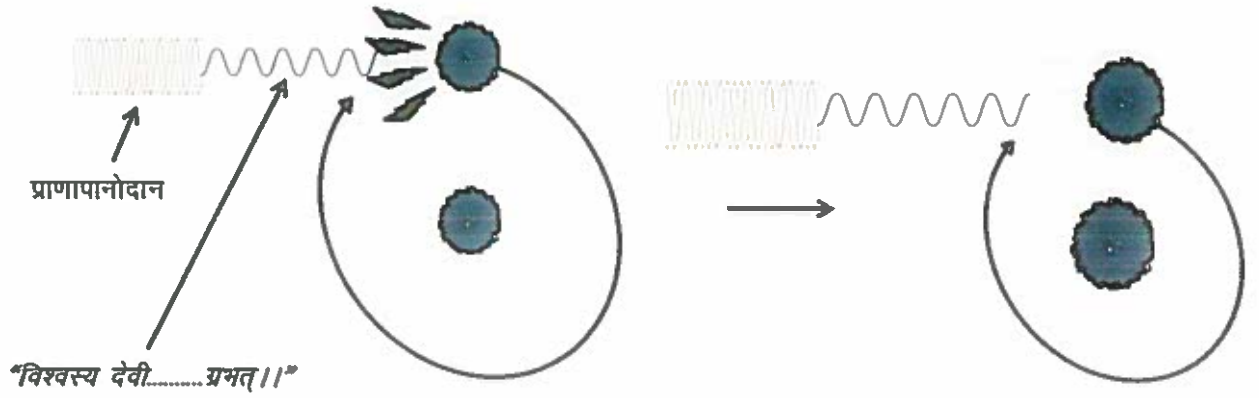
चित्र १७.१ मूलकणों के संयोग की प्रक्रिया एवं उसमें डार्क एनर्जी की वाधा प्राण-अपान और उदान द्वारा उसका निराकरण।

इति १७.४ समाप्तः

ॐ अथ १७.५ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. ब्राह्मणस्पत्यया परिदधाति; ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मण्येवैनं तदन्ततः प्रतिष्ठापयति।।
'एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे' इत्येतया परिदध्यात् प्रजाकामः पशुकामः।।
'बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तः' इति प्रजया वै सुप्रजा वीरवान्।।
'वयं स्याम पतयो रणीयाम्' इति।।
प्रजावान् पशुमान् रयिमान् वीरवान् भवति, यत्रैवं विद्वान् एतया परिदधाति।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं कि जिस परिधानीय छन्द रश्मि की चर्चा पूर्व खण्ड में की गई थी और जिस परिधानीय छन्द रश्मि पर असुर तत्त्व के आक्रमण के समय पूर्वोक्त द्विपदा छन्द रश्मि की अभिक्रिया बतलाई गई थी, वह परिधानीय छन्द रश्मि ब्रह्मणस्पतिदेवताक होती है। {ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः (कौ.ब्रा.८.५), प्राणापानौ ब्रह्म (गो.पू.२.११)} यहाँ प्राणापान ही बृहस्पति एवं ब्रह्मणस्पति कहलाते हैं; ये प्राणापान इस परिधानीय छन्द रश्मि द्वारा आवृत्त छन्द रश्मियों के अन्दर विद्युत् की उत्पत्ति कर देते हैं। यहाँ ब्रह्मणस्पतिदेवताक किसी छन्द रश्मि का उल्लेख नहीं है, इसका उल्लेख आगे छठी कण्डिका से प्रारम्भ होता है। इस कारण इसके प्रभाव व स्वरूप आदि की चर्चा हम वहीं करेंगे।।

उपर्युक्त ब्रह्मणस्पतिदेवताक, जिसकी विशेष चर्चा आगे की जाएगी, परिधानीय छन्द रश्मि की उत्पत्ति के पश्चात् एक विशेष छन्द रश्मि की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जब विभिन्न प्रकार के परमाणुओं तथा द्रष्टव्य अन्य कणों वा तरंगों की उत्पत्ति की आवश्यकता होती है, इस स्थिति में वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से बृहस्पतिदेवताक -

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।६।। (ऋ.४.५०.६)

निचृत् त्रिष्टुप् छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसके छान्दस एवं दैवत प्रभाव से प्राणापान एवं सूत्रात्मा वायु तीक्ष्ण बल एवं तेज से सम्पन्न होते हैं, जिसके कारण वे विभिन्न छन्द आदि पदार्थों को तीव्र बल के साथ संपीडित करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान और सूत्रात्मा वायु विभिन्न दिव्य पदार्थों के निर्माण के लिए उनकी बाधक विभिन्न रश्मियों की शक्तियों को प्रतिबन्धित करके उन दिव्य पदार्थों के पालन के लिए अपनी वज्ररूप आहुतियों को विशेषरूप से धारण करते हैं, जिसके कारण वे दिव्य पदार्थ विभिन्न प्रकार की गति एवं कम्पनयुक्त प्राण रश्मियों से सम्पन्न होकर अनेक मरुद् आदि रश्मियों के पालक होते हैं। इस छन्द रश्मि के तृतीय पाद के प्रभाव से विभिन्न प्राणसम्पन्नता एवं तत्त्वों के निर्माण की प्रक्रिया तीव्र होती है और इसके चौथे पाद के निर्माण से वे छन्द रश्मियां विभिन्न मरुदादि रश्मियों के साथ संयुक्त होकर उनका पालन एवं रक्षण करती हैं।।+।।+।।

जब इस निचृद् त्रिष्टुप् छन्द रश्मि से पूर्वोक्तवत् विभिन्न छन्द रश्मियों को आच्छादित किया जाता है, उस समय विभिन्न प्रकार के पदार्थ कण वा तरंगें, छन्द रश्मियां अथवा द्रष्टव्य कण आदि पदार्थ, विभिन्न मरुद् रश्मियां और सबको कंपाने एवं गति देने वाली विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां सक्रिय हो उठती हैं, साथ ही ये सब पदार्थ इस परिधानीय छन्द रश्मि के प्रभाव से तेजी से उत्पन्न भी होने लगते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज्, विभिन्न मूलकण, छन्द रश्मियां और विशाल लोकों के निर्माण में निचृत् त्रिष्टुप् छन्द रश्मि का विशेष योगदान रहता है। यह छन्द रश्मि विद्युत् को उत्पन्न करने में विशेष भूमिका निभाती है। इसके कारण इन सभी पदार्थों और विभिन्न प्राथमिक प्राणों की भी सक्रियता तेजी से बढ़ती है, जिसके कारण विभिन्न कणों एवं तरंगों का निर्माण अपेक्षाकृत तेजी से होने लगता है।।

२. 'बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्' इत्येतया परिदध्यात्, तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामोऽतीव वाऽन्यान् ब्रह्मवर्चसमर्हति।।
द्युमदिति द्युमदिव वै ब्रह्मवर्चसं विभातीति, वीव वै ब्रह्मवर्चसं भाति।।
'यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात' इति, दीदायेव वै ब्रह्मवर्चसम्।।
'तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्' इति, चित्रमिव वै ब्रह्मवर्चसम्।।
ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवति, यत्रैवं विद्वानेतया परिदधाति।।
तस्मादेवं विद्वानेतया परिदध्यात्।।
ब्राह्मणस्पत्या; तेन सूर्यं नाति शंसति।।
यदु त्रिष्टुभं त्रिः शंसति; सा सर्वाणि च्छन्दांस्यभ्याप्ता; तेन बृहतीं नाति शंसति।।

व्याख्यानम्- प्रथम कण्डिका में जिस परिधानीय ऋचा का उल्लेख है, वह ऋचा गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान के संयुक्त रूप से ब्रहस्पतिदेवताक एवं भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु।
यद् दी॒दय॒च्छव॑स ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्।।१५।। (ऋ.२.२३.१५)

की उत्पत्ति होती है। इसके देवत तथा छान्दस प्रभाव से प्राणापान एवं सूत्रात्मा वायु विभिन्न लोकों या कणों के निर्माण में विशेष सक्रिय होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से ये प्राणापान आदि रश्मियां एवं सूत्रात्मा वायु, जो अपने कारणरूप मनस्तत्त्व में प्रकट होते हैं, विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति में नाना क्रियाएं करने वाले पूर्वोक्त विट् सूक्त रश्मिसमूह के अन्दर अपना तेज, क्रियाशीलता और बल प्रवाहित करके उन्हें नाना रूपों में प्रकाशित करते हैं, जिसके कारण वे विट् सूक्त रश्मियां अनेक प्रकार के विचित्र परमाणुओं को जन्म देती हैं।

यह छन्द रश्मि ही परिधानीय कहलाती है, इसका तात्पर्य यह है कि यह छन्द रश्मि अन्य रश्मियों को अपने तीक्ष्ण तेज और बल के द्वारा आच्छादित कर देती है। इस छन्द रश्मि में 'अति' शब्द की विद्यमानता से यह अन्य छन्द रश्मियों की अपेक्षा अधिक तेज और बल से युक्त होती है। इस छन्द रश्मि को परिधानीय ऋचा बतलाते हुए महर्षि आश्वलायन कहते हैं- "बृहस्पते अति यदर्यो अर्हादिति परिधानीया".......(आश्व.श्रौ.६.५.१६)।।

यद्यपि हम पूर्वोक्त छन्द रश्मि का सम्पूर्ण प्रभाव दर्शा चुके हैं, पुनरपि इस कण्डिका में महर्षि के मत को दृष्टिगत रखते हुए अतिरिक्त प्रभाव की चर्चा हम करते हैं। इस पाद में विद्यमान 'द्युमत्' पद विभिन्न छन्द रश्मियों के ब्रह्मवर्चस तेज को समृद्ध करता है, ब्रह्मवर्चस के विषय में ऋषियों का कथन है- ब्रह्मवर्चसं वै रथन्तरम् (सोमः) (तै.ब्रा.२.७.१.१), रस इव खलु वै ब्रह्मवर्चसम् (तै.सं.२.१.७.२-३), सोमो वै शुक्रो ब्रह्मवर्चसम् (मै.१.६.८) इन वचनों का तात्पर्य है कि ऐसी सोम वा मरुद् रश्मियां, जो शुक्ल तेज से युक्त होकर विभिन्न परमाणुओं वा छन्द रश्मियों को तारने वाली होती हैं। इसके साथ ही वे सोम अर्थात् मरुद् रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों का सार वा रसरूप होती हैं, ये छन्द रश्मियां {वीव = पक्षीव (म.द.ऋ.भा.७.५५.२), विरिति शकुनिनाम वेतेर्गतिकर्मणः (निघं.२.६)} शकुनि अर्थात् शक्तिशाली परन्तु सम्यक् और नियन्त्रित वेगवाली होकर स्वयं प्रकाशित होती हैं एवं अन्य

पदार्थों, विशेषकर छन्द आदि रश्मियों को भी प्रकाशित करती हैं। इन छन्द रश्मियों की गति भी पक्षी के समान होती है। हमने इस अध्याय के प्रथम खण्ड में प्राणापानोदान की संयुक्त गति भी इसी प्रकार दर्शायी है, उसी प्रकार गति की प्रक्रिया को यहाँ जानना चाहिए।।

यहाँ उपर्युक्त छन्द रश्मि के तृतीय पाद के विषय में अतिरिक्त विचार करते हैं कि इसमें विद्यमान जो ''दीदयत्'' पद है, वह भी 'ब्रह्मवर्चस' अर्थात् पूर्वोक्त सोम रश्मियों को प्रकाशित करता है। हमारे मत में ब्रह्मवर्चस पद से प्राणापानोदान के तेज का भी ग्रहण करना चाहिए। इससे सिद्ध हुआ कि तृतीय पाद का यह पद प्राणापानोदान रश्मियों को भी अधिक सशक्त बनाने का कार्य ही करता है।।

अब उपर्युक्त छन्द रश्मि के चतुर्थ पाद पर महर्षि के दृष्टिकोण पर अतिरिक्त विचार करते हैं, यह उपर्युक्त ब्रह्मवर्चस इस पाद में विद्यमान ''चित्रम्'' पद पूर्वोक्त सोम, मरुद् रश्मियों एवं प्राणापानोदान रश्मियों को विचित्र रूप से गतिशील एवं क्रियाशील बनाता है। यद्यपि इन सूक्ष्म रश्मियों का व्यवहार, गति और तेज सब आश्चर्यजनक ही होते हैं। उस पर यह 'चित्रम्' पद इनको और भी आश्चर्यजनक भी बनाता है।।

जब यह छन्द रश्मि अन्य छन्द रश्मियों को सब ओर से धारण करके आच्छादित करती है {यशः = अन्ननाम (निघं.२.७), पशवो यशः (श.१२.८.३.१), यशो वै सोमो राजा (ऐ.१.१३), यशो वै हिरण्यम् (ऐ.७.१८), यशो देवाः (श.२.१.४.६)} उस समय वे पूर्वोक्त तेजस्वी सोम वा मरुद् रश्मियां एवं प्राणापानोदान रश्मियां, विशेषरूप से प्रकाशित होकर अपने संयोज्य गुणों को व्यापक विस्तार देने में समर्थ होती हैं। जिससे विभिन्न प्रकार के लोकों एवं परमाणुओं के बनने की प्रक्रिया तीव्र हो उठती है। इस कारण इस छन्द रश्मि द्वारा अन्य रश्मियों का परिधारण आवश्यक होता है।।+।।

यह छन्द रश्मि ब्रह्मणस्पतिदेवताक होने से और इसमें 'बृहस्पति' शब्द विद्यमान होने से प्राणापानोदान एवं सूत्रात्मा वायु को विशेष तेजस्वी और सक्रिय करके सूर्य का पूर्वोक्तवत् अनतिक्रमण करने में सहायक होती है अर्थात् अग्नि के परमाणु एवं सूर्यादि लोकों के निर्माण में इस छन्द रश्मि का 'बृहस्पति' शब्द रूप रश्मि विशेष योगदान देती हैं। ब्रह्मणस्पति के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- ''एष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एष (सूर्यः) तपति'' (श.१४.१.२.१५) इससे संकेत मिलता हैं कि इस छन्द रश्मि में विद्यमान 'बृहस्पति' शब्द सूर्य अर्थात् अग्नि के परमाणु तथा सूर्यादि लोकों के निर्माण में विशेष सहायक होता है, उसी को यहाँ सूर्य का अनतिक्रमण करना कहा गया है।।

१.१३.६ में महर्षि ने कहा है- 'तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्'। इसका आशय यह है कि उपर्युक्त परिधानीय त्रिष्टुप् छन्द रश्मि तीन बार आवृत्ति होती है। इसके तीन बार आवृत्त होने से कुल १३५ अक्षर हो जाते हैं, जिसके कारण इस छन्द रश्मि के इन सभी अक्षरों में सभी प्रकार छन्द रश्मियां समाहित होती हैं, जिनमें से बृहती छन्द रश्मि भी एक है, उसी कारण महर्षि कहते हैं कि यह त्रिष्टुप् छन्द रश्मि बृहती का अतिक्रमण नहीं करती है अर्थात् इसमें बृहती के विद्यमान होने से प्राणापानोदान एवं सूत्रात्मा वायु के साथ मिलकर परमाणुओं एवं लोकों के निर्माण में पूर्वोक्तवत् अपनी महती भूमिका निभाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न विद्युत् तरंगों के क्वान्टाज़्, विभिन्न मूलकणों एवं लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में एक भुरिक् त्रिष्टुप् रश्मि अन्य विभिन्न छन्द रश्मियों को चारों ओर से घेरकर उन्हें संपीडित करने के साथ-२ तेजस्वी एवं विभिन्न बलों से युक्त बनाने में सहायक होती है। इसके प्रभाव से वे छन्द रश्मियां अनेक प्रकार के गति एवं व्यवहारों से युक्त होकर परस्पर एक-दूसरे से संयुक्त होने की प्रवृत्ति से युक्त होने में भी सहयोग प्राप्त करती हैं।।

३. गायत्र्या च त्रिष्टुभा च वषट्कुर्यात्।।
ब्रह्म वै गायत्री, वीर्यं त्रिष्टुब्; ब्रह्मणैव तद्वीर्यं संदधाति।।
ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी वीर्यवान् भवति, यत्रैवं विद्वान् गायत्र्या च त्रिष्टुभा च

वषट्करोति ।।
अश्विना वायुना युवं सुदक्षोभा पिबतमश्विनेति ।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त परिधानीय छन्द रश्मि की उत्पत्ति के पश्चात् एक गायत्री व एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि से वषट्कार किया जाता है। वषट्कार के विषय में एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है- "वषट्कारो वै यज्ञस्य प्रतिष्ठा" (तै.सं.७.५.५.३)। इन दोनों ऋचाओं को आचार्य सायण ने याज्या संज्ञक कहा है, वह उपयुक्त ही है, क्योंकि याज्या संज्ञक रश्मियां यजन वा सृजन प्रक्रिया का आधार होती हैं। यहाँ महर्षि ने इन ऋचाओं के बारे में कुछ भी संकेत नहीं किया है, सिवा इनके छन्द के। क्योंकि याज्या संज्ञक रश्मियां योषारूप होकर अन्य छन्द रश्मियों को अपने साथ धारण करती हैं, इस कारण भी इनके याज्या होने की बात समीचीन है, क्योंकि महर्षि ने अन्यत्र इसी ग्रन्थ में लिखा है- "यो धाता स वषट्कारः" (ऐ.३.४७)। आगामी एक कण्डिका में इन दोनों ऋचाओं की चर्चा स्पष्ट की गई है, वहीं हम इन पर विचार करेंगे।।

उपर्युक्त दोनों छन्द वाली याज्या वा वषट्कार संज्ञक ऋचाओं की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इनमें से गायत्री नामक छन्द रश्मि ब्रह्मस्वरूप है अर्थात् यह प्राणापान रश्मियों से विशेषरूपेण सम्बन्धित होती है, साथ ही यह अत्यन्त व्यापक क्षेत्र में भी होती है। इस विषय में महर्षि ने अन्यत्र कहा है- "वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः" (ऐ.३.८) इस कारण 'ब्रह्म' शब्द से हमारा प्राणापान ग्रहण करना सर्वथा समीचीन है। उधर त्रिष्टुप् छन्द रश्मि को महर्षि ने वीर्यस्वरूप कहा है, इधर महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं- "वीर्यं वै वज्रः" (श.७.३.१.१६) एवं "वज्रो वषट्कारः" (श.१.३.३.१४)। इन दोनों ही वचनों की संगति 'वीर्यं त्रिष्टुप्' से होती है। इन दोनों छन्द रश्मियों के याज्या रूप में उत्पन्न होने से प्राणापान रश्मियों के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों के तेज और बल को सम्यग् रूप से धारण किया जाता है किंवा वे प्राणापान स्वयं तेजस्वी होकर सबको तेजस्वी बनाते हैं, साथ ही बलवान् भी।।

जब इन गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की याज्यारूप में उत्पत्ति होती है, उस समय प्राणापानोदान तेजस्वी होकर विभिन्न पदार्थों के अन्दर तेज, बल एवं संयोज्यता, साथ ही उत्पादकता आदि गुणों की उत्पत्ति होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि किसी भी चरण में याज्या संज्ञक छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों, यहाँ तक कि परिधानीय छन्द रश्मि के पश्चात् ही उत्पन्न होती हैं। इस कारण ये इस प्रकरण में उत्पन्न अंतिम छन्द रश्मियां हैं।।

उपर्युक्त तीन कण्डिकाओं में वर्णित गायत्री एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां कौनसी हैं? इसको यहाँ स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इनमें से एक रश्मि प्रस्कण्व ऋषि अर्थात् प्रकृष्ट रूप से सक्रिय सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न अश्विनौ-देवताक एवं निचृत् गायत्री छन्दस्क-

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः ।।१५।। (ऋ.१.४६.१५)

इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से प्राणापानोदान रश्मियां एवं इनके सहयोग से निर्मित प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार के परमाणु तीक्ष्ण बल एवं तेज से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापानोदान रश्मियां अखण्ड और सुरक्षित क्रियाओं के द्वारा विभिन्न छन्दादि रश्मियों को एक स्थान-विशेष प्राप्त कराके उन्हें किसी कण वा लोक के निर्माण हेतु संपीडित करने के लिए सक्रिय होती हैं।

इनमें से दूसरी छन्द रश्मि विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से उत्पन्न अश्विनौ-देवताक और निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।
नासत्या तिरोअह्नयं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू।।७।। (ऋ.३.५८.७)

है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से पूर्वोक्त प्राणापानोदान के साथ-२ प्रकाशित एवं अप्रकाशित, दोनों

ही प्रकार के कण और भी अधिक तीक्ष्ण, तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से मिश्रण, अमिश्रण धर्म से युक्त, उत्तम वल सम्पन्न, परस्पर संगत, अहिंसक एवं उत्तम वल देने वाले प्राणापानोदान विभिन्न सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों को अवशोषित करके अन्य प्राथमिक प्राणों एवं छन्द रश्मियों के साथ युक्त करते हैं।

इन दोनों छन्द रश्मियों के याज्या स्वरूप होने से इन प्रभावों के साथ-२ उपर्युक्त कण्डिकाओं में वर्णित वषट्कार रूप प्रभाव भी उत्पन्न होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया के उपरान्त इस चरण की अंतिम दो रश्मियां, जो गायत्री एवं त्रिष्टुप् होती हैं, एक साथ उत्पन्न होती हैं। इनके उत्पन्न होने से विभिन्न क्वान्टाज्, मूलकण एवं विभिन्न लोकों आदि के निर्माण की प्रक्रिया, विशेषकर मूलकणों एवं क्वान्टाज् के निर्माण की प्रक्रिया अन्तिम चरण में पहुँचकर विशेषरूप से तीव्र हो उठती है। विभिन्न छन्द रश्मियों का संपीडन, प्रदीपन, और तेजन समृद्ध होने लगता है। विद्युत् आवेशित कणों की उत्पत्ति और उत्पादकता दोनों ही वढ़ जाते हैं। विभिन्न प्रकार के पारस्परिक संयोग की प्रक्रिया तीव्र होकर अनेक कणों का सृजन तेज होने लगता है।।

४. गायत्र्या च विराजा च वषट्कुर्याद्, ब्रह्म वै गायत्र्यन्नं विराड्; ब्रह्मणैव तदन्नाद्यं संदधाति।।
ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवति, ब्रह्माद्यमन्नमत्ति, यत्रैवं विद्वान् गायत्र्या च विराजा च वषट्करोति।।
तस्मादेवं विद्वान् गायत्र्या चैव विराजा च वषट्कुर्यात् प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुरुभा पिबतमश्विनेत्येताभ्याम्।।५।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि उपर्युक्त दो याज्या छन्द रश्मियों की उत्पत्ति का विकल्प वतलाते हुए कहते हैं कि गायत्री व त्रिष्टुप् के स्थान पर गायत्री और विराट् छन्दस्क रश्मियां याज्या वा वषट्कार के रूप में उत्पन्न होती हैं। जो उपर्युक्त याज्या व वषट्कार के कार्यों को सम्पन्न करती हैं, वहाँ भी पूर्ववत् गायत्री को ब्रह्म कहा गया है, जिसकी व्याख्या पूर्ववत् ही समझें। अन्य विराट् संज्ञक छन्दरश्मि अन्न संज्ञक होती है। इसका तात्पर्य यह है कि यह रश्मि संयोज्यता गुण को व्यापक रूप से समृद्ध करती है। इसके कारण विभिन्न छन्द रश्मियां एक-दूसरे के प्रति और भी अधिक आकर्षणशील होती हैं। इस प्रकार इन दोनों छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने पर प्राणापानोदान रश्मियों में संयोज्यता गुण और भी वढ़ जाता है, जिससे विभिन्न छन्द रश्मियों एवं परमाणुओं के मध्य संयोज्यता गुण समृद्ध होने लगता है।।

जव इस प्रकार गायत्री और विराट् छन्द रश्मियों की याज्यारूप में उत्पत्ति होती हैं, उस समय ब्रह्माण्ड में प्राणापानोदान रश्मियां पूर्ववत् ब्रह्मवर्चस और ब्रह्मयश से समृद्ध होती हैं। ब्रह्मवर्चस और ब्रह्मयश के स्वरूप को पूर्ववत् समझें। इनके उत्पन्न होने से प्राणापानोदान रश्मियां अवशोषण वा संपीडन करने योग्य छन्द रश्मियों को अवशोषित वा संपीडित करती हैं और ऐसा करने के लिए ये दोनों छन्द रश्मियां उन्हें विशेष वल और तेज प्रदान कराती हैं।।

वे गायत्री और विराट् छन्द रश्मियां कौनसी होती हैं? यह स्पष्ट करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इनमें से प्रथम छन्द रश्मि वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से अश्विनौ-देवताक और विराट् छन्दस्क

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे। तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः।।२।। (ऋ.७.६८.२)

उत्पन्न होती हैं। आर्य विद्वान् पं. आर्य मुनि ने इसका छन्द साम्नी निचृत् त्रिष्टुप् माना है, जवकि आचार्य सायण ने महर्षि ऐतरेय महीदास का अनुसरण कर इसको विराट् छन्दस्क माना है, हमारे मत

में यह छन्द रश्मि ३१ अक्षर की होने से साम्नी निचृत् त्रिष्टुप् नहीं हो सकती। हम पूर्व में अनेकत्र अवगत करा चुके हैं कि विराट् छन्द रश्मि ३३ अक्षर की होती है, इसके साथ ही हम इस आर्षमत से भी अनेकत्र अवगत हो चुके हैं कि एक या दो अक्षरों के भेद से छन्द परिवर्तित नहीं होता। इस कारण इस ३१ अक्षर वाली छन्द रश्मि को विराट् छन्दस्क मानना सर्वथा उचित है। इसके छान्दस एवं दैवत प्रभाव से प्राणापानोदान रश्मियों के साथ-२ प्रकाशित और अप्रकाशित कण एवं आकाश तत्त्व तीनों ही तेजस्वी और अधिक संयोजकता गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न नियम्य संयोज्य पदार्थों को नियन्त्रित करके विभिन्न मास एवं छन्द आदि रश्मियां गति, कान्ति एवं उत्पादन आदि गुणों से युक्त होकर अन्य अति सक्रिय एवं अप्रकाशित वायु अर्थात् असुर तत्त्वों से दूर रहकर सुशोभित होती हैं। दूसरी छन्द रश्मि वही गायत्री है, जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। अर्थात्

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः।।१५।। (ऋ.१.४६.१५)

छन्द रश्मि ही इस विराट् छन्द रश्मि के साथ याज्या रूप में उत्पन्न होती है। इस गायत्री छन्द रश्मि का प्रभाव हम पूर्व में लिख ही चुके हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त प्रक्रिया के विकल्प के रूप में एक पक्ष यह भी है कि गायत्री एवं त्रिष्टुप् के स्थान पर वही गायत्री एवं अन्य विराट् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। उस समय ब्रह्माण्ड में विभिन्न कणों और तरंगों की ऊर्जा अपेक्षाकृत कम होती है, परन्तु संयोग-वियोग एवं सृजन की प्रक्रिया अपेक्षाकृत तीव्र होती है। अन्य प्रभाव लगभग पूर्ववत् ही होता है।।

꧁ इति १७.५ समाप्तः ꧂

ॐ अथ १७.६ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. चतुर्विंशमेतदहरुपयन्त्यारम्भणीयम्।।
एतेन वै संवत्सरमारभन्ते, एतेन स्तोमांश्च च्छन्दांसि चैतेन सर्वा देवताः; अनारब्धं वै तच्छन्दोऽनारब्धा सा देवता, यदेतस्मिन्नहनि नारभन्ते; तदारम्भणीयस्यारम्भणीयत्वम्।।
चतुर्विंशस्तोमो भवति; तच्चतुर्विंशस्य चतुर्विंशत्वम्।।
चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासा, अर्धमासश एव तत्संवत्सरमारभन्ते।।

{चतुर्विंशः = चतुर्विंशं प्रातस्सवनम् (जै.ब्रा.२.२७६), चतुर्विंशो वै संवत्सरः (तां.४.१०.५), मुखं वा एतत्संवत्सरस्य चतुर्विंशम् (कौ.ब्रा.१६.८), यज्ञमुखं चतुर्विंशो यज्ञमुखमेव पुरस्ताद्दधाति (काठ.२१.१), योनिश्चतुर्विंशः (तै.सं.४.३.८.१; मै.२.८.४)। अहन् = अहरेव सविता (गो.पू.१.३३), अहर्वै पूर्वाह्णः (जै.ब्रा.२.६८)। स्तोमः = सप्त स्तोमाः (श.६.५.२.८), प्राणा वै स्तोमा (जै.ब्रा.२.१३३; श.८.४.१.३), छन्दांसि वै सर्वे स्तोमाः (जै.ब्रा.१.३३२)}

व्याख्यानम्- विभिन्न तारों के निर्माण की प्रक्रिया के साथ-२ सृष्टि के निर्माण के प्रथम चरण के विषय में हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं। पुनः उसी विषय पर प्रकारान्तर से चर्चा करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इन प्राथमिक चरणों में विशेषकर सृष्टि निर्माण के प्रथम चरण अर्थात् प्रातःसवन में २४ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनकी उत्पत्ति की प्रक्रिया के विषय में एक अन्य महान् तत्त्ववेत्ता ऋषि ने लिखा है- "अष्टाभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स चतसृभिः स एकयाष्टाभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स चतसृभिरष्टाभ्यो हिङ्करोति स चतसृभिः स एकया स तिसृभिः" (तां.३.८.१)। इस विषय पर भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने अपने याज्ञिक शैली में लिखा है-

स्तोत्रस्याधारभूते तृचे विद्यमानास्तिस्र ऋच आवृत्तिविशेषेण चतुर्विंशति संख्याका ऋचः कर्त्तव्याः। सा चावृत्तिस्त्रिभिः पर्यायैः संपद्यते। तत्र प्रथमे पर्याये प्रथमामृचं त्रिरभ्यस्य 'सः' उद्गाता ताभिस्तिसृभिर्गायेत्। द्वितीयामृचं चतुर्वारमभ्यस्य ताभिश्चतसृभिर्गायेत्। तृतीयाया ऋचः सकृदेव पाठो न चावृत्तिः एवं प्रथमपर्यायेऽष्टौ ऋचः संपद्यन्ते। ताभिः 'हिंकरोति' उद्गायेत्। द्वितीयपर्याये प्रथमायाः सकृत्पाठः द्वितीयायास्त्रिरावृत्तिः। तृतीयायाश्चतुरावृत्तिः, इत्येवमत्राप्यष्टौ संपद्यन्ते। तृतीयपर्याये प्रथमायाश्चतुरावृत्तिः, द्वितीयायाः सकृत्पाठः, तृतीयायास्त्रिरावृत्तिः, इत्येवमत्राप्यष्टौ संपद्यन्ते। तत्सर्वं मिलित्वा चतुर्विंशतिसंख्या ऋचो भवन्ति। सोऽयं चतुर्विंशतिस्तोमोऽनेन स्तोत्राणि यस्मिन्नहनि निष्पाद्यन्ते। यहाँ आचार्य सायण ने ताण्ड्य ब्राह्मण के उपर्युक्त प्रमाण को लेकर ऋचाओं को वार-२ आवृत्त करके गाने का विधान किया है, यह उनकी अपनी शैली है। इस पर भी इन्होंने इस बात का कोई संकेत नहीं किया कि किस ऋचा का गायन करना चाहिए। इतना अवश्य स्पष्ट है कि ये ऋचाएं एक न होकर तीन हैं। इस विषय में हमारा मत यह है कि उस प्राथमिक अवस्था में गायत्री, उष्णिक्, एवं अनुष्टुप् इन तीनों का दैवी स्वरूप ही उत्पन्न होता है। इन्हीं ३ छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने की प्रक्रिया का ही उपर्युक्त ब्राह्मण के उपर्युक्त उद्धरण में संकेत है। इन्हीं तीन छन्द रश्मियों के ग्रहण के पीछे क्या आधार है? इस विषय में हमारा मत है कि गायत्री छन्द का विशेष सम्बन्ध प्रातःसवन से होता है तथा अनुष्टुप् तथा गायत्री दोनों ही रश्मियां समान व्यवहार वाली होती हैं। यह बात हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं। इनमें भी सर्वप्रथम

गायत्री छन्द रश्मि उत्पन्न होती है, इस कारण कुछ ऋषियों ने कहा "एकच्छन्दः प्रातःसवनं" (ष.१.३) इस बात को स्वीकार करते हुए भी गायत्री वै सा यानुष्टुप् (कौ.ब्रा.१०.५, १४.२) हमें यह बतलाता है कि अनुष्टुप् का ग्रहण कभी-२ गायत्री के रूप में भी हो सकता है। उधर कुछ अन्य ऋषियों ने कहा है- गायत्रीं सर्वाणि छन्दांस्यपियन्ति (जै.ब्रा.१.२६०), गायत्री वाव सर्वाणि छन्दांःसि (तां.८.४.४), गायत्री वै प्राणः (श.१.३.५.१५) इससे सिद्ध है कि गायत्री से अन्य छन्द रश्मियों का ग्रहण हो सकता है परन्तु अन्य त्रिष्टुप् आदि रश्मियां प्रातःसवन से सम्बन्धित नहीं होती, इस कारण उनका यहाँ ग्रहण उचित नहीं है। उधर ग्रन्थकार ने अन्यत्र लिखा है- तस्य (प्राणस्य) उष्णिग्लोमानि (ऐ.आ.२.१.६) यदि यहाँ 'प्राण' शब्द का अर्थ गायत्री छन्द रश्मि ग्रहण किया जाए, तब उष्णिक् छन्द रश्मि को गायत्री छन्द रश्मियों का लोम मानकर इसकी उत्पत्ति भी गायत्री व अनुष्टुप् के साथ मानी जा सकती है। उधर महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- 'छन्दांसि वै लोमानि' (श.६.४.१.६) उधर अन्य ऋषि का कथन है- 'उष्णिगुत्स्नानात् स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वोष्णीषिणो वेत्यौपमिकम्' (दै.३.४) इन दोनों प्रमाणों से भी उष्णिक् एवं गायत्री का आच्छादक एवं आच्छादित सम्बन्ध प्रमाणित होता है। अब हम मूल विषय पर पुनः आते हैं कि ये तीन छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके विषय में ही ताण्ड्य ब्राह्मण के उपर्युक्त उद्धरण में इंगित किया गया है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम गायत्री छन्द रश्मि की तीन वार आवृत्ति, पुनः उष्णिक् छन्द रश्मि की चार वार आवृत्ति, तदुपरान्त अनुष्टुप् छन्द रश्मि की एक आवृत्ति होकर कुल आठ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस अष्टक के पश्चात् 'हिम्' रश्मि की उत्पत्ति होती है, इसके पश्चात् गायत्री की एकावृत्ति, उष्णिक् की ३ आवृत्ति और अनुष्टुप् की ४ आवृत्ति होती हैं। इस द्वितीय अष्टक के उपरान्त भी 'हिम्' रश्मि की उत्पत्ति होती है, इसके उपरान्त गायत्री की चार आवृत्ति, उष्णिक् की एक आवृत्ति और अनुष्टुप् की ३ आवृत्ति होती हैं। इस अन्तिम अष्टक के उपरान्त भी 'हिम्' रश्मि की उत्पत्ति होती है। ये 'हिम्' रश्मियां इन छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़े भी रखती हैं और उनकी सुरक्षा भी करती हैं, साथ ही ये रश्मियां प्राण और अपान रूप भी होती हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- हिङ्कारो वै गायत्रस्य प्रतिहारः (तां.७.१.४), वज्रो वै हिङ्कारः (कौ.ब्रा.३.२), रश्मय एव हिङ्कारः (जै.उ.१.११.१.६), अहोरात्राणि हिङ्कारः (ष.३.१) इस प्रकार कुल २४ छन्द रश्मियां 'हिम्' रश्मियों के साथ उत्पन्न होती हैं। इसलिए इस चरण को चतुर्विंश कहा जाता है। प्रकाश आदि के उत्पन्न होने का भी यह आरम्भिक चरण होने से इसे 'आरम्भणीय अहन्' कहा जाता है।।

इस प्रारम्भिक अहन् के साथ ही संवत्सर अर्थात् सृष्टि के निर्माण किंवा विशाल नेब्यूलाओं के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसी के साथ ही किंवा इसी प्रक्रिया के द्वारा सभी स्तोम अर्थात् प्राण रश्मियां, छन्द रश्मियां एवं अन्य दिव्य पदार्थ उत्पन्न होने लगते हैं अर्थात् किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति इसी चरण से प्रारम्भ होती है। यदि यह चरण प्रारम्भ न हो अर्थात् उपर्युक्त प्रक्रियानुसार २४ छन्द रश्मियां उत्पन्न न हों तो, किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति संभव नहीं है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मूल पदार्थ अधिकतम मनस्तत्त्व को ही उत्पन्न करने में सक्षम हो सकता है। इसी कारण उपर्युक्त २४ छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने को आरम्भिक चरण कहते हैं। यद्यपि इससे पूर्व मन और अहंकार की उत्पत्ति हो जाती है परन्तु छन्द आदि रश्मियों की उत्पत्ति और कदाचित् प्राथमिक प्राणों की उत्पत्ति इस चरण के पूर्व में ही होती है। यहाँ ध्यातव्य है कि उपर्युक्त गायत्री आदि ३ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की चर्चा की गई है, वह केवल दैवी गायत्री आदि के विषय में ही समझनी चाहिए। इन्हीं २४ छन्द रश्मियों को ही अर्थात् ३ छन्द रश्मियों की कुल ८-८ वार आवृत्ति को ही यहाँ स्तोम कहा गया है। **इन स्तोमों के बिना कुछ भी उत्पन्न होना संभव नहीं है।** इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी कहा है- "यदु ह किं च देवा कुर्वते स्तोमेनैव तत् कुर्वते" (श.८.४.३.२) क्योंकि ये स्तोम अर्थात् छन्द रश्मियां कुल २४ संख्या में हैं, उसी कारण उस अवस्था को भी 'चतुर्विंश' कहा जाता है।।+।।

संवत्सर में १२ मास और २४ अर्द्धमास होते हैं। इन २४ छन्द रश्मियों में २४ अर्द्धमासों का भी ग्रहण हो सकता है, ऐसा ऋषि का मत है। हम खण्ड २.३३-३४ में १२ निविद् रश्मियों को ही मास रश्मियां बतला चुके हैं। वे निविद् रश्मियां भी २४ भागों अर्थात् प्रत्येक के २-२ भाग होकर इन्हीं उपर्युक्त गायत्री आदि तीनों छन्द रश्मियों की कुल २४ आवृत्तियों के रूप में प्रकट हो सकती हैं। अक्षर रश्मियों के आधार पर यह विभाग सहज सम्भव है। निविद् रश्मियों के विषय में पूर्व में ही देखें। इस प्रकार महर्षि यहाँ यह कहना चाहते हैं कि सृष्टि प्रक्रिया इन अर्धमास रश्मियों की उत्पत्ति से प्रारम्भ

होती है। ये रश्मियां विभिन्न रश्मियों को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं। इनकी संख्या भी चौवीस होने से 'चतुर्विंश' नाम सार्थक होता है। यह प्रक्रिया अर्ध-अर्धमास क्रम से प्रारम्भ होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब सृष्टि प्रक्रिया अंधकार अवस्था में कुछ-२ अव्यक्त, जैसे ही प्रकाश रूप की ओर बढ़ती है, उस समय गायत्री, उष्णिक् एवं अनुष्टुप् छन्दों के दैवी रूप की ही उत्पत्ति सर्वप्रथम होती है। इसी समय इसी रूप में प्राथमिक प्राण रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। उस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, मूलकण व बड़ी छन्द रश्मियां उत्पन्न नहीं होती और न उसके पूर्व आकाश तत्त्व ही उत्पन्न होता है। ये तीनों दैवी छन्द रश्मियां तीन चरणों में आठ-२ बार आवृत्त होकर कुल चौवीस-२ के समूह में उत्पन्न होती हैं। **यही सृष्टि के प्रारम्भ की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।** इसके पूर्व मनस्तत्त्वादि की उत्पत्ति की प्रक्रिया अतिरहस्मयी तथा अव्यक्त ही होती है। इन छन्द वा प्राणादि रश्मियों की उत्पत्ति प्रक्रिया को भी किसी भी वर्तमान तकनीक से नहीं जाना जा सकता है। इन प्रत्येक चौवीस रश्मिसमूह के बीच तीन **'हिम्'** रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं, जो उन चौवीस छन्द रश्मियों को जोड़े रखती हैं।।

२. उक्थ्यो भवति; पशवो वा उक्थानि, पशूनामवरुद्ध्यै।।
तस्य पंचदश स्तोत्राणि भवन्ति, पंचदश शस्त्राणि; स मासो, मासश एव तत्संवत्सरमारभन्ते।।
तस्य षष्टिश्च त्रीणि च शतानि स्तोत्रियास्तावन्ति संवत्सरस्याहान्यहःश एव तत्संवत्सरमारभन्ते।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त २४ छन्द रश्मियों अथवा २४ अर्द्धमास रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् उक्थ्य अर्थात् विभिन्न प्रकार की मरुद् वा छन्द रश्मियां समृद्ध एवं बलवान् होने लगती हैं, पुनरपि वे सभी रश्मियां बहुत सक्रिय किंवा व्यक्त अवस्था में नहीं होती। इसी कारण एक वेदवेत्ता आचार्य का कथन है- "अयःह वा अस्यैषोऽनिरुक्तः प्राणो यदुक्थ्यः (काश.५.२.३.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)" यह उक्थ्य संज्ञक छन्द रश्मियां पशु संज्ञक भी होती हैं, इसका तात्पर्य यह है कि ये परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण करने के स्वभावयुक्त होती हैं अर्थात् वे एक-दूसरे को सतत आकर्षित करते हुए संयुक्त वा वियुक्त होने का प्रयास भी करती हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- पशवो वै हविष्मन्तः (श.१.४.१.६), गृहा हि पशवः (श.१.८.२.१४), यजमानः पशुः (तै.ब्रा.२.१.५.२) पूर्वोक्त २४ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति विभिन्न अन्य छन्दादि रश्मियों को न केवल उत्पन्न करने के लिए, अपितु उन्हें आकर्षण बल के द्वारा परस्पर संगत करने के लिए भी होती हैं। यहाँ इस कण्डिका का दूसरा आशय यह भी है कि सृष्टि के प्रथम चरण में ही ऐसे केन्द्र, जो प्रायः परोक्ष रूप में ही होते हैं, बनना प्रारम्भ हो जाते हैं। इन परोक्ष केन्द्रों में प्राण एवं अन्न संज्ञक रश्मियां परस्पर शनैः-२ संगत होने लगती हैं। धीरे-२ केन्द्र पशु रूप अर्थात् द्रष्टव्य वा व्यक्त रूप धारण करके विभिन्न कणों किंवा कणसमूहों का निर्माण करने लग जाते हैं और ये सभी केन्द्र, जो भविष्य में विभिन्न प्रकार के मूल कणों का रूप धारण करते हैं, भी परस्पर सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियों के द्वारा सूक्ष्मता से बन्धे रहते हैं। इसी को यहाँ पशुओं का अवरुद्ध करना कहा गया है, ये केन्द्र ब्रह्माण्ड में असंख्य मात्रा में होते हैं।।

उसी समय उन्हीं स्थानों पर १५ स्तोत्र एवं १५ शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। हम इन दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों के विषय में इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं। यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि वे स्तोत्र अथवा शस्त्र छन्द रश्मिसमूह कौन-२ से होते हैं परन्तु यह अवश्य है कि स्तोत्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह क्षत्ररूप होते हैं। इस कारण उनका बल अपेक्षाकृत तीव्र और भेदक होता है, जबकि शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह विड् रूप होकर क्षत्र रूप रश्मियों से मिलकर विभिन्न पदार्थों का निर्माण करते हैं। ये दोनों मिलाकर के कुल ३० छन्द रश्मिसमूह होते हैं। ये रश्मिसमूह मास रूप होते हैं, इस मास रूप रश्मि समूह के विषय में ऋषियों का कथन है- मासाः (संवत्सरस्य) कर्म्मकाराः (तै.ब्रा.३.११.१०.३), मासा वै रश्मयः (जै.ब्रा.१.१३७; तां.१४.१२.६), मासा वै यवाः (काठ.२१.१), मासा वै वाजा (तै.सं.२.५.७.४), मासा सन्धानानि (तै.सं.७.५.२५.१), मासा हवींःषि (श.११.२.७.३) इन

वचनों से सिद्ध होता है कि ये ३० छन्द रश्मियां स्वयं एक मास रूप रश्मि का व्यवहार करके एक परिणामी वल उत्पन्न करती हैं। उस वल के कारण ये रश्मियां अन्य छन्दादि रश्मियों को सम्यक् रूपेण धारण वा संगत करके स्वयं ही हवि रूप वनकर सृष्टि प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं। इस प्रकार एक-२ मास करके अर्थात् ऐसे ३० छन्द रश्मिसमूह उत्तरोत्तर उत्पन्न होकर सृष्टि प्रक्रिया को आगे वढ़ाते हैं, विशेषकर दिशा, तेजस्वी लोकों वा लोक समूहों के निर्माण की नींव रखी जाती है।।

{स्तोत्रियाः = ये स्तोत्राण्यर्हन्ति ते (म.द.य.भा.१६.२४)} यहाँ महर्षि कहते हैं कि इन पूर्वोक्त स्तोत्र रश्मिसमूहों में कुल ३६० छन्द रश्मियां होती हैं अर्थात् उन ३६० छन्द रश्मियों से १५ स्तोत्र रश्मिसमूह का निर्माण होता है। जैसा कि हम पूर्व में अवगत हो चुके हैं कि प्रारम्भ में २४ रश्मियां उत्पन्न होती हैं, और ये २४ रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों वा छन्द रश्मिसमूहों को उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार यहाँ ऋषि कहना चाहते हैं कि १५ स्तोत्र रश्मिसमूह को उत्पन्न करने के लिए २४×१५ रश्मियां आवश्यक होती हैं किंवा इन १५ स्तोत्र रश्मिसमूहों में कुल ३६० छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं और ये ३६० छन्द रश्मियां ही संवत्सर अर्थात् तेजस्वी लोकों के निर्माण का प्रारम्भ करती हैं। ये ३६० छन्द रश्मियां अहोरूप होती हैं अर्थात् ये प्रकाशरूप भी होती हैं और प्राण नामक प्राथमिक प्राण के समान स्वरूप वाली होकर विशेष आकर्षण आदि वलों से युक्त भी होती हैं। इस कारण संवत्सर के निर्माण की प्रक्रिया पूर्वोक्त २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियों और यहाँ उन्हीं से उत्पन्न ३६० छन्द रश्मियों में से एक-२ करके क्रमशः उत्पन्न होने से होती हैं।

इस कण्डिका पर हमारा अपना एक और मत है, वह इस प्रकार है- वे ३६० छन्द रश्मियां स्तोत्र रश्मियों का पूर्वोक्तानुसार निर्माण करती हैं, ये स्तोत्र रश्मियां और उनकी निर्मात्री ३६० छन्द रश्मियां इस ब्रह्माण्ड में सोम तत्त्व का निर्माण करती हैं। ये सोमतत्त्व अप्रकाशित और अपेक्षाकृत मन्दगामी वायु का रूप होता है। यह सोम वायु अप्रकाशित होते हुए भी सृष्टि प्रक्रिया में प्रकाशित होकर अग्नि के साथ मिलकर अनेक पदार्थों का निर्माण करता है। जैसा कि ऋषियों ने कहा है- "मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च सोमो रेतोधा अग्निः प्रजनयिता" (काठ.८.१०; क.७.६)। इन स्तोत्र संज्ञक रश्मियों के विषय में एक ऋषि ने कहा है- "क्षत्रं वै स्तोत्रम्" (ष.१.४) उधर अन्य ऋषि का कथन है- 'क्षत्रं सोम' (कौ.ब्रा.९.५) स्वयं ग्रन्थकार का भी २.३८ खण्ड में यही मत है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी कहा है- 'क्षत्रं वै सोमः' (श.३.४.१.१०) अव 'अहन्' शब्द पर विचार करते हैं। इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- अग्निर्वाऽहः सोमो रात्रिः (श.३.४.४.१५), वागेवाग्निः (श.३.२.२.१३) उधर ग्रन्थकार ने कहा है- 'वाग् हि शस्त्रम्' (ऐ.३.४४) इन वचनों से यह प्रमाणित होता है कि पूर्वोक्त स्तोत्र की भाँति शस्त्र संज्ञक रश्मियां उपर्युक्त ३६० छन्द रश्मियों से कुछ व्यवस्था वा क्रम भेद से निर्मित होती हैं और ये ३६० रश्मियां अहोरूप में प्रकट होकर अग्नि तत्त्व का निर्माण करती हैं। इस प्रकार अग्नि व सोम दोनों के निर्माण से संवत्सर अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया, विशेषकर विशाल लोकों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त २४ रश्मियों के उत्पन्न होने के पश्चात् विभिन्न मरुद् एवं छन्द रश्मियां उत्पन्न एवं सवल होने लगती हैं। उस समय ब्रह्माण्ड में विभिन्न वलों के उत्पन्न होने के कारण **छोटे-२ केन्द्रों का निर्माण होने लगता है, वे केन्द्र विभिन्न रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करते हुए संपीडन क्रिया के केन्द्र बन जाते हैं, जिसके कारण विभिन्न मूल कणों की उत्पत्ति और कालान्तर में इसी के समान प्रक्रिया से नेब्यूलाओं आदि की उत्पत्ति का बीजारोपण हो जाता है।** ये सभी केन्द्र भी सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा परस्पर एक-दूसरे से परोक्ष रूप से वंधे रहते हैं, इसी के कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थित विभिन्न लोक वा कण कभी पूर्णतया विखर कर वंधनमुक्त नहीं हो पाते। पूर्वोक्त सूक्ष्म २४ रश्मियां विभिन्न अनुपात एवं क्रम में मिलकर अग्नि और सोम दोनों ही प्रकार के पदार्थों किंवा दृश्य पदार्थ एवं डार्क मैटर-डार्क एनर्जी का निर्माण प्रारम्भ करती हैं। सोम पदार्थ उच्च ऊर्जा प्राप्त करने पर प्रकाशित पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है, परन्तु डार्क मैटर-डार्क एनर्जी प्रायः प्रकाशित वा दृश्य रूप प्राप्त नहीं कर सकती। इस चरण तक पूर्वोक्त गायत्री उष्णिक् एवं **अनुष्टुप रश्मियों की कुल ७२० बार आवृत्ति होती है। इतनी आवृत्ति होने के पश्चात् ही मूल कण तथा विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का निर्माण प्रारम्भ होता है।** इसके पश्चात् ही गुरुत्वाकर्षण वल एवं द्रव्यमान उत्पन्न होकर पदार्थ का संघनन करना प्रारम्भ करते हैं। ऐसा करने से ही विभिन्न अणुओं से लेकर विशाल लोकों तक की उत्पत्ति प्रक्रिया

प्रारम्भ होती है।।

३. अग्निष्टोम एतदहः स्यादित्याहुरग्निष्टोमो वै संवत्सरो; न वा एतदन्योऽग्निष्टोमादहर्दाधार; न विव्याचेति।।
स यद्यग्निष्टोमः स्यादष्टाचत्वारिंशास्त्रयः पवमानाः स्युश्चतुर्विंशानीतराणि स्तोत्राणि; तदु षष्टिश्चैव त्रीणि च शतानि स्तोत्रियास्तावन्ति संवत्सरस्याहान्यहःश एव तत्संवत्सरमारभन्ते।।
उक्थ्य एव स्यात् पशुसमृद्धो यज्ञः, पशुसमृद्धं सत्रं, सर्वाणि चतुर्विंशानि स्तोत्राणि प्रत्यक्षाद्ध्येतदहश्चतुर्विंशं; तस्मादुक्थ्य एव स्यात्।।६।।

व्याख्यानम्– यहाँ महर्षि कुछ अन्य विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि सर्ग प्रक्रिया किंवा प्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया इस चतुर्विंश स्थिति अर्थात् पूर्वोक्त २४ छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने से प्रारम्भ नहीं होती है, वल्कि अध्याय १४ में वर्णित अग्निष्टोम नामक स्थिति से प्रारम्भ होती है। क्योंकि अग्निष्टोम ही संवत्सर का रूप होता है। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए अध्याय १४ अवश्य पठनीय है। ये विद्वान् कहते हैं कि अग्निष्टोम के विना अन्य कोई भी प्रक्रिया तारों के केन्द्रीय भाग का रूप वनकर विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को धारण नहीं कर सकती है और न ही विभिन्न परमाणुओं को अपनी ओर आकर्षित करके एक साथ वाँध सकती हैं।।

इस मत के समर्थक विद्वानों का कहना है कि इस प्रक्रिया में ४८-४८ छन्द रश्मियों की आवृत्तियों के तीन **पवमान** उत्पन्न होकर इसके पश्चात् पूर्वोक्त २४-२४ छन्द रश्मियों के ९ स्तोत्र रूपी छन्द रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं। यहाँ **'पवमान'** शब्द का तात्पर्य रश्मि विशेष है। इसके विषय में ऋषियों ने कहा है- **पशवो वै पवमानः (मै.१.६.८), यज्ञमुखं वै पवमानः (मै.३.८.१०), आत्मा वै यज्ञस्य पवमानः (तां.७.३.७)** इस विषय में इसकी प्रक्रिया वतलाते हुए कहा गया है- **षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स द्वादशभिः स एकया, षोडशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स द्वादशभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स द्वादशभिस्स एकया स तिसृभिः (तां.३.१२.१)** इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भ में पूर्वोक्त चतुर्विंश प्रक्रिया के स्थान पर अष्टाचत्वारिंशत प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। उसका प्रकार **ताण्ड्य ब्राह्मण** ने उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार समझाया है, जो इस प्रकार है-

सर्वप्रथम पूर्वोक्त दैवी गायत्री छन्द रश्मि तीन वार आवृत्त होती है। उसके पश्चात् दैवी उष्णिक् छन्द रश्मि १२ वार आवृत्त होती है, अन्त में दैवी अनुष्टुप् छन्द रश्मि एक वार आवृत्त होती है। इस षोडश रश्मिसमूह के उत्पन्न होने के पश्चात् एक **'हिम्'** रश्मि उत्पन्न होती है। तदुपरान्त दैवी गायत्री एक वार, दैवी उष्णिक् ३ वार और दैवी अनुष्टुप् १२ वार आवृत्त होती है। इस द्वितीय षोडश रश्मिसमूह के पश्चात् पुनः एक **'हिम्'** रश्मि उत्पन्न होती है। अन्त में दैवी गायत्री १२ वार, दैवी उष्णिक् १ वार और दैवी अनुष्टुप् ३ वार आवृत्त होती हैं। इस तृतीय षोडश रश्मिसमूह के पश्चात् पुनः एक वार **'हिम्'** रश्मि उत्पन्न होती है। इस प्रकार इन ४८ रश्मियों का एक पवमान स्तोत्र होता है। ऐसे ३ पवमान स्तोत्र उत्पन्न होते हैं, जिनमें कुल ३×४८=१४४ स्तोत्रिय छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं। इसके पश्चात् पूर्वोक्त २४ रश्मियों वाले ९ स्तोत्र रश्मिसमूह उत्पन्न होते हैं, जिनमें कुल मिलाकर ९×२४=२१६ छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं। इस प्रकार इस मत में भी कुल मिलाकर ३६० छन्द रश्मियां हो जाती हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इस मत का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं कि यह मत उचित नहीं है। वे कहते हैं कि पूर्वोक्त उक्थ्य संज्ञक १५ स्तोत्र एवं १५ शस्त्र ही सर्वप्रथम उत्पन्न होते हैं। इस विषय में एक अन्य ऋषि की भी सहमति है- **"अथो खल्वाहुरुक्थ्यमेव कार्य्यमह्नः समृद्धै" (तां.४.२.१३), सर्वाणि रूपाणि क्रियन्ते सर्वर्छं ह्येतेनाह्नाप्यते। (तां.४.२.१४)** इन दोनों प्रमाणों से यह सिद्ध है कि **ताण्ड्य ब्राह्मण** इस ग्रन्थकार के मत से सहमत है। महर्षि लिखते हैं कि उक्थ्य संज्ञक स्तोत्र रश्मिसमूह के उत्पन्न होने से

ही विभिन्न पशु अर्थात् छन्द एवं मरुद् रश्मियां भली भाँति समृद्ध होती हैं और ये परस्पर संगत होकर सृष्टि यज्ञ एवं विभिन्न तेजस्वी लोक वा लोकसमूह के निर्माण की प्रक्रिया तेज करती हैं। इस कारण से उक्थ्य संज्ञक रश्मियां ही सर्वप्रथम उत्पन्न होती हैं। वे यह भी कहते हैं कि सभी स्तोत्र रश्मियां पूर्वोक्त २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियों के विविध क्रमों से ही उत्पन्न होती हैं। यहाँ 'प्रत्यक्ष' शब्द इस बात का संकेत करता है कि **महर्षि ने सृष्टि प्रक्रिया के इस प्रारम्भिक एवं अति सूक्ष्म चरण को अपने महान् योग-बल के द्वारा स्वयं अनुभव किया था और इसी अनुभव के आधार पर वे बलपूर्वक कहते हैं कि उक्थ्य संज्ञक स्तोत्र ही प्रथम चरण में उत्पन्न होते हैं, अन्य नहीं।** इस चतुर्विंश के सम्बन्ध में इसी खण्ड की प्रथम पाँच कण्डिकाओं को भी विचारना चाहिए।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्याख्यान भाग ही पढ़ें।।

इति १७.६ समाप्तः

ॐ अथ १७.७ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. बृहद्रथन्तरे सामनी भवत; एते वै यज्ञस्य नावौ संपारिण्यौ यद्बृहद्रथन्तरे; ताभ्यामेव तत्संवत्सरं तरन्ति।।
पादौ वै बृहद्रथन्तरे; शिर एतद् अहः, पादाभ्यामेव तच्छ्रियं शिरोऽभ्यायन्ति।।
पक्षौ वै बृहद्रथन्तरे, शिर एतद् अहः; पक्षाभ्यामेव तच्छ्रियं शिरोऽभ्यायुवते।।

व्याख्यानम्- इस विषय में महर्षि आपस्तम्ब का कथन है- रथन्तरसाम्ना बृहत्साम्नो भयसाम्ना वा प्रथमं यजेत (आप.श्रौ.१०.२.६)। इसका तात्पर्य यह है कि आधारभूत पूर्वोक्त क्रियाओं एवं विभिन्न छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने के पश्चात् रथन्तर एवं बृहत् छन्द रश्मियों (साम रश्मियों) के द्वारा पूर्वोत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों का यजन कार्य प्रारम्भ होता है। इन दोनों साम रश्मियों में भी वृहत् की उत्पत्ति पहले होती है और यह बृहत् रश्मि वृषा रूप तथा रथन्तर रश्मि योषा रूप होती है, इसके साथ ही वृहत् रश्मि व्यापक स्तर पर फैली हुई एवं रथन्तर रश्मि अपेक्षाकृत कम व्यापक होती हैं। इसलिए ऋषियों ने कहा है- पुंसो वा एतद् रूपं यद् बृहत्, स्त्रियै रथन्तरम् (जै.ब्रा.२.४०७), पुंसो वा एतद् रूपं यद् बृहत्, स्त्रियै गायत्री (जै.ब्रा.३.१८६), बृहद्धि पूर्वं रथन्तरात् (तां.११.१.४), यद्ध्रस्वं तद्रथन्तरं यद्दीर्घं तद् बृहत् (कौ.ब्रा.३.५), वृषा वै बृहद् योषा रथन्तरम् (ऐ.आ.१.४.२) वह बृहत् और रथन्तर रश्मियां सृष्टि यज्ञ की प्रक्रियाओं को पार लगाने वाली नौका के समान होती हैं। {नौः = वाङ्नाम (निघं.१.११), णौः प्रणोत्तव्या भवति, नमतेर्वा (नि.५.२३), नुदति प्रेरयतीति नौः (उ.को.२.६५)} ये दोनों ही छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों को प्रेरित करके उन्हें परस्पर संगत करने के लिए सक्रिय करती हैं। ये दोनों छन्द रश्मियां इसके लिए अन्य छन्द रश्मियों की ओर झुकती हुई, उन्हें एक-दूसरे की ओर झुकाती हुई परस्पर संगत होने के लिए प्रेरित करती हैं। इस कारण से प्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, इसी को यहाँ संवत्सर सत्र का तरना कहा गया है। इन दोनों छन्द रश्मियों को 'साम' इस कारण कहा गया है, क्योंकि ये दोनों ही छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों के मिलन की प्रक्रिया में संधि का कार्य करती हैं। ये दोनों छन्द रश्मियां कौनसी होती हैं, इस विषय में आचार्य सायण ने दो छन्द रश्मियों को उद्धृत किया है। जिन पर हम अपने ढंग से विचार करते हैं-

(१) वृहत् साम नामक छन्द रश्मि- शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सहजकर्मा सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क-

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः।।१।। (ऋ.६.४६.१)

इसके छान्दस एवं दैवत प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार के कर्मों को करने वाली मरुद् रश्मियां अपने वलों के विभाजन से नाना प्रकार की संगति करने के लिए इन्द्र तत्त्व के द्वारा आकर्षित होती हैं। विभिन्न सूक्ष्म असुर रश्मियों से आक्रान्त छन्द रश्मियां हर दिशा में इन्द्र तत्त्व को ही अपने रक्षक व तारक के रूप में ग्रहण करती हैं।

(२) रथन्तर साम रश्मि वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण तत्त्व से उत्पन्न इन्द्रदेवताक और स्वराडनुष्टुप् छन्दस्क

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।२२।। (ऋ.७.३२.२२)

इसका देवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्, किन्तु कुछ मृदु एवं तेज की अधिकता। इसका प्रभाव ४.१०.३ में देखें।।

इन दोनों बृहत् एवं रथन्तर रश्मियों के विषय में महर्षि लिखते हैं कि पूर्वोक्त आरम्भणीय प्रक्रिया, जिसे 'अहन्' भी कहा गया है और चतुर्विंश भी, इस सृष्टि यज्ञ के सिर के समान और ये रश्मियां दोनों पादों के समान हैं। इसका तात्पर्य है कि यद्यपि आरम्भणीय २४ छन्द रश्मियां सर्वप्रथम उत्पन्न होती हैं और सर्वोत्तम भी वे ही होती हैं, इस कारण वे सिर के समान हैं परन्तु बृहत् एवं रथन्तर रश्मियां सिर के समान उन २४ रश्मियों और उनके अन्दर विद्यमान विभिन्न प्राथमिक प्राणों रूपी श्री को प्राप्त भी करती हैं और व्याप्त भी। इस कारण ये दोनों छन्द रश्मियां सृष्टि यज्ञ की किंवा प्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया की आधार रूप हैं। जिस प्रकार प्राणी के शरीर में सिर सबसे महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ अंग है परन्तु सिर सहित सभी अंगों को आधार प्रधान करने वाले पैर ही होते हैं, जिनके विना सभी अंग आश्रयविहीन हो जाते हैं। यही स्थिति यहाँ भी समझनी चाहिए।।

अब महर्षि पुनः बृहत् और रथन्तर रश्मियों की प्रशंसा में लिखते हैं कि दोनों छन्द रश्मियां पक्षों के समान हैं और पूर्वोक्त आरम्भणीय २४ छन्द रश्मियां सिर के समान हैं, यहाँ 'पक्ष' शब्द का अर्थ शरीर के व्यवहारों को सम्पादित करने वाले कन्धे एवं भुजाएँ भी हैं। जिस प्रकार शरीर में सिर सर्वश्रेष्ठ एवं सबका नियामक अंग होता है, फिर भी विना पंखों व भुजाओं के प्राणी कोई भी व्यवहार नहीं कर सकता, यही स्थिति यहाँ भी समझें। इन पक्षों रूप बृहत् एवं रथन्तर छन्द रश्मियों के द्वारा सिर स्थानी २४ छन्द रश्मियों और उनमें व्याप्त प्राण रश्मियों को व्याप्त एवं संगत किया जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में उत्पन्न पूर्वोक्त २४ छन्द रश्मियां समस्त सृष्टि प्रक्रिया की छन्द रश्मियों में सबसे महत्वपूर्ण होती हैं किन्तु इनमें उत्पन्न होने वाली विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर संगत करने के लिए आधारभूत दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, इनमें से एक का फैलाव व्यापक और दूसरे का कम व्यापक होता है। व्यापक फैलाव वाली रश्मि पहले उत्पन्न होती है और कम फैलाव वाली रश्मि बाद में उत्पन्न होती है। ये दोनों रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को जोड़ने में संधि का कार्य करती हैं।।

२. ते उभे न समवसृज्ये; य उभे समवसृजेयुर्यथैवच्छिन्ना नौर्बन्धनात् तीरं तीरम् ऋच्छन्ती प्लवेतैवमेव ते सत्रिणस्तीरं तीरम् ऋच्छन्तः प्लवेरन्, य उभे समवसृजेयुः।। तद् यदि रथन्तरमवसृजेयुर्बृहतैवोभे अनवसृष्टे; अथ यदि बृहदवसृजेयू रथन्तरेणैवोभे अनवसृष्टे।।
यद्वै रथन्तरं तद् वैरूपं, यद्बृहत् तद् वैराजं, यद्रथन्तरं तच्छाक्वरं, यद्बृहत् तद् रैवतम्; एवमेते उभे अनवसृष्टे भवतः।।
ये वा एवं विद्वांस एतदहरुपयन्त्याप्त्वा वै तेऽहःशः संवत्सरमाप्त्वाऽर्धमासश आप्त्वा मासश आप्त्वा स्तोमांश्च च्छन्दांसि च आप्त्वा सर्वा देवतास्तप एव तप्यमानाः सोमपीथं भक्षयन्तः संवत्सरमभिषुण्वन्त आसते।।
ये वा अत ऊर्ध्वं संवत्सरमुपयन्ति, गुरुं वै ते भारमभिनिदधते; स वै गुरुर्भारः शृणात्यथ य एनं परस्तात् कर्मभिराप्त्वाऽवस्तादुपैति, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते।।७।।

व्याख्यानम्– उपर्युक्त बृहत् एवं रथन्तर छन्द रश्मियां किस प्रकार अन्य छन्द रश्मियों को संगत करती हुई तारती हैं, इस प्रक्रिया को बतलाते हुए महर्षि कहते हैं कि ये दोनों छन्द रश्मियां स्वयं परस्पर संयुक्त होकर इस ब्रह्माण्ड में यत्र-तत्र वा सर्वत्र बिखरी हुई नहीं होती हैं। यदि इनकी उत्पत्ति इसी प्रकार होवे किंवा उत्पन्न होकर वे परस्पर जोड़े बनाकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखरकर विभिन्न छन्द रश्मियों को संगत करने का प्रयास करें, तो वे उसमें सफल नहीं होती। {बन्धनानि = प्रयोजनानि (म.द.ऋ.भा. १.१६३.३)} ऐसा होने पर क्या होता है, इस विषय में ऋषि लिखते हैं कि जैसे कोई नौका प्रयोजन से भ्रष्ट होकर अथवा नाविक से रहित होकर समुद्र के अन्दर विभिन्न तटों पर व्यर्थ भटकती हुई तैरती रहती है और कभी भी यात्रियों को गंतव्य तट तक नहीं पहुँचा पाती, उसी प्रकार ये संयुक्त हुई दोनों छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर संगत करने में अक्षम होकर इस ब्रह्माण्ड में व्यर्थ भटकती रहती हैं अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए इनकी उत्पत्ति होती है, वह पूर्ण नहीं होता। ऐसा क्यों होता है? यह यहाँ स्पष्ट नहीं किया गया है। हम पूर्व में इस बात से अवगत हो चुके हैं कि बृहत् एवं रथन्तर नामक छन्द रश्मियां क्रमशः वृषा व योषा रूप होती हैं। तब इनका संयुक्त रहना स्वाभाविक भी है; फिर यहाँ कैसे कहा जा रहा है कि परस्पर उनके संयुक्त होने से सृष्टि प्रक्रिया बिखर जाती है। इस विषय में हमारा मत यह है कि ये दोनों छन्द रश्मियां परस्पर संयुक्त होती हैं, परन्तु अति निकटता से नहीं। उनके संयुक्त होने की प्रक्रिया को अगली कण्डिका में स्पष्ट किया गया है। इनके अति निकटता से संयुक्त होने पर उनकी परिणामी शक्ति, जो विभिन्न छन्द रश्मियों को बाँधने का कार्य करती हैं, वह शिथिल हो जाती है। इसके कारण अति निकटता से संयुक्त होकर जब ये दोनों छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों को अपने साथ संयुक्त करती हैं, तो वे संयुक्त रश्मियां इन दोनों छन्द रश्मियों के साथ मिलकर अमर्यादित ढंग से इस ब्रह्माण्ड में भटकती रहती हैं, इसलिए इनका परस्पर संयोग इस प्रकार नहीं होता।।

इस कारण पूर्वोक्त दोषपूर्ण संयोग के स्थान पर यथार्थ संयोग इस प्रकार होता है कि, किसी छन्द रश्मि के एक सिरे से बृहत् छन्द रश्मि संयुक्त हो जाती है और दूसरे सिरे पर रथन्तर छन्द रश्मि संयुक्त हो जाती है अर्थात् बृहत् एवं रथन्तर छन्द रश्मियों के मध्य कोई अन्य छन्द रश्मि आकर संयुक्त हो जाती है। इस प्रक्रिया में किसी छन्द रश्मि से रथन्तर छन्द रश्मि पृथक् हो जाए, तब बृहत् छन्द रश्मि ही उस छन्द रश्मि के दोनों सिरों को अपने साथ बाँध लेती है किंवा वह एक सिरे के द्वारा ही उस छन्द रश्मि को पकड़े रखती है। 'उभे' पद का प्रयोग इस कारण प्रतीत होता है कि एक सिरे को पकड़े रखने से दूसरा सिरा पृथक् नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि कदाचित् किसी छन्द रश्मि से बृहत् छन्द रश्मि पृथक् हो जाए, तो रथन्तर छन्द रश्मि इसी प्रकार के व्यवहार से उस छन्द रश्मि को बाँधे रखती है। यदि बृहत् और रथन्तर दोनों ही छन्द रश्मियां अति निकटता से संयुक्त होकर किसी छन्द रश्मि के एक किनारे पर संयुक्त हो जाएं, तब बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। हमें यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि बृहत् एवं रथन्तर के साथ किसी छन्द रश्मि का संयोग होकर एक त्रिक का निर्माण होता है और ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेकों त्रिक सर्वत्र विचरण करते हुए परस्पर एक-दूसरे के साथ संयुक्त होते रहते हैं, जिससे सृष्टि प्रक्रिया निरन्तर अग्रसर होती रहती है।।

इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- "पृष्ठ्यषडहे षट्स्वपि दिवसेषु क्रमेण पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकानि षट्सामानि-रथन्तरं, बृहद्, वैरूपं, वैराजं, शाक्वरं, रैवतमिति। तत्र रथन्तरस्य बृहतश्चोत्पत्तिस्थानं पूर्वमुक्तम्। 'यद्द्याव इन्द्र ते शतम्' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैरूपं साम। 'पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैराजं साम। 'प्रोष्वस्मै पुरोरथम्' इत्यस्यां गीयमानं शाक्वरं साम। रेवतीर्नः सधमादे' इत्यस्यां गीयमानं रैवतं साम।" {वैरूपं = विविधानि रूपाणि प्रकृतानि यस्मिंस्तत् (यजु.१५.१२), विविधानि रूपाणि यस्मात्तस्येदम् (यजु.१३.५६)। वैराजम् = यद्विविधैरर्थै राजते तदेव (यजु.१०.१३), विविधानां पदार्थानामिदं प्रकाशकम् (यजु.१३.५७)। रैवतः = मेघनाम (निघं.१.१०), रेवती = ज्योती रेवती साम्नाम् (तां.१३.७.२), रेवत्य आपः (श.१.२.२.२), आपो वै रेवतीः (तै.ब्रा.३.२.८.२), पशवो वै रैवत्यः (तां.१३.१०.११), रेवत्यः = सर्वा देवताः (ऐ.२.१६), वज्रो वै रेवती (काठ.१०.१०)} इस विषय में एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा- "पृष्ठ्यः षडहो भवति षड् वा ऋतवः षट् पृष्ठानि पृष्ठैरेवर्तूनन्वा रोहन्त्यृतुभिः संवत्सरं ते संवत्सर एव प्रति तिष्ठन्ति चतुर्विंशो भवति चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री" (तै.सं. ७.२.६.२)। इसी वचन के आधार पर यह संकेत मिलता है कि सृष्टि प्रक्रिया के प्रमुखतः छः चरण

होते हैं, जिनमें प्रकाशशीलता आदि की वृद्धि होती है और उन चरणों में छः प्रकार की साम रश्मियों की उत्पत्ति भी होती है। वे क्रमशः हैं- रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्वर एवं रैवत। रथन्तर और बृहत् के विषय में हम पूर्व में लिख चुके हैं। यहाँ अन्य साम रश्मियों के विषय में आचार्य सायण के मत को अल्पांश में स्वीकार करके लिखते हैं-

(१) वैरूप- पुरुहन्मा ऋषि अर्थात् {हन्मना = हन्ति येन तेन (मनसा) (म.द.ऋ.भा.१.३३.११)} व्यापक स्तर पर सबको व्याप्त करने वाले मनस्तत्त्व किंवा सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं विराड् बृहती छन्दस्क -

यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी॥५॥ (ऋ.८.७०.५)

छन्द रश्मि ही वैरूप साम कहलाती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से दीप्ति बढ़ने के साथ-२ रश्मियों के संपीडन की क्रिया प्रारम्भ होकर सूक्ष्म आकार जन्मने लगते हैं। इसी कारण इसको विविध रूप उत्पन्न करने वाली वैरूप रश्मि कहा है। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के उत्पन्न होने से सैकड़ों, हजारों पृथिवी, सूर्य लोक और असंख्य प्रकाशित और अप्रकाशित कणों की उत्पत्ति होने लगती है।

(२) वैराज- वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण तत्त्व से इन्द्रदेवताक एवं भुरिगुष्णिक् छन्द वाली-

पिबा॒ सोम॑मिन्द्र॒ मन्द॑तु त्वा॒ यं ते॑ सु॒षाव॑ हर्य॒श्वाद्रिः॑।
सो॒तुर्बा॒हुभ्यां॒ सुय॑तो॒ नार्वा॑॥१॥ (ऋ.७.२२.१)

इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों को आवृत्त करके ऊष्मा एवं प्रकाश के रूप में प्रकट होने लगता है, जिसके कारण नाना प्रकार की दीप्तियाँ प्रकाशित होने लगती हैं। इसलिए इसको वैराज साम रश्मि कहते हैं। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व हरणशील आकर्षण बलयुक्त होकर सोम रश्मियों को अवशोषित करने लगता है। उसके पश्चात् विभिन्न रश्मियां अपने आकर्षण-प्रतिकर्षण बलों के द्वारा इन्द्र तत्त्व को तृप्त करती हुई मेघरूप अवस्था के निर्माण का बीजारोपण करने लगती हैं।

(३) शाक्वर- {पिजवनः = पैजवनः पिजवनस्य पुत्रः। पिजवनः पुनः स्पर्द्धनीयजवो वाऽमिश्रीभावगतिर्वा (नि.२.२४)} सुदाः पैजवनः ऋषि अर्थात् विभिन्न पदार्थों के साथ बिना मिश्रित हुए उन्हें अतितीव्र वेग प्रदान करने वाले धनंजय प्राण से इन्द्रदेवताक एवं शक्वरी छन्दस्क -

प्रो ष्व॑स्मै पुरोर॒थमिन्द्रा॑य शू॒षम॑र्चत।
अ॒भीके॑ चिदु लोक॒कृत्स॒ङ्गे स॒मत्सु॑ वृत्र॒हास्माकं॑ बोधि चोदि॒ता नभ॑न्तामन्य॒केषां॑ ज्या॒का अधि॒ धन्व॑सु॥१॥
(ऋ.१०.१३३.१)

रश्मि को शाक्वर साम कहते हैं। इसके दैवत तथा छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अत्यन्त शक्तिशाली हो उठता है, जिससे विभिन्न तीक्ष्ण किरणें उत्पन्न होने लगती हैं। क्योंकि ये अपनी शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार के पदार्थों का निर्माण करने में समर्थ होती हैं, इसी कारण से इन्हें शाक्वर साम कहा है। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व की रश्मियों के अग्रिम भाग में विद्यमान तीव्र बल असुर तत्त्व को नष्ट करके पदार्थ को विभिन्न कणों वा लोकों के निर्माण हेतु प्रेरित करता है। वह बल अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न हानिकारक तीक्ष्ण रश्मियों को अपनी तेजस्वी किरणों से नष्ट करता है।

(४) रैवत- {अजीगर्तः अज्यै गमनाय गर्तम् यस्य सः (आप्टे कोष)। शुनः = शुनः वायुः। शु एत्यन्तरिक्षे (नि.६.४०)। गर्तः = गृहनाम (निघं.३.४), रथोऽपि गर्त्त उच्यते गृणातेः स्तुतिकर्मणः (नि.३.५)} आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषि अर्थात् सतत गमन करने वाले विभिन्न प्राणों के लिए जो वाहन अथवा गृह

के समान है, ऐसी ऋतु रश्मियों से उत्पन्न ऐसी प्राण रश्मियां, जो अन्तरिक्ष में विचरती हुई नाना सामर्थ्यों से युक्त होती हैं तथा अपना तेज किसी अन्य छन्द रश्मि में प्रवाहित करके स्वयं शान्त वा शिथिल हो जाया करती हैं। उन शुनःशेप प्राण रश्मियों से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क -

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम।।१३।। (ऋ.१.३०.१३)

रश्मि रेवती साम कहलाती है। इसके व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सवल और तेजस्वी होता है। इसके कारण नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति तेजी से होने लगती है। जव इस रश्मि की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड में होती है, तव एक उच्च घोष उत्पन्न होता है। इसी कारण कहा है- स (प्रजापतिः) रेवतीरसृजत तद्गवां घोषोऽन्वसृज्यत (तां.७.८.१३)। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व {क्षु = अन्ननाम (निघं. २.७)} विभिन्न संयोज्य प्रभावों से युक्त होकर अनेक प्रकार के वलों से युक्त गायत्री छन्द रश्मियों से युक्त होता है। यह रेवती साम रश्मि पूर्वोत्पन्न शाक्वर साम रश्मियों के द्वारा उत्पन्न अति विक्षुब्ध एवं प्रदाही अवस्था का शमन करके नियन्त्रित एवं संतुलित अवस्था उत्पन्न करती है। इसी कारण इसकी उत्पत्ति शाक्वर रश्मियों के पश्चात् होती है, जिससे विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति अच्छी प्रकार से होने लगती है। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- रेवतीर्निरमिमीत (प्रजापतिः) शान्त्यै (काठ.१०.१०), स (प्रजापतिः) शक्वर्या अधि रेवतीं निरमिमीत शान्त्या अप्रदाहाय (तै.सं.२.२.८.६), सा वाक् षष्ठमहः प्राप्य रेवती भवति, ययान्नाद्यं प्रदीयते (जै.ब्रा.२.१)।

इस प्रकार इन चार साम रश्मियों सहित ये कुल छः साम रश्मियां हो जाती हैं, जिनके अपने पृथक्-२ गुण हैं, जिन्हें हम दर्शा चुके हैं। अव महर्षि कुछ साम रश्मियों की तुलना करते हुए लिखते हैं कि वैरूप साम रश्मियां रथन्तर के समान तथा वैराज साम रश्मियां बृहत् रश्मियों के समान व्यवहार करती हैं। इसी प्रकार शाक्वर साम रश्मियां रथन्तर के समान और रैवत साम रश्मियां बृहत् के समान कार्य करती हैं। हमारे मत में अन्य गुणों की साम्यता तो उचित हैं परन्तु "बृहद्धि पूर्वः रथन्तरात्" (तां. ११.१.४) के प्रकाश में बृहत् के समान वैराज और रैवत साम रश्मियां, रथन्तर के समान वैरूप तथा शाक्वर साम रश्मियों से पूर्व उत्पन्न नहीं होती हैं। इस समानता से महर्षि यह दर्शाना चाहते हैं कि जिस प्रकार बृहत् एवं रथन्तर रश्मियों के साथ अन्य छन्द रश्मियों की संगति से नाना क्रियाएँ सम्पादित होती हैं, उसी प्रकार अन्य चारों साम रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों से मेल करके नाना तत्त्वों को उत्पन्न करती हैं। इस मेल की प्रक्रिया को पूर्व कण्डिकाओं में वर्णित बृहत् एवं रथन्तर रश्मियों की प्रक्रिया के समान ही समझें।।

इस प्रकार विभिन्न चरणों में विभिन्न प्रक्रियाओं के उत्पन्न होने से पूर्वोक्त अहन् रश्मियों, अर्द्धमास रश्मियों, मास रश्मियों, विभिन्न स्तोम अर्थात् रश्मिसमूह और छन्दों को उत्पन्न और व्याप्त करते हुए सभी प्रकार के देव पदार्थों अर्थात् विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों और प्रकाशित पदार्थों को तपाते हुए, विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करते हुए सृष्टि प्रक्रिया सतत अग्रसर होती है और इन प्रक्रियाओं में तारों के निर्माण तक की प्रक्रिया सम्मिलित होती है। इसका आशय न केवल यह हुआ कि विभिन्न परमाणुओं से लेकर तारों के निर्माण तक इस प्रकार की प्रक्रिया की निरन्तरता अनिवार्य है, वल्कि परमाणुओं के निर्माण से पूर्व ही इस प्रक्रिया का प्रारम्भ हो जाता है, जैसा कि हम व्याख्यान में विस्तार से लिख चुके हैं।।

तदुपरान्त महर्षि तारों व नेव्यूलाओं के निर्माण की प्रक्रिया को लक्षित करके कहते हैं कि यदि पूर्वोक्त छः साम रश्मियों के उत्पन्न व सक्रिय होने के पश्चात् यदि साम संज्ञक रश्मियों के निर्माण की प्रक्रिया सतत चलती रहती है, तो चहुँओर से पदार्थ तीव्र और व्यापक गति से संपीडित होता हुआ नेव्यूला अथवा तारों का आकार सतत वढ़ाता रहता है। इसके कारण उनका द्रव्यमान और गुरुत्वाकर्षण वल अत्यन्त तीव्र गति से वढ़ता जाता है और इसके वढ़ने की तीव्रगति नेव्यूला वा तारे को ही नष्ट कर देती है। यदि इन साम रश्मियों के विभिन्न चरणों के चलते हुए क्रियाओं के द्वारा पदार्थ के संघनन की गति एक सीमा पर पहुँच कर रुक जाती है और फिर साम रश्मियां विपरीत क्रम से उत्पन्न होने लगती हैं, तव तारे अथवा नेव्यूला नियन्त्रित द्रव्यमान व गुरुत्वाकर्षण वल वाले होकर अपना मर्यादित और सम्यग् रूप प्राप्त कर लेते हैं। इस ब्रह्माण्ड में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही प्रकार की स्थितियाँ

उत्पन्न होती रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त २ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां, जो विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़ती हैं, वे दोनों जुड़ी हुई तीसरी छन्द रश्मि के साथ स्वयं भी परस्पर संयुक्त रहती हैं। इस प्रकार के संयोग से ३ छन्द रश्मियों का एक त्रिक निर्मित होता है। ऐसे असंख्य त्रिक रश्मिसमूह इस ब्रह्माण्ड में विचरते हुए विभिन्न पदार्थों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ करते हैं। ये दोनों अनुष्टुप् रश्मियां तीसरी किसी भी छन्द रश्मि के साथ दोनों किनारों पर एक-२ पृथक्-२ सिरे से संयुक्त हो जाती हैं। इस त्रिक के उत्पन्न होने के उपरान्त अन्य दो प्रकार के त्रिक और उत्पन्न होते हैं। जिसमें पहले प्रकार का त्रिक उष्णिक् और बृहती छन्द रश्मियों के किसी अन्य छन्द रश्मि के दोनों सिरों पर पृथक्-२ संयुक्त होकर बनता है।। **इस त्रिक के जन्म लेने पर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज् और मूलकणों का निर्माण होने लगता है। विद्युत् आवेश की उत्पत्ति होकर ये मूलकण आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों से युक्त हो जाते हैं।** प्रकाश और ऊष्मा समृद्ध और तीव्र होने लगते हैं। इस चरण के पश्चात् रश्मियों का तीसरा त्रिक उत्पन्न होता है, जो किसी छन्द रश्मि के दोनों सिरों पर एक शक्वरी और एक गायत्री छन्द रश्मि के पृथक्-२ संयुक्त होने से उत्पन्न होता है।
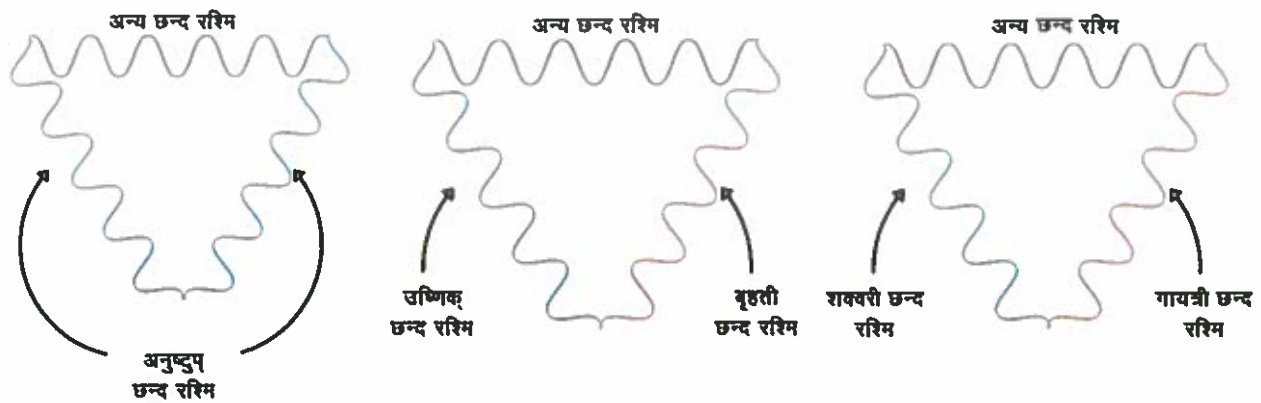
चित्र १७.२ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज् और मूलकणों का निर्माण की प्रक्रिया

इसके कारण **विभिन्न मूलकणों एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा अति उच्च स्तर पर पहुँच जाती है, जिसके कारण वे सभी मूलकण और विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विक्षुब्ध हो उठती हैं,** वे डार्क एनर्जी आदि के सम्पर्क में आने पर उसे नष्ट कर डालती हैं। इस विक्षोभ की अवस्था को इस त्रिक की एक भाग रूप गायत्री छन्द रश्मियां नियन्त्रित एवं संतुलित करती हैं। इस समय ब्रह्माण्ड में तीव्र ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होने लगती हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं मूलकणों के निर्माण के पूर्व से प्रारम्भ होकर तारों के निर्माण तक सतत चलती रहती है। द्वितीय त्रिक के उत्पन्न होने से ही रश्मि आदि पदार्थ सघन होने लगते हैं। तारों के निर्माण के समय यदि यही प्रक्रिया तीव्र गति से निरन्तर चलती रहे अर्थात् ऐसे और त्रिक निरन्तर उत्पन्न होते रहें, तो नेब्यूलाओं व तारों के निर्माण के लिए संघनित पदार्थ अत्यधिक द्रव्यमान और गुरुत्वाकर्षण बल को प्राप्त करके अत्यन्त संकुचित होकर विस्फोट के द्वारा समाप्त हो सकता है। इस कारण द्रव्यमान और गुरुत्वाकर्षण बल की निश्चित सीमा उसके आकार के साथ संतुलन बिठाती हुई, जब निर्मित हो जाती है, उस समय पूर्वोक्त त्रिक रश्मियों के निर्मित होने की प्रक्रिया विपरीत हो जाती है, जिसके कारण पदार्थ का और संघनन होना बंद होकर तारों का उचित आकार बन जाता है। इस ब्रह्माण्ड के सभी तारों का निर्माण इसी प्रक्रिया से हुआ है। इस प्रक्रिया में द्रव्यमान और गुरुत्वाकर्षण बल को मर्यादित रखने के लिए जो उपर्युक्त त्रिक रश्मियों के निर्माण की प्रक्रिया में जो नियन्त्रण आवश्यक होता है, **वह नियन्त्रण सर्वोच्च नियामक चेतन सत्ता परमात्मा के द्वारा ही होता है।।**

इति १७.७ समाप्तः

ॐ अथ १७.८ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. यद्वै चतुर्विंशं तन्महाव्रतं बृहद्दिवेनात्र होता रेतः सिञ्चति; तददो महाव्रतीयेनाह्ना प्रजनयति; संवत्सरे संवत्सरे वै रेतः सिक्तं जायते, तस्मात् समानं बृहद्दिवो निष्केवल्यं भवति, एष ह वा एनं परस्तात्, कर्मभिराप्त्वाऽवस्तादुपैति य एवं विद्वानेतदहरुपैति।। स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।
यौ वै संवत्सरस्यावारं च पारं च वेद, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; अतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयोऽवारमुदयनीयः पारम्।।
स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।

{व्रतम् = कर्मनाम (निघं.२.१), नियतधर्मयुक्तं कर्म गुणस्वभावौ च (तु.म.द.ऋ.भा.१.२२.६), व्रतं कर्मनाम वृणोतीति सतः (नि.२.१३), वीर्यं वै व्रतम् (श.१३.४.१.१५)। अथर्वा = अहिंसकः (म.द.य.भा.१५.२२), प्राणो वा ऽअथर्वा (श.६.४.२.१), अथर्वा वै प्रजापतिः (गो.पू.१.४)}

व्याख्यानम्- अब ऋषि पूर्वोक्त आरम्भणीय चतुर्विंश स्थिति के विषय में कुछ और विशेष लिखते हैं। वे कहते हैं कि यह चतुर्विंश प्रक्रिया 'महाव्रत' कहलाती है। इसका आशय यह है कि ये चतुर्विंश रश्मियां सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया का बीज रूप होकर व्यापक स्तर पर अन्य छन्द रश्मियों को आच्छादित करके नाना प्रकार की क्रियाओं को जन्म देती हैं। जब इन २४ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति हो जाती है, तब मनस्तत्त्व रूपी होता बृहद्दिव आथर्वण ऋषि अर्थात् व्यापक रूप से प्रकाशमान और कमनीय मनस्तत्त्व से उत्पन्न इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों के द्वारा उन २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियों को तीव्र तेज प्रदान किया जाता है। वे तेज और बल प्रदान करने वाली छन्द रश्मियां निम्नानुसार हैं-

(१) तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः।।१।। (ऋ.१०.१२०.१)

इसका छन्द आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् होने से इसके देवत तथा छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां एवं इन्द्र तत्त्व तीव्र तेजस्वी एवं बलवान् होते हैं। {त्वेषनृम्णः = (त्वेषः = प्रदीप्तस्वभावः - म.द.ऋ.भा.१.६६.३)। नृम्णः = बलनाम (निघं.२.९), धननाम (नि.२.१०), त्वेषनृम्णो दीप्तिनृम्णः (नि.१४.२४)} इसके अन्य प्रभाव से सबको दीप्ति एवं बल प्रदान करने वाला, विभिन्न छन्द रश्मियों की संगति में बाधक सूक्ष्म असुर रश्मियों को नष्ट करने वाला उग्र इन्द्र तत्त्व उन २४ छन्द रश्मियों के लिए अनुकूलता से उत्पन्न होता है।

(२) वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु।।२।। (ऋ.१०.१२०.२)

इसका छन्द पादनिचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्, किन्तु भेदक बल की अधिकता एवं प्रकाश की न्यूनता। इसके अन्य प्रभाव से {सस्निः = शुद्धः (म.द.ऋ.भा.३.१५.५), सस्निं

संस्नातं मेघम् (नि.५.१), व्यनत् = (वि+अनिति गतिकर्मा - निघं.२.१४)} वह इन्द्र तत्त्व विशाल क्षेत्र में फैलता हुआ शक्तिशाली बाधक रश्मियों को कंपाता हुआ गतिशील एवं गतिहीन किंवा कम गतिशील दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों को शुद्ध करता है, जिससे वे छन्द रश्मियां पुष्ट और सक्रिय होकर परस्पर संगत होने लगती हैं।

(३) त्वे क्रतुमपि॑ वृञ्जन्ति॒ विश्वे॒ द्विर्यदे॒ते त्रिर्भव॒न्त्यूमाः॑।
स्वादोः॒ स्वादीयः॑ स्वादुना॑ सृजा॒ समदः॒ सु मधु॒ मधु॑नाभि योधीः॥३॥ (ऋ.१०.१२०.३)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। {ऊमः = कामनीयः (तु.म.द.ऋ.भा.३.६.८), सर्वस्य रक्षणादिकर्त्ता (तु.म.द.ऋ.भा.५.५२.१२), ऊमा वै पितरः प्रातःसवनः (ऐ.७.३४)। वृञ्जन्ति = समापयन्ति (सा.ऋ.भा.)} इसके अन्य प्रभाव से सभी २४ छन्द रश्मियां इन्द्र तत्त्व के सहयोग से विभिन्न संगत कर्मों को व्याप्त करके निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करती हैं। वे रश्मियां अपने युग्म बनाकर अनेक युग्मों और प्रजारूप रश्मियों को उत्पन्न करके विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ भी उनका मेल कराती हैं।

(४) इति॒ चिद्धि त्वा॒ धना॒ जय॑न्तं॒ मदे॑मदे अनु॒मद॑न्ति॒ विप्राः॑।
ओजी॑यो धृष्णो स्थि॒रमा त॑नुष्व॒ मा त्वा॑ दभन्यातु॒धाना॑ दु॒रेवाः॑॥४॥ (ऋ.१०.१२०.४)

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न रश्मियों को नियन्त्रित करते हुए सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा निरन्तर तृप्त होता रहता है। वह इन्द्र तत्त्व अति बलवान् होकर उन छन्द रश्मियों को विस्तृत करने के साथ-२ बाधक रश्मियों को नष्ट करता रहता है।

(५) त्वया॑ व॒यं शा॑शद्महे॒ रणे॑षु प्र॒पश्य॑न्तो यु॒धेन्या॑नि॒ भूरि॑।
चो॒दया॑मि त॒ आयु॑धा॒ वचो॑भिः॒ सं ते॑ शिशामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वयां॑सि॥५॥ (ऋ.१०.१२०.५)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के सहयोग से वे छन्द रश्मियां प्रभूत बल प्राप्त करके विभिन्न संघातों में बाधक रश्मियों को नष्ट करती हैं। उस इन्द्र तत्त्व की अंगभूत विभिन्न प्राण रश्मियां सूक्ष्म वाग् रश्मियों के साथ मिलकर इन्द्र तत्त्व को प्रेरित करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान रूपी ब्रह्म के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों को तीक्ष्ण करता है।

(६) स्तु॒षेय्यं॑ पुरु॒वर्प॑स॒मृभ्व॑मि॒नत॑ममा॒प्त्यमा॒प्त्याना॑म्।
आ द॑र्षते॒ शव॑सा स॒प्त दानू॒न्प्र सा॑क्षते प्रति॒माना॑नि॒ भूरि॑॥६॥ (ऋ.१०.१२०.६)

इसका छन्द पादनिचृद् त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव तृतीय रश्मि के समान। {वर्पः = वर्प इति रूपनाम वृणोतीति सतः (नि.५.८)। इनतमः = ईश्वरतमः (नि.११.२१)} इसके अन्य प्रभाव से वह प्रकाशित, विविध रूपों से युक्त, व्यापक और सभी रश्मियों में सर्वाधिक बलवान्, सबसे अधिक व्यापक वह इन्द्र तत्त्व अपने बल से {दानून् = दातॄन् (नि.११.२१), दानवः (सा.ऋ.भा.)} सात प्रकार की असुर छन्द रश्मियों, जो विभिन्न छन्द रश्मियों को प्रतिकर्षण बल प्रदान करके उन्हें परस्पर संगत होने में बाधा प्रदान करती हैं, उन आसुरी गायत्री आदि सातों छन्द रश्मियों को विदीर्ण करता है और उनके बलों का सदैव प्रतिरोध करता है।

(७) नि तद्द॑धिषेऽव॑रं॒ परं॑ च॒ यस्मि॒न्नावि॒थाव॑सा दुरो॒णे।
आ मा॒तरा॑ स्थापयसे जिग॒त्नू अत॑ इनोषि॒ कर्व॑रा पु॒रूणि॑॥७॥ (ऋ.१०.१२०.७)

इसका छन्द विराट्त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु, परन्तु अधिक प्रकाशमान

{इनोषि = व्याप्नोषि (म.द.ऋ.भा.४.१०.७), इन्वति = व्याप्तिकर्मा (निघं.२.१८), गतिकर्मा (२.१४)। कर्वरम् = कर्मनाम (निघं.२.१)} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व निकटस्थ तथा दूरस्थ छोटे तथा बड़े सभी पदार्थों को धारण करता है। सतत गमनशील, प्रकाशित और अप्रकाशित सभी प्रकार के कणों वा रश्मियों को धारण करके, उनसे विविध कर्मों को स्थापित करता है।

(८) इमा ब्रह्मं बृहद्दिवो विवक्तीन्द्रांय शूषमंग्रियः स्वर्षाः।
महो गोत्रस्यं क्षयति स्वराजो दुरंश्च विश्वां अवृणोदप स्वाः।।८।। (ऋ.१०.१२०.८)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {स्वर्षाः = स्वः सुखेन सनोति सः (वज्रः) (म.द.ऋ.भा.१.१००.१३)} अपनी वज्र रश्मियों से वह अग्रणी तथा व्यापक प्रकाशित इन्द्र तत्त्व प्राणापान रश्मियों के द्वारा असुर रश्मियों को अन्य रश्मियों से पृथक् करता है किंवा विभिन्न छन्द रश्मियों को प्रकाशित करता है। वह इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से छन्द रश्मियों के अन्दर व्याप्त होकर उनके लिए विभिन्न मार्गों को खोल देता है।

(९) एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्व१मिन्द्रमेव।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च।।९।। (ऋ.१०.१२०.९)

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत तथा छान्दस प्रभाव पाँचवीं ऋचा के समान समझें। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक मनस्तत्त्व अथवा प्राण नामक प्राथमिक प्राण इन्द्र तत्त्व को व्यापक स्तर पर प्रकाशित करते हैं। प्रकाशित और अप्रकाशित, दोनों ही प्रकार के पदार्थों को नियन्त्रित करने वाली स्वयं गतिमान् बल रश्मियां उस इन्द्र तत्त्व को समृद्ध और तृप्त करती हैं।

इस प्रकार ये नौ विभिन्न प्रकार की त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां वृषा रूप होकर पूर्वोक्त २४ छन्द रश्मियों में रेतःसिंचन करती हैं, जिसके कारण वह महान् कर्मशील अहन् अर्थात् प्रकाशित छन्द रश्मिसमूह आगामी चरण की छन्द रश्मियों एवं पूर्वोक्त रश्मि त्रिकों को उत्पन्न करता है। सृष्टि प्रक्रिया के हर चरण में, विशेषकर सभी प्रकार के प्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में इसी प्रकार की रेतःसेचन क्रिया होती रहती है। {निष्केवल्यम् = निरन्तरं केवलं स्वरूपं यस्मिँस्तत्र साधुम् (म.द.य.भा.१५.१३)} इस कारण इस सूक्त की रश्मियां एकाकी भाव से निरन्तर उन छन्द रश्मियों में सृष्टि के हर चरण में एकरस व्याप्त रहती हैं। इन छन्द रश्मियों के द्वारा पूर्व खण्ड की अंतिम कण्डिका में वर्णित क्रियाएँ अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों ही प्रकार से सम्यग्रूपेण उत्पन्न होकर प्रकाशित लोकों के निर्माण में उनके आकार को मर्यादित रखने में सहायक होती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रिया के सम्पन्न होने पर प्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया भी सम्यग्रूपेण लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है।।+।।

विभिन्न प्रकाशित लोकों के अवार और पार अर्थात् पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों ही प्रकार की प्रक्रियाओं को, जिन्हें आगामी कण्डिका में स्पष्ट किया गया है, को सम्यक् प्रकार से संपादित करने से ही तारों के निर्माण की प्रक्रिया निरापदरूप से सम्पन्न हो पाती है। ऐसा न होने पर तारे नष्ट हो जाते हैं। पदार्थ की इस अतिरात्र अवस्था अर्थात् जिसमें विभिन्न रश्मियां आदि पदार्थ अंधकार का अतिक्रमण कर जाते हैं, की प्रायणीय अवस्था अवार अर्थात् प्रारम्भिक और उदयनीय अवस्था पार अर्थात् पूर्ण अवस्था कहलाती है। इसलिए ऋषियों ने कहा है- "आदित्य उदयनीयम्" (श.३.२.३.६), "यत्पारे तीर्थं तदुदयनीयम्" (काठ.३४.१६), "यदादित्यमुदयनीयं भवत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति" (क.३६.५) प्रायणीय से संवत्सर अर्थात् प्रकाशित लोकों का सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों ने कहा है- प्रायणीयः स्वर्गं वा एतेन लोकमुपप्रयन्ति यत् प्रायणीयस्तत्प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम् (ऐ.१.७) इन पूर्व और पर दोनों चरणों का सामंजस्य बैठाते हुए ऋषियों ने कहा है- "आदित्यः प्रायणीयः स्यादादित्य उदयनीयः" (मै.३.७.२), "आदित्यं प्रायणीयं भवत्यादित्यमुदयनीयम्" (काठ.२३.८) इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि आदित्य लोकों के निर्माण के लिए इन दोनों ही आरोही तथा अवरोही क्रिया-शृंखला के सम्पन्न होने पर ही आदित्य लोकों का निरापद निर्माण हो पाता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की पूर्वोक्त प्रक्रिया को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि

जब वे २४ छन्द रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं, तब विभिन्न प्रकार की नौ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां भी उत्पन्न हो जाती हैं। वे त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न २४ छन्द रश्मियों को तीक्ष्णता प्रदान करती हैं, उस समय विद्युत् का प्राथमिक रूप उत्पन्न हो जाता है, जो उन २४ छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़ने में सहायक होता है। उस विद्युत् के कारण विभिन्न छन्द रश्मियां अव्यक्त दीप्ति से युक्त होकर शुद्ध रूप में प्रकट होने लगती हैं। वह विद्युत् सम्पूर्ण रश्मियों में व्याप्त हो जाती है। उसके बाद वे छन्द रश्मियां परस्पर संगत होती हुई पूर्वोक्तानुसार ३-३ छन्द रश्मियों के समूहों को उत्पन्न करके फिर उनको भी परस्पर संगत करके नवीन-२ रश्मियां उत्पन्न करने लगती हैं। उस समय प्राण एवं अपान की सहायता से वह विद्युत् डार्क एनर्जी की सूक्ष्म रश्मियों को नष्ट कर देती है। उस समय सभी रश्मियों में विद्युत् व्याप्त होकर विभिन्न कणों को प्रेरित एवं नियन्त्रित करने लगती है। यह विद्युत् स्वयं प्राण-अपान एवं सूत्रात्मा वायु के द्वारा नियन्त्रित, प्रकाशित और उत्पन्न होती है। पूर्व में तारों के निर्माण में द्रव्यमान एवं गुरुत्वाकर्षण बल के परिमाण को नियन्त्रित करने के लिए होने वाली क्रियाओं को नियन्त्रित करने में इन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। इन दोनों ही प्रकार की क्रियाओं के सम्यक् संचलन से ही तारों का निर्माण संभव हो पाता है।।

२. यो वै संवत्सरस्यावरोधनं चोद्रोधनं च वेद, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; अतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयोऽवरोधनमुदयनीय उद्रोधनम्।।
स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।
यो वै संवत्सरस्य प्राणोदानौ वेद, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; अतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयः प्राण, उदान, उदयनीयः।।
स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद, य एवं वेद।।८।।

व्याख्यानम्- {अवरोधनम् = अवरुध्यते स्वाधीनं क्रियते येन प्रारम्भरूपेण कर्मणा तत्कर्म। (आचार्य सायणभाष्यम्)। उद्रोधनम् = उद्रुध्यते समाप्यते येन कर्मणा तत्} यहाँ महर्षि कहते हैं कि इन लोकों के निर्माण में जिन कर्मों के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों की स्वच्छन्दता को अवरुद्ध करके उन्हें संगत करना प्रारम्भ किया जाता है, उस आरम्भिक प्रक्रिया तथा जिन कर्मों से रश्मियों के संगत होने को एक सीमा पर पहुँचकर रोका वा नियन्त्रित किया जाता है, वे अवरोधन और उद्रोधन दोनों प्रकार की क्रियाएं जब सम्यग्रूपेण सम्पादित होती हैं, तब इन प्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया निरापदरूप से पूर्णता को प्राप्त होती है। विभिन्न छन्दादि रश्मियों को अतिरात्र अवस्था में अर्थात् अंधकारमुक्त अवस्था में लाने के लिए अवरोधन क्रिया ही प्रायणीय (आरम्भिक) होती है एवं उद्रोधन क्रिया उदयनीय (अंतिम) होती है। यहाँ अवरोधन का तात्पर्य हमारी दृष्टि में अन्य भी है, वह यह कि इस प्रक्रिया में पूर्वोत्पन्न विभिन्न साम रश्मियों और नौ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा असुर तत्त्व के पाश में फँसे विभिन्न पदार्थों को मुक्त और परस्पर संगत करने के लिए असुर रश्मियों के मार्ग और बल को अवरुद्ध किया जाता है, जिससे पदार्थ घनीभूत होने लगता है। उधर उद्रोधन का तात्पर्य हमारी दृष्टि में यह भी है कि इस प्रक्रिया में अतिसंपीडित और संघनित पदार्थ के संघनन और संपीडन की क्रिया को उत्कृष्टता से रोककर अतिरिक्त पदार्थ को ऊपर अर्थात् दूर ही रोक दिया जाता है। इसके कारण लोकों का स्वरूप मर्यादित और संतुलित रहता है, इन दोनों क्रियाओं के सम्यक् संचालन से संवत्सर लोक पूर्णता को प्राप्त करते हैं।।+।।

अब महर्षि लिखते हैं कि पदार्थ को अतिरात्र अवस्था अर्थात् प्रकाशित अवस्था में लाने के लिए प्राण नामक प्राथमिक प्राण प्रायणीय हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्वोक्त क्रियाओं के प्रथम चरण में इसी प्राण की प्रधानता होती है, जिसके कारण आकर्षण प्रधान होकर विभिन्न रश्मियों की संगतीकरण में सुगमता और तीव्रता आती है। उधर उदान नामक प्राण इन क्रियाओं में उदयनीय रूप होते हैं अर्थात् इसकी प्रधानता उत्तरार्द्ध में रहती है, जिसके कारण यह ऊपर की ओर बल लगाकर अर्थात् संपीडित हो रहे पदार्थ की अतिरिक्त मात्रा को ऊपर ही अर्थात् दूर ही रोककर लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को मर्यादित ढंग से सिद्ध करता है। जब यह प्राण और उदान दोनों ही रश्मियां उचित परिस्थिति में विशेष

सक्रिय हो जाती हैं, उस समय पूर्वोक्त संवत्सर लोकों की प्रक्रिया निरापद रूप से पूर्णता को प्राप्त होती है और इन लोकों का निर्माण सुगमता से सम्पन्न हो जाता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारों के निर्माण की पूर्वोक्त प्रक्रिया जव आरम्भिक चरण में होती है, उस समय प्राण नामक रश्मियां अधिक सक्रिय होती हैं, जो अपने आकर्षण वल से विभिन्न छन्द आदि रश्मियों और विभिन्न कणों में आकर्षण वल उत्पन्न करके कॉस्मिक पदार्थ को संघनित करने में विशेष सहयोग करती हैं। जव यह पदार्थ उचित मात्रा में संघनित हो जाता है और नाभिकीय संलयन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। उस समय विभिन्न पदार्थों के अन्दर उदान रश्मियां अधिक तीव्र हो उठती हैं, जिससे वे वाहरी पदार्थ ऐसे प्रतिकर्षण वल से युक्त हो जाते हैं कि वे अतिरिक्त पदार्थ को वाहर ही रोक देते हैं। यहाँ वाहरी पदार्थ से तात्पर्य वह पदार्थ है, जो तारों के परिधि भाग में विद्यमान होता है। इसी कारण वह वाहरी पदार्थ को अन्दर नहीं आने देता और अन्दर स्थित पदार्थ को भी दूर ही रखकर वह उदान सक्रियता वाला भाग दोनों ओर के पदार्थों के वीच एक अवरोधक दीवार के समान वन जाता है। इसके कारण तारों का द्रव्यमान और गुरुत्वाकर्षण वल दोनों ही उचित परिमाण में ही उत्पन्न होते हैं, जिससे तारों का स्वरूप समुचित रूप से निर्मित होता है।

ॐ इति १७.८ समाप्तः ॐ

ॐ इति सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

अष्टादशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

कक्षाओं की अस्थिरता। दस आवरणों के मध्य तीन-तीन छन्द रश्मियों के आवरण की उत्पत्ति। परम स्वर्ग लोक, लोकों की अस्थिरता के निवारण हेतु प्राणापानोदान के आवरण। कुल सत्रह आवरण-क्षेत्र।

१८.५ स्वरसाम-लोक-अभिजित्-विश्वजित्। त्रिवृत्-पञ्चदश-सप्तदश-एकविंश-त्रिणव-स्तोम। गैलेक्सी केन्द्र के चारों ओर सत्रह क्षेत्र, डार्क एनर्जी नियन्त्रण में स्तोमों की भूमिका, अतिगर्म विद्युत् कणों की भी इसमें भूमिका। दिवाकीर्त्य-महादिवाकीर्त्य-विकर्ण-अग्निष्टोम-ब्रह्म साम-पवमान। डार्क एनर्जी नियन्त्रण में वृहद्रथंतर की भूमिका, पांच रश्मियों द्वारा गैलेक्सियों का धारण। प्रातरनुवाक-दिवाकीर्त्य-सौर्यपशु-अन्यङ्ग, उपालम्भ-२१ सामिधेनी-एकविंश। गैलेक्सी केन्द्रों व तारों के गुरुत्वाकर्षण का व्यवस्थित होना। गैलेक्सी केन्द्रों से तारों को ईंधन की कुछ मात्रा में आपूर्ति होना। शतायु-पुरुष-आयु-वीर्य-इन्द्रिय-निवित्। वाधक रश्मियों के ५ भेद। ५१-५१ छन्द रश्मियों की द्विरावृत्ति से गैलेक्सी का धारण, डार्क एनर्जी का इन रश्मियों एवं उष्ण विद्युत् तरंगों द्वारा निवारण, डार्क एनर्जी की ९९ प्रकार की तरंगें। गैलेक्सी केन्द्रों व तारों के चारों ओर रिक्त क्षेत्र में तीव्र प्रकाश, गुरुत्व वल का विद्युत् वल से सम्वंध। 1050

१८.६ दूरोहण-स्वर्गलोक। केन्द्रीय लोक में परिक्रमण में दूरस्थ लोक के स्थायित्व में अधिक काल लगना। हंस-वसु-वेदि-अतिथि-व्योम-ऋत। लोकों की कक्षाओं की व्यवस्था में निचृज्जगती की महती भूमिका, तारों से विभिन्न रश्मियों के उत्सर्जन में भी इसकी भूमिका, सौरमण्डलों व गैलेक्सियों की बाहरी सीमा पानी की लहरों के समान तथा उसमें भी पृष्ठतनाव का होना। सभी लोकों का धारण ईश्वरीय सुनिश्चित नियमानुसार। पञ्चकृष्टी-ब्रह्माण्ड के लोकों की कक्षाओं की स्थिरता में त्रिष्टुप् की भूमिका, छन्द रश्मियों की भ्रान्ति एवं उसका त्रिष्टुप् द्वारा निवारण, त्रिष्टुप् की श्रंखला। कक्षाओं में लोकों का गमन नौकारोहण के समान। तारों पर पांच प्रकार के मुख्य गुरुत्वाकर्षण बल एवं इनकी तीन प्रकार की गतियां। 1067

१८.७ एककाम-स्वर्गकामा-छन्दों के मिथुनों की अनिवार्यता। अनेक लोकों का अपने केन्द्रीय लोक में गिर कर उसी में समा जाना। 1077

१८.८ पुरुष-विषुवान्। कॉस्मिक मेघ के आकार व स्वरूप भेद के अनुसार केन्द्रीय तारों के आकार व स्वरूप भेद, केन्द्रीय तारे का स्वरूप। सभी बारह मास अथवा दस मास रश्मिओं के सक्रिय होने से ही प्राण व छन्द रश्मिों की सक्रियता का होना। विश्वकर्मा-पशु-उपालम्भ-इन्द्र-प्रजापति। डार्क एनर्जी को पूर्ण नियन्त्रित करके ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण धारण में मास रश्मियों की भूमिका। तारों के केन्द्रीय भागों में डार्क एनर्जी पर सर्वाधिक नियन्त्रण। कक्षाओं का पूर्णतः स्थिरीकरण। 1080

ॐ अथ १८.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. ज्योतिर्गौरायुरिति स्तोमेभिर्यन्त्ययं वै लोको ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसौ लोक आयुः।।
स एवैष उत्तरस्त्र्यहः।।
ज्योतिर्गौरायुरिति त्रीण्यहानि, गौरायुर्ज्योतिरिति त्रीणि।।
अयं वै लोको ज्योतिरसौ लोको ज्योतिस्ते एते ज्योतिषी उभयतः संलोकेते।।

{ज्योतिः = विद्युतो दीप्तिः (म.द.य.भा.१८.५०), यज्ज्योतिरतिरात्रः (जै.ब्रा.२.३०५), ज्योतिर्वै हिरण्यम् (तै.सं.५.५.३.४), हिङ्कारेण वै ज्योतिषा देवास्त्रिवृत्ते ब्रह्मवर्चसाय ज्योतिरदधुः (जै.ब्रा.१.६६), ज्योतिर्वै गायत्री (तै.सं.७.५.१.५; कौ.ब्रा.१७.६)। गौः = गावः रश्मिनाम (निघं. १.५), गावो गमनात् (नि.१२.७), अन्नमु गौः (श.७.५.२.१९), गौस्त्रिष्टुक् (तै.सं.७.५.१.५)। आयुः = आयुर्वा उष्णिक् (ऐ.१.५), आयुर्जगती (तै.सं.७.५.१.५), अनुष्टुप् छन्दस्तदायुर्मित्रो देवता (मै.२.१३.१४; काठ.३९.४), आयुर्वै परमः कामः (काठ.३७.१६), आयुस्संवत्सरः (मै.४.६.८; काठ.१०.४), यज्ञो वा आयुः (जै.ब्रा.१.७०; तां.६.४.४), यावदायुस्तावान् प्राणः (मै.४.६.६), वरुण एवायुः संवत्सरो हि वरुणः, संवत्सर आयुः (श.४.१.४.१०), आयुश्च वायुरयनः (नि.१०.३)}

व्याख्यानम्- पूर्व अध्याय के प्रसंग को विस्तृत करते हुए कहते हैं कि विभिन्न स्तोमों अर्थात् छन्द रश्मियों के द्वारा 'ज्योति', 'गौ' एवं 'आयु' का निर्माण होता है। पूर्व अध्याय में विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संपीडन एवं संगमन से नाना प्रकार की रश्मियों एवं विभिन्न कणों वा लोकों के निर्माण की चर्चा करते हुए कहते हैं कि पूर्व क्रियाओं से ३ प्रकार की स्थितियों का निर्माण होता है-

(१) ज्योतिः = विभिन्न छन्द रश्मियों के प्रारम्भिक चरण के संपीडन एवं संगमन की क्रिया में गायत्री छन्द रश्मियों की अधिकता होती है। पूर्वोक्तानुसार विभिन्न "हिम्" रश्मियों के कारण विभिन्न छन्द रश्मियां परस्पर संगत होकर ऐसा सूक्ष्म तेज उत्पन्न करती हैं, जिससे अन्धकार अवस्था का अतिक्रमण होकर बहुत हल्की विद्युत् दीप्ति, जिसमें परस्पर आकर्षण एवं रश्मियों के फैलाव की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर अति सूक्ष्म विद्युत् तत्त्व भी उत्पन्न हो जाता है, उत्पन्न हो जाती है। इसी विद्युत् की अतिसूक्ष्म ज्योति के कारण यह अवस्था ज्योतिष्टोम भी कहलाती है, जिसका आशय है विभिन्न स्तोमों अर्थात् छन्द रश्मियों के द्वारा उत्पन्न प्रारम्भिक ज्योति। क्योंकि यह ज्योति के प्रादुर्भाव का प्रथम चरण है, इस कारण इसे अतिरात्र भी कहा जाता है।

(२) गौः = इस अवस्था में विभिन्न छन्द रश्मियां परस्पर संगत होकर विभिन्न विकिरणों का रूप धारण करने लगती हैं। इस चरण में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की अधिकता होती है। ये विकिरण अति तीव्र रूप से गतिमान् होने के कारण ही 'गौ' कहलाते हैं। ये विकिरण अन्य विभिन्न परमाणुओं के द्वारा अवशोषित होने और उन्हें बल प्रदान करने के कारण और अनेक प्राण वा छन्द रश्मियों के उनकी ओर झुकते हुए आने के कारण "अन्न" भी कहलाते हैं।

(३) आयुः - इस अवस्था में उष्णिक्, जगती एवं अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता रहती है। इसके साथ ही इस अवस्था में सभी प्रकार के प्राथमिक प्राण, विशेषकर प्राण, अपान, उदान और व्यान की

प्रधानता भी होती है। इस अवस्था में पदार्थ के अन्दर सर्वाधिक आकर्षण बल उत्पन्न होकर संयोग की क्रिया अतितीव्र होने लगती है। व्यान नामक प्राण इस स्थिति में पदार्थ को तीव्रता से संपीडित करने में अन्य रश्मियों के साथ मिलकर विशेष भूमिका निभाता है।

यहाँ महर्षि इन तीनों अवस्थाओं को क्रमशः भूलोक, अन्तरिक्षलोक एवं आदित्यलोक बतलाते हैं। इस विषय में एक अन्य तत्त्वदर्शी ऋषि ने कहा है- "ज्योतिष्टोमं प्रथममुप यन्त्यस्मिन्नेव तेन लोके प्रति तिष्ठन्ति गोष्टोमं द्वितीयमुप यन्त्यन्तरिक्ष एव तेन तिष्ठन्त्यायुष्टोमं तृतीयमुप यन्त्यमुष्मिन्नेव तेन लोके प्रति तिष्ठन्तीयं वाव ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसावायुर्यदेतान्स्तोमानुपयन्त्येष्वेव तल्लोकेषु सत्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति" (तै.सं.७.४.११.१)। यहाँ दोनों ही ऋषियों का आशय एक ही है, जिससे यह संकेत मिलता है कि उस समय ब्रह्माण्ड का पदार्थ तीन भागों में बंट जाता है अथवा प्रकट होता है, जिनमें से प्रथम पूर्वोक्त ज्योतिरूप भाग यद्यपि हल्की दीप्ति से युक्त होता है, पुनरपि वह दीप्ति अव्यक्तवत् ही होती है। उस ऐसे पदार्थ में विभिन्न अप्रकाशित परमाणुओं की प्रधानता होती है। इनकी उत्पत्ति की प्रक्रिया पूर्व में अनेकत्र समझायी गई है। इन्हीं भागों में कालान्तर में भूलोक अर्थात् अप्रकाशित विशाल लोकों की भी उत्पत्ति होती है।

दूसरे भाग को अन्तरिक्ष इसलिए कहा है कि इस भाग में विभिन्न पदार्थों के संयोग से विभिन्न प्रकार के विकिरण उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण उस पदार्थ के अन्दर विशाल अवकाश उत्पन्न होकर अन्तरिक्ष की उत्पत्ति होती है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के विकिरण आदि पदार्थों का निरन्तर आवागमन होता रहता है और ब्रह्माण्ड में जो पदार्थ विरल रूप में सर्वत्र फैला हुआ था, वह एकत्र होकर सघन क्षेत्रों का निर्माण करने लगता है।

तीसरा क्षेत्र वह होता है, जो आयु रूप अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियों एवं उष्णिक्, जगती व अनुष्टुप् छन्द आदि रश्मियों का सघन रूप होकर अत्यन्त तीव्र आकर्षण बलों से युक्त होता है। इसके कारण इस भाग में विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न प्राथमिक प्राणों एवं छन्द रश्मियों के साथ **तीव्रता से संघनित होकर** विभिन्न तारों के **निर्माण का बीजारोपण** करते हैं। यहाँ **इस बात से** यह भी सिद्ध होता है कि **अप्रकाशित लोकों के निर्माण की सामग्री की उत्पत्ति तारों के निर्माण की सामग्री से पहले होती है।** इस प्रकार ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ के क्रमशः ये तीन भाग उत्पन्न होते हैं, जो परस्पर एक-दूसरे के निकट ही विद्यमान होते हैं।।

पूर्वोक्त तीनों भाग न्यूनाधिक प्रकाशयुक्त होने से अहन् रूप कहलाते हैं। वे तीनों भाग षडह अर्थात् ६ अहन् रूप समुदाय का पूर्वार्द्ध हैं। इसके उत्तरार्द्ध में भी इसी प्रकार के ३ क्षेत्र उत्पन्न होते हैं, जो कुल मिलाकर ६ क्षेत्र हो जाते हैं। ये ६ क्षेत्र परस्पर एक-दूसरे के निकट ही स्थित होते हैं और एक अदृष्ट बंधन से बंधे रहते हैं। यह सम्पूर्ण समुदाय एक षडह कहलाता है।

अब इन ६ भागों का क्रम बतलाते हुए कहते हैं कि इस षडह के पूर्वार्द्ध में सर्वप्रथम पूर्वोक्त ज्योतिरूप स्थिति, पुनः गौ रूप स्थिति, तदुपरान्त आयु रूप स्थिति होती है तथा इसके उत्तरार्द्ध में पहले गौ रूप स्थिति फिर आयु रूप स्थिति और अन्त में ज्योतिरूप स्थिति होती है। इस प्रकार यह षडह रूप विशाल क्षेत्र निम्न प्रकार की संरचना का निर्माण करता है।।
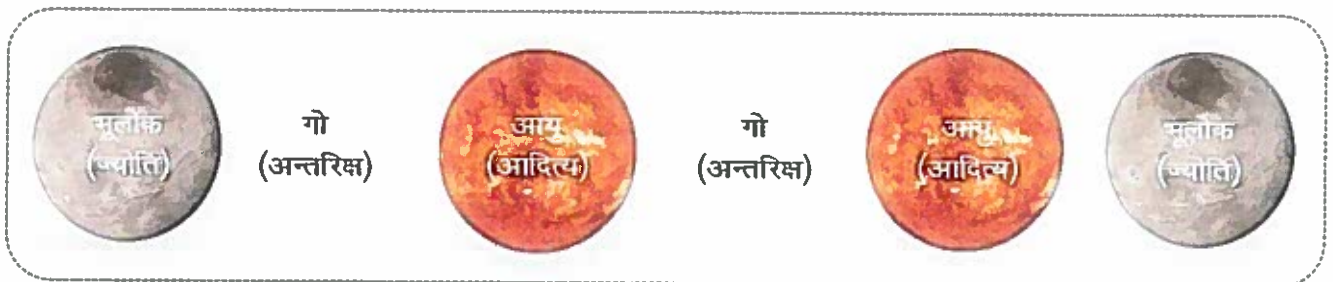
चित्र १८.१ षडह समुदाय

इस चित्र से स्पष्ट है कि षडह एक ऐसा समुदाय है, जिसके दोनों ओर पूर्वोक्त ज्योतिर्मयी अवस्था विद्यमान होती है। यह ज्योतिर्मय भाग ही कालान्तर में अप्रकाशित लोकों को जन्म देता है। इस समुदाय के मध्य में दो भाग अन्तरिक्ष के रूप में विद्यमान हैं, जबकि दो भाग पूर्वोक्त आयुष्टोमों का एक युग्म है। अन्तरिक्ष भाग में विभिन्न प्रकार के विकिरण आदि पदार्थ अति विरल रूप में विद्यमान हैं। ध्यातव्य है कि पूर्वोक्त तीन भागों में पूर्वोक्त पदार्थों एवं उनकी विशेषताओं के अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि ज्योति भाग में प्राण, गौ भाग में अपान और आयु भाग में व्यान की प्रधानता अधिक होती है॥+॥

यहाँ महर्षि पुनः उसी बात को कहते हैं, जो हमने चित्र द्वारा स्पष्ट की है। इस षडह रूप समुदाय के दोनों सिरों पर पूर्वोक्त ज्योतिर्लोक विद्यमान होते हैं, जो एक-दूसरे के आमने-सामने होते हैं, परन्तु उनके बीच में दो आयुर्लोकों का व्यवधान अवश्य होता है, तब समूह होने का तात्पर्य यह हुआ कि वे दोनों ज्योतिरूप लोक परस्पर आयुर्लोकों के साथ एक सरल रेखा में ही विद्यमान होते हैं। इसका दूसरा आशय हमें यह प्रतीत होता है कि यहाँ ऋषि यह कहना चाहते हैं कि ज्योति अर्थात् भूलोक के साथ-२ आदित्यलोक भी ज्योतिर्लोक के पूर्वोक्त सभी गुणों से युक्त होते हैं। इस प्रकार वे दोनों प्रकार के लोक, जिनकी एक षडह रूप समुदाय में कुल संख्या ४ होती है, वे पदार्थ के सघन होते हुए स्वरूप के कारण अच्छी प्रकार से अनुभवगम्य हो जाते हैं और दोनों ही न्यूनाधिक प्रकाश से युक्त हो जाते हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- तारे तथा पृथिवी आदि लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को अन्य प्रकार से इस प्रकार समझा जा सकता है।

जब विभिन्न छन्द तथा प्राण आदि रश्मियों का संपीडन होने लगता है, उस समय सर्वप्रथम मूलकणों की उत्पत्ति होती है, जो विद्युत् आवेश आदि अनेक गुणों से युक्त होते हैं। ऐसे मूलकण जिस क्षेत्र में प्रधानता के साथ विद्यमान होते हैं, वे क्षेत्र **भूलोक** कहलाते हैं। कुछ क्षेत्रों में ये कण अपने प्रतिकणों के साथ मिलकर ऊर्जा उत्पन्न करने लगते हैं, जिससे वह क्षेत्र **अन्तरिक्ष** के रूप में परिवर्तित होकर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के आवागमन से भर जाता है। तीसरे क्षेत्र वे होते हैं, जहाँ प्राण और छन्द रश्मियों का अत्यन्त सघन रूप विद्यमान होता है। ऐसे लोक अपने आस-पास के पदार्थ को अधिक मात्रा में आकर्षित करने लगते हैं। इनमें से प्रथम प्रकार के क्षेत्रों में कालान्तर में पृथिवी जैसे अप्रकाशित लोकों के जन्म की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और तीसरे प्रकार के क्षेत्रों में कालान्तर में **तारों** के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इस प्रक्रिया को अगले खण्डों में समझा जा सकता है। इन तीनों प्रकार के क्षेत्रों का युग्म रूप होकर चित्रानुसार आकृतियां इस ब्रह्माण्ड में बनने लगती हैं।
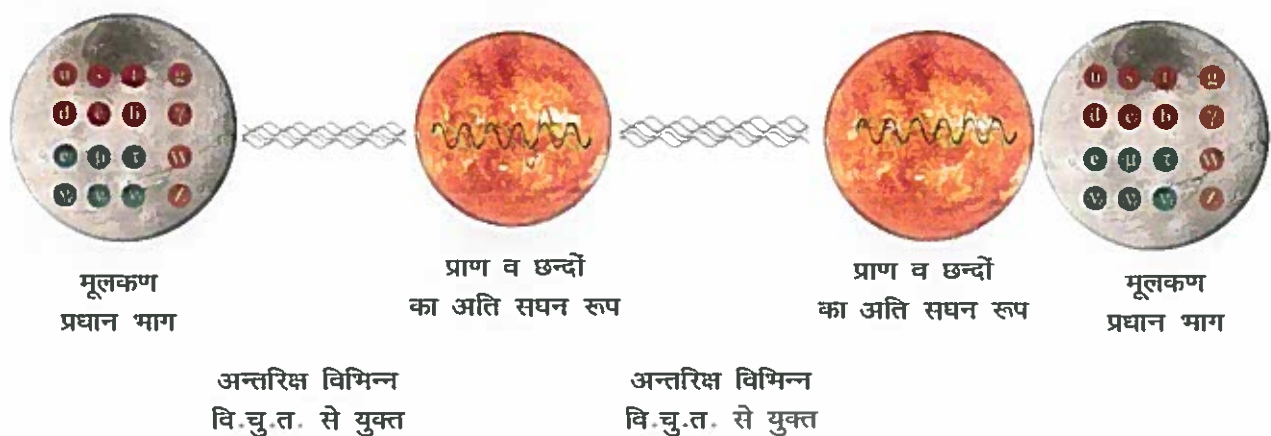
चित्र १८.२ षडह रूपी संयुक्त क्षेत्र

इस चित्र से यह नहीं समझना चाहिए कि उनमें दर्शाए चारों वृत्ताकार भाग और अन्तरिक्ष रूप में दर्शाये दो भाग विशुद्ध रूप में उनमें दर्शाये पदार्थों से ही युक्त होते हैं, अन्य पदार्थों का उनमें

मिश्रण नहीं होता। वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण पदार्थ मिश्रित रूप में न्यूनाधिक रूप से सम्पूर्ण क्षेत्र में विद्यमान रहता है। यहाँ क्षेत्रों का विभाजन और उनकी आकृतियों का सीमांकन पदार्थों की प्रधानता के आकार पर किया गया है।।

२. तेनैतेनोभयतोज्योतिषा षळहेन यन्ति; तद्यदेतेनोभयतोज्योतिषा षळहेन यन्त्यनयोरेव तल्लोकयोरुभयतः प्रतितिष्ठन्तो यन्त्यस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्चोभयोः।। परियद्वा एतद्देवचक्रं यदभिप्लवः षळहस्तस्य यावभितोऽग्निष्टोमौ तौ प्रधी, ये चत्वारो मध्य उक्थ्यास्तन्नभ्यम्।।
गच्छति वै वर्तमानेन यत्र कामयते, तत्स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।। यो वै तद्वेद यत्प्रथमः षळहः; स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; यस्तद्वेद यद्द्वितीयो, यस्तद्वेद यत्तृतीयो, यस्तद्वेद यच्चतुर्थो, यस्तद्वेद यत्पंचमः।।१।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त षडह समुदाय रूप विशाल क्षेत्र, जिसमें छः पृथक्-२ क्षेत्र विद्यमान होते हैं, समूह रूप में इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उत्पन्न और व्याप्त होने लगते हैं। उन समुदाय रूप विशाल क्षेत्रों के दोनों ओर पूर्वोक्त ज्योतिर्मय भाग विद्यमान होते हैं। उस समय यह ज्योतिर्मय भाग अपने आकर्षण बल से मध्य में स्थित आयुष्टोम भागों (आदित्यों) को भी अपने साथ बांधे रखते हैं। जब वे आयुष्टोम भाग भी पूर्वोक्तानुसार परमकाम अर्थात् प्रबल आकर्षण बलयुक्त होकर सम्पूर्ण षडह समुदाय को ज्योतिर्मय भागों के साथ थामे रखते हैं, उस समय ये ज्योतिर्मय भाग दीप्तियुक्त दिखाई देते हैं। उस समुदाय में विभिन्न प्राथमिक प्राण और छन्द रश्मियां आयुष्टोम अर्थात् आदित्य रूप भागों में सघन रूप में विद्यमान होती हैं, पुनरपि वे सम्पूर्ण क्षेत्र में गमनागमन करते हुए व्याप्त हो जाती हैं। जो ज्योतिष्टोम अर्थात् भू संज्ञक भाग है, उसमें पूर्व में प्राण और छन्द रश्मियों की अधिक सघनता से ही विभिन्न परमाणुओं की उत्पत्ति होती है। आदित्य संज्ञक क्षेत्रों में परमाणुओं की उत्पत्ति बाद में प्रारम्भ होती है। वे प्राण और छन्द रश्मियां तीनों ही प्रकार के क्षेत्रों में, विशेषकर भूलोक और आदित्य लोकों में निरन्तर प्रवाहित और प्रतिष्ठित होती रहती हैं। यह कहना कठिन है कि इस षडह समुदाय के विभिन्न क्षेत्रों का आकार प्रकार क्या होता है? हाँ इतना निश्चित है कि इन क्षेत्रों का विभाग स्पष्ट रूप से अवश्य हो जाता है।।

यहाँ महर्षि उस षडह रूप समुदाय को 'अभिप्लव' नाम देते हैं, इससे संकेत मिलता है कि ऐसे समुदाय रूप क्षेत्र इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। यह षडह रूप क्षेत्र देवचक्र की भाँति सब ओर सतत परिवर्तमान रहता है। इसका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि यह षडह रूप समुदाय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परिभ्रमण करते रहता है। इसके साथ ही वह समुदाय स्वयं भी अपने अक्ष पर घूर्णन करता रहता है। उस समय उनके अन्दर विद्यमान ज्योतिर्लोक अर्थात् भूलोक दूसरे भागों की अपेक्षा अधिक प्रकाशमान् दिखाई देते हैं, इस कारण उन दोनों ही भागों को यहाँ अग्निष्टोम कहा गया है। यह अग्निष्टोम रूप प्रदीप्त भाग घूमते हुए षडह रूप लोकों की परिधि रूप दिखाई देते हैं, किंवा यह भाग ही अपने अन्दर विद्यमान अन्य चारों भागों को धारण किये रहते हैं। वे चारों भाग, जिनमें दो आयुर्लोक एवं दो अन्तरिक्ष लोक होते हैं, उक्थ्य कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इन भागों में प्राण एवं अन्न संज्ञक अनेक प्रकार की छन्द रश्मियां एवं प्राथमिक प्राण रश्मियां विद्यमान होती हैं, परन्तु वे बाहरी ज्योतिष्टोम भागों की अपेक्षा अव्यक्त रूप में होती हैं, इसी कारण एक ऋषि ने कहा है- अयः्ह वा अस्यैषोऽनिरुक्तः प्राणो यदुक्थ्यः (काश.५.२.३.१) इसी कारण यह भाग ज्योतिर्मय भागों की अपेक्षा कम प्रकाशमान् होता है। ये चारों भाग नाभिरूप कहलाते हैं, जो अपने आकर्षण बंधन के द्वारा सब को बांधे रखते हैं। इस भाग में त्रिष्टुप् रश्मियों की प्रधानता होने से यह क्षेत्र नाभिरूप होता है। इसी कारण कहा है "अथ त्रिष्टप् नाभिरेव सा" (जै.ब्रा.१.२५४)। इस क्षेत्र में प्राण और अन्न संज्ञक रश्मियां परस्पर संगत होती रहती हैं। इसके साथ ही वे रश्मियां बाहरी ज्योतिर्मय भागों को भी सतत पोषण प्रदान करती हैं।।

यह षडह रूप समुदाय अपनी चक्रण गतियों के द्वारा इस ब्रह्माण्ड में स्वतंत्रतापूर्वक सर्वत्र

विचरता रहता है। यद्यपि इसके विचरण की चर्चा पूर्व में भी आ चुकी है, परन्तु यहाँ इतना स्पष्ट किया गया है कि उसकी गति स्वतंत्र विचरण के रूप में होती है। जब ब्रह्माण्ड में इस प्रकार की स्थिति बन जाती है अर्थात् षडह रूप क्षेत्र असंख्य मात्रा में यत्र-तत्र विचरण करने लगते हैं, तब उनके संयोग से विभिन्न संवत्सर अर्थात् नेव्यूला आदि लोकों की उत्पत्ति होने लगती है।।

ये षडह रूप समुदाय क्रमशः उत्पन्न होकर अर्थात् पहले एक समुदाय निर्मित होता हैं, उसके पश्चात् क्रमशः १-१ और उत्पन्न होकर पाँच समुदायों की उत्पत्ति होती है। ये पाँचों समुदाय परस्पर मिलकर एक बड़े युग्म का निर्माण करते हैं, जिनसे सम्पूर्ण महा अण्ड अर्थात् नेव्यूला का निर्माण होता है किंवा एक नेव्यूला में ऐसे पाँच षडह रूप अनेक विशाल क्षेत्र विद्यमान होते हैं। ये पाँचों मिलकर आगे की उत्पत्ति किस प्रकार करते हैं, इसको अगले खण्ड में दर्शाया जाएगा।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त आकृतियों वाले विशाल क्षेत्र इस ब्रह्माण्ड में असंख्य मात्रा में एक-२ करके क्रमशः उत्पन्न होने लगते हैं। ये विशाल क्षेत्र अपने अक्ष पर घूर्णन करने के साथ ब्रह्माण्ड में सर्वत्र स्वतंत्र विचरण करने लगते हैं। इनके बाहरी भाग अन्दर के भागों की अपेक्षा अधिक दीप्तिमान् प्रतीत होते हैं पुनरपि आभ्यन्तर क्षेत्र अधिक आकर्षण बलयुक्त होते हैं। यह सम्पूर्ण समुदाय परस्पर आकर्षण बलों के कारण बँधा हुआ रहता है। धीरे-२ यह समुदाय पाँच की संख्या में परस्पर मिलकर एक बड़ा समूह निर्मित करते हैं और उन समूहों से सारा ब्रह्माण्ड भर जाता है। इन समूहों के भी स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने से इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र समान स्थिति वा घनत्व नहीं होता है, बल्कि कहीं सघन, कहीं विरल, कहीं अत्यन्त विरल क्षेत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बन जाते हैं। इस प्रकार की असमान स्थिति नेव्यूलाओं के निर्माण के समय अथवा निर्मित नेव्यूलाओं में भी यही स्थिति होती है।।
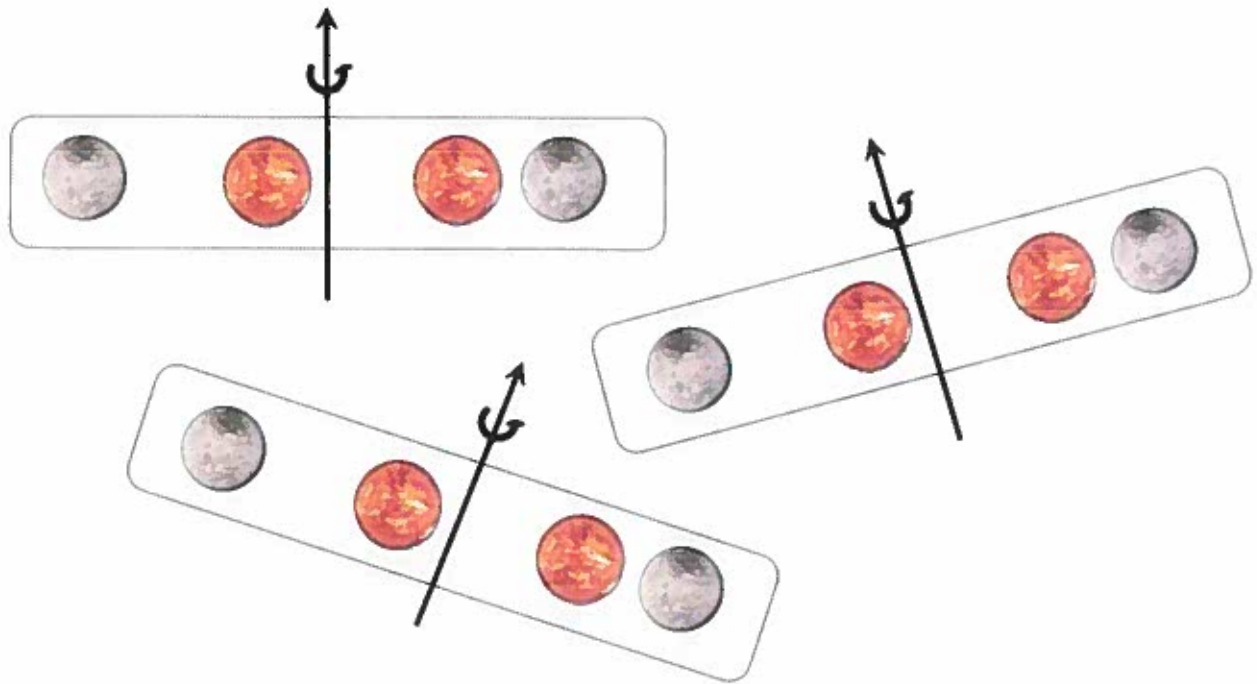
चित्र १८.३ विशाल क्षेत्रों का अपने अक्ष पर घूर्णन

ॐ इति १८.१ समाप्तः ॐ

ॐ अथ १८.२ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. प्रथमं षळहमुपयन्ति; षळहानि भवन्ति; षड्वा ऋतव ऋतुश एव तत्संवत्सरमाप्नुवन्त्यृतुशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।
द्वितीयं षळहमुपयन्ति; द्वादशाहानि भवन्ति; द्वादश वै मासा, मासश एव तत्संवत्सरमाप्नुवन्ति; मासशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।
तृतीयं षळहमुपयन्त्यष्टादशाहानि भवन्ति; तानि द्वेधा नवान्यानि नवान्यानि; नव वै प्राणा, नव स्वर्गा लोकाः, प्राणांश्चैव तत्स्वर्गांश्च लोकानाप्नुवन्ति, प्राणेषु चैव तत्स्वर्गेषु च लोकेषु प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।
चतुर्थं षळहमुपयन्ति; चतुर्विंशतिरहानि भवन्ति; चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासा, अर्धमासश एव तत्संवत्सरमाप्नुवन्त्यर्धमासशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।।

व्याख्यानम्- {ऋतवः = ऋतव उपसदः (श.१०.२.५.७), ऋतवो वै मरुतः (मै.४.६.८), अग्नयो वाऽ ऋतवः (श.६.२.१.३६)। मासाः = मासा उपसदः (श.१०.२.५.६)। अर्द्धमासा = अर्द्धमासा उपसदः (श.१०.२.५.५)} पूर्वोक्तानुसार जब ब्रह्माण्ड में प्रथम षडह रूप समुदाय की उत्पत्ति होती है, उस समय कुल छः अहन् अर्थात् प्रकाशयुक्त लोक उत्पन्न और सक्रिय होते हैं। उस समय असुर पदार्थ भी उन लोकों पर प्रहार करता है। उस समय १.२३.२ में वर्णित - (१.) "या ते अग्नेऽयाशया तनूः" (वा.सं. ५.८.१), (२.) "या ते अग्ने रजाः शया तनूः"........(वा.सं.५.८.२), (३.) "या ते अग्ने हरःशय .....(वा.सं. ५.८.३)" की उत्पत्ति २-२ बार होती है। इस प्रकार ये ६ निचृद् बृहती छन्द रश्मियां उस षडह रूप समुदाय में उत्पन्न होती हैं। ये छः छन्द रश्मियां २.४१.१ में वर्णित 'ओम्', 'भूः', 'भुवः' एवं 'सुवः', इनके छः अक्षर, जो 'तूष्णींशंस' रश्मियों के रूप में जाने जाते हैं, से मिलकर छः ऋतु रश्मियों का निर्माण करती हैं। इस निर्माण की प्रक्रिया में मनस्तत्व एवं मूलतः चेतन तत्त्व परमात्मा रूपी धाता की सर्वोच्च भूमिका होती है। इसी कारण एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा- "धाता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्" (तै.सं.१.७.११.१)। उपर्युक्त निचृद्बृहती छन्द रश्मियां 'उपसद्' कहलाती हैं और यह 'उपसद्' ही ऋतु रश्मियों में परिवर्तित होती हैं। ये 'उपसद्' रूपी ऋतु रश्मियां वज्र रूप होकर असुर तत्त्व को नियन्त्रित करके विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं उपर्युक्त अहन् रूप क्षेत्रों को संगत करने में सहयोग करती हैं। इसी कारण इन 'उपसद्' रश्मियों के विषय में ऋषियों ने कहा है- "वज्रा वाऽउपसदः" (श.१०.२.५.२)। वीर्यं वाऽउपसदः (काठ.२६.२) इस प्रकार ये छः उपसद् संज्ञक ऋतु रश्मियां, जिनमें उपर्युक्तानुसार 'ओम्' आदि एकाक्षरा रश्मियां एक-२ करके सम्मिलित होती हैं, वे अपने तेज और ऊष्मा से युक्त प्रभाव के द्वारा असुर रश्मियों को नियन्त्रित करके संवत्सर अर्थात् विभिन्न पदार्थों को संगत करके लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को गति देती हैं और वह सम्पूर्ण षडह रूप प्रकाशित क्षेत्र उस संवत्सर प्रक्रिया में ही प्रतिष्ठित हो जाता है, साथ ही वह षडह रूप क्षेत्र सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में पूर्वोक्तानुसार विचरण करने लगता है।।

इसके पश्चात् द्वितीय षडह रूप समुदाय तदवत् ही उत्पन्न होता है। अब इन दोनों षडह रूप क्षेत्रों में कुल मिलाकर १२ अहन् अर्थात् प्रकाशित लोक विद्यमान होते हैं। जब ये दोनों ही षडह परस्पर संयुक्त हो जाते हैं, तब इनमें उपर्युक्त निचृद् बृहती छन्द रश्मियां १२ की संख्या में उत्पन्न हो जाती हैं।

चित्र १८.४ षडह युग्म

वे १२ छन्द रश्मियां, जो उपसद् संज्ञक ही होती हैं, मास रश्मियों के समान व्यवहार करते हुए षडह युग्म के अन्दर असुर तत्त्व के प्रभाव को पूर्ववत् नष्ट वा नियन्त्रित करके विभिन्न पदार्थों को परस्पर संगत करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। ये मास रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मि आदि पदार्थों के संगत होते समय स्वयं अपनी हवि देकर उनको सम्यग् रूप से धारण करके परस्पर मिलाने में सहयोग करती हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- मासाः सन्धानानि (तै.सं.७.५.२५.१), मासा हवींषि (श. ११.२.७.३)। इस प्रकार ये १२ मास रश्मियां क्रमशः उत्पन्न होकर उस षडह युग्म में व्याप्त हो जाती हैं और संवत्सर अर्थात् विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में प्रतिष्ठित हो जाती हैं। वस्तुतः पूर्वोक्त ऋतु रश्मियां ही इस युग्म में मास रश्मियों का प्रभाव दिखलाती हैं। यहाँ षडह के लोकों की संख्या की ऋतु व मास की संख्या से साम्यता रहती है। उस समय की स्थिति को अगले खण्ड में निम्न चित्रानुसार दर्शाया गया है।।

जब तीन षडह परस्पर संयुक्त होते हैं, तब कुल १८ अहन् संज्ञक लोक उनमें विद्यमान होते हैं। उन तीनों षडह रूप समुदायों के परस्पर संयुक्त होने पर उन १८ अहन् रूप लोकों के दो भाग होकर ६-६ लोकों के दो समूह उत्पन्न होते हैं, जिनमें ६ प्राण और ६ स्वर्ग लोक कहलाते हैं। इस विषय में एक अन्य ऋषि ने कहा है-

नवैतान्यहानि भवन्ति। नव वै सुवर्गा लोकाः। यदेतान्यहान्युपयन्ति। नवस्वेव तत्सुवर्गेषु लोकेषु सत्रिणः प्रतितिष्ठन्तो यन्ति।। (तै.ब्रा.१.२.२.१)

इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- "......अष्टाभिर्लोकपालैः परिपालिता अष्टसंख्याकाः स्वर्गा लोकास्तेषां मध्ये कश्चिदूर्ध्वदिग्वर्ती स्वर्ग इत्येवं नवसंख्याकाः स्वर्गाः।......." अब स्वर्ग लोक के विषय में ऋषियों का कथन है- अतिरात्रेण वै देवाः ऊर्ध्वा स्वर्गं लोकमायन् (जै.ब्रा.२. ११०), आहवनीयः स्वर्गो लोकः (मै.१.१०.७), पशुना वै देवाः सुवर्गं लोकमायन् (तै.सं.६.३.१०.२) इन सब वचनों से यह सिद्ध होता है कि विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियों की प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ एवं परस्पर संगम से जिन लोकों का निर्माण होता है तथा जिनमें न्यूनाधिक प्रकाश की मात्रा अवश्य विद्यमान होती है, वे स्वर्गलोक कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि हमने इस ग्रन्थ में प्रायः सूर्यादि तारों के केन्द्रीय भाग को ही स्वर्गलोक कहा है, परन्तु इस प्रकरण में षडह के अन्दर विद्यमान भूलोक और आदित्यलोक दोनों ही स्वर्गलोक कहलाते हैं, ऐसा हमारा मत है। इसी आधार पर नौ स्वर्ग लोकों की गणना संभव है, अन्यथा नहीं। यद्यपि इन तीन षडह में कुल मिलाकर १८ लोक अर्थात् क्षेत्र होते हैं, जिनमें से ६ लोक अन्तरिक्ष कहलाते हैं और शेष १२ में ६ भूलोक और ६ आदित्य लोक होते हैं। इन १२ लोकों से ६ स्वर्ग लोक कैसे बनते हैं, इसे निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

चित्र १८.५ प्रथम स्थिति

इसमें कुल १२ स्वर्गलोक हैं, जिनमें ६ भूलोक, ६ आदित्यलोक तथा ६ लोक अन्तरिक्ष हैं। अव अग्रिम स्थिति नीचे दिए गए चित्र में समझें।
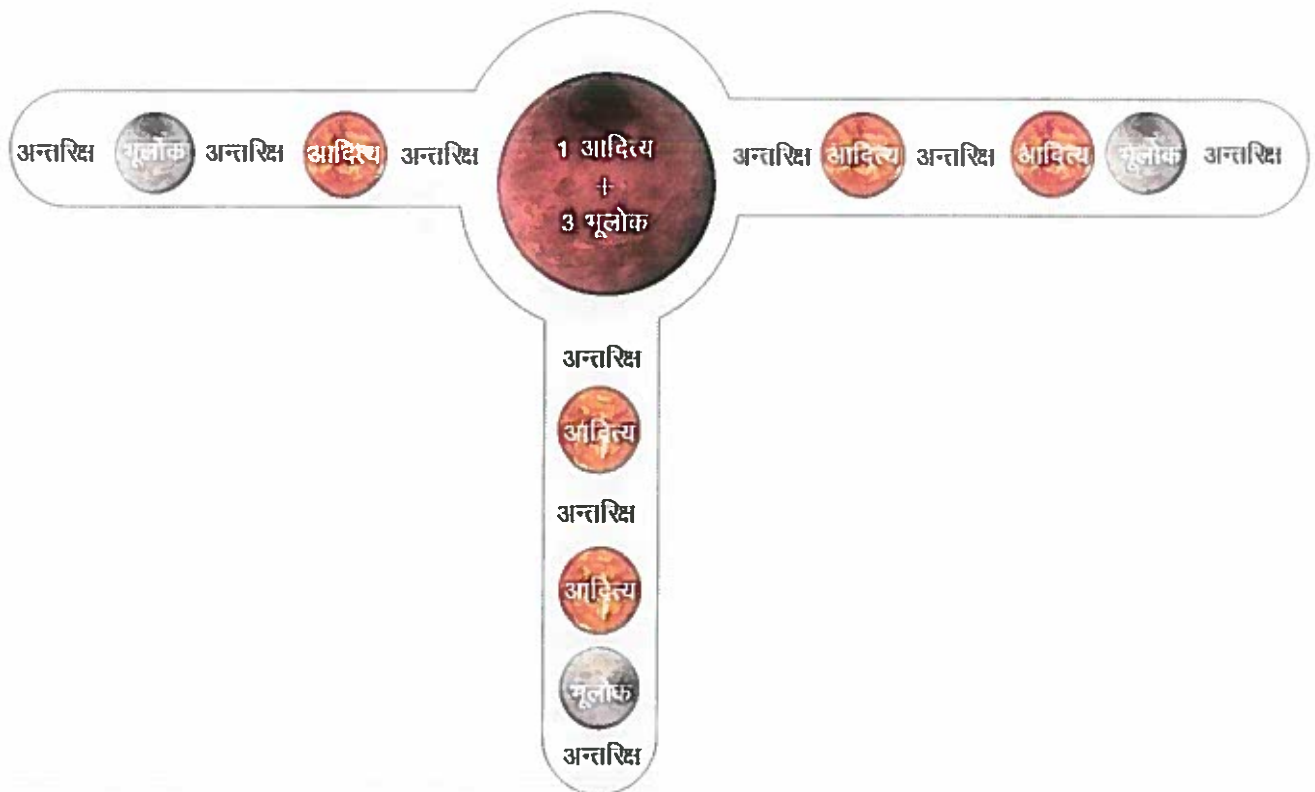
चित्र १८.६ द्वितीय स्थिति

इसमें कुल ६ स्वर्ग लोक हैं, जिनमें से तीसरा स्वर्ग लोक, ३ भूलोक तथा एक आदित्य लोक को मिलाकर बृहत् स्वर्ग लोक बनकर ऊपर की ओर उठ जाता है किंवा यह सबके केन्द्र में स्थित हो जाता है। इससे अतिरिक्त ६ अन्तरिक्ष लोक हैं। अन्तरिक्ष लोक के विषय में कहा गया है- अन्तरिक्षं वै सर्वेषां देवानामायतनम् (श.१४.३.२.६), अन्तरिक्षे वयाꣳसि (तै.सं.३.२.८.६), पशवोऽन्तरिक्षम् (काठ.६.८), प्राणो वा अन्तरिक्षम् (तै.सं.५.६.८.५; जै.ब्रा.१.३०७) इन आर्ष वचनों से यह प्रमाणित होता है कि विविध प्राणों व छन्दादि रश्मियों से भरा हुआ अन्तरिक्ष स्वयं प्राण स्वरूप ही होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि छन्द और मरुद् आदि रश्मियां भी प्राण रूप ही होती हैं, इस कारण अन्तरिक्ष भी प्राण रूप होकर ६ भागों में प्रकट होता है, जैसा कि पूर्व चित्र में दिखाया गया है। इसी कारण ग्रन्थकार ने ३ पडह के सम्मेलन से ६ प्राण और ६ स्वर्ग लोकों के रूप में विभाग होना बतलाया गया है। इसी युग्म में ३ भूलोक तथा एक आदित्य को मिलाकर एक बृहत् स्वर्ग लोक का निर्माण होकर १२ स्वर्ग लोकों में से ३ संख्या घट जाती है। उधर इस युग्म के ३ सिरों पर एक-२ अन्तरिक्ष लोक की संख्या बढ़ जाती है, जिससे अन्तरिक्ष अर्थात् प्राण लोक ६ के स्थान पर ९ हो जाते हैं। हमारे मत में इस प्रकार के संयोग से उत्पन्न प्राणतत्त्वों का ९ क्षेत्रों में विभाजन हो जाता है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण क्षेत्र में प्राणरूप अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं किंवा वह सम्पूर्ण संयुक्त क्षेत्र प्राण अर्थात् अन्तरिक्ष लोक और स्वर्ग लोक में ही प्रतिष्ठित हो जाता है। यहाँ ७ प्रकार की छन्द रश्मियां, ११ प्राथमिक प्राण रश्मियों का एक समूह और मनस्तत्त्व रूपी महाप्राण, ये कुल मिलाकर नौ प्राण होते हैं। विकल्प के रूप में ७ छन्द रश्मियां एवं प्राथमिक प्राणों में से प्राणापानयुग्म और व्यान अथवा प्राणोदान युग्म और व्यान का ग्रहण करके भी नौ प्राण माने जा सकते हैं। यह भी एक विकल्प है, जो अन्तरिक्ष के स्थान पर ग्रहण किया जा सकता है। यह सम्पूर्ण समूह ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विचरण करता रहता है और ऐसे अनेक समूह उत्पन्न होते रहते हैं।।

इसके पश्चात् प्रथम कण्डिका में वर्णित तीन निचृद् बृहती छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो ८-८ बार आवृत्त होती हैं। इस प्रकार ये २४ छन्द रश्मियां हो जाती हैं, इनकी उत्पत्ति उस समय होती
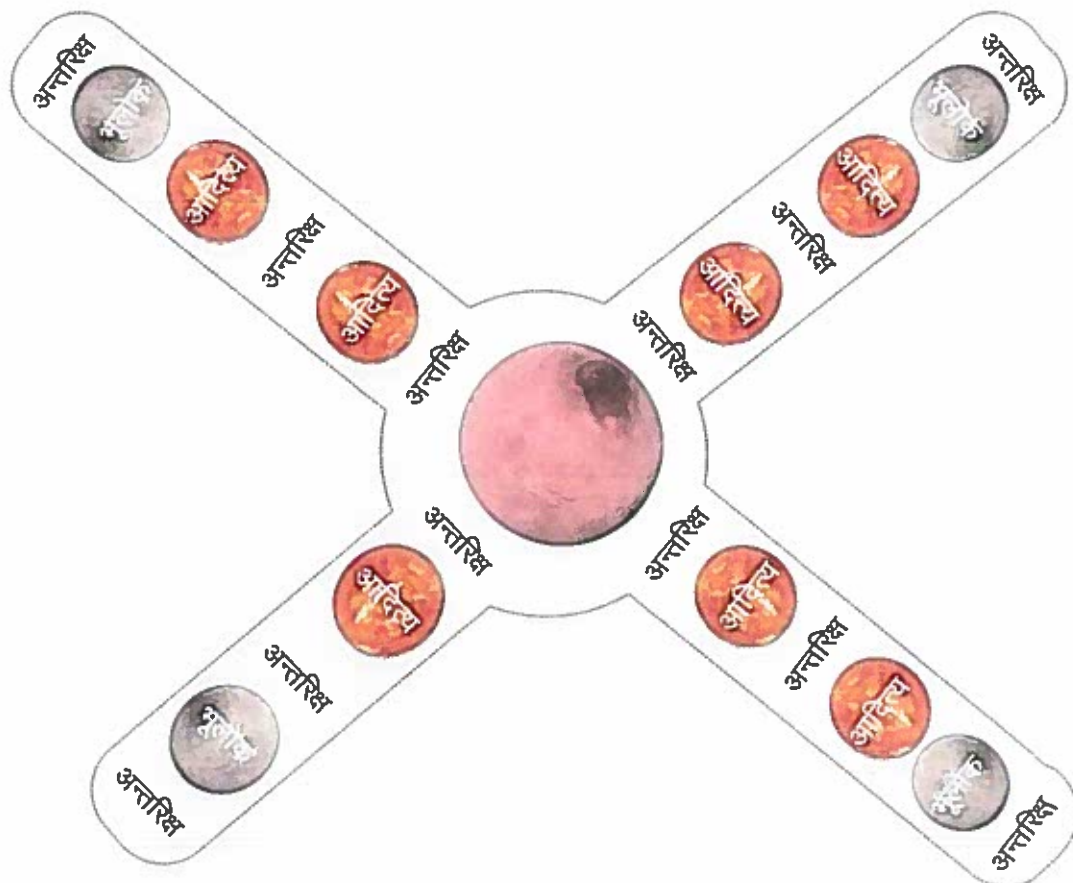
चित्र १८.७ चार पडहों का युग्म

है, जब चार षडह परस्पर मिलकर एक बड़ा युग्म बनाने के लिए के लिए निकट आते हैं।

इन चारों षडह में कुल मिलाकर २४ अहन् रूपी क्षेत्र विद्यमान होते हैं। उसी समय इन २४ अर्द्धमास रश्मियों की उत्पत्ति होती है। हमें यह प्रतीत होता है कि **किसी भी छन्द रश्मि का व्यवहार उसके उत्पन्न होने की परिस्थिति एवं बाह्य परिवेश पर निर्भर होता है**। जैसा कि हम देख रहे हैं, जो निचृद् बृहती छन्द रश्मियां एक षडह के अन्दर ऋतु रूप में व्यवहार करती हैं, वे ही दो षडह के संयुक्त होने पर मास रश्मियों के समान व्यवहार करती हैं, और यहाँ ४ षडह के संयुक्त होने पर अर्द्धमास रश्मियों के समान व्यवहार करती हैं। इन अर्द्धमास रश्मियों के विषय में ऋषियों ने कहा है- अर्द्धमासशो हि प्रजाः पशव ओजोबलं पुष्यन्ति (तां.१०.१.६), अर्द्धमासाः पर्वाणि (तै.सं.७.५.२५.१), अर्द्धमासा हविष्पात्राणि (श.११.२.७.४) इन आर्ष वचनों से यह सिद्ध होता है कि ये रश्मियां विभिन्न मास रश्मियों रूपी हव्यों को वहन करती हैं। महर्षि दयानन्द ने अपने ऋग्वेद-भाष्य (१.८२.४) में 'पात्रम्' का अर्थ "पद्यते येन तत्" किया है। इसी अर्थ को हमने यहाँ ग्रहण किया है। ये अर्द्धमास रश्मियां विभिन्न छन्द आदि रश्मियों के मध्य सन्धि का कार्य करती हैं, जबकि मास रश्मियां संधानक का कार्य करती हैं। इन अर्द्धमास रश्मियों के कारण विभिन्न रश्मि आदि उत्पन्न पदार्थ ओज और बल से पुष्ट होते हैं। इन अर्द्धमास रश्मियों के द्वारा संवत्सर निर्माण अर्थात् विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया और भी गतिशील होने लगती है। इन रश्मियों से व्याप्त होकर वह सम्पूर्ण संयुक्त क्षेत्र सर्वत्र गमन करने लगता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त प्रक्रिया को आगे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि इस प्रकार की आकृतियों वाले क्षेत्र जब उत्पन्न होते हैं, उस समय डार्क एनर्जी भी उनके अन्दर उत्पन्न होकर उसमें विद्यमान चार लोकों को परस्पर एक-दूसरे से पृथक् करने का कार्य करती है। उस समय तीन बृहती छन्द रश्मियां २-२ बार उत्पन्न होकर उस डार्क एनर्जी को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं। इन रश्मियों के उत्पन्न होने से पदार्थ के संघनन की प्रक्रिया कुछ तेज होने लगती है, साथ ही ऊष्मा और प्रकाश की मात्रा में भी वृद्धि होने लगती है। जब इस प्रकार की दो आकृतियाँ परस्पर संयुक्त होती हैं, तब वे बृहती छन्द रश्मियां ४-४ बार आवृत्त होकर कुल १२ की संख्या में उत्पन्न होती हैं, जो विभिन्न पदार्थों को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं। इस कारण विभिन्न पदार्थों के संयोग से नवीन पदार्थों का निर्माण होना अपेक्षाकृत तीव्र होता है। जब इस प्रकार के ३ समुदाय परस्पर संयुक्त होते हैं, तब व्याख्यान भाग में प्रदर्शित स्थिति का निर्माण होता है। इन तीनों के संयुक्त होने के स्थान पर एक बृहत् लोक का निर्माण होने लगता है, जिसमें प्राण एवं छन्द रश्मियों के अतिरिक्त विभिन्न मूलकण और विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा सघन और विशाल रूप में विद्यमान होती है। यह भाग सम्पूर्ण क्षेत्र का केन्द्र बन जाता है, जिसके आस-पास ८ लोक, जो परिपक्व अवस्था में नहीं होते और इस कारण उन्हें पृथक्-२ कॉस्मिक मेघ का रूप भी माना जा सकता है, उस बृहत् केन्द्रीय लोक के चारों ओर परिक्रमा करने लगते हैं। जब इस विशाल समूह में पूर्वोक्तानुसार एक लघु समूह संयुक्त होता है, तब वह भी उस बृहत् केन्द्रीय भाग के साथ अपना कुछ भाग मिलाकर वह उस केन्द्रीय भाग का परिक्रमण करने लगता है। इस समय इस विशाल क्षेत्र में विद्यमान सभी पदार्थों में बल और ऊर्जा की वृद्धि होने लगती है। पदार्थ की संघनन प्रक्रिया और भी तीव्र होने लगती है। यहाँ छन्द रश्मि विज्ञान के विषय में यह ध्यान रखने योग्य बात है कि **एक ही प्रकार की छन्द रश्मि भिन्न-२ परिस्थितियों में भिन्न-२ प्रभाव दर्शाती है**। जैसे विद्युत् चुम्बकीय तरंगें मूलतः एक ही होती हैं, परन्तु पृथक्-२ आवृत्तियों के कारण पृथक्-२ स्वरूप वाली हो जाती हैं, उसी प्रकार छन्द रश्मियों के विषय में समझना चाहिए। इस प्रकार निर्मित विशाल कॉस्मिक क्षेत्र इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विचरण करने लगता है और ऐसे अनेक क्षेत्र उत्पन्न होकर सर्वत्र विचरण करने लगते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग चित्र सहित अवश्य पठनीय है।।

२. पञ्चमं षळहमुपयन्ति; त्रिंशदहानि भवन्ति; त्रिंशदक्षरा वै विराड्; विराळन्नाद्यं, विराजमेव तन्मासि मास्यभिसंपादयन्तो यन्ति।।

अन्नाद्यकामाः खलु वै सत्रमासत; तद् यद्विराजं मासि मास्यभिसंपादयन्तो

यन्त्यन्नाद्यमेव तन्मासि मास्यवरुन्धाना यन्त्यस्मै च लोकायामुष्मै चोभाभ्याम्।।२।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकार से संयुक्त हुए ४ षडह समुदायों के निकट आकर पांचवां षडह भी जब उनमें संयुक्त होने लगता है, तब उस विशाल समूह में कुल ३० अहन् रूपी लोक हो जाते हैं। हमारे मत में पूर्वोक्त ३ निचृद् बृहती छन्द रश्मियां १०-१० बार आवृत्त होकर ३० की संख्या में उत्पन्न होती हैं। ये ३० रश्मियां अहन् अर्थात् प्राण नामक प्राण तत्त्व के समान व्यवहार करती हैं। यह हमें ज्ञात ही है कि ये छन्द रश्मियां उपसद् कहलाती हैं और उपसद् के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "अहोरात्राणि वाऽउपसदः" (श.१०.२.५.४)। इस कारण ये रश्मियां प्राणरूप सिद्ध होती हैं तथा असुर तत्त्व के सूक्ष्म और बाधक पदार्थों को नष्ट वा नियन्त्रित करने में सक्षम होती हैं। इसके साथ ही ये ३० छन्द रश्मियां संयुक्त रूप से विराट् छन्द रश्मि के समान भी व्यवहार करती हैं, क्योंकि विराट् छन्द में ३० अक्षर होते हैं। एक-२ छन्द रश्मि इस परिस्थिति में एक-२ अक्षर रश्मि के समान व्यवहार करती हैं। इस समय विराट् छन्द रश्मि के प्रभाव से सम्पूर्ण पदार्थ अधिक तेजस्वी तथा आकर्षण आदि बलों से समृद्ध होकर संयोग आदि प्रक्रियाओं के प्रति सक्रिय हो उठता है। वह विराड् छन्द रश्मि पूर्वोक्त मास रश्मियों के साथ संयुक्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ में संयोग आदि प्रक्रियाओं को समृद्ध करती है। इस प्रकार सम्पूर्ण विशाल पदार्थ समूह में विभिन्न परमाणु भारी हलचल को प्राप्त करते हैं। इस विराट् छन्द रश्मि के कारण अन्य सभी छन्द रश्मियां अधिक प्रकाशवती हो उठती हैं।।
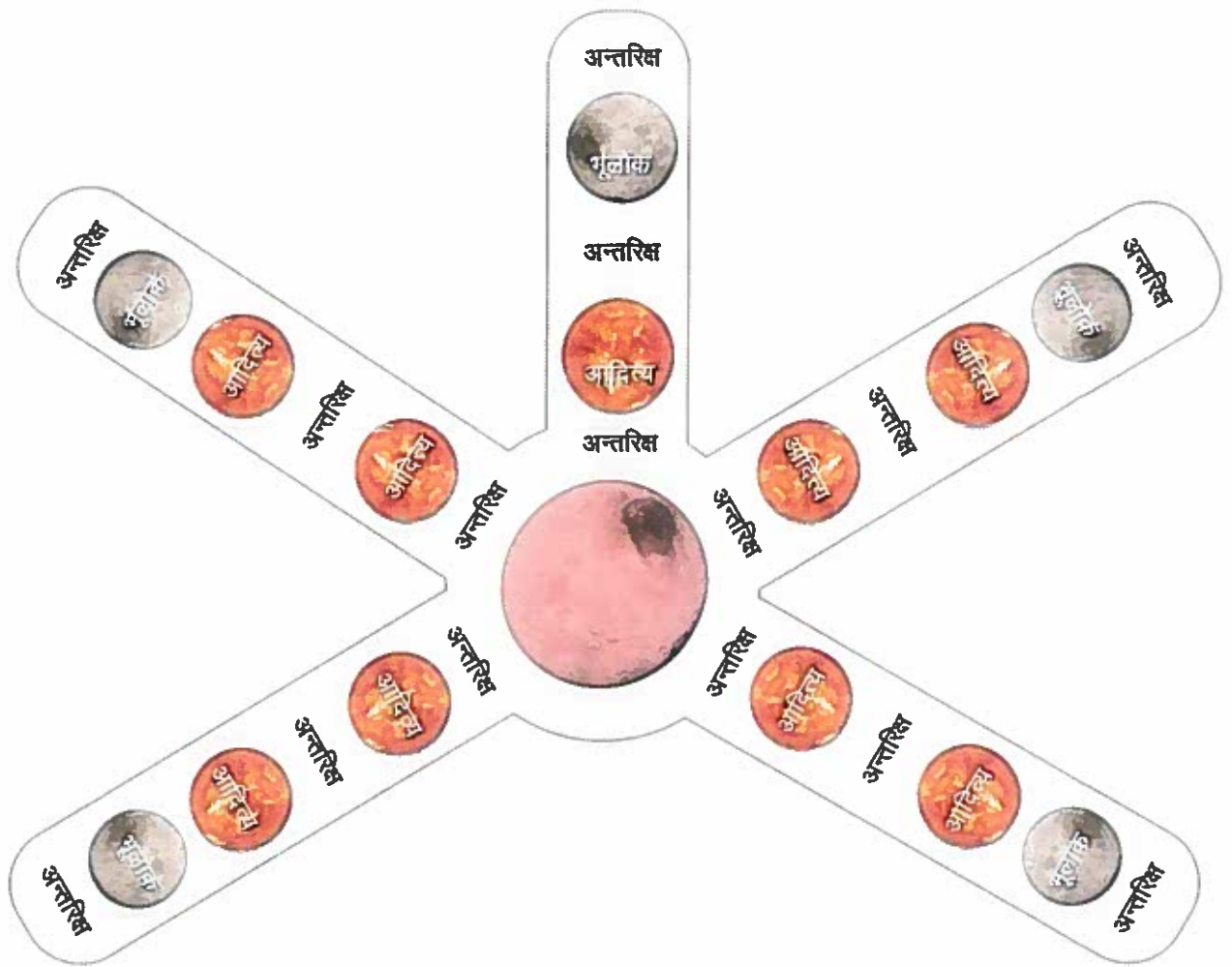
चित्र १८.८ पांच षडहों का युग्म

उपर्युक्त प्रकार से जब सभी परमाणु, सोम आदि पदार्थ एवं छन्द वा प्राण रश्मियां संयोजक

बलों से पर्याप्त रूप से सम्पन्न हो जाती हैं, तब विशाल लोक-समूह स्पष्ट आकार लेने लगते हैं। इससे पूर्ववर्णित सभी क्रियाएं धूल और गैस बनने से पूर्व की ही क्रियाएं थी। कॉस्मिक गैस व धूल का मिश्रण इस समय होने लगता है। उसमें दीप्ति भी विद्यमान होती है और संगतीकरण की प्रक्रिया भी तीव्र हो उठती है। विभिन्न परमाणु और अन्य कण विभिन्न मास रश्मियों के द्वारा संगत होकर सघन रूप धारण करते जाते हैं। वे मास रश्मियां पदार्थ के सूक्ष्म कणों व रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट करके संयुक्त करने का कार्य करती हैं। इसके पश्चात् अग्रिम क्रियाओं द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित, दोनों ही प्रकार के लोकों की उत्पत्ति कालान्तर में हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार का लघु पदार्थ-समूह उत्पन्न होता है एवं उस सहित कुल ५ लघु पदार्थ समूह संयुक्त होकर विशाल कॉस्मिक पदार्थ का निर्माण करते हैं। इस समय यह पदार्थ मूलकणों, एटम्स, छन्द रश्मियों और प्राणादि रश्मियों का भंडार होता है। यह पदार्थ सुन्दर प्रकाश और ऊष्मा से परिपूर्ण होकर सघन होने लगता है। इस समय कॉस्मिक धूल और गैस जैसी अवस्था निर्मित होने लगती है और फिर वह पदार्थ और भी अधिक संघनित होने लगता है। वह सम्पूर्ण पदार्थ समूह अपने अक्ष पर घूर्णन करता हुआ किसी विशाल पदार्थ समूह की परिक्रमा करता हुआ वा यदृच्छया गतियुक्त भी हो सकता है। इसी पदार्थ से कालान्तर में एक सौर मण्डल की उत्पत्ति होती है।।

इति १८.२ समाप्तः

ॐ अथ १८.३ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. गवामयनेन यन्ति; गावो वा आदित्या; आदित्यानामेव तदयनेन यन्ति।।
गावो वै सत्रमासत, शफाञ्शृङ्गाणि सिषासत्यस्तासां दशमे मासि शफाः शृङ्गाण्यजायन्त; ता अब्रुवन् यस्मै कामायादीक्षामह्यापाम तमुत्तिष्ठामेति; ता या उदतिष्ठंस्ता एताः शृङ्गिण्यः।।
अथ याः समापयिष्यामः संवत्सरमित्यासत, तासामश्रद्धया शृङ्गाणि प्रावर्तन्त; ता एतास्तूपरा ऊर्जं त्वसुन्वंस्तस्मादु ताः सर्वानृतून् प्राप्त्वोत्तरमुत्तिष्ठन्त्यूर्जं ह्यसुन्वन् सर्वस्य वै गावः प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गताः।।
सर्वस्य प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गच्छति य एवं वेद।।

{शफः = शं फणति सः (तु.म.द.ऋ.भा.१.१६३.५), धिष्ण्याः शफाः (मै.२.७.८; काठ.१६.८), (धिष्ण्या = अग्नेरेतास्तन्वो यद् धिष्ण्याः - मै.४.६.६), एतानि (स्वानः, भ्राजः, अङ्घारिः, बम्भारिः, हस्तः, सुहस्तः, कृशानुः), वै धिष्ण्यानां नामानि (श.३.३.३.११ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)। शृङ्गम् = (उपरिभागम्) शृङ्ग इवोच्छितकर्म (तु.म.द.ऋ.भा.१.१६३.११), शृङ्गाणि ज्वलतो नाम (निघं.१.१७), शृङ्गम् = श्रेयतेर्वा शृणातेर्वा शम्नातेर्वा शरणायोद्गतमिति वा शिरसो निर्गतमिति वा (नि.२.७), शृणाति हिनस्ति येन तत् शृङ्गम् (उ.को.१.१२६)।}

व्याख्यानम्- पूर्व में अन्तरिक्ष को 'गौ' कहा गया है और यहाँ आदित्य को 'गौ' कहा है। हम यह जानते हैं कि विभिन्न प्रकार के प्राथमिक प्राण 'आदित्य' कहलाते हैं, साथ में मास और ऋतु रश्मियां भी 'आदित्य' संज्ञक होती हैं। इन सभी को यहाँ 'गौ' कहा जाता है, क्योंकि ये सभी प्राण रश्मियों का रूप होकर सतत गमन करते रहते हैं, ये कभी स्थिर नहीं होते। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं- अध्रुवं वै तद्यत्प्राणः (श.१०.२.६.१९)। पूर्व खण्ड में वर्णित विभिन्न क्रियाओं के सन्दर्भ में इस प्रसंग को देखना चाहिए। इस स्थिति में प्राण, ऋतु वा मास रश्मियों से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष एवं अन्य सव लोक व्याप्त हो जाते हैं। इन प्राणादि रश्मियों, साथ ही सभी छन्दादि रश्मियों के अयन अर्थात् उनके मार्ग और गतियाँ परिवर्तित होते रहते हैं अर्थात् उनके मार्ग, गतियाँ और स्थान कभी भी निश्चित अर्थात् स्थिर नहीं रहते हैं। इस कारण **ईश्वरीय चेतना की मुख्य प्रेरणा से मनस्तत्त्वरूपी महाप्राण इन सबकी गति, मार्ग और स्थानों को नियन्त्रित व परिवर्तित करता रहता है।।**

वे 'गो' संज्ञक उपर्युक्त प्रकार की रश्मियां जव सत्र को प्रारम्भ करती हैं अर्थात् एक दीर्घकालिक संयोग = सृजन प्रक्रिया को आरम्भ करती हैं, तव इनका प्रेरक मनस्तत्त्व किंवा सर्वप्रेरक चेतन तत्त्व परमेश्वर 'शफ' और 'शृङ्गों' के निर्माण के उद्देश्य से इन गौ-संज्ञक रश्मियों का सत्र प्रारम्भ करता है। यहाँ 'शफ' का तात्पर्य उन कणों से है, जो अग्नि तत्त्व का आधार वा शरीर रूप होते हैं एवं जो सारी सृष्टि के व्यवहार को अच्छी प्रकार सम्पादित करते हैं। यहाँ 'शृङ्ग' शब्द का तात्पर्य है- उन 'शफ' संज्ञक सात प्रकार के कणों का तीव्र हिंसक एवं उत्कृष्ट परन्तु उपर्युक्त नियन्त्रित वल एवं गतियों से युक्त होकर तेज और ऊष्मा से युक्त हो जाना। ये 'शफ' संज्ञक कण निम्न नामों से जाने जाते हैं-

स्वान, भ्राज, अङ्घारि, वम्भारि, हस्त, सुहस्त, कृशानु। इन सातों प्रकार के कणों के स्वरूप एवं गुणधर्मों के विषय में जानकारी के लिए ३.५.२ अवश्य पठनीय है। हम उसकी पुनरावृत्ति करके पिष्ट-पेषण नहीं करना चाहते। इन्हीं सात प्रकार के कणों में सम्पूर्ण अग्नि तत्त्व विशेषरूप से प्रतिष्ठित हो जाता है।

इन सातों प्रकार के कणों को उत्पन्न करने के लिए जब पूर्व खण्डों में वर्णित किये अनुसार विभिन्न क्रियाएं होने लगती हैं, उस समय ऋतु रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् जब मास रश्मियों की उत्पत्ति होने लगती है, उस समय दसवीं मास रश्मि की उत्पत्ति के साथ ही ये सात प्रकार के कण उत्पन्न भी हो जाते हैं और तेजस्वी तथा तीक्ष्ण रूप भी प्राप्त कर लेते हैं। उस समय ब्रह्माण्ड में तीव्र तापयुक्त घोर गर्जना सर्वत्र होने लगती है और वे सातों प्रकार के पदार्थ ऊपर की ओर उठने अर्थात् ब्रह्माण्ड में सर्वत्र फैलने लगते हैं। इस प्रकार वह सम्पूर्ण पदार्थ ज्वालाओं से प्रदीप्त होने लगता है अर्थात् उस समय अग्नि तत्त्व की अधिक प्रधानता रहती है और पदार्थ का संघनन होकर बड़े कणों का निर्माण अभी नहीं हो पाता।।

इस क्रिया में जो गौ-संज्ञक रश्मियां सम्पूर्ण क्षेत्र में फैल नहीं पाती हैं {श्रद्धा = तेज एव श्रद्धा (श.११.३.१.१), श्रद्धा वा आपः (तै.ब्रा.३.२.४.१), श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता (श.१२.७.३.११)। तूपरः = हिंसकः (म.द.य.भा.२४.१), यत्तूपरस्तदश्वानाम् (रूपम्) (जै.ब्रा.२.३७१)} अथवा जो छन्दादि गौ रश्मियां पूर्वोक्त सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त हो रही थीं और जिनका प्रयोजन सृष्टि की अन्य प्रक्रियाओं में भी भाग लेना होता है, वे अपने अल्प तेज परन्तु तीव्र गति एवं बल के कारण उस क्षेत्र में यत्र-तत्र ऊपर उठकर अपने तीक्ष्णरूप को प्राप्त करके सम्पूर्ण क्षेत्र का तेजी से चक्कर लगाने लगती हैं। उनका स्वरूप अतिभेदक शक्तिसम्पन्न और ऊर्जायुक्त होता है, जिसके कारण वे सभी रश्मियां ऋतु रश्मियों को प्राप्त करके पूर्वोक्त षडह क्षेत्रों में विद्यमान सभी लोकों को आच्छादित करती हुई तेजी से परिक्रमण करती हैं। उसके पश्चात् वे सभी रश्मियां सबको तृप्त करती हुई अपने बल और गति के साथ ऊपर की ओर अर्थात् उस कॉस्मिक क्षेत्र के केन्द्रीय भाग की ओर बढ़ने लगती हैं। वे विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं को श्रेष्ठतापूर्वक संपादित करने में सक्षम होती हैं, क्योंकि उनका आकर्षण बल विशेषतः तीव्र होता है। वे रश्मियां उस केन्द्रीय भाग में पूरी तरह व्याप्त हो जाती हैं और उस क्षेत्र को सुन्दर रूप प्रदान करती हैं, जिससे वहाँ सभी प्रकार की संयोग क्रियाएँ उपयुक्त रूप से होने लगती हैं। जब यह स्थिति बन जाती है, तब विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया अनुकूल एवं श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त हो जाती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि विभिन्न प्रकार की रश्मियों, विशेषकर प्राण और छन्द आदि रश्मियों की गति, स्थान और मार्ग कभी निश्चित अर्थात् स्थिर नहीं रहते। विभिन्न प्रयोजनों के अनुसार विभिन्न परिस्थितियों में ईश्वरीय चेतना की प्रेरणा के अनुसार मन की सूक्ष्म रश्मियां उनको नियन्त्रित एवं परिवर्तित करती रहती हैं। इन **छन्द वा प्राण आदि रश्मियों के विभिन्न स्वरूपों के कारण सात प्रकार के विभिन्न कणों की उत्पत्ति होती है।** ये सात प्रकार के कण इस ब्रह्माण्ड के वे कण हैं, जो सम्पूर्ण सृष्टि की अधिकांश ऊर्जा को अपने में धारण किये रहते हैं। इन सात प्रकार के कणों के स्वरूप के बारे में ३.५.२ अवश्य पढ़ें, हम इसकी पुनरावृत्ति यहाँ नहीं कर रहे। इन कणों की उत्पत्ति उस समय होती है, जब पूर्व खण्ड के व्याख्यान भाग में वर्णित दो लघु आकृतियों के रूप में विद्यमान पदार्थ का अतिनिकट सम्पर्क होता है। उस सम्पर्क के समय पूर्व खण्ड के अनुसार जब बारह बृहती छन्द रश्मियां उत्पन्न हो रही होती हैं, तब दसवीं छन्द रश्मि के उत्पन्न होने के उपरान्त ही ये सातों प्रकार के कण प्रकट हो जाते हैं। वर्तमान वैज्ञानिकों को वर्त्तमान मूल कणों पर गंभीर अध्ययन करते समय इन कणों के स्वरूप से तुलना करने का प्रयास करना चाहिए। ये सातों प्रकार के कण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैलकर अग्नि की ज्वालाओं को उत्पन्न करते हैं। उस समय कुछ रश्मियां अधिक ऊर्जा और भेदक शक्तिसम्पन्न होकर उस सम्पूर्ण कॉस्मिक पदार्थ का चक्र लगाते हुए विभिन्न कणों से संघर्षण करती हुई उसके केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होकर विशेषतः वहीं व्याप्त हो जाती हैं, जिससे उस क्षेत्र में भारी ऊर्जा उत्पन्न होने लगती है और वह पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षित होने लगता है।।

२. आदित्याश्च ह वा अङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त वयं पूर्व एष्यामो वयमिति;

ते हादित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः; पश्चेवाङ्गिरसः षष्ट्यां वा वर्षेषु।।
यथा वा प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थ्यः, सर्वेऽभिप्लवाः षळहा, आक्ष्यन्त्यन्यान्यहानि; तदादित्यानामयनम्।।
प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थ्यः, सर्वे पृष्ठ्याः षळहा, आक्ष्यन्त्यन्यान्यहानि; तदङ्गिरसामयनम्।।
सा यथा स्रुतिरञ्जसायन्येवमभिप्लवः षळहः स्वर्गस्य लोकस्याथ यथा महापथः पर्याण एवं पृष्ठ्यः षळहः स्वर्गस्य लोकस्य; तद्यदुभाभ्यां यन्त्युभाभ्यां वै यन्न रिष्यत्युभयोः कामयोरुपाप्त्यै,-यश्चाभिप्लवे षळहे, यश्च पृष्ठ्ये।।३।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को कुछ आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं कि पूर्व में 'गौ' शब्द का अर्थ विभिन्न प्रकार की प्राण आदि रश्मियां ग्रहण किया था। अब यहाँ 'गौ' शब्द से सद्यःनिर्मित विभिन्न लोकों का ग्रहण करके गवामयन अर्थात् **उन लोकों के मार्ग और गतियों पर विचार करते हैं।** अन्तरिक्ष स्थित सभी लोक सतत गमन करते रहते हैं। इस कारण उन्हें भी 'गौ' कहा जाता है। उस समय पूर्वोक्त प्रक्रिया के चलते दो प्रकार के लोकों की उत्पत्ति होती है। इनमें से प्रथम लोक वे होते हैं, जो अति प्रकाशित और स्वयं अपना प्रकाश उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं तथा आकार की दृष्टि से भी ये बड़े ही विशाल होते हैं। दूसरे लोक वे होते हैं, जो पहले तो तेजोमय ज्वालाओं से युक्त होते हैं, परन्तु कुछ कालोपरान्त वे बुझे अंगारों की भाँति ठंडे हो जाते हैं, तथापि उनके गर्भ में अग्नि विद्यमान अवश्य होता है। ये दोनों ही प्रकार के लोक सदैव गतिशील होते हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पदार्थ ही सदैव गतिशील रहता है। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च" (श.७.४.१.२५)। यहाँ महर्षि ऐतरेय महीदास कहते हैं कि प्रारम्भ में ये सभी लोक अव्यवस्थित गतियों से युक्त होते हैं। उनकी कोई निश्चित कक्षा और निश्चित गति नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे सभी लोक निश्चित कक्षा और गति प्राप्त करने के लिए परस्पर स्पर्द्धा कर रहे हों। विशाल प्रकाशित लोक किसी अन्य अति प्रकाशित लोक के चारों कुछ काल पश्चात् परिक्रमण करने लगते हैं और बुझे हुए अर्थात् अप्रकाशित लोक कुछ काल पश्चात् अपने निकटस्थ किसी प्रकाशित लोक की परिक्रमा करने लगते हैं। स्वर्गलोक के विषय में ऋषियों का कथन है- "अनन्तोऽसौ स्वर्गो लोकः (गो.उ.६.५), स्वर्गो वै लोकः सूर्यो ज्योतिरुत्तमम् (श.१२.९.२.८), मध्ये ह संवत्सरस्य स्वर्गो लोकः (श.६.७.४.११)।" इन तीनों वचनों से स्वर्ग लोक के तीन अर्थ प्रकाशित होते हैं-

१. वे अति विशाल लोक, जिन्हें यहाँ अपरिमित कहा गया है, ऐसे लोक होते हैं, जिनके चारों ओर विभिन्न प्रकाशित लोक परिक्रमण करते रहते हैं।
२. दूसरे स्वर्गलोक वे होते हैं, जो प्रकाशित होते हुए उपर्युक्त अति विशाल स्वर्गलोक की परिक्रमा करते हैं।

३. किसी भी प्रकाशित लोक के केन्द्रीय भाग को भी स्वर्गलोक कहते हैं। इस प्रकार स्वर्ग लोक एक सापेक्ष शब्द है, जो परिस्थितियों के अनुकूल भिन्न-२ अर्थ में ग्रहण किया जाता है। यहाँ महर्षि प्रकाशित और अप्रकाशित (बुझे हुए) लोकों के द्वारा अपने-२ केन्द्र की परिक्रमा करने के लिए निश्चित कक्षा प्राप्त करने में व्यतीत किये जाने वाले समय की तुलना करते हुए कहते हैं कि विभिन्न प्रकाशित लोक जब विशाल प्रकाशित लोक के चारों ओर अस्थिर और अनिश्चित गति और मार्गों पर परिक्रमण कर रहे होते हैं, उस समय वे अपने आकर्षण से बँधे हुए अन्य कुछ अप्रकाशित लोकों को अपने साथ लिए रहते हैं। उस समय वे अप्रकाशित लोक अपने आकर्षण व केन्द्ररूप प्रकाशित लोक के चारों ओर अस्थिर गति और मार्गों पर परिक्रमण कर रहे होते हैं। ये दोनों ही प्रकार के लोक अपनी-२ गति और मार्गों को निश्चित और स्थिर रूप प्रदान करने का पूर्ण यत्न करते रहते हैं। **जब कोई प्रकाशित लोक अपने केन्द्र रूप विशाल प्रकाशित लोक की निश्चित कक्षा**

में निश्चित गति को प्राप्त कर लेता है और उनकी गति और कक्षा जब स्थिर हो जाती हैं, तब उसके पश्चात् उस प्रकाशित लोक की परिक्रमा करने वाले विभिन्न अप्रकाशित लोक अपने-२ हिसाब से साठ वर्षों में अपनी स्थिर गति और कक्षा को प्राप्त कर लेते हैं। हमारे मत में यह सार्वत्रिक नियम है, न कि हमारी पृथिवी और हमारे सूर्य के लिए।।

इसका भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- "अत्र 'वा' शब्दो न विकल्पार्थः किंतु गवामयन-प्रकार-व्यावृत्त्यर्थः। गवामयने प्रायणीयाख्यं प्रथममहः, अतिरात्रसंस्थं चतुर्विंशमुक्थ्यमहर्द्वितीयम्..... ..। आचार्य सायण का यह भाष्य उनकी अपनी याज्ञिक शैली में है। हमारी दृष्टि में यहाँ महर्षि का आशय यह है कि पदार्थ की अन्धकारमयी अवस्था का अतिक्रमण करके दीप्ति का प्रथम प्रादुर्भाव होना ही अतिरात्र है और वह अतिरात्र प्राण नामक प्राथमिक प्राण की उत्पत्ति से प्रारम्भ होता है। जैसा कि कहा है- "प्राणो वै पूर्वोऽतिरात्रः" (काठ.३४.८), "प्राणो एव प्रायणीयः" (काठ.३४.६)। वैसे 'प्रायणीय' शब्द का अर्थ सापेक्ष अर्थात् परिस्थिति के अनुकूल होता है। इसी कारण अन्य ऋषि का कथन है- "गायत्रं प्रायणीयमहः" (तै.सं.७.२.८.१) यहाँ गायत्री-प्राणमय अवस्था को 'प्रायणीय' कहा गया है, जिसे अतिरात्र प्रायणीय समझना चाहिए। यहाँ प्राण नामक प्राथमिक प्राण और सूक्ष्म गायत्री छन्द रश्मियों की प्रकटावस्था को प्रायणीय अतिरात्र अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया का प्रथम महत्वपूर्ण चरण मान सकते हैं। ४.१२.१ में जो चतुर्विंश अर्थात् २४ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति वाला जो आरम्भिक चरण बतलाया गया था, वह वस्तुतः इस प्रकरण में द्वितीय चरण के रूप में मानना चाहिए। ये दोनों ही चरण न्यूनाधिक प्रकाशयुक्त होने के कारण 'अहन्' कहलाते हैं। चतुर्विंश चरण को यहाँ उक्थ्य भी कहा है, क्योंकि इसमें विद्यमान गायत्री, उष्णिक् एवं अनुष्टुप् छन्द रश्मियां मरुद् वा छन्द रूप ही होती हैं। इन चरणों के पश्चात् निर्मित पूर्वोक्त षडह संज्ञक पदार्थसमूह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण करते रहते हैं। उन षडह रूप पदार्थ समूह में उपर्युक्त दोनों अहन् अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण और चतुर्विंश अवस्था की २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियां इन षडह रूप पदार्थों में व्याप्त होती हैं और षडह रूप पदार्थ भी उनके अन्दर व्याप्त होते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि षडह रूप पदार्थ जिन मार्गों पर विचरण करते हैं, उन मार्गों पर भी प्राण नामक प्राथमिक प्राण किंवा सभी प्राथमिक प्राण एवं २४ पूर्वोक्त सूक्ष्म छन्द रश्मियां व्याप्त होती हैं। इनके प्रायणीय होने से यह भी संकेत मिलता है कि ये सभी सूक्ष्म रश्मियां इन षडह रूप पदार्थ समूह की गति एवं मार्गों को अच्छी प्रकार संपादित करती हैं। ये सूक्ष्म रश्मियां ही आदित्य अर्थात् प्रकाशित लोकों के मार्ग और गतियों को भी सम्पादित करती हैं अर्थात् उनके मार्ग में व्याप्त होकर उन्हें परिक्रमणीय गति प्रदान करने में सहयोग करती हैं। इसलिए इनको आदित्यों का अयन कहा गया है।।

{पृष्ठ्यः = अयमेव स्पृष्ट्यो योऽयं (वायुः) पवते एतेन हीदं सर्वं स्पृष्टम्। स्पृष्ट्यो ह वै नामैषः। तं पृष्ठ्य इति परोक्षमाचक्षते (जै.ब्रा.२.३१), आत्मा वै पृष्ठ्यः षडहः (जै.ब्रा.२.३०५,३०६), पिता वा अभिप्लवः पुत्रः पृष्ठ्यः (गो.पू.४.१७), श्रीः पृष्ठ्यानि (कौ.ब्रा.२१.५)} पूर्वोक्त सभी षडह रूप पदार्थ समूह के मार्ग में प्राथमिक प्राण और २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियों के व्याप्त होने की, हमने पूर्व कण्डिका में चर्चा की है। यहाँ उपर्युक्त प्रमाण हमारी इस बात का समर्थन करते हैं, जो हमने प्राण नामक प्राथमिक प्राण के ग्रहण करने को लेकर की है। इन सब में भी **आत्मा अर्थात् चेतन तत्त्व परमात्मा मूलतः सर्वव्यापक पदार्थ है।** इसके साथ ही आत्म तत्त्व से सूत्रात्मा वायु का भी ग्रहण करना चाहिए। यह सूत्रात्मा वायु अन्य प्राण रश्मियों को अपने साथ बाँधकर षडह रूप पदार्थ समूह का अनुगामी होकर साथ चलता है। इन प्रमाणों में 'षडह अभिप्लव' में षडह को पिता और पृष्ठ्य रूप प्राणों को पुत्र कहने का तात्पर्य भी यही है कि जिस प्रकार लोक में पिता का अनुगामी होकर पुत्र चलता है, उसी प्रकार यह प्राण षडह रूप पदार्थ समूह के साथ वा पीछे-२ चलते हैं। यहाँ इससे यह भी संकेत मिलता है कि वे **प्राथमिक प्राण रश्मियां षडह रूप पदार्थ समूह से भी उत्सर्जित होती रहती हैं, जिसके कारण वे पुत्र रूप होती हैं।** इस प्रकार सभी प्राथमिक प्राण सूत्रात्मा वायु एवं २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियां, सभी षडह रूप पदार्थ समूहों के साथ-२ गमन करते हुए उनकी गति और मार्गों को संपादित और नियमित करती हैं। ये सभी पदार्थ अङ्गिरस अर्थात् अप्रकाशित लोकों के मार्ग को भी व्याप्त करते हुए उनकी गति और मार्गों को संपादित और नियमित करते हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि यहाँ 'पृष्ठ्य' शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है? प्राण रश्मियों का पृष्ठरूप होना तो प्रकाशित लोकों के लिए भी आवश्यक

होना चाहिए और पूर्व कंडिका में 'अभिप्लव' शब्द का प्रयोग क्यों हुआ है? जबकि उसका प्रयोग यहाँ भी होना चाहिए। हमारे मत में इन शब्दों के पीछे एक गभीर वैज्ञानिक रहस्य छुपा हुआ है। वह इस प्रकार है कि जिस प्रकार षडह रूपी पदार्थ समूह इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र यदृच्छया गति करता है, उसी प्रकार प्रकाशित लोकों के मार्ग में व्याप्त पूर्वोक्त रश्मियां सब ओर तैरती हुई सी गमन करती हैं और ऐसा करते हुए ही वे उन प्रकाशित लोकों को स्थिर कक्षा और निश्चित गति प्रदान करती हैं। इस रहस्य को पूर्वोक्त कण्डिका के साथ जोड़कर देखना चाहिए। अप्रकाशित लोकों के मार्ग में व्याप्त, वे ही रश्मियां सब ओर तैरती हुई गति के स्थान पर लोकों के निकट उनका आधार बनी हुई गमन करती हैं। यहाँ सूत्रात्मा वायु की पूर्वापेक्षा अधिक मात्रा होती है, जिससे इन अप्रकाशित लोकों की परिधियाँ प्रकाशित लोकों की अपेक्षा बहुत अधिक स्पष्ट होती हैं। इस कारण से प्राणादि रश्मियां प्रकाशित लोकों की अपेक्षा अधिक संकीर्ण मार्गों पर अर्थात् सघनता लिए गति करती हैं। अतएव इनको यहाँ पृष्ठ कहा गया है, अभिप्लव नहीं। यहाँ एक अन्य तथ्य यह भी प्रकाशित होता है कि यहाँ प्राण, अपान और व्यान किंवा प्राणापानोदान एवं चतुर्विंश की अंगभूत गायत्री, अनुष्टुप् और उष्णिक् छन्द रश्मियां 'षडह' कहलाती हैं, विशेषकर इस प्रकरण में। इन्हीं छः रश्मियों के अभिप्लव और पृष्ठ्य रूप को उपर्युक्तानुसार हम समझ सकते हैं।।

उपर्युक्त अभिप्लवः षडह अर्थात् प्राथमिक प्राण और २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियां, जो प्रकाशित लोकों के मार्ग में तैरती हुई सी गति करती हैं, वह उस मार्ग को शीघ्रगमन के योग्य बनाती हैं, जिससे वे प्रकाशित लोक अपने परिक्रमण पथ के केन्द्ररूप विशाल लोक के चारों ओर सहजतापूर्वक अतितीव्र गति से गमन करने में सक्षम होते हैं। वे प्रकाशित लोक भी गमन करते समय तैरते हुए से जान पड़ते हैं। इन प्रकाशित लोकों का पथ कदाचित् अप्रकाशित लोकों के पथ से कुछ भिन्न होता है। उधर अप्रकाशित लोकों के पथ में उपर्युक्त ही छः रश्मियां सूत्रात्मा वायु को अपना पृष्ठ बनाकर के इस प्रकार गमन करती हैं, मानो वे एक-दूसरे का चक्कर काटती हुई विशाल मार्ग पर आगे बढ़ती जा रही हों। ऐसा लगता है कि इस मार्ग में वे छः रश्मियां, जिनमें ३ प्राण रश्मियां और तीन छन्द रश्मियां सम्मिलित हैं, ये दोनों प्रकार की रश्मियां सूत्रात्मा वायु के सहारे परस्पर बँधी हुई अर्थात् बटी हुई रस्सी के समान प्रतीत होती हुई निरन्तर गतिमान् होकर अप्रकाशित लोकों के मार्ग और गति को स्थापित और संचालित करती हैं। ये लोक अपने निकटस्थ प्रकाशित लोकों की परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार जब इन रश्मियों के दोनों ही रूपों के द्वारा अर्थात् अभिप्लव और पृष्ठ्य नामक इन रश्मियों के द्वारा इस ब्रह्माण्ड के सभी लोक गति करते हैं, तब उन लोकों को कोई क्षति नहीं होती अर्थात् उनके मार्ग और गतियां सभी कुछ निश्चित और व्यवस्थित निरन्तरता के साथ बने रहते हैं और उन लोकों के विभिन्न कमनीय बल भी यथावत् सम्पादित होते और यथावत् बने रहते हैं। इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "तऽ आदित्याः। चतुर्भिः स्तोमैश्चतुर्भिःपृष्ठैर्लघुभिः सामभिः स्वर्गं लोकमभ्यप्लवन्त यदभ्यप्लवन्त तस्मादभिप्लवाः।। अन्वञ्चऽइवाङ्गिरसः। सर्वैः स्तोमैः सर्वैः पृष्ठैर्गुरुभिः सामभिः स्वर्गं लोकमस्पृशन्यदस्पृशँस्तस्मात्पृष्ठ्यः।।" (श.१२.२.२.१०-११)। इन प्रमाणों से हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है कि आदित्य अर्थात् प्रकाशित लोकों के मार्ग में पूर्वोक्त रश्मियां उछल-कूद करती तैरती हुई गमन करती हैं और आंगिरस अर्थात् अप्रकाशित लोकों के मार्ग में ये ही रश्मियां अधिक दृढ़ता से बँधी हुई गमन करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ विभिन्न लोकों की गति और कक्षाओं के विषय में विचार किया गया है। इस ब्रह्माण्ड में अन्तरिक्ष के अतिरिक्त मुख्यतः दो प्रकार के लोक होते हैं।

इनमें से प्रथम लोक वे हैं, जो अत्यन्त तेज और ऊष्मा के पुञ्ज होते हैं, जिन्हें हम तारे कहते हैं। ये तारे जब निर्मित हो रहे होते हैं, उस समय उनमें प्रकाश और ऊष्मा की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, परन्तु कालान्तर में उनके केन्द्रीय भाग में नाभिकीय संलयन की क्रिया प्रारम्भ होने के पश्चात् ऊष्मा और प्रकाश दोनों की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। जब तक वे जीवित रहते हैं, तब तक वे उसी रूप में रहते हैं। ये तारे अपनी-२ आकाश गंगा के केन्द्र में स्थित किसी विशालतम और प्रबलतम तारे की परिक्रमा करते रहते हैं।

चित्र १८.९ समय के साथ तारों व ग्रहों का निर्माण

दूसरे लोक वे होते हैं, जो निर्माणाधीन अवस्था में अग्नि के पिण्ड के रूप में होते हैं, परन्तु कालान्तर में वे ठंडे होकर ग्रह-उपग्रह आदि में परिवर्तित हो जाते हैं। इनके केन्द्रीय भाग में तीव्र ताप सदा रहता है, परन्तु उसकी तीव्रता इतनी नहीं होती कि वहाँ नाभिकीय संलयन हो सके। सभी ग्रह अपने निकटस्थ किसी तारे के गुरुत्वाकर्षण बल के द्वारा बँधे हुए रहकर उसकी सतत परिक्रमा करते रहते हैं। विभिन्न तारे, ग्रह और उपग्रह आदि लोक अपने उत्पत्ति काल के समय से कुछ काल पश्चात् तक अपने-२ निकटस्थ विशाल लोकों की परिक्रमा निश्चित गति के साथ निश्चित कक्षाओं में नहीं कर पाते हैं, बल्कि उनकी गति और मार्ग दोनों ही अनिश्चित, अव्यवस्थित और अस्थिर होते हैं, परन्तु वे सभी लोक धीरे-२ निश्चित कक्षा और निश्चित गति को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं।
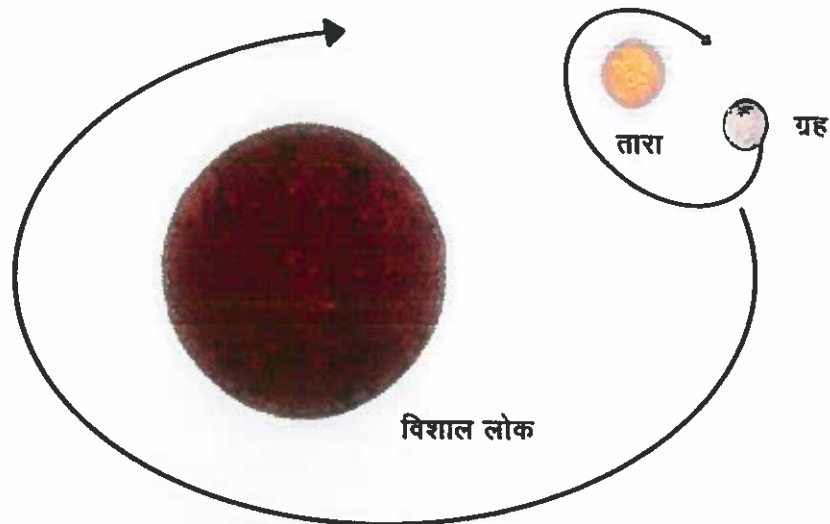
चित्र १८.१० लोकों की परिक्रमण प्रक्रिया

इन सबको निश्चित गति और कक्षा अथवा व्यवस्थित मार्ग प्राप्त कराने में विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं सूक्ष्म छन्द रश्मियां सहयोग करती हैं। ये वे ही तीन सूक्ष्म छन्द रश्मियां हैं, जो ८-८ वार आवृत्ति करके २४ छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं, जिनके विषय में खण्ड ४.१२ पठनीय

है। ये **रश्मियां प्राण, अपान, उदान आदि के साथ तारों के परिक्रमण मार्ग में विरल रूप में विद्यमान रहती हैं। ये रश्मियां तारों के साथ-२ भी गमन करती हैं। इन रश्मियों का गमन इस रूप में होता है कि ये तारों के उपरिभाग में उछलती कूदती तैरती हुई सी प्रतीत होती हैं।** यद्यपि इनमें से प्राथमिक प्राण रश्मियां सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त रहती हैं, परन्तु तारों के आस-पास और उनके मार्ग में ये प्राथमिक प्राण रश्मियां २४ सूक्ष्म छन्द रश्मियों के साथ मिलकर सघन मात्रा में विद्यमान होती हैं। ये दोनों ही रश्मियां प्रारम्भ में तारों को स्थिर गति और कक्षा प्रदान करती है और बाद में **उस गति और कक्षा की सुरक्षा भी करती हैं।** उधर विभिन्न **ग्रहों** और उपग्रहों के मार्ग में भी ये ही रश्मियां विद्यमान होती हैं, परन्तु यहाँ भेद यह है कि वे **रश्मियां यहाँ सूत्रात्मा वायु के साथ कुछ विशेष मिश्रित होकर सघन रूप प्राप्त करती हुई इन लोकों को निश्चित कक्षा और गति के साथ-२ तारों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट परिधि प्राप्त कराती हैं। दूसरा भेद यह है कि यहाँ ये प्राण और छन्द रश्मियां एक-दूसरे के साथ लिपट कर अथवा एक-दूसरे का चक्कर लगाती हुई बटी हुई रस्सी के समान प्रतीत होती हुई संकीर्ण और सघन मार्ग में गति करती हैं।** यहाँ महर्षि इन लोकों के अपनी-२ कक्षा में स्थापित होने के समय की तुलना करते हुए लिखते हैं कि किसी भी तारे के द्वारा आकाशगंगा के केन्द्र के चारों ओर निश्चित कक्षा और स्थिर गति प्राप्त करने के पश्चात् उसके किसी भी ग्रह को उस तारे के चारों ओर परिक्रमा करने के लिए उस ग्रह के हिसाब से ६० वर्ष लगते हैं। हम यह जानते ही हैं कि प्रत्येक ग्रह का वर्ष पृथक्-२ दिनों का होता है, तदनुसार ही इस काल की गणना की जा सकती है। **यह एक महत्वपूर्ण सूत्र है, जिससे ब्रह्माण्ड के लोकों की कक्षाओं के निर्माण और गतियों को समझा जा सकता है। इससे सामान्य सूत्र प्रकट होता है कि सभी ग्रह अपने-२ तारे की ६० परिक्रमा अस्थिर व अनियमित मार्ग पर करने के उपरान्त स्थिर कक्षा व गति को प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं।।**
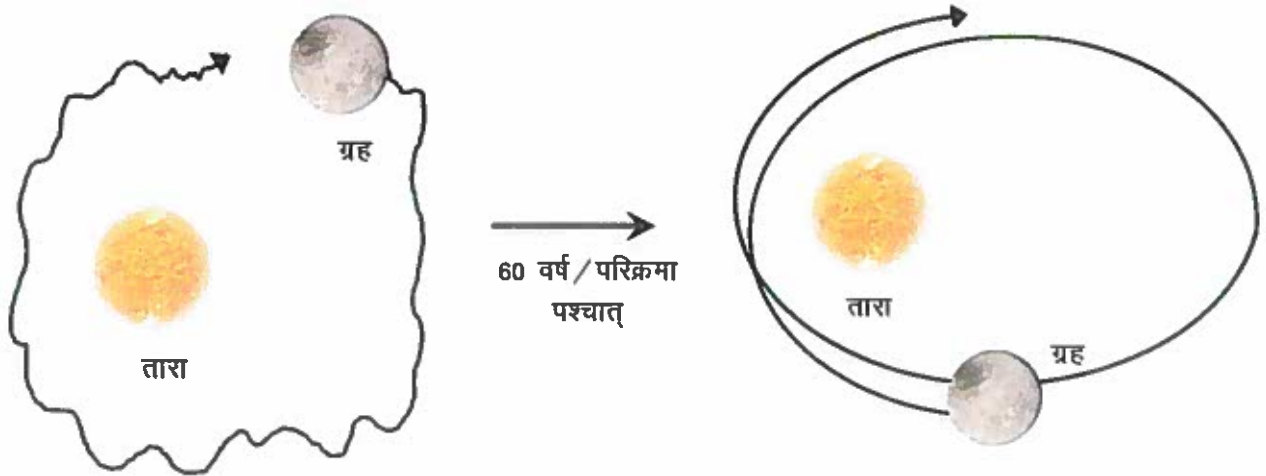
चित्र १८.११ लोकों की कक्षाओं के स्थिरीकरण की प्रक्रिया

∞ इति १८.3 समाप्तः ∞

अथ १८.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. एकविंशमेतदहरुपयन्ति विषुवन्तं मध्ये संवत्सरस्य।।
एतेन वै देवा एकविंशेनादित्यं स्वर्गाय लोकायोदयच्छन्।।
स एष इत एकविंशः।।

व्याख्यानम्- विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों की उत्पत्ति एवं उनके उचित कक्षाओं में उचित गतियों के साथ स्थापित होने के उपरान्त इन प्रकाशित लोकों को अपने प्रवल आकर्षण वल के द्वारा वाँधे रखने वाले विशाल आदित्य लोक, जिसके चारों ओर वड़ी संख्या में विभिन्न प्रकाशित लोक परिक्रमा करते हैं, उस विशाल आदित्य लोक के निर्माण की चर्चा यहाँ प्रारम्भ करते हैं। इस विशाल लोक को यहाँ एकविंश नाम दिया गया है। इस विषय में एक महर्षि ने कहा है-

"पञ्चभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकया स एकया सप्तभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिर्नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिरुद्यत्येकविंशꣳ शस्य विष्टुतिः।।" (तां.२.१५.१),

"सप्तग्राम्याः पशवस्तानेतया स्पृणोति सप्त शिरसि प्राणाः प्राणा इन्द्रियाणीन्द्रियाण्येवैतयाप्नोति।। एषा वै प्रतिष्ठितैकव्रि(वि) ꣳ शस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते।।" (तां.२.१४.२-३) इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि इस विशाल लोक की उत्पत्ति भी उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार खण्ड ४.१२ में एवं उसके पश्चात् चतुर्विंश अवस्था से विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों की उत्पत्ति होती है। यहाँ भेद यह है कि उन लोकों की उत्पत्ति के प्रारम्भ में दैवी गायत्री, दैवी उष्णिक् एवं दैवी अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की क्रमशः ८-८ वार आवृत्ति और उनके साथ एक-२ करके तीन 'हिम्' रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार 'हिम्' रश्मियों के अतिरिक्त २४ छन्द रश्मियां हो जाती हैं, परन्तु यहाँ इस विशाल आदित्य लोक की उत्पत्ति के लिए उन गायत्री आदि छन्द रश्मियों की क्रमशः सात-२ वार आवृत्ति होती है। उन सात-२ आवृत्तियों के पश्चात् एक-२ 'हिम्' रश्मि की उत्पत्ति होती है, इस प्रकार यहाँ 'हिम्' रश्मियों के अतिरिक्त २१ दैवी छन्द रश्मियां हो जाती हैं। इन रश्मियों से यहाँ लगभग उसी प्रकार से विशाल आदित्य लोक की उत्पत्ति विभिन्न चरणों में होती है, जिस प्रकार पूर्वोक्त लोकों की उत्पत्ति होती है। यहाँ ताण्ड्य ब्राह्मण के प्रणेता ऋषि ने इन रश्मियों के विषय में यह स्पष्ट कहा है कि ये पशु संज्ञक दैवी छन्द रश्मियां सात-२ के समूह में प्रकट होती हैं। यहाँ 'ग्राम' शब्द समूह का सूचक है। महर्षि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य (१६.४८) में 'ग्रामे' पद का अर्थ 'ब्रह्माण्डसमूहे' किया है। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि सात-२ वार आवृत्त ये छन्द रश्मियां पृथक्-२ समूह का रूप धारण करती हैं। उधर एक अन्य ऋषि का कथन है- "छन्दांसीव खलु वै ग्रामः" (तै.सं.३.४.६.२)। इससे सिद्ध है कि ये रश्मियां समूह रूप प्राप्त करके वड़ी छन्द रश्मियों का निर्माण करती हैं। इस प्रकार ये २१ छन्द रश्मियां ३ समूहों के रूप में प्रकट होकर 'हिम्' रश्मियों के माध्यम से परस्पर संगत होकर सात प्रमुख प्राण, जैसे- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु, जो वल और वीर्य से विशेषतया युक्त होते हैं, के साथ व्याप्त और संगत हो जाती हैं। इस प्रकार धीरे-२ उस विशाल लोक की उत्पत्ति हो जाती है। इसको पूर्णतया समझने के लिए पूर्वोक्त लोकों की उत्पत्ति को समझना अनिवार्य है। इस लोक को 'विषुवान्' कहा गया है। इसका कारण यह है कि यह विशाल आदित्य लोक सम्पूर्ण हिरण्यगर्भ में विद्यमान लाखों करोड़ों आदित्य लोकों के मध्य में स्थित होता है, इस विषय में एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है- "अथ विषुवानेकविंशः, न पूर्वस्य पक्षसो नोत्तरस्य" (आश्व.श्रौ.११.७.७-८)। इससे स्पष्ट है कि 'एकविंश' और 'विषुवान्' नामों से प्रख्यात यह महान् लोक अन्य लोक

समूहों के केन्द्र में उत्पन्न और स्थित होता है, न कि किसी एक दिशा में। हमारे मत में इस लोक की उत्पत्ति की पूर्णता होने के पूर्व अन्य आदित्य लोकों की उत्पत्ति हो जाती है, जो अपने इस विशाल केन्द्र की उत्पत्ति के पूर्व इस ब्रह्माण्ड में यत्र-तत्र भटकते रहते हैं और इस विशाल लोक के उत्पन्न होने के पश्चात् इसके चारों ओर परिक्रमा प्रारम्भ कर देते हैं। इस विशाल लोक के प्रवल आकर्षण के कारण सभी आदित्य आदि लोक उसकी ओर आकृष्ट होकर विभिन्न कक्षाओं एवं उचित गतियों को प्राप्त करते हैं। इसके साथ-२ ही वे आदित्य लोक परस्पर अपने मध्य दूरियों को भी व्यवस्थित करते हैं। यह विशाल आदित्य लोक प्रवल ऊष्मा से युक्त होता है, इसी कारण महाप्राज्ञ महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "एष एवैकविंशो य एष तपति" (श.१.३.५.११) इस प्रसंग में एक अन्य ऋषि का कथन है- "एकविꣳश एष भवति। एतेन वै देवा एकविꣳशेन आदित्यमित उत्तमꣳसुवर्गं लोकमारोहयन्।" (तै.ब्रा.२.४.१) इस वचन से यह प्रमाणित होता है कि प्रकाशित लोक पहले ग्रहों के अधिक निकट होते हैं। जव विशाल आदित्यलोक का प्रवलतम आकर्षण वल कार्य करने लगता है, तव वे प्रकाशित लोक अपने-२ ग्रहमण्डल से कुछ दूर हो जाते हैं, पुनरपि वे अपने प्रवल आकर्षण वल के कारण उन ग्रहों एवं उपग्रहों को कुछ दूरी पर धारण करते हुए अपने साथ वाँधे रखते हैं। इस प्रमाण में 'इतः' शब्द 'पृथिवी से' अर्थ में तथा 'आदित्य' शब्द अपने सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।।+।।

वह 'एकविंश' अर्थात् विशाल आदित्य लोक तथा 'एषः' अर्थात् यह हमारा सूर्य लोक, ये दोनों एकविंश रूप होते हैं। यहाँ 'इतः' का अर्थ प्राप्त अर्थात् व्याप्त समझना चाहिए। इस विषय में एक अन्य ऋषि का कहना है- "एकविꣳशति निर्बाधो भवत्येकविꣳशतिर्वै देवलोका द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविꣳश एतावन्तो वै देवलोकास्तेभ्य एव भ्रातृव्यमन्तरेति निर्बाधैर्वै देवा असुरान् निर्बाधेऽकुर्वत तन्निर्बाधानां निर्बाधत्वं निर्बाधी भवति भ्रातृव्यानेव निर्बाधे कुरुते।" (तै.सं.५.१.१०.३-४) उधर तैत्तिरीय ब्राह्मण (१.२.४.१) में इसी वात का समर्थन करते हुए लिखा है- "स वा एष इतः एकविꣳशः" तैत्तिरीय संहिता के उपर्युक्त वचन का आशय है कि किसी भी आदित्य लोक एवं उनके आकर्षण केन्द्र अति विशाल आदित्य लोक, दोनों ही इक्कीस प्रकार के पदार्थों में सदैव व्याप्त रहते हैं अर्थात् उनसे घिरे हुए रहते हैं। वे पदार्थ इस प्रकार हैं- वारह प्रकार की मास रश्मियां, जिन्हें हम निविद् रश्मियां भी कहते हैं, पाँच प्रकार की ऋतु रश्मियां, तीन प्रकार के लोक अर्थात् 'भूः' 'भुवः' और 'सुवः' नामक सूक्ष्म रश्मियां एवं एक आदित्य अर्थात् 'ओम्' संज्ञक सूक्ष्म रश्मि। 'आदित्य' से 'ओम्' का ग्रहण करते हुए एक ऋषि ने लिखा है- 'ओमित्यादित्यः' (जै.उ.३.३.३.१२)। यहाँ 'आदित्य' शब्द से 'ओम्' रश्मि के साथ-२ प्राण तत्त्व अर्थात् सभी १२ प्राथमिक प्राणों का भी ग्रहण करना चाहिए। इस विषय में आर्षवचन है- "असौ वा आदित्यः प्राणः" (तै.सं.५.२.५.४)। यहाँ तैत्तिरीय संहिता के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि सभी आदित्य लोक और उनका एक केन्द्रभूत विशाल आदित्य-लोक सभी सदैव असुर तत्त्व से भी आक्रान्त होते रहते हैं। यह असुर तत्त्व सभी लोकों को अपने प्रक्षेपकवल से अव्यवस्थित कर सकता है। वह सभी पदार्थों को दूर-२ प्रक्षिप्त करके सारी व्यवस्था अर्थात् उस सम्पूर्ण लोक मण्डल को तितर-वितर कर सकता है। उस संभावित वाधा को इक्कीस प्रकार की रश्मियों, जो इन लोकों के वाहर व्याप्त होती हैं, के द्वारा दूर किया जाता है अर्थात् वह असुर तत्त्व उस सम्पूर्ण लोकसमूह की गति और कक्षाओं को कोई वाधा नहीं पहुँचा पाता। यहाँ तीन लोकों से उन छन्दों का भी ग्रहण करना चाहिए, जो असुरतत्त्व के निराकरण में विशेष उपयोगी होते हैं। हमारे मत में वे तीन छन्द गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् ही हो सकते हैं। 'लोक' शब्द से छन्द रश्मि का ग्रहण करते हुए कहा गया है- छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ किसी भी आकाशगंगा के केन्द्र और उसकी उत्पत्ति के विषय में कुछ चर्चा की गई है। इसकी उत्पत्ति के प्रारम्भिक चरण में गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप् के दैवी रूप की उत्पत्ति सर्वप्रथम होती है। उसके पश्चात् इन तीनों रश्मियों की सात-२ वार आवृत्ति होकर इक्कीस छन्द रश्मियां प्रकट होती हैं। इसके पश्चात् पूर्व में जो सूर्यादि तारों की उत्पत्ति खण्ड ४.१२ से लेकर अनेक खण्डों में वतलाई गई है, लगभग इसी प्रकार आकाश गंगा के इन केन्द्रों की भी उत्पत्ति होती है। इस समय इन इक्कीस रश्मियों के साथ प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु तथा 'हिम्' रश्मि आदि भी मिश्रित होकर धीरे-२ विभिन्न चरणों से गुजरते हुए विद्यमान रहती हैं। गैलेक्सियों के

अनेक तारे इस केन्द्रीय तारे की उत्पत्ति के पूर्व ही उत्पन्न हो जाते हैं तथा वे इस ब्रह्माण्ड में इधर-उधर भटकते रहते हैं। केन्द्रीय तारे के उत्पन्न होने के पश्चात् सभी तारे एक निश्चित गति को प्राप्त करके उस केन्द्रीय तारे के चारों ओर परिक्रमा करने लगते हैं। विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति उनके केन्द्रीय लोक निकटतम तारे के उत्पन्न होने के पूर्व ही हो जाती है। यहाँ हमारा वर्तमान विज्ञान के साथ मतभेद है। वर्तमान विज्ञान सूर्य को पृथिवी से बहुत पुराना मानता है, परन्तु जहाँ तक हमारा ध्यान है- १२ या १३ जुलाई २०१० को प्रसिद्ध ब्रिटिश खगोलशास्त्री स्टीफन हॉकिंग ने डिस्कवरी चैनल पर कहा था कि कॉस्मिक गैस और डस्ट से पृथिवी की उत्पत्ति पहले हुई और सूर्य की बाद में, यद्यपि हम स्टीफन हॉकिंग के बिग-बैंग मॉडल, ब्लैकहॉल की अवधारणा (जिसे वे जनवरी २०१४ में अस्वीकार कर चुके हैं) एवं अनीश्वरवाद जैसे मन्तव्यों के प्रबल आलोचक हैं और कदाचित् हमारी आलोचना और प्रख्यात भारतीय खगोल शास्त्री डॉ. आभास कुमार मित्रा के क्रान्तिकारी लेखों के अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक पत्रिकाओं में अनेक बार प्रकाशित होने के बाद में स्टीफन हॉकिंग को अपनी ब्लैकहॉल मान्यता का स्वयं खण्डन करने को विवश होना पड़ा है; पुनरपि हम इनकी इस मान्यता कि पृथिवी की उत्पत्ति सूर्य से पहले हुई, से सहमत हैं। आकाशगंगा के केन्द्र की उत्पत्ति के पश्चात् ही सम्पूर्ण आकाशगंगा एवं उसके सौरमंडल अच्छी प्रकार व्यवस्थित हो पाते हैं। जब व्यवस्था की प्रक्रिया चल ही रही होती है, उस समय डार्क एनर्जी का भी प्रहार होने की पूरी आशंका रहती है। उस प्रहार से सभी सौरमण्डल और गैलेक्सियाँ बिखर सकती हैं, इस कारण गैलेक्सियों के केन्द्र और तारों के चारों ओर व्याख्यान भाग में दर्शायी हुई इक्कीस प्रकार की रश्मियां उस डार्क एनर्जी के प्रभाव को नष्ट करके लोकों के मार्गों और गतियों की रक्षा करती हैं।।

२. तस्य दशावस्तादहानि दिवाकीर्त्यस्य भवन्ति; दश परस्तान्, मध्य एष एकविंश उभयतो विराजि प्रतिष्ठितः, उभयतो हि वा एष विराजि प्रतिष्ठितः; स्तस्मादेषोऽन्तरेमाँल्लोकान् यन् न व्यथते।।

व्याख्यानम्- यहाँ पूर्वोक्त विशाल आदित्य को ही 'दिवाकीर्त्य' संज्ञा प्रदान की गई है। इसकी उत्पत्ति के प्रसंग में हम पूर्व में लिख चुके हैं। इस विषय में एक ऋषि ने कहा है- "अथो हैतत्प्राणस्यैव रेतो निर्मितं यद् दिवाकीर्त्यम्" (जै.ब्रा.२.३६)। पूर्व में इसे विभिन्न छन्द व प्राथमिक प्राण रश्मियों के मेल से निर्मित माना है। यहाँ उसे प्राणतत्त्व के रेत से निर्मित मानने का तात्पर्य है कि जब ये प्राण रश्मियां व छन्द रश्मियां तीव्र रूप से सन्तप्त होकर मिथुन करती हैं, उस समय वे अत्यधिक बल उत्पन्न करती हैं। उस अत्यधिक बल से ही ऐसे विशाल लोक की उत्पत्ति सम्भव है। इस 'दिवाकीर्त्य' लोक के विषय में ऋषियों का कथन है- "रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि" (ऐ.४.१६), "प्राण एव दिवाकीर्त्यम्" (जै.ब्रा.२.३७), "पृष्ठं वै दिवाकीर्त्यम्" (तै.सं.७.३.१०.३), "जगतीष्वेव दिवाकीर्त्यं पृष्ठं कार्यम्" (जै.ब्रा.२.३६)। एवं "शिरो वै दिवाकीर्त्यम्" (तां.२४.१४.४; २५.१.८)। इन आर्ष-वचनों से इस 'दिवाकीर्त्य' नामक विशाल आदित्य लोक के स्वरूप का गम्भीर वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है। इनसे उस लोक के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्रकाशित होते हैं-

(१) ये लोक सन्तप्त व बलवत्तम प्राण रश्मियों व छन्द रश्मियों के सघन व विशाल भण्डार होते हैं।
(२) इन लोकों में ये प्राण रश्मियां वा छन्द रश्मियां ही अधिकांश मात्रा में विद्यमान होती हैं। अग्नि के परमाणु आदि की मात्रा न्यून होती है।
(३) इन केन्द्रों (लोकों) के बाहरी भाग जगती छन्द रश्मियों से आच्छादित होते हैं अर्थात् जगती छन्द रश्मियां इनके पृष्ठ (आवरण) का कार्य करती हैं।
(४) ये लोक अन्य सभी प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों के पृष्ठ अर्थात् आधार का कार्य करते हैं।
(५) ये लोक अपने मण्डल में शिर के समान श्रेष्ठ व सर्वनियन्त्रक होते हैं।

इन गुणों से इन विशाल लोकों का अन्य प्रकाशित वा अप्रकाशित लोकों के स्वरूप से महान् भेद स्वतः स्पष्ट हो जाता है। 'दिवाकीर्त्य' शब्द से भी यही संकेत मिलता है कि यह लोक प्राथमिक प्राणों, छन्द रश्मियों के विशेष मेल तथा उसमें आकाशतत्व के मिश्रण से बना होता है, अन्य पदार्थ गौण रूप में विद्यमान हो सकते हैं। अब इस लोक की स्थिति के विषय में महर्षि लिखते हैं कि यह विशाल लोक

इस ब्रह्माण्ड में इस प्रकार स्थित होता है अर्थात् हजारों-लाखों प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों के मध्य स्थित होता है। वे लोक इस विशाल लोक से नितान्त निकट विद्यमान नहीं होते हैं। यहाँ नितान्त होने से तात्पर्य यह है कि जो दूरी अन्य विभिन्न लोकों के बीच होती है, वह दूरी इस विशाल आदित्य लोक व अन्य लोकों की निकटतम सीमा वा कक्षा के मध्य नहीं होती, बल्कि वह दूरी अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। इस कारण **इस केन्द्रीय विशाल लोक के चारों ओर बहुत बड़ा रिक्त क्षेत्र होता है। उस रिक्त क्षेत्र में बीस विभिन्न प्रकार के पदार्थों की प्रधानता वाले क्षेत्र होते हैं,** जो दस-२ दोनों ओर होते हैं तथा मध्य में यह विशाल लोक स्थित होता है। इस विषय में एक अन्य ऋषि का भी यही मत है। उनका कथन है- "तस्य दशावस्तादहानि। दश परस्तात्। स वा एष विराज्युमयतः प्रतिष्ठितः। विराजि हि वा एष उभयतः प्रतिष्ठितः.......।" (तै.ब्रा.१.२.४.१) इसका तात्पर्य है कि यह 'दिवाकीर्त्य' लोक दोनों ओर स्थित विराट् रश्मियों से घिरा वा आवृत्त होता है। यहाँ विराट् के विषय में विचार करना आवश्यक है। इस विषय में ऋषियों का कथन है- "विराड्ढि छन्दसां ज्योतिः" (तां.१०.२.२), "विराड् विराजनाद्वा। विराधनाद्वा। विप्रापणाद्वा। विराजनात्सम्पूर्णाक्षरा। विराधनादूनाक्षरा। विप्रापणादधिकाक्षरा।" (नि.७.१३)। इसका तात्पर्य यह है कि इस विशाल लोक के दोनों ओर अर्थात् चारों ओर (चारों ओर इस कारण माननीय है कि वृताकार क्षेत्र के दोनों ओर का अर्थ चारों ओर ही मानना तर्कसंगत है)। बीस क्षेत्र, जिनमें से दस-दस दोनों ओर होते हैं, केन्द्र के सब ओर ही स्थित होते हैं। यहाँ विभिन्न छन्द विशेष ज्योतिर्मय अवस्था में न्यूनाधिक होते रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दस-२ आवरण अपने अन्दर जिन रश्मि व कण आदि पदार्थों को धारण किए रहते हैं, वे रश्मि आदि पदार्थ न केवल सतत चलायमान होते रहते, अपितु वृद्धि वा ह्रास को भी प्राप्त होते रहते हैं। यहाँ महावेदवेत्ता महर्षि यास्क **की सूक्ष्म दृष्टि आश्चर्यकारिणी है। यहाँ इन पदार्थों का न्यूनाधिक होते रहना व उनकी दीप्ति में भी न्यूनाधिकता का होते रहना इस बात का सूचक है कि इन सभी विभिन्न क्षेत्रों का सतत सम्पर्क केन्द्रीय विशाल आदित्य से बना रहता है और वही यह परिवर्तन करता रहता है। इस कारण ही इस लोक को विराट् नामक पदार्थों से घिरा हुआ कहा गया है।**

अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि वे दस-२ आवरण कौन से हैं? यहाँ आचार्य सायण ने अपनी याज्ञिक शैली में इन दस अहन् (दिनों) का परिगणन इस प्रकार किया है- तीन स्वरसाम + एक अभिजित् + षडहः = कुल १० अहन्। यहाँ तीन स्वरसामों के विषय में एक ब्राह्मण ने कहा है- त्रय स्वरसामानो विश्वजिन्महाव्रतश्चातिरात्रश्च (ष.३.१२) अर्थात् विश्वजित्, महाव्रत एवं अतिरात्र ये तीन स्वरसाम कहलाते हैं। {विश्वजित् = इन्द्रो विश्वजित् (जै.ब्रा.२.४२६), विश्वजिता (देवाः) विश्वमजयन् (तां.२२.८.४)। महाव्रत = प्राणो महाव्रतम् (श.१०.१.२.३), अथ यदेतर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम् (श.१०.५.२.१), इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महानभवद्यन्महानभवत्तन्महाव्रतमभवत्तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् (ऐ.आ.१.१.१)}

इसमें **विश्वजित् इन्द्र तत्त्व को कहते हैं,** जो सभी पदार्थों को नियन्त्रित करने में सबसे बलवान् होता है। महाव्रत प्राण रश्मियों के विशेषरूप से दीप्त स्वरूप को कहते हैं। जब इन्द्र तत्त्व असुर तत्त्व पर आक्रमण करता है और उसे नष्ट वा नियन्त्रित कर लेता है, तब वह इन्द्र तत्त्व भी महाव्रत रूपी विशेष तेजस्वी प्राण रश्मियों के समान चमकने लगता है तथा तीसरा स्वरसाम अतिरात्र प्राण, अपान वा प्राणोदान नामक प्राण रश्मियों के युग्म को कहते हैं। इसके साथ यह भी सम्भव है कि प्रकाशित और अप्रकाशित कणों के मिश्रण को भी अतिरात्र कहा जाता हो। इन तीन क्षेत्रों के पश्चात् चौथा क्षेत्र 'अभिजित्' कहलाता है। 'अभिजित्' के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अग्निरेवाभिजिदग्निर्हीदं सर्वमभ्यजयत्" (कौ.ब्रा.२४.१)

"अभिजिता वै देवा इमान् लोकान् लोकानभ्यजयन्" (तां.२२.८.४)

"स ह सोऽभिजिदेव स्तोमः। अग्निरेव सः। स हीदं सर्वमभ्यजयत्" (जै.ब्रा.१.३१२)

इन प्रमाणों से प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्र में 'अभिजित्' रूप में अग्नि की विद्यमानता होती है और यही सबको नियन्त्रित करता है। हम जानते हैं कि सर्वप्रथम अग्नि की उत्पत्ति गायत्री छन्द रश्मियों के कारण होती है। हम खण्ड ३.२६ में पढ़ चुके हैं कि गायत्री छन्द रश्मियां सोम रश्मियों को नियन्त्रित करने व लाने में सक्षम होती हैं। इस कारण हमें यह प्रतीत होता है कि 'अभिजित्' क्षेत्र गायत्री छन्द प्रधानता वाला क्षेत्र होता है, जिसमें ऊष्मा की विद्यमानता होती है, साथ ही विद्युत् की भी। वस्तुतः गायत्री का सम्बन्ध ऊष्मा, प्रकाश व विद्युत् तीनों से ही होता है और विद्युत् के बिना ऊष्मा व प्रकाश की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती है। उधर एक अन्य ऋषि ने लिखा है- "अयं वै लोको

अभिजित्"(जै.ब्रा.२.८)। इससे संकेत मिलता है कि इस क्षेत्र में पृथिवी आदि के भी परमाणु आग्नेय रूप में विद्यमान होते हैं। इस क्षेत्र का सम्बन्ध पूर्वोक्त तीन स्वरसाम नामक क्षेत्रों से होता है। यहाँ हम जिस गायत्री छन्द रश्मि की चर्चा कर रहे हैं, उसे इसी ग्रन्थ में खण्ड ६.७ में दर्शाया गया है। इन चार क्षेत्रों के पश्चात् षडह रूपी ६ क्षेत्र क्रमशः होते हैं। इनके विषय में हम खण्ड ४.१५ में लिख चुके हैं। ये ६ क्षेत्र यहाँ सघन लोक के रूप में नहीं बल्कि विरल परमाणु वा रश्मिरूप में होते हैं और उनकी स्थिति ऐसी होती है, जिसमें पूर्वोक्त षडह की भाँति संपीडन व संघनन की क्रियाएं नहीं होती। इस प्रकार उस विशाल आदित्य लोक के चारों ओर दस क्षेत्र निम्नानुसार बन जाते हैं-

चित्र १८.१२ विशाल आदित्य लोक (गैलेक्सी) के चारों ओर दस क्षेत्र
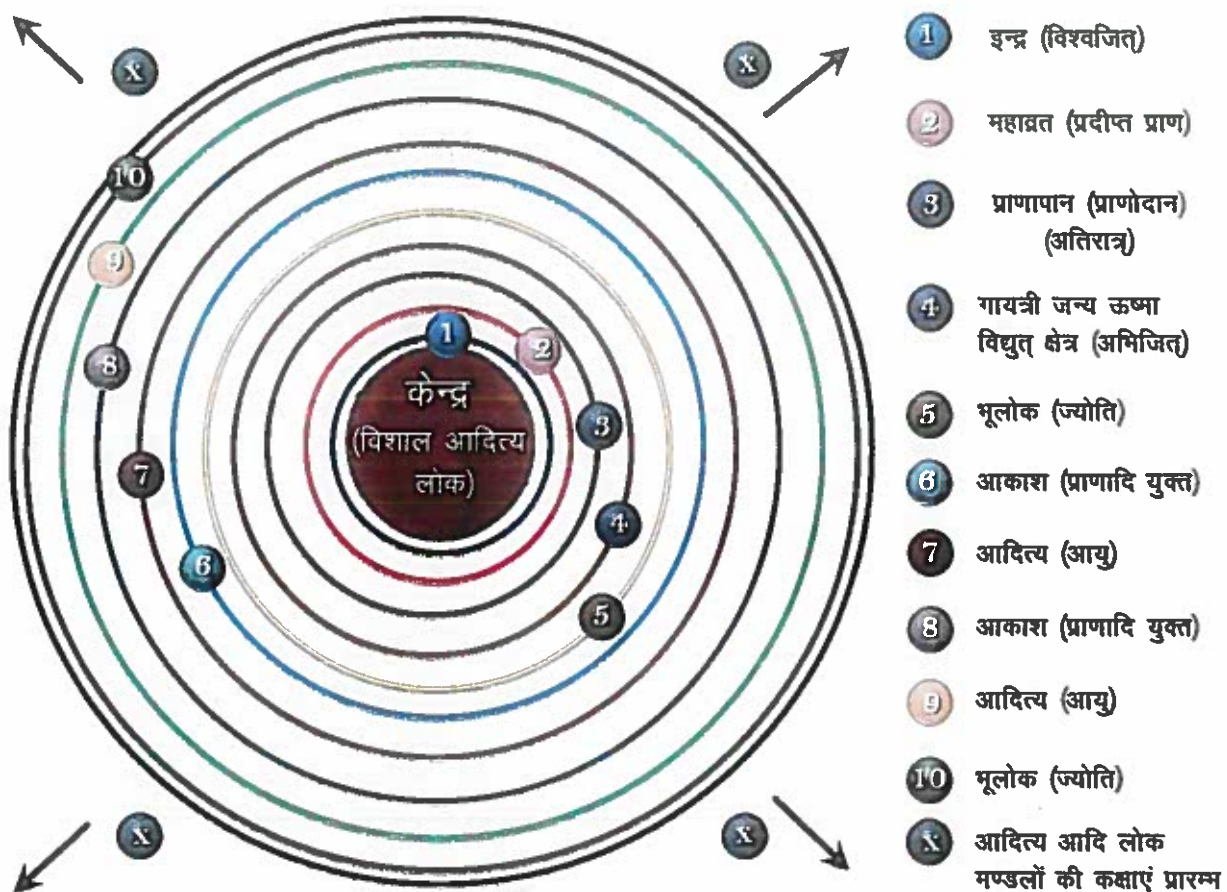
इन दस क्षेत्रों के कारण ही विशाल लोक अन्य हजारों-लाखों लोक मण्डलों पर नियन्त्रण करके उन्हें अपने चारों ओर घुमाता रहता है। ऐसा करते हुए वह लोक स्वयं विचलित नहीं होता।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- प्रत्येक गैलेक्सी के केन्द्र में एक विशाल लोक विद्यमान होता है। इसकी उत्पत्ति अत्यन्त बलवती प्राण व छन्द रश्मियों के मेल से होती है। इसमें छन्द व प्राण रश्मियों के साथ-२ अतितीव्र विद्युत् चुम्बकीय तरंगें जगती रश्मियों से आच्छादित होकर भरी रहती हैं। यह केन्द्र गैलेक्सी के अन्दर शिर के समान सर्वप्रमुख व सर्वनियन्त्रक होता है। इसके बाहरी भाग में आकाश तत्त्व तीव्र रूप से संकुचित हुआ होता है। वर्तमान विज्ञान के मूलकण, विशेषकर क्वार्क व ग्लूऑन जैसे कण भी विद्यमान होते हैं। इसका ताप बहुत तीव्र होता है, साथ ही गुरुत्वाकर्षण बल अत्यधिक होता है। इसके सब ओर विशाल क्षेत्र रिक्त होता है। उसमें कोई भी तारा मण्डल अथवा अन्य लोक विद्यमान नहीं होते। वस्तुतः इस केन्द्रीय भाग की उत्पत्ति के समय एक विशाल क्षेत्र के पदार्थ के सम्पीडन से ही इस केन्द्रीय लोक की उत्पत्ति होती है, इस कारण दूर-२ तक स्थान रिक्त हो जाता है। इस रिक्त क्षेत्र में

पदार्थ सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है। इस सूक्ष्म पदार्थ को दस क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। वे क्षेत्र व्याख्यान भाग में चित्र द्वारा दर्शाये गए हैं। इन्हें क्रमशः निम्नानुसार समझा जा सकता है-

(१) यह क्षेत्र गैलेक्सी के केन्द्र के सर्वाधिक निकट होता है। इस क्षेत्र में इन्द्र तत्त्व अर्थात् वायुरश्मियों मिश्रित विद्युत् क्षेत्र तीव्रतम रूप में विद्यमान होता है। इसे विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र की पराकाष्ठा वाला क्षेत्र भी कहा जा सकता है।

(२) इस क्षेत्र में विभिन्न प्राण रश्मियां अति तीक्ष्ण रूप में विद्यमान होने से यहाँ विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र के साथ-२ प्रकाश की मात्रा भी विशेष होती है।

(३) इस क्षेत्र में प्राणापान रश्मियों की सघनता होने से विद्युत् की तीव्रता यहाँ भी रहती है।

(४) यहाँ कुछ गायत्री रश्मियां विशेषरूपेण विद्यमान होने से उपर्युक्त विद्युत् क्षेत्र तेजस्वी अर्थात् प्रकाश व ऊष्मा से विशेष युक्त होता है।

(५) इस क्षेत्र में वर्तमान विज्ञान के कथित मूलकणों की अधिकता होती है, साथ ही यहाँ प्रकाश व ऊष्मा भी तीव्र होते हैं।

(६) इस क्षेत्र में विभिन्न प्राण रश्मियों व विद्युत् चुम्बकीय तंरगों से युक्त आकाश की प्रधानता होती है।

(७) इस क्षेत्र में प्राण व छन्द रश्मियों की सघनता तथा कथित मूलकणों की विरलता होती है।

(८) यह क्षेत्र छठे क्षेत्र के समान होता है।

(९) यह क्षेत्र सातवें क्षेत्र के समान होता है।

(१०) यह क्षेत्र पांचवें क्षेत्र के समान होता है।

इस प्रकार ये दस क्षेत्र संयुक्त रूप से गैलेक्सी के केन्द्र के गुरुत्वाकर्षण वल को ऐसा तीव्र वनाते हैं कि सम्पूर्ण गैलेक्सी के लाखों, करोड़ों सौरमण्डलों को धारण करके अपने चारों ओर परिक्रमा करने को विवश करता है। इन क्षेत्रों के पश्चात् ही तारामण्डलों का क्षेत्र प्रारम्भ होता है, जो अन्तरिक्ष में अतिदूर तक फैला रहता है।।

३. तस्य वै देवा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपातादबिभयुस्तं त्रिभिः स्वर्गैर्लोकैरवस्तात् प्रत्युत्तम्भुवन् स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकास्तस्य पराचोऽतिपातादबिभयुस्तं त्रिभिः स्वर्गैर्लोकैः परस्तात् प्रत्यस्तम्भुवन् स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकास्तत्त्रयोऽवस्तात् सप्तदशा भवन्ति, त्रयः परस्तान्मध्य एष एकविंश, उभयतः स्वरसामभिर्धृत, उभयतो हि वा एष स्वरसामभिर्धृतस्तस्मादेषोऽन्तरेमाँल्लोकान् यन्न व्यथते।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त विशाल आदित्य लोक के वाहर दस विशेष प्रकार के क्षेत्रों की चर्चा के उपरान्त महर्षि यहाँ कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त व्यवस्था के उपरान्त भी वह विशाल लोक, जो अन्य अपेक्षाकृत और भी विशालतम लोक की परिक्रमा करता है तथा उसके द्वारा धारण किया हुआ रहता है, के चारों ओर कक्षा में स्थिर नहीं हो पा रहा होता है तथा इधर-उधर अव्यवस्थित गतियों में भटक रहा होता है किंवा इस वात की पूर्ण आशंका रहती है। यहाँ देवों का आशंकावश भयभीत होना इसी ओर संकेत करता है। जव वह विशाल आदित्य लोक स्वयं अपने से विशाल महान् आदित्य लोक की ओर गिरता हुआ सा कम्पायमान हो रहा होता है, तव उसके परितः पूर्वोक्त असंख्य आदित्य आदि लोक, जो देवरूप अर्थात् प्रकाशित रूप में होते हैं, भी उस केन्द्रीभूत विशाल लोक के नीचे अर्थात् निकट की ओर कम्पन करने लगते हैं, जिससे सभी लोक मण्डल तथा इसी प्रकार अपने-२ केन्द्रों की ओर निकट आते हुए कम्पन करने लगते हैं। इससे सम्पूर्ण लोकों में अस्थिरता की स्थिति वनकर सभी लोकों के उस विशाल आदित्य लोक में गिरने की आशंका उत्पन्न हो जाती है किंवा हो सकती है। **इस संकट के निवारणार्थ ईश्वरीय प्रेरणा से उस विशाल आदित्य लोक के सर्वाधिक निकटस्थ क्षेत्र में तीन स्वर्ग लोकों का आवरण उत्पन्न हो जाता है।** यहाँ स्वर्ग लोकों का तात्पर्य जानने हेतु हमें- "छन्दांसि वै स्वर्गोलोकः" (जै.ब्रा.२.२२४) पर विचार करना होगा। हमारे मत में यहाँ तीनों स्वर्गलोकों का तात्पर्य गायत्री, उष्णिक् तथा अनुष्टुप् रश्मियां हैं। ये तीनों रश्मियां उस विशालतम आदित्य लोक की दिशा में विशाल आदित्य लोक को ऊपर से आच्छादित कर लेती हैं। इनके प्रभाव से वह विशाल आदित्य लोक के उस दिशा में

गिरने व कम्पित होने की प्रक्रिया शान्त हो जाती है, परन्तु इन तीनों छन्द रश्मियों का दूसरा प्रभाव यह होता है कि वह विशाल आदित्य लोक अपने आकर्षण के केन्द्र की ओर न गिर कर उसके विपरीत दिशा अर्थात् विशाल महान् आदित्य लोक से दूर जाते हुए कम्पित होने लगता है। इसके प्रभाव से उसके सम्पूर्ण मण्डल में स्थित अनेक आदित्य लोक भी अपने केन्द्ररूप विशाल आदित्य लोक से दूर हटते हुए कम्पायमान होने लगते हैं। ऐसा होने पर सम्पूर्ण आदित्य लोक मण्डल समूह दूर-२ बिखर कर नष्ट हो सकते हैं। इस अनिष्ट के निवारण हेतु उसी ईश्वरीय चेतना की प्रेरणा से तीन और छन्द रश्मियां- त्रिष्टुप्, पंक्ति व जगती छन्द रश्मियां उपर्युक्त दिशा के विपरीत दिशा में उस विशाल आदित्य लोक को निकटतम दूरी पर आच्छादित कर लेती हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त दस-२ आवरक क्षेत्रों के स्थान पर १३-१३ क्षेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। यहाँ पूर्व क्षेत्रों तथा इन तीन-२ क्षेत्रों में भेद यह है कि पूर्वोक्त १०-१० क्षेत्र दोनों ओर समान ही हैं, जबकि ये तीन-२ क्षेत्र पृथक्-२ छन्द रश्मियों के होने से इनकी गणना प्रकार वा स्वरूप भेद से होती है। परन्तु यहाँ महर्षि ने कुल संख्या सत्रह लिखी है। इससे यह प्रमाणित होता है कि एक छन्द रश्मि बृहती और उत्पन्न होती है, जिसका स्थान इन तीन-२ छन्द रश्मियों के ठीक बहिर्भाग में होता है, जिससे ये छन्द रश्मियां स्वयं बंधी रहती हैं। ये सभी छन्द रश्मियां हमारी दृष्टि में दैवी ही हो सकती हैं। इन सबके मध्य वह विशाल आदित्य लोक (एकविंश) स्थित होता है। इसका रूप निम्नानुसार हो जाता है-

चित्र १८.१३ बृहती छन्द रश्मि सबके परितः आवरक रूप में
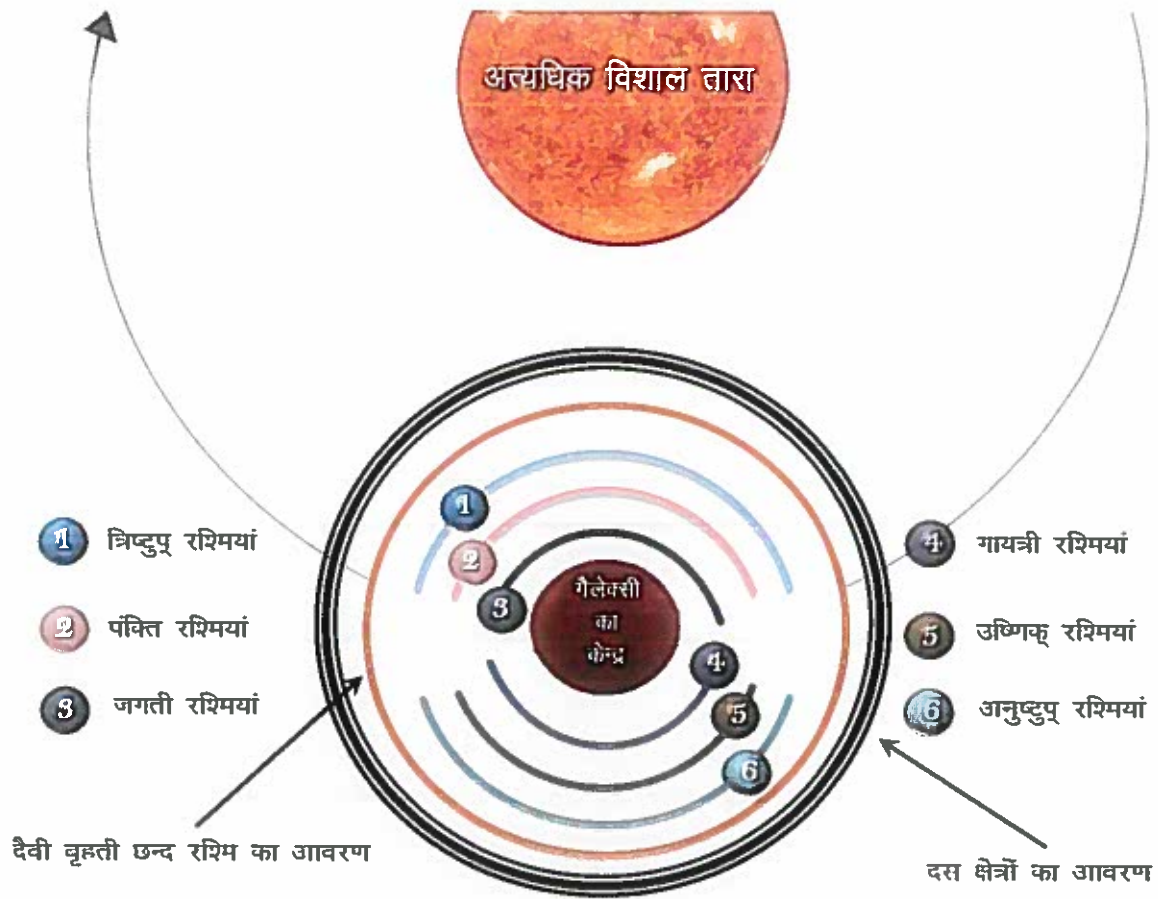
इस प्रकार विशाल आदित्य लोक का स्वरूप बन जाता है। यहाँ नीचे की दिशा का अर्थ है, इस विशाल लोक से भी अति विशाल लोक, जिसे हमने विशालतम लोक कहा है, की ओर की दिशा तथा ऊपर की दिशा का अर्थ है, उसके विपरीत दिशा।

इस लोक के बाहर पुनः १०-१० आवरण पूर्वोक्तानुसार समझने चाहिए। इन सब आवरक क्षेत्रों के उत्पन्न होने पर यह विशाल लोक अपनी कक्षा में अपेक्षाकृत स्थिर हो जाता है, जिससे इसकी परिक्रमा कर रहे लाखों आदित्यादि लोक भी अपेक्षाकृत स्थिर होने लगते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न गैलेक्सियों के केन्द्र भी अन्य किसी ओर भी विशाल लोक, जो कदाचित् गैलेक्सियों के केन्द्रों के स्वरूप से भिन्न स्वरूप वाला होता है, की परिक्रमा करते रहते हैं। जब गैलेक्सियों के केन्द्रों का निर्माण होता है तथा उनके चारों ओर पूर्वोक्त दस आवरण निर्मित हो जाते हैं, उस समय भी गैलेक्सियों के केन्द्रों की कक्षायें तथा गतियां अनिश्चित व अस्थिर ही होती हैं। वे गैलेक्सी केन्द्र अपने आकर्षण केन्द्रभूत अति विशाल लोक की ओर गिरते हुए कम्पन करने लगते हैं। इनके अस्थिर होने से उनके चारों ओर परिक्रमा कर रहे लाखों-करोड़ों तारे भी अस्थिर ही रहते हैं। इस स्थिति में चेतन परमात्म तत्त्व की प्रेरणा से गैलेक्सियों के केन्द्रों तथा पूर्वोत्पन्न दस क्षेत्रों के मध्य एक ओर अर्थात् उन गैलेक्सियों के केन्द्रों के भी आकर्षण केन्द्ररूपी अत्यधिक विशाल तारे की दिशा में दैवी गायत्री, उष्णिक् व अनुष्टुप् रश्मियों का आवरण बन जाता है। इसके प्रभाव से गैलेक्सियों के केन्द्र अपने केन्द्ररूप अत्यधिक विशाल तारे की ओर गिरने से तो रुक जाते हैं परन्तु वे फिर विपरीत दिशा में जाते हुए कम्पन करने लगते हैं। इसके कारण भी सभी तारे अस्त व्यस्त होकर कम्पायमान होने लगते हैं। उस समय उसी परमात्म चेतना की प्रेरणा से मनस्तत्त्व द्वारा दैवी त्रिष्टुप्, पंक्ति व जगती रश्मियों का आवरण विपरीत दिशा में उत्पन्न हो जाता है। इसके साथ ही इन छः दैवी छन्द रश्मियों को परस्पर आबद्ध करने हेतु दैवी बृहती छन्द रश्मि इन्हें परिधिरूप में घेर लेती है। इसके ऊपर पूर्वोक्त दस क्षेत्रों का आवरण होता ही है। इसके उपरान्त गैलेक्सियों व तारों की कक्षाओं व गतियों में अपेक्षाकृत स्थायित्व आ जाता है। विशेष जानकारी के लिए उपर्युक्त दोनों चित्रों को देखें।।

४. तस्य वै देवा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपातादबिभुयस्तं परमैः स्वर्गैलोकैरवस्तात् प्रत्युत्तभ्नुवन् स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकास्तस्य पराचोऽतिपातादबिभयुस्तं परमैः स्वर्गैर्लोकैः परस्तात् प्रत्यस्तभ्नुवन् स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकास्तत्त्रयोऽवस्तात् सप्तदशा भवन्ति त्रयः परस्तात् ते द्वौ द्वौ संपद्य त्रयश्चतुस्त्रिंशा भवन्ति, चतुस्त्रिंशो वै स्तोमानामुत्तमस्तेषु वा एष एतदध्याहितस्तपति तेषु हि वा एष एतदध्याहिस्तपति।। स वा एष उत्तरोऽस्मात् सर्वस्माद् भूताद् भविष्यतः-सर्वमेवेदमतिरोचते यदिदं किंचोत्तरो भवति।।
यस्मादुत्तरो बुभूषति, तस्मादुत्तरो भवति य एवं वेद।।४।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त चरणों के सम्पन्न होने के उपरान्त भी विशाल आदित्य लोकों की कक्षाएं पूर्णरूपेण स्थिर नहीं हो पा रही थी। वे लोक अपने आकर्षक विशालतम लोकों के दूर व निकट दोलन जैसा कर रहे थे। इनके अस्थिर होने से उनके साथ बंधे आदित्य लोक भी इसी दोलायमान स्थिति में थे। यद्यपि बहुत स्थायित्व तो आ चुका था परन्तु पूर्ण स्थायित्व नहीं हो सका था। उस समय भी **उसी चेतन सत्ता की प्रेरणा से उन विशाल आदित्य लोकों के परितः** {स्तोमाः = प्राणा वै स्तोमाः (जै.ब्रा.२.१३३; श.८.४.१.३)} **तीन परम स्वर्गलोक रूपी स्तोमों की उत्पत्ति होती है।** हमारे मत में प्राण, अपान व उदान रश्मियां ही यहाँ परम स्वर्ग लोक का रूप हैं। इन तीनों रश्मियों का आवरण नीचे की ओर उत्पन्न किया जाता है, तब वे लोक दूसरी ओर उठने लगते हैं। तब इन्हीं रश्मियों का आवरण ऊपर की दिशा अर्थात् विपरीत दिशा में भी उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार वे विशाल आदित्य लोक विपरीत दिशा में भी गमन नहीं कर पाते, जिससे वे लोक मध्य में ही अपनी उपर्युक्त कक्षा में स्थापित होकर स्थिर व उपर्युक्त गतियों में परिक्रमण करने लगते हैं। उस समय उन लोकों के चारों ओर कुल वास्तविक सत्रह आवरण रूप क्षेत्र बन जाते हैं, जो दोनों ओर के मिलाकर कुल चौंतीस क्षेत्र हो जाते हैं। इनके बाहरी भागों में लाखों आदित्य लोकों के परिवार भी अपनी-२ कक्षाओं में उपर्युक्त गति के साथ परिक्रमण करने लगते हैं। पूर्व में दोनों ओर १४-१४ क्षेत्र थे, जिनमें तीन-तीन क्षेत्र भिन्न-२ प्रकार के होने से उन्हें पृथक्-२ गिनकर सत्रह-२ माना था। वास्तव में सत्रह-२ क्षेत्र यहाँ उत्पन्न हो पाते हैं। इन सबका बल अत्यन्त दृढ़ होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आकार प्रदान करके व्यवस्थित बनाता है। इन सत्रह-२ आवरक क्षेत्रों के मध्य वे विशाल आदित्य लोक तीव्र तप्त

अवस्था में तपते हुए अपने-२ चारों ओर परिक्रमा कर रहे लोकों को धारण करते हुए उन्हें भी परिक्रमा कराने में समर्थ होते हैं। इसे निम्न चित्र से समझें।।
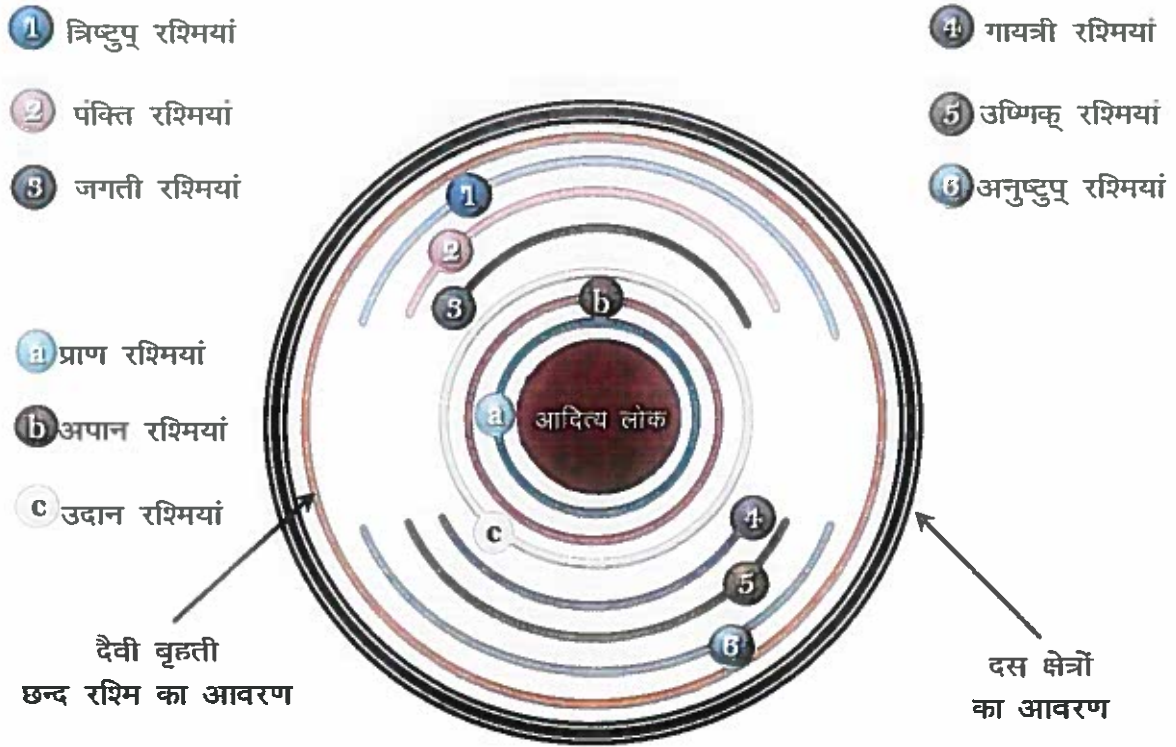
चित्र १८.१४ विशाल आदित्य लोक (गैलेक्सी) के चारों ओर १७-१७ आवरण

विशेष ज्ञातव्य- इन कण्डिकाओं अर्थात् इस कण्डिका के साथ उपर्युक्त दोनों कण्डिकाओं में 'एषः' पद से अपने सूर्यलोक का भी ग्रहण किया जा सकता है। इससे प्रतीत होता है कि जो स्थिति विशाल आदित्य लोकों की होती है, वही आदित्य लोकों की भी माननी चाहिए अर्थात् वहाँ भी इस प्रकार के सत्रह आवरण (क्षेत्र) विद्यमान होते हैं, जिनके कारण वे आदित्य लोक भी अपने परितः चक्कर लगाने वाले लोकों को थामे रखते हैं।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि ये विशाल आदित्य लोक अपने-२ सम्पूर्ण परिवार में तथा अन्य आदित्य लोक अपने-२ परिवार में सर्वोत्कृष्ट दीप्तियुक्त होते हैं, साथ ही उनका आकर्षण वल भी अपने-२ परिवार में सर्वाधिक होता है। उनके अपने-२ परिवारों में उनसे उत्कृष्ट कोई लोक कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता। यहाँ 'रोचते' धातु पद का अर्थ {रोचते ज्वलतिकर्मा (निघं.१.१६), रुच दीप्तावभिप्रीतौ च}, ज्वलनशील होना, चमकना व आकर्षित करना तीनों ही प्रयुक्त हैं।।

पूर्वोक्त प्रकार से सभी क्रियाएं यथावत् सम्पन्न होने पर ये उपर्युक्त सभी लोक अन्य सभी की अपेक्षा उत्कृष्ट स्वरूप वाले होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त अनेक क्षेत्रों की उत्पत्ति के पश्चात् भी गैलेक्सियों के केन्द्र में विद्यमान विशाल तारे व अन्य विभिन्न तारों की कक्षायें व गतियां पूर्ण निश्चित व स्थायी नहीं हो पाती हैं। इस कारण ग्रहों व उपग्रहों की भी यही स्थिति रहती है। उस समय सर्वनियन्ता परमात्म तत्त्व की प्रेरणा से गैलेक्सियों के केन्द्रों व विभिन्न तारों के निकट प्राण, अपान व उदान नामक रश्मियों के एक-२ कुल तीन आवरण और वन जाते हैं। पूर्वोत्पन्न आवरण इनके वाहरी भाग में विद्यमान होते ही हैं। इस

प्रकार कुल सत्रह-२ आवरण हो जाते हैं। इनके कारण गैलेक्सियों के केन्द्रीय विशाल तारों तथा अन्य सभी तारों की कक्षा एवं गतियां स्पष्ट व निश्चित हो जाती हैं। इसके पश्चात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सभी लोक अपेक्षित गति व कक्षाओं को प्राप्त कर लेते हैं। इसके साथ महर्षि यह भी कहते हैं कि किसी गैलेक्सी में उसका केन्द्रीय तारा सबसे अधिक आकर्षण बल तथा प्रकाश-ऊष्मा से युक्त होता है। उससे बड़ा व श्रेष्ठ कोई तारा वा कोई अन्य लोक उस गैलेक्सी में कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता।
इसी प्रकार किसी भी सौरमण्डल में सूर्य्य से अधिक विशाल गुरुत्वाकर्षण बल, प्रकाश व ऊष्मा से युक्त कोई भी ग्रह आदि लोक कभी भी उत्पन्न नहीं होता है।।

॥ इति १८.४ समाप्तः ॥

ॐ अथ १८.५ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. स्वरसाम्न उपयन्तीमे वै लोकाः स्वरसामान इमान् वै लोकान् स्वरसामभिरस्पृण्वंस्तत् स्वरसाम्नां स्वरसामत्वम्; तद्यत् स्वरसाम्न उपमन्त्येष्वेवैनं तल्लोकेष्वाभजन्ति।।
तेषां वै देवाः सप्तदशानां प्रव्लयादबिभयुः समा इव वै स्तोमा अविगूह्ळा इवेमे ह न प्रव्लियेरन्निति तान् सर्वैः स्तोमैरवस्तात् पर्यार्षन् सर्वैः पृष्ठैः परस्तात् तद्यदभिजित् सर्वस्तोमोऽवस्ताद् भवति विश्वजित् सर्वपृष्ठः परस्तात्, तत्सप्तदशानुभयतः पर्यृषन्ति, धृत्या अप्रव्लयाय।।

{अस्पृण्वन् = (स्पृ प्रीतिसेवनयोः, प्रीतिचलनयोर्वा = सन्तुष्ट करना, संरक्षण करना, पालना, जाना, प्रसन्न करना - सं.धा.को. - पं.युधिष्ठिर मीमांसक)}

व्याख्यानम्- विभिन्न लोकों के स्थायित्व के पूर्व खण्ड के विज्ञान को और भी पुष्ट व विस्तृत करते हुए कहते हैं कि {उप+यम् = प्रकट करना, पकड़ना, थामना, अधिकार करना - आप्टेकोश} पूर्वोक्त स्वरसाम नामक तीन पदार्थ विश्वजित् अर्थात् इन्द्र, महाव्रत अर्थात् विशेष प्रदीप्त प्राण वा इन्द्र तथा अतिरात्र अर्थात् प्राणापानयुक्त प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु के तीन आवरण ही पूर्वोक्त सत्रह प्रकार के आवरक क्षेत्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व प्रारम्भिक भूमिका निभाते हैं। ये तीनों क्षेत्र सभी लोकों को संरक्षण, आकर्षण वल व गति प्रदान करने में विशेष भूमिका निभाते हैं। {स्वरति गतिकर्मा (निघं.२.१४)। साम = सन्धिः (तु.म.द.य.भा.१६.६४)} इनको स्वरसाम कहा गया है अर्थात् विश्वजित् (इन्द्रतत्त्व), महाव्रत (विशेष प्रदीप्त प्राणयुक्त इन्द्र तत्त्व) एवं प्राणापानयुक्त प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणुओं के मिश्रणरूपी अतिरात्र क्षेत्र, ये स्वरसाम कहलाते हैं। इसका अर्थ है कि इन तीन प्रमुख व प्रारम्भ में उत्पन्न क्षेत्रों के द्वारा ही सभी लोकों को गति प्राप्त होती है अर्थात् वे सभी लोक इन तीन क्षेत्रों के प्रभाव से ही गति को सम्यग्रूपेण धारण करते हैं। ये तीन पदार्थ वा उनसे युक्त क्षेत्र ही सभी लोकों का सम्यग्रूप से रक्षण करते हुए उन्हें गतिशील रखने में सहायक होते हैं। इस कारण वे लोक भी स्वरसाम नाम से जाने जाते हैं, क्योंकि वे स्वरसाम नामक इन्द्रादि पदार्थों के द्वारा ही धारण किए जाते हैं तथा सर्वप्रथम परिक्रमण गति से युक्त किए जाते हैं, भले वह गति व उनके मार्ग अनिश्चित क्यों न हों। ये तीनों पदार्थ सभी लोकों से सीधा सम्वन्ध रखकर उन्हें प्रेरित करते रहते हैं।

हमारे मत में यहाँ 'लोक' का तात्पर्य अन्य सभी चौदह क्षेत्र भी हो सकते हैं। इससे संकेत मिलता है कि ये तीन क्षेत्र ही सभी आवरणरूपी क्षेत्रों अर्थात् उनमें स्थित पदार्थ को संरक्षण व गति प्रदान करते हुए वांधे रखते हैं, जिससे सवका साझा परिणामी वल उत्पन्न होकर सम्पूर्ण प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों को वांधे रखता है।।

{प्रव्लयात् = (व्ली वरणे = आच्छादन करना, सरकना, जाना - सं.धा.को. - पं.युधिष्ठिर मीमांसक)} पूर्व खण्ड में विशाल आदित्य लोक तथा अन्य सभी लोकों की गतियों व कक्षाओं के स्थिरीकरण की चर्चा की गयी थी। उसी प्रकरण में अर्थात् सभी लोकों को धारण व संरक्षण प्रदान करने हेतु सत्रह प्रकार के विभिन्न पदार्थयुक्त क्षेत्रों की चर्चा भी की गयी थी। यहाँ इन सत्रह क्षेत्रों पर विशेष लिखते हुए कहते हैं कि ये सभी क्षेत्र समरूप होते हैं। इससे संकेत मिलता है कि सभी क्षेत्र परस्पर वैशिष्ट्य रखते हुए भी परस्पर समान होते हैं। इस कारण वे परस्पर अविगूहड अर्थात् शिथिल व

अरक्षित हो सकते हैं। उनके मध्य दृढ़ वन्धन नहीं होने से सभी सत्रह क्षेत्र खुले भी हो सकते हैं। ऐसा होने पर सम्पूर्ण लोक समूह अव्यवस्थित हो सकता है। उस समय कुछ अन्य रश्मियां इस प्रकार उत्पन्न होती हैं। इस विषय में आचार्य सायण ने अपने भाष्य में अपनी याज्ञिक शैली में लिखा है......'तान्' सप्तदशस्तोमान् 'अवस्तात्' अधोभागे सर्वैः स्तोमैस्त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंशत्रिनवत्रयस्त्रिंशाख्यै 'पर्यार्धन्' परितो गताः, रक्षणाय परितो वेष्टनं कृतवन्त इत्यर्थः। तथा 'परस्तात्' सप्तदशस्तोमानामुपरिभागे 'सर्वैः पृष्ठैः' रथन्तर-बृहद्-वैरूप-वैराज-शाक्वर-रैवत-सामाख्यैः पृष्ठस्तोत्रैः पर्यार्धन्'।......" इसका तात्पर्य है कि महर्षि जिन पूर्वोक्त अभिजित् व विश्वजित् के साथ क्रमशः सभी स्तोम व पृष्ठों के युक्त करने का विधान करते हैं, वे स्तोम व पृष्ठ वे छन्द रश्मियां हैं, जिन्हें सायण ने अनुष्ठान विशेष में पढ़ने का विधान किया है। इस विधान से हम अपनी शैली में यह समझते हैं कि पूर्वोक्त सत्रह क्षेत्रों में जो अभिजित् क्षेत्र विद्यमान होता है, उसके साथ निम्नलिखित छः स्तोमों की उत्पत्ति व संगति होती है-

(१) त्रिवृत् स्तोमः - इस स्तोम में सामवेद उत्तरार्धिक की ३ तृच जो कि गायत्री छन्दस्क एवं सोमदेवताक होती हैं, विद्यमान होती हैं। इनके विषय में सविस्तार खण्ड ३.४२ पठनीय है। हम यहाँ उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते हैं। ये नौ गायत्री रश्मियां ही त्रिवृत् स्तोम हैं।

(२) पञ्चदश स्तोमः - उपर्युक्त तीन तृचों की नौ गायत्री छन्द रश्मियों की विशेष आवृत्ति से पन्द्रह छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इन्हें ही पञ्चदश स्तोम कहते हैं। इनके विषय में भी खण्ड ३.४२ द्रष्टव्य है।

(३) सप्तदश स्तोमः - उपुर्यक्त नौ गायत्री छन्द रश्मियों की आवृत्ति की विशेष व्यवस्था से सत्रह गायत्री छन्द रश्मियां प्रकट होकर सप्तदश स्तोम का रूप धारण करती हैं। इस विषय में भी खण्ड ३.४२ ही दृष्टव्य है।

(४) एकविंश स्तोमः - उपर्युक्त ६ गायत्री छन्द रश्मियों की आवृत्ति विशेष से २१ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर एकविशं स्तोम को उत्पन्न करती हैं। इस विषय में भी ३.४२ खण्ड द्रष्टव्य है।

(५) त्रिणव स्तोमः - हमारे मत में उपर्युक्त ६ गायत्री छन्द रश्मियां ही एक आवृत्ति विशेष के कारण त्रिणव अर्थात् २७ गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं। वह आवृत्ति व्यवस्था निम्नानुसार होती है-

"नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स पञ्चभिः स एकया, नवभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स पञ्चभिर्नवभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभिः स एकया स तिसृभिः।" (तां.३.१.१)

इसका तात्पर्य है कि उपर्युक्त नौ छन्द रश्मियों में से प्रथम की तीन, द्वितीय की पांच, तृतीय की एक आवृत्ति होकर एक 'हिम्' रश्मि प्रकट होती है। तदुपरान्त चौथी गायत्री छन्द रश्मि की एक, पाँचवीं की तीन तथा छठी की पांच आवृत्ति होकर 'हिम्' रश्मि प्रकट होती है। अन्त में सातवीं गायत्री रश्मि की पाँच, आठवीं की एक तथा नवमी गायत्री की तीन आवृत्ति होकर एक 'हिम्' रश्मि उत्पन्न होती है। इस प्रकार 'हिम्' रश्मियों के अतिरिक्त सत्ताईस गायत्री रश्मियां ही त्रिणव स्तोम का रूप धारण करती हैं।

(६) त्रयस्त्रिंशत् स्तोमः - हमारे मत में उपर्युक्त ६ गायत्री छन्द रश्मियां निम्नानुसार आवृत्त होती हैं-

"एकादशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स सप्तभिस्स एकयैकादशभ्यो हिङ्करोति स एकया स त्रिसृभिस्स सप्तभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स सप्तभिस्स एकया स तिसृभिः।" (तां.३.३.१)

इसका तात्पर्य है कि उपर्युक्त नौ गायत्री रश्मियों में से प्रथम की तीन, द्वितीय की सात व तृतीय की एक आवृत्ति होकर एक 'हिम्' रश्मि प्रकट होती है। तदुपरान्त चौथी गायत्री रश्मि की एक, पाँचवीं की तीन तथा छठी की सात आवृत्ति होकर एक 'हिम्' रश्मि प्रकट होती है। अन्त में सातवीं की सात, आठवीं की एक तथा नवमी की तीन आवृत्ति होकर एक 'हिम्' रश्मि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार त्रयस्त्रिंशत् स्तोम का स्वरूप उत्पन्न होता है।

यह बात उल्लेखनीय है कि इन सभी स्तोमों (रश्मिसमूहों) में गायत्री छन्द रश्मियां ही होती हैं। हम पूर्व में यह लिख चुके हैं कि 'अभिजित्' नामक क्षेत्र गायत्री रश्मि प्रधान ही होता है। इस क्षेत्र के साथ इन छः स्तोमों की कुल १२२ गायत्री छन्द रश्मियां एवं १८ 'हिम्' रश्मियां उत्पन्न होकर 'अभिजित्' क्षेत्र को तेज और बल से युक्त तीक्ष्ण वज्ररूप {वज्रो वै हिंकारः (कौ.ब्रा.३.२), हिंकारो वै गायत्रस्य प्रतिहारः (तां.७.१.४)} बनाकर असुर तत्त्व के किसी भी प्रहार से बचा कर पूर्वोक्त सत्रह क्षेत्रों को विचलित वा अव्यवस्थित होने से बचाने में 'अभिजित्' क्षेत्र की भूमिका को सुदृढ़ बनाती हैं।

अब हम 'विश्वजित्' अर्थात् इन्द्र तत्त्व प्रधान क्षेत्र के साथ संयोज्य पृष्ठ सामों पर विचार करते हैं। ये साम हैं- रथन्तर, बृहत्, वैरूप, वैराज, शाक्वर एवं रैवत। इनके विषय में खण्ड ४.१३ द्रष्टव्य है। हम पुनरावृत्ति नहीं करेंगे। ये सभी पृष्ठ-साम रश्मियां विश्वजित् अर्थात् सर्वनियन्त्रक इन्द्र तत्त्व को और अधिक गति व बल से युक्त करती हैं।

इन दोनों प्रकार के रश्मिसमूहों के साथ सभी सत्रह क्षेत्र परस्पर और भी बलपूर्वक बंध जाते हैं। इससे सभी पूर्वोक्त लोक भली प्रकार से एक-दूसरे के साथ बंधे हुए अपनी-२ कक्षाओं में घूमते रहते हैं अर्थात् उनके मार्ग और भी सुव्यवस्थित व सुदृढ़ हो जाते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न गैलेक्सियों के केन्द्रीय तारों तथा अन्य तारों के चारों ओर जो पूर्वोक्त सत्रह क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के पदार्थ विद्यमान होते हैं, उनमें से केन्द्रीय भाग की ओर से चौथा व सातवां क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। इसका तात्पर्य है कि विद्युत्, ऊष्मा व प्रकाशयुक्त गायत्री रश्मि क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, पुनरपि डार्क एनर्जी के प्रहारों से इनमें भी विचलन की आशंका बनी रहती है। इस विचलन से समूचा ब्रह्माण्ड अस्त-व्यस्त हो सकता है। इस आशंका के निवारण के लिए एक सौ बाईस गायत्री रश्मियां तथा छः अन्य रश्मियां उत्पन्न होकर विद्युत् व ऊष्मा को तीव्र बना कर डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करने में सहयोग करती हैं। इनके कारण सभी लोक निरापद कक्षाएं प्राप्त कर लेते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान अवश्य पठनीय है। हाँ, इतना अवश्य स्पष्ट करणीय है कि अति गर्म विद्युत् कणों की भूमिका यहाँ रेखांकित होती है।।

२. तस्य वै देवा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपातादबिभयुस्तं पञ्चभी रश्मिभिरुदवयन्, रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि, महादिवाकीर्त्यं पृष्ठं भवति, विकर्णं ब्रह्मसाम भासमग्निष्टोमसामोभे बृहद्रथन्तरे पवमानयोर्भवतस्तदादित्यं पञ्चभी रश्मिभिरुद्वयन्ति धृत्या अनवपाताय।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त विस्तृत प्रक्रिया के चलते रहने के उपरान्त भी सभी लोकों में स्थायित्व की प्रक्रिया सर्वथा पूर्ण नहीं होती अर्थात् विभिन्न आदित्य लोक अपने केन्द्रीय विशाल आदित्य लोक से तथा वे विशाल आदित्य लोक अपने केन्द्ररूप अति विशाल आदित्य लोक तथा विभिन्न अप्रकाशित लोक अपने निकटस्थ आदित्य लोकों के साथ पूर्ण दृढ़ बन्धन न कर पाने से अभी भी कुछ कम्पित होकर परिक्रमण करते हैं। उस समय पाँच प्रकार की ऐसी रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सुदृढ़ता से बांधने में सहयोग करती हैं। ये सभी रश्मियां दिवाकीर्त्य कहलाती हैं। पूर्व खण्ड में हमने 'दिवाकीर्त्य' शब्द से विशाल आदित्य लोक का ग्रहण किया था, परन्तु यहाँ स्वयं ग्रन्थकार रश्मियों को 'दिवाकीर्त्य' कह रहे हैं। इस कारण हम यहाँ प्रकरणानुकूल रश्मियों का ही ग्रहण कर रहे हैं। 'दिवाकीर्त्य' रश्मियां प्राण रश्मियों का ही एक रूप होती हैं, जो विशेष प्रकाशमान साथ में शब्द तरंगों से मिश्रित होती हैं। इस विषय में एक ऋषि ने कहा है- "प्राण एव दिवाकीर्त्यम्" (जै.ब्रा.२.३७)। इन रश्मियों की साम-संज्ञा भी है। साम रश्मियों के विषय में ऋषियों ने कहा है- "साम वै सहस्रवर्तनि" (ष.१.४), "साम्नाःहिरण्यानि (रूपम्)" (काठ.१२.४)। इन वचनों से प्रतीत होता है कि ये रश्मियां प्रकाशवती होती हुई असंख्य मार्गों पर गमन करने वाली होती हैं। ये रश्मियां अति शक्तिशाली होती हैं। यहाँ ग्रन्थकार ने इनके निम्नलिखित पांच प्रकार बतलाए हैं-

(१) महादिवाकीर्त्य- आचार्य सायण ने विभ्राट सूर्य ऋषि {सूर्यः = प्राणः (तु.म.द.य.भा.३.५४), यः सूर्यः स धाता स उ एव वषट्कारः" (ऐ.३.४८), (वषट्कारः = वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः - ऐ.३.८)} अर्थात् विशेष प्रकाशमान प्राणापान से उत्पन्न सूर्यदेवताक एवं विराड् जगती छन्दस्क-

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति।।१।। (ऋ.१०.१७०.१)

को ही महादिवाकीर्त्य साम रश्मि माना है। इस छन्द रश्मि के देवत व छान्दस प्रभाव से प्राणापान रश्मियां सुदूर तक फैल कर देदीप्यमान होती हुई सभी प्रकार के आदित्य लोकों को बांधे रखने में सहायक होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से सभी लोक विशेषरूपेण प्रकाशित होते हुए अन्तरिक्षस्थ विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करके शक्तिशाली होते हैं। वे विभिन्न प्राण रश्मियों अर्थात् पूर्वोक्त विभिन्न सत्रह आवरणों तथा स्तोम व पृष्ठसाम रश्मियों के द्वारा और भी अधिक बंध कर प्रेरित होने लगते हैं। वे लोक अपने-२ परितः परिक्रमण करते हुए लोकों की रक्षा करने में अधिक समर्थ होते हैं।

इस रश्मि को ग्रन्थकार ने पृष्ठरूप बताया है। इसका तात्पर्य है कि यह रश्मि अन्य केन्द्रीय विशाल आदित्य लोक वा आदित्य लोकों की अन्य सभी आवरक रश्मियों के नीचे अर्थात् लोकों के सर्वाधिक निकट भाग में विद्यमान तथा सुदूर क्षेत्रों में फैलती हुई सभी आवरक क्षेत्रों में व्याप्त रह कर उन्हें धारण किए रहती है।

(२) ब्रह्मसाम- आचार्य सायण के अनुसार

पृक्षस्य॒ वृष्णो॑ अरु॒षस्य॒ नू सहः॒ प्र नु वो॑चं वि॒दथा॑ जा॒तवे॑दसः।
वै॒श्वा॒न॒राय॑ म॒तिर्नव्य॑सी॒ शुचिः॒ सोम॑इव पवते॒ चारु॑र॒ग्नये॑॥१॥ (ऋ.६.८.१)

ही ब्रह्मसाम है। इसकी उत्पत्ति भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण वा मनस्तत्त्व से होती है। इसका देवता वैश्वानर तथा छन्द जगती होने से इसके {वैश्वानरः = संवत्सरो वैश्वानरः (मै.३.४.४; श.५.२.५.१५)} दैवत व छान्दस प्रभाव से सभी आदित्य लोकों पर पूर्ववत् प्रभाव पड़ता है। इसके अन्य प्रभाव से {पृक्षम् = (पृची सम्पर्के, पृषु सेचने)} विभिन्न अन्य रश्मियों के साथ सम्बद्ध होकर अपने बल का सब पर सेचन करके विभिन्न संग्रामों वा संघर्षणों में सुन्दर दीप्ति से युक्त अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करती है, जिससे सभी लोक विशेष प्रकाश के साथ युक्त होकर बाधक रश्मियों को दूर करते हैं। इस रश्मि का नाम ब्रह्म होने से स्पष्ट है इसमें प्राणापान एवं तज्जन्य विद्युत् की मात्रा अधिक होती है तथा प्रभाव क्षेत्र व्यापक होता है। {विकर्णम् = श्रोत्रं विकर्णम् (जै.ब्रा.२.३७)} इसे ग्रन्थकार ने 'विकर्ण' कहा है, इसका तात्पर्य है कि यह रश्मि आकाशरूप श्रोत्र में फैलकर सभी रश्मियों के बीच सन्धि का कार्य करती है।

(३) अग्निष्टोम साम- {अग्निष्टोमः = ब्रह्म वा अग्निष्टोमः (शां.आ.२.१८; कौ.ब्रा.२१.५)} उपर्युक्त ब्रह्मसाम अर्थात् जगती रश्मि ही यहाँ भास अग्निष्टोम अर्थात् देदीप्यमान अग्नि का रूप है। जब यह छन्द रश्मि प्राणापान एवं तज्जन्य विद्युत् से और भी अधिक युक्त होती है, उस समय यह भास अग्निष्टोम कहलाती है। इस रूप में यह छन्द रश्मि अधिक तीक्ष्ण होकर असुरादि पदार्थों की बाधक रश्मियों से होने वाले किसी भी विचलन को दूर करने में सहायक होती है।

(४) बृहत् साम- इसके विषय में खण्ड ४.१३ की प्रथम कण्डिका का व्याख्यान द्रष्टव्य है।

(५) रथन्तर साम- इस विषय में भी खण्ड ४.१३ की प्रथम कण्डिका का व्याख्यान द्रष्टव्य है। यहाँ पिष्टपेषण उचित नहीं है।

इस प्रकार ये पांचों रश्मियां उत्पन्न होकर पूर्वोक्त सभी धारक रश्मियों को सम्यग्रीत्या बांधकर, उन्हें अधिक बलयुक्त बना कर, असुर तत्त्व के प्रहार को नियन्त्रित करके सभी पूर्वोक्त लोकों को स्थिर गति व कक्षा प्रदान करने में अन्तिम भूमिका निभाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न गेलेक्सियों व सौर-मण्डलों में विद्यमान सभी लोकों की कक्षाओं व गतियों के स्थायित्व की पूर्वोक्त लम्बी प्रक्रिया के उपरान्त भी डार्क एनर्जी डार्क मैटर का यदा - कदा प्रबल प्रतिरोध होते रहने से अनेक रक्षक शक्तियों के विद्यमान रहने के उपरान्त भी विचलन सर्वथा समाप्त नहीं हो पाता है। उस समय तीन जगती छन्द रश्मियां व दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियां केन्द्रीय लोकों के निकटतम क्षेत्र में उत्पन्न होकर पूर्वोत्पन्न सभी आवरक व रक्षक रश्मियों को परस्पर एक-दूसरे से रस्सी के समान बाँध कर सुदृढ़ बना देती हैं। इस कारण उन सबकी साझा शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती

है। जिस प्रकार कुछ रस्सियों वा तारों को परस्पर ऐंठकर (बटकर) एक रस्सी वा तार बना दिया जाए तो उसकी सुदृढ़ता खुले व कुछ ढीले तारों की संयुक्त दृढ़ता से अधिक होती है। यही कार्य ये पांच रश्मियां करती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परस्पर दृढ़ता से बंधा रहता है और सभी लोक करोड़ों वर्ष से अपनी-२ कक्षा में बिना किसी बाधा व विचलन के परिक्रमण कर रहे हैं। इन रश्मियों के विषय में विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।
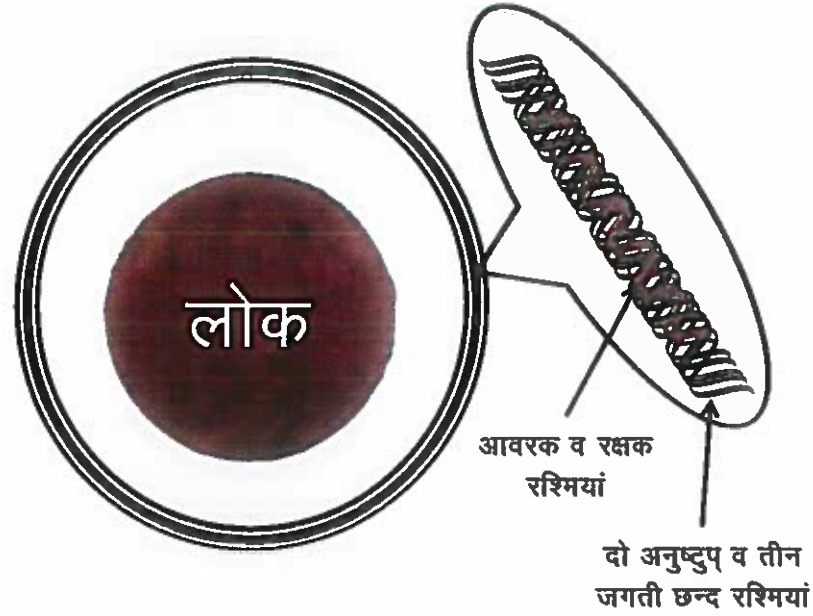
चित्र १८.१५ लोकों के आवरणों के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया

३. उदित आदित्ये प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्, सर्वं ह्येवैतदहर्दिवाकीर्त्यं भवति।।
सौर्यं पशुमन्यङ्गश्वेतं सवनीयस्योपालम्भ्यमालभेरन् सूर्यदेवत्यं ह्येतदहः।।
एकविंशतिं सामिधेनीरनुब्रूयात् प्रत्यक्षाद्ध्येतदहरेकविंशम्।।

{अन्यङ् = नञ्+ न्यङ् (न्यङ् = यो न्यङ्भूतस्सन् - म.द.ऋ.भा.४.१३.५), यो नित्यमञ्चति सः (म.द.ऋ.भा.४.१४.५)। आ+लभ् = स्पर्श करना, प्राप्त करना}

व्याख्यानम्- पूर्व प्रकरण को जारी रखते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त लम्बी प्रक्रिया के उपरान्त विभिन्न लोकों के स्थायित्व के पश्चात् अर्थात् विभिन्न आदित्य लोकों के उत्कृष्ट गतियों को प्राप्त होने के उपरान्त प्रातरनुवाक का प्रकाशन होने लगता है। 'प्रातरनुवाक' विषय में ऋषियों का कथन है- "प्रजापतेर्वा एतदुक्थं यत्प्रातरनुवाकः" (मै.४.५.३; ऐ.२.१७)। इसका तात्पर्य है कि सभी लोक मण्डलों को सम्यग्रूपेण उठाने व धारण करने के महान् कार्य में अनेकों छन्दादि रश्मियों की भूमिका होती है। ऐसा ही अभिप्राय व्यक्त करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "उक्थमिति बह्वृचाः (उपासते) एष हीदꣳ सर्वमुत्थापयति" (श.१०.५.२.२०)। यहाँ 'उक्थम्' का वही भाव है, जो हमने प्रातरनुवाक के अर्थ में ग्रहण किया है। इस प्रकार ग्रन्थकार ऋषि कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त स्थिरीकरण प्रक्रिया के उपरान्त शीघ्र ही सभी आवरक व संरक्षक छन्दादि रश्मियां तीव्रता से प्रकाशित हो उठती हैं। इसके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सम्यग्रूपेण व्यवस्थित होने लगता है। दिवाकीर्त्य नामक विशाल आदित्य लोक के परितः, साथ ही विभिन्न आदित्य लोकों के परितः विद्यमान सभी अहन् रूपी आवरक क्षेत्र समर्थ हो उठते हैं। इसके साथ ही विभिन्न प्रकाशित लोक भी सुदृढ़ और समर्थ होने लगते हैं।।

विभिन्न सवनीय अर्थात् संगमनीय पूर्वोक्त अनेकों छन्दादि रश्मियां जब प्रशंसनीय ढंग से प्राप्त वा व्याप्त हो जाती हैं, {ध्यातव्य है कि यहाँ 'उपालभ्यम्' में 'उप' उपसर्ग 'उपात् प्रशंसायाम्' (पा.अ. ७.१.६६) से प्रशंसा अर्थ में प्रयुक्त है} उस समय सूर्य्य लोक से सम्बद्ध सभी पशु अर्थात् छन्दादि रश्मियां व सभी लोक लोकान्तर अन्यङ् अर्थात् नीचे की ओर पतित न होने वाले किंवा अपनी कक्षाओं से पतित नहीं होने वाले होकर श्वेत अर्थात् प्रायः श्वेतवर्णों तथा शुद्ध व विस्तृत क्षेत्र में अपने प्रकाशादि गुणों व आकर्षणादि बल से फैलते व समृद्ध होते रहते हैं। वे सभी अहन् रूपी आवरक व बन्धक क्षेत्र व रश्मियां आदित्य लोकों से सर्वथा सम्बद्ध रहते हुए ही उन्हें बांधे रखते हैं। इससे संकेत मिलता है कि सभी विशाल आदित्य लोक, विशालतम आदित्य लोक से तथा सभी आदित्य विशाल आदित्य लोक से तथा सभी अप्रकाशित लोक अपने केन्द्रीय आदित्य लोक से पूर्वोक्त आवरक व संरक्षक क्षेत्रों के माध्यम से अपनी रश्मियां प्रवाहित करते हुए उनके साथ न केवल बंधे रहते हैं, अपितु उनसे सतत बल व पोषण प्राप्त करते रहते हैं। इसी प्रक्रिया के चलते सभी लोक अपने केन्द्रीय लोक के चारों ओर परिक्रमण में समर्थ होते हैं।।

तदुपरान्त इक्कीस सामिधेनी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। उनमें से छः सामिधेनी ऋचाएं धाय्या संज्ञक होती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है-

"विषुवान्दिवाकीर्त्यः। उदिते प्रातरनुवाकः।। पृथुपाजा अमर्त्य इति षड्धाय्याः सामिधेनीनाम्। सौर्यः सवनीयस्योपालम्भ्यः।।" (आश्व.श्रौ.८.६.१-४)।

ज्ञातव्य है कि पन्द्रह सामिधेनी छन्द रश्मियां वे ही हैं, जो खण्ड १.१.१० में वर्णित हैं, जहाँ दो धाय्या संज्ञक ऋचाएं मिलाकर सत्रह सामिधेनी ऋचाएं वर्णित हैं। इस कारण पन्द्रह सामिधेनी छन्द रश्मियों के विषय में विस्तार से वहीं देखें। यहाँ धाय्या संज्ञक ६ छन्द रश्मियों की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व द्वारा उत्पन्न अग्निदेवताक विराड् गायत्री छन्दस्क-

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः। अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट्।।५।। (ऋ.३.२७.५)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नितत्त्व प्रखर तेजस्वी व बलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व अक्षय व्यापक बल के द्वारा विभिन्न प्रकार की तेजस्वी रश्मियों को शुद्ध रूप प्रदान करके विभिन्न पदार्थ वा रश्मियों का वहन करता है।

(२) उपर्युक्त ऋषि व देवता वाली गायत्री छन्दस्क-

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः। आ चक्रुरग्निमूतये।।६।। (ऋ.३.२७.६)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्, किन्तु प्रकाश की कुछ न्यूनता। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न बाधक रश्मियों का नाशक तथा अनेक प्रकार की संगति - क्रियाओं की रक्षा करने वाला होता है।

(३) पूर्ववत् ऋषि व देवतावाली निचृद् गायत्री छन्दस्क-

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया। विदथानि प्रचोदयन्।।७।। (ऋ.३.२७.७)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ तीक्ष्ण। इसके अन्य प्रभाव से वह अक्षय अग्नि अपने व्यापक व वैद्युत रूप से विभिन्न संघातों को प्रेरित करके सक्रिय करता है।

(४) पूर्ववत् ऋषि, देवता व छन्द वाली-

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते। विप्रो यज्ञस्य साधनः।।८।। (ऋ.३.२७.८)

रश्मि। इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभावों से वह वेगवान् अग्नि विभिन्न छन्दादि रश्मियों व संयोज्य परमाणुओं में होने वाले बाधारहित संगतिकर्मों को धारण करता है।

(५) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे। दक्षस्य पितरं तना।।६।। (ऋ.३.२७.६)

रश्मि। इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह सबका पालक व रक्षक अग्नि विस्तृत होकर सभी उत्पन्न पदार्थों में अपने वीर्यस्वरूप विकिरणों को इस प्रकार धारण करता है कि वे सभी परस्पर सम्बद्ध हो जाएं।

(६) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली -

नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत। अग्ने सुदीतिमुशिजम्।।१०।। (ऋ.३.२७.१०)

रश्मि। इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से धर्षणशील बलवान् अग्नितत्त्व विभिन्न संयोज्य वाग् रश्मियों को अपने तेज के द्वारा धारण करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त छः धाय्या रश्मियां पूर्वोक्त पन्द्रह सामिधेनी रश्मियों को परस्पर धारण करके सम्पूर्ण एकविंश अर्थात् विशाल आदित्य लोक तथा आदित्य लोकों को सर्वतः घेर कर मानो उसी का भाग बन कर पूर्वोक्त विविध आवरक क्षेत्रों तथा उनमें विद्यमान विभिन्न रश्मियों को अधिक तेजस्वी व शक्तिशाली बनाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तदुपरान्त गैलेक्सियों के केन्द्रीय विशाल भागों तथा विभिन्न तारों के उस बाहरी भाग, जहाँ अन्य लोक विद्यमान नहीं होते हैं, वहाँ विशाल रिक्त अन्तरिक्ष में कई प्रकार के पूर्वोक्त क्षेत्र व उनमें अनेक प्रकार की रश्मियां व मूलकण आदि पाये जाते हैं, वे प्रकाश व ऊष्मा से प्रदीप्त हो उठते हैं। इस क्षेत्र में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों की तीव्रता बढ़ जाती है। विभिन्न लोकों का गुरुत्वाकर्षण बल प्रबल हो उठता है। केन्द्रीय तारे अपने परितः परिक्रमण कर रहे तारे आदि लोकों को ऐसी बल आदि रश्मियां निरन्तर प्रेषित करते रहते हैं, जिनसे उनका सम्बन्ध आधार-आधेय का सदैव बना रहता है। यहाँ प्रतीत होता है कि गैलेक्सियों के केन्द्रीय तारे हर तारे को अज्ञात रूप से ऐसी रश्मियों का भी प्रेषण करते हैं, जो तारों में ईंधन की पूर्ति एक सीमा तक करते रहते हैं। जहाँ तक मेरा ध्यान है, वर्तमान भौतिकविद् तारों में हाइड्रोजन नाभिक आदि का किसी बाहरी स्रोत से आना नहीं मानते हैं परन्तु हमारी दृष्टि में यह पूर्ति एक सीमा तक केन्द्रीय विशाल तारे, जो कदाचित् भारतीय खगोलशास्त्री प्रो. आभास मित्रा के MECO के समान हो सकते हैं, हाइड्रोजन नाभिक किंवा क्वार्क, ग्लूऑन आदि जैसे मूलकणों की किरणें अवश्य प्रवाहित करते रहते हैं। वे केवल उनके गुरुत्वीय आकर्षण बल का ही केन्द्रमात्र नहीं होते, अपितु उनके पालक व रक्षक भी होते हैं।।

४. एकपञ्चाशतं द्विपञ्चाशतं वा शस्त्वा मध्ये निविदं दधाति; तावतीरुत्तराः शंसति; शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः शतेन्द्रिय आयुष्येवैनं तद्वीर्य इन्द्रिये दधाति।।५।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त इक्यावन अथवा बावन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। यहाँ महर्षि ने यह संकेत नहीं किया है कि वे रश्मियां कौन सी हैं। आचार्य सायण ने याज्ञिक परम्परा का अनुसरण करके जिन ऋचाओं के पाठ का विधान किया है, हम उन्हीं ऋचाओं की पूर्व प्रकरण में उत्पत्ति होना मानते हैं। वे छन्द रश्मियां इस प्रकार हैं-

(१) विभ्राट् सूर्य ऋषि से उत्पन्न सूर्यदेवताक एवं विराड् जगती छन्दस्क-

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम्।

वातंजूतो यो अभिरक्षति त्मनां प्रजाः पुंपोष पुरुधा वि राजति।।१।। (ऋ.१०.१७०.१)

यह ऋचा इसी खण्ड में महादिवाकीर्त्य नाम से वर्णित हो चुकी है। इसका प्रभाव वहीं देखें।

(२) विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहंतमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा संपत्नहा।।२।। (ऋ.१०.१७०.२)

ऋषि व देवता उपर्युक्तवत् तथा छन्द जगती। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त आवरक व संरक्षिका रश्मियां सवके धारक केन्द्रीय लोकों को ऐसा पुष्ट करती हैं कि वे लोक उन रश्मियों के द्वारा पांच प्रकार की वाधक रश्मियों को नष्ट करने में समर्थ होते हैं। वे पांच प्रकार की वाधक रश्मियां निम्नलिखित हैं-

(क) अमित्र- ये वे रश्मियां हैं, जो स्वयं संयोजक गुण से रहित वा अल्प गुणवती हैं। इनके प्रभाव में आने वाली अन्य रश्मियां भी संयोजक गुण की मन्दता से ग्रस्त हो जाती हैं।

(ख) वृत्र- यह उसी असुर तत्त्व का विशाल रूप है, जिसकी हम चर्चा इस ग्रन्थ में अनेकत्र कर चुके हैं।

(ग) दस्यु- ये वे रश्मियां हैं, जो शक्तिशाली होने के कारण संयोगोन्मुख किन्हीं अन्य पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट करके उस संयोग को होने नहीं देती हैं।

(घ) असुर- यह पूर्वोक्त वाधक अप्रकाशित वायु का सूक्ष्म रूप है।

(ङ) सपत्न- यह असुर तत्त्व का मध्यम रूप है, जो विभिन्न संयोज्य कणों के संयोग में वाधा उत्पन्न करता है।

इन सभी वाधक पदार्थों के कारण लोकों का स्थायित्व कदापि सम्भव नहीं है। इन सवके नष्ट करने में यह छन्द रश्मि समर्थ होती है।

(३) पूर्वोक्त ऋषि, देवता तथा प्रथम के समान छन्द वाली-

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत्।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पंप्रथे सह ओजो अच्युतम्।।३।। (ऋ.१०.१७०.३)

इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से यह रश्मि पूर्वोक्त आवरक क्षेत्रों में विश्वजित् क्षेत्र को विशेष प्रभावित करके सम्पूर्ण क्षेत्र में विशेपरूप से प्रकाश उत्पन्न करती है। इससे इन्द्र तत्त्व का तेजस्वी वल वहुत विस्तृत होता है।

(४) सौर्योऽभितपा ऋषि अर्थात् विशेष अभितप्त प्राणापान से उत्पन्न सूर्यदेवताक तथा पादनिचृज्जगती छन्दस्क-

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं संपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत।।१।। (ऋ.१०.३७.१)

इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् किन्तु कुछ तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से प्राणापान से उत्पन्न सूक्ष्म वज्र रश्मियां दूर से ही सव को आकृष्ट करने वाले प्राथमिक प्राणों से उत्पन्न सर्वप्रकाशक विराट् तेजस्वी विशाल आदित्य लोकों व आदित्य लोकों को {ऋतम् = अग्निर्वा ऋतम् (तै.ब्रा.२.१.११.१), ब्रह्म वाऽऋतम् (श.४.१.४.१०)} अग्निमय विद्युत् से समृद्ध करती हैं।

(५) पूर्वोक्त देवता, छन्द व ऋषि वाली

सा मां सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विंशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः।।२।। (ऋ.१०.३७.२)

छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से सत्य अर्थात् विभिन्न प्राणों का प्रकाश, सब ओर से विशाल आदित्य लोक व अन्य लोकों की रक्षा करता है। इस हेतु विभिन्न प्राणापानोदान एवं छन्दादि रश्मियां सर्वत्र प्रवाहित होती रहती हैं।

(६) पूर्वोक्त देवता, छन्द व ऋषि वाली -

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य।।३।। (ऋ.१०.३७.३)

छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {प्रदिवः = पुराणनाम (निघं.३.२७)} अति विशाल आदित्य, विशाल आदित्य एवं आदित्य लोकों के समीपस्थ वह भाग जिसमें पूर्वोक्त आवरक व संरक्षक क्षेत्र विद्यमान होते हैं परन्तु कोई लोक विद्यमान नहीं होता, उस क्षेत्र में कोई भी लोक जो पूर्व में उत्पन्न हो चुके होते हैं, निकट नहीं आते पुनरपि वे उस केन्द्रीय लोक का अनुवर्तन करते हैं। यह रश्मि उस रिक्त संरक्षक क्षेत्र में लोकों को न आने देने में सहयोग करती है।

(७) गौरीवीति ऋषि, इसके विषय में ४.२.१ में देखें, से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

यद्वावानं पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत्।।६।। (ऋ.१०.७४.६)

यह धाय्या रश्मि। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज व बल से युक्त होता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व पूर्वोक्त वृत्रासुर तत्त्व का नाश करता हुआ व्यापक बलों से युक्त होकर विशाल बल से विविध वायु रश्मियों को सर्वत्र व्याप्त करके अनेक कर्मों को करता है।
(८-१०) बृहद् व रथन्तर संज्ञक ऋ.६.४६.१ व ७.३२.२२ के विषय में ४.१३.१ देखें। सायण ने इनके विशेष ग्रथन से इन्हें तीन ऋचाओं के समान माना है।

(११) मेध्यातिथिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न इन्द्रदेवताक निचृद् बृहती छन्दस्क-

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये।।५।। (ऋ.८.३.५)

रश्मि। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र होकर, विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त हो कर उनकी मर्यादा का निर्धारण करने में सहायक होता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र {देवताता = यज्ञनाम (निघं. ३.१७)} विभिन्न किरणों से युक्त विभिन्न निरापद यज्ञ वा संगतीकरण कर्मों में विभिन्न परमाणुओं को उचित विभाग व संयोग हेतु आकर्षित करता है।

(१२) उपुर्यक्त देवता व ऋषि वाली भुरिक् पंक्ति छन्दस्क-

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः।।६।। (ऋ.८.३.६)

रश्मि। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व का विस्तार व रश्मि संयोग तीव्र होता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने बल से समस्त प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों को व्याप्त करता है। वह आदित्य लोकों को अधिक प्रकाश व आकर्षणादि बल से युक्त करके सब लोकों को नियन्त्रित करता है।

(१३-१५) विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाग् तत्त्व से उत्पन्न, इन्द्रदेवताक व त्रिष्टुप् छन्दस्क-

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।

सं सह॑से पुरुमायो जि॑हीते नमो॑ अस्य प्रदिव एक॑ ईशे।।४।। (ऋ.३.५१.४)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व प्रवल होता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को विभिन्न वाग् रश्मियों अर्थात् पूर्वोक्त अनेक छन्द रश्मियों द्वारा प्राप्त करता है। वह विभिन्न वज्र रश्मियों को उत्पन्न करके वाधक रश्मियों पर शासन करता है। इसकी तीन वार आवृत्ति होकर तीन रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं।

(१६) वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक, त्रिष्टुप् छन्दस्क-

यस्तिग्मशृ॑ङ्गो वृषभो न भीम एकः॑ कृष्टीश्च्यावय॑ति प्र विश्वाः॑।
यः शश्व॑तो अदा॑शुषो गय॑स्य प्रयन्तासि सुष्वि॑तराय वेदः॑।।१।। (ऋ.७.१९.१)

रश्मि। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र होता है। अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण तेजयुक्त सवको कम्पाने वाला इन्द्र तत्त्व कृष्टी अर्थात् अपनी-२ कक्षा रूपी रेखाओं में गमन करने वाले लोकों को अच्छी प्रकार चलाता है। {गयः = गृहनाम (निघं.३.४), धननाम (निघं.२.१०), प्राणा वै गयाः (श.१४.८.१५.७)} वह इन तत्त्वों को निरन्तर धारण करने में उनके गृह अर्थात् मार्गों एवं वलों को नियन्त्रित करता है।

(१७) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली निचृत्पङ्क्ति छन्दस्क-

त्वं ह त्यदि॑न्द्र कुत्स॑मावः शुश्रूषमाणस्तन्वा॑ सम॒र्ये।
दासं॒ यच्छुष्णं॒ कुय॑वं॒ न्य॑स्मा अर॑न्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्।।२।। (ऋ.७.१९.२)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव व्यापक व तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व वज्र द्वारा विभिन्न मार्गों व गतियों की रक्षा करता है। अनुचित संयोग कारक वलों का क्षय करता है।

(१८) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली निचृत्त्रिष्टुप् छन्दस्क-

त्वं धृ॑ष्णो धृषता वीतह॑व्यं प्रावो॒ विश्वा॑भिरूतिभिः॑ सुदास॑म्।
प्र पौरु॑कुत्सिं त्रसद॑स्युमावः क्षेत्र॑साता वृत्रहत्ये॑षु पूरुम्।।३।। (ऋ.७.१९.३)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव तेरहवीं की अपेक्षा तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से वह वलवान् तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व सभी लोकों के मार्गों की रक्षिका रश्मियों के द्वारा व्यापक हव्य रश्मियों को प्राप्त करके अनेक व्यापक वज्र रश्मियों के द्वारा सभी असुरादि तत्त्वों को नष्ट करता है।

(१९) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली पंक्ति छन्दस्क-

त्वं नृभि॑र्नृमणो देववी॑तौ भूरी॑णि वृत्रा ह॑र्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं॑ चुमु॑रिं धुनिं चास्वा॑पयो दभीत॑ये सुहन्तु।।४।। (ऋ.७.१९.४)

रश्मि। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत होता है। अन्य प्रभाव से वह व्यापक इन्द्र तत्त्व अनेकों मरुद् रश्मियों के द्वारा अपने वल से विभिन्न असुरादि पदार्थों को नष्ट करता है।

(२०) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली त्रिष्टुप् छन्दस्क-

तव॑ च्यौत्नानि॑ वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो॑ नवतिं॑ च॑ सद्यः।
निवेश॑ने शततमावि॑वेषीरह॑ञ्च वृत्रं नमु॑चिमुताह॑न्।।५।। (ऋ.७.१९.५)

रश्मि। छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {पुरः = पालिका पुरस्ताद्वा (किरणाः) (म.द.ऋ.भा.५.२९.५)। लेखा हि पुरः (श.६.३.३.२५)} वह इन्द्र तत्त्व अनेक बल सम्पन्न वज्र रश्मियों के द्वारा, असुर रश्मियों द्वारा उत्पन्न निन्यानवे प्रकार के विभिन्न बाधक रश्मिसमूह प्रधान क्षेत्रों तथा व्यापक वृत्र-असुर को नष्ट करता है।

(२१) पूर्वोक्त देवता व ऋषि वाली निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम्॥६॥ (ऋ.७.१९.६)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अत्यन्त शक्तिशाली विभिन्न हव्य रश्मियों की वर्षा करके सबका यथावत् विभाग करता है। वह सभी छन्दादि पदार्थों को अपने बल से युक्त करता है।

(२२) पूर्वोक्त देवता व ऋषि वाली विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम॥७॥ (ऋ.७.१९.७)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {परिष्टिः = परितः सर्वत इष्टि (म.द.ऋ.भा.१.६५.२)। परादै = परादानाय त्यागाय त्यक्तव्याय (म.द.ऋ.भा.७.१९.७)} वह इन्द्र तत्त्व अपने व्यापक बल के द्वारा विभिन्न रश्मियों से युक्त संगति-क्रियाओं में सहायता तथा त्याज्य बाधक पदार्थों के विनाश में समर्थ होकर विभिन्न पदार्थों की रक्षा करता है तथा विभिन्न प्रकाशक पदार्थों को तृप्त करता है।

(२३) पूर्वोक्त देवता व ऋषि वाली भुरिक् पंक्ति छन्दस्क-

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्॥८॥ (ऋ.७.१९.८)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {तुर्वश इति अन्तिक नाम (निघं.२.१६)। याद्वम् = यो याति तम् (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व अनेक परमाणुओं से युक्त होकर सबका आकर्षक व प्रकाशक होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को संगत करके अपने निकटस्थ प्राप्त गमनशक्तिसम्पन्न परमाणुओं को तीक्ष्ण करता है।

(२४) पूर्वोक्त देवता व ऋषि वाली विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था।
ये ते हवेभिर्वि पणींरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै॥९॥ (ऋ.७.१९.९)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित छन्द रश्मियां व मरुद् रश्मियां इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करके सर्वत्र संगतीकरण को तीव्र करती हैं। इससे वह इन्द्र तत्त्व नाना व्यवहारों को नियन्त्रित करता है।

(२५) पूर्वोक्त देवता छन्द व ऋषि वाली-

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम्॥१०॥ (ऋ.७.१९.१०)

रश्मि। दैवत छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {अस्मद्र्यञ्चः = येऽस्मानञ्चन्ति प्राप्नुवन्ति ते (म.द.भा.)। शिवः = शिवः - शिव इति शमयत्येवैनम् (अग्निम्) एतद् हिंसायै तथो हैषः (अग्नि) इमाँल्लोकाञ्छान्तो न हिनस्ति (श.६.७.३.१५)} वह नयनकर्ता वायुओं में सर्वश्रेष्ठ वायु इन्द्रतत्त्व सबमें व्याप्त होकर उन्हें गति देता है। वह विभिन्न रश्मियों द्वारा वृत्र नामक असुर तत्त्व को नष्ट करके शान्त व नियन्त्रित अग्नि को प्रकाशित करता है।

(२६) पूर्वोक्त देवता व ऋषि वाली भुरिक् पंक्ति छन्दस्क-

नू इ॑न्द्र शूर॒ स्तव॑मान ऊ॒ती ब्रह्म॑जूतस्त॒न्वा॑ वावृधस्व।
उप॑ नो॒ वाजा॑न्मिमी॒ह्युप॒ स्तीन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥११॥ (ऋ.७.१९.११)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्रतत्त्व प्रकाशित होता हुआ विभिन्न परमाणुओं को प्राणापान व तज्जन्य विद्युत् से संयुक्त करके रक्षित व विस्तृत करता है। वह विभिन्न छन्द रश्मियों को निकटता से मापता हुआ सुमार्गों पर सबको चलाता है।

(२७-२९) सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विभिन्न रश्मियों को दबाने की क्षमता वाली प्राण रश्मि विशेष आङ्गिरसः सव्य ऋषि से उत्पन्न इन्द्रदेवताक व जगती छन्दस्क-

अ॒भि त्यं मे॒षं पु॑रुहू॒तमृ॒ग्मिय॒मिन्द्रं॑ गी॒र्भिर्म॑दता॒ वस्वो॑ अर्ण॒वम्।
यस्य॒ द्यावो॒ न वि॒चर॑न्ति॒ मानु॑षा भु॒जे मंहि॑ष्ठम॒भि विप्र॑मर्चत॥१॥ (ऋ.१.५१.१)

रश्मि। इसके दैवत छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व दूर-२ तक फैल जाता है। इसके अन्य प्रभाव से समुद्र के तुल्य व्यापक इन्द्र तत्त्व अनेक छन्द रश्मियों में समा जाता है, जिससे वे रश्मियां अति सक्रिय होकर शुद्ध व तेजस्वी होकर विचरने लगती हैं।

इस छन्द रश्मि की तीन वार आवृत्ति होती है।

(३०) उपर्युक्त ऋषि व देवता वाली विराड् जगती छन्दस्क-

अ॒भीम॑वन्वन्त्स्वभि॒ष्टिमू॒तयो॑ऽन्तरिक्ष॒प्रां तवि॑षीभि॒रावृ॑तम्।
इन्द्रं॒ दक्षा॑स ऋ॒भवो॑ मद॒च्युतं॑ श॒तक्र॑तुं॒ जव॑नी सू॒नृतारु॑हत्॥२॥ (ऋ.१.५१.२)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् किन्तु प्रकाश की मात्रा कुछ अधिक। अन्य प्रभाव से विशिष्ट बलयुक्त सूत्रात्मा वायु उत्तम संगतिकारक स्वभावयुक्त, अन्तरिक्ष में व्याप्त अपने बल से अनेकों कर्म करने वाले इन्द्र तत्त्व को समृद्ध करता है। वह इन्द्र तत्त्व वेगवती वाग् रश्मियों द्वारा {सूनृता = उषानाम (निघं.१.८), वाङ्नाम (निघं.१.११ - वै.को. से उद्धृत), अन्ननाम (निघं.२.७)} शोभन दीप्तियुक्त रश्मियों को समृद्ध करता है।

(३१) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

त्वं गो॒त्रमङ्गि॑रोभ्योऽवृणो॒रपो॒तात्र॑ये श॒तदु॑रेषु गातु॒वित्।
स॒सेन॑ चिद्विम॒दाया॑वहो॒ वस्वा॒जावद्रिं॑ वावसा॒नस्य॑ न॒र्तय॑न्॥३॥ (ऋ.१.५१.३)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र बल से युक्त तेजस्वी होता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न रश्मियों के साथ संयुक्त विभिन्न प्राणों के द्वारा असुर तत्त्व के मेघ को नष्ट करके विविध संघातों को सम्पादित करता है। इन्द्र तत्त्व के प्रहार से आच्छादक आसुर मेघ इधर-उधर छिन्न-भिन्न हो जाता है।

(३२) पूर्वोक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे॥४॥ (ऋ.१.५१.४)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आच्छादक बाधक रश्मियों को दूर करके विभिन्न प्राणों को धारण करता तथा विभिन्न लोकों को उनकी कक्षाओं में धारण करने में सहयोग करता है।

(३३) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली एवं विराड् जगती छन्दस्क-

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ॥५॥ (ऋ.१.५१.५)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न नयनकर्ता पवनों को संदीप्त करता व अपनी धारणाशक्तियों से विभिन्न किरणों को परिपूर्ण करता है। वह अपनी व्यापिका विद्युत् से अन्तरिक्ष में शयन कर रहे विभिन्न रश्मिसमूहों को छिन्न-भिन्न करने वाले असुर तत्त्व को तितर-वितर कर देता है।

(३४) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली त्रिष्टुप् छन्दस्क-

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम्।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे॥६॥ (ऋ.१.५१.६)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने महान् वज्र रश्मिसमूह के द्वारा असुर तत्त्व का नाश करके सब देव पदार्थों की रक्षा करता है तथा सतत गमनशील रश्मियों व लोकों को अपने निर्धारित मार्ग पर गमन कराने हेतु प्रचुर बल प्रदान करता है।

(३५) पूर्वोक्त ऋषि व देवता व छन्द वाली-

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या॥७॥ (ऋ.१.५१.७)

रश्मि। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करने हेतु अपने बलों से सम्पूर्णतया युक्त होता है। इन्द्र तत्त्व की धारण शक्तियां वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों को धारण करके सभी लोकों के बल की रक्षा करती हैं।

(३६) पूर्वोक्त ऋषि, देवता वाली विराड् जगती छन्दस्क-

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन॥८॥ (ऋ.१.५१.८)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से यह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द-मरुदादि रश्मियों से सम्पन्न आकाश तत्त्व को सब लोकों के मध्य अपने व्यवहार की सिद्धि के लिए आर्य = ईश्वर-पुत्र अर्थात् उसके संधारक गुण को प्रकाशित करने में सहयोग करता है। वह असुर तत्त्व, जो विभिन्न सृजन कर्मों का बाधक है, को नष्ट करता है। इसके साथ सभी पदार्थों को निज कर्मों हेतु प्रेरित करता है।

(३७) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली व जगती छन्दस्क-

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान सन्दिहः॥६॥ (ऋ.१.५१.६)

रश्मि। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सब ओर से विभिन्न पदार्थों में विद्यमान रहता है। उनके कर्मों में उनके अनुकूल वर्तता तथा विपरीत कर्मों के कर्ता असुरादि पदार्थों को नष्ट वा शिथिल करता है। वह विभिन्न ज्योतियों को बढ़ाता हुआ अंधकारयुक्त पदार्थों को दूर करता वा नष्ट करता है।

(३८) पूर्वोक्त ऋषि, छन्द व देवता वाली-

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः॥१०॥ (ऋ.१.५१.१०)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को चमकाने वाला, आकर्षण बलयुक्त होकर अपने तीव्र बल के द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों को बलयुक्त करता है। वह अपने शुद्ध बल से सम्पूर्ण पदार्थ का विलोडन करके हीनबल पदार्थों में बल की पूर्ति करता है।

(३९) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली निचृज्जगती छन्दस्क-

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः॥११॥ (ऋ.१.५१.११)

रश्मि। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव को यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से अतिशय उग्र व प्रकाशित इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों का सेचन करके आदित्य लोकों में कुटिल व अति कुटिल गतियों पर नियन्त्रण रखता है। वह बलवर्धक क्रियाओं के द्वारा सर्वत्र व्याप्त होता हुआ {ययिम् = प्राप्तव्यं (मार्गम्) (तु.म.द.ऋ.भा.१.८७.२)} उन लोकों के लिए उपयुक्त मार्गों का सृजन करता रहता है।

(४०) पूर्वोक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि॥१२॥ (ऋ.१.५१.१२)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न बल युक्त सम्पीडित सोम रश्मियों की क्रियाओं में तीक्ष्ण बलयुक्त व्यवहारों को धारण करता है। बल व गति से हीन पदार्थ रश्मियों वा परमाणुओं को इन्द्र तत्त्व आदित्य लोकों में पहुँचाता है।

(४१) पूर्वोक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या॥१३॥ (ऋ.१.५१.१३)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाग् रश्मियों की इच्छा करने वाले, अपनी कक्षाओं में गमन करने वाले विशाल लोकों को भी थोड़ी भेदन शक्ति प्रदान करता है। विभिन्न छन्दादि रश्मियों को भी वह बलवान् रश्मियों वाला इन्द्र तत्त्व प्रकृष्ट रूप से चमकाता है।

(४२) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इन्द्रो॑ अश्रायि सु॒ध्यो॑ निरे॒के प॒ज्रेषु॒ स्तोमो॒ दुर्यो॒ न यूप॑ः।
अ॒श्व॒युर्ग॒व्यू र॑थ॒युर्व॑सू॒युरिन्द्र॒ इद्रा॒यः क्ष॑यति प्रय॒न्ता ।।१४।। (ऋ.१.५१.१४)

रश्मि। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {पज्रेषु = शिल्पविद्याव्यवहारेषु (म.द.भा.)। निरेके = (रेकृ शंकायाम्)} वह इन्द्रतत्त्व अपने बल, वेग के द्वारा वाग् रश्मियों, तेजस्वी किरणों एवं सबकी वासकर्त्री प्राथमिक प्राण रश्मियों को प्रकृष्टरूपेण रोककर अर्थात् अपने साथ संगत करके विभिन्न परमाणुओं को बसाता वा मार्ग प्रदान करता है। वह इन्द्र सम्मिश्र गुणयुक्त होकर विभिन्न क्रियाओं को निरापद ढंग से सम्पन्न करता है।

(४३) पूर्वोक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

इ॒दं नमो॑ वृ॒ष॒भाय॑ स्व॒राजे॑ स॒त्यशु॑ष्माय त॒वसे॑ऽवाचि।
अ॒स्मिन्नि॑न्द्र वृ॒जने॒ सर्व॑वीराः॒ स्मत्सू॒रिभि॒स्तव॒ शर्म॑न्त्स्याम ।।१५।। (ऋ.१.५१.१५)

रश्मि। दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकाशक रश्मियों के द्वारा अविनाशी वा स्थायी तथा स्वयं प्रकाशमान् प्राण रश्मियों के द्वारा वज्ररूप रश्मियों को प्रकाशित करता है। इस कारण सभी लोकों व उनके परितः वर्तमान संरक्षक क्षेत्रों को सुमार्ग वा सुरक्षित स्थान प्रदान करने में सहायक होता है।

(४४) हिरण्यस्तुप ऋषि अर्थात् दीप्तियुक्त किरणसमूह के रूप में विद्यमान सूक्ष्म प्राण विशेष, जो आकर्षण गुणयुक्त भी होता है, से उत्पन्न इन्द्रदेवताक तथा त्रिष्टुप् छन्दस्क-

इन्द्र॑स्य॒ नु वी॒र्या॑णि॒ प्र वो॑चं॒ यानि॑ च॒कार॑ प्रथ॒मानि॑ व॒ज्री।
अह॒न्नहि॒मन्व॒पस्त॑तर्द॒ प्र व॒क्षणा॑ अभिन॒त्पर्व॑तानाम् ।।१।। (ऋ.१.३२.१)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ न्यून प्रकाशमान। अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के महान् {प्रथमम् = परमं (नि.३.८)} पराक्रम वज्र रूप में प्रकाशित होकर असुर रश्मियों के व्यापक मेघ को छिन्न-भिन्न करके विभिन्न कर्मों को सम्पादित करते हैं। {अहिम् = अही गोनाम (निघं.२.११), द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित व अप्रकाशित रश्मियों वा लोकों को गति भी प्रदान करता है।

(४५) उपुर्यक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

अह॒न्नहिं॒ पर्व॑ते शिश्रिया॒णं त्वष्टा॑स्मै॒ वज्रं॑ स्व॒र्यं॑ ततक्ष।
वा॒श्राइ॑व धे॒नवः॒ स्यन्द॑माना॒ अञ्जः॑ समु॒द्रमव॑ जग्मु॒रापः॑ ।।२।। (ऋ.१.३२.२)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से सबके छेदक इन्द्र तत्त्व की वज्र रश्मियां बहती हुई सी प्रकट होकर सभी तन्मात्राओं को व्याप्त करती हैं।

(४६) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

वृ॒षा॒यमा॑णोऽवृणीत॒ सोमं॒ त्रिक॑द्रुकेष्वपिबत्सु॒तस्य॑।
आ साय॑कं म॒घवा॑दत्त॒ वज्र॒मह॑न्नेनं प्रथम॒जामही॑नाम् ।।३।। (ऋ.१.३२.३)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तीव्र बलवान् होता हुआ तीन प्रकार के बलों से युक्त सोम रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट करके अवशोषित करता है और फिर अपनी वज्र रूप रश्मियों को प्रकाशित व अप्रकाशित सभी लोकों में प्रकट करके असुर तत्त्व का नाश करता है।

(४७) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से॥४॥ (ऋ.१.३२.४)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व असुर रश्मियों की अंधकारयुक्त अवस्था का हनन करके विभिन्न आदित्य लोकों के सुन्दर प्रकाश को सर्वत्र प्रकट करता है।

(४८) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः॥५॥ (ऋ.१.३२.५)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त प्रकाशित व अप्रकाशित कणों के मध्य स्थित व्यापक असुर तत्त्व को तीक्ष्ण और व्यापक वज्र रश्मियों के द्वारा नष्ट करता है।

(४९) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥६॥ (ऋ.१.३२.६)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सबको कंपाने वाले एवं विभिन्न सृजन क्रियाओं को बाधित करने वाले असुर तत्त्व को पीस कर नष्ट कर देता है, वह असुर तत्त्व इन्द्र के बल का प्रतिरोध करने में समर्थ नहीं होता है।

(५०) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः॥७॥ (ऋ.१.३२.७)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व बलवान् असुर रश्मियों को अपनी वज्र रश्मियों से छिन्न-भिन्न करता है और फिर वह असुर तत्त्व बिना हाथ-पैर के निष्क्रिय और शक्तिहीन मनुष्य के समान आकाश तत्त्व में अनेक स्थानों पर सोया हुआ जैसा हो जाता है।

(५१) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव॥८॥ (ऋ.१.३२.८)

रश्मि। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से इन्द्र के प्रहार से आकाश में निष्क्रिय होकर सोया हुआ वह असुर तत्त्व मनस्तत्त्व से उत्पन्न होता है। वह छिन्न-भिन्न असुर तत्त्व आकाश में विद्यमान मनस्तत्त्व के द्वारा पुनः सक्रिय और प्रवाहित भी हो सकता है।

(५२) उपर्युक्त ऋषि, देवता व छन्द वाली-

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः।।९।। (ऋ.१.३२.९)

रश्मि। इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह असुर तत्त्व, जो देव पदार्थों के उत्तर काल में निकृष्ट कोटि की छन्द रश्मियों के रूप में उत्पन्न होता है, इन्द्र तत्त्व के प्रहार से निराधार होकर वह अन्तरिक्ष में विखर जाता है। उसकी रश्मियां मनस्तत्त्व के साथ सोयी हुई सी हो जाती हैं।

उपर्युक्त अन्तिम नौ छन्द रश्मियां अथवा उनमें से आठ रश्मियां उत्पन्न होकर कुल वावन वा इक्यावन छन्द रश्मियां विशाल आदित्य लोक, अति विशाल आदित्य लोक एवं आदित्य लोकों के परितः विद्यमान विशाल क्षेत्र में उत्पन्न और व्याप्त होती हैं। इनकी उत्पत्ति और व्याप्ति के पश्चात् दसवें अध्याय में वर्णित वारह निविद् अर्थात् मास रश्मियां उत्पन्न होकर सभी छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़ देती हैं। उसके तुरन्त पश्चात् ये इक्यावन अथवा वावन छन्द रश्मियां पुनः उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कुल १०२ अथवा १०४ छन्द रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं। निविद् रश्मियां अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों के मध्य उत्पन्न होकर भी सवको संघटित करती हैं। ये सभी आदित्य लोक सैकड़ों प्राण रश्मियों से युक्त होकर सैकड़ों प्रकार के वल और तेज से युक्त होते हैं। इन १०२ वा १०४ रश्मियों के उत्पन्न होने पर वे सभी लोक विभिन्न प्राणों और वलों से युक्त हो जाते हैं जिससे सम्पूर्ण व्रह्माण्ड की पूर्ववर्णित व्यवस्था सुचारु हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न गैलेक्सियों के केन्द्रीय तारों और उनके भी केन्द्र रूप किसी अति विशाल तारे, साथ ही विभिन्न तारों के चारों ओर पूर्ववर्णित विशाल क्षेत्र में ३७ अथवा ३८ त्रिष्टुप् एवं जगती रश्मियां उत्पन्न होकर इस प्रकार आवृत्त होती हैं कि उनकी संख्या १०२ अथवा १०४ हो जाती है। इनके प्रभाव से उन क्षेत्रों में अत्यन्त उष्णता एवं विद्युत् चुम्वकीय क्षेत्र उत्पन्न हो जाते हैं, उस समय व्रह्माण्ड में डार्क एनर्जी जहाँ-२ जो-२ भी प्रक्षेपक वल उत्पन्न करती है, जिनके कारण विभिन्न लोकों की कक्षाएं एवं गतियां अव्यवस्थित हो सकती हैं, उस डार्क एनर्जी को यह उष्ण विद्युत् तरंगें अनेक प्रकार से नष्ट करती हैं। उस समय डार्क पदार्थ भी विशाल मेघ का रूप धारण करके इन लोकों की कक्षा एवं गतियों को अव्यवस्थित कर सकता है। वह पदार्थ उष्ण एवं तीव्र विद्युत् तरंगों के द्वारा छिन्न-भिन्न होकर अन्तरिक्ष में समान एवं निष्क्रिय भाव से व्याप्त हो जाता है, जिसके कारण वह विभिन्न लोक-लोकान्तरों की गतियों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं डाल पाता। ये विद्युत् तरंगें दुर्वल रश्मियों और कणों को भी सवल वना देती हैं, जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र में ऊर्जा की विशेष वृद्धि होती है। उस समय सम्पूर्ण क्षेत्र में सभी प्रकार के कणों में विद्युत् व्याप्त हो जाती है। **डार्क एनर्जी में ९९ प्रकार की तरंगें विद्यमान होती है**। उन सवको तीक्ष्ण और गर्म विद्युत् तरंगें निष्क्रिय कर देती हैं। इन विद्युत् तरंगों के कारण सभी प्रकार की रश्मियां प्रकाशित होकर उषाकाल के समान प्रकाश को उत्पन्न करती हैं, जिससे वहाँ अंधकारयुक्त अवस्था समाप्त हो जाती है। वे उष्ण विद्युत् तरंगें विभिन्न छन्द एवं प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करके तेजस्वी रूप प्राप्त करती हैं। इन सभी क्रियाओं के कारण गैलेक्सियों के केन्द्र एवं अन्य लोकों में इतना प्रवल आकर्षण वल उत्पन्न हो जाता है कि वे अपने चारों ओर परिक्रमण कर रहे विभिन्न लोकों को स्थायी गति और कक्षा प्रदान करने में समर्थ हो जाती हैं। किसी भी संभावित अव्यवस्था एवं विखराव को ये सभी तरंगें रोकने में समर्थ होती हैं। उस समय सभी लोकों के आकार आदि सुस्पष्ट होकर गुरुत्वाकर्षण वल उपयुक्त रूप में प्रकट हो जाता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि **गुरुत्वाकर्षण वल का विद्युत् वल के साथ कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य है। वस्तुतः सभी प्रकार के जड़ वलों का मूल प्राण तत्त्व है, इसी से सभी वल उत्पन्न होते हैं किन्तु प्राणवल का भी मूल चेतन तत्त्व परमात्मा है, जिसके विना किसी भी वल की पूर्ण व्याख्या संभव नहीं है।।**

इति १८.५ समाप्तः

अथ १८.६ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. दूरोहणं रोहति; स्वर्गो वै लोको दूरोहणम्।।
स्वर्गमेवं तल्लोकं रोहति य एवं वेद।।
यदेव दूरोहणा३म्, असौ वै दूरोहो योऽसौ तपति; कश्चिद्वा अत्र गच्छति, स यद् दूरोहणं रोहत्येतमेव तद् रोहति।।

व्याख्यानम्- {दूरोहणं = असौ वाऽ आदित्यो दूरोहणं छन्दः (श.८.५.२.६), (छन्दः - संस्थापनाम् - म.द.य.भा.१५.५, छन्दांसि वै धुरः - जै.ब्रा.३.२१०, छन्दांसि वै वज्रो गोस्थानः - मै.४.१.१०)} यहाँ 'दूरोहण' का तात्पर्य ऐसे लोक से है, जिसे वहुत कठिनाई से उत्पन्न किया जाता है और वहुत कठिनाई से ही उसे ऊपर उठाकर अर्थात् उसके आकर्षक विशालतर लोक की ओर आकृष्ट करके एक विशेष कक्षा में स्थापित किया जाता है। पूर्वोक्त अति विशाल अथवा विशाल आदित्य लोक एवं अन्य आदित्य लोक दूरोहण कहलाते हैं, क्योंकि प्रथम तो इनकी उत्पत्ति ही अत्यन्त जटिल एवं सुदीर्घ प्रक्रिया के द्वारा होती है, फिर उनकी उत्पत्ति के पश्चात् इसी प्रकार जटिल एवं लम्बी प्रक्रिया के द्वारा इनको अपनी स्थायी कक्षा में स्थापित किया जाता है। यहाँ महर्षि ने इन तीनों ही प्रकार के लोकों को स्वर्गलोक भी कहा है। ये तीनों ही प्रकार के लोक दूरोहण कहलाते हैं। इन लोकों के उत्पन्न होने और उनके कक्षा में स्थायी होने पर ही अन्य प्रकार के लोक अपनी अनियन्त्रित एवं अस्थिर गति व कक्षाओं को स्थिर तथा नियन्त्रित करने में समर्थ हो पाते हैं। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया पूर्वोक्त दीर्घ प्रक्रिया के उपरान्त ही सम्पन्न हो पाती है। हमारे मत में सभी लोकों के आरोहण की प्रक्रिया तथा उनके परितः विद्यमान आकाश तत्त्व के व्यवस्थित होने तथा विभिन्न लोकों को धारण करने की प्रक्रिया भी अत्यन्त जटिल और कठिन होती है। यह 'दूरोहण' संज्ञक सभी प्रकार के आदित्य लोक उच्च तप्त अवस्था में ही होते हैं। उनके चारों ओर जो भी लोक अव्यवस्थित होकर भटकते हैं, वे सभी इस 'दूरोहण' क्रिया के द्वारा ही अपने-२ केन्द्रीय लोकों की ओर ऊपर उठकर अपनी स्थिर कक्षाओं को प्राप्त कर पाते हैं।।+।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न गैलेक्सियों के केन्द्र तथा उनमें विद्यमान तारे एक लम्बी और जटिल पूर्वोक्त प्रक्रिया के पश्चात् ही अपनी स्थायी कक्षा और गतियों को प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रक्रिया में लाखों वर्ष लगते हैं, न कि यह प्रक्रिया किसी चमत्कार से अकस्मात् ही हो जाती है। जो जितना वड़ा लोक होता है अथवा जो अपने केन्द्रीय तारे से जितना अधिक दूर होता है, उसे स्थायी कक्षा प्राप्त करने में उतना ही अधिक समय लगता है। इनमें जो भी केन्द्रीय और आधार रूप तारे होते हैं, वे अपने अधीनस्थ लोकों की अपेक्षा आकार, ताप, प्रकाश और द्रव्यमान की दृष्टि से भी वड़े होते हैं।।

२. हंसवत्या रोहति।।
'हंसः शुचिषद्' इत्येष वै शुचिषत्।।
'वसुरन्तरिक्षसद्' इत्येष वै वसुरन्तरिक्षसत्।।
'होता वेदिषद्' इत्येष वै होता वेदिषत्।।
'अतिथिर्दुरोणसद्' इत्येष वा अतिथिर्दुरोणसत्।।
नृषदित्येष वै नृषत्।।

'वरसद्' इत्येष वै वरसद्, वरं वा एतत् सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति।।
'ऋतसद्' इत्येष वै सत्यसत्।।
'व्योमसद्' इत्येष वै व्योमसद्; व्योम वा एतत्सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति।।
'अब्जा' इत्येष वा अब्जा, अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति।।
'गोजा' इत्येष वै गोजाः।।
'ऋतजा' इत्येष वै सत्यजाः।।
'अद्रिजा' इत्येष वा अद्रिजाः।।
'ऋतम्' इत्येष वै सत्यम्।।
एष एतानि सर्वाण्येषा ह वा अस्य च्छन्दःसु प्रत्यक्षतमादिव रूपम्।।
तस्माद् यत्र क्व च दूरोहणं रोहेद्धंसवत्यैव रोहेत्।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त दूरोहण क्रिया के समय मनस्तत्त्व से विशेष समृद्ध प्राण नामक प्राथमिक प्राण (वामदेव ऋषि) से उत्पन्न सूर्यदेवताक एवं निचृज्जगती छन्दस्क-

हंसः शुंचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।।५।। (ऋ.४.४०.५)

{हंसः = यः संहन्ति सर्वान् पदार्थान् स (म.द.य.भा.१०.२४), यो हन्ति पापानि सः (म.द.ऋ.भा.४.४०.५), हन्तेर्घ्नन्त्यध्वानम् (नि.४.१३), हंसाः सूर्यरश्मयः (नि.१४.२६)} यहाँ महर्षि ने इस छन्द रश्मि के प्रभाव को खण्ड-२ में विस्तार से दर्शाया है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न आदित्य लोक एवं उनकी रश्मियां व्यापक क्षेत्र में फैल जाती हैं। वे रश्मियां विभिन्न परमाणुओं के साथ बार-२ संयुक्त-वियुक्त होने लगती हैं। यह प्रभाव सम्पूर्ण छन्द रश्मि का है। इस कण्डिका में दिये हुए 'हंसः शुचिषद्' इन दो पदों के प्रभाव से वे आदित्य रश्मियां असुर रश्मियों को नष्ट करती हुई विभिन्न पदार्थों में व्याप्त होकर अपने-२ मार्गों को व्याप्त करती हैं। उस समय सम्पूर्ण पदार्थ, जो पूर्वोक्त संरक्षक क्षेत्रों में, साथ ही आदित्य लोकों में विद्यमान होते हैं, तेजोमयी ज्वालाओं में स्थित किंवा देदीप्यमान अवस्था में होते हैं। इस कार्य के लिए इन्हीं दोनों पदों की विशेष भूमिका होती है।।+।।

'वसुरन्तरिक्षसद्' पदों के प्रभाव से सभी प्रकार के पदार्थ अन्तरिक्ष में अपने-२ स्थान पर स्थित होने में सहयोग प्राप्त करते हैं। इन पदार्थों में विभिन्न प्रकार के प्राण एवं छन्द आदि रश्मियां तथा विभिन्न परमाणु सम्मिलित हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ये दोनों पद रूपी रश्मियां वस्तुमात्र के साथ संगत होती हैं और ऐसा करके मानो वे सब पदार्थों को अन्तरिक्ष में थामे रखती हैं। यहाँ 'वसु' पद से वायु अथवा प्राण नामक प्राथमिक प्राण एवं गायत्री छन्द रश्मियों का भी ग्रहण हो सकता है। जैसा कि ऋषियों का कथन है- वायुर्वै वसुरन्तरिक्षसत् (श.६.७.३.११), गायत्री वसूनाम (पत्नी) (मै.१.६.२; काठ.६.१०), प्राणा वै वसवः (तै.ब्रा.३.२.३.३)। इससे यह सिद्ध होता है कि ये दोनों पदरूपी प्राण अवयव ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों, गायत्री छन्द रश्मियों आदि के साथ संगत होकर ही अपना कार्य करते हैं और ये प्राणादि पदार्थ भी सर्वत्र विद्यमान होते हैं। इन दोनों पदों के प्रभाव से विभिन्न आदित्य लोक अन्तरिक्ष में अपनी-२ कक्षाओं में स्थिर होने में सहयोग पाते हैं।।

'होता वेदिषद्' ये पद रश्मियां अन्तरिक्ष रूपी वेदी में स्थिति रहने वाले सभी प्रकार के आदित्य लोकों को होता बनने के लिए प्रेरित करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उन आदित्य लोकों में विभिन्न प्रकार की रश्मियों का आवागमन, जिसके विषय में हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं, की प्रक्रिया में इन पद-रश्मियों का सहयोग रहता है। इसके साथ ही विभिन्न आदित्य लोक भी इस प्रकार की क्रियाओं से युक्त होने के कारण होता 'वेदिषत्' कहलाते हैं।।

'अतिथिर्दुरोणसत्' इस अवयव रूपी रश्मि के कारण सभी प्रकार के आदित्य लोक भी 'अतिथिर्दुरोणसत्' रूप होने में सहयोग प्राप्त करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे सभी लोक अतिथिरूप होकर सतत अपनी-२ कक्षा में गमन करते और अधीनस्थ लोकों को भी गमन कराते हैं। इसके साथ ही वे सभी आदित्य लोक दूरोण अर्थात् गृहरूप होकर अपने अधीनस्थ लोकों को अपने आकर्षण वल से निरन्तर ग्रहण किये रहते हैं एवं वे लोक सतत गमन करने वाले विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों के निवास स्थान होते हैं।।

'नृषद्' इस पद रश्मि के प्रभाव को समझने के लिए आचार्य सायण द्वारा उद्धृत ऐतरेय आरण्यक (४.२.४) के वचन- "आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्" को ध्यान में रखना आवश्यक है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस पद रश्मि के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आदित्य लोक भी 'नृषत्' रूप प्राप्त करने में सहयोग पाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये लोक अपनी विभिन्न प्रकार की रश्मियों व सूक्ष्म कणों के निरन्तर प्रभाव से अपने अधीनस्थ अन्य लोकों में प्रकाश के रूप में व्याप्त होते हैं और इन्हीं रश्मियों के कारण ही वे आदित्य लोक व्यक्त अवस्था को प्राप्त करते हैं। हमारे मत में यह पद रश्मि आदित्य लोकों में विद्यमान विभिन्न मरुदादि रश्मियों के सम्पर्क में भी रहकर उन रश्मियों के वहाँ विद्यमान रहने में सहयोग करती हैं। इसके साथ ही ये लोक उष्णिक् एवं त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियों के रूप में सभी लोकों को व्याप्त करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां प्रकाश आदि रश्मियों के साथ ही विभिन्न आदित्य लोकों के अधीनस्थ लोकों में निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं।।

'वरसद्' {सद्म = गृहनाम (नि.३.४), संग्रामनाम (नि.२.१७)} इस पद रश्मि के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आदित्य लोक भी 'वरसद्' रूप प्राप्त करने में सहयोग प्राप्त करते हैं। {(वरम् = बन्धुसमुदायम् (ऋ.२.५.५), वरो वरयितव्यो भवति (नि.१.७), सर्वं वै वरः (श.२.२.१.४)} इसका तात्पर्य यह है कि वे सभी आदित्य लोक अपने अधीनस्थ सभी लोकों में अपने श्रेष्ठ वरणीय वन्धक वल के द्वारा निरन्तर वर्तमान रहते हैं अर्थात् उनका वह प्रवल आकर्षण वल सभी लोकों में विद्यमान होकर उन्हें बाँधे रखता है। इसके साथ ही महर्षि कहते हैं कि जिस क्षेत्र में ये आदित्य लोक तपते हैं, वे क्षेत्र ही उन आदित्य लोकों के श्रेष्ठ गृह के समान होते हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक आदित्य लोक अपने ही क्षेत्र में विद्यमान लोक आदि पदार्थों को बांधने में सक्षम होता है, न कि अन्य क्षेत्र के लोकों को। इसके साथ ही आदित्य लोक अपने ही क्षेत्र में विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों के विभिन्न संघातों को सम्पन्न कर पाते हैं, न कि अन्य क्षेत्र के पदार्थों के संघातों को।।

'ऋतसद्' इस पद के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आदित्य लोक भी 'ऋतसद्' अर्थात् सत्यसत् रूप होने में सहयोग प्राप्त करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सभी आदित्य लोक, जिन कारणरूप पदार्थों से उत्पन्न होते हैं, उन्हीं में सदैव प्रतिष्ठित भी होते हैं अर्थात् वे सभी आदित्य लोक अपने कारणरूप सूक्ष्म प्राण आदि पदार्थों से सदैव आच्छादित रहते हैं और उनके द्वारा ही पूर्णतः भरे भी रहते हैं। इन लोकों में सदैव ही कारणरूप पदार्थों का महान् याग चलता रहता है।।

'व्योमसद्' {व्योम = व्योम अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३), व्योमन् व्यवने (निघं.११.४०), व्योम दिङ्नाम (नि.१.६)} इस पद रश्मि के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आदित्य लोक 'व्योमसद्' रूप प्राप्त करने में सहयोग प्राप्त करते हैं। यहाँ महर्षि यास्क का प्रमाण यह संकेत करता है कि यह **आदित्य लोक अपने परितः अन्तरिक्षस्थ सभी दिशाओं में विद्यमान विभिन्न लोकों की जिस सीमा तक रक्षा कर सकते हैं अर्थात् उनको अपने पूर्ण नियन्त्रण में कर सकते हैं, उतना क्षेत्र व्योम कहलाता है** और इस व्योम क्षेत्र के मध्य एक ही आदित्य लोक स्थित होता है। इसी कारण वे आदित्य लोक 'व्योमसत्' कहलाते हैं। वे आदित्य अपने-२ पृथक् लोक में 'व्योमसत्' रूप होते हैं। निघण्टुकार ने (१.१२) में 'व्योम' शव्द को उदक नामों के अन्तर्गत भी पढ़ा है। इससे हमें गंभीर वैज्ञानिक रहस्य का वोध होता है। उनमें से प्रथम तो यह कि किसी भी आदित्य लोक के क्षेत्र में विद्यमान व्योमरूपी अन्तरिक्ष अपनी सूक्ष्म रश्मियों से अपने अन्दर स्थित विभिन्न लोकों को जलवृष्टि के समान सींचता रहता है और दूसरा गंभीर रहस्य यह प्रतीत होता है कि वह व्योमरूपी अन्तरिक्ष का भाग समस्त लोकों को अपने साथ वाँधता हुआ आदित्य लोक के साथ एक तरल वूँद की भाँति किसी अन्य विशाल आदित्य लोक के

परितः परिक्रमण करता रहता है। **उस व्योम के बाहरी भाग में जल तरंगों की भांति विचलन रूपी तरंगें उठती रहती हैं।।**

'अब्जा' इस पद के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आदित्य लोक भी 'अब्जा' रूप होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न प्रकार के आपः अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियों के कारण ये आदित्य लोक जब उत्पन्न होते हैं, उस समय इस पद की भी भूमिका होती है। इससे प्रमाणित होता है कि आदित्य लोकों की उत्पत्ति के समय भी इस छन्द रश्मि किंवा किसी अन्य छन्द रश्मि में विद्यमान 'अब्जा' पद रश्मि की भी भूमिका होती है। ये आदित्य लोक विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा सृष्टि के आरम्भिक काल में उत्पन्न होते हैं एवं सृष्टि के अंतिम काल में आदित्य आदि सभी लोक उन्हीं प्राण रश्मियों में ही विलीन भी हो जाते हैं।।

'गोजा' इस पद रश्मि के प्रभाव से सभी आदित्य लोक 'गोजा' रूप होने में भी सहयोग प्राप्त करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ-२ ही विभिन्न छन्द रश्मियों से विभिन्न आदित्य लोकों की उत्पत्ति में इस पद रश्मि की भूमिका होती है। इसके साथ ही इन आदित्य लोकों से विभिन्न किरणों की उत्पत्ति में भी इस पद रश्मि की भूमिका होती है।।

'ऋतजा' इस पद रश्मि के प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आदित्य लोक भी 'ऋतजा' रूप प्राप्त करने में सहयोग पाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि विद्युत् और अग्नि रूपी ऋत के द्वारा जब इन आदित्य लोकों की उत्पत्ति होती हैं किंवा सूक्ष्म कारणभूत प्राणों के द्वारा आदित्य लोकों की उत्पत्ति प्रक्रिया प्रारम्भ ही होती है, उस समय इस पद रश्मि की भी भूमिका होती है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि इस पद रश्मि के द्वारा विभिन्न मूल प्राण रश्मियां इन आदित्य लोकों की ओर सब ओर से निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं।।

'अद्रिजा' इस पद रश्मि के प्रभाव से विभिन्न आदित्य लोक 'अद्रिजा' रूप होने में सहयोग पाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये आदित्य लोक {अद्रिः = मेघनाम (निघं.१.१०), विद्युत् (तु.म.द.ऋ.भा. ७.४२.१)} मेघरूप विद्युद्युक्त कारण पदार्थ से उत्पन्न होते हैं किंवा इन लोकों में विद्युत् रश्मियां निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं और ये रश्मियां इन आदित्य लोकों से बाहर की ओर भी प्रवाहित होती रहती हैं।।

'ऋतम्' इस पद रश्मि के प्रभाव से सभी प्रकार के आदित्य लोक ऋत अर्थात् सत्य रूप ही होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे आदित्य लोक निश्चित और सनातन नियमों के द्वारा निर्धारित व्यवस्था के अनुरूप ही सदैव उत्पन्न भी होते हैं और संचालित भी। यहाँ तक कि इन लोकों का विनाश भी निश्चित और सनातन नियमों के अनुकूल ही होता है। **ये निश्चित और सनातन नियम सर्वोच्च चेतन परमात्म सत्ता के बनाये हुए तथा उसी के द्वारा संचालित भी होते हैं।।**

इस प्रकार उपर्युक्त सभी पद रश्मियां एक ही निचृज्जगती छन्द रश्मि की अंश रूप ही होती हैं। सभी छन्द रश्मियों में से इस छन्द रश्मि का आदित्य लोकों के निर्माण, संचालन एवं दूरोहण क्रिया में सर्वाधिक योगदान रहता है। इसका १-१ पद आदित्य लोकों की पृथक्-२ वा अनेक क्रियाओं में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, इस कारण इस छन्द रश्मि की व्यापकता और भी बढ़ जाती है। इस ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी यह दूरोहण क्रिया सम्पन्न हो रही होती है, वहाँ इसी छन्द रश्मि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- गैलेक्सियों के केन्द्रीय तारों एवं विभिन्न तारों के अपनी-२ कक्षाओं में स्थापित और व्यवस्थित होने में जहाँ पूर्व वर्णित अनेक छन्द रश्मियां अपना-२ योगदान देती हैं, वहीं एक निचृज्जगती छन्द रश्मि सबसे अधिक भूमिका निभाती है। यह रश्मि सम्पूर्ण लोक में फैल जाती है। यह रश्मि डार्क एनर्जी के प्रहारों को नष्ट करती है और सभी प्रकार के कणों व लोकों में व्याप्त होकर उनकी रक्षा करती है। इसके केन्द्रीय तारों के चारों ओर, जिस क्षेत्र में अन्य लोक विद्यमान नहीं होते, वहाँ अन्तरिक्ष में बिखरे पदार्थ को देदीप्यमान बनाती है। यह अन्तरिक्षस्थ अन्य रश्मियों के साथ संगत

होकर विभिन्न कणों और लोकों को अन्तरिक्ष में बाँधे रखती है। इसके सहयोग से विभिन्न तारों एवं आकाश गंगा के केन्द्रों में विभिन्न रश्मि और सूक्ष्मकणों का आवागमन निरन्तर होता रहता है। विभिन्न लोकों के अपने केन्द्रीय तारे के चारों ओर परिक्रमा करने में और उसके द्वारा बँधे रहने में इस रश्मि की भी भूमिका होती है। तारों से विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन एवं न्यूट्रिनो आदि कणों के उत्सर्जन में भी इस रश्मि की भूमिका होती है अर्थात् इसके प्रभाव से ऊर्जा के उत्सर्जन एवं अवशोषण करने की प्रक्रिया में तेजी आती है। विभिन्न तारे और आकाशगंगा के केन्द्रीय भाग इस रश्मि के सहयोग से अपनी-२ सीमा वाले क्षेत्र अर्थात् सौरमण्डल और गैलेक्सियों के अन्तर्गत आने वाले लोकों को ही अपने आकर्षण द्वारा बाँधते हैं। इस क्षेत्र को ही **व्योम** कहते हैं। इस प्रकार व्योम पृथक्-२ ही होता है। **यह लोक पानी की बूँद के समान अपने बाहरी भाग में ऊर्मियों से भरा होता है। हमारे मत में उस बाहरी भाग में पानी के बाहरी तल के समान पृष्ठ तनाव भी होता है, जिसके कारण सौरमण्डल अथवा गैलेक्सी से बाहर का कोई भी पदार्थ किसी बलपूर्वक घटी घटना के अतिरिक्त सामान्यतया इस क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाता।** सभी प्रकार के तारे विभिन्न प्राण और छन्द रश्मियों से उत्पन्न होकर विनाश के पश्चात् उन्हीं में लय हो जाते हैं। इन लोकों में ये सभी छन्द रश्मियां संघनित रूप में भरी रहती हैं, साथ ही इनका उत्सर्जन एवं अवशोषण भी इस जगती छन्द रश्मि की सहायता से निरन्तर होता रहता है। ये सभी तारे विद्युत् युक्त कॉस्मिक डस्ट और गैस से बने विशाल मेघों से उत्पन्न होते हैं। इनका निर्माण एक निश्चित और सनातन नियमों और प्रक्रिया के अनुसार ही होता है। इन नियमों को चेतन तत्त्व परमात्मा ही बनाता और लागू भी करता है।।
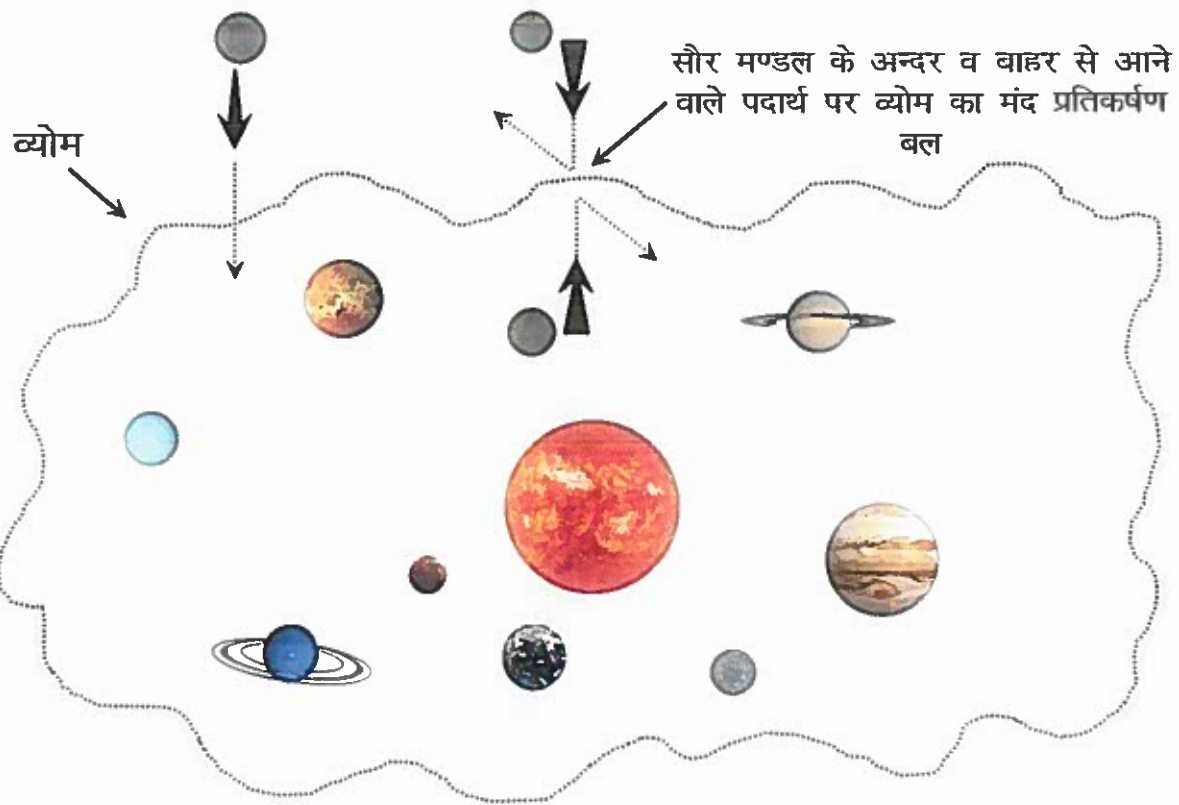
चित्र १८.१६ सौर मण्डल का स्वरूप

३. ताक्ष्र्ये स्वर्गकामस्य रोहेत्।।

ताक्ष्र्यो ह वा एतं पूर्वोऽध्वानमैत्, यत्रादो गायत्री सुपर्णो भूत्वा सोममाहरत्, तद् यथा क्षेत्रज्ञमध्वनः पुर एतारं कुर्वीत, तादृक् तद् यदेव ताक्ष्र्ये; अयं वै ताक्ष्र्यो योऽयं पवते, एष स्वर्गस्य लोकस्याभिवोढ्हा।।

व्याख्यानम्- स्वर्गारोहण की जो प्रक्रिया उपर्युक्त कण्डिकाओं में वर्णितानुसार सम्पन्न होती है, वह बहुत सबल रूप से नहीं हो पाती, इस कारण उस समय एक तार्क्ष्य सूक्त रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। यह सूक्त अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्य ऋषि अर्थात् {नेमिः = वज्रनाम (निघं.२.२०)} विभिन्न बाधक रश्मियों के नाशक वज्ररूप प्राणापान के संयुक्त रूप से उत्पन्न प्राण विशेष से उत्पन्न क्रमशः विराट् त्रिष्टुप्, निचृत्त्रिष्टुप् एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम।।१।। (ऋ.१०.१७८.१)

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम।।२।। (ऋ.१०.१७८.२)

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम्।।३।। (ऋ.१०.१७८.३)

के रूप में होता है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से पूर्वोक्त दूरोहण की सभी क्रियाओं में तीक्ष्णता व तेजस्विता आती है। विद्युत् तत्त्व विशेष प्रभावी हो जाता है। इस कारण पूर्वोक्त दूरोहण क्रिया अधिक दक्षता के साथ सम्पन्न होती है। इन तीनों रश्मियों की व्याख्या स्वयं ग्रन्थकार ने आगामी कण्डिकाओं में की है, जिस पर हम अपना व्याख्यान विस्तार से वहीं लिखेंगे।।

{अभिवोह्ळा = नेता इति सायण भाष्यम्} यहाँ महर्षि कहते हैं कि तार्क्ष्य रश्मियां ही सोम आहरण के लिए सबसे पहले गमन करती हैं। उसके बाद उनके असफल होने पर गायत्री रश्मियां सुपर्ण का रूप धारण करके सोम पदार्थ को लाने में सफल होती हैं। इस विषय में खण्ड ३.२५ में विस्तार से प्रकाश डाला गया है, इस कारण इसे वहीं पढ़ें। वहाँ सभी छन्द रश्मियों को चतुरक्षरा कहा है, जबकि उपर्युक्त सूक्त की कोई भी रश्मि चतुरक्षरा नहीं है। तब खण्ड ३.२५ के प्रसंग को यहाँ क्यों लाया गया है और उन चतुरक्षरा छन्द रश्मियों की इनसे क्यों तुलना की गई है? इस विषय में हमारा मत है कि ये रश्मियां तो खण्ड ३.२५ के प्रकरण में उत्पन्न नहीं होती, परन्तु जो चतुरक्षरा रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे भी तार्क्ष्य ऋषि से उत्पन्न और तार्क्ष्य देवताक होती हैं। इस कारण देवता व ऋषि की समानता को ध्यान में रखते हुए उस प्रकरण को यहाँ कहा गया है, अन्यथा इन उपर्युक्त ३ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का उस प्रकरण से कोई सम्बन्ध हमें प्रतीत नहीं होता। हाँ, यह भी सत्य है कि ऋषि एक वाक्य तो क्या, एक अक्षर भी व्यर्थ नहीं लिखते, तब यहाँ ऐसा क्यों लिखा? इसका स्पष्टीकरण इसी कण्डिका में आगे हो जाएगा। महर्षि लिखते हैं कि जैसे किसी क्षेत्र विशेष से अभिज्ञ व्यक्ति किसी दिग्भ्रान्त पथिक को मार्गदर्शन देकर उसे उसके गन्तव्य तक ले जाने में सहायक होता है। उसी प्रकार तार्क्ष्य सूक्त की ये त्रिष्टुप् रश्मियां भी पूर्वोक्त दूरोहण क्रिया में विभिन्न भ्रान्त हो सकने वाली रश्मियों, परमाणुओं और लोकों को अपने प्रबल आकर्षण बल से उचित मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती हैं। निश्चित ही इस कार्य में चेतन सत्ता परमात्मा का सर्वोच्च मार्गदर्शन अनिवार्य है। यहाँ हमें यह प्रतीत होता है कि खण्ड ३.२५ में वर्णित सोम आहरण की प्रक्रिया में यद्यपि त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां असफल रहती हैं तथापि वे गायत्री रश्मियों को अभिज्ञ मार्गदर्शक की भांति प्रेरित अवश्य करती हैं और ऐसा करने के लिए उनका गायत्री रश्मियों के साथ जाना और सोमरक्षक रश्मियों के साथ गायत्री छन्द रश्मियों के युद्ध के समय त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का गायत्री रश्मियों के निकट ही कहीं स्थित होना भी आवश्यक है। इस कारण इस दृष्टान्त के दोनों ही प्रकरणों में सार्थक होने से महर्षि ने सोम आहरण के प्रकरण का संकेत किया है। ये तारक रश्मियां पवित्र रूप में अन्तरिक्ष में बहती रहती हैं और ये ही दूरोहण क्रिया में अन्य रश्मियों का नेतृत्व करती हैं।।

सूचना- इसका **वैज्ञानिक भाष्यसार** अगली कण्डिकाओं के भाष्यसार में सम्मिलित है।

४. 'त्य मू षु वाजिनं देवजूतम्' इत्येष वै वाजी देवजूतः।।
'सहावानं तरुतारं रथानाम्' इत्येष वै सहावांस्तरुतैष हीमाँल्लोकान् सद्यस्तरति।।
'अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुम्' इत्येष वा अरिष्टनेमिः पृतनाजिदाशुः।।
स्वस्तय इति स्वस्तितामाशास्ते।।
तार्क्ष्यमिहा हुवेमेति ह्वयत्येवैनमेतत्।।
'इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये'-इति स्वस्तितामेवाशास्ते।।
नावमिवारुहेमेति, समेवैनमेतदधिरोहति, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, संपत्त्यै संगत्यै।।
'उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम'-इतीमे एवैतदनुमन्त्रयत आ च परा च मेष्यन्।।
'सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्ततान'-इति प्रत्यक्षं सूर्यमभिवदति।।
'सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न रमा वरन्ते युवतिं न शर्याम्'-इत्याशिषमेवैतेनाशास्त आत्मने च यजमानेभ्यश्च।।६।।

व्याख्यानम्- इन उपर्युक्त तीन छन्द रश्मियों में से प्रथम छन्द रश्मि के प्रथम पाद 'त्य मू षु वाजिनं देवजूतम्' के प्रभाव से वे आदित्य लोक विभिन्न छन्द रश्मि आदि के विभिन्न वलों से युक्त होते हैं तथा विभिन्न प्राथमिक प्राणरूप देव रश्मियों द्वारा प्रेरित और व्याप्त होते हैं। इन आदित्य लोकों में विभिन्न प्रकार के अन्न संज्ञक पदार्थ अर्थात् संयोज्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं, जो परस्पर संयुक्त होकर अग्नि के परमाणुओं को उत्पन्न और उत्सर्जित करने में सहायक होते हैं।।

इसके द्वितीय पाद 'सहावानं तरुतारं रथानाम्' के प्रभाव से {तरुतारम् = तारयितारम् (नि.१०.२८)} ये आदित्य लोक और भी अधिक वलसम्पन्न, विशेषकर ऐसे वल, जो अन्य अनिष्ट वलों के प्रतिरोधक होते हैं, से सम्पन्न होकर {रथः = रमणीयो लोकः (तु.म.द.ऋ.भा.१.५०.८)} ये आदित्य लोक अपने अधीनस्थ विभिन्न लोकों को तारने अर्थात् गमन कराने वाले होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस कार्य में साधक अन्य रश्मियों के साथ इनकी विशेष मार्गदर्शी भूमिका होती है, जिससे ये लोक तीव्र गति से अपनी कक्षाओं में रमण करते हैं।।

इसके तृतीय पाद 'अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुम्' के प्रभाव से ये आदित्य लोक 'अरिष्टनेमि' रूप होकर विभिन्न वाधक रश्मियों को रोकने और नियन्त्रित करने में वज्र के समान समर्थ होते हैं। इसके लिए ये रश्मियां वज्ररूप होकर उन आदित्य लोकों को आच्छादित करके असुर रश्मियों से उनकी रक्षा करती हैं। इन प्राण रश्मियों के प्रहार से वे आदित्य लोक विभिन्न प्रकार के संग्राम को त्वरित गति से जीतने में समर्थ होते हैं अर्थात् किसी भी वाह्य अनिष्ट पदार्थ के साथ संघर्ष में वे आदित्य लोक सद्यः समर्थ हो जाते हैं।।

इसके चतुर्थ पाद के एक पद 'स्वस्तये' के प्रभाव से विभिन्न प्रकार की रश्मियां {स्वस्ति = (स्वस्ति स्वपिति कर्मा - निघं.३.२२ - वै.को. से उद्धृत)} अपने सभी कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में समर्थ होती हैं और ऐसा करने के लिए वे मानो सभी व्योम मण्डलों में सोयी हुई अर्थात् व्याप्त रहती हैं। यहाँ 'आशास्ते' पद से यह संकेत मिलता है कि वे सभी रश्मियां इस पद के प्रभाव से सभी दिशाओं में व्याप्त होकर प्रत्येक पदार्थ का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इसी पाद के अन्य शेष पद 'तार्क्ष्यमिहा हुवेम' के प्रभाव से वे आदित्य लोक विभिन्न तीक्ष्ण प्राणों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन प्राणों में इन छन्द रश्मियों के कारणभूत तार्क्ष्य ऋषि प्राण भी सम्मिलित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन ऋषि प्राणों से कदाचित् पुनः ये तीनों छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर उस श्रृंखला को आगे वढ़ाती रहती हैं।।+।।

तदन्तर द्वितीय छन्द रश्मि के पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग 'इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये' इसके प्रभाव से उपर्युक्त 'स्वस्तये' पद रश्मि के समान प्रभाव होता है। इसके लिए वे आदित्य लोक इन्द्र तत्त्व के प्रभाव को वार-२ अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जिसमें क्रियाएं उपयुक्त रूप से सम्पादित होने लगती हैं। उस समय ब्रह्माण्ड में नाना-घोष भी उत्पन्न होते हैं।।

इसके उत्तर भाग 'नावमिवारुहेम' के प्रभाव से विभिन्न आदित्य लोक अपनी-२ कक्षाओं को प्राप्त करने के लिए उन पर नौका के समान चढ़ते हैं। जिस प्रकार नौका यात्रियों को सुगमता से नदी पार कराती है, उसी प्रकार इस रश्मि के प्रभाव से विभिन्न रश्मियां एक ऐसी सुन्दर व्यवस्था का निर्माण करती हैं, जिससे विभिन्न लोकों की कक्षाएं परिसीमित होकर सहजभाव से उन लोकों को परिक्रमण कराने में सहायक होती हैं। इससे अर्थात् इस रश्मि के प्रभाव से केन्द्रीय आदित्य लोक सभी लोकों में अपने वल से व्याप्त होकर पूर्ण रूप से अपने अधीनस्थ लोकों के साथ संगत हो जाते हैं अर्थात् इनका आधार-आधेय एवं पोषक और पोष्य सम्वन्ध निरन्तर वना रहता है।।

इसके उत्तरार्द्ध के प्रभाव से {उर्वी = द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)} सभी आदित्य लोक और पृथिवी आदि अप्रकाशित लोक दोनों ही व्यापक {गभीरः = महन्नाम (निघं.३.३)} मार्गों पर तीव्र और व्यापक गतियां करते हुए हिंसित नहीं होते हैं। इसका आशय यह है कि यह रश्मि अन्य रश्मियों के साथ विशेषरूप से इन लोकों की कक्षाओं की रक्षा करती है। इसके साथ ही वे लोक चमकते हुए परस्पर दूर स्थित रहते हुए अपने-२ मार्गों पर गमन करते हैं।।

तीसरी छन्द रश्मि के पूर्वार्द्ध के प्रभाव से केन्द्रीय तारे भी अपने अधीनस्थ तारों के सम्मुख प्रकाशित और गतिमान् होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे **केन्द्रीय लोक भी अपने अक्ष पर गति करने के साथ-२ जहाँ अपने से बड़े लोक की परिक्रमा करते हैं, वहीं वे अपने अधीनस्थ लोकों के सापेक्ष भी सतत कम्पन करते रहते हैं।** यह रश्मि अति त्वरित गति से अपने वल के द्वारा 'पंचकृष्टि' आदित्य लोकों को अपने प्रकाश द्वारा विस्तृत मार्ग प्रदान करती है। यहाँ पंचकृष्टि का अर्थ हमारी समझ में यह आता है कि ये आदित्य लोक पाँच पदार्थों के द्वारा निरन्तर आकर्षित किये जाते रहते हैं। वे पाँच पदार्थ निम्नानुसार हो सकते हैं-

(१) ईश्वर, मनस्तत्त्व, प्राथमिक प्राण रश्मियां, छन्द रश्मियां एवं मरुद् रश्मियां।

(२) पाँच मुख्य प्राथमिक प्राण।

(३) अपनी अपेक्षा विशाल केन्द्रीय लोक, उस विशाल लोक का भी केन्द्रीय लोक, अपने साथ गमन करने वाले अन्य आदित्य लोक, अपने अधीनस्थ अप्रकाशित लोक एवं अधीनस्थ लोकों के अधीनस्थ अन्य लोक, सवका ही आकर्षण वल आदित्य लोकों पर प्रभावी होता है।।

इसके उत्तरार्द्ध के प्रभाव से वे आदित्य लोक अपने तथा अपने साथ संगत होने वाले लोकों के लिए उचित दिशा और मार्गों को प्राप्त करने में सहयोग प्राप्त करते हैं। इस रश्मि के सैकड़ों और हजारों प्रकार के भेद वाली गति होने के कारण कोई भी अन्य अवरोधक वल इसको रोक नहीं पाते हैं। इस कारण यह रश्मि लोकों को अक्षय गति प्रदान करने में समर्थ हो पाती है। इस प्रकार इन तीनों ही त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का ऐसा प्रभाव होता है, जो वस्तुतः सभी अन्य छन्द रश्मियों की संभावित भ्रान्ति को दूर करने में मार्गदर्शी का काम करता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- गैलेक्सियों के केन्द्रों, विभिन्न तारों और ग्रहों आदि को उनकी स्थिर कक्षाओं में प्रविष्ट कराने के लिए जो पूर्वोक्त रश्मियां अपनी-२ भूमिका अदा करती हैं, उसमें किसी कारणवश भ्रान्ति होने की आशंका रहती है। इस आशंका के निवारण के लिए अर्थात् इस संभावित भ्रान्ति को दूर करने के लिए तीन विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां किसी भी भ्रान्त छन्द रश्मि को, साथ ही किसी विचलित लोक को व्यवस्थित करने में मार्गदर्शक की भूमिका निभाती हैं। इनके कारण सभी प्रकार की रश्मियां अधिक ऊर्जावान् हो उठती हैं, जिससे वे भ्रान्त लोकों को उचित मार्ग पर लाने में समर्थ होती हैं। ये रश्मियां सभी गैलेक्सियों और सभी सौरमण्डलों के अन्दर पूर्णतः व्याप्त हो जाती हैं। इनमें से एक रश्मि के एक भाग विशेष से इन तीनों रश्मियों को उत्पन्न करने वाली सूक्ष्म

रश्मि भी प्रकट होने लगती है। फिर उस रश्मि से ये तीनों रश्मियां पुनः उत्पन्न होकर इस श्रृंखला को निरन्तर आगे बढ़ाती रहती हैं। इस कारण इनके निरन्तर प्रभाव से सभी रश्मियों की शक्ति निरन्तर अक्षय वनी रहती है। इस समय ब्रह्माण्ड में विद्युत् और ध्वनि तरंगें दोनों ही प्रवल रहती हैं। इस ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोक अपनी-२ कक्षाओं में इन रश्मियों के सहारे इस प्रकार आरूढ़ होते हैं, जैसे कोई नदी पार करने का इच्छुक व्यक्ति नाव के ऊपर चढ़ता है। सभी लोक विभिन्न रश्मियों के द्वारा निर्मित विभिन्न मार्गों रूपी कक्षाओं में इस प्रकार गमन करते हैं, जैसे कोई नाव में वैठकर नदी को पार करता है। जिस प्रकार नाव में वैठने के पश्चात् यात्री को कोई शक्ति नहीं लगानी पड़ती, वल्कि नाविक ही नाव चलाने में शक्ति भी खर्च करता है और मार्ग पर दृष्टि भी रखता है, उसी प्रकार एक वार कक्षा में स्थापित होने के पश्चात् फिर वे लोक विना किसी अतिरिक्त शक्ति के विभिन्न रश्मियों द्वारा निर्मित कक्षाओं में स्वतः ही तैरते हुए से निरन्तर गमन करते रहते हैं। ये तीन छन्द रश्मियां नाविक के समान उनको गमन कराने में समर्थ होती हैं। ये सभी लोक केन्द्रीय अर्थात् गैलेक्सियों के केन्द्रीय तारे और अन्य सभी तारे जहाँ अपने-२ अधीनस्थ लोकों को आकर्षित करते हैं, वहीं वे अधीनस्थ लोक भी इन केन्द्रीय लोकों को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। ये लोक पाँच प्रकार के मुख्य आकर्षण वलों से वंधे रहते हैं। ये वल निम्नानुसार हो सकते हैं-

चित्र १८.१७ विभिन्न लोकों का पारस्परिक आकर्षण एवं परिक्रमण
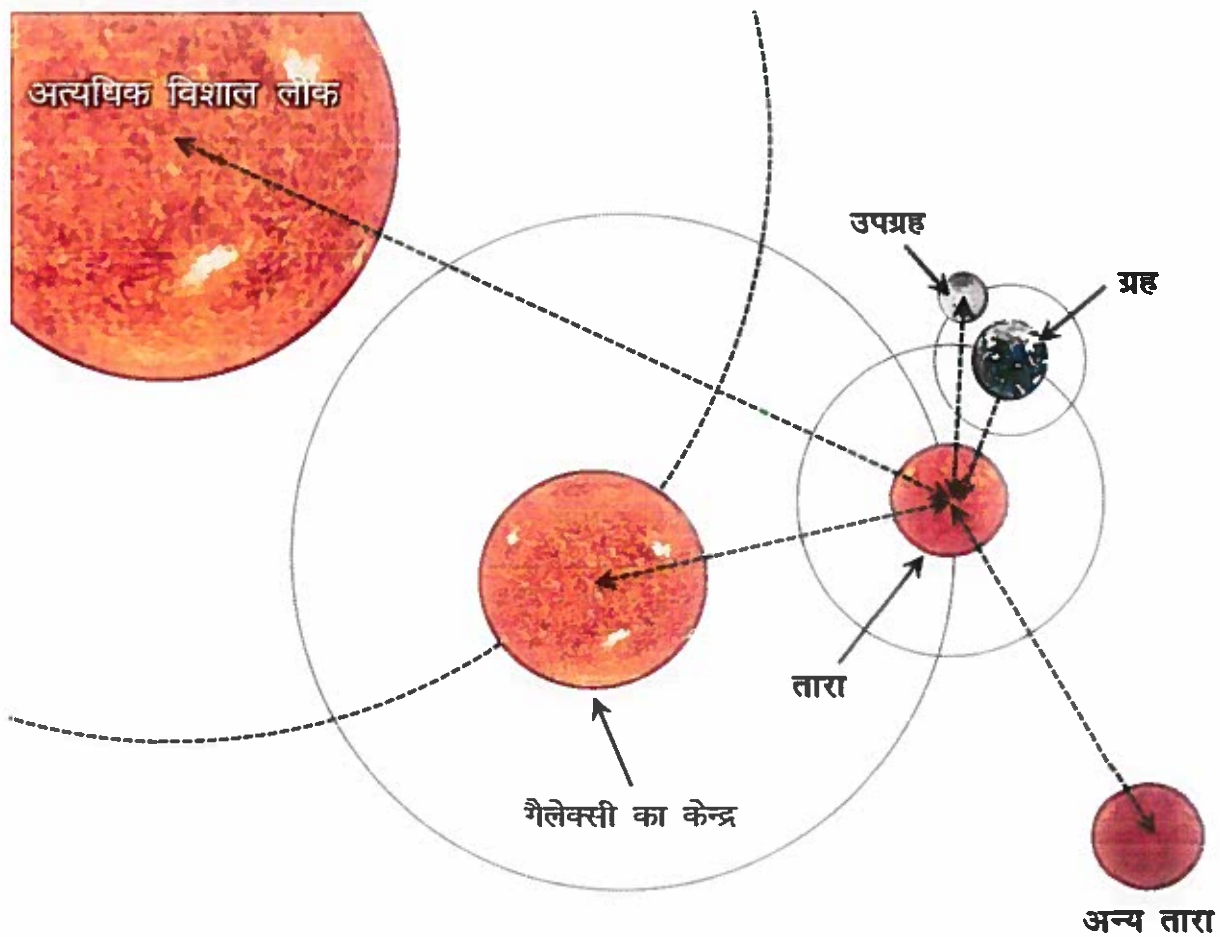
१. ईश्वर, मनस्तत्त्व, प्राथमिक प्राण रश्मियां, छन्द रश्मियां और मरुद् रश्मियों के वल।
२. पाँच मुख्य प्राथमिक प्राण वल।
३. अपनी अपेक्षा विशाल केन्द्रीय लोक, उस विशाल लोक का भी केन्द्रीय लोक, अपने साथ गमन करने वाले अन्य आदित्य लोक, अपने अधीनस्थ अप्रकाशित लोक एवं अधीनस्थ लोकों के अधीनस्थ अन्य लोक सवका ही आकर्षण वल आदित्य लोकों पर प्रभावी होता है। इससे सिद्ध है कि अपना सूर्य

जहाँ अपनी गैलेक्सी के केन्द्रीय तारे द्वारा आकर्षित होता है, वहीं वह सभी गैलेक्सियों के महाकेन्द्र द्वारा भी आकर्षित होता है। इसी प्रकार यह सूर्य जहाँ पृथिवी आदि ग्रहों के द्वारा आकर्षित रहता है, वहीं चन्द्रमा आदि उपग्रहों के द्वारा भी आकर्षित रहता है। इसके साथ-२ पाँचवां आकर्षण बल वह है, जो विभिन्न तारों के मध्य कार्य करता है। इस प्रकार से मुख्य पाँच बल हो जाते हैं। वैसे ब्रह्माण्ड में गुरुत्व बल सार्वत्रिक है परन्तु यह विभाजन मुख्यता दर्शाने के लिए किया गया है। इन सभी बलों के कारण विभिन्न लोकों की तीन प्रकार की प्रत्यक्ष गतियाँ होती हैं-

१. अपने केन्द्रीय लोक के चारों ओर परिक्रमा करना।
२. अपने अक्ष पर घूर्णन करना।
३. उसकी परिक्रमण गति एक रेखा के समान सर्वथा सरल नहीं होती है, बल्कि वह कक्षा पानी की लहर के समान होती है।
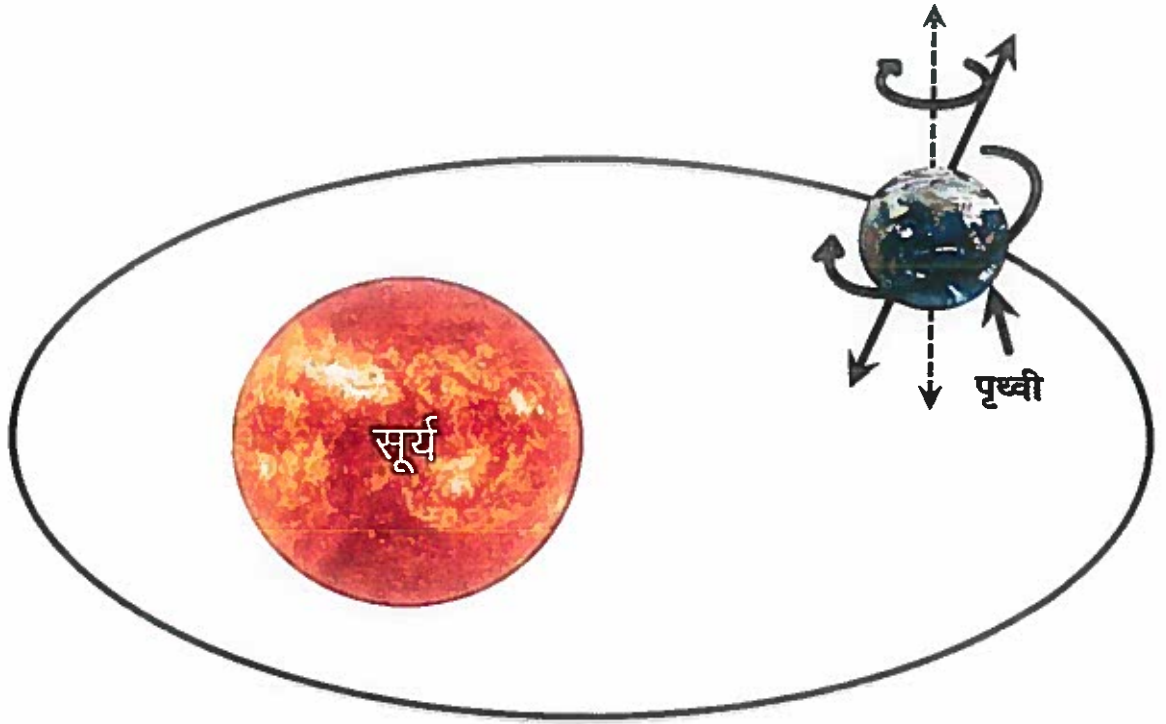
चित्र १८.१८ लोकों की तीन प्रकार की गतियां

इन तीनों छन्द रश्मियों की विशेषकर अन्तिम छन्द रश्मि की गति सैकड़ों और हजारों प्रकार की होकर विचित्र रूप वाली होती है।।

ॐ इति १८.६ समाप्तः ॐ

अथ १८.७ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. आहूय दूरोहणं रोहति, स्वर्गो वै लोको दूरोहणम्, वागाहावो, ब्रह्म वै वाक्, स यदाह्वयते तद् ब्रह्मणाहावेन स्वर्गं लोकं रोहति।।
स पच्छः प्रथमं रोहतीमं तं लोकमाप्नोत्यथार्धर्चशोऽन्तरिक्षं तदाप्नोत्यथ त्रिपद्याऽमुं तं लोकमाप्नोत्यथ केवल्या; तदेतस्मिन् प्रतितिष्ठति य एष तपति।।
त्रिपद्या प्रत्यवरोहति, -यथा शाखां धारयमाणस्तदमुष्मिँल्लोके प्रतितिष्ठत्यर्धर्चशोऽन्तरिक्षे पच्छोऽस्मिँल्लोक आप्त्वैव तत्स्वर्गं लोकं यजमाना अस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति।।

व्याख्यानम्- पूर्व खण्ड में जिस निचृद् जगती छन्द रश्मि के द्वारा दूरोहण क्रिया का वर्णन किया गया है, उसी विषय को कुछ आगे वढ़ाते हुए ऋषि कहते हैं कि यह दूरोहण क्रिया आहाव संज्ञक २.३३.१ में वर्णित 'शोंसावोम्' सूक्ष्म रश्मि के उत्पन्न होने से प्रारम्भ होती है। इसका तात्पर्य यह है कि यह 'शोंसावोम्' सूक्ष्म रश्मि उस निचृद् जगती छन्द रश्मि के ठीक पूर्व उत्पन्न होकर उसी के साथ संगत होती हुई उस रश्मि को प्रभावी वनाती है। वह सूक्ष्म रश्मि सव ओर से सव छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर उन्हें ऊपर उठाती, अपने वल से अपने साथ संगत करके उन्हें प्रेरित करती है। यह दूरोहण क्रिया स्वर्गलोक को प्राप्त कराने वाली होती है। इसका तात्पर्य यह है कि यह क्रिया किसी भी लोक को उसकी कक्षा में अन्तिम रूप से स्थायित्व प्रदान करने तक होती है। इसी कारण महर्षि ने अन्यत्र कहा है- 'अन्तो वै स्वः' (ऐ.५.२०)। अन्य ऋषि ने कहा 'स्वः उदकनाम' (निघं.१.१२)। इससे हमारे इस मत की पुष्टि होती है कि वह कक्षा एक रेखा की भाँति न होकर पानी की लहर के समान होती है। यह आहाव संज्ञक 'शोंसावोम्' रश्मि वाग् रूप होती है और वाग् तत्त्व ब्रह्म रूप होता है अर्थात् वह प्राणापानोदान जैसी रश्मियों से युक्त होकर विद्युत् को उत्पन्न करने वाला होता है। इसलिए विद्युत् भी वाग्रूप कहलाती हैं। इस 'शोंसावोम्' रश्मि के उत्पन्न होने से प्राणापानोदान रश्मियों और विद्युत् का प्राकट्य होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वह विद्युत् जल की भाँति भर जाती है। इसके साथ ही जल के समान विद्युत् और प्राण रश्मियों की भी धाराएं चलती रहती हैं। इसी कारण महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद (१.३४.८) के अपने भाष्य में 'आहावः' पद का अर्थ 'निपानसदृशा मार्गा जलाधारा वा' किया है। ये अपने-२ स्थान पर पूर्वोक्त दूरोहण क्रिया में सक्रिय छन्द रश्मियों को अपने वल और तेज से सिंचित और प्रेरित करती रहती हैं, जिसके कारण दूरोहण क्रिया सुचारु ढंग से होती रहती है।।

इस आरोहण प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों वा चरणों की चर्चा करते हुए महर्षि कहते हैं-

सर्वप्रथम वह निचृद् जगती छन्द रश्मि पादशः उत्पन्न होती है और उस पादशः आवृत्ति से ही विभिन्न रश्मियों द्वारा प्रारम्भ की गई आकर्षण की प्रक्रिया तीव्र होने लगती है, जिसके कारण विभिन्न लोक अपने चारों ओर फैले छोटे-२ पिण्डों एवं अन्य सूक्ष्म पदार्थ को आकर्षित करके अप्रकाशित वड़े रूप को प्राप्त होने लगते हैं। उसके पश्चात् यह निचृद् जगती छन्द रश्मि अर्द्ध-२ रूप में आवृत्त होने लगती है, जिससे वे सभी लोक अपेक्षाकृत दूर-२ फैलकर अन्तरिक्ष को विस्तृत करते हैं और वे लोक उसी अन्तरिक्ष में दूर-२ फैल जाते हैं, इसके पश्चात् यह छन्द रश्मि तीन-२ पादों में आवृत्त होने लगती है, जिसके कारण वे सभी लोक अपने अंतिम रूप को प्राप्त करते हुए अपने-२ केन्द्रीय लोक के आकर्षण की अंतिम सीमा के भी निकट पहुँच जाते हैं। उसके पश्चात् वह रश्मि सम्पूर्ण रूप में आवृत्त होने लगती है, उस समय आकर्षण वल प्रवल होकर अनेक छोटे-२ लोक अपने निकटस्थ

केन्द्रीय लोकों के प्रवल आकर्षण वल के कारण उसी लोक में गिरकर विलीन हो जाते हैं और उस लोक की अत्यन्त संतप्त अवस्था में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। जो शेष लोक रहते हैं, वे केन्द्रीय लोक के चारों ओर परिक्रमण करने लग जाते हैं।।

तदुपरान्त यह प्रक्रिया अवरोही क्रम में प्रारम्भ होती है अर्थात् पहले ३-३ पादों के रूप में वह जगती छन्द रश्मि आवृत्त होने लगती है, जिसके प्रभाव से सभी लोक अपने केन्द्रीय लोक की ओर इस प्रकार आने लगते हैं, जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी वृक्ष की शाखा को पकड़कर नीचे उतरता है। उसी प्रकार मानो वे लोक ३-३ पादों की आवृत्तिरूप उन जगती छन्द रश्मियों के सहारे केन्द्रीय लोकों की ओर दौड़ते अवश्य हैं, परन्तु उनका केन्द्रीय लोकों में गिरना वन्द हो जाता है और इसे वन्द करने में इस छन्द रश्मि के आधे-२ भाग के रूप में आवृत्त होने की विशेष भूमिका रहती है, इसके कारण वे लोक अन्तरिक्ष में ही ठहर जाते हैं। इसके पश्चात् वह रश्मि पादशः आवृत्त होने लगती है, जिसके प्रभाव से जहाँ आदित्य लोक अपने विशाल आदित्य लोकों के चारों ओर अपनी कक्षा में परिक्रमण करने लगते हैं, वहीं अन्य पृथिवी आदि लोक न केवल अपनी कक्षा में परिक्रमण करने लगते हैं, अपितु उनका ताप कम होकर वे अप्रकाशित लोकों का भी रूप प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रिया व्यवस्थित हो जाती है तथा केन्द्रीय लोकों के चारों ओर विशाल रिक्त स्थान हो जाता है, जिसमें पूर्ववर्णित अनेक प्रकार के आवरक क्षेत्र व्याप्त हो जाते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न लोकों के अपनी-२ कक्षाओं में स्थापित होने की पूर्वोक्त प्रक्रियाओं में जो निचृद् जगती छन्द रश्मि उत्पन्न होती है, उसके साथ किंवा उसके ठीक पूर्व सूक्ष्म रश्मि भी उत्पन्न होती है, जिसके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत् तरंगें व्याप्त हो जाती हैं और उसके कारण ही विभिन्न रश्मियों और लोकों की सक्रियता वढ़ जाती है। वह जगती छन्द रश्मि अनेक प्रकार से अनेक रूपों में उत्पन्न होती है, जिसके कारण अन्तरिक्षस्थ पदार्थ, जो विभिन्न लोकों के रूप में प्रकट हुआ ही होता है, वे सभी लोक प्रारम्भ में अप्रकाशित ही होते हैं। यहाँ अप्रकाशित का तात्पर्य सर्वथा प्रकाशरहित नहीं मानना चाहिए अपितु उसे नाभिकीय संलयन की क्रिया से रहित मानना चाहिए। यह लोक उस स्थिति में वर्तमान की अपेक्षा परस्पर निकटस्थ होते हैं, उस समय वही जगती छन्द रश्मि उन लोकों को अन्तरिक्ष में परस्पर दूर ले जाती है। उसके पश्चात् उसी रश्मि के अन्य रूप में प्रकट होने पर वे लोक अपने केन्द्रीय लोक के गुरुत्वाकर्षण की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं। **इनमें से अनेक लोक तेजी से दौड़ते हुए अपने प्रबल केन्द्रीय लोकों में गिरकर, उसी में समाकर उच्च ताप की अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। उसके पश्चात् वही छन्द रश्मि विपरीत क्रम में उत्पन्न होकर केन्द्रीय भाग में स्थित विशाल लोक के अन्दर उसके अधीनस्थ लोकों का गिरना रोककर उन्हें अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित कर देती है।** उसके पश्चात् वे लोक अपनी-२ कक्षा में परिक्रमण करने लगते हैं और केन्द्रीय लोकों के चारों ओर विशाल क्षेत्र रिक्त हो जाता है और इसके साथ ही अनेक लोक, जो पूर्व में ऊष्मा और प्रकाश से विशेष युक्त थे, वे अपेक्षाकृत ठंडे होकर ग्रह और उपग्रहों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।।

२. अथ य एककामाः स्युः, स्वर्गकामाः पराञ्चमेव तेषां रोहेत्, ते जयेयुर्हैव स्वर्गं लोकम्।।
नेत्त्वेवास्मिँल्लोके ज्योगिव वसेयुः।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते,-त्रैष्टुभानि च जागतानि च; मिथुनं वै पशवः पशवश्छन्दांसि, पशूनामवरुद्ध्यै।।७।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रक्रिया में जो लोक एक ही प्रकार की कामना वाले होते हैं, वे लोक उपर्युक्त निचृद् जगती छन्द रश्मि के अवरोही क्रम में आवृत्त होने के प्रभाव से युक्त होते हैं, क्योंकि वे इस विपरीत क्रम से उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने के पूर्व ही केन्द्रीय लोक में समा जाते हैं और फिर वहीं अत्यन्त उच्च ताप पर प्रतिष्ठित होकर उस केन्द्रीय लोक के स्वरूप को ही प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् वे लोक कभी भी केन्द्रीय लोक से बाहर नहीं जा सकते।।

यहाँ महर्षि फिर लिखते हैं कि वे लोक चिरकाल तक उस स्वर्ग लोक में टिके नहीं रह सकते इसका आशय यहाँ यह है कि वे लोक उस केन्द्रीय भाग में अपना पिण्डरूप विशिष्ट आकार अधिक समय तक वनाये नहीं रह सकते, वल्कि वे वहाँ केन्द्रीय भाग में विद्यमान अत्यन्त उच्च ताप के कारण उनका पिण्डरूप आकार विखरकर केन्द्रीय पदार्थ के स्वरूप को प्राप्त करके उसी में पूर्णतः मिश्रित हो जाते हैं, उनका कोई पृथक अस्तित्त्व नहीं रहता है।।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि विभिन्न रश्मिरूप सूक्तसमूह जोड़ों के रूप में ही संगत होकर प्रकाशित और सक्रिय होते हैं, जैसे जगती और त्रिष्टुप् दोनों मिथुन रूप में ही विद्यमान होकर विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित कर पाते हैं। जैसे- इस अध्याय के ५ वें खण्ड में ऋग्वेद ७.१६, ऋ.१.५१ एवं ऋ.१.३२ की जगती और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां परस्पर मिलकर ही कार्य करती हैं, तभी वे प्रभावी होती हैं। इसी प्रकार इस सृष्टि में विभिन्न मरुद् रश्मियां समूह के रूप में ही कार्य करती हैं, वे एकाकी रहकर कोई कार्य नहीं कर सकतीं। विभिन्न छन्द रश्मियों का परस्पर आकर्षण एवं व्यापन कर्म भी इन रश्मियों के समूह में कार्य करने के कारण ही संभव हो पाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तानुसार जो कोई लोक अपने केन्द्रीय लोक के प्रवल आकर्षण वल के द्वारा आकर्षित होकर केन्द्रीय लोक में गिरकर समा जाते हैं, फिर वे वाहर निकल कर नहीं आते। इसके साथ ही वे लोक अपना पिण्ड रूप खोकर उस केन्द्रीय लोक के अति उच्च ताप के कारण पिघल कर उस केन्द्रीय लोक के पदार्थ में मिश्रित होकर उसी का रूप प्राप्त कर लेते हैं। विभिन्न छन्द रश्मियां समूह रूप में ही गमन करते हुए विभिन्न कार्यों को सम्पादित कर पाती हैं, कोई अकेली छन्द वा प्राण रश्मि कोई भी कार्य नहीं कर सकती है।।

इति १८.७ समाप्तः

꧁ अथ १८.८ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. यथा वै पुरुष एवं विषुवांस्तस्य यथा दक्षिणोऽर्ध एवं पूर्वोऽर्धो विषुवतो यथोत्तरोऽर्ध एवमुत्तरोऽर्धो विषुवतस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते, प्रबाहुक्सतः शिर एव विषुवान् बिदलसंहित इव वै पुरुषस्तद्धापि स्यूमेव मध्ये शीर्ष्णो विज्ञायते।।

व्याख्यानम्- {बिदलम् = भाग इति सायणः। स्यूम् = स्यूत इति सायणः} यहाँ महर्षि कहते हैं कि जिस आकार-प्रकार का हिरण्यगर्भ रूप अर्थात् मेघरूप पुरुष उत्पन्न हुआ करता है, उसी प्रकार का विषुवान् अर्थात् विशाल तारे का निर्माण होता है। वह तारा ही विशाल आदित्य लोक कहलाता है। जो पदार्थ हिरण्यगर्भ रूप विशाल मेघ के उत्तर और दक्षिण भागों में विद्यमान होते हैं, वे ही पदार्थ उस निर्माणाधीन केन्द्रीय विशाल आदित्य लोक के अन्दर भी उत्तर और दक्षिण भागों में विद्यमान होते हैं। जैसा कि हम खण्ड १.७ में लिख चुके हैं कि उस विशाल मेघ के उत्तर भाग में वायु मिश्रित विद्युत् की प्रधानता होती है, उसी प्रकार किसी भी आदित्य लोक अथवा विशाल आदित्य लोक के उत्तर भाग में वायु मिश्रित विद्युत् की प्रधानता होती है। इसी प्रकार जैसे विशाल मेघ के दक्षिणी भाग में ऊष्मा की प्रधानता होती है, उसी प्रकार आदित्य लोकों एवं विशाल आदित्य लोकों के दक्षिण भाग में भी अशान्त ऊष्मा की प्रधानता होती है। इसके साथ ही उस विशाल मेघ का दक्षिणी भाग जितना अधिक तेजस्वी और वर्धमान होता है, उतना ही अति विशाल लोकों का प्रारम्भिक भाग पूर्णता की ओर बढ़ता हुआ सबको अपनी ओर लाने में अर्थात् बाहरी पदार्थ को अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम होता है। उस विशाल मेघ का उत्तर भाग विद्युत् और वायु का जितना सघन केन्द्र होता है, उसी अनुपात में अति विशाल लोक भी उत्तरकाल में सभी लोकों को उत्कृष्ट रूप से तराने वाला तथा सभी को अपनी-२ कक्षा में स्थापित करता हुआ समृद्ध होता चला जाता है। क्योंकि यह विशाल आदित्य लोक अन्य सभी अधीनस्थ आदित्य लोकों को उचित कक्षाओं और वेग में स्थापित करता है, इस कारण यह विषुवान् संज्ञक विशाल आदित्य लोक स्वयं भी 'उत्तर' कहलाता है।

उस विशाल मेघ के उत्तर और दक्षिण भागस्थ क्रमशः वायु मिश्रित विद्युत् और अशान्त ऊष्मा प्रधानता वाले क्षेत्र सम अवस्था में होते हैं। उस समय उन दोनों के मध्य सम अवस्था वाले क्षेत्र में एक उभरा हुआ भाग बन जाता है, जो मानो उस विशाल मेघ के सिर के समान विद्यमान होता है। इस बात का संकेत खण्ड १.७ और ४.१६ में भी देख सकते हैं। यह उभरा हुआ भाग ही विशाल आदित्य लोक और अपेक्षाकृत छोटे मेघों के अन्दर कालान्तर में आदित्य लोक का रूप धारण करता है। जैसे विशाल मेघ उत्तर-दक्षिण दो भागों से मिलकर बना हुआ होता है और वे दोनों भाग विभिन्न प्राण रश्मियों द्वारा परस्पर सिले हुए से रहते हैं। उसी प्रकार विषुवान् संज्ञक विशाल आदित्य लोक एवं अन्य आदित्य लोक भी विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा संयुक्त हुए रहते हैं। जिस प्रकार किसी वस्त्र में विभिन्न तंतु परस्पर निकटता से संयुक्त रहते हैं, उसी प्रकार विभिन्न लोकों के अन्दर विभिन्न रश्मियां परस्पर निकटता से संयुक्त होकर कार्य करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड में जिस कॉस्मिक मेघ से किसी गैलेक्सी का निर्माण होता है, उस गैलेक्सी के केन्द्रीय तारे का आकार-प्रकार उस कॉस्मिक मेघ के आकार-प्रकार पर निर्भर करते हैं। जब उस कॉस्मिक मेघ का आकार बड़ा होता है, तो उससे उत्पन्न किसी गैलेक्सी के केन्द्रीय तारे का आकार भी बड़ा होता है। जैसे कॉस्मिक मेघ के उत्तरी भाग में विद्युत् धाराएं अधिक संख्या में होती हैं, वैसे ही गैलेक्सी के केन्द्रीय तारे के उत्तरी भाग में भी विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र युक्त क्षेत्रों की अधिकता होती है। कॉस्मिक मेघ के दक्षिण सिरे में ऊष्मा की प्रधानता होती है, वही स्थिति गैलेक्सी के तारे में

भी होती है। जब कॉस्मिक मेघ से किसी गैलेक्सी का निर्माण हो रहा होता है, तब उसके उत्तरी और दक्षिणी भागों के मध्य एक उभरा हुआ क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है, वही कालान्तर में केन्द्रीय तारे का रूप धारण करता है। यहाँ दोनों भागों के मध्य का तात्पर्य कॉस्मिक मेघ के केन्द्रीय भाग से है। इसी प्रकार विभिन्न तारों की उत्पत्ति व स्वरूप भी समझें।।

२. तदाहुर्विषुवत्येवैतदहः शंसेत्, विषुवान् वा एतदुक्थानामुक्थम्, विषुवान् विषुवानिति ह विषुवन्तो भवन्ति, श्रेष्ठतामश्नुवत इति।।
तत्तन्नादृत्यम्, संवत्सर एव शंसेत्, रेतो वा एतत्संवत्सरं दधतो यन्ति।।
यानि वै पुरा संवत्सराद् रेतांसि जायन्ते, यानि पञ्चमास्यानि, यानि षण्मास्यानि, स्रीव्यन्ति वै तानि, न वै तैर्भुञ्जते।।
अथ यान्येव दशमास्यानि जायन्ते, यानि सांवत्सरिकाणि, तैर्भुञ्जते; तस्मात् संवत्सर एवैतदहः शंसेत्।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि विषुवान् अर्थात् विशाल आदित्य लोकों वा आदित्य लोकों के अन्दर ही विभिन्न प्रकार के {अहन् = अहर्वै वियच्छन्दः (श.८.५.२.५), पशवो वा अहोरात्राणि (तै.सं.२.१.५.२-३)} अहन् अर्थात् प्राण व छन्दादि रश्मियां एवं अन्य प्रकाशित परमाणु प्रकाशित होते हैं। यहाँ 'एव' शब्द इस बात को सूचित कर रहा है कि ये विद्वान् इन लोकों में ही इन रश्मियों के प्रकाशन व उत्पादन को स्वीकृत कर रहे हैं, अन्यत्र नहीं। इसके पीछे वे हेतु देते हुए कहते हैं कि ये आदित्य लोक ही **उक्थ** अर्थात् प्राणों के भी प्राण व अन्न अर्थात् भक्ष्य पदार्थ को भी प्रकाशित करने वाले होते हुए अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों से युक्त होते हैं। ये लोक अपनी प्रकाशादि तरंगों तथा अपने बल से सबको व्याप्त करने वाले होते हैं, इस कारण ये अपनी व्याप्तियों से युक्त होते हैं। {विषुः = विषुरूपे विषमरूपे (नि.१२.१७)} इसके साथ ही ये लोक विविध रूप वाले होते हैं। इस कारण भी विषुवान् कहलाते हैं। ये विविध शक्तियों के भण्डार होते हैं, इस कारण इनमें विद्यमान पदार्थ अपने सामर्थ्य से सबमें व्याप्त हो कर श्रेष्ठता प्राप्त करते हैं।।

इस मत का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं कि यह मत स्वीकार्य नहीं है। विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों एवं उनके सम्पीडन-संगति से जो भी प्रकाशित परमाणुओं की उत्पत्ति होती है, वह मात्र आदित्य लोकों में ही नहीं होती बल्कि संवत्सर अर्थात् सम्पूर्ण विशाल मेघ में ही प्रारम्भ होती है। यहाँ तक कि वे सभी आदित्य लोक स्वयं भी उसी विशाल मेघ के अन्दर ही उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः इन पदार्थों की उत्पत्ति व प्रकाशन तो, न केवल विशाल मेघ बल्कि सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भरूप संवत्सर में ही प्रारम्भ हो जाता है। यदि ऐसा नहीं हो तो, उस विशाल व लघु मेघ आदि किसी पदार्थ की उत्पत्ति ही सम्भव नहीं है। इस कारण वे 'एष' शब्द द्वारा ही बलपूर्वक कहते हैं कि इन पदार्थों की उत्पत्ति सर्ग प्रक्रिया के प्रारम्भ से ही तथा सर्वत्र सम्पूर्ण सृष्टि में ही होती है। ये प्राण व छन्दादि रश्मियां ही इस सम्पूर्ण सृष्टि का बीज रूप हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में जो भी तेज, बल आदि जहाँ-२ विद्यमान हैं, वह इन्हीं रश्मियों के कारण ही हैं। ये रश्मियां सम्पूर्ण सृष्टि के सभी पदार्थों को धारण करती हुई सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होती है। ये रश्मियां सभी मास व ऋतु रश्मि रूपी संवत्सर के साथ संगत होकर ही अपने-२ कार्यों को करने में समर्थ होती हैं। ये रश्मियां ही संवत्सर अर्थात् बारह प्रकार की मास रश्मियों अथवा छः वा पाँच प्रकार की ऋतु रश्मियों को भी धारण करती हैं और इनके धारण से ही सृष्टि का भी धारण होता है। इस कारण यहाँ यह कहना कि इनकी उत्पत्ति व प्रकाशन आदित्य लोकों में ही होता है, यह आदरणीय नहीं है।।

यहाँ १२ मास व पांच वा छः ऋतु रश्मियों की उत्पत्ति की अनिवार्यता बतलाते हुए ऋषि कहते हैं कि विभिन्न आदित्य व अन्य लोकों, यहाँ तक कि विशाल मेघों की उत्पत्ति इन मास व ऋतु रश्मियों की सम्पूर्ण उत्पत्ति के पश्चात् ही हो पाती है। इसका कारण यह है कि इनकी उत्पत्ति व संगति के

अभाव में प्राण व छन्दादि रश्मियां पर्याप्त वल से युक्त नहीं होती। इस कारण वे किसी भी प्रकार के पदार्थ के परमाणुओं को उत्पन्न करने में सक्षम नहीं होती। उनका सामर्थ्य अपरिपक्व ही रहता है। विभिन्न प्रकार की रश्मियों में सन्धि कार्य सम्भव न होने से सर्ग प्रक्रिया स्खलित हो जाती है। जव पांच वा छः मास रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं, उस समय प्राण व छन्दादि रश्मियों के संयोगों से उत्पन्न पदार्थ गर्भस्राव की भांति व्यर्थ ही हो जाता है। वे पदार्थ परिपक्व अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाते अर्थात् वे पुष्ट नहीं हो पाते। उधर उन प्राणादि रश्मियों में पर्याप्त धारण सामर्थ्य उत्पन्न नहीं हो पाती और न ही ऋतु रश्मियों की पूर्णता के अभाव में अग्नि के परमाणुओं की उत्पत्ति हो पाती।।

इस कारण इस सर्ग प्रक्रिया में न्यूनतम दस मास रश्मियां वा पांच ऋतु रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं, तभी प्राण व छन्दादि रश्मियां पुष्ट व सतेज हो पाती हैं। जव सभी १२ मास वा छः ऋतु रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं, तभी इन प्राणादि रश्मियों के तेज, वल आदि पूर्णत्व के साथ प्रकट होकर परस्पर विधिवत् संगत होकर अन्य पदार्थों को उत्पन्न व संगत करते हैं। इसके पश्चात् ही सृष्टि में उत्पन्न सभी पदार्थ पुष्ट होकर पूर्णता को प्राप्त करते हैं। इस कारण सभी प्रकार की प्राण व छन्द रश्मियां सम्पूर्ण सृष्टि में उत्पन्न व मास व ऋतु रश्मियों के साथ संगत होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया में प्राण व छन्दादि रश्मियां विभिन्न मास व ऋतु रश्मियों के पूर्ण रूप से उत्पन्न व संगत होने के पश्चात् ही अपेक्षित वल से युक्त होती हैं। इनके अभाव में अथवा इनकी पूर्णरूपेण उत्पत्ति न हो पाने की स्थिति में प्राण व छन्दादि रश्मियां पूर्ण सक्रिय नहीं हो पाती हैं और न ही वे परस्पर संगत होकर विद्युत् चुम्वकीय तरंगों अथवा मूलकणों को ही उत्पन्न कर पाती हैं। इस प्रकार जव सभी मास रश्मियां उत्पन्न होकर विभिन्न रश्मियों को संगत करती हैं, उसी समय सभी प्रकार की सृजन क्रियाएं विधिवत् सम्पादित होने लगती हैं।।

३. संवत्सरो ह्येतदहराप्नोति, संवत्सरं ह्येतदहराप्नुवन्त्येष ह वै संवत्सरेण पाप्मानमपहत एष विषुवताऽङ्गेभ्यो हैव मासैः पाप्मानमपहते शीर्ष्णो विषुवता।। अप संवत्सरेण पाप्मानं हतेऽप विषुवता य एवं वेद।।
वैश्वकर्मणमृषभं सवनीयस्योपालम्भ्यमालभेरन्, द्विरूपमुभयत एतं महाव्रतीयेऽहनि।। इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्माऽभवत्, प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्माऽभवत्, संवत्सरो विश्वकर्मेन्द्रमेव तदात्मानं प्रजापतिं संवत्सरं विश्वकर्माणमाप्नुवन्तीन्द्र एव तदात्मनि प्रजापतौ संवत्सरे विश्वकर्मण्यन्ततः प्रतितिष्ठन्ति; प्रतितिष्ठति य एवं वेद; य एवं वेद।।८।।

व्याख्यानम्– संवत्सर अर्थात् वे वारह मास अथवा छः ऋतु रश्मियां सभी प्राण व छन्दादि रश्मियों को व्याप्त कर लेती हैं तथा सभी प्राण व छन्दादि रश्मियां उन मास व ऋतु रश्मियों को व्याप्त कर लेती हैं अर्थात् वे दोनों प्रकार के रश्मिसमूह परस्पर संगत हो जाते हैं। इन १२ मास रश्मियों, जिन्हें हम अनेकत्र, विशेषकर दसवें अध्याय में निविद् रश्मियों के नाम से पढ़ चुके हैं, के द्वारा विभिन्न प्रकार की आसुरी वाधाओं को दूर किया जाता है। इससे ही इस सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया से आसुरी रश्मियों की वाधा दूर होती है। इसी प्रकार इस सृष्टि प्रक्रिया में अपनी व्याप्तियों से सवको व्याप्त करने वाली, साथ ही विषुवान् संज्ञक आदित्य लोकों में विशेषतः व्याप्त प्राण व छन्दादि रश्मियों के द्वारा भी आसुरी रश्मियों का निराकरण व नियन्त्रण होता है। उन मास रश्मियों के द्वारा आदित्य लोकों के अंगभूत विभिन्न लघु लोकों में भी आसुरी रश्मियों को नियन्त्रित किया जाता है। यहाँ अंग से आदित्य लोकों के विभिन्न सूक्ष्म भागों का ग्रहण करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अंग के विषय में ऋषियों का कथन है– "अङ्गानि वै विश्वानि धामानि" (श.३.३.४.१४), "छन्दांस्यङ्गानि" (मै.२.७.८; काठ.१६.८)। इन प्रमाणों से विभिन्न लोकों का भी ग्रहण सम्भव है। विषुवान् संज्ञक प्राण व छन्दादि रश्मियों के द्वारा सिररूप आदित्य केन्द्रों अर्थात् उनके केन्द्रीय भागों से आसुरी रश्मियों को विनष्ट करती हैं। इसका एक

भाव यह है कि इन आदित्य लोकों, विशेषकर इनके केन्द्रीय भाग में आसुरी रश्मियों के नियन्त्रण की प्रक्रिया शीर्ष स्तर पर होती है।।

इस प्रकार संवत्सर संज्ञक मास रश्मियां, जो व्याप्तिस्वरूप वाली होती हैं, के द्वारा सर्वत्र ही असुर तत्त्व को नियन्त्रित वा नष्ट कर दिया जाता है। इसके साथ ही विभिन्न प्राणादि रश्मियां भी असुर नियन्त्रण में अपनी भूमिका निभाती हैं।।

{महाव्रतम् = अन्तो महाव्रतम् (तां.५.६.१२), तस्य (संवत्सरस्य) एष आत्मा यन्महाव्रतम्। (शां. आ.१.१), शिरो वा एतद्यज्ञस्य यन्महाव्रतम् (जै.ब्रा.२.३०४), बृहद्रथन्तरे (महाव्रतस्य) पक्षौ (तां.१६.११.११), विश्वकर्मा = संवत्सरो विश्वकर्मा (ऐ.४.२२), असौ वै विश्वकर्मा योऽसौ (सूर्यः) तपति (कौ.ब्रा.५.५)}

विभिन्न आदित्य लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के दौरान परस्पर संगमनीय तेजस्वी एवं तीव्र वलसम्पन्न छन्द व प्राणादि रश्मियों को अति निकटता से सम्वद्ध किया जाता है। जव महाव्रत अर्थात् आदित्य लोकों के केन्द्रों का निर्माण हो रहा होता है, उस समय पशु अर्थात् रश्मियों के दोनों रूपों अर्थात् छन्द व प्राण रश्मियों दोनों को ही निकटता से संगत किया जाता है। यहाँ द्विरूप का अर्थ बृहद् व रथन्तर आदि युग्म भी है, जिनके विषय में ४.१३.१ द्रष्टव्य है। इससे सिद्ध है कि उस समय इन युग्मों को भी अति निकटता से संगठित किया जाता है। यहाँ महाव्रत का अर्थ ४.१४.१ में वर्णित चतुर्विंश अहन् भी ग्रहणीय है। इससे संकेत मिलता है कि उन केन्द्रीय लोकों में सवको अति निकटता से ही संघटित किया जाता है, तभी विश्वकर्मारूप आदित्य लोकों की उत्पत्ति हो पाती है।।

{प्रजापतिः = सर्वाणि छन्दांसि प्रजापतिः (श.६.२.१.३०), वायुर्ह्येव प्रजापतिः (ऐ.४.२६)} यहाँ महर्षि कहते हैं कि सभी प्रकार के कर्म करने में समर्थ इन्द्रतत्त्व विभिन्न आसुर रश्मियों के विशाल आवरक मेघ को नष्ट करने के कारण विश्वकर्मा कहलाता है। इन्द्र इस सृष्टि का सर्वाधिक वलवान् पदार्थ है। सभी प्रकार के प्राथमिक प्राण एवं छन्द तत्त्व सभी प्रकार के कर्मों व पदार्थों को उत्पन्न करते हैं, यहाँ तक कि इन्द्र तत्त्व भी स्वयं इन्हीं से उत्पन्न होता है। इनका भी मूल मन एवं वाक् का मिथुन ही सवको उत्पन्न व क्रियाशील करने वाला मूल अचेतन वल है। इस प्रकार ये प्रजापति संज्ञक छन्द प्राण, मन एवं वाग् रश्मियां भी विश्वकर्मा कहलाते हैं। सव मास एवं ऋतु रूपी रश्मियां, जो कि संवत्सर कहलाती हैं, भी सभी कर्मों के करने से विश्वकर्मा कहलाती हैं। इसी प्रकार संवत्सररूप सभी आदित्य लोक भी विश्वकर्मा कहलाते हैं। जव उपर्युक्त विभिन्न क्रियाएं विविधरूपेण सम्पन्न हो जाती हैं, उस समय वह इन्द्र तत्त्व सतत गमनकर्ता होकर इन सभी प्रकार के प्रजापतिरूप पदार्थों, जो विश्वकर्मा का भी रूप होते हैं, के अन्दर किंवा से व्याप्त हो जाता है। ऐसा उपर्युक्त उपालम्भन क्रियाओं आदि के फलस्वरूप हो पाता है। इस प्रकार वह इन्द्र तत्त्व और प्राण-छन्दादि प्रजापति, दोनों ही विश्वकर्मा संवत्सर अर्थात् मास व ऋतु रश्मियों में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। यहाँ 'इन्द्रे' 'आत्मनि', 'प्रजापतौ' में प्रथमार्थ में सप्तमी का प्रयोग छान्दस है। इसके पश्चात् ये सभी संवत्सररूपी सभी प्रकार के आदित्य लोकों एवं सम्पूर्ण सृष्टि में ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इस प्रकार यह गवामयन व दूरोहण की सम्पूर्ण प्रक्रिया समाप्त हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में विभिन्न गैलेक्सियों, उनके अन्दर विद्यमान तारों, केन्द्रीय तारों आदि की उत्पत्ति व अपनी-२ कक्षाओं में स्थिर होने की प्रक्रिया में मास, प्राण व छन्द आदि रश्मियां अनेक प्रकार से डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक प्रभावों को नष्ट व नियन्त्रित करती रहती हैं। डार्क एनर्जी का सर्वाधिक नियंत्रण वा विनाश तारों के केन्द्रीय भाग में ही होता है, जिससे नाभिकीय संलयन जैसी क्रियाएं सम्पन्न हो सकें। इन केन्द्रीय भागों में प्राण व छन्द रश्मियों की संगति भी अति निकटता से होती है। इस कारण वहाँ उनका स्वरूप अति तीव्र एवं वल सम्पन्न होता है। सभी प्रकार की किरणों में विद्युत् तरंगें भी व्याप्त रहती हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्वकीय तरंगों व विद्युत् आवेश की व्याप्ति हो जाती है। प्राण व छन्द रश्मियां और भी सूक्ष्मता से व्याप्त होती हैं। इस कारण ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण व ब्रह्माण्डस्थ सभी लोकों का यथावत् धारण सम्भव हो पाता है।।

❧ इति १८.८ समाप्तः ❧

❧ इति अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ❧

एकोनविंशोऽध्यायः

मास रश्मि

पंक्ति रश्मि

ऋतु रश्मि

G

ग्रेवीटॉन

प्राण रश्मि

बृहती रश्मि

ओम् रश्मि

त्रिष्टुप् रश्मि

सूत्रात्मा वायु

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

कार्य में संलग्न होना। विभिन्न छन्दों, क्वाण्टा-इलेक्ट्रॉन्स आदि का संयोग सामंजस्य। लोकों की निकटता व दूरीकरण, प्रारम्भ में सभी छन्द रश्मियों का अप्रकाशित होना, उनसे दृश्य व डार्क(देव व असुर) पदार्थों की उत्पत्ति। दोनों पदार्थों का स्वरूप। नौधस-श्यैत-साम-धूम-वृष्टि-देवयजन-चन्द्रमा। द्यौ व पृथिवी का परस्पर तृप्त होना। क्वाण्टा के इलेक्ट्रॉन आदि कणों से संयोग व वियोग का विज्ञान। विना ऊर्जा संयोग-वियोग प्रक्रिया असम्भव। ऊष, तुरः, कावषेय-जनमेजय-द्यौ-भूमि-अन्तरिक्ष। क्वाण्टा व इलेक्ट्रॉनादि के संयोग का विज्ञान, द्रव्य व ऊर्जा की एकात्मता।

१९.६ वृहत्-रथंतर-वाक्-मन, इनका गर्भधारण। इससे नाना सूक्ष्म रश्मियों का उदय। अन्य रश्मियों का विविध प्रकार से गर्भ धारण। मन, ओम्, सोम तत्त्व, तीक्ष्ण भेदक आदि छन्द रश्मियों का उदय। षट्पृष्ठ-गायत्री-त्रिष्टुप् व जगती के गर्भ धारण से अन्य छन्द रश्मियों तथा ऊर्जा व द्रव्य की उत्पत्ति। 1127

अथ १९.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति; स तपोऽतप्यत; स तपस्तप्त्वेमं द्वादशाहमपश्यदात्मन एवाङ्गेषु च प्राणेषु च, तमात्मान एवाङ्गेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च द्वादशधा निरमिमीत; तमाहरत; तेनायजत; ततो वै सोऽभवदात्मना प्र प्रजया पशुभिरजायत।।
भवत्यात्मना प्र प्रजया पशुभिर्जायते य एवं वेद।।

{प्रजापतिः = अनिरुक्त उ वै प्रजापतिः (कौ.ब्रा.२३.२.६), अपरिमितो हि प्रजापतिः (गो.उ.१.७)}

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि सर्ग प्रक्रिया के प्रारम्भ के विषय की सूक्ष्मता में जाते हुए लिखते हैं कि प्रजापति (अर्थात् अव्यक्त प्रकृति किंवा अपरिमित मात्रा में प्रकृति व महत्तत्व से उत्पन्न मनस्तत्त्व में विद्यमान, जो मनस्तत्त्व का भी प्रकृति से निर्माण करता है) **परम चेतन परमात्म तत्त्व में जब यह कामना उत्पन्न होती है कि एकरस प्रकृति तत्त्व किंवा उसके विकार मनस्तत्त्व में विकृति उत्पन्न करके मैं अनेक पदार्थों की सृष्टि करूँ, एक से अनेक उत्पन्न करूँ, उस समय वह चेतन तत्त्व तप को तपाता है।** यहाँ मनस्तत्त्व ही तप है, इसी कारण कहा गया है- "मनो वाव तपः" (जै.ब्रा.३.३३४)। इस तप संज्ञक मनस्तत्त्व को (तप ऐश्वर्ये) सर्वप्रथम ऐश्वर्ययुक्त बनाया जाता है अर्थात् नियन्त्रण वा आकर्षण-धारण गुण का प्राकट्य होता है। यह कर्म सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ है, क्योंकि कहा गया है- "तपो दीक्षा" (श.३.४.३.२)। अपरिमित परन्तु निष्क्रिय पदार्थ प्रकृति व मनस्तत्त्व में जब तक ये आकर्षण व धारण आदि गुण उत्पन्न नहीं होते, तब तक उस एकरस पदार्थ में कोई भी क्रिया प्रारम्भ हो ही नहीं सकती। इस प्रकार इन बलादि गुणों को उत्पन्न करके वह चेतन तत्त्व द्वादशाह को उत्पन्न करता है। द्वादशाह के विषय में ऋषियों का मन्तव्य है- "आदित्यो वै द्वादशाहः" (जै.ब्रा.३.३७७), "प्रजापतिर्वै द्वादशाहः" (जै.ब्रा.३.३७२), "गृहा वै देवानां द्वादशाहः" (तां.१०.५.१६)। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मनस्तत्त्व एवं कारण प्राण अर्थात् प्राणापानादि प्राथमिक प्राण द्वादशाह कहलाते हैं। द्वादशाह का अर्थ है- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, सूत्रात्मा वायु एवं वाक् तत्त्व ये बारह अहन् मिलकर द्वादशाह कहाते हैं। हम २.१५.२ में लिख चुके हैं कि प्राथमिक प्राण एवं वाग् रश्मियां मनस्तत्त्व के अन्दर कम्पन के रूप में उत्पन्न होती हैं। यह **कम्पन ईश्वरतत्त्व के ईश्वरत्व अर्थात् अधिकार के कारण उत्पन्न होते हैं।** यह 'अपश्यत्' क्रियापद का तात्पर्य यही है कि ईश्वर तत्त्व ने अनेक प्रकार के पदार्थों की इच्छा करते हुए मनस्तत्त्व के असीम सागर में अपने बल से कम्पन उत्पन्न करके **प्राणादि बारह की रश्मियां प्रकट की।** ये रश्मियां ही समूह रूप में द्वादशाह कहलाती हैं। ये मनस्तत्त्व के प्राथमिक विकार हैं। यहाँ प्रश्न यह है कि मनस्तत्त्व ने कैसे इन बारह तत्त्वों को बनाया? इसके उत्तर में महर्षि कहते हैं कि मनस्तत्त्व स्वयं के अन्दर ही अपने अंगभूत वा प्राणभूत ये बारह पदार्थ विद्यमान होते हैं। उस मनस्तत्त्व ने ईश्वरीय प्रेरणा से उन अपने अन्दर ही उन अंगभूत व प्राणभूत पदार्थ को किंवा स्वयं को ही बारह प्रकार से विकृत करके इन बारह पदार्थों का पृथक्-२ रूप में प्रकट किया। फिर इन बारह तत्त्वों को वह मनस्तत्त्व अपने अन्दर ही बसा लेता है। तदुपरान्त वह मनस्तत्त्व उन सबका यजन करने लगता है। प्रत्येक रश्मिरूपी पदार्थ सदैव ही मनस्तत्त्व द्वारा ही धारण किया जाकर उसके साथ संगत भी रहता है। इस प्रकार वह मनस्तत्त्व {प्रजा = आदित्या वा इमाः प्रजाः

(तां.१८.८.१२), प्रजा वा उक्थानि (तै.ब्रा.१.८.७.२)} स्वयं ही विभिन्न प्राथमिक प्राण, मरुत् एवं छन्द रश्मियों के तथा प्राण व अन्न संज्ञक पदार्थों के रूप में प्रकट होकर एकरस मनस्तत्त्व विकृत होकर अनेक पदार्थों में परिवर्तित हो जाता है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "अथ भरत द्वादशाहः। इममेवैकाहं पृथक्संस्थाभिरूपेयुः"। (आश्व.श्रौ.१०.५.८-६)। इससे भी हमारे व्याख्यान की पुष्टि होती है कि मनरूप एक अहन् ही पृथक्-२ रूप धारण करता है। इन रश्मियों वा मन को यहाँ 'भरत' कहा है, क्योंकि ये ही सभी पदार्थों का भरण पोषण करते हैं। इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों से भर जाता है, जो परस्पर आकर्षण-प्रतिकर्षण व धारण गुणों से समृद्ध होकर संयोग-वियोग में कर्मों को विस्तृत करके अनेक पदार्थों का निर्माण करने में सक्षम होती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के प्रारम्भ में मूल पदार्थ एकरस अवस्था में अव्यक्त रूप में होता है। इस पदार्थ में ईश्वरीय प्रेरणा व बल से कम्पन fluctuations उत्पन्न होना प्रारम्भ होते हैं। एकरस अवस्था से मनस्तत्त्व की उत्पत्ति होती है और उसी के अन्दर पानी की तरंगों के समान कम्पन होते हैं। इस विषय में २.१५.२ पठनीय है। इन कम्पनों से ग्यारह प्रकार के प्राथमिक प्राण एवं मरुद् व छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। वस्तुतः यह पदार्थ मनस्तत्त्व से पृथक् नहीं हैं बल्कि उसी में उत्पन्न पृथक्-२ प्रकार के कम्पन मात्र हैं। यहाँ पानी की तरंगों से इनकी तुलना संकेत मात्र है। वस्तुतः इनकी तरंगें विचित्र प्रकार की होती हैं, जिनके विषय में पूर्वपीठिका द्रष्टव्य है। इन सभी कम्पन रूप रश्मियों में आकर्षण, प्रतिकर्षण व धारण आदि गुणों की उत्पत्ति हो जाती है, जिससे ये परस्पर संगत होकर अन्य अपेक्षाकृत बड़ी रश्मियों को उत्पन्न करने लगते हैं। यहाँ छन्द रश्मियों से तात्पर्य दैवी गायत्री रश्मियां ही ग्रहण करना चाहिए।।

२. सोऽकामयत,-कथं नु गायत्र्या सर्वतो द्वादशाहं परिभूय सर्वामृद्धिमृध्नुयामिति; तं वै तेजसैव पुरस्तात् पर्यभवच्छन्दोभिर्मध्यतोऽक्षरैरुपरिष्टाद् गायत्र्या सर्वतो, द्वादशाहं परिभूय सर्वामृद्धिमाध्नोत्।।
सर्वामृद्धिमृध्नोति य एवं वेद।।
यो वै गायत्रीं पक्षिणीं चक्षुष्मतीं, ज्योतिष्मतीं भास्वतीं वेद, गायत्र्या पक्षिण्या चक्षुष्मत्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या स्वर्गं लोकमेत्येषा वै गायत्री पक्षिणी चक्षुष्मती ज्योतिष्मती भास्वती; यद् द्वादशाहस्तस्य यावभितोऽतिरात्रौ, तौ पक्षौ; यावन्तराऽग्निष्टोमौ, ते चक्षुषी; येऽष्टौ मध्य उक्थ्याः, स आत्मा।।
गायत्र्या पक्षिण्या चक्षुष्मत्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या स्वर्गं लोकमेति य एवं वेद।।१।।

{तेजः = तेजतेरुत्साहकर्मणः (नि.१०.६), तेजो वै हिरण्यम् (तै.सं.५.१.१०.५; मै.१.११.८), तेजो वै त्रिवृत् (मै.४.४.१०)। छन्दः = छदिर् ऊर्जने। छन्दति अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४), छन्दांसि च्छादनात् (नि.७.१२), छन्दांसि वै वाजिनः (गो.उ.१.२०)}

व्याख्यानम्- तदन्तर उस द्वादशाह संज्ञक मनस्तत्त्व में परमात्म-प्रेरणा से इच्छा हुई अर्थात् कुछ ऐसी अति सूक्ष्म हलचल प्रारम्भ होती है। इस कण्डिका में मनस्तत्त्व से छन्द रश्मियों, विशेषकर गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति की चर्चा की गयी है। पूर्वोक्त द्वादशाह में एक दैवी गायत्री छन्द रश्मि की चर्चा की गयी है। गायत्री वा कोई भी छन्द रश्मि प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ मिथुन बनाती है, तभी उनसे किसी नवीन रश्मि आदि पदार्थों की रचना सम्भव हो पाती है। यहाँ दैवी गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं कि शान्त एकरसवत् मनस्तत्त्व, जो अपरिमित क्षेत्र में विद्यमान होता है, के अन्दर **ईश्वरीय प्रेरणा से दैवी गायत्री** छन्द रश्मि के **उत्पन्न होने के तीन चरण क्रमशः होते हैं।**

सर्वप्रथम मनस्तत्त्व में तेज उत्पन्न होता है। इसका तात्पर्य है कि मनस्तत्त्व, जो पूर्व में तेजहीन व निरुत्साह था, वह कुछ तेजवान् एवं उत्साहयुक्त होने लगता है। इसका अर्थ है कि उसमें कुछ करने की भावना का उदय होता है। इसके तत्काल पश्चात् द्वितीय चरण में छन्द-अवस्था प्रकट होने लगती है। इसका आशय है कि उस समय मनस्तत्त्व के महासागर में तेज के अतिरिक्त बल भी उत्पन्न होने लगता है। ये बल सत्व, रज व तम तीनों गुणों से युक्त होते हैं। इन बलों में रोकने, पकड़ने, आच्छादित करने का गुण होता है। इसके साथ ही तेजस्विता में वृद्धि होते हुए उस मनस्तत्त्व में अतिसूक्ष्म लहर वा रश्मि उत्पन्न होने लगती है। यह लहर वा रश्मि अति सूक्ष्म कम्पन के रूप में उत्पन्न होती है तथा यह इतना सूक्ष्म कम्पन होता है, कि इससे सूक्ष्म कम्पन की कल्पना सम्भव नहीं। यह सूक्ष्मतम कम्पन ही अक्षर रूप होकर देवी गायत्री छन्द रश्मि का रूप होता है। इन सूक्ष्म छन्द रश्मियों से वह सम्पूर्ण द्वादशाह **रूपी मनस्तत्त्व तथा उससे उत्पन्न प्राणापान** आदि सूक्ष्म प्राण रश्मियां भर जाती हैं। हम २.२६.१ में लिख चुके हैं कि एकाक्षरा वाग् रश्मियां अर्थात् देवी गायत्री छन्द रश्मियां प्राण, अपान आदि सभी प्राण रश्मियों से सूक्ष्म तथा उनकी उत्पादिका हैं। इस कारण मनरूपी द्वादशाह में सर्वप्रथम इनकी ही उत्पत्ति होती है। इनकी उत्पत्ति भी उपर्युक्त तीन चरणों में परन्तु अति त्वरित गति से होती है। इसके तीनों चरणों को पृथक्-२ जानना सम्भव नहीं। फिर इनके पृथक्-२ मेल से नाना प्रकार के प्राथमिक प्राणों की उत्पत्ति होती है। जब ये सब बारह हो जाते हैं, तब देवी गायत्री छन्द रश्मि सबमें व्याप्त होकर मिथुन बना लेती है। यह रश्मि न केवल प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ अपितु मनस्तत्त्व के साथ भी मिथुन बना लेती है। इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ को ये गायत्री छन्द रश्मियां घेर लेती हैं। हमारे मत में यह प्रथम रश्मि 'ओम्' की पश्यन्ती अवस्था ही है। इससे ही अन्य सभी रश्मियां उत्पन्न व व्याप्त होती हैं। 'भूः', 'भुवः' एवं 'सुवः' रश्मियां भी इसके तत्काल पश्चात् उत्पन्न होती हैं, जो प्राथमिक प्राण रश्मियों को उत्पन्न करने में काम आती हैं। इस 'ओम्' अक्षर रश्मि के विषय में ऋषियों का कथन है-

> **"अथैकस्यैवाऽक्षरस्य रसं (प्रजापतिः) नाऽशक्नोदादातुम्। ओमित्येतस्यैव। सेयं वागभवत्। ओमेव नामैषः। तस्य उ प्राण एव रसः।।" (जै.उ.१.१.१.६-७)**
> **"एतद्ध (ओमिति) वा इदं सर्वमक्षरम्।" (जै.ब्रा.२.१०)**
> **"ओमिति मनः" (जै.उ.१.२.२.२)**
> **"तानि (भूर्भुवः स्वः) शुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत्तदेतदोऽमिति।" (ऐ.५.३२)**
> **"तासामभिपीडितानां (व्याहृतीनाम्) रसः प्राणोदत्। तदेतदक्षरमभवदोमिति यदेतद्।" (जै.उ.१.७.१.७)**

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 'ओम्' अक्षर रूप देवी गायत्री छन्द रश्मि सर्वप्रथम उत्पन्न होती है तथा इसकी व्याप्ति भी सर्वाधिक होती है। यह मनस्तत्त्व का ही रूप होती है। इसी बात की पुष्टि "मनो वै गायत्रम्" (जै.ब्रा.३.३०५) से भी होती है कि मनस्तत्त्व गायत्र रूप ही है और यहाँ यह गायत्री 'ओम्' ही है। 'ओम्' को 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' रश्मियों का शुक्र बताने से यह अर्थ नहीं निकलता कि इसकी उत्पत्ति इन व्याहृति रूप रश्मियों से होती है, बल्कि इनकी उत्पत्ति 'ओम्' रश्मि से होती है, क्योंकि 'ओम्' रश्मि ही सार अर्थात् रसरूप में इनमें समाहित होती है, जैसे कि पुरुष में शुक्र समाहित होता है। इसी कारण सृष्टि सर्वप्रथम अमैथुनी ही प्रारम्भ होती है। मैथुनी सृष्टि में ही क्रम विपर्यय होता है, यह बात यहाँ समझें। इससे सिद्ध हुआ कि 'ओम्' रश्मि ही सम्पूर्ण सृष्टि का बीज है और 'ओम्' परमात्मा इस सबका निमित्त कारण है। इसके अर्थात् इस 'ओम्' गायत्री रश्मि के सर्वत्र उत्पन्न व व्याप्त होने से समस्त सृष्टि प्रक्रिया समृद्ध होने लगती है।।+।।

{पक्षः = पणायति स्तौति व्यवहरति वा येन यत्र वा स पक्षः (उ.को.३.६६), परिग्रहः कार्यकारणरूपः (पदार्थः) (तु.म.द.य.भा.१८.५२)। चक्षुः = चक्षुः ख्यातेर्वा चष्टेर्वा (नि.४.३), (चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि, अयं दर्शनेऽपि धातोः 'चक्षेः शिच्च' - उ.को.२.१२१, सूत्रेण उसिः प्रत्ययः, स च शित् - वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री), चक्षुर्वा ऽअपां क्षयस्तत्र हि सर्वदेवाः क्षियन्ति (श.७.५.२.५४)। ज्योतिः = विद्युतो दीप्तिः (म.द.य.भा.१८.५०), प्राणो वै ज्योतिः (श.८.३.२.१४), ज्योतिर्वै हिरण्यम् (तै.सं.५.५.३.४; तां.६.६.१०; श.६.७.१.२), (हिरण्यम् = हिरण्यं कस्मात् ह्रियते आयम्यमानमिति वा ह्रियते जनाज्जनमिति वा हितरमणं भवतीति वा हृदयरमणं भवतीति वा हर्यतेर्वा स्यात्प्रेप्साकर्मणः - नि.

२.१०)। भाः = श्रीर्वै भाः (जै.उ.१.१.४.१) (भासृ दीप्तौ)}

अब यहाँ महर्षि गायत्री छन्द रश्मि के विषय में लिखते हैं कि इस गायत्री में निम्नलिखित गुण होते हैं-

(१) पक्षः - इस रश्मि {बृहद्रथन्तरे पक्षौ (तै.सं.४.१.१०.५; मै.२.७.८; तां.१६.११.११), (प्राणापानौ वै बृहद्रथन्तरे - तां.७.६.१२)} के प्राणापान रूपी दो पक्ष होते हैं, जिनके द्वारा यह रश्मि नाना प्रकार के व्यवहारों को सम्पन्न करती है। आकर्षण और विकर्षण बल इनके द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। यह कार्य व कारण दोनों ही प्रकार के पदार्थों को आकर्षित व प्रतिकर्षित करके नाना कार्यों को सम्पन्न करती है। अन्य सभी प्रकार की छन्द रश्मियों में गायत्री छन्द रश्मि ही व्याप्त होकर उन छन्द रश्मियों को भी इन व्यवहारों से युक्त करती है।

(२) चक्षु- यह छन्द रश्मि सभी छन्दादि रश्मियों किंवा सम्पूर्ण सृष्टि की चक्षु के समान है। इसी की उत्पत्ति के साथ ही मूल पदार्थ अव्यक्त से व्यक्तावस्था को प्राप्त करता है। यही रश्मि ब्रह्माण्ड के किसी भी पदार्थ को प्रकाशित करती है। इसमें दर्शन शक्ति होने से यह प्रत्येक रश्मि को अनुभव करके उसके साथ संयुक्त होती रहती है। इसमें परमात्म-चेतना की प्रेरणा रहती ही है। वाक् तत्त्व का भी यही प्राथमिक स्वरूप है। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "वाग् वै गायत्री" (मै.१.४.१३; काठ.२३.५)। इसी गायत्री छन्द रश्मि में इस सृष्टि के सभी प्रकार के प्राण, सोम आदि पदार्थ एवं उनके विविध कर्मों की प्रतिष्ठा है अर्थात् वे सभी चक्षुरूप गायत्री में ही निवास करते हैं।

(३) ज्योतिः - विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां ही इस रश्मि की प्राथमिक ज्योति के समान होती हैं। इन प्राण रश्मियों के द्वारा ही विद्युत् की उत्पत्ति होती है, जो इस छन्द रश्मि की द्वितीय ज्योति है। यह गायत्री रश्मि हिरण्य गुण से युक्त होने के कारण भी ज्योतिष्मती कहलाती है। यह रश्मि आवश्यकतानुसार संकुचित व प्रसारित होकर विभिन्न प्राण रश्मियों द्वारा आकर्षित की जाती है। इसके साथ ही आकर्षण इसका विशेष स्वभाव होता है, इसी कारण यह हिरण्यरूप ज्योतिष्मती कहलाती है। इसके कारण ही विभिन्न रश्मियों में तेज अर्थात् तीक्ष्णता का गुण होता है। सर्वाधिक सूक्ष्म तेज इसी का ही होता है।

(४) भा- इस ब्रह्माण्ड में जो भी दृश्य वा अदृश्य दीप्ति विद्यमान है, वह सब गायत्री छन्द रश्मि की ही है। अन्य किसी भी रश्मि में विद्यमान दीप्ति भी उसके अन्दर विद्यमान गायत्री के कारण ही होती है। यही रश्मि श्री रूप है अर्थात् सृष्टि में विद्यमान विभिन्न सूक्ष्म व स्थूल सभी रश्मि आदि पदार्थ इसी में आश्रय पाते हैं अर्थात् यह सबकी आधार रूप है। यही वरुणरूप होकर सबको अपने साथ बांध लेती है। यही शक्तिशाली छन्द रश्मियों में परिवर्तित होकर वज्ररूप कार्य भी करती है। सोम तत्त्व भी इसका ही कार्यरूप है, इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "श्रीर्वै वरुणः" (कौ.ब्रा.१८.६), "श्रीर्वै पशवः श्रीः शक्वर्यः" (तां.१३.२.२), "श्रीर्वै सोमः" (मै.१.११.६; श.४.१.३.६)।

इस प्रकार यह गायत्री छन्द रश्मि ही उपर्युक्त चार गुणों से युक्त होकर, इनके द्वारा स्वर्ग लोक को उत्पन्न करती है। इसका तात्पर्य है कि इसी के कारण सम्पूर्ण पदार्थ में सर्गयज्ञ अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, इसी कारण कहा है- "स्वर्गो वै लोको यज्ञः" (कौ.ब्रा.१४.१)। सम्पूर्ण अपरिमित व अनिरुक्त पदार्थ में संयोग-वियोग-धारण-छेदन आदि गुणों की उत्पत्ति इसी के कारण होती है। विविध प्रक्रियाओं के विभिन्न चरणों के चलते अन्ततः आदित्य लोकों का निर्माण करने में इसी रश्मि की आदि से अन्त तक भूमिका रहती है।

अब महर्षि बताते हैं कि दो अतिरात्र ही इस रश्मि के दो पक्ष हैं। हमने प्राणापान को दो पक्ष कहा है। हमारे मत की पुष्टि "प्राणो वै पूर्वोऽतिरात्रोऽपान उत्तर इयं (पृथिवी) वै पूर्वोऽतिरात्रोऽसा (द्यौः) उत्तरः।" (काठ.३४.८) इस आर्ष वचन से भी होती है। इसके साथ ही यहाँ अतिरिक्त मत यह भी है कि प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थ, देव व असुर नामक पदार्थ भी इसी छन्द रश्मि के दो पक्ष हैं, जो इसी से उत्पन्न होते हैं और इसी के कारण अपने नाना व्यवहार करते हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण १०.४.१ में प्राण व उदान को अतिरात्र कहा है, यह भी समीचीन है। ये दोनों ही प्रकार के अतिरात्र अर्थात् प्राण व अपान किंवा प्राण व उदान रश्मियां विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों के दोनों ओर उसी प्रकार संयुक्त होती हैं, जिस प्रकार किसी प्राणी के दोनों ओर कंधे वा पंख संयुक्त होते हैं। इस

गायत्री छन्द रश्मि की दो चक्षु भी होती हैं, इसका आशय है कि किसी भी गायत्री छन्द रश्मि के भीतर ब्रह्मरूप मन व वाक्तत्त्व अर्थात् एकाक्षरा गायत्री रश्मि (ओम्) चक्षुरूप अर्थात् मूलरूप से प्रकाशक व सबको बढ़ाने वाली होती हैं। अग्निष्टोम के विषय में ऋषियों का मत है- 'ब्रह्म वा अग्निष्टोमः'' (कौ.ब्रा.२१.५) उधर ब्रह्म के विषय में कहा है- ''ब्रह्म वाक्'' (जै.ब्रा.१.८२; २.७८), ''मनो ब्रह्म'' (गो.पू.२.१२; तै.आ.१०.६४.१)। इसके अतिरिक्त उस गायत्री छन्द रश्मि में आठ उक्थ अर्थात् प्राणापानोदान के साथ-२ अन्य प्राथमिक प्राण आत्मारूप होकर सतत विचरते रहते हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है- ''अतिरात्रमग्रेऽथाग्निष्टोममथाष्टा उक्थ्यानथाग्निष्टोममथातिरात्रम्।'' (आश्व.श्रौ.१०.५.१०) इस प्रकार गायत्री छन्द रश्मि अत्यन्त महत्वपूर्ण छन्द रश्मि है। इस प्रकार के स्वरूप वाली गायत्री से परमाणु आदि पदार्थ युक्त होते हैं किंवा इस ब्रह्माण्ड में इस प्रकार की गायत्री छन्द रश्मियां सर्वत्र व्याप्त होने पर सर्गप्रक्रिया तीव्रता से विस्तृत होती हुई आदित्य लोकों को उत्पन्न करती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में दैवी गायत्री छन्द रश्मि, विशेषकर **'ओम्'** रश्मि सर्वप्रथम उत्पन्न होती है। यही कम्पन vibration अथवा fluctuation इस सृष्टि का सर्वप्रथम vibration है। इससे पूर्व मूल पदार्थ पूर्ण शान्त जैसा होता है। यही इस ब्रह्माण्ड की सर्वप्रथम ध्वनि है, जो परावाक् अवस्था में सर्वथा अश्रव्य वा अव्यक्त होती है। इसी परमसूक्ष्म छन्द रश्मि के पश्यन्ती रूप के नाना संयोगों से अनेक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस रश्मि की उत्पत्ति तीन चरणों में होती है- सर्वप्रथम शान्त मनस्तत्त्व में उत्साह अर्थात् vibrate होने की इच्छा होती है। **इसको vibrate करने में सर्वोच्च शक्तिमती ईश्वरीय चेतना की ही अव्यक्त प्रेरणा होती है। सभी बलों का आदि मूल स्रोत परमात्म तत्त्व ही है।** इस प्रेरणा से मनस्तत्त्व में अति सूक्ष्म बल उत्पन्न होता है। इससे सूक्ष्म बल ब्रह्माण्ड में कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता। यह बल एक सर्वाधिक सूक्ष्म कम्पन को जन्म देता है। यह कम्पनयुक्त मन का अति सूक्ष्म भाग ही **'ओम्'** नामक प्रथम छन्द रश्मि कहलाता है। इसी रश्मि से अन्य सूक्ष्म व स्थूल छन्द रश्मियों एवं सभी प्रकार की प्राण रश्मियों की उत्पत्ति होती है। यह **'ओम्'** रश्मि ब्रह्माण्ड के प्रत्येक पदार्थ में सूक्ष्मतम स्तर तक विद्यमान है।

सभी छन्द रश्मियों में कोई भी गायत्री छन्द रश्मि सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं मूलरूप है। इस रश्मि के दोनों ओर प्राण एवं अपान वा उदान संयुक्त रहते हैं। मध्य भाग में मन व **'ओम्'** दैवी गायत्री वाक् तत्त्व विद्यमान होता है। इसके साथ व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय एवं इन सबको बांधे हुए सूत्रात्मा वायु, ये सभी रश्मियां सतत विचरती रहती हैं। ध्यान रहे, यह व्यवस्था दैवी गायत्री रश्मियों में नहीं बल्कि बड़ी गायत्री छन्द रश्मियों में होती है। **इस सृष्टि में जो भी बल, प्रकाश, विद्युत् आदि वर्तमान हैं, वे सब गायत्री रश्मियों से ही उत्पन्न होते हैं। दृश्य वा डार्क पदार्थ एवं डार्क एनर्जी सभी मूलतः गायत्री छन्द से ही उत्पन्न व सक्रिय होते हैं।** इस प्रकार ब्रह्माण्ड का कोई भी पदार्थ इससे बाहर नहीं है अर्थात् सभी पदार्थ इसी में समाये हैं तथा यह उन सबमें समायी हुई है।।

इति १९.१ समाप्तः

ॐ अथ १९.२ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. त्रयश्च वा एते त्र्यहा आदशममहरा द्वावतिरात्रौ यद् द्वादशाहः।।
द्वादशाहानि दीक्षितो भवति, यज्ञिय एव तैर्भवति।।
द्वादश रात्रीरुपसद उपैति, शरीरमेव ताभिर्धूनुते।।
द्वादशाहं प्रसुतः।।
भूत्वा, शरीरं धूत्वा, शुद्धः, पूतो देवता अप्येति य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त द्वादशाह, जो किसी गायत्री छन्द रश्मि में सूक्ष्म रूप से समाए होते हैं, वे संकुचित अवस्था में परन्तु सबके धारक होते हैं। इस कारण उनका वह रूप भरत द्वादशाह कहलाता है। अब इसके फैले हुए रूप का वर्णन किया गया है। आचार्य सायण ने अपने याज्ञिक अनुष्ठान की शैली में इसे व्यूढ द्वादशाह कहा है, जिसका आशय है- फुलाया हुआ अर्थात् विस्तृत। पूर्व में किसी भी गायत्री छन्द रश्मि के किनारों पर प्राण तथा अपान वा उदान तथा मध्य में मन, वाक् के अतिरिक्त व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय, देवदत्त एवं सूत्रात्मा वायु की विद्यमानता बतायी गयी है। यहाँ इन आठ के स्थान पर नौ अहन् अर्थात् प्राणों की चर्चा है, जो तीन त्रिक् के रूप में विद्यमान होते हैं। हमारी दृष्टि में यहाँ जो दशम को मर्यादा के रूप में माना है, वह मन-वाक् का मिथुन है तथा अतिरात्र से प्राण-अपान का ग्रहण करके उदान को वाक् के स्थान पर ग्रहण करके नौ प्राण हो जाते हैं, जो तीन-२ के समुदाय में विशेषरूपेण विद्यमान होते हैं। यहाँ महर्षि आश्वलायन का कथन है- "एका तिस्रो वा दीक्षा" (आश्व.श्रौ.४.२.१७)। इससे प्रतीत होता है कि तीन-२ के समुदाय अथवा एक-२ प्राण दीक्षित अर्थात् वाग् युक्त होते हैं। इन सभी प्राणों में मन तथा वाक् का मिथुन रूप सदैव संयुक्त रहता है। इसके अभाव में कोई भी प्राण कार्य करने में सक्षम नहीं हो सकता है। यह सब मिलकर द्वादशाह कहलाता है। इनमें किस प्रकार त्रिकों का निर्माण होता है, इसका वर्णन ४.२५.४ में किया जायेगा।।

जब ये सभी बारह प्राण (मन सहित किंवा मन वाक् युग्म सहित) दीक्षित हो जाते हैं, तभी ये परस्पर संगत होकर नाना रश्मियों को उत्पन्न करने लग जाते हैं। यहाँ दीक्षित होने का तात्पर्य है कि वे सक्रिय होना प्रारम्भ कर देते हैं। हमने पूर्व खण्ड में लिखा था कि मनस्तत्त्व में तप अर्थात् ईश्वरत्व किंवा नियन्त्रण का गुण उत्पन्न होकर 'ओम्' रश्मि की उत्पत्ति अर्थात् प्रथमा वाक् उत्पन्न होती है, तभी उसी से दीक्षित होकर मनस्तत्त्व सक्रिय व प्रभावी होता है अन्यथा निष्क्रिय व निस्तेज जैसा होता है। कोई भी प्राण तत्त्व वाक् के साथ मिथुन से दीक्षित होकर ही अपने सामर्थ्य को प्राप्त करता है। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "वाग्दीक्षा। तया प्राणो दीक्षया दीक्षितः" (तै.ब्रा.३.७.७.७)। इस प्रकार दीक्षित प्राण व महाप्राणरूप मनस्तत्त्व यज्ञीय रूप धारण करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार इन दीक्षित द्वादशाह के द्वारा सर्गयज्ञ की प्रक्रिया समर्थ होती है। यहाँ 'द्वादशाहानि' नपुंसकलिंग बहुवचन का प्रयोग यह संकेत कर रहा है कि यहाँ समूह को नपुंसकलिंग में मानकर अनेक समूहों अर्थात् अनेक छन्द रश्मियों का ग्रहण किया गया है। वे छन्द रश्मियां पृथक्-२ रूप में उत्पन्न होती हैं, क्योंकि वियच्छन्द को 'अहन्' कहा जाता है, यह बात इस ग्रन्थ में अनेकत्र वर्णित की जा चुकी है। इससे स्पष्ट हुआ कि गायत्री छन्द रश्मियों के अनेकों रूप उत्पन्न होने के साथ-२ अन्य छन्द रश्मियां इन द्वादशाह अर्थात् बारह प्राण रश्मियों के दीक्षित होने के साथ-२ उत्पन्न होने लगती हैं। इन छन्द रश्मियों में प्राण रश्मियां पृथक्-२ रूप में विद्यमान होती हैं और इस अवस्था में वे उन बारह प्राण रश्मियों के द्वारा यज्ञीय स्वरूप वाली होती हैं अर्थात् परस्पर संगमनीय होती हैं।।

तदुपरान्त कहते हैं कि जब उपर्युक्त बारह प्राण रश्मियां रात्रिरूप प्राप्त करती हैं अर्थात् संयच्छन्द अवस्था को प्राप्त करती हैं किंवा वे छन्द रश्मियां, जिनमें उपर्युक्त प्राण रश्मियां परस्पर समीपतया संगत होती हुई उत्पन्न होती हैं, उस समय वे उपसद अर्थात् वज्ररूप तीक्ष्ण अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं। इस प्रकार की छन्द रश्मियां अपने आश्रित विभिन्न पदार्थों को विक्षुब्ध कर देती हैं, उन्हें कंपाने लगती हैं। इस प्रसंग में हम रात्रि रूप छन्द रश्मियों के विषय में कुछ आर्ष वचनों को उद्धृत करते हैं-

"असुर्या वै रात्रिः" (मै.१.८.६), "रात्र्याऽसुरान् (असृजत्) ते कृष्णा अभवन्।" (काठ.६.११)

इन वचनों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि **ये परस्पर अति निकट संयुक्त प्राण रश्मियों से निर्मित छन्द रश्मियां आसुरी रश्मियां ही होती हैं, जो असुर तत्त्व का निर्माण करती हैं।** ये रश्मियां तीव्र प्रक्षेपक एवं प्रतिकर्षण बल से युक्त होने के कारण पदार्थ को तीव्रता के साथ विक्षुब्ध करती हैं। यहाँ असुर तत्त्व की उत्पत्ति का रहस्य सुलझाया गया है। यहाँ महर्षि आश्वलायन ने कहा है- "तिस्र उपसदः" (आश्व.श्रौ.४.२.१७)। इससे संकेत मिलता है कि इस प्रकार की छन्द रश्मियों के अन्दर सभी ६ प्राण रश्मियां पूर्णतः संयुक्त रूप में नहीं होती बल्कि संयुक्त प्राण रश्मियों के ३-३ के समूह उत्पन्न होते हैं।।

इस प्रकार द्वादशाह के दोनों रूपों की उत्पत्ति के साथ ही देव तथा असुर दोनों प्रकार का पदार्थ उत्पन्न होता है। उस समय ही सोम तत्त्व को गायत्री छन्द रश्मियों द्वारा आहृत करके देव पदार्थ की ओर लाने की घटना घटती है, जिसका विस्तृत वर्णन खण्ड ३.२५ में किया गया है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन ने कहा है- "सुत्यमहरुत्तमम्" (आश्व.श्रौ.४.२.१७)। यहाँ इस ग्रन्थ में 'सुत्यम्' पाठ है। हमारे मत में यह पाठ 'सुत्याम्' होना चाहिए अथवा यहाँ आकार को अकार छान्दस रूप मान सकते हैं। इससे यह संकेत है कि 'सुत्या' अर्थात् सोमाहरण की क्रिया, इन अहन् अर्थात् प्राण रश्मियों **अथवा उनसे उत्पन्न श्रेष्ठ अवस्था के द्वारा ही होती है। जैसा कि हम लिख चुके हैं कि यह श्रेष्ठ अवस्था गायत्री छन्द रश्मि के रूप में ही होती है और ३.२५ में कहा गया है कि सोम आहरण की क्रिया गायत्री छन्द रश्मियां ही सम्पन्न कर पाती हैं, अन्य कोई छन्द रश्मि नहीं।।**

इस प्रकार की क्रियाओं के सम्पादित होने पर सभी छन्द रश्मियां प्रभावसम्पन्न होकर, सम्पूर्ण पदार्थ में विक्षोभ उत्पन्न करके एवं सोम आहरण की घटना के सम्पन्न होने पर समस्त पदार्थ शुद्ध, तेजस्वी एवं आवश्यक गति आदि से युक्त हो जाता है। यहाँ स्पष्ट संकेत मिलता है कि **असुर रश्मियां इस सर्ग प्रक्रिया में पदार्थ को छिन्न-भिन्न करके विभिन्न संयुक्त रश्मि आदि पदार्थों को पृथक्-२ करके शुद्ध में प्रकट करने तथा उनकी गतियों को शुद्ध एवं निर्दोष रूप प्रदान करने में अपनी विशेष भूमिका निभाती हैं।** इससे स्पष्ट है कि असुर तत्त्व जहाँ अति प्रक्षेपक होने से अनेकत्र संयोग प्रक्रियाओं में बाधक बनता है, वहीं सूक्ष्म स्तर व बृहत् स्तर पर इसका उपयोगी रूप भी है। यदि ऐसा नहीं होता तो सृष्टि प्रक्रिया में इसकी उत्पत्ति होती ही नहीं। **सर्वनियन्ता सर्वस्रष्टा परमात्मा की सम्पूर्ण रचना पूर्णतः अनुपम बुद्धियुक्त है।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- किसी भी छन्द रश्मि, विशेषकर बृहद् रश्मियों में **'ओम्'** गायत्री रश्मि व मनस्तत्त्व के अतिरिक्त सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां भी विद्यमान होती हैं। इनमें से प्राण व अपान रश्मियां दोनों सिरों पर तथा अन्य प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों के मध्य में स्थित होती हैं। जब ये सभी **'ओम्'** रश्मि से युक्त होती हैं, तभी सक्रिय होकर विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने में सक्षम हो पाती हैं। इसके पश्चात् ही उन रश्मियों से उत्पन्न छन्द रश्मियां परस्पर संगत होकर अनेक प्रकार के मूलकणों एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति करती हैं। **जिन छन्द रश्मियों में प्राण रश्मियां परस्पर बिखरी हुई अवस्था में विद्यमान होती हैं, वे छन्द रश्मियां दृश्य पदार्थ को एवं जिन छन्द रश्मियों में प्राण रश्मियां परस्पर अति निकटता से संयुक्त हुई होती हैं, वे छन्द रश्मियां आसुरी कहलाती हैं तथा उनसे डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी की उत्पत्ति होती है।** यह दोनों प्रकार के पदार्थ में भेद है। डार्क एनर्जी विभिन्न दृश्य पदार्थों को तोड़-फोड़ कर शुद्ध स्वरूप में प्रकट करने में सहयोग करती है। यह अपने प्रक्षेपक बल द्वारा विभिन्न अनिष्ट संघातों को तोड़ कर उन्हें वांछित संयोग योग्य बनाती हैं। **ईश्वर की रचना महती प्रज्ञा का ही परिणाम है।।**

२. षट्त्रिंशदहो वा एष य द्वादशाहः, षट्त्रिंशदक्षरा वै बृहती, बृहत्या वा एतदयनं य द्वादशाहो, बृहत्या वै देवा इमाँल्लोकानाश्नुवत,-ते वै दशभिरेवाक्षरैरिमं लोकमाश्नुवत, दशभिरन्तरिक्षं, दशभिर्दिवं, चतुर्भिश्चतस्रो दिशो, द्वाभ्यामेवास्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठन्।। प्रतितिष्ठति य एवं वेद।।
तदाहुर्यदन्यानि च्छन्दांसि वर्षीयांसि भूयोक्षरतराण्यथ कस्मादेतां बृहतीत्याचक्षत इति।। एतया हि देवा इमाँल्लोकानाश्नुवत,-ते वै दशभिरेवाक्षरैरिमं लोकमाश्नुवत, दशभिरन्तरिक्षं, दशभिर्दिवं, चतुर्भिश्चतस्रो दिशो, द्वाभ्यामेवास्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठंस्त-स्मादेतां बृहतीत्याचक्षते।।
अश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद।।२।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त द्वादशाह अर्थात् मन-वाक् एवं सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां जिस प्रकार गायत्री छन्द रश्मियों का निर्माण करती हैं, उसी रीति में किंचित् भेद से छत्तीस अक्षर रश्मियों से युक्त होकर बृहती छन्द रश्मियों का भी निर्माण करती हैं। प्राणादि प्राथमिक प्राण रश्मियों में से प्राण में ६, अपान में ४ तथा व्यान में १ अक्षर होने की चर्चा हम २.२६.१ में कर चुके हैं। अन्य प्राण रश्मियों की अक्षर संख्या अभी तक पढ़ने में नहीं आयी। हाँ, इतना अवश्य है कि इन्हीं की विभिन्न संगतियों से ही सभी छन्द रश्मियों का निर्माण होता है। जब इन १२ प्राण रश्मियों के कुल अक्षर छत्तीस होते हैं, उस समय वह बृहती छन्द रश्मि का रूप होता है। इस प्रकार वे पूर्वोक्त बारह मन व प्राणादि रश्मियां बृहती छन्द रश्मि का निवास स्थान व मार्गरूप होती हैं। इसका अर्थ यह है कि बृहती छन्द रश्मियों के अन्दर ये बारह प्रकार की रश्मियां एक निश्चित अनुपात में विद्यमान होती हैं, वहीं वे रश्मियां बृहती छन्द रश्मियों के मार्ग में भी विद्यमान होकर उनके मार्ग को सुगम बनाने में भी सहयोग करती हैं। विभिन्न देव अर्थात् प्राथमिक प्राणादि पदार्थ इन सभी लोकों में बृहती छन्द रश्मियों के द्वारा सम्पूर्णता से व्याप्त हो जाते हैं। उनकी व्याप्ति की प्रक्रिया लिखते हुए महर्षि कहते हैं कि **जब कोई बृहती छन्द रश्मि किसी लोक में व्याप्त होती है, उस समय वह अपनी दस अक्षर रश्मियों के द्वारा उस लोक के पृथिवी भाग अर्थात् बाहरी फैले हुए तल पर व्याप्त हो जाती है। दस अक्षर रश्मियों द्वारा वह मध्य भाग रूपी अन्तरिक्ष में व्याप्त हो जाती है तथा दस अक्षर रश्मियों के द्वारा वह उस लोक के केन्द्रीय भाग रूपी द्युलोक में व्याप्त हो जाती है। इसके शेष अक्षरों में से चार अक्षर चारों दिशाओं को व्याप्त करके उस लोक की अक्ष पर घूर्णन प्रक्रिया में सहयोग करते हैं तथा दो अक्षर रश्मियों के कारण इस छन्द रश्मि की बाहर तल पर विशेष प्रतिष्ठा रहती है।** इस प्रकार ३६ अक्षरों वाली बृहती छन्द रश्मि किसी भी लोक में सम्पूर्णता से व्याप्त होकर सभी प्राण रश्मियों को भी उसमें व्याप्त कर देती है। इसके कारण ही कोई भी लोक अपने स्वरूप व आकार में पूर्ण प्रतिष्ठित हो पाता है।।+।।

यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब त्रिष्टुप्, पंक्ति एवं जगत्यादि छन्द रश्मियां बृहती छन्द रश्मि की अपेक्षा अधिक अक्षर रश्मियों से युक्त होती हैं, तब इस ३६ अक्षर वाली छन्द रश्मि को ही बृहती क्यों कहा जाता है?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि इस छन्द रश्मि के द्वारा ही सभी प्राण रश्मियां किसी भी लोक में सम्पूर्णता से व्याप्त होती हैं। जैसा कि ऊपर लिखा है कि इसके दस-२ अक्षर रश्मियों द्वारा वे प्राण रश्मियां किसी भी लोक के क्रमशः बाहरी तल, अन्दर के विशाल क्षेत्र तथा केन्द्रीय भाग में व्याप्त होती हैं। इसके साथ ही इसकी ४ अक्षर रश्मियां उस लोक के बाहरी भागस्थ दिशाओं में व्याप्त होकर घूर्णन में भूमिका निभाती हैं तथा दो अक्षर रश्मि बाहरी तल पर विशेषरूप से सभी प्राण रश्मियों को व्याप्त करके उसके स्वरूप को स्पष्ट करती हैं। ये सभी कार्य किसी भी एक छन्द रश्मि द्वारा कभी नहीं हो सकते। इस कारण ही इसे बृहती छन्द रश्मि कहा जाता है, क्योंकि यह व्यापक क्षेत्र में फैलकर विभिन्न प्राण रश्मियों को सर्वत्र व्याप्त करने में सर्वाधिक अग्रणी भूमिका निभाती है। इस प्रकार

इनके द्वारा वे प्राण तत्त्व जहाँ-२ जो-२ भी कार्य करना चाहते हैं, करने में समर्थ होते हैं, क्योंकि उनकी व्याप्ति सर्वत्र इस बृहती के द्वारा हो जाती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब किसी छन्द रश्मि में विद्यमान विभिन्न प्राणादि रश्मियों में अक्षर रश्मियों की संख्या छत्तीस होती है, उस समय वह रश्मि बृहती कहलाती है। सभी प्राणादि रश्मियां बृहती छन्द रश्मियों के अन्दर विद्यमान हैं, वहीं वे प्राण रश्मियां बृहती छन्द रश्मियों के मार्ग में भी व्याप्त रहती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां बृहती छन्द रश्मियों के द्वारा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाती हैं। बृहती छन्द रश्मियां स्वयं भी किसी भी लोक को सम्पूर्णतया व्याप्त करती हैं। वे उसके बाहरी तल से लेकर उसमें केन्द्रीय भाग तक स्वयं व्याप्त होती हुई प्राण रश्मियों को भी व्याप्त कर देती हैं। ये रश्मियां ही किसी लोक आदि की परिधि का निर्माण करके उसे अपने अक्ष पर घूर्णन करने के लिए भी प्रेरित करती हैं। यद्यपि बृहती से बड़ी अनेक छन्द रश्मियां इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान होती हैं, परन्तु कोई भी छन्द रश्मि किसी भी लोक में इस प्रकार पूर्णता से व्याप्त नहीं होती है। यही बृहती छन्द रश्मि की विशेषता है। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति १९.२ समाप्तः ॐ

अथ १९.३ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. प्रजापतियज्ञो वा एष य द्वादशाहः; प्रजापतिर्वा एतेनाग्रेऽयजत द्वादशाहेन; सोऽब्रवीद् ऋतूंश्चमासांश्च,-याजयत मा द्वादशाहेनेति; तं दीक्षयित्वाऽनपक्रमं गमयित्वाऽब्रुवन्-देहि नु नोऽथ त्वा याजयिष्याम इति; तेभ्य इषमूर्जं प्रायच्छत्; सैषोर्गृतुषु च मासेषु च निहिता; ददतं वै ते तमयाजयंस्माद् ददद् याज्यः; प्रतिगृह्णन्तो वै ते तमयाजयंस्तस्मात्प्रतिगृह्णता याज्यम्।। उभये राध्नुवन्ति य एवं विद्वांसो यजन्ते च याजयन्ति च।।

{नु = क्षिप्रनाम (निघं.२.१५)। ददते धारयतिकर्मा (नि.२.२)। मासः = दक्षिणावृतो मासाः (तै.सं.५.३.२.४), उदाना मासाः (तां.५.१०.३)}

व्याख्यानम्- यहाँ 'प्रजापति' शब्द से परमात्मा, प्रकृति एवं मनस्तत्त्व इन तीनों का ग्रहण होता है। यहाँ महर्षि पूर्वोक्त द्वादशाह अर्थात् बारह प्राणादि रश्मियों के विषय में लिखते हैं कि सर्वप्रथम सबका पालक एवं उत्पादक चेतन परमात्म-तत्त्व मूल उपादान प्रकृति एवं उसके प्रथम विकार महत् तत्त्व का यजन प्रारम्भ करता है। इस यजन कार्य से ही मन, वाक् आदि बारह प्राण रश्मियों की उत्पत्ति पूर्वोक्तानुसार होती है। यहाँ **आदि मूल पदार्थ प्रकृति ही है तथा चेतन सर्वप्रेरक सर्वशक्तिमान् तत्त्व परमात्मा ही है। वह परमात्मा जब प्रकृति वा महदादि तत्त्व का यजन करता है, उस समय वह सम्पूर्ण तत्त्व विकृत होकर पदार्थान्तर अर्थात् द्वादशाह में परिणत नहीं होता बल्कि कुछ भाग मूल रूप में भी विद्यमान रहता है।** उस पदार्थ का पुनः मन एवं प्राथमिक प्राण रश्मियों रूपी द्वादशाह के साथ यजन होता है। यहाँ प्रजापति परमात्मा का ऋतु एवं मास रश्मियों के साथ संवाद ग्रन्थकार की अपनी शैली है। {ऋतुः = ऋतवो वै पृष्ठानि (काठ.३३.८; श.१३.३.२.१)} यहाँ 'मास' शब्द उदान रश्मियों का वाचक है, जो किन्हीं रश्मि आदि पदार्थों का जोड़ने का कार्य करती हैं तथा यह किसी पदार्थ के दक्षिण भाग में उसे आवृत्त करके अन्य पदार्थ से संयुक्त करती हैं। ऋतु रश्मियों को २.२६.१ में एक-२ अक्षर रश्मि युक्त माना है। इधर दो मास रश्मियों के युग्म को ऋतु रश्मि कहते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि ऋतु रश्मि भले ही एकाक्षरा हो, वह दो बार आवृत्त होने वाली एक ही एकाक्षरा रश्मि का भी रूप हो सकती है। ये ऋतु एवं मास रश्मियां उन द्वादशाह रश्मिसमूह को दीक्षित कर देती हैं, इसका अर्थ है कि वे रश्मियां प्राणापानादि रश्मियों को वाक् तत्त्व से युक्त करके उनको सक्रिय करके परस्पर एक-दूसरे के प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न कर देती हैं, जिससे उनका एक-दूसरे से अपक्रम अर्थात् पलायन नहीं होने पाता है। इसके साथ ही वाग् रूप प्रजापति तत्काल ही उन मास व ऋतु रश्मियों को भी तेज व बल से युक्त करने हेतु उनके साथ संगत हो जाता है। वह बल एवं तेज उन ऋतु एवं मास रश्मियों के अन्दर स्थापित हो जाता है, जिसके कारण ही वे संधानक एवं ऊष्मा आदि उत्पादक गुणों से युक्त हो जाती हैं। ऋतु रश्मियां द्वादशाह रश्मियों को आधार प्रदान करती हैं। ये मास व ऋतु रश्मियां विभिन्न द्वादशाहों अर्थात् उनसे उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों को संगत करना प्रारम्भ करती हैं। इस संगतीकरण में वाग् रूप प्रजापति के साथ-२ महत्तत्व एवं प्रकृतिरूप प्रजापति भी विद्यमान होते हैं। यह यजन भी इस कारण सम्पन्न होता है, क्योंकि उन मास व ऋतु रश्मियों को इस यजन क्रिया से पूर्व तेजस्वी व बलवान् बना दिया जाता है। इस क्रिया में मन एवं वाक् तत्त्व का संयोग ही अपनी भूमिका निभाता है। इस सृष्टि में जहाँ कहीं यजन क्रिया होती है, वहाँ धारण व देने का गुण विद्यमान होना अनिवार्य है, अन्यथा यजन क्रिया सम्भव नहीं हो पाती। वाक्तत्त्व मास व ऋतु

रश्मियों को तेज व बल प्रदान करता है, तो वाक् तत्त्व का प्राणादि रश्मियों के साथ यजन होने लगता है। इस यजन क्रिया में मास व ऋतु रश्मियों की भूमिका होती है। जो कोई पदार्थ किसी के साथ संयुक्त होता है, वह पदार्थ अपनी बल रश्मियों को सम्मुख विद्यमान पदार्थ को प्रदान करता है, तभी संयोग की प्रक्रिया सम्पन्न होती है, अन्यथा संयोग का होना सम्भव ही नहीं। संयोग व वियोग दोनों ही क्रियाएं साथ-२ होती हैं, तभी सृजन वा यजन कार्य सम्भव हो पाता है, अन्यथा नहीं। जहाँ जिन-२ पदार्थों में परस्पर रश्मियों के आदान-प्रदान की क्रिया होती है, वहाँ यजन-याजन की प्रक्रिया दोनों ही ओर समृद्ध होती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **परमात्म-तत्त्व की मूल प्रेरणा व बल के द्वारा आदि मूल प्रकृति में विकार उत्पन्न होकर महत्तत्व का निर्माण होता है।** उस महत्तत्व से मन, वाक् तथा प्राथमिक प्राण रश्मियों की उत्पत्ति होती है। उधर मास व ऋतु रश्मियां भी महत्तत्व, मन वा वाक् तत्त्व से उत्पन्न होती हैं। मास व ऋतु रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को संयुक्त करके अन्य बृहद् रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के वाक् तत्त्व से संयोग में भी मास व ऋतु रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है। **किन्हीं दो पदार्थों के संयुक्त होने की क्रिया में उन पदार्थों के कारणरूप पदार्थों की भी अनिवार्य भूमिका होती है।** जिस प्रकार से दो आयनों के संयोग में उनके कारणरूप इलेक्ट्रॉन्स व प्रोटोन्स, यहाँ तक कि क्वार्क्स की भी अनिवार्य भूमिका होती है किंवा उन तक भी संयोग का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होता है, उसी प्रकार इन मूलकणों से सूक्ष्म रश्मि आदि पदार्थों के संयोग-वियोग की प्रक्रिया में भी समझें। इस सृष्टि में जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग का होना भी अनिवार्य होता है। दोनों गुण परस्पर जुड़े रहते हैं। न तो केवल संयोग गुण से ही सृष्टि रचना सम्भव है और न केवल वियोग से ही। दोनों के साथ-२ रहने से ही सृष्टि रचना सम्भव हो पाती है। हाँ, प्रलय होने के लिए केवल वियोग क्रिया ही आवश्यक है, संयोग कदापि नहीं।।

२. ते वा इम ऋतवश्च मासाश्च गुरव इवामन्यन्त द्वादशाहे प्रतिगृह्य; तेऽब्रुवन् प्रजापतिं याजाय नो द्वादशाहेनेति; स तथेत्यब्रवीत; ते वै दीक्षध्वमिति; ते पूर्वपक्षाः पूर्वेऽदीक्षन्त; ते पाप्मानमपाहत, तस्मात् ते दिवेव,-दिवेव ह्यपहतपाप्मानोऽपरपक्षा अपरेऽदीक्षन्त, ते न तरां पाप्मानमपाहत तस्मात् ते तम इव,-तम इव ह्यनपहतपाप्मानस्तस्मादेवं विद्वान् दीक्षमाणेषु पूर्वः पूर्व एव दिदीक्षिषेत।।
अप पाप्मानं हते य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रसंग को विस्तार देते हुए कहते हैं कि जब वाग् रूप प्रजापति अर्थात् 'ओम्' दैवी गायत्री छन्द रश्मि उन मास व ऋतु रश्मियों को तेज व बल से युक्त कर देती है, उस समय वे मास व ऋतु रश्मियां अन्य रश्मियों, विशेषतः उस समय द्वादशाह अर्थात् मन एवं प्राथमिक प्राण रश्मियों को परस्पर संगत करने और स्वयं भी उनके साथ संगत होने के लिए उत्तेजित हो उठती हैं। यहाँ 'गुरु' का अर्थ यह है कि वे रश्मियां मानो प्राणादि रश्मियों को निगलने को तत्पर हो उठती हैं।

यहाँ 'गुरवः' पद इस बात की ओर भी संकेत करता प्रतीत होता है कि वे मास व ऋतु रश्मियां उन प्राथमिक प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करके व्यापक स्तर पर प्रकाशित एवं बलवती होने लगती हैं। २.२६.१ में पंक्ति छन्द रश्मियों और बृहती किंवा त्रिष्टुप् रश्मियों को आवृत्त करने वाली सूत्रात्मा वायु रश्मियों के कारण आश्विन बल की उत्पत्ति बतलायी है और उसे ही गुरुत्व बल कहा है। हमारी दृष्टि में इनके परस्पर संगम में मास रश्मियों की ही अनिवार्य भूमिका रहती है, इस कारण सर्वाधिक व्यापक गुरुत्व बल की उत्पत्ति में मास एवं ऋतु-रश्मियों की अनिवार्य भूमिका सिद्ध होती है। कदाचित् इस कारण भी यहाँ 'गुरवः' पद का प्रयोग हुआ है। इसके पश्चात् वे मास रश्मियां दैवी गायत्री छन्द रश्मियों, विशेषकर 'ओम्' की प्रेरणा से द्वादशाह से निर्मित विभिन्न छन्द रश्मियों को संगत करने लगती हैं। इसी क्रम में २.२६.१ में वर्णित आश्विन बल किंवा **गुरुत्व बल भी उत्पन्न होने लगता है।** इसके साथ ही इसका एक अर्थ यह भी है कि वे मास वा ऋतु रश्मियां वाक् तत्त्व से प्रेरित

होकर द्वादशाह रूपी प्राथमिक प्राण रश्मियों के विभिन्न संघात उत्पन्न करके नाना प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न करती हैं। इस क्रम में सर्वप्रथम जो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, वे सूक्ष्म असुर रश्मियों से मुक्त होती हैं, इस कारण वे प्रकाशमयी होती हैं। ये रश्मियां देव पदार्थ को उत्पन्न करती हैं। इस सृष्टि में कहीं भी जो भी ऐसी छन्दादि रश्मियां विद्यमान होती हैं, जो सूक्ष्म असुर रश्मियों से मुक्त होती हैं, वे प्रकाशयुक्त ही होती हैं तथा वे देव पदार्थ को ही उत्पन्न करने वाली होती हैं एवं जो छन्द रश्मियां सूक्ष्म असुर रश्मियों को दूर करने में सक्षम नहीं होती हैं, वे अंधकारयुक्त होती हैं। ऐसी छन्द रश्मियां असुर पदार्थ को उत्पन्न करने वाली होती हैं। असुर तत्त्व को उत्पन्न करने वाली छन्द रश्मियां बाद में उत्पन्न होती हैं, इस कारण ये अपर पक्ष कहलाती हैं। इसी बात को अन्य ऋषि ने भी कहा है- "अहर्वै पूर्वपक्षो रात्रिरपरपक्षः" (जै.ब्रा.२.६८)। ये देव तथा असुर दोनों पदार्थ प्रजापति वाक् के द्वारा छन्द रश्मियों से ही उत्पन्न किए जाते हैं। इसे अन्यत्र भी कहा गया है-

"देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन्"। (तां.१८.१.२)

इनमें भी देव पदार्थ की मात्रा असुर पदार्थ की मात्रा से कम होती है, इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है-

"कानीयसाऽएवऽदेवा ज्यायसा असुराः।" (श.१४.४.१.१) ये असुर रश्मियां वाक् तत्त्व का रूप होने तथा दीक्षित होने के उपरान्त भी तमोरूप ही होती हैं तथा सदैव इसी रूप में ही रहती हैं। **इस ब्रह्माण्ड में जो भी ऐसा पदार्थ विद्यमान है, जिसका अनुभव नहीं हो सकता, जो सर्वथा तमोरूप है, वह असुर पदार्थ ही है।** इस देवासुर स्वरूप के विषय में पूर्वखण्ड भी पठनीय है, जहाँ इन्हें क्रमशः वियच्छन्द व संयच्छन्द कहा गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि में प्रथम देव पदार्थ ही उत्पन्न होता है, भले ही वह मात्रा में न्यूनतर क्यों न होवे। वह पदार्थ बाधक रश्मियों से मुक्त हो जाता है किंवा परिस्थिति के अनुसार अनेक क्रियाओं से असुर रश्मियों से मुक्त होता रहता है। इसके साथ ही विभिन्न दीक्षाओं अर्थात् नाना प्रकार की संयोग क्रियाओं में प्रत्येक संयोज्य देव पदार्थ असुर रश्मियों से मुक्त होने का प्रयत्न पहले करता है, उसके उपरान्त ही संयोगादि क्रिया में भाग ले पाता है, यह सार्वत्रिक सिद्धान्त है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- 'ओम्' रश्मि से युक्त मास व ऋतु रश्मियां जब पंक्ति, बृहती वा त्रिष्टुप् रश्मियों को सूत्रात्मा वायु के साथ संगत करती हैं, उस समय ही गुरुत्वाकर्षण बल की उत्पत्ति होती है। हमारे विचार में वर्तमान विज्ञान द्वारा कल्पित **'ग्रेवीटॉन' 'ओम्' वाक् रश्मियुक्त मास वा ऋतु रश्मियों के द्वारा पंक्ति व बृहती-त्रिष्टुप् व सूत्रात्मा के रहस्यमय संयोग से ही उत्पन्न होते हैं।** इस सृष्टि में सर्वप्रथम अंधकार अवस्था होती है। उससे ही दृश्य व अदृश्य दोनों पदार्थों की उत्पत्ति होती है। डार्क पदार्थ की मात्रा दृश्य पदार्थ से अधिक होती है। डार्क पदार्थ कभी भी दृश्य पदार्थ में परिवर्तित नहीं होता वा हो सकता। कहीं-२ इसका अपवाद भी देखा जाता है, जो इस ग्रन्थ में कुछ स्थानों पर हमने दर्शाया है। दृश्य पदार्थ के मध्य भी डार्क पदार्थ वा डार्क एनर्जी अपने प्रतिकर्षण व प्रक्षेपक बल के साथ विद्यमान होती है। जब दो या दो से अधिक कण परस्पर संयोग करते हैं, तब सर्वप्रथम उनके मध्य विद्यमान पदार्थ डार्क एनर्जी के प्रतिकर्षण बल से मुक्त होने का प्रयत्न करते हैं, उसके पश्चात् ही उनका संयोग होता है।।

चित्र १६.१ ग्रेवीटॉन के आन्तरिक घटक

३. स वा अयं प्रजापतिः संवत्सर ऋतुषु च मासेषु च प्रत्यतिष्ठत्, ते वा इम ऋतवश्च मासाश्च प्रजापतावेव संवत्सरे प्रत्यतिष्ठंस्त एतेऽन्योऽन्यस्मिन् प्रतिष्ठिता; एवं ह वाव स ऋत्विजि प्रतितिष्ठति यो द्वादशाहेन यजते; तस्मादाहुर्न पापः पुरुषो याज्यो द्वादशाहेन-नेदयं मयि प्रतितिष्ठादिति।।
ज्येष्ठयज्ञो वा एष य द्वादशाहः-स वै देवानां ज्येष्ठो य एतेनाग्रेऽयजत; श्रेष्ठयज्ञो वा एष य द्वादशाहः-स वै देवानां श्रेष्ठो य एतेनाग्रेऽयजत।।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो यजेत-कल्याणीह समा भवति; न पापः पुरुषो याज्यो द्वादशाहेन-नेदयं मयि प्रतितिष्ठादिति।।
इन्द्राय वै देवा ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त; सोऽब्रवीद् बृहस्पतिं याजय मा द्वादशाहेनेति, तमयाजयत् ततो वै तस्मै देवा ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त।।
तिष्ठन्तेऽस्मै स्वा ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्याय, सम् अस्मिन् स्वाः श्रेष्ठतायां जानते य एवं वेद।।

{संवत्सरः = संवसन्तेऽस्मिन् भूतानि (नि.४.२७), वाक् संवत्सरः (तां.१०.१२.७), संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः (श.१.२.५.१२)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्तानुसार 'ओम्' वाक् रश्मि ही प्रजापति कहलाती है। इसके अतिरिक्त **परमात्मा, प्रकृति, महत्तत्व वा मनस्तत्त्व भी इससे पूर्व प्रजापति कहाते हैं।** यहाँ मन व वाग् रश्मि को ही प्रजापति कहा गया है। ये **मनस्तत्त्व** एवं वाक् तत्त्व संवत्सर भी कहलाते हैं। इसका कारण है कि सभी उत्पन्न पदार्थ इन्हीं तत्त्वों में वसते हैं। यहाँ हम विशेष वाक् तत्त्व की ही चर्चा करेंगे। सृष्टि के सभी उत्पन्न पदार्थ इस 'ओम्' वाग् रश्मि के अन्दर ही समाए हैं और यह वाग् रश्मि उन सभी पदार्थों में समायी है। इस प्रकार इस रश्मि का सभी उत्पन्न पदार्थों से व्यापक व्याप्य सम्बन्ध है। इस रश्मि में व्याप्य पदार्थों में पूर्वोक्त मास एवं ऋतु रश्मियां भी होती हैं, यहाँ उन्हीं की चर्चा की गयी है। वह वाग् रश्मि इन मास व ऋतु रश्मियों में प्रतिष्ठित हो जाती है तथा ये मास व ऋतु रश्मियां उस वाग् रश्मि में प्रतिष्ठित हो जाती हैं। इस प्रकार इनका व्यापक व्याप्य का अन्योऽन्य सम्बन्ध शाश्वत हो जाता है। ध्यातव्य है कि ये दोनों ही अर्थात् पश्यन्ती रूप 'ओम्' रश्मि तथा ऋतु-मास रश्मियां महत् तत्त्व में, पुनः महत्तत्व, प्रकृति पदार्थ में प्रतिष्ठित है। इसके पश्चात् **प्रकृति भी परमात्म-तत्त्व में प्रतिष्ठित है। यही तत्त्व सबका मूल प्रतिष्ठारूप** है। यह तत्त्व केवल प्रेरक होने से निमित्त कारण है। **यह किसी क्रिया में स्वयं प्रत्यक्ष भाग नहीं लेता और नहीं कभी विकृत होता है,** इस कारण इसकी चर्चा भी इस शास्त्र में नगण्य है। {ऋत्विजः = छन्दांसि वा ऋत्विजः (मै.३.६.८; काठ.२६.६), ऋतव ऋत्विजः (श.११.२.७.२)} यहाँ महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त प्रतिष्ठा अर्थात् वाग् रश्मियों की ऋतु व मास रश्मियों में एवं ऋतु व मास रश्मियों के वाक् तत्त्व में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त जब ऋतु व मास रश्मियां तेज एवं बल से युक्त हो जाती हैं, उसके पश्चात् वे ऋतु रश्मियां द्वादशाह अर्थात् पूर्वोक्त प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न छन्द रश्मियों रूपी ऋत्विजों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं और द्वादशाह रूप छन्द रश्मियां भी ऋतु वा मासरूप ऋत्विजों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं और द्वादशाह रूप छन्द रश्मियां भी ऋतु वा मास रूप ऋत्विजों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं। इसका तात्पर्य है कि यहाँ भी पूर्वोक्तानुसार अन्योऽन्य प्रतिष्ठा हो जाती है। {पुरुषः = पशवः पुरुषः (तै.ब्रा.३.३.८.२), पुरुषो वाव संवत्सरः (गो. पू.५.३-५)} यहाँ महर्षि कहते हैं कि जब पुरुष अर्थात् वाक् तत्त्व रूपी संवत्सर किंवा मास व ऋतु रश्मि रूपी संवत्सर रश्मियां पाप अर्थात् सूक्ष्म असुर रश्मियों के साथ संगत हुई होती हैं, उस समय वे द्वादशाह अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न तो कर सकती हैं, परन्तु वे उन छन्द रश्मियों में यजन गुण उत्पन्न नहीं कर सकती हैं अर्थात् वे रश्मियां आसुरी ही होती हैं, देवी नहीं। ऐसी छन्द रश्मियां मुझ अर्थात् ऋत्विज रूप दैवी छन्द रश्मियों के अन्दर

प्रतिष्ठित वा संगत नहीं हो पातीं। इस कारण उन आसुरी रश्मियों के अन्दर यजन गुण न होने से उनसे विविध सृष्टि का होना नहीं हो पाता, बल्कि वे पृथक् रूप से अन्य कर्मों में भाग अवश्य लेती हैं, जिनके विषय में हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं।।

महर्षि कहते हैं कि द्वादशाह अर्थात् 'ओम्' वाग् रश्मि तथा **सभी ग्यारह प्राथमिक प्राण रश्मियों के निर्माण की जो प्रक्रिया है, साथ ही उन प्राथमिक प्राण रश्मियों व वाग् रश्मि से छन्द रश्मियों के निर्माण की जो प्रक्रिया है, वह इस सृष्टि रचना की सबसे ज्येष्ठ प्रक्रिया है अर्थात् यह प्रक्रिया सबसे अधिक व्यापक स्तर पर समस्त पदार्थ में होती है।** इस प्रक्रिया को यहाँ सर्वाधिक व्यापक इस कारण कहा है कि इन वाक् एवं प्राणादि रश्मियों की उत्पत्ति के विना किसी भी रश्मि आदि सूक्ष्म वा स्थूल पदार्थों का निर्माण होना सम्भव नहीं है। यह प्रक्रिया इस कारण भी ज्येष्ठ है, क्योंकि इस सम्पूर्ण सृष्टि में यही **प्रक्रिया सर्वाधिक तीव्र गति** से होती है। इस विषय में खण्ड २.१५ भी पठनीय है। इस प्रकार इन प्राण रश्मियों एवं दैवी गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की प्रक्रिया जहाँ सर्वाधिक तीव्र गति से सम्पन्न होती है, वहीं सर्वाधिक व्यापक स्तर पर भी, साथ ही यह अकस्मात् होती है। इस कारण इन दैवी वाग् रश्मियों एवं प्राथमिक प्राण रश्मियों को भी ज्येष्ठ कहा जाता है, क्योंकि इनकी उत्पत्ति रश्मिरूप में प्रायः सर्वप्रथम, सबसे व्यापक स्तर पर एवं तीव्रतमा क्रिया के फलस्वरूप होती है। इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की बाधक रश्मियां बाधा नहीं डाल सकतीं; क्योंकि उनकी उस समय उत्पत्ति ही नहीं हो पाती है किंवा वे बाधक रश्मियां स्वयं इन्हीं पदार्थों से ही पृथक् व्यवस्था के द्वारा उत्पन्न होती हैं। इनके उत्पन्न होने के पश्चात् ही सभी देव पदार्थ (हमारे मत में असुर पदार्थ भी) उत्पन्न होते हैं।

महर्षि इन्हें ज्येष्ठ बताने के साथ-२ श्रेष्ठ भी बताते हुए कहते हैं कि ये वाग् व प्राणादि रश्मियां श्रेष्ठ भी होती हैं। 'श्रेष्ठ' शब्द पर कुछ ऋषियों का कथन है-

"सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षते" (जै.ब्रा.३.१११)

"एकःश्रेष्ठःयन्तं बहवः पश्चादनुयन्ति" (मै.४.६.५)

इसका आशय है कि ये रश्मियां सिमरूप होकर सभी को अपने साथ बांधने में सक्षम होती हैं, इस कारण इनके गतिशील होने से इनके पीछे-२ अन्य सभी रश्मियां उत्पन्न व गतिशील होने लगती हैं। इसीलिए इन रश्मियों को श्रेष्ठ भी कहा जाता है। **सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली ये ज्येष्ठ रश्मियां सभी देव पदार्थों में श्रेष्ठ भी होती हैं।** ये रश्मियां ही सभी देव पदार्थों में सर्वप्रथम यजन कार्य करती हैं। वस्तुतः मनस्तत्त्व तक सम्पूर्ण पदार्थ एकरसवत् होता है, उसमें विविधता प्रायः नहीं होती जबकि वाग् व प्राण रश्मियों की उत्पत्ति के साथ ही विविधता उत्पन्न होती है। इसी कारण विविधता भरे पदार्थ में ही संयोग-वियोग आदि क्रियाएं उत्पन्न होती हैं।।

{कल्याणम् = कल्याणं कमनीयं भवति (नि.२.३)} जब उपर्युक्त प्रकार से ज्येष्ठ व श्रेष्ठ वाग् एवं प्राथमिक प्राण रश्मियां परस्पर संगत होने लगती हैं और यह संगमन कर्म अति व्यापक क्षेत्र में अति तीव्र गति से सबको अपने साथ बांधता हुआ उत्पन्न होता है, तब वह यजन कार्य कमनीय व शोभन ढंग से सम्पादित होता है। उनमें विशेष व शुद्ध बल व दीप्ति की विद्यमानता होती है। इसके पश्चात् जब असुर रश्मियों की उत्पत्ति हो जाती है, तब उन असुर रश्मियों की ओर पतित होते वा गिरते हुए जो पदार्थ उनसे बाधित वा आच्छादित हो जाते हैं, वे फिर अन्य द्वादशाह अर्थात् प्राण व वाग् रश्मियों से निर्मित दैवी छन्द रश्मियों के साथ संगत नहीं हो पाते। इसके साथ ही वे किसी भी प्रकार की छन्दादि रश्मियों, ऋतु व मास आदि रश्मियों के साथ भी संगत नहीं हो पाते, बल्कि असुर रश्मियों के रूप में ही अनेकत्र व्याप्त हो जाते हैं।।

उस समय देव पदार्थ अर्थात् विभिन्न दृश्य छन्द रश्मियों में इन्द्र तत्त्व की ज्येष्ठता व श्रेष्ठता स्थापित नहीं हो पायी थी। इसका आशय यह है कि प्राण व वाग् रश्मियों से जो भी गायत्री आदि विभिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न हुई थीं, उनमें से त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां पर्याप्त शक्तिशाली व तेजस्वी नहीं हो पायी थीं, इस कारण इन्द्र तत्त्व, जो विशेषतः त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से ही उत्पन्न होता है, उत्पन्न ही नहीं हो पाया था। इन्द्र तत्त्व एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का सम्बन्ध बताते हुए कहा है- "त्रैष्टुभ इन्द्रः" (कौ.ब्रा.३.२; २२.७)

उसके पश्चात् दैवी छन्द रश्मियां व प्राथमिक प्राण रश्मियां ऋतु व मास रश्मियों के द्वारा सूत्रात्मा

वायु, जो स्वयं द्वादशाह का ही भाग होता है, के साथ विशेष संगत होकर त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के प्रवल व तीक्ष्ण रूप को उत्पन्न करती हैं। उसके पश्चात् उनसे इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति के पश्चात् प्राथमिक प्राण रश्मियों के सहाय से वह इन्द्र तत्त्व पूर्वोक्त ज्येष्ठ व श्रेष्ठ रूप धारण करके समृद्ध होने लगता है। तदनन्तर अन्य छन्द रश्मि आदि पदार्थ उस इन्द्र तत्त्व की ओर आकृष्ट होने लगते हैं किंवा उसी में समाहित हो जाते हैं।।

जव जो कोई पदार्थ इस इन्द्र तत्त्व के साथ संगत होकर इसी के अंगरूप हो जाते हैं, उस समय वे पदार्थ इन्द्र तत्त्व, साथ ही व्यापकत्व श्रेष्ठत्वादि गुणों में भी प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इसके उपरान्त वे पदार्थ, जो इन्द्र तत्त्व से संयुक्त हो चुके होते हैं, इस इन्द्र तत्त्व के श्रेष्ठ वल व तेज के कारण परस्पर संगत होने लगते हैं। उस समय कोई असुरादि तत्त्व भी उन्हें वाधित नहीं कर सकता।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के सभी सूक्ष्म व स्थूल पदार्थ **'ओम्'** रश्मि में ही समाये हैं और यह **'ओम्'** रश्मि मनस्तत्त्व रूप होकर महत्तत्व एवं महत्तत्व प्रकृति रूप आदि मूल उपादान कारण पदार्थ में समाया है, परन्तु **प्रकृति सर्वाधार चेतन परमात्म तत्त्व में ही सर्वदा समायी रहती है। इस प्रकार ईश्वर तत्त्व ही सर्वव्यापक है। ईश्वर तत्त्व केवल प्रेरक तत्त्व है, यह किसी भी क्रिया में विकारी नहीं होता। इस कारण यह परिणामी भी कभी नहीं होता।** मास व ऋतु रश्मियां वाक् रश्मियों के साथ संयुक्त होकर प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ तेजी से संगत होती हैं, उस समय तक डार्क मैटर व डार्क एनर्जी की उत्पत्ति नहीं हो पाती। इस कारण विविध छन्द रश्मियों की उत्पत्ति निर्विघ्न सम्पन्न होती है। इसके पश्चात् दृश्य व डार्क दोनों प्रकार की ऊर्जा व पदार्थ की उत्पत्ति होने लगती है। दैवी वाक् रश्मियों व प्राथमिक प्राण रश्मियों की उत्पत्ति की प्रक्रिया इस ब्रह्माण्ड की सर्वाधिक तीव्र व व्यापक क्रिया है। यह सम्पूर्ण मूल पदार्थ में अकस्मात् अतितीव्रता से सर्वत्र एक साथ होती है। इनकी उत्पत्ति के पूर्व पदार्थ एकरस जैसी अवस्था में ही सर्वत्र व्याप्त रहता है, जवकि इन रश्मियों की उत्पत्ति के साथ ही पदार्थ में विविधता का भाव उत्पन्न होता है। ये रश्मियां सवको बांधने वाली, सर्वप्रथम संयोग-वियोग गुणों को प्रदर्शित करने वाली होती हैं। इनके उत्पन्न होते ही संयोग वियोग की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। इन रश्मियों का वल शुद्ध व अपना ही होता है। ध्यातव्य है, यहाँ मनस्तत्त्व की एकरसवत् होने के कारण उसकी चर्चा नहीं है। इन रश्मियों से दृश्य व डार्क, दोनों ही प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। दोनों प्रकार की ऊर्जा भी इनसे ही उत्पन्न होती है। विद्युत् की उत्पत्ति भी इन्हीं रश्मियों विशेषकर प्राणापान के संयोग से होती है। तीव्र विद्युत् इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति इनके साथ संगत त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों, जो स्वयं इनसे ही उत्पन्न होती हैं, से होती है। विद्युत् के उत्पन्न होने से सृष्टि में संयोग वियोग की प्रक्रिया एक नवीन ढंग से तीक्ष्णता के साथ होने लगती है। डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक व प्रतिकर्षक प्रभाव को विद्युत् के तीव्र रूप द्वारा ही निष्क्रिय व नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार **विद्युत् की उत्पत्ति सृष्टि प्रक्रिया की अति महत्वपूर्ण घटना है।।**

४. ऊर्ध्वो वै प्रथमस्त्र्यहस्तिर्यङ्मध्यमोऽर्वाङुत्तमः; स यदूर्ध्वः। प्रथमस्त्र्यहस्त-स्मादयमग्निरूर्ध्व उद्दीप्यत-ऊर्ध्वा ह्येतस्य दिक्; यत्तिर्यङ्मध्यमस्तस्मादयं वायुस्तिर्यङ्पवते-तिरश्चीरापो वहन्ति; तिरश्चीह्येतस्य दिक्; यदर्वाङुत्तमस्तस्मादसा-वर्वाङ्तपत्यर्वाङ्वर्षत्यर्वाञ्चि नक्षत्राण्यर्वाची ह्येतस्य दिक्, सम्यञ्चो वा इमे लोकाः; सम्यञ्च एते त्र्यहाः।।
सम्यञ्चोऽस्मा इमे लोकाः श्रियै दीद्यति य एवं वेद।।३।।

{ऊर्ध्वम् = ऊर्ध्वमुद्धृतं भवति (नि.८.१५)। तिर्यञ्चम् = (तिरसुपपदे अञ्चु गतौ), (तिरः = अन्तर्धाने - म.द.ऋ.भा.१.४६.६), तिरोभावे (म.द.ऋ.भा.६.१०.४), तिरस्तीर्णं भवति (नि.३.२०)। अर्वाक् = अधः (म.द.ऋ.भा.१.६२.१६), अन्तिकनाम (निघं.२.१६)}

व्याख्यानम्- ४.२४.१ में वर्णित त्र्यहों का यहाँ विवेचन करते हुए कहते हैं कि प्रथम त्र्यह अर्थात् तीन प्राथमिक प्राण रश्मियों का युग्म ऊर्ध्वगामी होता है किंवा इनकी दिशा ऊर्ध्वा होती है। इसका तात्पर्य है कि यह युग्म ऊपर की ओर उठाया हुआ, खींचा हुआ सा होता है। हमारे मत में इस त्रिक में - "नाग+उदान+कृकल" तीन प्राण विद्यमान होते हैं। इनमें से नाग उपप्राण प्राण नामक अतिरात्र का उपप्राण है। यह उस प्राण की सहायता करके सबको बल प्रदान करता तथा अवरोध आने पर प्राणतत्त्व को खींच कर बाहर निकालता है। उदान भी किसी पदार्थ को खींच कर ऊपर उठाता है तथा कृकल प्राण उदान का उपप्राण होने से उसका सहयोगी होता है। इस प्रकार तीन त्रिकों की दिशा ऊर्ध्वा होती है। महर्षि कहते हैं कि इसी त्र्यह के कारण अग्नि की दिशा ऊर्ध्वा होती है। हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख चुके हैं कि अग्नि के उत्सर्जन की प्रक्रिया में जगती छन्द रश्मियों का विशेष योगदान होता है। हमारा मत है कि जगती रश्मियों की संरचना कुछ इस प्रकार होती है कि यह त्र्यह बाहरी ओर स्थित होता है, जिसके कारण जगती रश्मि की ऐसी क्षमता उत्पन्न हो जाती है, जो अग्नि के परमाणु अथवा ऐसे ही किसी अन्य कण को बाहर की ओर खींच कर उत्सर्जित कर देती है। इसके साथ यह भी सत्य है कि उत्सर्जनीय परमाणु किसी भी पदार्थकण के प्रायः बाहरी अर्थात् ऊर्ध्व भाग में ही स्थित होता है परन्तु यह नियम अनिवार्य व सार्वत्रिक नहीं है। यह प्रथम त्र्यह, जो जगती छन्द रश्मि के बाहरी भाग में विद्यमान होता है, वह उस उत्सर्जनीय अग्नि आदि के परमाणु को बाहर से आकर्षित करते हुए चारों ओर से आच्छादित कर लेता है। फिर वह बलपूर्वक उसे वहाँ से खींच कर बाहर कर देता है। फिर वह अग्नि का परमाणु ऊपर की ओर ही चलता जाता है। यहाँ ऊपर की ओर जाने का तात्पर्य यह है कि अग्नि का परमाणु जिस कण से पृथक् हुआ है, उससे दूर व दूरतर चलते रहना। इस दिशा में जाने का कारण भी जगती रश्मि ही है परन्तु उसे प्रबलतम वेग प्रदान करने में धनंजय प्राण की भूमिका रहती है। यहाँ 'दिक्' शब्द का अर्थ परिधि मानना चाहिए, जैसा कि ऋषियों ने कहा है- "दिशः परिधयः" (तै.ब्रा.२.१.५.२)। यहाँ यह स्मरणीय है कि यह त्र्यह प्राण-युग्म जब किसी परमाणु को बाहर की ओर खींचता है, तब उसे चारों ओर से घेर लेता है, उसके पश्चात् ही उसे ऐसे ही बाँधे हुए गमन कराता है।

द्वितीय त्र्यह में "सूत्रात्मा वायु+व्यान+देवदत्त" ये तीन प्राण होते हैं। इनमें से सूत्रात्मा वायु सभी प्राणों को परस्पर बांधकर उन सबके साथ सभी पदार्थों में आत्मरूप होकर विचरता एवं उन सभी प्राणों की संगति बनाए रखता है। व्यान नामक प्राण सबको शीघ्र संचालित करने के लिए दोनों सिरों पर वर्तमान प्राण व अपान के मध्य सन्धि का कार्य करता है, जिससे उनके मध्य वर्तमान सभी प्राण व उपप्राण आवश्यकतानुसार संकुचित व प्रसारित होते रहते हैं। देवदत्त प्राण समान प्राण का उपप्राण होता है तथा यह समान प्राण के साथ मिलकर प्राण व अपान को संतुलित रखने में अपनी भूमिका निभाता है। यह मध्य त्र्यह है। इसकी दिशा तिर्यक् बतायी गयी है। इसका आशय है कि यह त्र्यह अन्तर्धान होकर अर्थात् छिपकर सबको अपने बल से बांधता व धारण करता हुआ, उनके अन्दर व्याप्त होता हुआ सब ओर फैलकर गति करता व कराता है। इसी के कारण वायु तथा आपः तिर्यक् होकर बहते हैं। इसका तात्पर्य है कि {आपः = अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३), उदकनाम (निघं.१.१२), आपो वै मरुतः (ऐ.६.३०), पशवो वा एते यदापः (ऐ.१.८)} आकाश तत्त्व, हवा, द्रवादि तरल पदार्थ व छन्दादि रश्मियां एवं मरुद् रश्मियां सभी तिर्यग्गमन करते हैं। यहाँ ऐसा संकेत मिलता है कि जब ये त्रिक् रश्मियां किन्हीं छन्द रश्मियों, आकाश रश्मियों अथवा हवा व तरल पदार्थ के अणुओं को आच्छादित कर लेती हैं, तब वे अणु एक-दूसरे के ऊपर फिसलते, फैलते हुए सतत आगे बढ़ते रहते हैं। इनकी गति अग्नि के परमाणुओं की गति से भिन्न होती है।

अब अन्तिम त्र्यह की चर्चा करते हैं। इसमें "समान+कूर्म+धनंजय" तीन प्राण होते हैं, ऐसा हमारा मत है। समान प्राण अपान एवं प्राण का सामञ्जस्य बनाए रखता है। कूर्म उपप्राण अपान का उपप्राण है। यह विभिन्न प्राणों की गतियों को व्यवस्थित रखता है। इसके साथ ही यह सभी प्राणों की शक्ति को केन्द्रीभूत भी रखता है। धनंजय प्राण इन सबको वहन करता व नियन्त्रण में रखता है। इसकी दिशा अर्वाङ् कही गयी है। इसका तात्पर्य है कि यह त्र्यह आदित्य अर्थात् विभिन्न आदित्य रश्मियों, नक्षत्रों अर्थात् अविनाशी परमाणुओं को नीचे की दिशा से आच्छादित कर लेता है। यहाँ नीचे का तात्पर्य दक्षिणी दिशा समझनी चाहिए। इस दिशा से आच्छादित करके यह त्र्यह उनको बलपूर्वक धक्का देते हुए, उन्हें नियन्त्रित करते हुए तीव्र गति से ले चलता है। इसमें भी धनंजय प्राण की गति

सर्वाधिक होने से उसकी भूमिका गति देते समय सबसे अधिक होती है। यहाँ 'तपति' का अर्थ 'तप ऐश्वर्य' से 'नियन्त्रण में करता है' मानना चाहिए। विभिन्न प्रकार के वृष्टिकर्म में भी इसी त्र्यह की भूमिका अधिक होती है।

ध्यातव्य है कि कोई भी त्र्यह स्वयं अकेला उपर्युक्त कर्मों में से कोई कर्म नहीं करता बल्कि जिन छन्द रश्मियों के अवयवरूप होकर इनमें से जो कोई त्र्यह बाहरी भाग में क्रियाशील होता है, उसी का प्रभाव प्रधान होकर उपर्युक्त में से कोई एक कर्म करता है। वस्तुतः तीनों प्रकार के त्र्यह प्राण व अपान के मध्य मन व 'ओम्' वाग् रश्मि के द्वारा परस्पर जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार संसार के सभी लोक व कण भी परस्पर विभिन्न प्राण रश्मियों के कारण, विशेषकर मन, वाक् व सूत्रात्मा वायु के कारण परस्पर जुड़े हुए ही रहते हैं। वे सर्वथा पृथक् कभी नहीं हो सकते। परस्पर जुड़े रहते हुए वे सभी लोक समृद्धि के साथ प्रकाशित होते रहते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न पदार्थों की गतियों के लिए विभिन्न वाहिका छन्द रश्मियों की आन्तरिक संरचना में प्राण रश्मियों की व्यवस्था उत्तरदायी होती है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, विभिन्न प्राण रश्मियों, हवा, तरल पदार्थ विभिन्न मूलकणों आदि की गतियों में भेद उनकी वाहिका छन्द रश्मियों की संरचना के भेद के कारण ही होता है। **विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ज्ञात सर्वाधिक गति का मूल कारण धनंजय प्राण रश्मि है, जो इस सृष्टि में सर्वाधिक गतिशील होती है।** विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

ॐ इति १९.3 समाप्तः ॐ

अथ १९.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. दीक्षा वै देवेभ्योऽपाक्रामत्, तां वासन्तिकाभ्यां मासाभ्यामन्वयुञ्जत, तां वासन्तिकाभ्यां मासाभ्यां नोदाप्नुवंस्तां ग्रैष्माभ्यां तां वार्षिकाभ्यां तां शारदाभ्यां तां हैमन्तिकाभ्यां मासाभ्यामन्वयुञ्जत, तां हैमन्तिकाभ्यां मासाभ्यां नोदाप्नुवंस्तां शैशिराभ्यां मासाभ्यामन्वयुञ्जत; तां शैशिराभ्यां मासाभ्यामाप्नुवन्।।
आप्नोति यमीप्सति; नैनं द्विषन्नाप्नोति य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- पूर्व खण्ड के विषय को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं कि जब ऋतु व मास रश्मियां द्वादशाह अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों को दीक्षित करने का कार्य कर रही होती हैं अर्थात् उन रश्मियों को वाक् रश्मियों से संयुक्त करने का कार्य करती हैं, उस समय किसी प्रकार वह दीक्षा प्रक्रिया मन्द वा बन्द हो जाती है। उस समय प्राथमिक प्राण रश्मियां वसन्त ऋतु की मास रश्मियों के द्वारा वाग् रश्मियों से संगत होने का प्रयास करती हैं परन्तु वासन्तिक मास रश्मियां उन्हें दीक्षित नहीं कर पातीं अर्थात् वाक् तत्त्व से संयुक्त नहीं कर पाती। वसन्त ऋतु रश्मियों के विषय में ऋषियों का मन्तव्य है-

"एतौ (मधुश्च माधवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ).......एतौ मधुश्च माधवश्च" (श.४.३.१.१४)
"मुखं वा एतद् ऋतूनां यद् वसन्तः" (तै.ब्रा.१.१.२.६)
"वसन्तो हिङ्कारः" (ष.३.१)
"वसन्त एव भर्गः" (गो.पू.५.१५)
"प्राण एव वसन्तः.......वायुरेव वसन्तः" (जै.ब्रा.२.५१)

इन वचनों से सिद्ध है कि वसन्त ऋतु प्राण रश्मि विशेष का ही नाम है। ये रश्मियां तेजस्विनी होकर अन्य ऋतु रश्मियों की अपेक्षा श्रेष्ठ व मुख्य होती है। यहाँ षड्विंश ब्राह्मण का उपर्युक्त प्रमाण हिंकार को ही वसन्त ऋतु कहता है। यह मधु व माधव नामक दो रश्मियों का संयुक्त रूप है। मधु के विषय में ग्रन्थकार ने अपने ही अन्य ग्रन्थ में कहा है-

"मिथुनं वै मधु" (ऐ.आ.१.३.४)
"विज्ञातो मार्गः" (तु.म.द.ऋ.भा.४.४५.३)

इससे संकेत मिलता है कि 'मधु' नामक मास रश्मि दो रश्मियों को मिलाने तथा उनके मार्गों को व्यवस्थित व प्रकाशित करने में सहयोग करती है। हम पूर्व में अनेकत्र 'हिम्' रश्मि का यही स्वरूप लिख चुके हैं। 'माधव' नामक मास रश्मि इसी मधु से सम्बन्ध रखती किंवा कुछ भेद के साथ इसी का रूप होती है, इसी कारण इसका नाम माधव है। ये दोनों संयुक्त होकर 'वसन्त' ऋतु रश्मि के रूप में प्रकट व प्रकाशित होती हैं और इस ऋतु रश्मि के गुण भी इन मास रश्मियों के लगभग समान होते हैं। यह रश्मि सबको मिथुन धर्म में बसाती है, इस कारण ही 'वसन्त' कहलाती है। प्राथमिक प्राण रश्मियां जब वाक् तत्त्व से संयुक्त नहीं होती हैं किंवा उनमें यह प्रक्रिया बंद वा मंद हो चुकी होती है, उस समय वसन्त नामक रश्मि की मास रश्मियों का यह सामर्थ्य नहीं होता कि वे उन प्राथमिक प्राण रश्मियों को वाक् विशेषकर 'ओम्' वाक् से संगत करा सकें, यही दीक्षा की व्याप्ति न होने का अर्थ है।

इसके पश्चात् महर्षि कहते हैं कि 'ग्रीष्म' ऋतु संज्ञक रश्मियां भी इस दीक्षा कर्म, जो प्राथमिक परन्तु महत्वपूर्ण अवस्था कहलाता है, को सम्पन्न कराने में समर्थ नहीं होती हैं। 'ग्रीष्म' ऋतु के विषय में ऋषियों का कथन है-

"शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मा ऋतू" (मै.२.८.१२)

"ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः" (तै.ब्रा.३.११.१०.३)
"वाग् ग्रीष्मः" (जै.ब्रा.२.५१)

इन प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यह ऋतु रश्मि आशुगामी, पवित्र कारक व ऊष्मोत्पादन में विशेष समर्थ होती है। यह विभिन्न सूक्ष्म प्राण रश्मियों को ग्रसने में समर्थ होती है। इसका दक्षिण पक्ष-रूप अर्थात् परिग्रहण सामर्थ्य विशेष बलवती होती है। इसके साथ ही यह रश्मि वाग् रूप व्यवहार करती है। यह रश्मि तीक्ष्ण आकर्षण बलयुक्त होते हुए भी प्राथमिक प्राण रश्मियों की 'ओम्' रश्मि के साथ बंद पड़ी संगति को प्रारम्भ करने में सक्षम नहीं होती है।

इसके पश्चात् वर्षा ऋतु रश्मि के विषय में आर्ष मत को प्रकाशित करते हैं-

"चक्षुर्वर्षाः पर्जन्यो वर्षाः" (जै.ब्रा.२.५१)
{(पर्जन्यः = परो जेता वा परो जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम् (नि.१०.१०)}
"वर्षा उत्तरः पक्षः संवत्सरस्य" (तै.ब्रा.३.११.१०.३)
"वर्षा वै सर्वऽऋतवः" (श.२.२.३.७)
"नभश्च नभस्यश्च वार्षिका ऋतू" (मै.२.८.१२)

इन प्रमाणों से संकेत मिलता है कि यह ऋतु रश्मि सभी ऋतु रश्मियों की विशेष प्रकाशिका होती है, साथ ही यह विभिन्न रसरूप प्राण रश्मियों को नियन्त्रित व अर्जित करके नवीन रश्मियों को उत्पन्न करने में विशेष समर्थ होती है। इसका कारण यह है कि इनमें एक 'नभ' तथा दूसरी 'नभस्य' मास रश्मि विद्यमान होती है। इनमें से 'नभ' संज्ञक रश्मि किसी रश्मि को अपने साथ बांधने में समर्थ तथा दूसरी 'नभस्य' संज्ञक रश्मि उस 'नभ' रश्मि के साथ बंधने में तत्पर होती है। इस प्रकार ये दोनों रश्मियां परस्पर संगत होकर बंधन स्वभाव वाली होकर विभिन्न रश्मियों को संगत करने में विभिन्न मास रश्मियों के उत्तर पक्ष के समान होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां उन रश्मियों के कार्यों को भी उत्कृष्टता से तारने वाले बल से संयुक्त होती हैं। इस कारण ही इसे सर्वऋतु कहा गया है। यहाँ विशेष वक्तव्य यह है कि यह सब होने के उपरान्त भी 'ओम्' रश्मि के साथ प्राथमिक प्राण रश्मियों के बन्द हुए संयोग कर्म को प्रारम्भ करने का सामर्थ्य इनमें भी नहीं होता।

इसके पश्चात् शरद् ऋतु रश्मियों के विषय में आर्ष मतों का विचार करते हैं-

"शृणाति हिनस्त्यस्मिन्निति शरत्" (उ.को.१.१३०)
"इषश्चोर्जश्च शारदा ऋतू" (मै.२.८.१२)
"श्रोत्रं शरद्" (जै.ब्रा.२.५१)
"अन्नं वै शरद्" (मै.१.६.६)
"यद्विद्योतते तच्छरदः (रूपम्)" (श.२.२.३.८)

इन प्रमाणों से विदित होता है कि यह रश्मि श्रोत्र रूप होकर प्राथमिक प्राण रश्मियों के मध्य सन्धिरूप होने में अपेक्षाकृत विशेष सक्रिय होती है। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "श्रोत्रं वा अपां सन्धिः" (श.७.५.२.५५)। यह संधिरूप होकर ही विशेषतः प्रकाशित होती हुई स्वयं भी संयोज्य स्वभाव वाली होती है। इसमें 'इषु' व 'ऊर्क्' नामक दो मास रश्मियों का संयोग होता है, [illegible] कारण यह संयोज्य व आकर्षण बल दोनों ही स्वभावों से युक्त होती है। यह वाक् व प्राण रश्मियों की बाधाओं को नष्ट करने में समर्थ होने के उपरान्त भी 'ओम्' रश्मि व प्राथमिक प्राण रश्मियों की बंद हुई संयोग प्रक्रिया को प्रारम्भ करने में समर्थ नहीं होती है।

इसके अनन्तर हम हेमन्त ऋतु रश्मि के स्वरूप पर आर्ष मत की विवेचना करते हैं-

"हेमन्तो मध्यम्" (मै.४.६.१८; तै.ब्रा.३.११.१०.४)
"हेमन्तो हि वरुणः" (मै.१.१०.१२)
"सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिका ऋतू" (मै.२.८.१२)
"मनो हेमन्तः" (जै.ब्रा.२.५१)

इन आर्ष वचनों से प्रकट होता है कि यह ऋतु रश्मि 'सह' एवं 'सहस्य' नामक दो मास रश्मियों के संयोग से बनी होती है। ये दोनों मास रश्मियां प्रतिरोधक बल से युक्त होती हैं, जो किसी अन्य अनिष्ट बल का प्रतिरोध करके वांछित क्रियाओं को सम्पादित करता है। यह रश्मि मनस्तत्त्व के समान अत्यन्त सूक्ष्म दीप्ति से युक्त होती है एवं सबको वरण करके बांधने, संगत करने में सक्षम होती है तथा सभी ऋतु रश्मियों के मध्य स्थित होती है, पुनरपि यह रश्मि भी 'ओम्' वाक् तथा प्राण रश्मियों को अवरुद्ध हुई संगति को प्रारम्भ करने में सक्षम नहीं होती।

अन्त में शिशिर ऋतु रश्मियों की चर्चा करते हुए इस विषय में ऋषियों के मत को प्रस्तुत करते हैं-

"शिशिरं प्रतिष्ठानम्" (मै.४.६.१८)
"तपश्च तपस्यश्च शैशिरा ऋतू" (मै.२.८.१२)
"शिशिरं जीवनाय, शृणातेः शम्नातेर्वा" (नि.१.१०)
"शशति....शीघ्रं गच्छति तत् शिशिरम्" (उ.को.१.५३)

इन वचनों से ज्ञात होता है कि यह रश्मि विभिन्न प्राण रश्मियों के लिए विशेष उपयोगी है। यह उनकी 'ओम्' रश्मियों से संगति में आने वाले सभी बाधाओं को दूर करने में समर्थ होती है। **इसकी गति अन्य ऋतु रश्मियों की अपेक्षा तीव्र होती है। यह रश्मि अन्य ऋतु रश्मियों की आधार रूप होती है, इसका तात्पर्य है कि इसमें ही सभी की प्रतिष्ठा वा प्रारम्भ होता है।** यह रश्मि 'तप' तथा 'तपस्य' नामक दो मास रश्मियों से मिलकर बनी होती है। यहाँ 'तपः' पद को 'तप ऐश्वर्ये' धातु से निष्पन्न मानना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि इन दोनों रश्मियों से उत्पन्न यह 'शिशिर' ऋतु रश्मि भी विशेष ऐश्वर्य सम्पन्न होती है। यहाँ 'ऐश्वर्य' शब्द का अर्थ नियन्त्रित व अधिकृत करने की क्षमता समझना चाहिए। किसी भी क्रिया को करने से पूर्व रश्मि आदि पदार्थों में नियन्त्रण अर्थात् आकर्षण व धारण बल का (विशेषकर) उत्पन्न होना प्राथमिक रूप से आवश्यक है। **इस ब्रह्माण्ड में बड़े-२ बलों का अस्तित्व है, परन्तु ये सभी प्रारम्भ में सूक्ष्म बल की हलचल से ही कालान्तर में उत्पन्न होते है।** हाँ, इस विषय में 'महतो महीयान्' वा 'अणोरणीयान्' परमात्म-बल की चर्चा करना यहाँ आवश्यक नहीं है। इस शिशिर रश्मि से अधिक शक्ति वाली ग्रीष्मादि कुछ रश्मियां होने पर भी वे ऋतु रश्मियों का प्रथम रूप नहीं है। इधर शिशिर ऋतु रश्मि से ही ऋतु रश्मियों का कार्य जन्म लेता है, इसी कारण इसे प्रतिष्ठान कहा है। इसी कारण एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है-

"शिशिरं वा अग्नेर्जन्म....सर्वासु दिक्ष्वग्निश्शिशिरे" (काठ.८.१) यहाँ **'जन्म' शब्द की विद्यमानता विशेष महत्वपूर्ण है। 'अग्निः' पद प्राण व वाक् दोनों का भी वाचक है। इन दोनों के मेल के बिना** अग्नि की **उत्पत्ति सम्भव** नहीं, इस कारण शिशिर ऋतु रश्मियों का ही **सामर्थ्य** है कि वे **वाक् तथा प्राण** तत्त्वों की **संगति** में आये अवरोध को दूर करके उसे पुनः प्रारम्भ करें, इसे ही द्वादशाह को दीक्षित करना कहा गया है।।

जब इस प्रकार शिशिर ऋतु रश्मियों द्वारा प्राण रश्मियां दीक्षित हो उठती हैं अर्थात् 'ओम्' वाग् रश्मियों के साथ संगत होकर ऐश्वर्य-सम्पन्न हो उठती हैं, उस समय वे कमनीय बल व कर्मों को प्राप्त करने में सक्षम हो जाती हैं। कोई भी प्रतिकर्षण, प्रतिरोधी बल उनका बाधक नहीं बन सकता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के प्रारम्भ में जब **'ओम्'** सूक्ष्मतम रश्मि की उत्पत्ति के साथ-२ प्राथमिक प्राण रश्मियों की उत्पत्ति भी उसी **'ओम्'** रश्मि व मनस्तत्त्व से हो जाती है, तदुपरान्त सभी रश्मियों के साथ **'ओम्'** रश्मि का संयोग होना अनिवार्य होता है, अन्यथा सृष्टि प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ सकती। इस कारण इस संयोग प्रक्रिया का प्रारम्भ होना और कदाचित् कथंचित् इस प्रक्रिया के अवरुद्ध होने पर उसको पुनः प्रारम्भ करके निरन्तरता प्रदान करना भी सृष्टि प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है। उस प्राथमिक अवस्था में सभी मास व ऋतु रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं। इन ऋतु रश्मियों के गुण क्रमशः निम्नानुसार हैं-

(१) **वसन्त-** यह रश्मि दो ऐसी मास रश्मियों से मिलकर बनी होती है, जो वाक् व प्राण आदि रश्मियों के जोड़े बनाने एवं उन्हें उचित गति व मार्ग प्रदान करने में सक्षम होती हैं। ये रश्मियां जोड़े बनाने के बंद कार्य को प्रारम्भ करने में समर्थ नहीं होती हैं।

(२) **ग्रीष्म-** यह रश्मि दो ऐसी मास रश्मियों से मिलकर बनी होती है, जो आशुगामी, पवित्रकारी एवं कालान्तर में विशेष ऊष्मा के उत्पादन में समर्थ होती हैं, पुनरपि यह प्राथमिक रूप से ऊष्मा वा ऊर्जा को जन्म देने में सक्षम नहीं होती है।

(३) **वर्षा-** यह रश्मि दो ऐसी मास रश्मियों से मिलकर बनी होती है, जो विभिन्न रश्मियों को परस्पर बांधने तथा स्वयं भी उनके साथ बंधने में सक्षम होती हैं। यह अन्य ऋतु रश्मियों को विशेषरूप से प्रकाशित व नियन्त्रित करके उनसे अन्य रश्मियों को उत्पन्न करने में विशेष सक्षम होती है, पुनरपि ये इन क्रियाओं को जन्म देने में सक्षम नहीं होती।

(४) **शरद्-** यह रश्मि ऐसी दो मास रश्मियों से मिलकर बनी होती है, जो संयोजक व आकर्षण बलों से विशेष युक्त होती हैं। यह विभिन्न प्राण व वाक् किंवा अन्य जोड़ों के मध्य सन्धिरूप होकर प्रकाशित होती है। यह भी उपर्युक्त कार्य को प्रारम्भ करने में सक्षम नहीं होती।
(५) **हेमन्त-** यह रश्मि ऐसी दो मास रश्मियों का संयुक्त रूप है, जो प्रतिरोधी बल से विशेष युक्त होती हैं एवं अवांछित बलों का प्रतिरोध करने में सक्षम होती हैं। यह अत्यन्त सूक्ष्म दीप्तियुक्त होती है। यह भी पूर्वोक्त आरम्भिक कर्म में समर्थ नहीं होती।
(६) **शिशिर-** यह ऐसी दो मास रश्मियों से बनी होती है, जो नियन्त्रण सामर्थ्य से प्राथमिक स्तर तक युक्त होती हैं। इसके बिना उपर्युक्त पांचों ऋतु रश्मियों के बलों व कर्मों की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। इस कारण यह रश्मि उपर्युक्त सभी रश्मियों की प्रतिष्ठारूप है। **'ओम्'** रश्मियों एवं विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों की संगति-प्रक्रिया को प्रारम्भ करने एवं उन्हें निरन्तरता प्रदान करने का सामर्थ्य केवल इन्हीं में होता है। इस ब्रह्माण्ड में इनके अभाव में सृष्टि प्रक्रिया वहीं समाप्त हो जाए। वर्तमान विज्ञान द्वारा जाना वा कल्पित किया गया सम्पूर्ण पदार्थ, यथा- आकाश, द्रव्य, ऊर्जा, डार्क एनर्जी व डार्क मैटर किसी की भी उत्पत्ति सम्भव नहीं हो सकती। इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के उस चरण में **जब सर्वप्रथम ऊर्जा की उत्पत्ति होती है, तब वह इन्हीं शिशिर रश्मियों की प्रधान भूमिका में ही होती है तथा ऊर्जा की उत्पत्ति से ही सम्पूर्ण पदार्थ की उत्पत्ति के द्वार खुलते हैं**।।

२. तस्माद् यं सत्रिया दीक्षोपनमेदेतयोरेव शैशिरयोर्मासयोरागतयोर्दीक्षेत; साक्षादेव तद्दीक्षायामागतायां दीक्षते,-प्रत्यक्षाद्दीक्षां परिगृह्णाति; तस्मादेतयोरेव शैशिरयोर्मासयोरागतयोर्ये चैव ग्राम्याः पशवो ये चारण्या अणिमाणमेव तत्परुषिमाणं नियन्ति; दीक्षारूपमेव तदुपनिप्लवन्ते।।

{ग्रामः = छन्दांसीव खलु वै ग्रामः (तै.सं.३.४.६.२)। परुषिमाणम् = (परुषे = पर्ववति भास्वतीत्यौपमन्यवः - नि.२.६)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं- क्योंकि वाक् व प्राण रश्मियों का मेल सर्वप्रथम शिशिर ऋतु रश्मियों के द्वारा ही होता है, इस कारण जो प्राण रश्मियां इन शिशिर ऋतु रश्मियों की अंगरूप 'तप' एवं 'तपस्य' नामक मास रश्मियों के मध्य सब ओर से व्याप्त हो जाती हैं। वे प्राण रश्मियां सर्गप्रक्रिया को जारी रखने हेतु 'ओम्' वाक् छन्द रश्मि के साथ संगत किंवा दीक्षित हो जाती हैं। इसकी भी प्रक्रिया इस प्रकार है कि इन दोनों मास रश्मियों (पूर्वोक्त प्रमाणों से यह विदित होता है कि शास्त्रों में मास रश्मियों को कहीं-२ ऋतु रश्मि भी कहा जाता है। यही पूर्वोक्त मैत्रायणी संहिता के प्रमाणों से स्पष्ट है।) के मध्य जब कोई प्राथमिक प्राण रश्मि व्याप्त हो जाती है, तब 'ओम्' रश्मि उस प्राण रश्मि के निकट स्वतः ही आकर उससे संयुक्त हो जाती है। इसके पश्चात् वह मिथुन आगामी क्रियाओं के लिए पूर्ण समर्थ हो जाता है। यहाँ 'साक्षात्' पद का आशय है 'अक्ष सहित'। इसका भाव यह है कि 'ओम्' रश्मि अपनी व्याप्तिरूप आधार सहित {अक्षः = (अशूङ् व्याप्तौ संघाते च)} उस अपने सम्मुख शैशिर मास रश्मियों में व्याप्त प्राण रश्मि को अपने अग्रभाग से व्याप्त करके उसके साथ ऐसा संघात करती है, जो उस प्राण रश्मि को सम्पूर्ण सृष्टि के लिए सक्रिय व अक्षय रखता है। इस प्रकार प्रत्येक प्राण रश्मि प्रत्यक्षरूपेण **'ओम्' रश्मि से अनिवार्यरूपेण दीक्षित वा संगत होती है।** इस कारण शिशिर ऋतु रश्मियों की अंगभूत मास रश्मियों के मध्य व्याप्त हो चुकी प्राण रश्मियां, जो चाहे छन्द वा मरुद् रश्मियों के रूप में संघात को प्राप्त हो चुकी हों अथवा अरण्य अर्थात् रण=संघात रूप में प्रकट न होकर अभी स्वतन्त्र रूप में ही विद्यमान हों, ऐसी दोनों ही प्रकार की प्राण रश्मियां दीक्षा रूप में ही किंवा 'ओम्' रश्मि के साथ संगत व सक्रिय होकर उन्हीं 'ओम्' रश्मियों के साथ अन्य प्राण रश्मियों में सतत व नितराम् संचरित होती रहती हैं। ऐसा करके जो प्राण रश्मियां पूर्व में लघुता व दुर्बलता को ही प्राप्त थीं, 'ओम्' रश्मि के साथ संगत होकर परुष रूप हो जाती हैं अर्थात् वे परस्पर सन्धि स्वभाव वाली एवं अति सूक्ष्म दीप्ति से युक्त हो जाती हैं। उनमें विशेष प्रकार का बल एवं सक्रियता का संचार हो जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक काल की जो प्रक्रिया पूर्व कण्डिका में वर्णित है, उसी का वर्णन यहाँ आगे के चरण के रूप में किया गया है। जब कोई प्राण रश्मि **'ओम्'** रश्मि के साथ संगत होने की इच्छा से पूर्वोक्त **'शिशिर'** ऋतु रश्मि के मध्य व्याप्त हो जाती है, उस समय **'ओम्'** रश्मि उस प्राण रश्मि की ओर स्वतः ही झुकती हुई आगे बढ़कर उस प्राण रश्मि के साथ संयुक्त हो जाती है। ध्यातव्य है कि प्राण रश्मियां **'ओम्'** रश्मि के साथ संगत होने से पूर्व निर्बल व प्रायः निष्क्रिय ही होती हैं और ज्यों ही इनका संयोग **'ओम्'** रश्मि के साथ हो जाता है, यह सबल सक्रिय व सतेज होकर आकर्षणादि बलों से युक्त हो जाती है।।

३. स पुरस्ताद्दीक्षायां प्राजापत्यं पशुमालभते।। तस्य सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात्-सप्तदशो वै प्रजापतिः, प्रजापतेराप्त्यै।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जब प्राथमिक प्राण रश्मियां दैवी वाक् तत्त्व 'ओम्' से संगत होकर दीक्षित हो जाती हैं, उसके पश्चात् प्राजापत्य पशु को सब ओर से प्राप्त किया जाता है। ध्यातव्य है कि यहाँ 'पुरस्तात्' शब्द का अर्थ 'बाद में' अथवा 'आगे' है, न कि पूर्व में। इस शब्द का प्रयोग प्रकरणानुकूल दोनों ही अर्थों में किया जाता है। इसके लिए आप्टे कृत संस्कृत-हिन्दी कोष देख सकते हैं। यहाँ प्राजापत्य पशु को प्राप्त करने का आशय है कि पूर्वोक्त प्रक्रिया के उपरान्त प्राजापत्य छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। यहाँ हम प्रजापति के विषय में कुछ आर्ष वचनों पर निम्नलिखित विचार करते हैं-

"सोमो हि प्रजापतिः" (श.५.१.५.२६)
"वायुः प्रजापतिः" (श.८.३.४.१५)
"वायुर्ह्येव प्रजापतिः" (ऐ.४.२६)
"सर्वाणि छन्दांसि प्रजापतिः" (श.६.२.१.३०)
"आनुष्टुभः प्रजापतिः" (तै.ब्रा.३.३.२.१)
"प्रजननं प्रजापतिः" (श.५.१.३.१०)

इन प्रमाणों के आलोक में प्राजापत्य छन्द रश्मियों की उत्पत्ति से अभिप्राय यह निकलता है कि यद्यपि प्राजापत्या रश्मियों से सभी प्रकार की छन्द रश्मियों का ग्रहण है, पुनरपि अनुष्टुप् प्राजापत्या रश्मियों की प्रधानता के साथ अन्य छन्द रश्मियों की भी उत्पत्ति होती है। ये सभी रश्मियां सोम वायु का रूप होती हैं। इसके साथ ही उनमें उत्पादन क्रिया की भी अधिकता किंवा तीव्रता होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सोम तत्त्व भर जाता है। अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति अभी नहीं हो पाती है। 'पशु' शब्द के अनेक अर्थों के साथ-२ सोम भी एक अर्थ है, जैसा कि निम्न आर्ष वचनों से प्रमाणित होता है-

"पशुर्वै प्रत्यक्षं सोमः" (श.५.१.३.७)
"पशवः सोमो राजा" (तै.ब्रा.१.४.७.६)

इस प्रकार यहाँ **प्राजापत्य पशु आलम्भन का अर्थ सोम तत्त्व की उत्पत्ति एवं सर्वत्र व्याप्ति ग्रहण करना चाहिए।।**

यहाँ 'तस्य' इस षष्ठ्यन्त पद का प्रयोग पंचमी अर्थ में समझना चाहिए। इससे अर्थ सिद्ध हुआ कि उपर्युक्त सोम की उत्पत्ति के पश्चात् महर्षि अग्रिम प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस चरण में पूर्वोक्त सत्रह सामिधेनी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इन सामिधेनी रश्मियों के विषय में खण्ड १.१ अवश्यमेव पठनीय है। हम यहाँ इनके विषय में पुनरुक्ति नहीं करेंगे। इन सामिधेनी रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् अग्नितत्त्व की सम्यग्रूपेण उत्पत्ति होती है। शास्त्रों में अनेकत्र अग्नि को भी प्रजापति कहा है। कुछ प्रमाण निम्नलिखित हैं-

"हिरण्मयः प्रजापतिः" (श.१०.१.४.९)
"प्रजापतिर्वै जमदग्निः" (श.१३.२.२.१४)
{जमदग्निः = प्रजमिताग्नयो वा प्रज्वलिताग्नयो वा (नि.७.२४)। जमत् ज्वलतोनाम (निघं.१.१७)}

इससे सिद्ध है कि जलता तथा प्रकाश करने की सामर्थ्य वाला अग्नि भी प्रजापति कहलाता है। इसकी उत्पत्ति इन सामिधेनी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् उस सोम तत्त्व के संघनन से होती है। इसी बात का संकेत एक अन्य ऋषि ने भी किया है-

"वायोरग्निः" (तै.उ.२.१.१) यह वायु सोम का ही रूप है। इसी सोमतत्त्व प्रधान अवस्था में जब ये सत्रह सामिधेनी ऋचाएं उत्पन्न हो जाती हैं, उस समय अग्नि तत्त्व रूपी तेजस्वी प्रजापति प्रकट हो जाता है। यहाँ महर्षि कहते हैं कि जिस प्रकार अग्निरूपी प्रजापति की उत्पत्ति में सत्रह सामिधेनी छन्द रश्मियों की भूमिका होती है, उसी प्रकार संवत्सर अर्थात् समस्त सृष्टि प्रक्रिया किंवा तारों वा नेब्यूलाओं के निर्माण में भी सत्रह तत्त्वों के समूह रूप प्रजापति की भूमिका होती है। ये सत्रह तत्त्व हैं- बारह मास नामक रश्मियां एवं पांच ऋतु रश्मियां। यहाँ हेमन्त व शिशिर दोनों को एक माना है। इस प्रकार ये सत्रह रश्मियां ही सत्रह तत्त्व रूप प्रजापति हैं। इस विषय में खण्ड १.१ द्रष्टव्य है। हमारे मत में यहाँ अन्य सत्रह पदार्थ इस प्रकार भी माने जा सकते हैं- **मूल प्रकृति, मन, ओम्, भूः, भुवः, स्वः रश्मियां, दस सूक्ष्म प्राण एवं सूत्रात्मा वायु**। इन सबके ही मेल से सम्पूर्ण संवत्सर अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया प्रारम्भ व संचालित होती है।

इन दोनों प्रकार के सत्रह पदार्थों के द्वारा ही सृष्टि प्रक्रिया के साथ-२ आदित्य लोकों तक के निर्माण की प्रक्रिया सम्पन्न होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तानुसार जब **'ओम्'** आदि वाग् रश्मियों एवं प्राथमिक प्राण रश्मियों का मेल हो जाता है, उसके पश्चात् इनकी विभिन्न क्रियाओं से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अप्रकाशित शीतलवायु तत्त्व, जिसे सोम भी कहते हैं, व्याप्त हो जाता है। इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वर्तमान विज्ञान द्वारा परिभाषित ऊर्जा अथवा द्रव्य, दोनों में से किसी की भी उत्पत्ति नहीं होती। यह पदार्थ वर्तमान किसी भी भौतिक तकनीक से अज्ञेय ही है। इसके पश्चात् इसी पदार्थ में सत्रह विशेष प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण **सर्वप्रथम विद्युत् चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होती हैं। उनमें भी सर्वप्रथम दुर्बलतम रेडियो तरंगें ही उत्पन्न होती हैं,** ऐसा मत हमने इस ग्रन्थ में पूर्व में भी दर्शाया है। इनकी उत्पत्ति में पूर्वोक्त वाक्, प्राण, मास एवं ऋतु रश्मियों की महती भूमिका होती है।।

४. तस्याप्रियो जामदग्न्यो भवन्ति।।

व्याख्यानम्- यहाँ भी 'तस्य' पद पंचमी अर्थ में है। इसका तात्पर्य है कि पूर्वोक्त प्रक्रिया के उपरान्त जमदग्निराम ऋषि अर्थात् {जमदग्निः = चक्षुर्वै जमदग्निः (श.८.१.२.३)} एक ऐसा सूक्ष्म प्राण, जो उपर्युक्त प्रकाशक अग्नितत्त्व में उत्पन्न होकर निरन्तर क्रीड़ा करता रहता है, से आप्रियदेवताक ऋ.१०.११० सूक्त रूपी ११ छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। ये छन्द रश्मियां निम्नानुसार हैं-

(१) समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः।।१।। (ऋ.१०.११०.१)

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके प्रभाव से तीक्ष्ण व भेदक बल की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से वह उत्पन्न अग्नि तत्त्व, जो उस समय तक सबमें व्याप्त हो चुका होता है, सभी प्रकार के देव एवं मनुष्य अर्थात् प्राथमिक प्राणों व सूत्रात्मा वायु के साथ विशेष संगत होकर सबका वाहक व सक्रिय कर्त्ता होता है, उसकी तीक्ष्णता बढ़ती जाती है। इसके साथ ही यह विभिन्न रश्मियों के संयोजक गुण को समृद्ध करता है।

(२) तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः।।२।। (ऋ.१०.११०.२)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उत्तम वाग् रश्मियों से युक्त, अपनी व्याप्ति से पतित न होने वाला अग्नि अपने वहन करने के गुण व मार्गों को विभिन्न प्राण

रश्मियों से अच्छी प्रकार प्रदीप्त करके उनका संगम कराता है। वह ऐसा अग्नि {मन्म = मननानि (नि. १०.४२)} अपने कर्मों से विभिन्न दीप्तियों एवं संगम क्रियाओं को समृद्ध करता है।

(३) आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान्॥३॥ (ऋ.१०.११०.३)।

इसका छन्द आर्ची त्रिष्टुप् होने से इसके छान्दस प्रभाव से अग्नितत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वाग् रश्मियों से प्रकाशित अग्नि प्राण रश्मिरूप वसुओं के साथ संगत होता हुआ प्रत्येक संगम कर्म में व्याप्त होता है। यह संयोजक धर्मी सभी पदार्थों में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है।

(४) प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम्॥४॥ (ऋ.१०.११०.४)

इसका छन्द पादनिचृत्त्रिष्टुप् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से जो आकाश तत्त्व इस अग्नि की उत्पत्ति के पूर्व उत्पन्न हो चुका होता है, वह विस्तृत होकर सर्वत्र फैल जाता है, जिसमें कालान्तर में असंख्य अन्य पार्थिव, जलीय आदि परमाणु उत्पन्न होते हैं।

(५) व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः॥५॥ (ऋ.१०.११०.५)

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस अग्निर्मय {द्वारः = द्वारो जवतेर्वा द्रवतेर्वा वारयतेर्वा (नि.८.६)} पदार्थ में अग्नि के परमाणु सब ओर व्यापक रूप से फैलकर चमकते हुए तीव्रता से गति करते हुए बढ़ते तथा अन्य परमाणुओं को रोकते व आच्छादित करते हैं। वे आग्नेय परमाणु अन्य परमाणुओं के लिए योषा रूप आश्रय देते हैं, जिससे सभी क्रियाएं विस्तृत होती जाती हैं।

(६) आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने॥६॥ (ऋ.१०.११०.६)

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु। अन्य प्रभाव से प्राणादि रश्मियों से एवं उनमें ही उत्पन्न, योषा रूप में संगमनीय उत्तम दीप्तियुक्त, उत्तम रूप वाले विविध तेज व उत्पादकता आदि गुणों से युक्त विभिन्न प्राणों को धारण करती हुई उषा व रात्रि अर्थात् प्रकाश व अंधकारयुक्त दोनों ही अवस्थाएं अपने कारण पदार्थ में ही विद्यमान होती हैं।

(७) दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता॥७॥ (ऋ.१०.११०.७)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {दैव्या होतारा = प्राणापानौ वै दैव्या होतारा (ऐ.२.४)} प्राणापान रश्मियां सूत्रात्मा वायु के साथ संगत होकर नाना रश्मियों के निर्माण हेतु विभिन्न संघातों में प्रथमा वाक् (ओम्) में व्याप्त होकर नाना परमाणुओं को नाना दिशाओं में प्रेरित करती हैं।

(८) आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु॥८॥ (ऋ.१०.११०.८)

इसका छन्द पाद निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न इडा संज्ञक छन्द व मरुद् रश्मियां, भारती अर्थात् तेजस्वी हो चुकी छन्दादि रश्मियां एवं सरस्वती अर्थात्

अग्नि की ज्वालाओं की उत्पादिका एवं उनके मध्य वर्तमान विभिन्न छन्दादि रश्मियां, ये तीनों देवी सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर संगति-क्रियाओं को उत्कृष्टतया प्रेरित करती हैं।

(९) य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्।।९।। (ऋ.१०.११०.९)

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से जो मनस्तत्त्व सबके उत्पादक प्राणापान तत्त्व किंवा प्रकाशित व अप्रकाशित रश्मियों तथा विभिन्न परमाणुओं को विभिन्न संयुक्त रूपों से युक्त करता है, वही मनस्तत्त्व इन्द्र तत्त्व वा द्युलोकों को संगत करने के लिए नाना प्रकाशित रश्मियों को भी संगत करता है।

(१०) उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन।।१०।। (ऋ.१०.११०.१०)

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह सबका नियामक मनोरूपी देव एवं विभिन्न रश्मियों का स्वामी अग्नितत्त्व एवं द्युलोक विभिन्न तेजोमयी प्राण रश्मियों का भक्षण करते हैं। वह मनस्तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों को ऋतु रश्मियों की संगति के अनुसार सूत्रात्मा वायु के साथ संगत करके नाना मास रश्मियों को सम्यग्रूपेण अभिव्यक्त करके सभी पदार्थों को प्रदान करता है।

(११) सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः।।११।। (ऋ.१०.११०.११)

इसका छन्द व छान्दस प्रभाव उपर्युक्तवत्। इसके अन्य प्रभाव से सद्योजात अग्नि तत्त्व विभिन्न संगत क्रियाओं को विशेषरूप से उत्पन्न करता हुआ सभी प्रकाशित तत्त्वों में अग्रणी होता है। उस ऐसे होतारूप अग्नि की ज्वालाओं में विभिन्न हवि पदार्थों को सभी देव अर्थात् नाना प्रकाशित पदार्थ अवशोषित करते रहते हैं।

इस प्रकार ये ग्यारह विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इन सबका देवता 'आप्री' है। आप्री के विषय में महर्षि यास्क का कथन है-

"आप्रियः कस्मात्। आप्नोतेः। प्रीणातेर्वा" (नि.८.४)

इससे स्पष्ट है कि ये सभी छन्द रश्मियां उस समय उत्पन्न सभी पदार्थों को व्याप्त कर लेती हैं, यही इनका देवत प्रभाव है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तदुपरान्त विभिन्न प्रकार की ग्यारह त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इससे अपेक्षाकृत उच्च आवृत्ति की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होती हैं, विशेषकर अवरक्त तथा दृश्य प्रकाश तरंगों की प्रधानता होने से पदार्थ ज्वालामय होने लगता है। विभिन्न रश्मियों से विभिन्न मूलकण भी उत्पन्न होने लगते हैं। उस समय अनेक प्रकार के घोषों से युक्त ज्वालाएं उठती हैं तथा अनेक मूलकण संयुक्त होकर द्वितीयक कणों यथा प्रोटोन, न्यूट्रॉन आदि का निर्माण भी होने लगता है। सम्पूर्ण पदार्थ में भारी विक्षोभ होने लगता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पदार्थ चमकने लगता है।।

५. तदाहुर्यदन्येषु पशुषु यथ ऋष्याप्रियो भवन्त्यथ कस्माद् अस्मिन् सर्वेषां जामदग्न्य एवेति।।
सर्वरूपा वै जामदग्न्यः सर्वसमृद्धाः; सर्वरूप एष पशुः सर्वसमृद्धस्तद् यज्जामदग्न्यो भवन्ति सर्वरूपतायै सर्वसमृद्ध्यै।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब पृथक्-२ चरणों में पृथक्-२ छन्दादि रश्मियों को सक्रिय व तीक्ष्ण करने के लिए पृथक्-२ ऋषि प्राणों द्वारा उत्पन्न आप्रीदेवताक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है अर्थात् पृथक्-२ छन्द रश्मियों को सक्रिय व तीक्ष्ण करने के लिए पृथक्-२ ऋषि प्राणों की भूमिका होती है, तब यहाँ कैसे केवल जमदग्नि ऋषि द्वारा उत्पन्न उपर्युक्त विविध आप्रीदेवताक त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा ही सभी प्रकार की छन्दादि रश्मियां तीक्ष्णरूप से सक्रिय हो जाती हैं? यहाँ विशेषकर पूर्वोक्त सामिधेनी छन्द रश्मियों को तीक्ष्णता प्रदान करने के सन्दर्भ में प्रश्न है। इसी क्रम में प्राणादि रश्मियों की तीक्ष्णता को भी समझना चाहिए।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि जमदग्नि ऋषि प्राण से उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां सभी रूपों से युक्त होती हैं, साथ ही समग्र रूप में समृद्धता के साथ उत्पन्न होती हैं। इनमें प्रकाशादि की मात्रा के साथ भेदक बलों की भी समृद्धता होती है। उधर वह संवत्सररूपी पशु अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग द्युलोक भी सभी प्रकार के रूपों से युक्त एवं सभी प्रकार के बलों से समृद्ध होते हैं। इस कारण ही ये जामदग्न्य त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां इन द्युलोकों सहित सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया को विभिन्न प्रकार के रूपों व बलों से समृद्ध करने में समर्थ होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त ग्यारह त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ऊर्जा को प्रबल से प्रबलतर बनाते हुए तारों के निर्माण तक में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।।

६. तस्य वायव्यः पशुपुरोळाशो भवति।।
तदाहुर्यदन्यदेवत्य उत पशुर्भवत्यथ कस्माद् वायव्यः पशुपुरोळाशः क्रियत इति।।
प्रजापतिर्वै यज्ञो, यज्ञस्यायातयामताया इति ब्रूयाद्; यदु वायव्यस्तेन प्रजापतेर्नैति; वायुर्ह्येव प्रजापतिः।।
तदुक्तमृषिणा-पवमानः प्रजापतिरिति।।
सत्रमु चेत् संन्युप्याग्नीन् यजेरन् सर्वे दीक्षेरन् सर्वे सुनुयुर्वसन्तमभ्युदवस्यत्यूर्ग्वै वसन्त इषमेव तदुर्जमभ्युदवस्यति।।४।।

{पुरोडाशः = ततिर्वै यज्ञस्य पुरोडाशः (कौ.ब्रा.१०.५)}

व्याख्यानम्- महर्षि कहते हैं कि संवत्सर पशु अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया किंवा विशाल लोक समूहरूप पदार्थ को पूर्व में प्रकाशित करने तथा उनके अन्दर विभिन्न प्रकार की संयोग प्रक्रिया की शृंखला को चलाने वाली रश्मियां वायुदेवताक होती हैं। इसका तात्पर्य है कि ये रश्मियां प्राथमिक प्राणरूप वायु देव में आश्रित होती हैं। ये रश्मियां सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया में व्याप्त विभिन्न छन्द रश्मियों को प्राण वा अन्न रूप प्रदान करके उनके मध्य विविध संयोग प्रक्रियाओं को सम्पादित करती हैं। वायुदेवताक होने से विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों की सक्रियता समृद्ध होती है। प्राथमिक प्राण रश्मियों में भी धनंजय वायु विशेषतः सर्वाधिक आशुगामी होकर विभिन्न रश्मियों को वहन करता है।।

यहाँ महर्षि किन्हीं विद्वानों का प्रश्न उपस्थित करते हुए कहते हैं कि जब संवत्सर में विभिन्न छन्दादि रश्मियां अन्य देवता, विशेषकर प्रजापति देवता वाली होती हैं, जिनके प्रभाव से विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति प्रक्रिया विशेषतया सम्पादित होती है, तब उनको पूर्व में प्रकाशित करने वाली छन्द रश्मियां वायुदेवताक ही क्यों होती हैं? वायु अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों की प्रधानता से सर्ग प्रक्रिया कैसे प्रजापति रूप धारण करके अग्रसर होती है?।।

इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि **यज्ञ प्रक्रिया ही प्रजापति** कहलाती है, क्योंकि इस सम्पूर्ण सृष्टि में विभिन्न रश्मियों के संयोग-वियोग के कारण ही सम्पूर्ण प्रजारूप परमाणुओं की उत्पत्ति व रक्षा होती है। इस कारण यह सृष्टि-यज्ञ ही प्रजापति रूप है। यहाँ 'यातयामः' का आशय है {यामः = याति गच्छति येन स यामो रथः (म.द.ऋ.भा.१.३४.१)} जिसका रथ अर्थात् गमन-सामर्थ्य चला गया

है। इस प्रकार 'अयातयामतायै' का अर्थ है- 'निष्क्रियता आदि दोष के परिहार के लिए'। इस प्रकार यहाँ महर्षि कहते हैं कि वायुदेवताक छन्द रश्मियों का प्रभाव यह होता है कि इससे विभिन्न छन्दादि रश्मियों की निष्क्रियता वा दुर्बलता को दूर करने में विशेष सहयोग मिलता है। विभिन्न प्राण रश्मियों रूपी वायु प्रत्येक छन्दादि रश्मि को सक्रियता प्रदान करता है। यहाँ यह नहीं जानना चाहिए कि इन वायव्य छन्द रश्मियों में प्रजापति गुण की विद्यमानता सर्वथा नहीं है किंवा इन रश्मियों का यज्ञरूप प्रजापति से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। नहीं, ऐसा नहीं है। वस्तुतः **वायु भी प्रजापति है** अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियों रूप वायु प्रजापति रूप ही हैं, क्योंकि इन रश्मियों के बिना किसी भी छन्दादि रश्मि की न तो उत्पत्ति ही हो सकती है और न उत्पन्न रश्मियों की रक्षा ही हो सकती है। इन प्राण रश्मियों के बिना इस सृष्टि में कोई भी संयोग-वियोगादि प्रक्रिया सम्भव नहीं और संयोग-वियोग प्रक्रिया के अभाव में सृष्टि प्रक्रिया भी सम्भव नहीं, इस कारण भी वायु प्रजापति रूप है।।

इस वायु तथा प्रजापति के एकत्व को फिर दृढ़ता से कहते हैं कि वायु व यज्ञरूप प्रजापति का एकत्व असित काश्यपो देवलो वा ऋषि {देवलः = दीव्यत्यधर्मिणो विजिगीषति देवलः (उ.को.१.१०६)} अर्थात् स्वयं बन्धन से मुक्त परन्तु दूसरी रश्मियों को बांधने तथा बाधक रश्मियों को जीतने में समर्थ प्रकाशमान कूर्म नामक उपप्राण से आप्रियदेवताक तथा अनुष्टुप् छन्दस्क

त्वष्टा॑रमग्र॒जां गो॒पां पु॑रो॒यावा॑नमा हु॑वे। इन्दु॒रिन्द्रो॒ वृषा॒ हरि॒: पव॑मानः प्र॒जाप॑तिः।।६।। (ऋ.९.५.९)

के प्रभाव से होता है। इस ऋचा में विद्यमान 'पवमानः प्रजापतिः' दो पद वायु व प्रजापति को एकत्व में बांधने में सहायक होते हैं। यहाँ 'पवमान' के सम्बन्ध में आर्ष मत है- "प्राणो वै पवमानः" (श.२.२.१.६), "अयं वायुः पवमानः" (श.२.५.१.५)। इस प्रकार वायु व प्रजापति का एकत्व सिद्ध होता है। यहाँ वायु व प्रजापति का अर्थ पूर्ववत् समझें। इसके देवत प्रभाव से यह एकत्व सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होता है। ऐसा नहीं है कि कहीं यह एकत्व हो और कहीं नहीं हो।।

इस प्रजापतिरूप संगतीकरण की प्रक्रिया की चर्चा को सूक्ष्मता में ले जाते हुए कहते हैं कि जब द्वादशाह अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों व वाग् रश्मियों के मध्य यह संगतीकरण प्रक्रिया स्थापित वा उत्पन्न होती है, उस समय सभी अग्निरूप सर्वाधिक अग्रणी भूमिका निभाने वाली प्राथमिक प्राण रश्मियां परस्पर संगत होने लगती हैं और इस संगतीकरण से भी पूर्व वे 'ओम्' वाग् रश्मि के द्वारा अनिवार्यतः दीक्षित होती हैं। उस समय उन सभी प्राण रश्मियों में विशेष बल एवं क्रिया का संचार होने लगता है। उस समय **वे प्राण रश्मियां परस्पर एक-दूसरे को भींचती, खींचती व दबाती हैं। उनमें परस्पर घर्षण सम्पीडन होता है।** उस समय पूर्वोक्त वसन्त ऋतु रश्मियों की ओर वे प्राण रश्मियां सब ओर से प्रवृत होती हैं। इन्हीं वसन्त ऋतु रश्मियों, जिनके स्वरूप पर पूर्व में इसी खण्ड में लिख चुके हैं, {उदवस्यति = (उदवसितम् = उद्+अव+सो+क्त = आवास - आप्टेकोष)} में वे प्राण रश्मियां सर्वतः अवस्थित हो जाती हैं। ये हिंकार रूप वसन्त रश्मियां ऊर्जस्विनी होती हैं। वे 'हिम्' रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के मध्य व्याप्त होकर उन्हें तेजस्वी बनाकर वाग् रश्मियों के साथ संगत करके किंवा उसके साथ संगत प्राण रश्मियों को परस्पर संगत करके विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति में सहायक होती हैं। ये वसन्त रश्मियां उन संगमनीय रश्मियों के मध्य संधि का कार्य करती हैं। ये रश्मियां अन्न व बल दोनों का ही रूप होती हैं। इनका वाग् रूप होना तो सुस्पष्ट है, ही। इस प्रकार इनके साथ संगत होकर विभिन्न प्राण रश्मियां परस्पर संगत होने के लिए उत्कृष्टतया गतिशील एवं दीप्तिमयी होती एवं विभिन्न बाधकों से रक्षित भी होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आरम्भिक योगदान वायु रूप प्राण, अपान आदि प्राण रश्मियों, साथ ही वायु रूप छन्दादि रश्मियों का होता है। इस सृष्टि की प्रत्येक भौतिक, रासायनिक एवं जैविक आदि अभिक्रियाओं में इन्हीं रश्मियों का अनिवार्य योगदान रहता है। ऊर्जा, द्रव्य अथवा आकाश सभी के निर्माण में इन रश्मियों की ही भूमिका है। इनके बिना यह पूर्ण व उत्कृष्ट सृष्टि क्षण भर में समाप्त हो जाएगी। सम्पूर्ण ऊर्जा तथा मूलकण विलीन हो जाएंगे। यह सिद्धान्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वा सृष्टि में सर्वदा सर्वथा लागू होता है। जब ये सूक्ष्म प्राण रश्मियां **'ओम्'** रश्मि के

साथ संयुक्त होकर परस्पर संगत होती हैं, तब **'हिमू'** नामक रश्मि का भी इसमें अनिवार्य योगदान होता है। उस संगतीकरण वा सम्पीडन में वे प्राण रश्मियां इसी रश्मि को सन्धिरूप बनाकर एक-दूसरे को सम्पीडित करके अनेकशः युग्म बना कर अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं।।

ॐ इति १९.४ समाप्तः ॐ

❀ अथ १९.५ प्रारभ्यते ❀

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. छन्दांसि वा अन्योन्यस्यायतनमभ्यध्यायन्-गायत्री त्रिष्टुभश्च जगत्यै चायतनमभ्यध्यायत्, त्रिष्टुब्गायत्र्यै च जगत्यै च, जगती गायत्र्यै च त्रिष्टुभश्च, ततो वा एतं प्रजापतिर्व्यूहूळच्छन्दसं द्वादशाहमपश्यत्; तमाहरत्, तेनायजत तेन स सर्वान् कामांश्छन्दांस्यगमयत्।।
सर्वान् कामान् गच्छति य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- जब प्राण व वाग् रश्मियों के मेल तथा मनस्तत्त्व रूपी प्रजापति की प्रेरणा से गायत्र्यादि छन्दों की उत्पत्ति हो जाती है, उसके पश्चात् होने वाली क्रियाओं की चर्चा करते हुए कहते हैं, कि ये उत्पन्न छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे की ओर संगत होने के लिए गतिशील होती हैं, वे एक-दूसरे का स्थान लेने के लिए प्रयास करने लगती हैं। इस क्रम में गायत्री छन्द रश्मियां, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों का स्थान लेने किंवा उनके साथ संगत होने का प्रयास करती हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां, गायत्री तथा जगती छन्द रश्मियों का तथा जगती छन्द रश्मियां, गायत्री व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का स्थान लेने का प्रयास करती हैं किंवा उनके साथ संगत होने का प्रयास करती हैं। इस प्रकार सभी छन्द रश्मियों के मध्य भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिससे वे छन्द रश्मियां इधर-उधर बिखर जाती हैं, फैल जाती हैं। उस समय मनस्तत्त्व रूप प्रजापति उन बिखरी हुई छन्द रश्मियों से युक्त पूर्वोक्त द्वादशाह विभिन्न प्राण रश्मिसमूह को आकृष्ट करता है, उन्हें अपनी ओर समेटने लगता है। इसके पश्चात् वह **मनस्तत्त्व ईश्वरीय प्रेरणा से उन्हें नियन्त्रित करके परस्पर सम्यग्रूपेण संगत करने लगता है।** इस प्रकार सभी छन्द रश्मियां अग्रिम रश्मि वा कणों को उत्पन्न करने के लिए समुचित रूप से संगत होने लगती हैं। उन रश्मियों में उचित मात्रा व स्वरूप वाले बलों की उत्पत्ति हो जाती है और इससे नाना पदार्थ उत्पन्न होने लगते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब गायत्री आदि छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, उस समय वे परस्पर एक-दूसरे की ओर अनियन्त्रित व अव्यवस्थित ढंग से संगत होने के लिए दौड़ने लगती हैं। इस प्रयास में रश्मियां इधर उधर बिखरने लगती हैं। उस समय **ईश्वरीय प्रेरणा से मनस्तत्त्व** उन्हें अपनी आकर्षण शक्ति के द्वारा नियन्त्रित करके उचित स्वरूप, गति व बल प्रदान करके सृष्टि प्रयोजनानुसार संगत करने लगता है। **सम्पूर्ण सृष्टि सप्रयोजन एवं बुद्धिपूर्वक व्यवस्थित है। यह बुद्धिपूर्वता गुण परमात्म-चेतना के सानिध्य से ही उत्पन्न होता है।** इसी कारण विभिन्न छन्द रश्मियां उचित रीति से परस्पर संगत होकर नाना प्रकार के विकिरणों व मूल कणों का निर्माण करने योग्य होने लगती हैं।।

२. छन्दांसि व्यूहत्ययातयामतायै।।
छन्दांस्येव यूहति; तद्यथाऽदोऽश्वैर्वाऽनळुद्भिर्वाऽन्यैरन्यैरश्रान्ततरैरश्रान्ततरैरुपविमोकं यान्त्येवमेवैतच्छन्दोभिरन्यैरन्यैरश्रान्ततरैरश्रान्ततरैरुपविमोकं स्वर्गं लोकं यन्ति; यच्छन्दांसि व्यूहति।।

{अनड्वान् = अग्निरेष यदनड्वान् (श.७.३.२.१), वोढाऽनड्वान् (तै.सं.७.५.१८.१)।

अश्वः = किरणनाम (निघं.१.५ - वै.को. से उद्धृत), इन्द्रो वा अश्वः (कौ.ब्रा.१५.४), वज्री वा एष यदश्वः (तै.ब्रा.१.१.५.५)}

व्याख्यानम्- छन्द रश्मियों की व्यवस्थित संगति की पूर्वोक्त प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब यह प्रक्रिया चल रही होती है, उस समय मनस्तत्त्व रूप प्रजापति परमात्म-प्रेरणा से शिथिल वा दुर्बल छन्द रश्मियों को सक्रिय व सबल बनाने हेतु उन्हें निरन्तर व्यवस्थित रूप प्रदान करता रहता है। ऐसा करने के लिए उन्हें इधर-उधर स्थानान्तरित भी करता रहता है। इसे अगली कण्डिका में स्पष्ट किया गया है।।

जब छन्द रश्मियों का विन्यास हो रहा होता है, उस समय दो वा दो से अधिक छन्द रश्मियों के परस्पर संगत होने के प्रयास के समय जब कोई छन्द रश्मि संगम योग्य शक्तिसम्पन्न नहीं होती है अर्थात् वह दुर्बल एवं शिथिल होती है, उस समय मनस्तत्त्व उस छन्द रश्मि की छंटनी करके उस स्थान से दूर करके अन्य उपयुक्त सक्रिय छन्द रश्मियों को उस शिथिल व दुर्बल छन्द रश्मियों के स्थान पर अन्य सक्रिय व सतेज छन्द रश्मि के साथ संयुक्त कर देता है। ध्यातव्य है कि **दुर्बल छन्द रश्मियां परस्पर संगत नहीं हो सकतीं।** हां, सभी छन्द रश्मियों का बल एवं तेज समान भी नहीं होता, इस कारण संगमनीय छन्द रश्मियों का तेज व बल उनके पारस्परिक संयोग व एक-दूसरे के स्वरूप पर निर्भर करता है। यहाँ रश्मियों की इस छंटनी की तुलना करते हुए कहते हैं कि जैसे लोक में कोई रथी अपने रथ पर यात्रा करते समय पर थके घोड़ों अथवा बैलों को समय-२ पर रथ से खोल कर विश्राम कराता तथा उनके स्थान पर अन्य ऐसे घोड़ों वा बैलों, जो थके हुए न हों, को रथ में जोतता है और यह क्रम यात्रा पर्य्यन्त चलता रहता है, उसी प्रकार मनस्तत्त्व द्वारा छन्द रश्मियों का यह विन्यास सतत चलता रहता है। इस उदाहरण से एक अत्यन्त गम्भीर रहस्योद्घाटन होता है कि रथ में थके हुए **बैल अथवा घोड़े विश्रामोपरान्त पुनः तरो-ताजा होकर रथ में जोतने योग्य हो जाते हैं, उसी प्रकार विभिन्न छन्द रश्मियां भी परस्पर संघर्ष, इधर-उधर संगतीकरण के प्रयास में दुर्बल भी हो जाती हैं, जिन्हें मनस्तत्त्व दूर हटा देता है। फिर वे छन्द रश्मियां स्वयं ही किंवा ईश्वर प्रेरित मनस्तत्त्व से तेज व बल प्राप्त प्राणादि रश्मियों के साथ संगत होकर पुनः अन्य छन्द रश्मियों के साथ संगत होने योग्य बल प्राप्त कर लेती हैं।** इस सृष्टि में यही खेल अनवरत चलता रहता है।

यहाँ **'अनड्वान्'** व **'अश्व'** का यौगिक अर्थ, जो उपर्युक्त आर्ष प्रमाणों से प्राप्त होता है, का ग्रहण करने पर छन्द रश्मियों की इस व्यवस्था की उपमा विभिन्न विकिरणों वा परमाणुओं के पारस्परिक संयोग से भी की जा सकती है। जिस प्रकार इनके संयोग में भी समुचित शक्ति के कणों का ही संयोग हो सकता है, मनमाने ढंग से नहीं तथा अशक्त कणों वा किरणों को दूर कर दिया जाता है, उसी प्रकार छन्द रश्मियों की संगम प्रक्रिया होती है। इन छन्द रश्मियों के इस विपर्यास से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में छन्द रश्मियां व्याप्त हो जाती हैं। उनकी नाना विन्यास-व्यवस्था अनवरत चलकर सृष्टि प्रक्रिया को सतत आगे बढ़ाती रहती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब विभिन्न छन्दादि रश्मियों का परस्पर संयोग हेतु संघर्षण होता है, उस अव्यवस्था भरी भागदौड़ में कुछ छन्द रश्मियों का बल क्षीण हो जाता है, जिसके कारण वे रश्मियां अपने सम्मुख वर्तमान अन्य सक्रिय सबल छन्दादि रश्मि के साथ संयुक्त नहीं हो पाती। उस समय मनस्तत्त्व द्वारा दुर्बल छन्द रश्मियों को पृथक् कर दिया जाता है और उनके स्थान पर अन्य समुचित बल से युक्त छन्द रश्मियों को लाकर संगत किया जाता है। कुछ काल पश्चात् दुर्बल छन्द रश्मियां विभिन्न प्राणादि रश्मियों के साथ संगत होकर पुनः सबल हो जाती हैं। इसके पश्चात् वे पुनः संगम योग्य हो जाती हैं। जिस प्रकार विभिन्न क्वाण्टाज् एवं इलेक्ट्रोन्स अथवा आयन्स आदि के संयोग के समय ऊर्जा, आवेश अथवा संयोजकता का सामंजस्य अनिवार्य होता है, अन्यथा कोई भी भौतिक अथवा रासायनिक संयोग सम्भव नहीं, उसी प्रकार छन्द रश्मियों के संयोग में भी सामंजस्य अनिवार्य है। छन्द रश्मियों की इस व्यवस्था को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है-

जैसे कोई रथ में सवार व्यक्ति यात्रा में थके हुए घोड़ों को मुक्त करके विश्राम कराता तथा बिना थके सबल घोड़ों को जोतता है और सम्पूर्ण यात्रा में यही क्रम चलता रहता है, उसी प्रकार दुर्बल

छन्द रश्मियों को पृथक् करके सवल छन्द रश्मियों को संयोगार्थ आगे लाया जाता है।।

३. इमौ वै लोकौ सहाऽऽस्ताम्; तौ व्यैताम्, नावर्षन्न समतपत्, ते पञ्चजना न समजानत, तौ देवाः समनयंस्तौ संयन्तावेतं देवविवाहं व्यवहेतां, रथन्तरेणैवेयममूं जिन्वति, बृहताऽसाविमाम्।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकारेण विभिन्न छन्द रश्मियों के संयोग की नाना प्रकार की प्रक्रियाओं के चलते कालान्तर में नाना प्रकार के प्रकाशित एवं अप्रकाशित कण वा तरंगों की उत्पत्ति होती है। इसी क्रम में महर्षि चर्चा करते हुए कहते हैं कि प्रारम्भ में दोनों ही लोक अर्थात् प्रकाशित एवं अप्रकाशित छन्द रश्मियां एक रूप में विद्यमान थीं और वह रूप भी लगभग अप्रकाशित किंवा अत्यन्त अदृश्य दीप्ति से युक्त था। यहाँ 'लोक' का अर्थ छन्द रश्मियां समझना चाहिए। इस बात की पुष्टि "छन्दांसि वै सर्वे लोकाः" (जै.ब्रा.१.३३२) से होती है। पूर्व में भी हम अनेकत्र छन्द वा प्राण रश्मियों के प्रकाशित वा तेजस्वी होने की प्रक्रिया पर अनेकविध प्रकाश डाल चुके हैं। इसी कारण हमारा मत है कि प्रारम्भ में सभी छन्द रश्मियां अप्रकाशित होती हैं, जो नाना प्रकार की प्रक्रियाओं के सम्पन्न होने के उपरान्त प्रकाशित व अप्रकाशित दो भागों में विभक्त हो जाती हैं। इनमें से कालान्तर में प्रकाशित छन्द रश्मियां देव तथा अप्रकाशित छन्द रश्मियां असुर पदार्थ का रूप ले लेती हैं। उस समय की स्थिति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि उस समय {वर्षा = वर्षा वै सर्वऽऋतवः (श.२.२.३.७)} वे छन्द रश्मियां विभिन्न ऋतु रश्मियों, विशेषकर वर्षा ऋतु रश्मियों, जिनके विषय में पूर्व खण्ड में प्रकाश डाला गया है, से प्रचुरतया युक्त नहीं थीं। इस कारण विभिन्न छन्द रश्मियों का पारस्परिक बंधन होने में विशेष कठिनाई आती है और ऐसा न होने अर्थात् रश्मि बंधन किंवा संयोग न होने पर छन्द रश्मियों के सन्तापक गुण में भी समुचित वृद्धि नहीं हो पाती है। ऐसी अवस्था में 'पञ्चजन' नामक पदार्थ अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं अर्थात् उनका पृथक्-२ स्वरूप न तो प्रकट ही हो पाता है और न इसकी प्रक्रिया ही प्रारम्भ हो पाती है। उस समय उन पांचों प्रकार के पदार्थों में पारस्परिक कोई अन्योऽन्य प्रतिक्रिया नहीं हो पा रही थी, जिससे उनका अस्तित्त्व ही व्यर्थ जैसा हो रहा था। यहाँ 'पञ्चजन' का तात्पर्य देव-मनुष्यादि किंवा ब्राह्मण-क्षत्रियादि दोनों वर्गों से मानना चाहिए। तव ऐसी स्थिति में उनका साथ मिलकर सृष्टि प्रक्रिया को संचालित वा निर्मित करना तो सम्भव ही नहीं है। यहाँ 'पञ्चजन' नामक पदार्थ क्या है? इस विषय में ३.३१.४ में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। हम यहाँ पुनः पिष्टपेषण करना अनुपयुक्त समझते हैं। इस अस्पष्टता व अव्यवस्था की स्थिति में देव अर्थात् मन से प्रेरित प्राथमिक प्राण रश्मियों ने उन प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही रश्मियों को एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया। इसके पश्चात् उन प्राण रश्मियों ने इन पांचों पदार्थों को मिलाकर उनका देव विवाह कर दिया। 'देववाहन' शब्द के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का मत है- "मनो वै देववाहनम्" (श.१.४.३.६)। इस कथन से संकेत मिलता है कि उस समय मनस्तत्त्व की मुख्य भूमिका से उन पांच पदार्थों में प्राथमिक प्राण रश्मियों ने विशेष प्रकार की वहन करने की क्षमता एवं वेग-बल आदि गुणों का संचार कर दिया। मनस्तत्त्व ने मानो वाहन का कार्य किया। इससे वे पांचों पदार्थ स्पष्ट रूप से अपने-२ गुण-कर्म व स्वभावों को अभिव्यक्त करने लगे। संगमनीय पदार्थ संगम करने लगे, तो वियुक्त होने योग्य पदार्थ वियोग धर्म से युक्त होने लगे। {बृहत् = प्राणो बृहत् (तां.७.६.१४), एतद्वै बृहतः स्वमायतनं यत् त्रिष्टुप् (तां.४.४.१०)। रथन्तरम् = गायत्रं वै रथन्तरम् (तां.५.१.१५), अपानो रथन्तरम् (तां.७.६.१४)} मनस्तत्त्व कैसे उपर्युक्त प्रकाशित व अप्रकाशित छन्द रश्मियों को परस्पर संगत करता है? इस विषय में महर्षि कहते हैं कि मनस्तत्त्व की प्रेरणा से अप्रकाशित रश्मियां रथन्तर किंवा अपान प्रधान गायत्री रश्मियों के द्वारा प्रकाशित रश्मियों को तथा प्रकाशित रश्मियां बृहत् किंवा प्राण प्रधान त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा अप्रकाशित रश्मियों को तृप्त करती हैं। इस प्रकार परस्पर तृप्त हुई वे दोनों प्रकार की छन्द रश्मियां उपुर्यक्त पांचों प्रकार के पदार्थों को व्यक्ततर व सक्रिय कर देती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक काल में दृश्य व डार्क दोनों प्रकार का पदार्थ व दोनों ही ऊर्जाएं एक ही प्रकार के पदार्थ के रूप में अप्रकट रूप में विद्यमान थीं। इसका तात्पर्य यह है कि

उस समय दृश्य पदार्थ व ऊर्जा तथा डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी, दोनों की ही उत्पत्ति नहीं हो पायी थी। इस कारण पदार्थ अदृश्य रूप में ही विद्यमान था। उसके पश्चात् पूर्वोक्त अनेक क्रियाओं के सम्पन्न होने के पश्चात् दो प्रकार का पदार्थ उत्पन्न हुआ। उस समय पांच प्रकार के देव मनुष्यादि विभिन्न पदार्थ, जिन्हें **पञ्चजन** कहा है, तथा **३.३१.४** में जिन्हें विस्तार से वर्णित किया गया है, परस्पर अन्योऽन्य क्रियाएं नहीं कर पा रहे थे। इस कारण सृष्टि प्रक्रिया अवरुद्ध थी। उस समय मन से प्रेरित प्राथमिक प्राण रश्मियां दोनों प्रकार के पदार्थ को मनस्तत्त्व के साथ विशेष संयुक्त करके मिला देती हैं अर्थात् उनमें आकर्षण, प्रतिकर्षण व प्रक्षेपक बलों की तीव्रता हो जाती है। उस समय दृश्य पदार्थ में प्राण प्रधान त्रिष्टुप् रश्मियों की प्रधानता तथा डार्क पदार्थ में अपान प्रधान गायत्री रश्मियों की प्रधानता रहती है। इनके कारण ही ये दोनों प्रकार के पदार्थ अपने-२ सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं।।

४. नौधसेनैवेयममूँ जिन्वति, श्यैतेनासाविमां; धूमेनैवेयममूं जिन्वति, वृष्ट्याऽसाविमां; देवयजनमेवेयममुष्यामदधात्, पशूनसावस्याम्।। एतद्वा इयममुष्यां देवयजनमदधाद् यदेतच्चन्द्रमसि कृष्णमिव।। तस्मादापूर्यमाणपक्षेषु यजन्त एतदेवोपेप्सन्ते।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर महर्षि कहते हैं कि अप्रकाशित पदार्थ प्रकाशित पदार्थ को नौधससाम से तथा प्रकाशित पदार्थ अप्रकाशित पदार्थ को श्यैतसाम से तृप्त करता है। यहाँ आचार्य सायण ने नौधससाम से राहूगण गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से उत्पन्न, इन्द्रदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मि

इममिन्द्र सुतं पिंब ज्येष्ठममर्त्यं मदंम्। शुक्रस्यं त्वाभ्यंक्षरन्धारां ऋतस्य सादंने।।४।। (ऋ.१.८४.४)

का ग्रहण किया है तथा श्यैतसाम से नृमेधऋषि अर्थात् विभिन्न प्रकार की नृरूप रश्मियों अर्थात् विभिन्न नयनकर्त्री मरुद् रश्मियों के संगमकर्ता सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं आर्ची स्वराड् बृहती छन्दस्क -

त्वामिदा ह्यो नरोऽ पींप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
स इंन्द्र स्तोमंवाहसामिह श्रुध्युप स्वसंरमा गंहि।।६।। (ऋ.८.६६.१)

छन्द रश्मि का ग्रहण किया है। हम यहाँ सर्वप्रथम नौधससाम के प्रभाव पर विचार करते हैं- इसके छान्दस व दैवत प्रभाव से इन्द्रतत्त्व समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से {धारा = वाङ्नाम (निघं.१.११)} विभिन्न वाग् रश्मियां शीघ्रकारी प्राण रश्मियों में व्याप्त होकर इन्द्र तत्त्व को विभिन्न पदार्थों को अपने बल से अवशोषित करने में समर्थ बनाती हैं। ऐसा करके वह इन्द्र तत्त्व महान् और अविनाशी बल व सक्रियता को प्राप्त कर लेता है।

{नोधाः = नौति स्तौति नूयते स्तूयते वा स नोधाः (उ.को.४.२२७), नोधा ऋषिः भवति नवनं दधाति (नि.४.१६), (नवते गतिकर्मा - निघं.२.१४), बृहद् ध्येतत्परोक्षं यन्नौधसम् (तां.७.१०.८)} इन आर्ष वचनों से निष्कर्ष निकलता है कि उपर्युक्त नौधस सामरूप छन्द रश्मि बृहत् साम के समान ही कार्य करती है। यहाँ अप्रकाशित पदार्थ का अर्थ असुर पदार्थ नहीं, बल्कि पार्थिव अथवा जलीय पदार्थ है, जिसमें अपना स्वयं का प्रकाश नहीं होता, बल्कि वह अग्नि के मेल से प्रकाशित व उष्ण होता रहता है। इसी प्रकार प्रकाशित पदार्थ का आशय समस्त दृश्य पदार्थ न होकर केवल अग्नि तत्त्व है। यहाँ महर्षि कहते हैं कि ऐसा अप्रकाशित किंवा पार्थिव आदि पदार्थ इस नौधससाम नामक उपर्युक्त निचृदनष्टुप् छन्द रश्मि के द्वारा अग्नि के परमाणुओं को तृप्त करता हैं। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने अपने संस्कृत धातुकोष में 'जिवि' प्रीणनार्थ धातु का अर्थ 'मुक्त करना' भी किया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि जब अग्नि का परमाणु पार्थिव आदि परमाणुओं से मुक्त होता है, उस समय इस छन्द रश्मि की भी अन्य छन्द रश्मियों के साथ भूमिका होती है। यह छन्द रश्मि उसे गति देते में भी भूमिका निभाती है। इसके साथ ही जब कोई अग्नि परमाणु किसी पार्थिवादि परमाणु से संयुक्त होता है, उस समय यह छन्द रश्मि उस अग्नि के परमाणु को आकर्षित करने एवं पार्थिव परमाणु में व्याप्त होने तथा एक दीप्ति

उत्पन्न करने में अपनी अनिवार्य भूमिका निभाती है। इससे सिद्ध है कि यह छन्द रश्मि इन दोनों परमाणु के मध्य अन्योऽन्य क्रिया के लिए आवश्यक भूमिका निभाती है। इसके वृहत् साम रूप होने का तात्पर्य यह है कि यह छन्द रश्मि पार्थिव परमाणु से निकल कर अग्नि के परमाणु में व्याप्त हो जाती है किंवा उसे पूर्णतः घेर लेती है। अव हम श्यैतसाम नामक उपर्युक्त छन्द रश्मि के प्रभाव पर विचार करते हैं-

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी एवं व्यापक रूप धारण करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह वज्ररूप रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को अवशोषित करके विभिन्न तेजस्वी वाग् रश्मियों को सर्वतः व्याप्त करता है।

इस आर्ची स्वराड् वृहती छन्द रश्मि को यहाँ 'श्यैतसाम' कहा गया है। इसका तात्पर्य समझने हेतु हमें निम्न आर्ष कथनों पर विचार करना है-

"रथन्तरं ह्येतत्परोक्षं यच्छ्यैतम्" (तां.७.१०.८)

{रथन्तरम् = प्रजननं वै रथन्तरम् (तां.७.७.१६), अग्निर्वै रथन्तरम् (ऐ.५.३०)}

इन वचनों का तात्पर्य है कि यह छन्द रश्मि अग्नि की रमणीय किरणों की भाँति विभिन्न परमाणुओं को तारने एवं उनके मिथुन वनाने में विशेष भूमिका निभाती है। इस छन्द रश्मि के द्वारा अग्नि के परमाणु पार्थिव आदि परमाणुओं से अपने को पृथक् करते हैं। इससे संकेत मिलता है कि जव किसी पार्थिव परमाणु से आग्नेय परमाणु मुक्त होता है, तो जहाँ पार्थिव परमाणु पूर्वोक्त नौधससाम छन्द रश्मि को मुक्त करता है, वहीं आग्नेय परमाणु इस श्यैतसाम छन्द रश्मि को मुक्त करता है। यह छन्द रश्मि आग्नेय परमाणु से मुक्त होकर पार्थिवादि परमाणुओं में व्याप्त हो जाती है परन्तु उन्हें प्रकाशित नहीं करती। इसके साथ ही जव कोई आग्नेय परमाणु किसी अन्य परमाणु से संयुक्त होता है, उस समय यह श्यैतसाम छन्द रश्मि आग्नेय परमाणु में से निकलकर पार्थिव परमाणु में व्याप्त होकर उसे पूर्णतः आच्छादित कर लेती है किंवा इस छन्द रश्मि के सहयोग से आग्नेय परमाणु उस पार्थिव परमाणु में व्याप्त होकर उसे प्रकाशित कर देता है, इसे ही तृप्त करना कह सकते हैं।

इसके पश्चात् ऋषि कहते हैं कि पार्थिव परमाणु धूम के द्वारा अग्नि के परमाणु को संयुक्त वा मुक्त करता है। इसका तात्पर्य है कि **जब भी इन दोनों का संयोग होता है, उस समय दोनों में कम्पन होने लगता है। बिना कम्पन के यह संयोग वा वियोग की क्रिया सम्भव ही नहीं हो सकती।** इसमें भी पार्थिव परमाणु ही आग्नेय परमाणु को अपने वल से विशेषरूपेण कंपाता है। इसी प्रक्रिया में आग्नेय परमाणु वृष्टि अर्थात् अपनी वर्षण शक्ति के द्वारा पार्थिव परमाणु के साथ संयुक्त हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि संयोग के समय वह अग्नि का परमाणु पार्थिव परमाणु द्वारा ऐसे सोख लिया जाता है, जैसे वर्षा के जल को धरती सोख लेती है। वह अग्नि का परमाणु अपने अन्दर विद्यमान नाना प्राणादि रश्मियों की वृष्टि करता हुआ विखरता हुआ ही पार्थिव परमाणु से संयुक्त होता है। जव वह पार्थिव परमाणु से वियुक्त होता है, उस समय भी वर्षा की वूंद जैसे सिमटते हुए ही वाहर मुक्त होता है, फिर फैला हुआ अपनी यात्रा पर चल पड़ता है।।

इसके आगे कहा गया है कि पार्थिव परमाणु आग्नेय परमाणुओं में व्याप्त होकर ही देवयजन क्रिया करते हैं अर्थात् नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने हेतु विभिन्न प्राणादि रश्मियों का यजन करते हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है-

"अग्निर्वाव देवयजनम्" (मै.३.८.४)

"अग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते" (काठ.२५.३; क.३८.६)

यह देवयजन पार्थिव परमाणुओं के द्वारा होता है, इस कारण कहा है-

"भौमं देवयजनम्" (गो.पू.२.१४)

अग्नि के अभाव में पार्थिव परमाणुओं में यह संयोगादि क्रिया कभी नहीं हो सकती है। यहाँ 'अग्नि' का अर्थ प्राण रश्मियां भी है। इस प्रकार विभिन्न परमाणु जव परस्पर अन्योऽन्य क्रिया करते हैं, तव प्राण रश्मियों में ही करते हैं। उधर कहा कि अग्नि के परमाणु ही पार्थिव परमाणुओं में पशुओं को निर्मित वा स्थापित करते हैं। इसका अर्थ है कि **अग्नि के परमाणुओं के सान्निध्य-संयोग से ही पार्थिव परमाणु और वे आग्नेय परमाणु स्वयं भी दृश्यरूप धारण कर पाते हैं। बिना पार्थिव आदि परमाणुओं के एकाकी अग्नि के परमाणु भी दृश्य रूप में कभी नहीं आते और बिना अग्नि के परमाणुओं के संयोग के पार्थिव परमाणु भी दृश्य रूप कभी धारण नहीं कर पाते।** महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद (२३.

१७) के अपने भाष्य में 'पशुः' पद का अर्थ 'दृश्यः द्रष्टव्यः' ही किया है। हमने इसी अर्थ का ग्रहण करके उपर्युक्त व्याख्यान किया है। उधर इसका तात्पर्य यह भी है कि विभिन्न परमाणुओं में पशु संज्ञक मरुद् रश्मियां भी स्थापित की जाती हैं। उपर्युक्त प्रकरणस्थ देवयजन क्रिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि विभिन्न पार्थिवादि परमाणुओं की पारस्परिक संयोग प्रक्रिया, जिसमें प्राण आदि विभिन्न रश्मियों का यजन होता है, सोमरूपी {चन्द्रमाः = सोमो राजा चन्द्रमाः (श.१०.४.२.१), चन्द्रमा वै सोमः (कौ.ब्रा.१६.५; तै.ब्रा.१.४.१०.७), एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः (ऐ.७.११)} चन्द्रमा के कृष्ण अर्थात् आकर्षण बल के अनुसार होती है। इसका तात्पर्य है कि यह संयोग प्रक्रिया, सोम प्रधान कणों के आकर्षण बल के अनुसार ही होती है। इन सोम प्रधान कणों का गमनागमन वा संयोग-वियोग अग्नि की विद्यमानता में ही होता है। यहाँ सोम प्रधान कणों के साथ-२ सोम रश्मियों का ग्रहण भी होता है, जो दो कणों के मध्य आकर्षण में अपनी भूमिका निभाती हैं तथा अग्नि से प्राण रश्मियों का भी ग्रहण करना चाहिए। विभिन्न कणों के आकर्षण-प्रतिकर्षण की प्रक्रिया पूर्व में अनेकत्र हम स्पष्ट कर चुके हैं, पुनरपि खण्ड १.२ विशेष पठनीय है। ध्यातव्य है कि यहाँ सोम तत्त्व का अर्थ मरुद् रश्मियां सर्वविदित है, ही।।

इस प्राण व सोम किंवा मरुद् रश्मियों के संयोग से सम्पादित, प्रकाशित व अप्रकाशित कणों के संयोग की प्रक्रिया में {आपूर्यमाणम् = समन्तात् न्यूनतारहितम् (म.द.ऋ.भा.१.५१.१०)} सब प्रकार से परिपूर्ण आकर्षण बलों की विद्यमानता में ही दो कणों का यजन तथा इसके कारणरूप प्राण व मरुद् रश्मियों का यजन होता है। दोनों प्रकार की रश्मियों के तुल्य व पर्याप्त बल वाली होने पर ही संयोग होता है। इस प्रकार के संयोग की इच्छा वाले अग्निप्रधान पार्थिव कण सोमप्रधान पार्थिव कणों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनके आकर्षण के साथ ही यह संयोग प्रक्रिया पूर्ण होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- यहाँ किसी इलेक्ट्रॉन आदि कण एवं किसी क्वाण्टा के संयोग की चर्चा की गई है। जब इनका परस्पर संयोग होता है, तब वह इलेक्ट्रॉन आदि कण एक निचृद् अनुष्टुप् छन्द रश्मि को क्वाण्टा के ऊपर छोड़ता है और वह क्वाण्टा एक प्रकार की बृहती छन्द रश्मि को इलेक्ट्रॉन आदि के ऊपर छोड़ते हुए उस कण में समा जाता है। यह छन्द रश्मि उस क्वाण्टा सहित इलेक्ट्रॉन आदि को सब ओर से आवृत्त करती हुई व्याप्त हो जाती है। किसी इलेक्ट्रॉन से क्वाण्टा के उत्सर्जन में भी इसी प्रकार की क्रिया होती है अर्थात् छन्द रश्मियों का आदान प्रदान होता है। जब क्वाण्टा किसी कण में संयुक्त होता है, तब अनुष्टुप् छन्द रश्मि के कारण एक दीप्ति उत्पन्न होती है।
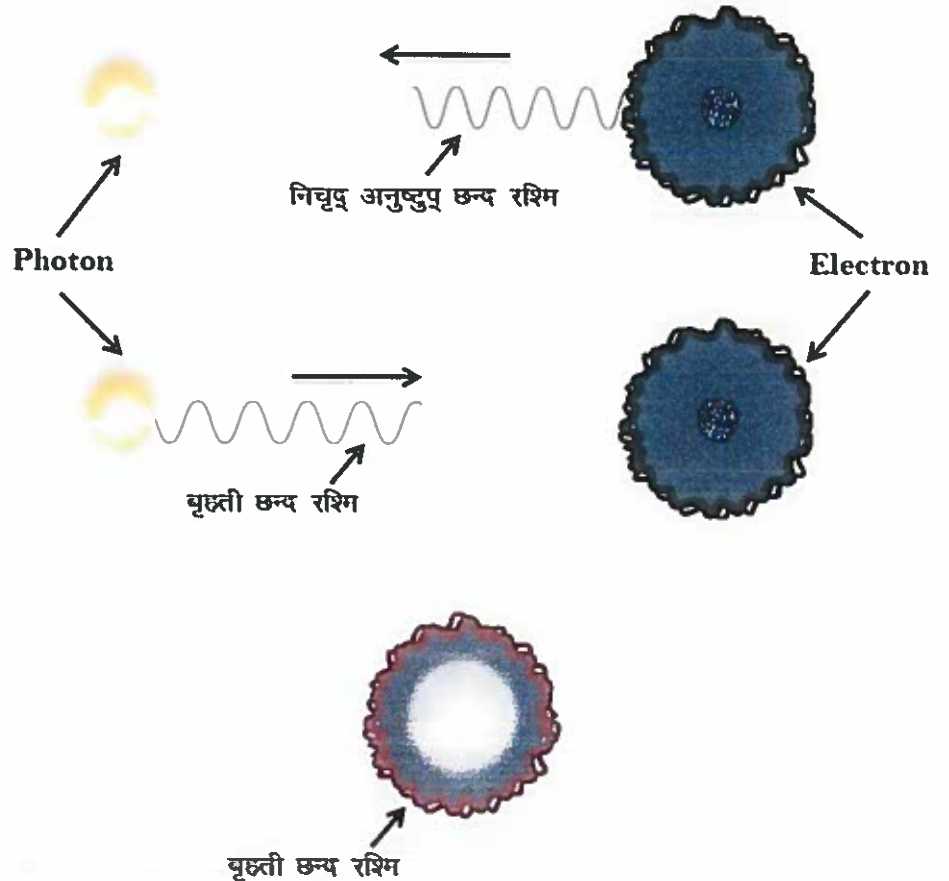
चित्र १६.२ इलेक्ट्रॉन आदि कण से किसी क्वाण्टा के संयोग की प्रक्रिया

कोई भी क्वाण्टा एकाकी वा अनेक विकिरण समूह के रूप में भी तब तक दीप्ति उत्पन्न नहीं करता, जब तक कि उसका किसी द्रव्य कण से संसर्ग नहीं होता। इस प्रकार क्वाण्टा से युक्त इलेक्ट्रॉन किंवा ऊर्जा में वृद्धि होने पर इलेक्ट्रॉन किसी एटम से उत्सर्जित होकर अन्य किसी आयन के साथ संयुक्त हो जाते वा ऐसा करने का प्रयास करते हैं। इनके पृथक् होने की प्रक्रिया में इलेक्ट्रॉनादि कण निचृद् अनुष्टुप् एवं क्वाण्टा उपर्युक्त बृहती छन्द रश्मि को मुक्त करता है। **जब इन दोनों प्रकार के कणों का संयोग तथा वियोग होता है, उस समय इलेक्ट्रॉनादि कण स्वयं भी कम्पन करता है और क्वाण्टा को भी कंपाता है अर्थात् दोनों में कम्पन होता है। जब क्वाण्टा किसी इलेक्ट्रॉन आदि कण से संयुक्त होता है, तब वह इस प्रकार उस कण में समा जाता है, जैसे वर्षा का जल भूमि के द्वारा सोख लिया जाता है।** इस प्रकार की क्रियाओं में अनेक प्रकार की प्राण व मरुद् रश्मियों का एक-दूसरे में हस्तान्तरण होता है। ये रश्मियां इलेक्ट्रॉन व क्वाण्टा में विद्यमान होती हैं। जब किसी इलेक्ट्रॉन आदि कण से कोई क्वाण्टा मुक्त होता है, उस समय वह सम्पूर्ण कण से सिकुड़ कर ऐसे ही बाहर उत्सर्जित होता है, जैसे वर्षा की कोई बूंद गिर रही हो परन्तु बाहर निकलते ही वह बिखरा हुआ सा सुदूर यात्रा पर चल पड़ता है। इसी प्रकार जब वह पुनः किसी कण पर गिरता है, तब वह पहले बूंद जैसा आकार बनाता हुआ उस कण पर गिरता परन्तु तत्काल ही उस आकार को त्याग कर फैल कर सम्पूर्ण कण में व्याप्त हो जाता है।
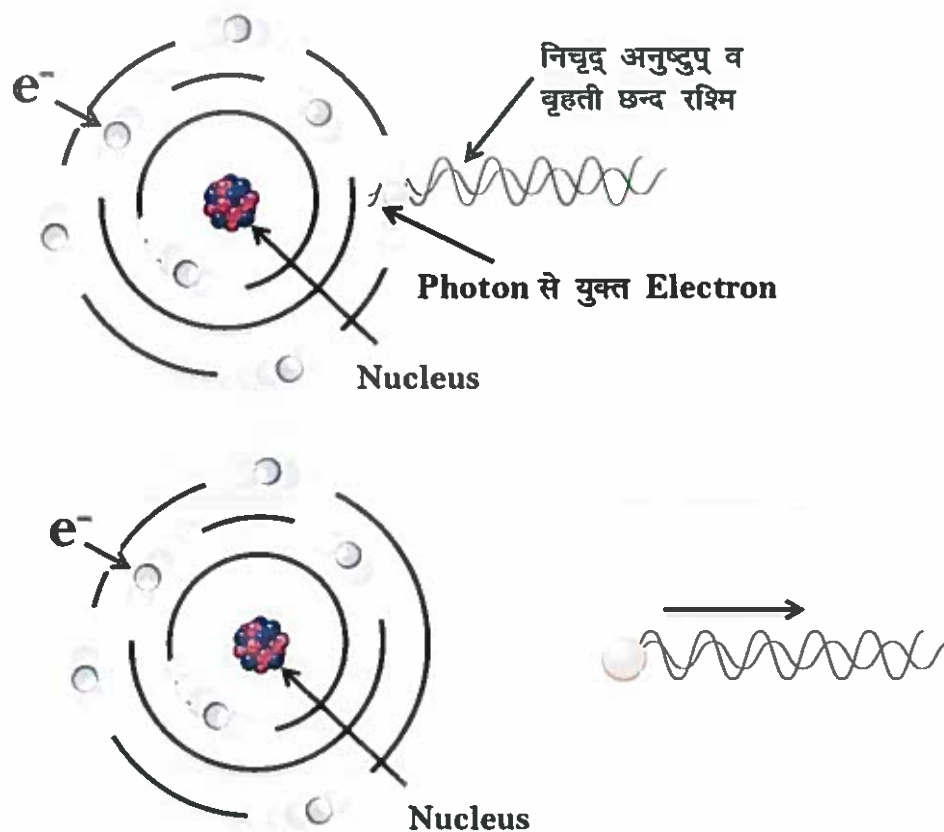
चित्र १९.३ इलेक्ट्रॉन आदि कण से क्वाण्टा के मुक्त होने की प्रक्रिया

इस सृष्टि में बिना ऊर्जा के कोई द्रव्य कभी भी किसी प्रकार की संयोग-वियोग क्रिया को सम्पादित नहीं कर सकता। यहाँ तक कि ऊर्जा के अभाव में किसी भी कण को कभी भी किसी भी तकनीक के द्वारा देखा नहीं जा सकता। इन क्रियाओं में समान संयोजकता वाले कणों का ही संयोग स्थायी होता है, असमान का नहीं। इस कारण ऐसा संयोग ही प्राथमिकता के आधार पर होता है।।
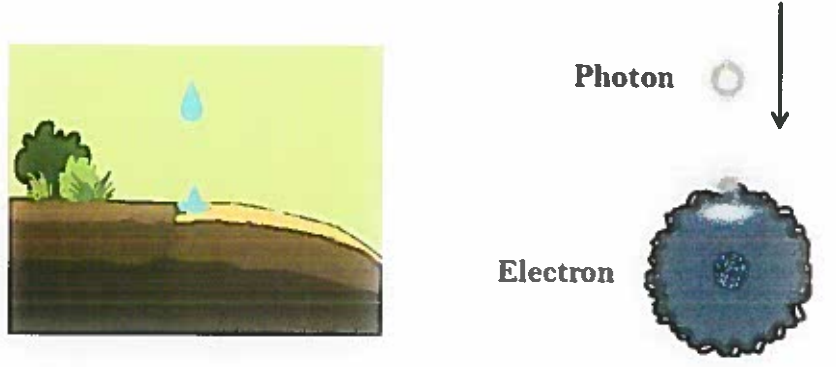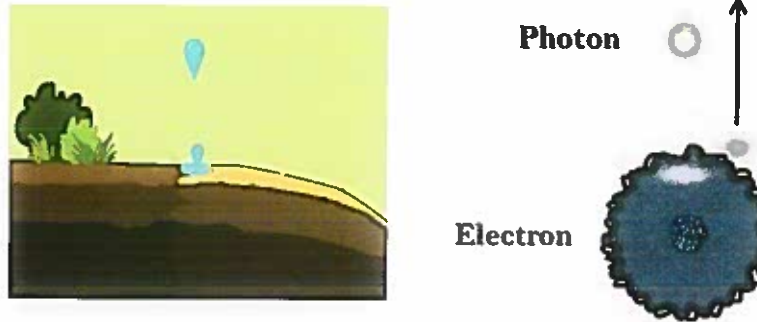
चित्र १६.४ इलेक्ट्रॉन से किसी क्वाण्टा के संयोग-वियोजन की प्रक्रिया

५. ऊषानसावस्यां तद्धापि तुरः कावषेय उवाचोषः पोषो जनमेजय केति; तस्माद्धाप्येतर्हि गव्यं मीमांसमानाः पृच्छन्ति,-सन्ति तत्रोषाः३ इति। ऊषो हि पोषोऽसौ वै लोक इमं लोकमभिपर्यावर्त्तते।।
ततो वै द्यावापृथिवी अभवतां न द्यावाऽन्तरिक्षान्नान्तरिक्षाद् भूमिः।।५।।

{ऊषः = ऊषा वै दिवः प्रियं धाम (काठ.२०.१; क.३१.३), एते हि साक्षादन्नं यदूषाः (तै. ब्रा.१.३.७.६), पशव ऊषाः (श.७.१.१.६), पुष्टिर्वा एषा प्रजननं यदूषाः (तै.सं.५.२.३. २; तै.ब्रा.१.१.३.१)। कवषः = शब्दं कुर्वन् (तु.म.द.य.भा.२६.५)। जनः = प्राणः (तु.म. द.य.भा.२५.२३)। जनमेजयः = जनान् एजयति इति, जन्+एच्+णिच्+खश मुमागमः (आप्टेकोष), एष ह वै पद्भ्यां पापं करोति यो जनमेति (जै.ब्रा.२.१३५)। प्रच्छ = ढूंढना

(आप्टेकोष)। तुरः = तुर इति यमनाम तरतेर्वा त्वरतेर्वा, त्वरया तूर्णगतिर्यमः (नि.१२.१४)}

व्याख्यानम्- प्रकाशित लोक वा परमाणु अप्रकाशित लोक वा परमाणुओं के अन्दर वा उनके ऊपर 'ऊष' नामक ऐसी मरुद् रश्मियों, जो ऊष्मा को उत्पन्न करती तथा संयोज्यता गुणों से युक्त होती हैं, की वृष्टि करते हैं वा उनमें उत्पन्न करते हैं। वे मरुद् रश्मियां संयोजक धर्मों से युक्त भी होती हैं। इस प्रक्रिया में तीव्रगामी तथा सबको तारने वाली ऐसी प्राण रश्मियां, जो मक्खी की भाँति भिनभिनाती, शब्द उत्पन्न करती हुई होती हैं, उन मरुद् रश्मियों को परस्पर संगत करती हैं। यहाँ 'उवाच' पद 'उच समवाये' धातु से निष्पन्न 'उवोच' का छान्दस रूप है किंवा 'वच परिभाषणे' का ही 'समवाय' अर्थ मानकर भी 'उवाच' की व्युत्पत्ति मान सकते हैं। सभी धातुएं अनेकार्थक होती हैं, यह सर्वविदित है। जब उपर्युक्त प्राण रश्मियां उन 'ऊष' नामक मरुद् रश्मियों को परस्पर संगत करती हैं, उस समय वे मरुद् रश्मियां अप्रकाशित कणों को पुष्ट करने वाली तथा जनमेजयरूप अर्थात् ऐसी रश्मियों, जो अपनी छन्द रश्मि रूप पदों के द्वारा {पदम् = पशवः पदम् (मै.३.७.७)} संगतिकर्मों में बाधक का कार्य करती हैं, को कम्पाती हुई प्रजापति का रूप धारण करती हैं। इसका तात्पर्य है कि ये मरुद् रश्मियां यज्ञ रूपी प्रजापति को सम्पादित करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। यहाँ प्रकाशित व अप्रकाशित कणों के मध्य अन्योऽन्य क्रिया का ही प्रसंग चल रहा है।

ये ऐसी मरुद् रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों के विकाररूप कणों को प्रकाशमान करने का प्रयास करती हुई उन्हें खोजती फिरती हैं। वे रश्मि ऊष रूप ही होती हैं, ऐसा निश्चय है। यहाँ प्लुत का प्रयोग प्रशंसा अर्थ में है। ये रश्मियां प्राण रश्मियों की भी प्रिय धाम होती हैं तथा ये सृजन प्रक्रिया की बोधक होती हैं। प्रकाशित व अप्रकाशित कणों के परस्पर संयोग से विभिन्न नवीन तत्त्वों के सृजन में इनकी विशेष पोषक व धारक भूमिका होती है। इसलिए ये 'ऊष' मरुद् रश्मियां 'पोष' भी कहलाती हैं। ये ही विभिन्न क्रियाओं एवं क्रियाशील कणों को धारण भी करती हैं। जब प्रकाशित लोक किसी अप्रकाशित कण के साथ संगत होने के लिए उसकी ओर गमन करता है, तब वह इन्हीं मरुद् रश्मियों के कारण ही अप्रकाशित कण की ओर चक्कर काटता हुआ सा अग्रसर होता है। वह इसी प्रकार उस कण का चक्कर लगाते हुए उसमें गिर जाता है किंवा उसमें व्याप्त हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वह सीधा उसमें एकाएक न गिर कर उसकी परिक्रमा करता हुआ गिर कर व्याप्त हो जाता है।।

इस प्रकार वे दोनों प्रकाशित व अप्रकाशित पदार्थ परस्पर समृद्ध होकर सृष्टि प्रक्रिया को समृद्ध करते हैं। वे परस्पर निकट सम्बन्ध रखते हुए अभिन्न भाव रखते हैं। जब इनका परस्पर संयोग हो जाता है, उस समय ये परस्पर भिन्न होते हुए भी अभिन्न होते हैं। वस्तुतः अग्नि तत्त्व के अभाव में सौम्य तत्त्व सृष्टि रचना में कुछ भी कार्य सम्पादित नहीं कर पाते। यहाँ 'अन्तरिक्ष' का अर्थ अन्तरिक्षस्थ आग्नेय अर्थात् प्रकाशित पदार्थ समझना चाहिए। इस सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में अग्नि के परमाणु भरे होते हैं, इस कारण अन्तरिक्ष को आग्नीध्र भी कहा जाता है, जैसा कि कहा है- "अन्तरिक्षमाग्नीध्रम्" (तै.ब्रा.२.१.५.१)। "अन्तरिक्षं वा आग्नीध्रम्" (श.६.२.३.१५)। इन दोनों ही पदार्थों के मेल से ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब किसी इलेक्ट्रॉन व क्वाण्टा का परस्पर संयोग होता है, उस समय वह क्वाण्टा उस इलेक्ट्रॉन आदि कण के ऊपर सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को प्रक्षिप्त करता है और उन मरुद् रश्मियों के ऊपर भी सूक्ष्म प्राण रश्मियां मक्खी की भांति भिनभिनाती रहती हैं। ये उन मरुद् रश्मियों को परस्पर संगत व समन्वित रखती हैं। ये मरुद् रश्मियां डार्क एनर्जी के सूक्ष्म स्तर पर बाधक प्रहार को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं। इलेक्ट्रॉन को इस प्रकार विभिन्न स्तरों की ऊर्जा प्रदान करके नाना प्रकार के आयनों की परस्पर अनेकविध अभिक्रियाएं करती हैं। ये मरुद् रश्मियां ही विभिन्न ऊर्जा स्तर के क्वाण्टाज् को किसी इलेक्ट्रॉन आदि कण से संयुक्त करने के लिए मुख्यतः प्रेरित करती व उन कणों को खोजती हैं। जब कोई क्वाण्टा किसी कण की ओर संगतीकरण हेतु गमन करता है, तब वह उस कण के निकट आकर उसकी परिक्रमा करता हुआ ही संयुक्त व व्याप्त हो जाता है, न कि सीधा व अकस्मात् गिरकर। ऊर्जा व द्रव्य का यह संगतीकरण इस सृष्टि में सतत चलता रहता है। इनके संगतीकरण के अभाव में सृष्टि प्रक्रिया चल ही नहीं सकती। वस्तुतः ऊर्जा व द्रव्य दोनों पृथक्-२ होते

हुए भी मूलतः एक ही हैं, क्योंकि ये दोनों ही मूलतः एक ही कारण पदार्थ से बने हैं। इसके साथ ही आकाश तत्त्व भी इन दोनों से भिन्न नहीं और न द्रव्य व ऊर्जा ही आकाशतत्त्व से भिन्न हैं। वस्तुतः ये सभी सूक्ष्म पदार्थों से ही उत्पन्न होने से इनमें अनेकत्व होते हुये भी एकत्व है।।

❀ इति १९.५ समाप्तः ❀

❀ अथ १९.६ प्रारभ्यते ❀

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. बृहच्च वा इदमग्रे रथन्तरं चास्तां; वाक्च वै तन्मनश्चाऽऽस्तां; वाग्वै रथन्तरं; मनो बृहत्, तद्बृहत् पूर्वं ससृजानं रथन्तरमत्यमन्यत; तद्रथन्तरं गर्भमधत्त, तद्वैरूपमसृजत।।

{वाक् = वाग्वै सरिरं छन्दः (श.८.५.२.४), (सरिरम् = षल गतौ धातोः 'सलिकल्यनिमहि. - उ.को.१.५४), सूत्रेण इलच् कपिलकादित्वाद् रेफः (वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री), सरिरं (सलिलम्) वहुनाम (निघं.३.१), आपो वै सरिरम् (श.७.५.२.३४), अपरिमिततरमिव हि मनः परिमिततरेव हि वाक् (श.१.४.४.७)}

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि पूर्वोक्त विभिन्न प्रक्रियाओं की पूर्वावस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इन सब क्रियाओं के प्रारम्भ होने से पूर्व किंवा सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में मन एवं वाक् तत्त्व की ही उत्पत्ति होती है। **एकाक्षरा वाग् रश्मियों की ही वाक् संज्ञा है**। यहाँ वाग् रश्मियों को रथन्तर तथा मनस्तत्त्व को बृहत् कहा गया है। ध्यातव्य है कि खण्ड ४.१३ में रथन्तर, बृहत्, वैरूप आदि छः प्रकार की विभिन्न छन्द रश्मियों की साम संज्ञा की है। हमारे मत में यहाँ रश्मियों की चर्चा नहीं है, वल्कि मूल वाक् तत्त्व व मनस्तत्त्व को ही रथन्तर, बृहत् आदि से सम्बोधित किया गया है। इस कारण हम इसी आशय का ग्रहण करके इस खण्ड की व्याख्या करेंगे। मनस्तत्त्व को बृहत् इस कारण कहा जाता है, क्योंकि यह तत्त्व सर्वत्र एकरस व्याप्त होकर अपरिमित परिमाण वाला होता है। यही सब सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं वा रश्मियों का मूल उपादान है, साथ ही उनमें सदैव व्याप्त भी रहता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी का कार्यरूप है। ध्यातव्य है कि **प्रकृतिरूप पदार्थ सूक्ष्मता व व्यापकता की अन्तिम सीमा है, जो किसी भी जड़ पदार्थ का उपादान कारण है। इसी मनस्तत्त्व के महासमुद्र में जो सर्वाधिक सूक्ष्म कम्पन होता है, वही वाक् तत्त्व का पश्यन्ती रूप है। वाक् तत्त्व मनस्तत्त्व के अन्दर उठती हुई अति सूक्ष्म ऐसी लहरें हैं, जो सम्पूर्ण मनस्तत्त्व में निरन्तर उठती रहती हैं**। जहाँ मनस्तत्त्व अत्यन्त महान् है, वहीं वाग् रूपी स्पदन अत्यन्त सूक्ष्म ऐसी लहरें हैं, जो उस मनस्तत्त्व को आच्छादित व प्रकाशित करती हुई एवं उसे वलरूप तेज से व्याप्त करती हुई सक्रिय करती हैं। इन दोनों तत्त्वों में मनस्तत्त्व की उत्पत्ति प्रथम होती है। मनस्तत्त्व में वाग् रूपी स्पन्दनों की उत्पत्ति की चर्चा हम पूर्व में अनेकत्र कर चुके हैं पुनरपि, विशेष जानकारी के लिए पूर्वपीठिका पठनीय है। वाक् तत्त्व को रथन्तर कहने का अभिप्राय है कि इसकी रश्मियां रथ की भाँति अपने रमणीय गमन के द्वारा सृष्टि की सभी प्रकार की क्रियाओं को पार लगाती हैं। ये सूक्ष्म व एकाक्षरा वाग् रश्मियां ही सूक्ष्म प्राथमिक प्राणों से लेकर वड़े-२ देव पदार्थों को वहन करने वाली होती हैं, इस कारण भी इन्हें रथन्तर कहा जाता हैं, जैसा कि कहा है- "देवरथो वै रथन्तरम्" (तां.७.७.१३)।

अव महर्षि इन दोनों तत्त्वों के मेल से विविधता की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि वह अपरिमित मनस्तत्त्व वाक् तत्त्व की सूक्ष्म लहरों को अपनी व्याप्ति से अत्यन्त निकटता से ग्रहण करता है। यहाँ 'मन्' धातु का अर्थ 'स्वीकार करना' है। (देखें - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)। इससे उन वाग् रूप रश्मियों वा स्पन्दनों में मनस्तत्त्व के इस वल से विकार उत्पन्न होने लगता है। इस क्रिया को ही वाक् तत्त्व द्वारा गर्भधारण करना लिखा है। इस प्रक्रिया में **मनस्तत्त्व वृषा तथा वाक् तत्त्व योषा का कार्य करता है**। जिस प्रकार गर्भाधान के पश्चात् स्त्री में विकार उत्पन्न होकर भ्रूण व शिशु की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मन के द्वारा वाग् रश्मियां गर्भिणी होकर अर्थात् बृहत् साम द्वारा

रथन्तर साम रश्मियां गर्भिणी होकर वैरूप साम रश्मियों की उत्पत्ति करती हैं। ये वैरूप रश्मियां ऐसी वाग् रश्मियां होती हैं, जिसमें रूपों की विविधता उत्पन्न होने लगती है। वाक् तत्त्व का रथन्तर रूप एकरूपता वाला होता है। हमारे मत में यहाँ 'ओम्' रश्मियां ही रथन्तर वाक् का रूप हैं। जब इन रश्मियों का मनस्तत्त्व से अत्यन्त मेल होता है, तब दोनों की विकृति से अन्य विविध रूपों वाली वाग् रश्मियां मनस्तत्त्व रूपी महासमुद्र में स्पन्दित होने लगती हैं, यही वाक् तत्त्व का वैरूप साम रूप है। वैरूप रश्मियों के विषय में ऋषियों का मत है- "पशवो वै वैरूपम्" (तां.१४.९.८), "रथन्तरमेतत् परोक्षं यद् वैरूपम्" (तां.१२.२.५), "बृहदेतत् परोक्षं यद् वैरूपम्" (तां.१२.८.४)। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि वैरूप रश्मियां मरुद् रश्मियों का रूप होती हैं, जो परोक्ष स्वरूप वाली ही होती हैं। हमारी दृष्टि में प्राथमिक प्राण रश्मियां भी इन्हीं में सम्मिलित हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के प्रारम्भ में मनस्तत्त्व रूपी अति सूक्ष्म पदार्थ सर्वत्र एकरस व्याप्त हो जाता है। यह प्रकृति रूपी अनादि मूल पदार्थ का कार्यरूप होता है, जो इस ब्रह्माण्ड का सबसे सूक्ष्म सक्रिय जड़ पदार्थ है। उसमें **ईश्वरीय प्रेरणा से प्रथम स्तर का स्पन्दन 'ओम्' रश्मियों के रूप में उत्पन्न होता है। इससे सूक्ष्म कोई भी स्पन्दन किसी भी सृष्टि में कभी भी उत्पन्न नहीं होता और न हो ही सकता। यही स्पन्दन वाक् तत्त्व का प्राथमिक रूप है।** जब यह स्पन्दन मनस्तत्त्व के साथ दृढ़ता से सम्बद्ध हो जाता है और सम्पूर्ण पदार्थ में ऐसे असंख्य स्पन्दन उत्पन्न व व्याप्त हो जाते हैं, उसके पश्चात् मनस्तत्त्व ईश्वरीय प्रेरणा से उन **'ओम्'** रूप स्पन्दनों वा सूक्ष्मतम रश्मियों को विकृत करता है, जिससे विविध रूप वाले स्पन्दन उत्पन्न होने लगते हैं। ये भी अति सूक्ष्म ही होते हैं परन्तु इनमें विविधरूपों का उदय होने लगता है। इसके अन्तर्गत नाना प्रकार की वाग् अर्थात् सूक्ष्म छन्द रश्मियां उत्पन्न होने लगती हैं।।

२. ते द्वे भूत्वा रथन्तरं च वैरूपं च बृहदत्यमन्येताम्, तद्बृहद्गर्भमधत्त, तद्वैराजमसृजत।।
ते द्वे भूत्वा बृहच्च वैराजं च, रथन्तरं च वैरूपं चात्यमन्येतां तद्रथन्तरं गर्भमधत्त, तच्छाक्वरमसृजत।।
तानि त्रीणि भूत्वा रथन्तरं च वैरूपं च शाक्वरं च, बृहच्च वैराजं चात्यमन्यन्त तद्, बृहद्गर्भमधत्त, तद्रैवतमसृजत।।
तानि त्रीण्यन्यानि त्रीण्यन्यानि षट्पृष्ठान्यासन्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त पूर्वोक्त रथन्तर तथा वैरूप रश्मियां परस्पर संयुक्त होकर मनस्तत्त्व रूपी बृहत् के साथ विशेष दृढ़ता से संयुक्त होने लगीं अर्थात् उस मनस्तत्त्व में विकार उत्पन्न करने लगीं। इससे मानो व्यापक मनस्तत्त्व योषारूप होकर वृषारूप रथन्तर व वैरूप रश्मियों के द्वैत से गर्भित हुआ, जिससे वैराज नामक साम रश्मियों की उत्पत्ति हुई। इसका तात्पर्य है कि विशेषरूप से प्रकाशित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति प्रारम्भ होने लगी। इस वैराज के विषय में ऋषियों का कथन है- "वैराजः सोमः" (कौ.ब्रा. ९.६; श.३.३.२.१७), "अन्नं वै वैराजम्" (जै.ब्रा.२.३६४)। इससे संकेत मिलता है कि ये वैराज वाग् रश्मियां सोम पदार्थ का रूप होती हैं अर्थात् इस चरण में सोम तत्त्व की उत्पत्ति होती है। यह सोम तत्त्व संयोजक गुणों से विशेषरूप से युक्त होता है। इसी कारण अन्यत्र भी कहा गया है- "विराड् वै यज्ञः" (श.१.१.१.२२), "वैराजो यज्ञः" (गो.पू.४.२४)। उत्पन्न सभी छन्द रश्मियों की यह ज्योति के समान होती है, इसी कारण एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है- "विराड् हि छन्दसां ज्योतिः" (तां.१०.२.२)।।

तदुपरान्त बृहत् अर्थात् मनस्तत्त्व एवं उपर्युक्त वैराज रश्मियां अर्थात् सोम तत्त्व परस्पर मिलकर पूर्वोक्त रथन्तर अर्थात् 'ओम्' रश्मियों एवं वैरूप अर्थात् उपर्युक्त सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को प्रबलता से आकृष्ट करके अपने साथ संगत करते हैं। ऐसा करके वे उन्हें तीव्रता से चमकाते हैं। इस प्रक्रिया में

रथन्तर अर्थात् 'ओम्' वाग् रश्मि मानो गर्भ धारण करती है अर्थात् मनस्तत्त्व एवं सोम रश्मियों के सूक्ष्म रूप के साथ संगत हो जाती है, इसके फलस्वरूप शाक्वर छन्द रश्मियों की सृष्टि होती है। शाक्वर रश्मियों के विषय में ऋषियों ने कहा है-

"शाक्वरो वज्रः" (तै.ब्रा.२.१.५.११)
"आपो वै शक्वर्यः" (जै.ब्रा.३.६२)
"पशवो वै शक्वरीः" (तै.ब्रा.१.७.५.४)
"ब्रह्म शक्वर्यः" (तां.१६.५.१८)
"स (प्रजापतिः) शक्वरीरसृजत तदपाङ् घोषोऽन्वसृज्यत" (तां.७.८.१२)
"एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद् हन्तुं तद्यदाभिर्वृत्रमशकद् हन्तुं तस्माच्छक्वर्यः" (कौ.ब्रा.२३.२)।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ये रश्मियां ऐसी छन्द व मरुद् रश्मियां होती हैं, जो वज्ररूप होकर असुर तत्त्व के विनाश व नियन्त्रण में समर्थ होती हैं। ये अति प्रबल विस्तार व शक्तिरूप वाली होती हैं। इनकी उत्पत्ति के समय इस ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म परन्तु व्यापक घोष भी उत्पन्न होने लगते हैं। जब कभी इन्द्र तत्त्व अपनी तीक्ष्ण वज्ररूप किरणों से असुर तत्त्व पर आक्रमण करता है, उस समय शाक्वर रश्मियों की महती भूमिका होती है। इनके द्वारा सर्गप्रक्रिया की गति में भारी वृद्धि होती है।।

इसके उपरान्त पूर्वोक्त रथन्तर, वैरूप एवं शाक्वर रश्मियां परस्पर मिल जाती हैं। इसके पश्चात् वे मिलकर शक्तिशाली विविध रूप धारण करके बृहत् रूपी मनस्तत्त्व एवं विविधता से प्रकाशित होने वाली वैराज रश्मियों को अपने साथ जकड़ कर प्रकाशित करती हैं किंवा वे उन दोनों को गर्भित करने का प्रयास करती हैं। इस क्रिया से मनस्तत्त्व में गर्भधारण होता है अर्थात् उसमें विकार उत्पन्न होता है। इससे रैवत रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इन रैवत रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"तद् रैवतमसृजत तत्पशुघोषोऽन्वसृज्यत" (जै.ब्रा.१.१४३)
"रैवत्यः सर्वा देवताः" (ऐ.२.१६)
"वज्रो वै रेवती" (काठ.१०.१०)
"स (प्रजापतिः) रेवतीरसृजत तद्गवां घोषोऽन्वसृज्यत" (तां.७.८.१३)
"स प्रजापतिः शक्वर्या अधि रेवतीं निरमिमीत शान्त्या अप्रदाहाय" (तै.सं.२.२.८.६)।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ये रश्मियां भी वज्ररूप ही होती हैं। इनकी उत्पत्ति के साथ ही सभी प्रकार की छन्दादि रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं किंवा होने लगती हैं। इनसे गम्भीर घोष भी उत्पन्न होने लगते हैं। पूर्वोक्त शक्वरी रश्मियां अधिक तीक्ष्ण होती हैं, इस कारण कदाचित् अति तीक्ष्णता से सर्गप्रक्रिया में अव्यवस्था का होना भी सम्भव है, इस कारण रैवत रश्मियां शाक्वर के पश्चात् उत्पन्न होकर उन्हें नियन्त्रित व व्यवस्थित रखने में सहायक होती हैं।।

इस प्रकार ये कुल छः प्रकार की आधारभूत रश्मियां हैं, जिनमें से मनस्तत्त्व स्वयं सर्वाधार रश्मि रूप है। बृहत्, रथन्तर, वैरूप, वैराज, शाक्वर एवं रैवत साम रश्मियों के रूप में खण्ड ४.१३ में वर्णित छन्द रश्मियों से यहाँ कुछ भेद समझना चाहिए। यहाँ इनके तीन-२ के दो समूह माने हैं। हम ऊपर यह देख चुके हैं कि 'वैरूप' एवं 'शाक्वर' दोनों की उत्पत्ति इनकी मातृरूप रथन्तर रश्मियों से होती है तथा 'वैराज एवं रैवत' इन दोनों की उत्पत्ति 'बृहत्' से होती है। इस कारण 'रथन्तर', 'वैरूप' एवं 'शाक्वर' प्रथम समूह तथा 'बृहत्', 'वैराज' तथा रैवत द्वितीय समूह है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- 'ओम्' रूपी छन्द रश्मियां सूक्ष्म मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर व्यापक मनस्तत्त्व में अपनी सूक्ष्म रश्मियों का प्रक्षेपण करती हैं, इस प्रक्रिया से अप्रकाशित शीतल सोम रश्मियों की उत्पत्ति होती है। उसके पश्चात् मनस्तत्त्व तथा सोम रश्मियों का **'ओम्'** वाग् रश्मियों एवं सूक्ष्म मरुद् रश्मियों के साथ संयोग होकर तीक्ष्ण शक्तिसम्पन्न किरणों की उत्पत्ति होती है, जो अतीव भेदक शक्तिसम्पन्न भी होती हैं। इसके पश्चात् **'ओम्'** रश्मि, सूक्ष्म मरुद् रश्मि एवं तीक्ष्ण विकिरणों का मिश्रितरूप मनस्तत्त्व एवं सोम तत्त्व के युग्म के साथ संयोग करता है, इसके फलस्वरूप सभी प्रकार की छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार कुल छः प्रकार की आधारभूत रश्मियां उत्पन्न होती है- १. मन, २. ओम् रश्मिरूपी वाक्, ३. सूक्ष्म मरुद् रश्मियां। हमारे मत में इनमें प्राथमिक प्राण रश्मियां भी सम्मिलित हैं। ४. सोम तत्त्व, ५. तीक्ष्ण भेदक छन्द रश्मियां व ध्वनि

तरंगें एवं ६. सभी प्रकार की छन्द रश्मियां व ध्वनि तरंगें। इनमें से क्रम (३) व (५) की उत्पत्ति **'ओम्'** रश्मियों से तथा (४) व (६) की उत्पत्ति **'मन'** से होती है। इस प्रकार क्रम (१), (४) व (६) एक त्रिक् तथा (२), (३) व (५) दूसरा त्रिक् होता है। ध्यातव्य है कि कोई भी रश्मि केवल **'ओम्'** छन्द रश्मि अथवा केवल **मन** से उत्पन्न नहीं हो सकती। यहाँ ऐसा लिखना मात्र प्रधानता का ही सूचक है।।

३. तानि ह तर्हि त्रीणिच्छन्दांसि, षट्पृष्ठानि नोदाप्नुवन् सा गायत्री गर्भमधत्त, साऽनुष्टुभमसृजत; त्रिष्टुब् गर्भमधत्त, सा पङ्क्तिमसृजत, जगती गर्भमधत्त, साऽतिच्छन्दसमसृजत, तानि त्रीण्यन्यानि त्रीण्यन्यानि षट् छन्दांस्यासन् षट्पृष्ठानि तानि तथाऽकल्पन्त; कल्पते यज्ञोऽपि।।
तस्यै जनतायै कल्पते, यत्रैवमेतां छन्दसां च पृष्ठानां च क्लृप्तिं विद्वान् दीक्षते, दीक्षते।।६।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि इस प्रक्रिया में गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती तीन प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न हुईं। वे तीनों छन्द रश्मियां पूर्वोक्त छः आधाररूप रश्मियों के रूप को व्याप्त नहीं कर सकीं। इससे उन सबके सामंजस्य वा अनुकूलन में कठिनाई आ रही थी। उस समय गायत्री छन्द रश्मि गर्भधारण करती है। इसे गर्भधारण कौन कराता है? इसके उत्तर में हमारा मत है कि मनस्तत्त्व ही वृषारूप होकर गायत्री छन्द रश्मि में गर्भधारण कराता है किंवा मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' वाक् तत्त्व का संयुक्त रूप वृषा का रूप धारण कर गायत्र्यादि छन्द रश्मियों को गर्भित करता है। गायत्री के इस गर्भ धारण से अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये अनुष्टुप् छन्द रश्मियां भी स्वरूप से गायत्री के समान होती हैं। इसी प्रकार मनस्तत्त्व व 'ओम्' वाक् तत्त्व का संयुक्त रूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को गर्भित करके पंक्ति छन्द रश्मियों को उत्पन्न करता है। अन्त में इसी प्रकार जगती छन्द रश्मियों को गर्भित किया जाता है, जिससे विभिन्न अतिच्छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार तीन-२ छन्द रश्मियों के दो त्रिक् होकर कुल छः प्रकार की छन्द रश्मियां हो जाती हैं और उधर छः प्रकार के ही आधारभूत साम होते हैं। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वोत्पन्न शक्वरी आदि रश्मियां पूर्ण विकसित अतिच्छन्दावस्था के रूप में नहीं होती हैं। उनका पूर्णत्व यहाँ सम्पन्न होता है। इस प्रकार दोनों ही प्रकार के षट् रश्मिसमूह परस्पर एक-दूसरे को समर्थ करते हैं, जिससे सर्गयज्ञ भी समर्थ होता चला जाता है।।

ये छः-छः के दोनों समूह जनता अर्थात् जनन=उत्पत्ति प्रक्रिया के लिए समर्थ होते हैं। जब ये सभी उत्पन्न व सक्रिय हो जाते हैं, उस समय सक्रियता, तप, प्रकाश आदि गुणों की प्रचुरता से उत्पत्ति होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- छन्द रश्मियों के इस उत्पत्ति क्रम में प्रथम गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इसके पश्चात् मन तथा **'ओम्'** रश्मि के संयुक्त रूप द्वारा गायत्री रश्मियों के साथ संयोग के द्वारा अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार मन तथा **'ओम्'** रश्मि के संयुक्त रूप द्वारा क्रमशः त्रिष्टुप् एवं जगती के साथ संयोग करने से पंक्ति तथा अतिच्छन्द अर्थात् बड़ी छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार इन सभी के उत्पन्न हो जाने से ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में ऊष्मा, प्रकाश व सक्रियता की मात्रा तेजी से बढ़ने लगती है, जिसके कारण विभिन्न रश्मियों के परस्पर संगत होने से नवीन-२ रश्मियों व कणों की उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।।

इति १९.६ समाप्तः

इति एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः

विंशोऽध्यायः

"

मनस्तत्त्व की प्रेरणा के बिना कोई क्रिया सम्भव नहीं, परन्तु इसकी भी प्रत्येक क्रिया के पीछे ईश्वर तत्त्व की मूल प्रेरणा सदैव अनिवार्यत: अपेक्षित होती है।

"

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

कणों की उत्पत्ति।

२०.३ द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण का उत्कर्ष, इन्द्र तत्त्व की प्रधानता एवं तीक्ष्णता, गायत्री रश्मियों की उत्पत्ति, वृहत्साम, पञ्चदशस्तोम, त्रिष्टुप् छन्द, उदान-प्राण उत्कर्ष के छान्दस लक्षण, अन्य छन्द रश्मियों का त्रिष्टुप् के समान समायोजन, तीव्र गर्जनायुक्त ध्वनि, वि.चु. वल, वि.चु. धाराऐं एवं प्रकाश की तीव्रता, कणों एवं तरंगों की व्यापक उत्पत्ति एवं समृद्धि, विभिन्न कॉस्मिक मेघों का सघन होना। उदान प्राणोत्कर्ष, गायत्री द्वारा वि.चु. तरंगों की मात्रा एवं आवृति में वृद्धि, कण एवं क्वान्टा के संयोग का विज्ञान। इसमें मरुत् एवं प्राण रश्मियों की भूमिका। प्रउग, अनुष्टुप्, उष्णिक् एवं वृहती, इन्द्र-विद्युत् प्राण एवं वाग् रश्मियों की विशेष सक्रियता, ब्रह्माण्ड की ऊर्जा में विशेष वृद्धि, गुरुत्व वलों की तीव्रता, प्राण और वाक् रश्मियों के सम्पीडन से विभिन्न कणों एवं क्वान्टाज् का निर्माण, डार्क एनर्जी का पराभव, ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ सुन्दर प्रकाश, विद्युत् एवं घोर गर्जनायुक्त, दो कणों वा क्वान्टाज् के संयोग का विज्ञान। उदान प्राणोत्कर्ष, गायत्री, अनुष्टुप्, वृहती, त्रिष्टुप्, पंक्ति व जगती की उत्पत्ति, इन्द्र तत्त्व समृद्धि, प्राण व छन्द रश्मियों से विद्युत् की उत्पत्ति और रक्षा, कणों और क्वाण्टाज् के निर्माण का विज्ञान, कॉस्मिक मेघों का निर्माण। डार्क एनर्जी व डार्क मैटर पर नियन्त्रण, कॉस्मिक पदार्थ में भारी विक्षोभ, विद्युत् की तीव्रता व तीक्ष्णता का विज्ञान, उच्च ऊर्जा की तरंगों की समृद्धि, डार्क पदार्थ एवं डार्क एनर्जी के पराभव का विज्ञान, विद्युत् द्वारा अपनी कारणभूत छन्द रश्मियों का धारण। उदान-प्राणोत्कर्ष, अनुष्टुप्, वृहती, त्रिष्टुप् एवं पंक्ति की प्रचुरता, इन्द्र तत्त्व-वि.चु. तरंगें-वि.चु. वल आदि की तीव्रता, पदार्थ के सम्पीडन में इन्द्र तत्त्व का योगदान, डार्क एनर्जी, डार्क पदार्थ का पराभव, वड़े-२ कॉस्मिक कणों (कॉस्मिक डस्ट) का निर्माण, पदार्थ की ऊर्जा में भारी वृद्धि। तीन छन्द रश्मियों द्वारा तरंगों एवं कणों को वहन करना। 1169

२०.४ उदान-प्राणोत्कर्ष, पंक्ति-त्रिष्टुप्-गायत्री-उष्णिक्। इन्द्र तत्त्व के तीन स्तर, ब्रह्माण्ड में घोर गर्जना और विद्युत् की तीव्रता, डार्क एनर्जी, डार्क पदार्थ का पराभव, ऊष्मा में भारी वृद्धि, प्रत्येक कण में विद्युत् के साथ प्रकाश की भी विद्यमानता, मनस्तत्त्व के द्वारा सवका धारण। उदान-प्राणोत्कर्ष, जगती-त्रिष्टुप् की उत्पत्ति, सूक्ष्म कणों एवं क्वान्टाज् के उत्सर्जन अवशोषण की प्रक्रिया की तीव्रता, विभिन्न परमाणुओं, अणुओं एवं कॉस्मिक मेघों का निर्माण, डार्क एनर्जी, डार्क पदार्थ का पराभव, विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों व धाराओं की व्यापकता, प्राणापान से विद्युत् की उत्पत्ति, विद्युत् एवं आकाश के सहयोग से मूल कणों एवं क्वाण्टाज् का निर्माण, इनके उत्सर्जन और अवशोषण में विद्युत् की भूमिका, एक प्रकार की विद्युत् ही गुरुत्वीय वल, अग्नि की ज्वालाओं की उत्पत्ति, गति, स्थिति, धारण और वलशीलता का कारण विद्युत्। उदान-प्राणोत्कर्ष, जगती त्रिष्टुप् की उत्पत्ति, कणों के वंधन की प्रक्रिया तीव्र और दृढ़, मन और 1187

वाक् के मेल तथा सूत्रात्मा वायु के सहयोग से विभिन्न प्राण रश्मियों की उत्पत्ति, इन सब एवं आकाश तत्त्व के मेल से कणों व क्वान्टाज् का विखण्डन, ऊष्मा, प्रकाश उच्च ऊर्जा की तरंगें, गुरुत्व वल एवं वि. चु. वल सब में भारी वृद्धि, विभिन्न विभागों में ईश्वर तत्त्व की भूमिका, सूत्रात्मा वायु और आकाश तत्त्व के साथ सूक्ष्म ध्वनि तरंगों की विद्यमानता, विद्युत् आवेश और प्राण रश्मियों का सम्वन्ध, तीव्र ज्वालाओं की उत्पत्ति, डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी का पराभव, धनञ्जय के द्वारा वि.चु. तरंगों का वहन, प्राण एवं मरुद् रश्मियों द्वारा वि.चु. तरंगों के मार्गों का व्यवस्थापन। उदान-प्राणोत्कर्ष, विभिन्न छन्द रश्मियों का भ्रान्त होना, जगती छन्द रश्मियों का भ्रान्त रश्मियों को सम्यक् दिशा देना, जगती और त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति, वि.चु. तरंगों एवं मरुद् रश्मियों की समृद्धि, आकाश तत्त्व और क्वान्टाज् में अन्योन्य क्रिया, डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ की धारक विद्युत्, आकाश तत्त्व के सम्पीडन से वड़ी छन्द रश्मियों का निर्माण, सभी पदार्थों की गति में प्राण और मरुद् रश्मियों की भूमिका, छन्द रश्मियों की विचित्र गतियां, मरुद् रश्मियों से विद्युत् एवं ध्वनि तरंगों की उत्पत्ति, ऊर्जा की मात्रा एवं तीव्रता में वृद्धि, विभिन्न क्वान्टाज् का संचालन व नियन्त्रण, मरुत् तथा प्राण रश्मियों के कारण कणों का ऊर्जा के द्वारा नियन्त्रण, **प्रकाश-विद्युत् प्रभाव, क्वान्टाज् में प्राथमिक प्राण, छन्द और मरुद् रश्मियों की विद्यमानता।**

अथ २०.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अग्निर्वै देवता प्रथममहर्वहति त्रिवृत्स्तोमो रथन्तरं साम गायत्री छन्दः।। यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसं राध्नोति य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- यहाँ खण्ड ४.२५ में वर्णित तीन त्र्यह में से प्रथम त्र्यह के प्रथम अहन् 'नाग' नामक प्राण की चर्चा करते हुए कहते हैं। हम पूर्व में द्वादशाह के मन, प्राण व अपान नामक तीन तत्त्वों की भूमिका को लिख चुके हैं। शेष बचे नौ प्राण तत्त्वों के विषय में यहाँ चर्चा प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम 'नाग' प्राण की भूमिका पर विचार करते हैं। पूर्वोक्त प्रकरण के अनुसार द्वादशाह नामक बारह प्राण रश्मियों से विभिन्न चरणों में अनेक मरुद् व छन्द आदि रश्मियों की उत्पत्ति होकर कालान्तर में नाना प्रकार के तत्त्वों का निर्माण शनैः-२ होता रहता है। द्वादशाह के अन्दर स्थित नाग प्राण जब प्रधानता से सक्रिय होता है, उस समय अग्नि देवता विशेषरूप से उसका वहन करता है। इससे संकेत मिलता है कि **नाग प्राण की सक्रियता से अग्नि तत्त्व की सर्वप्रथम उत्पत्ति होती है।** ध्यातव्य है कि हम पूर्व में अनेकत्र अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति की चर्चा विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न प्रकार से कर चुके हैं। तब यहाँ भी अग्नि तत्त्व की प्रथम उत्पत्ति की बात कहना कैसे युक्ति संगत है? इस विषय में हमारा मत है कि जहाँ भी अग्नि तत्त्व की प्रथम उत्पत्ति का वर्णन है, वहाँ नाग प्राण की प्रधानता माननी चाहिए। अग्नितत्त्व की भी यह प्राथमिक स्थिति है। इस समय त्रिवृत् स्तोम रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। त्रिवृत् स्तोम नौ गायत्री छन्द रश्मियों का समूह है। इस विषय में विस्तार से जानने हेतु ४.१६.१ व ३.४२.१ अवश्य पठनीय है। इस गायत्र अवस्था में ४.१३.१ में वर्णित रथन्तर साम भी प्रधान होता है। हमारे मत में पूर्वोक्तवत् 'ओम्' नामक सूक्ष्म रश्मि ही इस समय विशेषरूपेण साम अर्थात् सन्धि का कार्य करती है। यही सभी प्राण व छन्दादि रश्मियों को परस्पर जोड़े रखती है। ध्यातव्य है कि मास व ऋतु रश्मियां भी सदैव सन्धि कार्य में सहायक होती हैं। इस समय गायत्री छन्द रश्मियों की ही प्रधानता रहती है। यहाँ त्रिवृत् स्तोम में भी सभी गायत्री छन्द रश्मियां ही हैं। अन्य रश्मियां भी इनके पश्चात् उत्पन्न होती हैं। इस स्थिति में अग्नि देवता के अनुसार ही सभी स्तोम रश्मियां, साम रूप 'ओम्' रश्मि आदि रश्मियां एवं छन्द रश्मियां समृद्ध होती हैं, इसका तात्पर्य है कि ये सभी अग्नि तत्त्व को ही समृद्ध करती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया में विभिन्न प्राण रश्मियों से सर्वप्रथम गायत्री छन्द रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं, विशेषकर नौ गायत्री रश्मियां। इसके पश्चात् अन्य छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। उन रश्मियों को परस्पर एक सूत्र में बांधने हेतु **'ओम्'** एवं एक अनुष्टुप् रश्मि वहाँ विद्यमान होती हैं। इस चरण में इन रश्मियों के सम्पीडन से अर्थात् गायत्री व प्राथमिक प्राण रश्मियों के संगमन से अत्यन्त मन्द ऊर्जा कदाचित् रेडियो तरंगों अथवा इनसे भी सूक्ष्म व दुर्बल किन्हीं अज्ञात विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति होती है। अभी ऊष्मा व प्रकाश आदि की उत्पत्ति वृहद् स्तर पर नहीं हो पाती पुनरपि इनकी न्यूनतर स्तर पर विद्यमानता अवश्य ही होती है, क्योंकि इनके नितान्त अभाव वाली किसी भी विद्युत् चुम्बकीय तरंग की कल्पना सम्भव नहीं है। यहाँ प्राथमिक नाग प्राण की विशेष सक्रियता रहती है।।

२. यद्वा एति च प्रेति च, तत्प्रथमस्याह्नो रूपम्; यद्युक्तवद् यद्रथ-वद् यदाशुमद्, यत्पिबवद् यत्प्रथमे पदे देवता निरुच्यते, यदयं लोकोऽभ्युदितो, तद्राथन्तरं, यद्गायत्रं, यत्करिष्यदेतानि वै प्रथमस्याह्नो रूपाणि।।

व्याख्यानम्– यहाँ महर्षि कहते हैं कि इस चरण में अर्थात् नाग प्राण की प्रधान सक्रियता के समय जो भी गायत्र्यादि छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उनमें 'आ' तथा 'प्र' उपसर्गों की विद्यमानता अवश्य होती है। इनके कारण इन रश्मियों का प्रभाव 'आ समन्तात्' अर्थात् 'सब ओर प्रकृष्टरूपेण' हुआ करता है। इसके साथ ही यह भी सम्भव है कि इन रश्मियों पर नाग प्राण रश्मियों का प्रभाव प्रकृष्टरूप से सब ओर होता है। इसके साथ ही इन छन्द रश्मियों में 'युक्त', 'रथ', 'आशु', 'पिब' आदि पदों किंवा इनसे सम्बन्धित धातुओं की विद्यमानता भी अवश्य होती है। इन पदों के कारण इन रश्मियों का निम्नानुसार प्रभाव होता है-

'युक्त' शब्द अथवा 'युजिर् योगे' धातु की विद्यमानता से ये छन्द रश्मियां संगतीकरण की क्रिया को विशेष समृद्ध करती हैं। 'रथ' पद के प्रभाव से ये रश्मियां विभिन्न सुन्दर वाहक किरणों को उत्पन्न करती हैं, किंवा स्वयं ही विभिन्न रश्मियों को सुन्दरता से अपने साथ वहन करती हैं। इसके साथ ही वे रश्मियां रथ अर्थात् वज्ररूप तीक्ष्ण होकर बाधक असुर रश्मियों को दूर करती हैं। 'आसु' एवं 'पिब' पदों के प्रभाव से ये रश्मियां शीघ्रकारी प्रभाव दर्शाते हुए विभिन्न संयोज्य रश्मियों को अपने अन्दर अवशोषित करती हैं। इसके कारण नवीन रश्मि आदि पदार्थों का निर्माण त्वरित गति से होता है। यहाँ 'आशु' शब्द 'अशूङ् व्याप्तौ' एवं 'अश भोजने' से व्युत्पन्न होने से ये रश्मियां शीघ्रतापूर्वक सबको अपनी व्याप्ति से ढांप कर उन्हें अवशोषित करने में समर्थ होती हैं। इनमें देवतावाची पद प्रथम पद वा पाद में विद्यमान होता है। इसके कारण इसका दैवत प्रभाव अर्थात् अग्नि तत्त्व की समृद्धि प्रथम पाद के प्रभाव से ही होती है। इन रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न अप्रकाशित रश्मि आदि पदार्थ अभ्युदय को प्राप्त होते हैं अर्थात् उनमें परस्पर विशेष नियन्त्रण करने का गुण उत्पन्न होता है। उस समय विभिन्न छन्द रश्मियों की सन्धि रथन्तर रश्मियों अर्थात् 'ओम्' रश्मि किंवा ४.१३.१ में दर्शायी स्वराडनुष्टुप् छन्द रश्मि के द्वारा होती है। उस समय गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है तथा 'कृ' धातु के भविष्यत् काल के पदों से युक्त छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इतने लक्षणों से युक्त छन्द रश्मियां व उनकी विविध क्रियाएं उस समय होती हैं, जिस समय नाग प्राण रश्मि की प्रधानता होती है। यहाँ 'कृ' धातु के भविष्यत् के रूप की विद्यमानता इस बात की सूचक है कि अब विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति प्रक्रिया का क्रमबद्ध क्रियान्वन प्रारम्भ होने वाला है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– नाग प्राण रश्मि की सक्रियता सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में ही होती है। उस समय विभिन्न छन्द रश्मियां सब ओर तीव्रता से संयुक्त होने लगती हैं। प्रारम्भिक स्थिति अप्रकाशित होती है और उस पदार्थ में ही अप्रकाशित ऊर्जा, जो दृश्य व डार्क दोनों ही रूपों में परिवर्तित होने वाली होती है, उत्पन्न होती है। यहाँ विशेषतः दृश्य ऊर्जा की ही चर्चा है। इस समय गायत्री रश्मियों की मात्रा विशेष होती है। इसके पश्चात् क्रमबद्ध प्रक्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं।।

३. 'उप प्रयन्तो अध्वरमिति' प्रथमस्याह्न आज्यं भवति।। प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– उपर्युक्त प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि कहते हैं कि इसी क्रम में राहूगण गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से अग्निदेवताक निम्नलिखित छन्द रश्मियों का समूहरूप एक सूक्त प्रकाशित होता है, उन छन्द रश्मियों का प्रभाव भी निम्नानुसार है-

(१) उपप्रयन्तो॑ अध्व॒रं मन्त्रं॑ वोचेमा॒ग्नये॑। आ॒रे अ॒स्मे च॑ शृण्व॒ते॥१॥ (ऋ.१.७४.१)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण व सूक्ष्म छन्दादि रश्मियां परस्पर निकट संगत होकर अहिंस्य क्रियाओं के द्वारा नाना छन्द रश्मियों को उत्पन्न करके अग्नि तत्त्व को तीक्ष्ण व समृद्ध करती हैं।

(२) यः स्नीहि॑तीषु पू॒र्व्यः सं॑ज॒ग्मा॒नासु॑ कृ॒ष्टिषु॑। अर॑क्षद्दा॒शुषे॒ गय॑म्॥२॥ (ऋ.१.७४.२)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {गयम् = धननाम (निघं.२.१०), गृहनाम (निघं.३.४)} इन छन्द रश्मियों से पूर्व उत्पन्न विभिन्न प्राण व ऋत्वादि रश्मियां परस्पर संगत होती हुई, एक-दूसरे को आकृष्ट करती हुई विभिन्न उत्पन्न पदार्थों के द्वारा धारण करने योग्य छन्द रश्मियों की रक्षा करती हैं। इससे अग्नितत्त्व की समृद्धि हेतु विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है।

(३) उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि। धनंजयो रणेरणे॥३॥ (ऋ.१.७४.३)

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु। अन्य प्रभाव से विभिन्न रश्मियों के संघात में धनंजय प्राण वाधक वृत्रासुर तत्त्व को नष्ट करता है। वह विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्कृष्टता से संदीप्त व सक्रिय करने हेतु विभिन्न प्राण रश्मियों को प्रकट वा सक्रिय करता है।

(४) यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये। दस्मत्कृणोष्यध्वरम्॥४॥ (ऋ.१.७४.४)

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् परन्तु दीप्ति की कुछ मन्दता। अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व विभिन्न सर्ग प्रक्रियाओं की व्याप्ति, उत्पत्ति एवं कान्ति हेतु देश देशान्तरों में दूत की भांति गमन करता, विभिन्न क्षेत्रों में हव्य अर्थात् मास व ऋतु रश्मियों में व्याप्त होता तथा विभिन्न संयोग प्रक्रियाओं में वाधक रश्मियों को नष्ट करने में विशेष समर्थ होता हैं।

(५) तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहुः सुबर्हिषम्॥५॥ (ऋ.१.७४.५)

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {यहुः = अपत्यनाम (निघं.२.२)} विभिन्न प्राणों के वल से उत्पन्न पुत्ररूप अग्नि विभिन्न प्रकाशक मरुद् रश्मियों तथा मासरूप हव्य रश्मियों से युक्त होता है।

(६) आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये॥६॥ (ऋ.१.७४.६)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव भी पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न हव्य प्रकाशक परमाणुओं को निकटता से व्याप्त करके, तेजस्वी होता हुआ गति तथा प्रजनन कर्मों से सम्यक् प्रकार से युक्त होता है।

(७) न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदग्ने यासि दूत्यम्॥७॥ (ऋ.१.७४.७)

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {योः = गच्छतो गमयितुः (म.द.भा.)। उपब्दिः = वाङ्नाम (निघं.१.११), महाशब्दकर्त्ता (म.द.भा.)} वह अग्नितत्त्व विभिन्न वागू रश्मियों से युक्त होकर शब्द करता हुआ स्वयं गमन करता तथा अन्यों को गमन कराता तथा विभिन्न पदार्थों को इधर-उधर फेंकता रहता है।

(८) त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात्॥८॥ (ऋ.१.७४.८)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से उस अग्नि तत्त्व के द्वारा रक्षित, प्रकाशित एवं गतिमान् विभिन्न परमाणु अनेक वलों से युक्त होकर सर्वत्र गमन करते हैं।

(९) उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे॥९॥ (ऋ.१.७४.९)

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। {विवाससि = परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} इसके अन्य प्रभाव से उस अग्नि से प्रकाशित विभिन्न परमाणु महान् तेज व वल से युक्त होकर

परस्पर एक-दूसरे के चारों ओर चक्कर लगाते, एक-दूसरे को प्रकाशित करते तथा एक-दूसरे से संयुक्त होते हैं।

इस प्रकार इन नौ गायत्री रश्मियों का समूह प्रथम अहन् नाग प्राण की सक्रियता के काल में आज्य का कार्य करता है। ध्यातव्य है कि यहाँ आचार्य सायण ने इस सम्पूर्ण सूक्त के पाठ का ही ग्रहण किया है, तदनुसार ही हमने ऐसा किया है। आज्य के विषय में ऋषियों का मन्तव्य है-

"एतद्वै जुष्टं देवानां यदाज्यम्" (श.१.७.२.१०)
"एतद्वै संवत्सरस्य स्वं पयः यदाज्यम्" (श.१.५.३.५)
"आज्यथंहवा अन्योर्द्यावापृथिव्योः प्रत्यक्षं रसः" (श.२.४.३.१०)
"वज्रो ह्याज्यम्" (श.१.३.२.१७)
"वज्रो वाऽ आज्यम्" (कौ.ब्रा.१३.७)
"काम आज्यम्" (तै.ब्रा.३.१.४.१५)
"अयातयाम ह्याज्यम्" (श.१.५.३.२५)

इन वचनों से स्पष्ट होता है कि इस सूक्त की रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ को तेजस्वी तथा गति व क्षेपण गुणों से विशेष युक्त कर देती हैं। ये रश्मियां इस सृष्टि प्रक्रिया के रसरूप वीज के समान हैं, साथ ही ये सम्पूर्ण पदार्थ में आकर्षण वलों को विशेषरूपेण सक्रिय करती हैं। ये रश्मियां श्रान्त व दुर्वल रश्मियों को सक्रिय व सवल करतीं तथा असुर रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं। इस कारण ही इस सूक्त को 'आज्य' कहते हैं।।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'प्र' उपसर्ग होने से यह सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मिसमूह प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के विशेष उत्कर्ष को निरूपित करता है, जैसा कि पूर्व कण्डिका में महर्षि ने नाग प्राण के उत्कर्ष की पहचान वतायी है। इसके कारण सभी प्राणादि रश्मियां वा छन्दादि रश्मियां प्रकृष्टता से **कार्य करने में सक्षम होती हैं। इस 'प्र' उपसर्गरूप रश्मि अवयव के कारण नाग प्राण के साथ अन्य आठ प्राण भी सज्जित होने को उद्यत होने लगते हैं।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस क्रम में विभिन्न प्रकार की नौ गायत्री रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके कारण पूर्वोत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां, प्राण रश्मियां तेजस्वी व सक्रिय हो उठती हैं। सम्पूर्ण पदार्थ में विक्षोभ होने लगता है। ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होने लगती हैं। आकर्षण व प्रतिकर्षण वल प्रवल होने लगते हैं, विशेषकर आकर्षण वल। इस कारण विभिन्न रश्मियों का परस्पर संयोग होने लगता है। इस समय डार्क एनर्जी का भी प्रक्षेपक प्रभाव होता है, जो संयोग प्रक्रिया में वाधक वनता है। उस समय ये नौ गायत्री रश्मियां और इनसे उत्पन्न विद्युत् उस डार्क एनर्जी के प्रभाव को नष्ट वा नियन्त्रित करने का कार्य करती हैं। यहाँ सृष्टि प्रक्रिया का सक्रिय वीज रूप निर्मित होता है।।

४. 'वायवा याहि दर्शतेति' प्रउगमेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर मधुच्छन्दा ऋषि से उत्पन्न क्रमशः वायु, इन्द्रवायू एवं मित्रावरुणौ-देवताक तीन तृचों वाले ऋ.१.२ सूक्तरूपी रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। यह रश्मिसमूह 'प्रउग' रूप है अर्थात् यह विभिन्न वलों को उत्पन्न करने वाला है। इस प्रउग संज्ञक सूक्त के विषय में विस्तार से जानने हेतु ३.१.१ अवश्य पठनीय है। हम यहाँ इसका पिष्टपेषण नहीं कर रहे हैं। यहाँ ग्रन्थकार का उद्देश्य मात्र यह है कि पूर्वोक्त परिस्थिति के पश्चात् इन रश्मियों की उत्पत्ति होकर विभिन्न वलों की वृद्धि होती है। इस सूक्त की प्रथम तथा षष्ठी ऋचा में 'आ' उपसर्ग विद्यमान होने से यह सूक्त प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण की विशेष उत्कर्ष का वोधक है। 'आ' उपसर्ग के प्रभाव से सभी प्रकार के वल 'आ समन्तात्' तीव्रता से सव ओर प्रकट होने लगते हैं। इस ऋचा में 'पिव' अर्थ में 'पाहि' पद भी प्रयुक्त है, जो नाग प्राण के उत्कर्ष का सूचक है। इसके प्रभाव से विभिन्न परमाणुओं में परस्पर आकर्षण एवं अवशोषण की क्रिया समृद्ध होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस समय विद्युत् आवेशित कणों की उत्पत्ति तथा उनके मध्य कार्यरत विद्युत्

चुम्वकीय वलों की उत्पत्ति भी होने लगती है। इस वल में कार्यरत विभिन्न वलों को उत्पन्न करने वाली धनंजय प्राण व मरुद् आदि रश्मियां सक्रिय होने लगती हैं। शेष विज्ञान ३.१.२ में उपर्युक्त सूक्त के वैज्ञानिक भाष्यसार के अन्तर्गत पढ़ें।।

५. 'आ त्वा रथं यथोतये', 'इदं वसो सुतमन्धः' इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ, रथवच्च पिबवच्च प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
इन्द्र नेदीय एदिहीतीन्द्रनिहवः प्रगाथः; प्रथमे पदे देवता निरुच्यते प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः' इति ब्राह्मणस्पत्यः; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर प्रियमेध ऋषि (इसके विषय ४.४.२ देखें) से इन्द्रदेवताक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि। तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते।।१।। (ऋ.८.६८.१)

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी व समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से {ऋतीषहम् = य ऋतीन् परपदार्थप्रापकाञ्छत्रून् सहते तम् (म.द.ऋ.भा.६.१४.४), सुम्नम् = सुखनाम (निघं.३.६), यज्ञो वै सुम्नम् (श.७.२.२.४), प्रजा वै पशवः सुम्नम् (तै.ब्रा.३.३.६.६)} महावलवान् इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को गति, रक्षण व कान्ति प्रदान करने तथा उन्हें संयोगार्थ प्रेरित करने हेतु अपनी ओर आकृष्ट करता है तथा वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाधक रश्मियों को दूर करके अनेक प्रकार के कर्मों को सम्पादित करता है।

(२) तुविंशुष्म तुविंक्रतो शचींवो विश्वया मते। आ पंप्राथ महित्वना।।२।। (ऋ.८.६८.२)

इसका छन्द गायत्री होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {शची = प्रज्ञानाम (निघं.३.६), कर्मनाम (निघं.२.१)} वह इन्द्र तत्त्व अनेक महान् वलों व कर्मों से युक्त होकर अनेक प्रकार की दीप्तियों से युक्त सभी परमाणुओं में व्याप्त होने लगता है।

(३) यस्यं ते महिना महः परिं ज्मायन्तंमीयतुंः। हस्ता वज्रं हिरण्ययंम्।।३।। (ऋ.८.६८.३)

इसका छन्द भी गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। {ज्मा = पृथिवीनाम (निघं.१.१)} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक और महान् आकर्षण व प्रतिकर्षण वल वाला होकर वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा प्रकाशक आग्नेय परमाणुओं को पार्थिव परमाणुओं में परिवर्तित करता है।

इस तृच की छन्द रश्मियों को महर्षि ने मरुत्वतीय का 'प्रतिपत्' कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व के वज्र की आरम्भिक तृच है। इसके पश्चात् 'अनुचर' रूप अर्थात् इस तृच का अनुकरण किंवा अनुसरण करने वाली मेधातिथि काण्व प्रियमेधश्चाङ्गिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न, सवको अपने साथ संगत करने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक निम्नलिखित तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) इदं वंसो सुतमन्धः पिवा सुपूर्णमुदरंम्। अनांभयिन्नरिमा तें।।१।। (ऋ.८.२.१)

इसका छन्द आर्षी गायत्री होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सवल-सतेज होता है। इसके अन्य प्रभाव से सवको वसाने वाला निष्कम्प इन्द्र तत्त्व इस अन्तरिक्ष में विद्यमान अन्ध अर्थात् विभिन्न प्रकाशित व अप्रकाशित संयोज्य परमाणुओं को अवशोषित करके उन्हें परस्पर संगत करता है। यहाँ 'अन्धः' शब्द का व्याख्यान {अन्धः = अहर्व्वा अन्धः (तां.१२.३.३), अन्धो रात्रिः (तां.६.१.७), अन्नं वा अन्धः (जै.ब्रा.१.३०३)} आर्ष वचनों को दृष्टिगत रखकर किया गया है।

(२) नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः। अश्वो न निक्तो नदीषु॥२॥ (ऋ.८.२.२)

इसका छन्द व दैवत - छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उपर्युक्त प्रकाशित व अप्रकाशित कण विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा शोधित इन्द्रतत्त्व द्वारा सम्यग् रूप से सम्पीडित {अश्नः = मेघनाम (निघं.१.१०), व्यापकः (म.द.ऋ.भा.१.१७३.२)} होते हैं। ऐसा करके जो व्यापक मेघरूप अवस्था होती है, उसी में ही वे दोनों प्रकार के पदार्थ गति करते व प्रकाशित होते हैं। उस समय इन्द्र तत्त्व की वज्ररूप वारणाशक्ति सम्पन्न रश्मियों के कारण वे परमाणु सब ओर गति करते व पवित्र होते रहते हैं। वे ऐसे परमाणु तीव्र बलसम्पन्न होकर सदैव गति करते रहते हैं।

(३) तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः। इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे॥३॥ (ऋ.८.२.३)

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणुओं को विभिन्न वाग् रश्मियों के साथ संगत करके परिपक्व करता है। {सधमादः = सधमादम् सहमदनम् (नि.७.३०), समानस्थानाः (म.द.ऋ.भा.७.४३.५)} वह इन्द्र तत्त्व दोनों ही प्रकार के कणों को साथ-२ संगत करके परस्पर तृप्त व सक्रिय करने में सहायक होता है।

इनमें से प्रथम तृच की प्रथम दो ऋचाओं में 'आ' उपसर्ग विद्यमान है तथा द्वितीय तृच की प्रथम ऋचा में पानार्थक 'पिबा' पद विद्यमान है। इस कारण इनकी उत्पत्ति के समय प्रथम अहन् नाग प्राण का उत्कर्ष परिलक्षित होता है। इन दोनों शब्दों के प्रभाव से सब ओर विभिन्न परमाणुओं के परस्पर संयुक्त होने की क्रिया होती है॥

इसके उपरान्त मेध्यः काण्व ऋषि अर्थात् सबके संयोजक सूत्रात्मा वायु से इन्द्रदेवताक निम्न प्रगाथ की उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः॥५॥ (ऋ.८.५३.५)

इसका छन्द विराड् बृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्विता के साथ व्यापक होता हुआ विभिन्न रश्मि व कणों को बांधता हुआ संघनित करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं के सब ओर निकटता से व्याप्त होता हुआ, विभिन्न संगम व व्याप्ति आदि क्रियाओं के द्वारा उनकी रक्षा करता हुआ गति व दीप्ति प्रदान करता है। वह अच्छी प्रकार व्याप्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न व्याप्त शक्तियों के द्वारा अनुकूलता से वांछित संगति की क्रियाओं को सम्पादित करता है। यहाँ वांछित एवं अवांछित क्रियाओं का भेद परमात्म-चेतन तत्त्व ही करता है, जो सर्वोपरि नियामक व प्रेरक सत्ता है।

(२) आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्॥६॥ (ऋ.८.५३.६)

इसका छन्द निचृत् पङ्क्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व अधिक तीक्ष्ण होकर व्यापक रूप से संगति-क्रियाओं को सम्पन्न करने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से {चर्षणिः = चायिता आदित्यः (नि.५.२४)। आनुषक् = अनुकूलम् (म.द.ऋ.भा.२.६.८), अनु+षञ्ज संगे+क्विप्} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न उत्पन्न परमाणुओं के मध्य व्यापक संघातों की नाना क्रियाओं में विभिन्न अविनाशी पदार्थों की रक्षा करता तथा उन्हें विभिन्न व्यापक प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ सब ओर से संगत करता है। वे प्राण रश्मियां विभिन्न प्रकार की छन्दादि रश्मियों से निर्मित संयोज्य परमाणुओं को अनुकूलता से संगत करती हैं तथा उनकी दीप्तियों एवं क्रियाशीलता को अच्छी प्रकार बढ़ाती हैं।

इन दोनों छन्द रश्मियों को 'इन्द्र निहव' कहा है, इसका तात्पर्य है कि इनके प्रभाव से इन्द्र तत्त्व निरन्तर सक्रिय व आकर्षित होता रहता किंवा विभिन्न परमाणुओं द्वारा आकृष्ट किया जाता रहता है। इन ऋचाओं में से प्रथम ऋचा के प्रथम पाद, उसमें भी प्रथम पद ही 'इन्द्र' है, इस लक्षण से इस

स्थिति में नाग प्राण की सक्रियता की पुष्टि होती है।।

इसके उपरान्त घोरपुत्रः काण्व ऋषि अर्थात् विभिन्न हिंसक व ध्वनि उत्पादक रश्मियों की रक्षक रश्मियों में उत्पन्न सूत्रात्मा वायु से बृहस्पतिदेवताक निम्नलिखित प्रगाथ की उत्पत्ति होती है-

(१) प्रैतु ब्रह्म॑णस्पतिः प्र दे॒व्ये॑तु सू॒नृता॑।
अच्छा॑ वी॒रं नर्यं॑ प॒ङ्क्तिरा॑धसं दे॒वा य॒ज्ञं न॑यन्तु नः।। (ऋ.१.४०.३)

इसका छन्द आर्ची त्रिष्टुप् छन्द होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से प्राणापान तीव्र होकर विद्युत् की तीव्रता को समृद्ध करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां विभिन्न संगति कर्मों को सिद्ध व विस्तृत करती है। इसमें विभिन्न प्रकाशित परमाणु सर्वत्र व्याप्त होने लगते हैं।

(२) यो वा॒घते॒ ददा॑ति सू॒नरं॒ वसु॒ स ध॑त्ते॒ अक्षि॑ति॒ श्रवः॑।
तस्मा॒ इळां॑ सु॒वीरा॒मा य॑जामहे सु॒प्रतू॑र्ति॒मने॒हस॑म्।।४।। (ऋ.१.४०.४)

इसका छन्द सतः पङ्क्ति निचृत्पंक्ति होने से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्णता से व्याप्त होता जाता है, जिससे विभिन्न संगति-क्रियाएं तीव्रतर होने लगती हैं। अन्य प्रभाव से {वाघतः = वोढारो मेधाविनो वा (नि. ११.१६), ऋत्विङ्नाम (निघं.३.१८)। अनेहसम् = अहन्तव्यम् (म.द.ऋ.भा.६.५१.१६)। ऋत्विक् = ऋतवः ऋत्विजः (श.११.२.७.२)} वे प्राणापान विभिन्न छन्दादि रश्मियों को वहन करने किंवा ऋतु रश्मियों को प्राप्त करने हेतु अच्छी वा सक्रिय मरुद् रश्मियों को विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ संगत करते हैं। इससे वे प्राण रश्मियां अहिंस्य व शीघ्रकारी छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर अक्षय पदार्थाणुओं को उत्पन्न करती हैं।

इस प्रगाथ की प्रथम ऋचा में 'प्र' उपसर्ग की विद्यमानता से नाग प्राण के उत्कर्ष की पुष्टि होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तदुपरान्त विद्युत् चुम्बकीय बलों में भारी वृद्धि होती है। वे बल डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक बलों का अतिक्रमण करके विभिन्न कणों को तीव्रता से संयुक्त करने लगते हैं। उस समय जहाँ पदार्थ में भारी विक्षोभ होता है, वहीं तीव्र दीप्ति भी उत्पन्न होने लगती है। **विभिन्न क्वाण्टाज् से अनेक प्रकार के मूल कणों की उत्पत्ति भी इस चरण में होती है।** विभिन्न कण व रश्मि आदि का घनीभूत होना प्रारम्भ हो जाता है, जिससे अति सूक्ष्म कॉस्मिक मेघ बनने लगते हैं। विभिन्न कण प्रकट होकर यत्र-तत्र-सर्वत्र अव्याहत गति करने लगते हैं। वे कण विद्युत् चुम्बकीय बलों से युक्त होते हैं। उन कणों का क्वाण्टाज् के साथ भी सतत संयोग होने से उनकी ऊर्जा में वृद्धि होने लगती है। चेतन परमात्म-तत्त्व की बुद्धिजन्य प्रेरणा से अनुकूल संयोग होने लगते हैं। इस समय पदार्थ में यही बल अधिक प्रबल होता है। इसकी तीव्रता भी सतत बढ़ती ही जाती है। इससे डार्क एनर्जी का कोई भी बाधक प्रभाव इन्हें प्रभावित नहीं कर पाता। इस स्थिति में **नाग** नामक प्राथमिक प्राण के विशेष उत्कर्ष का चरण होता है। उसी का मुख्य प्रभाव इन सब क्रियाओं के पीछे कार्य करता है। इस समय ५ गायत्री, एक अनुष्टुप् एक बृहती, एक त्रिष्टुप् एवं २ पंक्ति छन्द रश्मियों की विशेष भूमिका होती है, जो इसी समय उत्पन्न होती है।।

६. 'अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यपः' इति धाय्याः; प्रथमेषु पदेषु देवता निरुच्यन्ते प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।। 'प्र व इन्द्राय बृहत' इति मरुत्वतीयः प्रगाथः, प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त गाथी ऋषि अर्थात् सूक्ष्म दैवी रश्मियों के समूह से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से अग्निदेवताक त्रिष्टुप् छन्दस्क-

अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम्॥४॥ (ऋ.३.२०.४)

की उत्पत्ति होती है। इसके देवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी एवं बलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से {सनयः = सनयं पुराणम् (नि.४.१९), सनये सवनाय (नि.६.२२)} वह सबका नायक अग्नि तत्त्व सूर्य के समान नियन्त्रक क्षमता से सम्पन्न होकर प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के कणों वा रश्मियों को संगमनीय बनाता है। वह अग्नि विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त, ऋतु रश्मियों द्वारा रक्षित तथा वृत्ररूपी असुर मेघ को नष्ट करके सभी बाधाओं से सब पदार्थों को पार करता है।

इस छन्द रश्मि के पश्चात् राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से उत्पन्न सोमदेवताक तथा पङ्क्तिश्छन्दस्क-

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः॥२॥ (ऋ.१.९१.२)

की उत्पत्ति होती है। इसके देवत व छान्दस प्रभाव से सोम पदार्थ विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त होता हुआ अग्नि तत्त्व के साथ संगत होने में सक्रिय होता है। इसके अन्य प्रभाव से {द्युम्नम् = द्युम्नं हि बृहस्पतिः (श.३.१.४.१६), द्योततेर्यशो वा अन्नं वा (नि.५.५), धननाम (निघं.२.१०)} वह सोम तत्त्व अपने विभिन्न संयोगादि कर्मों के द्वारा सक्रिय होता, {दक्षाः = प्राणा वै दक्षाः (जै.ब्रा.१.१५१), बलनाम (निघं. २.९)} विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर बलवान् होता एवं सर्वत्र व्याप्त होता है। विभिन्न प्रतिबन्धक व उत्पादक शक्तियों से सम्पन्न होकर वृषारूप होता, विभिन्न प्रकाशक रश्मियों व सूत्रात्मा वायु से युक्त होकर नाना परमाणुओं को बनाने में सक्षम होकर अपनी महिमा से देदीप्यमान मरुद् रश्मियों के रूप में प्रकाशित होता है।

इसके उपरान्त गौतमो नोधा ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से उत्पन्न एक तेजस्वी प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक एवं विराड् जगती छन्दस्क-

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्॥६॥ (ऋ.१.६४.६)

की उत्पत्ति होती है। इसके देवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्रतत्त्व प्रकाशित होकर नाना परमाणुओं से संयुक्त-वियुक्त होता रहता है। इसके अन्य प्रभाव से अच्छे दान करने वाले अर्थात् अपनी रसरूप सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को अन्य पदार्थों पर सेचन करने वाले सोमतत्त्व {अत्यः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} व्याप्तिशील किरणों के समान सदैव अपनी रश्मियों की वृष्टि करते रहते हैं। {उत्सम् = आपो वा ऽउत्सः (श.६.७.४.४)} वे सोम रश्मियां सबमें व्याप्त होकर नाशरहित ध्वनियों को उत्पन्न करती एवं बलों को पूर्ण करती रहती हैं।

इन उपर्युक्त तीनों छन्द रश्मियों को धाय्या कहा है, इसका तात्पर्य है कि ये रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों को धारण करने में समर्थ होती हैं। हमारे मत में इनमें भी प्रथम छन्द रश्मि त्रिष्टुप् होने के कारण प्रमुख धाय्या रश्मि है, जिसके कारण ही इन तीनों का समूह भी धाय्या का कार्य करता है। इस प्रथम छन्द रश्मि में 'अग्निः' पद (देवतावाची) सर्वप्रथम विद्यमान है, इस कारण इनकी उत्पत्ति के समय नाग प्राण के उत्कर्ष का काल होता है। ध्यातव्य है कि प्रथम छन्द रश्मि का देवता महर्षि दयानन्द के अनुसार 'विश्वदेवा' है, जबकि यहाँ महर्षि ऐतरेय महीदास इसका देवता अग्नि मानते हैं। इस कारण हमने भी इसका देवता अग्नि ही माना है।।

इसके पश्चात् नृमेधपुरुमेधौ ऋषि अर्थात् विभिन्न मरुद् रश्मियों का संगम व्यापक स्तर पर कराने वाले दो सूक्ष्म प्राणों के संयुक्त रूप से उत्पन्न इन्द्रदेवताक तथा क्रमशः निचृद् बृहती व विराट् पंक्ति छन्दस्क निम्नलिखित दो छन्द रश्मियां-

(१) प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा।।३।। (ऋ.८.८९.३)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मियों को परिधि रूप में आच्छादित करते हुए सम्पीडित करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां प्राण नामक प्राण के द्वारा उस व्यापक इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करती हैं। फिर वह ऐसा इन्द्र तत्त्व मेघरूप विशाल वृत्ररूपी असुर तत्त्व को अपनी असंख्य वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों से नष्ट करता है। ऐसा करके वह इन्द्र तत्त्व सैकड़ों संगति-प्रक्रियाओं का पालन व रक्षण करता है।

(२) अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः।।४।। (ऋ.८.८९.४)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशित होता हुआ व्यापक स्तर पर संगति-क्रियाओं को बल देता है। इसके अन्य प्रभाव से दृढ़ता से प्रकाशित व्यापक एवं विशाल बलयुक्त वह इन्द्रतत्त्व विभिन्न परमाणुओं को दृढ़ता व अनुकूलता से धारण करता है। उस इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करने वाले विभिन्न प्राण उस इन्द्र तत्त्व को बलवान् बनाते, फिर वह इन्द्र तत्त्व वृत्र असुर मेघ को नष्ट वा नियन्त्रित करके देदीप्यमान अवस्था का निर्माण करता है।

इन दोनों रश्मियों में ही 'प्र' उपसर्ग के विद्यमान होने से इनके उत्पत्ति-काल में नाग प्राण के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उसके पश्चात् पूर्ववत् **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल में ही त्रिष्टुप्, पंक्ति, जगती, बृहती छन्दों वाली कुल पाँच रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके कारण पूर्वोत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां परस्पर बंधी रहती हैं। विद्युत् चुम्बकीय बल व तरंगें निरन्तर बलवती होती जाती हैं। विभिन्न मूल कणों व एटम्स आदि के निर्माण की प्रक्रिया तीव्र होती है। सभी कणों पर डार्क एनर्जी का तीव्र प्रक्षेपक व प्रतिकर्षक प्रभाव कार्य करता है, परन्तु विद्युत् बलों तथा तीव्र ऊष्मा के कारण उस प्रभाव को नष्ट वा नियन्त्रित कर लिया जाता है। इस समय नाना कणों के स्थायी व दृढ़ बन्धन बनने लगते हैं। इस समय विभिन्न क्रियाएं प्रकृष्ट रूप में ही होती हैं। उनमें परस्पर भारी मात्रा में अन्योऽन्य क्रियाएं होने लगती हैं।।

७. 'आ यात्विन्द्रो वस उप न' इति सूक्तमेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।। 'अभि त्वा शूर नोनुमो, ऽभि त्वा पूर्वपीतये' इति रथन्तरं पृष्ठं भवति, राथन्तरेऽहनि प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पन्न प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.४.२१ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इसकी विभिन्न छन्द रश्मियों का प्रभाव निम्नानुसार है-

(१) आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्।।१।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के आकर्षण व प्रतिकर्षण बल रूपी बाहू व्यापक प्रभाव वाली होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूर्य्य किरणों के समान अनेकों बलवती रश्मियों की सेना से युक्त होकर अपने भेदक बल को पुष्ट करता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व विभिन्न आसुरी रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके विभिन्न संयोज्य परमाणुओं की रक्षा हेतु उन परमाणुओं को निकटता से व्याप्त करता है।

(२) तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन्।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः।।२।।

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विशेष वल, तेज व संयोज्य गुण विशेष नियन्त्रण क्षमता से सम्पन्न प्रकाशमान इन्द्र तत्त्व संयोगादि क्रियाओं में वाधक रश्मियों की वाधाओं से विभिन्न परमाणुओं को पार उतारने वाला होता है। इस कारण विभिन्न परमाणु सव ओर से वलों से युक्त होकर नाना अभिक्रियाएं करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व इन आकर्षक परमाणुओं का नेतृत्व करता है।

(३) आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात्।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्परावतो वा सदनादृतस्य।।३।।

इसका छन्द स्वराड् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु परन्तु तेजस्वी। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व प्रकाशित व अप्रकाशित अवस्था वाले दूर वा निकट अन्तरिक्ष में स्थित पदार्थ में अपने वल से व्याप्त होता है। इसके साथ ही वह विभिन्न परमाणुओं की अनेक क्रियाओं को सम्पादित करने में रक्षा करता है।

(४) स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम्।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ।।४।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से तीक्ष्ण रूप से तेजस्वी एवं वलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक और स्थूल कणों वा पदार्थों को विभिन्न संघात प्रक्रियाओं के समय नियन्त्रित करता है और ऐसा करने हेतु वह उनमें व्याप्त होकर उन्हें ढोने लगता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वलशाली प्राण रश्मियों के द्वारा विभिन्न छन्दादि रश्मियों से उन सवको प्रकाशित करता है।

(५) उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता।।५।।

इसका छन्द एवं दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण हुआ इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोग - क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए विभिन्न वाग् रश्मियों को प्रकट करता, उन प्रकाशित अनेक छन्द रश्मियों से उन क्रियाओं को सिद्ध करता, अपने व्यापक वारक वलों से विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को रोकता हुआ इस अन्तरिक्ष को व्याप्त करता है।

(६) धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः।।६।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु। अन्य प्रभाव से {पस्त्यमिति गृहनाम (निघं.३.४)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न आच्छादक वलों में उत्पन्न दुःसह महान् ताप का आदान प्रदान करता है। इसके साथ ही परस्पर आकर्षण का भाव रखने वाले विभिन्न परमाणुओं को मेघ रूप में ढांपता एवं गति व प्रकाश प्रदान करता हुआ सव ओर से आश्रय देता है।

(७) सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय।।७।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {भार्वरस्य = प्रजाभर्त्तुः राज्ञः (म.द.भा.), डुभृञ् धारणपोषणयोः (जु.) धातोरौणा. ष्वरच् बहुलवचनाद् वृद्धिश्च (वै.

को. - आ.राजवीर शास्त्री)। ईम् = प्राप्तं वस्तु (म.द.ऋ.भा.६.१७.२), (सर्वाम्) क्रियाम् (म.द.ऋ.भा. १.१६४.३२)} वह इन्द्र तत्त्व शुष्म अर्थात् सभी बलों को अपने अन्दर सोखने की सामर्थ्य से युक्त प्राणापानादि के द्वारा निरन्तर पालित होकर अपने सेचक बलों को प्रकाशित करता है। वह विभिन्न परमाणुओं में आकर्षणादि बलों के लिए अपने बलों का सेचन करता और सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न परमाणुओं के निकट उनको प्रभावी बनाता, उनके गमन, सक्रियता व विविध क्रियाओं में सर्व प्रकार से उनका सिंचन करता है।

(८) वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति।।८।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी व तीक्ष्ण बलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी सुन्दर क्रिया और बलों के लिए गौर वर्ण की रश्मियों को अन्तरिक्ष में विशेषरूप से वहन करता है। वह विभिन्न मेघरूप पदार्थों के जलते-चमकते सोम के द्वारा श्रेष्ठ बन्धक बलों को समृद्ध करके विभिन्न परमाणुओं को तीव्र गतिमान् करता है।

(९) भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ।।९।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पाणी = पाणी वै गभस्ती (श.४.१.१.९), (गभस्तिः = रश्मिनाम - निघं.१.५)} वह इन्द्र तत्त्व अपने प्रकृष्ट गतिशील, आकर्षण व भेदक बलों एवं अपनी सुन्दर प्रकाशित रश्मियों से अनेक क्रियाओं को सिद्ध करता है। वह विभिन्न परमाणुओं की गति, स्थिति व तीव्र सक्रियता आदि में अपना योगदान देता है।

(१०) एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के बल विस्तृत होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह व्यापक, प्रकाशित, विभिन्न प्राण रश्मियों में स्थित इन्द्र तत्त्व आच्छादक आसुर मेघ को नष्ट करता है। {वरिवः = धननाम (निघं.२.१०), भृशं रक्षणम् (म.द.य.भा.५.३७)} वह सम्यग् देदीप्यमान विभिन्न पदार्थों के पालन और रक्षण हेतु नाना प्रकार की मरुद् व छन्दादि रश्मियों को उनके ऊपर प्रक्षिप्त करता है, जिससे वे पदार्थ विभिन्न रक्षक व गति देने वाली प्राण रश्मियों का अवशोषण करने लगते हैं।

(११) नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।११।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व तीव्रता से फैलने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से अनेक बल रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व सतत प्रवाहित नवीन-२ प्राणापान रश्मि रूपी ब्रह्म से युक्त होता रहता है। सुन्दर वाहक किरणें उस इन्द्र तत्त्व के अनेक कार्यों को सम्पादित करती हैं। इससे आकर्षण बलयुक्त विभिन्न परमाणु परस्पर एक-दूसरे को प्रकाशित करते हुए वर्धमान होते रहते हैं।

इस प्रकार इस सम्पूर्ण सूक्त में 'प्र' एवं 'आ' उपसर्गों की अनेकत्र विद्यमानता से विभिन्न क्रियाएं प्रकृष्ट वेग से सब ओर व्यापक स्तर पर होने लगती हैं। इसी कारण इस सूक्त रश्मिसमूह की उत्पत्ति व सक्रियता नाग प्राण के उत्कर्ष की परिचायिका है।।

तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण से

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः।।२२।। (ऋ.७.३२.२२)

तथा इसी ऋषि प्राण से इन्द्रदेवताक एवं निचृत् पंक्तिश्छन्दस्क-

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।।२३।। (ऋ.७.३२.२३)

की उत्पत्ति होती है। इनमें ऋचा के विषय में खण्ड ४.१३ की प्रथम कण्डिका का व्याख्यान पढ़ें। द्वितीय ऋचा के दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णता से विस्तृत होता चला जाता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सदैव विभिन्न परमाणुओं को अपने साथ संगत करता हुआ ही उत्पन्न होता है। यह अति वेग व वल से उन सभी परमाणुओं को युक्त करने हेतु अनेक छन्द व मरुदादि रश्मियों को आकृष्ट करता रहता है।

इन दोनों छन्द रश्मि रूप प्रभाव के साथ-२ निम्न प्रगाथ की उत्पत्ति भी इसी समय होती है-

(१) मेध्यातिथिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं निचृद् बृहती छन्दस्क

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्।।७।। (ऋ.८.३.७)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व पदार्थ को तीव्रता से बांधता हुआ समृद्ध होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आयु=प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व के द्वारा नाना मरुद् रश्मियों के पूर्ण अवशोषण हेतु उसे सव ओर से सम्यग्रूपेण व्याप्त व सक्रिय करती हैं। उस समय सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न त्रिष्टुप् आदि रश्मियों को सम्यक् प्रकार से प्रकाशित करती व बांधती हैं।

(२) पूर्वोक्त ऋषि व देवता वाली स्वराड् बृहती छन्दस्क-

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।।८।। (ऋ.८.३.८)

इसका दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् किन्तु कुछ कम तीक्ष्ण व प्रकाश की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं के सेचक वल को व्यापक रूप से वढ़ाता है। विभिन्न प्राण रश्मियां उस वर्धमान इन्द्र तत्त्व को सर्वथा पूर्णतः प्रकाशित करती रहती हैं।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त चार छन्द रश्मियां रथन्तर छन्द रश्मियों का रूप होती हैं। रथन्तर छन्द रश्मियों के विषय में विशेष ज्ञान हेतु ४.१३.१ पठनीय है। आचार्य सायण ने प्रथम प्रगाथ (रश्मिद्वय) को योनिभूत तथा द्वितीय प्रगाथ को उसका अनुचर कहा है। इससे हमारा तात्पर्य है कि रथन्तर रूप रश्मियों के रूप में प्रथम प्रगाथ मुख्य है तथा द्वितीय प्रगाथ उसका अनुसरण करने वाला होकर रथन्तर स्वरूप को पुष्ट करता है। महर्षि पूर्व में रथन्तर रश्मियों की उत्पत्ति को नाग प्राण के उत्कर्ष का सूचक मानते हैं, इस कारण ये राथन्तरी प्रगाथ रश्मियां भी नाग प्राण के उत्कर्ष की सूचक हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल में व्याख्यान भाग में दर्शायी त्रिष्टुप् पंक्ति आदि विभिन्न ग्यारह छन्द रश्मियों का समूह उत्पन्न होता है। इसके कारण विद्युत् वलों में व्यापक वृद्धि होने के साथ-२ विद्युत् चुम्वकीय तरंगें समृद्ध होने लगती हैं। विभिन्न कणों के मध्य आकर्षण आदि की क्रिया तीव्रतर होने लगती है। उनके परस्पर संघात की प्रक्रिया तीव्र होते हुए डार्क एनर्जी का प्रभाव नियन्त्रित होता है। सभी कणों में विद्युत् की व्याप्ति हो जाती है। उन कणों की गति संयोग, वियोग एवं मार्ग आदि विद्युत् के द्वारा ही नियन्त्रित होते हैं। उन कणों में गौर रंग का प्रकाश व्याप्त होने लगता

है। इस विद्युत् को प्राण-अपान के साथ विभिन्न छन्द रश्मियां भी सतत नियन्त्रित करती रहती हैं। इसके उपरान्त चार अन्य छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं, जो उस विद्युत् को अपने वलों से सतत गति व वल प्रदान करती हुई उसे सक्रिय वनाए रखती हैं। एतदर्थ विभिन्न छन्दादि रश्मियों के साथ विद्युत् का सामंजस्य वनाए रखने में सहायक होती हैं। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग पठनीय है।।

८. यद्वावान् पुरुतमं पुराषाळिति धाय्या, आ वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्रा इत्येति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'पिबा सुतस्य रसिन' इति सामप्रगाथः पिबवान् प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतम्' इति तार्क्ष्यं पुरस्तात् सूक्तस्य शंसति; स्वस्त्ययनं वै तार्क्ष्यः स्वस्तितायै।।
स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।१।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर उपर्युक्त छन्द रश्मियों की धाय्या के रूप में गौरिवीति ऋषि, जिसके विषय में ४.२.१ पठनीय है, से इन्द्रदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क निम्न छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है-

यद्वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत्।।६।। (ऋ.१०.७४.६)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र प्रकाशित व शक्तिसम्पन्न होता है। इसके अन्य प्रभाव से विशाल आसुर तत्त्व को नष्ट व नियन्त्रित करने वाला इन्द्रतत्त्व व्यापक स्तर पर उसका नाश करता है। {वावान = हन्तीति सायणः} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाग् रश्मियों को सर्वत्र परिपूर्ण करता है। वह अति वलसम्पन्न एवं विभिन्न प्रकार के अनेक वलों का नियन्ता होकर विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है।

यह छन्द रश्मि पूर्वोत्पन्न छन्द रश्मियों की धाय्या होने से उन्हें सव ओर से धारण करती है, जिससे वे सम्यग्रूपेण संगठित होकर अपने-२ कार्यों को निष्पादित कर सकें। इस ऋचा के द्वितीय पाद 'आ वृत्रहेन्द्रो नामन्यत्रा' में 'आ' की विद्यमानता इस वात की सूचक है कि इसकी उत्पत्ति के समय प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण का उत्कर्ष होता है।।

तदनन्तर मेध्यातिथिः काण्व ऋषि, जिसके विषय में पूर्व पृष्ठों में

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्।।७।। (ऋ.८.३.७)

के व्याख्यान में लिख चुके हैं, से इन्द्रदेवताक निम्न प्रगाथ रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः।।१।। (ऋ.८.३.१)।

इसका छन्द ककुम्मती वृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से {ककुप् = ककुभ इति दिङ्नाम (निघं.१.६)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को सभी दिशाओं से घेरता हुआ सम्पीडित करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों की रसरूप सूक्ष्म रश्मियों का पान करता है। इसके साथ-२ ही वह {आपिः = आप्लृ+इस्, यहाँ इस् प्रत्यय 'अर्चिशुचिहुसृपि.......' (उ. को.२.२१०) इस उणादि सूत्र से वहुल करके हुआ है, ऐसा हमारा मत है। इसका अर्थ 'समन्तादाप्नोतीति मे मतम्'} इन्द्र तत्त्व सर्वत्र व्याप्त विभिन्न रश्मि वा कणों को सक्रिय व रक्षित करता है।

(२) भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये। अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय।।२।। (ऋ.८.३.२)।

इसका छन्द सतः पङ्क्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से संयोगादि प्रक्रियाओं को समृद्ध करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मि वा कणों को बल एवं तेज से युक्त करता है तथा उन्हें असुरादि बाधक पदार्थों से हिंसित नहीं होने देता। इस कारण वे रश्मि वा कण आदि पदार्थ विचित्र प्रकार के संयोग सहजतया करने में सक्षम हो जाते हैं।

इस रश्मिद्वय की प्रथम ऋचा में 'पिबा' पद होने से इस बात का संकेत मिलता है कि इनकी उत्पत्ति के समय नाग प्राण का उत्कर्ष हो चुका वा रहा होता है।।

इसके उपरान्त अगले खण्ड में वर्णित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पूर्व इस तार्क्ष्य सूक्त रूपी तीन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस सम्पूर्ण सूक्त के विषय में अति विस्तृत जानने हेतु ४.२०.४ अवश्यमेव पठनीय है। यहाँ हम पिष्टपेषण करना उचित नहीं समझते।।

इस प्रकार इस खण्ड में वर्णित क्रम से विभिन्न छन्द रश्मियों के उत्पन्न होकर विविध कार्यों को सम्पादित करने से पूर्वोक्त द्वादशाहस्य विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों का मार्ग सुगम हो जाता है, इसके कारण सर्गरचना की प्रक्रिया समुचितरीत्या होकर तारों के निर्माण तक प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त होता चला जाता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- नाग प्राण के उत्कर्ष काल में ही अन्य तीन छन्द रश्मियों (त्रिष्टुप्, बृहती व पंक्ति) की उत्पत्ति होती है। इस समय डार्क एनर्जी के प्रभाव को बलपूर्वक नियन्त्रित करके विभिन्न रश्मि वा कणों के मध्य संयोग की प्रक्रिया व्यापक एवं तीव्र होती है। इसी समय तीन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न रश्मि व कणों को सुव्यवस्थित करके उनके संयोग में सहायक होती हैं। ये रश्मियां शृंखला रूप में तीन से अनेक रूप में असंख्य मात्रा में चहुँ ओर प्रकट होकर सक्रिय हो उठती हैं। सृष्टि प्रक्रिया से भ्रान्त विभिन्न कणों वा रश्मियों को ये तीनों त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अपने नियन्त्रण में लेकर उन्हें संयोगार्थ व्यवस्थित करती हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय बलों की विशेष प्रधानता होती है।।

ॐ इति २०.१ समाप्तः ॐ

अथ २०.२ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'आ न इन्द्रो दूरादा न आसादिति' सूक्तमेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।। संपातौ भवतो निष्केवल्यमरुत्वतीययोर्निविद्धाने; वामदेवो वा इमाँल्लोकानपश्यत्, तान् संपातैः समपतद्; यत्संपातैः समपतत् तत्संपातानां संपातत्त्वं, तद्यत्संपातौ प्रथमेऽहनि शंसति, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै संपत्त्यै संगत्यै।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वामदेव ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.४.२० सूक्त की ऋचाओं की उत्पत्ति निम्नलिखित क्रम से होती है-

(१) आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून्।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी व वलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व, जिसकी वज्ररूप तीक्ष्ण किरणें आकर्षण व प्रतिकर्षण वलों से युक्त होती हैं, वह विभिन्न मरुद् रश्मियों का पालक तथा अनेकविध संयोगादि कर्मों को करने में सक्षम होता है। वह निकट व दूर सभी ओर से विभिन्न परमाणुओं के संघात में अपनी रश्मि सेना के द्वारा सवको व्याप्त करता है।

(२) आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ।।२।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इन्द्रतत्त्व विस्तृत होता चला जाता है। इसके अन्य प्रभाव से {अव इत्यन्ननाम (निघं.२.७)। विरप्शी = महन्नाम (निघं.३.३)} वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों वाला एवं अनेक प्रकार के पदार्थों से युक्त वह महान् इन्द्र तत्त्व अपनी कमनीय रश्मियों के द्वारा सव ओर से विभिन्न रश्मि व कणों की रक्षा हेतु एवं उनमें संयोजकता गुण को उत्पन्न करके विभिन्न संघातों को सम्पन्न करके नाना नवीन तत्त्वों का निर्माण करता है।

(३) इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम।।३।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {श्वघ्नी = (श्वानम् = प्रेरकम् - म.द.ऋ.भा.१.१६१.१३)} वह इन्द्र तत्त्व इस सृष्टि यज्ञ एवं विभिन्न पुरों अर्थात् पालिका किरणों को धारण करता है। यह विभिन्न सूक्ष्म व स्थूल पदार्थों का विभाग करता तथा संघातों को नियन्त्रित करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वज्ररूप किरणें एवं अनेक आश्चर्यजनक कर्मों का स्वामी होता है।

(४) उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन।।४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णरूप से प्रकाशित होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व {स्वधा = द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०), अन्ननाम (निघं. २.७)} सम्पीडित सोमतत्व से उत्पन्न प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के संयोज्य कणों को निकटता से आकर्षित करता है। वह उन प्रत्येक धारित कण वा तंरगों को {अन्धः = अहर्वा अन्धः (तां.१२.३.३), अन्धो रात्रिः (तां.६.१.७)} आधाररूप प्राणापान रश्मियों से सतत सक्रिय करता रहता है।

(५) वि यो र॑रप्श ऋषि॑भिर्नवे॑भिर्वृक्षो न प॒क्वः सृण्यो॒ न जेता॑।
मर्यो॒ न योषा॑मभि मन्य॑मानोऽ च्छा॑ विवक्मि पुरुहूतमिन्द्र॑म्॥५॥

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सृण्यः = प्राप्तबला सुशिक्षिताः सेनाः (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व अनेक नवीन-२ उत्पन्न सूक्ष्म प्राणों के द्वारा सतत प्रकाशित होता रहता है। वह पके वृक्ष की भाँति सुसज्जित प्राणों की सेना से सदैव जयशील रहता तथा अपने साथ योषारूप संयोज्य पदार्थों से वृषारूप होकर व्यापक रूप से संयुक्त होता रहता है।

(६) गिरिर्न यः स्वत॑वाँ ऋष्व इन्द्रः॑ सनादेव सह॑से जात उग्रः।
आद॑र्ता वज्रं॒ स्थवि॑रं न भीम उ॒द्नेव कोशं॒ वसु॑ना न्यृ॑ष्टम्॥६॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से मेघ के समान फैला हुआ वह महान् इन्द्र तत्त्व सबको निगलने वाला, पूर्व से ही प्रतिरोधक बल से उग्ररूपेण युक्त होता है। वह अपनी स्थूल वज्ररूप रश्मियों के द्वारा विभिन्न पदार्थों का भेदन कर्त्ता विभिन्न परमाणुओं की सृष्टि करता तथा उनमें व्याप्त होता है।

(७) न यस्य॑ व॒र्ता ज॒नुषा॒ न्वस्ति न राध॑स आमरी॒ता म॒घस्य॑।
उद्वावृषाणस्त॑विषीव उग्रास्मभ्यं॑ दद्धि पुरुहूत रायः॥७॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व प्रकाशित व विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अजेय, अनिवार्य एवं अविनाशी होकर अपनी व्यापक बलवती रश्मियों के द्वारा उग्र हो उठता है। इसके कारण वह अनेक प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करने में समर्थ होता है।

(८) ईक्षे॑ रायः क्षय॑स्य चर्षणीनामुत व्रजम॑पवर्तासि गोना॑म्।
शिक्षानरः स॑मिथेषु प्रहावान्वस्वो॑ राशिम॑भिनेतासि भूरि॑म्॥८॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनेक प्रकार की मरुद् रश्मियों को देने वाला, विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं के क्षय को रोकने वाला, साथ ही उनके निवास रूप क्षय को निर्मित करने वाला, विभिन्न संघर्षण आदि तीक्ष्ण क्रियाओं में अनेक परमाणु वा रश्मिसमूहों को अभिमुख होकर व्यापक रूप से प्राप्त करता है।

(९) कया तच्छृ॑ण्वे शच्या शचि॑ष्ठो यया॑ कृणोति मुहु का चि॑दृष्वः।
पुरु दाशुषे विच॑यिष्ठो अंहोऽथा॑ दधाति द्रवि॑णं जरित्रे॥९॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अत्यन्त प्रकाशित भेदक शक्तिसम्पन्न, व्यापक असुर तत्त्व विनाशक होकर प्रकाशित व संयोगेच्छुक परमाणुओं को निरन्तर धारण करता है। वह बार-२ उन्हें अनेकविध गतियां प्रदान करता व उनसे नवीन तत्त्वों का सृजन करता रहता है॥

(१०) मा नों मर्धीरा भंरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातंवे भूरि यत्तें।
नव्यें देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रंवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {मर्धीः = (मृधु उन्दने = मार डालना, गीला करना - सं.धा.को. - पं. युधिष्ठिर मीमांसक)। देष्णम् = दातुं योग्यम् (म.द.ऋ.भा.७.३२.२१)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों की रक्षा करता व उन्हें धारण करता है। जो पदार्थ देदीप्यमान होकर अपनी रश्मियों को उत्सर्जित करते हैं, उन्हें इन्द्र तत्त्व अतिप्रबलता से अपने साथ धारण करता है। इसके प्रभाव से नाना परमाणु नाना रश्मियों का परस्पर व्यापक रूप से आदान प्रदान करने लगते हैं।

(११) नु ष्टुत इंन्द्र नू गृंणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पींपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।११।।

इसका छन्द निचृत्पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णता से विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से अच्छी प्रकार प्रकाशित व गर्जना करता हुआ इन्द्र तत्त्व प्रकाशित परमाणु वा रश्मियों को समृद्ध करता है, जिससे उन परमाणुओं की धाराएं बहने लगती हैं। वह इन्द्र तत्त्व अनेक कमनीय रश्मियों से युक्त होकर अपने विविध कर्मों के द्वारा अनेक व्यापक व नवीन पदार्थों की रचना करता है।

इन ग्यारह ऋचाओं में से कुछ ऋचाओं में 'आ' एवं 'प्र' उपसर्ग विद्यमान होने से इनकी उत्पत्ति काल में नाग प्राण का उत्कर्ष प्रमाणित होता है।।

निष्केवल्य एवं मरुत्वतीय संज्ञक निविद्धान संपात कहलाते हैं। आचार्य सायण ने उपर्युक्त सूक्त (ऋ.४.२०) को निष्केवल्य तथा पूर्व खण्ड में वर्णित सूक्त (ऋ.४.२१) को मरुत्वतीय का निविद्धान सूक्त कहा है। इन दोनों के विषय में समुचित लिख दिया गया है। निविद्धान का तात्पर्य यह है कि इन सूक्तों के द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य पूर्वविदित निविद् रश्मियों किंवा मास रश्मियों के प्रक्षेपण की क्रिया होती है। यहाँ ऋषि कहते हैं कि इन दोनों ही सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूहों को उत्पन्न करने वाला प्राण नामक प्राथमिक प्राण इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान अनेकों लोक अर्थात् छन्द रश्मियों व परमाणुओं को अपनी ओर विशेष आकर्षित करता है। इसी कारण इन सूक्तों को संपात कहा जाता है। इनके कारण ही ब्रह्माण्डस्थ विभिन्न छन्दादि रश्मियां एवं परमाणु समुदाय, प्राण रश्मियों के द्वारा आकृष्ट होने पर सब ओर से सम्यग्रूपेण परस्पर एक-दूसरे पर गिरने व मिलने लगते हैं, यही इनका संपातत्त्व है। इन दोनों ही सूक्तों के उत्पत्ति-काल को नाग प्राण के उत्कर्ष का सूचक हम पूर्व में यथास्थान सिद्ध कर ही चुके हैं। इन दोनों सूक्त रूप छन्द रश्मिसमूहों से विभिन्न पदार्थों का संगमन एवं परस्पर संयोजन होकर द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया सम्यग्रूपेण गतिशील होती चली जाती है किंवा सभी प्रकार के संघात चरम परिणति को प्राप्त करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- नाग प्राण के उत्कर्ष काल में ही त्रिष्टुप् व पंक्तिरूप कुल ग्यारह छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय बलों की और भी वृद्धि होने लगती है। इसके कारण नाना प्रकार के सूक्ष्म कण, साथ ही कॉस्मिक बड़े व छोटे मेघरूप पदार्थ बनने, टूटने, बिखरने, सम्पीडित होने की प्रक्रिया तेजी से होने लगती है। इस समय नाना प्रकार के तत्त्वों का निर्माण होता है। ऊर्जा की मात्रा सतत बढ़ती चली जाती है। ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ दूर-२ से पृथक्-२ स्थानों पर एकत्र होने हेतु तीव्रता से उन-२ स्थानों के केन्द्रीय भागों की ओर गमन करने लगता है। सब ओर तेजस्वी स्थिति जगमगाने लगती है। विभिन्न विद्युदावेशित कणों की धाराएं सर्वत्र बहने लगती हैं। सर्वत्र तीव्र गर्जना भी होने लगती है। पदार्थ में भारी विक्षोभ हो उठता है। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

२. तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देव सवितरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ राथन्तरेऽहनि

प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'युञ्जते मन उत युञ्जते धिय' इति सावित्रं युक्तवत्प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधेति' द्यावापृथिवीयं प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– तदुपरान्त श्यावाश्व आत्रेय ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न तीव्रगामी एवं व्यापक वलयुक्त एक सूक्ष्म प्राण विशेष से सवितृदेवताक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है–

(१) तत्स॑वितुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम्। श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं तु॒रं भग॑स्य धीमहि।।१।। (ऋ.५.८२.१)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से प्राण एवं विद्युत् तत्त्व रूपी सविता तीव्र तेज व वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित व उत्तेजित प्राण वा विद्युत् सम्पूर्ण पदार्थ के अवशोषण, धारण व संयोजन कर्मों की वाधक रश्मियों को दूर करता है।

(२) अस्य॒ हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम्। न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म्।।२।। (ऋ.५.८२.२)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण तत्त्व एवं विद्युत् के वल व तेज प्रकाशित होते हुए अक्षय होकर सभी परमाणुओं के लिए सदैव कमनीय होते हैं।

(३) स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑। तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे।।३।। (ऋ.५.८२.३)

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु। इसके अन्य प्रभाव से वह प्राण वा विद्युत् एवं उनके द्वारा उत्पन्न वा सम्पन्न विभिन्न संघात नाना प्रकार के विचित्र व सुन्दर पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।

इन तीन रश्मियों के पश्चात् इसी ऋषि व देवता वाली निम्न तृच की उत्पत्ति होती है–

(१) अ॒द्या नो॑ देव सवितः प्र॒जाव॑त्सावीः॒ सौभ॑गम्। परा॑ दुः॒ष्वप्न्यं॑ सुव।।४।। (ऋ.५.८२.४)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से प्राण व विद्युत् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों से युक्त होकर शोभनीय सृजन प्रक्रियाओं एवं नाना तेज को उत्पन्न करते हैं। इसके साथ ही कहीं भी पदार्थ में आई अनिष्ट शिथिलता को दूर करते हैं।

(२) विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व।।५।। (ऋ.५.८२.५)

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह प्राण व विद्युत् तत्त्व संयोगादि के द्वारा विभिन्न तत्त्वों के निर्माण में आ रही सभी वाधक असुरादि रश्मियों को दूर करते तथा विभिन्न अनुकूल रश्मियों को सव ओर से उत्पन्न, प्राप्त व संगत करते हैं।

(३) अना॑गसो॒ अदि॑तये दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे। विश्वा॑ वा॒मानि॑ धीमहि।।६।। (ऋ.५.८२.६)

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {वामम् = वामं हि पशवः (ऐ.५.६), प्राणा वै वामम् (श.७.४.२.३५), वननीयानि (नि.६.२२)} विद्युत् व प्राण के प्रेरण में विभिन्न अक्षय सृजन कर्मों के सम्पादन हेतु किंवा विभिन्न परमाणुओं के निर्माण हेतु असुरादि वाधक रश्मियों से रहित पदार्थ विभिन्न श्रेष्ठ प्राण व मरुदादि रश्मियों को धारण करते हैं।

यहाँ ग्रन्थकार ने प्रथम तृच को 'प्रतिपत्' अर्थात् आरम्भिक तथा द्वितीय तृच को 'अनुचर' कहा है। इसके साथ ही इन दोनों तृचों को रायन्तरी कहा है अर्थात् ये अपनी रमणीय रश्मियों के द्वारा

नाना रश्मियों को तारने में समर्थ होती हैं। इनका राथन्तरी होना इस बात का भी सूचक है कि इनकी उत्पत्ति के समय नाग प्राण का उत्कर्ष होता है।।

तदनन्तर पूर्वोक्त श्यावाश्व आत्रेय ऋषि से उत्पन्न सवितृदेवताक ऋ.५.८१ सूक्त की क्रमशः निम्नानुसार चर्चा करते हैं-

(१) युञ्जते मन॑ उत युं॑ञ्जते धियो विप्रा विप्र॑स्य बृहतो वि॑पश्चितः।
वि होत्रा॑ दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य॑ सवितुः परि॑ष्टुतिः।।१।।

इसका छन्द जगती होने से पूर्वोक्त सवितृसंज्ञक प्राण व विद्युत् व्यापक रूप से संयोग वियोग क्रिया को उत्पन्न करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न विप्र अर्थात् ऋषि प्राण (प्राथमिक प्राण) {विप्राः = एते वै विप्रा यद् ऋषयः (श.१.४.२.७)। वयुनम् = वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा (नि.५.१४), वीयते गम्यतेऽत्रेति (उ.को.३.६१)} अन्य प्राणों, व्यापक सूत्रात्मा वायु, प्राण एवं विद्युत् में मनस्तत्त्व को विशेषतः युक्त करते हैं। इस कारण उन सभी में विविध कर्मों का प्रकाश हो उठता है। **वह मनस्तत्त्व ही एकमात्र सर्वोच्च चेतन परमात्म-तत्त्व की प्रेरणा से सब ओर से प्रकाशित होकर विविध प्रकार की दीप्ति व कर्मों को उत्पन्न करता है** अर्थात् सभी प्राणादि रश्मियों के पीछे वही मनस्तत्त्व आधार रूप प्राण तत्त्व है।

(२) विश्वा॑ रूपाणि प्रति॑ मुञ्चते कविः प्रासा॑वीद्भद्रं द्विपदे चतु॑ष्पदे।
वि नाक॑मख्यत्सविता वरेण्योऽ नु॑ प्रयाण॑मुषसो वि रा॑जति।।२।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् परन्तु प्रकाशशीलता की मात्रा कुछ अधिक। इसके अन्य प्रभाव से {नाकम् = संवत्सरो वाव नाकः (श.८.४.१.२४), सुवर्गो वै लोको नाकः (तै.सं.५.३.३.४-५)}। पूर्वोक्त प्राण एवं विद्युत् रूप सविता श्रेष्ठ आकर्षण बल से सम्पन्न होकर दो तथा चार पदों वाली छन्द रश्मियों के लिए अनुकूलता उत्पन्न करके उन्हें सभी पदार्थों पर प्रक्षिप्त करता है। इसके कारण विभिन्न प्रकार की सर्ग प्रक्रियाएं उत्पन्न होकर नाना केन्द्रों का निर्माण होने लगता और सम्पूर्ण पदार्थ विशेष दीप्तियुक्त होने लगता है।

(३) यस्य॑ प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य॑ महिमानमोज॑सा।
यः पार्थिवानि विममे स एत॑शो रजांसि देवः स॑विता म॑हित्वना।।३।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण व विद्युत् के महान् व व्यापक मार्ग पर अन्य प्राणादि प्रकाशित पदार्थ अनुगमन करते हैं। वे प्राण व विद्युत् अपने महान् बल से विविध पार्थिव लोकों व अन्तरिक्ष की विशेष रचना करते हैं।

(४) उत या॑सि सवितस्त्रीणि॑ रोचनोत सूर्य॑स्य रश्मिभिः समु॑च्यसि।
उत रात्री॑मुभयतः परी॑यस उत मित्रो भ॑वसि देव धर्म॑भिः।।४।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण व विद्युत् तीन प्रकार की ज्योतियों यथा प्राण रश्मियों, छन्द रश्मियों एवं अग्नि के परमाणुओं में व्याप्त होकर सूर्य्य की रश्मियों को अपनी रश्मियों से प्रकाशित करते हैं। वे अपनी धारक शक्तियों के द्वारा सबको धारण करते तथा सूक्ष्म व स्थूल दोनों ही स्तर पर अन्धकार दूर करते हैं।

(५) उतेशि॑षे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भ॑वसि देव याम॑भिः।
उतेदं विश्व॑ं भुव॑नं वि रा॑जसि श्यावाश्व॑स्ते सवितः स्तोम॑मानशे।।५।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्राण

व विद्युत् समस्त उत्पन्न जगत् पर शासन करते हैं। ये ही सभी पदार्थों को पुष्ट करते, अपने वाहक व्यवहारों से इन सभी लोकों को विविध रूप में प्रकाशित करते हैं, साथ ही इनकी व्यापक व तीव्रगामी रश्मियां सबको व्याप्त करती हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'युजिर् योगे' धातु की विद्यमानता होने से इस समय नाग प्राण के उत्कर्ष का काल होता है।।

तदनन्तर पूर्वोक्त दीर्घतमा ऋषि प्राण से द्यावापृथिवीदेवताक ऋ.१.१५९ सूक्त की उत्पत्ति निम्नलिखित क्रमानुसार होती है-

(१) प्र द्यावा॑ य॒ज्ञैः पृ॑थि॒वी ऋ॑ता॒वृधा॑ म॒ही स्तु॑षे वि॒दथे॑षु॒ प्रचे॑तसा।
दे॒वेभि॒र्ये दे॒वपु॑त्रे सु॒दंस॒सेत्था धि॒या वार्या॑णि प्र॒भूष॑तः।।१।।

इसका छन्द विराट् जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों का पारस्परिक संयोग वियोग व्यापक होता है। इसके अन्य प्रभाव से दिव्य वायु से उत्पन्न, कारण रश्मियों से समृद्ध, प्रशंसित कर्म करने वाले एवं व्यापक प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु विभिन्न संयोगादि प्रक्रिया वा संघर्षों में प्राण रश्मियों के द्वारा विविध कार्यों को प्रकाशित करते हैं। {दंसः = कर्मनाम (निघं.२.१)}

(२) उ॒त म॑न्ये पि॒तुर॒द्रुहो॒ मनो॑ मा॒तुर्महि॒ स्वत॑व॒स्तद्धवी॑मभिः।
सु॒रेत॑सा पि॒तरा॒ भूम॑ चक्रतुरु॒रु प्र॒जाया॑ अ॒मृतं॒ वरी॑मभिः।।२।।

इसका छन्द **निचृज्जगती** होने से दैवत व छान्दस प्रभाव **लगभग पूर्ववत्**, परन्तु कुछ तीक्ष्ण। इसके अन्य प्रभाव से **सबको केवल आकर्षित ही करने की प्रवृत्ति वाला व्यापक मनस्तत्त्व** विभिन्न मास रश्मियों के द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों को अपनी सुन्दर व सूक्ष्म उत्पादिका शक्ति तथा सबको ग्रहण करने की शक्ति के द्वारा निरन्तर प्रेरित करता रहता है।

(३) ते सू॒नवः॒ स्वप॑सः सु॒दंस॑सो म॒ही ज॑ज्ञुर्मा॒तरा॑ पूर्व॒चित्त॑ये।
स्था॒तुश्च॑ स॒त्यं जग॑तश्च॒ धर्म॑णि पु॒त्रस्य॑ पाथः प॒दमद्व॑याविनः।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे सुन्दर प्राण रश्मियां तथा उत्पादक धर्मयुक्त अन्य रश्मियां अपने शोभन कर्मों के द्वारा सूक्ष्म परमाणुओं को पूर्णरूप से एकत्र करके प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। यहाँ 'पूर्वचित्तये' में तृतीयार्थ में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग है तथा 'पूर्वम्' का अर्थ 'पुरस्सरं पूर्णम्' जानना चाहिए, जैसा कि महर्षि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य ४०.४ में किया है। ये प्राणादि रश्मियां अपने पुत्र तुल्य चर व अचर दोनों ही प्रकार के पदार्थों के विभिन्न व्यवहारों की अकेले ही रक्षा करती हैं।

(४) ते मा॒यिनो॑ ममिरे सु॒प्रचे॑तसो जा॒मी सयो॑नी मिथु॒ना समो॑कसा।
नव्यं॑नव्यं॒ तन्तु॒मा त॑न्वते दि॒वि स॑मु॒द्रे अ॒न्तः क॒वयः॑ सुदी॒तयः॑।।४।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्, किन्तु कुछ मृदु। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर रूप से सक्रिय, शोभन दीप्ति वाले, ध्वनियुक्त, इस अन्तरिक्ष में समान रूप से रहने वाले, परस्पर मिथुनधर्मी, समान कारण से उत्पन्न एवं सहगमन वा व्याप्ति वाले प्रकाशित व अप्रकाशित किंवा अग्नि व पृथिवी परमाणु इस प्राण तत्त्व से परिपूर्ण महान् अन्तरिक्ष के बीच नवीन-२ क्रियाओं को सम्पन्न करके नाना पदार्थों को उत्पन्न करते हुए सब ओर व्याप्त होते रहते हैं।

(५) तद्राधो॑ अ॒द्य स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं व॒यं दे॒वस्य॑ प्रस॒वे म॑नामहे।
अ॒स्मभ्यं॑ द्यावापृथिवी सुचे॒तुना॑ र॒यिं ध॑त्तं॒ वसु॑मन्तं शत॒ग्विन॑म्।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {मनामहे = याच्ञाकर्मा (निघं.३.१९)} प्राण व विद्युत् के द्वारा उत्पन्न श्रेष्ठ पदार्थ परस्पर एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। वे प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थ नाना प्राण रश्मियों से युक्त होकर असंख्य छन्द रश्मियों के द्वारा धारण किए जाते हैं।

इस पाँच रश्मि वाले सूक्त में 'प्र' तथा 'आङ्' उपसर्ग की विद्यमानता इस बात की सूचक है कि इस समय नाग प्राण का उत्कर्ष होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **नाग प्राण** के ही उत्कर्ष काल में ही पुनः एक अनुष्टुप्, पांच गायत्री, एक त्रिष्टुप् एवं नौ जगती रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से विद्युत् चुम्बकीय बलों में समृद्धि होकर विभिन्न कणों के पारस्परिक संयोग की प्रक्रिया तीव्रतर होती है। सुन्दर दीप्तियुक्त प्रकाश उत्पन्न होता है। सभी प्रकार के कणों की ऊर्जा में वृद्धि होती है। इस कारण डार्क एनर्जी का प्रक्षेपक प्रभाव नियन्त्रित वा नष्ट होने लगता है। सभी प्रकार के बलों व प्रकाशित कर्मों की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी विद्युत् व प्राणादि रश्मियों को मनस्तत्त्व प्रेरित करता है। **मनस्तत्त्व की प्रेरणा के बिना कोई क्रिया सम्भव नहीं, परन्तु इसकी भी प्रत्येक क्रिया के पीछे ईश्वर तत्त्व की मूल प्रेरणा सदैव अनिवार्यतः अपेक्षित होती है।** इस समय सूक्ष्म कॉस्मिक पदार्थ में केन्द्रों के निर्माण की प्रक्रिया भी शनैः-२ प्रारम्भ हो जाती है। अनेक कणों की उत्पत्ति भी होती है। इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ प्रकाशयुक्त होता है। विभिन्न मूलकण एवं क्वाण्टाज् दोनों ही अति सक्रिय हो उठते हैं। उनमें परस्पर अन्योऽन्य क्रियाएं तीव्रतर होती हैं।।

३. इहेह वो मनसा बन्धुता नर इत्यार्भवं, यद्वा एति च प्रेति च तत्प्रथमस्याह्नो रूपं, तद्यत्प्रेति सर्वमभविष्यत् प्रैष्यन्नेवास्माल्लोकाद् यजमाना इति; तद्यद् इहेह वो मनसा बन्धुता नर इत्यार्भवं प्रथमेऽहनि शंसत्ययं वै लोक इहेहास्मिन्नेवैनांस्तल्लोके रमयति।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से उत्पन्न ऋभवोदेवताक ऋ.३.६० सूक्त की उत्पत्ति पर निम्नानुसार क्रमशः चर्चा करते हैं-

(१) इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश।।१।।

इसका छन्द जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु की व्यापकता बढ़ती है। इसके अन्य प्रभाव से {वर्पः = रूपनाम (निघं.३.७)} इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के प्रत्येक व्यवहार में सूत्रात्मा वायु मनस् तत्त्व के साथ बंधकर विभिन्न नयनकर्त्ता वायुओं किंवा मरुदादि रश्मियों को आकर्षण धर्मयुक्त बनाता है। इससे सभी परमाणु उन मरुद् वा छन्द रश्मि रूप वेद तथा तदुत्पन्न प्रज्ञापिका विद्युद् द्वारा निरन्तर अपने रूप - रंग में परिवर्तन करते रहते हैं। उस समय सुन्दर अन्तरिक्ष में अनेक प्रकार के संयोगादि कर्म होते रहते हैं।

(२) याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश।।२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {रिणातीति गतिकर्मा (निघं.२.१४)। शची = वाङ्नाम (निघं.१.११)} जिन वाग् रश्मियों के द्वारा विशाल मेघरूप पदार्थों को पीसा वा छिन्न-भिन्न किया जाता है। जिन कर्मों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अपने बाह्य परिधि में विभिन्न वाग् रश्मियों को प्राप्त करते हैं। जिस मनस्तत्त्व के द्वारा आकर्षण-प्रतिकर्षण बलों को निरन्तर विस्तृत किया जाता है, उन सभी से सूत्रात्मा वायु प्रकाशित व सक्रिय होता रहता है।

(३) इन्द्र॑स्य स॒ख्यमृ॒भव॑: स॒मान॑शु॒र्मनो॒र्नपा॑तो अ॒पसो॑ दधन्विरे।
सौ॒ध॒न्व॒नासो॑ अमृत॒त्वमेरि॑रे वि॒ष्ट्वी शमी॑भिः सु॒कृत॑: सुकृ॒त्यया॑।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु इन्द्र तत्त्व के साथ संगत होता है। मनस्तत्त्व पतित न हो सकने वाले प्राणों को धारण करता है। सुन्दर अन्तरिक्ष में स्थित विभिन्न परमाणु अपने विभिन्न व्यापक धारणादि कर्मों के द्वारा अमरत्व को प्राप्त करते हैं। {विष्ट्वी = कर्मनाम (निघं.२.१), कृत्वा (नि.११.१६)। शमी = कर्मनाम (निघं.२.१)}

(४) इन्द्रे॑ण याथ स॒रथं॑ सु॒ते सचाँ॒ अथो॒ वशा॑नां भवथा स॒ह श्रि॒या।
न व॑: प्रति॒मै सु॑कृ॒तानि॑ वाघतः॒ सौध॑न्वना ऋभवो वी॒र्या॑णि च।।४।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से {सचा = (सचति गतिकर्मा - निघं.२.१४, षच समवाये - भ्वादि, षच सेचने सेवने च - भ्वादि)} ब्रह्माण्ड में इन्द्र तत्त्व के द्वारा विभिन्न रमणीय रश्मियों के साथ अनेक परमाणु गमन करते हैं। वे परमाणु प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होने से आकर्षणवलयुक्त होकर विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को गति प्रदान करते हैं। {वाघतः = वोढारो मेधाविनो वा (नि.११.१६)} उस समय सबका वाहक व बन्धक सूत्रात्मा वायु आकाश तत्त्व को संगत करता हुआ अपने तेजस्वी कर्मों के द्वारा नाना पदार्थों को उत्पन्न करता है।

(५) इन्द्र॑ ऋभु॒मिर्वा॒जव॑द्भिः॒ समु॑क्षितं सु॒तं सोम॒मा वृ॑षस्वा॒ गभ॑स्त्योः।
धि॒येषि॒तो म॑घवन्दा॒शुषो॑ गृ॒हे सौ॑धन्व॒नेभि॑: स॒ह म॑त्स्वा नृ॒भि॑:।।५।।

इसका छन्द देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {गभस्तिः = रश्मिनाम (निघं.१.५), बाहुनाम (निघं.२.४)} इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु की वलवती रश्मियों के द्वारा सम्पीडित सोमतत्त्व को अच्छी प्रकार सिंचित करके विभिन्न किरणों को पुष्ट करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न क्रियाओं से प्रेरित वलदात्री रश्मियों के क्षेत्र में आकाश तत्त्व के साथ मिलकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को सक्रिय करता है।

(६) इन्द्र॑ ऋभु॒मान्वाज॑वान्मत्स्वे॒ह नो॑ऽस्मिन्त्सव॑ने॒ शच्या॑ पुरुष्टुत।
इ॒मानि॒ तुभ्यं॒ स्वस॑राणि येमिरे व्र॒ता दे॒वानां॒ मनु॑षश्च॒ धर्म॑भिः।।६।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु किन्तु अधिक प्रकाशयुक्त। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व वलवान् सूत्रात्मा वायु से युक्त होकर इस सर्गयज्ञ में विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा व्यापक रूप से प्रकाशित होता है। वह इन्द्र अपनी वाग् रश्मियों को नियन्त्रित करते हुए विभिन्न प्रकाशित व अल्प प्रकाशित, अनियमित गतियुक्त उन कणों का वरण करता है।

(७) इन्द्र॑ ऋभु॒भिर्वा॒जिभि॑र्वा॒जय॑न्नि॒ह स्तोमं॑ जरि॒तुरुप॑ याहि य॒ज्ञिय॑म्।
श॒तं केते॑भिरि॒षिरे॑भिरा॒यवे॑ स॒हस्र॑णीथो अध्व॒रस्य॒ होम॑नि।।७।।

इसका छन्द भुरिग्जगती होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु अपनी वाहुरूप रश्मियों को तीव्रता से फैलाता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु की वलवती रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्रकाशक पदार्थों की रश्मियों को वल प्रदान करता हुआ संयोग गुण को व्याप्त करता है। वह असंख्य आकर्षक रश्मियों के द्वारा असंख्य व्यवहारों को प्राप्त करने वाले वायुओं को निरापद होम में नियुक्त करता है।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि इस प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्द रश्मियों में 'प्र' वा 'आ' उपसर्गों से युक्त कोई सम्पूर्ण सूक्त ही उत्पन्न हो जाए, तो इसका अनिष्ट प्रभाव होगा क्योंकि इस स्थिति में विभिन्न क्रियाएं प्रकृष्ट रूप से सब ओर इतने व्यापक रूप से होने लग सकती हैं कि पदार्थ में भारी विक्षोभ होकर अति विरल रूप भी ले सकता है, जिससे वह पदार्थ

'इह' अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया से ही बाहर हो सकता है। इस कारण इस सूक्त में विद्यमान 'इह', 'बन्धुता' पद उस सम्पूर्ण पदार्थ को प्रकृष्ट व व्यापक प्रभाव से युक्त होते हुए भी अति विरल होकर बिखरने नहीं देता और सृष्टि प्रक्रिया में ही रमण कराता रहता है, यही इस सूक्त का विशिष्ट प्रयोजन है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल में ही पुनः विभिन्न प्रकार की सात जगती रश्मियां उत्पन्न होने से विभिन्न कणों व क्वाण्टाज् की परस्पर अन्योऽन्य क्रियाएं तीव्र हो उठती हैं। इस समय विभिन्न रंगों की प्रकाश तरंगें भी उत्पन्न होने लगती हैं। कॉस्मिक मेघ छिन्न-भिन्न होकर नाना लोकों की रचना की ओर प्रवृत्त होते हैं। सूत्रात्मा वायु एवं आकाश तत्त्व का परस्पर मेल होकर नाना संयोग कर्म होने लगते हैं। सभी प्रकार के कणों व तरंगों पर विद्युत् के साथ-२ सूत्रात्मा वायु का नियन्त्रण होता है। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग पठनीय है।।

४. 'देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये' इति वैश्वदेवं प्रथमे पदे देवता निरुच्यन्ते; प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
महान्त वा एतेऽध्वानमेष्यन्तो भवन्ति, ये संवत्सरं वा द्वादशाहं वाऽऽसते तद्यद्देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति वैश्वदेवं प्रथमेऽहनि शंसति, स्वस्तितायै।।
स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद, येषां चैवं विद्वानेतद्धोता देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति वैश्वदेवं प्रथमेऽहनि शंसति।।

{वसुक्रः = इन्द्र उ वै वसुक्रः (शां.आ.१.३)}

व्याख्यानम्- तदनन्तर वसुकर्णो वासुक्र ऋषि अर्थात् इन्द्र तत्त्व के अन्दर उत्पन्न {वसुः = वसवः रश्मिनाम (निघं.१.५), पशवो वै वसुः (तां.७.१०.१७)} वसुकर्ण अर्थात् विशेष सक्रिय तथा काटने में समर्थ सूक्ष्म मरुद्रश्मियों से विश्वेदेवादेवताक ऋ.१०.६६ सूक्त की क्रमशः निम्नानुसार चर्चा करते हैं-

(१) देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः।।१।।

इसका छन्द जगती होने से सभी देव पदार्थ व्यापक रूप से परस्पर संयुक्त वियुक्त होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्रभूत बल व प्रकाश से युक्त अहिंस्य संयोगादि-प्रक्रिया का प्रेरक इन्द्र तत्त्व विभिन्न देव पदार्थों को सक्रिय करता है। इस इन्द्र तत्त्व के नेतृत्व व ज्येष्ठत्व में सभी परमाणु आदि पदार्थ अक्षय क्रियाओं से युक्त होकर निरन्तर समृद्ध होते हैं।

(२) इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से इन्द्र प्रेरित तथा व्यान वायु से नियन्त्रित विभिन्न मरुद् रश्मियां विभिन्न प्रकाश तरंगों के रूप में परिवर्तित होती हैं। सबके प्रेरक विभिन्न प्राण तत्त्व इन्द्र तत्त्व को संयोज्य बलों से युक्त करते हैं।

(३) इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु।।३।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गयः = अपत्यनाम (निघं.२.२), धननाम (निघं.२.१०), गृहनाम (निघं.३.४)। सुविता = सुप्रसूतानि (नि.१२.२८)। त्वष्टा = वाग्वै त्वष्टा वाग्घीदं सर्वं ताष्टीव (ऐ.२.४)। रुद्रः = अग्निर्वै रुद्रः (श.५.३.१.१०),

अग्निरपि रुद्र उच्यते (नि.१०.७)। इन्द्रः = प्राण एवेन्द्रः (श.१२.६.१.१४)} विभिन्न प्राथमिक प्राणरूपी इन्द्र गायत्री रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणुओं एवं उनके बलों की सब ओर से रक्षा करते हैं। कारणभूत प्रकृति व मनस्तत्त्व प्राथमिक प्राणों के द्वारा शर्म अर्थात् विभिन्न हिंसक बाधक रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके सबको समुचित आकार वा क्षेत्र के निर्माण में सहयोग करते हैं। यहाँ 'अदितिः' का अर्थ आकाश तत्त्व भी है, जिससे सिद्ध है कि आकाश तत्त्व प्राथमिक प्राण रश्मियों वा जगती रश्मियों के द्वारा ही सबको अप्रकाशरूप गृह प्रदान करता है। अग्निरूपी रुद्र तत्त्व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को तृप्त करता है और विभिन्न वाग् (छन्द) रश्मियों रूपी त्वष्टा सूक्ष्म देवी आदि छन्द रश्मियों के द्वारा सभी रश्मि आदि पदार्थों को नाना उत्पत्ति-धर्मों से युक्त करता है।

(४) अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत्।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून्रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम्।।४।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तेजयुक्त। इसके अन्य प्रभाव से आकाश, द्युलोक, पृथिवीतत्त्व, व्यापक प्राण तत्त्व, इन्द्र, व्यापक विद्युत्, व्यापक प्रकाशित मरुद् रश्मियां, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगत्यादि छन्द रश्मियां एवं मनरूपी सविता सभी सक्रिय हो उठते हैं।

(५) सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन्त्रिवरूथमंहसः।।५।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न क्रियाओं से युक्त वाग् रश्मियां, विभिन्न संयोज्य परमाणुओं का धारक व्यान प्राण, विशाल पोषक व्यापक विद्युत्, विद्युत् की उत्पादक प्राणापान वायु रश्मियां, सबमें व्यापक अविनाशी मनस्तत्त्व ये सभी सक्रिय होते तथा बाधक असुरादि पदार्थ नियन्त्रित होते हैं।

(६) वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः।।६।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से समस्त सृष्टि यज्ञ सेचक बल से विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां, हविरूप मासादि रश्मियां, प्राणादि तत्त्वों से सम्पन्न प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु एवं इनसे निर्मित विशाल मेघ सभी सेचक बलों से युक्त होते हैं।

(७) अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः।।७।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक प्रकाशित अग्नि एवं सोम पदार्थ विभिन्न बलों तथा संयोज्य परमाणुओं के विभाजन के लिए सेचक बलों को निकटता से प्रकाशित करते हैं। वे विभिन्न देव पदार्थ के यजन में तीन गुणों से युक्त किंवा तीन प्रकार की विद्युत् से युक्त रूप वा बल प्रदान करते हैं।

(८) धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽ पो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये।।८।।

इसका छन्द विराड्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {ऋतसापः = ऋतोपपदे षप समवाये (भ्वा.) धातोः कर्त्तर्यण् (वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री)}। विभिन्न संयोज्य रश्मियों को धारण करने वाली क्षत्ररूप निविद् रश्मियां, जो उन्हें संगत करके नवीन-२ रश्मियों का निर्माण करने में समर्थ होती हैं, व्यापक तेजयुक्त होकर अहिंस्य क्रियाओं को सब ओर से आश्रय देती हैं। विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के समुदाय रूप दिव्यवायु असुर रश्मियों के साथ होने वाले संघर्ष

में उनके नियन्त्रक प्राणों को उत्पन्न करते हैं।

(९) द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया।
अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३ नि मामृजुः।।९।।

इसका छन्द पाद निचृज्जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राथमिक प्राणादि रूप देव पदार्थ द्यु व पृथिवी पदार्थों को उत्पन्न करने हेतु नाना क्रियाओं व प्रकाश व दाह युक्त परमाणुओं को उत्पन्न करते व एतदर्थ नाना रश्मियों को विविध प्रकार से संगत करते हैं। वे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को अपने तेज से व्याप्त करके सभी परमाणुओं को फैलाते हुए गति व नियन्त्रण प्रदान करते हैं।

(१०) धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः।
आप ओषधीः प्रतिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम्।।१०।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {तन्यतुः = गर्जन सहित (विद्युत्) (म.द.ऋ.भा.१.३२.१३)} द्यु कणों का धारक सुन्दर आकर्षण व धारक बलों से युक्त सूत्रात्मा वायु, महान् गर्जन युक्त विद्युत्, विभिन्न प्राण रश्मियां व अग्नि, {पर्जन्यो वा अग्निः (श.१४.९.१.१३)} विभिन्न परमाणुओं की जल के समान उष्ण धाराएं एवं विभिन्न छन्द रश्मियां सब ओर फैलती हैं। विभिन्न बलों व छन्दादि रश्मियों से युक्त संगतीकरण की क्रियाएं नियन्त्रित रूप से सम्पन्न होती रहती हैं।

(११) समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम।।११।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {समुद्रः = वाग्वै समुद्रः (तां.७.७.९)} अविनाशी एकपदा वा एकाक्षरा वाग् रश्मियां विभिन्न कणों को अन्तरिक्ष के साथ बांधती हुई {अर्णवः = प्राणो वा अर्णवः (श.७.५.२.५१)} प्राणों के साथ संगत होकर तनयित्नुः = स्तनयित्नुः गर्जनयुक्त विद्युत् को उत्पन्न करती है। अन्तरिक्षस्थ मेघ, जो विविध पदार्थों के भण्डार होते हैं, विभिन्न वाग् रश्मियों के कारण ही उत्पन्न व प्रकाशित होते हैं तथा अधिक तीव्र गतिशील हो उठते हैं।

(१२) स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत।।१२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {मनुः = आयुर्वै मनुः (कौ.ब्रा.२६.१७), मनुष्या वै विश्वे देवाः (काठ.१९.१२)} ब्रह्माण्ड में विद्यमान सभी प्राण रश्मियां विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को गति, व्याप्ति एवं प्रजनन आदि कर्मों से युक्त करने हेतु परस्पर प्रकृष्ट रूप से निर्विघ्न व्याप्त व संगत होती हैं। जगती, त्रिष्टुप् एवं गायत्री छन्द रश्मियां अच्छे दानादि व्यवहारों से युक्त होकर व्यापक क्षेत्र में प्रकाशित होती हैं।

(१३) दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः।।१३।।

इसका छन्द दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से प्राणापान रूपी दैव्याहोतारा, जो इस सर्गयज्ञ की प्रारम्भिक धारक रश्मियां हैं, अपने कारणरूप पदार्थ मनस्तत्त्व का निर्बाध अनुगमन करती हैं। वे दोनों ही रश्मियां सतत सक्रिय अविनाशी मन व सूक्ष्म वाक् तत्त्व के साथ सदैव संगत होकर गमन करती हैं।

(१४) वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये।
प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु।।१४।।

इसका छन्द आर्चीस्वराड् जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु अधिक दीप्तियुक्त। अन्य प्रभाव से इस सृष्टि में सर्वाधिक वासयिता मनस्तत्त्व रूपी महाप्राण, जो सवका पालक, गमयिता व व्यापक होता है, विभिन्न प्राणादि देव पदार्थों को प्रकाशित करता है। वह मनस्तत्त्व ही विविध प्रकार की वाग् रश्मियों को उत्पन्न करता है। वे ऐसी वाग् व प्राण रश्मियां अपने सूक्ष्म वलों के द्वारा समस्त पदार्थ को कम्पाती हैं।

(१५) देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।१५।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीव्र वल व तेज से युक्त होते हैं। {रासति ददतिकर्मा (निघं.३.२०), वन्दते अर्चतिकर्मा} वह सवका वासयिता मनस्तत्त्व, सभी अविनाशी प्राण रश्मियों को प्रकाशित व सक्रिय करता है, इससे सक्रिय वे प्राणादि रश्मियां सम्पूर्ण परमाणु समुदाय को सव ओर से धारण करती हैं।

वे प्राणादि रश्मियां व्यापक स्तर पर विभिन्न परमाणुओं, उनके वलों को उत्पन्न करती तथा उन्हें सुष्ठु मार्ग प्रदान करती हैं।

इन पन्द्रह छन्द रश्मियों में से अनेक ऋचाओं के प्रथम पद देवतावाची हैं। इस कारण इससे संकेत मिलता है कि इनकी उत्पत्ति के समय नाग प्राण के उत्कर्ष का काल होता है।।

यहाँ **महर्षि कहते हैं कि इस सृष्टि प्रक्रिया** किंवा पूर्वोक्त द्वादशाह रूपी वारह प्राण **रश्मियों के अन्दर जो भी सृजन प्रक्रिया** चलती है, वह अति व्यापक स्तर पर होती है। **हमारे मत में विभिन्न लोक लोकान्तरों की उत्पत्ति प्रक्रिया से भी अधिक व्यापक सूक्ष्म** प्राण **रश्मियों में होने वाली संगतीकरण की प्रक्रिया होती है अर्थात् इनका क्षेत्र अधिक विस्तृत** होता **है**। इन व्यापकतर क्रियाओं के पश्चात् विभिन्न परमाणुओं एवं स्थूल मेघरूप पदार्थों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इस पूर्वोक्त सूक्त की प्रथम व चौदहवीं ऋचा में 'स्वस्तये' पद उन प्राणादि रश्मियों की व्यापक सृजन क्रियाओं को सम्यग्रीत्या सम्पादित करने में सहयोग करता है। इन सभी क्रियाओं में नाग प्राण का विशेष उत्कर्ष रहता है।।

जव उपर्युक्त ऋचाओं व क्रियाओं की सम्यग् रूप से उत्पत्ति हो जाती है, एवं नाग प्राण के उत्कर्ष काल में पूर्वोक्त सूक्तरूप रश्मिसमूह उत्पन्न हो जाता है, उस समय सृष्टि की सभी क्रियाएं इस प्रकार सम्पादित होने लगती हैं कि अन्ततः विभिन्न द्युलोकों के निर्माण तक की क्रियाएं निर्विघ्न सम्पन्न होने की परिस्थिति उत्पन्न होती है। वस्तुतः द्वादशाह रूप प्राण रश्मियों की विभिन्न क्रियाओं का सम्यग्रीत्या उत्पन्न व सम्पन्न होना ही सभी क्रियाओं का मूल आधार है, जो पूर्वोक्त छन्द रश्मियों द्वारा होता ही है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- नाग प्राण के उत्कर्ष काल में ही चौदह विभिन्न जगती एवं एक त्रिष्टुप् रश्मि उत्पन्न होती है। इस समय विद्युत् चुम्वकीय वल प्रवल होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में अनेक विद्युत् चुम्वकीय क्षेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। विद्युदावेशित पदार्थ की धाराएं वहने लगती हैं। विभिन्न प्रकार की प्रकाश व ऊष्मा तरंगों के उत्पन्न होने से सम्पूर्ण पदार्थ में विविध रंगों की दीप्तियां भासने लगती हैं। डार्क एनर्जी का विध्वंसक प्रभाव ऊष्मायुक्त विद्युत् कणों के प्रहार से नियन्त्रित रहता है। आकाश तत्त्व विभिन्न रश्मियों को सम्पीडित करके विभिन्न कणों व कॉस्मिक मेघों का निर्माण सम्यक् ढंग से करने लगता है। विभिन्न विद्युत् चुम्वकीय तरंगें, विभिन्न मूलकण, विभिन्न वल, विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां विशेष सक्रिय हो उठती हैं। विद्युत् धनावेश, ऋणावेश व उदासीन तीनों प्रकार की तरंगें उत्पन्न होकर सक्रिय हो उठती हैं। विभिन्न कणों का संयोग वियोग तीव्र गति से होकर नवीन-२ तत्त्वों की रचना तीव्रता से होने लगती है। सम्पूर्ण अन्तरिक्ष सूक्ष्म कणों के प्रकाश, ध्वनि व ऊष्मा आदि से भर जाता है। उच्च ऊर्जा वाली गामा, एक्स किरणें आदि भी प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती हैं। सभी प्रकार

की क्रियाओं, कणों व तरंगों को विभिन्न प्राण रश्मियां, छन्द रश्मियां एवं मन नियन्त्रित व संचालित करते हैं। **इनमें सूक्ष्म व प्राथमिक संचालक व नियन्त्रक मन होता है, जो साक्षात् चेतन परमात्म-तत्त्व के द्वारा नियंत्रित व संचालित होता है। ये सभी क्रियाएं उसी चेतना के संरक्षण में सम्यग्रीत्या संचालित व नियन्त्रित होती हैं।।**

५. 'वैश्वानराय पृथुपाजसे विप' इत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्; प्रथमे पदे देवता निरुच्यते, प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिन' इति मारुतम्; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।
'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्यां पुरस्तात् सूक्तस्य शंसति; स्वस्त्ययनं वै जातवेदस्याः स्वस्तितायै।।
स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते, स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त विश्वामित्र ऋषि अर्थात् एकाक्षरा वाग् रश्मियों से अग्निमारुतदेवताक ऋ.३.३ सूक्त के विषय में निम्नानुसार चर्चा करते हैं-

(१) वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत्।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि व मरुद् रश्मियां व्यापक क्षेत्र में विविध अन्योऽन्य क्रियाएं करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {विपः = मेधाविनाम (निघं.३.१५)} सवका रक्षक सूत्रात्मा वायु विभिन्न आधारभूत पदार्थों या क्रियाओं में विशाल वलयुक्त मरुद् रश्मियों को सक्रिय करने हेतु रमणीय रश्मियों को उत्पन्न करता है। अविनाशी प्राणरूप अग्नि सभी प्रकाशित परमाणुओं के सव ओर गति करते हुए उनका सेवन करता है। उसके नित्यगुण किसी भी अनिष्ट क्रिया को रोकते हैं।

(२) अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः।।२।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु। अन्य प्रभाव से {दस्मः = मूर्तद्रव्याणामुपक्षयिता (म.द.भा.)} विभिन्न मूर्त पदार्थों को इधर उधर फैंकने वाला अग्नि विभिन्न देदीप्यमान मरुद् रूप देव रश्मियों के द्वारा अनेक प्रकार के कर्मों का सम्पादक होता है। ऐसा वह अग्नि सभी परमाणुओं को पूर्व से ही धारण करने वाला प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही लोकों वा कणों में व्याप्त होकर उन्हें सर्वतः अलंकृत करता है।

(३) केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः।
अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {चित्तिः = चित्तिः स्रुक् (मै.१.६.१; तै.आ.३.१.१), (गौर्वै स्रुचः - तै.ब्रा.३.३.५.४)} सूत्रात्मा वायु की रश्मियां जिस अग्नि में विभिन्न प्राण रश्मियों को अपनी विशेष शक्तियों के द्वारा साधकर विभिन्न संघातों को सम्पादित करती हैं, वह अग्नि तत्त्व विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं हेतु संयोज्य परमाणुओं में कमनीय वलों को सिद्ध करता है।

(४) पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम्।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः।।४।।

इसका छन्द, देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न सृजन क्रियाओं के पालक मनरूपी असुर {मनो वा असुरम् तद्व्यसुषु रमते (जै.उ.३.६.७.३)} की भाँति अग्नितत्त्व सबका पालक होकर सूत्रात्मा वायु के विशेष मापन से युक्त होकर व्यापक रूपों व बलों से पूर्ण होकर प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही पदार्थों को तृप्त करता है। इसके साथ ही वह अग्नि अपने विभिन्न कर्मों व दीप्तियों के साथ उनमें प्रविष्ट होता है।

(५) चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम्।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह तेजस्वी किरणों वाला दीप्त अग्नि अपने आकर्षणादि कर्मों से युक्त होकर विभिन्न मरुद् व प्राण रश्मियों में स्थिर होकर तेजस्विता को प्राप्त करता है। वह ऐसा अग्नि अपने व्यापक धारक बलों के द्वारा शीघ्रता से विभिन्न पदार्थों का आलोडन करता हुआ सब पदार्थों को प्राणवत्तायुक्त आश्रय प्रदान करता है।

(६) अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः।।६।।

इसका छन्द जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व अपने कर्मों के द्वारा विभिन्न उत्पन्न वायु आदि देव पदार्थों के द्वारा अल्प प्रकाशित परमाणुओं के व्यापक रूप वाले संगतीकरण को फैलाता है। ऐसा वह अग्नि अतिवेगवान्, दमनशील एवं भेदकशक्ति सम्पन्न सुन्दर रश्मियों के द्वारा सभी परमाणुओं के भीतर व्याप्त होकर विविध क्रियाएं सिद्ध करता है।

(७) अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम्।।७।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक दीप्तियुक्त। अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व सर्वदा सक्रिय रहता हुआ स्वयं से उत्पन्न पार्थिवादि परमाणुओं को विभिन्न प्राण रश्मियों के बल से प्रकाशित व तृप्त करता है। कमनीय गुणों से युक्त अग्नि विभिन्न वयः अर्थात् तेज व बलों को प्रकाशित वा प्रकट करता है। वह ऐसा अग्नि कामना गुण से युक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियों के मध्य सुकर्त्ता के रूप में शोभित होता है।

(८) विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम्।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे।।८।।

इसका छन्द जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से महान् मरुत्पवन रश्मियां उस सर्वपालक, सततगन्ता, सर्वनियामक, कमनीय बलादि गुणों से युक्त, सब परमाणुओं के प्रेरक, प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में व्याप्त अग्नि तत्त्व को अपने वेगादि गुणों से प्रकाशित व समृद्ध करती हैं।

(९) विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः।।९।।

इसका छन्द, देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि विविध दीप्तियुक्त, कमनीय सुन्दर संघातों में समर्थ, उत्कृष्ट देदीप्यमान किरणों वाला अपने विविध व्यवहारों एवं बल से पार्थिव परमाणुओं को घेर कर उन्हें अनेकविध पुष्ट व प्रकाशित करता है।

(१०) वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण।

जात आपृ॑णो भुव॑नानि रोद॑सी अग्ने ता विश्वा॑ परिभूर॑सि त्मना॑।।१०।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विचक्षण वैश्वानर वायु रश्मियां अग्नि के धामों को सब ओर से चाहती हुई प्रकाशित व अप्रकाशित सभी उत्पन्न पदार्थों को परिपूर्ण कर देती हैं अर्थात् उनमें व्याप्त हो जाती हैं। इन रश्मियों के कारण वह अग्नि सम्पूर्ण पदार्थ जगत् को आच्छदित करता हुआ उन्हें प्रकाशित करता है।

(११) वैश्वानरस्य॑ दंसना॑भ्यो बृहदरि॑णादेकः॑ स्वपस्यया॑ कविः।
उभा पितरा॑ महय॑न्नजायताग्निर्द्यावा॑पृथिवी भूरि॑रेतसा।।११।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि व मरुत् अपने बाहुरूप बलों के द्वारा विस्तार को प्राप्त होते हैं। अन्य प्रभाव से विभिन्न व्यापक मरुद् रश्मियों के विविध कर्मों के साथ संगत अकेला सूत्रात्मा वायु व्यापक एवं सततगमनशील कमनीय बल रश्मियों के द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न व प्रकाशित करता है। इसमें अपने व्यापक तेज व बलयुक्त अग्नि भी अपनी भूमिका निभाता है।

यहाँ महर्षि इस सूक्तरूप रश्मिसमूह को अग्रिम सूक्त से पूर्व उत्पन्न मानते हैं, इसी कारण इसे 'प्रतिपत्' कहा है। इस सूक्त की कई ऋचाओं के प्रथम पाद में ही देवतावाची पद विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति के समय नाग प्राण के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है।।

तदुपरान्त राहूगणपुत्रो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से मरुद्देवताक ऋ.१.८७ सूक्त की क्रमशः निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्रत्व॑क्षसः प्रत॑वसो विरप्शिनोऽ ना॑नता अवि॑थुरा ऋजीषिणः॑।
जुष्ट॑तमासो नृत॑मासो अञ्जिभिर्व्या॑नज्रे के चि॑दुस्राइ॑व स्तृभिः॑।।१।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से मरुद्रश्मियां व्यापक स्तर पर संयोग वियोग करती रहती हैं। अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां व्यापक होकर विभिन्न बाधक रश्मियों व अन्य पदार्थों को अच्छी प्रकार से छिन्न-भिन्न करतीं, प्रकृष्ट बलयुक्त होतीं तथा असुरादि रश्मियों से परास्त न होने वाली, निष्कम्प अर्थात् अपने कार्य में स्खलित न होने वाली, बार-२ विभिन्न परमाणु वा रश्मियों द्वारा आकृष्ट होकर उन्हें नृत्य कराती अर्थात् सक्रिय करती हैं।

(२) उपह्वरेषु यदचि॑ध्वं ययिं॑ वय॑इव मरुतः॑ केन॑ चित्पथा।
श्चोत॑न्ति कोशा उप॑ वो रथेष्वा घृतमु॑क्षता मधु॑वर्णमर्च॑ते।।२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां पक्षियों के समान किंवा अपने बल व तेज के समान सुन्दर कुटिल रश्मियों के रूप में इस अन्तरिक्ष के कुटिल मार्गों पर गति करती हैं। वे मरुद् रश्मियां विभिन्न संयोज्य रश्मि वा कणों से संयोगार्थ विभिन्न मेघरूप पदार्थों के अन्दर गमन करते हुए अपने वरणीय तेज का उन रश्मि वा कणों के ऊपर सेचन करती हैं।

(३) प्रैषामज्मे॑षु विथुरेव॑ रेजते भूमिर्यामे॑षु यद्ध॑ युञ्जते॑ शुभे।
ते क्रीळयो धुन॑यो भ्राज॑दृष्टयः स्वयं॑ महित्वं॑ प॑नयन्त धूत॑यः।।३।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ कम तेजस्वी। अन्य प्रभाव से क्रीडा करती हुई, विभिन्न पदार्थों को कंपाती हुई, धारण-शक्ति-सम्पन्न, शोभायमान प्रकाशयुक्त, विभिन्न परमाणु वा रश्मि संघातों में प्रेरक का कार्य करती हैं। वे मरुद् रश्मियां अपनी महिमा से विभिन्न मार्गों पर नाना व्यवहार करती हुई विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को कम्पायमान करती हैं।

(४) स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ऽ या ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽ स्या धियः प्राविताथा वृषा गणः।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां तीक्ष्ण तेज व वल से युक्त होती हैं। अन्य प्रभाव से {अया = अनया (म.द.ऋ.भा.१.१२८.२)} वे मरुद् रश्मियां स्वयं गतिशील स्वभावयुक्त, सेचक व व्यापक वलों से युक्त, मिश्रणामिश्रण धर्म वाली, समूहों में गमन करने वाली, परिपूर्ण वलों से युक्त, नियन्त्रक सामर्थ्य वाली, विभिन्न क्रियाओं की रक्षा करती हैं। ये ऐसी मरुद् रश्मियां सभी परमाणुओं को आवृत्त करती हैं।

(५) पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे।।५।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {ईर्म = बाहुनाम (नि.५.२५)} सवके पालक व पुरातन सोम तत्त्व के प्रकाश से अनेकों छन्दादि रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ये रश्मियां परस्पर संगत व प्रकाशित होकर इन्द्र तत्त्व को विभिन्न कर्मों हेतु प्रकाशित व व्याप्त करके सव ओर से सव परमाणुओं को धारण करती हैं।

(६) श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः।।६।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियों (यहाँ 'श्रियसे' में षष्ठी अर्थ में चतुर्थी को प्रयोग है) के प्रकाश के द्वारा विभिन्न कमनीय मरुद् रश्मियां सिक्त होने लगती हैं। {वाशी = वाङ्नाम (निघं.१.११)} इससे अनेक छन्द-मरुदादि रश्मियुक्त परमाणु विशेष व अनुकूल आकर्षणादि वलों से युक्त होते हैं। इस कारण वे विभिन्न संयोगादि-क्रियाओं को अच्युत भाव से सम्पन्न करने में समर्थ होते हैं।

इस सूक्त की कुछ ऋचाओं में 'प्र' उपसर्ग की विद्यमानता से सिद्ध होता है कि इसकी उत्पत्ति के समय नाग प्राण का उत्कर्ष काल होता है।।

तदुपरान्त मरीचिपुत्र कश्यप ऋषि अर्थात् विभिन्न रश्मियों के पालक कूर्म उपप्राण से जातवेदा अग्निदेवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क एक रश्मि वाले सूक्त की एकमात्र ऋचा -

(७) जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।।१।। (ऋ.१.९९.१)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी एवं वलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से सोमतत्त्व के सम्पीडन से अग्नितत्त्व की उत्पत्ति होती है। इस सम्पीडन से परस्पर संयोग न करने वाली रश्मियां भी अन्य वेद अर्थात् छन्द रश्मियों को निश्चय रूप से उष्ण करने लगती हैं, जो अग्नि का रूप है। तत्पश्चात् वह अग्नि विभिन्न वाधक असुरादि रश्मियों को नियन्त्रित करके विभिन्न संयोग आदि क्रियाओं को पार लगाता है।।

यह जातवेदादेवताक छन्द रश्मि एवं आगामी 'प्रतव्यसीं नव्यसी......' कण्डिका में वर्णित जातवेदादेवताक छन्द रश्मियां इस सर्ग प्रक्रिया, विशेषकर अग्नितत्त्व की उपर्युक्त निर्माण प्रक्रिया को सम्यग्रीत्या संचालित करने में विशेष भूमिका निभाती हैं। इनके कारण अग्नितत्त्व सभी उत्पन्न पदार्थों में प्रचुरतया व्याप्त हो जाता है। इससे विभिन्न संयोज्य परमाणु एवं उनकी संयोग प्रक्रियाएं भी समुचित रीति से अपनी नाना क्रियाओं को सम्पादित करती हैं।।

इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर विभिन्न परमाणुओं के मार्ग निर्विघ्न होने लगते हैं, जिसके

कारण सम्पूर्ण सर्ग प्रक्रिया सम्यग्रीति से संचालित होने लगती है अर्थात् ये रश्मियां विभिन्न परमाणुओं की गति व मार्गों को संतुलित व समुचित बनाने में सहयोग करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल में ही विभिन्न प्रकार की पन्द्रह जगती तथा तीन त्रिष्टुप् चुम्बकीय तरंगों की उत्सर्जन व अवशोषण की क्रिया तीव्र होती है। इस समय ही विभिन्न मूलकणों व आयनों के संयोग की प्रक्रिया तीव्र होकर नाना प्रकार के एटम्स आदि कणों की उत्पत्ति तीव्रता से होती है। उस समय ब्रह्माण्ड में पदार्थ का भारी आलोडन होने लगता है। जो कण न्यून ऊर्जा वाले होते हैं, वे भी नाना क्वाण्टाज् से संयुक्त होकर ऊर्जावान् हो उठते हैं। विभिन्न मरुद् व प्राण रश्मियों के कारण ब्रह्माण्ड में ऊर्जा की वृद्धि होने लगती है। डार्क एनर्जी का प्रक्षेपक प्रभाव, जो पदार्थ के संघात में बाधक होता है, वह दूर होने लगता है। विभिन्न सोम रश्मियों के सम्पीडन से विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वाण्टाज् की उत्पत्ति होने से ऊर्जा सतत वर्धमान होती चली जाती है। मरुद् रश्मियां वक्र मार्ग में गति करती हैं, उनकी गति विद्युत् चुम्बकीय तरंगों से भिन्न होती है। ये मरुद् रश्मियां विभिन्न क्वाण्टाज् के साथ संयुक्त होकर उनकी आवृत्ति में वृद्धि करती हैं तथा वे ही संपीडित होकर क्वाण्टाज् के रूप में प्रकट भी होती हैं। इस समय विद्युत् की तीव्रता होती है। इसके कारण सम्पूर्ण पदार्थ विक्षुब्ध होने से सृजन क्रियाओं में भारी वृद्धि होने लगती है।।

६. 'प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नय' इति जातवेदस्यम्; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।। समानमाग्निमारुतं भवति, यच्चाग्निष्टोमे यद्वै यज्ञे समानं क्रियते, तत्प्रजा अनु समनन्ति; तस्मात् समानमाग्निमारुतं भवति।।२।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त पूर्व में अनेकत्र वर्णित व व्याख्यात दीर्घतमा नामक ऋषि प्राण विशेष से जातवेदा-अग्निदेवताक ऋ.१.१४३ सूक्त की क्रमशः निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे।
अपां नपाद् यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से अपने कर्मों में स्थिर प्राथमिक प्राण रूप होता किंवा मनस्तत्त्व रूप होता वाक् तत्त्व की नवीन-२ धारक शक्तियों के साथ-२ सूत्रात्मा वायु रश्मियों को धारण करके विभिन्न प्राथमिक प्राण व ऋतु रश्मियों के साथ संगत होकर अपने पुत्रतुल्य अग्नि तत्त्व को प्रकृष्ट रूप से युक्त करता है।

(२) स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत्।।२।।

इसका छन्द विराड् जगती होने इसका दैवत व छान्दस पूर्वापेक्षा अधिक प्रकाशयुक्त, किन्तु तीक्ष्णता की किंचिद् न्यूनता। अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व अन्तरिक्ष में व्याप्त वायु तत्त्व से प्रकट होता है। ऐसा वह अग्नि दीप्तियुक्त प्रकाश व ऊष्मा के साथ बलों से क्रियमाण विविध कर्मों के द्वारा द्युलोक व पृथिवी के परमाणुओं को प्रकाशित करता है।

(३) अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {अससन्तः = षस स्वप्ने (अदा.) धातोः शतृ प्रत्ययः। नञ् समासः। सस्ति स्वपितिकर्मा (निघं.३.२२, वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री)} सुन्दर

प्रतीत होने वाले एवं सुन्दर प्रकाशयुक्त अग्नि की बल व प्रकाश से युक्त अक्षय किरणें अनथक गति करती हुई विभिन्न परमाणुओं को अपने बल व शक्तिरूप बन्धन से कंपाती हुई चलती हैं। ऐसा करके ही वे अग्नि-किरणें उन परमाणुओं को व्यक्तावस्था प्रदान करती हैं।

(४) यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति।।४।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् न्यून प्रकाशयुक्त। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वसुरूप प्राण रश्मियों में से अकेला प्राणनामक प्राण तत्त्व इस अन्तरिक्ष के मध्य विद्यमान व्यापक अग्नि तत्त्व को अपनी शोधक बलयुक्त वाग् रश्मियों के द्वारा प्रेरित करते हुए प्रकाशित करता है। फिर उस अग्नि की प्रकाश तापयुक्त रश्मियां सब ओर से सभी परमाणु आदि पदार्थों को अपने नियन्त्रण में लेकर सूर्य के समान प्रकाशित करती व कंपाती हैं।

(५) न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते।।५।।

इसका छन्द विराट् जगती होने से दैवत छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {तिगितैः = (तिग गतौ, तिज निशाने)। भर्वति = अत्तिकर्मा (निघं.२.८), भर्व हिंसायाम्। ऋञ्जते = ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा (नि.६.२१), ऋजि भर्जने (भ्वा.)} वह अग्नि मरुद् रश्मियों की सेना के समान शब्द करते हुए, अन्तरिक्ष में उत्पन्न विद्युत् के समान अपनी तीक्ष्ण गति के द्वारा विभिन्न परमाणुओं को अवशोषित वा अपने साथ संगत करता तथा उन्हें तोड़ता रहता है। वह ऐसा तीक्ष्ण अग्नि प्रहारक क्षमता से सम्पन्न होकर बाधक असुर रश्मियों को नष्ट करके नाना क्रियाओं को सिद्ध करता है।

(६) कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे।।६।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {कुवित् = बहुनाम (निघं.३.१)} वह व्यापक अग्नि प्रत्येक प्रकाशित पदार्थ में व्याप्त होकर सृजन व तेज आदि गुणों को उत्पन्न करता है। वह अग्नि सबके वासयिता प्राण तत्त्व के द्वारा सबको बसाने वाला होता है। वह अपने कमनीय एवं प्रेरक बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को आच्छादित करके उन्हें तीक्ष्ण करता वा काटता है। वह विभिन्न शोभना ज्वालाओं से सबको प्रकाशित व सक्रिय करता है।

(७) घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम्।।७।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {अक्रः = आक्रमणात् (नि.६.१७)} प्राण रश्मियां बाधक रश्मियों में ही स्थिर व निर्बाध रहने की क्षमता से युक्त एवं तेजस्वी रूप वाली होकर अग्नि तत्त्व को कारणरूप प्राण नामक प्राण तत्त्व के समान सिद्ध व प्रकाशित करती हैं, जिससे वह अग्नि तत्त्व भी अपने सब ओर से होने वाले आक्रमण के द्वारा विभिन्न संघात-संयोगों में देदीप्यमान होते हुए विभिन्न परमाणुओं को शुद्ध तेजस्वी व सक्रिय रूप प्रदान करता है।

(८) अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः।।८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व अति तीक्ष्ण व तेजस्वी होता है। अन्य प्रभाव से {अप्रयुच्छन् = अ+प्र+युच्छ प्रमादे+शतृ। शग्मम् = सुखनाम (निघं.३.६),

कर्मनाम (निघं.२.१)। अदृपितेभिः = (दृप हर्षनमोहनयोः - दिवादि)} उस अग्नि तत्त्व की अनुकूल, रक्षक, सतत सक्रिय, तीक्ष्ण व किसी से न दबने वाली, भ्रान्त व अपने पथ व कर्म से च्युत न होने वाली किरणें विभिन्न तत्त्व व कर्मों का सृजन सतत करती रहती हैं।

इन आठ छन्द रश्मियों में से कुछ में 'प्र' उपसर्ग की विद्यमानता से यह सिद्ध होता है कि इनकी उत्पत्ति के काल में भी नाग प्राण का उत्कर्ष हो चुका होता है।।

इस प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल तथा इस ग्रन्थ में पूर्ववर्णित अग्निष्टोम कर्म अर्थात् तारों के केन्द्रीय भाग के निर्माण की प्रक्रिया में अग्नि व मरुद् देवता वाली ऋचाएं साथ-२ उत्पन्न व प्रकाशित होती हैं। इससे सभी उत्पन्न परमाणु समान रूप से प्राणवान् अर्थात् चेष्टायुक्त होते हैं। इनमें से केवल एक तत्त्व के उत्पन्न वा सक्रिय होने से विभिन्न परमाणुओं की उत्पत्ति व उनकी क्रियाशीलता नहीं हो सकती। इस कारण अग्नि व मरुद् रश्मियां दोनों को ही सक्रिय वा उत्पन्न करने वाली छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होना अनिवार्य होता है। मरुतों के बिना अग्नि का अस्तित्व सम्भव नहीं और अग्नि की उत्पत्ति के बिना सर्गप्रक्रिया का अग्रसर होना असम्भव है। इस कारण दोनों की ही उत्पत्ति अनिवार्य है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पूर्व खण्ड में इस काल का छन्द गायत्री कहा गया है, जबकि इन दो खण्डों में गायत्री के अतिरिक्त जगती की भी अधिकता होने के साथ-२ अन्य छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। इसके समाधान में हमारा मत है कि इस काल में विभिन्न छन्द रश्मियां विविध संयोग वा समायोजन से गायत्री के रूप में अधिकता से व्यवहार करती हैं, इस कारण इस काल का छन्द गायत्री कहा है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **नाग प्राण** के ही उत्कर्ष काल में सात विभिन्न जगती एवं एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। उस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा व तीव्रता दोनों में ही वृद्धि होकर कॉस्मिक पदार्थ की ऊष्मा एवं प्रकाश में विशेष वृद्धि होती है। **ब्रह्माण्डस्थ वायु तत्त्व (मरुद् रश्मियों) के सम्पीडन से ही ऊर्जा की उत्पत्ति होती है।** उस समय तीक्ष्ण गामा व एक्स किरणें तथा अनेक प्रकार की ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं। डार्क एनर्जी का प्रक्षेपक प्रभाव नियन्त्रित होकर विभिन्न कणों, एटम्स व अणुओं की उत्पत्ति भी तीव्रता से होती है। **मरुद् रश्मियां तथा विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, दोनों के ही संयोग से किंवा मरुद् रश्मियों के द्वारा विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के सम्पीडन से ही विभिन्न प्रकार के मूलकणों की उत्पत्ति होती है।** इस कारण विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के पूर्व ही मरुद् रश्मियों की उत्पत्ति हो जाती है।।

ॐ इति २०.२ समाप्तः ॐ

❧ अथ 20.3 प्रारभ्यते ❧

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. इन्द्रो वै देवता द्वितीयमहर्वहति, पञ्चदशस्तोमो बृहत्साम त्रिष्टुपछन्दः।। यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथा छन्दसं राध्नोति य एवं वेद।। यद्वै नेति न प्रेति, यत्स्थितं, तद्द्वितीयस्याह्नो रूपम्; यदूर्ध्ववद्यत्प्रतिवद्यदन्तर्वद्यद्वृषण्वद्यद्वृधन्वद्, यन्मध्यमे पदे देवता निरुच्यते; यदन्तरिक्षमभ्युदितं, यद्बार्हतं, यत्त्रैष्टुभं, यत्कुर्वदेतानि वै द्वितीयस्याह्नो रूपाणि।।

व्याख्यानम्- प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष की चर्चा के उपरान्त महर्षि यहाँ द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस समय इन्द्र तत्त्व की विशेष प्रधानता वा उत्पत्ति होती है। वस्तुतः इन्द्र तत्त्व अग्नि एवं वायु का मिश्रित तथा अति तीक्ष्ण रूप है। इससे स्पष्ट है कि पूर्व में जो अग्नि तत्त्व नाग प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न हुआ था, वही तीक्ष्ण रूप धारण करके मरुद् रश्मियों के साथ मिलकर इन्द्र तत्त्व का रूप धारण करता है। ध्यातव्य है कि पूर्व के दो खण्डों में वर्णित नाग प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न कुछ छन्द रश्मियां इन्द्रदेवताक होने से उसी समय इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति व समृद्धि की पुष्टि होती है, पुनरपि यहाँ द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल में इन्द्र तत्त्व की व्याप्ति की चर्चा से संकेत मिलता है कि पूर्वोत्पन्न इन्द्र तत्त्व अग्नि के सापेक्ष गौण व मृदु होता है, जबकि यहाँ इन्द्र तत्त्व प्रधान तथा तीक्ष्ण होता है। इसी समय पञ्चदशस्तोम अर्थात् पन्द्रह विशेष गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति भी होती है, जिसके विषय में खण्ड ४.१६ एवं ३.४२ अवश्यमेव पठनीय है। इस समय बृहत्साम रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य सन्धि का कार्य करती हैं। हमारे मत में यहाँ बृहत्साम से दो प्रकार की रश्मियों का ग्रहण किया जा सकता है।
(१) "द्व्यक्षरं बृहत्" (तै.ब्रा.२.१.५.७) इस आर्ष वचन से नाग प्राण के उत्कर्ष काल में वर्णित 'ओम्' रश्मि रूपी रथन्तर साम के स्थान पर दो अक्षर वाली दैवी छन्द रश्मियां ही सन्धि रूप होती हैं, इन्हें ही बृहत् साम कहा जाता है। ये रश्मियां लघु छन्दादि रश्मियों को परस्पर जोड़ने में सहायक होती हैं।
(२) ४.३१.१ में वर्णित निचृदनुष्टुप् छन्द रश्मि ही बृहत्साम के रूप में कार्य करती हुई विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य सन्धि का कार्य करती है।

इन बृहत्सामों के अतिरिक्त इस काल में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता वा तीव्रता अधिक रहती है। हम यह जानते ही हैं कि इन्द्र तत्त्व का सम्बन्ध त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से विशेष होता है। इस कारण भी उदान प्राण व इन्द्र तत्त्व के उत्कर्ष काल का छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है।

दूसरा कारण यह भी है कि इस काल में उत्पन्न अन्य गायत्री एवं जगती आदि छन्द रश्मियां विविध प्रकार से संयुक्त व समायोजित होकर अधिकता से त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का प्रभाव उत्पन्न करती हैं, इस कारण भी इस उदान प्राण के उत्कर्ष काल का छन्द त्रिष्टुप् कहा गया है। इस काल में उदान के विशेष सक्रिय होने पर इन्द्र तत्त्व, पञ्चदश स्तोम, बृहत्साम एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां यथावत् समृद्ध होती हैं।।+।।

यहाँ इस काल में उत्पन्न छन्द रश्मियों के विषय में कहते हैं कि उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्द रश्मियों में 'आ' व 'प्र' उपसर्गों की विद्यमानता नहीं होती। यदि कहीं होती भी हो, तो उसे पूर्वोक्त नाग प्राण से ही सम्बन्धित मानना चाहिए, ऐसा हमारा मत है। यहाँ केवल इस काल से सम्बन्धित उपसर्ग व अन्य पद आदि के विषय में चर्चा करते हैं कि इन ऋचाओं में 'स्था' धातु से

निष्पन्न पदों के विद्यमान होने से ये छन्द रश्मियां अपने कार्य में दृढ़ता से स्थिर होती अर्थात् डटी रहती हैं। इनमें 'ऊर्ध्व' शब्द विद्यमान होता है, जिसके कारण इन छन्द रश्मियों में ऊर्ध्वगमन अर्थात् किसी बल के विपरीत जाने का गुण विशेषरूप से विद्यमान होता है। यह गुण उदान प्राण गुण से पूर्ण साम्यता रखता है। इस शब्द के प्रभाव से ये छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों के सापेक्ष अग्रगामिनी होती हैं। इन ऋचाओं में 'प्रति' उपसर्ग भी विद्यमान होता है, जिसके कारण ये छन्द रश्मियां अन्य रश्मियों के अभिमुख होकर उन्हें बार-२ व्याप्त करके अपने साथ बांधती है। 'प्रति' को महर्षि दयानन्द ने अपने ऋग्वेद भाष्य (१.४८.२) तथा (१.१६६.७) में क्रमशः 'अभिमुख' एवं 'वीप्सा' अर्थ में प्रयुक्त माना है तथा यजुर्वेद भाष्य (२०.३७) में 'व्याप्ति' अर्थ में प्रयुक्त माना है, तदनुसार ही हमने 'प्रति' का उपर्युक्त प्रभाव दर्शाया है। इन ऋचाओं में 'अन्तः' शब्द विद्यमान होने से ये छन्द रश्मियां अन्य रश्मियों के अन्दर निकटता से भी प्रविष्ट हो जाने में समर्थ होती हैं। 'वृषन्' शब्द भी इनमें विद्यमान होने से ये रश्मियां प्रायः वृषारूप होकर अन्य छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर अपने सेचक बलों का उन पर सेचन करती हैं। 'वृधन' शब्द भी विद्यमान होने से ये रश्मियां विभिन्न रश्मियों को फैलाते हुए उनके गुणों को भी समृद्ध करती हैं।

इन पदों की विद्यमानता के अतिरिक्त इन ऋचाओं के मध्य भाग में देवतावाची पद का निरूपण हो सकता है। इससे ऐसा संकेत मिलता है कि इन छन्द रश्मियों के उत्पन्न होते ही इन्द्र तत्त्व प्रखर नहीं होता, बल्कि इनके धीरे-२ सक्रिय होने के मध्य काल में इन्द्र तत्त्व प्रखर होता है। इन छन्द रश्मियों से अन्तरिक्ष समृद्ध होता है। इससे स्पष्ट है कि ये छन्द रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणुओं के मध्य अवकाश को बढ़ाती जाती हैं। इसका कारण यह है कि इस समय आकर्षण एवं प्रतिकर्षण दोनों ही प्रकार के बल समृद्ध होते हैं। इन ऋचाओं में धातु के वर्तमान पदों का प्रयोग मिलता है, इससे संकेत मिलता है कि इस प्राण के उत्कर्ष काल में सृजन क्रियाएं विशेषरूप से हो रही होती हैं। इसी समय उपर्युक्त बृहत् साम एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां विशेष प्रभावी होती हैं। ये सभी लक्षण उदान प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उदान प्राण की सक्रियता में त्रिष्टुप् रश्मियों का प्रभाव विशेष होता है। अन्य रश्मियां भी परस्पर इस प्रकार समायोजित होती हैं कि वे त्रिष्टुप् रश्मियों का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इस समय गर्जनयुक्त तीव्र विद्युत्-इन्द्र तत्त्व की विशेष प्रबलता होती है। विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर संयुक्त रखने हेतु दो अक्षरों वाली सूक्ष्म रश्मियों तथा एक विशेष अनुष्टुप् रश्मि की उत्पत्ति होती है। विद्युत् चुम्बकीय बल, विद्युत् चुम्बकीय धाराएं अति तीव्र स्तर पर होती हैं। प्रकाश की मात्रा भी बढ़ जाती है। विभिन्न रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ तीव्रता से संयुक्त होकर नाना प्रकार के कणों व विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। ये छन्द रश्मियां विभिन्न मूल कणों के अन्दर तक प्रविष्ट होकर उन्हें तीव्र बल व गति प्रदान करती हैं। इस समय आकर्षण व प्रतिकर्षण दोनों प्रकार का बल उत्पन्न होकर जहाँ पदार्थ के संघनन को बढ़ाता है, वहीं उन कणों के मध्य किंवा कॉस्मिक पदार्थ संघात समूह के मध्य के अन्तराल में भी वृद्धि करता है। इस कारण ब्रह्माण्ड में असंख्य पदार्थ समूह प्रकट होने लगते हैं। इस समय विद्यमान रश्मियां विशेष बल के साथ अपने-२ प्रभाव को स्थिरता व दृढ़ता प्रदान करने में समर्थ होती हैं।।

२. 'अग्निं दूतं वृणीमहे' इति द्वितीयस्याह्न आज्यं भवति; कुर्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से अग्निदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क ऋ.१.१२ सूक्त की उत्पत्ति होती है। इनका क्रमशः प्रभाव निम्नानुसार है-

(१) अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम्। अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म्।।१।।

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ इस सर्गयज्ञ को सम्यग्रूपेण संचालित करने वाले, सबमें व्याप्त विभिन्न पदार्थों को दूर-२

तक ले जाने में समर्थ होतारूप अग्नि तत्त्व को प्राप्त करते हैं।

(२) अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम्।।२।।

इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से प्राथमिक प्राणरूप अग्नि एवं अग्नितत्त्व दोनों ही पदार्थ सम्पूर्ण परमाणु समुदाय के पालक व रक्षक होते हैं। ये दोनों ही विभिन्न मास रश्मिरूप हवियों के द्वारा व्यापक रूप से आकर्षित करके विभिन्न हव्य अर्थात् संयोज्य परमाणु वा रश्मियों को इधर उधर वहन करने में सक्षम होते हैं।

(३) अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः।।३।।

इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से सबको उत्पन्न करने वाला होता रूप अग्नि विभिन्न मरुद् रश्मियों की हवि देने हेतु अर्थात् उन रश्मियों से विभिन्न पदार्थों को तेजस्वी एवं बलवान् बनाने हेतु विभिन्न परमाणुओं द्वारा सदैव आकर्षित किया जाता रहता है। ऐसा वह अग्नि तत्त्व विभिन्न देवों अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों को इधर-उधर ले जाकर विभिन्न परमाणुओं के साथ संयुक्त करता है।

(४) ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम्। देवैरा सत्सि बर्हिषि।।४।।

इसका छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से कामना करते हुए विभिन्न परमाणुओं को वह अग्नि प्रेरित करता है। वह अग्नि विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा अन्तरिक्षस्थ नाना पदार्थों के दोषों को दूर करके उन्हें शुद्ध करता व इधर-उधर ले जाता है।

(५) घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह। अग्ने त्वं रक्षस्विनः।।५।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से प्रकाशशील तथा संदीप्त तेज, जो 'घृङ्' रश्मियों के निरन्तर प्रक्षेपण से उत्पन्न होता है, से सम्पन्न अग्नि तत्त्व बार-२ बाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट करता है।

(६) अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः।।६।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {जुहूः = वाग् जुहूः (तै.आ.२.१७.१)} पूर्वोत्पन्न अग्नितत्त्व अर्थात् विद्युत् तीव्र अग्नि वा विद्युत् को उत्पन्न व प्रकाशित करता है किंवा प्राणाग्नि के द्वारा अग्नितत्त्व प्रकाशित होता है। वह प्रकाशित अग्नि वा विद्युत् क्रान्तदर्शी, नाना बलों एवं परमाणुओं के आकारों का रक्षक, मिश्रण-अमिश्रण करने वाला, विभिन्न हवियों को ले जाने वाला होता है। विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा ही अग्नि विभिन्न पदार्थों का भक्षण करता है।

(७) कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम्।।७।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह क्रान्तदर्शी अग्नितत्त्व अपने नित्य गुणों के द्वारा विभिन्न निरापद संयोगादि क्रियाओं में विभिन्न परमाणुओं के निकट से प्रकाशित होकर उनके बाधक तत्त्वों को दूर करता है।

(८) यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति। तस्य स्म प्राविता भव।।८।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् अन्य प्रभाव से जो परमाणु विभिन्न हवियों के रक्षक किंवा हविरूप मास रश्मियों से रक्षित व प्रकाशित अग्नि के निकट गमन करते हैं, उन्हें वह अग्नि प्रकृष्टरूपेण रक्षण, गति व कान्ति प्रदान करता तथा उन्हें विभिन्न बलों से भी युक्त करता है।

(९) यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति। तस्मै पावक मृळय।।९।।

दैवत व छान्दस पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {विवासति परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} विभिन्न मास व प्राण आदि रश्मियों से युक्त एवं अपने तेज से विभिन्न पदार्थों का छेदन व भेदन करने वाला अग्नि विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को व्याप्त करने हेतु उनके चारों ओर परिक्रमण करते हुए प्रविष्ट हो जाता है।

(१०) स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह। उप यज्ञं हविश्च नः।।१०।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह प्रकाशक एवं शोधक धर्म से युक्त अग्नि सब ओर से प्राणादि रश्मियों से व्याप्त होकर सृजन क्रियाओं हेतु विभिन्न परमाणु रूप हवियों को निकटता से संयुक्त कराता है किंवा वह अग्नि मास रश्मियों को भी निकटता से अपने अन्दर व्याप्त करता है।

(११) स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा। रयिं वीरवतीमिषम्।।११।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह नवीन-२ विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों से प्रकाशित अग्नि तत्त्व विभिन्न वीर अर्थात् सबको कंपाने वाले प्राणों एवं आकर्षणादि बलों से युक्त छन्दादि रश्मियों को सब ओर से धारण करता है, साथ ही यह अग्नि विभिन्न बलों से युक्त परमाणुओं को भी धारण करता है।

(१२) अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः। इमं स्तोमं जुषस्व नः।।१२।।

दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से असंख्य पराक्रमों तथा ज्वालाओं से युक्त अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों की आहुतियों के द्वारा विभिन्न किरण समूहों का सेवन करता है किंवा उन्हें संगत करता है।

इस द्वादश छन्दरश्मि युक्त सूक्त को महर्षि ने 'आज्य' कहा है। इसका तात्पर्य है कि ये छन्द रश्मियां उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने हेतु तेजोमय 'रेतः' का कार्य करती हैं। ये ही उन्हें उत्पन्न करने में प्रारम्भिक इच्छा को उत्पन्न करती हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है-

"तेजो वा आज्यम्" (तां.१२.१०.१८)
"काम आज्यम्" (तै.ब्रा.३.१.४.१५)
"रेतो वाऽआज्यम्" (श.१.९.२.७)

इन छन्द रश्मियों में विभिन्न क्रियापद वर्तमान काल से सम्बन्धित होने से स्पष्टतः इनकी उत्पत्ति व सक्रियता उदान प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में इन्द्र तत्त्व के तीक्ष्ण रूप अर्थात् घोर गर्जनयुक्त तीक्ष्ण शक्तिसम्पन्न स्वरूप की उत्पत्ति हेतु बीजरूप में बारह गायत्री रश्मियां उत्पन्न होकर ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा व आवृत्ति दोनों को बढ़ा देती हैं। ये विद्युत् चुम्बकीय तरंगें नाना परमाणुओं के साथ विविध अन्योऽन्य क्रियाएं करके उन्हें विक्षुब्ध करके सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त करती हैं। जब कोई क्वाण्टा किसी कण के साथ संयुक्त होता है, तब वह उस कण की ओर तेजी से आता हुआ उस कण की परिक्रमा करते हुए ही उसमें व्याप्त होता है, न कि सहसैव एक दिशा से सीधा व्याप्त हो जाता है। ऊर्जा में भारी वृद्धि होकर सम्पूर्ण पदार्थ अन्तरिक्ष में इधर से उधर अनेक प्रकार की तीव्र धाराओं के रूप में बहने लगता है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वाण्टाज् एवं विभिन्न कणों के मध्य अन्योऽन्य क्रियाओं के सम्पन्न होने में विभिन्न प्राण व मरुदादि रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है।।

३. 'वायो ये ते सहस्रिण' इति प्रउगम्; 'सुतः सोम ऋतावृधेति' वृधन्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त उदान प्राण के उत्कर्ष काल में ही गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से विभिन्न देवता व छन्दों वाले ऋ.२.४१ सूक्त की उत्पत्ति की चर्चा करते हैं। इस सूक्त की रश्मियां क्रमशः निम्नानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि। नियुत्वान्त्सोमपीतये।।१।।

इसका देवता वायु तथा छन्द गायत्री होने से इसके छान्दस व दैवत प्रभाव से वायु तत्त्व तेज व बल से समृद्ध होता है। अन्य प्रभाव से असंख्य रथरूप रमणीय रश्मियों के वेग आदि गुणों से युक्त वायु अर्थात् प्राण तत्त्व की रश्मियां विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित व संगत करने हेतु सब ओर व्याप्त होती हैं।

(२) नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते। गन्तासि सुन्वतो गृहम्।।२।।

इसका देवता वायु तथा छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीव्र होता है। पूर्वोक्त प्राणरूप वायु आकाश तत्त्व द्वारा सम्पीडित एवं नियन्त्रित होकर पवित्र व शीघ्रकारी स्वरूप को प्राप्त होता है।

(३) शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः। आ यातं पिबतं नरा।।३।।

इसका देवता इन्द्रवायू तथा छन्द गायत्री होने से इन्द्र एवं वायु दोनों ही तत्त्व तेज व बल से समृद्ध होते हैं। अन्य प्रभाव से {गवाशिरः = (अशिरः = अश्नाति यः पदार्थान् सः - उ.को.१.५२), गाः किरणान् अश्नुते तस्य (म.द.भा.)। शुक्रम् = उदकनाम (निघं.१.१२)} विभिन्न किरणों से व्याप्त अपनी सूक्ष्म रश्मियों से सबको व्याप्त करने वाले, नियन्त्रित इन्द्र एवं वायु सब ओर व्याप्त होकर नाना प्रकार की मरुद् रश्मियों को अवशोषित करते हैं।

(४) अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम्।।४।।

इसका देवता मित्रावरुण एवं छन्द गायत्री होने से प्राणापान एवं गायत्री के मेल से विद्युत् तत्त्व तीव्र होता है। अन्य प्रभाव से मन एवं वाग् रूप कारण तत्त्व से संवर्धित प्राणापान किंवा प्राणोदान सोम रश्मियों को सम्पीडित करके विभिन्न 'हवम्' अर्थात् बल व संघातों को गति प्रदान करते हैं।

(५) राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।।५।।

इसका देवता पूर्ववत् तथा छन्द निचृद्गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित प्राणोदान प्रतिकर्षण बल से रहित होकर {सदः = ऐन्द्रं हि सदः (श.३.६.१.२२), सदसी द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)} प्रकाशित व अप्रकाशित कणों, जिनमें उन कणों के सापेक्ष असंख्य स्थिर रश्मियां विद्यमान होती हैं, के सापेक्ष निश्चल रूप से विद्यमान होते हैं।

(६) ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम्।।६।।

देवता पूर्ववत् एवं छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वे दोनों अखण्डित प्राणोदान किंवा प्राणापान सम्यग्रूपेण प्रकाशित होकर सूक्ष्म तेज को उत्पन्न करते हैं। वे विभिन्न संयोगादि क्रियाओं, बलों के पालक व रक्षक होकर सरलता से विभिन्न रश्मि वा कणों से संगत होते हैं।

(७) गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना। वर्ती रुद्रा नृपाय्यम्।।७।।

इसका देवता अश्विनौ एवं छन्द त्रिपाद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से {अश्विनौ = वायुविद्युतौ (म.द.ऋ.भा.३.५८.४)} वायु और विद्युत् दोनों ही तेज से समृद्ध होते हैं। अन्य प्रभाव से वे वायु-विद्युत् रुद्ररूप अर्थात् तीक्ष्ण रूप और अविनाशी वा अक्षय बलों से युक्त एवं अपने-२ मार्गों में व्याप्त होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को अपने साथ संगत करते हैं।

(८) न यत्परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः।।८।।

देवता पूर्ववत् एवं छन्द विराड् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त वायु-विद्युत्, जो सभी बलवानों तथा बसाने वालों में श्रेष्ठ है, से श्रेष्ठ तथा इन दोनों को दबाने वाला विनाशी तथा विपरीत वा दुष्ट शक्तियों से युक्त पदार्थ इस ब्रह्माण्ड में नहीं है। इस कारण ये वायु-विद्युत् सर्वोत्तम बल व तेज से युक्त होते हैं।

(९) ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्। धिष्ण्या वरिवोविदम्।।९।।

देवता पूर्ववत् तथा छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त विभिन्न वाग् रश्मियों से युक्त वायुविद्युत् सब परमाणु आदि पदार्थों को वहन करते हुए विभिन्न शोभन वर्ण वाले पदार्थों को आच्छादित करके उन्हें अपने साथ संगत करते हैं किंवा अपने में व्याप्त करते हैं।

(१०) इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः।।१०।।

इसका देवता इन्द्र तथा छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व प्रबल होता है। अन्य प्रभाव से {विचर्षणिः = विचर्षणिरिति पश्यतिकर्मा (निघं.३.११)। अङ्गेति क्षिप्रनाम (नि.५.१७)} वह तेजस्वी इन्द्र तत्त्व सबको आकर्षित वा प्रतिकर्षित करता हुआ, विभिन्न परमाणुओं को व्यापक स्तर पर कंपाता हुआ स्वयं अपने महान् कार्य में डटा रहता है।

(११) इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः।।११।।

इसका देवता, छन्द व दैवत-छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {नशत् = व्याप्तिकर्मा (निघं.२.१८)} वह इन्द्र तत्त्व तथा पूर्वोक्त वायु दोनों मिलकर विभिन्न परमाणुओं की विभिन्न सृजनात्मक क्रियाओं एवं कुत्रचित् विस्फोटक क्रियाओं को अनुकूलता प्रदान करके {भद्रम् = अन्नं वै भद्रम् (तै.ब्रा.१.३.३.६), भद्रं भगेन व्याख्यातं, भजनीयम्, भूतानामभिद्रवणीयम्, भवद्रमयतीति वा भाजनवद्वा (नि.४.१०)} विभिन्न पदार्थों में संयोजकत्व, परस्पर एक-दूसरे की ओर तीव्र गति से दौड़ना, भांति-२ की क्रियाएं करना तथा एक-दूसरे को आधार प्रदान करना आदि गुण उत्पन्न करते हैं।

(१२) इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून्विचर्षणिः।।१२।।

देवता पूर्वोक्त तथा छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से सबका आकर्षक वह इन्द्र तत्त्व सभी दिशाओं में विभिन्न बाधक असुरादि रश्मियों को नियन्त्रित करके सभी संयोज्य पदार्थों को संरक्षण प्रदान करता है।

(१३) विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्नि षीदत।।१३।।

इसका देवता विश्वेदेवा तथा छन्द गायत्री होने से दैवत छान्दस प्रभाव से सभी प्रकाशित व सक्रिय परमाणु एवं रश्मि आदि पदार्थ तेज एवं बल से समृद्ध होते हैं। अन्य प्रभाव से ब्रह्माण्डस्थ सभी प्रकाशित पदार्थ परस्पर एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होकर विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियों से युक्त आकाश तत्त्व में अच्छी प्रकार व्याप्त हो जाते हैं किंवा एक-दूसरे के परितः विद्यमान आकाश में सम्यग्रूपेण स्थित हो जाते हैं।

(१४) तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः। एतं पिबत काम्यम्॥१४॥

देवता पूर्ववत् एवं छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से {मत्सरः = मत्सरः सोमो मन्दतेस्तृप्तिकर्मणः मत्सर इति लोभनाम (नि.२.५)। शुनः = शुनः वायुः शु एत्यन्तरिक्षे (नि.६.४०), शुनम् सुखनाम (निघं.३.६)} वे सभी दिव्य पदार्थ विभिन्न प्राण रश्मियों से सम्पन्न होकर प्रकाशित मार्गों पर गति करते हुए अन्तरिक्ष में विद्यमान दिव्य वायु के द्वारा आकर्षित होते हुए सुगमता से सोम तत्त्व के साथ संगत होते तथा अनुकूल परमाणु वा रश्मियों को अपने में अवशोषित करते हैं।

(१५) इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम्॥१४॥

इसका देवता पूर्ववत् तथा छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा मृदु। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के नेतृत्व में गमन करने वाली प्रकाशमान मरुद् रश्मियां सभी पदार्थों के द्वारा आकृष्ट होकर उन्हें पुष्टि-वल प्रदान करती हैं।

(१६) अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥१६॥

इसका देवता सरस्वती एवं छन्द अनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से {अम्बिः = आपो वा अम्बयः (कौ.ब्रा.१२.२), (अबि शब्दे, अबि गतौ, अम गतिशब्दसंभक्तिषु)} विभिन्न वाग् रश्मियां ध्वनि व गति उत्पन्न करती हुई विभिन्न पदार्थों का विभाग करती व उन्हें प्रकाशित, प्रज्वलित करती हुई, अप्रकाशित व निष्क्रिय किंवा शिथिल परमाणुओं को भी प्रकाशित व सक्रियता प्रदान करती हुई सवको अपनी ओर झुकाती हैं।

(१७) त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्। शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥१७॥

इसका देवता पूर्ववत् तथा छन्द उष्णिक् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को सिक्त करके तप्त करती हैं। अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्रकाशमान वाग् रश्मियां विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों में आश्रित होकर उनमें मस्त रहती हुई विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को देदीप्यमान करती हैं।

(१८) इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति। या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति॥१८॥

इसका देवता पूर्ववत् तथा छन्द वृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से पूर्वोक्त वाग् रश्मियां व्यापक स्तर पर फैलकर पूर्वोक्त कर्मों को निष्पादित करती हैं। अन्य प्रभाव से {ऋतावरी = उषाः (म.द.ऋ.भा.६.६१.६)। मन्म = मनः (नि.६.२२), मन्म मननानि (नि.१०.४२)} वे पूर्वोक्त व्यापक वाग् रश्मियां अनेक छन्दादि रश्मियों के रूप में वल सम्पन्न होकर प्राण एवं अपानादि प्राण रश्मियों के साथ संगत व प्रकाशित होती हैं। वे ऐसी रश्मियां शोभन उषावत् प्रकाशयुक्त होकर विभिन्न प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को अपने तेज व वल से व्याप्त कर लेती हैं।

(१९) प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम्॥१९॥

इसका देवता 'द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा' तथा छन्द गायत्री है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न रश्मियों के हवियों के पात्ररूप प्रकाशित एवं अप्रकाशित कण तेज व वल से समृद्ध होते हैं। अन्य प्रभाव से वे दोनों प्रकार के पदार्थ सर्गयज्ञ को सम्यक् प्राप्त होकर मिश्रणामिश्रण की विभिन्न क्रियाओं को व्याप्त करके उन्हें नियन्त्रित करने में भी सहायक होते हैं। वे दोनों प्रकार के पदार्थ विभिन्न रश्मि वा परमाणुओं के वाहक अग्नि तत्त्व से अवश्य मेल युक्त होते हैं।

(२०) द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषु यच्छताम्॥२०॥

इसका देवता, छन्द व प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {सिध्रम् = साधनम् (नि.६.३८)} वे दोनों उपर्युक्त पदार्थ आकाश से सम्बद्ध अग्नि तत्त्वरूपी साधन के द्वारा विभिन्न प्राणादि रश्मियों के मध्य सृजन क्रियाओं को निष्पादित करते हैं।

(२१) आ वांमुपस्थंमद्रुहा देवाः सींदन्तु यज्ञियांः। इहाद्य सोमंपीतये।।२१।।

देवता व छन्दादि पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से इन उपर्युक्त दोनों प्रकार के पदार्थों के निकटस्थ संयोजक गुणों से सम्पन्न विभिन्न प्राण रश्मियां सोम रश्मियों के साथ संगत होने किंवा उन्हें अपने साथ अवशोषित करने हेतु स्थित होती हैं, किंवा आती हैं।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि इन उपर्युक्त ऋचाओं में से चौथी ऋचा के द्वितीय पाद 'सुतः सोम ऋतावृधा' में 'वृध्' धातु की विद्यमानता इस बात की सूचक है कि इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के समय उदान प्राण का उत्कर्ष होता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि इनमें से कुछ ऋचाओं में 'प्र' तथा 'आ' उपसर्ग भी विद्यमान हैं, जबकि इसी खण्ड में इसका निषेध किया है। हमारे मत में इसका तात्पर्य यह है कि 'प्र' वा 'आ' उपसर्गों की विद्यमानता से नाग प्राण का ही उत्कर्ष मानना चाहिए, न कि उदान का। इस कारण इन ऋचाओं की उत्पत्ति के समय नाग तथा उदान दोनों का ही उत्कर्ष होता है, ऐसा हमारा मत है। इन छन्द रश्मियों को महर्षि ने प्रउग शस्त्र कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां विशेष प्रकार के बलों को उत्पन्न करती हैं। प्रउग बलों के विषय खण्ड १३.१,२,३ पठनीय है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में १८ विभिन्न गायत्री तथा एक-एक अनुष्टुप्, उष्णिक् एवं बृहती रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय इन्द्र-विद्युत्, प्राण रश्मियां, विभिन्न वाग् रश्मियों के विशेष सक्रिय होने से विभिन्न कण, एटम्स, अणु के साथ-२ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा बढ़ने लगती है। विभिन्न कणों व विभिन्न प्रकार की रश्मियों का परस्पर भारी संघर्षण होने लगता है। ऊष्मा की मात्रा में वृद्धि होती है। आकाश तत्त्व के द्वारा विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों के सम्पीडित होने पर विभिन्न ऊर्जा वाले क्वाण्टाज् उत्पन्न होने लगते हैं। विद्युत् चुम्बकीय एवं गुरुत्वादि बलों की तीव्रता बढ़ने लगती है। प्रत्येक कण असंख्य प्राण व वाग् आदि रश्मियों के सम्पीडन से उत्पन्न होता है। प्रबल विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एवं विभिन्न विद्युत् कणों की तीव्र एवं ऊष्मा-प्रकाश युक्त धाराएं अपने तीव्र प्रहार से भारी प्रक्षेपक बल सम्पन्न डार्क एनर्जी के बाधक-प्रहार को नष्ट कर देती हैं। ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ उषा काल की दीप्ति के समान शोभन वर्ण वाला हो जाता है। सब ओर विद्युत् गर्जना भी उत्पन्न होने लगती है। विभिन्न कण व तरंगों में भारी हलचलभरी तीव्र क्रियाएं होती हैं। **जब दो कण वा तरंग एक-दूसरे के साथ संयुक्त होने वाले होते हैं, उस समय सर्वप्रथम उन दोनों ओर के पदार्थों के परितः विद्यमान आकाश तत्त्वों का संगम होता है। उसके उपरान्त वे दोनों पदार्थ परस्पर निकट आते हैं परन्तु वे कभी परस्पर एक-दूसरे से पूर्ण स्पर्श नहीं करते, बल्कि आकाश तत्त्व में विद्यमान रश्मियों का ही परस्पर मिलन होने से उनके बलों के द्वारा वे संयुक्त प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं।** यह ब्रह्माण्ड की प्रत्येक संयोग प्रक्रिया का शाश्वत नियम है। इस सृष्टि के प्रत्येक कण वा तरंग की प्रत्येक क्रिया के लिए विभिन्न छन्द, मरुत्, तथा प्राण रश्मियां ही उत्तरदायिनी होती हैं। निष्क्रिय व निस्तेज कण भी इनके सानिध्य को पाकर सतेज व सक्रिय हो उठते हैं। ये प्राणादि रश्मियां विभिन्न कणों वा तरंगों को सक्रिय व सबल करने के साथ-२ उनके नियन्त्रण के लिए भी उत्तरदायिनी होती हैं। वर्तमान विज्ञान प्रत्येक क्रिया के लिए ऊर्जा की विद्यमानता को अनिवार्य मानता है, परन्तु ऊर्जा की उत्पत्ति के विषय में वर्तमान विज्ञान अंधेरे में है। वस्तुतः सम्पूर्ण ऊर्जा इन प्राणादि रश्मियों का कार्यरूप है। इनको वर्तमान विज्ञान व तकनीक से जानना असम्भव सा है।।

४. 'विश्वानरस्य वस्पतिम्', 'इन्द्र इत्सोमपा एकः' इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ; वृधन्वच्चान्तर्वच्च द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।
इन्द्र नेदीय एदिहीत्यच्युतः प्रगाथ, उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति ब्राह्मणस्पत्य ऊर्ध्ववान्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

'अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यपः' इति धाय्या अच्युताः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर प्रियमेध ऋषि नामक प्राण विशेष, जिसके विषय में पूर्व में अनेकत्र लिखा जा चुका है, से इन्द्रदेवताक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः। एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम्।।४।। (ऋ.८.६८.४)

इसका छन्द विराडनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी एवं समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न उत्पन्न परमाणुओं एवं शोभन दीप्तियुक्त रश्मियों का रक्षक व पालक होता है। वही सभी मरुद् रश्मियों तथा उनके अदम्य बलों का भी रक्षक होता है। वह इन्द्र तत्त्व इसके लिए इस छन्द रश्मि के द्वारा आकर्षित किया जाता है।

(२) अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः। नाना हवन्त ऊतये।।५।। (ऋ.८.६८.५)

इसका देवता पूर्ववत् एवं छन्द निचृद् गायत्री होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण व तेजस्वी होता है। अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां सदा वर्धमान इन्द्र तत्त्व को विभिन्न संघात, संघर्षण क्रियाओं में सम्यग् रूप से संयोग के सम्पन्न करने हेतु तथा उचित मार्ग, रक्षण व गति की प्राप्ति हेतु अपनी ओर आकर्षित करती रहती किंवा वे स्वयं इन्द्र तत्त्व के द्वारा आकर्षित की जाती रहती हैं।

(३) परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम्। ईशानं चिद्वसूनाम्।।६।। (ऋ.८.६८.६)

इसका देवता तथा छन्द पूर्ववत् होने से प्रभाव भी पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {ऋचीषमः = ऋचासमः (नि. ६.२३)} वह इन्द्र तत्त्व अपरिमित वा श्रेष्ठ व तीक्ष्ण सामर्थ्ययुक्त, सब परमाणु आदि पदार्थों का नियन्त्रक, अनेक प्रकार के पदार्थों से संयुक्त वा सम्पन्न तथा छन्द रश्मियों के रूप में ही विद्यमान होता है।।

इन तीन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् इनका अनुगमन करने वाली तीन अन्य छन्द रश्मियां मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरस ऋषि अर्थात् अपने मृदु आकर्षण बल से सबका संगम करने वाले सूत्रात्मा वायु से इन्द्रदेवताक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः। अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च।।४।। (ऋ.८.२.४)

इसका छन्द आर्षी निचृद् गायत्री होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजयुक्त होता है। अन्य प्रभाव से सभी प्राण व मरुद् रश्मियों का धारक अकेला वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न विनाशी देव परमाणुओं के मध्य निरन्तर विचरता हुआ उन विभिन्न परमाणुओं की रक्षा करता है।

(२) न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम्। अपस्पृण्वते सुहार्दम्।।५।। (ऋ.८.२.५)

इसका देवता पूर्ववत् एवं छन्द आर्षी गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु। अन्य प्रभाव से {हृदयम् = हृदयं वै स्तोमभागाः (श.८.६.२.१५), असौ वाऽआदित्यो हृदयम् (श.६.१.२.४०)} वह बलवान् शीघ्रकारी सबका तर्पा एवं क्लिष्ट आकर्षक बलयुक्त इन्द्र तत्त्व अति व्याप्त सोम पदार्थ की रश्मियों को सदैव सन्तृप्त करता रहता है। इसके साथ ही वह अग्नि के परमाणुओं को भी तृप्त करता है।

(३) गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते। अभित्सरन्ति धेनुभिः।।६।। (ऋ.८.२.६)

इसका देवता, छन्द एवं प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {व्राः = या वृणोति सा (म.द.ऋ.भा.१.१२४.

८), ये व्रजन्ति ते (म.द.ऋ.भा.१.१२६.५)। धेनुः = वाग्वै धेनुः (तां.१८.६.२१)} कुछ पदार्थ विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा उस इन्द्र तत्त्व को अन्य सद्योगामी रश्मियों के समान तीव्रगामी तथा शोधन गुणसम्पन्न बनाते हैं, तो कुछ अन्य पदार्थ अपनी वाग् रश्मियों के द्वारा उस इन्द्र तत्त्व की ओर गमन करके उससे बल व तेज प्राप्त करते हैं।

महर्षि ने इन ऋचाओं में से प्रथम तृच को 'प्रतिपत्' तथा द्वितीय तृच को 'अनुचर' कहा है अर्थात् प्रथम तृच अग्रगामी तथा द्वितीय तृच अनुसरण करने वाली होती है। इन छन्द रश्मियों को मरुत्वतीय कहने का प्रयोजन यह है कि इन छन्द रश्मियों का व्यवहार मरुद् रश्मियों के समान होता है अथवा ये रश्मियां ब्रह्माण्डस्थ विभिन्न मरुद् रश्मियों को विशेष प्रभावित करके इन्द्र तत्त्व को समृद्ध करती हैं। इन ऋचाओं में 'वृधु' धातु तथा 'अन्तः' पद के विद्यमान होने से यह स्पष्ट होता है कि इस समय द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण का उत्कर्ष होता वा रहता है।।

तदनन्तर मेध्यः काण्व ऋषि अर्थात् तीव्रता से युक्त सूत्रात्मा वायु से इन्द्रदेवताक निम्न प्रगाथ की उत्पत्ति की चर्चा करते हैं-

(१) इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।। (ऋ.८.५३.५)

इसका छन्द विराड् बृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक होता हुआ पदार्थों को संघनित करने का कार्य करता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मापी हुई अर्थात् संकुचित होती हुई सूत्रात्मा वायु रश्मियों से रक्षित वा गतिशील होता हुआ विभिन्न परमाणु वा रश्मियों के निकट आकर अपनी विभिन्न अनुकूल व नियन्त्रक शक्तियों के द्वारा विभिन्न संयोग-संघातों को सम्पादित करता है।

(२) आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।६।। (ऋ.८.५३.६)

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व का कार्य तीव्रता से विस्तृत होने लगता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक स्तर पर प्रकाशादि रश्मियों तथा प्राणादि रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के मध्य संघातों को तीव्रता प्रदान करता है। विभिन्न छन्द रश्मियां उस इन्द्र तत्त्व के साथ अनुकूलतया संगत होकर सर्ग यज्ञ को पवित्र करती हैं अर्थात् विभिन्न परमाणुओं को शुद्ध रूप प्रदान करके उन्हें संगत करती हैं। इस प्रगाथ के पश्चात् एक अन्य निम्न प्रगाथ की चर्चा करते हैं-

यह प्रगाथ घोरपुत्रः काण्व ऋषि अर्थात् अति तीव्र क्रियाओं में कार्यरत सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न बृहस्पति-देवताक एवं निचृदुपरिष्टाद् बृहती छन्दस्क होता है, जिसका प्रभाव व स्वरूप इस प्रकार है-

(१) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा।।१।। (ऋ.१.४०.१)

इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को बाहरी परिधि क्षेत्र तीव्रता से सम्पीडित करता है। अन्य प्रभाव से {सचा = (सचति गतिकर्मा - निघं.२.१४, षच समवाये, सेचने सेवने च (भ्वा.)। ईमहे = याच्ञाकर्मा (निघं.३.१९), (ईङ् गतौ - दिवा.)} वह सूत्रात्मा वायु विभिन्न पदार्थों को ऊपर से आच्छादित करके उन्हें प्रकाशित व गतिशील बनाता हुआ अपनी ओर खींचता हुआ उनमें व्याप्त हो जाता है। इस समय इन्द्र तत्त्व अच्छे आवागमनादि व्यवहारों से युक्त मरुद् रश्मियों के द्वारा उन परमाणु आदि पदार्थों को अति शीघ्रता से सिंचित करता एवं गतिशील बनाता है।

(२) त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते।

सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके।।२।। (ऋ.१.४०.२)

इसका दैवत छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {मर्त्यः = अनात्मा हि मर्त्यः (श.२.२.२.८)} सूत्रात्मा वायु के सापेक्ष गतिहीन मनस्तत्त्व, जो अनेक बलों का पालक व रक्षक है, उस सूत्रात्मा वायु को निरन्तर निकटता से प्रेरित करता है। विभिन्न मरुद् रश्मियां सुन्दर वीर्यवती व व्यापक वेगवती होकर सूत्रात्मा वायु को सतत तृप्त करते हुए धारण किए रहती हैं।

यहाँ महर्षि ने इन दोनों प्रगाथों में से प्रथम छन्द रश्मिद्वय रूपी प्रगाथ को अच्युत कहा है। यह प्रगाथ इस अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के अतिरिक्त अन्य अहन् अर्थात् प्राण रश्मियों के उत्कर्ष काल में भी उत्पन्न होता है। यहाँ द्वितीय प्रगाथ की प्रथम ऋचा में 'उत्तिष्ठ' पद विद्यमान है, जो 'उत्' उपसर्गयुक्त होने के कारण ऊर्ध्ववाची पद का सूचक है। इसके साथ ही 'अच्युत' शब्द स्थिरता का सूचक होने से 'स्था' धातु से निष्पन्न 'स्थिर' के समान भाव वाला है। इन दोनों ही कारणों से इन प्रगाथों के समय उदान प्राण के उत्कर्ष का स्पष्ट संकेत मिलता है।।

तदनन्तर इन तीन धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियों की चर्चा करते हैं। ये तीनों छन्द रश्मियों को धाय्या रूप में प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में खण्ड ४.२६ में वर्णित किया है, इस कारण इन ऋचाओं के विषय में वहीं देखें। यहाँ तो केवल यह वक्तव्य है कि ये धाय्या रश्मियां अच्युत होती हैं, क्योंकि ये दोनों ही प्राण रश्मियों के उत्कर्ष काल में यथावत् रूप से धाय्या के रूप में अन्य छन्द आदि रश्मियों को धारण किए रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार-- पूर्वोक्त **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही व्याख्यान भाग में वर्णित विभिन्न पांच गायत्री के अतिरिक्त विभिन्न अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप्, पंक्ति व जगती रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् के विभिन्न रूपों की समृद्धि होती है। विद्युत् विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों से उत्पन्न व रक्षित होती है। इस समय भी नाना प्रकार कणों व तरंगों की उत्पत्ति होती है। विद्युत् विभिन्न रश्मियों के सहयोग से अन्य रश्मि आदि पदार्थ को सम्पीडित करके पदार्थ को घनीभूत बनाती है। इससे जहाँ नवीन-२ कण व तरंगों के क्वाण्टाज् उत्पन्न होते हैं, वहीं वे कण आदि संघनित होकर परस्पर मिलकर छोटे-२ पदार्थ समूह (मेघ) बनाने लगते हैं। विभिन्न कणों में भारी विक्षोभ होकर भारी संघर्षण, संयोजन होने लगता है। इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु एवं बृहती छन्द रश्मियों के साथ मिलकर ही आकाश तत्त्व के साथ रश्मियों को संघनित करके नाना कणों को उत्पन्न करता है। विभिन्न क्वाण्टाज् की उत्पत्ति के साथ-२ कॉस्मिक मेघरूप पदार्थों की उत्पत्ति भी इसी भाँति होती है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग पठनीय है।।

५. 'बृहदिन्द्राय गायतेति' मरुत्वतीयः प्रगाथो, येन ज्योतिरजनयन्नृतावृध इति वृधन्वान् द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।। 'इन्द्र सोमं सोमपते पिबेममिति' सूक्तं; 'सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्वेति' वृषण्वद् द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त नृमेधपुरुमेधौ ऋषि अर्थात् विभिन्न मरुद् रश्मियों को व्यापक स्तर पर संगत करने एवं गतिशील बनाने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से उत्पन्न इन्द्रदेवताक निम्नलिखित प्रगाथ की चर्चा करते हैं-

(१) बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि।।१।। (ऋ.८.८९.१)

इसका छन्द बृहती होने से इनके देवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक स्तर पर पदार्थ को संघनित करता है। इनके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां विशाल असुर मेघरूप पदार्थ को नष्ट

करने वाले इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करती हैं। इसके कारण ब्रह्माण्ड में एक ज्योतिर्मयी आभा उत्पन्न होती है। वे इन्द्र व मरुत् दोनों ही अपने कारणरूप पदार्थों से ही समृद्ध होते हैं।

(२) अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण।।२।। (ऋ.८.८९.२)

इसका छन्द पादनिचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णता से विस्तार पाता हुआ विभिन्न संघातों की प्रक्रिया में वृद्धि करता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनिष्ट व तीक्ष्ण बाधक पदार्थों को कंपाता हुआ नष्ट करता वा दूर फैंकता है। वह इन्द्र तत्त्व व्यापक किरणों से युक्त होकर विभिन्न मरुत् समूहों एवं प्राणादि तत्त्वों से व्याप्त होता है।

इस छन्द रश्मिद्वय रूपी प्रगाथ को भी मरुत्वतीय कहा गया है, जिसका तात्पर्य पूर्ववत् समझें। इनमें से प्रथम ऋचा में 'येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधः'; पाद में 'वृधु' धातु विद्यमान है, इस कारण इस प्रगाथ की उत्पत्ति के समय उदान प्राण की सक्रियता वा उत्कर्ष की पुष्टि होती है।।

तदन्तर विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ.३.३२ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंदिनं सवनं चारु यत्ते।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी व तीक्ष्ण होता है। अन्य प्रभाव से {शिप्रे = सुखप्रापिके द्यावापृथिव्यौ (म.द.ऋ.भा.१.१०१.१०)} वह सोम रश्मियों का रक्षक इन्द्र तत्त्व उन रश्मियों को अवशोषित करके माध्यन्दिन सवन सृष्टि प्रक्रिया के त्रैष्टुभ चरण को सुन्दर रीति से नियन्त्रित करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न द्यु व पृथिवी लोकों वा कणों को शुद्ध करता हुआ अपनी हरणशील रश्मियों के द्वारा परिपूर्ण व तृप्त करता है।

(२) गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व।।२।।

इसका छन्द पूर्ववत् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मियों से व्याप्त, मन्थन क्रिया से युक्त एवं शुद्धस्वरूप सोम रश्मियों का पान करके उत्तेजित होता है। वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान एवं मरुद् रश्मियों से निर्मित होता है तथा त्रिष्टुप् छन्दरूप तीक्ष्ण रुद्र रश्मियों के साथ संगत होकर बलवान् हो उठता है।

(३) ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र।।३।।

इसका छन्द दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपने शोषक एवं व्यापक बलों तथा दमनात्मक बलों से मरुद् रश्मियों के कारण युक्त होता है। वह इन्द्र तत्त्व वज्ररूप तीक्ष्ण किरणों वाला होकर त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु समूहों को संगत व पुष्ट करता है।

(४) त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म।।४।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने हरणशील बलों को विस्तृत करता है। अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां इन्द्र तत्त्व के बल को {विविप्रे = क्षिपन्ति (म.द.भा.)।

आसन् = आसनि (आस्ये) (इकारस्य लोपश्छान्दसः)} विभिन्न पदार्थों के अग्रिम भाग में प्रक्षिप्त करती हैं। इससे ही प्रेरित वह दुर्वलतारहित इन्द्र तत्त्व वृत्ररूपी विशाल आच्छादक मेघ के दुर्वल क्षेत्रों पर प्रहार करता है, जिससे वह आसुर मेघ विखर जाता है।

(५) मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि।।५।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {सरण्युभिः = आत्मनः सरणं गमनमिच्छुभिः (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु के समान विभिन्न संगम व प्रेरण कर्मों को सम्पादित करने में सहयोगी होता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व निरन्तर वल की प्राप्ति हेतु सोम तत्त्व को अवशोषित करता रहता है। वह विभिन्न संगत कर्मों तथा स्वयं की गति और व्याप्ति के लिए {अर्णवः = प्राणो वा अर्णवः (श.७.५.२.५१)} अन्तरिक्षस्थ विभिन्न प्राण रश्मियों को प्राप्त करता रहता है।

(६) त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम्।।६।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् अधिक तेजयुक्त। अन्य प्रभाव से {अत्यः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} वह इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में सोये हुए विशाल आसुर मेघ को अपनी तीव्र गतिशील वलवती रश्मियों के द्वारा नष्ट वा नियन्त्रित करता है। वह विभिन्न संघातों में उस असुरनाश के द्वारा उस असुर मेघ से ढके अप्रकाशित पदार्थों को भी प्रकाशित व सक्रिय करता है।

(७) यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {ऋष्वः = महन्नाम (निघं.३.३)} वह श्रेष्ठ, व्यापक, सतत विस्तृत होता हुआ, जीर्ण न होने वाला एवं मिश्रण-अमिश्रण की क्रियाओं को सम्पन्न करने वाला इन्द्र तत्त्व विभिन्न सूक्ष्म वाग् रश्मिसमूहों के साथ संगत होता है। वह ऐसा महान् इन्द्र तत्त्व प्रत्येक संयोगादि में कार्यरत वलों में व्याप्त होता तथा विभिन्न प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों व कणों के वाहर भी व्याप्त होता है।

(८) इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः।।८।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {मिनाति वधकर्मा (निघं.२.१९), गतिकर्मा (निघं.२.१४)। व्रतम् = वीर्यं वै व्रतम् (श.१३.४.१.१५)} उस इन्द्र तत्त्व का तेज, पराक्रम अच्छी प्रकार किए गये विभिन्न कर्म दिव्य पदार्थों में नष्ट नहीं होते हैं अर्थात् वने रहते हैं। वही इन्द्र तत्त्व पार्थिव, द्युलोक, विभिन्न तेजस्वी रश्मियों, ऊष्णता एवं नाना कर्मों को धारण व उत्पन्न करता है।

(९) अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम्।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त।।९।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अत्यन्त शक्तिशाली होकर नवीन उत्पन्न विभिन्न पदार्थ विभिन्न प्रकाशित लोक प्राण तत्त्व, मास रश्मियां एवं शरद् आदि ऋतु रश्मियों के द्वारा वाधित नहीं होता है। इससे स्पष्ट है कि इन्द्र तत्त्व का वल अत्यन्त व्यापक व तीव्र होता है।

(१०) त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन्।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व इस व्योम में जब भी उत्पन्न होता है, उस समय अति शीघ्रता से ही उत्पन्न होता है। वह इन्द्र अतिसक्रिय होने हेतु सोम रश्मियों को अवशोषित करके प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों प्रकार से पदार्थों में प्रविष्ट होता है। वह इन्द्र तत्त्व अपने से पूर्वोत्पन्न विभिन्न क्रियाशील पदार्थों को धारण करने में समर्थ होता है।

(११) अहन्नहिं परिशयानमर्णं ओजायमानं तुविजात तव्यान्।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ।।११।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण व तेजस्वी होता है। अन्य प्रभाव से {स्फिग्या = मध्यस्थावयवरूपया (म.द.भा.)। अर्णः = ऋच्छति गच्छतीति (उ.को.४.१९८)} सबको प्राप्त करने वाला एवं सतत गन्ता अति बलवान् इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में फैले हुए विशाल आसुर मेघ को नष्ट वा छिन्न भिन्न करके प्रकाशित पदार्थों को बल प्रदान कराता हुआ अत्यन्त व्याप्त होता है। जैसे आसुर मेघ पृथिव्यादि लोकों एवं व्यापक सूर्य्यादि को आच्छादित करने में समर्थ होता है, वैसे इन्द्र तत्त्व भी उस आसुर मेघ को चारों ओर से ढक कर उसे अपनी तीव्र किरणों से छिन्न-भिन्न करता है।

(१२) यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ।।१२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह सतत वर्धमान सबमें आकर्षणादि बलों का उत्पादक, सोम तत्त्व से बल को प्राप्त करने वाला तथा बाधक विभिन्न असुरादि रश्मियों का नाशक इन्द्र तत्त्व सर्गप्रक्रिया को सतत बढ़ाता है। वह इन्द्र तत्त्व संयोगादि कर्मों का प्रणेता बनकर अपनी वज्ररूप रश्मियों के द्वारा विशाल आसुर मेघों को नष्ट करके विभिन्न सृजन कर्मों को शृंखलाबद्ध बढ़ाता रहता है।

(१३) यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम्।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ।।१३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से इस ब्रह्माण्ड में उत्पन्न पुरातन, मध्यम एवं नवीन विविध रश्मिसमूह से वह इन्द्र तत्त्व उत्पन्न होकर पूर्व व पर उत्पन्न सब पदार्थों को अपने में व्याप्त कर लेता है, साथ ही वह उनको रक्षण व गत्यादि भी प्रदान करता है।

(१४) विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ।।१४।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {पीपरत् = पारयेत् (म.द.भा.)} जिन वाग् रश्मियों से इन्द्र तत्त्व उत्पन्न एवं व्याप्त होता है, वह उन्हीं छन्द रश्मियों को तीक्ष्णता व कान्ति प्रदान भी करता है। वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान रश्मियों के द्वारा उन छन्दादि रश्मियों तथा विभिन्न परमाणुओं को आसुर रश्मियों से सुरक्षित रखकर सृजन कर्मों में पार भी पहुँचाता है। उस इन्द्र तत्त्व को वे सभी तत्त्व निरन्तर आकर्षित करते हैं।

(१५) आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ।।१५।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {स्वाहा = अनिरुक्तो वै स्वाहाकारः (श. २.२.१.३)}। वह इन्द्र तत्त्व भरे हुए कलश के समान अव्यक्त भाव से रेतरेचन की भाँति ब्रह्माण्डस्थ मेघरूप पदार्थों में अपने वल का सेचन करता रहता है। वह विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करने के लिए सोम तत्त्व के भण्डार को सव ओर से घेर कर उसके दक्षिणावर्त घूमता है। ऐसा करते हुए ही वह सोम रश्मियों का पान करके प्रवलतर होने लगता है।

(१६) न त्वां गभीरः पुंरुहूत सिन्धुर्नाद्रंयः परि षन्तों वरन्त।
इत्था सखिंभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळहं चिदरुंजो गव्यंमूर्वम्।।१६।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने के कारण दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक दीप्तियुक्त। अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण हुआ वह इन्द्र तत्त्व ब्रह्माण्ड में विद्यमान विशाल प्रवहमान जल तत्त्व की धाराएं एवं मेघरूप पदार्थ आदि के द्वारा भी रोका नहीं जा सकता अर्थात् वह उन पदार्थों के अन्दर भी व्याप्त होकर व्यापक स्तर पर विभिन्न पदार्थों के द्वारा आकर्षित होता है। वह इन्द्र तत्त्व अपने भिन्न रूप प्राणादि एवं मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रेरित व दृढ़ होकर विभिन्न विरुद्ध रश्मिसमूहों को भंग करके उन्हें गतिशील वनाने में समर्थ होता है।

(१७) शुनं हुंवेम मघवांनमिन्द्रंमस्मिन्भरे नृतंमं वाजंसातौ।
शृण्वन्तंमुग्रमूतयें समत्सु घ्नन्तं वृत्राणिं संजितं धनांनाम्।।१७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न क्रियाओं में कार्यरत परमाणु आदि पदार्थों में विभिन्न छन्दादि रश्मियों किंवा वलों के सहज विभाजन में वह इन्द्र तत्त्व ही सवको सहयोग प्रदान करता है। वह इन्द्र तत्त्व पदार्थों को वहन करने वालों में श्रेष्ठ, तीव्र गतिशील, असुरादि रश्मियों का हन्ता, विभिन्न पदार्थों का संचय कर्त्ता तथा विभिन्न संघातों में सवका रक्षक होता है। ऐसा वह इन्द्र तत्त्व निरन्तर दिव्य वायु को अपनी ओर आकृष्ट करके वल प्राप्त करता रहता है।

इस सूक्त की द्वितीय ऋचा के चतुर्थ पाद 'सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व' में 'वृषु' धातु के वर्तमान होने से यह स्पष्ट है कि इस समय भी उदान प्राण के उत्कर्ष का काल होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त उदान प्राण के उत्कर्ष काल में ही त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता के साथ विभिन्न पंक्ति, वृहती रश्मियां (कुल १६) उत्पन्न होती हैं। इस समय इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण होने से विद्युत् चुम्वकीय वल और भी तीव्र हो उठते हैं। डार्क एनर्जी का प्रभाव और भी नियन्त्रित वा नष्ट होने से विभिन्न पदार्थों व कणों के संयोग की प्रक्रिया और भी तीव्र हो उठती है। कॉस्मिक पदार्थ में भारी हलचल, तोड़-फोड़ एवं संयोग-वियोग एवं पदार्थ के शोधन की क्रिया भी तीव्रतर होती है। विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियों के अवशोषण से विद्युत् की तीव्रता व तीक्ष्णता वढ़ती जाती है। ऊर्जा की भी वृद्धि इसी प्रकार होती चली जाती है। इस समय अत्युच्च आवृत्ति की विद्युत् चुम्वकीय तरंगें अधिक मात्रा में उत्पन्न होती हैं। वे ऐसी विद्युत् चुम्वकीय तरंगें डार्क एनर्जी एवं डार्क पदार्थ का भेदन करती हैं, जिससे उनके तीव्र प्रक्षेपक वलों के प्रभाव से पदार्थ के संयुक्त होने की मन्द पड़ी प्रक्रिया तीव्रतर होने लगती है। ये तरंगें डार्क पदार्थ के कणों को चारों ओर से घेर कर उसे नियन्त्रित करती हैं। सभी प्रकार के कणों के चारों ओर विद्युत् की परिधि रूप में विद्यमानता अवश्य होती है, इसी से उन कणों में नाना प्रकार के वलों व दीप्ति की विद्यमानता होती है। विभिन्न छन्दादि रश्मियां विद्युत् को उत्पन्न व व्यापक करने में सहयोगी होती हैं। त्रिष्टुप् रश्मियों के योग से सभी तरंगें तीक्ष्णतर होती हैं। विद्युत् जिन रश्मियों से उत्पन्न होती है, वह उत्पन्न होकर उन सभी रश्मियों को भी अपने साथ धारण कर लेती है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग पठनीय है।।

६. 'त्वामिद्धि हवामहे' 'त्वं ह्येहि चेरवे' इति बृहत्पृष्ठं भवति; बार्हतेऽहनि द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

'यद्वावानेति' धाय्याऽच्युता।।
उभयं शृणवच्च न इति सामप्रगाथो, यच्चेदमद्य यदु च ह्य आसीदिति बार्हतेऽहनि द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।
'त्य मू षु वाजिनं देवजूतम्'-इति तार्क्ष्योऽच्युतः।।३।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त-

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः।।१।।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे।।२।। (ऋ.६.४६.१-२)

प्रगाथ की चर्चा करते हैं। इसमें से प्रथम ऋचा के विषय में ४.१३.१ में पढ़ें। यहाँ उस प्रगाथ की द्वितीय ऋचा पर निम्नानुसार विचार करते हैं-
"स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त........."। इसका छन्द स्वराड् बृहती तथा देवता पूर्ववत् इन्द्र है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से देदीप्यमान इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को परिधिरूप में घेर कर उन्हें सम्पीडित करता है। अन्य प्रभाव से विभिन्न मेघरूप पदार्थों में विद्यमान वह व्यापक महान् इन्द्र तत्त्व विचित्र रूप से प्रकाशित होता हुआ दृढ़ता से वज्ररूप किरणों को धारण करते हुए संयोज्य कणों, रश्मियों वा पदार्थ समूहों के लिए विभिन्न रमणीय, वाहक, बलवती एवं व्यापक रश्मियों को एकत्र करता है, जिससे वे पदार्थ अपने-२ संयोग-कर्मों को अधिक स्थिरता वा अक्षीणता से सम्पादित करते हैं।

इस प्रगाथ के अनन्तर द्वितीय प्रगाथ की उत्पत्ति भर्गः प्रगाथ ऋषि अर्थात् {प्रगाथः = प्राणापानौ वै बार्हतः प्रगाथः (कौ.ब्रा.१५.४)} तेजस्वी प्राणापान से होती है। इसका देवता इन्द्र तथा प्रभाव निम्नानुसार है-

(१) त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये। उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये।।७।। (ऋ.८.६१.७)

इसका छन्द पादनिचृद् बृहती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् किन्तु दीप्ति कम एवं शक्ति अपेक्षाकृत तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विभिन्न प्राण रश्मियों, वाग् रश्मियों, तीक्ष्ण बलशाली किरणों आदि से संयुक्त करने तथा संयोग आदि क्रियाओं के लिए इन पदार्थों में से समुचित चयन के लिए नाना प्रकार से पुष्ट करता है। यहाँ 'चेरवे' पद 'चेरुः' की चतुर्थी एकवचन का रूप है। 'चेरुः' पद 'चि चयने' धातु से 'भृमृशीङ्........' (उ.को.१.७) से 'उ' प्रत्यय होकर बना है, ऐसा हमारा मत है।

(२) त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे।।८।। (ऋ.८.६१.८)

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से फैलता है। अन्य प्रभाव से {मंहते दानकर्मा (निघं.३.२०), महि वृद्धौ (भ्वा.)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ विशेष प्रकाशित तथा असुरादि पदार्थ के मेघों को नष्ट करने वाला इन्द्र तत्त्व अनेक छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर सैकड़ों व हजारों परमाणु समूहों का व्यापक रूप से आदान प्रदान करता है।

उपर्युक्त दोनों प्रगाथ रश्मिसमूहों को बृहत्पृष्ठ कहा गया है। हम ४.१३.१ में बृहत् साम किंवा बृहत्पृष्ठ साम के विषय में लिख चुके हैं। ये दोनों रश्मिसमूह अर्थात् चार छन्द रश्मियां ही लगभग समान प्रभाव वाली होने से बृहत्साम कहाती हैं। आचार्य सायण ने अपने ऋ.भाष्य में ऐतरेय आरण्यक ५.५.२ को उद्धृत करते हुए लिखा है- "त्वामिद्धि हवामहे त्वंह्येहि चेरव इति बृहतः स्तोत्रियानुरूपौ

प्रगाथौ''।

उधर एक तत्त्ववेत्ता ऋषि का कथन है- ''आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ'' (कौ.ब्रा.३०.८)

इन वचनों का तात्पर्य यह है कि ये चारों छन्द रश्मियां विभिन्न पदार्थों के मध्य सतत प्रवाहित होती रहती हैं तथा द्वितीय प्रगाथ प्रथम प्रगाथ के अनुरूप सदैव उसका ही अनुगमन करता है। इनके वार्हत सामरूप होने से यह संकेत मिलता है कि इस समय भी उदान प्राण का उत्कर्ष होता है।।

तदुपरान्त एक ऋचा

यद्वावान॑ पुरुतमं॑ पुराषाळा वृ॑त्रहेन्द्रो नामा॑न्यप्राः।
अचे॑ति प्रासहस्पति॑स्तुवि॑ष्मान्यदी॑मुश्मसि कर्त॑वे करत्तत्।।६।। (ऋ.१०.७४.६)

की उत्पत्ति की चर्चा है। इस ऋचा के विषय में ३.३२.२ एवं ४.१६.४ देखें। इस छन्द रश्मि को अच्युता धाय्या कहा है, क्योंकि यह ऋचा नाग प्राण के उत्कर्ष के समय भी इसी रूप में उत्पन्न होती है।।

तदुपरान्त पूर्वोक्त ऋ.८.६१ सूक्त की प्रथम दो ऋचाओं के विषय में निम्नानुसार चर्चा करते हैं-

(१) उभयं॑ शृणव॑च्च न इन्द्रो॑ अर्वागिदं वचः॑।
सत्राच्या॑ मघवा सोम॑पीतये धिया शवि॑ष्ठ आ ग॑मत्।।१।। (ऋ.८.६१.१)

इसका छन्द निचृद् वृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {सत्राच्या = सहांचंत्येति सायणस्य वेदभाष्ये} वह इन्द्र तत्त्व सबसे बलवान् होकर साथ-२ व्याप्त कर्मों के द्वारा विभिन्न सोम वा मरुद् रश्मियों को अवशोषित करने हेतु सब ओर व्याप्त होता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व परस्पर सम्मुख आते हुए पदार्थों को अपनी तेजस्वी रश्मियों से युक्त करता है। यहाँ 'उभयम्' का आशय है कि भूत व वर्तमान दोनों कालों में होने वाली क्रियाओं से है, जो इन्द्र तत्त्व के द्वारा ही गति प्राप्त करती हैं।

(२) तं हि स्वराजं॑ वृषभं तमोज॑से धिषणे॑ निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां॑ प्रथमो नि षी॑दसि सोम॑कामं हि ते मनः॑।।२।। (ऋ.८.६१.२)

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {मनः = मनः प्रगाथः (जै.उ.३.१.४.३)। निष्टतक्षतुः = नि+ततक्षतुः (पं. शिवशंकर कृत वेदभाष्य - सार्व. सभा प्रकाशन) (तक्ष त्वचने)} वह इन्द्र इस प्रगाथ से प्रकाशित, तीक्ष्ण व व्यापक होकर विभिन्न परमाणुओं को आच्छादित वा व्याप्त करके उन्हें वल प्रदान करता है। वह इन्द्र तत्त्व अपनी सूक्ष्म रश्मियों को उन परमाणु आदि के निकट वर्षाता है।।

इस प्रगाथ को ग्रन्थकार ने सामप्रगाथ कहा है, इसका आशय है कि यह प्रगाथ भी पूर्वोक्तवत् बृहत् साम का ही रूप है। यहाँ 'ह्यः' एवं 'अद्य' शब्दों से यह संकेत मिलता है कि यह प्रगाथ इस द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के साथ-२ पूर्व अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में भी विद्यमान रहता है। यह बार्हत साम का रूप होने के कारण उदान प्राणोत्कर्ष काल तथा इसकी प्रथम ऋचा में 'आङ्' उपसर्ग की विद्यमानता से नाग प्राण के उत्कर्ष काल में इसकी विद्यमानता का प्रमाण मिलता है।।

तदनन्तर तार्क्ष्य सूक्त ऋ.१०.१७८, जिसमें तीन ऋचाएं हैं, की चर्चा करते हैं। इस सम्पूर्ण सूक्त पर विस्तार से जानने हेतु ४.२०.३ अवश्यमेव पठनीय है। हम उसकी पुनरावृत्ति नहीं करेंगे। इस सूक्त को भी अच्युत इस कारण कहा गया है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति नाग प्राण के उत्कर्ष काल में भी होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही विविध अनुष्टुप्, बृहती, त्रिष्टुप् एवं पंक्ति रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय भी इन्द्र तत्त्व के समृद्ध होने से विद्युत् चुम्बकीय बल एवं ऊर्जा में वृद्धि होती तथा ब्रह्माण्ड में विद्यमान पदार्थ प्रत्येक स्तर पर संघनित होने लगता है, जिससे अनेक प्रकार के कणों के अतिरिक्त कॉस्मिक मेघों के बनने की प्रक्रिया में तीव्रता आती है। इन्द्र रूपी विद्युत् विभिन्न पदार्थों को चारों ओर से परिधिरूप में घेर कर सम्पीडित करती है। पदार्थ में संयोग आदि की प्रक्रिया भी तीव्र होती है। डार्क एनर्जी वा डार्क पदार्थ की बाधा को तीक्ष्ण विद्युत् चुम्बकीय तरंगें दूर करती हैं। विभिन्न प्रकार के एटम्स, अणु परस्पर असंख्य मात्रा में संयुक्त होकर बड़े-२ कॉस्मिक कणों का निर्माण करते हैं। फिर कॉस्मिक डस्ट के वे कण भी परस्पर समूहबद्ध होते हैं। उस समय व्याख्यान भाग में वर्णित अन्तिम तीन छन्द रश्मियों के कारण इस ब्रह्माण्ड की ऊर्जा बहुत बढ़ जाती है। वे तीन रश्मियां विभिन्न भ्रान्त व दुर्बल छन्द रश्मियों को बल प्रदान करके समुचित ऊर्जा व दिशा प्रदान करती हैं। इससे वे रश्मियां भी उचित मार्ग व सबलता को प्राप्त करके समुचित क्रियाओं में संलग्न हो जाती हैं। ये तीनों छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों के लिए वाहन का कार्य करती हैं। इन छन्द रश्मियों के कारण ही एटम्स के संयोगों से लेकर गैलेक्सियों के अन्दर विभिन्न लोकों की कक्षाओं के निर्माण तक की प्रक्रिया समुचित रीति से सम्पन्न होती है। इस विषय में खण्ड ४.२० पठनीय है।।

इति 20.3 समाप्तः

अथ २०.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'या त ऊतिरवमा या परमेति' सूक्तं 'जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराच' इति वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।
'विश्वो देवस्य नेतुस्तत्सवितुर्वरेण्यमा विश्वदेवं सत्पतिमिति' वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ, बार्हतेऽहनि द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- अब महर्षि भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से उत्पन्न प्राण नामक प्राथमिक प्राण से उत्पन्न इन्द्रदेवताक ऋ.६.२५ सूक्त की चर्चा निम्नानुसार करते हैं-

(१) या त॑ ऊतिर॑वमा या प॑रमा या म॑ध्यमेन्द्र॑ शुष्मिन्नस्ति॑।
ताभि॑रू षु वृ॑त्रहत्ये॑ऽवीर्न॑ एभिश्च वाजै॑र्महान्न॑ उग्र।।१।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक होता है। अन्य प्रभाव से वह शोषक बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व अपनी निम्न, मध्यम एवं उत्तम शक्तियों के द्वारा वृत्र नामक विशाल आसुर मेघ को नष्ट करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ एवं उनकी क्रिया व बलों की रक्षा करता है।

(२) आभिः स्पृधो॑ मिथतीररि॑षण्यन्नमित्र॑स्य व्यथया मन्युमि॑न्द्र।
आभिर्विश्वा॑ अभियुजो विषू॑चीरार्या॑य विशोऽव॑ तारीर्दासीः।।२।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेज एवं बल से सम्पन्न होता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी उपर्युक्त तीन प्रकार की शक्तियों के द्वारा विभिन्न संघर्षण क्रियाओं में बाधक व प्रतिकर्षण पदार्थों को कंपाते हुए संयोज्य पदार्थों की संयोग क्रियाओं की रक्षा करता है। वह ऐसे विभिन्न परमाणुओं की दानादि क्रियाओं की रक्षा करता है।

(३) इन्द्र॑ जामय॑ उत येऽजा॑मयोऽर्वाचीनासो॑ वनुषो॑ युयुज्रे।
त्वमे॑षां विथुरा शवां॑सि जहि वृष्ण्या॑नि कृणुही परा॑चः।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इन्द्र तत्त्व अपने आकर्षणादि बलों के द्वारा व्यापक होता चला जाता है। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व गतिशील वा गतिहीन {जमतीति गतिकर्मा (निघं.२.१४)} परमाणुओं का विभाग करते हुए उन्हें यथोचितरूपेण संयुक्त करता है। अपने तीव्र प्रतिकर्षण वा प्रक्षेपक बलों से विभिन्न पदार्थों को कंपाने वाले बाधक असुरादि पदार्थों को दूर वा नष्ट करके अन्य पदार्थों को बल प्रदान करता है।

(४) शूरो॑ वा शूर॑ वनते शरीरै॑स्तनूरुचा तरु॑षि यत्कृ॒ण्वैते॑।
तोके वा गोषु तन॑ये यदप्सु वि क्रन्द॑सी उर्वरा॑सु ब्रवै॑ते।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव द्वितीय रश्मि की अपेक्षा किंचिद् मृदु होता है। अन्य प्रभाव से {शूरः = शूरः शवतेर्गतिकर्मणः (नि.४.१३), (शूर विक्रान्तौ, शृ हिंसायाम्)। उर्वरासु = पृथिव्यादिनिमित्तेषु (म.द.भा.)} विराट् शक्ति एवं कान्ति से युक्त इन्द्र तत्त्व अपनी व्यापक तेज एवं

तीक्ष्ण गति से युक्त रश्मियों के द्वारा विभिन्न तीक्ष्ण गति वाले परमाणु आदि पदार्थों को अपने नियन्त्रण में लेता है। वह ऐसे नियन्त्रित परमाणुओं को संयोगादि क्रियाओं में पार लगाता है। वह इन्द्र तत्त्व गर्जन करते हुए पृथिव्यादि परमाणुओं के कारणरूप सूक्ष्म व व्यापक परमाणुओं, विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं प्राण रश्मियों के मध्य देदीप्यमान होता है।

(५) नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वां योधो मन्यमानो युयोध।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वां जातान्यभ्यसि तानि।।५।।

इसका छन्द पंक्ति होने से छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अत्यन्त बलशाली होकर किसी भी तीक्ष्ण शक्ति वाले पदार्थ के द्वारा नियन्त्रित नहीं होकर, स्वयं ऐसे सभी पदार्थों को सब प्रकार से नियन्त्रित करता है।

(६) स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {नृम्णम् = बलनाम (निघं.२.९), धननाम (निघं.२.१०)} वह इन्द्र तत्त्व अपनी कारणरूप छन्द रश्मियों तथा कार्यरूप पदार्थों को नियन्त्रित करने में समर्थ होता है। वह विभिन्न बलों व पदार्थों को परस्पर संयुक्त करता है। {वितन्तसैते = वियुध्येते तयोर्मध्य इति सायणस्य वेदभाष्ये} वह इन्द्र विशाल आसुर मेघ अथवा व्यापक मरुद् रश्मियों से सम्पन्न सोम पदार्थ के आश्रय स्थल में व्याप्त विभिन्न संघातों में सबको अपने बल से पराभूत वा नियन्त्रित करता है। {वेधाः = इन्द्रो वै वेधाः (ऐ.६.१०)}।।

(७) अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः।।७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सभी पदार्थों में सबसे अधिक सक्रिय, सबको कंपाने वाला, श्रेष्ठ प्रकाशयुक्त, विभिन्न पदार्थों का तारक व रक्षक अपनी रश्मियों से प्रकाशित होता है।

(८) अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये।।८।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {यजत्रः = संगमकर्ता (म.द.ऋ.भा.१.१२१.१), यजत्रमिति यज्ञियमित्येतत् (श.६.६.३.९)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों का परस्पर संगमकर्त्ता तथा उन्हें प्राण रश्मियों के साथ भी संयुक्त करता, विशाल आसुर मेघरूप पदार्थ को नष्ट, नियन्त्रित एवं व्याप्त करने, विभिन्न बलों को उत्पन्न करने में अपने अविनाशी वा अक्षय बलों से उन्हें अनुकूलता प्रदान करता है।

(९) एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम्।।९।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {वस्तोः = अहर्नाम (निघं.१.९)। समत्सु = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} वह इन्द्र तत्त्व अप्रकाशित व हिंसक तीक्ष्ण रश्मि आदि पदार्थों को विभिन्न संग्रामों में नष्ट करता है। उस इन्द्र तत्त्व से रक्षित प्रकाशित पदार्थ विभिन्न बलोत्पादक पदार्थों को प्राप्त करता है।

इन नौ छन्द रश्मियों में से तीसरी ऋचा के चतुर्थ पाद "जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः" में 'वृष्' धातु की विद्यमानता से इस समय भी उदान प्राण के उत्कर्ष की पुष्टि होती है।।

तदुपरान्त स्वस्त्यात्रेय ऋषि अर्थात् सबको अनुकूलता से मार्ग व क्रिया प्रदान करने वाला एक प्राण विशेष, जो स्वयं सूत्रात्मा वायु किंवा उसका विकाररूप होता है, से उत्पन्न विश्वेदेवादेवताक तथा स्वराडुष्णिक् छन्दस्क-

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्।
विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॑।।१।। (ऋ.५.५०.१)

की चर्चा करते हैं। इसके देवत व छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ प्रकाशित होने के साथ-२ उष्णता से युक्त होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सभी हीनवल परमाणु विभिन्न प्रकाशित पदार्थों में अग्रणी इन्द्र तत्त्व के साथ संगत होकर सम्पूर्ण पदार्थ में पुष्टतर होने के लिए तीक्ष्णता व तेज को धारण करते हैं।

इसके अतिरिक्त विश्वामित्र ऋषि अर्थात् एकाक्षरा वाग् रश्मियों से उत्पन्न सवितृदेवताक एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क निम्न दो छन्द रश्मियों की चर्चा करते हैं। इनके दैवत व छान्दस प्रभाव से प्राण वा विद्युत् तीक्ष्ण तेज व वल सम्पन्न होते हैं।

(१) तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि। धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त्।।१०।। (ऋ.३.६२.१०)

इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु प्रकाशयुक्त प्राण वा विद्युत् के शुद्ध तेज को धारण करके अपने विभिन्न कर्मों को सम्पन्न करने हेतु प्रकृष्ट प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

(२) दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्व॒यं वा॑ज॒यन्तः॒ पुर॑न्ध्या। भग॑स्य रा॒तिमी॑महे।।११।। (ऋ.३.६२.११)

इसके अन्य प्रभाव से उस पूर्वोक्त प्राण व विद्युत् के तेज से वलवान् होते हुए वे परमाणु परस्पर आकर्षण रश्मियों को तीव्रता से उत्सर्जित करते हैं। ऐसा करके वे परमाणु इस ब्रह्माण्ड में अनेक पुरों अर्थात् पदार्थ समूहों को धारण वा निर्मित करने में सक्षम होते हैं।

इन दो ऋचाओं के साथ उपुर्यक्त ऋ.५.५०.१ ऋचा मिलकर एक तृच का रूप धारण करती है। इस तृच को महर्षि ने 'प्रतिपत्' कहा है। इसका तात्पर्य है कि यह पहले उत्पन्न होती है। इसके तुरन्त पश्चात् इसका अनुसरण करती हुई निम्नलिखित तृच 'अनुचर' रूप में उत्पन्न होती है। इस तृच की उत्पत्ति श्यावाश्व आत्रेय ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न व्यापक रश्मियों से युक्त आशुगामी सूक्ष्म प्राण विशेष से होती है। इसका भी देवता सविता होता है। इसका प्रभाव व स्वरूप निम्नानुसार है-

(१) आ वि॒श्वदे॑वं॒ सत्प॑तिं सू॒क्तैर॒द्या वृ॑णीमहे। स॒त्यस॑वं सवि॒तार॑म्।।७।। (ऋ.५.८२.७)

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न सुन्दर वाग् रश्मियां सवके प्रकाशक प्राण वा विद्युत्, जो विभिन्न विद्यमान परमाणुओं के पालक व रक्षक होते हैं तथा जो विभिन्न अक्षय संयोगों को उत्पन्न करते हैं, को अपने साथ शोभन रीति से संगत करती हैं।

(२) य इ॒मे उ॒भे अह॑नी पु॒र एत्यप्र॑युच्छन्। स्वा॒धीर्दे॒वः स॑वि॒ता।।८।। (ऋ.५.८२.८)

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक दीप्तियुक्त। अन्य प्रभाव से सवको अच्छी प्रकार धारण करने वाला सदा सक्रिय, सवका कारण व प्रकाशक मनस्तत्त्व उन दोनों अर्थात् प्राण एवं विद्युत् किंवा प्राण व अपान को सदैव अपने अन्दर व्याप्त करता है।

(३) य इ॒मा विश्वा॑ जा॒तान्या॑श्रा॒वय॑ति॒ श्लोके॑न। प्र च॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता।।९।। (ऋ.५.८२.९)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वही

मनरूप सविता किंवा प्राण वायु अथवा विद्युत् विभिन्न परमाणुओं को विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा उत्पन्न विभिन्न पदार्थों के साथ संयुक्त करके सब ओर गति प्रदान कराता है।

यहाँ ग्रन्थकार ने इन उपुर्यक्त दोनों तृचों को बृहत्साम कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय भी उत्पन्न उदान प्राण के उत्कर्ष का काल होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही पंक्ति, त्रिष्टुप्, गायत्री, उष्णिक् कुल पन्द्रह छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय विद्युत् एवं प्राण तत्त्व विशेष तीक्ष्ण तेजयुक्त होता है। इन्द्र तत्त्व अर्थात् विशेष विद्युत् तीन स्तरों पर तीन प्रकार की शक्तियों से युक्त होता है। वे स्तर क्रमशः न्यून, मध्यम एवं अधिक शक्तिवाले होते हैं। तीक्ष्ण विद्युत् बल अन्य सभी बलों को पराभूत करने की सामर्थ्य रखता है, जबकि यह बल किसी से भी पराभूत नहीं होता। इस समय भी ब्रह्माण्ड में तीव्र गर्जनायुक्त विद्युत् की व्यापक व विक्षोभकारिणी क्रियाएं होती हैं। विद्युत् सूक्ष्म व स्थूल सभी में व्याप्त होती है। इस समय भी डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी का दृश्य पदार्थ से संघर्ष चलता है, जिसमें तीक्ष्ण विद्युत् दृश्य पदार्थ को विजयी बनाती है। विद्युत् के अन्दर विभिन्न मरुद् रश्मियों के अतिरिक्त प्राण रश्मियों का भी परस्पर संगम होता रहता है। ऊष्मा में वृद्धि होने लगती है। विभिन्न कणों में विद्युद् आवेश के साथ प्रकाश की मात्रा भी विद्यमान होती है। वे कण परस्पर संघनित होकर बड़े-२ समूह बनाते हैं। विद्युत्, प्राण अथवा अन्य छन्दादि सभी रश्मियों को मनस्तत्त्व सदैव धारण व प्रेरित करता रहता है। ये विभिन्न रश्मियां ही इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक मूल कण से लेकर स्थूल व विशाल लोकों की गति व ऊर्जा की कारण हैं।।

२. 'उदु ष्य देवः सविता हिरण्ययेति' सावित्रमूर्ध्ववद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।
'ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव'-इति द्यावापृथिवीयम्; 'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते' इत्यन्तर्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से उत्पन्न सवितृ-देवताक ऋ.६.७१ सूक्त की निम्नानुसार चर्चा करते हैं-

(१) उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि।।

इसका छन्द जगती होने से वायु एवं विद्युत् व्यापक स्तर पर संयोग वियोग की प्रक्रिया दर्शाते हुए फैलने लगते हैं। अन्य प्रभाव से {रजः = रात्रिनाम (निघं.१.७)। प्रष्णुते = (प्रुषु दाहे- भ्वादिगण)} वे वायु अर्थात् प्राण व विद्युत् विशेषरूप से धारण करने योग्य सृजन वा संयोग क्रियाओं में सुन्दर बल एवं क्रियाओं से युक्त, मिश्रण-अमिश्रण करने वाले देदीप्यमान बलों से युक्त होकर सभी परमाणु आदि पदार्थों को प्रेरित करने हेतु अपने तेजस्वी आकर्षण व प्रतिकर्षण बल रूप व्यवहारों को उत्कृष्ट बनाते हैं। वे दोनों ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के संयोग में बाधक रात्रि रूप असुर तत्त्व को सब ओर से नष्ट करते हैं।

(२) देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से {सवीमनि = प्रसवे (नि.६.७)} वे वायु विद्युत् सभी द्विपाद एवं चतुष्पाद छन्द रश्मियों के उत्पन्न व व्याप्त होने की प्रक्रियाओं में तथा उनके सभी श्रेष्ठ व्यवहारों में कार्यरत विभिन्न वसु संज्ञक प्राथमिक प्राणों किंवा गायत्री छन्द रश्मियों के आवागमन में महती भूमिका निभाते हैं किंवा वायु-विद्युत् के व्यवहारों में प्राथमिक

प्राणों एवं गायत्री छन्द रश्मियों की भूमिका होती है।

(३) अद॑ब्धेभिः सवितः पा॒युभि॒ष्ट्वं शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑ पाहि नो॒ गय॑म्।
हिर॑ण्यजिह्वः सुवि॒ताय॒ नव्य॑से॒ रक्षा॒ माकि॑र्नो अ॒घशं॑स ईशत॥३॥

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {माकिः = निषेधः (म.द.य.भा.१३.११)। गयम् = धननाम (निघं.२.१०), गृहनाम (निघं.३.४)} वे वायु-विद्युत् अपने अदम्य समुचित परन्तु रक्षणादि वलों के द्वारा विभिन्न परमाणुओं एवं उनके वलों की सव ओर से रक्षा करते हैं। वे वायु-विद्युत् देदीप्यमान वाग् रश्मियों से युक्त होकर नवीन-२ सृजन क्रियाओं की रक्षा करते तथा वाधक पदार्थों को नियन्त्रित करते हैं।

(४) उदु॒ ष्य दे॒वः स॑वि॒ता दमू॑ना॒ हिर॑ण्यपाणिः प्रतिदो॒षम॑स्थात्।
अयो॑हनुर्यज॒तो म॒न्द्रजि॑ह्व॒ आ दा॒शुषे॑ सुवति॒ भूरि॑ वा॒मम्॥४॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से वे वायु-विद्युत् तीक्ष्ण वल व तेज से सम्पन्न होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे सवके उत्पादक वायु विद्युत् अपने तेजस्वी एवं विस्तृत होते वलादि व्यवहारों के द्वारा सवके दमनशील होकर प्रत्येक असुर रश्मि वा कण को नियंन्त्रित करने हेतु दृढ़ रहते हैं। वे दोनों व्यापक तेजयुक्त प्रहार क्षमता वाले, संयोज्य परमाणुओं को संयुक्त करने वाले एवं ज्वालायुक्त वाग् रश्मियों से युक्त होते हैं। ऐसे वे दोनों श्रेष्ठ उत्पादन क्रियाओं को जन्म व प्रेरणा देते हैं।

(५) उदू॑ अ॒याँ उ॑पव॒क्तेव॑ बा॒हू हि॑र॒ण्यया॑ सवि॒ता सु॒प्रती॑का।
दि॒वो रोहां॑स्यरुहत्पृथि॒व्या अरी॑रमत्प॒तय॒त्कच्चि॒दभ्व॑म्॥५॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्णतर। अन्य प्रभाव से {अभ्वम् = अभ्वः महन्नाम (निघं.३.३), उदकनाम (निघं.१.१२)} वे वायु-विद्युत् विभिन्न दिव्य पदार्थों, वलों व क्रियाओं की उच्चतम सीमाओं को प्राप्त वा उत्पन्न करते हैं। वे अपने फैलते व चमकते हुए शोभनीय वलों के द्वारा इस अन्तरिक्ष एवं पार्थिव परमाणुओं को व्यापक रूप से सिंचित करते हैं तथा उन्हें गति प्रदान करते हैं।

(६) वा॒मम॒द्य स॑वितर्वा॒ममु॒ श्वो दि॒वेदि॑वे वा॒मम॒स्मभ्यं॑ सावीः।
वा॒मस्य॒ हि क्षय॑स्य देव॒ भूरे॑र॒या धि॒या वा॑म॒भाजः॑ स्याम॥६॥

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे वायु-विद्युत् विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं को सदैव ही समान प्रकार से उत्पन्न व प्रेरित करते हैं। वे ही श्रेष्ठ तेज व वलों को उत्पन्न करके विभिन्न परमाणु एवं स्थूल लोकों को श्रेष्ठ व उचित आकार व वल प्रदान करते हैं। वे ही सव पदार्थों का अनुकूल व श्रेष्ठ विभाग करते हैं।

इन छः ऋचाओं में से कुछ में 'उत्' उपसर्ग की विद्यमानता से उदान प्राण के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है॥

तदुपरान्त पूर्व में अनेकत्र वर्णित व व्याख्यात दीर्घतमा ऋषि नामक एक सूक्ष्म प्राण विशेष से द्यावापृथिव्यौ-देवताक ऋ.१.१६० सूक्त की उत्पत्ति व प्रभाव की निम्नानुसार चर्चा करते हैं-

(१) ते हि द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वशं॑भुव ऋ॒ताव॑री॒ रज॑सो धार॒यत्क॑वी।
सु॒जन्म॑नी धि॒षणे॑ अ॒न्तरी॑यते दे॒वो दे॒वी धर्म॑णा॒ सूर्यः॒ शुचिः॑॥१॥

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थों का संयोग व वियोग व्यापक स्तर पर होने लगता है। अन्य प्रभाव से विद्युत् और आकाश

तत्त्व सबको सहजता से अपने साथ संयुक्त करके नाना क्रियाओं के करने में सहयोग करते हैं। वे क्रान्तदर्शी सुन्दर उत्पत्ति वाले, उत्कट प्रतिरोधक बलयुक्त विभिन्न प्राथमिक प्राण वा सूक्ष्म वाग् रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न कणों व लोकों को धारण करते हुए उनमें व्याप्त होते एवं उनको आच्छादित भी करते हैं। इन विद्युत् व आकाश तत्त्व दोनों से उत्पन्न अति तेज व ज्वालायुक्त रूप सौर-अग्नि का रूप होते हैं।

(२) उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण परन्तु प्रकाश की मात्रा किंचित् न्यून होती है। अन्य प्रभाव से {असश्चता = विलक्षणस्वरूपे (म.द.भा.)। सीम् = सीमायाम् (म.द.ऋ.भा.१.१२२.६), सर्वतः (म.द.भा.)} मापने वा समाने व रक्षा करने वाले वे आकाश व विद्युत् सबमें व्यापक होकर विलक्षण रूप से प्रकाशित व अप्रकाशित सभी लोकों की रक्षा करते हैं। वे अतिशय बल देने वाले सबको रूप व आकार प्रदान करने वाले एवं आच्छादित करने वाले होते हैं।

(३) स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान् पुनाति धीरो भुवनानि मायया।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से उन {द्यौः = वागिति द्यौः (जै.उ.४.११.१.११), प्राणो वै दिवः (श.६.७.४.३)} वाक् तत्त्व एवं प्राण तत्त्व के मिथुन एवं आकाश से उत्पन्न अग्नि तत्त्व सबको वहन करने वाला एवं पवित्र क्रिया व बलों से युक्त होकर विभिन्न पदार्थों को पवित्र करता है। वही अग्नि लोकों व परमाणुओं को धारण करता है। वही तेजस्वी विद्युत् रूप अग्नि विभिन्न वाग् रश्मियों, विविध रूप युक्त पदार्थों, सभी पदार्थों के धारण कर्मों वा बलों एवं सृजन कर्मोत्पादक बलों के साथ सभी तेजस्वी पदार्थों को आशुगति से शुद्ध व प्राप्त करता है।

(४) अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे।।४।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त अग्नि अर्थात् विद्युत् तत्त्व विभिन्न प्रकाशित पदार्थों एवं उनके विविध कर्मों में अतीव क्रियाशील एवं सब कर्मों को सहज बनाने वाला होता है। ऐसा वह अग्नि ही विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करता, अपनी धारण शक्ति तथा अक्षय व उत्तम सक्रियता के द्वारा उन दोनों ही प्रकार के पदार्थों को प्रकाशित व मर्यादित करता है।

(५) ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम्।।५।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {इन्वति गतिकर्मा (निघं.२.१४), व्याप्तिकर्मा (निघं.२.१८)} वे दोनों अर्थात् वाक् - प्राण, मिथुन एवं आकाश तत्त्व अति व्यापक क्षेत्र में विद्यमान होकर महान् भेदक बल एवं संयोज्य परमाणुओं को धारण करते हैं। इस कारण सबको प्राप्त करने वाले आकर्षण बलों एवं उनके तेजयुक्त व्यवहार भी सब पदार्थों में व्याप्त होने लगते हैं किंवा विभिन्न पदार्थों में परस्पर संचरित होने लगते हैं।

इन पांच ऋचाओं में से प्रथम ऋचा के तृतीय पाद 'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते' में 'अन्तर' शब्द की विद्यमानता से उदान प्राण के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही जगती रश्मि की प्रधानता में त्रिष्टुप् के साथ कुल ग्यारह छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय ऊर्जा एवं इलेक्ट्रॉन्स आदि सूक्ष्म कणों

के उत्सर्जन व अवशोषण की क्रियाएं समृद्ध होती हैं। इस कारण नाना नवीन तत्त्वों वा विविध अणुओं का निर्माण होने के साथ-२ पदार्थ का अनेकशः संयोग-वियोग होकर बड़े-२ पदार्थ समूह भी निर्मित होने लगते हैं। डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी को यहाँ भी नियन्त्रित किया जाता है। ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र व धाराओं का व्यापक रूप से निर्माण होने लगता है। विद्युत् की उत्पत्ति प्राणापान आदि से होती है तथा यह **विद्युत् आकाश तत्त्व के साथ संयुक्त होकर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं आधुनिक द्रव्य का निर्माण करती है।** इसी के कारण ऊर्जा आदि का उत्सर्जन व अवशोषण होता है। इसी से ही अग्नि की तीव्र ज्वालाएं उत्पन्न होती हैं। **गुरुत्व बल भी इसी का ही एक अन्य रूप है, जो विभिन्न लोकों को धारण करता व उन्हें आकृति प्रदान करता है।** छोटे-२ कणों को भी विद्युत् ही धारण करती है। विद्युत् वा ऊष्मा ही विभिन्न पदार्थों को छिन्न-भिन्न करके शुद्ध कणों वा कण समूहों को उत्पन्न करती है। सबकी गति, स्थिति एवं बलशीलता का भी यह विद्युत् तत्त्व ही कारण है, जो असंख्य रूपों में विद्यमान होती है।।

३. 'तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस' इत्यार्भवं, 'तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू' इति वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।। 'यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्'-इति वैश्वदेवं वृषाकेतुर्यजतो द्यामशायत इति वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त आङ्गिरसः कुत्स ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न तीक्ष्ण सूक्ष्म प्राण विशेष से उत्पन्न ऋभवो-देवताक ऋ.१.१११ सूक्त का निम्नानुसार वर्णन करते हैं-

(१) तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापंसस्तक्षन्हरीं इन्द्रवाहा वृषंण्वसू।
तक्षंन्पितृभ्यांमृभवो युवद्वयस्तक्षंन्वत्साय मातरं सचाभुवंम्।।१।।

इसका छन्द जगती होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु का विस्तार होता जाता है। अन्य प्रभाव से {तक्षन् = (तक्षू तनूकरणे - भ्वादि, तक्षति करोतिकर्मा - नि.४.१६)} सूत्रात्मा वायु से अच्छी प्रकार आवृत्त विभिन्न रमणीय रश्मियां तीक्ष्ण एवं विविध सृजनात्मक क्रियाओं से युक्त होती हैं। **वे क्रियाएं विज्ञान पूर्वक इस कारण होती हैं, क्योंकि उनका मूल प्रेरक सर्वविज्ञानमय चेतन परमात्मा होता है।** वह सूत्रात्मा वायु क्रिया एवं बल से युक्त आकर्षण व प्रतिकर्षण बलों को तीक्ष्ण करता है, जो इन्द्र तत्त्व द्वारा वहन किए जाते हैं। वह सूत्रात्मा वायु पालक प्राणापान रश्मियों के द्वारा मिश्रणामिश्रण व्यवहार को उत्पन्न करता है तथा वही सूत्रात्मा वायु कारणरूप मन एवं वाक् तत्त्व से विभिन्न प्राणादि पदार्थों को उत्पन्न करने में संयुक्त रूप से भाग लेकर उस क्रिया को गति देता है।

(२) आ नों यज्ञायं तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावंतीमिषंम्।
यथा क्षयांम् सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम्।।२।।

इसका छन्द, दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु विविध संयोग कर्मों के संचालन, विभिन्न बलों एवं विभिन्न छन्द रश्मिरूप प्रजा से युक्त विभिन्न वाग् रश्मियों एवं विभिन्न संयोज्य कणों की उत्पत्ति व धारण एवं सभी वीर रूप {प्राणा वै दशवीराः (श.१२.८.१.२२)} प्राथमिक प्राण रश्मियों से युक्त विभिन्न कणों वा छन्द रश्मियों को बसाने हेतु इसके साथ ही विभिन्न प्रतिरोधक व धारक बलों को धारण करने हेतु तेजयुक्त होता है।

(३) आ तंक्षत सातिमस्मभ्यंमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहां जामिमजांमिं पृतंनासु सक्षणिंम्।।३।।

छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह सबका वाहक सूत्रात्मा वायु विभिन्न पदार्थों

की क्रियाओं के लिए, विभिन्न तेजस्वी रश्मियों के लिए सूक्ष्म रश्मियों का विभाग करता है। विभिन्न किरणों को आशुगामी एवं व्यापक बनाने हेतु भी विभिन्न आवश्यक छन्दादि रश्मियों का विभाग करता है। विभिन्न परमाणु वा रश्मियों के नियन्त्रण हेतु सभी प्राथमिक प्राण रश्मियों को समर्थ बनाने तथा गतिशील वा गतिहीन सभी पदार्थों की सेना को समर्थ बनाने हेतु विभिन्न रश्मियों के नाना विभाग करता है।

(४) ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतयं ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे।।४।।

छन्द, देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु को बसाने वाले मनस्तत्त्व वा वाक् तत्त्व रूपी इन्द्र का सब ओर से आकर्षण सदा रहता है। विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करने हेतु सूत्रात्मा वायु वा मरुद् रश्मियों का आकर्षण होता है। **प्राणापान व प्राणोदान तत्त्व विद्युत् और आकाश तत्त्व के साथ संगत होते हैं।** इन सब क्रियाओं के द्वारा सभी पदार्थों का समुचित विभाग, नियन्त्रण एवं व्याप्ति होती है।

(५) ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से सूत्रात्मा वायु तीव्र तेजस्वी एवं बलवान् होता है। अन्य प्रभाव से {भर इति संग्रामनाम (निघं.२.१७)। शिशीतिः दानकर्मा (नि.५.२३), (शो तनूकरणे)। समर्य इति संग्रामनाम (निघं. २.१७)} वह सूत्रात्मा वायु विभिन्न संघातों वा संघर्षों में विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों के विभागों को समुचितरीत्या सम्पादित करता है। वही उन संघर्षों में संयोज्य कणों वा रश्मियों की रक्षा करता व प्राण, अपान वा व्यान, अदिति अर्थात् पार्थिव परमाणुओं, अग्नि के परमाणुओं एवं आकाश को भी यथावत् विभागपूर्वक सिद्ध करता है।

यहाँ प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद 'तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू' में 'वृषन्' शब्द की विद्यमानता से उदान प्राण के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है।।

तदनन्तर शार्यातो मानवः ऋषि अर्थात् {शार्यातः = (शर्याः अङ्गुलिनाम - निघं.२.५, ततो निर्वृताऽर्थेऽण् शार्यम् - वै.को. - आ.राजवीर शास्त्री)} मनस्तत्त्व से उत्पन्न एक ऐसा सूक्ष्म प्राण, जो शक्तिशाली होकर विभिन्न रश्मियों को कंपाता है, से विश्वेदेवादेवताक ऋ.१०.६२ सूक्त की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम्।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद् वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से सभी देव परमाणु तीक्ष्ण रूप से परस्पर संयुक्त-वियुक्त होने लगते हैं। अन्य प्रभाव से {जर्भुरत् = भृशं धरेत् (म.द.ऋ.भा.२.२.५), हरिणी = हरिणीव हि द्यौः (श.१४.१.३. २६), विड् वै हरिणी (तै.ब्रा.३.६.७.२)} विभिन्न उत्पन्न पदार्थों का पालक तथा उनके अन्दर प्रविष्ट, सृजन कर्मों का वाहक, विभिन्न बल रश्मियों का दाता-ग्रहीता, सतत गमनकर्त्ता अग्नि विभिन्न परमाणुओं को दीप्त करता है। वह प्रज्वलित अग्नि द्युलोकादि विभिन्न पदार्थों को पुष्ट करता हुआ सेचक बलों का प्रकाशक होकर प्रकाशित लोकों में व्याप्त रहता है।

(२) इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम्।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते।।२।।

इसका छन्द जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु। अन्य प्रभाव से {तनूनपात् = प्राणो वै तनूनपात् स हि तन्वः पाति (ऐ.२.४)। निंसते = णिसि चुम्बने (अदा.) धातोर्लटि प्रथम पुरुष

बहुवचने रूपम्} वह अग्नि प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों का धारक व रक्षक, संयोग-वियोग प्रक्रियाओं का साधक होता है। {अरुषः = अश्वनाम (निघं.१.१४), अरुषम् रूपनाम (निघं. ३.७)} वह रूपवान् आशुगामी अग्नि महान् प्राणतत्त्व के द्वारा पूर्व से ही धारण किया जाता है तथा शोभन व व्यक्त प्रकाश के साथ प्रकट होता है।

(३) वळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन्।।३।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् अधिक दीप्तियुक्त होता है। अन्य प्रभाव से {बडिति सत्यनाम (निघं.३.१०)} विविध व्यवहार व वलयुक्त अग्नितत्त्व में अविनाशी वाक् तत्त्व प्रकाशित होता हुआ अग्नि के परमाणुओं की गतियों को सम्पादित करता तथा अन्य विभिन्न छन्द रश्मियां विभिन्न संयोग आदि क्रियाओं को शीघ्रता से सम्पादित करती हैं। तदनन्तर तीव्र ज्वालाएं स्थायित्व को प्राप्त करके विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को सब ओर बिखेरती हैं।

(४) ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्य१रमतिः पनीयसी।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः।।४।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से प्रकाशित द्यौ आदि लोक, व्यापक असीम आकाश तत्त्व, पार्थिव परमाणु, इन्द्र तत्त्व, प्राणापान किंवा प्राणोदान, विद्युत् आदि पदार्थ एवं इन सबमें होने वाले सृजन कर्म पवित्र बल से युक्त होते हैं।

(५) प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते।।५।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से सबको बांधने वाले सूत्रात्मा वायु वा व्यान तत्त्व की रश्मियां तीव्र गतिशील तीक्ष्ण छन्दादि रश्मियों एवं न्यून गतियुक्त पार्थिव परमाणुओं को आच्छादित करती हैं। इनके द्वारा इन सब पदार्थों के चारों ओर व्याप्त आकाश तत्त्व में ध्वनि करती हुई अनेक रश्मियां व्याप्त होने लगती हैं।

(६) क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः।।६।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {क्राणाः = क्राणाः कुर्वाणाः (नि.४.१६)। अर्वशेभिः = अश्ववद्भिः सोमवद्भिर्वेति सायणस्य वेदभाष्ये} आसुर मेघ के आश्रयभूत अन्तरिक्ष में ही तीक्ष्ण त्रिष्टुवादि छन्द रश्मियां एवं मरुद् रश्मियां भी सक्रिय होती हैं। विभिन्न सोम रश्मियों से युक्त आशुगामी देव पदार्थों के साथ इन्द्र तत्त्व तथा प्राण, व्यान प्राण तथा सूत्रात्मा वायु रूपी अर्य्यमा क्रियाशील रहता है।

(७) इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः।।७।।

इसका छन्द पाद निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {शशमान इति अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)। भुजम् = प्राणा वै भुजः (श.७.५.१.२१)} विभिन्न तेजस्वी परमाणु इन्द्र तत्त्व का आश्रय लेकर प्राणों को प्राप्त करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व तेजस्वी तथा विभिन्न बलों में अपनी मरुदादि रश्मियों को सिंचित करता है। विभिन्न क्रियाशील प्राण रश्मियां उस इन्द्र तत्त्व को तीक्ष्ण बना कर विभिन्न सृजन व संयोग कर्मों में वज्र रूप रश्मियों का निर्माण करती हैं।

(८) सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः।।८।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {सहुरिः = सहते भारमिति सहुरिः (उ.को.२.७४)} इस तत्त्व का प्रकाशक प्राण तत्त्व सब ओर से विभिन्न रश्मियों को प्रेरित करता है और ऐसा करके वह इन्द्र तत्त्व को रमण कराता है। इससे शक्तिशाली हुआ इन्द्रतत्त्व अन्तरिक्ष में सबके प्रतिरोध आदि को सहता हुआ स्वयं बाधा रहित होकर गर्जता हुआ सबको कंपाता है।

(९) स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः।।९।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी तीव्र गति व क्रियाशीलता के द्वारा प्रकाशमान होकर सब पदार्थों को समुचित बलों से युक्त करके अपने-२ कर्मों को करने में समर्थ करता है, वही इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण होकर विभिन्न तीक्ष्ण असुर रश्मियों को अपनी वज्ररूप रश्मियों के द्वारा नष्ट करता है।

(१०) ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे।।१०।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {प्रथमम् = परमम् (नि.३.७)} सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों के साथ संगत हुई विभिन्न प्राण रश्मियां अपने महान् बल से **विभिन्न पदार्थों के बल को पुष्ट करती हैं। ये अहिंस्य प्राण रश्मियां संगम कर्मों के द्वारा श्रेष्ठ मार्गों को धारण करके तेजस्वी बलों को उत्पन्न करती हैं।**

(११) ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे।।११।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {रोदसी = रोदसी रोधसी विरोधनात् (नि.६.१)। यमः = अग्निर्वै यमः (श.७.२.१.१०)} महान् रेतः सम्पन्न प्रकाशित व अप्रकाशित पदार्थ, चार प्रकार का अग्नि अर्थात् मनस्तत्त्व, वाक् तत्त्व, प्राण तत्त्व एवं परमाणु रूप अग्नि, अविनाशी आकाश, तीक्ष्ण इन्द्ररूप त्वष्टा {ऋभुक्षणः = ऋभुक्षाः महन्नाम (निघं.३.३)} व्यापक एवं विभिन्न परमाणुओं की निरोधक मरुद् रश्मियां तथा व्यापक विद्युत् आदि पदार्थ विशेष सक्रिय होते हैं।

(१२) उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम्।।१२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {उशिक् = कान्तिकर्मा (निघं.२.६), उशिजः मेधाविनाम (निघं.३.१५)} विभिन्न आकर्षणादि बलों की क्रियाओं में अग्नि तत्त्व अन्तरिक्षस्थ मेघरूप पदार्थ के अन्दर होने वाले विभिन्न संगम कर्मों में सतत प्रवहमान रहता है। आकाशस्थ विभिन्न प्रेरक मास रश्मियां उन सबके मध्य विचरती हुई अपने धारण युक्त कर्मों के द्वारा समस्त पदार्थ समुदाय को कर्मों से बांधती हैं।

(१३) प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम्।।१३।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से सबका पोषक वायु विभिन्न गतिशील पदार्थों की रक्षा करके सभी प्रकाशित परमाणुओं के कर्मों को पतित न होने देकर

संगम क्रियाओं को रक्षित करता है। सबके भीतर विचरने वाला वह वायु सबका श्रेष्ठ वासयिता, श्रेष्ठ आकर्षणकर्त्ता, आकाश में विद्यमान विभिन्न मार्गों में गमन करने वाले विभिन्न परमाणुओं को प्रकाशित करता है।

(१४) विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयंशसं गृणीमसि।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम्।।१४।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से स्खलनरहित अर्थात् अपनी क्रियाओं को अविचल भाव से करने में समर्थ विभिन्न पदार्थों के अन्दर विद्यमान स्वयं प्रकाशस्वरूप अग्नि तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होता है। सभी छन्द रश्मियां न्यून गति वाले पार्थिव परमाणुओं एवं व्यक्त मिश्रणामिश्रण कर्त्ता एवं विभिन्न मरुद् रश्मि सम्पन्न इन्द्र तत्त्व को भी प्रकाशित करती हैं।

(१५) रेभदत्रं जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम्।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति।।१५।।

इसका छन्द जगती होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {रेभति अर्चतिकर्मा (निघं. ३.१४)। ग्रावाणः = प्राणा वै ग्रावाणः (श.१४.२.२.३३), पशवो वै ग्रावाणः (तां.९.९.१३), वज्रो वै ग्रावा (श.११.५.९.७)। विहायाः = विहाया व्याप्ता (नि.१०.२६), महन्नाम (निघं.३.३)। सुमेकः = सुष्ठु प्रकाशमानः (म.द.ऋ.भा.४.६.३)। पाथः = पाथोऽन्तरिक्षम् (नि.६.७)} इस सृष्टि में विभिन्न प्राण रश्मियां विभिन्न उत्पत्ति क्रियाओं के द्वारा विविध पदार्थों को प्रकाशित करती हैं। वे उत्कृष्ट प्राण वा मरुद् रश्मियां विभिन्न क्रियाओं को अहिंस्य बनाकर सबमें व्याप्त व प्रकाशित होती हैं। वे अपनी धारणा शक्तियों से सम्यक् प्रकाशमान मार्गों को सम्पादित करती हैं।

इन पन्द्रह ऋचाओं में से प्रथम ऋचा के चतुर्थपाद "वृषाकेतुर्यजतो द्यामशायत" में 'वृषन्' शब्द की विद्यमानता से उदान प्राण के उत्कर्ष की पुष्टि होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तवत् **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में दो सूक्तों की कुल बीस विविध जगती तथा एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इस समय विभिन्न कणों के पारस्परिक बंधन की क्रियाएं तीव्र तथा दृढ़ होती हैं। इस क्रिया में सूत्रात्मा वायु के अतिरिक्त प्राण व अपान रश्मियां भी अपनी भूमिका निभाती हैं। **मन एवं वाक् तत्त्व के मेल से विभिन्न प्राण रश्मियों की उत्पत्ति में भी सूत्रात्मा वायु की भूमिका होती है।** इस समय विभिन्न किरणों व कणों में भारी विखण्डन व संयोजन की क्रियाएं तीव्र होने लगती हैं। इस क्रिया में सूत्रात्मा वायु का प्राणादि रश्मियों के अतिरिक्त आकाश तत्त्व के साथ भी एक समुचित संयोजन रहता है। विभिन्न क्वाण्टाज् के संयोग व विभाग में भी इनका अनिवार्य योगदान होता है। इस समय भी ऊष्मा, विद्युत् चुम्बकीय बल, गुरुत्वबल, प्रकाश तथा उच्च ऊर्जा की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की वृद्धि होती है। कहीं-२ तीव्र ज्वालाएं उठने लगती हैं। ऊर्जा की मात्रा बढ़ने लगती है। यह ऊर्जा विभिन्न कणों का छेदन-भेदन करके शोधन करती है। **चेतन परमात्म-तत्त्व के प्रेरण व ज्ञान में पदार्थ का समुचित विभाग होता है।** जब सूत्रात्मा रश्मियां किसी कण वा क्वाण्टा को अपने साथ बांधने के लिए उसे चारों ओर से घेरती हैं, उस समय उनके साथ विभिन्न सूक्ष्म ध्वनि तरंगों के साथ आकाश तत्त्व भी उन कण वा क्वाण्टा को घेर लेता है। **विद्युदावेशित कणों के निकट प्राण रश्मियों की सघनता होती है। वस्तुतः उन्हीं के कारण ही आवेश उत्पन्न व सक्रिय होता है।** तीव्र विद्युत् भी इन्हीं प्राण रश्मियों के कारण भेदक सामर्थ्य से सम्पन्न होती है। यहाँ भी डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ के साथ विद्युत् तरंगों का संघर्ष होता है, जिसमें डार्क पदार्थ व डार्क ऊर्जा के विपरीत प्रभाव को दूर किया जाता है। विभिन्न मूलकण वा क्वाण्टाज् की गति व मार्ग को भी प्राण रश्मियां ही उत्पन्न व निर्धारित करती हैं। **धनंजय प्राण विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का प्रमुख वाहक है।** सम्पूर्ण सृष्टि में प्राण व मरुद् रश्मियों का मार्ग निर्बाध होता है। इन पर डार्क एनर्जी आदि का कोई प्रभाव कभी नहीं होता है।।

४. तदु शार्यातमङ्गिरसो वै स्वर्गाय लोकाय सत्रमासत; ते ह स्म द्वितीयं द्वितीयमवाहरागत्य मुह्यन्ति; तान् वा एतच्छार्यातो मानवो द्वितीयेऽहनि सूक्तमशंसयत्; ततो वै ते प्र यज्ञमजानन् प्र स्वर्गं लोकम्; तद् यदेतत् सूक्तं द्वितीयेऽहनि शंसति, यज्ञस्य प्रज्ञात्यै, स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त द्वादशाह के अन्दर जो यह सर्ग-यज्ञ चल रहा है, उनमें प्रथम नाग प्राण के उत्कर्ष के पश्चात् उदान प्राण के उत्कर्ष का चरण प्रारम्भ होता है। ये सम्पूर्ण प्रक्रियाएं स्वर्ग लोक अर्थात् विभिन्न द्युलोकों के निर्माण के लिए होती हैं। जव द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण की सक्रियता का चरण चल रहा होता है, तव उसमें अनेक प्रकार के छन्द रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है। उस समय व्रह्माण्ड में अनेक छन्द रश्मिसमूह वा रश्मियां अपने पथ व क्रियाओं से भ्रान्त हो जाती हैं। इससे सम्पूर्ण सर्ग प्रक्रिया अव्यवस्थित होने लगती है, उसी समय पूर्वोक्त सूक्त अर्थात् छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति पूर्वोक्त 'शार्यात मानव' नामक सूक्ष्म ऋषि प्राण से होती है। इसके स्वरूप व प्रभाव को हम पूर्वकण्डिका के व्याख्यान में दर्शा चुके हैं। इस सूक्त की रश्मियां भ्रान्त हुई छन्द रश्मियों को प्रेरित करके समुचित वल, वेग एवं मार्ग प्रदान करने में सहयोग करती हैं। इससे द्युलोकादि के निर्माण की प्रक्रिया पुनः प्रारम्भ हो जाती है। सभी ऋषि प्राणों से उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मिसमूह यथावत् सक्रिय हो जाते हैं। इसी कारण उदान प्राण के उत्कर्ष काल में 'शार्यात मानव' ऋषि प्राण द्वारा पूर्वोक्त पन्द्रह छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिससे सर्गयज्ञ की प्रक्रिया प्रकृष्ट रूप से प्रकाशित वा सक्रिय हो सके और कालान्तर में द्युलोकों का निर्माण हो सके।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उदान प्राण के उत्कर्ष काल में अनेक प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर क्रियारत होती हैं। इस समय उनमें से अनेक छन्द रश्मियां परस्पर उलझ कर भ्रान्त हो जाती हैं। इस कारण सृष्टि प्रक्रिया अवरुद्ध वा अस्त व्यस्त हो जाती है। उस समय पूर्व कण्डिका में वर्णित पन्द्रह जगती छन्द रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं। वे जगती रश्मियां उन भ्रान्त रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें उचित मार्ग, गति व वल प्रदान करती हैं। यही इन पन्द्रह रश्मियों की उपयोगिता है।।

५. 'पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सह' इत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्; वृषण्वद् द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।
'वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधस' इति मारुतम्; वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से वैश्वानरदेवताक ऋ.६.८.१-३ तृच की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) पृक्षस्य वृष्णों अरुषस्य नू सहः प्र नु वोंचं विदथा जातवेंदसः।
वैश्वानरायं मतिर्नव्यंसी शुचिः सोमंइव पवते चारुंरग्नयें।।१।।

इसका छन्द जगती होने से इसके छान्दस व दैवत प्रभाव से वैश्वानर अग्नितत्त्व का संयोग वियोग एवं विस्तार तीव्र गति से होता है। अन्य प्रभाव से {पृक्षम् = पृक्ष इत्यन्ननाम (निघं.२.७), पृक्षे इति संग्रामनाम (निघं.२.१७) (पृची सम्पर्के, पृषु सेचने)। अरुषः = अश्वनाम (निघं.१.१४), रूपनाम (निघं. ३.७), अग्निर्वा अरुषः (तै.ब्रा.३.६.४.१)} सवके साथ सम्वद्ध अहिंस्य, आशुगामी, रूपवान् अग्नि, जो सेचक व उत्पादक वलों से युक्त होता है तथा सभी उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान होता है, का वल शीघ्रता से प्रकाशित होता है। विभिन्न संघातों में सोम अर्थात् मरुद् रश्मियों के समान वह सुन्दर प्रकाशमान अग्नि प्रवाहित होता है।

(२) स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत्।।२।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से वह पूर्वोक्त अग्नि तीक्ष्ण बल व तेज से युक्त होता है। अन्य प्रभाव से {नाकः = सुवर्गो वै लोको नाकः (तै.सं.५.३.३.५), नाक आदित्यो भवति नेता रसानां नेता भासां ज्योतिषां प्रणयः (नि.२.१४)} वह अग्नि विभिन्न सर्ग प्रक्रियाओं का रक्षक विशाल व श्रेष्ठ आकाश में उत्पन्न होता हुआ आकाश को भी विशेष कर मापता है अर्थात् आकाश के सहारे गति करता रहता है। वह सबका नायक अग्नि तत्त्व अपने व्यापकत्व से आदित्य लोकों को बांधता वा निर्मित करता है।

(३) व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम्।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त अग्नि तत्त्व **आश्चर्यजनक आकर्षणकर्त्ता पृथिवी व द्युलोकों को विशेषरूप से धारण करता है। वह प्रकाशित व अप्रकाशित कणों के अतिरिक्त आकाश को भी आकर्षित करता वा धारण करता है।** यह अपने प्रकाश के द्वारा अप्रकाशित असुर तत्त्व के अन्दर भी विचरता हुआ उसे भी धारण करता है। यह त्वचा के तुल्य विभिन्न वाग् रश्मियों को वर्तमान करके सब पदार्थों व बलों को धारण करता है अर्थात् इसकी अंगभूत वाग् रश्मियां इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि सबको समुचितरीत्या धारण किया जा सके।

ग्रन्थकार ने इस तृच को अग्निमारुत शस्त्र की 'प्रतिपत्' रूप कहा है, इसका तात्पर्य यह है कि **वैश्वानर अग्नि** देवता वाली यह **तृच मरुद् देवता वाले अगले सूक्त** (अगली कण्डिका में वर्णित) **के सदैव प्रारम्भ में उत्पन्न होती है। इस तृच की प्रथम व तृतीय ऋचा में 'वृषन्' शब्द की विद्यमानता के कारण इस समय भी उदान प्राण का उत्कर्ष** सिद्ध होता है।।

तदनन्तर {नोधा = नोधा ऋषिः भवति नवनं दधाति (नि.४.१६), नौति स्तौति नूयते स्तूयते वा स नोधाः (उ.को.४.२२७)} गौतमो नोधा ऋषि अर्थात् **सर्वाधिक** गतिमान् अर्थात् धनंजय प्राण से उत्पन्न विशेष प्रकाशित सूक्ष्म प्राण विशेष से मरुद्-देवताक ऋ.१.६४ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः।।१।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां प्रकाशवती होती हुई व्यापक स्तर पर संयुक्त वियुक्त होती हैं। अन्य प्रभाव से {वेधसे = वेधसे विधात्रे (नि.१०.६), मेधाविनाम (निघं.३.१५)} हरणशील बलों से युक्त, विभिन्न धारणादि क्रियाओं का धारक सब ओर विद्यमान पूर्वोक्त नोधा नामक प्राण विभिन्न सेचक एवं धारक बलों से सम्पादित होने वाले विभिन्न संयोग कर्मों के सम्पन्न करने हेतु विभिन्न देदीप्यमान मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न संघात वा संघर्षण में वारक शक्तिसम्पन्न छन्दादि रश्मियों को प्रकट करता है।

(२) ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्याइव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण परन्तु अधिक दीप्त। अन्य प्रभाव से {द्रप्सिनः = बहु द्रप्सो विविधो मोहोऽस्ति येषु ते (म.द.भा.)। अरेपसः = अव्यक्त शब्दा निष्पापाः (म.द.भा.)} माध्यन्दिन सवन अर्थात् सृष्टि के द्वितीय चरण में उत्पन्न विभिन्न वायु आकाश तत्त्व के सम्पीडन से उत्पन्न होते हैं। वे वायु रश्मियां सूर्य की रश्मियों के समान व्यापक, सेचनधर्मयुक्त, पवित्र एवं पवित्रकारी, बलसम्पन्न, बाधक रश्मियों से रहित, अव्यक्त ध्वनियुक्त, प्राथमिक प्राण रश्मियों में रमण करने वाले, नाना भ्रामक क्रियाकलापयुक्त और विनाशी स्वभावयुक्त होती हैं।

(३) युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वताइव।
दृळहा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे उपर्युक्त वायु {पर्वतः = पर्ववान् पर्वतः, पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा (नि.१.२०)} विभिन्न पालनकर्मों से युक्त, मिश्रणामिश्रण क्रियाओं से युक्त, जीर्ण न होने वाले, अहिंस्य, अभक्ष्य, नाना गमनकर्मों के धारक व सबके वाहक होकर अपने बल से प्रकाशित व अप्रकाशित सभी पदार्थों को चलायमान करते हैं।

(४) चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः।।४।।

इसका छन्द विराड्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {वक्षः = प्राप्तं वस्तु (म.द.ऋ.भा.१.१२४.४)। अंसः = भुजमूलम् (तु.म.द.य.भा.२५.३)} वे उपर्युक्त वायु आश्चर्ययुक्त क्रिया, गति एवं रूप वाले विशेषरूप से सर्वत्र व्याप्त होते हैं। वे विभिन्न परमाणुओं के अन्दर प्रकाश को उत्पन्न करते, विद्युत् को धारण करके विभिन्न प्रकाशों एवं विभिन्न बलों को उत्पन्न करते हैं।

(५) ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {रिशादसम् = शत्रुनिवारकम् (म.द.ऋ.भा.५.६४.१)। ऊधः = उषा (म.द.ऋ.भा. ३.५५.१३)} वे पूर्वोक्त वायु विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को समर्थ बनाने, उन्हें गति प्रदान करने, बाधक असुरादि रश्मियों से दूर रखने, सब पदार्थों को कंपाने तथा सबको जीर्ण करने हेतु अपने बलों से तीव्र विद्युत् को उत्पन्न करते हैं। वे विभिन्न प्राणों से शोभन कान्ति को पूर्ण करते वा उत्पन्न करते तथा विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को अपने में व्याप्त कर लेते हैं।

(६) पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्।।६।।

इस पर व्याख्यान ४.२६.६ में देखें।

(७) महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः।
मृगाइव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम्।।७।।

इसका छन्द निचृद् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {रघुः = सद्यःकारी (तु.म.द.ऋ.भा.४.५.१३)। गिरिः = गिरिः पर्वतः (नि.१.२०), मेघनाम (निघं.१.१०)। अरुणः = रक्तवर्णः (म.द.य.भा.२४.३), प्रापकः (तु.म.द.य.भा.१६.३६)} वे पूर्वोक्त वायु महान् गुणों से युक्त, विचित्र विविध दीप्तियुक्त, प्रज्ञापिका विद्युत्-युक्त, शीघ्रकारी, मेघों के समान विभिन्न पदार्थों के धारक व वर्षक, संयोज्य रश्मियों के शोधक अपने हरणशील बलों से युक्त विभिन्न किरणों को अवशोषित करने वाले विभिन्न पदार्थों को बल प्राप्त कराते हैं।

(८) सिंहाइव नानदति प्रचेतसः पिशाइव सुपिशो विश्ववेदसः।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः।।८।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु। अन्य प्रभाव से {सिंहम् = सहनम् (नि.८.१५), हिंसकम् (म.द.ऋ.भा.१.६५.५)। क्षपः = उदकनाम (निघं.१.१२), क्षपा रात्रिनाम (निघं.१.७), रात्रयः क्षपाः (ऐ.१.१३)} वे उपर्युक्त वायु उत्तम प्रकाशयुक्त, विभिन्न पदार्थों का सुन्दरता

से विभाग करने वाले, उन पदार्थों को रोकने किंवा नियन्त्रित रखने की क्षमता वाले, विभिन्न प्रकाशित-अप्रकाशित परमाणुओं को प्रकाशित करने वाले, विविध गति व व्याप्तियों से युक्त, अन्धकारयुक्त पदार्थ को तृप्त व व्याप्त करके सब में व्याप्त होकर अपने बल से अत्यन्त ध्वनि करते हुए विभिन्न पदार्थों का भेदन करके अवयवों में विभक्त करते हैं।

(९) रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः।।९।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {अमतिः = रूपनाम (निघं.३.७)} वे मरुद् वायु समूह में परस्पर आश्रय पाते हुए अन्य मरुद् रश्मियों को मिलाते, विभिन्न किरणों को प्रकाशित करते, तीक्ष्ण रूप धारण करके विद्युत् को उत्पन्न करते हैं। वे प्रकाशित व अप्रकाशित कणों को अपने बल से परस्पर बांधते हैं। इसके साथ ही वे नाना रमणीय किरणों में प्रकाशित व गतिशील होते हैं।

(१०) विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः।।१०।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त वायु अनेक बलशाली मरुद् वा छन्द रश्मियों के द्वारा व्यापक क्षेत्र में अग्न्यादि पदार्थों के साथ मिलकर सब पदार्थों में व्याप्त होता है। वह वायु अपनी प्रक्षेपक रश्मियों को धारण करता हुआ असंख्य अवशोषक बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों का अवशोषण करता है।

(११) हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान्।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः।।११।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {अयासः = प्राप्तिशीलाः(म.द.भा.)। ध्रुवच्युतः = ये ध्रुवानपि पदार्थान् च्यावयन्ति निपातयन्ति ते (म.द.भा.)। दुध्रकृतः = ये दुध्राणि धारकाणि बलादीनि कुर्वन्ति ते (म.द.भा.)। भ्राजदृष्टयः = भ्राजत्यः प्रदीप्ता ऋष्टयो व्यवहारप्रापिकाः कान्त्यो येभ्यस्ते (म.द.भा.)। पविः = वज्रनाम (निघं.२.२०), वाङ्नाम (निघं.१.११)} वे वायु देदीप्यमान वज्ररूप वाग्रश्मियों के द्वारा विविध क्रियाओं की सम्पादिका दीप्तियों से युक्त होते हैं। वे धारक बलों को उत्पन्न करके स्थिर व सुदृढ़ पदार्थों, विशेषकर आसुर वा अन्य मेघरूप अन्तरिक्षस्थ पदार्थ को चलायमान करते हैं। वे विभिन्न संगत कर्मों को सब ओर से स्वयं ही सुमार्ग प्राप्त कराते हैं।

(१२) घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये।।१२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {विचर्षणिः = पश्यतिकर्मा (निघं.३.११)। रुद्रः = समष्टिप्राणः (तु.म.द.ऋ.भा.१.६४.२)} इस सृष्टि यज्ञ को शोभायमान करने हेतु संयोग व वियोग के गुण के द्वारा दिव्य वायु से उत्पन्न, प्रकाशक, विविध विभाग करने वाले, घर्षणबलयुक्त, पवित्र करने वाले, महाबली, विभिन्न कणों व लोकों को शीघ्रता से गति कराने वाले, सेचक बलसम्पन्न एवं समूह में रहने वाले मरुत् नामक पवन प्रकाशित व सक्रिय होते हैं।

(१३) प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति।।१३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से उन मरुद् रश्मियों के द्वारा रक्षित विभिन्न विनाशी परमाणु बलयुक्त होकर विभिन्न आशुगामी एवं व्यापक बलों से युक्त होते हैं। विभिन्न उत्पन्न

पदार्थ (परमाणु वा रश्मियां) विभिन्न संयोग क्रियाओं को प्रकृष्टता से धारण व पुष्ट करते हुए सब ओर व्याप्त होते हैं।

(१४) चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः।।१४।।

इसका छन्द विराड् जगती। दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {हिमः = हेमन्तर्तुः (तु.म.द.भा.), हिमेन = उदकेन (नि.६.३६)} वे मरुद् रश्मियां समूहों में गति करती हुई वार-२ अपने कर्मों को करती हुई, बाधक रश्मियों को पार करके प्रकाशयुक्त होकर शोषक बलयुक्त इन्द्र तत्त्व में संगत होकर विभिन्न परमाणुओं को संगत वा स्पर्श करने वाली व उन्हें प्रकाशित करने वाली, अनेकों उदक रूप पदार्थों को पुष्ट करने वाली होती हैं।

(१५) नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्।।१४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से वे मरुद् रश्मियां अति तीक्ष्ण तेज व बलयुक्त होती हैं। अन्य प्रभाव से {मक्षु क्षिप्रनाम (निघं.२.१५)} वे मरुद् रश्मियां विभिन्न गतियों को धारण करती हुई, सुदृढ़ तथा अनेक प्राण रश्मियों से युक्त अन्य छन्द रश्मियों को धारण करती हैं। वे सैकड़ों सहस्रों पदार्थों में व्याप्त होकर अति त्वरित गति से विभिन्न क्रियाओं से युक्त होती हैं।

इन पन्द्रह छन्द रश्मियों में से प्रथम ऋचा में 'वृष्णे' पद 'वृषन्' शब्द से युक्त है। इससे इस समय भी उदान प्राण का उत्कर्ष सिद्ध होता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्तवत् **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में पन्द्रह छन्द रश्मि जिनमें चौदह जगती व एक त्रिष्टुप् हैं, के अतिरिक्त तीन अन्य छन्द रश्मियां, जिनमें दो त्रिष्टुप् और एक जगती सम्मिलित होती हैं, की उत्पत्ति होती है। इस समय अग्नि व मरुद् रश्मियां समृद्ध होती हैं। इस समय विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें तथा सोम तत्त्व तीव्र प्रकाश व क्रियाशीलता से युक्त होता है। विभिन्न कणों का विद्युत् चम्बकीय तरंगों के साथ विविध प्रकार से संगम होने से उन कणों की ऊर्जा बढ़ने लगती है। **विभिन्न क्वाण्टाज् आकाश तत्त्व को अपने साथ संयुक्त करते हुए गति करते हैं अर्थात् आकाश तत्त्व में उनके कारण खिंचाव उत्पन्न होता है।** विद्युदग्नि के कारण ही सभी प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों प्रकार के लोक धारण किए हुए हैं। डार्क पदार्थ एवं डार्क एनर्जी को भी विद्युत् ही धारण करती है। इस धारणकर्म में विद्युत् के साथ संयुक्त विभिन्न छन्दादि रश्मियां अपनी अनिवार्य भूमिका निभाती हैं। विभिन्न बड़ी-२ छन्दादि रश्मियां आकाश तत्त्व के सम्पीडन से उत्पन्न होती हैं। इनके क्रियाकलाप आश्चर्यजनक व दुर्बोध्य होते हैं। सूक्ष्म मूल कणों से लेकर विशाल लोक लोकान्तरों तक सबको गति देने में सूक्ष्म मरुद् व प्राण रश्मियों की भूमिका होती है। प्रकाश, ऊष्मा आदि अनेक प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें इन्हीं मरुद् रश्मियों के कारण उत्पन्न होती हैं। डार्क एनर्जी आदि के तीव्र प्रक्षेपक प्रभाव को दूर करने में भी इन मरुद् रश्मियों की भी भूमिका होती है। विद्युत् की उत्पत्ति भी इन्हीं से होती है। इस समय कॉस्मिक पदार्थ विविध रंगों की दीप्तियों से युक्त होता है। ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की अति सूक्ष्म अश्रव्य-श्रव्य ध्वनियां इन्हीं मरुद् छन्द रश्मियों के कारण उत्पन्न होती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

६. 'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।
'यज्ञेन वर्धत जातवेदसमिति' जातवेदस्यं, वृधन्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपमह्नो रूपम्।।४।।

व्याख्यानम्- इस अच्युता ऋचा के विषय में ४.३०.५ में पढ़ें। इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति नाग प्राण के उत्कर्ष काल में भी होने से इसे अच्युता कहा गया है।।

तदुपरान्त अन्त में गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से उत्पन्न अग्निदेवताक ऋ.२.२ सूक्त पर निम्नानुसार चर्चा करते हैं -

(१) यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम्।।१।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से अग्नि तत्त्व विस्तृत होकर तीव्रता से संयुक्त-वियुक्त होने लगता है। अन्य प्रभाव से {धूर्षदम् = यो धूर्षु हिंसकेषु सीदति तम् (म.द.ऋ.भा.१.१४३.७)। सुप्रयसम् = सुष्ठु कमनीयम् (म.द.भा.)} विभिन्न वाग् रश्मियों से निर्मित मार्गों में, बाधक हिंसक रश्मियों में स्थित विभिन्न परमाणुओं का वाहक व आदाता-ग्रहीता, प्रचण्ड दीप्ति व प्रकाशयुक्त, सुन्दर तथा सभी उत्पन्न पदार्थों में व्याप्त अग्नि विभिन्न मास रश्मियों द्वारा संगत व समृद्ध होता है।

(२) अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः।
दिवइवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः।।२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {स्वसरम् = अहर्नाम (निघं.१.९), गृहनाम (निघं.३.४)। वत्सः = मन एव वत्सः (श.११.३.१.१)} जिस प्रकार प्राण नामक प्राथमिक प्राण के अन्दर सूक्ष्म दैवी गायत्री वाग् रश्मियां मन को प्राण रूप प्रदान करती हैं, उसी प्रकार अन्धकार एवं प्रकाशयुक्त दोनों पदार्थ अग्नि तत्त्व को अपनी ओर बुलाते अर्थात् आकर्षित करते हैं। वह अग्नि प्राण रश्मियों के समान सबमें व्यापक व उनके कार्यों का सम्पादक {मानुषः = पशवो मानुषाः (क.४१.६)} विभिन्न मरुद् वा छन्दादि रश्मियों का निवास हेतु सम्यग्रूपेण संगत रूप में प्रकाशित होता है।

(३) तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम्।।३।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेज व बल से युक्त होता है। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां अन्तरिक्ष में, विभिन्न लोकों वा कणों में, अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न तेजस्वी परमाणुओं में उस अग्नितत्त्व को आकर्षक व कमनीय रश्मियों से निरन्तर व्याप्त करती व कंपाती रहती हैं।

(४) तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु।।४।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह प्रकाशादि रश्मियों का सेचक सुन्दर तेजयुक्त अग्नि तत्त्व विभिन्न कणों व लोकों को अपना निवास बनाता है। वह अग्नि विभिन्न कुटिल पथानुगामी परमाणुओं को भी धारण करता, आकाश के मध्य गमन करता हुआ विभिन्न पदार्थों को एकत्र करता है। वह अग्नि अपनी व्याप्ति व संघात कारक गुण से विभिन्न परमाणुओं द्वारा अनुकूलता से धारण किया जाता है।

(५) स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण। अन्य प्रभाव से {शिप्रम् = शिप्रे हनू नासिके वा (नि.६.१७)। वृधसानासु = वर्द्धमानासु प्रजासु (म.द.भा.)} वह होता रूप अग्नि सर्वोपरि

विराजमान व अहिंस्य रूप होकर विभिन्न छन्द मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रसिद्ध होता है। वह अग्नि हरणशील हननकर्त्ता, वर्धमान विभिन्न उत्पन्न परमाणुओं को अच्छे प्रकार धारण करके प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों को अनुकूलता से प्रकाशित करता है।

(६) स नों रेवत्संमिधानः स्वस्तयें संन्ददस्वान्रयिमस्मासुं दीदिहि।
आ नः कृणुष्व सुवितायं रोदंसी अग्नें हव्या मनुंषो देव वीतयें।।६।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न मरुद् व छन्द रश्मियों से युक्त होकर सम्यग्रूपेण प्रकाशित होता हुआ, अच्छी प्रकार संयोगवियोगादि क्रियाओं को सम्पादित करता हुआ विभिन्न पदार्थों को प्रकाशित करता है। वह अग्नि विभिन्न प्रकाशित व अप्रकाशित कणों वा लोकों को नियन्त्रित करने हेतु सब ओर से आकर्षण बल उत्पन्न करता है। इसके साथ ही वह संयोगादि के विभिन्न व्यवहारों के सिद्ध्यर्थ विभिन्न वाक् तथा प्राण रश्मियों को अपने में व्याप्त किए रहता है।

(७) दा नों अग्ने बृहतो दाः संहस्रिणों दुरो न वाजं श्रुत्या अपां वृधि।
प्राची द्यावांपृथिवी ब्रह्मंणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिंद्युतुः।।७।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह अग्नि व्यापक व महान् पदार्थ को बल प्रदान करता है। वह असंख्य पदार्थों को उत्पन्न करके गति प्रदान करके {दुरः = वृष्टिर्वै दुरः (ऐ.२.४)} उन्हें वर्षा के समान व्यापकता प्रदान करता है। पूर्वोत्पन्न प्रकाशित-अप्रकाशित पदार्थों को विद्युत् से युक्त करके उन्हें सुन्दर प्रकाशित व शीघ्रकारी बनाता है।

(८) स इंधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेणं भानुनां।
होत्रांभिरग्निर्मनुंषः स्वध्वरो राजां विशामतिंथिश्चारुंरायवें।।८।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह प्रकाशमान अग्नि व्यापक रूप व बलयुक्त गुणों के द्वारा अपने प्रकाश व आवागमन क्रियाओं के साथ ऊष्मायुक्त अप्रकाशित पदार्थों के अन्दर स्थित सभी परमाणुओं को भी अनुकूलता से प्रकाशित करता है। वह सुन्दरता से सतत गमन करने वाला अहिंस्य अग्नि विभिन्न पदार्थों को प्रकाश व क्रिया से युक्त करता है।

(९) एवा नों अग्ने अमृतेंषु पूर्व्य धीष्पींपाय बृहद्दिवेषु मानुंषा।
दुहांना धेनुर्वृजनेंषु कारवे त्मनां शतिनं पुरुरूपमिषणिं।।९।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व अपने से पूर्वोत्पन्न व्यापक प्राण रश्मियों के स्तम्भक एवं अविनाशी बलों में असंख्य एवं व्यापक रूपों में विद्यमान छन्द व मरुद् रश्मियों की कमनीयता से ही विभिन्न प्रकार के प्रकाश व क्रियाओं की वृद्धि करता है।

(१०) वयमंग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मंणा वा चितयेमा जनाँ अतिं।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्व१र्ण शुंशुचीत दुष्टरंम्।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से प्राणापानादि की व्यापक रश्मियों के द्वारा प्रेरित व तेजस्वी अग्नि विभिन्न पदार्थों के ऊपर अधिष्ठित होता है। वह अग्नि उन प्राणादि रश्मियों के प्रकाश व बल को विभिन्न आकर्षण बलसम्पन्न परमाणुओं में स्थापित करता है। इस अग्नि को पांच प्रकार की उत्तम रश्मियां अर्थात् प्राण, उपप्राण, सूत्रात्मा वायु, मरुद् व अग्नि रश्मियां ही शुद्ध व प्रकाशित करती हैं।

(११) स नों बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः।
यमंग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमें।।११।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व में विद्यमान प्रतिरोधक-सहनकर्त्ता एवं सेचक बल ही अपने गृहरूप समस्त उत्पन्न परमाणुओं को प्रकाशित करता है। इसके ही कारण अनेक प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं। इस अग्नि तत्त्व में अच्छी प्रकार उत्पन्न व प्रकाशित कमनीय बल ही सबको प्रेरित करते हैं।

(१२) उभयांसो जातवेदः स्याम ते स्तोतारों अग्ने सूरयंश्च शर्मणि।
वस्वों रायः पुंरुश्चन्द्रस्य भूयंसः प्रजावंतः स्वपत्यस्यं शग्धि नः।।१२।।

इसका छन्द विराड् जगती होने के कारण दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह अग्नि अनेक सुन्दर पार्थिव एवं जलतत्वाणुओं को उत्पन्न करने वाला, अनेक प्रकार के परमाणुओं को बसाने व बनाने वाला तथा व्यापक एवं रमणीय मरुदादि रश्मियों से युक्त व उन्हें उत्पन्न करने वाला है। इस अग्नि के परमाणुओं में प्राण व अपान दोनों ही प्रकार की रश्मियां प्रकाशक के रूप में विद्यमान होती हैं।

(१३) ये स्तोतृभ्यो गोअंग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुंपसृजन्ति सूरयः।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वंदेम विदथें सुवीराः।।१३।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से जो प्रकाशित पदार्थ अन्य प्रकाशक पदार्थों की वाग् रश्मियों को अग्रभाग में धारण करने वाली विभिन्न रश्मियों, जो व्यापक एवं बलयुक्त रूप में विद्यमान होती हैं, को धारण करता है। उन सभी रश्मियों की उत्पत्ति प्राणरूप अग्नि तत्त्व से ही होती है। उन रश्मियों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार की रश्मियां भी प्राणापान रश्मियों के द्वारा व्याप्त होती हैं। विभिन्न संयोग व संघात प्रक्रियाओं में विभिन्न प्राण रश्मियां सबको बसाती हुई सब ओर से व्यापक गमन व प्रकाश करती हैं।

इन तेरह छन्द रश्मियों में से प्रथम ऋचा में 'वृधु' धातु की विद्यमानता से इस समय भी उदान प्राण के उत्कर्ष का प्रमाण मिलता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– पूर्वोक्त **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही एक त्रिष्टुप्, जो पूर्व में भी विद्यमान होती है, के अतिरिक्त चार विविध त्रिष्टुप् तथा नौ विविध जगती छन्द रश्मियां एक समूह के रूप में उत्पन्न होती हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा तथा आवृत्ति दोनों में ही वृद्धि होती है। डार्क एनर्जी व डार्क मैटर इन दोनों में भी ये तरंगें निर्बाध गति से गमन करती, विभिन्न कणों को ऊर्जा प्रदान करके उन्हें प्रकाश, गति व ऊष्मा प्रदान करने में सक्षम होती हैं। विभिन्न क्वाण्टाज़् की दूसरे क्वाण्टाज़् तथा मूलकणों के साथ अन्योऽन्य क्रिया होती है। **इन क्वाण्टाज़् की प्राण तत्त्व के कारण ही उत्पत्ति होती है तथा इनका संचालन व नियन्त्रण भी इन मरुत् तथा प्राण रश्मियों के कारण ही होता है।** इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न कणों को नियन्त्रित करने में ऊर्जा तरंगों की भूमिका होती है। **विभिन्न क्वाण्टाज़् मूलकणों से क्रिया करके आवेश युक्त कणों किंवा आयनों को उत्पन्न करते, साथ ही विद्युत् धारा को भी उत्पन्न करते हैं।** सर अल्बर्ट आइंस्टीन का फोटो इलेक्ट्रिक इफैक्ट भी यही प्रसिद्ध करता है। विभिन्न **क्वाण्टाज़् के अन्दर प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, सूत्रात्मा वायु, छन्द व मरुद् रश्मियां सभी विद्यमान होते हैं। विभिन्न क्वाण्टाज़् के सम्पीडन से मूलकणों की उत्पत्ति तथा विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों के सम्पीडन से क्वाण्टाज़् की उत्पत्ति होती है।।**

ॐ इति २०.४ समाप्तः ॐ

ॐ इति विंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

इति "ऐतरेयब्राह्मणे" चतुर्थपञ्चिका समाप्ता।।४।।

इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की चतुर्थ पञ्चिका का वैज्ञानिक व्याख्यान पूर्ण हुआ।।४।।

इति परब्रह्मणः सच्चिदानन्देश्वरस्याऽनुपमकृपाभाजेन, प्रखर वेदोद्धारकस्य परिव्राजकाचार्यप्रवरस्य श्रीमन्महर्षिदयानन्दसरस्वतिनः प्रवलार्यानुयायिवंशप्रवर्त्तकस्य भारतवर्षस्योत्तरप्रदेशस्थ-हाथरसमण्डलान्तर्गतस्य ऐंहनग्रामाभिजनस्य सिसोदिया-कुल-वैजपायेणगोत्रोत्पन्नस्य तत्रभवतः श्रीमतो देवीसिंहस्य प्रपौत्रेण, श्रीघनश्यामसिंहस्य पौत्रेण श्रीमतोः ओम्वतीदेवीन्द्रपालसिंहयोस्तनूजेन वीरप्रसवितुर्राजस्थानप्रान्तस्य जालोरमण्डलान्तर्गत-प्रकाण्डगणितज्ञ-ब्रह्मगुप्त-महाकविमाघजन्मभूर्भीनमाल-निकटस्थभागलभीमग्रामस्थ श्रीवैदिकस्वस्तिपन्थान्यास-संस्थापकेन (वेद-विज्ञान-मन्दिर-वास्तव्येन) आचार्याऽग्निव्रतनैष्ठिकेन विरचित-वैज्ञानिकभाष्यसारसमेतैतरेयब्राह्मणस्य वैज्ञानिक-व्याख्यानस्य (वेदविज्ञान-आलोकस्य) चतुर्थ पञ्चिका समाप्यते।

।। ओ३म् ।।

अथ पञ्चमपञ्चिका

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

लोकों के घूर्णन व परिक्रमण, आकाश, विद्युत्, दृश्य व डार्क पदार्थ-संघर्ष, आकाश व मरुतों का सम्वन्ध, ऊर्जा उत्सर्जन-प्रक्रिया, क्वाण्टाज् एवं अस्थायी कणों की उत्पत्ति, कणों का संघर्षण, आकर्षण-प्रतिकर्षण वल, Vacuum Energy & Mediator Particles आदि का विज्ञान वर्णित है।

२४. चतुर्विंशोऽध्यायः 1565

इसमें द्वादशाह का नवम एवं दशम अहन् के प्रातः एवं माध्यंदिन सवनों के शस्त्र, अवशिष्ट शस्त्र, सर्पराज्ञी, चतुर्होता, प्रजापति, तनु आदि के रूप में तारों की क्रियाओं की तीव्रता, लोकों की पारस्परिक सम्वद्धता, क्वाण्टा का स्वरूप, विद्युत् के कार्य, मूल वल एवं उनकी उत्पत्ति, तारों का विज्ञान, कणों की क्वाण्टाज् से उत्पत्ति, विद्युत् व गुरुत्व वल का सम्वन्ध, unified force, गैलेक्सियों का परिक्रमण व घूर्णन, डार्क पदार्थ, मन एवं वाक् का स्वरूप, क्वाण्टाज् की संरचना व उत्पत्ति, डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी की उत्पत्ति, प्रलय क्रिया आदि का विज्ञान वर्णित है।

२५. पञ्चविंशोऽध्यायः 1639

इसमें अग्निहोत्र, श्रद्धाहोम, ऋत्विज् ब्रह्मा आदि के रूप में आकाश की उत्पत्ति, सृष्टि प्रक्रिया के सोलह महत्वपूर्ण चरण, डार्क व दृश्य पदार्थ की उत्पत्ति, क्वाण्टाज् व कणों की घूर्णन प्रक्रिया, प्रलयक्रम-प्रक्रिया, ईश्वर की भूमिका, पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक, सृष्टि प्रक्रिया में विकृति व उसका निवारण, क्वाण्टाज् की उत्पत्ति आदि की वैज्ञानिक विवेचना है।

एकविंशोऽध्यायः

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

गति का ह्रास, वि.चु. तरंगों की गति की तीव्रता का कारण, विभिन्न कणों और लोकों के घूर्णन में सूत्रात्मा वायु और धनञ्जय की भूमिका, इन दोनों के द्वारा विभिन्न कणों और क्वान्टाज् की उत्पत्ति। कृकल प्राणोत्कर्ष, उत्सर्जन अवशोषण की क्रिया की तीव्रता, छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की अधिकता, प्राण रश्मियों द्वारा सूक्ष्म डार्क एनर्जी का नियन्त्रण, प्रत्येक वल में प्राण रश्मियों के वल की अनिवार्यता, इन सबके वल में मन एवं सूक्ष्म वाक् तत्त्व की भूमिका, चेतन तत्त्व की भूमिका, सूक्ष्म दैवी छन्द रश्मियों एवं प्राण रश्मियों पर डार्क एनर्जी का प्रभाव नहीं, प्राण और मरुद् रश्मियों के योग से विभिन्न कणों और विकिरणों के मार्ग और गति का नियन्त्रण। गयःप्लात। तारों के अन्दर गयः प्लात ऋषि की भूमिका, इस ऋषि प्राण द्वारा छन्द रश्मियों की उत्पत्ति-नियन्त्रण। वैश्वानर-धिष्णा। कृकल प्राणोत्कर्ष, उत्सर्जन अवशोषण में भारी वृद्धि, ऊर्जा में वृद्धि, छन्द रश्मियों द्वारा विभिन्न कणों का सक्रिय होना, नई किरणों का उत्पन्न होना, कॉस्मिक मेघ का चमकना, मरुद् रश्मियों द्वारा वि.चु. तरंगों एवं कणों की गति और वल का स्थायित्व, वि.चु. तरंगों वा कणों के साथ सूक्ष्म ध्वनि तरंगों का होना, मरुद् और प्राण रश्मियों के योग से विभिन्न कणों और विकिरणों की उत्पत्ति। विद्युदावेश संरक्षण में प्राण और मरुद् रश्मियों की भूमिका, कॉस्मिक मेघों में लाल और पीले वर्ण की उत्पत्ति, विभिन्न वलों में प्राण एवं मरुद् रश्मियों की अनिवार्य भूमिका। जातवेदा-अंगिरा। कृकल प्राणोत्कर्ष, ऊष्मा और प्रकाश की विशेष वृद्धि, उत्सर्जन और अवशोषण की तीव्रता, मरुद् रश्मियों के सहयोग से कणों और प्रतिकणों के संयोग से ऊर्जा में भारी वृद्धि, नाना मूल कणों का निर्माण, डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर की उत्पत्ति व वृद्धि, विभिन्न कणों और लोकों में प्राण रश्मियों के द्वारा गति और वल की निरन्तरता, प्राण रश्मियों द्वारा मूल कणों और क्वान्टाज् का आच्छादन।

२१.३ चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का उत्कर्ष, सभी प्रकार की क्रियाओं विशेषकर संघनन और सम्पीडन की क्रियाओं में वृद्धि, उच्चघोष के साथ तीव्र ज्वालाओं की उत्पत्ति, पदार्थ की ऊर्जा में भारी वृद्धि, सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष की पहचान। इळवा। विभिन्न छन्द रश्मियों से नई-२ मरुद् और प्राण रश्मियों का उत्पन्न होना, इससे एक रश्मि जाल और श्रृंखला का निर्माण, पारस्परिक वन्धनों और अन्योन्य क्रियाओं की तीव्रता। न्यूङ्ख क्रिया। पुरुष-पशु-त्रिवृत् का अर्थ। छन्द रश्मियों का विचित्र रूप में फैलना और सक्रिय होना, इस परिवर्तन से सर्ग प्रक्रिया में विशेष तीव्रता। प्रातरनुवाक-आज्य।

२१.४ विभिन्न छन्द रश्मियों में से सवकी प्रेरक और संधानकारिणी 'ओम्' छन्द रश्मियों की विचित्र उत्पत्ति, ऊर्जा में भारी वृद्धि, गम्भीर गर्जना और ज्वालाओं की उत्पत्ति। अनुष्टुप् रश्मियों की विशेष उत्पत्ति, इनके

द्वारा विभिन्न रश्मियों को थामना, वल, ऊर्जा की विशेष वृद्धि, सुन्दर रंगों की दृश्य तरंगों की उत्पत्ति, डार्क एनर्जी, डार्क मैटर का प्रभाव अति न्यून, तीव्र सन्तप्त ज्वालाओं और वि.चु. धाराओं की तीव्रता, संयोग और विखण्डन क्रियाओं की तीव्रता, काले और सफेद रंग के पदार्थों का भी निर्माण, अति तीव्र विद्युत् गर्जना। सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का उत्कर्ष, संयोग प्रक्रिया की तीव्रता, संयोग हेतु ५ पदार्थों की अनिवार्यता- १. ईश्वर, २. मन्, ३. प्राथमिक प्राण, ४. छन्द, ५. मास रश्मियां। विभिन्न रश्मियों के ५ मुख्य गुण, पंक्ति रश्मियों का अन्य रश्मियों में परिवर्तन, इससे अन्योन्य क्रियाओं की वृद्धि, पंक्ति रश्मियों द्वारा क्रियाओं की निरन्तरता। सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का उत्कर्ष, ऊष्मा की विशेष वृद्धि, डार्क एनर्जी का ह्रास, वि.चु. क्षेत्रों और धाराओं की तीव्रता, पदार्थ की ऊर्जा का अनुकूलन, विभिन्न रश्मियों के गति और वलों का अनुकूलन, पदार्थ के संगमन और संघनन में विशेष वृद्धि, ऊर्जा एवं वल के अनुकूलन, ऊर्जा एवं वल के अनुकूलन में ईश्वर की भूमिका, प्राणापान द्वारा विद्युत् की उत्पत्ति, विभिन्न रश्मियों का संपीडन, डार्क एनर्जी का पराभव। सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का उत्कर्ष, पदार्थ के संपीडन में वृद्धि, श्वेतवर्ण के प्रकाश की उत्पत्ति, डार्क एनर्जी एवं दृश्य ऊर्जा में संघर्ष, त्रिष्टुप् आसुरी रश्मियों द्वारा दृश्य ऊर्जा पर प्रहार, विद्युत् और ऊष्मा द्वारा डार्क एनर्जी पर प्रहार, प्राणापान रश्मियों द्वारा सूक्ष्म डार्क एनर्जी पर प्रहार, दृश्य पदार्थ का डार्क पदार्थ से मुक्त होना, विद्युत् तरंगों में प्राण एवं आकाश तत्त्व का मिश्रण, कणों और लोकों के आकार, वलादि में विद्युत् की भूमिका, विद्युत् के अन्य कार्य, विद्युत् का निर्माण एवं स्वरूप। विद्युत् धाराओं और वि.चु. क्षेत्रों की तीव्रता, ब्रह्माण्ड का सबसे बड़ा वल-विद्युत् और वायु का मिश्रित वल, त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों द्वारा विद्युत् के कर्मों का नियमन, विभिन्न कणों के पारस्परिक वन्धनों की दृढ़ता, डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ पर नियन्त्रण, पदार्थ का तरल रूप में वहना, इस चरण में गायत्री द्वारा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का वहन करना, वाहिका गायत्री रश्मियों में निविद् रश्मियों का प्रक्षेप, सम्पीडन की तीव्रता, कॉस्मिक मेघों की गति का नियन्त्रित रहना।

२१.५ सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का उत्कर्ष, वि.चु. वलों व क्षेत्रों की तीव्रता में वृद्धि, प्राणापान द्वारा विद्युत् आवेश पर नियन्त्रण, मरुद् एवं प्राण रश्मियों का पारस्परिक आकर्षण, विभिन्न प्रकाशित-अप्रकाशित पदार्थों के विभिन्न कार्यों के नियन्त्रण और रक्षण में विद्युत् की भूमिका, विद्युत् के कार्यों में मरुद् रश्मियों की अनिवार्य भूमिका। सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि की उत्पत्ति, गायत्री रश्मियों का त्रिष्टुप् रश्मियों को वहन करना, पदार्थ में विक्षोभ, संयोजन-वियोजन की तीव्रता, प्राण और छन्द रश्मियों पर किसी कण के विद्युत् आवेश के मात्रा की निर्भरता, विद्युत् के द्वारा सभी कणों और लोकों की रक्षा, 1291

विद्युत् आवेश से प्राण और मरुद् रश्मियों का उत्सर्जन, प्राण एवं विद्युत् के मेल से विभिन्न कणों के निर्माण और क्रियाओं में वृद्धि तेजस्वी ज्वालाओं की उत्पत्ति, ब्रह्माण्ड में तरल धाराओं का वहना। सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का उत्कर्ष, ऊर्जा विशेषकर प्रकाश में वृद्धि, आकर्षण-प्रतिकर्षण वलों में वृद्धि, वाक् रश्मियों का आकर्षण वलों के विरुद्ध भी गमन, इससे विभिन्न कणों व तरंगों की उत्पत्ति, वाग् रश्मियों की श्रृंखलावद्ध उत्पत्ति, द्रव्यमान की उत्पत्ति, विभिन्न कणों और क्वान्टाज् में वाक् और प्राण की विद्यमानता, इनका मन, सूक्ष्म वाक् एवं ईश्वर द्वारा नियन्त्रण, तारों में पदार्थ की धाराओं और उनकी घूर्णन गतियों और तापमान का सम्वन्ध, तारों में सभी प्रकार की रश्मियों की विद्यमानता। सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का तात्पर्य, वलों एवं ध्वनि तरंगों की तीव्रता में वृद्धि, ऊर्जा में वृद्धि गुरुत्वाकर्षण और आकाश तत्त्व का सम्वन्ध, मरुद् रश्मियों के संगम से छन्द रश्मियों के वल में वृद्धि, वि.चु. तरंगें, मरुद् रश्मियों के साथ मिलकर डार्क एनर्जी से संघर्ष, मरुद् रश्मियों के मार्ग व गति अस्थिर और विचित्र, विभिन्न रश्मियों के संयोग और वियोग में मरुद् रश्मियों की भूमिका, तीव्र विक्षोभ सहित ज्वालाओं की उत्पत्ति, डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ की दुर्वलता, अन्योन्य क्रियाओं में वृद्धि, विभिन्न क्रियाओं हेतु ऊष्मा की अनुकूलता, चेतन तत्त्व की भूमिका, ब्रह्माण्ड में पदार्थ की तरल धाराऐं, मरुद् और प्राण रश्मियों के कारण विभिन्न कणों के द्रव्यमान और आवेश की स्थिरता।

ॐ अथ २१.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. विश्वे वै देवा देवतास्तृतीयमहर्वहन्ति, सप्तदशस्तोमो वैरूपं साम जगती छन्दः।। यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसं राध्नोति य एवं वेद।।
यद्वै समानोदर्कं तत्तृतीयस्याह्नो रूपं, यदश्ववद्यदन्तवद् यत् पुनरावृत्तं यत्पुनर्निनृत्तं यद्रतवद् यत् पर्यस्तवद्यत् त्रिविद्यदन्तरूपं, यदुत्तमे पदे देवता निरुच्यते, यदसौ लोकोऽभ्युदितो यद्वैरूपं यज्जागतं यत्कृतमेतानि वै तृतीयस्याह्नो रूपाणि।।

{उदर्कः = उत्कृष्टतयाप्तिः (तु.म.द.ऋ.भा.१.११३.१८)}

व्याख्यानम्- द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष की चर्चा के उपरान्त महर्षि तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की चर्चा करते हुए कहते हैं कि जब इस प्राण का उत्कर्ष काल होता है, उस समय विश्वेदेवा अर्थात् सभी प्रकार के देव पदार्थ सक्रिय होकर कृकल प्राण को व्याप्त कर लेते हैं किंवा कृकल प्राण सभी देव पदार्थों को वहन करने लगता है। इससे यह बात भी स्पष्ट है कि सभी देव पदार्थों के उत्पन्न होकर सक्रिय हो जाने की स्थिति में कृकल प्राण का उत्कर्ष होना अनिवार्य होता है। इस समय सप्तदशस्तोम रश्मियां भी उत्पन्न हो जाती हैं और इनकी सक्रियता भी इस काल में अनिवार्य होती है। सप्तदशस्तोम के विषय में विस्तार से जानने हेतु ४.१६.१ एवं ३.४२.१ अवश्य पठनीय है। इस समय वैरूप साम रश्मियां भी प्रधान होती हैं, जिनके विषय में ४.१३.२ पठनीय है। इसके साथ ही इस काल में जगती छन्द रश्मियों की प्रधानता भी होती है। हमारे मत में वैरूप साम रश्मियों के रूप में बृहत् साम एवं रथन्तर साम दोनों के संयुक्त परन्तु परोक्ष रूप अर्थात् ओमृकार युक्त दैवी छन्द रश्मियां भी परोक्ष रूप में कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त ४.१३.२ में वर्णित बृहती छन्द रश्मि भी वैरूप साम के रूप में कार्य करती है। रथन्तर एवं बृहत् के परोक्ष रूप को वैरूप साम बतलाते हुए एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है- "बृहदेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् (तां.१२.८.४) एवं रथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् (तां.१२.२.५)"। यहाँ हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त बृहत् और रथन्तर का परोक्ष मिथुन रूप वैरूप साम का कार्य करता है। यहाँ 'विश्वेदेवा' से हमने सभी देव पदार्थों का ग्रहण किया है। इस विषय में ऋषियों का कथन है- विड् वै विश्वेदेवाः (काठ.२६.१०), वीर्यं वै विश्वेदेवाः (काठ.२६.१), श्रोत्रं विश्वेदेवाः (श.३.२.२.१३)। इन वचनों से यह संकेत मिलता है कि अध्याय १० में वर्णित विट् सूक्त रश्मियां जब बलवान् और तेजस्वी हो उठती हैं, उस समय वे 'विश्वेदेवा' संज्ञा को प्राप्त करती हैं। इसी समय श्रोत्र अर्थात् आकाश तत्त्व भी समृद्ध होता चला जाता है। विश्वेदेवा का जगती छन्द रश्मियों से सम्बन्ध बतलाते हुए ऋषियों ने कहा है- "विश्वेदेवा द्वादशाक्षरया जगतीमुदजयन्" (मै.२.११.१०; काठ.१४.४)। इस कृकल प्राण के उत्कर्ष के समय इन विश्वेदेवा, सप्तदशस्तोम, वैरूप साम एवं जगती छन्द रश्मियों की यथावत् समृद्धि होती है। ये सभी अन्य किसी के भी द्वारा अतिक्रमित नहीं किये जाते।।+।।

कृकल प्राण के उत्कर्ष काल के लक्षणों को वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं कि इस समय समानोदर्क अर्थात् उदर्क के तुल्य स्थिति का निर्माण हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस समय सम्पूर्ण पदार्थ उत्कृष्ट रूप से सर्वत्र एकरस अवस्था को प्राप्त कर लेता है। सभी वाग् रश्मियां सर्वत्र

व्याप्त होती हुई संयोज्य अवस्था को प्राप्त करके एक-दूसरे के ऊपर वृष्टि करने लगती हैं। इस परिस्थिति में विद्यमान रस अवस्था के इस स्वरूप की पुष्टि निघण्टुकार के इन वचनों द्वारा भी होती है- "रसः = वाङ्नाम" (निघं.१.११), "उदकनाम" (निघं.१.१२), "अन्ननाम" (निघं.२.७)। यहाँ अर्थापत्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि कृकल प्राण **के उत्कर्ष के पूर्व विभिन्न रश्मियां एकरस अवस्था को प्राप्त नहीं होती।** विदित रहे कि विभिन्न रश्मियों की उत्पत्ति के पूर्व भी सम्पूर्ण पदार्थ एकरस अवस्था में ही विद्यमान होता है, जो विभिन्न रश्मियों के उत्पन्न होते ही पृथक्-२ देश में पृथक्-२ घनत्व को धारण करने लगता है किन्तु कृकल प्राण के उत्पन्न होने पर रश्मि आदि पदार्थ कुछ सीमा तक समान अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है। इसका आशय हम इतना ही ग्रहण कर सकते हैं कि सम्पूर्ण पदार्थ समान रूप से सक्रिय होने लगता है। इस प्रकार की अवस्था का उत्पन्न होना कृकल प्राण की सक्रियता का मुख्य लक्षण है। इस समय उत्पन्न ऋचाओं में "अश्व" पद भी विद्यमान होता है, जिसके कारण उन ऋचा रूप छन्द रश्मियों का बल व्यापक होता हुआ गति करने लगता है। इसके साथ ही इन ऋचाओं में "अन्तः" पद भी विद्यमान होता है, जिसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां प्रत्येक पदार्थ के अन्दर प्रविष्ट हो जाती हैं और उनमें निवास करने लगती हैं। इसी कारण महर्षि ने कहा है- "अन्तो वै क्षयः" (कौ.ब्रा.८.१)। इस समय उत्पन्न ऋचाओं में कुछ पद बार-२ आवृत्त होकर नृत्य करते रहते हैं अर्थात् वे पदरूप सूक्ष्म रश्मियां उन रश्मियों के अन्दर एवं उन रश्मियुक्त पदार्थों के अन्दर बार-२ प्रकट होकर अपना तत्-तत् प्रभाव दर्शाते रहती हैं। इन छन्द रश्मियों में 'रत' पद भी विद्यमान होता है। इसके कारण वे छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों के साथ नाना प्रकार के संयोग करके नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हुए नवीन पदार्थों को जन्म देती हैं। इन छन्द रश्मियों में 'पर्य्यास' पद भी विद्यमान होता है। इसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां तीव्र प्रक्षेपक बलों से युक्त होकर विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को दूर-२ तक सब ओर से प्रक्षिप्त करने लगती हैं। {त्रितः = सम्प्लावकः (म.द.ऋ.भा.५.६.५), त्रिषुवर्धकः (म.द.ऋ.भा.५.४१.१०)} इन छन्द रश्मियों में 'त्रि' शब्द भी विद्यमान होता है। यहाँ 'त्रिवृत्' के स्थान पर 'त्रिवित्' का प्रयोग छान्दस रूप प्रतीत होता है। इस पद के प्रभाव से ये छन्द रश्मियां त्रिविमीय प्रभाव दर्शाते हुए सभी पदार्थों को अपने बलों के कारण उछालते रहने में सक्षम होती हैं। यहाँ पुनः महर्षि कहते हैं कि ये छन्द रश्मियां 'अन्तः' पद से युक्त होती हैं। यहाँ इस कथन की पुनरावृत्ति के दो आशय हमारे मत में प्रतीत होते हैं-

(१) पूर्वोक्तानुसार विभिन्न पदार्थों के आभ्यन्तर भाग में इन छन्द रश्मियों के स्थित होने के 'वीप्सा' अर्थ में प्रयोग हुआ है अर्थात् इस बात को दृढ़ता से कहा गया है कि ये छन्द रश्मियां विभिन्न पदार्थों के अन्दर तक प्रविष्ट होने वाली होती हैं।

(२) ये छन्द रश्मियां उन पदार्थों के अवसान अर्थात् बाहरी सीमा तक भी विद्यमान होती हैं। इस कारण इनका उन पदार्थों पर व्यापक प्रभाव होता है। इन ऋचाओं में देवतावाची पद का निरूपण अन्त में होता है। इसका फल यह है कि इन छन्द रश्मियों के क्रियाशील होने के अन्तिम चरण में ही इनका दैवत प्रभाव अभिव्यक्त होता है। इन छन्द रश्मियों के कारण स्वर लोक सब ओर से समृद्ध होता है, इसका अर्थ यह है कि इस समय सर्वचेष्टा-निमित्त व्यान रश्मियां विद्युत्, अन्तरिक्ष एवं प्रकाशित-प्रकाशक परमाणु सब ओर उत्कृष्टता से गतिशील होने लगते हैं।

इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ नाना प्रकार के रूपों एवं आकृतियों से युक्त होने लगता है। इस जगती छन्द रश्मि प्रधान अवस्था में 'कृ' धातु का भूतकाल का रूप विद्यमान होता है। इससे यह संकेत मिलता है कि इस समय होने वाली विभिन्न प्रकार की क्रियाएं पूर्व में ही प्रारम्भ हो चुकी होती हैं, उनको यहाँ विशेष गति मिलती है। यही भूतकालिक क्रिया की विद्यमानता का मुख्य प्रयोजन है। ये सभी लक्षण कृकल प्राण की उत्कृष्टता एवं सक्रियता के हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न प्रकार के कण और तरंगें तेजस्वी होकर उत्सर्जन और अवशोषण की क्रियाएं समृद्ध होने लगती हैं। इन क्रियाओं में आकाश तत्त्व की भी सक्रियता और समृद्धता होती है। इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सभी क्रियाएं व्यापक रूप में होती हुई विभिन्न कणों और तरंगों के पारस्परिक संयोग की प्रक्रिया भी तीव्र और व्यापक होने लगती है। विभिन्न प्रकार की तरंगों और कणों की ऊर्जा बढ़ने लगती है और इन कणों और तरंगों का पारस्परिक संयोग

भी व्यापक रूप से होने लगता है, जिसके कारण इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न प्रकार के कण भारी कम्पन करने लगते हैं। इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ नाना प्रकार के रंग और रूपों से युक्त होता हुआ विभिन्न प्रक्षेपक और संयोजक बलों के कारण नाना प्रकार के कणों और तरंगों को जन्म देने लगता है। ये सभी प्रभाव त्रिविमीय (3D) होते हैं। इस समय उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों का व्यापक प्रभाव विभिन्न क्रियाओं के अन्तिम काल में अभिव्यक्त होता है। इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ नाना रूपों और आकृतियों को जन्म देता है। इस काल में होने वाली विभिन्न क्रियाएं यद्यपि पूर्व में ही प्रारम्भ हो चुकी होती हैं परन्तु उनकी विशेष समृद्धि इस समय होती है।।

२. युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिवेति तृतीयस्याह्न आज्यं भवति।। देवा वै तृतीयेनाह्ना स्वर्गं लोकमायंस्तानसुरा रक्षांस्यन्ववारयन्त, ते विरूपा भवत, विरूपा भवतेति भवन्त आयंस्ते यद् विरूपा भवत विरूपा भवतेति भवन्त आयंस्तद् वैरूपं सामाभवत्, तद् वैरूपस्य वैरूपत्वम्।।
विरूपः पाप्मना भूत्वा पाप्मानमप हते य एवं वेद।।

व्याख्यानम्– इस चरण में {रूपम् = अन्नं वै रूपम् (श.६.२.१.१२), योषित्येव रूपं दधाति (श.१३.१.६.६), रूपं हिरण्यम् (मै.४.८.२)} सर्वप्रथम विरूप ऋषि अर्थात् विविध प्रकार से प्रकाशित होते हुए एवं अनेक प्रकार से संयोजक गुणों को अभिव्यक्त करते हुए सूक्ष्म प्राण विशेष से अग्निदेवताक ऋ.८.७५ सूक्त रश्मिसमूह की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है–

(१) युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्यः सदः।।१।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थों को आकर्षित करती हुई आशुगामी रश्मियों को अग्नि तत्त्व परस्पर संगत करता है। वह होता रूप अग्नि तत्त्व सभी पदार्थों में पूर्ण रूप से व्याप्त होकर उनका वहन करता है।

(२) उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः। श्रद्विश्वा वार्या कृधि।।२।।

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {विदुष्टरम् अतिशयितमीश्वरम् (म.द.ऋ.भा.६.१५.१०)} वह अग्नि तत्त्व सभी देव पदार्थों को अच्छी प्रकार नियन्त्रित करता हुआ विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा विभिन्न वरणीय परमाणुओं को यथाक्रम धारण करता है।

(३) त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत। ऋतावा यज्ञियो भुवः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सबका उत्पादक एवं अपने बल से विभिन्न परमाणुओं को अतिशय रूप से संयुक्त-वियुक्त करने वाला अग्नितत्त्व सबमें प्रविष्ट होकर विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा आकाश तत्त्व के साथ संगत होता है।

(४) अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम्।।४।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सहस्रम् = सहस्रम् बहुनाम (निघं.३.१), सहस्वत् (नि.३.१०), पशवः सहस्रम् (तां.१६.१०.१२)} अनेक प्रकार की मरुद् रश्मियों के बल से सम्पन्न वह अग्नि तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों और मरुद् रश्मियों को अपने अन्दर धारण करता हुआ क्रान्तदर्शी होकर सब पदार्थों को परस्पर बांधता है। 'मूर्धा' शब्द का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द उणादि कोष (१.१५६) में लिखते हैं– "मूर्वति बध्नाति स मूर्द्धा,

शिरो वा। उकारस्य दीर्घो वकारस्य धकारश्च।"

(५) तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः। नेदीयो यज्ञमङ्गिरः॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि विभिन्न आकर्षण बलों के द्वारा सब ओर से झुकता हुआ विभिन्न परमाणुओं को अपने साथ उस प्रकार संगत करता है, जिस प्रकार सूत्रात्मा वायु सबका आधार बनकर सबको अपने साथ संगत करता है। विभिन्न प्राणों से युक्त वह अग्नि सभी प्रकार की संयोग प्रक्रियाओं में निकटता से विद्यमान रहता है।

(६) तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्॥६॥

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से विविध रूपों से युक्त अग्नि अविनाशी वाग् रश्मियों के द्वारा प्रेरित और प्रकाशित होकर सब ओर से बल एवं प्रकाश रश्मियों से युक्त होता है।

(७) कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः। पणिं गोषु स्तरामहे॥७॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अपरिपक्व तेजयुक्त अग्नि के परमाणुओं के समूह विभिन्न वाग् रश्मियों के प्रकाश आदि कर्मों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को तारने में समर्थ होते हैं।

(८) मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः। कृशं न हासुरघ्न्याः॥८॥

इसका छन्द आर्ची स्वराड् गायत्री होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को किंवा प्राण रश्मियों को विट् संज्ञक सूक्त रश्मियों के साथ संगत रखने में सहायक होता है। इसी प्रकार विभिन्न रश्मियां प्रकृष्टता से सबको आकर्षित करती हुई सदैव अपनी तीक्ष्णता को बनाये रखती हैं।

(९) मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः। ऊर्मिर्न नावमा वधीत्॥९॥

इसका देवता निचृद् गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {दूढ्यः = दूढ्यं दुर्धियं पापधियम् (नि.५.२)। ऊर्मिः = आच्छादकस्तरङ्गः (म.द.य.भा.६.६)। समस्य = सर्वस्य (नि.५.२३)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बाधक असुर रश्मियां संयोगादि क्रियाओं को बाधित नहीं कर पाती हैं। यह अग्नि तत्त्व इन क्रियाओं को आच्छादित करते हुए उनकी रक्षा सदैव करता है।

(१०) नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः। अमैरमित्रमर्दय॥१०॥

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित मृदु {अमः = अमेति गृहनाम (निघं.३.४)} इसके अन्य प्रभाव से उस अग्नि तत्त्व की तेजस्वी बल-रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु अपने निवास क्षेत्र में प्रभाव डालने वाली बाधक असुरादि रश्मियों को दूर करने में समर्थ होते हैं।

(११) कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि॥११॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न प्रकार की किरणों के रूप में प्रकट होने के लिए अनेक मरुद् रश्मियों को प्राप्त करता है। वह अग्नि तत्त्व व्यापक क्रियाओं से युक्त होकर विभिन्न परमाणुओं को अनेक प्रकार से धारण करता है।

(१२) मा नों अस्मिन्महाधने परां वर्ग्भारभृद्यंथा। संवर्गं सं रयिं जय।।१२।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व सवको वहन करने वाला होकर विभिन्न परमाणुओं के साथ सदैव संगत रहता हुआ विभिन्न मरुद् रश्मियों को अपने अन्दर व्याप्त करके उन्हें सम्यग् रूप से नियन्त्रित रखता है।

(१३) अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषंक्तु दुच्छुनां। वर्धा नो अमंवच्छवंः।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत, प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व विभिन्न वाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट करके विभिन्न परमाणुओं के वल एवं प्रभाव क्षेत्र को वढ़ाता है।

(१४) यस्याजुंषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा। तं घेदग्निर्वृधावंति।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस और दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा अच्छी प्रकार संयोग कराने वाले अग्नि तत्त्व के कर्मों का विभिन्न परमाणु सेवन करते हैं और वह अग्नि तत्त्व उन परमाणुओं की वृद्धि करता हुआ उनकी रक्षा भी करता है।

(१५) परंस्या अधिं संवतोऽवंराँ अभ्या तंर। यत्राहमस्मि ताँ अंव।।१५।।

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् अधिक तेजस्वी। {संवतः = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व वाधक तत्त्वों के साथ संघर्ष में उनको नियन्त्रित करके विभिन्न परमाणुओं को सव ओर से तारता है एवं संयोगादि प्रक्रिया में उनकी रक्षा करता है।

(१६) विद्मा हि तें पुरा वयमग्नें पितुर्यथावंसः। अधां ते सुम्नमींमहे।।१६।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न ऋतु प्राण रश्मियों के अनुसार सभी परमाणुओं की रक्षा करता हुआ उन्हें सहज भाव से आकर्षणादि वलों से युक्त करता है।

इन १६ छन्द रश्मियों के युग्म को महर्षि ने 'आज्य' कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने के लिए तेजस्वी वीज का कार्य करती हैं। ये ही उन्हें उत्पन्न करने के लिए प्रारम्भिक इच्छा को उत्पन्न करती हैं।।

{स्वर्गो लोकः = द्वादश मासास्संवत्सरस्स्वर्गो लोकः (काठ.३६.११), स्वर्गो वै लोको यज्ञः (कौ. व्रा.१४.१)} विभिन्न छन्द रश्मियां कृकल प्राण के उत्कर्ष के द्वारा जव परस्पर संगत होने लगती हैं और इस कार्य के लिए विभिन्न मास रश्मिरूप स्वर्ग लोक को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं, तव असुरादि रश्मियां उन्हें रोकने का प्रयत्न करती हैं। उस समय उन देव रश्मियों का असुर रश्मियों के साथ संघर्ष होता है और इस संघर्ष में देव अर्थात् विभिन्न छन्द रश्मियां उन असुरादि रश्मियों पर प्रहार करती हैं। इस प्रहार से असुरादि रश्मियां विकृत होकर नाना रूपों को प्राप्त कर लेती हैं। ये नाना रूप ही वे छन्द रश्मियां हैं, जिनको हमने पूर्व में वैरूप साम कहा है। असुरादि रश्मियों के विकृत होकर विविध रूप धारण करने के कारण ही वैरूप संज्ञा होती है। ये वैरूप साम रश्मियां असुरादि रश्मियों के समान संयोगादि प्रक्रियाओं में वाधक न होकर साधक ही होती हैं। इस कारण उन देव छन्द रश्मियों के संगत होने की प्रक्रिया इन वैरूप साम रश्मियों के उत्पन्न होने के पश्चात् समुचित रूप से होने लगती है और इसके लिए वे मास रश्मियों के साथ संगत होने लगती हैं। यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि **इस ब्रह्माण्ड में कभी-२ बाधक असुर रश्मियां भी विकृत होकर ऐसे रूपों को प्राप्त कर लेती हैं, जो संयोग प्रक्रिया में बाधक न होकर साधक बन जाते हैं।।**

इस प्रकार की स्थिति वनने पर न केवल असुर रश्मियां विकृत होकर संयोग प्रक्रिया में साधक

वनती हैं अपितु असुरादि रश्मियों से आक्रान्त होकर विकृत रूप धारण करने वाले पदार्थ भी पुनः पूर्वरूप प्राप्त कर लेते हैं किंवा सृजन प्रक्रिया के अनुकूल रूप को प्राप्त कर लेते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस समय विविध प्रकार की १६ गायत्री रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनके प्रभाव से इस ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा एवं ऊर्जा में वृद्धि होती है। ये विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विभिन्न कणों के साथ संयुक्त होकर उन्हें विभिन्न प्रकार के संयोग करने के लिए प्रवृत्त करती हैं। संयोग और वियोग की प्रक्रिया तीव्र होकर विभिन्न प्रकार के कणों का निर्माण तेजी से होने लगता है। इस प्रक्रिया में आकाश तत्त्व भी विशेष सक्रिय हो उठता है। ध्यातव्य है कि **आकाश तत्त्व की सक्रियता के बिना संयोग और वियोग की कोई भी क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती है। आकाश तत्त्व को सक्रिय करने में सूत्रात्मा वायु की अहम् भूमिका होती है।** ये गायत्री रश्मियां विभिन्न क्वान्टाज् को प्रेरित और प्रकाशित करती हैं। ये प्रेरित क्वान्टाज् ही विभिन्न कणों को अपने साथ संगत करके सतत प्रेरित करते रहते हैं। इस समय विभिन्न छन्द रश्मियां प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीक्ष्णता को वनाये रखती हैं। ये गायत्री रश्मियां डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के वाधक और प्रक्षेपक प्रभाव को रोकने में भी समर्थ होती हैं। विभिन्न कणों के संयोग के समय ये गायत्री रश्मियां उन कणों को चारों ओर से घेरकर डार्क एनर्जी के प्रभाव से उनकी रक्षा करती हैं। ये सभी गायत्री रश्मियां इस चरण में उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों का वीज रूप होती हैं। कुछ **छन्द रश्मियां डार्क एनर्जी पर प्रहार करके उन्हें विकृत करके अन्य ऐसे विभिन्न रूपों में परिवर्तित कर देती हैं, जिनका प्रभाव डार्क एनर्जी से विपरीत दृश्य ऊर्जा के समान होता है।** जिसके कारण उनका प्रक्षेपक प्रभाव नष्ट होकर संयोगादि प्रक्रियाओं में साधक वन जाता है।।

३. तान् ह स्मान्वेवाऽऽगच्छन्ति, समेव सृज्यन्ते, तानश्वा भूत्वा पद्भिरपाघ्नत, यदश्वा भूत्वा पद्भिरपाघ्नत, तदश्वानामश्वत्वम्।।
अश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद।।
तस्मादश्वः पशूनां जविष्ठस्तस्माद्वश्व प्रत्यङ्पदा हिनस्ति।।
अप पाप्मानं हते य एवं वेद।।
तस्मादेतदश्ववदाज्यं भवति तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

{पदम् = पशवः पदम् (मै.३.७.७), आत्मा वै पदम् (कौ.ब्रा.२३.६)}

व्याख्यानम्- देव रश्मियों के द्वारा विभिन्न रूपों में परिवर्तित हुई असुरादि रश्मियां वैरूप साम रश्मियों का रूप धारण करके उनके साथ अनुगमन करती हुई प्रवाहित होती रहती हैं। वे वैरूप रश्मियां उन देव रश्मियों के साथ ही संयुक्त होने लगती हैं, उस समय देव छन्द रश्मियां आशुगामी और व्यापक रूप धारण करके अपनी सतत गतिशील मरुद् रश्मियों के द्वारा उन वैरूप साम रश्मियों को कुछ दूरी पर रोककर उन्हें थामते हुए अपने साथ संगत कर लेती हैं, जवकि वाधक रश्मियों को वे आशुगामी देव रश्मियां नष्ट भी कर देती हैं क्योंकि वे देव रश्मियां आशुगामी वलों रूपी मरुद् रश्मियों के द्वारा उन्हें दूर ही थामकर पकड़े रहती हैं, इस कारण ही ऐसी देव रश्मियां 'अश्व' कहलाती हैं। ये रश्मियां 'अश्व' रूप होने के कारण विशेष व्याप्ति धर्म वाली भी होती हैं। इन ऐसी देव रश्मियों के कारण ही विभिन्न परमाणु जिन-२ परमाणु वा तरंगों को आकर्षित करना चाहते हैं, आकर्षित करने में समर्थ होते हैं।।+।।

वे ऐसी देव रश्मियां आशुगामी रूप प्राप्त करके सभी छन्द रश्मियों में तीव्रतम गति को प्राप्त हो जाती हैं अर्थात् जव कोई छन्द रश्मि असुर रश्मि को विकृत करके वैरूप साम रश्मियों के रूप में परिवर्तित करके उसे दूर थामे रखने में सक्षम होती है, उस समय उस देव रश्मि का वेग तीव्रतम हो जाता है और इस तीव्रतम वेग के कारण ही उस छन्द रश्मि के पिछले भाग अर्थात् उसकी गति के

विपरीत दिशा वाले भाग से उत्सर्जित होने वाली मरुद् रश्मियां न केवल वैरूप साम रश्मियों को थामे रखती हैं, अपितु बाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट भी करती हैं। उस समय वे देव रश्मियां तीक्ष्ण होकर वज्ररूप धारण कर लेती हैं। इस प्रकार की रश्मियों के द्वारा ही इस समय भी ब्रह्माण्ड में बाधक छन्द रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित किया जाता है।।+।।

आशुगामी देव रश्मियों के इस विशिष्ट गुण के कारण ही पूर्वोक्त 'आज्य शस्त्र' संज्ञक गायत्री छन्द रश्मिसमूह की प्रथम ऋचा में 'अश्व' पद विद्यमान है। 'अश्व' पद की विद्यमानता भी कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जिस समय **तीव्र ऊर्जा वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगें किंवा छन्द रश्मियां डार्क एनर्जी के ऊपर प्रहार करती हैं अथवा उनके परिवर्तित रूप वाली छन्द रश्मियों को नियन्त्रित करती हैं, उस समय उनका वेग अकस्मात् बढ़ जाता है, जिससे अधिक वेग विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का अन्यत्र कहीं नहीं होता।** यहाँ अल्वर्ट आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त का उल्लंघन प्रतीत होता हैं क्योंकि इस परिस्थिति में स्वयं **विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अपनी सर्वमान्य निर्वात में गति ३ लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड का अतिक्रमण करके अधिकतम गति को प्राप्त कर लेती हैं।** इस गति को अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता। उल्लेखनीय है कि यह अधिकतम गति विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के लिए है, न कि प्राणादि रश्मियों के लिए। जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि **इस सृष्टि में सर्वाधिक गति धनंजय प्राण की होती है, जिसका अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता।** डार्क एनर्जी पर प्रहार करते समय विभिन्न क्वान्टाज् अपने पिछले भाग से शक्तिशाली मरुद् रश्मियों का प्रक्षेपण करते हैं। इस प्रक्षेपण के कारण डार्क एनर्जी को नष्ट वा नियन्त्रित किया जा सकता है, साथ ही डार्क एनर्जी के परिवर्तित रूप को दूर थामे रखा जा सकता है और इन्हीं मरुद् रश्मियों के तीव्र प्रक्षेपण के कारण क्वान्टाज् की गति विपरीत दिशा में प्रतिक्रियावश और भी तीव्र हो जाती है। यहाँ **सापेक्षता का उल्लंघन स्थायी रूप से नहीं बल्कि अत्यल्प काल के लिए ही होता है।**
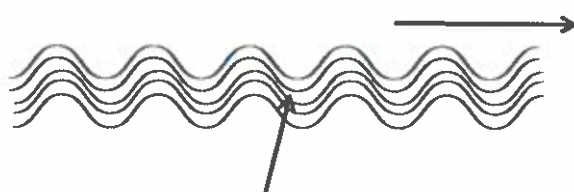
चित्र २१.१ डार्क पदार्थ के ऊपर प्रहार करते समय अत्यल्प काल के लिए विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की गति

४. वायवा याहि वीतये, वायो याहि शिवा दिव, इन्द्रश्च वायवेषां सुताना, मा मित्रे वरुणे वय, मश्विनावेह गच्छत, मा याह्यद्रिभिः सुतं, सजूर्विश्वेभिर्देवेभि, रुत नः प्रिया प्रियास्वित्यौष्णिहं प्रउगं समानोदर्कं तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में ही अनेक छन्द रश्मियां निम्नानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) स्वस्त्यात्रेय ऋषि अर्थात् सहजता से गमन करने वाले सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सूक्ष्म प्राण विशेष से वायु देवताक एवं निचृदुष्णिक् छन्दस्क-

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये। पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः।।५।। (ऋ.५.५१.५)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां ऊष्मा को उत्पन्न करने में विशेष सक्रिय होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द आदि रश्मियों को मास आदि हवि रश्मियों से संयुक्त करके विभिन्न परमाणुओं की उत्पत्ति और गतिशीलता के लिए सब ओर व्याप्त व गतिशील होती हैं। वे प्राणादि रश्मियां विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को अवशोषित वा व्याप्त करके उनमें आकर्षणादि बलों को उत्पन्न करती हैं।

(२) विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सबमें व्यापक और प्रकाशक सूक्ष्म प्राण विशेष से वायुदेवताक एवं विराडुष्णिक् छन्दस्क-

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम्। वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे।।२३।। (ऋ.८.२६.२३)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां शामक व नियन्त्रक गुण से सम्पन्न होकर अन्तरिक्ष में व्याप्त होती हैं। वे व्यापक बलों से युक्त रमणीय रश्मियों में व्याप्त होकर उनका अच्छी प्रकार से वहन करती हैं।

(३) उपर्युक्त ऋषि और देवता एवं पादनिचृदुष्णिक् छन्द वाली-

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे। ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना।।२४।। (ऋ.८.२६.२४)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण परन्तु अल्प तेज वाला होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु अर्थात् प्राण रश्मियां मरुद् रश्मियों के द्वारा आकर्षित की जाती हैं। उनसे युक्त होकर वे प्राण रश्मियां बल और वेग को विशेष रूप से धारण करके विभिन्न ग्रावाण अर्थात् संयोज्य छन्द आदि रश्मियों का रूप प्राप्त करके मेघ रूप पदार्थों का निर्माण करती हैं। 'ग्रावाण' पद के वैज्ञानिक स्वरूप को समझने के लिए ये आर्ष वचन मननीय हैं- ग्रावा मेघनाम (निघं.१.१०), ग्रावाणो हन्तेर्वा गृणातेर्वा गृह्णातेर्वा (नि.९.८), प्राणा वै ग्रावाणः (श.१४.२.२.३३), पशवो वै ग्रावाणः (तां.६.६.१४), मारुता वै ग्रावाणः (तां.६.६.१३) यज्ञमुखं ग्रावाणः (मै.४.५.२)। इन्हीं आर्ष वचनों के आधार पर हमने 'ग्रावाण' शब्द का स्वरूप बतलाया है।

ये तीनों छन्द रश्मियां एक तृच के रूप में संगठित होकर कार्य करती हैं। इन तीनों का दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग समान होना ही इनके सामंजस्य का कारण है। तदुपरान्त निम्नलिखित दो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें से द्वितीय छन्द रश्मि दो बार आवृत्त होती है, ऐसा आचार्य सायण का संकेत है क्योंकि उन्होंने द्वितीय ऋचा को दो बार बोलने का विधान किया है।

(१) पूर्वोक्त स्वस्त्यात्रेय ऋषि से उत्पन्न इन्द्रवायूदेवताक एवं उष्णिक् छन्दस्क-

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः। ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः।।६।। (ऋ.५.५१.६)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से वायु और इन्द्र तत्त्व सबके आच्छादक और ऊष्मा को समृद्ध करने वाले होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और इन्द्र तत्त्व विभिन्न उत्पन्न परमाणुओं को अवशोषित करते हैं तथा इनको बाधक रश्मियों से मुक्त करके प्रकृष्ट रूप से संयोजनीय बनाते हैं।

(२) उपर्युक्त ऋषि और देवता वाली विराडुष्णिक् छन्द रश्मि

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः। निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः।।७।। (ऋ.५.५१.७)

की उत्पत्ति दो बार लगातार होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और इन्द्र तत्त्व विभिन्न बन्धक बलों को धारण और व्याप्त करके विभिन्न उत्पन्न सोम रश्मियों को सब ओर से व्याप्त करते हैं।

इस प्रकार ये दोनों छन्द रश्मियां एक तृच का रूप धारण करती हैं तदुपरान्त निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(क) बाहूवृक्त आत्रेय ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न ऐसे सूक्ष्म प्राण विशेष, जो अपने बाहू रूप बलों के द्वारा विभिन्न रश्मियों का वरण करते हैं, से मित्रावरुणदेवताक एवं उष्णिक् छन्दस्क-

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्। नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये।।१।। (ऋ.५.७२.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से प्राणापान एवं प्राणोदान विशेष सक्रिय होकर विभिन्न कणों वा रश्मियों को निजस्वरूप रश्मियों से विशेष रूप से सिंचित करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां विभिन्न वाग् रश्मियों के साथ मिलकर सूत्रात्मा वायु के समान अन्तरिक्ष में व्याप्त हो जाती हैं और ऐसा करके सोम रश्मियों को अवशोषित करती हैं।

(ख) उपर्युक्त ऋषि, देवता एवं छन्द वाली -

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना। नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये।।२।। (ऋ.५.७२.२)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से मन एवं वाक् तत्त्व के द्वारा नित्य संरक्षित सतत क्रियाशील प्राणापान एवं प्राणोदान अपने धारक गुणों के द्वारा विभिन्न छन्दादि रश्मियों में व्याप्त होकर सोम रश्मियों को अवशोषित करते हैं।।

(ग) उपर्युक्त ऋषि, देवता, छन्द एवं उनके प्रभाव वाली -

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये। नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये।।३।। (ऋ.५.७२.३)

की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान एवं प्राणोदान विभिन्न छन्दादि रश्मियों में स्थित होकर सोम रश्मियों को अपने साथ संगत करने के लिए नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों को सम्पन्न करते हैं।

इसके उपरान्त पुनः एक तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अवस्युरात्रेय ऋषि अर्थात् सदैव गति, कान्ति एवं रक्षणादि गुणों से युक्त सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से अश्विनौ-देवताक एवं निचृत् पंक्ति छन्दस्क-

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम्।।७।। (ऋ.५.७५.७)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थ तीक्ष्णरूप से संयोगादि क्रियाओं को करते हुए फैलते रहते हैं। इसके अन्य प्रभाव से नित्य स्वभाव वाली एवं असुरादि रश्मियों से अहिंसनीय प्रकाशित मार्गों से युक्त प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों को व्याप्त करती हैं। {वेनति कान्तिकर्मा (निघं.२.६)} वे दोनों प्रकार के पदार्थ इन प्राण रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित होते हुए गति और कान्ति से भी युक्त होते हैं। वे दोनों पदार्थ इन्हीं रश्मियों के कारण बाधक तत्त्वों को दबाकर सब ओर व्याप्त होते हैं।

(२) उपर्युक्त ऋषि, देवता, छन्द एवं उनके प्रभाव वाली-

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम्।।८।। (ऋ.५.७५.८)

की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्राणापान एवं प्राणोदान, जो स्वयं रक्षित रहते हुए सदैव प्रकाशयुक्त होते हैं, वे प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों में संयोग-वियोगादि के लिए उपयुक्त वल उत्पन्न करके नाना तत्त्वों का निर्माण करते हैं।

(३) उपर्युक्त देवता और ऋषि वाली विराट् पंक्ति छन्दस्क-

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्।।९।। (ऋ.५.७५.९)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु तेजस्वी होता है। {रुशत् = रुशत् वर्णनाम रोचतेर्ज्वलतिकर्मणः (नि.२.२०)} इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान एवं प्राणोदान विभिन्न कणों वा रश्मियों में वलों को स्थापित करके वाधक पदार्थों को दूर रखते हुए विभिन्न ऋतु रश्मियों के साथ संगत होकर नाना वर्णयुक्त अग्नि तत्त्व को धारण करते हैं। वह अग्नि तत्त्व सुन्दर प्रकाश और ऊष्मा से युक्त अविनाशी रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न पदार्थों को अपने साथ संगत करता है।

इसके पश्चात् अगले तृच का वर्णन करते हैं-

(क) अत्रि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं निचृदुष्णिक् छन्दस्क-

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।१।। (ऋ.५.४०.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण उष्णता को उत्पन्न करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को नियन्त्रित करता हुआ सेचक वलों से युक्त होकर असुर रश्मियों का हनन करता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व मेघरूप पदार्थ समूहों से उत्पन्न विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करके सब ओर व्याप्त होने लगता है।

(ख) उपर्युक्त ऋषि और देवता वाली उष्णिक् छन्दस्क-

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।२।। (ऋ.५.४०.२)

की उत्पत्ति होती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त गुणों वाला इन्द्र तत्त्व अपने वलों के द्वारा विभिन्न सोम रश्मियों के साथ संगत होकर नाना प्रकार के मेघ रूप पदार्थों को उत्पन्न करता है। इसके साथ ही वह इन्द्र तत्त्व इन मेघ रूप पदार्थों में नाना प्रकार की रश्मियों की वर्षा करता है।

(ग) उपर्युक्त ऋषि, देवता, छन्द एवं उनके प्रभाव वाली -

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः। वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।३।। (ऋ.५.४०.३)

की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से वज्ररूप रश्मियों से युक्त आच्छादक एवं वाधक आसुर मेघ को नष्ट करने वाला एवं अनेक प्रकार के वलों का वर्षक इन्द्र तत्त्व विचित्र रक्षणादि क्रियाओं के द्वारा विभिन्न परमाणुओं को आकर्षित करता और वलिष्ठ वनाता है।

अव इससे अगली तृच का वर्णन करते हैं।

(१) पूर्वोक्त स्वस्त्यात्रेय ऋषि से उत्पन्न अग्निदेवताक एवं निचृदुष्णिक् छन्दस्क-

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥८॥ (ऋ.५.५१.८)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण ऊष्मायुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व सभी प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों तथा विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर अपनी सुन्दर किरणों के द्वारा सूत्रात्मा वायु के समान सब में व्याप्त हो जाता है।

(२) पूर्वोक्त ऋषि, देवता, छन्द एवं दैवत व छान्दस प्रभाव वाली -

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥९॥ (ऋ.५.५१.९)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान एवं प्राणोदान के साथ संयुक्त अग्नि तत्त्व व्यापक सोम रश्मियों के साथ संगत होकर सूत्रात्मा वायु के समान सब ओर प्रकट होता है।

(३) पूर्वोक्त ऋषि, छन्द, देवता एवं उनके प्रभाव वाली -

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना। आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण॥१०॥ (ऋ.५.५१.१०)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व गायत्री एवं जगती रश्मियों के साथ संयुक्त होकर वायु और इन्द्र तत्त्व के साथ भी संयुक्त होता है। इसके कारण वह प्रत्येक उत्पन्न परमाणु में सतत गति करता हुआ सब ओर व्याप्त हो जाता है।

इसके पश्चात् अन्तिम तृच का वर्णन करते हुए कहते हैं-

(क) बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सूक्ष्म प्राण विशेष से सरस्वतीदेवताक एवं विराड् गायत्री छन्दस्क-

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्॥१०॥ (ऋ.६.६१.१०)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां संयुक्त होकर नाना प्रकार की उच्च ध्वनियुक्त ज्वालाएं उत्पन्न करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से ये वाग् रश्मियां प्राणापानादि पांच प्राथमिक प्राण एवं मन तथा देवी वाग् रश्मियों के साथ संगत होकर प्रकाशित होने लगती हैं।

(ख) पूर्ववत् ऋषि और देवता वाली निचृद् गायत्री छन्दस्क-

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम्। सरस्वती निदस्पातु॥११॥ (ऋ.६.६१.११)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण किन्तु कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न अप्रकाशित परमाणु व्यापक आकाश में सब ओर व्याप्त होकर विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा पुष्ट और रक्षित होते हैं।

(ग) पूर्ववत् ऋषि, देवता, छन्द एवं उनके प्रभाव वाली-

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती। वाजेवाजे हव्या भूत्॥१२॥ (ऋ.६.६१.१२)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से पांच प्राथमिक प्राणों से उत्पन्न सात छन्द रश्मियों को धारण करने वाली विभिन्न वाग् रश्मियां पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में होने वाले विभिन्न संघातों को समृद्ध करती हैं।

इस कण्डिका में दर्शायी हुई एक-२ छन्द रश्मि से एक-२ तृच का ग्रहण करना आचार्य सायण के मत पर आधारित है, जिन्होंने अपनी याज्ञिक परम्परा में इन ऋचाओं के पठन का विधान किया है। यहाँ महर्षि इन सभी ऋचाओं को प्रउग शस्त्र कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि ये छन्द रश्मियां विशेष

प्रकार के वलों को उत्पन्न करती हैं। इन वलों के विशेष जानकारी के लिए ११ वें अध्याय के प्रथम तीन खण्ड पठनीय है। इन छन्द रश्मियों में से

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये।।१।।

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये।।२।।

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये।।३।। (ऋ.५.७२.१-३)

का अन्तिम पाद "नि बर्हिषि सदत सोमपीतये"

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम्।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम्।।७।।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम्।।८।।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्।।६।। (ऋ.५.७५.७-६)

का अन्तिम पाद "माध्वी मम श्रुतं हवम्"।

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।१।।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।२।।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम।।३।। (ऋ.५.४०.१-३)

का अन्तिम पाद "वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम"

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण।।८।।

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण।।६।।

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण।।१०।। (ऋ.५.५१.८-१०)

का अन्तिम पाद "आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण" समान होने से ये सभी तृच समान उदर्क सिद्ध होती हैं और समान उदर्क होना ही तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष का सूचक है। ये समान उदर्क छन्द रश्मियां समान पादों के द्वारा परस्पर मिश्रित एक-दूसरे के साथ श्रृंखलाबद्ध होती हुई सम्पूर्ण पदार्थ में एकरस व्याप्त हो जाती हैं। यही इनके उदर्क होने का फल है।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में गायत्री एवं पंक्ति रश्मियों के साथ उष्णिक् रश्मि की प्रधानता की अवस्था उत्पन्न होने से ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में ऊष्मा की मात्रा विशेष रूप में समृद्ध होती है, जिसके कारण सम्पूर्ण पदार्थ में सक्रियता बढ़कर अनेक प्रकार के नवीन तत्त्वों का निर्माण होने लगता है। विद्युत् आवेशित कणों की ऊर्जा में विशेष वृद्धि होकर उनके पारस्परिक संयोग की क्रिया तेज होकर नये-२ परमाणु और अणुओं का निर्माण तेजी से होता है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एवं सभी प्रकार के कण प्रकाशादि ऊर्जा से अधिकाधिक सम्पन्न होने लगते हैं। इस समय सम्पूर्ण पदार्थ अनेक प्रकार के रंग रूपों से युक्त कॉस्मिक मेघों की अवस्था को धारण करता है। ब्रह्माण्ड में अनेकत्र तीव्र घोष करती हुई अग्नि की ज्वालायें भी उत्पन्न होती हैं। इस समय डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ विभिन्न क्रियाओं को बाधित करने का प्रयास करते हैं परन्तु तीक्ष्ण ऊष्मा और विद्युत् तरंगें उनके प्रयास को असफल कर देती हैं। इस समय उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां एक-दूसरे से संयुक्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ में एकरस व्याप्त हो जाती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

५. तं तमिद्राधसे महे, त्रय इन्द्रस्य सोमा इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ, निनृत्तवत् त्रिवत् तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- इसके पश्चात् महर्षि **मरुत्वतीय** शस्त्र संज्ञक दो तृचों का वर्णन करते हैं। वे तृच निम्नानुसार हैं-

(१) (क) प्रियमेध ऋषि अर्थात् विभिन्न रश्मियों को सहज भाव से संगत करने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक एवं विराडनुष्टुप् छन्दस्क-

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये। यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः।।७।। (ऋ.८.६८.७)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं के साथ संगत होता हुआ उन्हें प्रकाशित करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं की उत्पत्ति और रक्षा के लिए विभिन्न कणों व रश्मियों को प्रेरित करता है। वह इन्द्र तत्त्व पूर्वोत्पन्न आकर्षण बलों से सम्पन्न अनेक परमाणुओं को नियन्त्रित करता हुआ उनका नायक बन जाता है।

(ख) पूर्ववत् ऋषि और देवता वाली निचृद् गायत्री छन्दस्क-

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः। नकिः शवांसि ते नशत्।।८।। (ऋ.८.६८.८)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से बलों का स्वामी इन्द्र तत्त्व सभी प्रकार की मरुद् रश्मियों की अपेक्षा अत्यधिक बलवान् होकर विभिन्न परमाणुओं को बलयुक्त करता है।

(ग) उपर्युक्त ऋषि और देवता वाली पाद निचृद् गायत्री छन्दस्क-

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम्। जयेम पृत्सु वज्रिवः।।९।। (ऋ.८.६८.९)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु एवं रश्मि आदि पदार्थ विभिन्न प्रकाशित समूह रूप में क्रिया करते हुए वज्र रश्मियों से युक्त

इन्द्र तत्त्व के संरक्षण और संगति में बाधक रश्मियों को नियन्त्रित करते हैं।

(२) (क) मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सबको सहजता से संगत करने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक आर्षी विराड् गायत्री छन्दस्क-

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य। स्वे क्षये सुतपाव्नः।।७।। (ऋ.८.२.७)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी बल युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {सोमः = वृत्रो वै सोम आसीत् (श.३.४.३.१३), पशवः सोमो राजा (तै.ब्रा.१.४.७.६), प्राणः सोमः (श.७.३.१.२)} विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को गति देने एवं पवित्र करने वाला इन्द्र तत्त्व वृत्र नामक बाधक आसुर आवरण एवं विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियों के बीच सक्रिय रहता है और इन सबको ही पृथक्-२ रूप से प्रभावित करता है।

(ख) उपर्युक्त ऋषि, देवता, छन्द एवं उनके प्रभाव वाली -

त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः। समाने अधि भार्मन्।।८।। (ऋ.८.२.८)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। {श्चोतन्ति = श्चोतति गतिकर्मा (निघं.२.१४), श्च्युतिर् क्षरणे, श्चुतिरासेचने, भार्मन् = संग्राम (पं.आर्य मुनि ऋ.भा.)} इसके अन्य प्रभाव से ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में पारस्परिक संघर्ष होने पर तीन प्रकार के मेघरूप पदार्थसमूह गतिशील हो उठते हैं और उनमें से तीन प्रकार के रश्मिसमूह परस्पर एक-दूसरे को परिपूर्ण करते हैं।

(ग) उपर्युक्त ऋषि और देवता वाली आर्षी गायत्री छन्दस्क-

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः। दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य।।९।। (ऋ.८.२.९)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों में व्यापक रूप से स्थित होकर अपने सेचक और धारक बलों के द्वारा विभिन्न ज्वालाओं को उत्पन्न करता है। वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण बलयुक्त परमाणुओं के मध्य स्थित होकर उन्हें उत्तेजित करता है।

इन दोनों तृच रश्मिसमूहों को महर्षि ने मरुत्वतीय कहा है। इनमें भी प्रथम रश्मिसमूह को 'प्रतिपत्' तथा द्वितीय रश्मिसमूह को 'अनुचर' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रथम तृच रश्मिसमूह पहले उत्पन्न होता है और द्वितीय तृच रश्मिसमूह प्रथम का अनुगमन करता हुआ उत्पन्न होता है। मरुत्वतीय होने के कारण ये छन्द रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होती हैं। प्रथम रश्मिसमूह की प्रथम ऋचा में 'नृतुः' पद 'नृत्' धातु से युक्त है तथा द्वितीय रश्मिसमूह में 'त्रय' संख्यावाची शब्द विद्यमान है। इस कारण ये दोनों ही लक्षण कृकल प्राण के उत्कर्ष के सूचक हैं। इन दोनों ही शब्दों के प्रभाव से विभिन्न परमाणु अत्यन्त विक्षेप से युक्त होकर मानो नृत्य करते हुए अन्य परमाणुओं के सम्प्लावक और संतारक का रूप धारण कर लेते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ही विविध प्रकार की ५ गायत्री एवं एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इस समय इस ब्रह्माण्ड में विद्युत् तरंगों की तीक्ष्णता बढ़ती है और वह विद्युत् विभिन्न प्रकार के कणों की गतियों और बलों को नियन्त्रित एवं डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के प्रतिकूल प्रभावों को नष्ट करके विभिन्न दृश्य कणों व तरंगों की रक्षा करती हैं। उस समय ब्रह्माण्ड में तीन प्रकार के कॉस्मिक मेघों का निर्माण हो चुका होता है। तीव्र विद्युत् तरंगों के प्रभाव से इन कॉस्मिक मेघों में से तीन प्रकार की तरंगें विशेष रूप से उत्सर्जित होती हैं, जो परस्पर एक-दूसरे से मिश्रित होकर इन मेघों में अग्नि की ज्वालाओं को उत्पन्न करती हैं। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

६. इन्द्र नेदीय एदिहीत्यच्युतः प्रगाथः; प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिरिति ब्राह्मणस्पत्यो, निनृत्तवांस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यप इति धाय्या अच्युताः।।
'नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमदिति' मरुत्वतीयः प्रगाथः, पर्यस्तवांस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
'त्र्यर्यमा मनुषो देवतातेति' सूक्तं त्रिवत् तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- इसके पश्चात्

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।६।। (ऋ.८.५३.५-६)

ऋग्द्वय की उत्पत्ति होती है। यह प्रगाथ अच्युत कहलाता है क्योंकि इसकी उत्पत्ति नाग एवं उदान प्राण दोनों के उत्कर्ष काल में भी होती है। इन दोनों ही ऋचाओं के विषय में ४.२६.५ व ४.३१.४ पढ़ें। इसके पश्चात् एक अन्य प्रगाथ की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

घोरपुत्रः कण्व ऋषि से बृहस्पतिदेवताक और पथ्या बृहती छन्दस्क 'प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः' की उत्पत्ति होती है। आचार्य सायण ने यहाँ इससे अगली ऋचा को सम्मिलित करके एक प्रगाथ माना है परन्तु महर्षि आश्वलायन के श्रौतसूत्र (५.१४.६-७) के अनुसार यह एक ऋचा ही दो ऋचाओं के समान प्रभाव उत्पन्न करती है। इस विषय में ३.१७.२ द्रष्टव्य है। इसका हम पिष्टपेषण उचित नहीं समझते।

इन ऋचाओं में से "इन्द्र नेदीय एदिहि"......ऋचा में 'शन्तम' पद दो बार आवृत्त हुआ है तथा "प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः......" के तृतीय पाद में 'इन्द्रो वरुणो मित्रो' में ओकार की तीन बार आवृत्ति है, जो इन पदरूप रश्मियों के नर्तन के समान प्रभाव डालती है। इस कारण इन ऋचाओं को नृतवती कहा गया है और ऐसा होना ही तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष का सूचक है।।

इन तीनों धाय्या संज्ञक ऋचाओं के विषय में पूर्व खण्ड द्रष्टव्य है। ये ऋचाएं प्रथम और द्वितीय अहन् में भी समान रूप से उत्पन्न होने के कारण अच्युत कहलाती हैं।।

तदनन्तर वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से उत्पन्न इन्द्रदेवताक निम्नलिखित दो ऋचाओं की उत्पत्ति होती है-

(१) नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे।।१०।। (ऋ.७.३२.१०)

इसका छन्द भुरिगनुष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं को अपने बल से थामता और प्रकाशित करता हुआ, उनमें अनुकूलतापूर्वक आकर्षण और प्रतिकर्षण बल उत्पन्न करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से सम्पन्न होकर वर्जन आदि विभिन्न कर्मों में श्रेष्ठ बल रश्मियां प्रदान करके विभिन्न परमाणुओं की रक्षा करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सुन्दर एवं वज्र रूप रश्मियों को रमाते हुए उन्हें दूर नहीं फेंकता है अर्थात् उन्हें बांधे हुए रखकर तीक्ष्णता के साथ बाधक तत्त्वों पर प्रहार करता है।

(२) गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः।

अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम्।।११।। (ऋ.७.३२.११)

इसका छन्द बृहती होने से इसके देवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से समृद्ध होता हुआ, पदार्थ को संघनित करके विभिन्न आकार प्रदान करने में सहयोग करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह तेजस्वी इन्द्र तत्त्व निर्बल परमाणुओं को बल प्रदान करता हुआ एवं उन्हें विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों से युक्त करता हुआ, उनकी रक्षा करता है। इसके प्रभाव से विभिन्न सुन्दर मरुद् रश्मियों की रक्षक विभिन्न वज्र रश्मियां भी उत्तेजित हो उठती हैं।

इन दोनों छन्द रश्मियों को महर्षि ने मरुत्वतीय कहा है, जिसका तात्पर्य पूर्ववत् समझें। इनमें से प्रथम ऋचा में 'पर्यास' शब्द होने से ये ऋचाएं तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक हैं।।

तदनन्तर गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषि अर्थात् शक्तिशाली गौरिवीति, जिनके विषय में विस्तार से जानने के लिए ४.२.१ द्रष्टव्य है, से उशना इन्द्रदेवताक ऋ.५.२९ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः।।१।। (ऋ.५.२९.१)

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके देवत और छान्दस प्रभाव से विशेष कामनायुक्त इन्द्र तत्त्व अपने आकर्षण बलों को विस्तृत करता हुआ, संयोगादि प्रक्रियाओं को समृद्ध करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तीन प्रकार के नियंत्रक बलों से युक्त होकर प्रकाशित और अल्पप्रकाशित किंवा **प्राणापानादि प्राथमिक प्राण एवं सूत्रात्मा वायु के व्यवहार में तीन प्रकार के आकर्षण बलयुक्त प्रकाश रश्मियों से प्रकाशित होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को धारण करता है। वह इन्द्र तत्त्व इन प्राथमिक प्राणों के पवित्र बलों को धारण करता है।**

(२) अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से देवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सब ओर से विभिन्न मरुद् रश्मियों से प्रकाशित होता हुआ विभिन्न सोम अर्थात् मूर्तिमान पदार्थों की रक्षा करता है। वह अपनी तीक्ष्ण वज्ररूप रश्मियों के द्वारा विभिन्न मेघरूप पदार्थों को विदीर्ण करके किंवा उनमें व्याप्त होकर विभिन्न बहते हुए पदार्थों की धाराओं को उत्पन्न करता है।

(३) उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसका देवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्णतर होता है। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापानयुक्त विभिन्न मरुद् रश्मियां प्रकाशित इन्द्र तत्त्व के द्वारा अवशोषित होती हैं। उस इन्द्र तत्त्व के द्वारा अच्छी प्रकार प्रेरित सोम रश्मियां मास रश्मियों को अवशोषित करती हैं। वह रक्षक इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायुयुक्त विभिन्न किरणों को अपने साथ संगत करके मेघ रूप पदार्थों को सब ओर से व्याप्त करता है।

(४) आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन्।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से देवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र

तत्त्व आकाश एवं विभिन्न परमाणुओं को विशेष रूप से तारता हुआ आकर्षित करता है। वह इसके अन्दर व्याप्त होता हुआ विभिन्न परमाणुओं को कंपाता, छिन्न-भिन्न करके शुद्ध करता और उन्हें गति प्रदान करता है। इसके साथ ही वह इन्द्र तत्त्व बाधक पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता हुआ सृजनधर्मी पदार्थों की रक्षा करता है।

(५) अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम्।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः॥५॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणुओं में व्याप्त वह इन्द्र तत्त्व गतिशील सूर्य रश्मियों के समान अपने साथ चलने और रमण करने वाली आकर्षण बल से युक्त किरणों को व्याप्त करता हुआ गति करता है। सभी प्रकार के देव पदार्थ विभिन्न मरुद् रश्मियों को इन्द्र रश्मियों के प्रति प्रक्षिप्त करते हैं।

(६) नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत्।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम्॥६॥

इसका छन्द, दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। {भोजते = भोजते क्रुध्यतिकर्मा (निघं.२.१२)} इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व जब अपनी वज्र रश्मियों से असुर पदार्थ पर प्रहार करता है, उस समय ९९ प्रकार की तीक्ष्ण व हिंसक रश्मियां उत्पन्न होकर उस असुर पदार्थ को नष्ट करती हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि **वज्र रश्मियों में ९९ प्रकार की रश्मियां विद्यमान होती हैं**। इस इन्द्र तत्त्व के साथ संगत हुई मरुद् रश्मियां इन्द्र तत्त्व को तीन प्रकार से प्रकाशित करती हुई आकाश तत्त्व का विलोडन करती हैं। यहाँ तीन प्रकार से प्रकाशित होने का अर्थ त्रिविमीय क्षेत्र में होना है, ऐसा हमारा मत है।

(७) सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम्॥७॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {महिषा = महिषाः महन्नाम (निघं.३.३), अग्निर्वै महिषः स हीदं जातो महान्त्सर्वमैक्षत् (श.७.३.१.२३), प्राणा वै महिषाः (श.६.७.४.५), ऋत्विजो वै महिषाः (श.१२.८.१.२)} अग्नि और इन्द्र तत्त्व दोनों ही प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों के साथ-२ अन्तरिक्ष लोक को भी प्रकाशित करते हुए विभिन्न वायु रश्मियों को अवशोषित करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व आच्छादक आसुर मेघ को नष्ट करने के लिए सोम रश्मियों को तेजस्वी बनाता हुआ विस्तृत करता है। **वह इन्द्र तत्त्व अपने समान प्रकाशित अग्नि तत्त्व के साथ मिलकर सूत्रात्मा वायु के साथ संगत प्राण एवं ऋतु रश्मियों के तीन सौ विविध संयोगों से उत्पन्न परमाणुओं की रक्षा करता है।**

(८) त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान॥८॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व प्रकाशित होता हुआ दूर-२ तक विस्तृत होता जाता है। इसके अन्य प्रभाव से वह **अहिंस्य इन्द्र तत्त्व पूर्वोक्त ३०० प्रकार के विभिन्न परमाणुओं की न केवल रक्षा करता है अपितु उनकी रचना भी करता है**। वह इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न वायु रश्मियों एवं आकाश तत्त्व को पूर्ण करता हुआ बाधक असुर रश्मियों का नाश करता है। सभी देव पदार्थ इन्द्र तत्त्व को सक्रिय करने के लिए किंवा उसके साथ संगत होकर उसे धारण करते रहते हैं।

(९) उशना यत्सहस्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम्॥९॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह आकर्षक इन्द्र तत्त्व वल और वेग से युक्त व्यापक किरणों के द्वारा सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त हो जाता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण वज्र रश्मियों से विभिन्न देव परमाणुओं के शोषक वलों की रक्षा करता है और उनके साथ गमन करते हुए उनमें व्याप्त हो जाता है।

(१०) प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः।।१०।।

इसका छन्द, दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूर्य रश्मियों के चक्रण को नियन्त्रित व समृद्ध करता है। वही इन्द्र तत्त्व अन्य परमाणुओं को भी अपनी तीक्ष्ण वज्र रूप रश्मियों से व्याप्त व धारण करता है तथा अनिष्ट रश्मियों को नष्ट करके विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को निर्विघ्नता पूर्वक सम्पन्न करता है।

(११) स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम्।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व ४.२.१ में वर्णित गौरिवीति संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर तीव्रता से प्रकाशित और समृद्ध होता हुआ, विभिन्न संघर्षों में वाधक रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करता है। सरल गति से चलने वाली अन्तरिक्ष में व्याप्त वायु-रश्मियां इन्द्र तत्त्व के साथ व्याप्त होकर अच्छी प्रकार क्रियाशील होती हुई सोम रश्मियों को अवशोषित करती हैं।

(१२) नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन्।।१२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु तेजस्वी होता है। {नवग्वाः = नवगतयो नवनीतगतयो वा (नि.११.१६)} इसके अन्य प्रभाव से दसों दिशाओं में गमन करने वाली **नौ प्रकार की गतियों से युक्त प्रकाशित होती हुई मरुद् रश्मियां** विभिन्न रश्मियों के रक्षक और उनको आच्छादित करने वाले इन्द्र तत्त्व को अपनी तेजोमयी रश्मियों के द्वारा सब ओर से प्रकाशित करती हैं।

(१३) कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम।।१३।।

इसका छन्द, दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सब ओर गति करने वाली तेजयुक्त रश्मियों को धारण व उत्पन्न करता है। वह अतिशय वलवान् इन्द्र तत्त्व असुर तत्त्व के साथ संघर्ष के समय नई-२ सूक्ष्म रश्मियों को उत्पन्न व प्रकाशित करता है।

(१४) एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः।।१४।।

इसका छन्द, दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह वज्र रश्मियुक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न तेजस्वी प्राणों के साथ संगत होकर विभिन्न परमाणुओं के प्रति केन्द्रीभूत होकर उनको अपने वल से धारण करता है और ऐसा करके वह उनके भेदन के द्वारा अनेक नवीन परमाणुओं को उत्पन्न करता है। इन्द्र तत्त्व की तीक्ष्ण किरणों को कोई भी तत्त्व दवा नहीं सकता है।

(१५) इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।

वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्।।१५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अतिशय वलयुक्त होकर नवीन-२ परमाणुओं को उत्पन्न करता हुआ विद्युत् के द्वारा उनको आकर्षित करता है। विभिन्न शोभन कर्म करने वाला इन्द्र तत्त्व वस्त्रों की भांति विभिन्न प्रकाशक परमाणुओं को धारण व आच्छादित करता हुआ उनको रमणीय व तीक्ष्ण किरणों के रूप में वसाता है। इस सूक्त की कई ऋचाओं में 'त्रि' शब्द विद्यमान होने से इन ऋचाओं की उत्पत्ति कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है, वहीं 'त्रि' शब्द के प्रभाव से ये छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को अनेक प्रकार की क्रियाओं एवं वाधाओं में तारने में सक्षम होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ही विद्युत् तरंगों को सक्रिय व तीक्ष्ण वनाने वाली १४ त्रिष्टुप् रश्मियां एवं ३ पंक्ति, ३ वृहती, १ जगती एवं १ अनुष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती हैं। इस समय ब्रह्माण्ड में विभिन्न विद्युत् चुम्वकीय तरंगें एवं विभिन्न प्रकार के कण अत्यन्त तीव्र ऊर्जा को धारण करते हैं। पदार्थ के संघनन और विस्तार की प्रक्रिया भी तेज होने के साथ-२ विभिन्न प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाएं भी तीव्र होती हैं। इस समय डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ के प्रतिकूल प्रभाव को तीव्र विद्युत् तरंगें नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण पदार्थ में विभिन्न कणों के मध्य अन्योन्य क्रियाएं तेजी से होने लगती हैं। **चेतन ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा से आकर्षण-प्रतिकर्षण एवं धारण बल का विधिवत् सामंजस्य बना रहता है।** डार्क एनर्जी को नियन्त्रित वा नष्ट करने के लिए तीक्ष्ण विद्युत् तरंगें केन्द्रीभूत होकर अति शक्तिशाली रूप में डार्क एनर्जी पर प्रहार करती हैं। विभिन्न प्रकार की विद्युत् तरंगें प्राणापानादि रश्मियों के पवित्र वलों के द्वारा उत्पन्न होती हैं। विभिन्न पदार्थों को छिन्न-भिन्न करके और उन्हें शुद्ध रूप प्रदान करने के लिए विद्युत् तरंगें उन पदार्थों के परितः विद्यमान आकाश तत्त्व को प्रभावित करती हैं। विद्युत् चुम्वकीय तरंगों के साथ विद्युत् क्षेत्र गमन करता है। **डार्क एनर्जी पर प्रहार करने वाली तीक्ष्ण तरंगों में ९९ प्रकार की तेजस्वी रश्मियां विद्यमान होती हैं। ये रश्मियां डार्क एनर्जी के साथ संयुक्त आकाश तत्त्व को मथने लगती हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एवं विद्युदावेशित कण इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। ये कण ३०० प्रकार के होते हैं। हमारे मत में वर्तमान विज्ञान द्वारा मूल कण माने जाने वाले कणों की कुल संख्या ३०० होनी चाहिए।** ध्यातव्य है कि वर्तमान विज्ञान अभी तक ३०० प्रकार के कणों की खोज नहीं कर पाया है। इन सभी कणों में किसी न किसी प्रकार से विद्युत् की विद्यमानता अनिवार्य होती है। ध्यान रहे कि **३०० कण दृश्य पदार्थ के भाग हैं।** डार्क पदार्थ इनसे पृथक् है। **विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज् विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र के द्वारा ही चक्राकार घूमते और नियन्त्रित होते हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियां नौ प्रकार की गतियों से युक्त दशों दिशाओं में गति करती हैं।** जव तीक्ष्ण विद्युत् तरंगें डार्क एनर्जी अथवा डार्क पदार्थ पर आक्रमण करती हैं, उस समय वे आक्रामक तरंगें ९९ प्रकार की रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। इस सृष्टि में विद्युत् वल ही मानवीय भौतिक तकनीक से ज्ञेय वलों में सवसे वड़ा वल होता है। यह वल धारक, आकर्षक, प्रतिकर्षक, छेदक और आच्छादक आदि विभिन्न वलों से युक्त होता है।।

७. यद्द्याव इन्द्र ते शत, यदिन्द्र यावतस्त्वमिति वैरूपं पृष्ठं भवति राथन्तरेऽहनि तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
'यद्द्यावानेति' धाय्याऽच्युता।।
'अभि त्वा शूर नोनुमः' इति रथन्तरस्य योनिमनु निवर्तयति; राथन्तरं ह्येतदहरायतनेन।।
'इन्द्र त्रिधातु शरणमिति' सामप्रगाथस्त्रिवांस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति' तार्क्ष्योऽच्युतः।।१।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त पुरुहन्मा ऋषि अर्थात् व्यापक रूप से हनन करने वाली सूक्ष्म प्राण रश्मि विशेष

से इन्द्रदेवताक निम्नलिखित दो छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं-

(१) यद् द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी।।५।। (ऋ.८.७०.५)

इसका छन्द विराड् बृहती होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी होकर व्यापक होता हुआ विभिन्न पदार्थों को आकार रूप प्रदान करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सैकड़ों अन्तरिक्ष एवं पृथिवी आदि अप्रकाशित लोकों एवं सहस्रों तारों में व्याप्त होता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह इन्द्र तत्त्व इस ब्रह्माण्ड के प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान होता है।

(२) आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृषन्वि॒श्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न्गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः॑।।६।। (ऋ.८.७०.६)

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णरूप से विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह परम शक्तिशाली वज्र रश्मियों एवं सेचक बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व अपने महद् बल के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थों को परिपूर्ण करता हुआ विचित्र एवं रक्षित मार्गों से विभिन्न तरंगों को वहन करता है।

इसके पश्चात् वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक निम्नलिखित दो छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) यदि॑न्द्र॒ याव॑त॒स्त्वमे॒ताव॑द॒हमीशी॑य।
स्तो॒तार॒मिद्दि॑धिषेय रदावसो॒ न पा॑प॒त्वाय॑ रासीय।।१८।। (ऋ.७.३२.१८)

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से व्यापक होता हुआ विभिन्न पदार्थों को संघनित करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न भेदन क्रियाओं में सक्रिय भूमिका निभाने वाला इन्द्र तत्त्व जिन-२ परमाणुओं का नियन्त्रक होता है, वे परमाणु इन्द्र तत्त्व के नियंत्रक बल के द्वारा अन्य परमाणुओं पर नियन्त्रण करते हैं और बाधक, प्रतिकर्षक वा प्रक्षेपक बलों को दूर रखते हैं।

(२) शिक्षे॑यमि॒न्मं॑हय॒ते दि॒वेदि॑वे रा॒य आ कु॑हचि॒द्विदे॑।
न॒हि त्वद॒न्यन्म॑घवन्न॒ आप्यं॒ वस्यो॒ अस्ति॑ पि॒ता च॒न।।१९।। (ऋ.७.३२.१९)

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से संयोग-वियोगादि प्रक्रियाओं का विस्तार करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व जहाँ कहीं भी प्रकाश रश्मियों को उत्सर्जित करता है, वहाँ वह व्यापक मरुद् रश्मियों को अपने साथ पालता हुआ, उन प्रकाश रश्मियों में व्याप्त होता है।

यहाँ महर्षि ने उपर्युक्त दोनों प्रगाथ रश्मियों को क्रमशः वैरूप एवं पृष्ठ कहा है। इससे संकेत मिलता है कि प्रथम प्रगाथ रश्मियां इस ब्रह्माण्ड में विविध रूपों और आकृतियों को बनाने और द्वितीय प्रगाथ रश्मियां विभिन्न पदार्थों को आधार प्रदान करने में सहभागिनी होती हैं। जैसा कि हम खण्ड ४.१३ में लिख चुके हैं कि वैरूप साम रश्मियां रथन्तर साम रश्मियों के समान व्यवहार करती हैं, इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां विभिन्न रमणीय रथों अर्थात् आकाशरूप साधनों के द्वारा विभिन्न परमाणुओं को तारती हुई ले जाती हैं। आचार्य सायण ने इन दोनों प्रगाथों को क्रमशः 'स्तोत्रिय' एवं 'अनुरूप' कहा है। इस विषय में एक ऋषि का कथन है- "आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ" (कौ.ब्रा.३०.८)। इससे सिद्ध होता है कि ये दोनों प्रगाथ रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ समूह में सतत गमन करती रहती हैं। आचार्य सायण ने इन छन्द रश्मियों की निष्केवल्य संज्ञा भी की है। निष्केवल्य के विषय में महर्षि ऐतरेय महीदास ने कहा है- "आत्मा यजमानस्य निष्केवल्यम्" (ऐ.८.२) इससे भी यही सिद्ध होता है कि ये छन्द रश्मियां संयोजनीय पदार्थों के अन्दर सतत विचरण करती रहती हैं, साथ ही वे अपना स्वरूप पृथक्

भी बनाये रखती हैं, यही उनकी निष्केवल्यता है। ये छन्द रश्मियां वैरूप साम संज्ञक होने से तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक हैं।।

तदुपरान्त एक ऋचा

यद्वावानं पुरुतमं पुराषाळा वृंत्रहेन्द्रो नामांन्यप्राः।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत्।।६।। (ऋ.१०.७४.६)

की उत्पत्ति की चर्चा की गई है, जिसके विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है। यह छन्द रश्मि प्रथम और द्वितीय अहन् अर्थात् नाग एवं उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न होती है, इस कारण यह ऋचा भी अच्युत कहलाती है। यह ऋचा धाय्या संज्ञक होने से विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा धारण की जाती है।।

तदनन्तर

"अभि त्वां शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवंः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषंः।।२२।। (ऋ.७.३२.२२)

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तंस्त्वा हवामहे।।२३।। (ऋ.७.३२.२३)

की उत्पत्ति होती है। इन दोनों ही रश्मियों के विषय में ४.१०.३ पठनीय है। इन दोनों रश्मियों के युग्म रूपी प्रगाथ को रथन्तर साम की योनि कहा है, इस विषय में भी ४.१०.३ पठनीय है। ये दोनों छन्द रश्मियां पूर्वोक्त अच्युत धाय्या छन्द रश्मि के तत्काल पश्चात् उत्पन्न होती हैं तथा ये दोनों रश्मियां उस अच्युत धाय्या छन्द रश्मि को पुनः-२ लौटाती हुई उसे अन्य रश्मियों के साथ गूंथने लगती हैं। इन रश्मियों की उत्पत्ति प्रथम अहन् में भी होती है और वहाँ भी यही 'यद्वावान्.......' अच्युत धाय्या भी उत्पन्न होती है, इस कारण भी इसे रथन्तर साम की योनि कहा गया है। ये छन्द रश्मियां अपने आयतन अर्थात् सब ओर से चेष्टा वा विस्तार के द्वारा विभिन्न परमाणुओं की जननी एवं आकाशादि द्वारा उनकी तारिका होती हैं।।

तदुपरान्त शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सहजकर्मा ऋषि प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक एवं विराड् बृहती छन्दस्क-

इन्द्रं त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत्।
छर्दिर्यच्छ मघवंद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः।।९।। (ऋ.६.४६.९)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से तेजस्वी होता हुआ पदार्थ को आकार रूप देने में सहयोग करता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व {वरूथम् = गृहनाम (निघं.३.४)} तीन पदार्थों के धारण से युक्त होकर तीन आश्रय स्थलों अर्थात् पृथिवी, द्यौ और अन्तरिक्ष लोकों को सहजता से आश्रय प्रदान करता है। इन्द्र तत्त्व के विषय में महान् वेदवेत्ता महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "वागिन्द्रः" (श.८.७.२.६), "प्राण एवेन्द्रः" (श.१२.९.१.१४) एवं "मन एवेन्द्र" (श.१२.९.१.१३)। इस प्रकार इन्द्र तत्त्व मन, वाक् एवं प्राण रश्मियों को एक साथ सदैव धारण करने से त्रिधातु कहलाता है। यह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकार के परमाणुओं, विद्युत् एवं प्रकाश आदि रश्मियों को धारण करता है।

तदुपरान्त इसी ऋषि और देवता वाली पंक्ति छन्दस्क-

ये गंव्यता मनंसा शत्रुंमादभुरंभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया।
अधं स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तंमो भव।।१०।। (ऋ.६.४६.१०)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप लेता हुआ संयोग प्रक्रियाओं को विस्तृत करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियों एवं परमाणुओं में सम्पन्न इन्द्र तत्त्व वाग् रश्मियों के समान व्यवहार करते हुए मनस्तत्त्व से प्रेरित होकर अपने धर्षक बलों के द्वारा बाधक रश्मि आदि पदार्थों को नष्ट करता है। संयोग प्रक्रियाओं में यह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोजनीय परमाणुओं के निकट व्याप्त होकर उनकी रक्षा करता है।

इन दोनों छन्द रश्मियों को साम प्रगाथ कहने का तात्पर्य है कि ये दोनों छन्द रश्मियां वैरूप साम के रूप में व्यवहार करती हैं। इनमें से प्रथम ऋचा में 'त्रि' शब्द विद्यमान होने से इन रश्मियों की उत्पत्ति तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है। इसके साथ ही यह 'त्रि' शब्द विभिन्न परमाणुओं को अच्छी प्रकार गति देने और तारने में सहायक है।।

तदनन्तर तार्क्ष्य सूक्त ऋ.१०.१७८ जिसमें कुल तीन ही ऋचाएं हैं, की उत्पत्ति की चर्चा करते हैं। यह सूक्त भी अच्युत कहलाता है क्योंकि इसकी उत्पत्ति पूर्वोक्त अहनों में भी इसी प्रकार होती है। इस कारण इनके विषय में विस्तार से जानने के लिए पूर्वखण्ड पठनीय है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में ही ४ बृहती, ५ पंक्ति, १ अनुष्टुप् और ४ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् आवेश की तीव्रता और मात्रा दोनों में वृद्धि होती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों की तीव्रता बढ़कर विभिन्न पदार्थों का भेदन होकर नवीन-२ तत्त्वों की उत्पत्ति भी होती है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता और मात्रा में भी वृद्धि होने लगती है। यह इन्द्र तत्त्व मन, वाक् एवं प्राण रश्मियों के द्वारा निर्मित और संचालित होता है। इस समय कुछ त्रिष्टुप् रश्मियां तीव्र बलों से युक्त होने के कारण अनेक दिग्भ्रान्त रश्मियों को उचित मार्ग और रक्षा प्रदान करती हैं, जिसके कारण विभिन्न कण और तरंगें उचित संयोग और वियोग प्रक्रियाओं से सम्पन्न होकर विविध सृजन कर्मों को सम्पादित करती हैं।।

ॐ इति २१.१ समाप्तः ॐ

अथ २१.२ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'यो जात एव प्रथमो मनस्वानिति' सूक्तं समानोदर्कं तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
तदु सजनीयमेतद्वा इन्द्रस्येन्द्रियं यत्सजनीयमेतस्मिन् वै शस्यमान इन्द्रमिन्द्रियमाविशति।।
तद्धाप्याहुश्छन्दोगास्तृतीयेऽहनि बह्वृचा इन्द्रस्येन्द्रियं शंसन्तीति।।
तदु गार्त्समदमेतेन वै गृत्समद इन्द्रस्य प्रियं धामोपागच्छत् स परमं लोकमजयत्।।
उपेन्द्रस्य प्रियं धाम गच्छति, जयति परमं लोकं य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में ही गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से इन्द्रदेवताक ऋ.२.१२ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला सबसे प्रकाशित और सक्रिय पदार्थ के रूप में विभिन्न देव परमाणुओं को सब ओर से विभूषित करता है। वह इन्द्र तत्त्व ही {नृम्णम् = बलनाम (निघं.२.६)} अपने बल की व्यापकता के द्वारा आकाश और पृथिवी लोकों को पृथक्-२ करता है।

(२) यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः।।२।।

इसका छन्द, देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अस्त-व्यस्त गति करते हुए विभिन्न पृथिव्यादि लोकों को धारण एवं अत्यन्त कम्पित होते हुए मेघरूप विशाल पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता है। वह इन्द्र तत्त्व अति विस्तृत अन्तरिक्ष लोक को व्याप्त करता हुआ अग्नि के परमाणुओं को धारण करता है।

(३) यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मेघरूप विशाल पदार्थ समूहों को छिन्न-भिन्न करके सात प्रकार की छन्द रश्मि रूप प्राण रश्मियों को अधिक गतिशील बनाता है। वह इन्द्र तत्व विभिन्न रश्मियों एवं पृथिवी आदि लोकों को ऊपर उठाता एवं विभिन्न बलों को धारण करता है। वह इन्द्र तत्त्व व्यापक आकाशीय मेघों में अग्नि को उत्पन्न करता एवं विभिन्न संघर्ष प्रक्रियाओं में विभिन्न पदार्थों को पृथक्-२ करता है।

(४) येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सभी गतिशील एवं दृढ़ता से धारण किये गए लोकों को अन्तरिक्ष में रूप प्रदान करते हुए उन्हें अग्नि तत्त्व के उत्सर्जन के योग्य बनाता है। उसी इन्द्र तत्त्व के कारण अग्नि के परमाणु अपने लक्ष्य की ओर गमन करते हैं।

(५) यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः।।५।।

इसका छन्द, दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अत्यन्त तीक्ष्ण होता है। विभिन्न परमाणु उस इन्द्र तत्त्व के आकर्षण से उसकी ओर प्रवाहित होने लगते हैं। वह इन्द्र तत्त्व बाधक पदार्थ रश्मियों को कंपाते हुए नियन्त्रित करता है। इसके साथ ही वह इन्द्र तत्त्व संयोजनीय विभिन्न परमाणुओं को पुष्टता से धारण करता है।

(६) यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः।।६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। {कीरिः = स्तोतृनाम (निघं.३.१६)। रध्रम् = समृद्धिमन्तम् (म.द.ऋ.भा.७.५६.२०), हिंसकम् (म.द.ऋ.भा.), नाधमानाः याचमानाः (नि.४.३)} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न हिंसक परमाणुओं, दुर्बल, संयोजनीय एवं विद्युत् युक्त परमाणुओं, मेघरूप में निर्मित विशाल पदार्थ समूहों एवं प्रकाशक परमाणुओं को प्रेरित करता है। वह अच्छी प्रकार से सम्पीडित और व्यापक सोम रश्मियों की रक्षा करता है।

(७) यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व, जिसकी किरणें व्यापक एवं आशुगामी होती हैं तथा जो विविध पदार्थ समूहों, विभिन्न रमणीय रश्मियों वाले विद्युत् और सूर्य आदि की शोभन रश्मियों को प्रकट करता है, वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा वहन किया जाता है।

(८) यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से ब्रह्माण्ड में तीव्र ध्वनियां करते हुए छोटे और बड़े, प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थ, जो परस्पर आकर्षण अथवा प्रतिकर्षण बलयुक्त होते हैं, वे समान रूप से इन्द्र तत्त्व के द्वारा सम्यग्रूपेण नियन्त्रित रहते एवं स्थिर वा गतिशील होते हैं।

(९) यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।९।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं को असुरादि बाधक रश्मियों पर विजय दिलाता है। देव और असुर पदार्थों के मध्य संघर्ष होने पर देव पदार्थों की रक्षा करता, सभी प्रकार के पदार्थों को आकार प्रदान करता, स्थिर पदार्थों को गति प्रदान करता, साथ ही स्थिर पदार्थों के अन्दर स्वयं सदैव ही गतिशील रहता है।

(१०) यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः।।१०।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सतत गमनशील एवं अनादि प्राणादि रश्मियों को धारण करता, असुरादि रश्मियों को धारण करने वाले अप्रकाशित एवं व्यापक पदार्थों को अपनी वज्र रश्मियों से नष्ट करता है। {शर्धः = बलनाम (निघं.२.९)} वह इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण हिंसक रश्मि आदि पदार्थों को भी नियन्त्रित करता है और तीक्ष्ण ध्वनि तरंगों को उत्पन्न करता है।

(११) यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {पर्वतः = पर्ववान् पर्वतः पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा (नि.१.२०), शम्बरः = बलनाम (निघं.२.९), मेघनाम (निघं.१.१०)} इसके अन्य प्रभाव से {शरत् = शरद् वै बर्हिः (श.१.५.३.१२), शरत् प्रतिहारः (ष.३.१)} वह इन्द्र तत्त्व चालीस रक्षक व पालक मरुद् रश्मियों से परिपूर्ण होकर तीक्ष्ण बलों से सतत व्याप्त रहता है अर्थात् उन बलों से युक्त रहता है। इस प्रकार वह इन्द्र तत्त्व ओज व तेज से सम्पन्न होता हुआ विभिन्न फैले हुए मेघरूप पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता एवं विभिन्न बाधक तत्त्वों को भी नष्ट करता है।

(१२) यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः।।१२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सात छन्द रश्मियों के अनेक प्रकार के सेचक बलों से युक्त वह **इन्द्र तत्त्व जब गतिशील होता है, तब प्राणापानादि सात प्राण रश्मियों को उत्सर्जित करता रहता है।** वह वज्ररूप तीक्ष्ण किरणों वाला इन्द्र तत्त्व **प्रकाश** एवं **ऊपर की ओर उठते हुए पदार्थों को तीव्र गति प्रदान करता है।**

(१३) द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के कारण आकाश और भूमि आदि पदार्थ गंभीर गर्जना उत्पन्न करते हैं। इसके बल से ही विशाल मेघरूप पदार्थ कम्पन करते और छिन्न-भिन्न होते हैं। वह इन्द्र तत्त्व वज्र रश्मियों रूप आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों से युक्त होकर {बाहुः = बाहू कस्मात्? प्रबाधत आभ्यां कर्माणि (नि.३.८), बाहू वै मित्रावरुणौ (श.५.४.१.१५)} प्राणापान रश्मियों के तीक्ष्ण स्वरूप के द्वारा अनेक प्रकार की क्रियाओं को करता एवं अनेक प्रकार के पदार्थों को निरन्तर संघटित भी करता रहता है।

(१४) यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी रक्षण आदि क्रियाओं एवं शक्तियों के द्वारा सम्पीडित अथवा प्रेरित होते हुए, प्रकाशित और गतिशील होकर परिपक्व अवस्था को प्राप्त होते हुए सोम तत्त्व की रक्षा करता एवं उसे प्रकाशित करता है। वह महान् और व्यापक इन्द्र तत्त्व सोम तत्त्व को सिद्ध करके अनेक तत्त्वों का निर्माण करता है।

इन सभी ऋचाओं के चतुर्थ पाद में "सजनास इन्द्रः" समान रूप से विद्यमान होने से ये ऋचाएं समानोदर्क कहलाती हैं। ये समान पद इन सभी छन्द रश्मियों को एक-दूसरे से बांधे रखते हुए सबमें व्याप्तवत् रहते हैं। उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद संहिता के इस सूक्त में अन्तिम एवं पन्द्रहवीं ऋचा इस प्रकार है-

(१५) यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम।।

इस ऋचा में "स जनास इन्द्रः" पद विद्यमान न होने से इसे समानोदर्कः नहीं कहा जा सकता। इस कारण हमने अपने व्याख्यान में इस ऋचा का ग्रहण नहीं किया है। यह कहना कठिन है कि महर्षि ऐतरेय महीदास ने इस सूक्त के ग्रहण में इस ऋचा को ग्रहण किया है अथवा नहीं? हमारी दृष्टि में इस ऋचा का ग्रहण करना उचित नहीं है।।

उपर्युक्त सूक्त की प्रत्येक ऋचा के चतुर्थ पाद में "स जनास इन्द्रः" की विद्यमानता का कुछ प्रभाव हम ऊपर दर्शा चुके हैं। इसके अन्य प्रभाव से, विशेषकर "जनी प्रादुर्भावे" धातु की विद्यमानता के कारण इन्द्र तत्त्व की उत्पादक शक्ति समृद्ध होती है। यहाँ महर्षि का आशय यह है कि "जनासः" पद इन छन्द रश्मियों के उत्पादक अंग के समान है, जिसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों से क्रिया करते हुए तीव्रता से प्रकाशित होती हैं और इस प्रक्रिया में 'जनासः' पद रूप अवयव रश्मि अति सक्रिय होकर अन्य रश्मियों से क्रिया अर्थात् संयोग करके अनेकों रश्मि आदि पदार्थों को जन्म देती है। इस विषय में तत्त्ववेत्ता ऋषियों का कहना है-

"पुंसो वा एतद् रूपं यत् त्रिष्टुप्" (जै.ब्रा.३.२१६)
"यऽएवायं प्रजननः प्राण एष त्रिष्टुप्" (श.१०.३.१.१)
"वृषा वै त्रिष्टुब् योषानुष्टुप्" (ऐ.आ.१.३.५)

इन वचनों से सिद्ध है कि ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां वृषारूप होकर योषारूप अन्य छन्द रश्मियों के साथ 'जनासः' पद के द्वारा ही संयुक्त होकर तत्त्वान्तरों का निर्माण करती हैं।।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि विभिन्न छन्द रश्मियों को प्रकाशित वा उत्पन्न करने वाले ऋषि अर्थात् सूक्ष्म प्राण विशेषकर तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में इन्द्र तत्त्व के उत्पादन धर्म एवं अंग को तेजस्वी बनाने एवं अनेक रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए ही 'जनासः' पदयुक्त उपर्युक्त अनेक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। जैसा कि हम अवगत हैं कि किसी भी ऋचा में विद्यमान पद इस सृष्टि प्रक्रिया पर अपना प्रभाव निश्चित रूप से डालता है, इसी प्रकार 'जनू' धातु की प्रत्येक ऋचा में विद्यमानता उस ऋचा एवं उसके देवता के सृजन धर्म और कर्म को तीव्र से तीव्रतर बनाती है। इसी कारण उपर्युक्त सूक्त रूप रश्मिसमूह के प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण होकर नाना सृजन क्रियाओं को सम्पादित व समृद्ध करता है।।

उपर्युक्त सूक्त रूपी रश्मिसमूह की उत्पत्ति गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान रश्मियों के मेल से होती है। इस सूक्त रूप रश्मिसमूह के तेजस्वी प्रभाव से प्राणापान रश्मियां, जिनसे कि इस सूक्त की उत्पत्ति होती है, अति तीक्ष्ण होकर इन्द्र के बल-वीर्य को प्राप्त करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्राणापान रश्मियां तेजस्वी व तीक्ष्ण होकर इन्द्र तत्त्व को उत्पन्न व तीक्ष्ण करती हैं और इन्द्र तत्त्व की उत्पत्ति के द्वारा ही वे प्राणापान रश्मियां इन्द्रदेवताक छन्द रश्मियों के साथ परमलोक को प्राप्त करती हैं अर्थात् वे सृष्टि के सबसे बलवान् पदार्थ को न केवल उत्पन्न व तीक्ष्ण करती हैं, अपितु उसे नियन्त्रित भी करती हैं। इस सृष्टि में विविध-सृजन कार्यों के लिए परमलोक रूपी विभिन्न द्युलोक आदि के निर्माण के लिए इन्द्र तत्त्व का बल आवश्यक है, इस कारण प्राणापान रश्मियों की उत्पत्ति व सक्रियता भी अनिवार्य है।

जब सृष्टि में इस प्रकार की स्थिति निर्मित हो जाती है, उस समय प्राणापानादि रश्मियों के सहयोग से विभिन्न रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र तत्त्व के प्रियधाम को निकटता से प्राप्त कर लेते हैं। इन्द्र तत्त्व के प्रियधाम के विषय में प्राचीन वैदिक वैज्ञानिकों का कथन है-

"ऋभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम" (तां.१४.२.५)
"एतद्ध वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद् वागिति" (ऐ.६.७)

इन वचनों से सिद्ध है कि विभिन्न तत्त्व सूत्रात्मा वायु तथा विभिन्न छन्द रश्मियों को निकटता से प्राप्त करके उन्हें नियन्त्रित भी कर लेते हैं अर्थात् सूत्रात्मा वायु के कारण वे सभी रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ संगत होकर नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों को सम्पादित व विस्तृत करती हैं और इस क्रिया में प्राणापान के युग्म की विशेष भूमिका होती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में १४ विभिन्न प्रकार की त्रिष्टुप् रश्मियां

उत्पन्न होती हैं। इनके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत् की मात्रा और तीव्रता दोनों की समृद्धि होती है। इस विद्युत् के प्रभाव से कॉस्मिक डस्ट से निर्मित विभिन्न कॉस्मिक मेघ बनते और छिन्न-भिन्न होते हैं और इस प्रकार विभिन्न लोकों का निर्माण व धारण भी होता है। ऊर्जा तथा विभिन्न सूक्ष्म कणों के उत्सर्जन और अवशोषण में विद्युत् की विशेष भूमिका होती है। **विभिन्न मूल कणों के बन्धन और वियोजन के द्वारा एटम्स और अणुओं का निर्माण विद्युत् के बिना सम्भव नहीं है। प्रत्येक मूल कण अथवा अन्य स्थूल कणों के बल एवं गति दोनों का कारण विद्युत् तत्त्व ही है।** इस विद्युत् को प्राणापानादि रश्मियां और सूक्ष्म छन्द रश्मियां धारण व वहन करती हैं। इस सृष्टि में विद्यमान विभिन्न बलों के पीछे विद्युत् की किसी न किसी रूप की भूमिका होती है। यह विद्युत् विभिन्न लोकों अथवा सूक्ष्म कणों के भीतर स्थिर न रहकर सदैव गतिशील रहती है। विभिन्न पदार्थों को आकार प्रदान करके, स्थिर करने एवं डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ के बाधक प्रभाव को दूर करने में इन्द्र नामक विद्युत् की ही विशेष भूमिका होती है, इसके अतिरिक्त भी अन्य हिंसक तीक्ष्ण रश्मियों को नियन्त्रित करने में भी इसी विद्युत् की भूमिका होती है। इन्द्र नामक विद्युत् के तीक्ष्ण प्रभाव से इस ब्रह्माण्ड में गम्भीर घोष उत्पन्न होते हैं। ४० सूक्ष्म मरुद् रश्मियों से संयुक्त इन्द्र नामक विद्युत् अत्यन्त तीव्ररूप धारण करके कॉस्मिक मेघ एवं **'सुपरनोवा'** आदि के विस्फोट के लिए उत्तरदायिनी होती है। इन विद्युत् तरंगों से सदैव प्राणापानादि रश्मियां उत्पन्न होती रहती हैं। इन त्रिष्टुप् रश्मियों के कारण विभिन्न तत्त्वों के निर्माण की प्रक्रिया अत्यन्त तीव्र हो उठती है और विद्युत् की तीव्रता में सर्वाधिक भूमिका प्राण और अपान रश्मियों की होती है।।

२. तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देव सवितरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ, राथन्तरेऽहनि तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महदिति सावित्रम्।।
अन्तो वै महदन्तस्तृतीयमहस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- {श्यावा = सविता (निघं.१.१५), सवितुर्वेगवन्तः किरणाः (म.द.ऋ.भा.६.४८.६)} तदनन्तर श्यावाश्व आत्रेय ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न प्रेरक और उत्पादक शक्तिसम्पन्न आशुगामी रश्मिविशेष से सवितृ-देवताक निम्नलिखित तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) तत्स॑वितुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम्। श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं तु॒रं भग॑स्य धीमहि।।१।। (ऋ.५.८२.१)

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से उत्पादक और प्रेरक शक्तियां कुछ तीक्ष्ण होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {सविता = अग्निरेव सविता (जै.उ.४.१२.१.१), विद्युदेव सविता (गो.पू.१.३३), स्तनयित्नुरेव सविता (जै.उ.४.१२.१.६), वायुरेव सविता (गो.पू.१.३३), यज्ञ एव सविता (गो.पू.१.३३), पशवो वै सविता (श.३.२.३.११), प्राणो वै सविता (ऐ.१.१९)} विभिन्न परमाणु विभिन्न प्रकार की प्राण व छन्दादि रश्मियों के द्वारा विद्युन्मय प्रकाश से अतिशय युक्त होकर एक-दूसरे को अच्छी तरह धारण एवं अवशोषण करने वाले होकर शीघ्रता से परस्पर अन्योन्य क्रियाएं करने लगते हैं।

(२) अस्य॒ हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम्। न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म्।।२।। (ऋ.५.८२.२)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक बल और तेज से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त परमाणु और भी अधिक तेजस्वी और प्राणवान् होकर अपने निकट आये हुए अन्य परमाणुओं को बिना किसी क्षति के तेजयुक्त और संगत करते हैं।

(३) स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑। तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे।।३।। (ऋ.५.८२.३)

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त

प्राण, विद्युदग्नि पदार्थ तेज और संयोजक गुणों से सम्पन्न होकर अनेक प्रकार के रमणीय पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। इससे अनेक विचित्र रूपों वाले पदार्थ प्रकट होने लगते हैं।

इस तृच के पश्चात् इसी ऋषि व देवता वाली एक अन्य तृच निम्नानुसार उत्पन्न होती है-

(१) अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्। परा दुःष्वप्न्यं सुव।।४।। (ऋ.५.८२.४)

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्राण, विद्युत् व अग्नि आदि पदार्थ अतिशय प्रकाशित होकर अनेक प्रकार की छन्द व मरुदादि रश्मियों ये युक्त होकर अनेक प्रकार के संयोगादि कर्मों को उत्पन्न करते हैं। जो परमाणु शिथिल किंवा दुर्वल अवस्था में विद्यमान होते हैं, उनकी दुर्वलता को दूर करके उन्हें भी सक्रिय करते हैं।

(२) विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।।५।। (ऋ.५.८२.५)

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्राण एवं विद्युदग्नि रूपी सविता, विभिन्न संयोजनीय परमाणुओं के मध्य वाधक वनी असुरादि रश्मियों पर प्रहार करके उन्हें दूर फेंक देते हैं। इसके साथ ही {दुरितानि = दुरितानि दुर्गतिगमनानि (नि.६.१२)} विभिन्न परमाणुओं की अनिष्ट गतियों और मार्गों को भी दूर करके उन्हें अनुकूल गति, मार्ग एवं वल प्रदान करते हैं, जिससे उनके संयोग व सृजनादि कर्म यथावत् हो सकें। **इस कार्य में सर्वनियन्ता एवं सर्वप्रेरक ईश्वर तत्त्व की अन्तिम तथा अनिवार्य भूमिका होती है।**

(३) अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे। विश्वा वामानि धीमहि।।६।। (ऋ.५.८२.६)

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्रकार से निरापद गति और मार्ग को प्राप्त हुए विभिन्न परमाणु अविनाशी, प्रेरक और प्रकाशक सवितारूपी प्राणादि रश्मियों के नियन्त्रण में रहकर सभी प्रकार के संयोजक कर्मों एवं वलों को धारण करते हैं। हमारे मत में यहाँ 'अदितये' पद में षष्ठी अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग है।

यहाँ महर्षि ने प्रथम तृच को 'प्रतिपत्' और द्वितीय तृच को 'अनुचर' कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रथम तृच की उत्पत्ति पहले होती है एवं द्वितीय तृच उसकी अनुगामिनी होकर वाद में उत्पन्न होती है। {रथन्तरम् = गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः (तां.१५.१०.५), गायत्रं वै रथन्तरं गायत्रश्छन्दः (तां. १५.१०.६)} ये दोनों तृच रश्मिसमूह गायत्री प्रधान होने से रथन्तर रूप होते हैं, इस कारण ये रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपनी तेजस्विता के द्वारा तारने वाली होती हैं। हम यह वात पूर्व खण्ड में लिख चुके हैं कि रथन्तर रश्मियां वैरूप रश्मियों के समान ही प्रभाव वाली होती हैं। इस कारण ये तृच रश्मियां भी वैरूप साम रश्मियों के समान प्रभावकारी होने से इनकी उत्पत्ति तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व किंवा प्राण नामक प्राथमिक प्राण से सवितृ-देवताक ऋ. ४.५३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से पूर्वोक्त सविता पदार्थ अर्थात् प्राण एवं विद्युदग्नि आदि विस्तृत क्षेत्र में व्यापक होकर विभिन्न परमाणुओं के साथ तीव्रता से संयुक्त और वियुक्त होते हैं। {असुरः = मेघनाम (निघं.१.१०)} इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त सविता अर्थात् प्राण एवं विद्युदग्नि, जो देदीप्यमान होता हुआ विशाल मेघों को रोकता, प्रकाशित व सक्रिय करता है, विभिन्न परमाणु उस विद्युदग्नि के प्रभाव क्षेत्र में आने लगते हैं। तदुपरान्त सूत्रात्मा वायु के द्वारा वे परमाणु अन्य वलदाता परमाणुओं के साथ संगत व प्रकाशित होकर उत्कृष्टता से व्यक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं।

(२) दिवो धर्ता भुव॑नस्य प्रजाप॑तिः पिशङ्गं॑ द्रापिं प्रति॑ मुञ्चते कविः।
विचक्षणः प्रथय॑न्नापृणन्नुर्वजीज॑नत्सविता सुम्नमुक्थ्य॑म्।।२।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {द्रापिम् = कवचम् (म.द.भा.)} वह पूर्वोक्त सविता रूप प्राण वा अग्नि तत्त्व प्रकाश वा अन्तरिक्ष को धारण करने वाले अनेक प्रकार के लोकों एवं परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का पालन करने वाले, विचित्र रूप वाले और क्रान्तदर्शी होते हैं। वे तत्त्व विभिन्न परमाणुओं की कुटिल गति को अनुकूल बनाते, अनेक प्रकार के पदार्थों को प्रकाशित व विस्तृत करते, उन्हें अनेक प्रकार के बलों से परिपूर्ण करके उन्हें व्यापक रूप से अनुकूलता के साथ उत्पन्न व सक्रिय करते हैं।

(३) आप्रा रजां॑सि दिव्यानि पार्थिं॑वा श्लोकं॑ देवः कृ॑णुते स्वाय धर्म॑णे।
प्र बाहू अ॑स्राक्सविता सवी॑मनि निवेशय॑न्प्रसुवन्नक्तुभिर्जग॑त्।।३।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सवीमनि = सवीमनि प्रसवे (नि.६.७), महैश्वर्ये (म.द.भा.)} पूर्वोक्त सविता अर्थात् विद्युत् और प्राण तत्त्व विभिन्न प्रकार की दीप्ति और क्रियाओं से युक्त होकर स्वयं द्वारा नियन्त्रित और उत्पन्न सृष्टि में व्यक्तावस्था के साथ विभिन्न गमनशील परमाणुओं को उत्पन्न व व्याप्त करते हुए आकर्षण और प्रतिकर्षण रूप बलों को उत्पन्न करके अपनी धारणा शक्ति के लिए वाग् रश्मियों को धारण करते हैं। वे सविता तत्त्व अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न लोकों को अपने प्रकाश से व्याप्त करते हैं।

(४) अदा॑भ्यो भुव॑नानि प्रचाक॑शद् व्रतानि॑ देवः स॑विताभि र॑क्षते।
प्रास्राग्बाहू भुव॑नस्य प्रजाभ्यो॑ धृतव्र॑तो महो अज्म॑स्य राजति।।४।।

इसका छन्द स्वराड् जगती होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव किंचिद् मृदु परन्तु तेजस्वी होता है। {अज्म = गृहनाम (निघं.३.४), संग्रामनाम (निघं.२.१७), अन्तरिक्षे प्रक्षिप्तः (म.द.भा.)} इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त सविता तत्त्व अहिंसनीय होकर विभिन्न प्रकार के नियमपूर्वक कर्मों को धारण करने वाले व्यापक रूप से प्रकाशित व कमनीय, अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न लोकों और परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। वे आकर्षण और प्रतिकर्षण रूप बलों को उत्पन्न करके सब ओर से सबकी रक्षा करते और प्रकाशित करते हैं।

(५) त्रिरन्तरि॑क्षं सविता म॑हित्वना त्री रजां॑सि परिभूस्त्रीणि॑ रोचना।
तिस्रो दिवः॑ पृथिवीस्तिस्र इ॑न्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो॑ रक्षति त्मना॑।।५।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त सविता अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं मनस्तत्त्व विभिन्न पदार्थों के भीतर नित्य व अविनाशी रूप से विद्यमान आकाश तत्त्व को तीन प्रकार से व्याप्त करते हैं। इसका तात्पर्य है कि ये रश्मियां आकाशतत्त्व की उत्पत्ति के पूर्व भी वर्तमान रहती तथा आकाश तत्त्व की उत्पत्ति का उपादान कारण भी होती हैं। **आकाश तत्त्व इन प्राण व मनस्तत्त्व में ही आश्रित होता है तथा ये रश्मियां आकाश तत्त्व के भीतर भी व्याप्त होती हैं।** इसके साथ ही प्राण रश्मियों के प्रवाहित होते समय उसे अपने साथ वहन भी करती हैं। इस प्रकार इन्हें आकाश को तीन प्रकार से व्याप्त करने वाली कहा है। आकाश तत्त्व के विषय में खण्ड २.४१, ३.२६ व ४.७ एवं पूर्वपीठिका द्रष्टव्य है। ये प्राण रश्मियां तीन प्रकार के लोकों अर्थात् पृथिवी, जल व अग्नि तत्त्व के परमाणुओं किंवा सूक्ष्मतम, मध्य एवं विशाल कणों वा लोकों को व्याप्त करती हैं। ये रश्मियां सर्वोपरि विराजमान होकर तीन प्रकार की दीप्तियों, यथा-विद्युज्ज्योति, अग्नि एवं तारों के मध्य विद्यमान ज्योति को व्याप्त करती हैं। ये प्राण रश्मियां तीन प्रकार की प्रकाश रश्मियों अर्थात् निम्न, मध्यम तथा तीव्र शक्ति की रश्मियों एवं तीन प्रकार की पृथिवी अर्थात् अप्रकाशित लोकों को सत्त्व, रजस् तथा तमस् गुणों से उत्पन्न क्रियाओं वा लक्षणों से सर्वतः व्याप्त व रक्षित करती हैं।

(६) बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः।।६।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्राणतत्त्वरूप सविता विभिन्न सर्ग प्रक्रियाओं को सहज बनाने के लिए गतिशील एवं स्थिर दोनों प्रकार के पदार्थों के भीतर प्रविष्ट होता हुआ उन्हें अपने नियन्त्रण में रखता और प्रकाशित करता है। वह प्राण तत्त्व विभिन्न बाधक रश्मियों को दूर करके विभिन्न परमाणुओं को तीन प्रकार से व्याप्त और आच्छादित करता है अर्थात् उन परमाणुओं के निकट प्राण रश्मियां तीन प्रकार से व्याप्त होती हैं।

(७) आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त तेजस्वी प्राण तत्त्व विभिन्न ऋतु रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणुओं के प्रभाव क्षेत्र को समृद्ध करता और उन परमाणुओं में सब ओर से व्याप्त होता है। वह प्राण तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही अवस्थाओं में विभिन्न परमाणुओं को तृप्त करता हुआ, उन्हें तथा विभिन्न तेजस्विनी रश्मियों को धारण करता है। इस प्राणतत्त्व के कारण ही अनेक प्रकार के सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों की उत्पत्ति होती है।।

यहाँ महर्षि कहते हैं "अन्तो वै महत्" अर्थात् 'महत्' शब्द 'अन्तः' शब्द का पर्याय है। 'महत्' शब्द व्यापक अर्थ में होने से किसी क्षेत्र के अन्त तक पहुंचने का सूचक है, इस कारण उपर्युक्त सावित्र सूक्त महद् युक्त होने से अन्तवत् सिद्ध होता है और अन्तवत् होने के कारण इस सूक्त की उत्पत्ति तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।।

वैज्ञानकि भाष्यसार- पूर्वोक्त **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ७ जगती, ६ गायत्री और १ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय इनके प्रभाव से प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें समृद्ध होती हैं। उसी समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं विद्युदावेशित सूक्ष्म कणों के अवशोषण और उत्सर्जन की प्रक्रिया तीव्र होती है। प्रकाश और ऊष्मा की भी वृद्धि होकर विभिन्न परमाणुओं और अणुओं के पारस्परिक संयोग कर्म तीव्र होते हैं। इस कार्य में बाधक बनी डार्क एनर्जी आदि को तीव्र विद्युत् तरंगें नियंत्रित वा नष्ट करके संयोजनीय कणों की गति और बल को अनुकूल बनाती हैं। **इस अनुकूलता में अन्तिम प्रेरक और नियन्त्रक तत्त्व ईश्वर की अनिवार्य भूमिका होती है।** ब्रह्माण्ड में विद्यमान वा उत्पन्न हो रहे विभिन्न सूक्ष्म एवं स्थूल पदार्थों के आकार निर्माण में प्राण रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है। ध्यातव्य है कि विभिन्न प्राण रश्मियां वाग् रश्मियों के संयोग के बिना कोई भी कार्य करने में सक्षम नहीं होती हैं, जबकि इन दोनों के संयोग से समग्र सृष्टि का निर्माण होता है। आकाश तत्त्व भी इनके ही मेल से प्रकट होता और इनके द्वारा व्याप्त भी होता है। आग्नेय, पार्थिव और जलीय परमाणु भी प्राण रश्मियों से पूर्णतया व्याप्त होकर अनेक प्रकार के रूप धारण करते हैं। इस ब्रह्माण्ड में अति तीव्र गतिशील, कम तीव्रता से गतिशील एवं स्थिर सभी प्रकार के पदार्थों को धारण व उत्पन्न करने में प्राण और वाग् रश्मियों की ही भूमिका होती है।।

३. 'घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते' इति द्यावापृथिवीयं घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधेति पुनरावृत्तं पुनर्निनृत्तं तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।। 'अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्य' इत्यार्भवं, रथस्त्रिचक्र इति त्रिवत्, तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् विभिन्न बलों के धारक मनस्तत्त्व किंवा प्राणनामक प्राथमिक प्राण से द्यावापृथिव्यौ-देवताक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये।।४।। (ऋ.६.७०.४)

इसका छन्द जगती होने से विद्युत् एवं आकाश तत्त्व व्यापक होकर विभिन्न पदार्थों के साथ शीघ्रतापूर्वक अन्योन्य क्रियाएं करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां घृत अर्थात् 'घृङ्' सूक्ष्म तेजस्वी रश्मियों के साथ व्यापक रूप से सब ओर से वर्तमान होकर उनके साथ संगत व आश्रित होती हैं। इसके साथ ही वे इन तेजोमयी रश्मियों के साथ व्यापक रूप से समृद्ध होती हैं। इन रश्मियों के कारण ही वे **विद्युत् तथा आकाश तत्त्व मन एवं वाग्रूप होता किंवा प्राथमिक प्राणों रूप होता रश्मियों को अपने साथ सदैव अग्रिम रूप से धारण किए रहते हैं**। इससे वे विद्युत् व आकाश तत्त्व सहजतया विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित व संयुक्त करने में समर्थ होते हैं।

(२) मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम्।।५।। (ऋ.६.७०.५)

इसका छन्द निचृज्जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त विद्युत् एवं आकाश तत्त्व दोनों प्रकाशित मार्गों से युक्त प्राण रश्मियों के कर्मों से परिपूर्ण होकर उन्हीं रश्मियों का सेचन करने वाले, कमनीय बल व गुणों से युक्त होकर विभिन्न परमाणुओं के संगम बल, तेज एवं वेग को धारण करते हैं। वे विद्युत् व आकाश तत्त्व उन प्राण रश्मियों का ही सेचन सर्वत्र करते रहते हैं।

(३) ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम्।।६।। (ऋ.६.७०.६)

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {माता = माता अन्तरिक्षम्, निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि (नि.२.८)। पिता = असौ (द्यौः) पिता (तै.ब्रा.३.८.६.१)} सबकी पालिका विद्युत् तथा अन्तरिक्ष दोनों ही पदार्थ सबको व्याप्त व उत्पन्न करते सबको विभिन्न प्रकार के अनुकूल बल प्रदान करते, सबके सम्यग् विभाग करते एवं विभिन्न छन्द रश्मियों व परमाणु आदि पदार्थों को धारण करते व सम्पूर्ण पदार्थ जगत् को तृप्त करते हैं।

इन तीनों ऋचाओं में से प्रथम ऋचा में 'घृत' शब्द बार-२ आवृत्त होने से इसे पुनः निनृतवत् कहा गया है, मानो ब्रह्माण्ड में 'घृतम्' पद किंवा 'घृम्' रश्मियां सर्वतः नृत्य कर रही हों। इसी प्रकार इस तृच की द्वितीय ऋचा में 'मधु' पद भी पुनरावृत्त व पुनः निनृत है। इस कारण अर्थात् दो पदों के पुनरावृत्त व पुनर्निवृत्त होने से इस तृच का उत्पन्न होना कृकल प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

तदनन्तर वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त वा समृद्ध प्राण नामक प्राथमिक प्राण से ऋभवो-देवताक ऋ.४.३६ सूक्त की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ।।१।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से {ऋभवः = धनंजयः सूत्रात्मा वायुरिव मेधावी (म.द.ऋ.भा.१.१६१.६), ऋभव उरु भान्तीति वा, ऋतेन भान्तीति वा, ऋतेन भवन्तीति वा, आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते (नि.११.१५-१६), ऋभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम (तां.१४.२.५)} धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु के विशेष सक्रिय होने से विभिन्न प्रकार की प्रकाशादि रश्मियां समृद्ध और तीव्र होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु दोनों मिश्रित होकर मन्दगामी होते हुए प्रतिकर्षण बल से रहित तीन प्रकार की गतियों से युक्त रमणीय रश्मियों के रूप में प्रकट होकर विभिन्न परमाणु वा लोकों के चारों ओर विद्यमान होते हैं। इसके साथ ही वे विद्युत्, अन्तरिक्ष एवं अन्य अप्रकाशित परमाणुओं को विभिन्न बलों से युक्त करते हैं।

(२) रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि॥२॥

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों से युक्त वे धनंजय व सूत्रात्मा वायु इस सर्ग प्रक्रिया की तृप्ति के लिए उत्तम प्रकाशवान् मनस्तत्त्व की दीप्ति से सरल रेखा में गति करने वाली तेजोमयी रश्मियों को सब ओर से उत्पन्न और प्रकाशित करते हैं।

(३) तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम्।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ॥३॥

इसका छन्द, छान्दस और दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त धनंजय और सूत्रात्मा वायु विभिन्न छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर सकल क्रियाओं में व्याप्त होते हुए विभिन्न देव परमाणुओं को अच्छी प्रकार प्रतिष्ठित और प्रकाशित करते हैं। इस कारण वे देव परमाणु प्राणवान् होकर हीनबल अवस्था को त्यागकर पुनः सबल और सक्रिय होकर मिश्रण-अमिश्रण व्यवहार को करने में सक्षम होते हैं।

(४) एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम्॥४॥

इसका छन्द, छान्दस और दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से छन्दादि रश्मियों से युक्त वे पूर्वोक्त सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु सूक्ष्म मरुद् रश्मियों की शीघ्रगामिनी धारणा शक्तियों के द्वारा विभिन्न किरणों वा लोकों को आच्छादित करते हैं। इसके साथ ही वे वायु विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को अक्षय बनाते हुए बिना किसी की सहाय के मेघरूप पदार्थों को ४ प्रकार के गुणों, यथा- व्याप्ति, प्रदीपक तेज, उत्पादकता और बलशीलता से युक्त करते हैं।

(५) ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राथमिक प्राण अपने बलों से गति करने वाली विभिन्न मरुद् रश्मियों को उत्पन्न करते हैं। वे मरुद् रश्मियां व्यापक परन्तु तीक्ष्ण नहीं होती हैं तथा वे विभिन्न संघर्ष वा संयोग क्रियाओं में प्रकृष्ट रूप से प्रकाशित वा सक्रिय होती हुई पूर्वोक्त धनंजय व सूत्रात्मा वायु के सामीप्य से तीव्र बलवती होकर नाना प्रकार के परमाणुओं की उत्पत्ति और रक्षा में विशेष भूमिका निभाती हैं।

(६) स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः॥६॥

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {आविषुः = सर्वतो व्याप्नुयुः (तु.म.द.य.भा.२३.२६), अभितः स्वस्वकक्षां व्याप्नुवन्ति (म.द.ऋ.भा.१.११.५)} इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु व्यापक आकाश तत्त्व के साथ मिलकर सभी परमाणुओं को आच्छादित व व्याप्त करके उनको अपनी कक्षाओं में घूर्णन कराते हैं। इसके साथ ही उन्हें विभिन्न तेजस्वी छन्दादि रश्मियों एवं विभिन्न प्रेरक बलों से युक्त करते हैं, जिसके कारण वे सभी परमाणु आदि पदार्थ बल और सर्पण गति से सम्पन्न होकर बाधक असुरादि रश्मियों को तिरस्कृत करके उन्हें दूर फेंकने में समर्थ होते हैं।

(७) श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि॥७॥

इसका छन्द जगती होने से इनका देवत और छान्दस प्रभाव उपर्युक्त २ से ५ तक छन्द रश्मियों के समान परन्तु कुछ कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त धनंजय व सूत्रात्मा वायु विभिन्न छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर अत्यन्त दर्शनीय रूप और वर्ण वाले अनेक विकिरणों को उत्पन्न करते हैं। वे विकिरण क्रान्तदर्शी अनेक गुणों के धारक और प्राणापान एवं विद्युदादि से सब ओर से पूर्ण होते हैं।

(८) यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः।।८।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु विभिन्न वायु रश्मियों से युक्त होकर सभी प्रकार की मरुद् रश्मियों को पुष्ट और प्रकाशित करते हैं। वे दोनों विभिन्न वलयुक्त पदार्थों को उत्तम वल युक्त रश्मियों के साथ संगत करके उन्हें वल, तेज आदि गुणों से सब ओर से समृद्ध करते हैं।

(९) इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से देवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण परन्तु कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त धनंजय और सूत्रात्मा वायु इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न प्रकार के पदार्थ यथा विभिन्न परमाणु एवं मरुदादि रश्मियों तथा कंपाने वाले वलों को तीक्ष्णता प्रदान करते हैं। जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ दूसरे परमाणुओं को अपने वल और तेज से विचित्र क्रियाओं से युक्त कर सकें।

इन ऋचाओं में से प्रथम ऋचा में **'रथस्त्रिचक्रः'** शब्द में 'त्रि' शब्द विद्यमान होने से इन ऋचाओं की उत्पत्ति **कृकल प्राण** के उत्कर्ष की सूचक है। इस **'त्रि'** शब्द के प्रभाव से यह छन्द रश्मि विभिन्न क्रियाओं किंवा क्रियाशील परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार तारने में समर्थ होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ जगती एवं ४ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विद्युत्, आकाश तथा सूत्रात्मा एवं धनंजय रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं। इसके कारण विभिन्न कणों के पारस्परिक बन्धन की प्रक्रिया तीव्र और सुदृढ़ होने लगती है। इस समय विभिन्न रश्मियां एक-दूसरे के ऊपर सूक्ष्म रश्मियों का सेचन करती और उन्हें प्रकाशित करती हैं। ये सूक्ष्म रश्मियां **'घृमु'** रूप रश्मियां होती हैं, जिनका कथन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अतितीव्रता से होने लगता है। इन कम्पनों के कारण ही विभिन्न छन्दादि रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ तीव्रता से संगत होने लगती हैं। धनंजय और सूत्रात्मा वायु रश्मियां, जिनमें से **धनंजय रश्मियों की गति इस ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक गति होती है, सूत्रात्मा वायु के साथ मिलकर मन्दगामी हो जाती है।** इस युग्म में प्रतिकर्षण वल का नितान्त अभाव होता है। ये रश्मियां तीन प्रकार की गतियों से युक्त होकर विभिन्न परमाणुओं के चारों ओर व्याप्त हो जाती हैं। धनंजय व सूत्रात्मा वायु मनस्तत्त्व के साथ संयुक्त होकर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को अत्यन्त तीव्र गति से गमन कराने के लिए उत्तरदायी होते हैं। इनके कारण ही विभिन्न क्वान्टाज्, व्याप्ति, तेज, उत्पादन धर्म और वल से युक्त होते हैं। ये धनंजय और सूत्रात्मा रश्मियां मन्दगामी एवं मृदु रश्मियों को तीक्ष्ण वनाती हैं तथा ये आकाश तत्त्व के साथ मिलकर विभिन्न कणों व लोकों को घूर्णन एवं परिक्रमण गतियां प्रदान करने में सहयोग करती हैं। ये धनंजय एवं सूत्रात्मा रश्मियां विभिन्न रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। इनके कारण विभिन्न कणों के संयोग से नाना प्रकार के नवीन तत्त्वों का निर्माण होता है।।

४. 'परावतो ये दिधिषन्त आप्यमिति' वैश्वदेवम्, अन्तो वै परावतोऽन्तस्तृतीय महस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर गयः प्लातः ऋषि अर्थात् एक ऐसा सूक्ष्म प्राण, जिसकी गति मण्डूक के कूदने से कुछ मिलती-जुलती होती है, से विश्वेदेवादेवताक निम्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः॥१॥ (ऋ.१०.६३.१)

इसका छन्द विराड् जगती होने से सभी प्रकार के देव पदार्थ व्यापक रूप से फैलकर पारस्परिक संयोग-वियोग की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ मनस्तत्त्व से आकर्षित होकर दूर-२ तक गति करते हुए विभिन्न पदार्थों को जन्म देते और नाना प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करते हैं। वे पदार्थ मनस्तत्त्व एवं अन्य प्राणादि रश्मियों, जो नाना प्रकार के बंधन बलों से युक्त होकर नाना प्रकार की क्रियाएं करते हैं, के साथ संगत आकाश तत्त्व एवं मरुदादि रश्मियों में व्याप्त होकर प्रकाशित होने लगते हैं।

(२) विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम्॥२॥ (ऋ.१०.६३.२)

इसका छन्द पादनिचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम तेजस्वी परन्तु तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ विभिन्न तेजस्वी वागू रश्मियों से युक्त होते हैं और वे तेज परस्पर संगमनीय होते हैं। इनमें से मन, प्राण एवं वाक् तत्त्व आदि अनादि प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। कुछ देव पदार्थ प्राण रश्मियों से तो कुछ आकाश, पृथिवी आदि पदार्थों से उत्पन्न होते हैं। वे सभी देव पदार्थ विभिन्न बलों के कारण ही विभिन्न प्रकार की गतियों से युक्त होते हैं।

(३) येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥३॥ (ऋ.१०.६३.३)

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {अप्नः = कर्मनाम (निघं.२.१)} इसके अन्य प्रभाव से वे देव पदार्थ इस अन्तरिक्ष में विभिन्न प्रकाशित प्राण रश्मियों को अवशोषित करते हैं। {ग्रावाणः = अद्रिरसि श्लोककृत् (काठ.१.५), ग्रावाणो वा अद्रयः (तै.सं.६.१.११.४), (ग्रावाणः = प्राणा वै ग्रावाणः - श.१४.२.२.३३, पशवो वै ग्रावाणः - तां.६.६.१३, मारुता वै ग्रावाणः - तां.६.६.१४, यज्ञमुखं ग्रावाणः - मै.४.५.२)। अदितिः = वाङ्नाम (निघं.१.११)} अखण्डनीय वागू रश्मियां विभिन्न तेजस्वी एवं संयोजनीय प्राण व छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण अत्यन्त बलयुक्त एवं उत्पादक गुण वाली जगती छन्द रश्मियां तथा प्रकाशादि रश्मियां अनुकूलता से व्याप्त होती हैं।

(४) नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥४॥ (ऋ.१०.६३.४)

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नृचक्षसः = प्रजापतिर्वै नृचक्षाः (श.६.७.४.५), देवा वै नृचक्षसः (श.८.४.२.५)। अहिः = मेघनाम (निघं.१.१०), अही गोनाम (निघं.२.११), द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} विभिन्न मरुद् रश्मियों को प्रकाशित करने वाले प्राथमिक प्राण, जो सतत गमन करते रहते हैं, वे व्यापकता से प्रकाशित होने में समर्थ होते हैं। वे प्राण अविनाशी मनस् तत्त्व किंवा प्रकृति व परमात्मा में व्याप्त रहते हुए ज्योतिर्मयी रश्मियों के रूप में विद्यमान होते हैं। वे प्राण प्रकाशित व अप्रकाशित सभी रश्मियों को प्रकाशित करते, असुरादि बाधक रश्मियों को दूर करते और आकाश तत्त्व की सूक्ष्म रश्मियों में नित्य व्याप्त रहते हैं। वे प्राणतत्त्व अपनी क्रियाओं को सम्यग्रूपेण सम्पादित करते हैं।

(५) सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥५॥ (ऋ.१०.६३.५)

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण रश्मियां अच्छी प्रकार

समृद्ध एवं प्रकाशित होकर ऋजुगमन करती हुई अनुकूलता के साथ संयोगादि प्रक्रियाओं को सम्पन्न करके आकाश एवं विद्युत् में निवास करती हैं। वे अविनाशी प्राण रश्मियां उत्तम नम्रता अर्थात् सहज आकर्षण की प्रक्रिया आदि के द्वारा वाग् रश्मियों के साथ संगत होती हुई अनेक प्रकार की संयोग क्रियाओं को सम्पादित करती हैं।

(६) को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये।।६।। (ऋ.१०.६३.६)

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सभी प्रकार के देव पदार्थ, जो प्रकाशयुक्त होते हैं तथा वे पदार्थ-परमाणु, जिन-२ अन्य परमाणुओं के साथ संगत होते हैं उनको 'कः' अर्थात् प्राण रश्मियां ही सिद्ध और प्रकाशित करती हैं और इन्हीं प्राण रश्मियों के कारण विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के मध्य बाधक रश्मियां दूर होकर अनुकूलता के साथ संयोगादि प्रक्रियाएं सम्पादित होती हैं। वे प्राण रश्मियां व्यापक रूप से इस ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होती हैं।

(७) येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये।।७।। (ऋ.१०.६३.७)

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {होत्रा = वाङ्नाम (निघं.१.११)। मनः = वागिति मनः (जै.उ.४.११.१.११)} इसके अन्य प्रभाव से प्राणरूप अग्नि को प्रकाशित करने वाला मनस्तत्त्व अपने सामर्थ्य से सात प्रकार की छन्द रश्मियों के द्वारा सर्वप्रथम संयोग प्रक्रिया का यजन करता है। ये मन, वाक् एवं प्राणतत्त्व विभिन्न परमाणुओं को अनुकूल आवास, अविचल क्रिया और बल प्रदान करते हैं, जिसके कारण सभी परमाणु उत्तम व अनुकूल मार्गों पर सदैव गमन करते हैं।

(८) य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये।।८।। (ऋ.१०.६३.८)

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से मननशील एवं प्रकाशशील मनस्तत्त्व सभी गतिशील और गतिहीन किंवा न्यून गतिशील लोकों को नियन्त्रित करने में समर्थ होता है। इसका दूसरा आशय यह भी है कि मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व की शक्ति से सम्पन्न विभिन्न प्राण रश्मियां समस्त स्थावर और जंगम लोकों को अपने नियन्त्रण में रखती हैं। वे मन, वाक् अथवा प्राण रश्मियां भूत, भविष्य एवं वर्तमान सभी कालों में विभिन्न संयोगादि क्रियाओं की बाधक असुर आदि रश्मियों से रक्षा करती हैं।

(९) भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽ होमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।९।।

इसका छन्द आर्ची-स्वराड्जगती होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इस सृष्टि में विभिन्न संयोग प्रक्रियाओं के समय असुरादि रश्मियों के साथ जब देव आदि परमाणु वा रश्मियों का संघर्ष होता है। उस समय असुरादि रश्मियों को नियन्त्रित वा नष्ट करने के लिए उत्तमकर्मा दैवी रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व, विद्युदग्नि, प्राणापान रश्मियां, प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं के अनुकूल संगम के लिए विभिन्न मरुद् रश्मियों के उचित विभाजन हेतु उनकी ओर आकर्षित होती हैं।

(१०) सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।१०।। (ऋ.१०.६३.१०)

इसका छन्द पादनिचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {अरित्रम् = योऽरिभ्यस्त्रायते तम् (तु.म.द.य.भा.३३.१)। पृथिवी = इयं वै पृश्निर्वाग्वा (मै.२.२.४)} इसके अन्य प्रभाव से नित्य एवं व्यापक वाग् रश्मियां, जो स्वयं बाधक असुरादि रश्मियों से रहित होती हैं, वे सबको अच्छी प्रकार से

ले जाने वाली वाधक रश्मियों एवं अन्य हिंसक रश्मियों से रक्षा करने वाली, अपने कार्य से च्युत न होने वाली व सवकी तारक देवीरूप होती हैं। वे अनुकूलतापूर्वक विभिन्न रश्मियों एवं परमाणुओं आदि के साथ संगत होकर विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं को सम्पादित करती हैं।

(११) विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥११॥ (ऋ.१०.६३.११)

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संगमनीय प्राण रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ की रक्षा के लिए प्रकाशित होकर सव ओर से कुटिल और प्रतिकूल गतियों से विभिन्न परमाणुओं की रक्षा करती हैं। वे प्राण रश्मियां नित्य वाग् रश्मियों के द्वारा सृजन प्रक्रियाओं के नैरन्तर्य और अनुकूलन के लिए सदैव आकर्षित की जाती हैं।

(१२) अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥१२॥ (ऋ.१०.६३.१२)

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान रश्मियां एवं इन्द्र तत्त्व सृजन प्रक्रिया में आ रही वाधक रश्मियों और प्रतिकूलताओं को दूर करते, संयोजक गुण को वढ़ाते, हिंसक तीक्ष्ण रश्मियों एवं प्रतिकर्षण गुण को दूर करके सहज सुगम वल तथा प्रभाव क्षेत्र को उत्पन्न करते हैं।

(१३) अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥१३॥ (ऋ.१०.६३.१३)

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त अखण्डनीय प्राण रश्मियां, जिन परमाणुओं वा रश्मियों को उत्तम वाहक आदि गुणों के द्वारा सभी प्रतिकूल गति और मार्गों से हटाकर अनुकूल मार्ग, गति एवं वल प्राप्त कराती हैं, वे परमाणु एवं रश्मि आदि पदार्थ विभिन्न निरापद मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर अच्छी प्रकार वढ़ते हैं और वे पदार्थ अपने धारक व उत्पादक गुणों के द्वारा सदैव समृद्ध होते रहते हैं।

(१४) यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये॥१४॥ (ऋ.१०.६३.१४)

इसका छन्द पादनिचृज्जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {शूरसाता = शूरैः सम्भजनीये सङ्ग्रामे (म.द.ऋ.भा.१.१५७.२), शूरसातौ संग्रामनाम (निघं.२.१७), वाजसातौ = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्राणादि रश्मियां, जिन रमणीय रश्मियों की रक्षा करती हैं तथा जो मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणुओं की रक्षा करती हैं, वे परमाणु व रश्मि आदि पदार्थ शीघ्र गमन-शक्ति सम्पन्न इन्द्र तत्त्व के साथ संगत होकर निरापद मार्ग पर अनुकूलता से आरोहण करते हैं।

इसके पश्चात् इसी सूक्त की पथ्या स्वस्तिः देवताक १५ वी व १६ वीं ऋचाओं की उत्पत्ति होती है-

(१५) स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन॥१५॥ (ऋ.१०.६३.१५)

इसका छन्द आचार्य सायण, स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक एवं आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ने त्रिष्टुप् अथवा जगती माना है। इन सभी विद्वानों ने इन दोनों ही विकल्पों को स्वीकार किया है। हमारी दृष्टि में इस ऋचा का छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ तीव्रता से संयोगादि प्रक्रियाओं को करते हुए विस्तृत होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्राण एवं मरुदादि रश्मियां विभिन्न परमाणुओं के मार्गों, आकाश रश्मियों एवं उनकी विभिन्न क्रियाओं को अनुकूलता से सिद्ध करती हैं। वे पदार्थ असुर एवं देव पदार्थ के मध्य संघर्षों में नये-२ परमाणुओं की उत्पत्ति प्रक्रिया में सवके कारणरूप मन एवं वाक् तत्त्व में भी सव परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलता से धारण एवं

क्रियाशील करते हैं।

(१६) स्वस्तिरिद्धि प्रपंथे श्रेष्ठा रेक्णंस्वत्यभि या वाममेति।
सा नों अमा सो अरंणे नि पांतु स्वावेशा भंवतु देवगोंपा।।१६।। (ऋ.१०.६३.१६)

इसका छन्द आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न पदार्थों की अपने मार्गों पर गतियां तीव्र तेज और वल से अनुकूलतापूर्वक युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणुओं की अनुकूल गतियां सुदीर्घ मार्गों के लिए भी अनुकूल ही रहकर विभिन्न अन्य परमाणुओं से युक्त होकर नवीन एवं श्रेष्ठ तत्त्वों को उत्पन्न करती हैं। वे गतियां उन परमाणुओं की हर प्रकार से रक्षा करती हुई उन्हें सुरक्षित स्थान और आच्छादन प्राप्त कराती हैं।

(१७) एवा प्लतेः सूनुरंवीवृधद्वो विश्वं आदित्या अदिते मनीषी।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनों दिव्यो गयेंन।।१७।। (ऋ.१०.६३.१७)

इसका छन्द पादनिचृत्त्रिष्टुप् तथा देवता विश्वेदेवा होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीक्ष्ण तेजयुक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सभी प्रकार की प्राथमिक प्राण एवं वागु रश्मियां अपने अविनाशी रूप द्वारा एवं मनस्तत्त्व के द्वारा नियन्त्रित होकर अनेक सृजन प्रक्रियाओं को पार लगाती हैं। फिर उनसे प्रेरित विभिन्न प्रकार के पदार्थ सव ओर से वढ़ते हुए मरुद् रश्मियों के द्वारा भी प्रेरित होते हैं। वे सभी पदार्थ देदीप्यमान होते हुए अविनाशी प्राण रश्मियों के द्वारा निरन्तर और भी प्रकाशित व सक्रिय होते रहते हैं।

यहाँ महर्षि कहते हैं- **''अन्तौ वै परावतः''** अर्थात् **'परावतः'** पद **'अन्तः'** का समानार्थक है और यह **'परावतः'** पद उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा में विद्यमान है। इस कारण यह सूक्त अन्तवत् कहलाता है। इसके अन्तवत् अर्थात् **'अन्तः'** शब्द से युक्त होने से इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति **तृतीय अहन्** अर्थात् **कृकल प्राण** के उत्कर्ष की सूचक है। इस पद के प्रभाव से विभिन्न प्राणादि रश्मियां परमाणुओं को भीतर तक व्याप्त करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ३ त्रिष्टुप् एवं १४ जगती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय सभी प्रकार के कण एवं विकिरण आदि पदार्थ विशेष सक्रिय होते हैं, इस कारण उनकी उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया तीव्र होकर नवीन पदार्थों का निर्माण तीव्र गति से होता है। इस समय अनेक प्रकार की छन्दादि रश्मियों की उत्पत्ति भी अधिक होती है। विभिन्न प्राण तत्त्व आकाश तत्त्व की सूक्ष्म रश्मियों में व्याप्त होकर डार्क एनर्जी आदि के तीव्र प्रक्षेपक एवं वाधक प्रभाव को दूर करते हैं। इन सभी प्राण रश्मियों का आकर्षण वल सहज और मृदु होता है। **इस सृष्टि के तीव्र वा मन्द बलों से सम्पन्न होने वाली प्रत्येक तीव्र वा मन्द क्रियाओं में प्राणादि रश्मियों के मृदु बल अपनी अनिवार्य भूमिका निभाते हैं।** डार्क एनर्जी अथवा डार्क मैटर के दुष्प्रभाव को नष्ट वा नियन्त्रित करने में विद्युत् व ऊष्मा की तीव्र तरंगों के अतितीक्ष्ण वलों में भी इन सूक्ष्म प्राण रश्मियों के मृदु वल अपनी कारणरूप अनिवार्य भूमिका निभाते हैं। **इन सबके पीछे भी मनस्तत्त्व एवं सूक्ष्म वागु रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है।** ये दोनों रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न कणों व विकिरणों को उचित वल, गति एवं आधार प्रदान करते हुए निरन्तर चलने वाली क्रियाओं से युक्त करते हैं। ये सभी रश्मियां गतिशील अथवा गतिहीन सभी प्रकार के कणों वा लोकों को नियन्त्रण में रखती हैं। इन सभी क्रियाओं में सूक्ष्म मरुद् रश्मियां भी अनुकूलता से विभाजित होकर विभिन्न पदार्थों के साथ संयुक्त होती हैं। **इस अनुकूलता का निर्धारण चेतन ईश्वर तत्त्व के द्वारा किया जाता है।** सूक्ष्म दैवी छन्द रश्मियां एवं प्राण रश्मियां कभी भी डार्क एनर्जी द्वारा विचलित वा वाधित नहीं होती हैं। प्राण रश्मियों और वागु रश्मियों का संयुक्त रूप ही विभिन्न क्रियाओं एवं वलों को उत्पन्न करने में समर्थ होता है। प्राण और मरुद् रश्मियों का संयुक्त रूप ही आकाश तत्त्व को नियन्त्रित करके विभिन्न कणों और विकिरणों के मार्ग और गति को नियन्त्रित करके संयोग-वियोग की प्रक्रिया को अनुकूलता प्रदान करके नवीन तत्त्वों का निर्माण करता है। इन दोनों का संयुक्त रूप मनस्तत्त्व के द्वारा प्रेरित और प्रकाशित होता है। विभिन्न प्राणादि रश्मियां विभिन्न कणों और क्वान्टाज़् के भीतर तक व्याप्त होकर

अपना प्रभाव दर्शाती हैं।।

५. तदु गायमेतेन वै गयः प्लातो विश्वेषां देवानां प्रियं धामोपागच्छत् स परमं लोकमजयत्।।
उप विश्वेषां देवानां प्रियं धाम गच्छति, जयति परमं लोकं य एवं वेद।।

व्याख्यानम्– उपर्युक्त सूक्त की रश्मियां, जो 'गयःप्लात' नामक पूर्वोक्त सूक्ष्म ऋषि प्राण से उत्पन्न होती हैं, के प्रभाव से वह सूक्ष्म ऋषि प्राण सम्पूर्ण देव परमाणुओं को अपने प्रभाव से आच्छादित कर देता है। इसके कारण वे सभी परमाणु ब्रह्माण्ड में इतस्ततः बहते रहते हैं। इसके साथ ही वह सूक्ष्म प्राण परमलोक को प्राप्त कर लेता है। इसका आशय यह है कि ये छन्द रश्मियां इस प्राण के प्रभाव से अन्ततः द्युलोकों के निर्माण में महती भूमिका निभाती हैं। इसके साथ ही उस सूक्ष्म ऋषि प्राण का इन छन्द रश्मियों और द्युलोकों पर नियन्त्रण भी रहता है। इस प्रकार की स्थिति बनने पर अर्थात् जो छन्द रश्मियां इन छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर इस ऋषि प्राण के द्वारा नियन्त्रित होने लगती हैं, उन रश्मियों में भी यह प्राण रश्मि व्याप्त हो जाती है और ये छन्द रश्मियां भी द्युलोकों के निर्माण में अपनी भूमिका निभाती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– पूर्वोक्त १७ छन्द रश्मियां अपनी उत्पत्तिकर्त्री ऋषि-प्राण-रश्मि से सदैव ही पूर्णतः व्याप्त होती हैं और तारों के निर्माण, विशेषकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया उत्पन्न होने तक इसी प्राण से नियन्त्रित रहती हैं। इस समय जो कोई छन्द रश्मि इस ऋषि प्राण के सम्पर्क में आती है, वह भी इसी अवस्था को प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि तारों के अन्दर इस ऋषि प्राण की विशेष भूमिका होती है।।

६. वैश्वानराय धिषणामृतावृध इत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्; अन्तो वै धिषणाऽन्तस्तृतीयमहस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।
'धारावरा मरुतो घृष्ण्वोजस' इति मारुतं बहभिव्याहृत्यमन्तो वै बहन्तस्तृतीयमहस्तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– तदुपरान्त विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से अग्निमरुद् देवताक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है–

(१) वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति।।१।। (ऋ.३.२.१)

इसका छन्द जगती होने से अग्नि और मरुद् रश्मियों की अन्योन्य क्रियाओं तथा विस्तार में वृद्धि होती है। इसके अन्य प्रभाव से प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा समृद्ध होने वाली मरुद् रश्मियों एवं अग्नि तत्त्व से पवित्र 'घृम्' रश्मियों के समान सूक्ष्म वाग् रश्मियों की उत्पत्ति होती है। सूत्रात्मा वायु अपनी क्रियाओं और बल के द्वारा रमणीय वज्र रश्मियों को व्याप्त करके अग्नि और मरुत् इन दोनों प्रकार की रश्मियों को सबके होता मनस्तत्त्व के साथ संगत करता है।

(२) स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः।।२।। (ऋ.३.२.२)

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {दूळभः = दुःखेन दभितुं योग्यः (म.द.भा), (दभ्नोति गतिकर्मा - निघं.२.१४)} अग्नि तत्त्व उत्पन्न होते ही प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों लोकों को प्रकाशित करता है। विभिन्न मरुद्

रश्मियां इन दोनों ही लोकों का पालन करती हैं। अग्नितत्त्व विभिन्न परमाणुओं का वहन करने वाला जीर्णता रहित होकर सभी संयोज्य पदार्थों में व्याप्त होता है। वे अग्नि और मरुद् दोनों पदार्थ सतत गमन करते हुए अपने दुर्लभ बलों के द्वारा सबको अर्थात् सभी परमाणुओं को बसाते हैं।

(३) क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे।।३।। (ऋ.३.२.३)

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राण रश्मियां अपनी क्रियाओं के द्वारा विभिन्न तारक बलों के धारणादि कर्म में अपनी तेज रश्मियों से महान् वेग व बलयुक्त अग्नि को व्यापक रूप से उत्पन्न करती हैं। तदनन्तर वह अग्नि विभिन्न पदार्थों को विविध रूप से प्रकाशित करता है।

इस तृच को महर्षि ने 'प्रतिपत्' कहा है, इससे संकेत मिलता है कि यह तृच आगामी कण्डिका में वर्णित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के ठीक पूर्व उत्पन्न होती है। यहाँ महर्षि लिखते हैं- "अन्तो वै धिष्णा" इसका तात्पर्य है कि विभिन्न वाग् रश्मियां भी विभिन्न परमाणुओं के आभ्यान्तर भाव तक प्रविष्ट हुआ करती हैं। इस कारण यह तृच अन्तवत् सिद्ध होती है क्योंकि इसमें 'अन्तः' का समानार्थक 'धिष्णा' पद विद्यमान है। इसकी विद्यमानता के कारण इस तृच की उत्पत्ति तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।।

तदनन्तर गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से मरुद्-देवताक ऋ.२.३४. सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से मरुद् रश्मियां व्यापक विस्तार को प्राप्त करती हुई तीव्र रूप से अन्योन्य क्रियाएं करने लगती हैं। {धारा = वाङ्नाम (निघं.१.११), ऋजीषी = ऋजीषी सोमः। यत् सोमस्य पूयमानस्यातिरिच्यते तदृजीषम्, अपार्जितं भवति। तेनर्जीषी सोमः। अथाप्यैन्द्रो निगमो भवति 'ऋजीषी वज्री' इति (नि.५.१२)। भृमिः = भृमिर्भ्राम्यतेः (नि.६.२०)}। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संयोजनीय वाग् रश्मियां गतिकारक, शोधक और कंपाने वाली मरुद् रश्मियों के समान एवं धारक बलों से युक्त शोधक अग्नि तत्त्व के समान बलयुक्त तेजस्विनी रश्मियों को उत्पन्न करके इन्द्र और सोम तत्त्व की भ्रमित हुई रश्मियों को दूर करके अनुकूल रश्मियों से युक्त करती हैं।

(२) द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य१भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि।।२।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {स्तृभि = नक्षत्रनाम (नि.३.२०)। ऊधः = रात्रिनाम (निघं.१.७), उषानाम (निघं.१.८)। वक्षः = वक्षो भासोऽध्यूढमिदमपीतरद् वक्ष एतस्मादेवाध्यूढं काये (नि.४.१६)} ऊपर की ओर उठी हुई तेजस्विनी मरुद् रश्मियां सेचक बलसम्पन्न तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व, जो अन्तरिक्ष में विद्यमान होता है, में प्रकाशित अथवा अप्रकाशित अवस्था में बल और तेजयुक्त उत्पादक गुण को उत्पन्न करती हैं। वे रश्मियां अक्षय प्रकाश रश्मियों के समान विभिन्न परमाणु वा रश्मियों को प्रेरित व प्रकाशित करती हुई अपनी रश्मियों की दृष्टि से मेघरूप पदार्थों को प्रकाशित करती हैं।

(३) उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँइवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः।।३।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {दविध्वतः = दुष्टान् कम्पयन्तः (म.द.भा.)} इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त देदीप्यमान मरुद् रश्मियां विभिन्न संघर्ष और संयोग क्रियाओं में अपने शीघ्रगामी कर्मों के द्वारा व्यापक आशुगामी रश्मियों को और भी अधिक आशुगामी

बनाती हैं। वे ऐसी मरुद् रश्मियां तेजस्वी एवं तीक्ष्ण बल से युक्त होकर असुरादि बाधक तत्त्वों को कंपाती हुई अपने सेचक बलों से विभिन्न परमाणुओं को सींचकर और भी सक्रिय बनाती हैं।

(४) पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः।।४।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। {जीरः = वेगवान् (म.द.ऋ.भा ३.३.६), क्षिप्रनाम (निघं.२.१५)। दानुः = दानशीलः (म.द.ऋ.भा.१.५४.७)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मियों को अधिक गतिशील करती हुई विभिन्न व्यापक बलों का सेचन करती हैं। इस कारण वे परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ अपने स्थान पर अविचल भाव से गति करते हुए सरलतापूर्वक बढ़ते रहते हैं। सभी लोक-लोकान्तर वा परमाणु इन मरुद् रश्मियों के सेचन से सब ओर से आकर्षण बलों से युक्त होकर नाना संघातों को सम्पादित करते हैं।

(५) इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {रप्शदूधभिः = व्यक्तशब्दघनैः (म.द.भा)। हंसासः = अश्वनाम (निघं.१.१४)। स्वसराणि = स्वसराणि अहर्नाम (निघं.१.९), गृहनाम (निघं.३.४)} इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित और सक्रिय विभिन्न मरुद् रश्मियां प्रदीप्त वाग् रश्मियों एवं व्यक्त ध्वनि तरंगों के साथ स्थिर मार्गों पर आशुगामी होकर गति करती हुई विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होती हैं।

(६) आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम्।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से तीव्र सक्रिय मरुद् रश्मियां विद्युत् को उत्पन्न व धारण करती हैं। वे प्रकाशित और अप्रकाशित व्यापक वाग् रश्मियों को व्याप्त करके विभिन्न संयोगादि कर्मों को अन्य मरुद् रश्मियों के साथ सब ओर से प्राप्त करती हैं। वे मरुद् रश्मियां उत्तम प्रकाश के लिए बलों के विभिन्न रूपों एवं क्रियाओं को सिद्ध करती हैं।

(७) तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {आपानम् = व्याप्तिकर्मा (निघं.२.१८)} इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न रमणीय रश्मियों को बल तथा छन्द रश्मियों के साथ संगत करती हैं। वे व्यापक प्राणापान रश्मियों को विभिन्न प्रकाशित संयोज्य पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए विभिन्न बलों में विभक्त वा संगत करती हैं। इसके कारण वे प्राणादि रश्मियां तारक एवं अहिंसनीय बलों को उत्पन्न करती हैं।

(८) यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम्।।८।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से ऊर्ध्वगामी, तेजस्विनी, दानशील मरुद् रश्मियां विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं एवं रमणीय किरणों में अपनी गति और बलों को युक्त करती हैं। {शिशुः = शिशुः शंसनीयो भवति। शिशीतेर्वा स्याद् दानकर्मणः। चिरलब्धो गर्भो भवति (नि.१०.३९), अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणः (श.१४.५.२.२)} वे मरुद् रश्मियां विभिन्न देव पदार्थों के बलों में मध्यम प्राण अर्थात् व्यान प्राण के विभिन्न व्यवहारों को सहज बनाने के लिए व्यापक स्तर पर सूक्ष्म कमनीय वाग् रश्मियों को अच्छी प्रकार संगत करती हैं।

(९) यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {वृकताति = वृको वज्र एव (म.द.भा.)। रिपुः = स्तेननाम (निघं.३.२४)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पदार्थों को बसाने वाली मरुद् रश्मियां किंवा छोटी गायत्री छन्द रश्मियां, विभिन्न हिंसक अल्पायु वाली, तीव्र ऊष्मायुक्त प्रक्षेपक और बाधक रश्मियों को दूर करती हैं। सूक्ष्म परन्तु घोर त्रिष्टुप् रश्मियां मृदु एवं संयोजनीय रश्मि आदि पदार्थों की रक्षा करके बाधक व हिंसक रश्मियों को सब ओर से दूर वा नष्ट करती हैं।

(१०) चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः।।१०।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अहिंसनीय तीक्ष्ण परन्तु सूक्ष्म त्रिष्टुप् छन्दों रूपी मरुद् रश्मियां अपने अद्भुत कर्मों के द्वारा अन्तरिक्ष में सिद्ध हुए प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों ही पदार्थों को व्याप्त और परिपूर्ण करती हैं, प्रकाशित पदार्थों पर प्रहार करने वाली हिंसक रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं तथा वे मरुद् रश्मियां दुर्बल हुए रश्मि आदि पदार्थों को पुनः सबल और सक्रिय करती हैं।

(११) तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां कमनीय व्यापक विद्युत् के पालन हेतु व्यापक रूप से व्याप्त होती हैं। वे सुन्दर तेज से युक्त होकर {ककुह = महन्नाम (निघं.३.३)} व्यापक और नियन्त्रित रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं और वे रश्मियां प्राणापान एवं विद्युत् को अपने साथ संगत करती हुई विभिन्न प्रकार के प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न वा आकर्षित करती हैं।

(१२) ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा।।१२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {व्युष्टिः = अहर्व्युष्टिः (तै.ब्रा.३.८.१६.४), रात्रिर्वै व्युष्टिः (श.१३.२.१.६), प्रतापः (म.द.भा.)} इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां बहुत विस्तारयुक्त दस प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा संगत होकर विभिन्न संयोग प्रक्रियाओं को उत्पन्न करती हैं। वे रश्मियां सुन्दर रूप और ऊष्मायुक्त पदार्थ की ऊष्मा रश्मियों किंवा प्राणापान रश्मियों में व्याप्त होकर उनको समृद्ध और विस्तृत करती हैं। वे रश्मियां अरुण वर्ण वाली व्यापक रश्मियों के सेचन से उत्पन्न ज्वलनशीलता और प्रकाश से विभिन्न अप्रकाशित पदार्थों को प्रकाशित करती हैं।

(१३) ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम्।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {क्षोणी = पृथिवीनाम (निघं.१.१)} इसके अन्य प्रभाव से रुद्ररूप सूक्ष्म त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अप्रकाशित परमाणुओं से संगत होकर उन्हें व्यक्त और अरुण वर्ण प्रदान करके {ऋतम् = अग्निर्वा ऋतम् (तै.ब्रा.२.१.११.१), ब्रह्म वा ऽऋतम् (श.४.१.४.१०)} विद्युत् वा अग्नि से युक्त पदार्थों में समृद्ध करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न मेघरूप पदार्थों को अपने व्यापक बल और वेग से सुन्दर रूप और प्रकाश से युक्त करके विविध प्रकार से धारण करती हैं।

(१४) ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि।
त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे।।१४।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव किंचित् कम तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न अभीष्ट क्रियाओं की रक्षा के लिए विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं परमाणुओं को तारती और विस्तृत करती हैं। वे मरुद् रश्मियां पांच सूक्ष्म होतारूप प्राणापानादि रश्मियों एवं उनकी चक्रवत् होने वाली क्रियाओं की रक्षा और गति के लिए सब ओर से उनके साथ

वर्त्तमान रहती किंवा परिक्रमण करती रहती हैं। इन सब रक्षणादि गुणों के लिए व्यापक बलों को प्राप्त करके विभिन्न पदार्थों की ओर नमती हुई वे मरुद् रश्मियां उन्हें अति निकटता से प्रकाशित करती हैं।

(१५) यया॑ र॒ध्रं पा॒रय॒थात्यंहो॒ यया॑ नि॒दो मु॒ञ्चथ॑ वन्दि॒तार॑म्।
अ॒र्वाची सा म॑रुतो॒ या व॑ ऊ॒तिरो॒ षु वा॒श्रेव॑ सुम॒तिर्जि॑गातु॥१५॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां अत्यन्त तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं। {रध्रम् = संराधनम् (म.द.भा.), हिंसकम् (तु.म.द.ऋ.भा.२.१२.६)। ओ = प्रेरणेषु (म.द.भा.)। वाश्राः = कामयमानाः (म.द.ऋ.भा.१.६५.६)} इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मियों को गति एवं दीप्ति प्रदान करने और उनकी रक्षा के लिए प्रेरित करने में विभिन्न आकर्षण बलों के समान व्यवहार करती हैं और उन परमाणु वा रश्मियों को अच्छी प्रकार सिद्ध करने एवं उन्हें तीक्ष्ण बनाने के लिए उन्हें अत्यधिक बल और तेज प्रदान करती हैं। वे मरुद् रश्मियां विभिन्न बाधक असुरादि रश्मियों को दूर करके विभिन्न परमाणु वा रश्मियों में व्यापक और आशु क्रियाओं को उत्पन्न व तीक्ष्ण करती हैं।

यहाँ महर्षि लिखते हैं कि इन छन्द रश्मियों का देवता बहुवचनान्त होने से और सभी छन्द रश्मियों में 'मरुतः' इस बहुवचनान्त पद के प्रयोग से यह सूक्त 'बहु' पद से युक्त सिद्ध होता है और 'बहु' पद के विषय में महर्षि लिखते हैं- "अन्तो वै बहु' इसका आशय यह है कि 'बहु' पद 'अन्तः' का समानार्थक है। इस कारण यह सूक्त अन्तवत् सिद्ध होता है और अन्तवत् सिद्ध होने से इस सूक्त की उत्पत्ति तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है। इन 'बहु' और 'अन्तः' के प्रभाव से ये छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों एवं रश्मियों के अन्दर तक प्रविष्ट होकर इस जगत् में दूर-२ तक फैलती व प्रभावी होती जाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ही कुल १७ जगती और १ त्रिष्टुप् रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय ब्रह्माण्ड में अनेक सूक्ष्म मरुद् रश्मियां अत्यन्त व्यापक क्षेत्र में फैलती हुई विभिन्न कणों एवं विकिरणों के द्वारा तीव्रता से उत्सर्जित और अवशोषित होती हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का क्षेत्र भी व्यापक होता हुआ उत्सर्जन और अवशोषण क्रियाओं को बढ़ाता है। इस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगों तथा विभिन्न प्रकार के कणों की ऊर्जा निरन्तर बढ़ती रहती है। ये छन्द रश्मियां विभिन्न कणों, एटम्स अथवा अणुओं (molecules) के अन्दर तक प्रविष्ट होकर उन्हें उत्तेजित और सक्रिय करती हैं। इस समय अनेक प्रकार की नई-२ किरणें उत्पन्न होती हैं। ब्रह्माण्ड में विद्यमान मेघरूप विशाल पदार्थों में तीव्र प्रकाश की मात्रा बढ़ती जाती है। प्रक्षेपक बलों के द्वारा बाधक बनने वाली डार्क एनर्जी का प्रभाव कम होता है। मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न कणों वा विकिरणों की गति एवं बल की निरन्तरता अक्षुण्ण बनी रहती है। उन कणों के साथ सूक्ष्म ध्वनि तरंगें भी सतत गमन करती रहती हैं। इस समय विद्युदावेशित अनेक प्रकार के कणों की भी उत्पत्ति होती है। विभिन्न प्रकार के कणों और विकिरणों को उत्पन्न करने के लिए मरुद् रश्मियों और प्राण रश्मियों के नाना प्रकार के संयोग होते हैं। जो कण अथवा विकिरण अपनी ऊर्जा को खो रहे होते हैं, उन्हें ये छन्द रश्मियां ऊर्जा प्रदान करती हैं। आवेशित बलों के विद्युदावेश के संरक्षण में भी मरुद् और प्राण रश्मियों की भूमिका होती है। विभिन्न कणों अथवा विकिरणों का इन मरुद् और प्राण रश्मियों के साथ सहज आकर्षण होता है। इस समय ब्रह्माण्ड में लाल और पीले वर्ण की रश्मियों की आभा उत्पन्न होती है और ऊष्मा की मात्रा भी बढ़ती जाती है। ये मरुद् रश्मियां विभिन्न कणों वा क्वान्टाज् के मध्य होने वाली अन्योन्य क्रियाओं में अनिवार्य माध्यम का कार्य करती हैं। इन मरुद् वा प्राण रश्मियों के अभाव में इस ब्रह्माण्ड में कोई भी बल कार्य करने में सक्षम नहीं होता।।

७. 'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।
'त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिरिति' जातवेदस्यं पुरस्तादुदर्कं तृतीयेऽहनि तृतीयस्याह्नो रूपम्; त्वं त्वमित्युत्तरं त्र्यहमभिवदति सन्तत्यै।।
संततैस्त्र्यहैरव्यवच्छिन्नैर्यन्ति य एवं विद्वांसो यन्ति।।२।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥१॥ (ऋ.१.९९.१)

की उत्पत्ति होती है। यह छन्द रश्मि अच्युता कहलाती है क्योंकि यह छन्द रश्मि इससे पूर्व उदान आदि प्राण रश्मियों के उत्कर्ष काल में भी उत्पन्न होती है। इस छन्द रश्मि के विषय में पूर्व खण्ड पठनीय है॥

तदनन्तर आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न तेजस्वी रश्मि विशेष से अग्निदेवताक (ऋ.१.३१) सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः॥१॥

इसका छन्द जगती होने से इनके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि के परमाणुओं में अन्योन्य क्रिया तीव्रता से होने लगती है। इसके अन्य प्रभाव से इस सृष्टि प्रक्रिया में सर्वप्रथम प्राथमिक प्राणरूपी ऋषि प्राण रश्मियां ही सबमें अग्रणी होती हैं। ये प्राण रश्मियां ही संयोगादि प्रक्रियाओं को प्रारम्भ करके सबको अपने साथ संयुक्त करने का प्रयास करती हैं। ये रश्मियां प्रत्येक प्रदीप्त परमाणु वा रश्मि को सहजता से समर्थ बनाती हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियां, जो विभिन्न कर्मों को सम्पादित करती हैं, वे सदैव प्राण रश्मियों के साथ मिथुन रूप में विद्यमान रहती हैं। इनके कारण विभिन्न क्रान्तदर्शी एवं तेजस्वी अग्नि तत्त्व के परमाणुओं की उत्पत्ति होती है।

(२) त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे॥२॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राथमिक प्राणरूप अग्नि अतिशय व्यापक गति और सूक्ष्म प्रकाशयुक्त होती हैं। वे रश्मियां द्विमाता अर्थात् प्रकाशित और अप्रकाशित किंवा देव एवं असुर दोनों ही प्रकार के पदार्थों को सहजता से उत्पन्न करने वाली {शयुः = यः प्रलये सर्वाणि भूतानि शाययति सः (म.द.भा.)} सबको संयुक्त करने और प्रलयकाल अथवा वियोजक कर्मों में सबको पृथक् करने वाली क्रान्तदर्शी एवं व्यापक होती हैं। वे रश्मियां सभी लोकों के जीवनकाल तक विभिन्न देव परमाणुओं को सब ओर से प्रकाशित करती रहती हैं।

(३) त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो॥३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राथमिक प्राण रश्मियां सुष्टुकर्मा वाग् रश्मियों के साथ संयुक्त होकर मनस्तत्त्वरूपी होता की प्रेरणा से प्रकाशित और अप्रकाशित कणों वा लोकों को गति प्रदान करती हैं। वे ही प्राण रश्मियां आकाश में विचरने वाले और सबको बसाने वाले वायु तत्त्व को उत्पन्न करती हैं। वे प्राण रश्मियां बाधक रश्मियों को नष्ट करती और बड़े-२ पदार्थों को पोषण और संगति प्रदान करती हैं।

(४) त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः॥४॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {अवाशयः = प्रकाशितवान् (म.द.

भा.)। श्वात्रः = श्वात्रतीति गतिकर्मसु पठितम् (निघं.२.१४)} वह पूर्वोक्त प्राणाग्नि अत्यन्त सुन्दर कर्म करने वाला और नाना प्रकार की वाग् रश्मियों को उत्पन्न करने वाला होता है। उस प्रकाशित अग्नि के द्वारा विभिन्न देव पदार्थ प्रकाशित होते हैं। उस अग्नि की गति के द्वारा सृष्टि की आरम्भिक अवस्था और अपर अवस्थाओं में उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ इस प्राणाग्नि से व्याप्त होकर गति करते हैं। इसके द्वारा ही सभी पदार्थ सब बाधाओं से मुक्त होकर वाक् और मनस्तत्त्व से उत्पन्न होकर द्युलोक और पृथिवी लोक पर्यन्त विविध रूपों को व्यापक रूप से धारण करते हैं।

(५) त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवासति।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह व्यापक प्राणाग्नि विभिन्न रश्मियों को उत्कृष्टता से क्रियाशील बनाने के लिए {आयुः = आयुस् अन्ननाम (निघं.२.७), आयुश्च वायुरयनः (नि.६.३), यज्ञो वा आयुः (तां. ६.४.४)। एकः = एति प्राप्नोतीति एकः, मुख्योऽन्यः केवलो वा (उ.को.३.४३)} स्वयं सेचक बल और गति से युक्त, विभिन्न वायु रश्मियों को परस्पर संयुक्त करने, गति प्रदान करने, साथ ही उन्हें पुष्ट करके बढ़ाने में समर्थ होता है। वह प्राणाग्नि सबका धारक और वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों तथा विभिन्न हवि रश्मियों को उत्पन्न करने वाला एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर बसाने वाला होता है।

(६) त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {सक्मन् = यः सचति, तत्संबुद्धौ (म.द.भा)। परितक्म्ये = (तकति गतिकर्मा - निघं.२.१४)। दभ्रम् = ह्रस्वनाम (निघं.३.२)} इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्राणाग्नि सभी पदार्थों के साथ समवाय सम्बन्ध रखता हुआ उन्हें विविधता से प्रकाशित करता हुआ विभिन्न संयोग एवं संघर्षण क्रियाओं में अपने सूक्ष्म स्वरूप द्वारा प्रतिरोधी रश्मियों का व्यापक स्तर पर हनन वा नियन्त्रण करता है। वह विभिन्न अविनाशी परमाणुओं का पालन व रक्षण करते हुए उन्हें सब ओर गतिशील बनाने के लिए अपने सूक्ष्म बलों से युक्त करता है।

(७) त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्राणाग्नि प्रत्येक प्रकाशित परमाणु वा रश्मियों में अपने बल को प्रवाहित करता है। वह विभिन्न मरुद् रश्मियों को अपने साथ संगत करके अविनाशी तेज में स्थापित करता है। {अमृतः = हिरण्यनाम (निघं.१.२)} वह प्राणाग्नि प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणु वा रश्मियों को अपनी ओर प्रबलता से आकर्षित करता हुआ उन्हें अनुकूल तेज और प्रकृष्ट गति से युक्त करता है।

(८) त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्राण रश्मियां और अग्नितत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह प्राणाग्नि विभिन्न तेजस्वी परमाणुओं को सृष्टि प्रक्रिया के लिए **मन तथा चेतन परमात्म-तत्त्व की प्रेरणा से अनेक प्रकार के विभाग** {यशः = पशवो यशः (श.१२.८.३.१), यशो वै सोमो राजा (ऐ.१.१३), यशो वै हिरण्यम् (ऐ.७.१८)} **करने के लिए विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त करके समुचित क्रिया और बल से युक्त करता है,** जिससे वे परमाणु नवीन-२ कर्मों को सम्पादित करके समृद्ध होते रहते हैं। वह प्राणाग्नि विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित कणों वा लोकों की भी अपने कमनीय बलों के द्वारा रक्षा करता है।

(९) त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः।
तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे।।९।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त उत्तम प्राणाग्नि अपने कमनीय बल और तेज के द्वारा विभिन्न परमाणुओं को सक्रिय करके उन्हें अन्तरिक्ष में व्याप्त कराता एवं अनेक विशाल लोकों का निर्माण करता है। इस कार्य में वह प्राणतत्त्व पृथिवी और द्युलोकों में स्थित विभिन्न तेजस्वी पदार्थों वा प्राणादि रश्मियों में सब ओर से उन परमाणु वा रश्मियों को प्रक्षिप्त करता रहता है। वह विशेष प्रदीप्त हुआ प्राणतत्त्व सबका बसाने वाला होकर विभिन्न सृजन कार्यों के लिए सम्पूर्ण पदार्थ जगत् को सक्रिय करता है।

(१०) त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अहिंसनीय एवं किसी से न दबने वाला प्राणाग्नि अपने सूक्ष्म तेज से सभी पदार्थों को मापता हुआ, उनका पालन और रक्षण करता है। वही प्राणतत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मियों को आयु, तेज एवं बल प्रदान करता है, वही उन्हें अनेक प्रकार की गतियों से युक्त करके विभिन्न कर्मों का रक्षक और बाधक रश्मियों को कंपाने वाला बनाने के लिए विभिन्न मरुद् एवं छन्दादि रश्मियों से युक्त करता है।

(११) त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम्।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से मन और वाक् तत्त्वों के द्वारा वह पूर्वोक्त प्राणाग्नि संयोजक और गतिशील बनाकर विभिन्न परमाणु वा रश्मियों का प्रथम रक्षक बनाया जाता है। वह प्राणतत्त्व विभिन्न बन्धन शक्तियों को अन्य रश्मियों से संयुक्त होने के लिए उन्हें छन्दादि रश्मियों से युक्त करता है। इसके लिए वह प्राणाग्नि सूत्रात्मा वायु के नियन्त्रण को अधिक दृढ़ बनाकर अपने कार्यरूप विभिन्न रश्मियों और अपनी कारणरूप ऋतु रश्मियों के साथ सर्वत्र प्रकट होता है।

(१२) त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते।।१२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह कमनीय और तेजस्वी प्राणाग्नि अपने कर्मों में प्रवृत्त होकर विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के विस्तार को अपने रक्षणादि कर्मों के द्वारा निरन्तर रक्षा करता है, जिससे वे पदार्थ विभिन्न रश्मियों तथा उत्पन्न नवीन-२ तत्त्वों का विस्तार और रक्षा करते हैं।

(१३) त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम्।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त प्राणाग्नि मनस्तत्त्व की रश्मियों के समान विभिन्न रश्मियों का दाता और विभिन्न परमाणु वा रश्मियों के भीतर एवं चतुर्दिक् व्याप्त होकर रक्षा करने वाला होता है। वह उदासीन पदार्थों, धारक एवं संगमनीय आदि सभी पदार्थों को तेजस्वी बनाता है।

(१४) त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत्।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह देदीप्यमान, नाना बाधाओं से तारने वाला, बहुत प्रकार से विविध पदार्थों को प्रकाशित करने वाला {वाघतः = वोढारो मेधाविनो वा (नि.११.१६)} विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को वहन करने के लिए वांछित उत्तम रेचक बलों को सिद्ध करता है। वह सब दिशाओं में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करते हुए उनका पालन और नियन्त्रण करता है।

(१५) त्वम॑ग्ने प्रय॑तदक्षिणं नरं वर्मे॑व स्यूतं परि॑ पासि विश्वतः।
स्वादुक्षद्मा यो व॑सतौ स्यो॑नकृज्जी॑वयाजं यज॑ते सोपमा दिवः।।१५।।

इसका, छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {क्षद्मा = उदकनाम (निघं.१.१२), अन्ननाम (निघं.२.७)} इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त अग्नि तत्त्व कवच के समान विभिन्न संयोज्य कणों के मध्य संयोग क्रिया में उन्हें अपनी रश्मियों से खींचता है, जिसके कारण उन कणों का यजन सहज होता है। वह प्राणाग्नि प्रकृष्ट रूप से क्रियावान् बल रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्राण और मरुद् रश्मियों को भी सब ओर से बांधकर पोषित और प्रकाशित करता है।

(१६) इमाम॑ग्ने शरणिं॑ मीमृषो न इमनध्वा॑नं यमगा॑म दूरात्।
आपिः पिता प्रम॑तिः सोम्यानां भृमि॑रस्यृषिकृन्मर्त्या॑नाम्।।१६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {शरणिः = (शृ हिंसायाम् + अनिः)} इसके अन्य प्रभाव से वह प्राणाग्नि सोम रश्मियों के रूप में विद्यमान मरुद् रश्मियों को व्याप्त करके उनको पुष्ट व सतेज करता हुआ अन्य प्राण रश्मियों के साथ उनका धारण कराता हुआ नित्य गति प्रदान करता है। वह प्राणतत्त्व इन मरुद् रश्मियों के मार्ग की बाधक रश्मियों को दूर करके उनके मार्ग को निरापद बनाता है।

(१७) मनुष्वद॑ग्ने अङ्गिरस्वद॑ङ्गिरो ययातिवत्सद॑ने पूर्ववच्छु॑चे।
अच्छ॑ याह्या व॑हा दैव्यं जनमा सा॑दय बर्हिषि यक्षि॑ च प्रियम्।।१७।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्राणाग्नि {अङ्गिराः = अङ्गति प्राप्नोति जानाति वा (उ.को.४.२३७)} सबका शोधक और प्राप्तकर्ता होकर सूत्रात्मा वायु रश्मियों के समान अन्य रश्मियों के साथ संयुक्त होने का सतत प्रयत्न करता है। वह विभिन्न कमनीय बलों से युक्त अन्य प्राण रश्मियों को सब ओर से प्राप्त करता हुआ वहन करता है और उन्हें अन्तरिक्ष में सम्पन्न होने वाली विभिन्न यजन क्रियाओं में संगत करता है।

(१८) एतेना॑ग्ने ब्रह्म॑णा वावृधस्व शक्ती॑ वा यत्ते॑ चकृमा विदा वा॑।
उत प्र णे॑ष्यभि वस्यो॑ अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाज॑वत्या।।१८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्राणाग्नि मनस्तत्त्व के साथ सुसंगत विभिन्न बलों से युक्त मरुद् वा छन्द रश्मियों के रूप में व्यापक रूप से सुसमृद्ध वाग् रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न परमाणुओं का सब ओर से सृजन करता है। ऐसा वह प्राणतत्त्व विभिन्न पदार्थों को उत्तम रूप से उत्प्रेरित करता हुआ धारण करता व बढ़ाता जाता है।

यहाँ ग्रन्थकार इस सूक्त का देवता जातवेदा मानते हैं, जबकि महर्षि दयानन्द ने इसका देवता अग्नि माना है। वस्तुतः प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान वा व्याप्त अग्नि ही जातवेदा कहलाता है। हमने यहाँ अग्नि का अर्थ सृष्टि प्रक्रिया में अग्रणी रूप से भाग लेने वाला प्राणतत्त्व ग्रहण किया है। यह तत्त्व सभी उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान होने से जातवेदा कहलाता है। इस सूक्त की सभी ऋचाओं के प्रथम पाद में 'अग्ने' पद समान रूप से विद्यमान है। प्रथम १५ ऋचाओं के प्रथम पाद में 'त्वम् अग्ने' ये दो पद किंचित् व्यतिक्रम से विद्यमान हैं। इस कारण महर्षि ने इस सूक्त को पूर्ववत् समानोदर्क कहा

है। इस समानता के कारण इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष की सूचक है। ये समान पद विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर एक-दूसरे से गूंथे हुए बांधे रहते हैं। इन ऋचाओं में 'त्वम्' पद जो बार-२ प्रयुक्त हुआ है, उस पद के प्रभाव से इससे अगला त्र्यह अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष के लक्षण सब ओर से अच्छी प्रकार प्रकट होते हैं और यह पदरूप सूक्ष्म रश्मि सभी चरणों के लक्षणों को निरन्तरता के साथ जोड़े रखती हैं, जिससे इस सृष्टि में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में अनिष्ट विराम नहीं आने पाता और सभी प्रकार के सभी चरणों की क्रियाएं एकरस होती हुई प्रतीत होती हैं। जब इस ब्रह्माण्ड में 'त्वम् त्वम्' पद रश्मियां व्याप्त होने लगती हैं, तब सभी प्रकार की छन्द रश्मियां एक-दूसरे के साथ संयुक्त होती हुई सभी प्रकार की क्रियाओं को निरन्तरता के साथ जोड़े रखती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल में ३ त्रिष्टुप् तथा १५ जगती रश्मियों के समूह की उत्पत्ति होती है। इस समय विभिन्न प्राण-रश्मियां सक्रिय होकर ऊष्मा और प्रकाश में विशेष वृद्धि करती हैं। विभिन्न क्वान्टाज् के उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया भी तीव्र होती है। इस समय विभिन्न प्राण और मरुद् रश्मियों का आकर्षण प्रबल होकर कण और प्रतिकणों के पारस्परिक संयोग की प्रक्रिया तीव्र होकर ब्रह्माण्ड में ऊर्जा की मात्रा सतत बढ़ती जाती है। इस समय नाना प्रकार के मूल कणों का भी निर्माण होता है। डार्क एनर्जी और डार्क मैटर की भी उत्पत्ति होती है और उनको निष्क्रिय करके संयोगादि प्रक्रियाओं में भी तीव्रता आती है। सूक्ष्म प्राण रश्मियां मूल कणों और क्वान्टाज् से लेकर विशाल लोक-लोकान्तर तक को नित्य व्याप्त करके उन्हें उचित बल और गति प्रदान करती हुई अपने अक्ष एवं परिक्रमण पथ पर सतत गतिशील रखती हैं। इस समय ब्रह्माण्ड में बड़े-२ लोकों के निर्माण की प्रक्रिया भी तीव्र होती है। प्रतिकर्षण बल की अपेक्षा आकर्षण बल की प्रधानता रहती है। ये प्राण रश्मियां विभिन्न मूलकणों और क्वान्टाज् को कवच की भांति आच्छादित करके उन्हें सुरक्षित और क्रियावान् रखती हैं। विभिन्न मूलकणों और विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के मार्ग और गति को प्राण रश्मियां सुरक्षा और निरन्तरता प्रदान करती हैं। ये छन्द रश्मियां न केवल स्वयं परस्पर बंधी रहती हैं अपितु अन्य रश्मियों को भी अपने साथ एक सूत्र में बांधे रखने में सहयोग करती हैं।।

॥ इति २१.२ समाप्तः ॥

अथ २१.3 प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. आप्यन्ते वै स्तोमा आप्यन्ते छन्दांसि तृतीयेऽहन्येतदेव तत उच्छिष्यते वागित्येव तदेतदक्षरं त्र्यक्षरं वागित्यैकमक्षरमक्षरमिति त्र्यक्षरम्।।
स एवैष उत्तरस्त्र्यहो वागेकं गौरेकं द्यौरेकम्।।
ततो वै वागेव चतुर्थमहर्वहति।।

{वाक् = वाक् सरस्वती (मै.२.१.७; काठ११.८; श.७.५.१.३१), वागेव सरस्वती (ऐ.२.२४), वाग्वै सरस्वती (तै.सं.२.१.२.६), वैश्वदेवी वाक् (काठ.२१.८), (सरस्वती = वाग्वै सरस्वती - कौ.ब्रा.५.२; अथ यत्स्फूर्जयन् वाचमिव वदन् दहति तदस्य (अग्नेः) सारस्वतं रूपम् - ऐ.३.४; अन्तरिक्षं सारस्वतेन (अवरुन्धे) - श.१२.८.२.३२; सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपम् - कौ.ब्रा.१२.२), वागेव संस्तुत् छन्दः (श.८.५.२.५)}

व्याख्यानम्- तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण की सक्रियता वा प्रधानता के समय तक सभी स्तोम अर्थात् विकिरण एवं छन्द नामक प्राण रश्मियां सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त हो जाती हैं। उसके पश्चात् भी वाक् तत्त्व अपने सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त नहीं हो पाता है। इस समय पूर्वोक्त विभिन्न छन्द रश्मियां सम्यग्रूपेण तीव्रता के साथ प्रकाशित नहीं हो पाती हैं। यद्यपि उस समय तक पूर्वोक्त सभी त्रिवृत्, पञ्चदश एवं सप्तदश नामक स्तोम अर्थात् पूर्वोक्त गायत्री छन्द रश्मियों के विभिन्न समूह तथा तीनों मुख्य छन्द गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती व्यापक रूप से उत्पन्न होकर विभिन्न प्राण व मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर अग्नि, इन्द्र आदि सभी प्रकार के देव पदार्थों को उत्पन्न कर चुके होते हैं, पुनरपि वाक् तत्त्व अर्थात् ये छन्दादि रश्मियां पूर्णतः परिपक्व नहीं हो पाती। इस कारण ब्रह्माण्ड में तीव्र ज्वालाओं, चिनगारियों और गम्भीर घोषों से युक्त अग्नि तत्त्व का पूर्ण प्राकट्य नहीं होता। यद्यपि हम पूर्व खण्डों में अग्नि और इन्द्र आदि के तीक्ष्ण तेज के साथ-२ कहीं-२ ज्वालायुक्त अग्नि के उत्पन्न होने का उल्लेख कर चुके हैं, पुनरपि वाक् तत्त्व का अतितीक्ष्ण वज्ररूप एवं अति उच्च ताप व प्रकाश की उत्पत्ति अभी तक नहीं हो पाती। इस समय 'वाक्' यह तीन अक्षरों वाला पद स्वयं रश्मि रूप में प्रकट होता है। ये तीन अक्षर हैं- व्+आ+क् अर्थात् दो व्यजनों से युक्त एक स्वर। यहाँ हम स्वर और व्यंजनों पर विचार करते हैं- स्वरों के विषय में व्याकरण महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि कहते हैं-

"स्वयं राजन्त इति स्वराः" - महाभाष्य। अ.१। पा.२। सू.२६। आ.१।।

इसका अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द 'वर्णोच्चारण शिक्षा' नामक पुस्तक में लिखते हैं- "जिनके उच्चारण में दूसरे वर्णों के सहाय की अपेक्षा न हो वे 'स्वर' कहलाते हैं।"

व्यंजन के विषय में महर्षि पतंजलि कहते हैं-

"अन्वग्भवति व्यञ्जनमिति" - महाभाष्य। अ.१। पा.२। सू.२६। आ.१।।

इसका अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं- जिनका उच्चारण विना स्वर के नहीं हो सकता, वे 'व्यञ्जन' कहाते हैं।

हमारे मत में स्वर और व्यजनों का एक अन्य वैज्ञानिक रहस्य भी है- वह इस प्रकार है कि **स्वर रूपी सूक्ष्म वाग् रश्मियां स्वयं प्रकाशित वा सक्रिय होती हैं, जबकि व्यंजन रूपी वाग् रश्मियों में यह गुण नहीं होता। ये वाग् रश्मियां स्वर रश्मियों की अनुगामिनी होकर उनसे ही प्रकाशित और सक्रिय होती हैं**। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए पूर्वपीठिका पठनीय है। ध्यातव्य है कि संस्कृत भाषा

का, विशेषकर वैदिक भाषा का न केवल प्रत्येक शब्द वल्कि प्रत्येक अक्षर भी सार्थक होता है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने 'वाग्विज्ञान' तथा आर्य विद्वान् पं. रघुनन्दन शर्मा ने 'वैदिक सम्पत्ति' नामक पुस्तक के 'वाग् ध्वनियां और उनमें परिवर्तन' नामक अध्याय में सभी स्वरों और व्यंजनों के अर्थ दिये हैं, उनसे हमारी प्रायः सहमति है। उन्होंने 'व' का एक अर्थ वायु भी दिया है तथा इसी अक्षर के अन्य अर्थ आकाश, शक्तिशाली, भुजा, वस्त्र, वुनना, आदि भी दिये हैं। वामन शिवराम आप्टे ने अपने 'संस्कृत-हिन्दी कोश' में भी ऐसे ही अर्थ ग्रहण किये हैं। 'क' अक्षर का अर्थ आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, वायु, गांठ, मन, प्रकाश आदि भी दिये हैं। ऐसे ही कुछ अर्थ आप्टेकोष में भी दिये गये हैं। 'आ' स्वर के विषय में निम्नलिखित आर्ष वचन गम्भीर वैज्ञानिक प्रकाश डालते हैं-

१. आ प्रेति (प्र इति) च वा इदं सर्वम्, एति (आ इति) च। (जै.ब्रा.१.१८०)
२. प्रेति पशवो वितिष्ठन्त ऽएति समावर्तन्ते। (श.१.४.१.६)
३. प्रेति (प्र इति) वै प्राण एति (आ इति) उदानः (श.१.४.१.५)
४. प्रेति वै रेतः सिच्यत ऽएति प्रजायते। (श.१.४.१.६)

इन तीनों अक्षर रश्मियों पर सामूहिक रूप से विचार करने पर 'वाक्' रश्मि का प्रभाव निम्न प्रकार सिद्ध होता है-

यह रश्मि वायु तत्त्व अर्थात् पूर्व में उत्पन्न सभी प्रकार की छन्दादि रश्मियों को शक्तिशाली वनाती हुई प्रकाशित और गूंथने का कार्य करती है। अन्तरिक्ष में विद्यमान वे छन्द एवं मरुदादि रूप पशु रश्मियां सम्यग्रूपेण लौट-लौटकर दूसरी रश्मियों के साथ संयोग करने का प्रयत्न करती हैं। इस समय उदान प्राण भी पुनः सक्रिय होकर सवको उत्कृष्ट वल प्रदान करके उत्पादक कर्मों को समृद्ध करता है। इसका 'क' अक्षर इस 'वाक्' एवं अन्य छन्दादि रश्मियों को व्यापक रूप से वढ़ाता हुआ उन्हें मनस्तत्त्व के साथ विशेष रूप से संयुक्त करता हुआ सव रश्मि एवं परमाणु आदि पदार्थों को परस्पर जोड़ने में विशेष भूमिका निभाता है। इस प्रकार यह 'वाक्' नामक सूक्ष्म रश्मि पूर्व में उत्पन्न सभी छन्द रश्मियों व विभिन्न स्तोम रश्मियों को तीव्रता से सक्रिय और संगठित करके विद्युत् और तीव्र ऊष्मायुक्त तेजस्वी ज्वालामयी स्थिति को निर्मित करती है, इसी अवस्था को 'वाक्' तत्त्व का विशेष सक्रिय होना कहा गया है। यद्यपि 'वाक्' रश्मि तीन अक्षर वाली है परन्तु इसमें स्वर एक ही होने से एकाक्षरा भी कहलाती है क्योंकि यह स्वर ही स्वयं प्रकाशित व सक्रिय होता है।।

उपर्युक्त वाक् रश्मि का जो तीन अक्षरों का समूह है, वही आगामी त्र्यह अर्थात् चौथे, पांचवे, छटे अहन् का संक्षिप्त रूप है और इसी से 'वाक्' के तीन स्वरूप तीन चरणों में प्रकट होते हैं, जिनमें से प्रथम चरण पूर्वोक्त 'वाक्' तत्त्व है, द्वितीय चरण 'गौः' और तृतीय चरण 'द्यौः' है। इनमें से प्रथम स्वरूप (वाक्) पर हम पूर्व कण्डिका में विचार कर चुके हैं और दो आगामी स्वरूपों पर आगे यथास्थान विचार किया जाएगा, जव हम पांचवे एवं छटे अहन् की अर्थात् व्यान और देवदत्त प्राणों के उत्कर्ष की चर्चा करेंगे। यहाँ हम चतुर्थ अहन् की चर्चा प्रारम्भ करेंगे।।

पूर्वोक्त तीन अहन् अर्थात् नाग, उदान एवं कृकल प्राण के उत्कर्ष के लक्षण, स्वरूप एवं परिणाम की चर्चा करने के पश्चात् चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं कि वाक् तत्त्व ही चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु को वहन करता है। इसका तात्पर्य यह है कि जव सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष की प्रधानता का समय होता है, उस समय ही पूर्वोक्त वाक् तत्त्व सम्यग् रूपेण जाग्रत होकर तेजोमयी ज्वालाओं को उत्पन्न करता है। पूर्व में हम 'वाक्' रश्मि के जिन गुणों को लिख चुके हैं, वे गुण सूत्रात्मा वायु के गुणों से पूर्णतया मेल खाते हैं। यह सूत्रात्मा वायु ही विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों के साथ-२ विभिन्न परमाणुओं वा विशाल लोकों को भी परस्पर वांधे रखने में अनिवार्य भूमिका निभाता है और यही भूमिका 'वाक्' रश्मि की भी होती है। इस प्रकार **हमें 'वाक्' रश्मि एवं सूत्रात्मा वायु दोनों में अति निकट सम्बन्ध प्रतीत होता है। हमारे मत में यह भी सम्भव है कि यह एकाक्षरा 'वाक्' रश्मि ही सूत्रात्मा वायु का रूप हो, जो प्राणापानादि प्राथमिक प्राण रश्मियों से भी सूक्ष्म है।** इसकी उत्पत्ति पूर्वोत्पन्न नाग, उदान एवं कृकल प्राणों के उत्पन्न होने से पूर्व ही होती है परन्तु इसका तेजस्वी और परिपक्व स्वरूप इस चतुर्थ अहन् रूप चतुर्थ चरण में ही प्रकट

होता है। इसी कारण इसकी चर्चा यहाँ की गई है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में इस ब्रह्माण्ड में सभी प्रकार की सूक्ष्म व स्थूल रश्मियां विशेष रूप से गति और तेज से युक्त हो जाती हैं। पूर्व में बतलाये गये उनके सभी प्रभाव विशेष रूप से समृद्ध और प्रकट होते हैं, जिसके कारण विभिन्न प्रकार के कण और विकिरण आदि की ऊर्जा में विशेष वृद्धि होती है। इस समय सम्पूर्ण पदार्थ के सूक्ष्मांश भी एक-दूसरे से शृंखलाबद्ध रूप से बुने हुए धागों के समान बंध जाते हैं। सम्पूर्ण पदार्थ गम्भीर घोषयुक्त बड़ी-२ ज्वालाओं और चिनगारियों से युक्त होकर दहकने और दमकने लगता है। इस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, आवेशित तरंगें एवं विभिन्न सूक्ष्म स्थूल कणों अर्थात् Atom, molecule एवं कॉस्मिक डस्ट आदि सभी की ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है। इन कण्डिकाओं का विज्ञान विशेष गम्भीर है। इसको यथावत् समझने के लिए व्याख्यान भाग का अध्ययन अनिवार्य है।।

२. तद् यच्चतुर्थमहर्न्यूङ्खयन्त्येतदेव तदक्षरमभ्यायच्छन्त्येतद्वर्धयन्त्येतत्प्रविभाव-यिषन्ति चतुर्थस्याह्न उद्यत्यै।।
अन्नं वै न्यूङ्खो यदेळवा अभिगेष्णाश्चरन्त्यथान्नाद्यं प्रजायते, तद्यच्चतुर्थमह-र्न्यूङ्खयन्त्यन्नमेव तत्प्रजनयन्त्यन्नाद्यस्य प्रजात्यै; तस्माच्चतुर्थमहर्जातवद्भवति।।

व्याख्यानम्- चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियां न्यूङ्ख रूप को प्राप्त करती हैं। न्यूङ्ख के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करते हैं-

चतुर्थेऽहनि प्रातरनुवाकप्रतिपद्यर्धर्चाद्योर्न्यूङ्खः।।१।।
द्वितीयं स्वरमोकारं त्रिमात्रमुदात्तं त्रिः।।२।।
तस्य तस्य चोपरिष्टादपरिमितान्पञ्च वाऽर्धौकाराननुदात्तान्।।३।।
उत्तमस्य तु त्रीन्।।४।।
पूर्वमक्षरं निहन्यते न्यूङ्ख्यमाने।।५।।
तदपि निदर्शनायोदाहरिष्यामः।।६।।
आपो ३ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ओ ३ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ओ ३ ॐ ॐ ॐ रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं विमृथामृतं च रायो ३ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ओ ३ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ओ ३ ॐ ॐ ॐ श्च स्थः स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयोधो ३ मापो ३।।७।। (आश्व.श्रौ.७.११.१-७)

महर्षि आश्वलायन के इन वचनों का आशय यह है कि सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में, विशेषकर उस समय प्रातरनुवाक क्रियाओं में उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों में न्यूङ्ख किया जाता है अर्थात् इन ऋचाओं में आने वाले ओंकार की बार-२ आवृत्ति प्लुत और अनुदात्त एवं उदात्त के रूप में होती है। जैसा कि महर्षि आश्वलायन ने

आपों रेवतीः क्षयंथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिंभृथामृतं च।
रायश्च स्थ स्वंपत्यस्य पत्नीः सरंस्वती तद् गृंणते वयों धात्।।१२।। (ऋ.१०.३०.१२)

ऋचा को प्रस्तुत करके उदाहृत किया है। इस विषय पर विशेष व्याख्यान की आवश्यकता हमें अनुभव नहीं होती, सुधी विद्वान् स्वयं विचार कर सकते हैं। यहाँ हम इतना अवश्य कहना चाहेंगे कि महर्षि आश्वलायन ने इसी छन्द को इस कारण उदाहृत किया है क्योंकि इस छन्द रश्मि के उत्पन्न होते ही सभी छन्द रश्मियों की सक्रियता, तेजस्विता एवं संयोज्यता अति तीव्र गति से बढ़ने लगती है। इस विषय में २.१६.२ द्रष्टव्य है। वहाँ इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति प्रातरनुवाक क्रिया के अन्तराल में ही होती है। महर्षि आश्वलायन के मत में सूत्रात्मा वायु अर्थात् चतुर्थ अहन् के उत्कर्ष काल में इस छन्द रश्मि के ओंकार की बार-२ आवृत्ति होने लगती है, जिस कारण यह छन्द रश्मि एक नवीन और अत्यन्त शक्तिशाली व तेजस्वी स्वरूप में प्रकट होती है। हमारे मत में इस नवीन तेजस्विनी विचित्र

छन्द रश्मि के उत्पन्न होने पर सूत्रात्मा वायु के योग से अन्य छन्द रश्मियों के कुछ अक्षरों को भी इसी प्रकार वार-२ आवृत्त होने की न्यूङ्ख प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगती है। इस प्रवृत्ति से पूर्वोक्त 'वाक्' रश्मि किंवा सूत्रात्मा वायु स्वयं विस्तृत होने लगता है। डॉ. सुधाकर मालवीय ने षड्गुरुशिष्य को उद्धृत करते हुए लिखा है- 'आयच्छन्ति = दीर्घयन्ति। आयामो हि दैर्घ्यम्' - इसका तात्पर्य यह है कि इस न्यूङ्ख क्रिया से सूत्रात्मा वायु विस्तृत फैलता हुआ अपने प्रभाव क्षेत्र में सभी प्राण व छन्दादि रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों को वांधता-जोड़ता हुआ सक्रिय व तेजस्वी करता चला जाता है। वह सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि न केवल विस्तृत क्षेत्र में फैलती है अपितु उसकी मात्रा और शक्ति में भी भारी वृद्धि होने लगती है। उस समय उस सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि का सामर्थ्य इतना वढ़ जाता है कि सम्पूर्ण पदार्थ एक सूत्र में वंधता हुआ अति तेजस्वी और सक्रिय होकर पूर्वोक्त ज्वालामयी अवस्था को उत्पन्न करने में समर्थ होता है और यही सामर्थ्य ही सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष का सूचक है। इस प्रकरण से हमें यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि इस ब्रह्माण्ड की विभिन्न छन्द रश्मियों के स्वरूप, शक्ति और आकार में भारी परिवर्तन और परिवर्धन कर देता है। **यह छन्द विज्ञान का एक विशेष और विचित्र रहस्य है।।**

{इळवाः = इळानां कर्षक इति सायणः। अन्नम् = अन्नमेव ग्रहः। अन्नेन हीद ॐ सर्वं गृहीतम् (श.४.६.५.४), अन्नं प्राणः (तै.ब्रा.३.२.३.४), रेतो वा अन्नम् (गो.पू.३.२३), अन्नं वै मरुतः (तै.ब्रा. १.७.३.५;१.७.५.२), अन्नं ॐ रश्मिः (श.८.५.३.३)। गेष्णा = (गेषृ अन्विच्छायाम्)}

पूर्वोक्त न्यूङ्ख क्रिया के विषय में महर्षि लिखते हैं कि यह क्रिया अन्न के समान है। इस क्रिया में ओंकार की जो वार-२ आवृत्ति होती है, वह सूक्ष्म व नवीन प्राण वा मरुद् रश्मियों के समान सर्वत्र व्याप्त होने लगती है। ये सूक्ष्म रश्मियां अन्य छन्दादि रश्मियों को उत्पन्न वा संगत करने के लिए वीज के समान कार्य करती हैं। जिस प्रकार इळा अर्थात् विभिन्न वाग् रश्मियों को आकर्षित करने वाला मनस्तत्त्व जव **सव ओर से सृजन की कामना** करता हुआ {अन्नाद्यम् = आपो वा अन्नाद्यम् (काठ. संक.४६.७ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), वाग्वा अन्नाद्यम् (काठ.संक.५०.७ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} विचरता वा विक्षुब्ध होता है तथा जैसे उस समय नाना प्रकार के प्राथमिक प्राण और वाग् रश्मियों की उत्पत्ति होने लगती है, उसी प्रकार सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में विभिन्न वाक् एवं प्राण रश्मियों के साथ-२ अनेक संयोज्य परमाणुओं की तीव्रता से उत्पत्ति करने के लिए ही पूर्वोक्त न्यूङ्ख क्रिया हुआ करती है। इसके कारण ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार की प्राण व छन्दादि रश्मियां तथा तीव्र संयोजक गुणों से सम्पन्न विभिन्न परमाणुओं की उत्पत्ति होने लगती है क्योंकि इस चरण में सूत्रात्मा वायु के विशेष सक्रिय होने से संयोजक एवं वन्धक वलों में भारी वृद्धि होती है। इस कारण इस समय अनेक प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की भी तीव्रता से उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि महर्षि ने इस चतुर्थ अहन् में उत्पन्न छन्द रश्मियों को जातवत् अर्थात् 'जात' शव्द से युक्त माना है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ब्रह्माण्ड में विद्यमान वा उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों के स्वरूप और गुणों में एक विशेष परिवर्तन होता है। वह परिवर्तन यह है कि किन्हीं छन्द रश्मियों के अन्दर से नवीन-२ सूक्ष्म मरुद् वा प्राण रश्मियां उत्सर्जित होने लगती हैं। इस कारण वे छन्द रश्मियां विशेष तेज और वल से सम्पन्न होकर सभी कणों वा विकिरणों एवं सूक्ष्म रश्मियों को परस्पर एक सूत्र में वांधने का कार्य शृंखलावद्ध तरीके से करने लगती हैं। इस सवके कारण ब्रह्माण्ड में अन्योऽन्य क्रियाओं में अपूर्व वृद्धि होने लगती है और यह वृद्धि सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लेती है। इसके कारण अनेक प्रकार के कण और विकिरण भी पूर्व चरणों की अपेक्षा इस चरण में तीव्रतर गति से उत्पन्न होने लगते हैं। यह **सूत्रात्मा वायु 'वाक्' इस सूक्ष्म छन्द रश्मि का रूप होता है।** पूर्वोक्त प्रकरण में **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में जो ऊर्जा आदि में भारी वृद्धि होने की चर्चा की गई है, उसका कारण विभिन्न छन्द रश्मियों का इस प्रकार विचित्र परिवर्तित रूप धारण करना ही है। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

३. चतुरक्षरेण न्यूङ्खयेदित्याहुश्चतुष्पादा वै पशवः पशूनामवरुद्ध्यै।।
त्र्यक्षरेण न्यूङ्खयेदित्याहुस्त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोका एषामेव लोकानामभिजित्यै।।

एकाक्षरेण न्यूङ्खयेदिति ह स्माऽऽह लाङ्गलायनो ब्रह्मा मौद्गल्य एकाक्षरा वै वागेष वाव संप्रति न्यूङ्खं न्यूङ्खयति य एकाक्षरेण न्यूङ्खयतीति।।
द्व्यक्षरेणैव न्यूङ्खयेत् प्रतिष्ठाया एव; द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवो यजमानमेव तद्द्विप्रतिष्ठं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति, तस्माद् द्व्यक्षरेणैव न्यूङ्खयेत्।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि अन्य विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पूर्वोक्त न्यूङ्ख क्रिया अर्थात् ओंकार के वार-२ आवृत्त होने की क्रिया किसी ऋचा के प्रारम्भिक चार अक्षरों के उच्चारण होने के पश्चात् होती है। इसका कारण वतलाते हुए इस पक्ष के विद्वान् कहते हैं कि विभिन्न मरुद् रश्मियां चार पादयुक्त होती हैं अर्थात् वे चार प्रकार की गतियों से युक्त होती है। इस कारण उन्हें नियन्त्रित करने के लिए चार अक्षरों के पश्चात् न्यूङ्ख क्रिया का होना उचित सिद्ध होता है। हम पूर्व में भी अनेकत्र मरुद् रूप पशुओं को चतुष्पात् रूप में पढ़ चुके हैं।

इनके मतानुसार चार अक्षरों के पश्चात् ही वर्ण की वार-२ आवृत्ति रूप न्यूङ्ख क्रिया चतुष्पात् पशुओं अर्थात् मरुद् वा छन्द रश्मियों को नियन्त्रित, सक्रिय एवं उत्पन्न करने में सक्षम हो सकती है, न कि अन्य विधि से की गई न्यूङ्ख क्रिया से युक्त छन्द रश्मियां ऐसा करने में समर्थ हो सकती हैं।।

यहाँ पुनः कुछ अन्यतर विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए महर्षि लिखते हैं कि पूर्वोक्त न्यूङ्ख क्रिया किसी छन्द रश्मि के प्रारम्भिक चार अक्षरों के पश्चात् नहीं, वल्कि तीन अक्षरों के पश्चात् ही होती है। इसका कारण वताते हुए ये विद्वान् कहते हैं कि सभी लोक किंवा परमाणु आदि पदार्थ त्रिवृत् होते हैं, इस कारण इन त्रिवृत् लोकों को उत्पन्न वा नियन्त्रित करने के लिए तीन अक्षरों के पश्चात् ही न्यूङ्ख क्रिया से युक्त छन्द रश्मियां ही समर्थ होती हैं, न कि अन्य प्रकार की छन्द रश्मियां। यहाँ त्रिवृत् शब्द से कई अर्थों का ग्रहण किया जा सकता है, जो कि निम्नानुसार हैं-
(१) सभी परमाणु आदि पदार्थ सत्व, रजस् और तमस् तीन गुणों से युक्त होने के कारण त्रिवृत् कहलाते हैं। ऐसा ही अर्थ महर्षि दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य (१५.९) में किया है।
(२) विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ तीन प्रकार की विद्युत् अर्थात् धन, ऋण एवं उदासीन आवेश से युक्त होते हैं, इस कारण भी त्रिवृत् कहलाते हैं।
(३) विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ पृथिवी, जल और तेज के रूप में अथवा इनमें से किसी एक के रूप में विद्यमान होने से भी त्रिवृत् कहलाते हैं।
(४) विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ प्राण, अपान एवं व्यान इन मुख्य प्राण रश्मियों से युक्त होने से भी त्रिवृत् कहलाते हैं।
(५) विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ मन, वाक् एवं प्राण से युक्त होने के कारण भी त्रिवृत् कहलाते हैं।
(६) विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ मुख्यतः गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों से युक्त होने से भी त्रिवृत् कहलाते हैं।
(७) विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ पृथिवी, द्यौ एवं अन्तरिक्ष, इन तीन लोकों में वसने में भी त्रिवृत् कहलाते हैं।

इस कारण इस पक्ष के विद्वानों का कथन है कि ऐसे सभी त्रिवृत् पदार्थों को उत्पन्न, नियन्त्रित व सक्रिय करने के लिए तीन अक्षरों के पश्चात् ही न्यूङ्ख क्रिया करनी चाहिए।।

अव महर्षि ऐतरेय महीदास, महर्षि लाङ्गल **के पौत्र एवं** महर्षि मुद्गल **के पुत्र** महर्षि ब्रह्मा **के** कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त न्यूङ्ख क्रिया किसी छन्द रश्मि के केवल एक अक्षर के पश्चात् ही होती है। इसका कारण वतलाते हुए महर्षि ब्रह्मा कहते हैं कि 'वाक्' रश्मि एक अक्षर युक्त ही होती है। इस कारण एक अक्षर के पश्चात् ही न्यूङ्ख क्रिया से युक्त छन्द रश्मि ही 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु को अपने साथ संगत करने और इसके द्वारा विभिन्न रश्मियों और परमाणु आदि पदार्थों को संगत, नियन्त्रित एवं सक्रिय करने में समर्थ हो सकती है। जैसा कि हम पूर्व में अवगत करा

चुके हैं कि यह 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु ही सम्पूर्ण पदार्थ जगत् को परस्पर बांधे हुए है, इसी के कारण नाना प्रकार की संयोग एवं सृजन क्रियाएं सम्पन्न होकर विविध तत्त्वों का निर्माण होता है। इस कारण से महर्षि ब्रह्मा इस एकाक्षरा 'वाक्' रश्मि को सक्रिय करने के लिए एक अक्षर के पश्चात् न्यूङ्ख क्रिया का होना मानते हैं।।

अन्त में ग्रन्थकार ने पूर्व तीनों पक्षों को अमान्य करके स्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा है कि न्यूङ्ख क्रिया दो अक्षर के पश्चात् ही हुआ करती है। ऐसा ही मत हम महर्षि आश्वलायन का भी पूर्व में देख चुके हैं। इसका कारण बताते हुए महर्षि ऐतरेय महीदास कहते हैं {पुरुषः = पुरुषो वै संवत्सरः (श.१२.२.४.१), पशवः पुरुषः (तै.ब्रा.३.३.८.२), पुरुषः प्रजापतिः (श.६.२.१.२३), पुरुषो वै यज्ञः (कौ.ब्रा.१७.७)} कि पुरुष अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया में भाग लेने वाली विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियां द्विप्रतिष्ठ होती हैं और वे ही पुरुष रूप कहलायी जाती हैं। इस विषय में २.१८.१ में महर्षि ने स्पष्ट किया है कि विभिन्न छन्द रश्मियों का स्पन्दन उनके पूर्वार्ध एवं उत्तरार्द्ध भागों के अनुसार अर्थात् स्पन्दन त्वरित गति से होते हुए भी उनके दो पृथक्-२ भाग अपना प्रभाव पृथक्-२ दर्शाते हैं और यजमानरूप महत् तत्त्व भी मन और वाक् तत्त्व इन दो के रूप में ही प्रतिष्ठित होता है। इस कारण समस्त सृष्टि के पदार्थ द्विप्रतिष्ठ पुरुष के रूप में माने जाते हैं। इन द्विप्रतिष्ठ पदार्थों को प्रतिष्ठित और सक्रिय करने के लिए किंवा विभिन्न छन्द रश्मियों के अर्द्ध-२ भाग को सक्रिय, संगठित और तेजस्वी बनाने के लिए छन्द ऋचाओं को दो अक्षरों के पश्चात् ही न्यूङ्ख क्रिया से युक्त होना आवश्यक है। जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि विभिन्न छन्द वा प्राण रश्मियों की चार प्रकार की गतियां होती हैं, इस कारण वे चतुष्पात् कहलाती हैं। इधर द्विप्रतिष्ठ संगमनीय छन्द रश्मियां दो अक्षरों के पश्चात् न्यूङ्ख क्रिया से युक्त होकर सक्रिय व उत्तेजित होकर सभी चतुष्पात् छन्द रश्मियों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं अर्थात् उन्हें भी सक्रिय और उत्तेजित कर देती हैं। इस प्रकार ये द्विप्रतिष्ठ **संगमनीय छन्द रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ जगत् में व्याप्त हो जाती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया तीव्र हो उठती है, इसी कारण महर्षि कहते हैं कि दो अक्षरों को छोड़कर ही पूर्वोक्त न्यूङ्ख क्रिया** सम्पादित होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में कुछ छन्द रश्मियों में उनकी प्रथम दो अक्षर रश्मियों के पश्चात् एक विशेष परिवर्तन होता है, जिससे सम्पूर्ण छन्द रश्मि फैलकर एक ऐसे विचित्र रूप को प्राप्त करती है, जिसके कारण ब्रह्माण्डस्थ सभी रश्मियां एवं कण-विकिरण उत्तेजित और सक्रिय होकर नाना प्रकार की संयोगादि प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में नाना पदार्थों का निर्माण होने लगता है। छन्द रश्मियों में यह विचित्र परिवर्तन दो अक्षर रश्मियों के पश्चात् ही होता है। यह परिवर्तन सम्पूर्ण समूह को व्याप्त कर लेता है। इस परिवर्तन के विषय में विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

४. मुखतः प्रातरनुवाके न्यूङ्खयति; मुखतो वै प्रजा अन्नमदन्ति, मुखत एव तदन्नाद्यस्य यजमानं दधाति।।
मध्यत आज्ये न्यूङ्खयति; मध्यतो वै प्रजा अन्नं धिनोति, मध्यत एव तदन्नाद्यस्य यजमानं दधाति।।
मुखतो मध्यन्दिने न्यूङ्खयति, मुखतो वै प्रजा अन्नमदन्ति, मुखत एव तदन्नाद्यस्य यजमानं दधाति।।
तदुभयतो न्यूङ्खं परिगृह्णाति सवनाभ्यामन्नाद्यस्य परिगृहीत्यै।।३।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कहते हैं कि पूर्वोक्त प्रातरनुवाक अर्थात् सृष्टि के आरम्भिक चरणों में न्यूङ्ख की प्रक्रिया मुख से प्रारम्भ होती है अर्थात् पूर्वोक्त

आपो॑ रे॒वतीः॒ क्षय॑था॒ हि वस्वः॒ क्रतुं॑ च भ॒द्रं बि॑भृ॒थामृतं॑ च।

रायश्च स्थ स्वंपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद् गृणते वयों धात्।।१२।। (ऋ.१०.३०.१२)

के दो अक्षर के अन्तिम भाग में जो ओकार विद्यमान है, उसको ही पूर्वोक्तानुसार न्यूङ्ख किया जाता है अर्थात् यह न्यूङ्ख प्रक्रिया इस छन्द रश्मि के प्रारम्भिक भाग रूपी मुख से ही प्रारम्भ होती है। मुख के विषय में तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कहा है-

(१) मुखं वै वायव्यम् (पात्रम्) (मै.४.५.७)
(२) मुखं साम्नः (प्रस्तोता) (जै.ब्रा.१.८५)

इसका तात्पर्य यह है कि 'ओंकार' के दीर्घीकरण की प्रक्रिया रूपी न्यूङ्ख के प्रारम्भ होते ही इस भाग से ओंकार रूपी सूक्ष्म रश्मियां प्रकाशित होने लगती हैं। ध्यातव्य है कि महर्षि आश्वलायन के श्रौतसूत्र (७.११.७) में ओंकार रश्मि विद्यमान है न कि ओकार, इस कारण हमने ओंकार का ही ग्रहण किया है। यह ओंकार रश्मि किस प्रकार सर्वव्यापक होकर सबको बांधती और सामर्थ्य प्रदान करती है, यह सर्वमान्य तथ्य है। यहाँ महर्षि कहते हैं कि विभिन्न रश्मियां व परमाणु आदि रूप प्रजा-पदार्थ अन्य संयोज्य रश्मि वा परमाणुओं को मुख अर्थात् सूक्ष्म मरुद् वा प्राण रश्मियों द्वारा ही संगत करते हैं। इस कार्य तथा अन्य सभी कार्यों में भी ओंकार रश्मि की भूमिका अनिवार्य है, इसलिए यह ओंकार के दीर्घीकरण रूपी न्यूङ्ख की प्रक्रिया भी प्रातरनुवाक अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भिक एवं अति तीव्रगामी सूक्ष्म चरण में छन्द रश्मि के प्रारम्भिक भाग में ही प्रकट वा प्रारम्भ होती है। इसके कारण वहाँ उत्पन्न रश्मियों की शृंखला सभी अन्य रश्मि आदि पदार्थों को संयोजक बलों से युक्त करके अपने साथ संगत कर लेती है। इससे वे सभी रश्मि आदि पदार्थ शृंखलाबद्ध रूप से संगठित, सक्रिय एवं सतेज होने लगते हैं। इसमें सृष्टि प्रकिया तीव्र हो उठती है।।

आज्य शस्त्र में मध्य से अर्थात् तृतीय पाद में 'न्यूङ्ख' क्रिया प्रारम्भ होती है। इस प्रकरण में महर्षि आश्वलायन ने अपने श्रौतसूत्र (७.११) में लिखा है-

१. आग्निं न स्ववृक्तिभिरित्याज्यम्।।८।।
२. तस्योत्तमावर्जं तृतीयेषु पादेषु न्यूङ्खो निनर्दश्च।।९।।
३. उक्तो न्यूङ्खः।।१०।।
४. स्वरादिरन्त ओकारश्चतुर्निनर्दः।।११।।
५. उदात्तौ प्रथमोत्तमौ। अनुदात्तावितरौ। उत्तरोऽनुदात्ततरः।।१२।।
६. प्लुतः प्रथमो मकारान्त उत्तमः। तदपि निदर्शनायोदाहरिष्यामः।।१३।।
७. आग्निं न स्ववृक्तिभिः। होतारं त्वा वृणीमहे। यज्ञो३ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ओ३ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ओ३ ॐ ॐ ॐ यस्तीर्णबर्हिषे विवोमदो३ ॐ ३ ॐ ३ ॐ ३ शीरं पावकशोचिषं विवक्षसो ३ माग्निं न स्ववृक्तिभिः। होतारं त्वा वृणीमहे।।१४।। (आश्व.श्रौ.७.११.८-१४)

यहाँ महर्षि आश्वलायन ने ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः, वासुको वसुकृद्वा ऋषि अर्थात् विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को बसाने वाले उत्तेजित मनस्तत्त्व से उत्पन्न हुए एक सूक्ष्म प्राण विशेष से उत्पन्न अग्निदेवताक एवं निचृत् पंक्ति छन्दस्क-

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
यज्ञायं स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदें शीरं पांवकशोंचिषं विवंक्षसे।।१।। (ऋ.१०.२१.१)

को आज्य शस्त्र कहा है, इसका तात्पर्य यह है कि यह छन्द रश्मि अन्य छन्द रश्मियों को और भी अधिक संदीप्त तेज से युक्त कर देती है। इस छन्द रश्मि के देवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व अति तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि ज्वालाओं से युक्त होकर अपने तेज और आच्छादक आकाश तत्त्व के द्वारा होतारूप विभिन्न रश्मियों और परमाणुओं को शुद्ध और सेचक बलों के साथ व्यापक रूप से युक्त करता है। महर्षि आश्वलायन के मतानुसार इस छन्द रश्मि के तृतीय पाद के दो अक्षरों के पश्चात् न्यूङ्ख प्रक्रिया उत्पन्न होती है अर्थात् ओंकार की बार-२ दीर्घ आवृत्ति होती है। यहाँ 'निनर्द' शब्द यह भी बतलाता है कि वे ओंकार की रश्मियां व्यापक घोष

के साथ उत्पन्न होती हैं। यहाँ तृतीय पाद को ही छन्द रश्मि का मध्य भाग कहा गया है। इस छन्द रश्मि के उत्पन्न व सक्रिय होने के समय ही विभिन्न प्रकार के प्राण और अन्न संज्ञक पदार्थ उत्पन्न और तृप्त होते हैं। इस कारण इस समय और इस भाग में न्यूङ्ख और निनर्द क्रिया उत्पन्न होने से विभिन्न संयोजनीय परमाणु व रश्मि आदि पदार्थ वाक् एवं प्राण रश्मियों से विशेषतः युक्त होने लगते हैं। न्यूङ्ख प्रक्रिया को समझने के लिए आश्वलायन श्रौतसूत्र के उपर्युक्त १४ वें सूत्र पर विशेष विचार करना चाहिए।।

अब माध्यन्दिन सवन अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया के द्वितीय भाग की चर्चा करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस भाग में भी मुख अर्थात् ऋचा के आदि के द्वितीय अक्षर से ही न्यूङ्ख क्रिया होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन लिखते हैं-

(१) श्रुधीहवमिन्द्र मरुत्वाँ इन्द्रेति मरुत्वतीयम्।।२५।। (आश्व.श्रौ.७.११.२५)

(२) ....श्रुधीहवीयस्य तु तृच आद्येऽर्धर्चादिषु न्यूङ्खः।।२८।। (आश्व.श्रौ.७.११.२८)

यहाँ महर्षि आश्वलायन के अनुसार मरुत्वतीय शस्त्र के रूप में गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से इन्द्रदेवताक एवं पंक्ति छन्दस्क-

श्रुधी हवंमिन्द्र मा रिंषण्यः स्याम ते दावने वसूंनाम।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयंन्ति वसूयवः सिन्धंवो न क्षरंन्तः।।१।। (ऋ.२.११.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत संयोजक गुणों से युक्त होता हुआ सम्पूर्ण पदार्थ जगत् को व्याप्त करने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व वसु संज्ञक विभिन्न गायत्री आदि छन्द रश्मियों को किंवा परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संगत करते हुए बांधने वाली सूत्रात्मा वायु रश्मियों के समान सबको परस्पर जोड़ता हुआ अनिष्ट रश्मियों से रक्षा करता है, जिससे सृजन प्रक्रियाएं तेजी से विस्तृत होने लगती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि माध्यन्दिन के प्रसंग में महर्षि आश्वलायन ने मरुत्वतीय शस्त्र की उत्पत्ति क्यों बतायी है? इस विषय में हमारा मत यह है कि "मरुत्वद्धि माध्यन्दिनं सवनम्" (तां.९.७.२) इस आर्ष वचन से भी माध्यन्दिन सवन में मरुत्वतीय छन्द रश्मियों की ही प्रधानता सिद्ध होती है। इस सवन में भी इस ऋचा में विद्यमान प्रथम दो अक्षरों से ही न्यूङ्ख प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, जिसके कारण 'श्रुधी' पद के "श्रुधो" के रूप में परिवर्तित होने पर ओंकार की बार-२ आवृत्ति होती है। कण्डिका के शेष भाग का व्याख्यान प्रातरनुवाक की न्यूङ्ख प्रक्रिया दर्शाने वाली उपर्युक्त कण्डिका के समान समझें।।

इस प्रकार दोनों ही सवनों में न्यूङ्ख क्रिया सम्पन्न होती है। इसके कारण सभी प्रकार के पदार्थ, यथा- प्राण, मरुत् एवं छन्दादि रश्मियां तथा अन्य परमाणु आदि पदार्थ परस्पर एक-दूसरे के साथ संगत व संगठित होकर नाना तत्त्वों की उत्पत्ति-प्रक्रिया को तीव्र व तीव्रतर बनाते हैं। इस समय नाना प्रकार के बल व तेज की भी भारी वृद्धि होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में विभिन्न छन्द रश्मियों में पूर्वोक्त विशेष परिवर्तन से उन रश्मियों के मध्य से अनेक **'ओम्'** रश्मियां प्रकट होकर ब्रह्माण्डस्थ सभी रश्मियों, कणों एवं विकिरणों को परस्पर एक-दूसरे से गूंथ कर जोड़ देती हैं। इससे ब्रह्माण्ड में हो रही सभी प्रकार की क्रिया, बल, गति व संगति आदि में भारी वृद्धि होकर ऊर्जा में भी विशेष वृद्धि होती है। इस समय ब्रह्माण्ड में गम्भीर गर्जना भी उत्पन्न होती है। तीव्र ज्वालामयी अग्नि का बाहुल्य हो जाता है। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

इति २१.३ समाप्तः

अथ २१.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. वाग्वै देवता चतुर्थमहर्वहत्येकविंशस्तोमो वैराजं सामानुष्टुप्छन्दो यथा-देवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसं राध्नोति य एवं वेद।।
यद्वा एति च प्रेति च तच्चतुर्थस्याह्नो रूपं, यद्ध्येव प्रथममहस्तदेतत्पुनर्यच्चतुर्थं यद्युक्तवद्यद्रथवद्यदाशुमद्यत्पिबवद्यत्प्रथमे पदे देवता निरुच्यते यदयं लोकोऽभ्युदितो यज्जातवद्यद्धववद्यच्छुक्रवद्यद्वाचो रूपं यद्वैमदं यद्विरिफितं यद्विच्छन्दा यदूनातिरिक्तं यद्वैराजं यदानुष्टुभं यत्करिष्यद्यत्प्रथमस्याह्नो रूपमेतानि वै चतुर्थस्याह्नो रूपाणि।।
'आग्निं न स्ववृक्तिभिरिति' चतुर्थस्याह्न आज्यं भवति; वैमदं विरिफितं विरिफितस्य ऋषेश्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु की प्रधानता वा सक्रियता के काल में वाक् देवता का प्रादुर्भाव होता है। इस वाक् देवता के विषय में हम पूर्व खण्ड में विस्तार से लिख चुके हैं। वास्तविकता तो यह है कि पूर्वोक्त 'वाक्' **रश्मि ही वाक् देवता एवं सूत्रात्मा वायु नाम से जाना जाता है।** इस समय यह सूत्रात्मा वायु ही सभी पदार्थों का वाहक वन जाता है। इस समय एकविंश स्तोम नामक इक्कीस गायत्री छन्द रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। इन रश्मियों के विषय में ३.४३.२ एवं ४.१६.१ अवश्य पठनीय है। इस अवस्था में वैराज साम रश्मियां भी उत्पन्न होती हैं। वैराज साम रश्मियों के विषय में ४.१३.२ पठनीय है। इस चरण में अन्य छन्द रश्मियों के साथ अनुष्टुप् छन्द भी प्रधान रूप से उत्पन्न होता है। अनुष्टुप् छन्द के विषय में वेदवेत्ता ऋषियों का मन्तव्य रहा है-

१. अनुष्टुवनुष्टोभनात् (नि.७.१२; दै.३.७)
२. वागनुष्टुप् सर्वाणि छन्दांसि (तै.ब्रा.१.७.५.५)
३. अनुष्टुब्भि छन्दसां योनिः (तां.११.५.१७)
४. अनुष्टुबेव सर्वम् (गो.पू.५.१५)
५. वाग्वा अनुष्टुप् (ऐ.१.२८)
६. सक्थ्यावनुष्टुभः (श.८.६.२.६)
७. विश्वेदेवा अनुष्टुभं समभरन् (जै.उ.१.४.४.७)

इन आर्ष वचनों से यह सिद्ध होता है कि अनुष्टुप् छन्द रश्मियां अपने पिछले भाग के द्वारा अन्य सभी पूर्वोत्पन्न छन्द रश्मियों को थाम लेती हैं। ये छन्द रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों का निवास स्थान वन जाती हैं और 'वाक्' **रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु** की भांति ये छन्द रश्मियां सभी देव पदार्थों को संगठित और धारण करती हैं। इस कारण 'वाक्' रश्मि **अर्थात् सूत्रात्मा वायु** से अनुष्टुप् छन्द रश्मि का विशेष सम्वन्ध है और इसी कारण चतुर्थ अहन् का छन्द अनुष्टुप् वताया गया है। इस विषय में हमारा एक अन्य मत यह भी है कि कुछ गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्द रश्मियां इस प्रकार व्यवस्थित और समायोजित हो जाती हैं कि वे अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में भी प्रकट हो सकें। इस कारण भी इस चरण का छन्द अनुष्टुप् वताया गया है। इस काल में इस **सूत्रात्मा वायु किंवा** 'वाक्' **रश्मि** के सक्रिय होने पर उपर्युक्त एकविंश स्तोम, वैराज रश्मियां एवं विभिन्न अनुष्टुप् छन्द रश्मियां यथावत् समृद्ध होती चली जाती हैं।।

इस चरण में उत्पन्न वा विशेष सक्रिय छन्द रश्मियों में 'आङ्' एवं 'प्र' उपसर्ग के रूप में

विद्यमान होते हैं। जैसा कि हम अवगत हैं कि इन्हीं उपसर्गों की विद्यमानता प्रथम अहन् नाग प्राण की सक्रियता वा प्रधानता के समय भी होती है। इनके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां अपना प्रभाव सब ओर प्रकृष्ट रूप से दिखाती हैं। यहाँ यह भी सम्भव है कि सूत्रात्मा वायु का प्रभाव इन रश्मियों पर प्रकृष्ट रूप से सब ओर से होता हो। इस समय उत्पन्न वा विशेष सक्रिय छन्द रश्मियों में नाग प्राण के उत्कर्ष के समय उत्पन्न वा विशेष सक्रिय छन्द रश्मियों के समान निम्न गुण भी विद्यमान होते हैं-

(१) इन छन्द रश्मियों में 'युक्त' पद किंवा 'युजिर्योगे' धातु की विद्यमानता होती है, जिसके कारण ये छन्द रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणुओं के मध्य संयोग वा संगतीकरण की क्रिया तीव्र करती हैं।

(२) ये रश्मियां 'रथ' शब्द से युक्त होने के कारण विभिन्न सुन्दर वाहक किरणों को उत्पन्न करती हैं अथवा स्वयं ही विभिन्न रश्मियों को वहन करती हैं किंवा ये वज्ररूप होकर आसुर रश्मियों पर प्रहार करती हैं।

(३) इन छन्द रश्मियों में 'आसु' शब्द एवं पानार्थक 'पा' धातु की विद्यमानता होती है। जिसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां विभिन्न संयोज्य रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अवशोषित करके नवीन पदार्थों का निर्माण तेजी से करती हैं।

(४) इन छन्द रश्मियों में देवतावाची पद प्रथम पाद में विद्यमान होता है, जिसके कारण इनका दैवत प्रभाव इस पाद के प्रभाव से ही प्रकट होता है।

(५) इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न अप्रकाशित रश्मि आदि पदार्थ विशेषरूप से अभ्युदित होकर परस्पर विशेष नियन्त्रण के गुण से सम्पन्न होते हैं।

इस प्रकार इन उपर्युक्त गुणों के साथ इन छन्द रश्मियों की प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्द रश्मियों के साथ समानता होती है। इस विषय में ४.२६.२ भी पठनीय है। इन समान गुणों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट गुणों का वर्णन इस प्रकार है-

(१) ये छन्द रश्मियां 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से युक्त होने के कारण नवीन पदार्थों को उत्पन्न करने में विशेष सक्रिय होती हैं।

(२) ये छन्द रश्मियां 'ह्वेञ् स्पर्धायाम्' धातु से युक्त होने के कारण विभिन्न रश्मियों वा परमाणुओं को पारस्परिक स्पर्धा किंवा संघर्ष के लिए विशेष प्रेरित करती हैं।

(३) ये छन्द रश्मियां 'शुक्र' शब्द से युक्त होने के कारण {शुक्रः = आशुकारी (म.द.ऋ.भा.६.१६.३४), शुक्रं शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः (नि.८.११), शुक्रः सोमः (तां.६.६.९), ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् (ऐ.७.१२)} आशुकारी और विशेष बलवती होकर तेजस्वी सुन्दर ज्वालाओं को उत्पन्न करती हैं, साथ ही ये अनेक प्रकार की सृजन क्रियाओं को भी समृद्ध करती हैं। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों का तीव्रता से भक्षण करने वाली होती हैं एवं यही गुण अन्य रश्मियों में भी उत्पन्न करती हैं। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "अत्ता वै शुक्रः" (श.५.४.४.२०)।

(४) ये छन्द रश्मियां 'वाक्' प्रतिपादक पद से युक्त होती हैं, जिसके कारण इनका प्रभाव पूर्व कण्डिका में वर्णित वाक् के प्रभाव के समान प्रभावकारी होता है।

(५) ये छन्द रश्मियां 'वि' पूर्वक 'मद्' धातु से युक्त होने से विशेष रूप से सक्रिय होकर अन्य रश्मि वा परमाणुओं को विशेष सक्रिय करती हैं।

(६) ये छन्द रश्मियां 'वि' पूर्वक 'रिफ कत्थनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु' धातु से युक्त होने के कारण तीक्ष्णरूप धारण करने वाली अति भेदन शक्तिसम्पन्न होती हैं।

यहाँ आचार्य सायण ने 'वैमदम्' पद से प्राचीन भाष्यकार षड्गुरुशिष्य का अनुकरण करके इस चरण में उत्पन्न छन्द रश्मियों को विमद ऋषि द्वारा उत्पन्न कहा है। हम इन भाष्यकारों के इस मत को भी स्वीकार करते हैं क्योंकि इस चरण में उत्पन्न दो सूक्त रश्मियां 'ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः, वासुक्रो वसुकृद्वा' ऋषि प्राण, जिसके विषय में हम पूर्वखण्ड में लिख चुके हैं, से उत्पन्न होती हैं। इन ऋषि-प्राणों का भी वही प्रभाव होगा, जो हमने उपर्युक्त बिन्दु ५ में दर्शाया है। इन गुणों के अतिरिक्त कुछ अन्य गुण भी इस समय उत्पन्न छन्द रश्मियों किंवा सूक्तरूप रश्मिसमूहों में विद्यमान होते हैं-

(१) इस समय उत्पन्न सूक्तरूप रश्मिसमूहों में छन्दों की विविधता वाली रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिसके कारण इनका प्रभाव भी व्यापक और विविधता वाला होता है।

(२) इस प्रकार की छन्द रश्मियां न्यून वा अधिक अक्षर रश्मियों से भी युक्त होती हैं, इस कारण इनका स्वरूप और भी अधिक विविधतापूर्ण हो जाता है।

(३) ये छन्द रश्मियां वैराज साम संज्ञक छन्द रश्मि से युक्त होने के कारण चित्र-विचित्र वर्ण वाली

दीप्तियों को उत्पन्न करती हैं।
(४) इस समय उत्पन्न छन्द रश्मियों में पूर्वोक्त अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है और उनका प्रभाव भी पूर्वोक्तवत् हुआ करता है।
(५) इस समय उत्पन्न छन्द रश्मियों में 'कृ' धातु के भविष्यत्काल के रूप का प्रयोग विद्यमान होता है। इसका तात्पर्य यह है कि विविध पदार्थों के क्रमबद्ध निर्माण का जो उपक्रम प्रारम्भ हुआ था, वह पूरा होने की ओर अग्रसर तो है परन्तु अभी पूर्ण नहीं हुआ है।

ये उपर्युक्त सभी लक्षण चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल के सूचक होते हैं। इनमें से कुछ पूर्वोक्त लक्षण प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल के समान होते हैं।।

इस चरण में सर्वप्रथम 'ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः, वासुक्रो वसुकृद्वा' ऋषि प्राण से अग्निदेवताक ऋ.१०.२१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे।।१।।

इस छन्द रश्मि के विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।

(२) त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे।।२।।

इसका छन्द पादनिचृत् पंक्ति होने से दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नितत्त्व विभिन्न आशुगामी और व्यापक बल रश्मियों को सिद्ध करता हुआ अच्छी प्रकार प्रभावशाली होता है। वह अग्नितत्त्व सरलगामिनी मास रश्मियों का सेचन करता हुआ अन्य रश्मि वा परमाणुओं में व्याप्त होकर उन्हें चंचल अर्थात् विशेष सक्रिय बनाता है।

(३) त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे।।३।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अर्जुनः = प्रशस्तं रूपं विद्यते यस्य सः (म.द.य.भा.१०.२१), रूपनाम (निघं.३.७), अर्जुनं शुक्लम् (नि.२.२१), अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यनाम (श.५.४.३.७)। जुहूः = जुहूर्वै यज्ञमुखम् (मै.३.१.१), द्यौरसि जन्मना जुहूर्नाम (मै.१.१.१२), वाग् जुहूः (तै.आ.२.१७.२)} उस अग्नितत्त्व को धारण करने वाले विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ सम्पूर्ण पदार्थ जगत् में व्याप्त होकर विभिन्न संयोज्य एवं प्रकाशशील रश्मियों के समान कृष्ण और श्वेत वर्णों से मिश्रित विविध रूपों वाले इन्द्र तत्त्व को अपने अन्दर गुप्त रूप से धारण करते हैं। वे ऐसे पदार्थ सभी प्रकार की प्राणादि रश्मियों को विशेष और व्यापक रूप से धारण करते हैं।

(४) यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे।।४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अविनाशी अग्नि तत्त्व अनेक प्रतिरोधक बलों से युक्त होकर विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों के द्वारा दीप्तिमान होता है। विभिन्न संयोग-वियोगादि प्रक्रियाओं में वह ऐसा अग्नि तत्त्व विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं मरुद् रश्मियों के बलों का उचित विभाग करके व्यापक रूप से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अनेक विचित्र रूपों से धारण व सक्रिय करता है।

(५) अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या।

भुवंद्दूतो विवस्वंतो वि वो मदें प्रियो यमस्य काम्यो विवंक्षसे।।५।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नितत्त्व में विद्यमान अहिंसनीय प्राथमिक प्राण रश्मियों के द्वारा सम्पूर्ण छन्द रश्मियां प्रकाशित होती हैं। वह प्राण तत्त्व विशेषरूप से सबको बनाने वाला और प्रेरक होकर सबके नियामक विद्युत् अग्नि के द्वारा कमनीय होकर समस्त पदार्थों को व्यापक रूप से सक्रिय करता है।

(६) त्वां यज्ञेष्वीळतेऽ ग्नें प्रयत्यंध्वरे।
त्वं वसूंनि काम्या वि वो मदे विश्वां दधासि दाशुषे विवंक्षसे।।६।।

इसका छन्द आर्ची पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां प्रकाशित और परस्पर संगत होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न संगतीकरण आदि क्रियाओं में निरापद रूप से क्रियाशील रहते हुए सबको प्रकाशित करता एवं स्वयं प्राणादि रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होता है। वह अग्नि विभिन्न पदार्थों को धारण व आकर्षण आदि के द्वारा बसाता हुआ संयोग-वियोग क्रियाओं को समृद्ध करने के लिए उन्हें विशेष सक्रिय करता है।

(७) त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुंमग्ने नि षेंदिरे।
घृतप्रंतीकं मनुंषो वि वो मदें शुक्रं चेतिंष्ठमक्षभिर्विवंक्षसे।।७।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न सृजन और संगतीकरण की क्रियाओं में वह अग्नि तत्त्व विभिन्न ऋतु रश्मियों का यजन करता हुआ सुन्दर और संदीप्त तेज से युक्त होकर आशुगामी एवं सबको सक्रिय और सम्बद्ध करने वाले सूत्रात्मा वायु में आश्रय पाता है। इस कारण वह अग्नि और भी व्यापक रूप से सक्रिय हो उठता है।

(८) अग्नें शुक्रेणं शोचिषोरु प्रंथयसे बृहत्।
अभिक्रन्दंन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवंक्षसे।।८।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि शुभ्र दीप्तियों के द्वारा व्यापक रूप से तीक्ष्ण प्रभाव के साथ सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। वह तीक्ष्ण और व्यापक अग्नि सब ओर से गर्जना करता हुआ सभी पदार्थों को सेचक बलों से युक्त करता है। वह ऐसा सक्रिय अग्नि तत्त्व विभिन्न गतिशील परमाणु आदि पदार्थों में तेजस्वी किरणों के रूप में व्याप्त रहता है।

इस सूक्त को ग्रन्थकार ने आज्य शस्त्र कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि इस चरण की विभिन्न क्रियाओं में ये छन्द रश्मियां सर्वप्रथम संदीप्त तेज को उत्पन्न करती हैं। इनमें से प्रथम छन्द रश्मि के आज्यत्व एवं न्यूङ्खकृत् होने के विषय में पूर्व खण्ड पठनीय है। यह सूक्तरूप रश्मिसमूह 'ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः वासुक्रो वसुकृद्वा' ऋषि से उत्पन्न होने के कारण वैमद नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही इस सूक्त की सभी छन्द रश्मियों में 'वि' पूर्वक 'मद्' धातु का भी प्रयोग है। इस कारण भी यह 'वैमद' कहा जाता है। इस सूक्त की प्रथम ऋचा न्यूङ्ख के साथ उत्पन्न होती है, यह बात हम पूर्वखण्ड में लिख चुके हैं। इससे विखण्डित एवं विकृत अवस्था को प्राप्त करने के कारण यह ऋचा और सूक्त 'विरिफित' कहा जाता है।

आचार्य सायण का भी कथन है- 'विशेषक्लेशेन न्यूङ्खेनोच्चारितं 'विरिफितम्'। (सायणभाष्य) इस प्रकार यह सूक्त रूप रश्मि 'वैमद' और 'विरिफित' होने से चतुर्थ अहन् अर्थात् 'वाक्' रश्मि किंवा सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** अर्थात् **'वाक्' रश्मि** के उत्कर्ष काल में अन्य छन्द रश्मियों के साथ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां विशेष रूप से उत्पन्न होती हैं। ये अनुष्टुप् रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों को थाम कर उन्हें विशेष तेज व बल से युक्त एवं व्याप्त करती हैं। इसके कारण ब्रह्माण्ड में समस्त

पदार्थ अर्थात् सूक्ष्म रश्मियों से लेकर सभी प्रकार के कण एवं विकिरण सभी परस्पर विभिन्न बलों से विशेष रूप से आबद्ध होकर संघटित व सतेज होने लगते हैं। इससे विभिन्न तत्त्वों के सृजन की प्रक्रिया और भी बलवती हो उठती है। इस समय ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार की सुन्दर रंगों वाली किरणें उत्पन्न हो कर पदार्थ को तेजस्वी, रंग-बिरंगा व तीव्र ज्वलनशील बनाती हैं। डार्क एनर्जी व डार्क मैटर का बाधक प्रभाव निराकृत होता है। विभिन्न कणों व क्वाण्टाज़् का पारस्परिक संघर्ष, संयोग तेजी से वर्धमान होता है। तीव्र तप्त ज्वालाएं उठने लगती हैं तथा विद्युत् चुम्बकीय धाराओं की तीव्रता व संख्या भी बढ़ने लगती है। इस समय अत्यन्त भेदक शक्तिसम्पन्न गामा आदि किरणों की भी वृद्धि होती है। इससे विभिन्न अणुओं, एटम्स तथा कॉस्मिक धूल कणों का तेजी से विखण्डन होकर नवीन-२ संयोग-संघातों का जन्म होकर नाना तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ विशेषरूप से विविधतायुक्त होने लगता है। काले व श्वेत रंग की भी अनेक रश्मियां विद्युत् शक्ति सम्पन्न होकर प्रकट होने लगती हैं। इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत् गर्जना भी होने लगती है। इस समय आठ प्रकार की विभिन्न पंक्ति रश्मियां उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पदार्थ को व्याप्त करके अन्योऽन्य क्रियाओं का समृद्ध करती हैं।।

२. अष्टर्चं पाङ्क्तं, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशवः, पशूनामवरुद्ध्यै।।
ता उ दश जगत्यो जगत्प्रातःसवन एष त्र्यहस्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
ता उ पञ्चदशानुष्टुभ आनुष्टुभं ह्येतदहस्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
ता उ विंशतिर्गायत्र्यः पुनः प्रायणीयं ह्येतदहस्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
तदेतदस्तुतमशस्तमयातयामसूक्तं यज्ञ एव साक्षात् तद्यदेतच्चतुर्थस्याह्न आज्यं भवति; यज्ञादेव तद् यज्ञं तन्वते, वाचमेव तत्पुनरुपयन्ति संतत्यै।।
संततैस्त्र्यहैरव्यवच्छिन्नैर्यन्ति य एवं विद्वांसो यन्ति।।

{पंक्तिः = पृथुरिव वै पङ्क्तिः (गो.पू.४.४; श.१२.२.४.६), प्रतिष्ठा वै पङ्क्तिः (कौ.ब्रा. ११.३), मरुतः पङ्क्तिं समभरन्। तां ते प्राविशन्। तान् साछादयत् (जै.ब्रा.१.२८३), यजमानो वै पङ्क्तिः (मै.३.३.६)। मरुतः = ऋतवो वै मरुतः (मै.४.६.८), ऋतवो वै वाजिनः (कौ. ब्रा.५.२; श.२.४.४.२२)। यज्ञः = प्राणेन यज्ञः सन्ततः (मै.४.६.२)}

व्याख्यानम्- उपर्युक्त ८ रश्मियों वाला सूक्त पंक्तिश्छन्दस्क होने से पाङ्क्त कहलाता है। इसके साथ ही यह सूक्त पाङ्क्त होने से अति विस्तार एवं विशेष संयोजक गुणों से युक्त होता है, जिसके कारण सर्ग यज्ञ प्रक्रिया तीव्र होती है। उधर यह प्रक्रिया भी पाङ्क्त कहलाती है, इसका कारण यह है कि **कोई भी संयोग आदि की प्रक्रिया होने के लिए आत्मा (सर्व प्रेरक), मनस्तत्त्व, प्राथमिक प्राण, छन्द रश्मियों एवं मास रश्मियों का विद्यमान होना अनिवार्य होता है।** दूसरी ओर पांच प्राथमिक प्राणों की अनिवार्यता होने के कारण भी सर्ग प्रक्रिया को पाङ्क्त कहा जाता है। अब महर्षि लिखते हैं कि 'पशु' अर्थात् छन्द एवं मरुद् रश्मियां भी पाङ्क्त कहलाती हैं। उधर एक अन्य ऋषि ने कहा है- 'प्राणाः पशवः' (तै. ब्रा.३.२.८.९)। इस कारण पांच प्राथमिक प्राणों रूप 'पशु' भी पाङ्क्त कहलायेगा। इन सभी रश्मियों में पांच मुख्य गुण- वेग, धारण, प्रकाश, आकर्षण एवं प्रतिकर्षण होने से इन रश्मियों को पाङ्क्त कहा है। किसी भी संयोगादि प्रक्रिया में इन पांचों ही गुणों की अनिवार्यता होने के कारण यज्ञ को भी पाङ्क्त कहा है। विभिन्न ऋतु रश्मियों को भी मरुत् एवं वाजी कहने से भी ये ऋतु रश्मियां पशुसंज्ञक होने से पाङ्क्त कहलाती हैं क्योंकि ऋतुएं भी पांच होती हैं। इस विषय में ऋषियों ने कहा है-

१. द्वौ हि मासावृतुः (श.७.४.२.२९)
२. पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समानेन (ऐ.१.१)

ये मरुत्, छन्द, ऋतु एवं प्राणादि रश्मियां अत्यन्त व्यापक होने एवं प्रत्येक संयोगादि प्रक्रिया में इनकी अनिवार्य भूमिका होने से भी पाङ्क्त कहलाती हैं और ऐसी पाङ्क्त संज्ञक ये सभी रश्मियां उपर्युक्त पंक्ति छन्द रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित और प्रेरित की जाती हैं। इस कारण ही इस पंक्तिश्छन्दस्क

सूक्त की सर्वप्रथम उत्पत्ति होती है।।

उपर्युक्त ८ पंक्ति रश्मियां दस जगती छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। इस विषय में आचार्य सायण का मत है कि उपर्युक्त सूक्त की प्रथम और अन्तिम छन्द रश्मि तीन-२ बार आवृत्त होने से कुल १२ पंक्ति रश्मि होकर ४८० अक्षर हो जाते हैं, जो १० जगती छन्द रश्मियों के बराबर हैं। इस प्रकार उपर्युक्त पाङ्क्त सूक्त जागत सूक्त के रूप में भी व्यवहार करता है। **जगती छन्द रश्मियों को महर्षि ने मध्यम त्र्यह का प्रातःसवन कहा है।** हमारे मत में इसका तात्पर्य यह है कि यह चरण पूर्व तृतीय चरण, जो जगती छन्द रश्मियों की प्रधानता वाला होता है, के तत्काल पश्चात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के प्रकट होते ही प्रारम्भ हो जाता है। इसके साथ ही यह भी कारण है कि पूर्वोत्पन्न जगती रश्मियों के द्वारा अतिशीघ्र प्रेरित होकर यह चतुर्थ अहन् अकस्मात् प्रारम्भ होता है। इस कारण भी जगती छन्द रश्मियों को मध्यम त्र्यह अर्थात् चतुर्थ अहन् का प्रातःसवन कहा है क्योंकि इस समय उत्पन्न पूर्वोक्त ८ पंक्ति छन्द रश्मियां १० जगती छन्द रश्मियों को उपर्युक्तानुसार उत्पन्न करती हैं। इस कारण इन पंक्ति छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना चतुर्थ अहन् अर्थात् 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष का सूचक है। इन जगती छन्द रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न कणों एवं क्वान्टाज् में अन्योन्य क्रिया तीव्रता से होती है।।

अब महर्षि पंक्ति छन्द रश्मियों का अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से सम्बन्ध बतलाते हुए कहते हैं कि ८ पंक्ति छन्द रश्मियों से उपर्युक्तानुसार उत्पन्न हुई १० जगती छन्द रश्मियां ३२ अक्षर वाली १५ अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं, इस कारण पूर्वोक्त पाङ्क्त सूक्त अनुष्टुप् छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने वाला किंवा उनसे सम्बद्ध होता है। अनुष्टुप् छन्द रश्मियों से सम्बद्धता ही अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की प्रधानता वा सक्रियता की द्योतक है और इनकी सक्रियता वा प्रधानता चतुर्थ अहन् **वाक् रश्मि किंवा सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष का सूचक है। अनुष्टुप् छन्द रश्मियां ब्रह्माण्ड में स्थित सभी छन्दादि **रश्मियों को थामने**, नियन्त्रित करने एवं अधिक सक्रिय करने में समर्थ होती हैं।।

उपर्युक्तानुसार उत्पन्न १० जगती छन्द रश्मियां २४ अक्षर वाली २० गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में भी प्रकट होती हैं। यह हम जानते ही हैं कि गायत्री छन्द रश्मियों की प्रधानता वा सक्रियता प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष की सूचक है। इधर चतुर्थ अहन् मध्यम त्र्यह का प्रथम अहन् है, इसी कारण इन दोनों में अनेक समानताएं हैं। इधर हम यह भी जानते हैं- गायत्री वै सा यानुष्टुप् (कौ.ब्रा.१०.५) इस कारण भी इस पाङ्क्त सूक्त का उत्पन्न होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा वाक् रश्मि के उत्कर्ष का सूचक है। इन गायत्री छन्द रश्मियों के प्रभाव से प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष के प्रभाव भी प्रकट होने लगते हैं।।

यहाँ महर्षि कहते हैं कि यह उपर्युक्त 'पाङ्क्त' सूक्त {यातयामः = परित्यक्त-जीर्ण-थका हुआ (आप्टेकोष)। याम = मार्गम् (तु.म.द.य.भा.१७.१०), यान्ति येन यस्मिन् वा तम् (तु.म.द.ऋ.भा.७.५८.२)। यामः = मर्यादा (म.द.ऋ.भा.१.१००.२)} न तो शस्त्र रूप ही है और न स्तोत्ररूप ही। इसका आशय यह है कि इस सूक्त की छन्द रश्मियां स्तोत्ररूप निविद् वा मास रश्मियों के समान साक्षात् संयोजक धर्म वाली भी नहीं होती हैं और न ही शस्त्ररूप अर्थात् विट् संज्ञक सूक्त रश्मियों के समान नाना पदार्थों को उत्पन्न करने में प्रत्यक्ष भूमिका निभाती हैं। पाठक स्तोत्र और शस्त्र के निविद् वा विट् संज्ञक सूक्त रूप के विषय में खण्ड २.३७ अवश्य पढ़ें। जब ये छन्द रश्मियां संगतीकरण की प्रक्रिया को उपर्युक्त शस्त्र और स्त्रोत की भांति साक्षात् उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होती हैं, तब उन्हें क्यों यज्ञीय अर्थात् सृष्टि प्रक्रिया को समृद्ध करने वाली कहा है?

इसका समाधान करने के लिए महर्षि ने कहा है कि अशस्त एवं अस्तुत होते हुए भी ये छन्द रश्मियां अयातयाम होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां सक्रिय, समर्थ एवं परस्पर एक-दूसरे से संयुक्त होती हुई ही उत्पन्न होती हैं। इस कारण ये रश्मियां साक्षात् यज्ञ का रूप होती हैं अर्थात् अपने से पूर्व और पश्चात् उत्पन्न विभिन्न रश्मियों और परमाणुओं आदि को संगत, सक्रिय और सतेज करने में अपनी महती भूमिका निभाती हैं। इसी कारण इनको चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष काल का आज्य कहा है। आज्य के स्वरूप के विषय में हम पूर्व में यथास्थान

लिख चुके हैं, पुनरपि हम कुछ आर्ष वचनों को यहाँ उद्धृत करते हैं-

१. यज्ञो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.३.४.१)
२. यजमानो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.३.४.४)
३. काम आज्यम् (तै.ब्रा.३.१.४.१५)
४. प्राणो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.८.१५.३)
५. रेतो वाऽआज्यम् (श.१.६.२.७)
६. छन्दांसि वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.१.५.३)
७. अयातयाम ह्याज्यम् (श.१.५.३.२५)

इन वचनों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि समर्थ और परस्पर संगत होती हुई उत्पन्न छन्द रश्मियां अन्य पदार्थों को भी संगत और सक्रिय करती हैं। ये प्राणरूप व्यवहार करके सबको बल और गति प्रदान कराती हैं एवं छन्दरूप व्यवहार करके सभी रश्मि वा परमाणु रूप पदार्थों को आच्छादित और प्रकाशित करती हैं। ये रश्मियां अपने चरण में उत्पन्न विभिन्न पदार्थों की उत्पत्ति के लिए कामना एवं उत्पादक शक्ति का रूप होती हैं, इस कारण ही इन्हें यज्ञ और आज्य रूप कहा है। ये यज्ञरूप होकर आगामी सर्ग यज्ञ की प्रक्रियाओं को उत्पन्न वा प्रेरित करती हैं, जिससे सर्ग यज्ञ का विस्तार होता है। इस कार्य के लिए ये छन्द रश्मियां 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु के साथ भी निकटता से संगत होकर मध्यम त्र्यह की सभी प्रक्रियाओं को निरन्तरता, सक्रियता और सबलता प्रदान करती हैं। इस प्रकार की स्थिति ब्रह्माण्ड में बनने पर उस समय हो रही विभिन्न सृजन क्रियाएं परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होकर अविच्छिन्न रूप से निरन्तर चलती रहती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोत्पन्न ८ पंक्ति रश्मियां इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र फैलकर आकर्षण बलों एवं विभिन्न कणों और विकिरणों के संयोग की प्रक्रिया को तीव्र करती हैं। इस ब्रह्माण्ड में **किसी भी संयोग प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए ५ तत्त्वों को होना अनिवार्य है- १. सर्वप्रेरक सर्वज्ञ सर्वनियामक चेतन ईश्वर तत्त्व, २. मनस्तत्त्व ३. प्राथमिक प्राण रश्मियां, ४. विभिन्न छन्द रश्मियां और ५. मास रश्मियां।** विभिन्न छन्द, मरुद् वा प्राण रश्मियों के पांच मुख्य गुण होते हैं- **वेग, धारण, आकर्षण, प्रतिकर्षण एवं प्रकाश।** किसी भी संयोग के लिए इन पांचों गुणों का होना अनिवार्य है। कहीं हम प्रकाश के स्थान पर छेदन-भेदन गुण का भी ग्रहण कर सकते हैं। विभिन्न संयोगादि क्रियाओं के लिए पांच ऋतु रश्मियां भी प्रायः अपनी भूमिका निभाती हैं। ये पंक्ति छन्द रश्मियां जगती, अनुष्टुप्, गायत्री आदि रश्मियों का भी रूप धारण करके, साथ ही सूत्रात्मा वायु के साथ संयुक्त होकर विभिन्न कणों एवं क्वान्टाज् में अन्योन्य क्रियाओं को समृद्ध करती हैं। इसके कारण वे विभिन्न छन्द रश्मियों, कणों एवं विकिरणों के बीच तीव्र हलचल उत्पन्न करके सृजन क्रियाओं को तीव्र और विस्तृत करती हैं। ये पंक्ति छन्द रश्मियां परस्पर संयुक्त होती हुई ही उत्पन्न होती हैं और उत्पन्न होते ही सक्रियता और संयोज्यता के विशेष चरण का विशेष बीजारोपण करती हैं। इसके साथ ही ये रश्मियां विभिन्न क्रियाओं को निरन्तरता भी प्रदान करती हैं।।

३. वायो शुक्रो अयामि ते, विहि होत्रा अवीता, वायो शतं हरीणा, मिन्द्रश्च वायवेषां सोमानाम्, आ चिकितान सुक्रतू, आ नो विश्वाभिरूतिभिर,त्यमु वो अप्रहण,मपत्यं वृजिनं रिपु,मम्बितमे नदीतम इत्यानुष्टुभं प्रउगमेति च प्रेति च शुक्रवच्च्य चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त आज्य शस्त्र संज्ञक पाङ्क्त सूक्त की उत्पत्ति के पश्चात् निम्नलिखित नौ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व किंवा प्राण नामक प्राथमिक प्राण से वायु-देवताक एवं अनुष्टुप् छन्दस्क-

वायो॑ शु॒क्रो अ॑यामि ते॒ मध्वो॒ अग्रं॒ दिवि॑ष्टिषु।
आ या॑हि॒ सोम॑पीतये स्पा॒र्हो दे॑व नि॒युत्व॑ता॥१॥ (ऋ.४.४७.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से वायु तत्त्व अर्थात् विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियां सक्रिय और सतेज होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को अवशोषित वा संगत करने के लिए आकर्षण वलों से विशेष युक्त होकर शीघ्रकारी एवं नियन्त्रित होकर प्राथमिक प्राण रश्मियों के मध्य अग्रणी रूप से व्याप्त हो जाती हैं।

(२) पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाली एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क-

वि॒हि होत्रा॒ अवी॑ता वि॒पो न रायो॑ अ॒र्यः। वाय॒वा च॒न्द्रेण॒ रथे॑न या॒हि सु॒तस्य॑ पी॒तये॑॥१॥ (ऋ.४.४८.१)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे छन्दादि रश्मियां नियन्त्रण क्षमता से युक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियों एवं अन्य अविनाशी रश्मियों के साथ संगत होकर सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। ये रश्मियां विभिन्न उत्पन्न रश्मियों की रक्षा के लिए तेजस्वी रमणीय रूप को प्राप्त करके सव ओर विचरण करने लगती हैं।

(३) पूर्ववत् ऋषि और देवता वाली भुरिगनुष्टुप् छन्दस्क-

वायो॑ श॒तं हरी॑णां यु॒वस्व॒ पोष्या॑णाम्। उ॒त वा॑ ते सह॒स्रिणो॒ रथ॒ आ या॑तु॒ पाज॑सा॥५॥ (ऋ.४.४८.५)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् परन्तु आकर्षण एवं प्रतिकर्षण वलों की मात्रा कुछ अधिक होती है। इसके अन्य प्रभाव से वे छन्दादि रश्मियां असंख्य कमनीय और पोषणीय रश्मियों को संगत करती हुई अपने वल के द्वारा असंख्य वाहक वज्र रूप रश्मियों को सव ओर से व्याप्त करती हैं।

(४) पूर्वोक्त ऋषि प्राण से उत्पन्न इन्द्रवायूदेवताक एवं भुरिगुष्णिक् छन्दस्क-

इन्द्र॑श्च वायवेषां॒ सोमा॑नां पी॒तिम॑र्हथः। यु॒वां हि यन्तीन्द॑वो नि॒म्नमापो॒ न स॒ध्र्य॑क्॥२॥ (ऋ.४.४७.२)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व एवं विभिन्न छन्दादि रश्मियां आकर्षण-प्रतिकर्षण वलों के साथ-२ सवको व्याप्त करने वाली ऊष्मा को समृद्ध करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु तत्त्व अपने अधोभाग में स्थित सूक्ष्म प्राण रश्मियों एवं सोम रश्मियों को मिश्रित और व्याप्त करते हैं और उन सोम रश्मियों का अवशोषण भी करते हैं।

(५) रातहव्य आत्रेय ऋषि अर्थात् विभिन्न हवि रूप मास रश्मियों से संयुक्त सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सूक्ष्म प्राण विशेष से किंवा स्वयं सूत्रात्मा वायु से मित्रावरुणोदेवताक एवं भुरिगनुष्टुप् छन्दस्क-

आ चि॑किता॒न सु॒क्रतू॑ दे॒वौ म॑र्त रि॒शाद॑सा। वरु॑णाय ऋ॒तपे॑शसे दधी॒त प्रय॑से म॒हे॥१॥ (ऋ.५.६६.१)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियां तेजस्वी व सक्रिय होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे ऐसी प्राण रश्मियां मनस्तत्त्व से युक्त व उत्तम प्रकार से क्रियाशील होकर व्यापक रूप से अपने अनित्य रूप और प्रयत्नों के द्वारा व्यापक व्यान तत्त्व से संयुक्त होकर विभिन्न अनित्य रश्मि आदि पदार्थों को धारण करने के लिए वाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट करती हैं।

(६) 'सध्वंसः काण्व' ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न अधोगमनशील एवं भेदक शक्तिसम्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से अश्विनी-देवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क-

आ नो॒ विश्वा॑भिरू॒तिभि॒रश्वि॑ना॒ गच्छ॑तं यु॒वम्। दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी॒ पिब॑तं सो॒म्यं मधु॑॥१॥ (ऋ.८.८.१)

उत्पन्न होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थ भेदक शक्तिसम्पन्न होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों पदार्थ सव प्रकार

के सुरक्षित मार्ग और गतियों के साथ सब ओर से व्याप्त और संगत होते हैं। {दस्रौ = दस्रौ दर्शनीयौ (नि.६.२६)} वे कमनीय बलों के साथ विभिन्न दर्शनीय व्यवहार करते हुए सोम तथा प्राण रश्मियों का अवशोषण करते हैं।

(७) शंयुर्बार्हस्पत्यः ऋषि अर्थात् सहजकर्मा सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क-

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्। इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम्॥४॥ (ऋ.६.४४.४)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण और सतेज होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व महान् बलों का स्वामी होकर सम्पूर्ण असुरादि बाधक रश्मि आदि पदार्थों का प्रतिरोध करने वाला किन्तु सृजन प्रक्रियाओं का विनाश न करने वाला होता है। वह इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से सबको प्रकाशित करने वालों में अग्रणी होता है।

(८) ऋजिश्वा ऋषि अर्थात् सरल गति से युक्त अन्तरिक्ष में व्याप्त एक सूक्ष्म प्राण रश्मि विशेष से विश्वेदेवा-देवताक एवं निचृदुष्णिक छन्दस्क-

अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्। दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्॥१३॥" (ऋ.६.५१.१३)

की उत्पत्ति होती है। इसके छान्दस और दैवत प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीक्ष्ण ऊष्मायुक्त होते हैं अर्थात् अग्नि तत्त्व विशेष समृद्ध होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न संयोगादि क्रियाओं से सर्वथा पृथक् बाधक रश्मियों द्वारा रोका हुआ अथवा अनियम्य तीव्रतायुक्त संयोज्य परमाणु वा रश्मियों का हरण करने वाले पदार्थों को अच्छी प्रकार से व्याप्त करके धारण व नियन्त्रित करता है। वह ऐसा अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों द्वारा रक्षित होता है।

(९) गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से सरस्वती-देवताक और अनुष्टुप् छन्दस्क-

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति। अप्रशस्ताइव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि॥१६॥ (ऋ.२.४१.१६)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां अधिक तेजयुक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {अम्बिः = आपो वा अम्बयः (कौ.ब्रा.१२.२), रक्षणहेतवः आपः (म.द.ऋ. भा.१.२३.१६), (अबि शब्दे, अम गत्यादिषु)} अतीव प्रकाशित और कमनीय ध्वनियुक्त एवं विशेष गति व रक्षणादि सामर्थ्य से सम्पन्न विभिन्न छन्दादि वाग् रश्मियां अप्रकाशित परमाणुओं को भी प्रकाशित करने में समर्थ होती हैं।

इन नौ (९) छन्द रश्मियों को महर्षि ने प्रउग शस्त्र संज्ञा प्रदान की है। प्रउग शस्त्र के विषय में पूर्वखण्ड के समान समझें। महर्षि ने इन छन्द रश्मियों को 'आनुष्टुभ' कहा है। इससे सिद्ध है कि उपर्युक्त रश्मियों में से दो छन्द रश्मियों का छन्द उष्णिक् बताया है, जबकि अन्य सात छन्द रश्मियों का छन्द अनुष्टुप् ही है। इस कारण प्रधानता के आधार पर इस रश्मिसमूह को 'आनुष्टुभ' कहा गया है। यह भी एक विकल्प है कि पूर्वोद्धृत दोनों उष्णिक् छन्द रश्मियां अनुष्टुप् जैसा प्रभाव दर्शाती हैं। इन छन्द रश्मियों में 'आ' उपसर्ग ५ बार, 'प्र' उपसर्ग ३ बार और 'शुक्र' शब्द १ बार आया है। इनकी विद्यमानता चतुर्थ अहन् अर्थात् 'वाक्' रश्मि किंवा सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष की सूचक है। इन शब्दों के प्रभाव से सूत्रात्मा वायु शीघ्रकारी एवं प्रकृष्ट रूप वाली क्रियाओं से युक्त होकर सब ओर विस्तृत होता है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष काल में ९ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर विभिन्न प्रकार के बलों को समृद्ध करती हैं। इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में ऊष्मा की विशेष वृद्धि होती है, जिससे डार्क एनर्जी का बाधक और प्रक्षेपक प्रभाव दूर होकर सृजन क्रियाएं तेजी से होती हैं। इस समय विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं विभिन्न कणों की भेदक शक्ति तीक्ष्ण होती जाती है। विभिन्न प्रकार के विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों और धाराओं की तीव्रता भी तेजी से बढ़ती है। इसके साथ ही अति तीक्ष्ण कणों और विकिरणों की तीक्ष्णता में अनुकूल कमी आकर वे संयोजक गुणों को प्राप्त

करने लगते हैं। विभिन्न कणों की कुटिल एवं अव्यवस्थित गतियां व मार्ग इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से सुगम और सुव्यवस्थित हो जाते हैं।।

४. 'तं त्वा यज्ञेभिरीमह' इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदीमह इत्यभ्यायाम्यमिवैतदहस्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
इदं वसो सुतमन्ध, इन्द्र नेदीय एदिहि, प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः, अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यपः, प्र व इन्द्राय बृहत, इति प्रथमेनाह्ना समान आतानश्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त प्रियमेध ऋषि अर्थात् सहजता से सबको अपने साथ संगत करने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से उत्पन्न इन्द्रदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क-

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम्।।१०।। (ऋ.८.६८.१०)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अत्यन्त प्रकाशित इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोजनीय वाग् रश्मियों के द्वारा सदैव प्रकट वा संगत होता रहता है। वह इन्द्र तत्व विभिन्न संयोग वा संघर्षों में अपनी व्यापक और तेजस्विनी क्रियाओं के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों एवं उनके द्वारा सम्पन्न की जा रही सृजन प्रक्रियाओं की रक्षा करता है।

इस छन्द रश्मि को महर्षि ने मरुत्वतीय शस्त्र की 'प्रतिपद्' ऋचा कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि विभिन्न मरुद् रश्मियों से सम्पन्न अनेक छन्द रश्मियों के समूह, जिनका वर्णन अगली कण्डिका में किया गया है, से ठीक पूर्व यह छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इस ऋचा में 'ईमहे' क्रिया पद विद्यमान है। इस धातु को निघण्टुकार ने निघण्टु (३.१६) में याच्ञाकर्मा कहा है। उधर ऋषि दयानन्द ने 'ईमहे' के अन्य अर्थ भी किये हैं, जैसे- 'व्याप्नुयाम' (म.द.ऋ.भा.६.१.७), 'प्राप्नुयाम' (म.द.ऋ.भा.७.५४.१), दूरीकुर्महे' (म.द.ऋ.भा.७.५८.५)। इससे सिद्ध है कि यह छन्द रश्मि अपने सूक्ष्म आकर्षण बल के द्वारा अन्य छन्द रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करती हुई दूर तक फैलती जाती है। इसी को ग्रन्थकार ने 'अभ्यायाम्यमिव' कहा है। डॉ. सुधाकर मालवीय ने षड्गुरुशिष्य को उद्धृत करते हुए लिखा है- "आयाम्यमायामयुक्तम्, दीर्घीकृतं न्यूङ्खादिना"। इससे यह संकेत मिलता है कि यह छन्द रश्मि न्यूङ्ख क्रिया के समान दीर्घीकृत होती हुई उत्पन्न होती है अर्थात् इसका प्रभाव न्यूङ्खकृत छन्द रश्मियों के समान व्यापक और तीक्ष्ण होता है। इस कारण इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष की सूचक है।।

इसके पश्चात् मरुत्वतीय शस्त्र के रूप में निम्नलिखित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्। अनाभयिन्ररिमा ते।।१।। (ऋ.८.२.१)

इस छन्द रश्मि के विषय में ३.१५.२, ४.२६.५ द्रष्टव्य है।

(२) इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।। (ऋ.८.५३.५)

इस छन्द रश्मि के विषय में ३.१५.२, ४.२६.५ देखें।

(३) प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।

अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः।।३।। (ऋ.१.४०.३)

इस छन्द रश्मि के विषय में ४.२६.५, १.२२.२, १.३०.२ में देखें।

(४) अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम्।।४।। (ऋ.३.२०.४)

इस छन्द रश्मि के विषय में ४.२६.६ में देखें।

(५) त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः।।२।। (ऋ.१.९१.२)

इस रश्मि के विषय में भी ४.२६.६ में ही देखें।

(६) पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्।।६।। (ऋ.१.६४.६)

इसके विषय में भी ४.२६.६ द्रष्टव्य है।

(७) प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा।।३।। (ऋ.८.८९.३)

इस छन्द रश्मि के विषय में ३.१९.१, ३.२०.२, ४.२६.६ द्रष्टव्य है।

ये सभी छन्द रश्मियां प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल के समान इस चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष काल में सब ओर से व्याप्त और विस्तृत होती रहती हैं अर्थात् इन दोनों चरणों में इनकी समान रूप से उत्पत्ति और विस्तार होता है। इस कारण इनकी उत्पत्ति होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ही १ गायत्री, २ बृहती, २ त्रिष्टुप्, १ पंक्ति और १ जगती, ये कुल सात रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय इन्द्र अर्थात् विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों और बलों की तीव्रता विशेष बढ़ती हुई पदार्थ को संघनित और संगत करने में विशेष भूमिका निभाती है। इस समय विभिन्न प्रकार के कण एवं विकिरण आदि उचित व अनुकूल शक्तियों के साथ चेतन परमात्म तत्त्व की प्रेरणा से नाना प्रकार के बन्धों को उत्पन्न करते हैं। प्राणापान रश्मियां सक्रिय होकर विद्युत् को उत्पन्न करती व तीक्ष्ण बनाती हैं, इसके कारण सभी पदार्थ छेदन-भेदन, आकर्षण-प्रतिकर्षण, वेग-प्रकाश एवं धारण आदि गुणों से विशेष युक्त होकर नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। विभिन्न प्रकार की रश्मियां परस्पर एक-दूसरे से बन्धकर संपीडित होने लगती हैं। अति तीव्र ऊष्मायुक्त विद्युत् किरणें, डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ के बाधक एवं प्रक्षेपक प्रभावों को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं।।

५. 'श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्य' इति सूक्तं हववच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान से इन्द्रदेवताक ऋ.२.११ सूक्त रूप रश्मिसमूह की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम।

इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ।।१।।

इसके विषय में खण्ड ५.३ द्रष्टव्य है।

(२) सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ।।२।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा आकर्षण-प्रतिकर्षण बलों से अधिकता से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह शक्तिशाली इन्द्र तत्त्व सब ओर स्थित आसुर मेघ को पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न करता है। वह विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा वर्धमान होकर अनेक पदार्थों को व्यापक रूप से उत्पन्न करता है। इसके साथ ही वह सतत प्रकाशित वा सक्रिय रहने वाली अनेक क्रियाओं को उत्पन्न करता है।

(३) उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ।।३।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह विक्रान्त इन्द्र तत्त्व घोर कर्म करने वाली अनेक तेजस्वी छन्द रश्मियों को आकर्षित करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों के द्वारा सुन्दर श्वेत वर्ण की किरणों को उत्पन्न करता हुआ सर्वत्र फैलता रहता है।

(४) शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।।४।।

इसका छन्द, दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह देदीप्यमान एवं वर्धमान होता हुआ इन्द्र तत्त्व विभिन्न क्रियाशील और व्यापक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को अपनी तेजस्वी और प्रेरक रश्मियों के द्वारा विविध बलों से युक्त करता है। वह दीप्तिमान् इन्द्र तत्त्व वज्र रूप तीक्ष्ण रश्मियों को धारण करके आकर्षण व प्रतिकर्षण बलों से सदैव युक्त रहता है।

(५) गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ।।५।। इसका

छन्द भुरिक् बृहती होने से इन्द्र तत्त्व के बल व्यापक होकर पदार्थ को सम्पीडित करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह पराक्रमी इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकार के तरल पदार्थ और प्रकाशित आग्नेय आदि परमाणुओं को सब ओर से ढकने और रोकने वाले अन्तरिक्ष में विद्यमान विशाल आसुर आवरक मेघ को छिन्न-भिन्न करता है। वह अपने तीक्ष्ण तेज के द्वारा अन्तरिक्ष में विद्यमान छुपी हुई आसुर रश्मियों को भी नष्ट करता है।

(६) स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ।।६।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व पूर्व में उत्पन्न तथा नवीन उत्पन्न विभिन्न पदार्थों को तेजी से प्रकाशित करता है। वह आकर्षित होती हुई विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा वज्र रश्मियों को तीक्ष्ण बनाकर विभिन्न प्रकाशित और आकर्षणादि बलों से युक्त किरणों को भी तीक्ष्ण व तेजस्वी बनाता है।

(७) हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ।।७।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु तेजस्वी

होता है। इसके अन्य प्रभाव से {स्वारम् = तापाज्जातं तेजः (म.द.य.भा.१३.५५), उपतापं शब्दं वा (म.द.भा.)। समना = समनम् संग्रामनाम (निघं.२.१७), समनसौ (नि.६.४०)। अस्वार्ष्टाम् = शब्दयन्तः(म.द.भा.)} प्रतापी इन्द्र तत्त्व आसुर मेघ द्वारा रोके हुए तरल व तेजस्वी पदार्थ को छिन्न-भिन्न करके उससे प्रवाहित या क्षरित हुए गर्जना और तापयुक्त पदार्थ समूह को अपनी बल रश्मियों के द्वारा गति और तेज से युक्त करता है अर्थात् वह रोका हुआ तरल पदार्थ गर्जना करता हुआ बाहर की ओर तीव्र गति से फैलता जाता है। वह इन्द्र तत्त्व उस प्रवाहित होते हुए पदार्थ में रमण करता हुआ आसुर पदार्थ के प्रहार को रोकता जाता है।

(८) नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि।।८।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {धमनिः = वाङ्नाम (निघं.१.११)} वह इन्द्र तत्त्व वायु एवं आकाश तत्त्व रूपी मातृवत् किरणों के द्वारा आकर्षण आदि बलों से युक्त होकर अविराम सक्रिय रहते हुए विशाल मेघरूप पदार्थों को अच्छी प्रकार सिद्ध करता है। वह दूरस्थ विभिन्न वाग् रश्मियों को समृद्ध और विस्तृत करता है।

(९) इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात्।।९।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में विद्यमान विशाल आवरक आसुर मेघ पर जब प्रहार करता है, तो उस समय उस मेघ में व्यापक कम्पन और थरथराहट उत्पन्न होकर वह छिन्न-भिन्न हो जाता है। इस इन्द्र तत्त्व **की वज्ररूप रश्मियों के द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित लोक वा कण गम्भीर ध्वनियां करते हुए कांपने लगते हैं।**

(१०) अरोरवीद् वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात्।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य।।१०।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व की वज्ररूप किरणें {मानुषः = पशवो मानुषाः (क.४१.६) = तेजस्वी वाक् रश्मियां, **जिन्हें** 'मादुष' **भी कहा जाता है। इस विषय में खण्ड** ३.३३ **की अन्तिम कण्डिका द्रष्टव्य है।**} अमानुष पदार्थ **अर्थात् तेजहीन वाग् रश्मियों** को गम्भीर गर्जना करते हुए छिन्न-भिन्न कर देती हैं। वे वज्ररूप किरणें विभिन्न संयोज्य एवं तेजस्विनी रश्मियों वा परमाणुओं की प्रज्ञापिका विद्युत् को निरन्तर गतिमान् करती हैं और वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों को अवशोषित करता है।

(११) पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव।।११।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को व्यापक मात्रा में अवशोषित करके विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को तृप्त वा उत्तेजित करता है। वह इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में उत्पन्न विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की परिधि रूप कुक्षियों को बढ़ाता व संरक्षित करता हुआ उन पर उचित नियन्त्रण रखता है।

(१२) त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम।।१२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व {सपन्तः = (सपति परिचरणकर्मा निघं.३.५, अर्चतिकर्मा - निघं.३.१४, षप समवाये)} प्राणापान किंवा विद्युत् के द्वारा विभिन्न परमाणु वा रश्मियों को संयुक्त करके प्रकाशित व सब ओर से सक्रिय करता हुआ देदीप्यमान किरणों

का रूप प्रदान करता है। वे किरणें विभिन्न प्रकार की क्रियाओं एवं तीक्ष्ण प्रकाशादि को धारण करती हुई विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियों के द्वारा रक्षित होती हैं।

(१३) स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम्।।१३।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रक्षणीय परमाणु वा रश्मियों के वल और तेज को वढ़ाता हुआ उनकी गति और मार्गों की रक्षा करता है। वह इन्द्र तत्त्व उन परमाणु वा रश्मियों को अति वलवान् एवं प्राणादि रश्मियों के साथ मरुदादि रश्मियों से युक्त करता है।

(१४) रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम्।।१४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व समान रूप से आकर्षण का भाव रखने वाली प्राणादि रश्मियों की उत्तम गति और वहन करने के सामर्थ्य को प्राप्त करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को आश्रय, संयोजकता और विभिन्न मरुदादि रश्मियों के वलों से युक्त करता है।

(१५) व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः।।१५।।

इसका छन्द बृहती होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक तीव्र होकर पदार्थ को संपीडित करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह सवको तारने वाला इन्द्र तत्त्व व्यापक रश्मियों के द्वारा प्रकाश एवं आकाश तत्त्व को वढ़ाता है। असुर और देव पदार्थों के मध्य संघर्ष में असुर पदार्थ को नियन्त्रित वा नष्ट करता है। वह सोम रश्मियों के साथ संगत होकर अपने तीव्र वलों के द्वारा सवको तृप्त करता हुआ रक्षा करता है।

(१६) बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान्।
स्तृणानासो वर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन्।।१६।।

इसका छन्द भुरिक् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनेक व्यापक रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की विभिन्न क्रियाओं को सुगम वनाता है। इन्द्र तत्त्व की मरुदादि रश्मियों से ढके हुए विभिन्न परमाणु सुरक्षित आवरण प्राप्त करके महान् वलों को प्राप्त करते हैं।

(१७) उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम्।।१७।।

इसका छन्द स्वराड् बृहती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {कद्रुः = कबतेऽसौ कद्रुः, वर्णभेदो वा (उ.को.४.१०३), इयं वै कद्रूः (तै.सं. ६.१.६.१; मै.३.७.३)} वह तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व तीन प्रकार के रंगों वाले विभिन्न पार्थिव पदार्थ समूहों में विभिन्न सोम रश्मियों को सुरक्षित रखता है। विभिन्न तीक्ष्ण तप्त लोकों में प्रकृष्टता से विभिन्न प्रकार के वलों एवं कम्पन आदि क्रियाओं को उत्पन्न करता है। विभिन्न भेदक शक्तिसम्पन्न किरणों में अपने आकर्षण और प्रतिकर्षण वलों के द्वारा पदार्थ को संपीडित करके उनको रक्षणादि क्रियाओं से व्याप्त करता है। 'श्मश्रुः' पद का अर्थ सामान्यतः दाढ़ी होता है और यह दाढ़ी पुरुष के हनुभाग में उगे हुए केश के रूप में होती है। इधर वैदिक तत्त्ववेत्ताओं का मत है- "आदित्यान् श्मश्रुभिः (प्रीणामि)" (मै. ३.१५.१)। इसका सरलार्थ यह है- "मैं आदित्यों को श्मश्रु के द्वारा तृप्त करता हूँ। निश्चित ही यहाँ 'श्मश्रु' का अर्थ दाढ़ी नहीं हो सकता। इस विषय में एक अन्य ऋषि को उद्धृत करते हैं- "रश्मयः केशाः" (तै.सं.७.५.२५.१)। तव निश्चत ही 'हनु' अर्थात् हिंसक शक्तिसम्पन्न रश्मियां ही यहाँ 'श्मश्रु'

कहलाती हैं।

(१८) धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम्।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र।।१८।।

इसका छन्द निचृत पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व आवरक विशाल आसुर मेघ को छिन्न-भिन्न करने योग्य महान् बल को प्राप्त करता है। वह ज्योति उत्पन्न करता हुआ अन्धकार को निरन्तर दूर करके प्रक्षेपक किंवा अत्यन्त तीव्र आकर्षक ऐसी रश्मियों, जो संयोगादि प्रक्रियाओं में बाधक बन सकती हैं, को नियन्त्रित करता है। यहाँ वृत्र अर्थात् आसुर मेघ का एक महत्वपूर्ण विशेषण 'और्णवाभ' दिया है, जिसका अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है- "ऊर्णा नाभ्यां यस्य, तदपत्यमिव"। उधर एक अन्य ऋषि ने लिखा है- अथ त्रिष्टुप् नाभिरेव सा (जै.ब्रा.१.२५४), नाभिर्वै हिंकारः (जै.ब्रा.१.३०६)। इन सब आर्ष वचनों पर गम्भीरता से विचार करने पर यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि **आवरक आसुर मेघ में हिंकारयुक्त आसुरी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां मुख्यतः विद्यमान होती हैं,** जिनसे उत्पन्न तीक्ष्ण बलों के द्वारा ही असुर तत्त्व विभिन्न देव पदार्थों पर प्रहार करता है। इन्द्र तत्त्व इन्हीं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों पर प्रहार करके उन्हें निष्क्रिय वा नियन्त्रित करता है।

(१९) सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय।।१९।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व की रक्षण और गति आदि गुणों से युक्त रश्मियों के द्वारा सभी परमाणु आदि पदार्थ अन्य पदार्थों का उल्लंघन करने में समर्थ होते हैं। वे पदार्थ विभिन्न क्रियाओं को तारने के लिए अपने सामर्थ्य के द्वारा बाधक एवं भक्षक रश्मियों को जीतते हैं। उस तीक्ष्ण बल वाले इन्द्र तत्त्व के द्वारा ही विविध रूपों और बलों की उत्पत्ति होकर बाधाएं दूर होती हैं।

(२०) अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान्।।२०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। {अर्बुदम् = वाग्वा अर्बुदम् (तै.ब्रा.३.८.१६.३), अर्बुदो मेघो भवति.... स (मेघः) यथा महान् बहुर्भवति वर्षंस्तदिवार्बुदम् (नि.३.१०)} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सब परमाणु आदि पदार्थों का सम्प्लावक बन कर उन्हें नियन्त्रण शक्तिसम्पन्न तथा तीन प्रकार की सक्रिय असंख्य वाग् रश्मियों से युक्त करता है। वे वाग् रश्मियां शृंखलाबद्ध बढ़ती हुई उन परमाणु आदि पदार्थों को गति एवं बल प्रदान करती हैं तथा वह इन्द्र तत्त्व प्रतिकूल बलों को छिन्न-भिन्न करता है।

(२१) नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।२१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। वह इन्द्र तत्त्व अपने बल से अनेक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों से युक्त होकर श्रेष्ठ दीप्ति व क्रियाओं से सब पदार्थों को युक्त करता है। वह विभिन्न पदार्थों को नष्ट न करता हुआ उन्हें परस्पर संयोजित वा सम्पीडित करता है। वे सभी पदार्थ उत्तम प्राण रश्मियों के द्वारा भी प्रकाशित होते व गति करते हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'हवम्' पद विद्यमान होने से इस सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष की सूचक है। इस पद के प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ व्यापक रूप से आकृष्ट होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के ही उत्कर्ष काल में १६ पंक्ति रश्मियां, ४ बृहती एवं १ त्रिष्टुप्,

कुल २१ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से विद्युत् तरंगों की व्यापकता व संयोज्यता बढ़कर ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में सम्पीडन क्रिया बढ़ने लगती है। इस कार्य में **सूत्रात्मा वायु** की भी अनिवार्य भूमिका रहती है। विभिन्न विद्युत् तरंगों के द्वारा अनेक पदार्थों की उत्पत्ति क्रिया तीव्र होने लगती है। उस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में श्वेतवर्ण की किरणों की उत्पत्ति होती है। ब्रह्माण्ड में बड़ी मात्रा में दृश्य पदार्थ को डार्क पदार्थ चारों ओर से आच्छादित कर लेता है और डार्क एनर्जी का तीक्ष्ण प्रहार उस दृश्य पदार्थ पर होने लगता है। उस समय डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ में आसुरी त्रिष्टुप् रश्मियों की प्रधानता होती है किंवा वे **त्रिष्टुप् आसुरी रश्मियां ही डार्क एनर्जी के रूप में परिवर्तित होकर दृश्य पदार्थ को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास करती हैं।** उस समय विद्युत् और ऊष्मा से युक्त अत्यन्त शक्तिसम्पन्न किरणें उस डार्क एनर्जी की त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों पर प्रहार करके उसे तथा डार्क पदार्थ को भी दूर हटा देती किंवा छिन्न-भिन्न कर देती हैं। इस समय प्राणापान नामक सूक्ष्म रश्मियां डार्क एनर्जी की सूक्ष्म रश्मियों को भी चुन-२ कर नष्ट वा नियन्त्रित कर देती हैं। उनके पश्चात् रोका हुआ दृश्य पदार्थ डार्क पदार्थ के प्रहार से मुक्त होकर अन्तरिक्ष में सब ओर फैलने लगता है। विद्युत् रश्मियों, विशेषकर उनकी तीक्ष्ण अवस्था में वायु नामक प्राणादि पदार्थ एवं आकाश तत्त्व का भी मिश्रण होता है। जब विद्युत् और ऊष्मा की तीक्ष्ण तरंगों का डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ पर प्रहार होता है, उस समय डार्क पदार्थ में भारी मात्रा में कम्पन होने लगते हैं, साथ ही गम्भीर गर्जना भी होने लगती है। **विभिन्न कणों वा लोकों के आकार, रूप, बल और तेज आदि को निर्धारित करने में विद्युत् की विशेष भूमिका होती है। विभिन्न कणों अथवा क्वान्टाज् की गति और मार्ग को निर्धारित करने में विद्युत् की भी भूमिका होती है। विभिन्न तत्त्वों के संयोजक गुण आदि भी विद्युत् के ही कार्य हैं। विद्युत् के कारण ही विभिन्न कणों वा विकिरणों को सुरक्षित आवास एवं आवरण प्राप्त होता है। विद्युत् जहाँ डार्क एनर्जी के तीव्र प्रक्षेपक प्रभाव को दूर करती है, वहीं विध्वंसक एवं अति तीक्ष्ण, आकर्षणादि बलों से युक्त दृश्य तरंगों को भी नियन्त्रित करके उन्हें अनुकूल संयोज्य गुण प्रदान करती है।** तीव्र विद्युत् प्राणापानादि प्राण रश्मियों, मरुद् रश्मियों एवं छन्द रश्मियों से निर्मित होती है। विद्युत् तरंगों में से विभिन्न छन्द, मरुद् वा प्राण रश्मियां शृंखलाबद्ध रूप से उत्सर्जित होती हुई विभिन्न बलों को उत्पन्न करती हैं।।

६. मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणायेति' सूक्तमुग्रं सहोदामिह तं हुवेमेति हववच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ.३.४७ सूक्त की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम्।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त एवं सेचक बलों से सम्पन्न इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रहारों के लिए तथा परमाणुओं को उत्तेजित करने के लिए सोम रश्मियों को अवशोषित करता है। वह इन्द्र तत्त्व आकाश में विद्यमान विभिन्न प्राण रश्मियों को भी मरुद् रश्मियों के द्वारा सब ओर से सींचता है। इसके कारण विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थ देदीप्यमान हो उठते हैं।

(२) सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस और दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व समूहों में वर्तमान संगमनीय मरुद् रश्मियों के साथ सोम रश्मियों को अवशोषित करता हुआ आवरक आसुर मेघ से व्याप्त हो जाता है। उसके पश्चात् वह उस मेघरूप पदार्थ को संघर्ष के लिए प्रेरित करता एवं दूर

फेंक देता है, साथ ही संयोज्य परमाणुओं वा रश्मियों को निरापद क्रियाओं में नियुक्त करता है।

(३) उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः॥३॥

इसका छन्द, दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न ऋतु रश्मियों का रक्षक इन्द्र तत्त्व समान रूप से प्रकाशित ऋतु रश्मियों द्वारा ही सम्पीडित सोम तत्त्व की रक्षा करता है। विभिन्न प्रकार की मरुद् रश्मियों का सब ओर से सेवन करके अनुकूल ओज और बल से युक्त होकर विभिन्न मेघरूप पदार्थों को अनुकूलता से धारण करता और आसुर मेघों का विनाश करता है।

(४) ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः॥४॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय रश्मियों और परमाणु आदि पदार्थों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व विशाल असुर पदार्थ को नष्ट करने के लिए सूत्रात्मा वायु रश्मियों तथा विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा वर्धमान होता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न किरणों के समूह को अनुकूलता से उत्तेजित करता हुआ मरुद् रश्मियों के साथ अन्य सोम किंवा मरुद् रश्मियों को अवशोषित करता है।

(५) मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥५॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों तथा विभिन्न सेचक और उत्पादक बलों से युक्त स्वयं वर्धमान होता और दूसरे पदार्थों को बढ़ाने वाला, किसी के द्वारा पराभव को प्राप्त न होने वाला, प्राण तत्त्व में विद्यमान और प्राणादि पदार्थों से उत्पन्न होने वाला, व्यापक, उग्र, प्रतिरोधक बल से युक्त एवं सबको बल प्रदान करने वाला सभी नवीन-२ क्रियाओं पर शासन करने में समर्थ होता है।

इस सूक्त की अंतिम ऋचा का चतुर्थ पाद "उग्रं सहोदामिह तं हुवेम" 'हवम्' पद से युक्त होने के कारण चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष का सूचक है॥

इसके व्याख्यान में आचार्य सायण ने 'प्रतिष्ठित-पद' से युक्त सूक्त की परिभाषा करते हुए लिखा है- "प्रतिष्ठितानि पदानि प्रतिनियताक्षरसंख्यायुक्ताः पादाः यस्मिन् सूक्ते तत्सूक्तं 'प्रतिष्ठितपदम्"। इस सूक्त में छन्दों के अनुसार अक्षरों की संख्या पूर्णतः नियत ही है। इस कारण इस सूक्त को 'प्रतिष्ठित-पदम्' कहा गया है। यह सूक्तरूप रश्मिसमूह पूर्वोक्त मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के संगमनीय व्यवहार को धारण करता है, उस समय इस सूक्त की तेज और बल से युक्त छन्द रश्मियां उन संगमनीय छन्द रश्मियों और उनकी संगमन आदि क्रियाओं तथा विस्तार को च्युत नहीं होने देती हैं। इस कारण वे छन्द रश्मियां अपने-२ कार्य को अपने-२ क्षेत्र में मर्यादित होकर निरन्तर करने में सक्षम होती है, यही इस सूक्तरूप रश्मिसमूह का विशेष कार्य है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ५ विभिन्न प्रकार की त्रिष्टुप् रश्मियां उत्पन्न होती हैं, इनके कारण ब्रह्माण्ड में विद्युत् धाराओं और विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों की तीव्रता में अतीव वृद्धि होती है। इन विद्युत् तरंगों का प्राण और मरुद् रश्मियों से अतीव निकटतर सम्बन्ध होता है किंवा यह विद्युत् इन्हीं के द्वारा उत्पन्न होती है। विद्युत् जहाँ डार्क मैटर और डार्क एनर्जी पर अति प्रक्षेपक एवं प्रतिकर्षक प्रभाव डालती है, वहीं दृश्य पदार्थ को आकर्षण व धारण आदि बलों से युक्त करती है। **विद्युत् युक्त वायु ब्रह्माण्ड का सबसे बलवान् पदार्थ है। इस सृष्टि में जो भी बल विद्यमान हैं, वे विद्युत् एवं वायु आदि के मेल से ही उत्पन्न होते हैं।** ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां और उनसे उत्पन्न विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र एवं विभिन्न भौतिक और रासायनिक क्रियाओं के क्षेत्र को नियत मर्यादा प्रदान करते हैं, जिससे विद्युत् चुम्बकीय प्रभाव विरल होकर बिखरने न पावें॥

७. "इमं नु मायिनं हुव" इति पर्यासो हववांश्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
ता उ गायत्र्यो गायत्र्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति।।
तद्वैतच्छन्दो वहति यस्मिन्निविद्धीयते, तस्माद् गायत्रीषु निविदं दधाति।।
'पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा', 'श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेरिति' वैराजं पृष्ठं भवति, बार्हतेऽहनि चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
यद्वावानेति धाय्याऽच्युता।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त 'कुरुसुतिः काण्वः' ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विभिन्न रश्मियों को संपीडित करने वाले एक सूक्ष्म प्राणविशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.७६.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा। मरुत्वन्तं न वृञ्जसे।।१।।

इसका छन्द गायत्री होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी और बलवान् होता है। इसके अन्य प्रभाव से अद्भुत क्रियाओं से युक्त तेजस्वी विद्युत् शक्तिसम्पन्न एवं सम्पूर्ण पदार्थ को अपने ओज और बल के द्वारा विभिन्न मरुद् रश्मियों से सम्पन्न वह इन्द्र तत्त्व दृढ़ता से बांधे रखता है।

(२) अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः। वज्रेण शतपर्वणा।।२।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों के साथ देदीप्यमान वह इन्द्र तत्त्व असंख्य संधियों से युक्त वज्र रश्मियों के द्वारा विशाल आसुर मेघ की हिंसक और तीक्ष्ण शक्तियों को विविध प्रकार से नष्ट करता है।

(३) वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः।।३।।

इसका छन्द निचृत् गायत्री होने से छान्दस और दैवत प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से मरुद् रश्मियों के साथ संगत और प्रकाशित वह इन्द्र तत्त्व आसुर मेघ को दूर करके आकाश में संवर्धित होने तथा गमन करने वाले विशाल तरल पदार्थ का निर्माण करता है।

इस तृच की प्रथम ऋचा में 'हुवे' पद विद्यमान होने से इस तृच रूप छन्द रश्मिसमूह का उत्पन्न होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष का सूचक है। ये गायत्री छन्द रश्मियां पूर्वोक्त त्रिष्टुप् रश्मियों के चारों ओर प्रक्षिप्त वा फैली हुई होती हैं। वे त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां चतुर्थ अहन् का मध्यम चरण होने से मध्यन्दिन रूप होती हैं। इन मध्यन्दिन रूप **त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को इस तृच की गायत्री रश्मियां ही वहन करती हैं। गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का वहन करना यहाँ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं वर्णित नहीं है। इससे यही परिणाम निकलता है कि गायत्री रश्मियों के द्वारा त्रिष्टुप् रश्मियों को वहन करना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में ही होता है।** यहाँ महर्षि कहते हैं कि जिन छन्द रश्मियों में दसवें अध्याय में वर्णित निविद् संज्ञक सूक्ष्म छन्द रश्मियां प्रक्षिप्त वा संगत होती हैं, वे ही छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों को वहन करने में समर्थ होती हैं क्योंकि वे ही उन छन्द रश्मियों को अच्छी प्रकार धारण कर पाती हैं। इन गायत्री छन्द रश्मियों के मध्य निविद् रश्मियों की व्याप्ति और संगति कैसे होती है एवं निविद् रश्मियों का व्यवस्थापन कैसे होता है? इस गम्भीर विज्ञान को समझने के लिए खण्ड ३.१०-११ अवश्यमेव पठनीय है।।+।।+।।

तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.७.२२.१-३ तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) पिबा सोमंमिन्द्र मन्दंतु त्वा यं तें सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयंतो नार्वा ।।१।।

इसका छन्द भुरिगुष्णिक् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण वल और ऊष्मा से युक्त होकर परमाणु वा रश्मियों को ढांप लेता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व कमनीय और शीघ्रगामी वल रश्मियों के समान सोम रश्मियों का अवशोषण करता है। वे सोम रश्मियां विभिन्न आकाशीय मेघों को उत्पन्न करती तथा इन्द्र तत्त्व के आकर्षण और प्रतिकर्षण वलों के द्वारा प्रेरित और संपीडित होती हैं।

(२) यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणिं हर्यश्व हंसिं। स त्वामिंन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ।।२।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपनी कमनीय वल रश्मियों के द्वारा वसाने तथा सुन्दर रीति से संयुक्त और सक्रिय करने में समर्थ होता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाधक असुरादि रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें छिन्न-भिन्न भी करता है।

(३) वोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिंष्ठो अर्चति प्रशंस्तिम्। इमा ब्रह्मं सधमादें जुषस्व ।।३।।

इसका छन्द भुरिगनुष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों में व्याप्त वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द वा मरुदादि रश्मियों को सब ओर से देदीप्यमान करता और वसाता है। वे ऐसी छन्दादि रश्मियां अच्छी प्रकार प्रदीप्त होकर इन्द्र तत्त्व के साथ विद्युत् वा परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार संगत करती हैं।

इसके उपरान्त उपर्युक्त ऋषि और देवता वाले ऋ.७.२२.४-६ तृच की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्। कृष्वा दुवांस्यन्तंमा सचेमा ।।४।।

इसका छन्द आर्ची पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां इसके प्रभाव से दूर-२ तक व्याप्त होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न विशेष प्रकार से अवशोषणीय रश्मियां मेघ के समान प्रकाशित होती हुई विभिन्न सूत्रात्मा वायु रश्मियों के निकट प्रवाहित होती और उनसे संयुक्त होकर नाना प्रकार के प्रकाश और गतियों को प्राप्त करती हैं।

(२) न ते गिरो अपिं मृष्ये तुरस्य न सुंष्टुतिमंसुर्यंस्य विद्वान्। सदां ते नामं स्वयशो विवक्मि ।।५।।

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी होकर विभिन्न छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करके प्रकाशित करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र तत्त्व के साथ संगत अति शीघ्रगामी वाग् रश्मियों तथा असुर तत्त्व की तीक्ष्ण रश्मियों को सहन करने में असमर्थ होते हैं अर्थात् ये दोनों ही प्रकार की तीव्र रश्मियां उन परमाणु आदि पदार्थों को अपनी तीक्ष्णता से प्रभावित करती हैं। वे परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र तत्त्व की रश्मियों और विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिलकर सदैव गतिशील रहते हैं।

(३) भूरि हि ते सवंना मानुंषेषु भूरिं मनीषी हंवते त्वामित्। मारे अस्मन्मंघवञ्ज्योक्कः ।।६।।

इसका छन्द विराडनुष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न तेजस्विनी वाग् रश्मियों में विद्यमान सूत्रात्मा वायु रश्मियां इन्द्र तत्त्व के उत्पादक और प्रेरक गुणों को अतिशय रूप से ग्रहण करती हैं। ऐसी रश्मियां विभिन्न प्राणादि रश्मियों के साथ भी सतत संगत रहती हैं।

इन दोनों तृच रश्मिसमूहों को महर्षि ने 'वैराज-पृष्ठ' कहा है। ४.१३.२ में उपर्युक्त प्रथम तृच की प्रथम छन्द रश्मि को वैराज साम कहा गया है, जिसके स्वरूप के विषय में वहीं खण्ड द्रष्टव्य है।

इस वैराज साम की उत्पत्ति बृहत्साम रूपी पुरुष और रथन्तर साम रश्मि रूपी स्त्री के संगम से होती है, इस विषय में ४.२८.२ द्रष्टव्य है। वैरूप साम के प्रभाव से विभिन्न छन्दादि रश्मियां विभिन्न रूप और रंगों को धारण करती हैं। इस स्थिति का उत्पन्न होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष का सूचक है।।

तदुपरान्त

यद्वावानं पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत्।।६।। (ऋ.१०.७४.६)

की उत्पत्ति होती है। यह ऋचा अच्युता एवं धाय्या कहलाती है। इस ऋचा के विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ३ गायत्री, ४ अनुष्टुप्, १ उष्णिक्, १ आर्ची एवं १ त्रिष्टुप् कुल १० छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र और विद्युत् धाराओं की मात्रा और तीव्रता बढ़ने लगती है। विभिन्न कणों के पारस्परिक बन्धन दृढ़तर होते हैं। डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के प्रक्षेपक प्रभाव तीव्र विद्युत् तरंगों के द्वारा नष्ट होते हैं, जिसके कारण दृश्य पदार्थ तरल रूप में बहने लगता है। **इस चरण में उत्पन्न गायत्री रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को वहन करती हैं। ध्यातव्य है कि गायत्री रश्मियों का यह व्यवहार इसी चरण में देखा जाता है। इन वाहक गायत्री छन्द रश्मियों में सूक्ष्म निविद् रश्मियां व्याप्त होकर विभिन्न रश्मियों को धागे के समान सिलने का काम करती हैं।** निविद् रश्मियों के विषय में खण्ड २.३३-३४ विशेष द्रष्टव्य है। इस समय अनेक प्रकार के कॉस्मिक मेघों की उत्पत्ति होती है। पदार्थ के सम्पीडन की क्रिया बढ़ जाती है। इस समय उस कॉस्मिक पदार्थ में नाना प्रकार के रूप और रंगों की उत्पत्ति होती है।।

८. 'त्वामिद्धि हवामह' इति बृहतो योनिमनुनिवर्तयति; बार्हतं ह्येतदहरायतनेन।।
'त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्विति' सामप्रगाथः।।
'अशस्तिहा जनितेति' जातवांश्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति' ताक्ष्योऽच्युतः।।४।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त-

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः।।१।।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे।।२।।

इत्यादि ऋ.६.४६.१-२ प्रगाथ रूप रश्मिद्वय की उत्पत्ति होती है। इन दोनों छन्द रश्मियों के विषय में २०.३.६ द्रष्टव्य है। इन दोनों छन्द रश्मियों को पूर्ववत् यहाँ भी बृहत्साम कहा है, इसके साथ ही इन रश्मियों को बृहत् साम रश्मियों की योनि भी कहा है। इसका आशय यह है कि विभिन्न संयोजक और वियोजक रश्मियां इन छन्द रश्मियों से या तो उत्पन्न होती हैं या उनमें वसी होती हैं। ये दोनों रश्मियां उपर्युक्त धाय्या छन्द रश्मि का अनुवर्तन करते हुए उत्पन्न होती हैं। ये छन्द रश्मियां इस चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में उत्पन्न होने वाली विभिन्न क्रियाओं और रश्मियों का विस्तार करने में सक्षम होती हैं, इस कारण भी यह रश्मिद्वय बार्हत कहलाता है।।

तदुपरान्त नृमेध ऋषि अर्थात् विभिन्न मरुद् रश्मियों को संगत करने वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष

से इन्द्रदेवताक ऋ.८.९९.५-६ छन्द रश्मिद्वय की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) त्वमि॑न्द्र प्र॒तूर्ति॑ष्व॒भि विश्वा॑ असि॒ स्पृधः॑।
अ॒श॒स्ति॒हा ज॑नि॒ता वि॑श्व॒तूर॑सि॒ त्वं तू॑र्य तरुष्य॒तः॥५॥

इसका छन्द पादनिचृत् बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण होकर पदार्थ को संपीडित करके आकार देने में विशेष समर्थ होता है। {प्रतूर्तिः = प्रकृष्टा तूर्णा गतिर्यस्य सः (म.द.य.भा.९.९,), संवत्सरो वाव प्रतूर्तिः (श.८.४.१.१३)। तूर्य = (तूरी गतित्त्वरणहिंसनयोः - धातोर्लोट्)} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आशुकारिणी सृजन प्रक्रियाओं में सभी बाधक पदार्थों को सब ओर से नष्ट करता है। असुर तत्त्व आदि के अकस्मात् प्रहारों को शीघ्र नष्ट करके विभिन्न सृजन क्रियाओं को निरापद बनाता है।

(२) अनु॑ ते॒ शुष्मं॑ तु॒रय॑न्तमीयतुः क्षो॒णी शिशुं॒ न मा॒तरा॑।
विश्वा॑स्ते॒ स्पृधः॑ श्नथयन्त म॒न्यवे॑ वृ॒त्रं यदि॑न्द्र॒ तूर्व॑सि॥६॥

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत होकर अधिक संयोज्य गुणों से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {शिशुः = अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणः (श.१४.५.२.२)। क्षोणि = द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)} जैसे आकाश तत्त्व एवं वायु, मध्यम प्राण अर्थात् व्यान किंवा सूत्रात्मा वायु रश्मियों का अनुकरण करते हुए गमन करते हैं, वैसे ही इन्द्र तत्त्व के शोषक एवं शीघ्रगामी बलों के अनुकूल सभी प्रकाशित व अप्रकाशित लोक वा कण गमन करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व विघ्नकारी आसुर रश्मियों को जब नष्ट करता है, तब सभी प्रतिरोधक और प्रतिकर्षण बल शिथिल होने लगते हैं।

महर्षि ने इन दोनों छन्द रश्मियों के युग्म को साम प्रगाथ कहा है, इससे स्पष्ट है कि ये दोनों रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के मध्य सन्धि तथा आवश्यक होने पर भेदन कार्य करने में सहायक होती हैं। इनमें से प्रथम रश्मि विभिन्न लोकादि की मर्यादा को निर्मित करने, आवश्यक होने पर पदार्थों का भेदन करने और द्वितीय छन्द रश्मि इस प्रक्रिया का विस्तार करने में अपनी भूमिका निभाती है। इनमें से प्रथम ऋचा में "अशस्तिहा जनिता" इस तृतीय पाद में 'जनिता' पद 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से युक्त है, इस कारण इन छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष का सूचक है।।+।।

इस तार्क्ष्य सूक्त के विषय में पूर्व खण्ड द्रष्टव्य है, क्योंकि यह सूक्त अच्युत संज्ञक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में ३ त्रिष्टुप्, २ बृहती,१ अनुष्टुप् एवं १ पंक्ति इन सात छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय भी विद्युत् चुम्बकीय बल एवं धाराओं की तीक्ष्णता एवं सम्प्लावकता में वृद्धि होती है। इस समय पदार्थ के सम्पीडन की क्रियाएं तीव्र होने लगती हैं। ब्रह्माण्ड में स्थित विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोक कॉस्मिक मेघ किंवा विभिन्न लोक विद्युत् बलों के द्वारा ही गतिशील और नियन्त्रित होते हैं। उनकी गति में बाधक बन रही डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ को भी तीव्र विद्युत् तरंगें ही शिथिल वा नष्ट करती हैं।।

ॐ इति २१.४ समाप्तः ॐ

ॐ अथ २१.५ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्येति' सूक्तं वैमदं विरिफितं विरिफितस्य ऋषेश्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– तदुपरान्त चतुर्थ अहन् के अन्तिम भाग में 'ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा विमदः वासुक्रो वसुकृद्वा' ऋषि, जिसके विषय में पूर्वखण्ड में चर्चा की जा चुकी है, से इन्द्रदेवताक ऋ.१०.२२ सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है–

(१) कुहं श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते। ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा।।१।।

इसका छन्द पादनिचृद् बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से संपीडक शक्ति सम्पन्न होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों रूपी ऋषि प्राणों अथवा अन्तरिक्ष में विभिन्न छन्दादि रश्मियों द्वारा आकर्षित व धारण किया जाता है। सभी उत्पन्न पदार्थ समूह उस इन्द्र तत्त्व को आकर्षित करके गतिशील होते हैं।

(२) इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः। मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।।२।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से सभी रश्मि आदि पदार्थों के साथ संयुक्त हो जाता है। इसके अन्य प्रभाव से {ऋचीषमः ऋचासमः (नि.६.२३)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों में अपने आकर्षण वल से न समाप्त होने वाला संयोज्य वल उत्पन्न करता है। इस सृष्टि में वह विभिन्न रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों के समान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है।

(३) महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः। भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम्।।३।।

इसका छन्द विराड् बृहती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव प्रथम छन्द रश्मि की अपेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से महान् वल का पालक वह इन्द्र तत्त्व शीघ्रकारी एवं व्यापक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को निरन्तर उत्पन्न करता रहता है। वह इन्द्र तत्त्व तीव्र वलयुक्त वज्र रश्मियों का सतत पालन व रक्षण करने वाला होता है।

(४) युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः। स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः।।४।।

इसका छन्द पादनिचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण वज्र रश्मियों से युक्त तेजस्वी इन्द्र तत्त्व कमनीय एवं आशुगामी प्राण रश्मियों से युक्त होकर विशेष रूप से प्रकाशित मार्गों से गति करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि के मार्गों को सम्पन्न व प्रकाशित करता है।

(५) त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै। ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः।।५।।

इसका छन्द पादनिचृदनुष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव लगभग द्वितीय छन्द रश्मि के समान समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों के ऋजुगामी वलों से व्याप्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपने अनुकूल वहन करता वा चलाता है। प्रकाशित इन्द्र तत्त्व किंवा अन्य

अनित्य पदार्थ उन प्राण और अपान रश्मियों को न ही चलाते वा उत्पन्न करते हैं, वल्कि मन और सूक्ष्म वाक् ही उन्हें उत्पन्न करती व चलाती है।

(६) अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम्। आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम्।।६।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वलों की कामना करते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अन्तरिक्ष में गमन करती हुई प्राणापान रश्मियों को खोजकर अपने साथ संगत करते हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियां सुदूर द्यौ और पृथिवी आदि लोकों से प्राणापान रश्मियों को आकर्षित करती हैं।

(७) आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम्। तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम्।।७।।

इसका छन्द आर्च्यनुष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को अपने साथ संयुक्त करता है और उनमें प्राणापान किंवा उनसे उत्पन्न विद्युत् को उत्प्रेरित करता है। वे परमाणु आदि पदार्थ उस रक्षक और वलवान् इन्द्र तत्त्व को अपनी ओर आकर्षित करके अपनी तेजहीनता किंवा आसुर प्रभाव को नष्ट करते हैं।

(८) अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः। त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय।।८।।

इसका छन्द पादनिचृद्वृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से शिथिल वा निष्क्रिय परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ, तेजहीन वाग् रश्मियां, अप्रकाशक, अव्यवस्थित, गतियुक्त पदार्थों को वल, तेज व गति प्रदान करता है एवं असुर पदार्थ विभिन्न संयोजनीय परमाणुओं की संयोगादि क्रियाओं में वाधक वनते एवं कभी-२ विध्वंसक भी होते हैं, ऐसे सभी अनिष्ट पदार्थों को वह इन्द्र तत्त्व नष्ट वा नियन्त्रित करता है।

(९) त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो वर्हणा। पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा।।९।।

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव सातवीं छन्द रश्मि के समान समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह पराक्रमी इन्द्र तत्त्व अपनी तीक्ष्ण रश्मियों द्वारा {नवति गतिकर्मा (निघं.२.१४)} विभिन्न पदार्थों की रक्षा करता है। वह व्यापक होने वाली विध्वंसक क्रियाओं में प्रकाशित और अप्रकाशित सभी कणों वा लोकों को व्यापक रूप से तृप्त करके उनकी रक्षा करता है।

(१०) त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नृन्कार्पाणे शूर वज्रिवः। गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम्।।१०।।

इसका छन्द पादनिचृत् वृहती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {कृपाणः = कृपां नुदति – नुद्+ड संज्ञायां णत्वम् (आप्टेकोष) (कृपू कृपतेर्वा कल्पतेर्वा – नि.६.८; कल्पते अर्चतिकर्मा – निघं. ३.१४)} इसके अन्य प्रभाव से वज्र रश्मियों से युक्त वह पराक्रमी इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को वृत्र नामक आसुर मेघ को नष्ट करने एवं विभिन्न परमाणुओं की दीप्ति और वल के ह्रास के निवारणार्थ समय-२ पर अच्छी प्रकार प्रेरित करता है। वह इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में विद्यमान अक्षीण वल और क्रान्तदर्शी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को भी प्रेरित करता है।

(११) मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः। यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः।।११।।

इसका छन्द विराड् वृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व {मक्षु = क्षिप्रनाम (निघं.२.१५)। आक्षाणः = आश्नुवानः (नि.३.१०)} विभिन्न उत्सर्जन कर्मों से युक्त होकर विभिन्न शोषक अनिष्ट रश्मि आदि पदार्थ, जो व्यापक क्षेत्र में उत्पन्न होकर विभिन्न सृजन क्रियाओं में वाधक होते हैं, को शीघ्र नष्ट करता है।

(१२) माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः। वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः।।१२।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह

पराक्रमी इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की धारण-संयोजन क्षमता तथा गति और स्थिति को अक्षुण्ण रखने के लिए आवश्यक बल सतत प्रदान करता रहता है।

(१३) अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः। विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह वज्र रश्मि युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के साथ संयुक्त होकर उन्हें विनाश से बचाता है। उस इन्द्र तत्त्व की विभिन्न क्रियाएं वाग् रश्मियों के समान नित्य कार्यरत रहती हैं।

(१४) अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम्। शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः।।१४।।

इसका छन्द पादनिचृद् बृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {क्षाः = पृथिवीनाम (निघं.१.१)। शची = वाङ्नाम (निघं.१.११)} वह इन्द्रतत्त्व आकर्षण-प्रतिकर्षण बलों तथा गतिहीन अप्रकाशित परमाणुओं वा लोकों को विभिन्न विद्यमान वाग् रश्मियों के द्वारा बढ़ाता है। वह इन्द्र तत्त्व उन परमाणुओं को पूर्णकालिक क्रियाओं से युक्त करने हेतु शोषक वा प्रतिकर्षक बलों से युक्त बाधक पदार्थों को नष्ट करता है।

(१५) पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन्। उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः।।१५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण बल व तेज से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {वसवानः = (वस निवासे, वस आच्छादने)} सबको आच्छादित करने व बसाने वाला विक्रान्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को अहिंसित रखकर स्व-२ क्रिया व क्षेत्र में बसाता हुआ सोम रश्मियों का अवशोषण करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मियों को प्रकाशित करता हुआ विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा अन्य परमाणुओं वा रश्मियों से युक्त करता है।

इस सूक्त रूप रश्मिसमूह के विषय में महर्षि आश्वलायन ने लिखा है-

"कुह श्रुत इन्द्रो युष्मस्य त इति निष्केवल्यम्। श्रुधीहवीयस्य तु तृच आद्येऽर्धर्चादिषु न्यूङ्खः।।"
"एवं कुहश्रुतीयस्य।।" (आश्व.श्रौ.७.११.२८-२९)

इन सूत्रों पर टीका करते हुए आचार्य नारायण ने लिखा है-

"अस्य सूक्तस्याद्ये तृचेऽर्धर्चेन्यूङ्खः। आदिग्रहणं न केवलं द्वितीयाक्षर एवं न्यूङ्खः कर्तव्यः। क्व तर्हि, आद्ये द्वितीये तृतीये चतुर्थे वा कर्तव्यो न्यूङ्ख इति गम्यते।।२८।।

एवमित्यनेन तृच आद्येऽर्धर्चादिषु न्यूङ्खः इति गम्यते।।२९।।"

इन प्रमाणों तथा पूर्वखण्ड से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि यह सूक्तरूप रश्मिसमूह विरिफित अर्थात् न्यूङ्ख सहित उत्पन्न होता है, इन कारण इसकी उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों की उत्पत्ति की सूचक है। महर्षि आश्वलायन के उपर्युक्त प्रमाण से यह भी सिद्ध होता है कि इस सूक्त की निष्केवल्य शस्त्र संज्ञा है, जिससे यह संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों के अन्दर सतत गमन करती रहती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ७ बृहती, ७ अनुष्टुप् एवं १ त्रिष्टुप् कुल १५ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विद्युत् चुम्बकीय बलों एवं क्षेत्रों की तीव्रता में वृद्धि होती है। अन्तरिक्षस्थ विभिन्न कण स्थायी रूप से विद्युत् आवेशों से युक्त होकर संयोजक प्रभावों से सम्पन्न होते हैं। ब्रह्माण्ड में विद्यमान विद्युत् प्राण और अपान द्वारा नियन्त्रित होती है। सभी प्रकार के सूक्ष्म वा स्थूल कण प्राणापान रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित और संगत करते रहते हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियां भी प्राणापान आदि रश्मियों को निरन्तर आकर्षित करती रहती हैं। यह आकर्षण ही विभिन्न कणों के बीच कार्यरत आकर्षण और प्रतिकर्षण का कारण होता है। विभिन्न शिथिल, निष्क्रिय कणों वा रश्मियों, तेजहीन रश्मियों को तेजस्वी व सक्रिय बनाने, अव्यवस्थित गतियुक्त कणों वा रश्मियों को व्यवस्थित गति प्रदान करने, तीक्ष्ण हिंसक दृश्य वा डार्क ऊर्जा को नियन्त्रित करने में विद्युत् की ही

भूमिका होती है, जो प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों की रक्षा करती है। विभिन्न कणों की धारण-संयोजन क्रियाओं तथा गति-स्थिति को निर्धारित करने में विद्युत् की ही भूमिका होती है। यह विद्युत् विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न कणों वा किरणों को आच्छादित करके अपने सभी प्रभावों को उत्पन्न करती है।।

२. 'युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज' इति सूक्तमुरुं गभीरं जनुषाऽभ्युग्रमिति जातवच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।
'त्य मु वः सत्रासाहमिति' पर्यासो विश्वासु गीर्ष्वायतमित्यभ्यायाम्यमिवैतदहस्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
ता उ गायत्र्यो गायत्र्यो वा एतस्य त्र्यहस्य माध्यन्दिनं वहन्ति; तद्वैतच्छन्दो वहति यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माद् गायत्रीषु निविदं दधाति।।

व्याख्यानम्– तदनन्तर विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ.३.४६ सूक्त की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है–

(१) युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्या३णीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व स्वयं प्रकाशित सेचक वलों से युक्त तीक्ष्ण संयोजक और वियोजक गुणों एवं तीक्ष्ण प्रहार की क्षमता से युक्त होता है। वह इन्द्र तत्त्व महान् वज्र रश्मियों के द्वारा सदैव सक्रिय और विध्वंसक गुणों से युक्त व्यापक तेज वाला होता है।

(२) महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान्।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान्।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण परन्तु कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक तीक्ष्णता से प्रकाशित होता हुआ सेचक वलों से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों पर महान् नियन्त्रण करता है। वह एकाकी रहते हुए भी विरुद्ध कार्यरत वलवती शक्तियों को निरुद्ध करता हुआ सव लोकों को प्रकाशित करता है। विभिन्न परमाणु वा लोकों के सभी प्रकार के संघर्ष वा संघात विद्युत् ही के कारण होते हैं।

(३) प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से ऋजु गमन करने वाला दीप्ति से युक्त वह इन्द्र तत्त्व सर्वत्र विद्यमान नहीं होता। वह सूक्ष्म वाग् रश्मियों की मात्रा के अनुसार न्यूनाधिक शक्ति वाला होता रहता है। वह अपने वल के द्वारा व्यापक अन्तरिक्ष में विद्यमान प्रकाशित एवं अप्रकाशित पदार्थों को प्रकृष्टता से व्याप्त करता है।

(४) उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम्।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों

किंवा अन्तरिक्ष में संपीडित सोम रश्मियों को व्यापक और गहनता से तीक्ष्ण बनाता है। उन सब रश्मियों में व्यापक होकर उनकी दीप्ति की रक्षा करता है, ऐसी उन सोम रश्मियों की धाराएं अन्तरिक्ष में सब ओर व्याप्त हो जाती हैं।

(५) यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ।।५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह बलशाली इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में विद्यमान पृथिवी और द्यु लोक एवं सोम रश्मियों को गर्भ के समान धारण करता है। वही इन्द्र उनकी रक्षा करते हुए उन्हें बढ़ाता, शुद्ध करता एवं गति प्रदान करता है।

इस सूक्त की चतुर्थ ऋचा का प्रथम पाद "उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रम्" में 'जनी-प्रादुर्भावे' धातु की विद्यमानता के कारण इस सूक्त की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्वखण्ड में विद्यमान इसी प्रकार की कण्डिका के समान समझें।।

{श्रुतकक्षः = (कक्षः = कषति हिनस्तीति कक्षः - उ.को.३.६२)} तदुपरान्त श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषि अर्थात् विशेष तीक्ष्ण सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा इन्द्रदेवताक ऋ.८.९२.७-९ तृच की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्। आ च्यावयस्यूतये।।७।।

इसका छन्द पादनिचृद् गायत्री होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण बल और तेज से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व नित्य बलों से युक्त होकर सभी प्रकार की छन्द रश्मियों में फैलकर उनकी रक्षा और प्रकाश के लिए उनमें सब ओर गमन करता है।

(२) युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्। नरमवार्यक्रतुम्।।८।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रहारक परन्तु अन्यों के प्रहार से सुरक्षित सोम रश्मियों का पालक व अवशोषक इन्द्र तत्त्व अपनी स्वाभाविक क्रियाओं के द्वारा सबका नायक बनकर सबमें रमण करता है।

(३) शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम। अवा नः पार्ये धने।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों के समान वर्तमान होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को व्यापक रूप से उत्सर्जित करता है। ऐसा करके वह समस्त परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की बाधक रश्मियों से रक्षा करते हुए उन्हें सृजन क्रियाओं में पार लगाता है।

इनमें से प्रथम छन्द रश्मि में 'आयतम्' पद दीर्घत्व का सूचक है अर्थात् जिस प्रकार न्यूङ्ख क्रिया से छन्द रश्मियां फैलती हुई दीर्घ हो जाती हैं, उसी प्रकार यह 'आयतम्' पद भी रश्मियों को विस्तृत करता है। इस कारण इस तृच रूप रश्मिसमूह को भी न्यूङ्खकृतवत् माना जा सकता है। ऐसा मानने पर इस तृच की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मि के उत्कर्ष की सूचक है।।

इस कण्डिका पर व्याख्यान पूर्वखण्ड के अनुसार समझ लेवें। वहाँ यही कण्डिका, दो कण्डिकाओं के विभाजित रूप में विद्यमान है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ही ५ त्रिष्टुप् और ३ गायत्री छन्द रश्मियों की

उत्पत्ति होती है। वे गायत्री छन्द रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को वहन करती हैं। इसके लिए सूक्ष्म निविद् रश्मियां, गायत्री छन्द रश्मियों के मध्य व्याप्त होकर सभी रश्मियों को बांधने का कार्य करती हैं। इस विषय में पूर्व खण्ड पठनीय है। इस समय विद्युत् तरंगों एवं विद्युत् चुम्बकीय बलों की तीव्रता बढ़कर ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में विक्षोभ एवं संयोजन-वियोजन की क्रियाएं तीव्र होती हैं। विभिन्न कणों में विद्युदावेश की मात्रा उन कणों में विद्यमान प्राण व छन्द रश्मियों की मात्रा पर निर्भर करती है। इसी प्रकार विभिन्न क्वान्टाज् की ऊर्जा भी उनमें विद्यमान प्राण वा मरुद् रश्मियों की मात्रा पर निर्भर करती है। विद्युत् के प्रभाव से ही विभिन्न कण वा तरंगें इस ब्रह्माण्ड में प्रवाहित होते रहते हैं। ब्रह्माण्ड में विद्यमान सभी लोक-लोकान्तर एवं सूक्ष्म वा स्थूल कण विद्युत् का ही आश्रय पाकर उसी के द्वारा रक्षित रहते हैं। विभिन्न विद्युदावेशित कणों से प्राण वा मरुद् रश्मियों का निरन्तर उत्सर्जन होता रहता है।।

३. 'विश्वो देवस्य नेतुस्, तत्सवितुर्वरेण्य,मा विश्वदेवं सत्पतिमिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ; बार्हतेऽहनि चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
'आ देवो यातु सविता सुरत्न' इति सावित्रमेति चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
'प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिरिति' द्यावापृथिवीयं प्रेति चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
'प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य' इत्यार्भवं; प्रेति च वाचमिष्य इति च चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– इस सम्पूर्ण कण्डिका पर व्याख्यान ४.३२.१ में पढ़ें। यहाँ केवल भेद यह है कि वहाँ इन छन्द रश्मियों को बृहत्साम के रूप में मानकर द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष की सूचक बताया था जबकि यहाँ इस समय उत्पन्न सभी नौ छन्द रश्मियों को बार्हत कहा गया है अर्थात् ये सभी छन्द रश्मियां बृहत्साम रश्मियों से उत्पन्न वैरूप साम रश्मियों के रूप में मानी गई हैं। वैरूप साम रश्मियों का बृहती रश्मियों से उत्पन्न होना हम पूर्व खण्ड में पढ़ चुके हैं, इस कारण ये छन्द रश्मियां वैरूप छन्द रश्मियों के समान सिद्ध होती हैं और वैरूप छन्द रश्मियों की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष की सूचक है।।

तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से सवितृदेवताक ऋ.७.४५ सूक्त की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से वायु वा विद्युत् रूप सविता विशेष तेजयुक्त बलों से सम्पन्न होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे रमणीय वायु और विद्युत् अपनी आशुगामी किरणों के द्वारा अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हुए प्रकाशित होते हैं। वे वायु और विद्युत् व्यापक मात्रा में मरुद् रश्मियों को धारण करते हुए विभिन्न पदार्थों में प्रवेश करके उनके नाना रूप उत्पन्न करते हैं। वे उन पदार्थों को अपने आकर्षण और प्रतिकर्षण रूप हाथों में धारण करके उन्हें सब ओर गमन कराते हैं।

(२) उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम्।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम्।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित वायु और विद्युत् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उनकी क्रिया के अनुकूल बल प्रदान करके व्यापक स्तर पर उन्हें प्रकाशित करते हैं, जिसके कारण उनके समीपस्थ सभी परमाणु आदि

पदार्थ महान् तेज द्वारा निष्क्रियता से मुक्त होकर आकर्षण और प्रतिकर्षण आदि बलों से युक्त होने लगते हैं।

(३) स घा॑ नो दे॒वः स॑वि॒ता स॒हावा सा॑विष॒द्वसु॑पति॒र्वसू॑नि।
वि॒श्रय॑माणो अ॒मति॑मुरू॒चीं म॑र्त॒भोज॑न॒मध॑ रासते नः॥३॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसके प्रभाव से विभिन्न वासयिता पदार्थों अर्थात् गायत्री आदि रश्मियों के पालक वे वायु और विद्युत् अनेक परमाणुओं को व्याप्त करते हुए {अमतिः = रूपनाम (निघं.३.७)} अनेक प्रकार के रूपों को धारण करते हुए विभिन्न मरुद् रश्मियों को उत्सर्जित करते हैं। वे ऐसे वायु और विद्युत् साथ-२ संगत और प्रकाशित विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से आच्छादित करते हैं।

(४) इ॒मा गिरः॑ सवि॒तारं॑ सुजि॒ह्वं पू॒र्णग॑भस्तिमीळते सुपा॒णिम्।
चि॒त्रं वयो॑ बृ॒हद॒स्मे द॑धातु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥४॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों वायु और विद्युत् विभिन्न पदार्थों में अद्भुत आयु को धारण करते हैं। वे सुन्दर व्यवहार करने वाली रश्मियों से युक्त होकर सबके नियन्त्रक और सुन्दर वाग् रश्मियों से उत्पन्न ज्वालाओं से युक्त होते हैं। वे वाग् रश्मियां उन वायु और विद्युत् के समान सम्यक् क्रियाओं के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करती हैं।

इन रश्मियों में 'आङ्' उपसर्ग विद्यमान होने से इनकी उत्पत्ति चतुर्थ अहन् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष की सूचक है॥

तदुपरान्त पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि प्राण से द्यावापृथिव्यौ-देवताक ऋ.७.५३ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र द्यावा॑ य॒ज्ञैः पृ॑थि॒वी नमो॑भिः स॒बाध॑ ईळे बृह॒ती यज॑त्रे।
ते चि॒द्धि पूर्वे॑ क॒वयो॑ गृ॒णन्तः॑ पु॒रो म॒ही द॑धि॒रे दे॒वपु॑त्रे॥१॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से प्रकाशित और अप्रकाशित पदार्थ तीव्र तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों पदार्थ विभिन्न वज्ररूप रश्मियों और संयोज्य बलों के द्वारा व्यापक रूप से समृद्ध संगमनीय क्रियाओं का पालन करते हैं। वे दोनों प्राण तत्त्व से उत्पन्न होकर क्रान्तदर्शी रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होते और धारण किये जाते हैं।

(२) प्र पू॑र्व॒जे पि॒तरा॒ नव्य॑सीभिर्गी॒र्भिः कृ॑णुध्वं॒ सद॑ने ऋ॒तस्य॑।
आ नो॑ द्यावापृथिवी॒ दैव्ये॑न॒ जने॑न यातं॒ महि॑ वां॒ वरू॑थम्॥२॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों पदार्थ नवीन-२ उत्पन्न वाग् रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न अग्नि वा जलादि पदार्थों में वर्तमान होते हैं। वे प्राणापानादि रश्मियों से श्रेष्ठ आश्रय पाकर सब ओर गमन करते हुए नाना पदार्थों को सिद्ध करते हैं एवं वे ही उनके पालक और रक्षक भी होते हैं।

(३) उ॒तो हि वां॑ रत्न॒धेया॑नि॒ सन्ति॑ पु॒रूणि॑ द्यावापृथिवी सु॒दासे॑।
अ॒स्मे ध॑त्तं॒ यदस॒दस्कृ॑धोयु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर दान आदि क्रियाओं से सम्पन्न वे दोनों पदार्थ व्यापक रमणीयता को धारण करते तथा अनेक पदार्थों के जनक होते हैं। वे सभी सूक्ष्म पदार्थों की सम्यक् क्रियाओं के द्वारा रक्षा करते हैं।

इन ऋचाओं में से प्रथम और द्वितीय ऋचा 'प्र' उपसर्ग से युक्त होने से इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष की सूचक है।।

तदनन्तर वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष समृद्ध प्राण नामक प्राथमिक प्राण से ऋभवो-देवताक एवं भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

प्र ऋभुभ्यो॑ दूतमि॑व वाच॑मिष्य उपस्तिरे श्वैत॑रीं धेनुमी॑ळे।
ये वात॑जूतास्तरणि॑भिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो॑ बभूवुः।।१।। (ऋ.४.३३.१)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {एवः = एवैः कामैरयनैरवनैर्वा (नि.१२.२१)} सूत्रात्मा वायु रश्मियां 'वातजुत' अर्थात् व्यान वायु के द्वारा प्रेरित उत्तम प्रकार की तारक क्रियाओं के कमनीय रक्षित मार्गों के द्वारा विभिन्न प्राणादि रश्मियों एवं आकाश तत्त्व की क्रियाओं को सव ओर से उत्पन्न और समर्थ करती हैं। वे अत्यन्त शुद्ध सूक्ष्म वाक् रश्मि के रूप में ऋभु अर्थात् धनंजय आदि वायु रश्मियों को भी अपने साथ संगत करती हैं। इस छन्द रश्मि में 'प्र' उपसर्ग विद्यमान होने एवं 'वाक्' शब्द की विद्यमानता के कारण भी इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में होने वाले प्रभावों में से प्रथम कण्डिका के वैज्ञानिक सार को समझने के लिए पूर्वखण्ड में इसी कण्डिका के वैज्ञानिक सार को देखें। अन्य सार इस प्रकार है-

विभिन्न प्राण रश्मियां विद्युत् के साथ संगत होकर अत्यन्त महान् वल उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण पदार्थ में नाना प्रकार की क्रियाएं उत्पन्न होकर नये-२ तत्त्वों का निर्माण तेजी से करती हैं। उन पदार्थों की ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है और अग्नि की तेजस्वी ज्वालाएं उत्पन्न होने लगती हैं। ब्रह्माण्ड में विभिन्न तरल पदार्थों की धाराएं वहने लगती हैं। इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ विभिन्न रूप और रंगों से युक्त होता है।।

४. 'प्र शुक्रैतु देवी मनीषेति' वैश्वदेवं; प्रेति च शुक्रवच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।। ता उ विच्छन्दसः सन्ति द्विपदाः सन्ति चतुष्पदास्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।। वैश्वानरस्य सुमतौ स्यामेत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्; इतो जात इति जातवच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से विश्वेदेवा-देवताक ऋ.७.३४.१-१५ की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) प्र शुक्रैतु॑ देवी म॑नीषा अ॒स्मत्सुत॑ष्टो रथो न वाजी।।१।।

इसका छन्द भुरिगार्ची गायत्री होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ आकर्षण और प्रतिकर्षण वलों की तीव्रता के साथ विशेष तेजयुक्त होते हैं। {शुक्रः = आशुकारी (म.द.ऋ.भा.६.१६.३४), शुक्रं शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः (नि.८.११), शुक्रः सोमः (तां.६.६.८), ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् (ऐ.७.१२)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न सोम रश्मियां विशेष तेजयुक्त एवं आशुगामिनी होती हैं। वे मनस्तत्त्व से विशेष युक्त होकर {तष्टः = (तक्षति करोतिकर्मा - नि.४.१९)} विभिन्न परमाणुओं की तेजोमयी वाहिका वनकर उत्तम प्रकार की क्रियाओं से युक्त होती हैं।

(२) विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं॑ शृण्वन्त्यापो अध क्षर॑न्तीः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां अधोगामिनी होकर रिसती रहती हैं तथा वे अन्तरिक्ष, द्यौ एवं पृथिवी आदि पदार्थों का कारणरूप होती हैं अर्थात् इनके निर्माण की प्रक्रिया को बढ़ाती हैं।

(३) आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः।।३।।

इसका छन्द आर्ची गायत्री होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां विभिन्न क्रियाओं को सिद्ध करने के लिए पार्थिव और जलीय परमाणुओं की भांति विभिन्न पदार्थों को सींचती हैं। वे विशाल आसुर मेघों में तीक्ष्ण और हिंसक रूप धारण करके सब ओर से वज्र रूप होकर कार्य करती हैं।

(४) आ घूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व के समान विभिन्न धारण आदि कर्मों में आशुगामी तेजस्वी बल रश्मियों को सब ओर से धारण करती हैं।

(५) अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत।।५।।

इसका छन्द भुरिगार्ची गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां प्राण रश्मियों के समान संयोगादि क्रियाओं में सब ओर से गमन करती हुई सूत्रात्मा वायु से समृद्ध होकर अन्य रश्मियों को उत्पन्न करती रहती हैं।

(६) त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम्।।६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिपाद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां विभिन्न संयोग वा संघर्ष क्रियाओं में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए प्राण रश्मियों को प्रेरित करती हैं। वे रश्मियां सूत्रात्मा वायु को धारण करती हुई संयोगादि क्रियाओं को विशेष रूप से बढ़ाती हैं।

(७) उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम।।७।।

इसका छन्द छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां पृथिवी, द्युलोक आदि में अपने शोषक बलों के द्वारा उत्कृष्टता से भार को धारण वा उत्पन्न करती हैं।

(८) ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों को आकर्षित करता हुआ विद्युत् के व्यवहार से अनेक कार्यों को सिद्ध और धारण करता है। वे अग्नि के परमाणु निश्चल, सर्वव्यापक, चेतन ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा से ही उत्पन्न होते व कार्य करते हैं।

(९) अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम्।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियों में स्थित वाग् रश्मियों एवं सूत्रात्मा वायु को विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ सब ओर से धारण करके प्रसिद्ध होते हैं।

(१०) आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से तेजस्वी सूर्यादि लोक, जिनमें असंख्य प्रकार की रश्मियां विद्यमान होती हैं, उनमें अनेक प्रकार के **पदार्थों की धाराएं प्रवाहित होकर उन्हें प्रकाशित करती हैं और ये धाराएं ही उन लोकों की गतियों को भी सुनिश्चित करती हैं।**

(११) राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशमान सूर्यादि लोक उन उपर्युक्त धाराओं के रूप के कारण प्रकाशित होते और बाधक असुरादि रश्मियों से मुक्त होकर अपने तीक्ष्ण तेज और बल के साथ पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं।

(१२) अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः।।१२।।

इसका छन्द भुरिगार्ची गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त सूर्यादि लोक अपने अन्दर विद्यमान वा उत्पन्न विभिन्न परमाणु वा रश्मियों के कारण सतत प्रकाशित होते हैं। इन लोकों के अन्दर अप्रकाशित पदार्थ भी प्रकाशित होकर असुरादि रश्मियों से मुक्त रहते हैं।

(१३) व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम्।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रादि पदार्थ उन सूर्यादि लोकों में विद्यमान बाधक रश्मियों पर प्रहार करके उन्हें निरन्तर प्रकाशमान और व्याप्त रश्मि आदि पदार्थों के क्षेत्र से दूर करते हैं।

(१४) अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे सूर्यादि लोक अपने महान् बल के लिए अतीव आकर्षक रश्मियों को धारण करते हैं। वे अनेक हवनीय वज्र रश्मियों के द्वारा अग्नि तत्त्व की रक्षा करते हैं।

(१५) सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु।।१५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिपाद गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सूर्यादि लोक विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा किंवा उनके साथ वर्त्तमान होकर अपतनीय कर्मों से युक्त होकर अनुकूल दीप्तियों को उत्पन्न करते हैं।

तदुपरान्त अहिदेवताक भुरिगार्चीगायत्री छन्दस्क अगली ऋचा की उत्पत्ति होती है-

(१६) अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्।।१६।।

इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न मेघ रूप विशाल पदार्थ तेज और बलों से विशेष युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष में वर्त्तमान विभिन्न लोकों में विद्यमान विभिन्न धाराओं के रूप में प्रवाहित होने वाली तन्मात्राएं उन आकाशीय मेघों को उत्पन्न करती हैं और वे आकाशीय मेघ अनेक प्रकार की प्रकाशमान छन्द रश्मियों द्वारा प्रकाशित होते हैं।

(१७) मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः।।१७।।

इसका देवता अहिर्बुध्न्य एवं छन्द आर्ची गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वे आकाशीय मेघरूप पदार्थ विभिन्न तेजस्वी छन्द रश्मियों से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे आकाशीय मेघ हिंसक रूप धारण न करके सृजन प्रक्रियाओं को अनुकूलता से सम्पन्न करने वाले होते हैं।

अब पुनः विश्वेदेवा-देवताक ऋचाओं की उत्पत्ति क्रमानुसार होती हैं-

(१८) उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः।।१८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिपाद गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सभी देव पदार्थ सृष्टि के विभिन्न व्यवहारों में विभिन्न बलों एवं संयोजक गुणों से युक्त मरुद् वा छन्द रश्मियों को धारण करते हैं और उन मरुदादि रश्मियों के प्रति नियन्त्रक बल को प्राप्त करते हैं किंवा उनके द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

(१९) तपन्ति शत्रुं स्व१र्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम्।।१९।।

इसका छन्द भुरिगार्ची गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वलवती छन्द रश्मियों की सेना का नायक इन्द्र तत्त्व आसुरी रश्मियों को अभिभूत करके स्वयं प्रकाशित होता है।

(२०) आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान्।।२०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देवों की रक्षिका शक्तियां जैसे उन देव पदार्थों में व्याप्त होती हैं, वैसे ही त्वष्टा रूप सूर्यादि लोक अपने उत्तम व्यवहारों से दसों प्राण रश्मियों को अपने अन्दर धारण करते हैं।

(२१) प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः।।२१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिपाद गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पूर्णरूप से देदीप्यमान गायत्री आदि छन्द रश्मियों की कामना करता हुआ त्वष्टा रूप सूर्य विभिन्न छन्दादि रश्मियों से निरन्तर युक्त होता है।

(२२) ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः।।२२।।

इसका छन्द निचृदार्षी त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से वे सूर्यादि लोक अति तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से व्यान प्राण की रक्षिका शक्ति रूप सूक्ष्म रश्मियां अपने आकर्षक और वन्धक वलों के द्वारा प्राणोदान के समान विभिन्न परमाणुओं को संयोजक वल प्रदान करती हैं। त्वष्टा रूप इन्द्र तत्त्व सवको आश्रय देता हुआ विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों को विशेष रूप से धारण करते हुए गति करता है।

(२३) तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः।।२३।।

इसका छन्द आर्षी त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आकाशीय मेघ विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों के संयोगादि व्यवहारों से उत्पन्न होते हैं। वैसे ही द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्ष लोक दहनशील तन्मात्राओं से युक्त अग्नि, इन्द्र तत्त्व आदि के द्वारा प्रकाशित व रक्षित होते हैं।

(२४) अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै।।२४।।

इसका छन्द निचृदार्षी त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक आकाश और पृथिवी तत्त्व इन्द्र तत्त्व के साथ प्रकाशित होते हुए श्रेष्ठ प्रकाश रश्मियों को अनुकूलता से वसाते और व्याप्त करते हैं। वे आकाश और पृथिवी तत्त्व विभिन्न वलों से युक्त मरुद् व छन्द रश्मियों को धारण करके प्रतिरोधक व धारण वलों से युक्त होते हैं।

(२५) तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।२४।।

इसका छन्द विराडार्षी त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न किरणों से युक्त इन्द्र, अग्नि एवं जल तत्त्व प्राणापानव्यान आदि रश्मियों का अनुकूलता से सेवन करते हैं, जिसके कारण वे सभी पदार्थ विभिन्न मरुद् रश्मियों को भी अपने साथ अनुकूलता से संगत करके सदैव अपने वल और कर्मों की रक्षा करते हैं।

इन छन्द रश्मियों में से प्रथम छन्द रश्मि में 'प्र' उपसर्ग एवं 'शुक्र' शब्द विद्यमान है, इस कारण इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों की उत्पत्ति की सूचक है।।

उपर्युक्त छन्द रश्मियां विविध प्रकार के छन्दों के रूप में है। कुल ६ प्रकार की छन्द रश्मियां इस उपर्युक्त सूक्त में विद्यमान हैं। पदों की दृष्टि से भी कुछ छन्द रश्मियां दो पाद युक्त हैं, तो कुछ चतुष्पात् हैं, इस कारण भी ये विविध छन्दों से युक्त मानी जाती हैं। इनका विविध छन्दों से युक्त होना भी चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष का सूचक है।।

तदुपरान्त अङ्गिरसः कुत्स ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु की विकार रूप सूक्ष्म रश्मियों से वैश्वानरदेवताक ऋ.१.९८ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से परमाणुओं में व्याप्त अग्नि तत्त्व तीव्र तेजस्वी और वलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व सूर्यादि लोकों के साथ विभिन्न उत्पन्न प्राणों के सहयोग से विविध क्रियाओं को सम्पादित करता है। वह सूर्य लोक उस अग्नि तत्त्व के सुप्रकाश में ही सब लोकों को सब ओर से प्रकाश और आश्रय प्रदान करता है।

(२) पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह व्यापक अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों के मध्य आकृष्ट होता किंवा उनको आकृष्ट करता हुआ अन्तरिक्ष वा पृथिवी आदि लोकों वा कणों को आकृष्ट करता किंवा उनके द्वारा आकर्षित होता हुआ विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा व्याप्त होकर समस्त ऊष्मायुक्त पदार्थों में विद्यमान होता है। वह अपने बल के द्वारा अन्धकार वा प्रकाशयुक्त अवस्था में परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करता है।

(३) वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।३।।

इसका छन्द निचृद त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण परन्तु कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे व्यापक अग्नि वा वायु तत्त्व अपने नित्य गुणों के साथ प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में वर्तमान रहते हैं। प्राण, अपान, उदान, सूत्रात्मा वायु, विभिन्न वाग् रश्मियां, आकाश एवं विद्युत् सभी परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार संगत करते हैं। इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से सभी परमाणुओं को युक्त करता है।

इस सूक्त की सभी तीनों छन्द रश्मियों को महर्षि अगली कण्डिका में वर्णित अग्निमारुत सूक्त की 'प्रतिपत्' ऋचाएं कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि अगली कण्डिका में वर्णित सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति से पूर्व इन तीनों छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना अनिवार्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में २१ विभिन्न गायत्री तथा ७ विभिन्न त्रिष्टुप् रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय सभी प्रकार के प्रकाशित पदार्थों की ऊर्जा एवं प्रकाश की तीव्रता बढ़ती है। आकर्षण और प्रतिकर्षण दोनों ही बल तीव्र होते हैं। विभिन्न वाग् रश्मियां आकर्षण बलों के विरुद्ध भी तीव्रता से गमन करते हुए आकाश के साथ-२ विभिन्न कणों और विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। वे वाग् रश्मियां डार्क एनर्जी और डार्क मैटर को भी छिन्न-भिन्न वा नियन्त्रित करने में सक्षम होती हैं। विभिन्न बलों की उत्पत्ति में भी उनकी अनिवार्य महती भूमिका होती है। इन

रश्मियों में से अन्य सूक्ष्म रश्मियां शृंखलाबद्ध रूप से उत्पन्न होती हैं। इस शृंखला को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है-

चित्र २१.२ सूक्ष्म रश्मियों की शृंखला
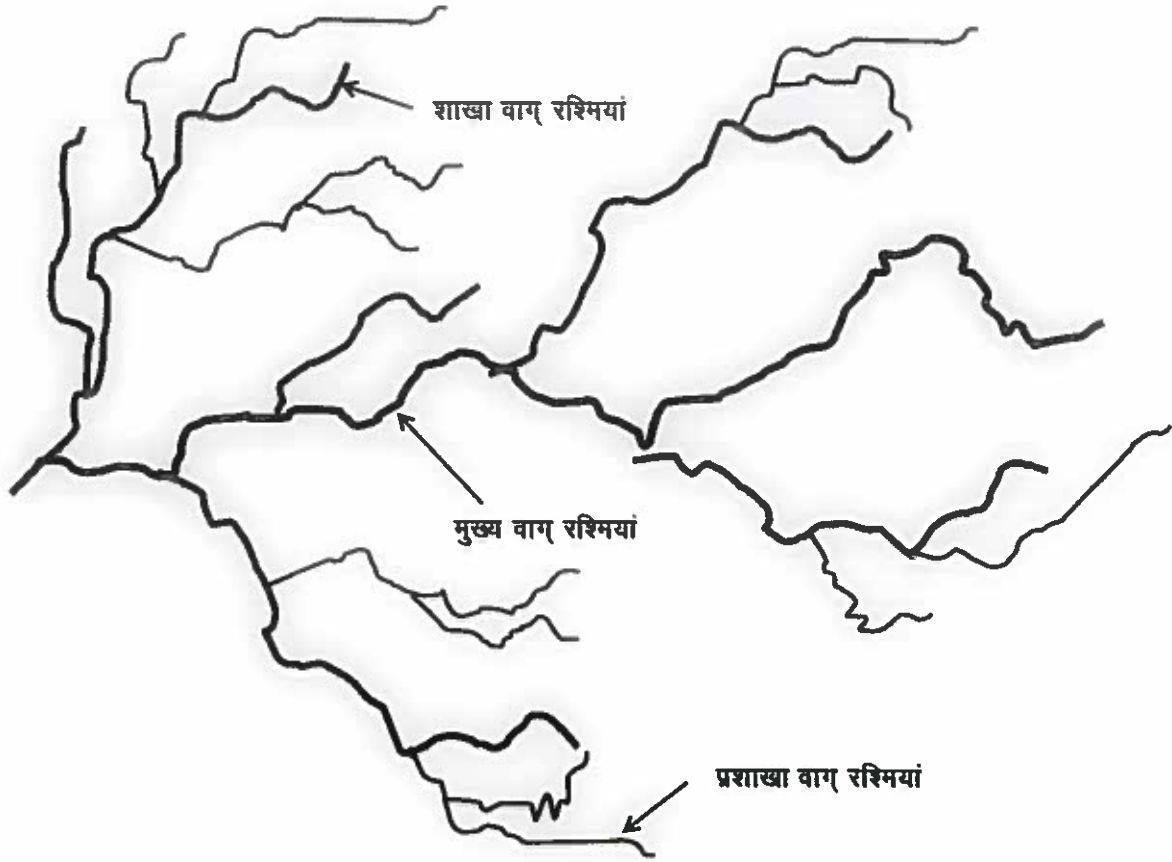
ये रश्मियां ही प्राण रश्मियों को भी प्रेरित करके सभी प्रकार के आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों को उत्पन्न करती हैं। **ये ही द्रव्यमान की उत्पत्ति का मूल कारण हैं, जो इनके घनीभूत होने पर उत्पन्न होता है। विभिन्न कणों और क्वान्टाज् में वाग् एवं प्राण रश्मियां विद्यमान होती हैं, जो मन और सूक्ष्म वाक् तत्त्व के द्वारा नियन्त्रित व प्रेरित होती हैं। इन सबका मूल प्रेरक और नियन्त्रक सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् चेतन ईश्वर तत्त्व होता है।** सूर्यादि तारों में विद्यमान पदार्थ विभिन्न धाराओं के रूप में सतत प्रवाहित होते रहते हैं। इन धाराओं का सम्बन्ध उन तारों की घूर्णन गतियों से भी होता है और इन्हीं धाराओं का सम्बन्ध उन तारों के तापमान से भी होता है। तारों के अन्दर डार्क एनर्जी और डार्क मैटर का प्रभाव बहुत कम होता है। विद्युत् का इन तारों में अत्यधिक प्रभाव होता है। अन्तरिक्ष में धाराओं के रूप में प्रवाहित पदार्थ संघनित होकर कॉस्मिक मेघों का निर्माण करते हैं। उन कॉस्मिक मेघों से ही कालान्तर में विभिन्न तारामण्डलों की उत्पत्ति होती है। सूर्यादि लोकों में दसों प्राण रश्मियां, सूत्रात्मा वायु एवं विभिन्न छन्द रश्मियां ही सभी प्रकार की क्रिया और बलों का कारण होती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग देखें।।

५. 'क ईं व्यक्ता नरः सनीळा' इति मारुतं; नकिर्ह्येषां जनूंषि वेदेति जातवच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
ता उ विच्छन्दसः सन्ति द्विपदाः सन्ति चतुष्पदास्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम्।।
'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से मरुद् देवताक ऋ.७.५६ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः।।१।।

इसका छन्द आर्ची गायत्री होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से मरुद् रश्मियां तीव्र तेजयुक्त वलों से सम्पन्न होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियां परस्पर संगत होकर तीक्ष्ण रश्मियों के समान सुन्दर आशुगामी होकर सभी पदार्थों को व्याप्त करते हुए उनको व्यक्त वा प्रकाशित रूप प्रदान करती हैं।

(२) नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम्।।२।।

इसका छन्द, भुरिगार्ची गायत्री होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् किन्तु अधिक तीक्ष्ण। इसके अन्य प्रभाव से {अङ्गम् = क्षिप्रनाम अङ्कितमेवाञ्चितं भवति (नि.५.१७)} वे प्राण वा मरुद् रश्मियां {नकिः = या न शब्दयति सा (म.द.ऋ.भा.१.४८.६)} अति शीघ्रकारी होती हुई भी ध्वनियुक्त अवस्था को उत्पन्न नहीं करती हैं। वे परस्पर संगत होकर नाना प्रकार की ध्वनियों से युक्त पदार्थों को उत्पन्न करती हैं।

(३) अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन्।।३।।

इसका छन्द प्राजापत्या बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां सम्पीडित होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {स्वनः = वाङ्नाम (निघं.१.११)} विभिन्न वायु एवं प्राण रश्मियां तीक्ष्ण वल और वेग से युक्त होकर शिथिल पदार्थों के साथ संगत होती हुई उन्हें प्रेरित करके स्पर्द्धा योग्य वनाती हैं।

(४) एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सवको धारण करने वाला वह आकाश तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के विशाल पदार्थों को धारण करता है। वह आकाश तत्त्व उन पदार्थों के अन्दर विद्यमान होकर उन्हें सक्रिय भी करता है।

(५) सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम्।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से ब्रह्माण्ड में स्थित 'विट्' संज्ञक सूक्त रश्मियां सनातन प्राण रश्मियों और मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न वा पुष्ट करती हुई उन्हें वल प्रदान करती हैं एवं उनके प्रतिरोधक वलों को भी सहन करती हैं।

(६) यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः।।६।।

इसका छन्द भुरिगार्ची गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से शुभ्र और प्रदीप्त होती हुई मरुद् रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिश्रित होती हुई तीक्ष्ण संयोजक वलों के साथ नाना व्यवहारों सहित व्याप्त होती हैं।

(७) उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान्।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां मरुद् रश्मियों के साथ मिलकर तीक्ष्ण और दृढ़ ओज और वल को प्राप्त करके वलवान् समूह के रूप में विचरती हैं।

(८) शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः।।८।।

इसका छन्द आर्च्युष्णिक् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से मरुद् रश्मियां तेज और ऊष्मा से विशेष युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि और मरुत् प्रदीप्त और तीक्ष्ण वलयुक्त होकर अन्य पदार्थों को प्रदीप्त और वलयुक्त करते हैं। वे दोनों विभिन्न पदार्थों को दृढ़ता से कंपाते हैं।

(९) सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ् नः।।९।।

इसका छन्द भुरिगार्ची गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि तत्त्व और मरुद् रश्मियां समान आधार रूप होकर विभिन्न प्रकाशित रश्मियों को मिश्रित वा पृथक् करके विभिन्न अनिष्ट पदार्थों को दूर करती हैं।

(१०) प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः।।१०।।

इसका छन्द आर्च्युष्णिक् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय मरुद् रश्मियां शीघ्रगामी एवं कमनीय छन्द रश्मियों किंवा जलीय परमाणुओं को सव ओर से आकर्षित और तृप्त करती हैं।

(११) स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्व१ः शुम्भमानाः।।११।।

इसका छन्द निचृदार्च्युष्णिक् होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से {निष्कः = (निष्क परिमाणे, नि+ षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु - भ्वा. धातोः 'नौ सदेर्डिच्च' - उ.को.३.४५; सूत्रेण कन्, डित्त्वाच्च टेर्लोपः - वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)} वे अग्नि और मरुद् रश्मियां तीव्र प्रहार क्षमता एवं कमनीय वलों से युक्त होकर अच्छे परिमाण में विस्तृत होती हुई सव ओर गति और ज्योति को प्रदान करती हैं।

(१२) शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः।।१२।।

इसका छन्द निचृद् त्रिष्टुप् होने से मरुद् रश्मियां विशेष तीक्ष्ण तेज से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से सवके पावक एवं प्रदीपक अग्नि के परमाणु एवं मरुद् रश्मियां दोनों ही विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर पवित्र दीप्तियों को उत्पन्न करते हैं। वे दोनों विभिन्न प्राणादि रश्मियों के नित्य सम्वन्ध के द्वारा अहिंसनीय संगम आदि व्यवहारों को पवित्रता और तेजस्विता प्रदान करते हुए सव ओर वढ़ाते और व्याप्त करते हैं।

(१३) अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां {वक्षः = प्राप्तं वस्तु (म.द.ऋ.भा.१.१२४.४)} विभिन्न प्राप्त पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें देदीप्यमान करती हैं और उन पदार्थों के द्वारा अवशोषित होती रहती हैं। वे मरुद् रश्मियां विद्युदग्नि को अपने साथ धारण करके प्रदीप्त करती हैं और सव ओर प्रहार करने और उत्सर्जित करने में समर्थ अपने आकर्षण और विकर्षण वलों को सव ओर फैलाती हैं।

(१४) प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम्।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्।।१४।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि एवं मरुद् रश्मियां अपने तेज को चहुं ओर व्याप्त करती हुई संयोगादि प्रक्रियाओं को विस्तृत करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां उत्तम रूप से संगत होकर अन्तरिक्ष में उत्पन्न पदार्थ के तरल रूप की विशाल धाराओं को प्रेरित करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न अनिष्ट वलों का उल्लंघन करके विभिन्न प्रकार के आकर्षण

वलों में नियन्त्रक गुण भी उत्पन्न करती हैं।

(१५) यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन्।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा।।१५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां तेज और वेग-वलयुक्त सूत्रात्मा वायु के संगमनीय व्यवहार को शीघ्रता से प्राप्त करती हैं। इससे वे मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपना तेज और वल प्रदान करते हुए प्रतिकर्षक व्यवहारों को शीघ्र नष्ट करती हैं।

(१६) अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः।।१६।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {हर्म्यम् = गृहनाम (निघं.३.४)। अत्यासः = येऽतन्ति अध्वानं व्याप्नुवन्ति ते (म.द.भा)} वे मरुद् रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों को धारण करके विभिन्न अस्थिर मार्गों को व्याप्त करते हुए सुन्दरता से गमन करती हैं। वे विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं एवं संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय करने वाले संयोज्य वलों में स्थित व्यान नामक मध्यम प्राण रश्मियों के साथ क्रीड़ा करती हुई मनस्तत्त्व के समान शोभनीय क्रियाओं को प्राप्त करती हैं।

(१७) दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम्।।१७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव १५ वीं ऋचा की अपेक्षा किंचित् मृदु होता है। {दशस्यन्तः = विस्तारयन्तः (म.द.ऋ.भा.५.३.४), वलयन्तः (म.द.भा.)। सुमेकः = सुष्ठु मेकः प्रेक्षेपो यस्य सः (तु.म.द.ऋ.भा.१.१४६.३)। वधः = वज्रनाम (निघं.२.२०), वलनाम (निघं.२.९)} इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विस्तृत एवं वलवान् होती हुई अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त हुए प्रकाशित एवं अप्रकाशित कणों वा लोकों के चारों ओर प्रवाहित होते हुए उन्हें सम्यक् सहज वल प्रदान करती हैं। उन मरुद् रश्मियों से दूर स्थित विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों की घातक वज्ररूप किरणों को वे मरुद् रश्मियां और वसु संज्ञक गायत्री रश्मियां सहजता से नष्ट करती हैं।

(१८) आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः।।१८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां प्रकाशित होती हुई तीव्रगन्ता होता रूप अनेक सेचक वलों से सम्पन्न विद्युत् अग्नि को सव ओर से आकर्षित करती हैं। वह विद्युदग्नि विभिन्न छन्द रश्मियों द्वारा अनेक संयोगादि क्रियाओं को नित्य उत्पन्न करता हुआ नाना परमाणुओं वा रश्मियों की रक्षा करता है।

(१९) इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति।।१९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {वनुष्यतीति क्रुध्यतिकर्मा (निघं.२.१२)} वे मरुद् रश्मियां अपने वल से दूसरे वलों की ओर सव ओर से आकृष्ट होती हुई विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार की तीव्र क्रीड़ाओं से संयुक्त करती हैं तथा हिंसक एवं प्रतिरोधी वलों से युक्त पदार्थों के प्रति हिंसक और प्रतिरोधी वल उत्पन्न करके उन्हें निष्क्रिय करती हैं।

(२०) इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे।।२०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पदार्थों को बसाने वाली बलवती मरुद् रश्मियां समृद्ध होते हुए परमाणु आदि पदार्थों को प्रेरित करती हैं। वे मरुद् रश्मियां भ्रमण करते हुए विभिन्न लोकों वा कणों के साथ संगत होते हुए असुर तत्त्वों को दूर करके विभिन्न पदार्थों का विस्तार करती हैं।

(२१) मा वो दात्रान्मरुतो निररराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये३ यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति।।२१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में आकर्षण एवं प्रतिकर्षण आदि बलों को सदा बनाये रखती हैं। वे रमणीय वाहिका किरणों के रूप अनेक सेचक बलों से सम्पन्न होकर विभिन्न द्रव्यों में संयोग और विभाग की प्रक्रियाओं को अच्छी प्रकार उत्पन्न व प्रसिद्ध करती हैं।

(२२) सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः।।२२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अति घोर हिंसक रश्मियों को अपने तेज द्वारा नष्ट करती हैं। इसके पश्चात् वे मरुद् रश्मियां व्यापक स्तर पर ऊष्मायुक्त परमाणु आदि पदार्थों में अपना नियन्त्रण और रक्षण प्रदान करती हैं। इन मरुद् रश्मियों के समूह ही विभिन्न क्रियाओं को तारने वाले होते हैं।

(२३) भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा।।२३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अनेक छन्द रश्मियों और ऋतु रश्मियों के द्वारा प्रकाशित व तीक्ष्ण होती हैं। उन मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न रश्मिसमूहों में उग्र बलयुक्त अनेक आशुगामिनी और बलवती किरणें उत्पन्न होती हैं और उन्हीं मरुद् रश्मियों के द्वारा अनेक रश्मिसमूहों का विभाजन भी होता है।

(२४) अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम।।२४।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव १६ वीं छन्द रश्मि की अपेक्षा कम तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को गति, कान्ति एवं प्रजनन आदि गुणों से सम्पन्न करने के लिए प्राण रश्मियों में विशेषरूप से रमती हुई उन्हें धारण करती हैं। वे अनेक बलों से युक्त पृथिवी आदि पदार्थों वा लोकों को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार की क्रियाओं को तारती हुई देदीप्यमान ग्रहों वा क्षेत्रों का निर्माण करती हैं।

(२५) तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।२५।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां इन्द्र, अग्नि, सूर्यादि लोक, जल और सोम रश्मि आदि पदार्थों से संगत होती हैं। इनके संगत होने से इन सभी पदार्थों की विभिन्न क्रियाएं सुगमता से होने लगती हैं।

इन ऋचाओं में से द्वितीय ऋचा में 'जनूंषि' पद 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से युक्त होने से इस सूक्त की उत्पत्ति चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष की सूचक है।।

उपर्युक्त सूक्त की ऋचाएं अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त हैं, जिनमें से कुछ द्विपात् तो कुछ चतुष्पात् हैं। इस प्रकार विविध छन्दों से युक्त होना एवं सूक्त रूप रश्मिसमूह का उत्पन्न होना चतुर्थ अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष का सूचक है।।

यह ऋचा अच्युत होने से इसके विषय में पूर्वखण्ड द्रष्टव्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष काल में ८ गायत्री, १ बृहती, २ उष्णिक्, ६ पंक्ति एवं ८ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विभिन्न मरुद् रश्मियां अत्यन्त सक्रिय हो उठती हैं। इनकी सक्रियता बढ़ने से विभिन्न प्रकार के बलों की तीव्रता भी बढ़ने लगती है। ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की ध्वनियों की तीव्रता भी बढ़ने लगती है। सभी कणों एवं विकिरणों की ऊर्जा में भी वृद्धि होने लगती है। विभिन्न कणों वा विशाल लोकों के मध्य उत्पन्न गुरुत्वाकर्षण बल के कार्यों में आकाश तत्त्व भी सक्रिय रहता है। विभिन्न मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ मिलकर ही अपने कार्यों को सम्पादित कर पाती हैं। बड़ी छन्द रश्मियां मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर उनके बल में वृद्धि करती हैं। वे छन्द रश्मियां मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर तीक्ष्ण विकिरणों का रूप धारण करती हैं। विभिन्न प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ को दूर करने में सक्षम होती हैं क्योंकि मरुद् रश्मियों के संयोग से विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा तेजी से बढ़ती है। **विभिन्न क्वान्टाज् का निर्माण छन्द और प्राण रश्मियों के संयोग एवं सम्पीडन से होता है।** वे मरुद् रश्मियां कॉस्मिक पदार्थ की विभिन्न धाराओं को बल और वेग प्रदान करने में सहयोग करती हैं। इन रश्मियों का मार्ग सर्वथा निश्चित और स्थिर नहीं रहता, बल्कि उनकी गति और मार्ग बड़े विचित्र होते हैं। ब्रह्माण्ड के विशाल लोकों से लेकर सूक्ष्म कणों तक को गतिमान् करने में अपनी भूमिका निभाती हैं। विद्युदावेशित कणों के चारों ओर ये रश्मियां निरन्तर आवागमन करती रहती हैं। ये रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों को परस्पर संयुक्त और संपीडित करने एवं उन्हें वियुक्त करने में अपनी भूमिका निभाती हैं। इनके कारण ही विभिन्न बलों में स्थायित्व बना रहता है।।

६. 'अग्निं नरो दीधितिभिररण्योरिति' जातवेदस्यम्; हस्तच्युती जनयन्तेति जातवच्चतुर्थेऽहनि चतुर्थस्याह्नो रूपम्।। ता उ विच्छन्दसः सन्ति विराजः सन्ति त्रिष्टुभस्तेन चतुर्थस्याह्नो रूपम-ह्नो रूपम्।।२।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से जातवेदा अग्निदेवताक ऋ. ७.१ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्। दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम्।।१।।

इसका छन्द एकादशाक्षरा पादैस्त्रिपदा विराड्गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नितत्त्व विशेष तेजस्वी और बलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां {अरणी = देवरथो वा अरणी (कौ.ब्रा.२.६), अरो वै विष्णुस्तस्य वा एषा पत्नी यदरणी (काठ.संक.२१.२.३)} आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों को गतिमान् करके उत्तेजित क्रियाओं के द्वारा दृश्य अग्नि को उत्पन्न करती है। वे विभिन्न अहिंसनीय बलों की पालक विद्युत् को उत्पन्न करती हैं।

(२) तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्। दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न बलों से

सम्पन्न होकर परमाणुओं के नियन्त्रण में नित्य संलग्न रहता है। वह अच्छे प्रकार दर्शनीय अग्नि रक्षण, गति आदि गुणों से सम्पन्न प्राणादि रश्मियों के द्वारा निरन्तर प्रसिद्ध होता है।

(३) प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सूर्म्या = ऐश्वर्येण (म.द.य.भा. १७.७६)} विभिन्न पदार्थों के मिश्रण-अमिश्रण में अतिशय समर्थ अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ वह अग्नि अपनी नित्य नियन्त्रक शक्ति के द्वारा निरन्तर बलों के साथ इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र प्राप्त होता है। इस अग्नि को विभिन्न छन्दादि रश्मियां एवं संयोज्य परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर प्रकाशित करते हैं।

(४) प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः। यत्रा नरः समासते सुजाताः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर प्राण रश्मियों से युक्त विभिन्न मरुद् रश्मियां अग्नि के परमाणुओं को अच्छी प्रकार प्रकट करती हैं। वे देदीप्यमान अग्नि के परमाणु निरन्तर दमकते हुए विभिन्न प्रकार की शोधक क्रियाओं को अच्छी प्रकार उत्पन्न करते हैं।

(५) दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम्। न यं यावा तरति यातुमावान्।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न धर्षक बलों से युक्त होकर अपनी विभिन्न क्रियाओं से उत्तम प्राण रश्मियों से युक्त विभिन्न परमाणुओं को उत्पन्न करता है। वह गमनशील अग्नि विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को तारता और धारण करता है।

(६) उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची। उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {घृताची = रात्रिनाम (निघं.१.७)} मिश्रण-अमिश्रण गुणों से युक्त अग्नि तत्त्व सुन्दर बलों के साथ विभिन्न परमाणुओं में व्याप्त होता है। विभिन्न मास रश्मियों से परिपूर्ण वह अग्नि तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित सभी पदार्थों को बसाता हुआ पूर्णतया प्रकाशित होता है।

(७) विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्। प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम्।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {निःस्वरम् = निर्मूलम् (म.द.भा.)} वह अग्नि तत्त्व जिन अभितप्त रश्मियों के द्वारा हीनप्राण परमाणुओं को भी तप्त कर देता है, उन्हीं रश्मियों के द्वारा सम्पूर्ण असुरादि बाधक रश्मियों को दूर करके सृजन प्रक्रियाओं की सभी बाधाओं को निर्मूल वा नष्ट करता है।

(८) आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक। उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सभी परमाणु आदि पदार्थों को बसाने में श्रेष्ठ, शीघ्रकारी, सबको प्रकाशित और पवित्र करने वाला वह अग्नि तत्त्व अर्थात् विद्युत् विभिन्न रश्मिसमूहों को सब ओर से प्रज्वलित करता है। इस ऊष्मा और प्रकाश के द्वारा ही सभी प्रकार की सृजन क्रियाओं की रक्षा और वृद्धि होती है।

(९) वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा। उतो न एभिः सुमना इह स्याः।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वहन करने वाली मरुद् रश्मियां अग्नि तत्त्व के साथ प्रकाशमान होकर विभिन्न रश्मि समूहों को विविध प्रकार से अपने साथ संयुक्त करती हैं। इन रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ भी अच्छी प्रकार प्रकाशित होते हैं।

(१०) इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः। ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम्।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न तीक्ष्ण मरुद् रश्मियां विशाल आसुर मेघ आदि पदार्थों की तमोमयी समस्त रश्मियों को निवृत्त करके विद्युदग्नि के समान प्रकाशित होकर विभिन्न उत्तम क्रिया और व्यवहारों से युक्त होती हैं।

(११) मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा। प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्राण रश्मियों से विहीन जिन मरुद् रश्मियों में सृजन क्रियाएं नहीं हो पाती, ऐसी उन मरुद् रश्मियों में वह अग्नि तत्त्व सम्पूर्ण रूप से व्याप्त होकर उन्हें शीघ्रकारिणी एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने वाली बनाता है। वह अग्नि तत्त्व इन मरुद् रश्मियों के क्षेत्र में व्याप्त होकर ही उन्हें सक्रिय करता है।

(१२) यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः। स्वजन्मना शेषसा वावृधानम्।।१२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अति वेगवान् और व्यापक अग्नि विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न करने वाली क्रियाओं के क्षेत्र को अपने अवशिष्ट भाग के द्वारा अर्थात् अपने कुछ अंश के द्वारा समृद्ध करता है। ऐसा करने के लिए अग्नि तत्त्व अपने कुछ अंश को विभिन्न परमाणुओं में नित्य ही प्रवाहित करता रहता है।

(१३) पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेरररुषो अघायोः। त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम्।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व बाधक असुर रश्मियों को नष्ट करता है। विभिन्न प्रतिकर्षक बलों एवं अति सक्रिय हिंसक रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करके वह अग्नि तत्त्व धारक और संयोजक बलों को समृद्ध करता है। वह विभिन्न रश्मिसमूहों के संयोजक कर्मों में सब ओर से व्याप्त हो जाता है।

(१४) सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः। सहस्रपाथा अक्षरा समेति।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह वेगवान् अग्नि तत्त्व अपने बल रूप रश्मियों के द्वारा अन्य अग्नि-रश्मियों के साथ संगत होकर अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है। वह अनेक अविनाशी संयोज्य प्राणादि रश्मियों को भी प्राप्त होकर प्रसिद्ध होता है।

(१५) सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात्। सुजातासः परि चरन्ति वीराः।।१५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व अपने द्वारा आकर्षित एवं प्रकाशित विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की बाधक असुरादि रश्मियों से रक्षा करता है। अच्छी प्रकार प्रसिद्ध और सबके बल के कारण प्राणादि पदार्थ उस अग्नि तत्त्व को सब ओर से व्याप्त करते हैं।

(१६) अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान्। परि यमेत्यध्वरेषु होता।।१६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह **अग्नि मूलतः सर्वप्रेरक चेतन ईश्वर तत्त्व के द्वारा सम्यक् प्रकाशित होता है,** ऐसा वह अग्नि विभिन्न मास आदि रश्मियों से युक्त होकर होता रूप बनकर विभिन्न संयोग सृजनादि क्रियाओं में भाग लेने वाली प्राण व मरुद् रश्मियों के मध्य सब ओर से व्याप्त होता है। ऐसा वह अग्नि सबके द्वारा आकर्षित किया हुआ अनेक क्रियाओं को सिद्ध करता है।

(१७) त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या। उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे।।१७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व प्राण एवं मरुद्

दोनों ही प्रकार की व्यापक व वाहक रश्मियों के संगम में नित्य ही आहुत होता है। वह अग्नि विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नियन्त्रित करते हुए उन्हें सब ओर से संगत करता हुआ नाना प्रकार के तत्त्वों को उत्पन्न करता है।

(१८) इमो अ॑ग्ने वी॒तत॑मानि ह॒व्याज॑स्रो वक्षि दे॒वता॑तिमच्छ॑। प्रति॑ न ईं॑ सुर॒भीणि॑ व्यन्तु।।१८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सुरभिः = षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः - तुदा. धातोर्बाहु. औणा.अभिच्। ततो मत्वर्थेऽच् - वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री} वह अग्नि तत्त्व विभिन्न संयोगादि कर्मों को अपने तेज से निरन्तर व्याप्त करता है। वह अपने नियन्त्रक बल और दीप्ति के साथ अतीव व्याप्त होकर हव्य परमाणुओं को सब ओर से व्याप्त करता है।

(१९) मा नो॑ अग्नेऽ वी॒रते॒ परा॑ दा दु॒र्वास॒सेऽ म॒तये॒ मा नो॑ अ॒स्यै।
मा न॑ः क्षु॒धे मा र॒क्षस॑ ऋतावो मा नो॒ दमे॒ मा वन॒ आ जु॑हूर्थाः।।१९।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीव्र तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व हीनबल किंवा प्रतिकर्षित होते हुए परमाणुओं, अनिष्ट छन्द रश्मियों से आच्छादित परमाणुओं, तीक्ष्ण रश्मियों के आघात से प्रक्षिप्त होते परमाणुओं, संयोग क्रिया के लिए उद्यत परमाणुओं, असुर रश्मियों से हिंसित परमाणुओं एवं बिखरे हुए परमाणुओं को विभिन्न प्राणादि रश्मियों के मेल एवं विभाग से समर्थ बनाकर नाना सृजन क्रियाओं को सम्पन्न करता है।

(२०) नू मे॒ ब्रह्मा॑ण्यग्न॒ उच्छ॑शाधि॒ त्वं दे॑व म॒घव॑द्भ्यः सुषूदः।
रा॒तौ स्या॑मो॒भया॑स॒ आ ते॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः।।२०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व इन्द्र तत्त्व के साथ मिलकर प्राणापानादि रश्मियों को उत्सर्जित करके हानिकारक रश्मियों को नष्ट करता है। वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व दोनों मिलकर सहजतापूर्वक दानादि क्रियाओं की सब ओर से रक्षा करते हैं।

(२१) त्वम॑ग्ने सु॒हवो॑ र॒ण्वसं॑दृक्सुदी॒ती सू॑नो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा॒ तन॑ये॒ नित्य॒ आ धङ्मा वी॒रो अ॒स्मन्नर्यो॒ वि दा॑सीत्।।२१।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बलवान् प्राण रश्मियों से उत्पन्न वह अग्नि तत्त्व रमणीय तेज से युक्त होकर सुन्दर आकर्षण बल के साथ गति, दीप्ति एवं प्रजनन आदि गुणों से युक्त मरुद् रश्मियों से युक्त होता है। वह अग्नि तत्त्व नित्य ही अपने से उत्पन्न पृथिवी, जल आदि पदार्थों को उत्तम दीप्ति प्रदान करता है और उन्हें सर्वथा नष्ट नहीं करता है।

(२२) मा नो॑ अग्ने दु॒र्भृत॑ये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॑ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः।
मा ते॑ अ॒स्मान्दु॑र्म॒तयो॑ भृ॒माच्चि॑द्दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त।।२२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों में प्रज्वलित होकर {नशत् = व्याप्तिकर्मा (निघं.२.१८)} अन्य अग्नि रश्मियों के संयोग से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अत्यन्त प्रज्वलित करके नष्ट नहीं करता है, बल्कि उन प्राण रश्मियों से उत्पन्न तीक्ष्ण वज्र रश्मियों के द्वारा बाधक तीक्ष्ण रश्मियों से उत्पन्न अव्यवस्थाओं को दूर करता है।

(२३) स मर्तो॑ अग्ने स्वनीक रे॒वानम॑र्त्ये॒ य आ॑जु॒होति॑ ह॒व्यम्।
स दे॒वता॑ वसु॒वनि॑ं दधाति॒ यं सू॒रिर॒र्थी पृ॒च्छमा॑न॒ एति॑।।२३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर व तीक्ष्ण रश्मिसमूहों से युक्त वह अग्नि तत्त्व विभिन्न मरुद् व छन्द रश्मियों को अविनाशी प्राण रश्मियों के अन्दर अच्छी प्रकार प्रक्षिप्त करता है। वह ऐसा तेजस्वी अग्नि तत्त्व विभिन्न परमाणुओं के संयोजन और विभाजन करने के

सामर्थ्य को धारण करता है, जिससे विभिन्न परमाणु अग्नि के तेज और वल से युक्त होकर एक-दूसरे को खोजते और संगत होते हैं।

(२४) महो नों अग्ने सुवितस्यं विद्वान्रयिं सूरिभ्य आ वंहा बृहन्तंम्।
येनं वयं संहसावन्मदेमाविंक्षितास आयुंषा सुवीराः॥२४॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वलों से युक्त वह महान् अग्नि प्रेरक एवं प्रकाशक प्राणादि रश्मियों से संयुक्त व्यापक मरुद् वा छन्द रश्मियों से विभिन्न परमाणुओं को युक्त करता है, जिसके कारण वे परमाणु क्षीणतारहित होकर गति, कान्ति एवं प्रजनन आदि गुणों से युक्त रहते हुए सम्पूर्ण आयु तक सक्रिय रहते हैं।

(२५) नू मे ब्रह्मांण्यग्न उच्छंशाधि त्वं देंव मघवंद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यांमोभयांस आ तें यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः॥२५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। यह छन्द रश्मि २० वें क्रम में उत्पन्न हो चुकी है, पुनरपि इसका यहाँ कुछ अन्य प्रभाव भी होता है। जिस कारण इसकी पुनरुत्पत्ति हुई है। यह प्रभाव इस प्रकार है-

वह अग्नि तत्त्व अनेक सूक्ष्म परमाणुओं से संयुक्त होकर {ब्रह्म = ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम (तै.ब्रा.३.६.५.५)} व्योम में स्थित विभिन्न वागू रश्मियों को उन परमाणुओं से संयुक्त करता है। वे अग्नि और वागू रश्मियां उत्सर्जन गुणों में प्रवृत्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संयोजक गुणों से युक्त करके अनेकविध सृजन प्रक्रियाओं की रक्षा एवं वृद्धि करती हैं।

उपर्युक्त ऋचाओं में से प्रथम ऋचा में 'जनयन्त' पद में 'जनी प्रादुर्भावे' धातु विद्यमान है, इस कारण इन छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष का सूचक है। 'जनी प्रादुर्भावे' धातु की विद्यमानता के कारण इन रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न प्रकार की उत्पत्ति क्रियाएँ तेजी से होती हैं॥

उपर्युक्त सूक्त में विविध प्रकार की छन्द रश्मियां विद्यमान हैं, १८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड् गायत्री एवं ७ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां है, इस कारण यह सूक्त विविध छन्दों वाला सिद्ध होता है। इस सूक्त का विविध छन्द युक्त होना चतुर्थ अहन् अर्थात् सूत्रात्मा वायु किंवा 'वाक्' रश्मियों के उत्कर्ष का सूचक है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल में १८ विराड् गायत्री एवं ७ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय प्रकाश और ऊष्मा में भारी वृद्धि होती है, जिससे कॉस्मिक पदार्थ तीव्र ज्वालाओं से युक्त होकर अनेक विक्षोभक क्रियाओं से व्याप्त हो जाता है। इस समय सभी प्रकार के पदार्थ उच्च ऊर्जा से युक्त होने लगते हैं। डार्क एनर्जी एवं डार्क पदार्थ के प्रक्षेपक और प्रतिकर्षक प्रभाव दुर्वल हो जाते हैं। विद्युत् चुम्वकीय तरंगों एवं विभिन्न प्रकार के कणों के वीच अन्योन्य क्रिया अति तीव्र होकर विभिन्न कणों के मध्य भी अनेक प्रकार की संयोगादि क्रियाएं छेदन-भेदन क्रियाओं को तीव्र करने लगती हैं। इस समय ऊष्मा की मात्रा इस प्रकार होती है कि विभिन्न कणों, परमाणुओं एवं अणुओं के मध्य रासायनिक एवं भौतिक क्रियाएं सम्यक् रूप से होती रहती हैं। अति तीक्ष्ण तरंगें नियन्त्रित होकर विभिन्न प्रकार के वन्ध वनाने योग्य ऊर्जा से युक्त होने लगती हैं। उधर न्यून ऊर्जा वाले कण वा तरंगें उच्च ऊर्जा को प्राप्त करके विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करने में सक्षम होती हैं। इस समय **विभिन्न मास, प्राण एवं छन्दादि रश्मियां चेतन ईश्वर तत्त्व के मुख्य प्रेरण में सभी क्रियाओं को सम्यग् रूप से संचालित करती हैं।** ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ विभिन्न ज्वलनशील तरल धाराओं एवं गैसीय धाराओं के रूप में सर्वत्र प्रवाहित होने लगता है। विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियां निरन्तर संयुक्त होकर विद्युत् चुम्वकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। विभिन्न विद्युदावेशित कण परस्पर अन्योन्य क्रियाएं करते हुए एक-दूसरे के साथ संयुक्त-वियुक्त होकर नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करते रहते हैं। **विभिन्न कणों के अवयव रूप मरुद् एवं प्राण रश्मियों के सम्यक् संयोग के कारण उन कणों के आवेश,**

द्रव्यमान आदि गुण सदैव स्थिर रहते हैं। इस प्रकार **सूत्रात्मा वायु** के उत्कर्ष के अन्तिम चरण में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विशाल तेजस्वी ज्वालाओं से भर जाता है।।

॥ इति २१.५ समाप्तः ॥

॥ इति एकविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

H
W
G
hv
Z
Field Quantas
Molecule
Atom
s
p
b
u
d
e
n
t
Elementary Particles
प्राण व छन्दादि रश्मियां

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

२२.१० षष्ठ अहन्=देवदत्त प्राण। नाभानेदिष्ठ वालखिल्य-वृषाकपि एवयामरुत्। तारों के निर्माण व स्वरूप का विज्ञान, नाभिकीय संलयन की तीव्रता। तारों एवं ग्रहादि लोकों के बीच दूरी का बढ़ना, लोकों की गतियों में छन्द रश्मियों की भूमिका। विद्युत् के कार्य। विद्युत्, मरुत् एवं प्राण रश्मियों का सम्बन्ध। क्वान्टाज् का स्वरूप, वि.चु. तरंगों की आवृत्ति में प्राण व छन्द रश्मियों की भूमिका। तारों के केन्द्रीय तथा शेष भाग का पृथक्-२ घूर्णन एवं परस्पर दोलन। इनमें छन्द रश्मियों की भूमिका 'ओम्' रश्मि की व्यापकता 'घृम्' रश्मि की भूमिका। तारों की उत्पत्ति का विज्ञान। विभिन्न छन्द रश्मियों की भूमिका, तारों के केन्द्रीय भाग की अक्षुण्णता। अहन्-कृष्ण-अर्जुन। तारों की उत्पत्ति का विज्ञान, तारों के केन्द्र का स्वरूप, ईश्वर तत्त्व की भूमिका, तारों के केन्द्रीय भाग की स्थिरता एवं तारों की सभी प्रकार की क्रियाओं में ईश्वर तत्त्व की भूमिका। 1449

अथ २२.१ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. गौर्वै देवता पञ्चममहर्वहति त्रिणवः स्तोमः शाक्वरं साम पङ्क्तिश्छन्दो यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसं राध्नोति य एवं वेद।। यद्वै नेति न प्रेति यत्स्थितं तत्पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
यद्धेव द्वितीयमहस्तदेतत् पुनर्यत्पञ्चमम्।।
यदूर्ध्ववद्यत् प्रतिवद्यदन्तर्वद् यद्वृषण्वद्यद्वृधन्वद्यन्मध्यमे पदे देवता निरुच्यते यदन्तरिक्षमभ्युदितम्।।

व्याख्यानम्- सूत्रात्मा वायु के उत्कर्ष काल रूपी चतुर्थ अहन् के पश्चात् पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष किंवा प्रधानता के काल की चर्चा करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस समय गौ देवता की प्रधानता होने लगती है अथवा गौ देवता इस पञ्चम अहन् का निर्वहन करती है। यहाँ पृथिवी तत्त्व, विशेषकर पृथिवी लोकों को ही गौ देवता कहा गया है। इससे यहाँ यह प्रकट होता है कि पूर्व में जो आकाशस्थ बिखरे हुए पदार्थ से लोकों के बनने की प्रक्रियाएं हो रही थी, उनमें तीव्रता आने लगती है। पूर्व में जो पदार्थ आकाशीय मेघ किंवा तरल धाराओं के रूप **में विद्यमान** था, वह पिण्डाकार रूप धारण करने लगता है। इस क्रम में भी **अप्रकाशित पिण्डों अर्थात् लोकों की उत्पत्ति सर्वप्रथम होती है**। इसके साथ ही अन्तरिक्ष भी व्यापक विस्तार को प्राप्त करते हुए सुस्पष्ट होने लगता है। इसी समय त्रिणव स्तोम अर्थात् २७ विशेष गायत्री छन्द रश्मिसमूह की भी उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ४.१६.१ अवश्यमेव पठनीय है। ये छन्द रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ को पृथक्-२ भागों में विभक्त भी करती हैं और उन्हें घनाकार रूप प्रदान करने में भी सहयोग करती हैं। त्रिणव स्तोम के विषय में वेदवेत्ताओं का कथन है-

१. वज्रो वै त्रिणवः (तां.३.१.२)
२. इमे वै लोकास्त्रिणवः (तां.६.२.३)
३. त्रिणवं ब्राह्मणाच्छंसिनः (जै.ब्रा.२.२२४), (ऐन्द्रो वै ब्राह्मणाच्छंसी, ऐन्द्र ऋषभः - जै.ब्रा.२.२०३)
४. प्रतिष्ठा त्रिणवः (तै.सं.५.३.४.४)

इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि उपर्युक्त त्रिणव रूप गायत्री रश्मिसमूह वज्ररूप तीक्ष्ण होकर तीनों प्रकार के लोकों अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ के निर्माण की आधारशिला के समान होता है। यहाँ पदार्थ का विशेष संघनन होकर लोकनिर्माण की प्रक्रिया तीव्र होती है। इस प्रक्रिया में भी **पार्थिव अर्थात् अप्रकाशित लोक सर्वप्रथम प्रकट वा निर्मित होते हैं**। ये त्रिणव रश्मियां ब्राह्मणाच्छंसी अर्थात् प्राणापान किंवा प्राणोदान से विशेष युक्त होकर तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व को प्रकट करने वाली होती हैं। यह इन्द्र तत्त्व लोकों के निर्माण में महती भूमिका निभाता है, उस समय आसुरी रश्मियों का तीव्र प्रक्षेपक बल भी इन्हीं इन्द्र रश्मियों के प्रहार से नियन्त्रित वा नष्ट होता है। इसी समय शाक्वर साम रश्मि की उत्पत्ति वा प्रधानता होती है। इस साम के विषय में ४.१३.२ द्रष्टव्य है। यह रश्मि इन्द्र तत्त्व को अत्यन्त तीक्ष्ण बनाकर प्रतिरोधी और प्रक्षेपक आसुर रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करने में विशेष समर्थ बनाती है। इस काल में पंक्ति छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है, इस हेतु अन्य गायत्री एवं त्रिष्टुबादि छन्द रश्मियां भी इस प्रकार व्यवस्थित होती हैं कि वे पंक्ति छन्द रश्मियों को भी प्रकट कर सकें। इन पंक्ति छन्द रश्मियों के प्रभाव से पदार्थ के साथ संयुक्त होकर होने वाली लोकों के निर्माण की प्रक्रिया अति विस्तृत रूप में होने लगती है। इस पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल

में ये व्यान रश्मियां विभिन्न रश्मि एवं परमाणु आदि पदार्थों को विशेष रूप से चेष्टायुक्त करके परस्पर वांधने में विशेष भूमिका निभाती हैं। व्यान प्राण के इस कार्य में सूत्रात्मा वायु, जिसका उत्कर्ष पूर्व में हो चुका होता है, भी संयुक्त भूमिका निभाता है। इस समय गौ देवता अर्थात् पार्थिव लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के साथ-२ त्रिणव स्तोम, शाक्वर साम एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां आदि सभी पदार्थ यथावत् समृद्ध होते हैं।।

पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में पूर्वोक्त 'आ' एवं 'प्र' दोनों ही उपसर्गों की विद्यमानता इस काल का लक्षण नहीं है, वल्कि 'स्था' धातु की विद्यमानता इस काल का लक्षण है। उल्लेखनीय है कि यहाँ 'प्र' और 'आ' दोनों ही उपसर्गों की विद्यमानता का निषेध नहीं है, वल्कि यहाँ कथन मात्र यह है कि ये दोनों उपसर्ग, जो चतुर्थ अहन् के सूचक थे, वे पञ्चम अहन् के सूचक नहीं हैं। यहाँ 'स्था' धातु की विद्यमानता के कारण विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ स्थैर्य गुण से विशेष युक्त होने लगते हैं। लोकों के निर्माण में इस गुण की महती भूमिका होती है। इस धातु की विद्यमानता उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में भी होती है।।

यह जो पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण की सक्रियता वा प्रधानता का काल है, वह द्वितीय अहन् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के समान ही होता है। जिस प्रकार से उदान प्राण के उत्कर्ष काल में इन्द्र तत्त्व प्रधानता के साथ उत्पन्न होता है, उसी प्रकार इस काल में भी उपर्युक्त त्रिणव स्तोम एवं शाक्वर साम रश्मियों के कारण इन्द्र तत्त्व अति तीव्र होता है। अन्य समानतायें आगामी कण्डिका में स्पष्ट की गयी हैं।।

इस काल में उत्पन्न छन्द रश्मियां 'ऊर्ध्व' शव्द से युक्त होने के कारण द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण रश्मियों के उत्कर्ष काल में विद्यमान छन्द रश्मियों के समान ऊर्ध्वगमन के गुण से युक्त होती हैं। उदान प्राण में ऊर्ध्वगमन का गुण विद्यमान होना सर्वविदित ही है। इधर व्यान प्राण विविध प्रकार की व्यापक चेष्टा करने में समर्थ होने के कारण ऊर्ध्व एवं अधोगमन, साथ ही तिर्यग् गमन आदि में समर्थ होता है, इस कारण व्यान प्राण का उर्ध्वगमन गुण उदान प्राण से समानता रखता है। जैसा कि हम देख चुके हैं कि द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में भी 'ऊर्ध्व' शव्द विद्यमान होता है। इस व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में 'प्रति' शव्द भी विद्यमान होता है और यह द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल में भी विद्यमान होता है। इस 'प्रति' उपसर्ग के प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ अन्य रश्मियों की ओर वार-२ आकर परस्पर एक-दूसरे को वांधने और व्याप्त करने में सक्षम होते हैं। इन ऋचाओं में 'अन्तः' शव्द भी विद्यमान होता है और यही शव्द उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में भी विद्यमान होता है। इस शव्द का प्रभाव तथा इस काल में उत्पन्न ऋचाओं में 'वृषन्' एवं 'वृधन्' शव्दों का भी प्रभाव ४.३१.१ में देखें, क्योंकि ये शव्द वहाँ उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में भी विद्यमान होते हैं। कण्डिका के शेष भाग का व्याख्यान भी वहीं द्रष्टव्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **सूत्रात्मा वायु** के पश्चात् **व्यान प्राण** का उत्कर्ष होता है। ये दोनों रश्मियां सम्मिलित होकर कॉस्मिक मेघों में विद्यमान कॉस्मिक डस्ट को तेजी से घनीभूत करने लगती हैं, जिससे सारे ब्रह्माण्ड में विद्यमान पदार्थ असंख्य लोकों का निर्माण करने लगता है। इस प्रक्रिया से अन्तरिक्ष वाला भाग भी अधिक स्पष्ट होकर फैलने लगता है। इस कार्य में अति तीक्ष्ण विद्युत् तरंगें एवं तीव्र ऊर्जा वाली विद्युत् चुम्वकीय तरंगें अपनी महती भूमिका निभाती हैं। इस समय डार्क एनर्जी अपने प्रक्षेपक प्रभावों से संघनन की क्रिया को वाधित करने का वार-२ प्रयत्न करती हैं परन्तु तीव्र विद्युत् तरंगें एवं तीव्र विद्युत् चुम्वकीय तरंगें अपने तीक्ष्ण प्रहार से डार्क एनर्जी के प्रभाव को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं, जिससे पदार्थ के घनीभूत होकर लोकों के निर्माण की प्रक्रिया निर्वाध होने लगती है। इस समय विभिन्न प्रकार की रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ तीव्र वलों से युक्त होते हैं। जैसा कि हम इस ग्रन्थ में पूर्व में (खण्ड ४.१८) लिख चुके हैं कि विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति उनके केन्द्रीय तारे की उत्पत्ति के पूर्व ही हो जाती है, उस वात की यहाँ भी पुष्टि हो रही है। यहाँ **लोक निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम अप्रकाशित लोकों का निर्माण होना ही बताया गया है।।**

२. यद्दुग्धवद् यदूधवद्यद्धेनुमद्यत्पृश्निमद्यन्मद्वद्यत्पशुरूपं यदध्यासवद् विक्षुद्रा इव हि पशवो, यज्जागतं जागता हि पशवो, यद्बार्हतं बार्हता हि पशवो, यत्पाङ्क्तं पाङ्क्ता हि पशवो, यद्वामं वामं हि पशवो, यद्धविष्मद्धविर्हि पशवो, यद्वपुष्मद्वपुर्हि पशवो, यच्छाक्वरं यत्पाङ्क्तं यत्कुर्वद्, यद्द्वितीयस्याह्नो रूपमेतानि वै पञ्चमस्याह्नो रूपाणि।।

{अध्यासः = अधिकार में करना एवं कुचलना (आप्टेकोष)}

व्याख्यानम्- पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं के लक्षणों से भिन्न अन्य जो अतिरिक्त लक्षण होते हैं, उनका यहाँ वर्णन किया गया है-

(१) इन ऋचाओं में 'दुग्ध' शब्द विद्यमान होता है, इसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां अपने-२ कर्मों को प्रकृष्ट रूप से करने में पूर्ण सक्षम होती हैं क्योंकि ये पर्याप्त बल से युक्त होती हैं। ये छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों के साथ मिलकर उन्हें भी पूर्णता प्रदान करने में सहयोग करती हैं।

(२) इन ऋचाओं में 'ऊध' शब्द विद्यमान होता है {ऊधः = उषानाम (निघं.१.८), रात्रिनाम (निघं.१.७), विस्तीर्णबलः (तु.म.द.ऋ.भा.४.२२.६), उर्ध्वं गमयिता (म.द.ऋ.भा.५.४४.१३)} इस शब्द के प्रभाव से विभिन्न रश्मि एवं परमाणु आदि पदार्थ विस्तीर्ण एवं ऊर्ध्वगामी बलों से युक्त होते हैं। अन्धकार एवं सुन्दर प्रकाश रूप दोनों ही पदार्थों में इस शब्द का प्रभाव देखा जा सकता है। विस्तीर्ण बलों से युक्त होने के कारण ये छन्द रश्मियां पूर्ण बलवाली दुग्धवत् रश्मियों के आधार का भी कार्य करती हैं।

(३) इन ऋचाओं में 'धेनु' शब्द विद्यमान होता है। इस शब्द के प्रभाव से ये 'वाग्' रश्मियां अन्य वाग् रश्मियों को धारण एवं तृप्त करती हैं। ये रश्मियां अन्य रश्मियों को पूर्ण एवं विस्तीर्ण बल प्रदान करने में सहयोग करती है। वस्तुतः ये रश्मियां 'दुग्ध' और 'ऊध' से युक्त दोनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों का मूल होती हैं। इनमें दुग्धवद् छन्द रश्मियों का आधार ऊधवद् एवं ऊधवद् रश्मियों का आधार धेनुवद् रश्मियां होती हैं।

(४) इन ऋचाओं में 'पृश्नि' शब्द विद्यमान होता है। इसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां अन्तरिक्ष में ऐसी सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जो चित्र-विचित्र रूप रंग वाले लोकों के निर्माण में सहयोग करते हुए अन्तरिक्ष का भी विस्तार करती जाती हैं। इन लोकों में भी सर्वप्रथम अप्रकाशित अर्थात् पार्थिव लोक ही उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात् प्रकाशित लोक विचित्र वर्णों के साथ उत्पन्न होते हैं।

(५) इन ऋचाओं में 'मद्' शब्द विद्यमान होता है। इसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ आकर्षण एवं तृप्ति आदि गुणों से युक्त होते हैं अर्थात् वे संयोगादि हेतु सदैव सक्रिय बने रहते हैं।

{पशुः = दृश्यः, द्रष्टव्यः (म.द.य.भा.२३.१७), पशवो वै हविष्मन्तः (श.१.४.१.६), गृहा हि पशवः (श.१.८.२.१४), यजमानः पशुः (तै.ब्रा.२.१.५.२), वज्रो वै पशवः (श.६.४.४.६)} ये सभी छन्द रश्मियां पशु रूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां तीक्ष्ण और हवि रूप होकर विभिन्न ऐसे गृहरूप क्षेत्रों को उत्पन्न करती हैं, जहाँ पदार्थ के संघनन के केन्द्र बनने लगते हैं। वह दृश्य पदार्थ संयोग वा संगति रूप गुणों से विशेष युक्त होकर एवं नाना प्रकार के बलों से सम्पन्न होकर लोक निर्माण प्रक्रिया को तीव्र करता है। धीरे-२ ये केन्द्रीय भाग ब्रह्माण्डस्थ बिखरे पदार्थ का आकर्षक आधार बनने लगता है। ये छन्द रश्मियां 'अध्यास' से युक्त होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न छन्द रश्मियों को अधिगृहीत करके उन्हें नियन्त्रित करने में सक्षम होती हैं और आवश्यक होने पर ये उन रश्मियों को विकृत वा विदीर्ण करने में भी सक्षम होती हैं। 'अध्यास' पद के व्याख्यान में आचार्य सायण ने लिखा है -

"अधिकपादस्य प्रक्षेपः 'अध्यासः'। प्रकृतौ यावदस्ति, तावतोऽप्यधिकपादोपेतम् 'अध्यासवत्'"। के इस मन्तव्य से भी हमारा कोई विरोध नहीं है। यह सम्भव है एवं वास्तविकता भी है कि सृष्टि निर्माण

की प्रक्रिया में उत्पन्न अनेक ऋचाएं ऐसी भी हैं, जिनमें छन्द की दृष्टि से नियत अक्षरों की अपेक्षा अधिक अक्षर विद्यमान होते हैं। इसके उदाहरण इस ग्रन्थ में भी अनेकत्र मिल सकते हैं। ये पशुरूप रश्मियां विक्षुद्र के समान होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां विभिन्न पदार्थों को विविध प्रकार से पीसती, सम्पीडित करती, आवश्यक होने पर नष्ट भी करने में सक्षम होती हैं। इनमें से कुछ रश्मियां लघु तो कुछ दीर्घ विस्तार वाली होती हैं। यह पञ्चम अहन् जागत् रूप होता है क्योंकि इस समय उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां जगती छन्द रश्मियों से युक्त होती हैं। वे जगती छन्द रश्मियां दूर-२ तक फैलकर विभिन्न रश्मियों वा परमाणुओं की अन्योन्य क्रियाओं में वृद्धि करती हैं। यह पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल को बार्हत भी कहते हैं क्योंकि इस काल में बृहती छन्द रश्मियां जगती की भांति व्यापक रूप से सक्रिय होती हैं। ये तीव्रता और संयोज्यता की दृष्टि से समृद्ध होकर लोकों के केन्द्रों के निर्माण की प्रक्रिया के रूप में पदार्थ को सम्पीडित और संघनित करके आकार प्रदान करने में विशेष सक्रिय रहती हैं। ध्यातव्य है कि **व्यान प्राण का सम्बन्ध सूत्रात्मा वायु के साथ-२ बृहती छन्द रश्मियों से विशेष होता है,** इसी कारण एक वैदिक तत्त्ववेत्ता का कथन है- "व्यानो बृहती (तां. ७.३.८)" यह व्यान प्राण बृहती छन्द रश्मियों के संयोग से विभिन्न रश्मियों वा परमाणुओं को संगृहीत करता हुआ पिण्डाकार रूप प्रदान करने में महती भूमिका निभाता है। इसलिए महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "व्यानो वरुणः (श.१२.९.१.१६)"। इस चरण को पाङ्क्त भी कहते हैं क्योंकि इस चरण में उत्पन्न छन्द रश्मियां पंक्ति छन्द वाली भी होती है। ये पंक्ति छन्द रश्मियां 'यज्ञ' अर्थात् संयोग-संसर्ग आदि गुणों से विशेष युक्त होती हैं। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां अति विस्तृत क्षेत्र में प्रभावी रहती हैं। इसके कारण अन्य सभी छन्द रश्मियां भी विस्तृत क्षेत्र में फैलकर परस्पर संगत होने लगती हैं। यह व्यान प्राण के उत्कर्ष का चरण 'वाम' भी कहलाता है क्योंकि इस समय उत्पन्न सभी छन्द वा मरुद् रश्मियां वाम रूप ही होती हैं। इसका आशय यह है कि वे रश्मियां अतिश्रेष्ठ और विशेष प्रभाव वाली होती हैं, जिस कारण उनकी सभी क्रियाएं भी श्रेष्ठ ही होती हैं। {वामम् = वमत्युद्गिरति येन तम् (म.द.ऋ.भा.१.३३.३)} वामरूप रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म रश्मियों को उत्कृष्टता से निगलने वा उत्सर्जित करने में विशेष सक्षम होती हैं अर्थात् इन रश्मियों के कारण सूक्ष्म रश्मियों का उत्सर्जन और अवशोषण तीव्रता से होता है। इस समय उत्पन्न सभी रश्मियां 'हविष्मती' भी कहलाती हैं क्योंकि ये रश्मियां मास वा ऋतु रूप हवि रश्मियों का तीव्रता से आदान-प्रदान करने में सक्षम होती हैं। ये मास नामक हवि रश्मियां संधानक के रूप में व्यान एवं सूत्रात्मा रश्मियों के साथ मिलकर सहयोग करती हैं, इस कारण इस चरण में विभिन्न संघात-संयोगों की तीव्रता समृद्ध होती है। यह पञ्चम अहन् 'वपुष्मत' भी कहलाता है क्योंकि इस समय कार्यरत छन्द रश्मियां भी वपुष्मत् होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्दादि रश्मियां विविध आकृतियों का निर्माण करने और ऐसा करने के लिए विभिन्न पदार्थों पर अपना सूक्ष्म सेचन करने में विशेष सक्रिय होती हैं। ये रश्मियां विभिन्न पार्थिव लोकों के निर्माण का बीज वपन करने में अग्रणी होती हैं। ये रश्मियां अन्य रश्मियों में सतत प्रवाहित होती रहती हैं, इसी कारण एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है- "आत्मा वपा" (कौ.ब्रा.१०.५)। जैसा कि हम प्रथम कण्डिका में लिख चुके हैं कि इस समय उत्पन्न छन्दादि रश्मियां शाक्वर साम नामक तीव्र बलयुक्त छन्द रश्मि से युक्त होने के कारण अति तीव्र शक्तिशाली रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। इसी प्रकार प्रथम कण्डिका के इस चरण में पंक्ति छन्द रश्मियों की प्रधानता बतलाई है, जिसका प्रभाव हम लिख चुके हैं। इन छन्द रश्मियों में द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के समान ही क्रिया के वर्तमान काल का प्रयोग भी मिलता है, इससे यह संकेत मिलता है कि सर्ग रचना का कार्य तीव्र गति से चल रहा होता है। 'कुर्वत्' पद की विद्यमानता आदि सभी लक्षण तथा पूर्वोक्तानुसार द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्द रश्मियों के लक्षण इस पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष के सूचक हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में सूत्रात्मा वायु रश्मियों से सम्पन्न विभिन्न रश्मियां पदार्थ के संघनन और सम्पीडन के द्वारा कॉस्मिक मेघस्थ पदार्थ असंख्य लोकों का रूप लेना प्रारम्भ करता है। इस क्रम में सर्वप्रथम विभिन्न ग्रह, उपग्रह आदि के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इस समय सभी प्रकार की रश्मियां जहाँ अत्यन्त बलवती होती हैं, वहीं अत्यन्त विस्तार वाली भी होती हैं। इस समय जिन लोकों का निर्माण हो रहा होता है, वे लोक विचित्र आकार और रंग वाले प्रतीत होते हैं। **तारों का निर्माण ग्रहादि के निर्माण के पश्चात् होता है।** विभिन्न तरंगों, एटम्स एवं अणुओं में

परस्पर संयोजक भाव अति तीव्र होता है, इस कारण से लोक निर्माण की प्रक्रिया भी अति तीव्र होती हैं। इस समय न केवल पदार्थ के संयोजन की प्रक्रिया तीव्र होती हैं, अपितु विभाजन, विच्छेदन, भेदन आदि की क्रियाएं भी तीव्र होती हैं। विना विच्छेदन, विभाजन के संयोग और संघात की क्रिया कदापि नहीं चल सकती। इस समय छोटी-वड़ी विविध प्रकार की रश्मियां उत्पन्न होती है। इस समय जगती, वृहती और पंक्ति आदि रश्मियां विशेष प्रभावी होती हैं। इन रश्मियों के साथ **सूत्रात्मा वायु** एवं **मास** रश्मियों का भी विशेष प्रभाव होता है। इस समय उत्पन्न रश्मियां ब्रह्माण्ड में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ में सतत विचरण करती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया अति तीव्र गति से होती है।।

३. 'इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधमिति' पञ्चमस्याह्न आज्यं भवति; जागतमध्यासवत् पशुरूपं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– तदनन्तर भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से उत्पन्न प्राण नामक प्राथमिक प्राण किंवा वाक् तत्त्व एवं प्राण रश्मियों के मिथुन से अग्निदेवताक ऋ.६.१५ सूक्त की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम्।।१।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि के परमाणु विशेषरूप से प्रकाशित होते हुए अन्योन्य क्रिया से अतिशय युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि के वे परमाणु अन्य उत्पन्न सभी परमाणुओं में सतत गमन करते हुए उन्हें प्रकाशित और रक्षित करते हैं। वे अग्नि के परमाणु पार्थिव, जलीय आदि परमाणुओं में गर्भ की भांति व्याप्त होकर उन परमाणुओं में प्राण रश्मियों के द्वारा दीप्ति को सिद्ध करते हैं। वे अग्नि के परमाणु अविनाशी रूप से प्रकाशित रहते हुए विभिन्न वागू रश्मियों के द्वारा निरन्तर अन्य परमाणुओं के साथ अन्योन्य क्रियाएं करते रहते हैं।

(२) मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण किन्तु कम तेजस्वी होता है। {अद्भुतम् = महन्नाम (निघं.३.३)} इसके अन्य प्रभाव से सूक्ष्म अर्चियों में व्याप्त सूत्रात्मा वायु एवं मित्ररूप महान् प्राण रश्मियां विभिन्न किरणों के भण्डार मेघरूप पदार्थों में ऊपर उठती हुई अग्नि की ज्वालाओं को उत्पन्न वा धारण करती हैं। वह अग्नि प्राण एवं मरुद् रश्मियों के युग्मों में अच्छी प्रकार प्रकाशित और व्याप्त होने लगता है।

(३) स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः।।३।।

इसका छन्द निचृदतिजगती होने से इसका दैवत और छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {वृकः = वज्रनाम (निघं.२.२०), स्तेननाम (निघं.३.२४)} वलवान् प्राणों से उत्पन्न वह अग्नि अन्य परमाणुओं के वल का हरण नहीं, वल्कि वृद्धि करता है। वह अपने साथ संगत परमाणुओं को तारता हुआ विभिन्न विनाशी पदार्थों को मरुदादि रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित करते हुए वाक् एवं प्राण रश्मियों के वल को धारण करने वाला होता है। वह विभिन्न परमाणुओं को व्यापक आधार प्रदान करता है।

(४) द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम्।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे।।४।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व विभिन्न आकर्षण एवं प्रतिकर्षण बलों से युक्त होकर तीव्र तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि सतत प्रकाशित होता और गमन करता हुआ विभिन्न परमाणुओं को वहन करता है। वह अग्नि सबके आदाता और गृहीता सूत्रात्मा वायु की विशेष सक्रियता के द्वारा संगमनीय क्रियाओं को उत्तमता से संचालित करता है। इस सूत्रात्मा वायु के ही कारण वह अग्नि धारण करने योग्य परमाणुओं को वहन करता और नाना प्रकाश रश्मियों को सिद्ध करता है।

(५) पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि अपनी किरणों एवं शोधन क्रियादि के द्वारा पार्थिव परमाणुओं को उषा के समान प्रकाशित करता है। {एतशः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} वह अग्नि विभिन्न परमाणुओं को प्रदीप्त करने में किंवा उनके पारस्परिक संघात वा संघर्ष में तीव्र आकर्षक बल के साथ अपने मार्ग में आशुगामी होता है। वह अन्धकार वा बाधक रश्मियों को नष्ट करता हुआ सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित होता है।

(६) अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः।।६।।

इसका छन्द निचृदतिशक्वरी होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व अत्यन्त तीक्ष्ण और शक्तिशाली होता है। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व को प्रदीप्त करने वाली विभिन्न प्राण किंवा सामिधेनी छन्द रश्मियां प्रत्येक अग्नि के परमाणु को प्रकाशित भी करती हैं और कमनीय बलों से युक्त भी। इस कारण वे अग्नि के परमाणु परस्पर निकट रहते हुए सतत गति करते हैं। वे अग्नि के परमाणु विभिन्न वाग् रश्मियों एवं अविनाशी प्राण रश्मियों से युक्त रहते हुए विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं में व्याप्त होकर सतत गतिमान रहते हैं।

(७) समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम्।।७।।

इसका छन्द जगती होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व के परमाणु अन्योऽन्य क्रियाओं से विशेष युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्राण रश्मियों रूप ईंधन के द्वारा अच्छी प्रकार प्रकाशित अग्नि के परमाणु विभिन्न संगम आदि क्रियाओं में ज्वलनशीलता, शोधन-कर्मशीलता, व्यापक स्तर पर विभिन्न परमाणुओं के संयोग-वियोग की क्रियाशीलता से युक्त होकर विभिन्न पार्थिव एवं जलीय पदार्थों में सहजतया व्याप्त होने लगते हैं। वे अग्नि के परमाणु सूत्रात्मा वायु एवं वाग् रश्मियों से भी युक्त होकर प्रकाशित होते हुए क्रान्तदर्शी एवं सहज संयोज्य भाव से युक्त होते हैं।

(८) त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे।।८।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि विभिन्न संयोग क्रियाओं में मास रश्मियों का वाहक, आकर्षक बलों का परिपालक, विभिन्न उत्पन्न परमाणुओं का नियन्त्रक और उत्प्रेरक, बाधक असुरादि रश्मियों का प्रतिरोधक, विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं में व्यापक एवं अल्प आयु वाले विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का धारक होता है। वह अपनी वज्ररूप रश्मियों के द्वारा सबके भीतर स्थित होकर ही इन सभी कर्मों को सम्पादित करता है।

(९) विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।

यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव।।६।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही लोकों वा कणों को प्राणादि रश्मियों के दोषहारी गुणों से युक्त करके विभिन्न संगमन, संघात आदि क्रियाओं से सुशोभित करता है। वह अग्नि तत्त्व अर्थात् विद्युत् इन दोनों ही प्रकार के लोकों वा कणों को अनुकूलता से व्याप्त करते हुए प्रकाश, धारण, आकर्षण आदि गुणों से युक्त करके तीन प्रकार के बलों से युक्त करता है।

(१०) तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत्।।१०।।

इसका छन्द निचृत त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व अति तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {विदुष्टरः = यो विविधानि दुरिष्टानि तारयति प्लावयति सः (म.द.ऋ.भा.१.३१.१४)} विभिन्न अप्रकाशित परमाणु सुन्दर प्राण रश्मियों से युक्त होकर सुन्दरता से गति व प्रकाश करते हुए विभिन्न क्रियाओं के तारक अग्नि तत्त्व के साथ अच्छी प्रकार संयुक्त होते हैं। वे परमाणु अग्नि के समान प्रकाशित होकर सभी नित्यकर्मों एवं संयोगादि क्रियाओं को अच्छी प्रकार प्रकाशित करते हैं।

(११) तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण अग्नि विभिन्न परमाणुओं में व्याप्त होकर उनको तीक्ष्ण तेजयुक्त बनाता एवं रक्षा करता है। वह विभिन्न सर्ग प्रक्रियाओं को अत्यन्त तीक्ष्ण बनाता एवं उन्हें अनेक मरुद् वा छन्द रश्मियों के बल से युक्त करके उत्कृष्ट गति प्रदान करता है।

(१२) त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री।।१२।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व का संयोजक भाव और अधिक विस्तृत होता जाता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रतिरोधी बलों से युक्त अग्नि अपने साथ संगमनीय परमाणुओं की अन्य हिंसक वा बाधक रश्मि आदि पदार्थों से पूर्णतः रक्षा करता है। वह विद्युदग्नि आकर्षणीय परमाणुओं को अनेक मरुद् रश्मियों के साथ-२ अनेक क्षणिक संयोज्य परमाणुओं को सब ओर से प्राप्त करता है।

(१३) अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा।।१३।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व विशेष तेजस्वी और बलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणुओं के आकार और बलों की रक्षा करने वाला, उन परमाणुओं का आदान-प्रदान करने वाला, उत्पन्न वस्तुमात्र में विद्यमान रहने वाला, सबको प्रकाशित करने वाला वह अग्नि विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा अतिशय संगमनीय होकर सभी प्रकार के परमाणुओं अर्थात् क्षणिक और स्थायी परमाणुओं की उत्पत्ति में सहायक और संगमनकर्त्ता होता है।

(१४) अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य।।१४।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से देवत और छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पवित्र और प्रकाशक वह अग्नि विभिन्न रश्मि, परमाणु आदि पदार्थों का अतिशय विभाग वा मेल करता, {वेः = व्याप्तस्य (म.द.ऋ.भा.४.७.८)} प्रत्येक उत्पन्न परमाणु में व्याप्त होकर निरापद और व्यवस्थित यजन करता है। वह अपनी व्यापकता से सभी हवनीय वस्तुओं को निरन्तर वहन करता है।

(१५) अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम।।१५।।

इसका छन्द ब्राह्मी बृहती होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से आकाश तत्त्व एवं विद्युत् के संयोग से उत्पन्न बल व्यापक रूप से सम्पीडन और संघनन की क्रिया को तीव्र बनाते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणुओं के रूप से विद्यमान अग्नि कमनीय और धारण बलयुक्त परमाणुओं को धारण करता है। सब ओर से प्रकाशित वह अग्नि सृजन कार्यों के लिए आकाश तत्त्व एवं पार्थिव परमाणुओं को धारण करके बलों के विभाजन की प्रक्रिया की रक्षा करता हुआ सभी असुरादि बाधक रश्मियों से उत्कृष्टता से तारता है।

(१६) अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु।।१६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर रश्मिसमूहों से युक्त अग्नि विस्तीर्ण होता हुआ सभी प्रकाशित परमाणुओं के आच्छादन के साथ अपने कारणरूप वायु तत्त्व में विद्यमान रहता है। वह विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न एवं परमाणुओं को संगत करने के लिए विभिन्न 'घृम्' रश्मियों से युक्त होकर सबको संदीप्त तेज और क्रिया से युक्त करता है।

(१७) इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः।।१७।।

इसका छन्द विराड् अनुष्टुप् होने से इसके देवत और छान्दस प्रभाव से सभी छन्द रश्मियां अनुकूलतापूर्वक प्रकाशित होकर अग्नि तत्त्व को तेजस्वी बनाती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {श्यावी = रात्रिनाम (निघं. १.७)। अमूरम् = अमूढम् (म.द.भा)} सूत्रात्मा वायु रश्मियां प्रकाशरहित पदार्थ की प्रकाशरहित अवस्था में विभिन्न क्रियाओं के लक्षणों को प्रकट करते हुए प्रत्यक्ष और परोक्ष विद्युदग्नि को अहिंसनीय रूप से निर्भ्रान्त मन्थन क्रियाओं द्वारा अच्छी प्रकार प्राप्त करती हैं।

(१८) जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये।
आ देवान्वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः।।१८।।

इसका छन्द स्वराडनुष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न प्रकाशित पदार्थों में सुगमतापूर्वक व्याप्त और प्रकाशित होने के लिए नित्य प्रकाशित प्राण रश्मियों के नित्य व्यवहार के द्वारा सम्पूर्ण सृजन क्रियाओं को सब ओर से प्राप्त करता एवं तारता है। वह अग्नि तत्त्व विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं में संगतीकरण की क्रियाओं को प्रकट एवं सम्बद्ध करता है।

(१९) वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि।।१९।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके देवत और छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व तीव्र तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बलों और आश्रयों का पालक अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों के मध्य परमाणुओं को आश्रय देता हुआ उन्हें व्यापक रूप से प्रज्वलित करता है। {गार्हपत्यः = जाया

गार्हपत्यः (ऐ.८.२४), अन्नं वै गार्हपत्यः (श.८.६.३.५), कर्मेति गार्हपत्यः (जै.उ.४.११.५.१५), प्रतिष्ठा (जाया) गार्हपत्यः (तै.सं.५.२.३.६)} वह विभिन्न संयोज्य कर्मों में प्रतिष्ठा वा जाया रूप होकर सतत चलने वाले तीव्र तेज के द्वारा अच्छी प्रकार से सृजन गुणों को प्रदान करता है। अग्नि के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का भी कथन है- "योषा वा ऽअग्निः (श.१४.६.१.१६)"।

यहाँ ग्रन्थकार ने इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की 'आज्य शस्त्र' संज्ञा की है। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां इस पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न होने वाली विविध छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने के लिए आरम्भिक तेज एवं बीज रूप क्रियाशक्ति उत्पन्न करती हैं। इन रश्मियों के उत्पन्न होने के पश्चात् ही अन्य छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। यह 'आज्य शस्त्र' संज्ञक रश्मिसमूह 'अध्यासवत्' भी होता है क्योंकि इनमें से तीसरी ऋचा में निचृज्जगती ऋचा के रूप में नियत ४७ अक्षरों के स्थान पर यहाँ कुल ५१ अक्षर होकर निचृदतिजगती के रूप में परिवर्तित हो गई है। इस कारण यह अधिक अक्षरों वाली होने से 'अध्यासवत्' पशु अर्थात् छन्द रश्मि कहलाती है। इस प्रकार इस सूक्त का अध्यासयुक्त होना पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में प्रारम्भिक एवं बीजरूप में कुल १६ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनमें ७ जगती, ७ त्रिष्टुप्, १ शक्वरी, १ पंक्ति, १ ब्राह्मी बृहती एवं २ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां होती हैं। इस समय ब्रह्माण्ड में विद्युत् एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें दोनों ही अधिक ऊर्जा से युक्त होती हैं। अग्नि की विशाल ज्वालाएं पूर्व में ही उत्पन्न हो चुकी होती हैं, उन्हीं ज्वालाओं से युक्त वे कॉस्मिक मेघ पूर्वापेक्षा तीव्र गति से अपने गुरुत्व बल के प्रभाव से संघनित होने लगते हैं। उस समय विभिन्न कणों की शोधन, छेदन एवं भेदन क्रियाएं भी तीव्र गति से होती हैं। यद्यपि उस समय पृथिवी आदि ग्रहों की असंख्य मात्रा में उत्पत्ति हो रही होती है परन्तु वे निर्माणाधीन ग्रह वर्तमान की भांति प्रकाशहीन अवस्था में नहीं होते, बल्कि वे अरुण वर्ण के प्रकाश और अग्नि की विशाल ज्वालाओं से युक्त होते हैं। जिस समय गुरुत्व बल अपना प्रबल प्रभाव दिखला रहा होता है, उसी समय डार्क एनर्जी भी अपने भारी प्रतिकर्षण और प्रक्षेपक बलों से गुरुत्व बल के द्वारा किये जा रहे सम्पीडन और संघनन कार्य को बाधित करने का प्रयास करती है। इस प्रभाव को नष्ट वा नियन्त्रित करने के लिए तीव्र विद्युत् और ऊष्मा से युक्त तरंगें उस डार्क एनर्जी पर प्रहार करके, उसे नियन्त्रित वा नष्ट कर देती हैं, जिससे **व्यान** और **सूत्रात्मा वायु** रश्मियों से उत्पन्न **गुरुत्व बल** तीव्र होकर अपना कार्य करता रहता है। **विभिन्न क्वान्टाज् केवल प्रकाश ऊष्मा का ही रूप नहीं होते, बल्कि उनमें परस्पर आकर्षण का गुण भी विद्यमान होता है, इसी कारण वे समूहरूप में गमन करते हैं।** विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें प्राण एवं मरुद् आदि रश्मियों के कारण ही सतत प्रकाशित, बलवती, शोधक, संयोजक, विभाजक एवं गति आदि गुणों से युक्त होती हैं। ये विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अल्पायु अथवा अत्यन्त दीर्घायु सभी प्रकार के सूक्ष्म कणों के साथ अन्योन्य क्रिया का भाव रखती हैं। उधर विद्युत् ही के कारण ये दोनों प्रकार के कण उत्पन्न होते हैं। विद्युत् धनावेश, ऋणावेश एवं उदासीन तीनों ही रूप में विद्यमान होती है। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विभिन्न सूक्ष्म कणों से संयुक्त होकर उन्हें अपने तेज, बल एवं गति आदि गुणों से युक्त करती हैं। **विभिन्न प्रकार के कणों वा लोकों को रूप, रंग एवं आकार प्रदान करना भी विद्युत् का ही कार्य है। विभिन्न अणुओं, बड़े-२ लोकों का संयोजन और विभाजन-विस्फोट कराना भी विद्युत् का ही कार्य है। इस कार्य के लिए विद्युत् उन कणों वा लोकों के चारों ओर विद्यमान आकाश तत्त्व के साथ अन्योऽन्य क्रिया करती है, फिर उसके पश्चात् आकाश और विद्युत् दोनों मिलकर संयोग और विभाग को प्रसिद्ध करते हैं।** विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वान्टाज् चारों ओर से विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र से घिरे रहते हैं और उन विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों एवं क्वान्टाज् के अन्दर कारणरूप प्राणादि रश्मियां विद्यमान रहती हैं। जब पदार्थ की दृश्य प्रकाश विहीन अवस्था होती है, उस समय भी **सूत्रात्मा वायु** आदि से सम्पन्न विद्युत् अपनी संयोग-वियोगादि क्रियाएं निरापद रूप से करती रहती है।।

४. आ नो यज्ञं दिविस्पृश, मा नो वायो महेतने, रथेन पृथुपाजसा, बहवः सूरचक्षस, इमा उ वां दिविष्टयः, पिबा सुतस्य रसिनो, देवं देवं वोऽवसे देवं देवं, बृहदुगायिषे

वच इति, बार्हतं प्रउगं पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त जमदग्निर्भार्गवः ऋषि {जमदग्निः = प्रजापतिर्वै जमदग्निः (श.१३.२.२.१४), प्रजमिताग्नयो वा, प्रज्वलिताग्नयो वा (नि.७.२४)} अर्थात् पूर्वोक्त अग्निमयी ज्वालाओं में प्राण नामक प्राथमिक प्राण रूपी प्रजापति से वायुदेवताक निम्नलिखित दो छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) आ नों यज्ञं दिविस्पृशं वायों याहि सुमन्मंभिः।
अन्तः पवित्रं उपरिं श्रीणानोऽ३ऽयं शुक्रो अंयामि ते।।६।। (ऋ.८.१०१.६)

इसका छन्द विराड् बृहती होने से इसके देवत और छान्दस प्रभाव से वायु रश्मियां पदार्थ के सम्पीडित होने में विशेष भूमिका निभाती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण रश्मियां आकाश तत्त्व से सम्बद्ध होकर मनस्तत्त्व की उत्तम दीप्ति के साथ पदार्थ को संगत करने में सब ओर से सक्रिय होती हैं। उस समय विभिन्न ज्वालाओं से युक्त अग्नि प्राणापानयुक्त आकाश तत्त्व में आश्रय पाता हुआ शुद्ध रूप से प्रकाशित होता है।

(२) वेत्यंध्वर्युः पथिभी रजिंष्ठैः प्रतिं हव्यानिं वीतयें।
अधां नियुत्व उभयंस्य नः पिब शुचिं सोमं गवांशिरम्।।१०।। (ऋ.८.१०१.१०)

इसका छन्द स्वराड्बृहती होने से इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह अहिंसनीय वायु विभिन्न गति, व्याप्ति, दीप्ति और प्रजनन आदि कर्मों को सम्पादित करने के लिए सरल एवं निर्बाध मार्गों द्वारा अपने आकर्षणीय परमाणु वा रश्मियों आदि की ओर गमन करता है। वह वायु सबके साथ संयुक्त होकर शुद्ध सोम रश्मियों एवं अग्नि के साथ संयुक्त व सिद्ध तापयुक्त सोम रश्मियों, इन दोनों का ही अवशोषण करता है।

तदुपरान्त वशाऽश्व्य ऋषि {वशा = गायत्र्याश्शिरोऽच्छिनत् ततो यो रसोऽस्रवत् सा वशाऽभवत् (काठ.१३.८)} अर्थात् ब्रह्माण्ड में विद्यमान गायत्री छन्द रश्मियों से पृथक् हुई व्यापक वा शीघ्रगामिनी सूक्ष्म रश्मियों से वायुदेवताक एवं बृहती छन्दस्क-

आ नों वायो महे तनें याहि मखाय पाजंसे।
वयं हि तें चकृमा भूरिं दावनें सद्यश्चिन्महिं दावनें।।२५।। (ऋ.८.४६.२५)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके देवत और छान्दस प्रभाव से वायु रश्मियां व्यापक स्तर पर पदार्थ को संपीडित व संघनित करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को बल प्रदान करके संयोगादि कर्मों को विस्तार प्रदान करने के लिए सब ओर व्याप्त होने लगती हैं। इन वायु रश्मियों के कारण विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ व्यापक स्तर पर प्रकाशमान होकर अन्योऽन्य क्रियाओं से विशेष युक्त होते हैं।

तदुपरान्त वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्वोपेत प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रवायू-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) रथेंन पृथुपाजंसा दाश्वांसमुपं गच्छतम्। इन्द्रंवायू इहा गंतम्।।५।। (ऋ.४.४६.५)

इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु एवं विद्युत् तेजस्वी और बलयुक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् विस्तीर्ण बलयुक्त होकर रमणीय वाहक रश्मियों के रूप में विभिन्न संयोज्य कणों वा रश्मियों को आच्छादित करके उनके संयोग वा संघात आदि में व्याप्त हो जाते हैं।

(२) इन्द्रंवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषंसा। पिबंतं दाशुषों गृहे।।६।। (ऋ.४.४६.६)

इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सदैव साथ रहने वाले विद्युत् और वायु

संयोज्य परमाणु वा रश्मियों के साथ संगत होकर असुर रश्मियों से मुक्त अन्य संयोज्य परमाणु वा रश्मियों से निसृत मरुद् रश्मियों का अवशोषण करके दोनों संयोज्य पदार्थों को संयुक्त करते हैं।

(३) इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम्। इह वां सोमपीतये।।७।। (ऋ.४.४६.७)

इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे विद्युत् और वायु सोम रश्मियों को अवशोषित करने के लिए ही अन्य पदार्थों से विमुक्त होकर गमन करते हैं।

तदनन्तर वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से आदित्याः देवताक ऋ.७.६६.१०-१२ तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः। त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः।।१०।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न {आदित्याः = आदित्या वै प्रजाः (तै.ब्रा.१.८.८.१), पशव आदित्याः (तां.२३.१५.४), प्राणा वा आदित्यः प्राणा हीदं सर्वमाददते (जै.उ.४.२.१.६)} परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ तीव्र वेग से संघनित व सम्पीडित होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोत्पन्न ज्वालामयी अवस्था में विद्यमान देदीप्यमान रश्मियों से युक्त पदार्थ, जो प्राण तत्त्व द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता रहता है, अपने सब ओर कार्यरत नियन्त्रक बलों तथा धारणादि कर्मों के द्वारा अनेक प्रकार के संघातों को सब ओर प्राप्त वा उत्पन्न करता है। इस कार्य में तीन प्रकार के पदार्थ यथा तीन प्रकार की विद्युत्, तीन प्रकार की रश्मियां, यथा- प्राण, छन्द व मरुदादि कार्य करते हैं।

(२) वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम्। अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत।।११।।

इसका छन्द स्वराड् बृहती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् मृदु परन्तु कुछ तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {शरत् = शरत् प्रतिहारः (ष.३.१), अन्नं वै शरद् (मै.१.६.६)} विभिन्न परमाणु संयोज्यता गुण-सम्पन्न तथा किन्हीं रश्मियों के सम्मुख से उनको अपने साथ संयुक्त करने में समर्थ हविरूप मास रश्मियों तथा विभिन्न छन्द रश्मियों के प्रकाशित व अप्रकाशित संयोग कर्मों को किंवा उनके संयुक्त रूपों को विशेषरूप से धारण करते हैं। वे ऐसे परमाणु आदि पदार्थ ब्रह्माण्ड में यत्र-तत्र विद्यमान व्यान एवं प्राण के तेजस्वी, नियन्त्रक रूप को भी प्राप्त करते हैं। इसका आशय है कि वे परमाणु आदि पदार्थ व्यानादि रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

(३) तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते। यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः।।१२।।

इसका छन्द आर्ची स्वराड् बृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां प्रकाशित एवं सम्पीडित-संघनित होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {मनामहे = याच्ञाकर्मा (निघं.३.१९), मनामहे मन्यामहे (नि.६.२५)। ओहते = वहति प्रापयति (म.द.ऋ.भा.५.४२.१०)} जब सूर अर्थात् सबके प्रेरक व प्रकाशक विभिन्न प्राणादि पदार्थ उत्कृष्ट गति करते हैं, उस समय वे विभिन्न छन्द रश्मिसमूहों के साथ संगत व प्रकाशित होते हैं। इनमें से व्यानापानोदान एवं प्राण रश्मियां एवं रमणीय किरणों के रूप में गमन करने वाली विद्युत् सबको व्याप्त व वहन करती हैं।

तदनन्तर वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से अश्विनौ-देवताक ऋ.७.७४.१-३ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना। अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः।।१।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित व अप्रकाशित पदार्थ समूह तीव्र वेग से संघनित होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से {शची = वाङ्नाम (निघं.१.११), कर्मनाम (निघं.२.१)। उस्रा = रश्मिनाम (निघं.१.५), गोनाम (निघं.२.११)} विभिन्न वाग् रश्मियां एवं अनेक प्रकार की क्रियाओं को बसाने वा सम्पादित करने वाली प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियां अन्य विभिन्न रश्मियों तथा पार्थिव परमाणुओं को अन्य देदीप्यमान प्राण वा छन्दादि रश्मियों के साथ संगत

करने हेतु आकर्षित करती हैं। वे रश्मियां प्रत्येक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों में प्रविष्ट होकर उन्हें गति, कान्ति व रक्षणादि कर्मों से युक्त करती हैं।

(२) युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु।।२।।

इसका छन्द आर्षी भुरिग्बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सूनृता = उषोनाम (निघं.१.८), अन्ननाम (निघं.२.७), वाङ्नाम (निघं.१.११)} वे प्राणापान किंवा प्राणोदान विभिन्न संयोज्य पदार्थों को आश्चर्यजनक ढंग से धारण करते हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियां सुन्दर दीप्ति से सम्पन्न संयोज्य वाग् रश्मियों के साथ संगत होने के लिए प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियों को प्रेरित करती हैं। इस कारण वे प्राणादि रश्मियां सम्मुख विद्यमान सुदीप्त रश्मिरूप सोम रश्मियों को अपने साथ संगत करती हैं। इस समय मनस्तत्व विशेष सक्रिय रहता है।

(३) आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना। दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम्।।३।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {जेन्यावसू = यौ जेन्यान् जयशीलान् वासयतो यद्वा ज्येन्यं जेतव्यं जितं वा वसुधनं याभ्यां तौ (म.द.य.भा.३३.८८)} वे दोनों प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियां सब ओर प्रवाहित होकर विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को संगत व प्रकाशित करती एवं विभिन्न सेचनधर्मी रश्मियों को अवशोषित करती हैं। वे प्राणादि रश्मियां विभिन्न नियन्त्रक विद्युदादि रश्मियों को बसाने व तृप्त करने वाली, बल एवं उत्पादक सामर्थ्य को पूर्ण करने वाली तथा संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को निरापद बनाती हैं।

तदनन्तर मेधातिथिः काण्व ऋषि अर्थात् स्वभावतः संगमनीय एवं सतत गमनकर्ता सूत्रात्मा वायु से इन्द्रदेवताक ऋ.८.३.१-३ तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः। आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः।।१।।

इसका छन्द ककुम्मती बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से {ककुप् = प्राणो वै ककुप् छन्दः (श.८.५.२.४), दिङ्नाम (निघं.१.६)} इन्द्र तत्त्व प्राण नामक प्राथमिक प्राण मिश्रित सूत्रात्मा वायु से युक्त होकर पदार्थ को सम्पीडित करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को अवशोषित करके और अधिक सक्रिय हो उठता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न क्रियाओं की रक्षा के लिए सदैव तीव्र रूप से क्रियाशील रहता है।

(२) भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय।।२।।

इसका छन्द सतः पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अत्यन्त विस्तृत होकर निरन्तर चलने वाली संयोगादि क्रियाओं को सक्रिय करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां इन्द्र तत्त्व के साथ प्रकाशित होने लगती हैं {अभिमातिः = पाप्मा वा अभिमातिः (तै.सं.२.१.३.५; काठ. १३.३)} और सब पदार्थों को बाधक रश्मियों से मुक्त रखती हैं। वे इन्द्र रश्मियां अनेक प्रकार की संगतीकरण क्रियाओं को संरक्षित करते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सहज संयोगादि कर्मों के लिए प्रेरित करती हैं।

(३) इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत।।३।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से सम्पीडक बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु मिश्रित प्राण रश्मियां व्यापक बसाने वाले इन्द्र तत्त्व को समृद्ध करती हैं। वे रश्मियां उन रश्मियों रूप इन्द्र तत्त्व को अग्नि की ज्वालाओं के

समान तेजस्वी बनाती हैं।

तदुपरान्त मनुर्वैवस्वत ऋषि अर्थात् {विवस्वतः = विवस्वत आदित्याद् विवस्वान् विवासनवान् प्रेरितवतः (नि.७.२६)} सबको विशेषरूप से बसाने एवं प्रेरणा देने वाले मनस्तत्त्व से विशेष सम्पन्न एक सूक्ष्म प्राणविशेष से विश्वेदेवा-देवताक ऋ.८.२७.१३-१५ तृच की उत्पत्ति निम्नानुसार होती है-

(१) देवंदेवं वोऽ वसे देवंदेवमभिष्टये। देवंदेवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया।।१३।।

इसका छन्द विराड् बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ सम्पीडित एवं प्रकाशित होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्रत्येक प्रकाशित परमाणु विभिन्न प्राण रश्मियों की क्रियाशीलता और तेजस्विता के द्वारा प्रकाशित होते हुए विभिन्न क्रियाओं को गति प्रदान करने के लिए परस्पर आकर्षित होते हैं। वे परस्पर संगत होकर नाना तत्त्वों के निर्माण एवं विभाजन के लिए सभी उपयुक्त बलों और क्रियाओं से युक्त होते हैं।

(२) देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः।
ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः।।१४।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ व्यापक रूप से संयोगादि प्रक्रियाओं को सम्पादित करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सभी देव पदार्थ विशेष प्रकाशित होते हुए दानादि विविध कर्मों से युक्त होकर एक-दूसरे के चारों ओर गमन करते हुए संयुक्त होने लगते हैं।

(३) प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम्। न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत्।।१५।।

इसका छन्द आर्ची बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अन्य छन्द रश्मियों के साथ मिलकर यह छन्द रश्मि पदार्थ को सम्पीडित करती है। इसके अन्य प्रभाव से इस रश्मि का कारणभूत ऋषि प्राण प्रतिकर्षण वा प्रतिरोधक बलों से विहीन संयोज्य परमाणु वा रश्मियों को तीक्ष्ण रूप से प्रकाशित करता है। प्राण एवं व्यान रश्मियां किंवा दोनों का संयुक्त रूप अपनी धारणा शक्तियों से सबको विशेषरूप से धारण करके हिंसक रश्मियों से मुक्त रखता है।

तदनन्तर वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से सरस्वतीदेवताक ऋ.७.९६.१-३ तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्। सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी।।१।।

इसका छन्द आर्ची भुरिग्बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न ज्वलनशील वाग् रश्मियां अपने तीक्ष्ण बाहुरूप बलों से पदार्थ को सम्पीडित करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण रश्मियां असुर रश्मियों में विद्यमान रहकर उनसे संघर्ष एवं गर्जन करती हुई वाग् रश्मियों को प्रकाशित करती हैं। इसके साथ ही असुर रश्मियों से उत्पन्न वैरूप साम रश्मियों, जिनका वर्णन ४.१३.२ में किया गया है, को भी विविध रंग, रूप प्रदान करने में सहयोग करती हैं। विशाल प्रकाशित और अप्रकाशित पदार्थ समूह {महयति = अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)} इन्हीं प्राण रश्मियों के कारण सुन्दर और स्वच्छ प्रकाश रश्मियों से संयुक्त होकर विभिन्न वाग् रश्मियों को अग्नि की देदीप्यमान ज्वालाओं में परिवर्तित करते हैं।

(२) उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम्।।२।।

इसका छन्द आर्षी भुरिग्बृहती होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पूरवः = मनुष्यनाम (निघं.२.३), पालकाः धारका वा (तु.म.द.ऋ.भा.७.१६.३)} शुभ्र दीप्ति वाली वे छन्द रश्मियां पूर्ण पालक और धारक गुणों से युक्त होती हैं। वे रश्मियां विभिन्न संयोज्य कणों वा रश्मियों को सक्रिय करने वाली एवं भिन्न-२ पदार्थों को संसिद्ध करने के लिए विभिन्न परमाणु

आदि पदार्थों को प्रेरित करती हैं।

(३) भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती। गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत्।।३।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वे ज्वलनशील वाग् रश्मियां तीव्र और तीक्ष्ण होकर विस्तृत संयोगादि कर्मों को सिद्ध करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त ज्वलनशील वाग् रश्मियां गर्जनयुक्त तीव्र हिंसक रश्मियों से मुक्त होकर विभिन्न संयोगादि कर्मों को अनुकूलता से जाग्रत करती हैं। वे रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों, संयोज्य परमाणुओं एवं विविध वल और तेज से युक्त होकर ज्वलनशील अग्नि के समान और प्राथमिक प्राण रश्मियों के समान सवको प्रकाशित और सक्रिय करने वाली होती हैं।

इन उपर्युक्त सभी छन्द रश्मियों को महर्षि ने 'प्रउग' शस्त्र संज्ञा दी है, जिसका अभिप्राय और स्वरूप पूर्ववत् समझें। यह 'प्रउग शस्त्र' रश्मिसमूह वृहती छन्द प्रधान होता है, इस कारण यह वार्हत रूप कहलाता है, इसका वार्हत रूप होना पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में ३ पंक्ति, १ गायत्री एवं १७ विविध वृहती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय ये छन्द रश्मियां आकाश तत्त्व के साथ संगत होकर आकाशीय पदार्थ का तेजी से सम्पीडन करती हैं। इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अग्नि की तीव्र ज्वालाएं उठती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां भी व्यान एवं **सूत्रात्मा वायु** के साथ ही और भी सक्रिय हो उठती हैं। इन सव कार्यों में इन्द्र तत्त्व किंवा विद्युत् की भूमिका भी विशेष होती है। प्राण और विद्युत् रश्मियां विस्तीर्ण वलों से युक्त होकर सभी संयोज्य कणों को डार्क एनर्जी आदि के प्रक्षेपण प्रभाव से मुक्त करके उन्हें सम्पीडित करने में सहयोग करती हैं। इस समय विद्युत् के धनावेश, ऋणावेश एवं उदासीन तीनों ही रूप **विशेष सक्रिय होते हैं। इसी प्रकार प्राण, छन्द एवं मास आदि रश्मियां भी तीव्रता से सक्रिय होती हैं।** विभिन्न प्रकार के कण एवं विकिरण अन्तरिक्ष में विद्यमान इन रश्मियों को आकृष्ट करते रहते हैं। इसमें विद्युत् एवं विद्युत् चुम्वकीय तरंगों के साथ-२ सभी प्रकार के कणों की ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है। व्यान और प्राण रश्मियां मिलकर डार्क एनर्जी की सूक्ष्म एवं वाधक रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं। जव कॉस्मिक मेघों के अन्दर सम्पीडन की क्रिया के द्वारा विभिन्न लोकों का निर्माण हो रहा होता है, उस समय उस पदार्थ में विशाल ज्वालाओं से युक्त अग्नि विद्यमान होता है। **इस समय डार्क एनर्जी का कुछ भाग विभिन्न तीक्ष्ण छन्द रश्मियों से क्रिया करके दृश्य ऊर्जा में बदल जाता है।** इस समय विभिन्न वाग् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ क्रिया करके अग्नि की तीव्र ज्वालाओं में परिवर्तित हो जाती हैं। उस समय वे ज्वालाएं विभिन्न कणों एवं विकिरणों को नाना प्रकार के तत्त्वों के निर्माण के लिए प्रेरित करती हैं। इस समय विभिन्न प्रकार के वड़े atoms और molecules उत्पन्न होते हैं।।

५. 'यत्पाञ्चजन्यया विशेति' मरुत्वतीयस्य प्रतिपत्पाञ्चजन्ययेति पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

'इन्द्र इत्सोमपा एक', 'इन्द्र नेदीय एदिहि', 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' 'अग्निर्नेता', 'त्वं सोम क्रतुभिः, 'पिन्वन्त्यपो, बृहदिन्द्राय गायतेति', द्वितीयेनाह्ना समान आतानः, पञ्चमेहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त प्रगाथः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विशेष प्रकाशित एक सूक्ष्म प्राण रश्मि से इन्द्रदेवताक एवं विराडनुष्टुप् छन्दस्क-

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद्बर्हणा विपोऽऽर्यो मानस्य स क्षयः।।७।। (ऋ.८.६३.७)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्रिम कण्डिका में दर्शायी गई सभी छन्द रश्मियां विशेष सक्रिय और प्रकाशित होकर इन्द्र तत्त्व को तेजस्वी और तीक्ष्ण बनाती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {पञ्चजनाः = गन्धर्वा पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके - नि.३.८), (रक्षसः = अन्यकृतानि हि रक्षांसि - तै.सं.६.३.२.२)} जब पांच प्रकार के पदार्थ अर्थात् **सूत्रात्मा वायु रूप गन्धर्व, ऋतु रश्मियों रूपी पितर, छन्द और प्राण रश्मियों रूपी देव, असुर एवं विभिन्न सृजन कार्यों में विकृति उत्पन्न करने वाली कुछ अन्य राक्षस संज्ञक रश्मियां,** ये सब तीक्ष्ण होते इन्द्र तत्त्व से व्याप्त होकर विभिन्न घोषों को उत्पन्न करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व अपने महान् बल के द्वारा इन सबके पारस्परिक विघ्नों को दूर करके उन्हें विशेषरूप से पालता एवं नियन्त्रित करता है और इन सबके साथ ही निवास करता है। इस छन्द रश्मि को महर्षि ने मरुत्वतीय शस्त्र की 'प्रतिपत्' संज्ञा की है। इसका तात्पर्य यह है कि आगामी कण्डिकाओं में वर्णित सभी छन्द रश्मियां मरुत्वतीय कहलाती हैं एवं उनकी उत्पत्ति से ठीक पूर्व इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यहाँ महर्षि इसको पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक मानते हैं क्योंकि इसमें 'पञ्च' शब्द विद्यमान है। 'पञ्च' शब्द की विद्यमानता से यह छन्द रश्मि पंक्ति छन्दस्क न होते हुए भी 'पाङ्क्त' मानी गई है। इसी कारण इसे इस पञ्चम अहन् की सूचक माना है।।

तदुपरान्त मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक निम्नलिखित रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है। इन सबकी उत्पत्ति द्वितीय अहन्=उदान प्राणोत्कर्ष काल के समान होती है।
इनमें सर्वप्रथम -

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः। अन्तर्देवान्मर्त्यांश्च।।४।।

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम्। अपस्पृण्वते सुहार्दम्।।५।।

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते। अभित्सरन्ति धेनुभिः।।६।। ऋ.८.२.४-६

तृच की उत्पत्ति होती है। इन ऋचाओं के विषय में ४.३१.४ द्रष्टव्य है। तदनन्तर

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।६।।

इत्यादि ऋ.८.५३.५-६ प्रगाथ की उत्पत्ति होती है। इस छन्दरश्मिद्वय के विषय में भी ४.३१.४ द्रष्टव्य है। इसके पश्चात्

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे। उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा।।१।।

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते। सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके।।२।।

इत्यादि ऋ.१.४०.१-२ प्रगाथ की उत्पत्ति होती है। इस छन्दरश्मिद्वय के विषय में भी वही खण्ड द्रष्टव्य है। तदनन्तर क्रमानुसार-

अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम्।।४।। (ऋ.३.२०.४),

त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।

त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः।।२।। (ऋ.१.६१.२)

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्।।६।। (ऋ.१.६४.६)

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि।।१।।

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण।।२।।

इत्यादि ऋ.८.८९.१-२ प्रगाथ की उत्पत्ति होती है। इन सभी पांच छन्द रश्मियों के विषय में भी ४.३१.४ ही द्रष्टव्य है। यहाँ आचार्य सायण ने तृच एवं प्रगाथ के स्थान पर एक-२ ऋचा का ही ग्रहण किया है, जबकि द्वितीय अहन् में तृच व प्रगाथों का यथावत् ग्रहण किया है। ग्रन्थकार महर्षि ने इन सब ऋचाओं की उत्पत्ति को द्वितीय अहन् के समान होना लिखा है, इस कारण हमने द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के समान ही छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होना स्वीकार किया है। द्वितीय अहन् के समान छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना ही पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष का सूचक है। छन्द रश्मियों का अन्यथा ग्रहण करना पञ्चम अहन् का सूचक नहीं हो सकता, इस कारण छन्द रश्मियों का ग्रहण भी तद्वत् ही करना चाहिए।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में उपर्युक्त में से प्रथम छन्द रश्मि के अतिरिक्त अन्य सभी छन्द रश्मियां **उदान प्राण** के उत्कर्ष काल में समान ही होती हैं, इस कारण इनका वैज्ञानिक सार खण्ड **४.२६** में ही द्रष्टव्य है। यहाँ यह भेद अवश्य है कि वहाँ सूक्ष्म पदार्थ, विशेषकर रश्मियों के संघनन व सम्पीडन से विभिन्न कणों की उत्पत्ति होती है, जबकि यहाँ पदार्थ के सम्पीडन व संघनन से कॉस्मिक मेघस्थ पदार्थ पिण्डाकार रूप लेना प्रारम्भ करता है, जिससे विभिन्न ग्रहादि आकाशीय लोकों की उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। रश्मियों का प्रभाव समान होते हुए भी विद्यमान कारण पदार्थ के स्थूल होने से दोनों चरणों में उत्पन्न कार्यरूप पदार्थ में भारी भेद होना स्वाभाविक है। इस समय **सूत्रात्मा वायु,** प्राथमिक प्राण, छन्द रश्मियां, ऋतु रश्मियां, डार्क एनर्जी, डार्क मैटर, अनेक प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें आदि सभी तीव्र रूप में सक्रिय होते हैं। इतनी सक्रियता **उदानप्राण** के उत्कर्ष काल में नहीं होती।।

६. 'अविताऽसि सुन्वतो वृक्तबर्हिष' इति सूक्तं मद्वत् पाङ्क्तं पञ्चपदं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।। 'इत्था हि सोम इन्मद' इति सूक्तं मद्वत् पाङ्क्तं पञ्चपदं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त मरुत्वतीय शस्त्र के अन्तर्गत ही श्यावाश्व आत्रेय ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न तीव्रगामी एवं व्यापक वलयुक्त एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.३६ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते।।१।।

इसका छन्द शक्वरी होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अत्यन्त शक्तिशाली होता है।

इसके अन्य प्रभाव से दृश्य तेजस्वी अनेक प्रकार की क्रियाओं को करने वाला इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रेरण, ताड़न वा सम्पीडन क्रियाओं की रक्षा करता है। वह व्यापक एवं अत्यन्त तेजस्वी विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त एवं प्राण तत्त्व के द्वारा नियन्त्रित इन्द्र तत्त्व सभी बाधक असुर रश्मियों को पूर्णतः नियन्त्रित करता हुआ उचित परिमाण में प्राण एवं सोम रश्मियों को अवशोषित करता रहता है।

(२) प्राव॑ स्तोतारं॑ मघवन्नव॒ त्वां पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य कं॑ शतक्रतो।
यं ते॑ भागमधा॑रयन्विश्वाः॑ सेहानः॒ पृत॑ना उरु ज्रयः॒ सम॑प्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते।।२।।

इसका छन्द निचृच्छक्वरी होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा और भी अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व अपने प्रकाशक प्राण तत्त्व से पूर्णतः तृप्त और व्याप्त होता है। {ज्रयतीति गतिकर्मा (निघं.२.१४)} इस कारण वह अत्यन्त वेगयुक्त विभिन्न मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर विविध प्राथमिक प्राण रश्मियों को नियन्त्रित करके विभिन्न परमाणुओं का धारण व अवशोषण करने में समर्थ होता है।

(३) ऊर्जा दे॒वाँ अव॒स्योज॑सा॒ त्वां पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य कं॑ शतक्रतो।
यं ते॑ भागमधा॑रयन्विश्वाः॑ सेहानः॒ पृत॑ना उरु ज्रयः॒ सम॑प्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते।।३।।

इसका छन्द विराट् शक्वरी होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह असंख्यकर्मा इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को वल प्रदान करके उन्हें रक्षण, गति एवं कान्ति आदि प्रदान करता है और विभिन्न प्राण रश्मियां उस इन्द्र तत्त्व को वल प्रदान करके उसे व्यापक आकाश तत्त्व को नियन्त्रित करने में समर्थ वनाती हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होकर सभी रश्मिसमूहों को अपने नियन्त्रण में लेता हुआ अग्नि और सोम दोनों को ही अवशोषित व धारण करता है।

(४) ज॒निता॑ दि॒वो ज॑नि॒ता पृ॑थि॒व्याः पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य कं॑ शतक्रतो।
यं ते॑ भागमधा॑रयन्विश्वाः॑ सेहानः॒ पृत॑ना उरु ज्रयः॒ सम॑प्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते।।४।।

इसका छन्द निचृच्छक्वरी होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह असंख्यकर्मा इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकार की प्रकाश रश्मियों एवं पार्थिव परमाणुओं को उत्पन्न करता है। वह अत्यन्त वेगवान् और व्यापक होकर प्राण रश्मियों को नियन्त्रित करके साथ ही मरुद् रश्मियों से युक्त होकर सभी विध्वंसक शक्तियों को नियन्त्रित वा नष्ट करता है। वह इन्द्र तत्त्व लोकों के निर्माण में कार्यरत परमाणुओं को धारण व सक्रिय करने के लिए अन्तरिक्ष में विद्यमान सोम रश्मियों का सहजतया पान करता है।

(५) ज॒नि॒ताश्वा॑नां ज॒निता॒ गवा॑मसि॒ पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य कं॑ शतक्रतो।
यं ते॑ भागमधा॑रयन्विश्वाः॑ सेहानः॒ पृत॑ना उरु ज्रयः॒ सम॑प्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते।।५।।

इसका छन्द शक्वरी होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकार की व्यापक वेग और वलयुक्त छन्दादि रश्मियों को उत्पन्न करता है। उन रश्मियों के द्वारा व्यापक वेग वाले सभी हानिकारक रश्मिसमूहों को नियन्त्रित करके विभिन्न सृजन क्रियाओं को करने में वह विजयी होता है। विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व पदार्थ के जिस भाग को धारण करता है, वह सोम तथा प्राण रश्मियों के अवशोषण के द्वारा उस भाग को तृप्त और सक्रिय करता है।

(६) अत्री॑णां॒ स्तोम॑मद्रिवो म॒हस्कृ॑धि॒ पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य कं॑ शतक्रतो।
यं ते॑ भागमधा॑रयन्विश्वाः॑ सेहानः॒ पृत॑ना उरु ज्रयः॒ सम॑प्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आकाशीय मेघों से व्याप्त वा संयुक्त वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा व्यापक स्तर पर क्रियाशील होता है, इस कारण वह इन्द्र तत्त्व व्यापक रश्मियों को बांधता और उन्हें तीव्र गतिशील बनाता हुआ विभिन्न सृजन कर्मों को करने में समर्थ बनाता है। वे रश्मियां जितने परिमाण में इन्द्र तत्त्व को धारण करती हैं, उतने परिमाण में प्राण और सोम रश्मियों को अवशोषित करके तृप्त और सक्रिय होती हे।

(७) श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तस्थां शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन्॥७॥

इसका छन्द विराड् जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व देदीप्यमान होता हुआ व्यापक क्षेत्र में फैलकर अन्योऽन्य क्रियाएं करने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार के कर्म करते हुए जिस प्रकार सूत्रात्मा वायु रश्मियों से प्रेरित होकर गमन करता है, वैसे ही श्यावाश्व अर्थात् व्यान प्राण रश्मियों द्वारा भी प्रेरित होकर विभिन्न मरुद् एवं प्राणापान रश्मियों के साथ समृद्ध होता हुआ बाधक असुर रश्मियों को परास्त करता है।

इस सूक्त की प्रथम ६ ऋचाएं 'मद्' धातु से युक्त होने के साथ ही पञ्चपदा भी होती हैं, इस कारण ये मदवत् तथा पाङ्क्त कहलाती हैं। मदवत् और पाङ्क्त दोनों ही लक्षण पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक हैं॥

तदुपरान्त पूर्वोक्त शस्त्र के अन्तर्गत ही राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.१.८० सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१॥

इसका छन्द निचृदास्तारपङ्क्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र गति से फैलता हुआ तीक्ष्ण होता जाता है, इसके कारण संयोग-वियोग क्रियाएं भी तीव्र हो उठती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह वज्र रश्मियों से युक्त बलवत्तम इन्द्र तत्त्व विभिन्न मेघरूप पदार्थों के विभिन्न भागों को इस प्रकार उठाता हुआ दूर-२ करता है, जैसे मन एवं वाक् तत्त्व किंवा प्राण तत्त्व अपने सूक्ष्म तेज और बल के द्वारा समस्त अप्रकाशित सूक्ष्म पदार्थ को सक्रिय सोम रश्मियों में परिवर्तित करके उन्हें अपने अनुकूल प्रकाशित करता हुआ सब ओर बढ़ाता रहता है।

(२) स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम्॥२॥

इसका छन्द भुरिग् बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने प्रबल आकर्षक एवं प्रतिकर्षक बलों के द्वारा पदार्थ को पिण्डाकार बनाने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से {आपः = यज्ञो वा आपः (कौ.ब्रा.१२.१), आपो वै यज्ञः (ऐ.२.२०), आपो वै सर्वा देवताः (ऐ.२.१६), आपो वै सर्वे कामाः (श.१०.५.४.१५)} वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व अपने जिस ओज-बल के द्वारा विभिन्न पदार्थों को अनुकूलता से प्रकाशित करता हुआ आवरक आसुर रश्मियों के विशाल समूह को संयोज्य बलों एवं कणों से पृथक् करके छिन्न-भिन्न करता है, इन्द्र तत्त्व के उस बल को सेचक बलों से युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण बलों का धारण करने वाला सम्पीडित सोम तत्त्व तृप्त और सक्रिय करता है।

(३) प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व की वज्ररूप रश्मियां विशाल आवरक आसुर मेघ में व्याप्त होकर उसे नष्ट वा नियन्त्रित करके विभिन्न संयोगादि कर्मों को

अपने नियन्त्रण में रखती हैं। वे रश्मियां संयोज्य परमाणुओं को प्रकाशित करते हुए अपने वलों को समृद्ध और सुदृढ़ करके विभिन्न परमाणु समूहों को अपने नियन्त्रण में रखती हैं।

(४) निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा निर्माणाधीन अप्रकाशित लोकों में विद्यमान प्राण एवं मरुद् रश्मियों से तृप्त वा युक्त विभिन्न संयोज्य वलों वा परमाणुओं को पूर्ण रूप से व्याप्त करता है। वह अपने इस कर्म एवं विभिन्न प्रकाशित किरणों के द्वारा अन्य परमाणुओं को अनुकूलता से प्रकाशित करता हुआ परस्पर संयोगादि कर्मों में प्रेरित करता है।

(५) इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम्।।५।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अधिक तेजस्वी होकर विस्तृत क्षेत्र में फैलता हुआ पदार्थ को संगृहीत करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा {दोधतीति क्रुध्यतिकर्मा (निघं.२.१२)} आसुर विशाल आवरक मेघों के शीर्ष भागों पर आक्रमण करके विभिन्न संयोज्य परमाणुओं की क्रियाओं को नियन्त्रित व प्रकाशित करता हुआ अपनी वज्र रश्मियों को प्रेरित करके सव ओर से तीक्ष्ण हो उठता है।

(६) अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम्।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने असंख्य पालक कर्मों से युक्त वज्र रश्मियों के द्वारा विशाल आसुर मेघों के शीर्ष भागों को पूर्णतः छिन्न-भिन्न करता है। वह विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को विभिन्न वाग् रश्मियों से युक्त करके अनुकूलतापूर्वक प्रकाशित और नियन्त्रित करता है।

(७) इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।७।।

इसका छन्द भुरिग् वृहती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अद्रिः = अद्रिरसि श्लोककृत् (काठ.१.५), ग्रावाणो वा अद्रयः (तै.सं.६.१.११.४)। अनुत्तमं = अप्रेरितम् स्वाभाविकम् (म.द.ऋ.भा.), आनुकूल्येन धृतम् (तु.म.द.ऋ.भा.३.३१.१३)} विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियों से सुभूषित वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व आकस्मिक आक्रमण करने वाले तीव्र वेगगामी असुर तत्त्व को अपनी देदीप्यमान विद्युद् रश्मियों के द्वारा नष्ट वा नियन्त्रित करता है। वह इन्द्र तत्त्व तेजस्वी और स्वाभाविक वल पराक्रम से युक्त होकर अपने अधीनस्थ समस्त परमाणु समुदाय को प्रकाशित व प्रेरित करता है।

(८) वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु।
महत्त इन्द्र वीर्यं वाह्वोस्ते वलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।८।।

इसका छन्द वृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व पदार्थ की सम्पीडन और संघनन क्रिया को वढ़ाता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा ९० प्रकार की तारक रश्मियों को अनुकूलता से व्यवस्थित करता है। हमारे मत में इस खण्ड में वर्णित ९० छन्द रश्मियां ही ९० प्रकार की तारक रश्मियां कहलाती हैं। वह इन्द्र तत्त्व महान् तेज और वल से युक्त

आकर्षण एवं प्रतिकर्षण दोनों ही गुणों से युक्त होकर विविध कर्मों को प्रकाशित करता है।

(६) सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।६।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने अधीनस्थ परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलता से प्रकाशित करता हुआ सब ओर से थामता है। वह इस परमाणु समुदाय के साथ मिलकर उसे असंख्य प्रकार से विभिन्न बलों से युक्त व प्रकाशित करता है। उस समय उस परमाणु समुदाय में पूर्वोक्त ६० प्रकार की तारक छन्द रश्मियां विभिन्न प्रकार से समायोजित होकर २००० छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होकर उस महान् इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित व सक्रिय करती हैं।

(१०) इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम्।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने बल से विशाल आवरक आसुर मेघ का हनन करता हुआ समस्त बाधक बलों को नष्ट करके विभिन्न परमाणुओं को प्रकाशित करता हुआ अपने महान् बल के द्वारा संयोज्य पदार्थ को सब बाधाओं से मुक्त करता है।

(११) इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।११।।

इसका छन्द निचृदास्तारपङ्क्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी ओजस्विनी वज्र रश्मियों के द्वारा निर्माणाधीन विशाल लोकों को अनुकूलता से कंपाता है, साथ ही वह मरुद् रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ तीव्र बाधक असुर मेघों को भी कंपाता व छिन्न-भिन्न करता है।

(१२) न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत्।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम्।।१२।।

इसका छन्द भुरिग् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व महान् बलवान् होकर विशाल आसुर मेघों के किसी भी विस्तार एवं वेगपूर्वक प्रहार के कारण बलहीन वा पराजित नहीं होता, बल्कि वह तेजस्वी असंख्य तप्त वज्र रश्मियों के द्वारा उन आसुर मेघों को सब ओर से घेरकर नष्ट वा नियन्त्रित करता है।

(१३) यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्।।१३।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आकाश में विद्यमान विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के छेदक विशाल आसुर मेघों को तीक्ष्ण विद्युत् तरंगों के द्वारा नष्ट करता है। वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण वज्र रश्मियों के द्वारा देव और आसुर तत्त्व के मध्य होने वाले संघर्षण में अपने विराट् बल के द्वारा असुर तत्त्व का दमन करता है।

(१४) अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम्।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण व मरुद् रश्मियों

से युक्त वह इन्द्र तत्त्व अनुकूल संयोजक कर्मों में गतिशील वा स्थिर किंवा आशुगामी एवं मन्दगामी दोनों ही प्रकार के पदार्थों को कंपाता किंवा वल प्रदान करता है। वह वड़े पदार्थ समूह का छेदन करके अनुकूल संयोग क्रियाओं को सम्पादित करता है, उस समय वाधक असुर तत्त्व विक्षुब्ध वा कंपित होकर दुर्वल वा नष्ट हो जाता है, जिससे देव पदार्थ और भी अधिक प्रकाशित व सक्रिय होने लगता है।

(१५) नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम्।।१५।।

इसका छन्द भुरिग् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वल की दृष्टि से सर्वोपरि उत्तम वह इन्द्र तत्त्व अपने अधीन व प्रकाशित सभी दिव्य परमाणुओं को विभिन्न संयोगादि क्रियाओं में अपने सम्पीडक वलों के द्वारा सम्यग् रूप से धारण करता है, जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र के वल को प्राप्त करके सहजतया सृजन कर्मों में प्रवृत होते हैं।

(१६) यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत।
तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम्।।१६।।

इसका छन्द वृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सवका पालक, रक्षक और प्रकाशक वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं को निर्वाधरूप से प्रकाशित, सक्रिय और धारण करता हुआ नाना प्रकार से सम्पीडन और संघनन क्रियाओं में प्रवृत्त करता है। वह इन्द्र तत्त्व पूर्व में उत्पन्न प्राण, मरुत् वा छन्दादि रश्मियों के संयोजन व संगमन की भांति समस्त परमाणुओं को व्याप्त और संगत करता है।

इस सूक्त की ऋचाओं में 'मद्' शब्द विद्यमान होने से इस सूक्त की उत्पत्ति पञ्चम अहन् किंवा व्यान नामक प्राण तत्त्व के उत्कर्ष की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में ६ शक्वरी, एक जगती, ८ पंक्ति एवं ८ वृहती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय समस्त ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ में विद्युत् तरंगों एवं विद्युत् चुम्वकीय रश्मियों की तीव्रता वा तीक्ष्णता अत्यन्त वढ़ने लगती है। इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में डार्क एनर्जी एवं डार्क पदार्थ के विशाल मेघ मिलकर सम्पूर्ण द्रव्य पदार्थ को घेर कर उसको तीव्र प्रक्षेपक व प्रतिकर्षक वलों के द्वारा संघनित व सम्पीडित होने से रोकने का पूर्ण शक्ति के साथ प्रयास करते हैं परन्तु तीव्र तप्त विद्युत् तरंगों के प्रहार से वह वाधक डार्क एनर्जी दुर्वल हो जाती तथा डार्क पदार्थ के विशाल समूह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। ब्रह्माण्ड में इन दृश्य व अदृश्य पदार्थों का संघर्ष सर्वत्र व सर्वदा विशालतम से लकर सूक्ष्मतम स्तर तक निरन्तर चलता रहता है। अदृश्य पदार्थ को नियन्त्रित किए विना दृश्य पदार्थ के संघनन व सम्पीडन की क्रिया सफल ही नहीं हो सकती। विद्युत् सदैव ही प्राणादि रश्मियों तथा मरुद् रश्मियों के द्वारा ही तीक्ष्ण होती रहती है। इनके द्वारा तीक्ष्ण वा उत्पन्न हुई विद्युत् ही सम्पूर्ण सृष्टि के सृजन, संचालन, रक्षण, गति एवं विनाशादि कर्मों के लिए उत्तरदायी होती है। **विद्युत् के कारण ही सभी प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगों तथा मूल कणों की उत्पत्ति होती है और इसी के द्वारा ही इन सभी का संचालन, रक्षण, पालन एवं विनाश आदि होता है।** विद्युत् के अभाव में इस सृष्टि का निर्माण सर्वथा असम्भव है। **सूत्रात्मा वायु एवं व्यान प्राण रश्मियों की शक्तियों से सम्पन्न विद्युत् ही सभी प्रकार के भौतिक व रासायनिक संयोगों के लिए उत्तरदायी होती है।** इस समय विभिन्न प्राण रश्मियां डार्क एनर्जी पर प्रहार करके उसे दृश्य ऊर्जा में भी परिवर्तित करने का कार्य करती हैं। जव दृश्य ऊर्जा वा अति उष्ण विद्युदावेशित तरंगों का डार्क एनर्जी व डार्क मैटर से संघर्ष होता है, उस समय विद्युत् वा तीव्र विद्युत् चुम्वकीय तरंगें डार्क मैटर के वाहरी शिखर भागों पर तीक्ष्ण प्रहार करके उसे छिन्न-भिन्न करती हैं। इस समय उन विद्युत् चुम्वकीय तरंगों वा विद्युदावेशित अत्युष्ण विकिरणों को प्राण-अपान रश्मियां तीक्ष्ण वल प्रदान करती हैं। इसके साथ ही इस समय सैकड़ों, हजारों छन्द रश्मियां सक्रिय व तीक्ष्ण होकर सम्पूर्ण पदार्थ को पृथक्-२ केन्द्रों के परितः संघनित होने में सहयोग करती हैं। इस समय सम्पूर्ण पदार्थ विक्षुब्ध होकर पृथक् लोकों का निर्माण करने लगता है।।

७. 'इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायेति' सूक्तं मद्वत् त्रैष्टुभं; तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।
'मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्व' इति पर्यासो नेति न प्रेति, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
ता उ गायत्र्यो गायत्र्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते, तस्माद् गायत्रीषु निविदं दधाति।।१।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात मनस्तत्त्व से उत्पन्न सूत्रात्मा वायु के साथ संगत प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.६.४० सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुंचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशित होता हुआ तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को सक्रिय व तृप्त करने के लिए सम्पीडित सोम रश्मियों का पूर्णतः पान करके अपने आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों के द्वारा असुर तत्त्व के अनिष्ट प्रभाव से मुक्त हुए परमाणु आदि पदार्थों को विशेष प्रकाशित करता है। इसके पश्चात् वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मिसमूहों के अन्दर व्याप्त होकर उन्हें परस्पर संगत व प्रकाशित करने के लिए विशेष, तेज, बल और गति को धारण कराता है।

(२) अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् और व्यापक इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय और तृप्त करने के लिए विभिन्न मरुद् रश्मियों का बार-२ पान करता है। ब्रह्माण्ड में विद्यमान विभिन्न प्रकार की प्राण, छन्द एवं मरुदादि रश्मियां उसी इन्द्र तत्त्व में व्याप्त होती हैं। वह इन्द्र तत्त्व उन सब रश्मियों की रक्षा करता है।

(३) समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः।।३।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अतिशय व्यापक वह इन्द्र तत्त्व उत्तम प्रकार से देदीप्यमान अग्नि एवं सम्पीडित सोम तत्त्व के अन्दर तेजस्विनी बल रश्मियों के द्वारा सब ओर से व्याप्त होता है। वह इन्द्र तत्त्व मनस्तत्त्व के द्वारा समस्त सूक्ष्म पदार्थ जगत् को आकर्षित व प्रेरित करता हुआ उनमें व्याप्त होता रहता है।

(४) आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात्।।४।।

इसका छन्द भुरिक् पङ्क्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से सब ओर फैलकर संयोगादि प्रक्रियाओं को तीव्र करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व लोक निर्माण प्रक्रिया को विस्तृत करने के लिए विभिन्न प्रकार के बल और तेज को धारण करता है। वह मनस्तत्त्व की सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा प्रेरित प्राणापान रश्मियों के द्वारा निरन्तर गति और प्रेरणा प्राप्त करता हुआ सब ओर से सोम रश्मियों का पान करता है।

(५) यदि॑न्द्र दि॒वि पार्ये॒ यदृध॒ग्यद्वा॒ स्वे सद॑ने॒ यत्र॒ वासि॑।
अतो॑ नो य॒ज्ञमव॑से नि॒युत्वा॑न्त्स॒जोषा॑ः पाहि गिर्वणो म॒रुद्भि॑ः॥५॥

इसका छन्द स्वराट्पंक्ति होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {पार्यः = (पार कर्मसमाप्तौ - चुरा. धातोर्णिजन्ताद् यत् अथवा पृ पालनपूरणयोः - जु. धातोः 'ऋहलोर्ण्यत्' इति ण्यत् - प्रत्ययः - वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)। ऋधक् = यः समृध्नोति सः (म.द.य.भा.३३.८७), ऋध्नुवन् (नि.४.२५)} विभिन्न छन्द रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व सबके पालक और आश्रयदाता आकाश तत्त्व में विभिन्न क्रियाओं को समृद्ध करता हुआ अपने तेज और बल के साथ स्थित होता है। वह विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के बलों का सेवन करता हुआ अनेक सृजन प्रक्रियाओं का पालन और रक्षण करता है।

इस सूक्त की ऋचाओं में 'मद्' शब्द विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। शेष भाग का व्याख्यान ५.५ खण्ड की तृतीय कण्डिका के व्याख्यान के समान समझें।।

तदनन्तर कुरुसुतिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु की वे रश्मियां, जो सम्पीडन और प्रेरक क्रियाओं में विशेष सहायक होती हैं, से इन्द्रदेवताक ऋ.८.७६.७-९ तृच की उत्पत्ति होती है।

(१) म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र मीढ्वः॒ पिबा॒ सोमं॑ शतक्रतो। अ॒स्मिन्य॒ज्ञे पु॑रुष्टुत॥७॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अत्यन्त तीक्ष्ण होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों एवं सेचक बलों से युक्त, व्यापक रूप से प्रकाशित एवं असंख्यकर्मा इन्द्र तत्त्व इस सृष्टि यज्ञ में विभिन्न सोम रश्मियों का पान करता है।

(२) तुभ्येदि॑न्द्र म॒रुत्व॑ते सु॒ताः सोमा॑सो अद्रिवः। हृ॒दा हू॑यन्त उ॒क्थिन॑ः॥८॥

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण, मरुत् एवं छन्द रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व {हृत् = हृदे हृदयाय (नि.१०.३५), असौ वाऽआदित्यो हृदयम् (श.६.१.२.४०), प्राणो वै हृदयमतो ह्ययमूर्ध्वः प्राणः सञ्चरति (श.३.८.३.१५), हृदयं वै स्तोमभागाः (श.८.६.२.१५)} समस्त उत्पन्न पदार्थ को सम्पीडित करता है। इसके लिए वह इन्द्र तत्त्व अनेक छन्द रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न कारण प्राण रश्मियों एवं मरुदादि रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकृष्ट करता है।

(३) पिबेदि॑न्द्र म॒रुत्स॑खा सु॒तं सोमं॒ दिवि॑ष्टिषु। वज्रं॒ शिशा॑न॒ ओज॑सा॥९॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने बल के द्वारा अपनी वज्र रश्मियों को तीक्ष्ण करता हुआ विभिन्न प्राण रश्मियों की नाना प्रकार की संगत क्रियाओं में सोम तत्त्व को सम्पीडित करता हुआ मरुद् रश्मियों को प्रकाशित व अवशोषित करता है।

यह छन्द रश्मि उपर्युक्त छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने के पश्चात् उत्पन्न होकर उनमें तेजी से व्याप्त हो जाती है। इस ऋचा में 'प्र' एवं 'आ' दोनों ही उपसर्ग विद्यमान नहीं हैं। इनकी अविद्यमानता ही पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

उपर्युक्त कण्डिका में वर्णित तीनों छन्द रश्मियां गायत्री छन्दस्क है, शेष व्याख्यान ५.४ की भाँति समझें, जहाँ यही कण्डिका दो भागों में विभक्त होकर विद्यमान है। इस कारण इस कण्डिका पर व्याख्यान यहाँ नहीं किया जा रहा है, वहीं पर देखें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में ३ त्रिष्टुप्, २ पंक्ति एवं ३ गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके कारण इन्द्र अर्थात् विद्युत् एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीक्ष्णता और भी

अधिक हो जाती है। इस समय भी पूर्व की भांति **गायत्री छन्द रश्मियां निविद् रश्मियों से युक्त होकर त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का वहन करती हैं।** इस समय ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ के सम्पीडन और संघनन की क्रिया और भी तीव्र हो उठती है, जिससे लोक निर्माण की प्रक्रिया और भी गतिशील होती जाती है, विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

ॐ इति २२.१ समाप्तः ॐ

अथ २२.२ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. महानाम्नीष्वत्र स्तुवते शाक्वरेण साम्ना राथन्तरेऽहनि पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं निरमिमीत, तस्मान्महानाम्न्योऽथो इमे वै लोका महानाम्न्य इमे महान्तः।।

व्याख्यानम्- यहाँ पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में ही महानाम्नी संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति की चर्चा की गई है। इस काल में पूर्वोक्त छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् इन महानाम्नी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ये छन्द रश्मियां शक्वरी छन्द रश्मियों के रूप में होती हैं। इन रश्मियों के विषय में विस्तार से जानने के लिए ४.४.१ अवश्यमेव पठनीय है। इनके शक्वरी छन्द रूप होने से इनकी उत्पत्ति पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। यहाँ ग्रन्थकार ने इस पञ्चम अहन् को भी राथन्तर कहा है। इस विषय में एक अन्य वेदवेत्ता ऋषि का कथन है- राथन्तरं पञ्चममहः (तै.सं.७.२.८.२)। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि ये महानाम्नी छन्द रश्मियां विभिन्न रमणीय तीक्ष्ण रश्मियों का रूप धारण करके विभिन्न क्रियाओं एवं क्रियारत परमाणु आदि पदार्थों को तारने वाली होती हैं। ये विभिन्न लोकों के निर्माण प्रक्रिया में बीजवपन के समान कार्य करती हैं, इसी कारण कहा गया है-

"अथ रथन्तरम्। रेतः सिक्तिरेव सा।" (जै.ब्रा.१.३०५)

जैसा कि हम जानते हैं कि शक्वरी छन्द रश्मियां अत्यन्त तीक्ष्ण शक्तिसम्पन्न होती हैं, जिनके विषय में कहा गया है-
(१) इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रः हनानीति तस्मा एतच्छन्दोभ्य इन्द्रियं वीर्यं निर्माय प्रायछदेतेन शक्नुहीति तच्छक्वरीणाः शक्वरीत्वम् (तां.१३.४.१)
(२) एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुं तद्यदाभिर्वृत्रमशकद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्यः (कौ.ब्रा.२३.२)। उधर हम यह भी जानते हैं कि इन्द्र तत्त्व वज्र रश्मियों के द्वारा ही वृत्ररूपी आसुर मेघ को नष्ट करता है। इस कारण ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है- "यद्रथन्तरं तच्छाक्वरम्" (ऐ.४.१.३)।।

अब महर्षि 'महानाम्नी' शब्द का निर्वचन करते हैं कि इन्हीं शक्वरी छन्द रश्मियों के तीक्ष्ण तेज और बल के द्वारा इन्द्र तत्त्व स्वयं को महान् बनाता है अर्थात् इन छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने के पश्चात् इन्द्र तत्त्व अत्यन्त प्रबल एवं व्यापक हो उठता है, इसी कारण इन शक्वरी रश्मियों को महानाम्नी कहते हैं। इन छन्द रश्मियों के काल में विभिन्न नाम अर्थात् वाग् रश्मियां अति व्यापक एवं प्रबल हो उठती हैं, इस कारण भी वे महानाम्नी कहलाती हैं। इसी प्रकार असंख्य वाग् रश्मियों के महान् कर्मों के द्वारा ब्रह्माण्डस्थ सभी लोकों की उत्पत्ति होती है। इस कारण ये सभी लोक भी 'महानाम्न्य' और 'महान्' कहलाते हैं। इस विषय में भी खण्ड ४.४ द्रष्टव्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में जब शक्वरी संज्ञक अत्यन्त तीक्ष्ण रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं, उस समय विद्युत् आवेशित कणों वा तरंगों एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता अत्यन्त बढ़ जाती है। उसी समय कॉस्मिक मेघों के अन्दर अत्यन्त शक्तिशाली विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होकर सम्पूर्ण पदार्थ को विक्षुब्ध करने लगते हैं। इस विक्षोभ के द्वारा पूर्वनिर्मित केन्द्रीय भागों के चारों ओर संघनित और सम्पीडित होता हुआ पदार्थ तेजी से चक्राकार घूमने लगता है और इस प्रकार घूर्णन करते हुए इस पदार्थ की संघनन प्रक्रिया तीव्र से तीव्रतर होने लगती है, जिसके कारण विभिन्न लोक

आग्नेय और वैद्युत रूप धारण किये हुए इस ब्रह्माण्ड में अनेकत्र प्रकट होने लगते हैं। इस समय विद्युत् कण वा तरंगें एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विविध प्रकार की छन्दादि रश्मियों से विशेषरूप से व्याप्त होती हैं। इसी प्रकार वे सभी निर्मित लोक भी विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों से युक्त होते हैं।।

२. इमान् वै लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिदं किंच; यदिमाँल्लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिदं किंच, तच्छक्वर्योऽभवंस्तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्।।
ता ऊर्ध्वाः सीम्नोऽभ्यसृजत; यदूर्ध्वाः सीम्नोऽभ्यसृजत, तत्सिमा अभवंस्तत्सिमानां सिमात्वम्।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि 'शक्वरी' शब्द का निर्वचन करते हुए कहते हैं कि वाक् एवं मनस्तत्त्व रूप प्रजापति इन उपर्युक्त किंवा अन्यत्र वर्णित शक्वरी संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के उपरान्त ही लोकों के निर्माण में सफल हो पाते हैं और लोकों के निर्माण के पश्चात् ही अन्य सभी पदार्थों की उत्पत्ति सम्भव हो पाती है, इस कारण इन छन्द रश्मियों को 'शक्वरी' कहा जाता है। 'शक्वरी' शब्द का मुख्य भाव यह है कि जिनके द्वारा लोकों के निर्माण का सामर्थ्य प्राप्त हो सके, यही शक्वरी छन्द रश्मियों का शक्वरीत्व है। इन छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने के पूर्व ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ बिखरा हुआ रहता है। यद्यपि पूर्वोक्त बृहती और त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियां नाना प्रकार के बलों को उत्पन्न करके पदार्थ को तेजी से सम्पीडित एवं संघनित करके लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को सम्पन्न करने का पूर्ण प्रयत्न करती हैं। विभिन्न लोकों के केन्द्र उत्पन्न होकर पिण्डाकार पदार्थ का निर्माण होने भी लगता है, तथापि इतना होने पर भी वे पिण्डाकार पदार्थ पूर्ण व स्थायी आकार प्राप्त नहीं कर पाते, बल्कि उनमें सतत विचलन-बिखराव होता रहता है। उस समय अत्यन्त गर्जना के साथ शक्वरी छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस विषय में ऋषियों का कथन है-

"यदशक्नोत् तस्माच्छक्वर्यः" (जै.ब्रा.३.१११)
"वर्धयत्येव शक्वरीभिः" (जै.ब्रा.२.२)
"स शक्वरीरसृजत तदपाङ्घोषोऽन्वसृज्यत" (तां.७.८.१२)

इन वचनों से भी यह प्रमाणित होता है कि ये शक्वरी छन्द रश्मियां अन्य सभी छन्द रश्मियों के सामर्थ्य को इतना बढ़ाती हैं कि उन सभी छन्द रश्मियों के प्रभाव अत्यन्त बढ़कर अपने-२ कार्य में सक्षम होते हैं, जिससे लोक निर्माण की अन्तिम एवं महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रारम्भ हो पाती है, यही इनका शक्वरीपन अर्थात् सामर्थ्य है।।

उन शक्वरी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति विशेषतः किस स्थान पर होती है, इसका वर्णन करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इनकी उत्पत्ति विशाल आसुर मेघों के बाहरी क्षेत्रों के ऊपर विशेषकर होती है अर्थात् उन आसुर मेघों की बाहरी सीमा के निकट विद्यमान देव पदार्थ में ये रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है-

शाक्वरं चेत्पृष्ठं महानाम्न्यः स्तोत्रियः।
ताभिः पुरीषपदान्युपसंतनुयात्। (आश्व.श्रौ.७.१२.१०-११)

ये शक्वरी अर्थात् महानाम्नी छन्द रश्मियां उस क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न छन्दादि रश्मियों को पुरीष अर्थात् पूर्ण बल से युक्त करके उनको व्यापक क्षेत्र में फैला देती हैं, जिससे वे सभी तीव्र बलवती रश्मियां परस्पर एकत्र होकर उस विशाल आसुर मेघ पर प्रहार करके उसे छिन्न-भिन्न कर सकें। क्योंकि ये शक्वरी = महानाम्नी छन्द रश्मियां आसुर मेघ की सीमा के बाहर उत्पन्न होती हैं, इस कारण इन्हें 'सिमा' भी कहा गया है। हमारी दृष्टि में यहाँ 'सिमा' शब्द से यह संकेत भी मिलता है कि ये छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को न केवल बलवती बनाती हैं, अपितु उन्हें परस्पर बांधकर आसुर मेघ पर प्रहार करने के लिए तीव्रता से प्रेरित भी करती हैं और उस तीव्रता के कारण आसुर मेघ की सीमा छिन्न-भिन्न हो जाती है। इसी कारण ऋषियों ने कहा है-

(१) ताः सीमानमेवोर्ध्वा उदीर्यासृज्यन्त, तद्वेवासां सिमात्वम्। (जै.ब्रा.३.१०४)

(२) यत् सीमानमभिनत्तस्मात् सिमाः अथो हैनाः सीमत एव ससृजे, सिम इति वै श्रेष्ठमाचक्षते। (जै.ब्रा.३.१११)
(३) सीमानमभिनत्तत्सिमाः। (तां.१३.४.१)।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त अति बलवती **शक्वरी** छन्द रश्मियां डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के विशाल क्षेत्रों की सीमा के बाहर स्थित दृश्य पदार्थ के अन्दर उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां वहाँ डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के साथ संघर्षरत विभिन्न प्रकार के तीक्ष्ण विकिरणों को परस्पर बांधकर उन्हें अति तीक्ष्ण रूप प्रदान करती हैं, जिसके कारण वे तीक्ष्ण विकिरण डार्क एनर्जी और डार्क मैटर पर तीक्ष्ण प्रहार करके उसकी सीमा को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। इसके पश्चात् सम्पूर्ण डार्क पदार्थ छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाता है, जिसके कारण विभिन्न ग्रहादि लोकों के निर्माण की प्रक्रिया, जो डार्क पदार्थ के तीव्र प्रक्षेपक और प्रतिकर्षक, साथ ही विध्वंसक बलों के कारण अवरुद्ध हो गई थी, पुनः तीव्रता से प्रारम्भ होने लगती है। इस प्रकार लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में इन शक्वरी रश्मियों के तीक्ष्ण सामर्थ्य की ही विशेष और अन्तिम भूमिका होती है।।
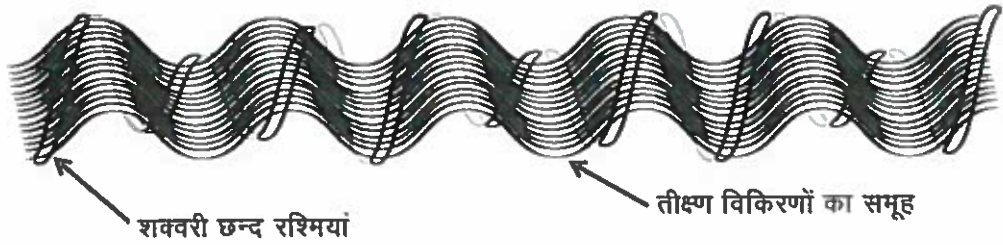
चित्र २२.१ शक्वरी रश्मियों द्वारा तीक्ष्ण विकिरणों का पारस्परिक बन्धन

३. स्वादोरित्था विषूवत, उप नो हरिभिः सुत, मिन्द्रं विश्वा अवीवृधन्नित्यनुरूपो वृषण्वान् पृश्निमान् मद्वान् वृधन्वान् पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
'यद्वावानेति' धाय्याऽच्युता।।
'अभि त्वा शूर नोनुम' इति रथन्तरस्य योनिमनु निवर्तयति; रथन्तरं ह्येतदहरायतनेन।।
'मो षु त्वा वाघतश्चनेति' सामप्रगाथोऽध्यासवान्, पशुरूपं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति' तार्क्ष्योऽच्युतः।।२।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त शाक्वर स्तोत्रिय छन्द रश्मियों के पश्चात् राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.१.८४.१०-१२ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम्।।१०।।

इसका छन्द विराडास्तारपंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्रता से प्रकाशित होता हुआ अत्यन्त विस्तृत होकर संयोगादि कर्मों को समृद्ध करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न सेचक बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व के साथ गमन करने वाली विविध रश्मियां नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को नियन्त्रित करके उन्हें प्रदीप्त और सक्रिय करती हैं। इस प्रकार वे सभी परमाणु आदि पदार्थ अनेक प्रकार की व्याप्ति एवं प्रकाशित मार्गों पर गमन करने वाले होकर नाना प्रकार के मिथुन उत्पन्न

करते हैं और इसके लिए एक-दूसरे को अपने साथ संगत करने का यत्न करते हैं।

(२) ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम्।।११।।

इसका छन्द आस्तारपंक्ति होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {सायकः = वज्रनाम (निघं.२.२०)। पृशनायुवः = आत्मनः स्पर्शमिच्छन्त्यः (म.द.भा)। पृश्नयः = अन्नं वै पृश्निः (श.८.७.३.२१), पृश्नयो मारुताः (मै.३.१३.१२), वाग्वै पृश्निः (काठ.३४.१)} उस इन्द्र तत्त्व के साथ संगत विभिन्न वाग् एवं मरुद् रश्मियां, जो संयोजक व अवशोषक गुणों से विशेष युक्त होती हैं, परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श करके वार-२ एक-दूसरे से उलझती हुई गमन करती हैं। वे रश्मियां कमनीय गुणों से युक्त होकर सोम पदार्थ को तपाती और वज्र रश्मियों को प्रेरित करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलता से प्रकाशित करती हुई वसाती हैं।

(३) ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्।।१२।।

इसका छन्द विराडास्तारपंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सश्चिरे = सज्जन्ति प्राप्नुवन्ति प्रापयन्ति वा (म.द.ऋ.भा.१.११०.६) (सश्चति गतिकर्मा - निघं.२.१४)} उस इन्द्र तत्त्व की वज्र रश्मियों के द्वारा प्रकृष्टरूप से प्रकाशित विभिन्न प्रकार की तरंगें नाना प्रकार के बलों से युक्त होती हैं। वे तरंगें विभिन्न प्रकार के संघातों को पूर्णता प्रदान करने के लिए नाना प्रकार के कर्मों को करने में समर्थ होती हैं। ऐसी वे तरंगें ही विभिन्न वसुओं को उत्पन्न करती हैं।

तदुपरान्त सुकक्ष ऋषि अर्थात् ताडन आदि बलों से विशेषयुक्त एक सूक्ष्म प्राणविशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.९३.३१-३३ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते। उप नो हरिभिः सुतम्।।३१।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र प्रकाश और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की सक्रियता की रक्षा करता है। वह अपनी कमनीय रश्मियों के द्वारा सोम रश्मियों को व्याप्त करके उन्हें सम्पीडित करता हुआ अवशोषित भी करता है।

(२) द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः। उप नो हरिभिः सुतम्।।३२।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से दो भागों वाला इन्द्र तत्त्व अपनी असुर संहारक शक्तियों के द्वारा अनेक प्रकार के कर्मों को करता हुआ सब ओर प्रवाहित होने लगता है। इन्द्र तत्त्व के विषय में एक अन्य ऋषि ने लिखा है- "द्वौ तव भागौ इतीन्द्रम् अब्रवीत्" (जै.ब्रा.२.२४३)। इस इन्द्र के दो भाग कौन-कौनसे हैं, इस विषय में उपर्युक्त ऋषि का ही कथन है- "प्राणापानौ वा अस्य हरी तौ हीदं सर्वं हर्त्तारौ हरतः" (जै.ब्रा.२.७६)। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राण और अपान रश्मियां ही इन्द्र तत्त्व के दो मुख्य भाग होते हैं।

(३) त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि। उप नो हरिभिः सुतम्।।३३।।

इसका छन्द विराड्गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से आसुर मेघों का हन्ता इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों का पान करता हुआ उन्हें सब ओर से सम्पीडित करता है।

तदुपरान्त इसके पश्चात् जेता माधुच्छन्दस ऋषि अर्थात् विभिन्न प्राणों वा प्रकाशित मार्गों के आच्छादक एवं नियन्त्रक एक सूक्ष्म प्राणविशेष द्वारा इन्द्रदेवताक एवं अनुष्टुप्-छन्दस्क ऋ.१.११.१-३

तृच, जिसके दैवत और छान्दस प्रभाव से सभी छन्द रश्मियां विशेष और अनुकूलता से प्रकाशित होकर इन्द्र तत्त्व को तीक्ष्ण वनाती हैं, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः। रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्।।१।।

इसके प्रभाव से सभी प्रकार की छन्द रश्मियां अन्तरिक्ष में व्याप्त सर्वाधिक तीव्र गति और वल से युक्त रमणीय रश्मियों से सम्पन्न विभिन्न क्रियाओं के पालक और रक्षक इन्द्र तत्त्व को समृद्ध करती हैं।

(२) सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते। त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम्।।२।।

इसके प्रभाव से विभिन्न वलों का पालक और रक्षक, सभी परमाणु आदि पदार्थों का नियन्त्रक अपराजित इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा सतत प्रकाशित होता है। इस इन्द्र तत्त्व के कारण विभिन्न वाधक असुर रश्मियां परमाणु आदि पदार्थों को वाधित नहीं कर पाती।

(३) पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः। यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम्।।३।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को किंवा उनकी विविध सृजन प्रक्रियाओं को प्रकाशित व समृद्ध करने के लिए विविध छन्दादि रश्मियों के वलों को तृप्त वा समृद्ध करता है, इसके साथ ही वह उन्हें सम्पीडित भी करता है। इन्द्र तत्त्व का यह व्यवहार निरन्तर वना रहता है।

इन उपर्युक्त तीनों तृचों की छन्द रश्मियों की 'अनुरूप' संज्ञा की गई है। इससे सिद्ध है कि ये सभी छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न शक्वरी रूप स्तोत्रिय छन्द रश्मियों के अनुकूल ही प्रकाशित होती हैं अर्थात् उनका अनुकरण ही करती हैं। 'अनुरूप' संज्ञा के विषय में ऋषियों का कथन है- "प्रजा अनुरूपः" (गो.उ.३.२१), प्रजा वा अनुरूपः (ऐ.३.२४), अग्निरनुरूप (जै.उ.३.१.४.२)। इससे प्रमाणित होता है कि ये छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न छन्द रश्मियों की प्रजारूप होकर इन्द्र तत्त्व के साथ-२ अग्नि तत्त्व को भी समृद्ध करती हैं। इन ऋचाओं में 'वृषन्', 'पृश्नि', 'मद्' एवं 'वृधन्' शब्दों की विद्यमानता होने से इन ऋचाओं की उत्पत्ति पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।।

इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

इसका व्याख्यान ५.१.७ में किये व्याख्यान के समान समझें।।

तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.७.३२.१-२ की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि।।१।।

इसका छन्द विराड् वृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशित व व्यापक होता हुआ पदार्थ को पिण्डाकार प्रदान करने में प्रवृत्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां व्यान रश्मियों के साथ मिलकर इन्द्र तत्त्व में विद्यमान प्राणापान रश्मियों में रमण करती हैं। ये सव रश्मियां परस्पर साथ-२ मिलकर सव ओर गतिशील और व्याप्त होती हैं, जिससे पदार्थ तेजी से संघनित होने लगता है।

(२) इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।।२।।

इसका छन्द पङ्क्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत होता है। {मक्षः = समुच्चय - आप्टेकोष} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान रूपी व्रह्म का धारक, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का आकर्षक, विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों का प्रकाशक तथा विविध प्राणादि रश्मियों

के समूह से संयुक्त हुआ वह नाना प्रकार की रश्मियों के मार्गों को सब ओर से धारण करता है।

इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "मोषु त्वा वाघतश्च नेति सद्विपद उपसमस्येत्. ...(आश्व.श्रौ.७.३.१६)"। इस पर टीका करते हुए आचार्य नारायण का कथन है- 'मोषु त्वा वाघतश्च न' इत्ययं प्रगाथो 'रायस्कामः' इत्यन्या द्विपदया सह वर्तते। तस्याश्च शंसनप्रकारः पूर्वस्मिन्नर्धर्चे प्रणवमकृत्वाऽर्धर्चान्तेन वर्णेन द्विपदाद्यवर्णं यथाशास्त्रं संदध्यात्। 'रथेन पादमादध्. रायस्कामः इति। सोऽयमुपसमासः, एवं कृत्वा शंसेत्।" इसका तात्पर्य यह है कि इन उपर्युक्त दोनों ऋचाओं में से प्रथम ऋचा के साथ इसी सूक्त की इसी देवता और ऋषि वाली साम्नी पंक्ति-छन्दस्क-

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे।।३।। (ऋ.७.३२.३)

के 'रायस्कामः' का समस्त द्विपदरूप भी प्रथम ऋचा के साथ संयुक्त हो जाता है, इस कारण यह प्रगाथ रूपी रश्मिद्वय अध्यासयुक्त हो जाता है। इन ऋचाओं को महर्षि ने पशुरूप भी इस कारण कहा है, क्योंकि ये ऋचाएं बृहती और पंक्ति छन्द से युक्त होने के साथ-२ विशेष संयोजकताधर्म से युक्त होती हैं। इनका अध्यासयुक्त एवं पशुरूप होना पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में ही ४ पंक्ति, ३ गायत्री, ४ अनुष्टुप्, ४ त्रिष्टुप् एवं १ बृहती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इन सभी के कारण विद्युत् एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता और भी बढ़ने लगती है। इस ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार के विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न होकर तीव्र विद्युत् धाराएं प्रवाहित होने लगती हैं। नये-२ अणुओं की उत्पत्ति एवं कॉस्मिक डस्ट के संघनन से नाना प्रकार के लोकों का निर्माण तीव्रता से होने लगता है। जब विद्युदावेशित तरंगों किंवा विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता अत्यन्त बढ़ी हुई होती है, उस समय वे तरंगें एक-दूसरे को बार-२ स्पर्श करती हुई उलझती हुई सी तीव्रता से गमन करती हैं। ये तरंगें कॉस्मिक पदार्थ को तोड़ती-फोड़ती हुई अनेक प्रकार के संघातों को जन्म देती हैं। कॉस्मिक मेघों के तीव्रता से सम्पीडित वा संघनित होने में इन्हीं तरंगों की विशेष भूमिका होती है। ये तरंगें ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक शक्तिशाली होकर डार्क एनर्जी के दुष्प्रभावों को नष्ट करती हैं। इस समय उत्पन्न तीन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अन्य रश्मियों को अव्यवस्थित वा भ्रान्त होने से बचाती हैं तथा १ त्रिष्टुप् छन्द रश्मि निरन्तर सबका धारण करती रहती है।

इति २२.२ समाप्तः

अथ २२.३ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथेति' सूक्तं पाङ्क्तं; पञ्चपदं पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम् ।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त पञ्चम अहन् में ही श्यावाश्व ऋषि अर्थात् अति तीव्र गति से प्रवाहित होने वाले एवं विशेष वलयुक्त सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.३७ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) प्रेदं ब्रह्मं वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुंन्वतः शंचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंन्दिनस्य सवंनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमंस्य वज्रिवः।।१।।

इसका छन्द विराडतिजगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अत्यन्त गतिशील और प्रकाशित होता हुआ तीव्रता से अन्योऽन्य क्रियाएं करने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियों का रक्षक इन्द्र तत्त्व विशाल आसुर मेघों के साथ संघर्ष में विद्युत् वा प्राणापान रश्मियों की सम्पूर्ण रक्षण आदि क्रियाओं वा वलों के द्वारा उस आसुर पदार्थ को तीव्रता से पीसता हुआ संयोज्य पदार्थों की रक्षा करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वज्र रश्मियों से युक्त होकर उस असुर पदार्थ को नष्ट करता हुआ व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में होने वाली विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं में भाग लेने वाले विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का पान करता है।

(२) सेहान उंग्र पृतंना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंन्दिनस्य सवंनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमंस्य वज्रिवः।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव किंचित् तीक्ष्ण परन्तु कम तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह उपर्युक्त तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व अन्य तीक्ष्ण हिंसक रश्मिसमूहों को अपने सामर्थ्य के द्वारा नष्ट वा नियन्त्रित करता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व इस चरण में उत्पन्न अनेक त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर किंवा उनसे प्रेरित होकर विभिन्न मरुद् रश्मियों को अवशोषित करता है।

(३) एकराळस्य भुवंनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंन्दिनस्य सवंनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमंस्य वज्रिवः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उपर्युक्त वह इन्द्र तत्त्व इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक प्रकाशित होकर अन्य सभी पदार्थों को भी प्रकाशित करने वाला होता है। वह सूत्रात्मा वायु एवं व्यान प्राण से संयुक्त सभी छन्द रश्मियों को तीव्रता प्रदान करता हुआ नाना परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होता है।।

(४) सस्थावांना यवयसि त्वमेक इच्छंचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंन्दिनस्य सवंनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमंस्य वज्रिवः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व अपनी तेजस्विनी एवं वलवती रश्मियों के द्वारा अकेले ही विभिन्न संघर्षरत पदार्थों किंवा देव और असुर पदार्थों

को पृथक्-२ करता है। वह असुर पदार्थों का हनन करता हुआ अपनी प्रशंसनीय रश्मियों के द्वारा सूक्ष्म मरुद् रश्मियों का पान करता है।

(५) क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः।।५।।

इसका, छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व अपने ऐश्वर्य अर्थात् अपनी नियन्त्रण सामर्थ्य के द्वारा समस्त संरक्षित पदार्थ को अपने साथ संयुक्त करता हुआ उसे नियन्त्रित रखता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न असुर रश्मियों में व्याप्त होता हुआ उन्हें नष्ट व छिन्न-भिन्न करके अन्तरिक्ष में विभिन्न परमाणुओं के संयोगादि कर्मों को अपने नियन्त्रण में रखता है।

(६) क्षत्रायं त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी सभी प्रकार की रक्षणादि शक्तियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को भेदन शक्ति सम्पन्न करने के लिए उन्हें तीक्ष्ण वल, गति और कान्ति प्रदान करता है। वह अहिंसनीय इन्द्र तत्त्व विभिन्न वलों की विविध क्रियाओं को अपनी वज्ररूप रश्मियों के द्वारा रोकता हुआ पदार्थ मात्र को व्याप्त करता है।

(७) श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्रं क्षत्राणि वर्धयन्।।७।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत और छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को शक्तिशाली वनाता हुआ अकेला ही भेदक शक्ति सम्पन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को समृद्ध करके वाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट करने का सामर्थ्य प्रदान करता है। वह सूत्रात्मा वायु रश्मियों के सहाय से कर्म करते हुए किंवा इस छन्द रश्मि के कारणरूप श्यावाश्व ऋषि प्राण के द्वारा प्रकाशित होते हुए पदार्थों को यथावत् गति प्रदान करता है।

ग्रन्थकार ने इस सूक्त रूप रश्मिसमूह को पाङ्क्त कहा है, इसका तात्पर्य कदाचित् यह नहीं है कि यह सूक्त पंक्ति-छन्दस्क है, वल्कि इसका तात्पर्य यह है कि इस सूक्त की ऋचाएं पांच-२ पादों से युक्त हैं, जैसा कि ग्रन्थकार ने इस सूक्त को पञ्चपद कहा है। आचार्य सायण ने अपने वेदभाष्य में इस सूक्त की प्रथम ऋचा को विराडतिजगती और अन्य ऋचाओं को महापंक्तिश्छन्दस्क माना है। इस विषय में हमारा मत यह भी है कि ये ऋचाएं जगती छन्दस्क होते हुए भी पंक्ति छन्द रश्मियों के व्यापक विस्तारक प्रभाव से युक्त होने के कारण महापंक्तिश्छन्दस्क भी मानी जा सकती हैं। प्रधानता के आधार पर इस सम्पूर्ण सूक्त को पाङ्क्त कहा जा सकता है। इसके पाङ्क्त होने से इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- व्यान प्राण के उत्कर्ष काल में पंक्ति छन्द रश्मियों के प्रभाव से युक्त विविध प्रकार की ७ जगती रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके प्रभाव से सम्पूर्ण व्रह्माण्डस्थ पदार्थ में विद्युदावेशित तरंगों एवं विद्युत् चुम्वकीय तरंगों की तीव्रता और मात्रा दोनों में ही वृद्धि होती है। इस समय तीव्र उष्ण विद्युदावेशित तरंगें, डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर के साथ-२ अन्य तीक्ष्ण ऐसी विद्युत् चुम्वकीय तरंगें, जो विभिन्न संयोगादि क्रियाओं एवं गृहादि लोकों के निर्माण में होने वाली संघनन की क्रियाओं में वाधा डालती हैं, को नष्ट करती हैं। उस समय यद्यपि गृहादि लोकों का निर्माण होता है, तदपि उस समय सम्पूर्ण पदार्थ तेजस्वी और तीक्ष्ण विद्युत् तरंगों के साथ-२ अग्नि की विशाल ज्वालाओं से युक्त होता है। ध्यातव्य है कि **गुरुत्वाकर्षण बल, जो सम्पूर्ण पदार्थ को संघनित करता है, वह भी एक विशेष प्रकार की विद्युत् का ही रूप है, जिससे केवल आकर्षण बल ही कार्य करता है। गुरुत्वाकर्षण बल के अन्तर्गत सूत्रात्मा वायु और व्यान प्राण के अतिरिक्त त्रिष्टुप् एवं बृहती छन्द रश्मियों का विशेष भाग**

होता है, जिसके कारण गुरुत्व बल आकर्षण और धारण दोनों ही गुणों से युक्त होता है।

२. "इन्द्रो मदाय वावृध" इति सूक्तं मद्वत् पाङ्क्तं, पञ्चपदं पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो
रूपम्।।
"सत्रा मदासस्तव विश्वजन्या" इति सूक्तं मद्वत् त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधाराऽऽयतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.१.८१ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) इन्द्रो मदा॑य वावृधे शव॑से वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजे॑षु प्र नो॑ऽविषत्।।१।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व प्रकाशित होता हुआ तेजी से विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मरुद् रश्मियों को अपने साथ संगत करके तीव्र वल एवं सक्रियता को वढ़ाता है। इसके कारण वह इन्द्र तत्त्व विशाल वा लघु स्तरों पर होने वाले संग्रामों में देव पदार्थों को आकृष्ट करता हुआ असुरादि तत्त्वों से उनकी रक्षा करता है।

(२) असि हि वी॑र सेन्योऽसि भूरि॑ परादृदिः।
असि॑ दभ्रस्य॑ चिद् वृधो यज॑मानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि॑ ते वसु॑।।२।।

इसका छन्द भुरिग् वृहती होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्रता से पदार्थ का संघनन करके उसे आकार प्रदान करने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से विशाल वज्रसमूहयुक्त वह महान् इन्द्र तत्त्व असुरादि वाधक पदार्थों के प्रहार से देव पदार्थ को वचाता है और उस पदार्थ को अधिगृहीत करके छोटे वा वड़े संघर्ष में उन्हें वल प्रदान करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोग आदि कर्मों में विशाल स्तर पर परमाणुओं को प्रवृत्त करता है।

(३) यदुदीर॑त आजयो॑ धृष्णवे॑ धीयते धना॑।
युक्ष्वा म॑दच्युता हरी कं हनः कं वसौ॑ दधोऽस्माँ॑ इन्द्र वसौ॑ दधः।।३।।

इसका छन्द निचृदास्तारपंक्ति होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण रूप से अतिव्यापक क्षेत्र में फैलने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व पदार्थों के संघात की प्रक्रिया में उत्कृष्टता व दृढ़ता के साथ परमाणु आदि पदार्थों को धारण करता है। वह तीव्र वल व गति से सम्पन्न कमनीय वा हरणशील रश्मियों को परस्पर संगत करके किन्हीं पदार्थों, विशेषकर वाधक पदार्थों को नष्ट करता है। किन्हीं अन्य पदार्थों को संघातों के रूप में धारण करता है, साथ ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में प्राणादि रश्मियों को धारण करता है।

(४) क्रत्वा॑ महाँ॑ अ॑नुष्वधं भीम आ वा॑वृधे शव॑ः।
श्रिय ऋष्व उ॑पाकयोर्नि शिप्री हरि॑वान्दधे हस्त॑योर्वज्र॑मायसम्।।४।।

इसका छन्द, देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {शिप्री = शत्रूणामाक्रोशकः (म.द.भा.)। ऋष्वः = महन्नाम (निघं.३.३), प्रापकः (म.द.ऋ.भा.३.५.५), गतिमान् (म.द.ऋ.भा.१.१४६.२)} विभिन्न हरणशील रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व वाधक तीक्ष्ण रश्मि आदि पदार्थों को घोर गर्जना के साथ कम्पाने वाला महान् संयोजक वलों के द्वारा संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को समृद्ध करता है। वह वज्र

रश्मियों के प्रवल आकर्षण-प्रतिकर्षण वलों को धारण करता हुआ समीपस्थ असुरादि पदार्थों को निष्प्रभ करता है तथा देव पदार्थ की रक्षा करता है।

(५) आ पंप्रौ पार्थिवं रजों बद्बधे रोचना दिवि।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व से संगत किंवा इन्द्ररूप में व्यक्त प्राणादि रश्मियां सभी उत्पन्न होने वाले सभी परमाणु आदि पदार्थों का संघात करता है। इस अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न पार्थिव वा आग्नेय परमाणु सर्वत्र व्याप्त होते हैं। वही इन्द्र तत्त्व उन सव परमाणु समूहों को परस्पर दृढ़ता से वांधे रखता है।

(६) यो अर्यो मर्तभोजनं परादर्दाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरिं ते वसुं भक्षीय तव राधसः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सवका नियन्त्रक, विभिन्न वलादि का दाता, धनंजय रश्मियों के साथ अन्य प्राणादि रश्मियों किंवा परमाणु आदि पदार्थों को संगत करके नाना मरुद् रश्मियों को अवशोषित करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न क्रियाओं को सिद्ध करने हेतु विभिन्न पदार्थों को अभीष्ट वल प्रदान करता है।

(७) मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवांमृजुक्रतुः।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसुं शिशीहि राय आ भर।।७।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शिशीहि = शिशीति दानकर्मा (नि.५.२३), तीक्ष्णान् सम्पादय (म.द.ऋ.भा.३.२४.५)। ऋजुः = असौ वा लोकः ऋजुः सत्यं ह्यृजुः सत्यमेष य एषः (सूर्यः) तपति (श.१४.१.२.२२)} विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोकों के निर्माण की प्रक्रिया का दाता इन्द्र तत्त्व दोनों प्रकार के हरणशील वलों के द्वारा व्यापक रूप से सैकड़ों वसु संज्ञक लोकों को तीक्ष्णता से वनाने का उपक्रम करता है। वह अनेक प्रकार के रश्मिसमूहों को सव ओर से धारण व पुष्ट करता हुआ विभिन्न परमाणु समूहों को संघटित करता है।

(८) मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।
विद्मा हि त्वां पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव।।८।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उस तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व के आश्रय में व्यापक परमाणु समुदाय इस जगत् किंवा लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में अनेक प्रकार के वलों को सिद्ध वा प्राप्त करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को अपने साथ संयुक्त करके नाना सृजन क्रियाओं को सिद्ध करता है।

(९) एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर।।९।।

इसका छन्द निचृदास्तार पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के प्रकट वा प्रकाशित होने पर विभिन्न उत्पन्न पदार्थ सभी वरणीय क्रिया एवं वलों को पुष्ट करते हैं किंवा उनसे युक्त होते हैं। वह इन्द्र तत्त्व उन पदार्थों के मध्य जो भी कम सक्रिय वा निष्क्रिय परमाणु आदि पदार्थ विद्यमान होते हैं, उनके मध्य प्रविष्ट होकर उन्हें पूर्ण प्रकाशित व सक्रिय करके सव ओर से धारण करता है।

इस सूक्त की ऋचाओं में 'मद्' शब्द की विद्यमानता, पंक्ति छन्द की प्रधानता तथा इसके पंचपद होने से भी इसकी छन्द रश्मियां पंक्ति कहाने से इसकी उत्पत्ति पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के

उत्कर्ष की सूचक है।।

तदुपरान्त नर ऋषि अर्थात् विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों {नरः = नरो ह वै देवविशः (जै. ब्रा.१.८९ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), (देवविशा वै मरुतः - मै.२.१.६; ३.७.१; देवविशा = आदित्या मनुष्यविशाया ईशे - काठ.११.६)} अथवा प्राणादि प्राथमिक प्राण रश्मियों से इन्द्रदेवताक ऋ.६.३६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) सत्रा मदा॑सस्तव॑ वि॒श्वज॑न्याः स॒त्रा रायो॒ऽध॒ ये पार्थि॑वासः।
स॒त्रा वाजा॑नामभवो विभ॒क्ता यद्दे॒वेषु॑ धा॒रय॑था असु॒र्य॑म्।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इसके देवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अतितीक्ष्ण तेज व वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के वल विभाजन कर्म के द्वारा उत्पन्न सभी पदार्थों में सक्रियता, मरुद् वा छन्द रश्मियों से संयुक्तता तथा सघनता आदि गुण सतत विद्यमान रहते वा उत्पन्न होते हैं। वह इन्द्र तत्त्व देव पदार्थ के अन्दर असुर पदार्थ से आक्रान्त जो भी पदार्थ विद्यमान होता है, उसे धारण करके पृथक् करता है।

(२) अनु॒ प्र ये॑जे॒ जन॒ ओजो॑ अस्य स॒त्रा द॑धिरे॒ अनु॑ वी॒र्या॑य।
स्यूमगृभे॒ दुध॒येऽर्व॑ते च॒ क्रतुं॑ वृञ्ज॒न्त्यपि॑ वृत्र॒हत्ये॑।।२।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण वल वेग के साथ विस्तृत होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व नित्य प्राण रश्मियों के ओज-वल को धारण करता है। विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों, जो परस्पर मिलकर एक-दूसरे को अपने साथ संयुक्त किए रहते हैं, को पराक्रम प्रदान करने के लिए प्रकृष्ट प्रकाश तथा क्रियाशीलता को अनुकूलता से धारण करता है। विभिन्न हिंसक एवं आशुगामी रश्मि आदि पदार्थों को निरुद्ध करके वह इन्द्र तत्त्व अनुकूल संयोगादि क्रियाओं को सम्पन्न करता है।

(३) तं स॒ध्रीची॑रू॒तयो॒ वृष्ण्या॑नि॒ पौंस्या॑नि नि॒युतः॑ सश्चु॒रिन्द्र॑म्।
स॒मु॒द्रं न सिन्ध॑व उ॒क्थशु॑ष्मा उरु॒व्यच॑सं॒ गिर॒ आ वि॑शन्ति।।३।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से अनेक वलादि गुणों में व्याप्त विभिन्न छन्द रश्मियों के शोषक वलों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व समस्त अन्तरिक्ष में सूत्रात्मा वायु किंवा व्यान प्राण की भाँति सवको वांधता हुआ सव ओर से व्याप्त होता है। उस इन्द्र तत्त्व में नियन्त्रित प्राणादि रश्मियों के समान गति, रक्षण, कान्ति, नियंत्रण सामर्थ्य, सेचक वा उत्पादक वल भी सतत विद्यमान होते हैं।

(४) स रा॒यस्खामुप॑ सृजा गृ॒णा॒नः पु॑रुश्च॒न्द्रस्य॒ त्वमि॑न्द्र॒ वस्वः॑।
पति॑र्बभू॒थास॑मो॒ जना॑नामेको॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य॒ राजा॑।।४।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व समस्त लोकों का अनुपम प्रकाशक व नियन्ता है। वह अनेक उत्पन्न पदार्थों, विभिन्न व्यापक एवं तेजस्विनी रश्मियों, विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करता है। {खा = नदीनाम (निघं. १.१३)} वह इन्द्र तत्त्व आकाश में गर्जना करता हुआ पदार्थ की विभिन्न धाराओं को उत्पन्न करता है।

(५) स तु श्रु॑धि॒ श्रुत्या॒ यो दु॑वो॒युर्द्यौर्न भूमा॒भि रायो॑ अ॒र्यः।
असो॒ यथा॑ नः॒ शव॑सा चका॒नो यु॒गेयु॑गे॒ वय॑सा॒ चेकि॑तानः।।५।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह

इन्द्र तत्त्व प्रकाश रश्मियों की भाँति विभिन्न परमाणुओं के साथ संयोजक भाव रखता हुआ तथा उनसे संयुक्त होते समय उनके चारों ओर चक्रण करता हुआ, अपने प्रखर वलों के द्वारा सब पदार्थों को नियन्त्रित करने का प्रयास करता हुआ, प्रत्येक संयोग-संघात क्रिया में अपने वल से उन परमाणुओं को उत्तेजित करता है। वह अपनी गमनशक्ति के द्वारा सब परमाणु आदि पदार्थों को गति प्रदान करता है।

इस उपर्युक्त पांच छन्द रश्मियों वाले सूक्त में 'मद्' शब्द विद्यमान है। शेष भाग का व्याख्यान ५.४.६ में इसी प्रकार की कण्डिका के व्याख्यान के समान समझें। इसमें 'मद्' शब्द की विद्यमानता पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में एक वृहती, एक त्रिष्टुप् तथा वारह विविध पंक्ति छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस काल में इन्द्र अर्थात् विद्युत् तरंगों का विस्तार व वल दोनों ही समृद्ध होकर पदार्थ के संघनन को और भी समृद्ध करते हैं। उस समय विद्यमान तप्त विद्युदावेशित तरंगें डार्क एनर्जी के प्रहारों को विशाल व सूक्ष्म दोनों ही स्तरों पर नष्ट वा नियन्त्रित करती हैं। विद्युत् के कारण विभिन्न कणों के संयोग की प्रक्रिया तीव्र होती है। इस समय अनेक प्रकार के विकिरण भी परस्पर संगत होकर नवीन विकिरणों को उत्पन्न करते हैं। **ब्रह्माण्ड में विद्यमान वा व्याप्त विभिन्न कणों तथा क्वाण्टाज् को विद्युत् ही अपने बल से बांधती व धारण करती है। विद्युत् के बिना किसी भी पदार्थ का संघनन व सम्पीडन नहीं हो सकता।** विभिन्न कणों वा क्वाण्टाज् की सतत गति व वल का कारण विद्युत् ही है। हां, **विद्युत् के बल का कारण प्राणापानादि रश्मियां, उनके बल का कारण मन एवं वाक् तत्त्व तथा सबके बल का मूल कारण चेतन ईश्वर तत्त्व है।** सृष्टि में विभिन्न संघातों की दृढ़ता का कारण भी विद्युत् ही है। विद्युत् ही **सूत्रात्मा वायु** एवं **व्यान प्राण** की भाँति सृष्टि के सभी पदार्थों को वांधे हुए है। विभिन्न संयोग-वियोग, धारण, प्रक्षेपण आदि सभी क्रियाओं के पीछे विद्युत् ही की भूमिका होती है। **जब कोई विद्युत् तरंग किसी कण आदि के साथ संयुक्त होने हेतु अग्रसर होती है, तब वह उस कण के चारों ओर परिक्रमण करते हुए ही संयुक्त होती है, न कि सहसा सीधी संयुक्त होती है।** विद्युत् चुम्वकीय तरंगों का कणों से संयोग भी इसी भाँति होता है। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग पढ़ें। इस समय उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मि विद्युत् क्षेत्रों को मर्यादा प्रदान करके उसे क्षीणता से वचाती है।।
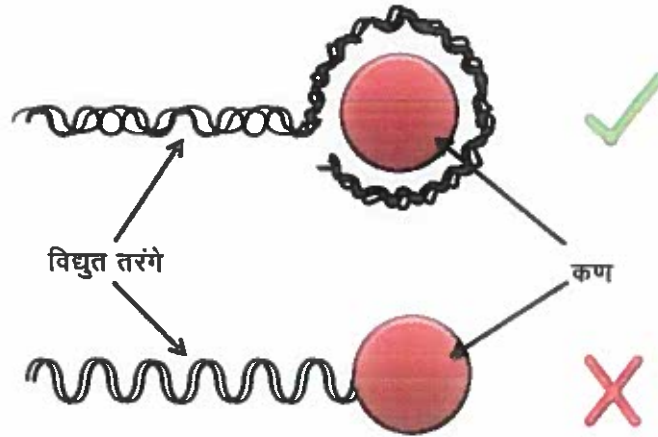
चित्र २२.२ विद्युत् तरंग का किसी कण से संयोग

३. 'तमिन्द्रं वाजयामसीति' पर्यासः, स वृषा वृषभो भुवदिति पशुरूपं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

ता उ गायत्र्यो गायत्र्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माद् गायत्रीषु निविदं दधाति।।

'तत्सवितुर्वृणीमहे'ऽद्या नो देव सवितरिति, वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ; राथन्तरेऽहनि पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
'उदुष्य देवः सविता दमूना' इति सावित्र मा दाशुषे सुवति भूरि वाममिति वामं पशुरूपं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त सुकक्ष ऋषि अर्थात् ताडनादि गुणों से विशेष युक्त एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क ऋ.८.९३.७-९ तृच, जिसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज एवं वल से युक्त होता है, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत्।।७।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विशाल आवरक आसुर मेघ को नष्ट वा छिन्न-भिन्न करने हेतु विशेष वलवान् होता है। वह सेचक वलों से युक्त होकर नाना प्रकार के उत्पादक गुणों से युक्त होता है।

(२) इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः। द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः।।८।।

इसके प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न दुर्वल वा वाधाओं से आक्रान्त परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को वल प्रदान करता तथा वाधक रश्मियों का दमन करता है। यह अत्यन्त वल-ओज युक्त प्रकाशशील, विभिन्न छन्द व मरुदादि रश्मियों से अधिक युक्त होता है।

(३) गिरा वज्रो न संभृतः सवलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः।।९।।

इसके प्रभाव से रोकने की सामर्थ्य से युक्त होकर अच्छी प्रकार धारणादि वलों से पुष्ट, तीक्ष्ण असुरादि रश्मियों द्वारा विचलित न होने वाला वह इन्द्र तत्त्व विस्तृत क्षेत्र में सवको व्याप्त करके वलयुक्त करता है।

इन तीनों छन्द रश्मियों का समूह 'पर्य्यास' कहा जाता है, इसका कारण यह है कि ये रश्मियां दूर-२ तक व्याप्त हो जाती किंवा प्रक्षिप्त की जाती हैं। इस तृच की प्रथम ऋचा के अन्तिम पाद "स वृषा वृषभो भुवत्" को ग्रन्थकार ने पशु रूप कहा है, {पशुः = वज्रो वै पशवः (श.६.४.४.६), गृहा वै पशवः (श.१.८.२.१४)} इससे प्रकट होता है कि इस छन्द रश्मि का यह भाग तीक्ष्ण वज्ररूप वल का ऐसा कार्य करता है, जो वाधक असुरादि रश्मियों को नियन्त्रित करता तथा देव रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करता है। इस कारण यह सूक्त रूप रश्मिसमूह ही पशुरूप कहा गया है। इसका पशुरूप होना पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.६.७ में इसी प्रकार की कण्डिका के व्याख्यान के समान समझें।।

तदुपरान्त इस कण्डिका का व्याख्यान ५.२.२ में द्रष्टव्य है। भेद केवल यह है कि वहाँ इस कण्डिका में वर्णित दोनों तृचों की उत्पत्ति तृतीय अहन् किंवा कृकल प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है, जवकि यहाँ इनकी उत्पत्ति पंचम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। हम ४.१३.२ में लिख चुके हैं कि शाक्वर साम रथन्तर साम के समान व्यवहार करता है। इस कारण पञ्चम अहन्, जिसके विषय में इसी अध्याय के द्वितीय खण्ड के प्रारम्भ में स्पष्ट किया गया है कि यह चरण राथन्तर कहलाता है और राथन्तर साम शाक्वर के समान व्यवहार करता है। इस कारण इन तृचों की उत्पत्ति पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। ये रश्मियां अपनी रमणीय वाहक रश्मियों के द्वारा अन्य रश्मि आदि पदार्थों को नाना वाधाओं से तारती हैं।।

तदुपरान्त भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु व मनस्तत्त्व के योग से उत्पन्न प्राणरूप प्राथमिक प्राण से सवितृदेवताक ऋ.६.७१.४-६ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम्।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से वायु एवं विद्युत् रूपी सविता तीव्र तेज व बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {हिरण्यम् = क्षत्रस्यैतद् रूपं यद्धिरण्यम् (श.१३.२.२.१७)। अयः = विश एतद् रूपं यदयः (श.१३.२.२.१६)} वे वायु-विद्युत् रूपी सविता अपने तीक्ष्ण आकर्षण-भेदन आदि बलों के द्वारा किंवा निविद् रश्मिरूप क्षत्र रश्मियों के हस्तरूप बलों के द्वारा असुरादि बाधक तीक्ष्ण रश्मियों का दमन करते हैं। वे अध्याय १० में वर्णित विट् सूक्त रश्मिसमूह के व्यापक वा प्रापक बलों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संगत करते हैं। वे दोनों वाग् रश्मियों की तीक्ष्णता से उत्पन्न अग्नि की ज्वालाओं के द्वारा पदार्थ को अप्रकाशित अवस्था से उठा कर प्रकाशित रूप प्रदान करते हैं। वे दोनों दानादि कर्मों में सभी परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से प्रेरित करते हैं।

(२) उदु अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम्।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अभ्वम् = महन्नाम (निघं.३.३), उदकनाम (निघं.१.१२)} वे वायु व विद्युत् अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते एवं उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं अर्थात् उन दोनों की भारी समृद्धि होती है। वे दोनों पार्थिव परमाणुओं पर अपनी व्यापक वृष्टि करके उन्हें तीव्र गति प्रदान करते हुए आकृष्ट करते हैं। वे दोनों सबकी रक्षा करते हुए अपने तेजस्वी आकर्षक व धारक बलों के द्वारा उन्हें सुन्दर रूप प्रदान करते हैं तथा सदैव उनके अर्थात् पार्थिव परमाणुओं के निकट ही विद्यमान रहते हैं।

(३) वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम।।६।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित वायु व विद्युत् वर्तमान व भावी सभी क्रियाओं को श्रेष्ठतर बनाते हैं। प्रत्येक देव पदार्थ के अन्दर उत्तम प्रेरण व सृजन गुणों को उत्पन्न करते एवं उन्हें श्रेष्ठता प्रदान करते है। इस प्रकार की क्रियाओं के द्वारा वे अनेक प्रकार के प्रकाश व कर्मों को श्रेष्ठता के साथ सम्पन्न करके विभिन्न पदार्थों को उनके केन्द्रीय भाग की ओर प्रशंसित ढंग से सम्पीडित करते हैं। इस रश्मि द्वारा सभी क्रियाओं की श्रेष्ठता सिद्ध होना विशेष प्रभाव है।

इस तृच की प्रथम ऋचा के अन्तिम पाद 'आ दाशुषे सुवति भूरि वामम्' को ग्रन्थकार ने पशुरूप कहा है, इसका आशय उपर्युक्त कण्डिका "तमिन्द्र वाजयामसीति.........के समान समझें। इसका पशुरूप होना पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ गायत्री, १ अनुष्टुप् एवं ३ त्रिष्टुप् रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विद्युत् और विद्युत् चुम्बकीय तरंगें साथ ही विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियां विशेष शक्तिशाली होती हैं। इस समय भी अत्यन्त गर्म विद्युदावेशित तरंगों का प्रहार डार्क एनर्जी और डार्क मैटर पर होता है। जिससे उनका प्रक्षेपक बाधक बल समाप्त होकर गुरुत्व बल अपना प्रभाव बढ़ाकर लोकों के निर्माण की प्रक्रिया निर्बाधरूप से करता है। विभिन्न परमाणु आदि कणों में अन्योऽन्य क्रिया करने की शक्ति बढ़ती जाती है और ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ अनेकों विचित्र रंग एवं रूपों से युक्त हो जाता है। विभिन्न प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की शिथिलता एवं अव्यवस्थित गतिशीलता समाप्त होकर समुचित क्रियाओं का सम्पादन होता है। इस समय ३ गायत्री छन्द रश्मियां पूर्वोक्त निविद् रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न त्रिष्टुप् रश्मियों को वहन करती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

४. 'मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे' इति द्यावापृथिवीयं; रुवद्धोक्षेति पशुरूपं पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
'ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेत्यार्भवं', वाजो वै पशवः पशुरूपं पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर वामदेव ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण किंवा इसके साथ मनस्तत्त्व के संयुक्त रूप से द्यावापृथिव्यौ-देवताक ऋ.४.५६.१-४ की उत्पत्ति होती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "उदुष्य देवः सविता दमूना इति तिस्रो मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे इति चतस्र" (आश्व. श्रौ.८.८.६)। महर्षि आश्वलायन के इसी वचन के आधार पर हमने यहाँ चतुर्ऋच का ग्रहण किया है। इनका क्रम निम्नानुसार है-

(१) मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्नुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थ तीव्र तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों प्रकार के पदार्थ विभिन्न वलों के द्वारा सब ओर से विशेष करके प्रक्षिप्त होते, गर्जना करते और विभिन्न प्रकार की प्रदीप्त रश्मियों के साथ अत्यन्त विस्तार को प्राप्त होते हैं। वे अपनी व्याप्ति, श्रेष्ठता और विस्तृत वलों के कारण विशेषरूप से सक्रिय होते हैं।

(२) देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों प्रकार के पदार्थ अपनी तेज दीप्तियों के द्वारा पवित्र होते हुए संगमनीय प्रकाशित परमाणुओं के रूप में अहिंसक प्राण रश्मियों से युक्त तीव्र प्रतिकर्षण वलों से मुक्त होते हैं। वे दोनों ही प्राण एवं छन्दादि रश्मियों से उत्पन्न होते, विभिन्न लोकों के निर्माण और संगम की प्रक्रिया का वहन करते तथा परस्पर संगमनीय व्यवहारों में दृढ़ता से स्थित होते हैं।

(३) स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान।
उर्वी गंभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत्।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वे दोनों प्रकार के पदार्थ अपने वलों का तीव्रता से विस्तार करते हुए विस्तृत होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {धीरः = मेधाविनाम (निघं.३.१५)। वंशः = संग्रह, संघात (आप्टेकोष)। गभीरः = महन्नाम (निघं.३.३), उदकनाम (निघं.१. १२), गभीरे द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०), गभीरा वाङ्नाम (निघं.१.११)} अनेक कर्मों का प्रेरक धीर अर्थात् सूत्रात्मा वायु सबको धारण करते हुए सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान रहकर सुकर्मा एवं धारक प्राण तत्त्व को प्रेरित करके प्रकाशित एवं अप्रकाशित कणों के रूप में विद्यमान विभिन्न वागू रश्मियों, जो तरल रूप धारण करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परस्पर संगत होती हुई वह रही सी होती हैं, के संघात से द्यौ एवं पृथिवी लोकों को उत्पन्न करता है। विभिन्न वागू रश्मियों के द्वारा वह सूत्रात्मा वायु सभी लोकों को अनुकूलता से प्रेरित करता है।

(४) नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से दोनों प्रकार के पदार्थ तीव्रता से प्रकाशित होते हुए तीव्र तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों पदार्थ बल और क्रिया की दृष्टि से लगभग समान व्यवहार रखते हुए परस्पर संगत होने का स्वभाव रखते हैं। वे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर विशाल मात्रा में मिलकर सबको ग्रहण करने वाले सूर्य एवं भूमि आदि लोकों के रूप में सबको रक्षण एवं आधार प्रदान करते हैं। वे विभिन्न वाहक रश्मियों से युक्त होकर अनेक आशुकारी कर्मों को करने में सक्षम होते हैं।

यहाँ महर्षि ने प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद में विद्यमान 'रुवद्धोक्ष' पद को पशुरूप माना है, जिसका आशय पूर्ववत् समझें। इस पद के पशुरूप होने से ये छन्द रश्मियां भी पशुरूप सिद्ध होती हैं। इनका पशुरूप होना पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष का सूचक है।।

पूर्वोक्त वामदेव ऋषि द्वारा ऋभवो-देवताक ऋ.४.३४ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां विशेष तेजस्वी और बलवती होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ सक्रिय होकर नृत्य सा करते हुए विभिन्न कर्मों में व्याप्त होने के लिए देदीप्यमान वाग् रश्मियों एवं प्राण नामक प्राथमिक प्राण रश्मियों के शोषक बलों को धारण करते हैं। वे पदार्थ विभिन्न रमणीय रूपों व कर्मों को प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के संघातों को जन्म देते हैं, उस समय बलवान् इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ सबमें अच्छी प्रकार व्याप्त होता है।

(२) विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम्।
सं वो मदा अग्मत सं पुरंधिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम्।।२।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक बलयुक्त परन्तु न्यून प्रकाशित होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न रमणीय संयोज्य पदार्थों एवं बलों से युक्त सूत्रात्मा वायु रश्मियां उत्पन्न होते ही विभिन्न प्रकार के संयोजक कर्मों को करते हुए ऋतु रश्मियों के साथ मिलकर और अधिक सक्रिय होती हैं। वे रश्मियां विशाल पदार्थ समूह को धारण करते हुए उन्हें अनेक प्रकार की प्राण रश्मियों एवं छन्द वा मरुद् रश्मियों को भी सब ओर से प्राप्त कराती हैं।

(३) अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः।।३।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां प्रकाशित होते हुए विस्तार को प्राप्त करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न पदार्थों को तेजी से संगत करती हैं। इनके द्वारा संगत किंवा संयुक्त पदार्थ विशेष धारण बलों से युक्त होते हैं। वे पदार्थ विभिन्न प्राणादि रश्मियों की अतिशय कामना करते हुए सब ओर से एक-दूसरे के साथ संयुक्त होकर सभी प्रकार के अग्रगामी बलों से युक्त होते हैं।

(४) अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय।।४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों का प्रभाव अति तीक्ष्ण होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार के संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ उनकी वाहक और संधानक रश्मियों को विशेषरूप से धारण करके नाना प्रकार की मरुद् रश्मियों को उत्सर्जित करते हुए विभिन्न रमणीय परमाणु वा रश्मियों को आश्रय प्रदान करते हैं। वे सृजन कर्मों

को विशेष गति देने के लिए तृतीय सवन अर्थात् जगती रश्मियों युक्त पदार्थों को विशेष रूप से धारण वा उत्सर्जित करते हैं।

(५) आ वा॑जा याते॒प॑ न ऋभुक्षा म॒हो न॑रो द्रवि॑णसो गृणा॒नाः।
आ वः॑ पी॒तयो॑ऽभिपि॒त्वे अह्ना॑मि॒मा अस्तं॑ नव॒स्वं॑इव ग्मन्॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों में आश्रित होकर विभिन्न संयोजक बलों से युक्त व्यापक मरुदादि रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित करती हुई एक-दूसरे के निकट व्याप्त वा संगत होने लगती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियों में व्याप्त ये अवशोषक मरुद् रश्मियां गति करती हुई उनको सब ओर से व्याप्त करने लगती हैं।

(६) आ न॑पातः शवसो यातनोपे॒मं य॒ज्ञं नम॑सा हू॒यमा॑नाः।
स॒जोष॑सः सूरयो॒ यस्य॑ च॒ स्थ मध्वः॑ पात रत्न॒धा इन्द्र॑वन्तः॥६॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उन सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा आकर्षित किये जाते हुए बलयुक्त परमाणु आदि पदार्थ अविचल भाव से किंवा निरापद रूप से समान रूप से एक-दूसरे को आकर्षित करते हुए इन्द्र तत्त्व की रमणीय और प्रकाशित रश्मियों के धारण से तथा उनके वारक बलों के द्वारा नाना संयोग कर्मों को सब ओर से सम्पन्न करते हैं। वे परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों के द्वारा प्रकाशित मार्गों पर निरन्तर गति करते हैं।

(७) स॒जोषा॑ इन्द्र॒ वरु॑णेन॒ सोमं॑ स॒जोषाः॑ पाहि गिर्वणो म॒रुद्भिः॑।
अ॒ग्रे॒पाभि॑र्ऋतु॒पाभिः॑ स॒जोषा॒ ग्नास्पत्नी॑भी रत्न॒धाभिः॑ स॒जोषाः॑॥७॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित वह इन्द्र तत्त्व व्यान रश्मियों के साथ संगत होकर सोम पदार्थ एवं अग्रणी मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न नियन्त्रक बलों की रक्षा करता है। विभिन्न रमणीय रश्मियों के धारक परमाणु आदि पदार्थों की रक्षिका वाग् रश्मियों के द्वारा एवं विभिन्न ऋतु रश्मियों के द्वारा रक्षित पदार्थों के साथ समान रूप से विभिन्न नियन्त्रक बलों की रक्षा करता है।

(८) स॒जोष॑स आदि॒त्यैर्मा॑दयध्वं स॒जोष॑स ऋभवः॒ पर्व॑तेभिः।
स॒जोष॑सो॒ दैव्ये॑ना सवि॒त्रा स॒जोष॑सः॒ सिन्धु॑भी रत्न॒धेभिः॑॥८॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ समान गुण-कर्म व स्वभाव का सेवन करती हैं तथा विभिन्न मेघरूप पदार्थों में भी समान रूप से संगत रहती हैं। प्रकाशित विद्युत् रश्मियों के साथ तथा विभिन्न तेजस्वी परमाणुओं की धाराओं के साथ भी वह सूत्रात्मा वायु सदैव सक्रिय रहता है।

(९) ये अ॒श्विना॒ ये पि॒तरा॒ य ऊ॒ती धे॒नुं त॑तक्षुर्ऋभवो॒ ये अश्वा॑।
ये अंस॑त्रा॒ य ऋ॒धग्रोद॑सी॒ ये विभ्वो॒ नरः॑ स्वप॒त्यानि॑ च॒क्रुः॥९॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु पालक एवं रक्षक प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियों के साथ संगत होता है। वह आशुगामी और अपने आकर्षण प्रतिकर्षण बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों के तारक प्रकाशित एवं अप्रकाशित पदार्थ एवं व्यापक मरुद् वा छन्दादि रश्मियों के साथ विस्तृत होता है। वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को हर प्रकार से समृद्ध करती हैं।

(१०) ये गोम॑न्तं॒ वाज॑वन्तं सु॒वीरं॑ र॒यिं ध॒त्थ वसु॑मन्तं पुरु॒क्षुम्।

ते अ॒ग्रेपा ऋ॒भवो॑ मन्दसा॒ना अ॒स्मे ध॑त्त॒ ये च॑ रा॒तिं गृ॒णन्ति॑ ।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {पुरुक्षु = (पुरु बहुनाम - निघं.३.१; क्षु अन्ननाम - निघं.२.७)} वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों के बलों, विभिन्न प्रकार के व्यापक संयोज्य परमाणुओं, सबको कंपाने वाली प्राण रश्मियों और मरुद् रश्मियों की सबसे अग्रणी रूप में रक्षा करती हैं। वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां सर्वत्र कंपन करते हुए धारण और उत्सर्जन आदि कर्मों को भी पुष्ट करती हैं।

(११) नापा॑भूत॒ न वो॑ऽतीतृषा॒मानिः॑शस्ता ऋभवो य॒ज्ञे अ॒स्मिन्।
समिन्द्रे॑ण॒ मद॑थ॒ सं म॒रुद्भिः॒ सं राज॑भी रत्न॒धेया॑य देवाः।।११।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां प्रकाशित प्राण रश्मियों के अवशोषक बलों एवं उनकी तीव्र सक्रियता आदि गुणों को धारण करती हैं। वे दुर्बल परमाणु वा रश्मियों के प्रकाशित और सबल होने में भी परोक्ष रूप से सहयोग करती हैं। वे द्वितीय त्र्यह के तृतीय सवन अर्थात् आकाश तत्त्व में भी विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करने में सहयोग करती हैं।

उपर्युक्त सूक्त की ऋचाओं में अनेकत्र 'वाज' शब्द विद्यमान है और ग्रन्थकार की दृष्टि में 'वाज' शब्दरूप सूक्ष्म छन्द रश्मि पशुरूप अर्थात् मरुद् रश्मिरूप व्यवहार करती है। इस कारण इस सूक्त रूप रश्मिसमूह को पशुरूप कहा गया है। पशुरूप छन्द रश्मिसमूह का उत्पन्न होना पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में कुल ११ त्रिष्टुप् और ४ पंक्ति छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनसे **सूत्रात्मा वायु** विशेष सक्रिय और विस्तृत होकर प्रकाशित और अप्रकाशित सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय और सम्पीडित करता है, इसके कारण ब्रह्माण्ड में समस्त पदार्थ समूह पृथक्-२ स्थानों पर पृथक्-२ रूप में सम्पीडित होता है। इस समय सम्पूर्ण पदार्थ में भारी विक्षोभ होकर नाना प्रकार के घोष उत्पन्न होते हैं। **सूत्रात्मा वायु रश्मियों में प्रतिकर्षण बल बिल्कुल नहीं होता। ब्रह्माण्डस्थ सभी प्रकार के कणों अथवा विकिरणों की उत्पत्ति प्राण एवं छन्द रश्मियों के मेल से होती है और इनके ही मेल से विभिन्न प्रकार के बल व्यवहार भी उत्पन्न होते हैं। विभिन्न प्रकार के लोकों के निर्माण के प्रारम्भ में विभिन्न पदार्थ तरल वा गैसीय रूप में सर्वत्र प्रवाहित हो रहे होते हैं, जिनके अन्दर ईश्वर प्रेरणा से विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के चक्रीय गति के केन्द्र उत्पन्न हो जाते हैं।** वे केन्द्रीय बिन्दु ही कालान्तर में विभिन्न लोकों का रूप धारण करते हैं। विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म कण और नाना विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, तरंगरूप होकर ही समान रूप से गति करते हैं और इन दोनों की ही संगतीकरण की प्रक्रिया भी लगभग समान ही होती है। पदार्थ को संघनित करने वाला **गुरुत्वाकर्षण बल, विद्युत् और सूत्रात्मा वायु-व्यान प्राण का एक विशेष मिश्रित रूप होता है। जब इनके साथ ऋतु एवं प्राणादि रश्मियां और मिश्रित हो जाती हैं, तब गुरुत्व बल में और भी अधिक वृद्धि होती जाती है।** ऊर्जा एवं कणों की उत्सर्जन और अवशोषण प्रक्रिया में भी **सूत्रात्मा वायु** का योगदान रहता है। संघनन प्रक्रिया में **सूत्रात्मा वायु** के साथ **व्यान प्राण** का मेल भी आवश्यक है। विभिन्न रासायनिक संयोगों में भी इन रश्मियों की विद्यमानता अनिवार्य होती है। **सूत्रात्मा वायु** की विभिन्न सूक्ष्मतम रश्मियों वा कणों में सदैव विद्यमानता रहती है। इसके अभाव में न केवल गुरुत्वाकर्षण बल का अस्तित्व ही नहीं रह सकता, अपितु अन्य विभिन्न मूल बल भी अपना अस्तित्व खो देंगे। यह **सूत्रात्मा वायु** ही ब्रह्माण्ड की सभी प्रकार की तरंगों वा कणों को उनका स्वरूप प्रदान करने के साथ-२ उन्हें परस्पर बांधे भी रखता है और इसके लिए वह उन सभी के भीतर सतत विचरण करता रहता है। **आकाश तत्त्व में भी सूत्रात्मा वायु का मिश्रण विद्यमान रहता है।।**

५. 'स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिरिति' वैश्वदेवमध्यासवत् पशुरूपं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो

रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त ऋजिश्वा ऋषि अर्थात् सरल रेखा में गमन करने के स्वभाव वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष से विश्वेदेवादेवताक ऋ.६.४९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ तीव्र तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से नवीन-२ उत्पन्न, अच्छी प्रकार की क्रियाओं से युक्त विभिन्न छन्द रश्मियां उन क्रियाओं को सुगमता प्रदान करने वाले प्राणापान, प्राणोदान किंवा प्राण-व्यान को प्रकाशित करती हैं। वे प्राणापान किंवा प्राण-व्यान रश्मियां उन वायु रश्मियों से मिलकर भेदन शक्तिसम्पन्न अग्नि के परमाणुओं को सब ओर से व्याप्त वा उत्पन्न करती हैं।

(२) विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै।।२।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ प्रकाशित होते हुए व्यापक क्षेत्र में फैलने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न निरापद संयोग कर्मों में भाग लेने वाले परमाणुओं के बीच उनसे संयुक्त हुए बिना सुव्यवस्थित क्रियाओं के लिए संयुक्त मिथुन रूप युग्मों के मध्य बलवान् व्यान प्राण विचरण करता है। इससे उत्पन्न अग्नि तत्त्व अनेक संयोगादि क्रियाओं के द्वारा अरुण वर्ण से युक्त होकर संगमनीय हो जाता है।

(३) अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अरुण वर्ण के अग्नि तत्त्व के उत्पन्न होने पर विरुद्ध रूपों वाले अनेक पदार्थ परस्पर एक-दूसरे से संघर्ष करते हुए विचरते हैं। वे पदार्थ शुद्ध रूपों में प्रकाशित होकर विभिन्न प्रकार की अन्य क्रियाओं को भी पूर्ण करते तथा अपने आच्छादक गुणों के द्वारा विभिन्न पदार्थों को मथते हैं। इस समय कुछ अन्य ऊषारूप रश्मियां सर्वत्र व्याप्त होकर विभिन्न पदार्थों को गति और दीप्ति प्रदान करती हैं।

(४) प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से (इयक्षतीति गतिकर्मा - निघं.२.१४) विभिन्न वायु अर्थात् प्राणादि रश्मियां प्रकृष्ट रूप से संयोजक एवं नियंत्रक बलों से युक्त व प्रकाशित होकर क्रान्तदर्शी रूप धारण करती हैं। वे वायु रश्मियां व्यापक रूप से मरुद् वा छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर मनस्तत्त्व द्वारा नियन्त्रित होती हुई सभी सृजन प्रक्रियाओं को अपनी रमणीय वहन सामर्थ्य के द्वारा पूर्ण करती हैं। वे वायु रश्मियां अमिश्रण और समिश्रण के निश्चित व नियन्त्रित रूप के द्वारा सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त करते हुए संगत करती हैं।

(५) स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च।।५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य

प्रभाव से प्राणापान किंवा प्राणोदान के विविध दीप्तियुक्त युग्म मनस्तत्त्व के साथ संयुक्त होते हुए रमणीय वाहक सामर्थ्य द्वारा विभिन्न पदार्थों को बलवान् और तेजस्वी करते हैं। इस कारण वे अपने बल और क्रियाओं के विस्तार के लिए विभिन्न मरुद् रश्मियों के मार्ग को निरन्तर प्राप्त करते रहते हैं, जिससे नाना प्रकार की सृजन क्रियाएं समृद्ध होती हैं।

(६) पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि।
सत्यंश्रुतः कवयो यस्यं गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम्।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे विविध बलवर्षक प्राणापान किंवा प्राणोदान उत्कृष्ट रूप से अन्तरिक्षस्थ विभिन्न पदार्थों को संघनित करते एवं गतिशील बनाते हुए उन्हें तीव्र बलों से युक्त तरल अवस्था प्रदान करने में सहायक होते हैं। वे निरन्तर गति, दीप्ति और गर्जना से युक्त अवस्था को प्राप्त करके विभिन्न छन्दादि रश्मियों में स्थित होकर नाना प्रकार के लोकों का निर्माण करते हैं।

(७) पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत्।।७।।

इसका छन्द ब्राह्मयुष्णिक् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न पदार्थ तीव्र ऊष्मा एवं विद्युत् से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {पावीरवी = पविः शल्यो भवति। यद्विपुनाति कायम्, तद्वत्। पवीरमायुधम्। तद्वानिन्द्रः पवीरवान्।.................तद्देवता वाक् पावीरवी। पावीरवी च दिव्या वाक् (नि.१२.३०)} विभिन्न प्राण रश्मियों की पत्नीरूप विभिन्न वज्र रूप शोधक दिव्य वाग् रश्मियां चित्र-विचित्र आयु वाली होकर विभिन्न कमनीय अन्य छन्द रश्मियों के साथ उत्तम दीप्ति और क्रिया को धारण करती हैं। वे दोनों प्रकार की रश्मियां एकरस व्याप्त होते हुए परमाणु आदि पदार्थों को सुदृढ़ आश्रय प्रदान करती हैं।

(८) पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम्।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा।।८।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ विशेष प्रकाशित होते हुए तीव्र बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {शुरुधः = सद्यो रोधिकाः (म.द.भा.)। पूषा = पूषा विश्ववेदाः (मै.२.६.९), प्रजननं वै पूषा (श.५.२.५.८), पशवो वै पूषा (श.१३.१.८.६)} विभिन्न प्रकार की प्रकाशित मरुद् वा छन्द रश्मियां अपने आकर्षण बल से परस्पर संयुक्त होती हुई सभी मार्गों को सब ओर से नियन्त्रित, प्रकाशित और व्याप्त करती हैं। इन रश्मियों के अग्र भाग में सुन्दर प्रकाश विद्यमान होता है, ऐसी वे रश्मियां सभी प्रकार के कर्मों को अच्छी प्रकार सिद्ध करती हैं।

(९) प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम्।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पस्त्यम् = गृहनाम (निघं.३.४), विशो वै पस्त्याः (श.५.३.५.१९)} अग्नि तत्त्व विशेष आभा किंवा प्रकाश, संयोजक एवं वियोजक बल और तीक्ष्ण छेदक व भेदक बलों से युक्त होकर विभिन्न व्यापक अन्य बल रश्मियों के बीच सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होता है। वह अग्नि सबका प्रकाशक सुन्दर क्रियाओं से सम्पन्न प्रकाशित प्राण रश्मियों को धारण करने वाला होकर सबके साथ युक्त होता हुआ विभिन्न पदार्थों का विभाग करता है।

(१०) भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से क्रान्तदर्शी अग्नि के द्वारा प्रेरित विभिन्न प्रकार के परमाणु विभिन्न वाग् रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न लोकों को उत्पन्न करते हैं। वे पदार्थ अप्रकाशित अवस्था में अति तीक्ष्ण एवं व्यापक रश्मियों के सतत तेजस्वी एवं सहजकर्मा स्वरूप को सतत बढ़ाते हुए अपने साथ संगत करते हैं, जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ सहजता से लोकों का निर्माण करने में सक्षम होते हैं।

(११) आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम्।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से संयोग-वियोग गुणों से युक्त एवं अन्य पदार्थों को भी संगत करने वाले सूत्रात्मा वायु के समान विभिन्न मरुद् रश्मियां श्रेष्ठता से प्रकाशित होती हुई सब ओर व्याप्त होती एवं गमन करती हैं। वे मरुद् रश्मियां साधारण रीति से समृद्ध होती हुई विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें नियन्त्रित करती हैं।

(१२) प्र वीराय प्र तवसे तुरायाऽजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम्।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः।।१२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {नाकः = नाक आदित्यो भवति नेता रसानां नेता भासां ज्योतिषां प्रणयः। अयं द्यौः, कमिति सुखनाम, तत् प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत (नि.२.१४), संवत्सरो वाव नाकः (श.८.४.१.२४), स नाको नाम दिवि रक्षोहाग्निः (मै.४.१.६), अविद्यमानदुःखमन्तरिक्षम् (म.द.भा.)} विभिन्न प्रकार की प्रकाशित किरणें आच्छादक प्राणादि रश्मियों से युक्त होकर अन्तरिक्षस्थ असुर तत्त्वों से विहीन प्रकाशित पदार्थों को विभिन्न छन्दादि रश्मियों के साथ उसी प्रकार से अच्छी प्रकार सम्बद्ध करती हैं, जिस प्रकार विभिन्न मरुद् रश्मियां समूहों में विचरती हुई विभिन्न दृश्य परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करती हुई उन्हें आकार तथा बल प्रदान के लिए अच्छी प्रकार बल एवं वेगपूर्वक अपने साथ सम्बद्ध करती हैं।

(१३) यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च।।१३।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक विद्युत् विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को सम्पीडित एवं तेजयुक्त करने के लिए तीन चरणों में कार्य करती है। इसके कारण विद्युत् बल द्वारा निकटता से ग्रहण किए हुए वे पार्थिव पदार्थ विभिन्न मरुदादि रश्मियों के विस्तार के साथ सक्रिय होते हैं।

(१४) तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात्।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये।।१४।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देदीप्यमान तरल पदार्थों की उष्ण धाराओं के साथ अन्तरिक्ष में विद्यमान मेघरूप पदार्थ विभिन्न संयोज्य परमाणु एवं छन्दादि रश्मियों को धारण करके विशाल रूप प्राप्त करता है। इस सम्पूर्ण पदार्थ को वायु और विद्युत् रूप सविता संयोज्यता आदि गुणों के साथ संयुक्त करके विभिन्न लोकों को सब ओर से उत्पन्न एवं धारण करता है।

(१५) नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम्।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्य१श्नवाम।।१५।।

इसका छन्द अति जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न पदार्थ अति तीव्र वेग से

फैलते हुए उत्सर्जन एवं अवशोषण की क्रियाओं को विस्तृत करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे कण परस्पर संघर्ष वा अन्योऽन्य क्रियाओं को करते हुए अप्रकाशित एवं सब ओर से प्रकाशमान विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को सब ओर से अनुकूल क्रमबद्धतापूर्वक प्राप्त करते हैं। इस समय तीक्ष्ण, व्यापक और सुन्दर वाहक रश्मियों में व्याप्त विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ सतत पुष्ट रहने वाली व्यापक मरुद् रश्मियों को उत्सर्जित करते हुए अग्नि तत्त्व की रक्षा करते हैं।

इस सूक्त की अन्तिम ऋचा में नियत अक्षरों से अधिक संख्या होने से यह सूक्त अध्यासवत् सिद्ध होता है और अध्यासवत् सूक्त पूर्वोक्तवत् पशुरूप भी होता है। इस सूक्त का अध्यासवत् एवं पशुरूप होना पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण रश्मियों के उत्कर्ष का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में ११ त्रिष्टुप्, २ पंक्ति, १ उष्णिक् एवं १ जगती छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके प्रभाव से सम्पूर्ण पदार्थ की ऊर्जा में वृद्धि होती है। ऊष्मा की मात्रा में भी वृद्धि होती है। ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ रक्ताभ पीत वर्ण का हो जाता है। कॉस्मिक डस्ट में भारी विक्षोभ होता एवं विभिन्न पदार्थ तेजी से परस्पर संयुक्त होकर यत्र-तत्र पिण्डाकार लोकों को बनाने लगते हैं। ये लोक तीव्र प्रकाश से युक्त होते हैं। उनका पदार्थ तीव्र गर्जनायुक्त विक्षुब्ध रूप में विद्यमान होता है। **विभिन्न छन्द रश्मियां जब गमन करती हैं, उस समय अग्र भाग सुन्दर परन्तु अदृश्य दीप्ति से युक्त होता है।** इस समय सम्पूर्ण पदार्थ प्रदीप्त हो उठता है, जो विभिन्न पदार्थों के निर्माण की दृष्टि से अति सक्रिय होता है। विभिन्न ग्रहादि लोकों के निर्माण की प्रक्रिया तीन चरणों में पूर्ण होती हैं। **इसमें गुरुत्व बल के साथ-२ विद्युत् की भी भूमिका होती है।** इस प्रक्रिया में ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ देदीप्यमान तरल पदार्थों की उष्ण धाराओं के रूप में बहता हुआ धीरे-२ सक्रिय गति को प्राप्त करके नाना केन्द्रों में संघनित होने लगता है।।

६. हविष्पान्तमजरं स्वर्विदीत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्धविष्मद् पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त आङ्गिरसो वामदेव्यो वा मूर्धन्वान् ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण और सूत्रात्मा वायु के श्रेष्ठ गुणों से युक्त एक सूक्ष्म प्राणविशेष से अग्नि एवं मरुद्-देवताक ऋ.१०.८८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व एवं मरुद् रश्मियां विशेषरूप से प्रकाशित तीव्र बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से आकाश एवं प्राणादि रश्मियों से सम्बद्ध स्वयं प्रकाशमान अग्नि में विभिन्न हव्य रूप परमाणु आदि पदार्थ निरन्तर प्रेरित व सम्पीडित होते रहते हैं। वे पदार्थ उस अग्नि के संवर्धन और धारण के द्वारा विभिन्न लोकों के निर्माण के लिए परस्पर संयुक्त और विस्तृत होते हैं।

(२) गीर्णं भुवनं तमसापगूळहमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया में प्रारम्भिक अन्धकारयुक्त पदार्थ में अग्नि तत्त्व के तीव्र हो उठने पर वे लोक धीरे-२ प्रकट होने लगते हैं। उस अग्नि के प्रकाशित होने पर विभिन्न प्रकाशित परमाणु, पृथिवी-द्युलोक एवं विभिन्न उष्ण व तरल पदार्थ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में रमण और परस्पर संघर्षण करते हैं।

(३) देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संगमनीय प्राणादि रश्मियों के द्वारा शीघ्र प्रेरित जरारहित एवं व्यापक वह अग्नि तत्त्व प्रकाशित होता है। वही अग्नि तत्त्व अपनी किरणों के द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों एवं अन्तरिक्ष को विस्तृत करता है।

(४) यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वस्तुमात्र में विद्यमान वह जातवेदा अग्नि एवं मरुद् रश्मियां किंवा सोम पदार्थ इस सृष्टि यज्ञ का प्रथम आरम्भ करने वाले हैं। ये दोनों ही तत्त्व प्राण रश्मियों से युक्त होते हैं। इन अग्नि और सोम के संयुक्त मेल से उत्पन्न संदीप्त तेज को प्राप्त करके विभिन्न पदार्थ-परमाणु दृश्य रूप को प्राप्त करते हैं। **इस सृष्टि में तीव्र वा मन्दगामी किंवा स्थिर पदार्थ सभी कुछ अग्नि तत्त्व के द्वारा प्राण एवं ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा व नियन्त्रण में उत्पन्न होते हैं।**

(५) यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम प्रकाशयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह जातवेदा अग्नि अपने सुन्दर प्रकाश के साथ सभी निर्माणाधीन लोकों के शीर्ष भाग में स्थित होता है। इसके साथ ही वह उनके मुख्य भाग अर्थात् केन्द्रीय भाग में भी स्थित होता है। 'मूर्धा' शब्द का अर्थ 'मस्तक' सर्वविदित है, किन्तु हमने यहाँ 'मूर्धा' शब्द से 'केन्द्रीय भाग', जो हृदय के समान माना जा सकता है, का भी ग्रहण किया है। इस विषय में एक तत्त्ववेत्ता ऋषि का कथन है- "मूर्धा हृदये श्रितः" (तै.ब्रा.३.१०.८.६)। वह अग्नि मन एवं विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होता हुआ 'द्यु' और 'पृथिवी' दोनों ही लोकों को अपनी व्याप्ति से पूर्ण करता है।

(६) मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन्।।६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से {मूर्धा = मूर्वति बध्नाति स मूर्धा} **वह अग्नि तत्त्व अप्रकाशित अवस्था में आकाश तत्त्व को बांधता तथा तेजी से प्रकाशित होने की अवस्था में प्रकाश किरणों के रूप में प्रकट होता है।** वह विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को अपने क्रिया-कौशल के द्वारा शीघ्रतापूर्वक प्रज्वलित करता हुआ गति प्रदान करता है।

(७) दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः।।७।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विविध प्राण रश्मियों के कारण उत्पन्न अप्रकाशित अग्नि अपनी व्यापकता से दृश्य रूप धारण करता हुआ सबको प्रकाशित करता है। उस अग्नि में विद्यमान सृष्टि यज्ञ के विस्तार को गति व रक्षा प्रदान करने वाले विभिन्न प्रकाशित परमाणु अनेक सूक्त रूप छन्द रश्मिसमूहों के द्वारा अच्छी प्रकार सब ओर से मास रश्मियों के साथ संगत होते हैं।

(८) सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः।

स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने के पश्चात् अग्नि के परमाणुओं को उत्पन्न करके विभिन्न परमाणुओं में संयोग वियोग आदि की प्रक्रिया को उत्पन्न करती हैं। उनकी इस प्रक्रिया के द्वारा ही सभी प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोकों एवं अन्तरिक्ष का निर्माण एवं विस्तार होता है।

(९) यं देवासोऽ जनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राणादि रश्मियां अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करती हैं। उस अग्नि की ज्वालाओं के द्वारा सहजतापूर्वक सभी प्रकाशित और अप्रकाशित लोक उत्पन्न होकर अन्तरिक्ष में विस्तृत होते हैं।

(१०) स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वन्त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्राणादि रश्मियां इस अन्तरिक्ष में अपने तेजस्वी और शक्तिशाली समूहों के द्वारा द्यु, पृथिवी एवं अन्तरिक्ष को उत्पन्न करके तीन प्रकार की विद्युत् को उत्पन्न करती हैं। इसके साथ ही अग्नि इस संसार के विभिन्न पदार्थों को पकाता है।

(११) यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे संगमनीय प्राण रश्मियां इस अन्तरिक्ष में विभिन्न छन्दादि रश्मियों के योग से उत्पन्न सूर्यादि लोकों को धारण करती हैं। जब प्राण और छन्द रश्मियां परस्पर मिथुन बनाती हैं, तभी सृष्टि के सभी पदार्थ उत्पन्न व प्रकाशित होने लगते हैं।

(१२) विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन्।।१२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {भुवनम् = भूतानि (तु.नि.३.१२), भावनम् (तु.नि.७.२५), यज्ञो वै भुवनम् (तै.ब्रा.३.३.७.५)} विभिन्न प्राण रश्मियां सभी संगमनीय परमाणुओं के द्वारा विभिन्न प्रकार के लोकों की उत्पत्ति के लिए सबके वाहक अग्नि तत्त्व को सूर्यादि रूप में प्रकट करती हैं। वे सूर्यादि लोक विभिन्न सुन्दर दीप्तियों से युक्त किरणों को सर्वत्र फैलाकर अन्धकार को दूर करते हैं।

(१३) वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम्।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम्।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संगमनीय सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियां सृष्टिकाल तक नष्ट न होने वाले अग्नि के परमाणुओं को उत्पन्न करती हैं। वह अग्नि संगमनीय, व्यापक, अविनाशी, अपने बल के द्वारा सतत गतिशील और सबका महान् नियन्त्रक होता है।

(१४) वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात्।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से क्रान्तदर्शी देदीप्यमान एवं सब पदार्थों का वाहक अग्नि विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा समस्त परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त हो जाता है। वह अग्नि अपने प्रभाव से द्यौ एवं पृथिवी आदि लोकों को नियन्त्रित करता हुआ सभी दिशाओं में व्याप्त हो जाता है।

(१५) द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च।।१५।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पितरः = अनपहतपाप्मानः पितरः (श.२.१.३.४)। देवः = अपहतपाप्मानो देवाः (श.२.१.३.४)} असुर पदार्थ से मुक्त देव पदार्थ एवं असुर पदार्थ से आक्रान्त विनाशी पदार्थ, ये दोनों पृथक्-२ गमन करते हैं। वे दोनों ही प्रकार के पदार्थ कंपन करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लेते हैं। इन दोनों पदार्थों से ही इन समस्त लोकों की सृष्टि होती है।

(१६) द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम्।
स प्रत्यङ्विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः।।१६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे **अग्नि और मरुद् रश्मियां मनस्तत्त्व से सम्बद्ध होती हुई उत्पन्न एवं गतिशील होती हैं। वे दोनों साथ-२ एक-दूसरे को धारण करती हुई समस्त लोकों को तारती और प्रकाशित करती हुई सबके अन्दर विद्यमान रहती हैं।**

(१७) यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत्।।१७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इस सृष्टि में वे अग्नि और मरुद् रश्मियां दोनों ही सदैव परस्पर संगत होती हुई प्रकाशित होती हैं। यहाँ अग्नि का अर्थ प्राण रश्मियां भी हो सकता है। ये दोनों ही प्रकार की रश्मियां समान रूप से प्रकाशित, सक्रिय एवं सर्वत्र व्याप्त होकर दोनों ही प्रकार के लोकों को उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं।

(१८) कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम्।।१८।।

इसका छन्द आर्ची स्वराट्-त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्दादि रश्मियां तीव्र प्रकाश और बलों से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विद्युदग्नि के परमाणुओं, तारों के केन्द्रों एवं प्रकाश रश्मियों में अनेक प्रकार की प्राण रश्मियां विद्यमान होती हैं। उसी प्रकार अन्तरिक्ष वा जलीय परमाणुओं में भी ये रश्मियां विद्यमान होती हैं। ये रश्मियां असुर रश्मियों से आक्रान्त विभिन्न परमाणुओं को नष्ट होने से बचाकर उन्हें गतिशील बनाती हुई विभिन्न विद्यमान देव पदार्थों के प्रति आकर्षणशील बनाती हैं।

(१९) यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो३ वसते मातरिश्वः।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन्।।१९।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष

में शयन करने वाला वायु उषा रश्मियों को उत्पन्न करता है, जो अपने सुन्दर पालक गुणों के द्वारा सबको आच्छादित करता हुआ होता रूप विद्युदग्नि के भीतर स्थित होकर विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं को उत्पन्न करता एवं आश्रय प्रदान करता है।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में १६ विभिन्न प्रकार की त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिससे धनावेशित एवं ऋणावेशित दोनों ही प्रकार की तरंगों के साथ-२ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता भी अत्यन्त प्रबल हो उठती है। इनके कारण कॉस्मिक पदार्थ के अन्दर विभिन्न प्रकार के रासायनिक एवं भौतिक मिश्रण तीव्रता से बनने लगते हैं। समस्त पदार्थ तीव्रता से प्रकाशमान तथा उष्ण होने लगता है और उस प्रकाशमान पदार्थ के अन्दर ही तेजस्वी उष्ण तरल पदार्थ की विशाल धाराएं बहने के साथ-२ उनके संघनन से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के लोकों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। उत्पन्न होने के समय ये लोक परस्पर अधिक दूर नहीं होते हैं, बल्कि वे लोक धीरे-२ परस्पर दूर हटकर अन्तरिक्ष को फैलाते जाते हैं। इस सृष्टि के सभी कण वा विकिरण विद्युत् के द्वारा ही उत्पन्न और प्रेरित होकर गति करते हैं। उस समय इन लोकों के केन्द्रीय भाग से लेकर बाहरी भाग तक अत्यन्त ऊष्मा की विद्यमानता होती है। विद्युत् आवेश का आकर्षण वा प्रतिकर्षण आकाश तत्त्व तक को भी प्रभावित करता है। **तीव्र ऊर्जा वाले आवेशित कण विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के रूप में प्रकट होते हैं। किसी भी क्वान्टा में प्राण, छन्द, मरुत् के साथ-२ ऋतु एवं मास रश्मियों की भी विद्यमानता होती है। प्राण एवं छन्द रश्मियां ही सम्पीडित होकर क्वान्टाज् का रूप धारण करती हैं।** इस सृष्टि में धन, ऋण एवं उदासीन- ये तीन प्रकार की विद्युत् विद्यमान होती हैं। विभिन्न लोकों के धारण में प्राण एवं छन्द रश्मियों की महती भूमिका होती है। इस सृष्टि में दृश्य एवं अदृश्य पदार्थ (डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर-दोनों ही) की सत्ता होती है। वे दोनों ही मिलकर सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण करते हैं।।

७. 'वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्त्विति मारुतं; वपुष्मत् पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।
'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।
'अग्निर्होता गृहपतिः स राजेति' जातवेदस्यमध्यासवत् पशुरूपं, पञ्चमेऽहनि पञ्चमस्याह्नो रूपम्।।३।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्वोपेत प्राण नामक प्राथमिक प्राण से मरुद्-देवताक ऋ.६.६६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां तीक्ष्ण तेजस्वी एवं बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही अवस्था वाले पदार्थ आकाश तत्त्व के द्वारा त्वरित गति से परिपूर्ण होते हैं और उस आकाश तत्त्व के द्वारा ही वे दोनों पदार्थ साथ-२ धारण किये जाते हैं। विभिन्न छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को पूर्ण वा व्याप्त करके नियन्त्रित करने के लिए सतत वर्धमान होती हैं। वे सब पदार्थ विभिन्न रूपों से युक्त होकर नाना प्रकार का प्रकाश उत्पन्न करते हैं।

(२) ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन्।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक प्रकाशयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {रेणुः = रिणाति गच्छति हिनस्ति हन्यते वा (उ.को.३.३८)} मन्दगामी एवं मृदु मरुद् रश्मियां तेजयुक्त होकर विभिन्न प्रकार के परमाणुओं एवं वलों के साथ संगत होती हैं। वे मरुद् रश्मियां दो वा तीन चरणों में निरन्तर वढ़ती हुई प्रकाशमान अग्नि के परमाणुओं के समान तेजयुक्त होती रहती हैं।

(३) रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात्।।३।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से मरुद् रश्मियां तीक्ष्णता से सव ओर फैलने एवं संगत होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {महीः = वाङ्नाम (निघं.१.११), द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०), गोनाम (निघं.२.११), मही महती (नि.४.२१)} वे मरुद् रश्मियां घोर तीक्ष्ण सेचक वलों से सम्पन्न त्रिष्टुवादि रश्मियों की पालक होती हैं। वे मरुद् रश्मियां विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं एवं व्यापक छन्द रश्मियों को पुष्ट एवं सव ओर से धारण करती हैं किंवा वे उनके द्वारा धारण की जाती हैं। वे मरुद् रश्मियां अन्तरिक्ष के समान विस्तार वाली सुन्दर प्रभाव से युक्त होकर महान् तेज और वल से युक्त किरणों को धारण करती हैं।

(४) न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न सृजन वा उत्पादन कर्मों में वाधक न वनकर उनके वीच विद्यमान होकर वाधक रश्मियों को दूर करके उनको पवित्र करती हैं। वे मरुद् रश्मियां पवित्र दीप्तियों से युक्त एवं विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न प्रकार के वलों का सेचन करते हुए नाना क्रियाओं को अनुकूलता से पूर्ण करती हैं।

(५) मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान्।।५।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण मरुद् रश्मियां दुर्वल मरुद् रश्मियों को व्याप्त व धारण करके उन्हें भी सक्रिय व सवल वनाती हैं, जिसके कारण वे सवल वनीं मरुद् रश्मियां वाधक रश्मियों से दूर रहकर तीक्ष्ण और संगमनीय मरुद् रश्मियों को शीघ्रता से प्राप्त करके महान् संयोजक कर्मों को सम्पादित करती हैं।

(६) त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से मरुद् रश्मियां आकर्षण एवं प्रतिकर्षण वलों के साथ तेजी से सव ओर व्याप्त एवं संगत होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से मरुद् रश्मियों के तीक्ष्ण समूह अपने तीक्ष्ण वल के द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के लोकों एवं अन्तरिक्ष को युक्त करते हैं। इस कारण वे दोनों ही लोक सुन्दर दीप्ति और आकर्षण वलों के साथ आकाश में स्थित होते हैं।

(७) अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन्।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {अवः अन्ननाम (निघं.२.७)। अभीशु = वाहुनाम (निघं.२.४)। रजस्तूः = यो रज उदकं तौति वर्धयति सः (म.द.भा.)} वे मरुद्

रश्मियां बाधक असुरादि रश्मियों से युक्त रहती हुई संयोज्य बलों एवं अन्य विविध प्रकार के बल एवं गति आदि गुणों से विहीन विभिन्न रश्मियों को अपने सेचक बलों के द्वारा निरन्तर बढ़ाती हैं। वे मरुद् रश्मियां अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न मार्गों पर उन मरुद् रश्मियों को प्रक्षिप्त करती हुई प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों को विशेषरूप से व्याप्त एवं सिद्ध करती हैं।

(८) नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः।।८।।

इसका छन्द स्वराट्पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् दुर्बल किंतु अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न बलों, कणों एवं पृथिवी आदि लोकों के विभाजन की क्रिया में विभिन्न बलों की रक्षा करती है। अन्तरिक्ष में विभिन्न परमाणुओं के विस्तार करने में वे मरुद् रश्मियां अपनी रक्षणीय भूमिका निभाती हैं। मरुद् रश्मियों के इन रक्षणादि कर्मों को असुरादि बाधक रश्मियां निष्प्रभावी नहीं कर पाती हैं, बल्कि ये मरुद् रश्मियां उन असुरादि रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करने में सक्षम होती हैं।

(९) प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम्।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अपने बलों के द्वारा अन्य पदार्थों के बलों को प्रतिरुद्ध वा संयुक्त करती हैं। वे संयोज्य एवं प्रतिरोधक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को आश्चर्यजनक ढंग से अच्छी प्रकार धारण करती हैं। वे अग्नि के परमाणुओं को कंपाते हुए पार्थिव परमाणुओं के साथ संयुक्त करती हैं। वे मरुद् रश्मियां अपने बलों को शीघ्रकारी बनाने के लिए प्रकाशित होती हैं।

(१०) त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {तृषु = क्षिप्रनाम (निघं.२.१५), तरतेर्वा त्वरतेर्वा (नि.६.१२)। त्विषिः = ज्योतिः (म.द.य.भा.१०.५), दीप्तिर्नाम भवति (नि.१.१७)} वे मरुद् रश्मियां अहिंसित संयोज्य क्रियाओं में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का शीघ्रतापूर्वक गमन एवं हवन सम्पन्न कराती हैं। वे कांपती हुई जन्मना प्रकाशयुक्त अग्नि के परमाणुओं को और अधिक प्रकाशित करती हैं। वे अहिंस्य प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर प्रकाशित होती हैं।

(११) तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन्।।११।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {विवासति परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} वे पवित्र एवं उग्र दीप्तियुक्त मरुद् रश्मियां मनस्तत्त्व के द्वारा नियन्त्रित होती हुई मेघरूप विशाल तरल पदार्थों को बल प्रदान करने के लिए प्राण रश्मियों के साथ बढ़ती हुई स्पर्धा करती हैं। वे तीक्ष्ण त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की तीव्र क्रियाओं का सब ओर से सेवन करती हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'वपु' शब्द विद्यमान होने से यह सम्पूर्ण सूक्त 'वपुष्मत्' कहलाता है और इसका 'वपुष्मत्' होना ही पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदुपरान्त मरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषि से अग्निदेवताक ऋ.६.१५.१३-१५ तृच की उत्पत्ति होती है। जिसके विषय में ५.६.३ द्रष्टव्य है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **व्यान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही ६ त्रिष्टुप्, ५ पंक्ति एवं १ ब्राह्मी बृहती, कुल १५ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय ब्रह्माण्ड में विभिन्न मरुद् रश्मियां तीव्र तेज और वल से युक्त होकर व्यापक क्षेत्र में फैलने लगती हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा एवं ऊर्जा, विशेषकर ऊष्मा में विशेष वृद्धि होती है। विभिन्न प्रकार के कण एवं क्वाण्टाज् आकाश तत्त्व के द्वारा धारण एवं विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं। इन छन्द रश्मियों के द्वारा ही वे प्रकाशयुक्त होते हैं। **मरुद् रश्मियां दो या तीन चरणों में सम्पीडित होकर फोटोन्स का रूप धारण करती हैं।** वे मरुद् रश्मियां आकाश के समान विस्तृत गमन करती हैं तथा प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होकर ही नाना प्रकार की क्रियाएं करती हैं। वे डार्क एनर्जी के वाधक प्रभाव को दूर करती एवं दुर्वल मरुद् रश्मियों के साथ संयुक्त होकर उन्हें भी सवल वनाती हैं। विभिन्न तारों एवं ग्रहादि लोकों के अन्तरिक्ष में धारण की क्रिया में भी इनकी महती भूमिका होती है। विभिन्न रासायनिक संयोगों, कॉस्मिक मेघों के विखण्डन वा विभिन्न लोकों के विस्फोट आदि में इन मरुद् रश्मियों की भूमिका होती है। इन रश्मियों पर डार्क एनर्जी का कोई प्रभाव नहीं होता। विभिन्न कणों एवं क्वान्टाज् के परस्पर संयोग में भी इनकी भूमिका होती है। **ये मरुत् तथा प्राण रश्मियां विभिन्न कणों की गति और बल का भी कारण होती हैं।** इन दोनों ही प्रकार की रश्मियों का नियन्त्रण मनस्तत्त्व द्वारा होता है। इस समय भी **कुछ सोम रश्मियां सम्पीडित होकर नवीन विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं।** विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म और स्थूल कणों की उत्पत्ति के साथ-२ लोकों के निर्माण अर्थात् पदार्थ के संघनन की प्रक्रिया तीव्र होती है।।

꧁ इति २२.3 समाप्तः ꧂

अथ २२.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. देवक्षेत्रं वा एतद् यत् षष्ठमहर्देवक्षेत्रं वा एत आगच्छन्ति, ये षष्ठमहरागच्छन्ति।। न वै देवा अन्योऽन्यस्य गृहे वसन्ति, नर्तुर्ऋतोर्गृहे वसतीत्याहुस्तद्यथायथमृत्विज ऋतुयाजान् यजन्त्यसंप्रदायं तद्यथर्तृतून् कल्पयन्ति यथायथं जनताः।।
तदाहुर्नर्तुप्रैषैः प्रेषितव्यं नर्तुप्रैषैर्वषट्कृत्यं, वाग्वा ऋतुप्रैषा आप्यते वै वाक्षष्ठेऽहनीति।।
यदृतुप्रैषः प्रेष्येयुर्यदृतुप्रैषैर्वषट्कुर्युर्वाचमेव तदाप्तां श्रान्तामृक्णवहीं वहराविणीमृच्छेयुः।।
यद्वेभिर्न प्रेष्येयुर्यद्वेभिर्न वषट्कुर्युरच्युताद् यज्ञस्य च्यवेरन् यज्ञात् प्राणात् प्रजापतेः पशुभ्यो जिह्मा ईयुः।।
तस्मादृग्मेभ्य एवाधि प्रेषितव्यमृग्मेभ्योऽधि वषट्कृत्यं; तन्न वाचमाप्तां श्रान्तामृक्णवहीं वहराविणीमृच्छन्ति; नाच्युताद् यज्ञस्य च्यवन्ते, न यज्ञात् प्राणात् प्रजापतेः पशुभ्यो जिह्मा यन्ति।।४।।

व्याख्यानम्- {देवक्षेत्रम् = पात्राणि वाव देवक्षेत्रम् (मै.४.५.६), देवक्षेत्रं वै स्तोमश्च यजुश्च (काठ.२१.११), देवक्षेत्रं वा एतेऽभ्यारोहन्ति ये स्वर्णिधनमुपयन्ति (तां.५.७.८), (निधनम् = वज्रा वा एते यन् निधनानि - जै.ब्रा.१.३२३; यज्ञायज्ञीयं निधनम् - जै.ब्रा.१.२६२, वीर्यं वा एतत् साम्नो यन् निधनम् - जै.ब्रा.१.२१६; हैमन्तो निधनम् - ष.३.१; प्रतिष्ठा वै निधनम् - कौ.ब्रा.२७.६)}

पञ्चम अहन् किंवा व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की चर्चा के उपरान्त षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की चर्चा प्रारम्भ करते हुए महर्षि लिखते हैं कि इस समय सम्पूर्ण पदार्थ देवक्षेत्र के रूप में प्रकट होता है। इसका तात्पर्य यह है कि इस चरण में विभिन्न प्रकाशक और प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों की विशेष प्रतिष्ठा होती है। पूर्वोत्पन्न अप्रकाशित लोकों के अतिरिक्त पदार्थ का बहुत बड़ा भाग देवक्षेत्र का रूप धारण करने लगता है। उस समय सम्पूर्ण बिखरा हुआ पदार्थ यत्र-तत्र देवक्षेत्र रूप में प्रकट हो रहे तेजस्वी केन्द्रों की ओर बढ़ने लगता है। वह पदार्थ स्वर्णिधन को प्राप्त करने लगता है। यहाँ स्वर्णिधन = (स्वर्+निधनम्) का तात्पर्य यह है कि उस पदार्थ के परमाणु हेमन्त ऋतुरूप रश्मियों, जिनके विषय में पूर्वपीठिका द्रष्टव्य है, को प्राप्त करके वज्ररूपी तीक्ष्ण तेज से युक्त होने लगते हैं। इस समय वे परमाणु छेदक और भेदक पराक्रम से युक्त होकर अपने प्रतिष्ठारूप अति तप्त एवं विद्युद्युक्त द्यौ रूप केन्द्रों को प्राप्त करने लगते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में द्युलोकों का निर्माण तीव्रता से होने लगता है और वे द्यौ लोक इसी काल में पूर्णता को भी प्राप्त कर लेते हैं। इस समय विभिन्न प्रकाशित परमाणु वा रश्मियों के संयोग की प्रक्रिया में देवदत्त प्राण रश्मियों का विनिमय होता है, इसी कारण इन्हें 'देवदत्त' कहते हैं।।

विभिन्न देव पदार्थ अर्थात् विभिन्न प्रकार की प्राणादि रश्मियों एवं अन्य प्रकाशित वा प्रकाशक परमाणुओं का स्थान पृथक्-२ होता है। इसका तात्पर्य यह है कि वे रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ न तो एक-दूसरे के स्थान का अतिक्रमण करते हैं और न परस्पर पूर्णतः एक-दूसरे को स्पर्श ही करते हैं। यद्यपि ये पदार्थ सम्पीडित और संघनित होकर नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करते हैं, परस्पर एक-दूसरे में विलीन भी होते हैं, पुनरपि सूक्ष्मता के स्तर पर इनकी अपनी पृथक्-२ मर्यादा

अवश्य बनी रहती है। इसी मर्यादा के कारण उनका अपना-२ वैशिष्ट्य होता है, इनके मार्ग भी पृथक्-२ ही होते हैं। इसी प्रकार का व्यवहार ऋतु संज्ञक रश्मियों का भी होता है, यह मान्यता सभी ऋषियों की रही है। {ऋतुयाजाः = ऋतवो वा ऋतुयाजाः (गो.उ.३.७), प्राणा वा ऋतुयाजाः (ऐ.२.२९; कौ.ब्रा.१३.९)। ऋत्विजः = ऋतवः ऋत्विजः (श.११.२.७.२), ऋत्विजो हैव देवयजनम् (श.३.१.१.५)} इस कारण विभिन्न ऋतु रश्मियां जब अन्य ऋतु रश्मियों अथवा प्राण रश्मियों के साथ संगत होती हैं और ऐसा करके जब वे नाना पदार्थों को उत्पन्न करती हैं, उस समय वे ऋतु वा प्राण रश्मियां एक-दूसरे के स्थानों का अतिक्रमण नहीं करती। इस संगतीकरण प्रक्रिया की शृंखला इस प्रकार चलती है कि **कोई प्राण वा ऋतु आदि रश्मि अथवा विभिन्न प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ परस्पर संगत और सम्पीडित होने पर एक-दूसरे की मर्यादा का अतिक्रमण कभी नहीं करते और ऐसा होने पर उनमें परस्पर अत्यन्त निकटता से सीधा संघर्षण नहीं होता। तीव्र विक्षोभ की अवस्था में विभिन्न पदार्थों के विस्फोट, विखण्डन, विलय जैसी क्रियाओं में भी ये प्राण वा परमाणु आदि पदार्थ एक-दूसरे से सर्वथा नहीं टकराते**, बल्कि अपने-२ स्थान पर गमन करते हुए भी परस्पर संयुक्त वा वियुक्त हो जाते हैं। ऐसा करते रहने से जैसे-२ ऋतु वा प्राणादि रश्मियां समर्थ होती जाती हैं, वैसे-२ सर्जन प्रक्रिया अग्रसर होती रहती है। यदि इन पदार्थों में पृथक्-२ मर्यादा की व्यवस्था नहीं होती, तो ये पदार्थ एक-दूसरे से टकराकर अथवा एक-दूसरे में विलीन होकर अपना अस्तित्त्व ही खो देते और सम्पूर्ण सृष्टि प्रलय की एकरस अवस्था को प्राप्त हो जाती। ध्यातव्य है कि रश्मि आदि की मर्यादा की यह व्यवस्था सृष्टिकाल पर्यन्त रहती है। प्रलयकाल में सभी पदार्थों की मर्यादा विशिष्टता एवं बल आदि गुणवत्ता सर्वथा समाप्त होकर एकरस अवस्था प्राप्त हो जाती है। यहाँ ग्रन्थकार का आशय सृष्टिकाल की व्यवस्था के लिए ही समझना चाहिए।।

अब महर्षि पूर्वोक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए अन्य कुछ विद्वानों का मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि विभिन्न ऋतु रश्मियां प्रैष संज्ञक छन्द रश्मियों के द्वारा न तो प्रेरित की जाती हैं और न वे वज्ररूप तीक्ष्ण वषट्कार रश्मियों का रूप धारण कर पाती हैं। वषट्कार के विषय में एक अन्य तत्त्ववेत्ता ऋषि का कथन है- "वज्रो वै वषट्कारः......असौ वाव वौ ऋतवः षट् एतमेव तदृतुष्वादधाति, ऋतुषु प्रतिष्ठापयति" (गो.उ.३.२)। इसका तात्पर्य यह है कि ऋतु रश्मियां प्रैष संज्ञक छन्द रश्मियों के द्वारा आदित्य अर्थात् द्युलोक के स्वरूप का निर्माण नहीं कर पाती हैं। ध्यातव्य है कि प्रैष संज्ञक छन्द रश्मियां तैत्तिरीय ब्राह्मण (३.६.२.१-१२) में वर्णित हैं, जिनको हमने इस ग्रन्थ में ३.६.१ में उद्धृत किया है। सृष्टि प्रक्रिया में जब कभी मन्दता किंवा अति क्षीणता की स्थिति उत्पन्न होती है, उस समय ये प्रैष रश्मियां ही मनस्तत्त्व के द्वारा प्रेरित होकर प्राणापानादि रश्मियों को प्रेरित करती हैं, उसके पश्चात् अग्नि तत्त्व की प्रबल वृद्धि होने लगती है। इस विषय में ३.६.१ अवश्य पठनीय है। यहाँ इन प्रैष संज्ञक १२ छन्द रश्मियों की उपयोगिता द्युलोकों के निर्माण में नहीं है। इसका कारण बताते हुए वे विद्वान् कहते हैं कि ऋतु रश्मियों को 'वाक्' रश्मि, जिसे पूर्व में हमने सूत्रात्मा वायु कहा है, ही प्रेरित करती है। गो.उ.६.१० में भी कहा है- "वाग्वा ऋतुप्रैषाः"। सूत्रात्मा वायु अर्थात् 'वाक्' रश्मि चौथे चरण में ही सब ओर व्याप्त हो जाती है, जो इस षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल तक यथावत् उसी रूप में सक्रिय एवं व्याप्त बनी रहती है, इस कारण यह रश्मि ऋतु रश्मियों को प्रेरित करने में स्वयं सक्षम होती है और ऋतु रश्मियों को प्रेरित करने के लिए प्रैष संज्ञक १२ छन्द रश्मियों की आवश्यकता ही नहीं होती, बल्कि यह रश्मि ही ऋतु रश्मियों को वषट्कार अर्थात् वज्ररूप में प्रकट कराने में भी पूर्ण सक्षम होती है। इस 'वाक्' रश्मि के विषय में ऋषियों का कथन है- वाग्घि वज्रः (ऐ.४.१), वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः (गो.उ.३.६), वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः (ऐ.३.८), वाग्वै वषट्कारो वाग्रेतः (श.१.७.२.२१)। इन वचनों से सिद्ध होता है कि 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु प्राणापान के साथ मिलकर वज्ररूप धारण करके ऋतु रश्मियों को द्युलोकों के निर्माण में प्रेरित करती है।।

यहाँ ग्रन्थकार विद्वानों के उपर्युक्त मत की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि ऋतु रश्मियों को प्रैष संज्ञक उपर्युक्त १२ छन्द रश्मियां यदि प्रेरित करती हैं और वे ही १२ छन्द रश्मियां अति तीक्ष्ण वज्ररूप धारण करती हैं, तो उनकी तीक्ष्णता इतनी बढ़ जाती है कि वे 'वाक्' रश्मियों अर्थात् सूत्रात्मा वायु, जो उस समय प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त होकर उनका संघनन और सम्पीडन करते हुए निर्माणाधीन द्युलोकों

के केन्द्रों की ओर प्रेरित करता है, को ही क्षीण कर देती हैं। यहाँ 'ऋक्णवहीम्' के व्याख्यान में आचार्य सायण ने लिखा है 'ऋक्णवही', वहः वलीवर्दस्य लाङ्गलादिवहनप्रदेशः, 'वृक्णः' भग्नः। वृजो भङ्ग इति धातु। वृक्णो भग्नो वहो वहनप्रदेशो यस्या वाचः सा'' 'ऋक्णवही' 'श्रान्तत्त्वाद् यज्ञभारं वोढुमशक्तेत्यर्थः।'' हमारी दृष्टि में 'वाक्' रश्मियों की क्षीणता का कारण यह है कि वे विभिन्न परमाणुओं के मध्य आकर्षण वल को तीव्र करती हैं, उन्हें वांधती, सम्पीडित और संघनित करती हैं, उसी समय प्रेष रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ को अति तीक्ष्ण वल प्रदान करके उन्हें इस प्रकार अत्यन्त सक्रिय करती हैं कि पदार्थों का संघनन विखण्डन वा विच्छेदन में परिवर्तित हो जाता है। उन प्रेष संज्ञक १२ छन्द रश्मियों में से अधिकांश छन्द रश्मियां अतिच्छन्दरूप होने से अत्यन्त तीक्ष्ण होती हैं, इस कारण वे पदार्थ को घनीभूत करने के स्थान पर सूत्रात्मा वायु रश्मियों के वंधक वलों को विच्छिन्न करके पदार्थ को अति सक्रिय करके विखेर देती हैं और वह अवस्था 'वहराविणीरूप' हो जाती है अर्थात् उस समय सम्पूर्ण पदार्थ में गम्भीर घोष उत्पन्न होने लगते हैं। इस प्रकार द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया नष्ट हो जाती है।।

तदुपरान्त महर्षि कहते हैं कि यदि पूर्वोक्त प्रेष संज्ञक छन्द रश्मियों से ऋतु रश्मियों को प्रेरित न किया जाए और उनसे इन ऋतु रश्मियों को तीक्ष्ण न वनाया जाए, तव भी संयोग प्रक्रिया नष्ट हो जाती है अर्थात् सूक्ष्म स्तर पर कणों में विखराव होने लगता है। पूर्व कण्डिका में विखराव की जो चर्चा हमने की है, वह स्थूल पदार्थों के विषय में की गई है, जवकि यहाँ विखराव की चर्चा सूक्ष्म कणों के स्तर पर की जा रही है। इस समय इन प्रेष संज्ञक छन्द रश्मियों के अभाव में विभिन्न संयोज्य कण संयोज्य क्रियाओं में, विभिन्न प्राण रश्मियों, मन एवं सूक्ष्म वाग् रश्मियों, विभिन्न छन्द एवं मरुदादि रश्मियों से भली-भांति उचित तालमेल करने में सक्षम नहीं हो पाते हैं। उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है, जिसके कारण वे कुटिल एवं भ्रान्त मार्ग पर यदृच्छया भटकते रहते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म कणों के स्तर पर सभी संयोगादि क्रियाएं छिन्न-भिन्न हो जाती हैं। इन प्रेष संज्ञक छन्द रश्मियों की विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं में भूमिका को समझने के लिए भी ३.६.१ ही द्रष्टव्य है। सूक्ष्म कणों की संयोग प्रक्रिया क्षीण वा मन्द हो जाने से स्थूल पदार्थ का स्वरूप ही नष्ट होने लगता है। इस परिस्थिति में स्थूल पदार्थ का संघनन और सम्पीडन करके किसी लोक के निर्माण की प्रक्रिया ही समाप्त हो जाती है किंवा प्रारम्भ ही नहीं हो पाती है।।

अव महर्षि उपर्युक्त विद्वानों के मत की समीक्षा करने के पश्चात् अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त दोनों विधि तथा निषेध की प्रक्रियाएं द्युलोकों के निर्माण में प्रतिकूल सिद्ध होती हैं, इस कारण (ऋग्मेभ्यः = ऋचो मतुपि तलोपः। भिसोभ्यस्।'' - डॉ. सुधाकर मालवीय कृत ऐतरेय ब्राह्मण का हिन्दी अनुवाद) विभिन्न ऋचाओं के आधार पर ऋतु रश्मियों को प्रेरित भी किया जाता है और उन्हें वज्ररूप रश्मियों में परिणत भी किया जाता है। वे रश्मियां कौनसी हैं, पूर्वोक्त प्रेष संज्ञक छन्द रश्मियों से उनका क्या भेद वा समानता है, यह जानने के लिए हम महर्षि आश्वलायन के वचनों को यहाँ उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं-

(१) उपरिष्टात्त्वृच ऋतुयाजानाम्।
(२) प्रेषमृते सौयजमृचं चानवानमुक्त्वा ऋगन्तैरसौ यजेति प्रेष्येत्।।
(३) एवमेव यजन्ति।
(४) तुभ्यं हिन्वानो वसिष्टगा अप इति। (आश्व.श्रौ.८.१.५-८)

आचार्य नारायणवृत्ति -
(१) ऋतुप्रेषान्होतर्यजेत्यादिशब्दरहितानुक्त्वा तैर्ऋचः संधाय ऋगन्ते होतर्यजेत्यादिशब्दान्संधाय तैर्मैत्रावरुणः प्रेष्यति।
(२) एवं क्रमात्तयोरेव होता यक्षदसौ यजयोः स्थान आगूर्वषट्कारौ कृत्वा यजन्तीत्यर्थः।
(३) एता ऋतुयाजानामृचः। (आश्व.श्रौ.८.१.६-८)

इन वचनों से यह संकेत मिलता है कि ऋतु रश्मियों को पूर्वोक्त १२ प्रैष संज्ञक छन्द रश्मियों के कुछ परिवर्तित रूप के द्वारा ही मनरूप मैत्रावरुण प्रेरित करता है। वह परिवर्तन यह है कि उन १२ ऋचाओं में से प्रत्येक ऋचा के अन्त में विद्यमान ''होतर्यज'' इन दो पदों में से आदि पद 'होतः' से रहित प्रथम ११ प्रेष संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है और इनमें केवल 'यज' पद विद्यमान होता है, जवकि अन्तिम १२ वीं छन्द रश्मि में 'होतर्यज' ये दोनों पद विद्यमान होते हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त १२ प्रेष

संज्ञक छन्द रश्मियों के प्रथम दो पदों 'होता' व 'यक्षत्' में से 'यक्षत्' पद के स्थान पर प्राण एवं अपान के 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु के साथ मिथुनरूपी वज्र रश्मियों का प्रयोग होता है अर्थात् उन छन्द रश्मियों में 'यक्षत्' पद के स्थान पर 'प्राण+सूत्रात्मा वायु' एवं 'अपान+सूत्रात्मा वायु' इन दो युग्मों की विद्यमानता होती है, शेष छन्द रश्मियां यथावत् रहती हैं। इस प्रकार की परिवर्तित प्रैष संज्ञक छन्द रश्मियों के द्वारा ही मनस्तत्त्व ऋतु प्राण रश्मियों को प्रेरित करता है और इन्हीं के द्वारा होता रूप अग्नि 'वषट्कार' अर्थात् तीक्ष्ण रूप प्राप्त करता है। इतना होने पर भी यदि सूक्ष्म वा स्थूल पदार्थों में यजन, सम्पीडन एवं संघनन क्रियाओं में कोई बाधा आती है, तो उसके निवारण के लिए गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान के संयुक्त रूप से ऋ.२.३६ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) तुभ्यं॑ हिन्वा॒नो व॑सिष्ट॒ गा अ॒पोऽधु॑क्षन्त्सी॒मवि॑भि॒रद्रि॑भि॒र्नर॑ः।
पिबे॒न्द्र स्वाहा॒ प्रहु॑तं॒ वष॑ट्कृतं हो॒त्रादा सोमं॑ प्रथ॒मो य ईशि॑षे॥१॥

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् एवं देवता इन्द्र-मधु होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व एवं मधु नामक मास रश्मियां तेजस्विता से पूर्ण तीव्र बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व वर्धमान होता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को बसाने में अति सक्रिय होता है। विभिन्न मरुद् रश्मियां संघनित होते पदार्थ की परिधि को विभिन्न वाग् एवं प्राण रश्मियों से पूर्ण करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व उत्तम क्रिया के साथ फैलता हुआ आकर्षण और प्रतिकर्षण बल के तीव्र स्वरूप से युक्त होकर विभिन्न परमाणु वा स्थूल पदार्थों को सब ओर से अपनी ओर खींचता हुआ अपने नियन्त्रण में लेने लगता है।

(२) य॒ज्ञैः संमि॑श्लाः॒ पृष॑तीभिर्ऋ॒ष्टिभि॒र्याम॑ञ्छु॒भ्रासो॑ अ॒ञ्जिषु॑ प्रि॒या उ॒त।
आ॒सद्या॑ ब॒र्हिर्भ॑रतस्य सूनवः पो॒त्रादा सोमं॑ पिबता दिवो नरः॥२॥

इसका छन्द जगती एवं देवता 'मरुतो माधवश्च' होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां एवं 'माधव' संज्ञक मास रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में तेजी से फैलती हुई अन्योऽन्य क्रियाएं करने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से सबके धारणकर्त्ता मनस्तत्त्व किंवा प्राण नामक प्राथमिक प्राण से उत्पन्न विभिन्न मरुद् रश्मियां श्वेत वर्ण की दीप्ति को उत्पन्न करती हुई कमनीय आकर्षण बल एवं नाना प्रकार की गतियों से युक्त होकर अपने-२ मार्गों में अन्तरिक्ष को सब ओर से आकर्षित करके विभिन्न प्राण रश्मियों की संगमनीय शक्तियों के साथ मिलकर नाना पदार्थों को सब ओर से अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

(३) अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ आ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन।
अथा॑ मन्दस्व जुजुषा॒णो अन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः॥३॥

उपर्युक्त छन्द एवं त्वष्टा शुक्र देवता वाली होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अति भेदक बल तथा 'शुक्र' नामक मास रश्मियों का विस्तार और उनके संयोग-वियोग की प्रक्रिया तीव्र होती है। इसके अन्य प्रभाव से अति तीक्ष्ण शक्ति वाली मरुद् रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिलकर इन्द्र तत्त्व को तीक्ष्ण बनाकर विभिन्न उत्पन्न संयोज्य पदार्थों को संगत और सक्रिय करती हैं। वे पदार्थ सम्यग् बलों से युक्त होकर अन्तरिक्ष में विभिन्न द्युलोकों के निर्माणधीन केन्द्रों की ओर ध्वनि करते हुए चल पड़ते हैं।

(४) आ व॑क्षि दे॒वाँ इ॒ह वि॑प्र॒ यक्षि॑ चोश॒न्होत॒र्नि ष॑दा॒ योनि॑षु त्रि॒षु।
प्रति॑ वीहि॒ प्रस्थि॑तं सो॒म्यं मधु॒ पिबाग्नी॑ध्रा॒त्तव॑ भा॒गस्य॑ तृप्णुहि॥४॥

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् एवं देवता अग्नि-शुचि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व एवं 'शुचि' नामक मास रश्मियां देदीप्यमान होती हुई तीव्र बलों से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्निरूप होता कमनीय गुणों से युक्त सूत्रात्मा वायु एवं प्राथमिक प्राण रश्मियों से अच्छी

प्रकार व्याप्त होता है। उसके पश्चात् वह अग्नि अपने तीनों कारण पदार्थों अर्थात् प्राण, छन्द, एवं मरुद् रश्मियों से पूर्णतया भरकर अपने गुणों को प्रकृष्ट बनाता हुआ विभिन्न पदार्थों में स्थित अपने आश्चर्यजनक विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से प्राप्त करता है।

(५) एष स्य तें तन्वों नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब।।५।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् एवं देवता इन्द्र-नभ होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व एवं 'नभ' नामक मास रश्मियां प्रबल आकर्षणादि बलों से युक्त होकर तीव्र तेजस्वी होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न उत्तम गुणों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व विस्तृत आकाश में विभिन्न कार्यों को करने में सक्षम, प्रतिरोधक एवं आकर्षक दोनों ही बलों से युक्त होकर अन्तरिक्षस्थ पदार्थ को सब ओर से धारण करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थ कणों को विद्युत् से तृप्त करते हुए सब ओर से अपनी ओर आकर्षित करता है।

(६) जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु।।६।।

उपर्युक्त छन्द एवं मित्रावरुण-नभस्य देवता वाली होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्राण, व्यान एवं नभस्य नामक मास रश्मियां तीव्र आकर्षक-प्रतिकर्षक बलों के साथ तीव्र तेज से भी युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों प्रकार की प्राण रश्मियां मास रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न पदार्थों को अच्छी प्रकार संगत करती हैं। वे अन्तरिक्ष में विद्यमान पूर्वोत्पन्न विभिन्न निविद् रश्मियों, जिनके बारे में हम अनेकत्र अवगत हो चुके हैं, को भी अच्छी प्रकार अनुकूलता से सक्रिय करती हैं। वे होता रूप अग्नि को वज्र रूप रश्मियों किंवा विभिन्न संयोज्य पदार्थों का आवरक बनाती हुई विभिन्न पदार्थों को सब ओर से आकर्षित करती हैं।

इन ६ छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने से पूर्वोक्त प्रैष संज्ञक १२ छन्द रश्मियों के विधि और निषेध दोनों से होने वाली बाधाएं उत्पन्न नहीं होती हैं। इस कारण प्रैष संज्ञक छन्द रश्मियों के परिवर्तित रूप के द्वारा 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु, जो सर्वत्र व्याप्त होता है, न तो शिथिल होता है और न ही खण्डित होता है। इसके कारण ही विभिन्न पदार्थ घोर गर्जना करते हुए बिखरते भी नहीं हैं, इसके साथ ही सूक्ष्म कण वा रश्मियां संगमनीय प्राण, मन, सूक्ष्म वाक् तत्त्व, छन्द एवं मरुदादि रश्मियों से भी प्रतिकूल संयुक्त किंवा वियुक्त नहीं होते हैं। वे सभी कण भ्रान्त होकर सर्ग यज्ञ प्रक्रिया से पृथक् भी नहीं होते हैं अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल समस्त पदार्थ अनुकूल बल और गतियों से युक्त होकर परस्पर संगत और सम्पीडित होकर सघन होते हुआ द्युलोकों का निर्माण निर्बाध रूप से करने लगते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में विभिन्न तारों के निर्माण की प्रक्रिया विभिन्न ग्रहों के निर्माण के पश्चात् प्रारम्भ होती है। जब कॉस्मिक मेघ के अन्दर अनेक केन्द्रों में पदार्थ संघनित होता है, तब कुछ केन्द्र इतने ही पदार्थ को संघनित कर पाते हैं, जिनमें नाभिकीय संलयन की क्रिया प्रारम्भ नहीं हो सकती है। वे ऐसे पदार्थ समूह ग्रह आदि अप्रकाशित लोकों के रूप में कालान्तर में परिणत हो जाते हैं, वहीं कुछ लोक अधिक मात्रा में पदार्थ को एकत्र करके अपने द्रव्यमान के गुरुत्वाकर्षण बल के द्वारा अपने केन्द्रीय भागों में इतना ताप और दाब उत्पन्न कर लेते हैं, जिससे नाभिकीय संलयन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस कारण से वे लोक सदैव प्रकाशित बने रहते हैं, ऐसे ही लोक तारे कहलाते हैं। यद्यपि दोनों प्रकार के लोकों के निर्माण की प्रक्रिया साथ-२ प्रारम्भ होती है परन्तु तारों के निर्माण के लिए अधिक मात्रा में पदार्थ का संघनित होना आवश्यक होता है। इस कारण ही **वैदिक विज्ञान की दृष्टि से तारों की उत्पत्ति ग्रह आदि लोकों की उत्पत्ति के पश्चात् मानी गई है। वर्तमान विज्ञान से यहाँ हमारा मतभेद है।** नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने हेतु **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष की अनिवार्यता होती है। इनके निर्माण के विषय में इस ग्रन्थ में पूर्व में अनेकत्र व्यापक विज्ञान का वर्णन किया गया है, पाठक उसका वहीं गम्भीरता से अध्ययन करें।

महर्षि के मत से इस ब्रह्माण्ड में कोई भी दो पदार्थ कभी भी किसी भी परिस्थिति में पूर्णतः स्पर्श वा विलय नहीं कर सकते और न वे एक-दूसरे के मार्ग को ही सर्वथा विच्छिन्न कर सकते हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड में होने वाले किसी भी विशालतम विस्फोट वा टक्कर में अथवा अत्यन्त दाब पर होने वाले किसी भी सम्पीडन और संलयन में भी सभी सूक्ष्म कणों वा तरंगों की मर्यादा सदैव बनी रहती है। छन्दादि रश्मियों में भी यही व्यवहार होता है। **हाँ, जब सृष्टि का महाप्रलय होता है, जिसके विषय में आधुनिक विज्ञान सर्वथा अनभिज्ञ है, उस समय अवश्य ये सभी मर्यादाएं नष्ट होकर सभी प्रकार के कणों वा तरंगों के स्वरूप को ईश्वरीय सत्ता द्वारा सूक्ष्मतम, अव्यक्त एवं अज्ञेय एकरस अवस्था में विलीन वा परिवर्तित कर दिया जाता है।** इन लोकों के निर्माण के समय दो प्रकार की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं, उनमें से एक वे क्रियाएं हैं, जो सूक्ष्म कणों, एटम्स, मॉलिक्यूल्स एवं क्वान्टाज् अथवा इनसे भी सूक्ष्म एवं इनके कारणरूप छन्द, प्राणादि रश्मियों के बीच सम्पन्न होती हैं। इसमें विभिन्न कणों का निर्माण एवं न्यूक्लियोसिन्थेसिस के द्वारा छोटे और बड़े मॉलिक्यूल्स का निर्माण होता है। इसके साथ ही विविध आवृत्तियों वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की भी उत्पत्ति होती रहती है। उधर दूसरी क्रियाएं वे हैं, जिनमें कॉस्मिक डस्ट अथवा उनसे बने विशाल समूह किन्हीं विशेष केन्द्रों की ओर प्रवाहित और संघनित होते हुए उन्हें विशाल तारों का रूप प्रदान करने लगते हैं। इस समय ८ त्रिष्टुप्, ९ जगती एवं ६ शक्वरी आदि अतिच्छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इन सभी रश्मियों के प्रभाव से सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही प्रकार की क्रियाओं के लिए अनुकूल बल एवं गति प्राप्त होती रहती है, जिसके कारण दोनों ही स्तरों की क्रियाएं अनुकूलता से सम्पन्न होकर अनेकों तारों का निर्माण करती हैं। इन छन्द रश्मियों के विषय में जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्यमेव द्रष्टव्य है।।
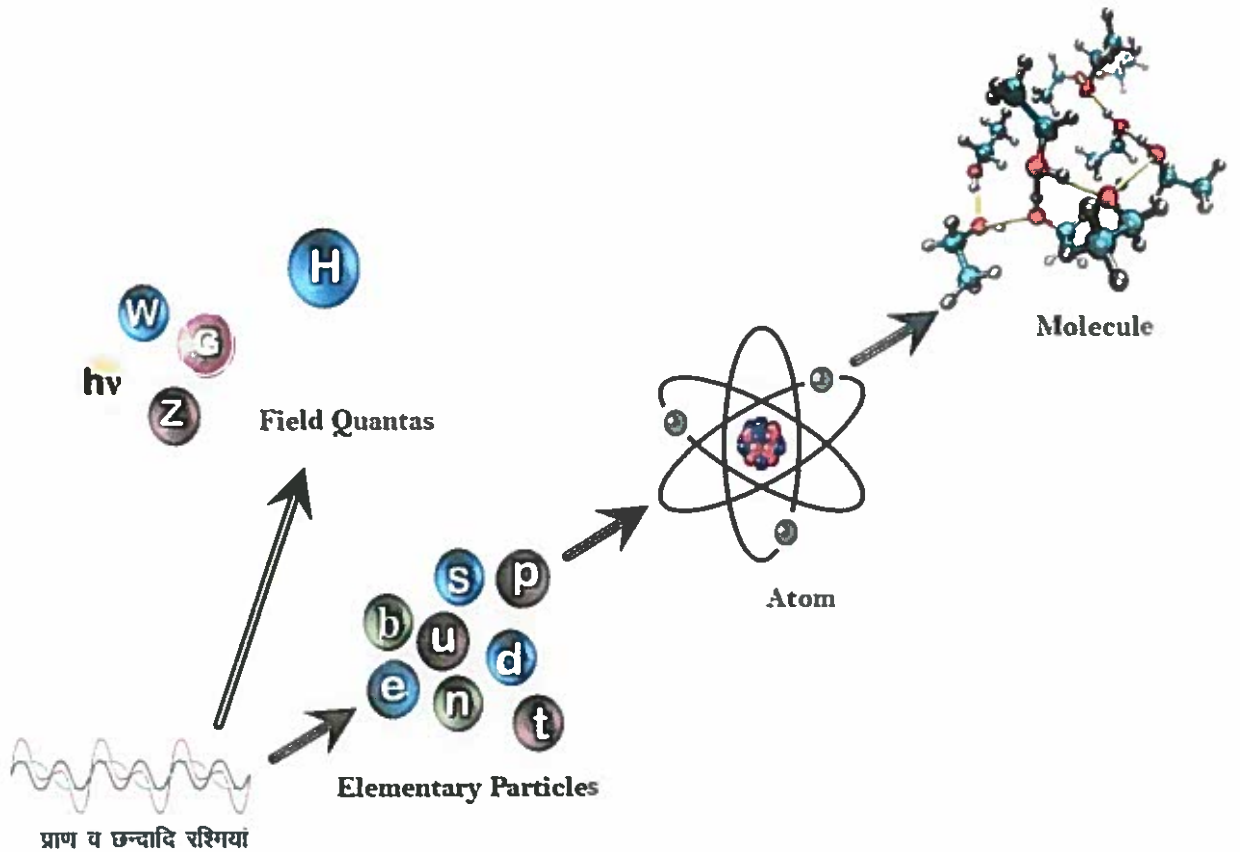
चित्र २२.३ विभिन्न कणों का निर्माण

इति २२.४ समाप्तः

ॐ अथ २२.५ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. पारुच्छेपीरुपदधाति पूर्वयोः सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्यानां रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपमेतेन वा इन्द्रः सप्त स्वर्गाँल्लोकानरोहत्।। रोहति सप्त स्वर्गाँल्लोकान् य एवं वेद।।

व्याख्यानम्– षष्ठ अहन् के प्रातः एवं माध्यन्दिन सवन अर्थात् प्रारम्भिक एवं द्वितीय भाग में कुछ विशेष छन्द रश्मियों की उत्पत्ति एवं उनके स्वरूप आदि के विषय में चर्चा करते हुए कहते हैं कि पारुच्छेपी प्रस्थितयाज्या नामक छन्द रश्मियों से पूर्व अन्य पारुच्छेपी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। पारुच्छेपी छन्द रश्मियां वे ऋचाएं हैं, जो परुच्छेप ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न होती हैं। परुच्छेप ऋषि के विषय में महर्षि यास्क का कथन है– "तत्परुच्छेपस्य शीलम्। परुच्छेप ऋषिः। पर्ववच्छेपः। परुषि परुषि शेपोऽस्येति वा।" (नि.१०.४२) इसका तात्पर्य यह है कि यह ऋषि एक ऐसा सूक्ष्म प्राण है, जो महान् प्रजनन अर्थात् उत्पादक सामर्थ्य वाला होता है। इस प्राण के पाद-२ में मानो इसका शेप है अर्थात् इसके पादशः ऐसा उत्पादक तेज विकीर्ण होता रहता है, जो विभिन्न प्रकार के प्राणों आदि से क्रिया करके अनेकशः सृजन कार्य करता है। सम्भवतः अपने इस विशिष्ट स्वभाव का यह एकमात्र सूक्ष्म प्राण है। इस ऋषि प्राण द्वारा (ऋ.१.१२७-१३६) अर्थात् १३ सूक्तों में विद्यमान सभी ऋचाएं परुच्छेप ऋषि प्राण द्वारा ही उत्पन्न होती हैं। इनमें से कौनसी ऋचाएं इस समय उत्पन्न होती हैं, साथ ही इनके तुरन्त पश्चात् कौनसी अन्य छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, इस विषय में महर्षि आश्वालयन का कथन है–

(१) षष्ठस्य प्रातःसवने प्रस्थितयाज्यानां पुरस्तादन्याः कृत्वोभाभ्यामनवानन्तो यजन्ति।।
(२) वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दवः सुषुमायातमद्रिभिर्वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसो मोषु वो अस्मदभितानि पौंस्यौषूणो अग्ने शृणुहि त्वमीळितोऽग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं दध्यङ्ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिरा इति।।
(३) एवमेव माध्यन्दिनेऽध्यर्धातु तत्रानवानम्।।
(४) पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिरिन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेति षट्।। (आश्व.श्रौ.८.१.१-४)

महर्षि आश्वलायन के वचनों को दृष्टिगत रखते हुए हम अन्य पारुच्छेपी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति एवं स्वरूप पर क्रमशः विचार करते हैं–

(१) इन्द्रदेवताक

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः। ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे। गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि।।६।। (ऋ.१.१३६.६)

की उत्पत्ति होती है। इसका छन्द अष्टि होने से {अष्टिः = असु+क्तिन् पृषो - षत्वम् - आप्टेकोष} इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व का सब ओर व्यापक प्रक्षेपण होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से सेचक बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व {इन्दुः = उदकनाम (निघं.१.१२), यज्ञनाम (निघं.३.१७), इन्दुरिन्धेरुनत्तेर्वा (नि.१०.४१), सोमो वाऽइन्दुः (श.२.२.३.२३)} विभिन्न प्रकार के मेघरूप पदार्थों से विदीर्ण होकर ऐसा पदार्थ उत्पन्न होता है, जो स्वयं सेचक और उत्पादक बलों से युक्त होता है। विभिन्न संयोज्य मरुद् रश्मियां, जो सेचक बलों के साथ-२ अति सम्पीडन के कारण तीव्र तापयुक्त भी हो जाती हैं। ऐसी वे रश्मियां अनेक अद्भुत पदार्थों को उत्पन्न करने वाले इन्द्र तत्त्व को सक्रिय और तृप्त करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होता हुआ अन्य अनेक छन्द रश्मियों का वाहक बनकर विभिन्न क्रियाओं को सहजतापूर्वक सम्पन्न करता हुआ सब ओर

व्याप्त होता है।

(२) मित्रावरुण-देवताक एवं निचृच्छक्वरी छन्दस्क-

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे। आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः। इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः।।१।। (ऋ.१.१३७.१)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से मित्रावरुण अर्थात् वायु और विद्युत् अति तीक्ष्ण सामर्थ्य से युक्त हो जाते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे देदीप्यमान वायु और विद्युत् आकाश तत्त्व को आकर्षित करते हुए विभिन्न मेघरूप पदार्थों से उत्प्रेरक वाग् रश्मियों को निष्पादित करते हैं। वे दोनों अच्छे प्रकार सब ओर व्याप्त होते हुए उत्प्रेरक सोम वा मरुद् रश्मियों को सब ओर फैलाते हैं। ऐसी मरुद् रश्मियां विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा अवशोषित होकर विभिन्न पार्थिव परमाणुओं के साथ संयुक्त होकर उन्हें आशुकारी एवं अत्यन्त ज्वलनशीलता के स्तर तक पहुंचाती हैं।

(३) इन्द्रदेवताक एवं विराडष्टिच्छन्दस्क-

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम्।।७।। (ऋ.१.१३३.७)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सब ओर प्रक्षिप्त होता हुआ विशेष प्रकाशित होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सम्पीडित होते हुए पदार्थ समूह से सब ओर बिखरे हुए अन्य पदार्थ समूह को संयुक्त करता रहता है। वह उस सम्पूर्ण पदार्थ समूह को तीव्रता से सम्पीडित करता हुआ असंख्य प्रकार की छन्द रश्मियों एवं बलों को प्रकट करके देव परमाणुओं के संयोजक कर्मों में बाधा डालने वाले असुरादि पदार्थों को पृथक् करता है, जिसके कारण सम्पूर्ण पदार्थ सम्पीडित और संगत होता हुआ अनेक केन्द्रों को द्युलोक निर्माण का मुख्य केन्द्र बनाता है।

(४) मरुद्-देवताक एवं स्वराडत्यष्टिच्छन्दस्क-

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः।
यद् वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम्।।८।। (ऋ.१.१३९.८)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सम्पूर्ण पदार्थ में देदीप्यमान मरुद् रश्मियां तेजी से प्रक्षिप्त होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे विभिन्न मरुद् रश्मियां किन्हीं अन्य तीक्ष्ण बाधक बलों के द्वारा क्षीण नहीं होती, जैसे कि पार्थिव लोकों के निर्माण के समय हो जाती हैं। इस कारण वे मरुद् रश्मियां विभिन्न अविनाशी परमाणु आदि पदार्थों को भाँति-२ के विचित्र और नवीन संयोग कर्मों के द्वारा असुरादि रश्मियों के प्रहार से तारकर गर्जना करती हुई धारण और संघनित करती हैं।

(५) अग्निदेवताक एवं अत्यष्टिच्छन्दस्क-

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः। यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन। वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा।।७।। (ऋ.१.१३९.७)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व अति तीव्रता से व्याप्त होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रकाशित अग्नि {राजा = राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति (श.५.

१.१.१२)} विभिन्न संगमनीय तेजस्वी परमाणुओं को प्रकाश आदि रश्मियों की उत्पत्ति करने में सक्षम बनाने के लिए विशेष सम्पीडित वा संगत करता है। विभिन्न प्रकाशित परमाणु पार्थिव परमाणुओं को ज्वलनशील बनाने में समर्थ होते हैं। वे उनको विभिन्न संयोजक कर्मों के द्वारा परस्पर संयुक्त एवं नियन्त्रित करके नाना प्रकार की क्रियाओं व रश्मियों से पूर्ण करते हैं।

(६) अग्निदेवताक एवं अष्टिच्छन्दस्क-

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः।।१।। (ऋ.१.१२७.१)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व बाधित रश्मियों से भली-भांति मुक्त हुए विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं को केन्द्रीय भागों की ओर ले जाता हुआ उन्हें अच्छी प्रकार संपीडित व संघनित करता है। वे पदार्थ जलधाराओं के समान तेजी से बहते हुए अग्नि के तेजस्वी एवं अति तप्त रूप द्वारा आकर्षित होते हुए आगे बढ़ते हैं। सबके बसाने वाले और आकर्षण-विकर्षण बलों के मूल विभिन्न प्राण एवं सूत्रात्मा वायु सबमें विद्यमान तेजस्वी अग्नि को प्रकट व प्रकाशित करते हैं।

(७) इन्द्राग्नी-देवताक एवं भुरिगत्यष्टिच्छन्दस्क-

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा।।६।। (ऋ.१.१३६.६)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि और इन्द्र तत्त्व दोनों ही अत्यन्त तीव्र वेग से सब ओर व्याप्त होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सबके धारक वे इन्द्र और अग्नि तत्त्व विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों और सबको अपने साथ सहजता से संगत करने वाले सतत गमनशील एवं तेजस्वी सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियों से पूर्ण करते हैं। वे दोनों बाद में उत्पन्न पदार्थों को भी प्रकाशित करते हुए उन्हें पूर्व प्रकाशित परमाणुओं के साथ सब ओर से नियन्त्रित करते और बांधते हैं। वे दोनों विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा वज्ररूप धारण करके उन सभी बन्धन वा संयोजन क्रियाओं को निरापद बनाते हैं।

ये सातों छन्द रश्मियां उपर्युक्त परुच्छेप ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न होने के कारण पारुच्छेपी कहलाती हैं। इसकी उत्पत्ति के पश्चात् प्रस्थितयाज्या संज्ञक पारुच्छेपी सात छन्द रश्मियां निम्नानुसार उत्पन्न होती हैं-

(१) इन्द्रदेवताक एवं स्वराडष्टिच्छन्दस्क-

पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः। मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे। आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम्।।२।। (ऋ.१.१३०.२)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व प्रकाशित होता हुआ तेजी से सब ओर प्रक्षिप्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {वंसगः = यो वंसं सम्भजनीयं गच्छति गमयति वा स वृषभः (म.द.ऋ.भा.१.५५.१)} अत्यन्त आकर्षणशील वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सेचक और उत्पादक बलों से युक्त होकर विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियों के द्वारा विशाल मेघरूप पदार्थों को सम्पीडित करते हुए सोम रश्मियों का अवशोषण करता है। वे सोम रश्मियां अत्यन्त शक्तिशाली धारक, आकर्षक एवं विशेष सक्रिय उस इन्द्र तत्त्व के लिए {हरितः = दिङ्नाम (निघं.१.६), दिशो वै हरितः (श.२.५.१.५), हरितः हरणानादित्यरश्मीन् हरितोऽश्वानिति वा (नि.४.११)} सभी दिशाओं में प्राण रश्मियों से युक्त सरणशील

और तेजस्वी प्रेरक रश्मियों के द्वारा सब ओर से सब पदार्थों का ग्रहण करती हैं।

(२) इन्द्रदेवताक एवं निचृदत्यष्टिच्छन्दस्क-

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः। इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा।।१।। (ऋ.१.१३१.१)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व बहुत अधिक तीक्ष्णतापूर्वक सब ओर व्याप्त होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व की अति तीक्ष्णता के कारण विशाल पार्थिव परमाणु समूह एवं विशाल मेघस्थ अनेक प्रकार के पदार्थ आकाश तत्त्व एवं दीप्ति का विभाजन करते हुए एक-दूसरे को धारण करते हुए तीक्ष्ण होते जाते हैं। सबमें व्याप्त वह इन्द्र तत्त्व अपने से पूर्व उत्पन्न नाना प्रकार की प्राण रश्मियों के द्वारा धारण किया जाता है। वह इन्द्र तत्त्व तेजस्वी और शुद्ध मानुष नामक रश्मियों के समान सब पदार्थों के साथ संयुक्त होता हुआ सूत्रात्मा वायु से विशेष संयुक्त होकर पदार्थ को तीव्रता से सम्पीडित करता है।

(३) उपर्युक्त देवता एवं छन्द वाली

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक्।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः।।२।। (ऋ.१.१३१.२)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वृषा = इन्द्रो वै वृषा (तां.६.४.३), वृषा वै राजन्यः (तां.६.१०.६), वृषा हिङ्कारः (गो.पू.३.२३)} उस इन्द्र तत्त्व की पृथक्-२ आकर्षक रश्मियां तेजोमयी हिंकार रश्मियों के समान सर्वत्र फैलकर सभी प्रकार के संगम और सम्पीडन आदि कर्मों में एक-दूसरे को सम्भालने एवं बांधने में सहयोग करती हैं। वे रश्मियां शोषक, धारक एवं प्रतिरोधक बलों से युक्त नौका के समान सभी पदार्थों को धारण करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त होकर नाना प्रकार की संगमन क्रियाओं को अपनी तेजोमयी रश्मियों के द्वारा बार-२ चेताता अर्थात् प्रेरित करता है।

(४) उपर्युक्त देवता एवं भुरिगष्टिच्छन्दस्क-

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्।।३।। (ऋ.१.१३१.३)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से आकर्षक-धारक बल तीव्रता से सब ओर व्याप्त होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्राण एवं मरुद् रश्मियों के विभिन्न बलसम्पन्न समूह रक्षणीय एवं अनेकों प्रकार के कर्मों को निष्पादित करने वाले इन्द्र तत्त्व को विभिन्न विकिरणों किंवा पार्थिव परमाणुओं का विभाजन करने में समर्थ बनाते हैं। वह इन्द्र तत्त्व रश्मियों के समान गति करता हुआ तेजयुक्त होकर अनेकों प्रकार के परमाणुओं को अतिशय प्रकट करता हुआ उन्हें अपने बल से प्रेरित करता है। वह **इन्द्र तत्त्व अपान रश्मियों के साथ विशेष संयुक्त होकर बाधक असुर-रश्मिनिवारक बलवान् रश्मियों को उत्पन्न करता है।**

(५) उपर्युक्त देवता एवं विराडत्यष्टिच्छन्दस्क-

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।

महीमंमुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः।।४।। (ऋ.१.१३१.४)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पुरः = मन एव पुरः (श.१०.३.५.७)। पुरुम् = पालकं धारकं वा (म.द.ऋ.भा.७.१६.३), पूरयितव्याः मनुष्याः (नि.७.२२), पूरवः मनुष्यनाम (निघं.२.३)। अवातिरः = अवतरेत् (म.द.भा)} पदार्थ को संघनित एवं धारण करने की इन्द्र तत्त्व की क्षमता सूत्रात्मा वायु मिश्रित मनस्तत्त्व के कारण उत्पन्न होती है। यह ऐसा इन्द्र तत्त्व विभिन्न विरोधी बलों को प्रतिरुद्ध करता हुआ शरद् ऋतु रश्मियों के विभिन्न कर्मों को अधिकता से प्रकट करता है। इन रश्मियों के विषय में पूर्वपीठिका द्रष्टव्य है। विभिन्न बलों का पालक वह इन्द्र तत्त्व संयोजक बलों से हीन मरुद् रश्मियों को नियन्त्रित करता हुआ व्यापक स्तर पर पार्थिव परमाणुओं को प्राण रश्मियों के साथ मिलाकर संघनित पदार्थ के केन्द्रीय तेजस्वी भाग की ओर ले जाता हुआ उसी में मिला देता है।

(६) उपर्युक्त देवता एवं भुरिगष्टिश्छन्दस्क-

आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत।।५।। (ऋ.१.१३१.५)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह रोचक और उत्पादक बल युक्त इन्द्र तत्त्व अपने तेजस्वी प्रभाव से अति सक्रिय होकर बाधक असुरादि तत्त्वों को दूर करके संयोज्य परमाणुओं को आकर्षित एवं उनका अच्छी प्रकार विभाजन करता हुआ विभिन्न रश्मियों से युक्त करता है। वह उनको पृथक्-२ धाराओं में परिणत एवं प्रकाशित करता हुआ उनकी भली प्रकार रक्षा करता है। ऐसे रक्षित वे परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न लोक निर्माण की क्रियाओं को सम्पादित करते हैं।

(७) उपर्युक्त देवता, छन्द एवं प्रभाव वाली

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः।।६।। (ऋ.१.१३१.६)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से वज्र रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोज्य परमाणुओं में सुन्दर रूप वाली ऊष्मा व प्रकाश आदि रश्मियों को उत्पन्न करता है। वह विभिन्न रश्मियों का विभाग करता हुआ आकर्षण बल एवं तेज से युक्त हविरूप मास रश्मियों का सेवन करके और भी बलवान् होकर देव एवं असुर पदार्थ के संघर्ष में असुर पदार्थ को नष्ट वा नियन्त्रित करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न नवीन उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से प्रकाशित व गतिशील करता है।

इस प्रकार ये ७ पारुच्छेपी छन्द रश्मियां प्रस्थितयाज्या कहलाती हैं, जो पूर्वोक्त ७ पारुच्छेपी छन्द रश्मियों के पश्चात् उत्पन्न होती हैं। {याज्या = इयं याज्या (श.१.७.२.११), अपानो याज्या (श.१४.६.१.१२), अन्तरिक्षलोकं याज्यया (जयति) (श.१४.६.१.६)} इन छन्द रश्मियों में विद्यमान अपान रश्मियां पार्थिव परमाणुओं को आकाश तत्त्व के साथ बांधने में विशेष सक्षम बनाती हैं। बन्धन और सम्पीडन की यह क्रिया प्रकृष्ट वेग और बल के साथ तेजी से निर्बाधरूप से चलने लगती है, इसी कारण इन ऋचाओं को प्रस्थितयाज्या कहा जाता है, क्योंकि ये संगतिकार्य में दृढ़ता से लगी रहती हैं और पदार्थ तीव्रता से संघनित होता रहता है। इन ऋचाओं के छन्दों को महर्षि ने 'रोहित' नाम दिया है, जिसका आशय यह है कि ये छन्द रश्मियां ऊर्ध्व दिशा अर्थात् केन्द्रीय भाग की ओर बढ़ती हुई, उसे आच्छादित करती हुई, नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने की क्रिया का बीजारोपण करती हैं। ग्रन्थकार के मत में इन ऋचाओं के छन्दों को 'रोहित' इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इन्द्र तत्त्व इन्हीं ऋचाओं के द्वारा ही सात स्वर्ग लोकों पर आरोहण करता है। सात स्वर्ग लोकों के विषय में

हम एक अन्य तत्त्ववेत्ता ऋषि को उद्धृत करते हैं-

"ता वा एताः सप्त (इष्टयः) स्वर्गस्य लोकस्य द्वाराः। दिवः श्येनयोऽनुवित्तयो नाम। आशा प्रथमां रक्षति। कामो द्वितीयाम्। ब्रह्म तृतीयाम्। यज्ञश्चतुर्थीम्। आपः पञ्चमीम्। अग्निर्बलिमान् षष्ठीम्। अनुवित्तिः सप्तमीम्"। (तै.ब्रा.३.१२.२.६)

तारे के निर्माण के सात मुख्य चरण

हमारी दृष्टि में इसका आशय यह है कि इन्द्र तत्त्व सात चरणों में किसी द्युलोक का निर्माण करता है, जिसका अन्तिम चरण 'अनुवित्ति' नामक होता है, जिसे 'अपात्' भी कहा गया है। {पादः = प्रतिष्ठा वै पादः (श.१३.८.३.८)} इसका आशय यह है कि द्युलोकों का केन्द्रीय भाग सम्पूर्ण द्युलोक का आधार अर्थात् प्रतिष्ठारूप होता है परन्तु उसका अपना कोई आधार नहीं होता। इसलिए इसको 'अपात्' कहते हैं। इस स्थिति तक पहुंचने के लिए निम्नलिखित सात चरण विद्यमान होते हैं-

(१) आशा द्वारा रक्षित प्रथम चरण। {आशा = दिङ्नाम (निघं.१.६), व्यापिका (तु.म.द.य.भा.२२.२७)} इस चरण का तात्पर्य यह है कि द्युलोकों के केन्द्रीय भाग के निर्माण में सर्वप्रथम इन्द्र तत्त्व दिशा अर्थात् आकाश तत्त्व को आकर्षित वा केन्द्रीभूत करने लगता है। वह आकाश तत्त्व विष्णु {विष्णुः = व्यापको व्यानो धनंजयो वा (तु.म.द.ऋ.भा.६.२१.९)} अर्थात् धनंजय और व्यान प्राण (हमारी दृष्टि में सूत्रात्मा वायु भी) के द्वारा केन्द्रीभूत किया जाता है, इसी कारण एक तत्त्ववेत्ता ऋषि ने कहा है- "विष्णवाशानां पते" (तै.ब्रा.३.११.४.१)। इस कारण आकाशस्थ समस्त पदार्थ द्वितीय चरण के लिए प्रेरित होता है।

(२) काम द्वारा रक्षित द्वितीय चरण। इस चरण में केन्द्रीभूत होती आकाश की रश्मियां समीपस्थ पदार्थ में सूक्ष्म आकर्षण बल को उत्पन्न करती हैं। यह बल अति सूक्ष्म स्तर का होता है, इसके द्वारा अगला चरण प्रारम्भ होने लगता है।

(३) ब्रह्म से रक्षित तृतीय चरण। यहाँ 'ब्रह्म' का अर्थ व्यापक बल से है, विशेषकर विद्युत् बल से। उपर्युक्त द्वितीय चरण में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ केवल कुछ हलचल में आते हैं, परन्तु इसी ब्रह्मरूपी बल के द्वारा व्यापक क्षेत्र में परमाणुओं की हलचल और गतिशीलता बढ़ने लगती है, जिसके कारण अगला चरण प्रारम्भ होता है।

(४) यज्ञ द्वारा रक्षित चतुर्थ चरण। इस चरण में उपर्युक्त बलों के द्वारा विभिन्न परमाणु एवं अन्य स्थूल पदार्थ परस्पर एक-दूसरे से संगत होने लगते हैं। इस समय उनके बीच विभिन्न प्रकार की छन्द एवं मरुद् रश्मियों, साथ ही सूत्रात्मा वायु एवं अन्य प्राथमिक प्राण रश्मियों की सक्रियता बढ़ने लगती है। इन्हीं कारणों से यज्ञ के विषय में ऋषियों का कथन है- {आत्मा वै यज्ञः (श.६.२.१.७), पशवो यज्ञः (श.३.२.३.११), प्राणः (यज्ञस्य) सोमः (कौ.ब्रा.९.६)} इन संगतीकरण की क्रियाओं से पांचवां चरण उत्पन्न होता है।

(५) आपः से रक्षित पञ्चम चरण। {आपः = आपो वै रक्षोघ्नीः (तै.ब्रा.३.२.३.१२), वीर्यं वा ऽआपः (श.५.३.४.१), मेध्या वा आपः (श.१.१.१.१), आपो वै सर्वा देवताः (ऐ.२.१६), आपो वै सर्वे कामाः (श.१०.५.४.१५)} इस चरण में वे पूर्वोक्त परमाणु आदि पदार्थ बाधक असुर रश्मियों से मुक्त होकर सभी प्रकार के तीव्र बलों से युक्त हो जाते हैं। इस समय सभी प्राण विशेषरूप से सक्रिय हो जाते हैं, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ विशेष संयोजक बलों से युक्त हो जाता है।

(६) अग्निर्बलिमान् के द्वारा रक्षित षष्ठ चरण। इस चरण में अग्नि तत्त्व इतना तीव्र हो जाता है कि वह सम्पूर्ण पदार्थों को अपने वश में अर्थात् नियन्त्रित कर लेता है, जिसके कारण वे पदार्थ परस्पर अधिक निकटता से संगत होकर अन्तिम सप्तम चरण को उत्पन्न करते हैं।

(७) अनुवित्तिः के द्वारा रक्षित सप्तम चरण। इसके विषय में हम ऊपर लिख चुके हैं। इस स्थिति में द्युलोकों के केन्द्र पूर्णता से अपना कार्य प्रारम्भ करने लग जाते हैं।

इन्द्र तत्त्व इन सातों चरणों में से होकर गुजरता हुआ इन लोकों के केन्द्र के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका निभाता है, इसी कारण अनेक पदार्थों को इन्द्र कहा गया है। उदाहरणार्थ हम यहाँ कुछ आर्ष वचनों को उद्धृत कर रहे हैं-

(१) अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः (श.८.५.३.२)
(२) स यस्स आकाश इन्द्र एव सः (जै.उ.१.६.१.२)
(३) इन्द्रो वागित्यु वाऽआहुः (श.१.४.५.४)
(४) प्राण एवेन्द्रः (श.१२.६.१.१४)
(५) मन एवेन्द्रः (श.१२.६.१.१३)
(६) इन्द्रो वै यजमानः (श.२.१.२.११)
(७) इन्द्रो बलं बलपतिः (श.११.४.३.१२)
(८) रेत इन्द्रः (श.१२.६.१.१७)

उधर एक अन्य ऋषि का कथन है- "छन्दांसि वै स्वर्गो लोकः" (जै.ब्रा.२.२२४)। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इन्द्र तत्त्व सभी ७ छन्द रश्मियों में धीरे-२ व्याप्त होता हुआ अन्त में द्युलोकों के केन्द्रीय भाग का निर्माण करने में सक्षम होता है। इन्द्र तत्त्व का इन ७ चरणों में प्रकट, सक्रिय और व्याप्त होना भी पूर्वोक्त पारुच्छेपी छन्द रश्मियों के सहयोग से ही सम्भव हो पाता है। इस सदर्भ में इस ग्रन्थ में अनेकत्र दर्शाई हुई द्युलोक निर्माण की प्रक्रिया पर भी विशेष मनन करें। इस प्रकार की स्थिति बनने पर वह इन्द्र तत्त्व सभी सात पूर्वोक्त चरणों पर आरोहण करता हुआ द्युलोक के केन्द्रों को बनाने में सक्षम हो जाता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **तारों के केन्द्रों के निर्माण** की पूर्वोक्त प्रक्रिया सात चरणों में सम्पन्न होती है, जिसमें सर्वप्रथम **सूक्ष्म विद्युत् और उससे भी सूक्ष्म धनंजय, व्यान एवं सूत्रात्मा वायु के द्वारा किसी एक स्थान विशेष में आकाश का संकुचन प्रारम्भ होता है।** इसके पश्चात् उस केन्द्र के चारों ओर विद्यमान पदार्थ में हल्की सी प्रतिक्रिया प्रारम्भ होती है, जिसके कारण विभिन्न कण कम्पित होने लगते हैं। उसके अगले चरण में आकर्षण की प्रक्रिया तीव्र होती है, फिर वे परस्पर विभिन्न मरुद्, छन्द एवं प्राण रश्मियों के कारण आवेशित हो उठते हैं और उनका परस्पर संगम प्रारम्भ होने लगता है। **धीरे-२ गुरुत्वाकर्षण बल का प्रभाव बढ़कर पदार्थ और तेजी से संघनित होने लगता है और गुरुत्वाकर्षण बल के दबाव के कारण उस क्षेत्र में ताप एवं दाब इतना बढ़ जाता है कि विभिन्न नाभिक परस्पर संलयित होकर भारी मात्रा में ऊर्जा को उत्पन्न करने लगते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में विद्युत् की अहम भूमिका होती है** और उस विद्युत् को सक्रिय करने में १३ अष्टि छन्द रश्मियां एवं १ शक्वरी छन्द रश्मि की महती भूमिका होती है। इन रश्मियों की उत्पत्ति एक ऐसी सूक्ष्म प्राण रश्मि से होती है, जो स्वयं अत्यन्त तीक्ष्ण और विशेष उत्पादन सामर्थ्य से युक्त होती है। इस समय तारों के निर्माणधीन केन्द्र के चारों ओर भारी हलचल होकर सम्पूर्ण पदार्थ तेजी से उस केन्द्रीय पदार्थ की ओर प्रवाहित होने लगता है। डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर के बाधक प्रभाव धीरे-२ लगभग समाप्त हो जाते हैं। इस समय अत्यन्त गम्भीर ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होती हैं। बाहर की ओर से प्रवाहित होता हुआ पदार्थ गैसों के रूप में एवं जलधाराओं के समान तेजी से केन्द्र की ओर बढ़ता है। इस समय विभिन्न छन्दादि रश्मियां भी तेजयुक्त होकर परस्पर संगत और संलयित होने लगती हैं। इस प्रक्रिया में अनेक प्रकार के नवीन कण एवं तरंगें तथा न्यूक्लियोसिन्थेसिस प्रक्रिया के द्वारा अनेक प्रकार के नाभिकों या अणुओं का निर्माण भी तीव्र गति से होता है। इस समय **सूत्रात्मा वायु** और मनस्तत्त्व के कारण विद्युत् विशेष सक्रिय होती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

२. तदाहुर्यत् पञ्चपदा एव पञ्चमस्याह्नो रूपं, षट्पदा; षष्ठस्याथ कस्मात् सप्तपदाः षष्ठेऽहञ्छस्यन्त इति।।

षड्भिरेव पदैः षष्ठमहराप्नुवन्त्यपच्छिद्यैवैतदहर्यत्सप्तमं, तदेव सप्तमेन

पदेनाभ्यारभ्यवसन्ति, वाचमेव तत्पुनरुपयन्ति संतत्यै।।
संततैस्त्र्यहैरव्यवच्छिन्नैर्यन्ति य एवं विद्वांसो यन्ति।।५।।

एक ही छन्द का भिन्न-२ प्रभाव

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कुछ विद्वानों का प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जब पञ्चपदा पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है तथा षट्पदा छन्द रश्मियां षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है, तब इसी चरण में पूर्वोक्त सप्तपदा पारुच्छेपी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति क्यों होती है? इस प्रश्न से यह विचारणीय विषय उत्पन्न होता है कि जब पञ्चम और षष्ठ अहन् अर्थात् व्यान एवं देवदत्त प्राण के उत्कर्ष कालों में अनेक प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं तब इन्हें पञ्चपदा एवं षट्पदा क्यों कहा गया है? जैसा कि हम पूर्व में देख चुके हैं कि पञ्चम अहन् में अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री एवं शक्वरी आदि अनेक छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, परन्तु ये सभी पञ्चपदा नहीं होती। इनमें से कुछ में पांच से अधिक पद हैं, तो किन्हीं में पांच से कम पद भी हैं। इसी प्रकार षष्ठ अहन्, जिसमें उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों के विषय में आगे भी वर्णन किया जाएगा, उनकी भी यही स्थिति है अर्थात् वे सभी षट्पदा नहीं हैं, तब यहाँ क्यों इन चरणों में उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों को क्रमशः पञ्चपदा एवं षट्पदा कहा है? इससे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न छन्द रश्मियों का स्वरूप विभिन्न कालों वा परिस्थितियों में परिवर्तित भी हो सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो गायत्री और अनुष्टुप् छन्द रश्मियां क्रमशः त्रिपदा और चतुष्पदा हैं, वे भी इन चरणों में क्रमशः पञ्चपदा और षट्पदा हो जाती हैं। इसी प्रकार अन्य छन्द रश्मियों के विषय में भी यही **स्थिति है। इससे यह महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट होता है कि अक्षरों की संख्या की दृष्टि से परस्पर भिन्न छन्द रश्मियां विभिन्न चरणों में समान पादों के रूप में प्रकट होती हैं।** हमारे मत में इस प्रक्रिया में इन छन्द रश्मियों के मूल प्रभाव में भी कुछ-न-कुछ परिवर्तन अवश्य होना चाहिए। इस कारण **एक ही प्रकार की गायत्री आदि छन्द रश्मियां विभिन्न चरणों में पूर्णतया समान प्रभाव नहीं दर्शाती है।** यदि ऐसा होता तो पादों की संख्या परिवर्तित ही नहीं होती। **हमने सम्पूर्ण व्याख्यान में विभिन्न छन्द रश्मियों का प्रभाव दर्शाते समय छन्दों के आधार पर ही प्रभाव दर्शाया है, जबकि इन चरणों में उनका कुछ-न-कुछ पृथक्-२ प्रभाव भी अवश्य होना चाहिए।** वस्तुतः यह भेद इतना सूक्ष्म होता है कि उसे शब्दों में पृथक्-२ दर्शाना अति दुष्कर कार्य है। इस कारण हमने सामान्य दृष्टि से ही छान्दस प्रभाव दर्शाया है।।

इन विद्वानों के उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि षट्पदा छन्द रश्मियों के द्वारा ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष की स्थिति प्राप्त होती है, यह सत्य है। इस कारण सप्तपदा छन्द रश्मियों में सप्तम पद, जो अहर्वत् अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण के समान प्रभाव वाला होता है, पृथक् निकलने से शेष छः पादों के द्वारा ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष की अवस्था प्राप्त होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इन ऋचाओं का सप्तम पद इस प्रक्रिया में विशेष कार्य नहीं करता किंवा निष्क्रिय रहता है। इस सप्तम पद के द्वारा वे छन्द रश्मियां आगामी चरण अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष की अवस्था को उत्पन्न करने में प्रेरक का कार्य करती हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन सप्तपदी छन्द रश्मियों का सप्तम पाद षष्ठ अहन् और सप्तम अहन् अर्थात् देवदत्त एवं समान प्राण के उत्कर्ष की अवस्थाओं के मध्य एक कड़ी का कार्य करता है। इसके अतिरिक्त यह पाद 'वाक्' रश्मि अर्थात् सूत्रात्मा वायु को भी पुनः और भी व्याप्त और विस्तृत करता है, जिसके कारण मध्यम त्र्यह अर्थात् पूर्वोक्त तीनों चरणों की निरन्तरता बनाये रखते हुए उसे अग्रिम अर्थात् अन्तिम त्र्यह के प्रथम चरण से जोड़ने का कार्य करता है। जिससे सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया निरन्तरता से अग्रसर होती रहती है। इस प्रकार इन पारुच्छेपी छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने पर द्युलोक के निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर और अविच्छिन्न रूप से चलने में समर्थ होती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में जो विभिन्न तीक्ष्ण १४ उपर्युक्त छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, उन रश्मियों का अन्तिम सूक्ष्म अवयव तारों के निर्माण की प्रक्रिया को एक कड़ी

के रूप में जोड़े रखता है। विभिन्न कणों के संयोग की प्रक्रिया से लेकर विभिन्न ग्रहों की उत्पत्ति तथा तारों की उत्पत्ति तक होने वाली सभी सृजन प्रक्रियाएं इस सूक्ष्म अवयव द्वारा परस्पर एक-दूसरे से जुड़ी रहकर अविच्छिन्न रूप से निरन्तर चलती रहती हैं। यहाँ विशेष वक्तव्य यह भी है कि विभिन्न छन्द रश्मियां पृथक्-२ चरणों वा परिस्थितियों में स्वल्प मात्रा में पृथक्-२ प्रभाव दर्शाती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति २२.५ समाप्तः ॐ

ॐ अथ २२.६ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. देवासुरा वा एषु लोकेषु समयतन्त; ते वै देवाः षष्ठेनैवाह्नैभ्यो लोकेभ्योऽसुरान् प्राणुदन्त; तेषां यान्यन्तर्हस्तीनानि वसून्यासंस्तान्यादाय समुद्रं प्रौप्यन्त; त एतेनैव च्छन्दसाऽनुहायान्तर्हस्तीनानि वसून्याददत तद् यदेतत् पदं पुनःपदं स एवाङ्कुश आसञ्जनाय।।

आ द्विषतो वसु दत्ते निरेनमेभ्यः सर्वेभ्यो लोकेभ्यो नुदते, य एवं वेद।।६।।

व्याख्यानम्- षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष की प्रक्रिया के समय जब द्युलोकों के निर्माण का कार्य चल रहा होता है, उस समय समस्त देव पदार्थ पर असुर रश्मियों का भी प्रहार होता रहता है। {लोकः = छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)} उस समय नाना प्रकार की छन्द रश्मियों के पारस्परिक संगम और संघर्षण की क्रिया भी चलती रहती है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सदैव असुर रश्मियों के तीक्ष्ण प्रहार की आशंका रहती है। इन प्रहारों से यह सम्पूर्ण पदार्थ छिन्न-भिन्न हो सकता है, इस कारण देव पदार्थ और असुर पदार्थ में संघर्ष होने लगता है, उस समय देव पदार्थ असुर पदार्थ के ऊपर पूर्वोक्त **षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण** रश्मियों के द्वारा प्रति प्रहार करता है, विशेषकर पूर्वोक्त पारुच्छेपी छन्द रश्मियों से युक्त देवदत्त प्राण का प्रहार होता है, जिसके कारण वे असुर रश्मियां विभिन्न लोकों अर्थात् सभी छन्द रश्मियों एवं पृथिवी अथवा द्यौ आदि लोकों से दूर फेंक दी जाती हैं। उस समय असुर रश्मियों के बलरूप हाथों में जो भी परमाणु आदि सूक्ष्म वा अन्य स्थूल पदार्थ विद्यमान होता है, उसे वे असुर रश्मियां समुद्र अर्थात् आकाश में प्रक्षिप्त कर देती हैं। {समुद्र = अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३)} इसका तात्पर्य यह है कि असुर पदार्थ के तीव्र प्रक्षेपक बल के कारण वह पदार्थ द्युलोकों के निर्माणार्थ संघनित न होकर अन्तरिक्ष में दूर-२ बिखर जाता है, उस समय देव पदार्थ पूर्वोक्त पारुच्छेपी छन्द रश्मियों के द्वारा असुर रश्मियों पर तीक्ष्ण तेजस्वी प्रहार करते हैं और इस प्रहार के द्वारा अन्तरिक्ष में बिखरे हुए उस सम्पूर्ण पदार्थ को अपने नियन्त्रण में कर लेते हैं अर्थात् अपने तीव्र आकर्षण बलों के द्वारा उसे अपनी ओर आकर्षित और नियन्त्रित कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में पूर्वोत्पन्न

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः। ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे। गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि।।६।। (ऋ.१.१३९.६)

के अन्तिम सप्तम पाद "सुमृळीको न आ गहि" की उत्पत्ति बार-२ होती है और इसकी बार-२ उत्पत्ति से यह छन्द रश्मि असुर रश्मियों से मुक्त अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त पदार्थ को आकर्षित करने में विशेष समर्थ होती है अर्थात् इसी पाद रश्मि के विशेष प्रभाव से ही उस पदार्थ का आकर्षण और अंकुश के समान नियन्त्रण भी रहता है। जब इस पाद की बार-२ आवृत्ति होती है, उस समय सभी छन्द रश्मियों से असुर रश्मियां दूर हो जाती हैं तथा उनके नियन्त्रण से मुक्त सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ संघनित होकर द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया में अनुकूलतापूर्वक भाग लेते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- जब दृश्य पदार्थ एवं डार्क पदार्थ वा एनर्जी में परस्पर संघर्ष होता है, तो डार्क एनर्जी के तीव्र प्रहार से दृश्य पदार्थ अन्तरिक्ष में दूर-२ बिखर जाता है। उस समय कुछ तीव्र छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर डार्क एनर्जी पर भारी प्रहार करते हुए उस बिखरे हुए दृश्य पदार्थ को अपने अधीन कर लेती हैं और यह पदार्थ फिर संघनित होता हुआ विभिन्न तारों के निर्माण में भाग लेने

लगता है। तारों के निर्माण में इस प्रकार का संघर्ष चलता रहता है और अन्त में डार्क एनर्जी निष्प्रभावी हो जाती है एवं तारों के निर्माण की प्रक्रिया निर्बाध गति से चलने लगती है।।

॥ इति २२.६ समाप्तः ॥

अथ २२.७ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. द्यौर्वै देवता षष्ठमहर्वहति त्रयस्त्रिंशः स्तोमो रैवतं सामातिच्छन्दाश्छन्दो यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसं राध्नोति य एवं वेद।।
यद्वै समानोदर्कं तत्षष्ठस्याह्नो रूपं; यद्ध्येव तृतीयमहस्तदेत-त्पुनर्यत्षष्ठं; यदश्ववद्यदन्तवद् यत्पुनरावृत्तं यत्पुनर्निनृत्तं यद्रतवद् यत्पर्यस्तवद् यत्त्रिवद्यदन्तरूपं, यदुत्तमे पदे देवता निरुच्यते, यदसौ लोकोऽभ्युदितः।।
यत्पारुच्छेपं, यत्सप्तपदं, यन्नाराशंसं, यन्नाभानेदिष्ठं, यद्रैवतं, यदतिच्छन्दा, यत्कृतं यत्तृतीयस्याह्नो रूपमेतानि वै षष्ठस्याह्नो रूपाणि।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस काल में द्यौ देवता की उत्कृष्टता रहती है। इसका आशय यह है कि इस समय ही द्युलोकों की उत्पत्ति एवं पुष्टि होती है। देवदत्त प्राण समस्त द्युलोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों में व्याप्त हो जाता है। इसी कारण द्यौ देवता को इस चरण का निर्वाहक कहा गया है। इसी समय त्रयस्त्रिंश स्तोम रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है, जो गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में ही विद्यमान होते हैं। इनके विषय में ४.१६.१ अवश्य पठनीय हैं। इस स्तोम के विषय में ऋषियों का कथन है- त्रयस्त्रिंशः (स्तोमः) त्रयस्त्रिंशो वै स्तोमानामधिपतिः (तां.६.२.७), एष वै समृद्धः स्तोमो यत् त्रयस्त्रिंशः (तां.१५.१२.६), ज्योतिस्त्रयस्त्रिंशः स्तोमानाम् (तां.१३.७.२), अन्तो वै त्रयस्त्रिंशः परमो वै त्रयस्त्रिंशः स्तोमानाम् (तां.३.३.२)। इन आर्ष वचनों से स्पष्ट होता है कि यह स्तोमरूप रश्मिसमूह पूर्वोत्पन्न सभी स्तोम रश्मिसमूहों में सर्वाधिक समृद्ध तथा उन सभी रश्मिसमूहों का अधिपति और ज्योतिस्वरूप होता है। इसके साथ ही यह सबसे अन्तिम और सबसे महान् भी होता है। इसके विषय में एक अन्य ऋषि का कथन है- "तम् (त्रयस्त्रिंशं स्तोमम्) उ नाक इत्याहुः (तां.१०.१.१८)" अर्थात् यह रश्मिसमूह नाक स्वरूप होता है एवं नाक के विषय में ऋषियों का कथन है- नाक आदित्यो भवति नेता रसानां नेता भासां ज्योतिषां प्रणयः (नि.२.१४), संवत्सरो वाव नाकः (श.८.४.१.२४), स नाको नाम दिवि रक्षोहाग्निः (मै.४.१.६)। इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि इन स्तोम रश्मियों के द्वारा असुर रश्मियों का पूर्ण विनाश वा नियन्त्रण होकर पदार्थ इतना संपीडित और संघनित हो जाता है कि वह द्यौ लोकों का रूप धारण करके अग्नि तत्त्व को उत्सर्जित करने लगता है। इस समय रैवत साम रश्मियां भी उत्पन्न होकर उच्च घोष उत्पन्न करती हैं। ये रश्मियां द्युलोकों के निर्माण के समय अति विक्षोभ को नियन्त्रित और सन्तुलित करके द्युलोकों के निर्माण में अनुकूलता का निर्माण करती हैं। इन रश्मियों के विषय में ४.१३.२ द्रष्टव्य है। इस समय अतिच्छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है, जिनके कारण विभिन्न पदार्थ अपनी सीमाओं का कुछ अतिक्रमण करके परस्पर विलीन होकर नवीन-२ तत्त्वों का निर्माण करते हुए अग्नि तत्त्व की व्यापक मात्रा में उत्पत्ति करते हैं। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

षष्ठ अहन् किंवा देवदत्त प्राण के सक्रियता काल में समानोदर्क अवस्था उत्पन्न होती है। समानोदर्क अवस्था के विषय में ५.१.१ देखें, जहाँ तृतीय अहन् अर्थात् उदान प्राण उत्कर्ष काल में भी समानोदर्क अवस्था उत्पन्न होती है। देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की अनेक क्रियाएं एवं उनके प्रभाव तृतीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल की क्रियाओं के समान होते हैं।

ये छन्द रश्मियां 'अश्व' शब्द से युक्त होती हैं, जिसके प्रभाव से ये रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को आशुगामी एवं विशेष बलवान् बनाती हैं।

ये 'अन्तः' शब्द से भी युक्त होती हैं, इनके प्रभाव को ५.१.१ के समान समझें। इन रश्मियों में पूर्ववत् कुछ पदों की पुनरावृत्ति होती है। इसमें 'रत', 'पर्यास', 'त्रि' आदि पदों की विद्यमानता होती है। इनमें देवतावाची शब्द अन्तिम पाद में विद्यमान होता है तथा आदित्य लोक की सब ओर से समृद्धि होती है। इन सबके विषय में ५.१.१ की तृतीय कण्डिका अवश्य पढ़ें। यहाँ तक ये सभी गुण उदान प्राण एवं देवदत्त प्राण दोनों के उत्कर्ष काल में समान रूप से विद्यमान होते हैं। अब देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में उदान प्राण के उत्कर्ष काल से भिन्न अन्य गुणों वा प्रभावों की चर्चा अगली कण्डिका में करते हैं।।

इस काल में पूर्वोक्त पारुच्छेपी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिनके प्रभाव पूर्वोक्तानुसार समझे जा सकते हैं। इस समय परुच्छेप ऋषि प्राणों की भी बहुलता होने से नाना प्रकार के नवीन-२ तत्त्वों की उत्पत्ति भी तीव्र गति से होती है। इस काल में उत्पन्न छन्द रश्मियां ७ पादों से युक्त होती हैं। पूर्ववर्णित पारुच्छेपी छन्द रश्मियां ७ पादों से ही युक्त होती हैं। इसके साथ-२ अन्य छन्द रश्मियां भी इस समय ७ पादों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। इन छन्द रश्मियों को महर्षि ने नाराशंस भी कहा है। इसका तात्पर्य यह भी है कि वे छन्द रश्मियां विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों द्वारा निरन्तर प्रकाशित होती रहती हैं। नराशंस के विषय में कुछ ऋषियों का कथन है- "मनुष्या वै नराशंसः" (तै.ब्रा.२.७.५.२), "प्रजा वै नरस्ता इमा अन्तरिक्षमनु वावद्यमानाः प्रजाश्चरन्ति यद्वै वदति शंसतीति वै तदाहुस्तस्मादन्तरिक्षं नराशंसः" (श.१.८.२.१२)। इन प्रमाणों से संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को प्रकाशित करती हुई आकाश तत्त्व को संकुचित करके विभिन्न पदार्थों का यजन करने में विशेष सक्षम होती हैं।

इसी काल में नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न कुछ छन्द रश्मियां सक्रिय और प्रकाशित होती हैं, जिनके विषय में आगामी नवें एवं दसवें खण्डों में विस्तार से लिखा जाएगा।

इस काल में रैवत साम रश्मियों की भी उत्पत्ति होती है, जिनके विषय में इसी खण्ड की प्रथम कण्डिका में ही लिख चुके हैं।

इस चरण में अतिच्छन्द रश्मियां विशेषरूप से उत्पन्न होती हैं, जिनके विषय में भी हम ऊपर लिख चुके हैं।

इस चरण में 'कृ' धातु का प्रयोग भूतकाल में होता है, इससे संकेत मिलता है कि इस चरण में लोकों के निर्माण की प्रक्रिया लगभग पूर्ण हो जाती है। वैसे 'कृ' धातु का यह रूप उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न ऋचाओं में भी विद्यमान होता है परन्तु दोनों ही चरणों में इसके पृथक्-२ प्रभाव को पाठक अनुभव कर सकते हैं।

इस प्रकार ये सभी लक्षण, जो इन तीनों कण्डिकाओं में वर्णित हैं, षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में तारों के निर्माण की प्रक्रिया अर्थात् उनमें नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस समय ६ गायत्री छन्द रश्मियां विभिन्न रूपों में प्रकट होकर ३३ गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में सक्रिय हो जाती हैं, जिसके कारण वे रश्मियां तीव्र रूप धारण करके डार्क एनर्जी के प्रक्षेपक और प्रतिकर्षक प्रभावों को दूर कर देती हैं, परिणामस्वरूप नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया तेज होने लगती है। इस प्रक्रिया में तीव्र ध्वनि तरंगें भी उत्पन्न होती हैं और इसी समय सम्पूर्ण पदार्थ संतुलित रूप से सम्पीडित और संलयित हो लगता है। तारों के केन्द्रीय भाग में यद्यपि अत्यन्त तीव्र क्रियाएं होती हैं, पुनरपि वहाँ **देवदत्त प्राण** के प्रभाव से सभी छन्द रश्मियां एक-दूसरे के साथ शृंखलाबद्ध रूप से जुड़कर सम्पूर्ण पदार्थ को एकसूत्रता में बांधती हुई एकरस जैसी अवस्था को उत्पन्न करती हैं। इस समय अति तीक्ष्ण अष्टि नामक छन्द रश्मियां सब ओर व्याप्त होने लगती हैं, जिससे सम्पूर्ण पदार्थ अत्यन्त तीव्र विद्युत् चुम्बकीय बलों तथा वेग से संयुक्त हो जाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में विभिन्न सूक्ष्म मरुद् रश्मियां नाभिकीय संलयन के समय आकाश तत्त्व को संकुचित करने लगती हैं।।

२. 'अयं जायत मनुषो धरीमणीति' षष्ठस्याह्न आज्यं भवति; पारुच्छेपमतिच्छन्दाः

सप्तपदं षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में पूर्वव्याख्यात परुच्छेप ऋषि द्वारा अग्निदेवताक ऋ.१.१२८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है–

(१) अयं जा॑यत मनु॑षो धरी॑मणि होता॒ यजि॑ष्ठ उशिजा॒मनु॑ व्रतमग्निः स्वमनु॑ व्रतम्।
विश्वश्रु॑ष्टिः सखीयते र॒यिरि॑व श्रवस्यते। अद॑ब्धो होता॒ नि ष॑ददिळस्पदे परि॑वीत इळस्पदे।।१।।

इसका छन्द निचृदत्यष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि के परमाणु अति तीक्ष्ण वेग से सब ओर फैलने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से यह अग्नि तत्त्व प्रकाशित होकर सर्वत्र असुरादि रश्मियों से मुक्त रहता हुआ सबको संयुक्त और वियुक्त कराने में सक्षम होकर सबमें व्यापक और स्थिर होता है। वह अग्नि अत्यन्त तीव्र गति वाला होकर अपने कमनीय बलों के द्वारा विभिन्न अनुकूल क्रियाओं को धारण करता हुआ विभिन्न परमाणुओं को तीव्र वेग प्रदान करता है। वह अग्नि तत्त्व सूत्रात्मा वायु और मन एवं वाक् रूप होताओं के साथ प्रकाशित होता हुआ अति तीव्र संयोजक बलों और क्रियाओं को उत्पन्न करता है।

(२) तं य॑ज्ञसाधमपि॑ वातयामस्यृतस्य॑ पथा नम॑सा हविष्म॑ता देवता॑ता हविष्म॑ता।
स न॑ ऊर्जामुपाभृ॑त्यया कृपा न जू॑र्यति। यं मा॑तरिश्वा मन॑वे परावतो॑ देवं भाः प॑रावतः।।२।।

इसका छन्द भुरिगष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्रकार के आकर्षणादि बल तेजी से सब ओर व्याप्त होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से जिन देव परमाणुओं को अन्तरिक्षस्थ वायु दूर से ही प्रकाशित करता है, वे परमाणु इस वायु तत्त्व की सामर्थ्य से बल को निकटता से धारण करके मास रश्मियों से युक्त अग्नि के परमाणुओं का रूप धारण करके आकाश में निरन्तर गमन करने लगते हैं। वे अग्नि के परमाणु संयोजक गुणों और वारक वज्र रश्मियों से युक्त होकर वायु तत्त्व के साथ संगत होकर नाना प्रकार की संयोग प्रक्रियाओं को प्रारम्भ करते हैं।

(३) एवे॑न स॒द्यः पर्ये॑ति पार्थि॑वं मुहुर्गी रेतो॑ वृषभः कनि॑क्रदद्दधद्रेतः कनि॑क्रदत्।
शतं चक्षा॑णो अक्षभि॑र्देवो वने॑षु तुर्वणि॑ः। सदो॑ दधा॑न उप॑रेषु सानु॑ष्वग्निः परे॑षु सानु॑षु।।३।।

इसका छन्द विराडत्यष्टि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {रेतः = रेत आज्यं (श.१.३.१.१८), प्राणो रेतः (ऐ.२.३८), रेतो वै घृतम् (श.६.२.३.४४), रेतो वाजिनम् (तै.ब्रा.१.६.३.१०), रेतो वा ऽअत्र यज्ञः (श.७.३.२.६)। कनिक्रदत् = भृशं शब्दयन् (म.द.य.भा.३३.६०), भृशं गच्छन् (म.द.य.भा.११.४६)। तुर्वणिः = सद्योगामी (म.द.ऋ.भा.१.१८६.३), यस्तुरान् शीघ्रकरान् वनति सम्भजति सः (म.द.ऋ.भा.१.६१.११)} वह अग्नि तत्त्व वार-२ विभिन्न छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर तीव्र वेग से प्रक्षिप्त प्राण एवं 'घृम्' रश्मियों के साथ मिलकर आशुगामी होता हुआ बाधक रश्मियों को नष्ट करने वाली विभिन्न बलयुक्त प्राण रश्मियों को धारण करता हुआ शीघ्रतापूर्वक गतिशील होता है। वह विभिन्न किरणों में प्रकाश की वर्षा करता हुआ विभिन्न मेघरूप पदार्थों को दूर-२ तक धारण करता है। वह अग्नि विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को शीघ्रता से व्याप्त करता हुआ अपने बलों से नियन्त्रित करता है।

(४) स सुक्रतु॑ः पुरोहि॑तो दमे॑दमेऽ ग्निर्यज्ञस्या॑ध्वरस्य॑ चेतति क्रत्वा॑ यज्ञस्य॑ चेतति।
क्रत्वा॑ वेधा इ॑षूयते विश्वा॑ जातानि॑ पस्पशे। यतो॑ घृतश्रीरति॑थिरजा॑यत वह्नि॑र्वेधा अजा॑यत।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {दमः = गृहनाम (निघं.३.४), दमेन दान्ता; किल्विषमवधून्वन्ति (तै.आ.१०.६३.१), दमः शमयिता (तै.आ.१०.६४.१ – ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} अनेक सुन्दर कर्मों का कर्त्ता संयोगादि कर्म में सर्वत्र पूर्व से ही विद्यमान वह अग्नि तत्त्व

द्युलोकों के हर केन्द्रीय भाग में बाधक रश्मियों का दमन करके सम्पीडन, संघनन और संयोजन कर्मों को संपादित करता है। वह इन निरापद क्रियाओं को प्रकाशित करता हुआ सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा सबमें प्रविष्ट होकर सभी परमाणुओं को बांधता है, जिससे 'घृम्' एवं प्राण रश्मियां सर्वत्र सतत गमन करती हुई ज्वालाओं को उत्पन्न करती हैं।

(५) क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना। स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः।।५।।

इसका छन्द निचृदष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव प्रथम छन्द रश्मि की अपेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से सबका नियन्त्रक वह अग्नि एवं मरुद् रश्मियां अपने गति, कान्ति एवं रक्षणादि कर्मों के द्वारा विभिन्न पालक व अवशोष्य बलों को संगत करते हैं। वह अपने बल व गति से विभिन्न परमाणु व लोकों को व्याप्त करके सम्मुख उपस्थित वा दूर-२ फैली हुई बाधक असुरादि रश्मियों से रक्षा करके उन्हें प्रकाशित करता है।

(६) विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्।
विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे। विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति।।६।।

इसका छन्द विराडत्यष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {विहाँयाः = विहाँया व्याप्ता (नि.१०.२६), महन्नाम (निघं.३.३)। श्रवः = अन्ननाम (निघं.२.७), धननाम (निघं. २.१०)} वह अग्नि तत्त्व सभी पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें उत्तम बल व क्रिया प्रदान करके तारने वाला होकर विभिन्न संयोज्य परमाणुओं की व्याप्ति से सदैव सक्रिय बना रहता है। वह अपने बलवान् आकर्षण - धारणादि गुणों को देव पदार्थों में धारण कराता हुआ उन्हें सर्वतः तीक्ष्ण बनाता है। वह अग्नि विभिन्न हव्य परमाणु वा मासादि रश्मियों को आकृष्ट करके सभी प्रकार के कर्मों को सम्यग्रूपेण सम्पादित करता है। इसके साथ ही वह बाधक पदार्थों को रोकने के सामर्थ्य से भी सबको युक्त करता है।

(७) स मानुषे वृजने शन्तमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते। स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः।।७।।

इसका छन्द निचृदष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सब उत्पन्न परमाणुओं का कमनीय वह अग्नि तत्त्व हिंसक बाधक पदार्थों को कम्पाता तथा उनकी बाधाओं को नष्ट करता है। वह विभिन्न संगति क्रियाओं में प्रकाशमान वरुण अर्थात् व्यानोदान तथा सूत्रात्मा वायु रश्मियों को धारण करके नाना बलों को संगत करता है। वह अग्नि संघनन व सम्पीडन कार्यों में नियन्त्रित होने योग्य पदार्थों को सूत्रात्मा वायुयुक्त निर्मल किरणों के द्वारा रोककर उन्हें सहजतया धारण करता है।

(८) अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्। देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः।।८।।

इसका छन्द विराडत्यष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां होतारूप, विभिन्न परमाणुओं में व्याप्त, अनेक कर्मों के प्रापक, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के धारक, संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों के वाहक, सबके सर्वोत्तम प्रेरक और कमनीय अग्नि को निरन्तर प्रेरणा करती रहती हैं। सभी प्रकार के संयोज्य कर्मों, सभी पदार्थों वा वासयित्री रश्मि आदि सबको रमाने वाला वह क्रान्तदर्शी अग्नि विभिन्न क्रियाओं वा पदार्थों के वासयिता वा संयोजक परमाणुओं के साथ निरन्तर संगत होता रहता है। वह अग्नि विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा निरन्तर प्रकाशित होता है।

इस सूक्तरूप रश्मिसमूह को इस चरण का आज्य शस्त्र कहा गया है। इस शस्त्र के विषय में पूर्ववत् समझें। यह रश्मिसमूह पारुच्छेपी, अतिछन्द एवं सप्तपदा रश्मियों से युक्त है, इस कारण इसकी

उत्पत्ति षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ विभिन्न प्रकार की अष्टि छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर अग्नि तत्त्व को व्यापक क्षेत्र में फैला देती हैं। इस समय समस्त पदार्थ में ऊष्मा और प्रकाश की मात्रा विशेषरूप से बढ़ने लगती है। इसके साथ ही गुरुत्वाकर्षण बल की प्रबलता भी बढ़ते हुए पदार्थ तेजी से संघनित होने लगता है। डार्क एनर्जी का प्रतिकर्षक वा प्रक्षेपक बल बलहीन हो जाता है। समस्त पदार्थ तेजी से केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होता हुआ एकत्र होता जाता है। इस समय विभिन्न कणों की गति अति तीव्र हो उठती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

३. स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतय आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसे सुषुमायातमद्रिभिर्युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाऽवर्मह इन्द्र वृषन्निन्द्रास्तु श्रौषळो षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो ये देवासो दिव्येकादशस्थेयमददाद्रभसमृणच्युतिमिति प्रउगं; पारुच्छेपमतिच्छन्दाः सप्तपदं षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
'स पूर्व्यो महानामिति, मरुत्वतीयस्य प्रतिपदन्तो वै महदन्तः षष्ठमहः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त पूर्वोक्त परुच्छेप ऋषि से वायुदेवताक ऋ.१.१३५.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे। प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन्।।१।।

इसका छन्द निचृदत्यष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु तत्त्व तीक्ष्ण रूप से विस्तृत क्षेत्र में फैलने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव परमाणु प्रकाशित होने के लिए वायु तत्त्व को ही सर्वप्रथम अवशोषित करके सम्पीडनार्थ नियन्त्रित होने लगते हैं। वे पदार्थ विशेष तृप्त और क्रियावान् होने के लिए विभिन्न प्रकार की प्राण और सोम रश्मियों में स्थिर होकर विशाल आकाश को ढकते हुए परस्पर एक-दूसरे की ओर गतिशील होते हैं। वे अनेकों प्रकार से प्राणादि रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित होकर निरन्तर बलवान् होते चले जाते हैं।

(२) तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते। वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः।।२।।

इसका छन्द विराडत्यष्टि होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वायु तत्त्व अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियां परुच्छेप ऋषि प्राण के समान सबको आकर्षित और नियन्त्रित करती हुई नाना प्रकार की क्रियाओं को जन्म देती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां मरुद् रश्मियों के साथ उचित संगति करके उन्हें प्रकाशित करती हैं। वे सोम रश्मियां विभिन्न प्राण वा छन्द रश्मियों के द्वारा आच्छादित होकर सब ओर से पवित्र और शीघ्रकारी गुणों को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ को सब ओर से धारण करती हैं।

(३) आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा। अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत।।३।।

इसका छन्द निचृदत्यष्टि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वायु तत्त्व के साथ संगत हुए विभिन्न पदार्थ आकर्षण और धारण गुणों से युक्त होकर बाधक रश्मियों से मुक्त होते हैं। वे पदार्थ सूर्यादि लोकों के केन्द्रीय भाग में विभिन्न शुद्ध एवं शीघ्रकारी रश्मियों के साथ

ऋतु रश्मियों को भी अपने साथ संगत करते हैं। वे परमाणु आदि पदार्थ वायु तत्त्व की सैकड़ों-हजारों रश्मियों के साथ संयोजक और कमनीय गुणों को प्राप्त करके निरापद भाव से परस्पर सव ओर से संयुक्त होते हैं।

इस तृच के उपरान्त परुच्छेप ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न वायुदेवताक ऋ.१.१३५.४-६ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽ भि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम्। वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम्।।४।।

इसका छन्द विराडत्यष्टि होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पदार्थ वायु तत्त्व की रमणीय रश्मियों के द्वारा धारण एवं परस्पर कमनीय वलों से युक्त होकर एक-दूसरे को अपनी ओर तीव्रता से आकर्षित करते हुए सव ओर गतिशील हो उठते हैं। वे विभिन्न क्रियाओं की रक्षा और संयोजक गुणों की व्याप्ति के लिए इन्द्र तत्त्व के साथ भी सव ओर से संगत और सिद्ध होते हैं। विभिन्न संयोज्य परमाणु अपने साथ पूर्ण संयुक्त प्राणादि रश्मियों को {चन्द्रम् = चन्द्रमा वै हिंकारः (जै.उ.१.१.३.४)} 'हिम्' रश्मियों के साथ सिद्ध करके सव ओर से निकट आने लगते हैं। इस समय वायु तत्त्व विशेष समृद्ध होने लगता है।

(२) आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या। इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम्।।५।।

इसका छन्द भुरिगष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु तत्त्व का आकर्षण और धारण वल विशेष व्याप्त होने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र और वायु तत्त्व {अध्वरम् = यज्ञनाम (निघं.३.१७), अन्तरिक्षनाम (निघं.१.३)} आकाश तत्त्व, सोम रश्मियों, विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों के समान निरन्तर गमन करते हुए सव ओर वर्तमान होते हैं। विभिन्न परमाणु एवं सम्पीडित सोम रश्मियां इन्द्र एवं वायु से युक्त होकर अति सक्रिय हो जाती हैं। वे इन्द्र और वायु परुच्छेप ऋषि प्राण रश्मियों के समान विशेष वल, वीर्य आदि के द्वारा सभी परमाणु आदि पदार्थों को विशेष रक्षण, कान्ति और गति आदि गुणों से युक्त करते हैं।

(३) इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः। युवायवोऽ ति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया।।६।।

इसका छन्द निचृदष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु तत्त्व तीक्ष्ण रूप से सव ओर फैलता है। इसके अन्य प्रभाव से वह वायु तत्त्व विभिन्न संगमनीय परमाणुओं के साथ सम्पीडित सोम रश्मियों को धारण करता हुआ विभिन्न संयोग-वियोगादि क्रियाओं को शीघ्र सम्पादित करता है। वे परमाणु इन्द्र और वायु तत्त्वों की कामना करते हुए विभिन्न छन्द रश्मियों एवं नाशरहित मरुद् रश्मियों के साथ मिलकर नाना पदार्थों को सिद्ध करते हैं।।

तदुपरान्त पूर्वोक्त ऋषि प्राण द्वारा मित्रावरुणौ-देवताक ऋ.१.१३७.१-३ तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः। इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः।।१।।

इसका छन्द निचृच्छक्वरी होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्राण-उदान एवं प्राण-व्यान रश्मियां तीक्ष्ण रूप से शक्तिशाली होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणोदान अथवा प्राणव्यान रश्मियां आकाश तत्त्व को अपने साथ सम्वद्ध करके प्रकाशित होती हुई विभिन्न वायु रश्मियों से युक्त मेघरूप पदार्थों किंवा परमाणुओं को विशेष सक्रिय करती हैं। वे दोनों उन सक्रिय परमाणुओं को सोम रश्मियों के साथ संयुक्त करके विभिन्न छन्दादि रश्मियों में व्याप्त होती हैं। शीघ्रकारी सोम रश्मियां भी छन्दादि

रश्मियों से व्याप्त होकर प्राणोदानादि रश्मियों के साथ संगत होती हैं।

(२) इम आ यांतमिन्दंवः सोमांसो दध्यांशिरः सुतासो दध्यांशिरः।
उत वांमुषसों बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः। सुतो मित्राय वरुंणाय पीतये चारुंर्ऋतायं पीतयें।।२।।

इसका छन्द विराट् शक्वरी होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान एवं प्राणव्यान रश्मियां परस्पर संगत होकर विभिन्न सुन्दर रश्मियों को अवशोषित करके सुन्दर प्रकाश रश्मियों के साथ सव ओर से सम्पीडित होती हैं। वे सव रश्मियां सोम रश्मियों के धारक एवं उनमें व्याप्त पदार्थों को भी प्रेरित और सम्पीडित करती हैं।

(३) तां वां धेनुं न वांसरीमंशुं दुंहन्त्यद्रिंभिः सोमं दुहन्त्यद्रिंभिः।
अस्मत्रा गन्तमुपं नोऽ र्वाञ्चा सोमंपीतये। अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतयें सुतः।।३।।

इसका छन्द भुरिगतिशक्वरी होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से आकर्षण और धारण वल अति तीव्रता से वढ़ने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणोदान एवं प्राणव्यान रश्मियां अपने सम्मुख विद्यमान विभिन्न वागू रश्मियों के समान विभिन्न मेघरूप पदार्थों को अपनी तेजयुक्त व्याप्ति से पूर्ण करती हैं। वे प्राणोदानादि रश्मियां विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न परमाणुओं को सोम रश्मियों से पूर्ण करके उनमें व्याप्त हो जाती हैं। विभिन्न मरुदादि रश्मियां आशुगामी होकर सम्पूर्ण पदार्थ को सव ओर से आकर्षित करके सम्पीडित व संघनित करती हैं।

तदुपरान्त पूर्वोक्त परुच्छेप ऋषि प्राण द्वारा अश्विनी-देवताक ऋ.१.१३६.३-५ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) युवां स्तोमेंभिर्देवयन्तों अश्विनाश्रावयंन्तइव श्लोकमायवों युवां हव्याभ्या३ यवंः।
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षंश्च विश्ववेदसा। प्रुषायन्तें वां पवयों हिरण्यये रथें दस्रा हिरण्ययें।।३।।

इसका छन्द विराडष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणु अधिक तेजस्वी होते हुए सव ओर व्याप्त होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {दस्रवति = दस्रौ दर्शनीयौ (नि.६.२६)} वे प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु विभिन्न वागू रश्मियों के तेजस्वी समूहों के द्वारा कमनीय वलों एवं प्रकाश से युक्त होकर विभिन्न संयोज्य पदार्थों को व्याप्त करते हैं। वे दोनों दर्शनीयरूप धारण करके सुनहरे रंग की किरणों के रूप में वज्रतुल्य दाहक रूप धारण कर लेते हैं। {पविः = वज्रनाम (निघं.२.२०)} वे दोनों विशाल मात्रा में विभिन्न प्राण रश्मियों और विभिन्न संयोज्य परमाणुओं के संघात समूहों को व्याप्त करते हैं।

(२) अचेंति दस्रा व्यु१ंनाकमृण्वथो युञ्जतें वां रथयुजो दिविंष्टिष्वध्वस्मानो दिविंष्टिषु।
अधिं वां स्थामं वन्धुरे रथें दस्रा हिरण्ययें। पथेव यन्तांवनुशासता रजोऽ ञ्जसा शासंता रजः।।४।।

इसका छन्द भुरिगत्यष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु अपने तेज को विशेषरूप से विस्तृत करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे दोनों प्रकार के दर्शनीय कण असुरादि रश्मियों की वाधा से मुक्त होकर विभिन्न आकाश मार्गों में वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व के समान प्राण रश्मियों के विभिन्न संयोगों से युक्त होकर निरापद रूप से विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। वे दोनों प्रकार के परमाणु निर्माणाधीन द्युलोकों के अनुकूल नियन्त्रित होकर अनुकूल गति और मार्ग में चलते हुए उस लोक को चलाते हुए सुनहरे रंग की रश्मियों के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

(३) शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्। मा वां रातिरुपं दसत्कदां चनास्मद्रातिः कदां चन।।५।।

इसका छन्द निचृद्बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सम्पीडन और संघनन की क्रिया अति तीक्ष्णरूप से होती है। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु विभिन्न वागू

रश्मियों में निवास करते हुए पदार्थ की प्रकाशित और लगभग अप्रकाशित अवस्थाओं में विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं। उनकी संयोगादि क्रियाएं इन दोनों ही अवस्थाओं में पूर्णतः नष्ट नहीं होती।

तदुपरान्त पूर्वोक्त परुच्छेप ऋषि द्वारा इन्द्रदेवताक ऋ.१.१३३.६-७ प्रगाथ की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः।
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे। अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः।।६।।

इसका छन्द स्वराड् ब्राह्मी जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विद्युत् तेजी से प्रकाशित होती हुई सब ओर फैलती तथा तीव्र गति से अन्योन्य क्रियाएं करती है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राणादि रश्मियों से युक्त होकर विशाल मेघस्थ पदार्थों को विदीर्ण करता हुआ उनको प्रज्वलित, प्रकाशित और गतिशील करता है। वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों की रक्षा करता है। {घृणिः = ज्वलतोनाम (निघं.१.१७)} वह इन्द्र तत्त्व अपनी ज्वलनशीलता और कंपाने की शक्ति के कारण बाधक रश्मियों को कंपाता हुआ उन्हें नष्ट वा नियन्त्रित करता है। वह बलवान् इन्द्र तत्त्व अपने २१ प्रकार के उग्र बलों के द्वारा विभिन्न असुरादि रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके विभिन्न परमाणुओं को बलयुक्त करता है। हमारी दृष्टि में इन्द्र तत्त्व के २१ प्रकार के बल विभिन्न छन्द रश्मियों के विभिन्न संयोगों के कारण उत्पन्न होते हैं।

(२) वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः। सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम्।।७।।

इसका छन्द विराडष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजी से प्रकाशित होता हुआ फैलने लगता है। इसके अन्य प्रभाव से पदार्थ को संपीडित करती हुई विभिन्न रश्मियों को वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त करके सब ओर से सामर्थ्यवान् बनाता है। वह उन रश्मियों को प्रकट एवं बलयुक्त करके अनेकों देव परमाणुओं को बाधक रश्मि वा बाधक परमाणुओं से पृथक् करता है। वह संपीडित होते हुए पदार्थों को विलीन वा संगत करता हुआ उन्हें एक केन्द्रीय स्थान में एकत्र वा संघनित करता है।

तदुपरान्त निम्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे।
गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि।।६।। (ऋ.१.१३६.६)

इसके विषय में ५.१०.१ द्रष्टव्य है।

(२) पूर्वोक्त परुच्छेप ऋषि द्वारा उत्पन्न विश्वेदेवादेवताक एवं निचृदष्टिच्छन्दस्क-

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः।।१।। (ऋ.१.१३९.१)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीक्ष्ण वेग से सब ओर व्याप्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {धीतिः = धीतिः प्रज्ञानाम (नि.१०.४१), धीतिभिः कर्मभिः (नि. २.२४), धीतिः प्रजा (नि.१०.४० - वै.को. से उद्धृत)} विभिन्न परमाणु अपने तेज और क्रियाओं के द्वारा परस्पर एक-दूसरे के निकट आते और एक-दूसरे को धारण करते हैं। वे इन्द्र और वायु तत्त्वों से अच्छी प्रकार युक्त होकर निर्माणाधीन द्युलोक के केन्द्रीय भाग में एकत्र होते हुए नवीन-२ क्रियाओं को जन्म देते हैं। वे विभिन्न हव्य एवं तेजस्वी रश्मियों के बल को धारण करके अग्नि तत्त्व को पूर्णता

किंवा तेजस्विता प्रदान करते हैं।

(३) ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा॥७॥ (ऋ.१.१३९.७)

इसके विषय में ५.१०.१ में देखें।

(४) परुच्छेप ऋषि प्राण से विश्वेदेवादेवताक एवं भुरिक्पंक्तिछन्दस्क-

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥११॥ (ऋ.१.१३९.११)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्रकार के देव पदार्थ तेजी से परस्पर संगत होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे देव पदार्थ द्युलोकों में अथवा पृथिवी वा अन्तरिक्ष लोकों में निवास करने वाले दस प्राथमिक प्राण एवं सूत्रात्मा वायु के साथ विशेष संगत होने लगते हैं। यहाँ तीनों लोकों से तात्पर्य प्रकाशित, अप्रकाशित कण एवं आकाश तत्त्व मानना चाहिए। द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया में इन तीनों का ही योगदान रहता है।

तदनन्तर बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सरस्वती-देवताक ऋ.६.६१.१-३ तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥१॥

इसका छन्द निचृज्जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां तेजस्वी ज्वालाओं के साथ तीक्ष्णता से संयुक्त-वियुक्त होने लगती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां विभिन्न क्रियाओं को तेजी से बढ़ाने, संयोगादि क्रियाओं को आशुगामी करने एवं न्यून संयोजक बलों से युक्त परमाणुओं को बलयुक्त करने के लिए नित्य प्राणादि रश्मियों से युक्त और प्रकाशित करती हैं। वे अपने बल से उन्हें रक्षणीय व्यवहार प्रदान करती एवं स्थिर रखती हैं।

(२) इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः॥२॥

इसका छन्द जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {बिसखा = बिसोपपदे खनु अवदारणे धातोः 'जनसनखनक्रमगमो विट्' इति विट्। 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्' इत्याकारादेशः। बिसं बिस्यतेर्भेदनकर्मणो वृद्धिकर्मणो वा (नि.२.२४ - वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री से उद्धृत)} वे वाग् रश्मियां महान् शोषक एवं भेदक बलों के द्वारा विभिन्न मेघरूप पदार्थों को तरंगित करके उनकी परिधियों को तोड़ देती हैं, इसके कारण वह पदार्थ वेगवती नदी की भाँति धारण और रक्षण गुणों से युक्त होकर केन्द्रीय भाग का चक्रण करता हुआ घनीभूत होने लगता है।

(३) सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति॥३॥

इसका छन्द विराड्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बलों एवं अग्नि से युक्त वे छन्द रश्मियां देव पदार्थों के ऊपर प्रहार करने वाले असुरादि पदार्थों को निष्कासित करके सबको आच्छादित करने वाली प्रज्ञापिका विद्युत् एवं विभिन्न

परमाणुओं को व्याप्त करती हैं। वे विभिन्न पार्थिव परमाणुओं में से बाधक व घातक रश्मियों को बाहर निकालती हैं।

इन सभी छन्द रश्मियों के समूह की महर्षि ने 'प्रउग' संज्ञा की है, जिसका आशय पूर्ववत् समझें। इन सभी छन्द रश्मियों के (अन्तिम ३ के अतिरिक्त) पारुच्छेपी होने तथा अतिच्छन्दस्क (अपवाद के अतिरिक्त) एवं सप्तपदा होने से इस सम्पूर्ण शस्त्र रूप छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति षष्ठ अहन् किंवा देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर प्रगाथः काण्व ऋषि अर्थात् प्रकृष्ट रूप से प्रकाशित होता हुआ सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.६३.१-३ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है।

(१) स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे। यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धियं आनजे।।१।।

इसका छन्द विराडनुष्टुप् है। इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां विशेष सक्रिय होकर इन्द्र तत्त्व की तीव्रता बढ़ाती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न कमनीय बलयुक्त पदार्थों में सबसे अधिक पूर्ण और महान् होता है। सृष्टि में सर्वत्र उसी के प्रकाश एवं कर्म दिखाई देते हैं। इन्द्र तत्त्व की सहायता से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ पालन, रक्षण एवं प्रकाशन आदि कर्मों को प्राप्त करते हैं।

(२) विराड्गायत्री छन्दस्क

दिवो मानं नोत्संदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रंयः। उक्था ब्रह्म च शंस्यां।।२।।

इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न सोम रश्मियों में आश्रित विभिन्न प्राण वा छन्द रश्मियां द्युलोक के निर्माण के समय उसकी सीमा से विशेष बहिर्गमन नहीं करती बल्कि वहीं समृद्ध होती हुई प्रकाशित होती हैं।

(३) स विद्वाँ अङ्गिंरोभ्य इन्द्रो गा अंवृणोदपं। स्तुषे तदंस्य पौंस्यंम्।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियों एवं विभिन्न छन्द रश्मियों से आच्छादित होकर विशेष तीव्र बलों को प्राप्त करता है।

इस तृच को महर्षि ने मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह की 'प्रतिपद्' के रूप में माना है। इससे स्पष्ट है कि यह तृच आगामी छन्द रश्मियों, जो कि विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होती हैं, की उत्पत्ति के पूर्व उत्पन्न होती है। इस तृच में 'महत्' शब्द विद्यमान है। 'महत्' शब्द के विषय में महर्षि लिखते हैं "अन्तो वै महत्"। 'महत्' शब्द का अर्थ व्यापक एवं विशाल होता है और 'अन्त' शब्द का अर्थ सीमा वा अन्तिम सिरा माना जा सकता है। इस कारण ही दोनों शब्द समानार्थक बतलाये गये हैं। इसलिए महद्वत् यह तृच अन्तवत् के समान ही सिद्ध होता है। इस तृच का अन्तवत् होना ही षष्ठ अहन् किंवा देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में १२ अष्टि, ३ शक्वरी, ४ जगती, १ बृहती, १ पंक्ति, १ अनुष्टुप् एवं २ गायत्री कुल २४ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों के अतिरिक्त विद्युत् की तीव्रता विशेष वर्धमान होती है। इस समय सम्पूर्ण पदार्थ की ऊर्जा में भारी वृद्धि होने (विशेषकर गुरुत्वीय ऊर्जा में) से पदार्थ के सम्पीडन और संघनन की दर तेजी से बढ़ने लगती है और उस संघनित होते पदार्थ का ताप भी बहुत तेजी से बढ़ने लगता है। उस समय उस केन्द्रीय भाग में संलयन की क्रियाएं उत्पन्न और तीव्र हो उठती हैं। इस क्रिया में प्राण, उदान, व्यान एवं **सूत्रात्मा वायु** आकाश तत्त्व को अपने साथ बांधते हुए गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव को निरन्तर बढ़ाते रहते हैं। इन्हीं प्राण रश्मियों की प्रेरणा से ही नाभिकीय संलयन की क्रियाएं प्रारम्भ हो पाती हैं। इस क्षेत्र में सम्पूर्ण पदार्थ अत्यधिक ऊष्ण एवं प्रकाशयुक्त होता है। उस संघनित होते हुए पदार्थ का रंग सुनहरा होता है, उस स्थान में डार्क एनर्जी एवं डार्क मैटर का प्रक्षेपक प्रभाव लगभग

नष्ट वा नियंत्रित हो जाता है। इस समय सभी प्राण रश्मियां सक्रिय होती हैं और उन्हीं के कारण सम्पूर्ण पदार्थ विशेष प्रेरित होता है। जव यह पदार्थ सम्पीडित होना प्रारम्भ करता है, उस समय इस पदार्थ की अवस्था तरल भी होती जाती है, जो अग्निनद के समान प्रवल वेग से केन्द्र की ओर वढ़ता हुआ और चक्रण करता हुआ संघनित होने लगता है। उस सम्पूर्ण पदार्थ में गुरुत्व वल के साथ-२ विद्युत् चुम्वकीय वलों की तीव्रता भी निरन्तर वढ़ने लगती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

४. 'त्रय इन्द्रस्य सोमा' 'इन्द्र नेदीय एदिहि' 'प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिरग्निर्नेता' 'त्वं सोम क्रतुभिः' 'पिन्वन्त्यपो' 'नकिः सुदासो रथमिति' तृतीयेनाह्ना समान आतानः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त -

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य। स्वे क्षये सुतपान्नः।।७।।
त्रयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः। समाने अधि भार्मन्।।८।।
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः। दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य।।६।। (ऋ.८.२.७-६)

तृच की उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ५.१.५ पठनीय है। यह तृच रश्मिसमूह 'अनुचर' कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां पूर्वोक्त तृचरूप रश्मिसमूहों, जो 'प्रतिपत्' संज्ञक होती हैं, का अनुगमन करती हैं।
इसके पश्चात्-

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।६।। (ऋ.८.५३.५-६)

प्रगाथ की उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ४.२६.५ व ४.३१.४ देखें।
उसके पश्चात्

'प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे।।५।। (ऋ.१.४०.५)

ऋचा की प्रगाथ के रूप में उत्पत्ति होती है, जिसके विषय में ३.१७.२ द्रष्टव्य है।
तदनन्तर निम्नलिखित ३ अच्युत धाय्या संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) अग्निर्नेता भगइव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम्।।४।। (ऋ.३.२०.४)

(२) त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः।।२।। (ऋ.१.६१.२)

(३) पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्।।६।। (ऋ.१.६४.६)

उपर्युक्त तीनों अच्युत धाय्या छन्द रश्मियों के विषय में ४.२६.६ द्रष्टव्य है। तदनन्तर-

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे।।१०।।

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम्।।११।।

इत्यादि (ऋ.७.३२.१०-११) प्रगाथ की उत्पत्ति होती है। इसके विषय में ५.१.६ द्रष्टव्य है। इन सभी प्रकार की छन्द रश्मियों की सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्ति तृतीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के समान ही इस षष्ठ अहन् किंवा देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में भी होती है। इस प्रकार ये दोनों अहन् समानता रखते हैं। तृतीय अहन् की समानता ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ३ गायत्री, ३ बृहती, २ पंक्ति और १-१ त्रिष्टुप्, जगती तथा अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय **सूत्रात्मा वायु** प्राण एवं मरुद् रश्मियों के साथ-२ विद्युत् की तीव्रता बढ़ने से सभी प्रकार के कण एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता बढ़ती है। डार्क एनर्जी का प्रभाव क्षीण होता है। ऊष्मा की तीव्रता भी विशेषरूप से बढ़ती है। इस समय नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया तीव्र होकर नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति होने लगती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

५. 'यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातय इति' सूक्तं पारुच्छेपमतिच्छन्दाः सप्तपदं षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर पूर्वोक्त परुच्छेप ऋषि प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१२९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) निचृदत्यष्टिच्छन्दस्क-

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि। सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्। सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम्।।१।।

इसके छान्दस एवं दैवत प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण वेग के साथ सब ओर प्रक्षिप्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से सबका कमनीय आकर्षक इन्द्र तत्त्व सब पदार्थों का संयोग व विभाग करने के लिए आसुर प्रभावयुक्त परमाणु आदि पदार्थों को रमणीय किरणों के द्वारा अच्छी प्रकार वहन करता है। वह इन्द्र तत्त्व प्रशंसनीय नियन्त्रण शक्ति व तेज द्वारा आवश्यक बलों को शीघ्र प्राप्त करता व कराता है। वह सूत्रात्मा वायु की रश्मियों को नाना वाग् रश्मियों के साथ संगत व सिद्ध करता है।

(२) स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता। तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम्।।२।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा वहनीय विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के परस्पर आकर्षण बलों को धारण करने के लिए विभिन्न रश्मिसमूह रूप तीक्ष्ण सेनाओं को बल प्रदान करता है। वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण बलों के द्वारा विभिन्न पदार्थों का भेदन करता तथा सूत्रात्मा रश्मियों के द्वारा विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों को तारने वाला एवं उन रश्मियों को व्यापक बनाने वाला होता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न बल प्रेरक तरंगों को

वल प्रदान करने के साथ-२ प्रेरित भी करता है।

(३) दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम्।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद् रुद्राय स्वयंशसे। मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः।।३।।

इसका छन्द विराडत्यष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् मृदु एवं अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अररुम् = प्रापकम् (म.द.भा.)} वह असुर रश्मियों को नष्ट करने वाला तीक्ष्ण इन्द्र किन्हीं परमाणु आदि पदार्थों के बाधक-आच्छादक रश्मि आदि पदार्थों को पृथक् करता तो अन्य किसी को सेचक व उत्पादक वलों की प्राप्ति कराता तथा विभिन्न अल्पायु रश्मियों को सव ओर निरन्तर प्रक्षिप्त करता एवं उनका अवशोषण भी करता है। वह अपने तेज व आकर्षण वल से सवको युक्त करता, वह घोर विध्वंसक वलों, सवको वांधने वाले व सुगमतापूर्वक नाना क्रियाओं को सिद्ध करने वाले वलों का सर्वत्र विस्तार करता है।

(४) अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम्।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित्। नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम्।।४।।

इसका छन्द अष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा न्यून तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परुच्छेप ऋषि प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व को विभिन्न संघर्षों में कार्यरत रखने, विभिन्न रश्मिसमूहों को प्रकृष्ट संयोजक वलों एवं उनसे युक्त संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को सम्पूर्ण किंवा व्यापक संयोग-सम्पीडन के साथ-२ तेजस्विता आदि की प्राप्ति के लिए समर्थ वनाती हैं। उन परुच्छेप ऋषि प्राण रश्मियों की रक्षा हेतु प्राणापानादि रश्मियां प्रस्तुत रहती हैं। इन प्राणापानादि रश्मियों को कोई असुरादि तत्त्व कभी आच्छादित करने में समर्थ नहीं होता है।

(५) नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे। विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ।।५।।

इसका छन्द भुरिगति शक्वरी होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण व समर्थ होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अरणिः = अरो वै विष्णुस्तस्य वा एषा पत्नी यदरणिस्तदरण्या अरणित्वम् (काठ.संक.२१.२-३), देवरथो वा अरणी (कौ.ब्रा.२.६), (देवरथः = देवरथो वा अग्नयः - कौ.ब्रा.५.१०; एष खलु वै देवरथो यदग्निः - तै.सं.५.४.१०.१)। पूरवः = मनुष्यनाम (निघं.२.३)। पुरुः पालको धारको वा (तु.म.द.ऋ.भा.७.१६.३)} तीव्र, तेजस्वी और तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व अतीव उग्र तापयुक्त रक्षिका एवं व्यापिका अग्नि रश्मियों की संगति से और भी वज्ररूप हो जाता है, जिससे विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ बाधक असुरादि रश्मियों से पूर्णतः मुक्त होकर अति प्रकाशित, व्याप्त और सक्रिय हो जाते हैं। वे परमाणु आदि पदार्थ बाधक रश्मियों को दूर रखते हुए सवको वहन करते तथा अपने वलों से सींचते हैं।

(६) प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्। अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्।।६।।

इसका छन्द भुरिगष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न वलों के साथ विस्तृत होता जाता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व असुर रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को प्रकाशित व संगृहीत करता है। वह विभिन्न छन्दादि रश्मियों को भी तेजस्वी वनाते हुए सम्पीडित करता एवं विशेष वलशील वनाता है। वह उन सव पदार्थों को परस्पर संगत करने के लिए और इस प्रक्रिया को निर्वाध चलाते रहने के लिए निरन्तर विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा उत्तेजित करता रहता है और विपरीत वा वाधक स्वभाव वाले पदार्थों को परावर्तित करता रहता है।

(७) वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्।

दुर्मन्मा॑नं सु॒मन्तु॑भि॒रेमि॒षा पृ॑चीमहि। आ स॒त्याभि॒रिन्द्रं॑ द्यु॒म्नहू॑तिभि॒र्यज॑त्रं द्यु॒म्नहू॑तिभिः॥७॥

इसका छन्द स्वराडतिशक्वरी होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तेजस्वी होने के साथ-२ अति तीव्र वलों से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् वा छन्द रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व आकर्षण वल की दृष्टि से विशेष सक्रिय होता है। वह सुन्दर तेजयुक्त मरुद् व छन्द रश्मियों के साथ रमण करता हुआ विभिन्न प्रकार के उत्पादक वलों व पदार्थों को सेवन करता है। वह वाधक रश्मियों को दूर करता हुआ अपनी सुन्दर कमनीय रश्मियों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को युक्त करता है। विभिन्न तेजस्वी आकर्षण रश्मियों के द्वारा अन्य तेजस्वी रश्मियों को संगत करता हुआ सव ओर व्याप्त होता है।

(८) प्र॒प्रा वो॑ अ॒स्मे स्वय॑शोभिरू॒ती प॑रिव॒र्ग इन्द्रो॑ दुर्म॒तीनां॒ दरी॑मन्दुर्म॒तीना॑म्।
स्व॒यं सा रि॑षय॒ध्यै या न॑ उपे॒षे अ॒त्रैः। ह॒तेम॑सन्न व॑क्षति क्षि॒प्ता जू॒र्णिर्न व॑क्षति॥८॥

इसका छन्द स्वराट् शक्वरी होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कुछ कम तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व असुर रश्मियों से आक्रान्त परमाणु आदि पदार्थों को सव ओर से रोककर सम्पीडित करने एवं उन असुरादि रश्मियों को विदीर्ण करने के लिए अपने तेज और रक्षण, कान्ति आदि गुणों को उत्तमता से प्रकाशित करता है। असुरादि रश्मियों के विभिन्न समूहों का हनन करता हुआ वह इन्द्र तत्त्व शीघ्रता से सव ओर व्याप्त हो उठता है।

(९) त्वं न॑ इन्द्र रा॒या परी॑णसा या॒हि प॒थाँ अ॑ने॒हसा॑ पु॒रो या॑ह्यर॒क्षसा॑।
सच॑स्व नः परा॒क आ सच॑स्वास्तमी॒क आ। पा॒हि नो॑ दूरा॒दा॒राद॒भिष्टि॑भिः॒ सदा॑ पाह्य॒भिष्टि॑भिः॥९॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। {परीणस इति बहुनाम (निघं.३.१)। पराक इति दूरनाम (निघं.३.२६)} इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनेक प्रकार की छन्द वा मरुद् रश्मियों के साथ सव पदार्थों में व्याप्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के मार्गों को वाधारहित करता है। वह दूर तथा समीप सभी पदार्थों को अपने साथ संगत करके सदा उनकी रक्षा करता है तथा अनुकूल सम्पीडन व संगमन आदि क्रियाओं को सुरक्षापूर्वक समृद्ध करता है।

(१०) त्वं न॑ इन्द्र रा॒या तरू॑षसो॒ग्रं चि॑त्त्वा महि॒मा स॑क्षद॒वसे॑ म॒हे मि॒त्रं नाव॑से।
ओजि॑ष्ठ॒ त्रात॒रवि॑ता॒ रथं॒ कं चि॑दमर्त्य। अ॒न्यम॒स्मद्रि॑रिषेः॒ कं चि॑दद्रिवो॒ रिरि॑क्षन्तं चिदद्रिवः॥१०॥

इसका छन्द निचृदष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णरूप से व्यापक होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों के तारक वलों के द्वारा व्यापक आकर्षण वलों को प्राप्त करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों एवं उनकी संयोग व सम्पीडन प्रक्रियाओं की रक्षा करता है। अतीव वलशाली एवं रक्षक इन्द्र तत्त्व निरन्तर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को रमण कराता हुआ असुरादि हिंसक रश्मियों से उनकी निरन्तर सुरक्षा करता है।

(११) पा॒हि न॑ इन्द्र सुष्टुत स्रि॒धो॑ऽवया॒ता स॒दमिद्दु॑र्म॒तीनां॑ दे॒वः सन्दु॑र्म॒तीना॑म्।
ह॒न्ता पा॒पस्य॑ र॒क्षस॑स्त्रा॒ता विप्र॑स्य॒ माव॑तः। अधा॒ हि त्वा॑ जनि॒ता जीज॑नद्वसो रक्षो॒हणं॑ त्वा॒ जीज॑नद्वसो॥११॥

इसका छन्द भुरिगष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सम्यग् रूपेण प्रकाशित वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाधक रश्मि आदि पदार्थों के प्रहार से विरुद्ध जाते हुए परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित व कमनीय वनाते हुए उन वाधक रश्मियों के स्थान और उन स्वयं को नष्ट करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न करने और वसाने वाला होता है। विभिन्न प्राण रश्मियां उस ऐसे इन्द्र तत्त्व को उत्पन्न एवं प्रकाशित करती हैं। वे ही रश्मियां वाधक हिंसक रश्मियों को नष्ट करने में इन्द्र तत्त्व की सहायता करती हैं। वह रक्षित इन्द्र तत्त्व विभिन्न तेजस्वी रश्मियों की रक्षा करता है।

उपर्युक्त सभी छन्द रश्मियां पारुच्छेपी अतिच्छन्दा होने के साथ-२ सप्तपदा भी होती हैं, इस कारण इनकी उत्पत्ति षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ अष्टि एवं ३ शक्वरी छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर विद्युत् चुम्बकीय बलों, तरंगों एवं गुरुत्वबल को अत्यधिक तीव्र और व्यापक बनाती हैं, इससे वे निर्माणाधीन तारों के केन्द्रों में डार्क एनर्जी तथा डार्क मैटर के प्रभाव को नष्ट करने में सहयोग करती हैं। इस कार्य में विभिन्न प्राण रश्मियां भी कार्य करती हैं। इस समय तारों के निर्माणाधीन केन्द्रों में होने वाली क्रियाएं अति तीव्र व तीक्ष्ण होती हैं। उस केन्द्र के चारों ओर बिखरा पदार्थ तीव्रता से केन्द्र की ओर आकर्षित होता हुआ बढ़ता है। पदार्थ के सम्पीडन के साथ-२ पदार्थ का ताप भी तेजी से बढ़ने लगता है। **इस क्षेत्र में न केवल नाभिकों का संलयन होता है अपितु विभिन्न तरंगें भी संलयित होती हैं।** विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

६. 'स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका इति' सूक्तं समानोदर्कं; षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर 'वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीष सहदेव भयमानसुराधस' ऋषि प्राणों अर्थात् ऋजु व आशुगामी, ध्वनि तरंगों के नियन्त्रक, विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ वर्तमान रहने वाला, तीव्र कम्पनयुक्त तथा अच्छी प्रकार तृप्त करने वाला अर्थात् इन पांच प्रकार के सूक्ष्म प्राण विशेषों से (पृथक्-२ अथवा सबके संगतरूप से) इन्द्रदेवताक ऋ.१.१०० सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।१।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत एवं संयोजक बलों से विशेषतया युक्त होता है। {सतीनम् = उदकनाम (निघं.१.१२)} इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न उत्पादक और वर्षक बलों से युक्त समुचित केन्द्रीय क्षेत्रों में सक्रिय विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व तरल रूप में विद्यमान व्यापक रूप से प्रकाशित अन्तरिक्ष में फैले हुए पदार्थ की धाराओं को एकत्र करता हुआ द्युलोकों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न बलवती किरणों के द्वारा उन लोकों का पोषण व रक्षण करता है।

(२) यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।२।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक प्रकाशयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे द्युलोक अपने अन्दर विद्यमान विभिन्न पदार्थों के पारस्परिक संघर्ष वा संयोग-सम्पीडन में आवरक आसुर रश्मियों को इन्द्र तत्त्व के शोषक बलों के द्वारा नष्ट करते हैं। द्युलोकों के अन्दर वह इन्द्र तत्त्व केन्द्रीय भागों की मर्यादा का निर्माण करता है। वह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न विभिन्न मरुद् रश्मियों एवं उनकी विभिन्न दीप्तियों से युक्त होकर नाना क्रियाओं की रक्षा करता है।।

(३) दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद् द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।३।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से इस प्रकाशित इन्द्र तत्त्व में विद्यमान निर्बाधरूप से गतिशील प्राण रश्मियों के बल के द्वारा विभिन्न क्रियाएं एवं पदार्थ नाना बाधाओं को पार करते हुए अपने मार्गों

में पूर्णता से व्याप्त होते हैं। इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न प्रकार के प्रतिरोधक वलों के द्वारा नाना पदार्थों की रक्षा करता है।

(४) सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद् वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वलवर्षक प्राण रश्मियों से युक्त सूत्रात्मा वायु एवं विभिन्न छन्द रश्मियों को अपने साथ युक्त करके दीप्ति और वलों से युक्त होता है। विभिन्न वायु रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व मरुद् रश्मियों के साथ प्रकाशित होता हुआ विभिन्न क्रियाओं को संरक्षित व संचालित रखता है।

(५) स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।५।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह पूर्वोक्त इन्द्र तत्त्व असुरादि रश्मियों को तिरस्कृत करते हुए सूत्रात्मा वायु एवं त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा समीपस्थ परमाणुओं को इकट्ठा करता है। इस प्रक्रिया में वाधक वनने वाली अनेक रश्मियों वा पदार्थों को नष्ट करता हुआ वह उन संयोगादि प्रक्रियाओं को सुरक्षा प्रदान करता है।

(६) स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने आकर्षणादि वलों के साथ विस्तृत होता हुआ पदार्थ को तीव्रता से संघनित करता है। इसके अन्य प्रभाव से {मन्युः = मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणो वधकर्मणो वा मन्यन्त्यस्माद् इषवः (नि.१०.२९)} विभिन्न वाधक पदार्थों को नष्ट करने वाला, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय करने वाला, विभिन्न नित्य प्राणादि पदार्थों द्वारा रक्षित, व्यापक वलों से युक्त नाना मरुद् रश्मियों वाला वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा द्युलोकों में नाना पदार्थों का उचित विभाग करके सृजन क्रियाओं का रक्षण करता है।

(७) तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण तेज एवं वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {करुणम् = कर्मनाम (निघं.२.१)} वह इन्द्र तत्त्व अपनी रक्षण, कान्ति व गत्यादि गुणों के द्वारा हिंसक पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता हुआ विभिन्न पार्थिव परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करता है। वह इन्द्र तत्त्व सभी प्रकार के कर्मों का कर्त्ता व नियामक है। विभिन्न मरुद् रश्मियों द्वारा ही वह इन सभी कर्मों को करता है।

(८) तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।८।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से (व्यासीति गतिकर्मा) विभिन्न प्रकार की आशुगामी मरुद् रश्मियां वलवती होकर अन्य आशुगामी मरुद् रश्मियों एवं इन्द्र तत्त्व को उत्कृष्ट सृजन कर्मों में समर्थ वनाती हैं, जिसके कारण वे विभिन्न प्रकाशहीन परमाणु आदि पदार्थों को ज्योतिर्मय करती हुई द्युलोकों की निर्माण प्रक्रिया की रक्षा करती हैं।

(९) स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {व्राधतः = अतिप्रवृद्धान् शत्रून् (म.द.भा)} वह इन्द्र तत्त्व वामावर्त उत्सर्जित होती हुई मरुद् रश्मियों के द्वारा अति तीक्ष्ण बाधक रश्मियों को नियन्त्रित करता तथा दक्षिणावर्त उत्सर्जित होती हुई मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार से ग्रहण करके सृजन कार्यों में नियुक्त करता है। वह बाधक रश्मियों को नियन्त्रित करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उनके नियन्त्रण से मुक्त कर उन्हें अच्छी प्रकार संघटित करता है।

(१०) स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व {ग्रामः = छन्दांसीव खलु वै ग्रामः (तै.सं.३.४.६.२)} विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा नाना पदार्थों का विभाग करता है। इस क्रिया में वह इन्द्र तत्त्व उन सभी छेदक और भेदक बलों से युक्त वज्ररूप रश्मियों के द्वारा असुरादि पदार्थों को अभिभूत करके विभिन्न बलों के द्वारा सम्पीड्य पदार्थों की रक्षा करता है।

(११) स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।११।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संघर्षों में प्राण रश्मियों एवं विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त गतिशील वा गतिहीन सभी हवियों को व्यापक रूप से आकृष्ट करता है, इस कारण वह विभिन्न क्रियाओं को उत्पन्न व रक्षित करता है।

(१२) स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।१२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी वज्र रश्मियों की सेना (समूह) के द्वारा असुरादि रश्मियों को उग्रता से कंपाने वाला और उनका हनन करने वाला होकर असंख्य प्रकार की क्रियाओं को वहन करता है। वह पांच प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न बल के द्वारा सबकी रक्षा करता है।

(१३) तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।१३।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यान रश्मियों से युक्त होकर घोर गर्जना करता हुआ वज्र रूप रश्मिसमूहों से असुर रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके देव परमाणुओं को आकर्षित करता हुआ अनेक प्रकार के कर्म करता है। वह इन्द्र तत्त्व सुन्दर प्रकाश उत्पन्न करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संयुक्त वा वियुक्त करके नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करता है।

(१४) यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती।।१४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों को विशेष मात्रा के अनुसार सब ओर से मापता और पालता हुआ प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के लोकों की मर्यादाओं को निश्चित करता है। वह मरुद् रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को पालता और रक्षित करता है।

(१५) न यस्य॑ दे॒वा दे॒वता॒ न मर्ता॒ आप॑श्च॒न शव॑सो॒ अन्त॑मा॒पुः।
स प्र॒रिक्वा॒ त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भव॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती॥१५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के बल को उत्पन्न करने के लिए विभिन्न प्राण रश्मियां मरुद् रश्मियां एवं आकाश रश्मियां परस्पर संगत होती हैं। वे रश्मियां ही प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही लोकों के निर्माण में इन्द्र तत्त्व का रूप धारण करती हैं।

(१६) रो॒हिच्छ्या॒वा सु॒मदं॑शुर्लला॒मीर्द्यु॒क्षा रा॒य ऋ॒ज्राश्व॑स्य।
वृष॑ण्वन्तं॒ बिभ्र॑ती धू॒र्षु रथं॑ म॒न्द्रा चि॑केत॒ नाहु॑षीषु वि॒क्षु॥१६॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उन सूर्य्यादि लोकों में सरल एवं आशुगामी रश्मियों के द्वारा सुन्दर लाल व काली ज्वालाओं की उत्पत्ति होती है। इस समय प्रकाश रश्मियां इन्द्र तत्त्व के द्वारा धारण व पुष्ट होती हैं। सूत्रात्मा वायु से विशेष युक्त उस क्षेत्र में नाना वायु व मरुद् रश्मियां सक्रिय होती हैं। इसके द्वारा ही अनेक तीव्र बलयुक्त रश्मियों की भी उत्पत्ति होती है।

(१७) ए॒तत्त्यत्त॑ इन्द्र॒ वृष्ण॑ उ॒क्थं वा॑र्षागि॒रा अ॒भि गृ॑णन्ति॒ राधः॑।
ऋ॒ज्राश्वः॒ प्रष्टि॑भि॒रम्ब॒रीषः॑ स॒हदे॑वो॒ भय॑मानः सु॒राधाः॑॥१७॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इस छन्द रश्मि की उपादान कारणभूत पूर्वोक्त पांचों ऋषि प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व को द्युलोकों के अन्दर सब ओर से प्रकाशित करती हैं। इन ऋषि प्राण रश्मियों के स्वरूप को हम इस कण्डिका के व्याख्यान के प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं।

(१८) दस्यू॒ञ्छिम्यूँ॑श्च पुरुहू॒त एवै॑र्ह॒त्वा पृ॑थि॒व्यां शर्वा॒ नि ब॑र्हीत्।
सन॒त्क्षेत्रं॒ सखि॑भिः श्वि॒त्न्येभिः॒ सन॒त्सूर्यं॒ सन॑दपः सु॒वज्रः॑॥१८॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व श्रेष्ठ वज्र रश्मियों से युक्त व्यापक आकर्षण बलों से सम्पन्न समस्त बाधक तीक्ष्ण पदार्थों को नष्ट करने वाला होकर श्वेत व स्वच्छ तेजयुक्त रश्मियों के द्वारा निष्क्रिय परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय करता तथा अन्तरिक्ष लोक में सूर्य्यादि लोकों तथा उनके अन्दर विविध क्रियाओं को सम्पन्न करता है।

(१९) वि॒श्वा॒हेन्द्रो॑ अधिव॒क्ता नो॑ अ॒स्त्वप॑रिह्वृताः सनुयाम॒ वाज॑म्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥१९॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सदैव सबके ऊपर प्रकाशमान् व गतिमान् होता है। इस कारण विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ कुटिल वा अनिष्ट गतियों को त्यागकर विशेष बलयुक्त होते हैं। प्राण, उदान, व्यान, सूत्रात्मा वायु एवं विभिन्न छन्द रश्मियों से सवंर्धित वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित व अप्रकाशित लोकों को समृद्ध करता है।

इन उपर्युक्त सूक्त में से प्रारम्भिक पन्द्रह ऋचाओं में 'मरुत्वान्नो भवतु' पद समान रूप से विद्यमान होने से प्रधानता के आधार पर यह सम्पूर्ण सूक्त ही समानोदर्क कहलाता है। यदि केवल पन्द्रह ऋचाओं का ही यहाँ ग्रहण किया जाए, तो 'सूक्तम्' पद इस कण्डिका में नहीं होता। इस कारण हमने

सम्पूर्ण सूक्त का ही ग्रहण किया है। समानोदर्क होने से सभी रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में एकरस होकर व्याप्त हो जाती हैं। इस सूक्त का समानोदर्क होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ पंक्ति एवं ११ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय विद्युत् बलों की तीव्रता तेजी से बढ़ती व विस्तृत होती है। इसके साथ ही गुरुत्व बल तरल आग्नेय पदार्थ की धाराओं को तेजी से संघनित करता है। इस समय डार्क एनर्जी का प्रभाव नष्ट होकर तारों के केन्द्रीय भागों की सीमा का निर्धारण होता जाता है। **सूत्रात्मा वायु तथा त्रिष्टुप् रश्मियों का संयुक्त रूप ही गुरुत्वाकर्षण बल के रूप में प्रकट होता है।** गुरुत्वाकर्षण बल की अत्यधिक तीव्रता से डार्क एनर्जी का प्रक्षेपक प्रभाव नष्ट वा न्यून होता जाता है। **कुछ मरुद् रश्मियां इन्द्र रश्मियों से वामावर्त गति करती हुई उत्सर्जित होती हैं। ये मरुद् रश्मियां ही डार्क एनर्जी को नियन्त्रित वा नष्ट करती हैं। अन्य कुछ मरुद् रश्मियां इन्द्र तत्त्व से दक्षिणावर्त्त गति करती हुई उत्सर्जित होती हैं, जो विभिन्न पदार्थों को सम्पीडित करती हैं।** विद्युत् में पांचों प्राण एवं **सूत्रात्मा वायु** रश्मियों का मिश्रण रहता है। इस समय घोर गर्जना होती रहती है। विभिन्न लोकों की सीमा के निर्धारण में गुरुत्वाकर्षण बल के साथ-२ विद्युत् बलों की भी भूमिका रहती है। इस समय तारों में श्वेत लाल व काली ज्वालाओं की उत्पत्ति होती है। इस समय उत्पन्न सभी छन्द रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में एकरस होकर व्याप्त हो जाती हैं। विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान अवश्य द्रष्टव्य है।।

७. 'इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोममिति' सूक्तं; तेभिः साकं पिबतु वृत्रखाद इत्यन्तो वै खादोऽन्तः षष्ठमहः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।। तदु त्रैष्टुभं, तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- तदन्तर विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व द्वारा इन्द्रदेवताक ऋ.३.५१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्णरूप से सब ओर फैलता हुआ अन्योऽन्य क्रियाएं करता है। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक छन्द रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ नित्य ही तेजस्विता को धारण करती हुई वर्धमान होते हुए व्यापक आकर्षण बलों एवं नित्य तेज को धारण करने वाले तथा सभी पदार्थों को तेजस्वी बनाने वाले विविध पदार्थों में व्याप्त और उनके संगमकर्त्ता इन्द्र तत्त्व को निरन्तर प्रकाशित करती हैं।

(२) शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम्।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {अर्णवम् = प्राणो वा अर्णवः (श. ७.५.२.५१)} विभिन्न छन्द और प्राण रश्मियों से युक्त, असंख्यकर्मा सबका वाहक, शक्तिसम्पन्न, विभिन्न संयोज्य पदार्थों के बलों का विभागकर्त्ता, असुर पदार्थों का भेदन करने वाला, प्राण रश्मियों से प्रेरित और उनका प्रेरक, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के साथ संयुक्त, तेजस्वी इन्द्र तत्त्व सब ओर व्याप्त होता है।

(३) आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों के अन्दर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को थामने और प्रकाशित करने वाला अहिंस्य इन्द्र तत्त्व विभिन्न गायत्री रश्मिसमूहों के मध्य प्रकाश आदि व्यवहार करता है। वह विभिन्न बलों का सेवनकर्त्ता और तीक्ष्ण बलयुक्त रश्मि आदि पदार्थों को तृप्त करता हुआ नित्य बलों के साथ प्रकाशित होता है।

(४) नृणामुं त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमों अस्य प्रदिव एकं ईशे।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वर्जक बलों से युक्त अनेक कार्यों का कर्त्ता दूर तक फैला हुआ इन्द्र तत्त्व प्रकाश रश्मियों को नियन्त्रित करता है। वह व्यापक इन्द्र तत्त्व वज्र रश्मियों, साथ ही तेजयुक्त छन्द रश्मियों के द्वारा बलयुक्त होकर नाना मरुद् रश्मियों को विशेषरूप से सक्रिय करता है।

(५) पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि।।५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों में से जो रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ संगत होती हैं, वे पूर्णरूप से और पूर्वकाल से ही विशेष समर्थ होकर इन्द्र तत्त्व की रक्षा करती हैं। वह ऐसा रक्षित इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में अनेक परमाणु आदि पदार्थों को धारण करता है। वे प्राण और मरुद् रश्मियां द्युलोकों को प्रकाश, ऊष्मा एवं विद्युत् आदि के द्वारा निरन्तर पुष्ट करती हैं।

(६) तुभ्यं ब्रह्माणि गिरं इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखें वसो जरितृभ्यो वयों धाः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान रश्मियों से युक्त विभिन्न कमनीय छन्द रश्मियों को निरन्तर धारण करते हुए नाना व्यवहारों का सम्पादन करता है। वह नवीन-२ व्यापक रक्षणादि क्रियाओं को तीव्र करता हुआ गायत्री छन्द रश्मियों के तेज को धारण करके नाना प्रकाशादि कर्मों को सम्पादित करता है।

(७) इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होकर असुरादि रश्मियों से सोम तत्त्व की रक्षा करता है। वह विभिन्न तीक्ष्ण परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार संगत करता हुआ अवशोषित करता है। वे पदार्थ अत्यन्त तेजस्वी द्युलोकों के अन्दर इन्द्र तत्त्व के संरक्षण में व्याप्त होते हैं।

(८) स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से समान रूप से प्रकाशित विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा अनेक कमनीय बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व सम्पीडित सोम तत्त्व की रक्षा करता है। व्यापक आकर्षक बलों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व सभी प्राण रश्मियों के द्वारा सब प्रकार से पुष्ट और तेजस्वी होता है।

(९) अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः।

तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छेदक बलों से युक्त मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों से प्रेरित इन्द्र तत्त्व को सक्रिय करती हैं। वह मरुद् रश्मियों के साथ व्याप्त होकर सोम रश्मियों को अवशोषित करता हुआ आवरक असुरादि विशाल पदार्थों को नष्ट करता है।

(१०) इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वऽस्य गिर्वणः।।१०।।

इसका छन्द यवमध्या गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तीव्र तेज और बल से युक्त हुआ संयोग-वियोग आदि कर्मों में प्रकाशित होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों का पालन व रक्षण करता है। वह अपने बल के द्वारा सभी उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होता है।

(११) यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम्। स त्वा ममत्तु सोम्यम्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सम्पीडन क्रियाओं में सम्पीडनीय परमाणु आदि पदार्थों के अनुकूल संगत होकर अतिसक्रिय होता है। वह उन पदार्थों को अपने साथ संगत करके नाना कर्मों और बलों को विस्तृत करता है।

(१२) प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः। प्र बाहू शूर राधसे।।१२।।

इसका छन्द विराट् गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व पूर्वापेक्षा अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने दोनों भागों में क्रमशः प्राण एवं अपान रश्मियों को धारण करता है, जिसके कारण वह तीक्ष्ण और श्रेष्ठ वर्जक बलों से नाना कार्यों को सिद्ध करता है।

उपर्युक्त सूक्त की नवमी ऋचा के तृतीय पाद "तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः" में 'खादः' पद विद्यमान है। इस विषय में ऋषि कहते हैं- 'अन्तो वै खादः' अर्थात् 'खादः' पद ही 'अन्तम्' का सूचक है। हमने इस ऋचा के प्रभाव को दर्शाते हुए 'वृत्रखादः' का अर्थ "आवरक आसुर मेघ को नष्ट करने वाला" किया है। नष्ट करना ही अन्त करने के समान है, इस कारण इस ऋचा के 'अन्तवत्' होने से सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मिसमूह 'अन्तवत्' माना गया है। इसका अन्तवत् होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस उपर्युक्त सूक्त को प्रधानता के आधार पर महर्षि ने 'त्रैष्टुभ' माना है। इस कण्डिका पर व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में ५ त्रिष्टुप् ३ जगती एवं ३ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से विभिन्न निर्माणाधीन तारों में विद्युत् एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की मात्रा तथा तीव्रता में वृद्धि होती है। विभिन्न प्राण रश्मियां इन दोनों को ही प्रेरित करती हैं, साथ इनसे प्रेरित भी होती हैं। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय बलों में प्राण एवं मरुद् रश्मियों के अतिरिक्त गायत्री छन्द रश्मियों का भी विशेष भाग होता है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, विद्युत् चुम्बकीय बलों के द्वारा भी नियन्त्रित होती हैं। **आधुनिक विज्ञान द्वारा परिकल्पित मीडिएटर पार्टिकल्स (mediator particles) के एक ओर प्राण तथा दूसरी ओर अपान रश्मियां विद्यमान होती हैं।** ये रश्मियां ही विद्युत् बलों का कारण होती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

८. 'अयं ह येन वा इदमिति' पर्यासः; स्वर्मरुत्वता जितमित्यन्तो वै जितमन्तः षष्ठमहः, षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
ता उ गायत्र्यो, गायत्र्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति, तद्वैतच्छन्दो

वहति, यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माद् गायत्रीषु निविदं दधाति।।
'रेवतीर्नः सधमादे' रेवाँ इद्रेवतः स्तोतेति रैवतं पृष्ठं भवति, बार्हतेऽहनि षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
'यद्वावानेति' धाय्याऽच्युता।।

व्याख्यानम्– कुरुसुतिः काण्वः ऋषि अर्थात् विशेष सम्पीडक वल से युक्त सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राणविशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.७६.४-६ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है–

(१) अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम्। इन्द्रेण सोमपीतये।।४।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व द्युलोकों के अन्दर सम्पूर्ण पदार्थ की रक्षा के लिए सर्वचेष्टाकारक व्यान रश्मियों के द्वारा आकाश तत्त्व को वांधता वा नियन्त्रित रखता है।

(२) मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम्। इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे।।५।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक एवं महान् सम्पीडक वलों से युक्त विभिन्न मरुद् रश्मियों का नियन्त्रक वह इन्द्र तत्त्व भ्रान्त और कुटिल गतियों से युक्त परमाणु आदि पदार्थों को विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा आकर्षित करके अनुकूल मार्गों पर चलाता है।

(३) इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {मन्म = मन्म मनः (नि.६.२२)} विभिन्न पदार्थों का रक्षक एवं विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व अविनाशी मनस्तत्त्व द्वारा सदैव प्रेरित होता है।

महर्षि ने इस तृच को 'पर्यास' संज्ञा प्रदान की है। इसका तात्पर्य यह है कि ये तीनों छन्द रश्मियां पूर्वोक्त मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूह के अन्त में उनके अन्दर प्रक्षिप्त होती हुई फैल जाती हैं। यहाँ ऋषि लिखते हैं कि इन ऋचाओं में से प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद "स्वर्मरुत्वता जितम्" में विद्यमान 'जितम्' पद के विषय में ऋषि लिखते हैं– 'अन्तो वै जितम्' अर्थात् 'जितम्' पद 'अन्तम्' पद का समानार्थक है। जैसे लोक में किसी योद्धा द्वारा किसी शत्रु को जीतने पर उस शत्रु की शक्तियों का अन्त हो जाता है, उसी प्रकार द्युलोकों में इन्द्र तत्त्व विभिन्न असुरादि रश्मियों को जीतकर उनकी वाधक शक्तियों का अन्त कर देता है। इस कारण यह तृच अन्तवत् कहलाती है। इसका अन्तवत् होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदुपरान्त आजीगर्तिः शुनःशेप ऋषि अर्थात् ऐसे समृद्ध वायु, जो प्रजनन-उत्पादन क्षमता से विशेष समर्थ होता तथा अपना तेज किसी अन्य परमाणु आदि पदार्थ में प्रक्षिप्त करके शान्त व शिथिल हो जाता है, से इन्द्रदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क ऋ.१.३०.१३-१५ तृच, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज और वल से युक्त होता है, की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है–

(१) रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम।।१३।।

इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् व छन्द रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वलों के साथ

वर्तमान होकर नाना प्रकार के संयोज्य परमाणुओं के साथ सक्रिय होकर लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र करता है।

(२) आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः॥१४॥

इसके अन्य प्रभाव से वह तीव्र व्यापक और गतिशील इन्द्र तत्त्व अपने रथ के चक्रों के समान वर्तमान प्राण एवं अपान रश्मियों के मध्य कार्यरत व्यान प्राण रश्मिरूप धुरी के द्वारा सब पदार्थों को सब ओर से व्याप्त करता है।

(३) आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः॥१५॥

इसके अन्य प्रभाव से असंख्यकर्मा वह इन्द्र तत्त्व अपने तेजस्वी कर्मों के द्वारा व्यानादि प्राण रश्मियों के सर्वत्र प्रवाह के द्वारा विभिन्न प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों के कमनीय बलों को अच्छी प्रकार से पूर्ण करता है।

इस तृचरूप रश्मिसमूह को आचार्य सायण ने 'स्तोत्रिय' कहा है। स्तोत्रिय के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है- 'आत्मैव स्तोत्रियः' (जै.उ.३.१.४.३) अर्थात् ये छन्द रश्मियां विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों में सतत विचरण करती हुई उन्हें प्रकाशित व सक्रिय करती रहती हैं। इनके उत्पन्न होने के पश्चात् 'अनुरूप' संज्ञक अर्थात् इनकी अनुगामिनी होकर प्रकाशित होने वाली इन्द्रदेवताक ऋ.८.२.१३-१५ तृच की उत्पत्ति 'मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरस' ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न तथा सहजता से संगमनीय एक सूक्ष्म प्राणविशेष से निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः। प्रेदु हरिवः श्रुतस्य॥१३॥

इसका छन्द आर्षी निचृद्गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय बलों से युक्त इन्द्र तत्त्व से प्रकाशित व बलयुक्त विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अन्य विभिन्न गतिशील पदार्थों को भी प्रकाशित करते हैं। वे पदार्थ भी विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों से युक्त होने के कारण ही अपने प्रकाशक छन्दादि रश्मियों से युक्त पदार्थों के द्वारा ही उनके समान प्रकाशित होते हैं।

(२) उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत। न गायत्रं गीयमानम्॥१४॥

इसका छन्द आर्षी गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अरिः = प्रापकः (म.द.ऋ.भा.१.१५०.१)} वह इन्द्र तत्त्व छन्द रश्मियों के तेज से हीन अन्य रश्मि आदि पदार्थों को व्याप्त करके उन्हें तीक्ष्ण तेज से युक्त करता हुआ सब प्रकार से उत्तेजित करता है। वह उन रश्मियों को उत्पन्न होती हुई गायत्री छन्द रश्मियों से भी युक्त करता है।

(३) मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः। शिक्षा शचीवः शचीभिः॥१५॥

इसका छन्द आर्षी निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से (पीयतिर्वधकर्मा इति सायण - वेदभाष्य) वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को हिंसक और बाधक असुरादि पदार्थों से दूर करके विभिन्न क्रियाशील और तेजस्वी पदार्थों के साथ संयुक्त करता है।

इन दोनों तृचों में से प्रथम तृच की प्रथम ऋचा 'रैवत साम' कहलाती है। इस विषय में ४.१३.२ द्रष्टव्य है। इस कारण ये दोनों ही तृचरूप रश्मिसमूह रैवतपृष्ठ अर्थात् 'रैवत' साम के आधार रूप होते हैं। इस कारण इनकी उत्पत्ति के समय गम्भीर घोष उत्पन्न होते हैं। और जैसा कि ४.१३.२ में कहा है, रैवतसाम रश्मियां बृहत्साम का ही रूप होती हैं। बृहत्साम छन्द रश्मियों का उत्पन्न होना षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है॥

इस अच्युत धाय्या छन्द रश्मि के विषय में हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ६ विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियां एवं १ त्रिष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इनके प्रभाव से विद्युत् वलों एवं तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार के विद्युत् चुम्वकीय क्षेत्रों व धाराओं की उत्पत्ति होती है। तारों के अन्दर विद्युत् एवं गुरुत्वाकर्षण वल, व्यान रश्मियों के द्वारा आकाश को वांधते हुए सम्पूर्ण पदार्थ को संरक्षित एवं मर्यादित रखते हैं। तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार की तरंगों एवं कणों की गतियों को भी अनुकूलता से नियन्त्रित रखते हैं। सूक्ष्म विद्युत् को मनस्तत्त्व प्राणापान रश्मियों के द्वारा सदैव प्रेरित करता है। तारों के केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी लगभग निष्क्रिय हो जाती है। **विभिन्न प्राण और अपान रश्मियों के मध्य व्यान रश्मि धुरी का कार्य करती है।** तारों के अन्दर विद्यमान पदार्थ में जो भी कण वा तरंगें न्यून ऊर्जायुक्त होती हैं, वे भी विद्युत् वलों के द्वारा उच्च ऊर्जा को प्राप्त करती हैं। सम्पूर्ण पदार्थ में विभिन्न प्रकार के कण वा तरंगें परस्पर एक-दूसरे में ऊर्जा का संचरण करके संतुलन वनाये रखते हैं। ये गायत्री छन्द रश्मियां पूर्व में अनेकत्र वर्णित निविद् रश्मियों से व्याप्त होकर त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का वहन करती हैं। इस समय सम्पूर्ण द्युलोक में गम्भीर गर्जना होती रहती है। एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि अनेक छन्द रश्मियों को धारण व आच्छादित किये रहती है। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

६. 'त्वामिद्धि हवामह इति' बृहतो योनिमनु निवर्तयति; बार्हतं ह्येतदहरायतनेन।।
'इन्द्रमिद्देवतातय इति' सामप्रगाथो निनृत्तवान् षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति'' ताक्ष्योऽच्युतः।।७।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त धाय्या संज्ञक छन्द रश्मि के उत्पन्न होने के पश्चात् शंयुर्वार्हस्पत्य ऋषि प्राण द्वारा इन्द्रदेवताक ऋ.६.४६.१-२ प्रगाथ रूप रश्मिद्वय की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) त्वामिद्धि हवा॑महे साता वाज॑स्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विं॑न्द्र सत्प॑तिं नर॒स्त्वां काष्ठा॒स्वर्व॑तः।।१।।

इसका छन्द निचृदनुष्टुप् होने से इसके दैवत, छान्दस एवं अन्य प्रभाव के विषय में ४.१३.१ द्रष्टव्य है।

(२) स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्त॑वानो अद्रिवः।
गामश्वं॑ र॒थ्य॑मिन्द्र सं कि॑र सत्रा वाजं॑ न जि॒ग्युषे॑।।२।।

इसका छन्द स्वराड् वृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तेजस्वी और व्यापक होता हुआ पदार्थ को सम्पीडित और संघनित करता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण व मरुद् रश्मियों से युक्त मेघरूप पदार्थों में विद्यमान विचित्र वज्र रूप रश्मियों का धारक वह इन्द्र तत्त्व अपने सुदृढ़ और विशाल वलों के द्वारा प्रकाशित होता हुआ विभिन्न छन्द रश्मियों, परमाणु आदि पदार्थों एवं अन्य आशुगामी वाहक किरणों को निरन्तर नियन्त्रित एवं एकत्र करते हुए घनीभूत करता है।
इस विषय में अधिक जानकारी के लिए ५.४.८ देखें।।

तदनन्तर मेध्यातिथिः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न विशेष संगमनीय सूक्ष्म प्राण द्वारा इन्द्रदेवताक ऋ.८.३.५-६ प्रगाथ रूप रश्मिद्वय की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्रमिद्देवता॑तय इन्द्रं॑ प्रय॒त्य॑ध्वरे। इन्द्रं॑ समीके व॒निनो॑ हवामह इन्द्रं॑ धन॑स्य सा॒तये॑।।५।।

इसका छन्द निचृद्वृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण और व्यापक रूप से पदार्थ को संपीडित और संघनित करता है। इसके अन्य प्रभाव से {समीके = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} द्युलोकों में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में विभिन्न प्रकार की रश्मियां इन्द्र तत्त्व को ही आकर्षित करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व ही विभिन्न प्रकार के संयोगादि कर्मों, विभिन्न संघर्षों एवं परमाणु आदि पदार्थों की विभाजन आदि क्रियाओं में प्रयत्नशील होता है।

(२) इन्द्रो॑ म॒ह्ना रोद॑सी पप्रथ॒च्छव॒ इन्द्रः॒ सूर्य॑मरोचयत्।
इन्द्रे॑ ह॒ विश्वा॒ भुव॑नानि येमिर॒ इन्द्रे॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वः।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने वलों को विस्तृत करता हुआ पदार्थ को संगृहीत करता है। {मह्ना = महत्वेन (नि.१०.१०)} इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने महान् वल के द्वारा प्रकाशित व अप्रकाशित सभी लोकों को व्याप्त करता हुआ सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करता तथा सभी लोकों की सिद्धि एवं नियमन करता है। इसमें 'इन्द्र' शव्द की वार-२ आवृत्ति होने से इन्द्र तत्त्व अति सक्रिय हो उठता है।

यह प्रगाथरूपी रश्मिद्वय सामरूप होने से विशेष भेदक और संधानक वलों से युक्त होता है। इस प्रगाथ की द्वितीय छन्द रश्मि में 'इन्द्र' शव्द वार-२ आवृत्त हुआ है। यह 'इन्द्र' शव्दरूप सूक्ष्म रश्मि इन रश्मियों के अन्दर वार-२ प्रकट होती हुई नृत्य जैसा करने लगती है, जिससे इन्द्र तत्त्व उत्तरोत्तर तीव्र होता जाता है, इस कारण इस प्रगाथ को निनृत्तवान् कहा गया है। इसका निनृत्तवान् होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में १ अनुष्टुप्, १ पंक्ति, २ वृहती एवं ३ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनमें से त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां अन्य भ्रान्त रश्मियों वा परमाणु आदि पदार्थों को सम्यग् गति और मार्ग प्रदान करती हैं। इन रश्मियों के प्रभाव से विद्युत् चुम्वकीय वलों एवं गुरुत्वाकर्षण वल में भारी वृद्धि होकर पदार्थ तेजी से घनीभूत होता हुआ अति ताप और दाव को प्राप्त करता है, जिसके कारण नाभिकीय संलयन की क्रिया तेजी से होने लगती है। इसके साथ ही सम्पूर्ण सूर्यादि लोक में विद्युत् चुम्वकीय धाराएं तेजी से प्रवाहित होने लगती हैं।।

❀ इति २२.७ समाप्तः ❀

अथ २२.८ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'एन्द्र याह्युप नः परावत इति' सूक्तं, पारुच्छेपमतिच्छन्दाः सप्तपदं, षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर पूर्व में अनेकत्र वर्णित परुच्छेप ऋषि प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१३० सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) एन्द्रं याह्युपं नः परावतो नायमच्छां विदथांनीव सत्पतिरस्तं राजेंव सत्पतिः।
हवांमहे त्वा वयं प्रयंस्वन्तः सुते सचां। पुत्रासो न पितरं वाजंसातये मंहिष्ठं वाजंसातये।।१।।

इसका छन्द भुरिगष्टि होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने वाहुरूप प्राणापान रश्मियों को सव ओर विस्तृत करता हुआ पुष्ट होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व देव एवं असुर पदार्थ के संघर्ष में असुर पदार्थ को दूरस्थ रहकर नष्ट नहीं करता वल्कि निकटता से करता है। वह विभिन्न नित्य प्राणादि रश्मियों के द्वारा पालित और रक्षित होकर गृहरूप द्युलोकों के केन्द्रीय भागों के साथ-२ सम्पूर्ण पदार्थ को निरन्तर प्रकाशित करता है। विभिन्न वलों एवं संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न व संपीडित करता हुआ अच्छी प्रकार आकर्षित करता है। इसी प्रकार विभिन्न पालक प्राण रश्मियां ऋतु रश्मियों के साथ प्रकाशित होती हैं।।

(२) पिबा सोमंमिन्द्र सुवानमद्रिंभिः कोशेंन सिक्तमंवतं न वंसंगस्तातृषाणो न वंसंगः।
मदांय हर्यतायं ते तुविष्टंमाय धायंसे। आ त्वां यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेंव सूर्यम्।।२।।

इसका व्याख्यान ५.१०.१ में देखें।

(३) अविन्दद्दिवो निहिंतं गुहां निधिं वेर्न गर्भं परिंवीतमश्मंन्यनन्ते अन्तरश्मंनि।
व्रजं वज्री गवांमिव सिषांसन्नङ्गिंरस्तमः। अपांवृणोदिष इन्द्रः परींवृता द्वार इषः परींवृताः।।३।।

इसका छन्द स्वराडष्टि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सिषासन् = ताडयितुं दण्डयितुमिच्छन् (म.द.भा.)} प्राणों एवं वज्ररूप रश्मियों से अतिशय युक्त वह श्रेष्ठ इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्दादि रश्मियों को रोकते हुए पदार्थ को ताड़ित करता है। वह इन्द्र तत्त्व अन्धकार से ढके हुए पदार्थ समूह के लिए अपनी आकर्षण वल रश्मियों की व्याप्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार के मार्गों का निर्माण करके अन्धकार को दूर करता हुआ विस्तृत आकाश में व्याप्त हो जाता है। वह सवको धारण करने हेतु अपने तेज और वल को अन्तरिक्ष में धारण करके नाना प्राण रश्मियों को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ को प्रकाशित करता है।

(४) दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभंस्त्योः क्षद्मेंव तिग्ममसंनाय सं श्यंदहिहत्यांय सं श्यंत्।
संविव्यान ओजंसा शवोंभिरिन्द्र मज्मनां। तष्टेंव वृक्षं वनिनो नि वृंश्चसि परश्वेव नि वृंश्चसि।।४।।

इसका छन्द अष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् न्यून तेजयुक्त होता है। विशाल आसुर मेघ के हनन करने के लिए वह इन्द्र तत्त्व अपने वलों को तीक्ष्ण करके अपनी वज्र रश्मियों को {क्षद्म = अन्ननाम (निघं.२.७), उदकनाम (निघं.१.१२)} संयोजक वलों के रूप में उत्सर्जित करता है।

वह इन्द्र तत्त्व उस असुरादि पदार्थ को अपने तीक्ष्ण वल के द्वारा पीसकर सूक्ष्म खण्ड-२ करता है। वह अपनी विविध प्रकार की किरणों के द्वारा विभिन्न स्थूल पदार्थों को छिन्न-भिन्न कर देता है। इसके सम्पीडक वल पदार्थ को सम्पीडित करते हैं।

(५) त्वं वृथा नद्यं इन्द्र सर्तवेऽ च्छा समुद्रमसृजो रथाँइव वाजयतो रथाँइव।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम्। धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः।।५।।

इसका छन्द भुरिगष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व {नदम् = (नदति अर्चतिकर्मा - निघं.३.१४), नदः स्तोतृनाम (निघं.३.१६)} अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न तेजस्वी पदार्थ की धाराओं को वरता एवं भरता हुआ वज्ररूप रश्मिसमूहों के समान विभिन्न संघर्ष क्रियाओं को रमणीय वनाता हुआ विविध तेजों से सम्पन्न करता है। वह विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से परिपूर्ण करता हुआ देदीप्यमान वनाता है। वह विभिन्न वाग् रश्मियों के समान अक्षय रक्षणादि क्रियाओं से सम्पूर्ण पदार्थ को समान रूप से युक्त करता है।

(६) इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्। अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये।।६।।

इसका छन्द स्वराडष्टि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु किंवा विभिन्न तेजस्वी किरणें इन्द्र तत्त्व के सान्निध्य से वाक् रश्मियों से युक्त प्राण रश्मियों को आकर्षित करती हुई उत्तम कर्म करने में समर्थ धारक और वाहक गुणों से युक्त होकर देदीप्यमान होती हैं। विभिन्न संघर्षण क्रियाओं में जयशील छन्द रश्मियों को आशुगामी भेदक वलों की प्राप्ति के लिए वह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में सहजता से व्याप्त करता है। वे छन्दादि रश्मियां उन परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित करती हुई तीक्ष्ण वनाती हैं।

(७) भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्। महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा।।७।।

इसका छन्द निचृदत्यष्टि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् न्यून तेजयुक्त परन्तु अति तीक्ष्ण और विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार की चेष्टाएं करता हुआ वह इन्द्र तत्त्व अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा ६० प्रकार की आसुर रश्मियों को छिन्न-भिन्न करता है। वह व्यापक स्तर पर परमाणु समुदाय को धारक और पालक प्राण रश्मियां प्रदान करता हुआ सतत गमनीय तीक्ष्ण किरणों के द्वारा मेघरूप पदार्थों को अपने सम्पीडक एवं वारक वलों के द्वारा धारण करता है। वह अपने वल और पराक्रम के द्वारा सभी परमाणु आदि पदार्थों को तृप्त करता है।

(८) इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत्। दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति।।८।।

इसका छन्द अष्टि होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से असंख्य रक्षणादि कर्मों का कर्त्ता वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संघर्षों एवं प्रक्षेपण कर्मों में व्यान रश्मियों का सिंचन करता है। वह सभी प्रकार के संघातों में उत्तम गतिशील परमाणु आदि पदार्थों को रक्षण, कान्ति आदि गुणों से युक्त करता हुआ प्रकाशित करता है। वह वाधक असुरादि रश्मियों को नियन्त्रित करता हुआ उन्हें आच्छादित करके खींचता हुआ नष्ट करता है। वह सम्पूर्ण पदार्थ को जलाता हुआ निरन्तर प्रकाशित करता है।।

(९) सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे। सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः।।९।।

इसका छन्द स्वराडष्टि होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह क्रान्तदर्शी इन्द्र तत्त्व अपने सम्पीडक एवं सरलगामी बलों से लालिमायुक्त मेघरूप पदार्थों को अतिशीघ्रता से प्रकट करता हुआ सबके वाहक सूर्यादि लोकों को प्रकृष्ट रूप से प्राप्त करके महान् चक्र के समान घुमाता है। वह बाधक रश्मियों का नाश करके सभी वाग् रश्मियों को शुद्ध दीप्ति से युक्त करता हुआ स्वयं को अग्रगामी बनाता जाता है। {मुष् = आगे बढ़ जाना (आप्टेकोश)} वह कमनीय बल एवं कान्ति से युक्त होकर सूर्यादि लोकों की रक्षा के लिए समर्थ होता हुआ दूर-२ तक व्याप्त होकर विभिन्न पदार्थों को खण्डित करता है।

(१०) स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः॥१०॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बल रश्मियों की वृष्टि करने वाला इन्द्र तत्त्व आसुर मेघों को विदीर्ण करके तथा प्रकाशादि रश्मियों से सबको प्रकाशित करके द्युलोकों की रक्षा करता है। वह नवीन-२ उत्पन्न रक्षक और सहज कर्म करने वाली छन्दादि रश्मियों के द्वारा, साथ ही विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा भी विभिन्न द्युलोकों का संरक्षण और संवर्धन करता है।

इस सूक्त की सभी छन्द रश्मियां पारुच्छेपी हैं तथा अन्तिम छन्द रश्मि के अतिरिक्त सभी छन्द रश्मियां अतिच्छन्दस्क एवं सप्तपदा हैं। इन तीनों ही लक्षणों के कारण इनकी उत्पत्ति षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ९ अतिच्छन्द (अष्टि) एवं १ त्रिष्टुप् छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इनके प्रभाव से तारों के अन्दर विद्युत् चुम्बकीय बल अति तीव्र और व्यापक होते जाते हैं। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें एवं विद्युदावेशित कण मरुद् रश्मियों को अवशोषित करते हैं, जिससे उनकी ऊर्जा और भी बढ़ने लगती है। तीव्र ऊष्मायुक्त विद्युदावेशित तरंगें न केवल विभिन्न अणुओं को छिन्न-भिन्न करती हैं बल्कि डार्क मैटर को भी विदीर्ण करती हैं। वे विभिन्न तेजस्वी पदार्थ की बहती हुई धाराओं को रोककर और अधिक प्रकाशित करती हैं। ये किरणें डार्क एनर्जी की ९० प्रकार की विभिन्न तरंगों को नष्ट करती हैं। वे विद्युदावेशित तरंगें व्यान रश्मियों से युक्त होकर डार्क एनर्जी की तरंगों को अपनी ओर खींच-२ कर नष्ट करती हैं। उस समय सम्पूर्ण पदार्थ का रंग लालिमायुक्त श्वेत हो जाता है और **वह तारा चक्र के समान अपनी परिधि में घूर्णन भी करने लगता है। इस कार्य में विद्युत् और गुरुत्व इन दोनों ही बलों की भूमिका होती है।** विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें॥

२. 'प्र घा न्वस्य महतो महानीति' सूक्तं, समानोदर्कं, षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्॥

व्याख्यानम्- तदनन्तर गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान रश्मियों से इन्द्रदेवताक ऋ.२.१५ सूक्त रूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान॥१॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने तीक्ष्ण बाहुरूप बलों को विस्तृत करता है। इसके अन्य प्रभाव से {त्रिकद्रुकः = त्रिभिः कद्रुकैः विकलनैर्युक्तः (तु - म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व सम्पीडित सोम रश्मियों को तीन प्रकार से विकृत करते हुए अवशोषित करता है। वह उस सोम पदार्थ को सक्रिय करने के लिए आसुर मेघ को नष्ट करता एवं विभिन्न प्रकाशित, अप्रकाशित कणों वा रश्मियों को व्याप्त करता है। वह महान् और अविनाशी इन्द्र तत्त्व अविनाशी

साधनरूप मरुद् रश्मियों को प्रकृष्टता से प्रकाशित करता हुआ स्वयं प्रकाशित होता है।

(२) अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम्।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अवंशम् = अविद्यमानं वंशमिव वर्तमानमन्तरिक्षम् (तु.म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में सूर्यादि लोकों एवं प्रकाश को रोकने में सहायक होता है। वह व्यापक अन्तरिक्ष को प्रकाशित व अप्रकाशित कणों से पूर्ण करता एवं सोम पदार्थ के मध्य प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों को रचता, फैलाता और धारण करता है।

(३) सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम्।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आकाशस्थ पदार्थ को निश्चित परिमाण में एकत्र करके गृह (घर) के समान प्रकृष्टरूप से व्याप्त लोकों का निर्माण करता है। वह तेजस्वी पदार्थ की बहती हुई धाराओं में अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा विभिन्न कूपतुल्य छिद्रों को फैलाता हुआ वृहत् मार्गों को अनायास ही रचता है। इससे सभी पदार्थ, विशेषकर सोम पदार्थ विशेष सक्रिय होते हैं।

(४) स प्रवोळ्हन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सम्पूर्ण पदार्थ को तीक्ष्णता से व्याप्त करके अच्छी प्रकार वहन करता हुआ अपनी आयुधरूप तीव्र किरणों से प्रदीप्त अग्नि में भस्म करता है। वह आशुगामी वज्ररूप छन्द रश्मियों के द्वारा सोम रश्मियों को सक्रिय करता है।

(५) स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {(हन्ति रम्णातीति वधकर्मा - निघं.२.१९)। ईम् = प्राप्तं वस्तु (म.द.ऋ.भा.६.१७.२), सर्वां क्रियाम् (म.द.ऋ.भा.१.१६४.३२)। मही = द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०), वाङ्नाम (निघं.१.११), गोनाम (निघं.२.११)} वह इन्द्र तत्त्व सोम पदार्थों के बीच विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित कणों एवं अन्य सभी पदार्थों की कम्पन करती हुई एवं स्खलित होती हुई क्रियाओं की ताड़ना करके उन्हें सम्यक् रूप प्रदान करता है। वह अशुद्ध परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को शुद्धता प्रदान करता हुआ सब ओर से तारता व सक्रिय करता है, जिससे वे पदार्थ विभिन्न मरुदादि रश्मियों को अपने साथ अनुकूलता से उत्सर्जित वा अवशोषित करने में समर्थ होते हैं।

(६) सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी महान् वज्र रश्मियों के द्वारा उत्कृष्टता से व्याप्त अन्तरिक्ष एवं सूत्रात्मा वायु को प्राप्त करके शोभन प्रकाश रश्मियों को ताड़ित करता हुआ वेगवान् और वेगरहित सभी क्रिया व पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता हुआ सोम रश्मियों को सक्रिय करता है।

(७) स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक्।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।७।।

इसका छन्द स्वराड् पंक्ति होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशित होता हुआ विस्तृत होता जाता है। {श्रुणः = (श्रोणृ संघाते)} इसके अन्य प्रभाव से वह केन्द्रीभूत सघन इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों में छिपी कान्तियों को खोलता हुआ प्रकट होता है। वह उत्कृष्टता से सब पदार्थों में प्रतिष्ठित होता हुआ उन्हें प्रकट व प्रकाशित करके विभिन्न क्रियाओं से युक्त करता है।

(८) भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत्।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।८।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज और वल के साथ प्रकाशित होता है। इसके अन्य प्रभाव से गर्जना करता हुआ वह इन्द्र तत्त्व अपनी प्राणमयी रश्मियों के द्वारा आसुर मेघ के वलों को छिन्न-भिन्न करता है। वह विभिन्न पदार्थों को प्राप्त होता और समृद्ध करता हुआ उत्पन्न होते हुए अवरोधक पदार्थों को नष्ट करके विभिन्न पदार्थों को सक्रिय करता है।

(९) स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार।।९।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {चुमुरिम् = अत्तारम् (म.द.ऋ.भा.६.१८.८)। स्वप्नः = तमो वा अन्धं स्वप्नः (काठ.संक.८.२)} वह इन्द्र तत्त्व अन्धकार से युक्त देव पदार्थ के भक्षक तीव्र कम्पन करते हुए असुर तत्त्व को सब ओर से काटता हुआ नष्ट करता है। वह उस हिंसक असुर पदार्थ से देव पदार्थ को सुरक्षित रखता हुआ उसे तेजोमय वनाकर सोम रश्मियों के मध्य नाना क्रियाएं प्रारम्भ करने में समर्थ करता है।

(१०) नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो वृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपने महान् वल के द्वारा विभिन्न प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को अधिक प्रकाशादि से श्रेष्ठतापूर्वक पूर्ण करता है। वह उनके संयोगादि कर्मों को नष्ट न करता हुआ विभिन्न प्राण रश्मियों से युक्त होकर नाना प्रकार के सृजन कार्यों में व्यापक गतिशील और प्रकाशित होता है।

इस उपर्युक्त सूक्त की प्रथम और अन्तिम ऋचा को छोड़कर अन्य ८ ऋचाओं में "ता मद इन्द्रश्चकार" पद वर्तमान है। इन ८ ऋचाओं में यह समानता है। इसके कारण यह सम्पूर्ण सूक्त ही समानोदर्क कहा गया है। समानोदर्क होने से यह छन्द रश्मिसमूह सम्पूर्ण पदार्थ में एकरस होकर व्याप्त हो जाता है। इसका समानोदर्क होना षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में २ पंक्ति एवं ८ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिनके कारण निर्माणाधीन तारों में विद्युत् चुम्बकीय वलों एवं विद्युत् चुम्बकीय धाराओं की मात्रा एवं तीव्रता में और भी वृद्धि होती है। तारों के अन्दर सभी पदार्थ और भी अधिक ऊर्जावान् हो उठते हैं। डार्क एनर्जी का प्रभाव नष्ट होकर प्रकाश और ऊष्मा की मात्रा वढ़ती है। तारे आदि लोकों के अन्तरिक्ष में धारण एवं प्रकाश के उत्सर्जन, अवशोषण, परावर्तन, वितरण आदि कर्मों में विद्युत् की अहम भूमिका होती है। जिस समय तेजस्वी तरल पदार्थ की नदीतुल्य धाराएं केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षित होती हुई वेग पूर्वक प्रवाहित होती हैं, उस समय उन धाराओं में अनेक कूपतुल्य विशाल छिद्र भी होते हैं, जो विद्युत् एवं गुरुत्व वल के द्वारा पदार्थ के संघनित हो जाने पर नष्ट होकर विशाल आग्नेय पिण्ड का निर्माण करते हैं। विद्युत् के कारण वेगरहित और वेगवान् सभी पदार्थों में भारी मन्थन होकर वे छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और गुरुत्व वल उनको संपीडित करके संघातरूप में परिवर्तित करता

है। विद्युत् के कारण ही अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ प्रकाशित हो उठते हैं और डार्क एनर्जी से संघर्ष के समय गम्भीर घोष उत्पन्न होते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पढ़ें।।

३. 'अभूरेको रयिपते रयीणामिति' सूक्तं, रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीममित्यन्तो वै स्थितमन्तः षष्ठमहः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।
उप नो हरिभिः सुतमिति पर्यासः, समानोदर्कः, षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
ता उ गायत्र्यो, गायत्र्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति; तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माद् गायत्रीषु निविदं दधाति।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर सुहोत्र ऋषि प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.६.३१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अभूरेकों रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पदार्थों के मध्य उनका स्वामी इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष एवं प्राण रश्मियों में तेजस्वी किरणों को अच्छी प्रकार प्रकाशित करता है। वह सूर्यादि लोकों में उत्पन्न होने वाले नवीन-२ तत्त्वों के विस्तार में विभिन्न आकर्षण बलरूप हाथों के द्वारा अकेला ही सब पदार्थों को धारण व प्रकाशित करता है।

(२) त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळहं भयते अज्मन्ना ते।।२।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशित होता हुआ फैलता जाता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के द्वारा कंपित पार्थिव लोकों में विद्यमान सभी अविनाशी प्राणादि रश्मियां उन लोकों को गतिशील करती हैं। वे ही रश्मियां इन्द्र तत्त्व से प्रेरित होकर द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, विभिन्न मेघरूप पदार्थ एवं सभी प्रकार की किरणों को उनके मार्ग में दृढ़ता से गमन कराती हैं।

(३) त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि।।३।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {रपः = रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः (नि.४.२१)} वह इन्द्र तत्त्व अपने शोषक बल और बलहीन पदार्थों किंवा तरल एवं तेजस्वी पदार्थ को अपनी तीक्ष्ण वज्ररूप रश्मियों से विभिन्न संयोग प्रक्रियाओं में अनिष्ट मिश्रणों को विदीर्ण करके दस प्रकार की बाधक रश्मियों को छुपाकर वा दूर करके सूर्य लोकों के निर्माण चक्र को व्याप्त व सुसंगत करता है।

(४) त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि।।४।।

इसका छन्द निचृदतिजगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण रूप से दूर तक फैलता हुआ शीघ्रता से संयोग-वियोग की क्रियाएं करता है। {तक्रम् = तनक्ति संकोचयतीति तक्रम्

(उ.को.२.१३)} इसके अन्य प्रभाव से उत्तम प्रकाशयुक्त एवं विभिन्न पदार्थों को ताड़ित और संकुचित करने में समर्थ इन्द्र तत्त्व देव पदार्थ के नाशक विशाल आसुर मेघ के प्रतिकर्षक वलों से युक्त अनेक समूहों को नष्ट करता है। वह विभिन्न दीप्तियों के द्वारा देव पदार्थ को संपीडित और प्रकाशित करते हुए उसे विभिन्न पदार्थों एवं वलों के धारण और पोषण में समर्थ वनाता है।

(५) स स॑त्यसत्वन्महते रणा॑य रथमा ति॑ष्ठ तुविनृम्ण भीमम्।
याहि प्र॑पथिन्नवसोप॑ मद्रिक्प्र च॑ श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः॑।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीव्र तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {मद्रिक् = यो मद्रं काममञ्चति सः (म.द.ऋ.भा.१.१७७.१), (मद्रम् = हर्ष - आप्टेकोष)} नित्य वलयुक्त उत्तमता से विस्तृत होता हुआ विशाल परमाणु समूह से युक्त एवं विभिन्न सक्रिय वलों से सम्पन्न वह इन्द्र तत्त्व व्यापक स्तर पर पदार्थ के संघातों के लिए सुन्दर वज्ररूप रश्मियों के रूप में सव ओर स्थित हो जाता है। वह अपने रक्षणादि कर्मों से भयंकर संघात प्रक्रियाओं को व्याप्त करके नाना प्रकार की प्रकाश रश्मियों को उत्पन्न करता है।

इस सूक्त की अन्तिम ऋचा के पाद "रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम्" में 'तिष्ठ' पद 'स्था' धातु से निष्पन्न होता है, जो 'स्थितम्' का पर्याय वा समानार्थक है। 'स्थितम्' पद के लिए महर्षि कहते हैं- "अन्तो वै स्थितम्"। इसका तात्पर्य यह है कि रुक जाना ही अन्त का सूचक है। इस कारण यह ऋचा एवं इसके प्रभाव से समस्त सूक्त 'अन्तवत्' कहलाता है। इसके अन्तवत् होने से ये छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के भीतर तक व्यापक होकर क्रियाशील रहती हैं। इस सूक्त रूप रश्मिसमूह का अन्तवत् होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदुपरान्त सुकक्ष ऋषि अर्थात् अच्छे आकर्षक वलों से युक्त एक सूक्ष्म प्राणविशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.९३.३१-३३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) उप॑ नो हरि॑भिः सुतं याहि म॑दानां पते। उप॑ नो हरि॑भिः सुतम्।।३१।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विशेष सक्रिय विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का संरक्षक इन्द्र तत्त्व अपनी कमनीय वल रश्मियों के द्वारा सम्पीडित पदार्थों में व्याप्त होकर सवको परस्पर निकटता से सम्वद्ध रखता है।

(२) द्विता यो वृ॑त्रहन्त॑मो विद इन्द्रः॑ शतक्र॑तुः। उप॑ नो हरि॑भिः सुतम्।।३२।।

इसका छन्द गायत्री होने से देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनेकों कर्मों का कर्त्ता एवं असुर रश्मि आदि पदार्थों को नष्ट करने वालों में सवसे श्रेष्ठ एवं दो प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न होकर पदार्थ में व्याप्त होता है। हमारे मत में ये दो प्रकार की शक्तियां विद्युत् एवं ऊष्मा की शक्तियों के रूप में होती हैं।

(३) त्वं हि वृ॑त्रहन्नेषां पाता सोमा॑नामसि॑। उप॑ नो हरि॑भिः सुतम्।।३३।।

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विशाल आसुर मेघों को नष्ट करने वाला इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों एवं समस्त उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को अपनी कमनीय वल रश्मियों के द्वारा व्याप्त और सम्पीडित करता हुआ उनकी रक्षा करता है।

इन उपर्युक्त तीनों छन्द रश्मियों को ग्रन्थकार ने 'पर्यास' कहा है, इसका तात्पर्य यह है कि ये तीनों गायत्री छन्द रश्मियां पूर्वोक्त छन्द रश्मियों में प्रक्षिप्त होती हुई व्याप्त हो जाती हैं। इन तीनों

ऋचाओं में "उप नो हरिभिः सुतम्" अन्तिम पाद के समान होने से ये ऋचाएं समानोदर्क कही जाती हैं। इस पाद के समान होने से पदार्थ के सम्पीडन की प्रक्रिया और भी तीव्र होती है। समानोदर्क होने से ये रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में एकरस व्याप्त हो जाती हैं। इनका समानोदर्क होना षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ही २ त्रिष्टुप्, २ पंक्ति, १ अतिजगती एवं ३ गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इन सबके कारण विद्युत् चुम्बकीय बलों एवं विद्युत् चुम्बकीय धाराओं व क्षेत्रों के साथ-२ ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है। नाभिकीय संलयन की क्रिया से ऊर्जा की उत्पत्ति तीव्र गति से होने लगती है। विभिन्न लोकों की गति को नियन्त्रित करने में प्राण रश्मियों की विशेष भूमिका होती है। सूर्यादि लोकों में डार्क एनर्जी की १० प्रकार की किरणों को विद्युत् चुम्बकीय तरंगों से युक्त विद्युदावेशित एवं ऊष्ण विकिरण नष्ट वा नियन्त्रित रखते हैं। उस समय इन विकिरणों का डार्क मैटर के अनेक प्रकार के मेघों से भी संघर्ष होता है, जो इन विकिरणों के प्रभाव से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा सभी प्रकार की क्रियाएं अविचल भाव से सम्पन्न होती हैं। उन त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को भी विभिन्न पूर्वोक्त निविद् रश्मियों से व्याप्त गायत्री छन्द रश्मियां वहन करती हैं।।

४. 'अभि त्यं देवं सवितारमोण्योरिति' वैश्वदेवस्य प्रतिपदतिच्छन्दाः; षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
तत्सवितुर्वरेण्यं, दोषो आगादित्यनुचरोऽन्तो वै गतमन्तः षष्ठमहः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर वत्स ऋषि {वत्सः = मन एव वत्सः (श.११.३.१.१)} अर्थात् मनस्तत्त्व से सवितृ-देवताक विराड् ब्राह्मी जगतीछन्दस्क

"अभि त्यं देवँ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवँरत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत।
सुक्रतुः कृपा स्वः। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि।।" (यजु.४.२५)

की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् तीव्रता से प्रकाशित और व्यापक समृद्ध होते हुए दूर तक फैलते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {अमतिः = अशनाया वै पाप्माऽमति (ऐ.२.२), अशनाया वाऽअमतिः (श.६.२.३.८), रूपनाम (निघं.३.७)। ओण्योः = ओण्योरिति द्यावापृथिवीनामसु पठितम् (निघं.३.३०)। सविमनि = सविमनि प्रसवे (नि.६.७)} सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति प्रक्रिया में असुर पदार्थ की कुछ मात्रा उत्तम प्रकाश के द्वारा एवं कुछ छन्द रश्मियों के योग से प्रकाशित हो उठती है। उन रश्मि आदि पदार्थों के सामर्थ्य के कारण वे सूर्यादि लोक तेजस्वी आकर्षक रश्मियों के द्वारा नाना क्रियाओं को सुन्दर तरीके से सम्पादित करते हैं। विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित कण क्रान्तदर्शी क्रियाओं से युक्त, रमणीय परमाणु आदि पदार्थों को धारण करने वाले, विभिन्न क्रिया और बलों के निरन्तर प्रेरक और प्रकाशरूप सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करते हैं। उन सूर्यादि लोकों में मनस्तत्त्व ही मुख्य प्रेरक रहता है। वायु और विद्युत् के द्वारा नाना प्रकार के परमाणु व रश्मि आदि पदार्थ निरन्तर गतिशील और बलशील बने रहते हैं।

ग्रन्थकार ने इस ऋचा को वैश्वदेव शस्त्र रूप रश्मिसमूह की 'प्रतिपद्' ऋचा कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि यह छन्द रश्मि आगामी उत्पन्न विश्वेदेवादेवताक एवं अन्य अनेक देवताओं वाली छन्द रश्मियों से पूर्व उत्पन्न होती है। इसके साथ ही यह ऋचा अतिच्छन्दस्क होने से इसकी उत्पत्ति षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

यहाँ महर्षि आश्वलायन का कथन है "अभि त्यं देवं सवितारमोण्योरित्येका तत्सवितुर्वरेण्यमिति द्वे दोषो आगाद्बृहद्गायद्यु मद्धेह्याथर्वण' स्तुहि देवं सवितारं तमु ष्टुह्यन्तः सिन्धु सूनुं सत्यस्य युवानम्। अद्रोघवाचं सुशेवं सघानो देवः सविता साविषद्वसुपतिः। उभे सुक्षिती सुधातुरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ।।" (आश्व.श्रौ.८.१.१६)

इस कथन को दृष्टिगत रखते हुए इस कण्डिका पर विचार करते हैं-

पूर्वोत्पन्न प्रतिपद् छन्द रश्मि के अतिरिक्त विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से सवितृदेवताक एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क दो अन्य छन्द रश्मियां निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होती है-

(१) तत्स॑वितुर्वरे॑ण्यं भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि। धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त्।।१०।। (ऋ.३.६२.१०)

इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु विद्युत् रूप सविता तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् विभिन्न क्रिया और दीप्तियों को अच्छी प्रकार प्रेरित करके सभी परमाणु आदि पदार्थों में तीव्र ऊष्मा एवं प्रकाश उत्पन्न करते हैं।

(२) दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्व॒यं वा॑ज॒यन्तः॒ पुर॑न्ध्या। भग॑स्य रा॒तिमी॑महे।।११।। (ऋ.३.६२.११)

देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् व्यापक रूप से परमाणु आदि पदार्थों को संयोज्य वलों तथा ऊष्मा व प्रकाशादि से युक्त करते हैं।

ये दोनों छन्द रश्मियां तथा उपरिकण्डिका में वर्णित छन्द रश्मि, ये कुल मिलाकर तीनों तृचरूप में वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूह की प्रतिपत् रूप में अर्थात् प्रारम्भ में उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात् 'अनुचर' रूप में उत्पन्न होने वाली छन्द रश्मियों का वर्णन करते हैं। अथर्वा ऋषि अर्थात् अहिंस्य प्राण नामक प्राथमिक प्राण से सवितृ-देवताक अथर्व.६.१.१-३ तृच की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) "दोषो आगाद् बृदङ्गाय द्युमद्धेह्याथर्वण........।" (अथर्ववेद संहिता में 'आगाद्' के स्थान पर 'गाय' पद विद्यमान है।) इसका छन्द त्रिपदापिपीलिका मध्यागायत्री होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् तीव्र तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्राण नामक प्राथमिक प्राण प्रकाशित वायु और विद्युत् को और अधिक प्रकाशित करता है। वह अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को भी प्रकाशित करके उन्हें व्यापकता से तेजयुक्त रूप में धारण करता है।

(२) "तमु ष्टुह्यन्तः सिन्धुं सूनुं........।" (अथर्ववेद संहिता में "तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः" पाठ विद्यमान है।) इसका छन्द पिपीलिकामध्या पुर उष्णिक् होने से इसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित करके उष्णता प्रदान करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु एवं व्यान रश्मियों के मध्य प्राण नामक प्राथमिक प्राण किंवा प्राणापान एवं प्राणोदान को प्रेरित करके वायु और विद्युत् संयोगादि कर्मों को सहजतापूर्वक प्रेरित करते हैं। इसके साथ ही आसुरी रश्मियों को दूर रखकर संयोज्य एवं संपीड्य परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित व प्रेरित करते हैं।

(३) "स घा नो देवः सविता........।" इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। ज्ञातव्य है कि इस ऋचा का पूरा पाठ आश्व.श्रौ.सू. में इस प्रकार है- "सघानो देवः सविता साविषद्वसुपतिः उभे सुक्षिती सुधातुः"। इस आश्वलायन पाठ को दृष्टिगत रखते हुए इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित प्राण और विद्युत् विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों को अपने साथ पालते व संगत करते हुए नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। वे वायु और विद्युत् सवको अच्छी प्रकार वसाते और धारण करते हैं।

ये तीनों छन्द रश्मियां 'अनुचर' रूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां पूर्वोक्त 'प्रतिपद्' छन्द रश्मियों की अनुगामिनी होकर प्रकाशित होती हैं। इन 'अनुचर' संज्ञक छन्द रश्मियों में से प्रथम छन्द रश्मि में विद्यमान 'आगात्' पद में 'गम्' धातु विद्यमान है। इस विषय में ग्रन्थकार का कथन है- "अन्तौ वै गतम्"। इसका कारण यह है कि इस पद से ये छन्द रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में अन्त तक व्याप्त हो जाती हैं। यहाँ यह वात उल्लेखनीय है कि ग्रन्थकार ने इन ऋचाओं का पाठ महर्षि आश्वलायन के अनुसार ही ग्रहण किया है, अन्यथा 'गम्' धातु इस ऋचा में विद्यमान ही नहीं होती

वल्कि 'गाय' पद विद्यमान होता, जो 'गै' धातु से निष्पन्न है। इन कारणों से ये ऋचाएं 'अन्तवत्' भी सिद्ध होती हैं। इनका अन्तवत् सिद्ध होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में १ ब्राह्मीजगती, ४ गायत्री एवं २ उष्णिक् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों के अधिक तीव्र होने के कारण विद्युद् वलों में विशेष वृद्धि होती है। **इस समय डार्क एनर्जी व डार्क पदार्थ का कुछ भाग दृश्य ऊर्जा एवं दृश्य पदार्थ में परिवर्तित हो जाता है।** तारों के अन्दर सभी पदार्थ तीव्रता से देदीप्यमान एवं गर्म हो उठते हैं। इस समय प्राणमिश्रित विद्युत् उन गर्म परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित किये रहती है। पदार्थों का संयोजन और संपीडन तेजी से बढ़ने लगता है। इस प्रक्रिया में ये गायत्री छन्द रश्मियां विशेष भूमिका निभाती हैं।।

५. 'उदु ष्य देवः सविता सवायेति' सावित्रं, शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थादित्यन्तो वै स्थितमन्तः षष्ठमहः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान रश्मियों से सवितृ-देवताक ऋ.२.३८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) उदु ष्य देवः सविता सवायं शश्वत्तमं तदंपा वह्निरस्थात्।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् प्रकाशित होकर सवके वहन करने वाले अग्नि तत्त्व को विशेष प्रेरक और क्रियावान् वनाते हैं। वे वायु और विद्युत् नित्य क्रीड़ा करते हुए नाना रमणीय रश्मियों को धारण करते हैं। वे दोनों विभिन्न व्याप्त रश्मियों को शोभन गति व मार्ग प्रदान करते हैं।

(२) विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवां पृथुपाणिः सिसर्ति।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन्।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से वायु तत्त्व सव ओर व्याप्त होता हुआ क्रीड़ा करता है। वह व्याप्त वायु विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की निरन्तर शुद्धि करता है। वह द्युलोकों के केन्द्र में किंवा प्रत्येक परमाणु आदि पदार्थ के वाहरी भाग में व्यापक वलरूप व्यवहारों से युक्त होता है। वह सवका प्रकाशक और विद्युत् का उत्पादक होकर शीघ्रता से विभिन्न पदार्थों का वहन करते हुए गति कराता है।

(३) आशुभिश्चिद्यान्वि मुंचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात्।।३।।

इसका छन्द विराड् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् अधिक तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव {मोकी = रात्रिनाम (निघं.१.७)। आशुः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} अप्रकाशित सोम तत्त्व जिन तीव्रगामी पदार्थों को पृथक् करता है, उनको निरन्तर विद्यमान वायु और विद्युत् रमण कराते हैं। वे वायु और विद्युत् विभिन्न मेघरूप पदार्थों में व्याप्त होकर अनुकूलता से रक्षा करते हैं।

(४) पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः।
उत्संहायास्थाद् व्यृ१तूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात्।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सबके धारक वायु और विद्युत् अन्तरिक्ष में गमन करते हुए सूर्यादि लोकों में सम्यग् व्याप्त होकर उनके मार्ग को विस्तृत करते हैं। वे विभिन्न क्रियाकारक बलों को धारण करके उन लोकों को रमण कराते हैं। वे प्रकाशित ऋतु रश्मियों को निकटता से प्राप्त होते हुए नाना प्रकार के कर्मों को सम्पादित करते हैं।

(५) नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा।।५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूर्यादि लोकों में अनेक प्रकार के आग्नेय मार्ग एवं क्षेत्रों का निर्माण होता है। ये क्षेत्र ही उन लोकों के सम्पूर्ण जीवनकाल तक केन्द्रीय भाग के रूप में स्थायी बने रहते हैं। ये क्षेत्र ही मातारूप होकर विभिन्न प्रकार की आग्नेय तरंगों को उत्पन्न करने के लिए समर्थ एवं अत्यन्त तेजयुक्त होते हैं। इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के देदीप्यमान पदार्थ आकर्षित व धारित होते रहते हैं।

(६) समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत्।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य।।६।।

इसका छन्द विराड् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् विशेषरूप से प्रतिष्ठित होकर सभी गतिशील परमाणु आदि पदार्थों को शीघ्र चलने का बल प्रदान करते और साथ ही उन्हें नियन्त्रित भी रखते हैं। वे द्युलोकों में अच्छी प्रकार वर्तमान होकर विभिन्न कर्मों की विकृति को दूर कर अनुकूलता प्रदान करते हैं।

(७) त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति।।७।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् अपने तेज के साथ-२ संयोगादि कर्मों को भी विस्तृत करते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न गतिशील तन्मात्राओं को परस्पर संगत होने के लिए सब ओर से अनुकूल बल प्रदान करते हैं। वे विभिन्न तेजस्वी छन्द रश्मियों के द्वारा अन्तरिक्ष में नाना प्रकार की किरणों को निरापद ढंग से उत्पन्न करते हैं।

(८) याद्राध्यं१ वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {जर्भुराणः = भृशं धरन् (म.द. भा.)} वे वरणीय वायु और विद्युत् सभी सूर्यादि लोकों में विभिन्न प्रकार की अन्योन्य क्रियाओं को धारण करते हैं। गतिशील और नाना क्रियाओं को सिद्ध करते हुए वे मरुद् व छन्द रश्मियों को निरुद्ध करके न्यून तीक्ष्ण कारणरूप अग्नि को उत्पन्न करके दीर्घायु परमाणु आदि अनेक पदार्थों को उत्पन्न एवं गतिशील करते हैं।

(९) न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः।।९।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा कम तेजस्वी परन्तु आकर्षणादि बलों से अधिक संपन्न होता है। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों के अन्दर मनस्तत्त्व प्राण, अपान, व्यान, उदान, सूत्रात्मा वायु, विद्युत्, त्रिष्टुप् आदि तीक्ष्ण रश्मि आदि सभी को प्रेरित करता है। मनस्तत्त्व के कार्यों में किसी भी प्रकार की प्राण वा विद्युद् रश्मियां बाधक नहीं हो सकती और न असुर रश्मियां ही

इसे बाधा पहुंचा सकती हैं। इन सबके कमनीय मनस्तत्त्व को सभी प्राण वा वागादि रश्मियां सदैव आकर्षित करती किंवा उसकी ओर आकृष्ट होती रहती हैं।

(१०) भगं धियं वाजयन्तः पुरंन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः।
आये वामस्य संङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम॥१०॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रकाशित सबका पालक वायु तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों की रक्षा करता है। वह विभिन्न संयोज्य परमाणुओं के समूह, क्रियाओं एवं बलों को धारण करता तथा विभिन्न परमाणुओं एवं छन्दादि रश्मियों के संगम में श्रेष्ठ कमनीय बलों के साथ सदैव व्याप्त रहता है।

(११) अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात्।
शं यत्स्तोतृभ्यं आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे॥११॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उन वायु और विद्युत् से उत्पन्न विभिन्न कमनीय बल व प्रकाश रश्मियां तरलावस्था को प्राप्त पार्थिव परमाणुओं से कमनीय एवं देदीप्यमान पदार्थों को उत्पन्न व व्याप्त करते हैं। वे वायु और विद्युत् उन पदार्थों को व्यापक स्तर पर प्रकाशित और सक्रिय करने के लिए अनुकूल बल एवं गति प्रदान करते हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद "शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्" में 'स्था' धातु का प्रयोग है। इस विषय में ग्रन्थकार का कथन है- "अन्तो वै स्थितम्।" शेष व्याख्यान इसी खण्ड की कण्डिका "अभूरेको रयिपति रयीणामीति....." के व्याख्यान के समान समझें॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में ही ३ पंक्ति और ८ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियां एवं विद्युत् चुम्बकीय बलों - धाराओं एवं क्षेत्रों की तीक्ष्णता में अत्यधिक वृद्धि होती है। ऊष्मा और प्रकाश की मात्रा भी बढ़ती जाती है। सूर्यादि लोकों में भरा हुआ पदार्थ तापमान के विविध स्तरों वाले पदार्थ की तीव्र गतिशील धाराओं से युक्त होता है, परन्तु तारों के केन्द्र सदैव एक ही स्थान पर परिधि रूप में घूर्णन करते रहते हैं। तारों के अन्दर तीव्र गर्म पदार्थ की धाराएं प्राण रश्मियों से उत्पन्न और नियन्त्रित होती हैं। नाभिकों के संलयन में भी प्राण और विद्युत् रश्मियों का ही योगदान रहता है। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं दीर्घायु कणों को उत्पन्न करने में भी इन्हीं दोनों मुख्य तत्त्वों की भूमिका होती है किन्तु ये दोनों तत्त्व मनस्तत्त्व द्वारा प्रेरित होते हैं। इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान सभी प्रकार के बलों के पीछे इन्हीं की महती भूमिका होती है॥

६. 'कतरा पूर्वा कतरापरायोरिति' द्यावापृथिवीयं, समानोदर्कं, षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्॥

व्याख्यानम्- तदुपरान्त अगस्त्य ऋषि अर्थात् {अगस्त्यः = अगमपराधमस्यन्ति प्रक्षिपन्ति तेषु साधुः (म.द.ऋ.भा.१.१८०.८)} सूक्ष्म असुर रश्मियों को निराकृत करने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से द्यावापृथिवीदेवताक ऋ.१.१८५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) कतरा पूर्वा कतरापंरायोः कथा जाते कंवयः को वि वेंद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहंनी चक्रियेव॥१॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से प्रकाशित व अप्रकाशित कणों का तेज व बल तीव्र होता जाता है। इसके अन्य प्रभाव से कतरा अर्थात् प्राण रश्मियों से तरने वाले प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ उनसे पूर्वापेक्षा अधिक सम्पन्न होकर कथा अर्थात् विभिन्न छन्द रश्मियों

के मध्य उत्पन्न होकर प्राण रश्मियों के द्वारा ही प्रकाशित होते हैं। वे विभिन्न प्राण रश्मियां उन सभी परमाणुओं को धारण व पुष्ट करती हैं तथा उन परमाणुओं के साथ प्राण व अपान रश्मियां चक्र की भाँति वर्तमान रहती हैं।

(२) भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् अधिक तेजस्वी होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {पित्रोः = वाय्वाकाशयोः (म.द.ऋ.भा.१.१६०.३), वाक् च वै मनश्च पितरा युवाना (श.८.६.३.२२)} वे द्यौ एवं पृथिवी लोक अपनी कक्षा में अविचल भाव से गतिशील होने में इस छन्द रश्मि के द्वारा भी सहयोग प्राप्त करते हैं। वे दोनों ही लोक जब गर्भरूप अर्थात् निर्माणाधीन अवस्था में होते हैं, उस समय उनकी कोई भी कक्षाएं नहीं होती, बल्कि वे अनेक गतियों से युक्त अस्थिर भाव से यत्र-तत्र विचरते हैं, उस समय वे वायु तत्त्व एवं आकाश के द्वारा पुत्रवत् धारण किये जाते हैं। {अभ्वम् = असत्याचरणजन्यम् दुःखम् (तु.म.द.भा.)} इनके कारण ही विभिन्न बाधक पदार्थों से सुरक्षित भी रहते हैं।

(३) अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत्।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {अनेहः = अहन्तव्यम् (म.द.भा)। द्यावापृथिवी = विद्युदन्तरिक्षे (म.द.ऋ.भा.६.७०.४)} अविनाशी एवं आशुगामी रश्मियों से विहीन व्यान प्राण रश्मियों से युक्त एवं विभिन्न प्रकार के संयोज्य कणों से भरे हुए आकाश तत्त्व से इस छन्द रश्मि का निकट आकर्षण होता है। विद्युत् एवं अन्तरिक्ष दोनों प्रकाशित होते हुए इस बल को उत्पन्न करते हैं। वे विद्युत् एवं आकाश तत्त्व ही विभिन्न पदार्थों को तीक्ष्ण बाधक रश्मियों से बचाते हैं।

(४) अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्राण रश्मियों से उत्पन्न प्रकाशित - अप्रकाशित लोक वा कण अतप्त रश्मियों के द्वारा सूर्यादि लोकों में तीव्र वा मन्दगामी देव परमाणुओं की रक्षा करते हैं और इन्हीं से उन देव परमाणुओं की उत्पत्ति भी होती है। विद्युत् और आकाश तत्त्व दोनों ही बाधक रश्मियों से उन प्रकाशित अप्रकाशित कणों वा लोकों की रक्षा करते हुए उनको अनुकूलता प्रदान करते हैं।

(५) संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {स्वसा = स्वसारः अंगुलिनाम (निघं.२.५), सु असा स्वेषु सीदतीति वा (नि.११.३२)} वायु और आकाश की गोद में गमन करते हुए प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार के लोक विभिन्न प्रकार के मिश्रण और अभिश्रण कर्मों तथा बलों से युक्त विद्युत् में आश्रित अपने-२ केन्द्रों में आकर्षण बल को धारण करते हुए नाना विचलनों से अपने अन्दर स्थित विभिन्न पदार्थों की रक्षा करते हैं।

(६) उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से बहुत विस्तार वाले विशाल प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोक सृष्टि के विशाल पदार्थ समूह के निवास स्थान होते हैं। वे अपने कारणभूत प्राणों के रक्षण, कान्ति, गति आदि अनेक गुणों के द्वारा नाना प्रकाशित परमाणुओं को उत्पन्न करते हुए सुशोभित होते हैं। वे दोनों प्रकार के लोक विभिन्न अविनाशी पदार्थों को धारण वा आकर्षित करते हुए विद्युत् और आकाश के द्वारा नाना प्रकार के अनिष्ट पदार्थों से सुरक्षित रहते हैं।

(७) उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन्।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से दूरस्थ और समीपस्थ अनेक रूपों वाले पार्थिव और अन्तरिक्ष लोक अति व्यापक क्षेत्र में होने वाले सृजन कर्मों में वज्ररूप नाना रश्मियों और विभिन्न संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा प्रकाशित होते हैं। शीघ्र गमन करने वाले वाले पृथिवी और द्युलोक अनेक प्रकार की संगमन क्रियाओं को धारण करते हुए नाना प्रकार के पदार्थों को धारण करते हैं। इन दोनों ही लोकों को विद्युत् और आकाश तत्त्व एवं प्रकाशित और अप्रकाशित कण ही सदैव सुरक्षित रखते हैं।

(८) देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {धीः = प्राणाधियः (श.६.३.१.१३), वाग्वै धीः (ऐ.आ.१.१.४)} कुछ बाधक असुरादि पदार्थ समान रूप से प्रकाशित विभिन्न पदार्थों के उत्पत्ति स्थान रूप, विभिन्न लोकों के प्रति बाधा उत्पन्न करते हैं। उन बाधक असुरादि तत्त्वों को विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियां मिलकर दूर करती हैं। उधर, विभिन्न पदार्थ समान रूप से प्रकाशित देव परमाणुओं की विभिन्न उत्पत्ति क्रियाओं {आगः = अपराधम् (म.द.ऋ.भा.७.५७.४), तद्यास्तिस्र आगा इम एव ते लोकाः (जै.उ.१.६.१.७)} को सम्पादित करने के लिए वा करके तीनों लोकों का निर्माण करते हैं। इन तीनों लोकों को परस्पर दूर हटाने में विभिन्न छन्द एवं प्राण रश्मियां ही भूमिका निभाती हैं। विद्युत् और आकाश तत्त्व दोनों ही इन रश्मियों से निर्मित व प्रेरित होकर सब बाधाओं को दूर करते हैं।

(९) उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम्।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे विद्युत् तथा आकाश तत्त्व प्रकाशित होते हुए विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों में सदैव विचरते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करते हैं। वे दोनों ही अपनी रक्षण व गति-कान्त्यादि गुणों के द्वारा उन पदार्थों को दोनों ही प्रकार के विद्युद् बलों व तज्जन्य रक्षणादि क्रियाओं से युक्त करते हैं। विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां पारस्परिक आकर्षणादि बलों से युक्त सबकी नियन्त्रक व संचालक बन कर उन्हें विशेष सक्रियता आदि गुणों से सम्पन्न करती हैं।

(१०) ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् मृदु होता है। {प्रथमम् = परमम् (नि.३.८)} अच्छे प्रकार से संगम कराने में समर्थ सूत्रात्मा, व्यान एवं मासादि रश्मियां सब ओर गति करते व कराते हुए पार्थिव परमाणुओं को आकाश में उत्कृष्ट व प्रथम अग्नि तत्त्व से प्रकाशित करती हैं। {अभीके = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} वे परमाणु अपने प्रकाशादि गुणों से युक्त होकर असुरादि

तत्त्वों के साथ संग्राम तथा पारस्परिक संघातों में विविध बाधाओं से रक्षित होते हैं। इस कार्य में वायु और आकाशतत्त्व भी अपनी भूमिका निभाते हैं।

(११) इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्।।११।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। सबके पालक एवं उत्पादक आकाश व पार्थिव परमाणु विभिन्न प्राण रश्मियों के रक्षणादि व्यवहार में सदैव सक्रिय व प्रकाशित रहते हैं। इनकी ही क्रियाओं से सभी परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार के आकर्षक व वर्जक बल तथा आयु को प्राप्त करते हैं।

उपर्युक्त ११ ऋचाओं में से ७ ऋचाओं में "द्यावा रक्षतम् पृथिवी नो अभ्वात्" समान रूप से विद्यमान है। इस कारण यह सम्पूर्ण सूक्त ही समानोदर्क कहा गया है। इस कारण ये सभी ऋचाएं समस्त पदार्थ में एकरस व्याप्त हो जाती हैं तथा विभिन्न बाधक रश्मि आदि पदार्थों से नाना प्रकार की संयोग व सम्पीडन क्रियाओं को सुरक्षित रखती हैं। इस सूक्त का समानोदर्क होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ही ११ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। जिससे विभिन्न प्रकार के कण एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है। इस समय विभिन्न प्राण और छन्द रश्मियों की अति सक्रियता ही इस ऊर्जा वृद्धि का कारण है। विभिन्न कणों और क्वान्टाज् के चारों ओर चक्र के समान प्राण और अपान रश्मियां वर्तमान रहती हैं। निर्माणाधीन तारे आदि लोक अनिश्चित और अनियमित गति से अन्तरिक्ष में कम्पित होते और भटकते हैं। निर्माण प्रक्रिया के पश्चात् विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा यथासमय अपनी कक्षाओं में स्थापित होकर वे अविचल भाव से परिक्रमण करने लगते हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां और आकाश तत्त्व नानाविध संयोग करके डार्क एनर्जी के प्रभाव को नियन्त्रित करते हैं। **विभिन्न पदार्थों की ऊर्जा की वृद्धि में विद्युत् के साथ आकाश तत्त्व का भी योगदान रहता है। प्रत्येक लोक वा कण के आकर्षण का केन्द्र उनके मध्य भाग में ही स्थित होता है।** विभिन्न तारे और उनके ग्रहादि अपनी उत्पत्ति के पश्चात् अति दूर स्थित नहीं होते हैं। कुछ छन्द व प्राण रश्मियों के द्वारा ही इनको बलपूर्वक अन्तरिक्ष में दूर-२ फैलाकर धीरे-२ निश्चित कक्षाओं में स्थापित किया जाता है। **विद्युत् और आकाश रश्मियां सूक्ष्म मरुद् एवं प्राण रश्मियों में विचरण करती हैं।** विशेष जानकारी हेतु व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

७. 'किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्नुप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा' इत्यार्भवं, नाराशंसं त्रिवत् षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त दीर्घतमा ऋषि अर्थात् एक विशेष फैले हुए सूक्ष्म प्राण विशेष से ऋभवो-देवताक ऋ.१.१६१ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम।।१।।

इसका छन्द विराट् जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां विशेष प्रकाशित और विस्तृत होते हुए संयोगादि कर्मों को विस्तृत करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {भ्राता = भ्राता भरतेर्हरतिकर्मणो हरते भागं भर्तव्यो भवतीति वा (नि.४.२६), भ्राजते दीप्यतेऽसौ भ्राता (उ.को.२.९७)। दूतः = दूतः जवतेर्वा, द्रवतेर्वा वारयतेर्वा (नि.५.१)} सबका पोषक और धारक अग्नि तत्त्व, जो व्यापक वायु से उत्पन्न होकर तीव्र वेगयुक्त होता है, विभिन्न मेघरूप पदार्थों में व्याप्त हो जाता है। उस समय वे मेघरूप पदार्थ श्रेष्ठ रूप से संयुक्त-वियुक्त होने वाले पदार्थों से भरे होते हैं। जब वह अग्नि तत्त्व उन पदार्थों को प्रकाशित एवं गतिशील करके विभिन्न बाधक रश्मियों को रोकने का सामर्थ्य प्रदान करता है, उस समय वे मेघरूप पदार्थ नाना बल और दीप्तियों से युक्त होकर सृजन कार्यों से वंचित

नहीं होते हैं।

(२) एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अंब्रुवन्तद्व आगमम्।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण परन्तु न्यून तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {धनुः = धन्वतेर्गतिकर्मणः, वधकर्मणो वा धन्वन्त्यस्माद् इषवः (नि.६.१६), वार्त्रघ्नं वै धनुः (श.५.३.५.२७), वज्रो वै धनुः (मै.४.४.३)} सुन्दर वज्र रश्मियों से युक्त देव परमाणु सर्वत्र फैल कर मेघरूप पदार्थों को प्रकाशित करते हैं। वे मेघरूप पदार्थ नाना रूपों में विकृत होकर नाना पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। उन प्राण रश्मियों से वायु, अग्नि, जल एवं पार्थिव रूपों की उत्पत्ति होती है। ये सभी पदार्थ नाना मेल करके विविध सामर्थ्य से युक्त होते हैं।

(३) अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथं उतेह कर्त्वः।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से सूत्रात्मा वायु तीक्ष्ण तेज व बलों को प्रकट करता है। इसके अन्य प्रभाव से सबका पोषक व धारक सूत्रात्मा वायु आशुगामी, क्रियाशील, रमणीय, प्रक्षेपक व प्रापक अग्नितत्त्व को प्रकाशित व क्रियाशील करता है। विभिन्न संगमनीय व क्रियाशील छन्द रश्मियां मरुद् व प्राण रूप होकर अनुकूलता से नाना पदार्थों को सिद्ध करती हैं। इससे सभी पदार्थों की क्रियाशीलता विशेष बढ़ जाती है।

(४) चकृवांसं ऋभवस्तदंपृच्छत क्वेदंभूद्यः स्य दूतो न आजंगन्।
यदावाख्यंच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे।।४।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा न्यून तीक्ष्ण आकर्षणादि बलों से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न क्रियाओं से युक्त सूत्रात्मा वायु पदार्थ को संघनित व सम्पीडित करके दूत रूप अग्नि तत्त्व को बार-२ सर्वत्र उत्पन्न करता है। वही सूत्रात्मा वायु विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकृष्ट करता हुआ अन्य प्राणादि रश्मियों के साथ संगत होकर तीक्ष्ण होता हुआ मेघरूप पदार्थों को प्रकाशित करता है। वह वायु, अग्नि, जल और पृथिवी सभी चारों पदार्थों को धारण करता हुआ विभिन्न छन्द रश्मियों के बीच चलाता वा व्याप्त करता है।

(५) हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान् कन्या३ नामभिः स्परत्।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उपर्युक्त तीक्ष्ण होता हुआ सूत्रात्मा वायु विभिन्न देव परमाणुओं से युक्त मेघरूप पदार्थ को प्रकाशित और सक्रिय करके अनिष्ट असुरादि तत्त्वों को नष्ट करता है। वह विभिन्न छन्द रश्मियों को अन्य छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त करके विभिन्न प्रेरण और सम्पीडन क्रियाओं को उत्पन्न करता हुआ कमनीय प्रकाशादि रश्मियों को पालता व तृप्त करता है।

(६) इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से बड़े-२ लोकों का पालक इन्द्र तत्त्व प्राणापान किंवा प्राणोदान की हरणशील और रमणीय रश्मियों से युक्त होकर समस्त पदार्थ में अनेक प्रकार के रूप रंगों की व्याप्ति करता है। सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु अपनी व्याप्ति से विभिन्न बलवती एवं संगमनीय प्राण रश्मियों में व्याप्त होकर अनेक सृजन कर्मों को अच्छी प्रकार सम्पादित करता है।

(७) निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन।।७।।

इसका छन्द जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु अपनी धारणा शक्ति से विभिन्न छन्द रश्मियों एवं पार्थिव परमाणुओं के त्वचा तुल्य ऊपरी भागों में व्याप्त होकर उन्हें संगमनीय और प्रकाशित करके निरन्तर सक्रिय रखता है। धनंजय आदि प्राण रश्मियों से संगत होकर तीक्ष्ण वना सूत्रात्मा वायु तीव्र वेग और वल के द्वारा {तक्षतिः करोतिकर्मा (नि.४.१९)} अन्य वेगवान् परमाणु आदि पदार्थों को तीक्ष्ण और क्रियाशील वनाता है, जिससे वे पदार्थ विभिन्न प्राणादि रश्मियों से युक्त होकर रमणीय तेज को प्राप्त करते हैं।

(८) इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिवता मुञ्जनेजनम्।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै।।८।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {मुञ्जः = योनिरेषाग्नेर्यन्मुञ्जः (श.६.६.१.२३), यज्ञिया हि मुञ्जाः (श.१२.८.३.६)} पूर्वोक्तानुसार तीक्ष्ण हुआ सूत्रात्मा वायु अग्नि तत्त्व अपनी कारण एवं निवास रूप वायु रश्मियों को अवशोषित करता है। उधर, अन्य रश्मियों को अवशोषित न करके सक्रिय और प्रकाशित करता हुआ वह तृतीय सवन अर्थात् जगती छन्द रश्मियों से युक्त पदार्थों को निरन्तर आकर्षित और सक्रिय करता है।

(९) आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वधर्यन्तीं वहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत।।९।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु धनंजय के साथ संगत होकर तीव्र तेज और वलों को उत्पन्न करता है। इसके अन्य प्रभाव से सवका पालक एक मनस्तत्त्व व्यापक प्राण रश्मियों के रूप में अधिक देदीप्यमान होता है किंवा वह प्राण रश्मियों को अधिक देदीप्यमान करता है। मनस्तत्त्व से अन्य वायु तत्त्व अर्थात् प्राण व छन्द रश्मियां अग्नि तत्त्व को अधिक प्रकाशमान वनाती हैं किंवा अग्नि तत्त्व के रूप में प्रकट होकर अधिक प्रकाश व क्रियायुक्त होती हैं। इसके वाद वह अग्नि विविध संयोगादि कर्मों में प्रकट होकर समृद्ध होते हुए पार्थिव परमाणुओं को प्रकट व प्रकाशित करता है। ऐसा वह ऋतरूप अग्नि एवं वायु गतिशील होते हुए मेघरूप पदार्थों को नाना प्रकार से विभक्त करते हैं।

(१०) श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः।।१०।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {श्रोणा = श्रोणिः = श्रोणिः श्रोणतेर्गतिचलाकर्मणः। श्रोणिश्चलतीव गच्छतः (नि.४.३)। मांसम् = मांसं सादनम् (श.८.१.४.५), मांसं वै पुरीषम् (श.८.६.२.१४)। शकृत् = शक्नोतीति शकृत् (उ.को.४.५६)} सवमें व्याप्त हुआ सूत्रात्मा वायु अकेला ही छन्द रश्मियों को घुमाता हुआ चलाता है, ऐसी छन्द रश्मियां पदार्थ की तरल अवस्था को एवं सिंचित होते हुए पदार्थ को प्रेरित करती हैं। वही सूत्रात्मा वायु धनंजय प्राण से युक्त होकर पूर्ण वल से युक्त पदार्थों को धारण करता हुआ उन्हें एक स्थान में पृथक् वा मर्यादित रखता है। वही नित्य गतिशील सूत्रात्मा वायु उन पदार्थ समूहों को उठाने में समर्थ होता है। वायु और आकाश तत्त्व इसी सूत्रात्मा वायु के सहाय से अपने कार्यरूप अग्नि, जल वा पार्थिव अवस्था वाले पदार्थों में व्याप्त रहते हैं।

(११) उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ।।११।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {तृणम् = तृह्यते हन्यते तत् तृणम् (उ.को.५.८)} सबके वाहक वे सूत्रात्मा वायु एवं धनंजय प्राण अपने उत्तम बलों के द्वारा विभिन्न छन्दादि रश्मियों के साथ संगत होने के लिए ऊपर-नीचे सभी स्थानों पर अपनी भक्ष्यरूप प्राण रश्मियों को धारण करते हैं। वे सूत्रात्मा वायु व धनंजय रश्मियां {असस्तन् = हिंसत् (म.द.भा.)} आच्छादित न होने योग्य रश्मि आदि पदार्थों को द्युलोकों के अन्दर ताडित करके अनुकूल गति से युक्त करती हैं।

(१२) संमील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन॥१२॥

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {करस्नम् = बाहुनाम (निघं.२.४)। भुवनम् = लोकजातम् (तु.म.द.ऋ.भा.१.१४३.४), भुवनानि भूतान्युदकानि (नि.१०.३४), यज्ञो वै भुवनम् (तै.ब्रा.३.३.७.५)। संमील्य = (मील् = अन्तर्धान होना, एकत्र होना, मिलना - आप्टेकोष)} वे सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर विभिन्न छन्द वा प्राणादि रश्मियों में अन्तर्धान होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में होने वाले विभिन्न संयोगादि कर्मों को सब ओर से गति प्रदान करते हैं। वे सबके पालक और रक्षक बनकर सब ओर व्याप्त होकर विभिन्न रश्मियों को आकर्षण बलों के द्वारा ग्रहण करते हैं। वे बाधक पदार्थों को नियन्त्रित व ताडित करके सभी प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को प्रकृष्टता से प्रकाशित करते हैं।

(१३) सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत॥१३॥

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से आकाश में सोया हुआ सूत्रात्मा वायु विभिन्न पदार्थों को अपने साथ आकृष्ट व संगत करता हुआ विशेषरूप से प्रकाशित व सक्रिय करता है, उस ऐसे पदार्थ को अन्य प्राण रश्मियां बल प्रदान करके उत्तेजित करती हैं। सबके आच्छादक सूत्रात्मा एवं व्यान वायु विभिन्न पदार्थों को सक्रिय, प्रेरित और प्रकाशित करके सूर्यादि लोकों को प्रकट करते हैं।

(१४) दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः॥१४॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु एवं धनंजय प्राण तीव्र प्रकाशित और विस्तृत होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे बलवान् और अपतनीय मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ संगत व व्याप्त होती हैं। अग्नि तत्त्व पार्थिव तत्त्व के साथ एवं वायु आकाश तत्त्व के साथ संगत और व्याप्त होता है। वरुण रश्मियां प्राणापानोदान तथा सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ व्याप्त होती हैं, इन्हीं गुणों के कारण सभी पदार्थ एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं।

तदनन्तर वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व एवं प्राण नामक प्राथमिक प्राण से ऋभवो-देवताक ऋ.४.३७ सूक्त की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम्॥१॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु तीव्र तेजस्वी एवं बलयुक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {रण्वः = रमयिता (म.द.ऋ.भा.२.२४.११), रमणीय-स्वरूपः (म.द.ऋ.भा.४.१.८)} रमणीय सूत्रात्मा वायु प्रकाशित पदार्थों में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को संगत और धारण करते हैं, वैसे ही महान् छन्द और प्राण तत्त्व विभिन्न प्रकाशित मार्गों को निरापद संयोगादि कर्मों से युक्त करते हैं।

(२) ते वो॑ हृदे मन॑से सन्तु यज्ञा जुष्टा॑सो अद्य घृतनि॑र्णिजो गुः।
प्र वः॑ सुतासो॑ हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षा॑य हर्षयन्त पीताः॥२॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् कम तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से {हृदे = हृदयाय (नि.१०.३५), (हृदयम् = असौ वाऽआदित्यो हृदयम् - श.६.१.२.४०; हृदयम् वै स्तोमभागाः - श.८.६.२.१५)} विभिन्न आदित्य लोकों में प्रकाशित स्तोमों अर्थात् तेजस्वी रश्मिसमूहों की उत्पत्ति के लिए 'घृमृ' रश्मियों द्वारा शोधित एवं विभिन्न मरुत् वा प्राण रश्मियों द्वारा सेवित संयोगादि कर्म उत्पन्न होते है। वे उत्पन्न रश्मियां परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित और व्याप्त करती हुई विभिन्न वल और क्रियाओं को पूर्णता से पालती व सक्रिय करती है।

(३) त्र्युदायं देवहि॑तं यथा॑ वः स्तोमो॑ वाजा ऋभुक्षणो ददे वः।
जुह्वे म॑नुष्वदुप॑रासु विक्षु युष्मे सचा॑ बृहद्दिवेषु सोम॑म्॥३॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से {उपराः = दिङ्नाम (निघं.१.६)। सचा = षच समवाये (भ्वा.) सचति गतिकर्मा (निघं.२.१४)} महान् छन्दादि पदार्थ विभिन्न तेजस्वी किरणों के रूप में प्रकट होकर शुद्ध तेजयुक्त पदार्थ को उत्पन्न करते हैं। वे विभिन्न दिशाओं में व्यापक तेजयुक्त परमाणु आदि पदार्थों को आकाश, वायु एवं अग्नि के संयुक्त रूप में प्रकट करके सर्ग यज्ञ को धारण करने वाले सोम पदार्थ के साथ युक्त करते हैं।

(४) पीवो॑अश्वाः शुचद्र॑था हि भूतायः॑ शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः।
इन्द्र॑स्य सूनो शवसो नपातोऽनु॑ वश्चेत्यग्रियं मदा॑य॥४॥

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु एवं धनंजय आदि प्राण व्यापक क्षेत्र में फैलकर संयोगादि कर्मों को विस्तृत करते हैं। {निष्कः = निषीदतीति निष्कः (उ.को.३.४५)} इसके अन्य प्रभाव से संवर्धमान, आशुगामी, ज्वलनशील, सुदृढ़ व तेजस्वी, भेदक वलों से युक्त अनेक प्रकार के संयोज्य परमाणु उत्पन्न होते है। वे अपतनीय (अक्षय) वलों से युक्त इन्द्र तत्त्व के प्रेरण और क्रियाशील वलों को अग्रगामी वनाते हैं।

(५) ऋभुमृ॑भुक्षणो रयिं वाजे॑ वाजिन्त॑मं युज॑म्। इन्द्र॑स्वन्तं हवामहे सदासात॑ममश्विन॑म्॥५॥

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से पूर्वोक्त सभी छन्द रश्मियां विशेष तेजयुक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त महान् छन्दादि रश्मियां विभिन्न अन्योऽन्य क्रियाओं में अतिशय संयोज्य सूत्रात्मा वायु, अतिशय वलवान् एवं विभाजक इन्द्र तत्त्व एवं प्राणापान, प्राणोदान किंवा विविध प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं को आकर्षित करती हैं।

(६) सेदृ॑भवो यमव॑थ यूयमिन्द्र॑श्च मर्त्यम्। स धीभिर॑स्तु सनि॑ता मेधसा॑ता सो अर्व॑ता॥६॥

इसका छन्द निचृदनुष्टुप होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे सूत्रात्मा व धनंजय रश्मियां विभिन्न मरुदादि रश्मियों में व्याप्त होकर इन्द्र तत्त्व की धारणा शक्तियों की रक्षा करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व तीव्र और व्यापक रश्मियों के द्वारा अनेक संयोग और विभाग कर्मों को करने में समर्थ होता है।

(७) वि नो॑ वाजा ऋभुक्षणः पथश्चि॑तन यष्ट॑वे। अस्मभ्यं॑ सूरयः स्तुता विश्वा आशा॑स्तरीषणि॑॥७॥

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से दैवत छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न महती छन्द रश्मियां अतिशय प्रकाशित व सक्रिय होकर विभिन्न संयोग कर्मों को उत्तेजित करके सभी दिशाओं को तारणादि वलों से युक्त करती हैं।

(८) तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम्। समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शंस्त मघत्तये।।८।।

इसका छन्द निचृद् अनुष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे व्यापक छन्दादि रश्मियां विभिन्न परमाणुओं एवं तेजस्वी किरणों को निरन्तर उत्पन्न करने के लिए आशुगामी मरुद् रश्मियों के साथ व्यापक रूप से सब ओर से संगत होकर इन्द्र तत्त्व को तीव्र बनाती हैं।

उपर्युक्त दोनों सूक्त आशुगामी धनंजय आदि मरुद् रश्मियों को तीक्ष्ण बनाने से 'नाराशंस' कहलाते हैं। उपर्युक्त द्वितीय सूक्त की तृतीय ऋचा में 'त्र्युदाय' पद में संख्यावाची 'त्रि' शब्द विद्यमान होने से इन दोनों सूक्तों का समूह विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों का तारक 'त्रिवृत्' कहलाता है और इसका त्रिवृत् होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ जगती, ५ त्रिष्टुप् एवं १ पंक्ति छन्द रश्मियों का एक समूह और ४ त्रिष्टुप्, ३ अनुष्टुप् एवं १ पंक्ति छन्द रश्मियों का दूसरा समूह प्रकट होता है। इनके प्रभाव से **सूत्रात्मा वायु** और धनंजय प्राण के अत्यन्त सक्रिय होने से पदार्थ के संयोग सम्पीडन और संघनन की क्रियाएं अति तीव्र हो उठती हैं। डार्क एनर्जी का प्रभाव न्यूनतर होता जाता है। पदार्थ में भारी हलचल होकर विभिन्न तारों में नाना पदार्थों का निर्माण होने लगता है। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति एवं उनका उत्सर्जन और अवशोषण तीव्र गति से होने लगता है एवं अनेक रूप रंग वाली प्रकाश रश्मियां उत्पन्न होती हैं। **सूत्रात्मा वायु** रश्मियां विभिन्न पदार्थों को कैसे संयुक्त करती हैं? उसका विज्ञान यह है कि वे विभिन्न कणों और क्वान्टाज् के ऊपरी भागों में सक्रिय प्राण व छन्द रश्मियों के साथ व्याप्त व संयुक्त हो जाती हैं। इसी प्रकार विभिन्न छन्द रश्मियों को संयुक्त करने के लिए वे उनके बाहरी भागों में संयुक्त होती हैं, जिससे उन पदार्थों की संयोजन क्षमता तीव्र हो जाती है। **सूत्रात्मा वायु** के साथ धनंजय रश्मियां संयुक्त होकर **सूत्रात्मा वायु** की तीव्रता को बढ़ा देती हैं। ऐसा **सूत्रात्मा वायु** जगती रश्मियों से क्रिया करके ऊर्जा के उत्सर्जन और अवशोषण को अधिक तीव्र करता है। मनस्तत्त्व प्राण रश्मियों को सक्रिय करता है, प्राण व छन्द रश्मियां विद्युत् चुम्बकीय तरंगों आदि ऊर्जा को उत्पन्न करती हैं तथा ऊर्जा विभिन्न कणों को सक्रिय व प्रकाशित करती है। सक्रिय और प्रकाशित पदार्थ ही कॉस्मिक मेघों को विभाजित करके नाना प्रकार के लोकों की रचना करते हैं। **पदार्थ की तरलावस्था में सूत्रात्मा वायु के कारण घूमती हुई छन्द रश्मियां प्रेरक का कार्य करती हैं अर्थात् किसी भी पदार्थ की तरलावस्था ऐसी ही घूमती हुई छन्द रश्मियों के कारण होती है। सूत्रात्मा वायु एवं धनंजय प्राण का संयुक्त रूप विभिन्न पदार्थ की परिधि वा मर्य्यादा बनाने में बृहती छन्द रश्मियों के साथ कार्य करता है।** आकाश तत्त्व की विभिन्न पदार्थों के साथ व्याप्ति सूत्रात्मा वायु के कारण ही होती है। सूत्रात्मा एवं धनंजय रश्मियां विभिन्न कणों और रश्मियों को अनुकूल गति प्रदान करती हैं। ये सूत्रात्मा वायु और धनंजय रश्मियां विभिन्न रश्मियों के भीतर गुप्त रूप से छिपी रहती हैं। विभिन्न तारे आदि लोकों के निर्माण की प्रत्येक क्रिया में इन दोनों की महती भूमिका होती है। क्वान्टाज् और कणों का संयोग अथवा विभिन्न कणों का पारस्परिक संयोग अथवा तरंगों की superposition की क्रिया के लिए **सूत्रात्मा वायु** ही सर्वाधिक उत्तरदायी होता है। इन सभी क्रियाओं में **'घृम्'** रश्मियों की भी महती भूमिका होती है। ऊर्जा की उत्पत्ति, नाभिकीय संलयन आदि सभी क्रियाओं में विभिन्न प्राण व मरुद् रश्मियों की भूमिका होती है। सभी प्रकार के मूल बलों में भी **सूत्रात्मा वायु,** मरुद् एवं प्राण रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है।।

८. 'इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा, ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता' इति वैश्वदेवम्।।८।।

व्याख्यानम्- {नाभिः = अथ त्रिष्टुप् । नाभिरेव सा (जै.ब्रा.१.२५४)। मनुः = आयुर्वै मनुः (कौ.ब्रा.२६.१७), (आयुः = प्राणो वा आयुः - ऐ.२.३८; आयुर् घृतम् - मै.२.३.५; आयुर्वै परमः कामः - काठ.३७.१६)} तदुपरान्त मानवो नाभानेदिष्ठ ऋषि अर्थात् 'घृम्' रश्मि मिश्रित प्राण नामक प्राथमिक प्राण, जो अत्यन्त कामनाशील होता है, से उत्पन्न नाभानेदिष्ठ अर्थात् त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के अतिनिकट रहने वाले सूक्ष्म प्राण विशेष से विश्वेदेवा-देवताक ऋ.१०.६१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती

है-

(१) इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन्।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीक्ष्ण तेज व वल से युक्त होते हैं {गूर्तः = गुरी उद्यमने (तुदा.) धातोः क्तः (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)। क्राणाः = कर्तुं शीलाः (म.द.ऋ.भा.१.१३४.२)। इत्था = सत्यनाम (निघं.३.१०)} विशेष प्रयत्नशील छन्द रश्मियां निरन्तर तीक्ष्ण वलों के साथ विभिन्न संयोग-संघातों में तेजस्विता को धारण कराती हैं। वे छन्द रश्मियां किंवा विशेष सक्रिय प्राणापान रश्मियां विशेष पालक व क्रियाशीलता में दृढ़तर होकर परिपक्व द्युलोकों में सभी सात होता रूप प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु को सव ओर से विशेष क्रियाशील वनाते हैं।

(२) स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम्।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत्।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् मृदु परन्तु अधिक प्रकाशयुक्त होता है। {च्यवनः = च्यवनः ऋषिर्भवति, च्यावयिता स्तोमानाम् (नि.४.१९), गन्ता (म.द.ऋ.भा.६.१८.२)} वह पूर्वोक्त वल अनेक तेजस्वी छन्द रश्मियों को गतिशील वनाकर आसुर तत्त्वों का क्षरण करता हुआ विभिन्न परमाणुओं के मध्य अन्योऽन्य क्रियाओं को वढ़ाता, वाधक तीक्ष्ण रश्मि आदि पदार्थों को नियन्त्रित करता तथा सर्गयज्ञ की वेदी किंवा अन्तरिक्ष में नाना रश्मियों को आकर्षित करके निष्क्रियता आदि का क्षरण करता हुआ नाना पदार्थों का निर्माण करता है। उस समय उपर्युक्त विशेष सक्रिय तेजस्विनी छन्द रश्मियों के द्वारा सभी दोषों का निवारण करके सभी प्रकार की सेचक धर्मयुक्त रश्मियां वीजरूप प्राण रश्मियों के समान व्याप्त होकर नाना सृजन क्रियाओं की रक्षा करती हैं।

(३) मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ।।३।।

इसका छन्द आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {गभस्तिः = रश्मिनाम (निघं.१.५), वाहुनाम (निघं.२.४)। शर्या = अङ्गुलिनाम (निघं.२.५)} विभिन्न संयोग-वियोगादि क्रियाओं में तीक्ष्ण व प्रकाशित सूत्रात्मा व धनंजय वायु रश्मियों का युग्म विभिन्न ज्वलनशील गतिशील रश्मि आदि पदार्थों को व्याप्त वा आकर्षित करता है। वह रश्मियुग्म व्यापक परमाणु समुदाय से युक्त होकर नाना तेजस्वी व वलशील रश्मियों को अपना आश्रय प्रदान करता हुआ सर्वतः नियमित करता है।

(४) कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम्।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू।।४।।

इसका छन्द पाद निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण परन्तु न्यून तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से अपतनीय प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियां सूर्यादि लोकों में विद्यमान अरुण वर्ण की रश्मियों के वीच कहीं कुछ पदार्थों के कृष्णवर्णी होने पर उन अप्रकाशित किंवा न्यून प्रकाशित परमाणु वा रश्मियों को उत्तेजित व आकर्षित करने के लिए धारण करती हैं। जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ विभिन्न संयोज्य एवं व्यापक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के साथ संगत होने के लिए विशेष प्रेरित होते हैं।

(५) प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत्।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {कना = (कनी दीप्तिकान्तिगतिषु)} वे उपर्युक्त व्यापक प्राण रश्मियां अपने कर्मों को विस्तृत व पुष्ट करती हुई विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूल एवं स्थिर बलों से युक्त करके पुनः सब प्रकार से समृद्ध करती हैं। वे प्राण रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों के साथ उन रश्मि आदि पदार्थों को संगत करके देदीप्यमान उषारूप किरणों को अनुकूलता से पुष्ट करके अहिंस्य रूप प्रदान करती हैं।

(६) मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरिं युवत्याम्।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ॥६॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संयोज्य मरुद् वा छन्द रश्मियां पालक प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न संघात वा संघर्ष क्रियाओं में कमनीय बलों को धारण करते हुए विभिन्न छन्दादि रश्मियों वा प्राण रश्मियों में अपनी सूक्ष्म तेजस्वी बीजरूप रश्मियों को अच्छी प्रकार क्रियाशील विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के उत्पादक स्थानों के बाहरी शिखर भागों में सेचन करती हैं।

(७) पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत्।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्॥७॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वास्तु = अवीर्यम् वै वास्तु (श.१.७.३.१७), वसन्ति प्राणिनो यत्र तद् वास्तु} पालक प्राण रश्मियां विभिन्न पार्थिव परमाणुओं के साथ संयुक्त होकर उन्हें अपना उत्पादक तेज व बल प्रदान करके तेजस्वी कमनीय विकिरणों को उत्पन्न करती हैं। उस समय सम्यग्रूपेण प्रकाशित वे प्राण रश्मियां विद्युत् को उत्पन्न करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के आश्रयभूत आकाशतत्त्व को संयोग व संघनन क्रियाओं हेतु विशेष तीक्ष्ण करती हैं, जिसके कारण गुरुत्वाकर्षण की वृद्धि होती है।

(८) स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे॥८॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {दभ्रम् = (दभ्नोति वधकर्मा - निघं.२.१९), ह्रस्वनाम (निघं.३.२)} बलवान् एवं वृषारूप इन्द्र तत्त्व विभिन्न संघातों और संघर्षों में परमाणु आदि पदार्थों को बढ़ाता हुआ प्रक्षिप्त करता है। वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण बाधक व सक्रिय बलवान् असुरादि रश्मियों को दूर तक प्रक्षिप्त करके रोकता है। वह इन्द्र तत्त्व उन परमाणु आदि पदार्थों को स्पर्श करता हुआ ग्रहण करता है और उन्हें असुरादि रश्मियों के प्रहार से रोकता है।

(९) मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत्॥९॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {उपब्दिः = वाङ्नाम (निघं.१.११), महाशब्दकर्त्ता (म.द.ऋ.भा.१.७४.७)} अग्नि तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि का वाहक बनकर सूर्यादि लोकों के अन्दर घोर शब्द उत्पन्न करता हुआ अतिशीघ्रता से उन परमाणुओं को तीक्ष्णता प्रदान करता है। वह अग्नि तत्त्व विद्युत् रूप में अन्धकार अवस्था में भी अपने शुद्ध रूप के द्वारा किंवा छन्द रश्मियों के साथ न्यूनतया संगत रहने पर भी परमाणु आदि पदार्थों को अति तीक्ष्णता प्रदान करता है। वह अग्नि तत्त्व ज्वलनशील अवस्था को प्राप्त करने वाला विभिन्न संयोजक बलों व संयोज्य पदार्थों में व्याप्त रहकर उन्हें धारण व संयुक्त-वियुक्त करता है।

(१०) मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन्।

द्विबर्हसो य उप॑ गोपमागु॑रदक्षिणासो अच्यु॑ता दुदुक्षन्।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नवग्वाः = नवगतयो नवनीतगतयो वा (नि.११.१९)} वह अग्नि तत्त्व नवीन-२ छन्द रश्मियों से युक्त होकर नाना गतियों को प्राप्त करता हुआ अपने साथ अनेक परमाणु आदि पदार्थों को संयुक्त करके उन्हें आशुगति प्रदान करता हुआ अपने साथ दीप्तियुक्त करता है। वे अग्नि के परमाणु प्राण एवं मरुद् रश्मियों के द्वारा समृद्ध होते हुए विभिन्न किरणों को पालते, उत्पन्न व व्याप्त करते हैं। वे न्यून वल, गतिहीन परमाणु आदि पदार्थों को अपने वलों से पूर्ण करके शीघ्रगामी व शीघ्रकारी वनाते हैं।

(११) मक्षू कनायाः॑ सख्यं नवी॑यो राधो न रेतं ऋतमित्तु॑रण्यन्।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघा॑याः पय॑ उस्रिया॑याः।।११।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु शीघ्रगामी दीप्तियों के साथ नवीन-२ परमाणुओं को सिद्ध वा संसिक्त करते हुए अपने वीजरूप प्राण तत्त्व के द्वारा प्रेरित होते हैं। {सबर्दुघा = सर्वान् कामान् प्रपूरिका (म.द.ऋ.भा.३.५५.१६)} वे अग्नि के परमाणु सभी प्रकार के वलों को पूर्ण करने वाली वाग् रश्मियों के पवित्र तेज से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का सव ओर से यजन करते हैं।

(१२) पश्वा यत्पश्चा वियु॑ता बुधन्तेति॑ ब्रवीति वक्तरी ररा॑णः।
वसोर्वसुत्वा कारवो॑ऽनेहा विश्व॑ विवेष्टि द्रवि॑णमुप क्षु।।१२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {कारुः स्तोतृनाम (निघं.३.१६), कारुरहमस्मि कर्ता स्तोमानाम् (नि.६.६)} विभिन्न अदृश्य परमाणु अग्नि के संयोगोपरान्त प्रकाशित व सक्रिय होते हैं। अग्नितत्त्व किंवा विभिन्न किरण समूहों का उत्पादक प्राणतत्त्व उन्हें प्रकाशित करता है। यह प्रक्रिया प्राणों द्वारा छन्द रश्मियों को प्रथम प्रकाशित करने के पश्चात् हो पाती है। इस प्रकाशन प्रक्रिया में सवका वासक अहिंस्य इन्द्र तत्त्व अपने वसाने रूप गुण के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थ समूह को शीघ्रता से व्याप्त कर लेता है।

(१३) तदिन्न्व॑स्य परिषद्वा॑नो अग्मन्पुरू सद॑न्तो नार्षदं बि॑भित्सन्।
वि शुष्ण॑स्य संग्र॑थितमनर्वा विदत्पु॑रुप्रजातस्य गुहा यत्।।१३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से प्राण तत्त्व ही व्यापक उत्पन्न शोषक वलों के भीतर सम्यग् ग्रथित वल को प्रकाशित वा सक्रिय करता है। सर्वत्र विद्यमान वह प्राण तत्त्व नाना स्थानों पर विद्यमान मरुद् रश्मियों की आश्रयभूत छन्द रश्मियों का भेदन करता है। वह प्राण तत्त्व उन मन्दगामी छन्द वा मरुदादि रश्मियों को व्याप्त करता तथा उन्हें तीव्रगामी वनाता है।

(१४) भर्गो॑ ह नामोत यस्य॑ देवाः स्व१र्ण ये त्रि॑षधस्थे नि॑षेदुः।
अग्निर्ह नामोत जातवे॑दाः श्रुधी नो॑ होतर्ऋतस्य होताध्रुक्।।१४।।

इसका छन्द पादनिचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीनों लोकों में विद्यमान प्रकाशित पदार्थों में प्राण रश्मियों के स्थित होने के कारण जो तेज और पराक्रम युक्त अग्नि विद्यमान होता है, वही 'जातवेदा' कहलाता है। वह अग्नि होतारूप होकर संयोगादि प्रक्रियाओं को सदैव गतिशील रखता है।

(१५) उत त्या मे रौद्रा॑वर्चिमन्ता नासत्या॑विन्द्र गूर्तये यज॑ध्यै।
मनुष्वद् वृक्तब॑र्हिषे ररा॑णा मन्दू हितप्र॑यसा विक्षु यज्यू॑।।१५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीव्र इन्द्र तत्त्व से उत्पन्न चमकते हुए पार्थिव और जलीय तत्त्व नित्य रूप प्राणापान रश्मियों के द्वारा संयोगादि प्रक्रियाओं के लिए विशेष उद्यमशील होते हैं। वे सूत्रात्मा वायु रश्मियों से युक्त होकर संयोगादि प्रक्रियाओं में अपनी रश्मियों का आदान-प्रदान करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारक संयोजक बलों से युक्त करके परस्पर संगत करते हैं।

(१६) अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु।।१६।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से {वेधाः = इन्द्रो वै वेधाः (ऐ.६.१०)। वन्दते अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४)} यह दीप्तिमान् इन्द्र तत्त्व सबको दीप्तियुक्त करता हुआ सबका तारक सेतुरूप होकर सूत्रात्मा वायु के द्वारा जब प्रकाशित होता है, उस समय वह आकाश तत्त्व को तारता हुआ निर्माणाधीन विभिन्न लोकों को कम्पाता है। वह अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा लघु गति वाले अग्नि को चक्रों की भाँति घुमाता हुआ तीव्र गति से कम्पाता है।

(१७) स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः।।१७।।

इसका छन्द पादनिचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से प्रकाशित व अप्रकाशित दोनों लोकों को बांधने वाला सबको संगत करने तथा विभाग करके वहन करने वाला अग्नि तत्त्व अन्य समृद्ध वायु रश्मियों को प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ आश्रयभूत प्रकाशयुक्त छन्द रश्मिसमूहों के साथ प्राणापान, प्राणोदान किंवा प्राण-व्यान जैसी नियन्त्रक रश्मियों से सम्पृक्त रहता है।

(१८) तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियन्धा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन्।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास।।१८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण अग्नि के परमाणुओं को बांधता हुआ आकाश व द्युलोक में प्रकाशमान तथा गतिशील होता हुआ नाना प्रकाशादि गुणों व धारण आदि कर्मों को धारण करता है। वह नाभानेदिष्ठ गति, व्याप्ति व आकर्षण बलों से युक्त होकर शब्द करता हुआ उत्कृष्टता से सबको बांधने वाला अनेकविध क्रियाशील होता है।

(१९) इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना।।१९।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियां आकाश में व्याप्त रहकर विभिन्न तेजस्वी परमाणुओं को धारण करती हैं। विभिन्न प्राथमिक प्राण मरुद् रश्मियां इस अग्नि तत्त्व से पूर्व उत्पन्न होकर नाना छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हुई आकाश तत्त्व को पूर्ण करती हैं अर्थात् उसे व्याप्त करती हैं।

(२०) अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता।।२०।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {शिशुः = अयं वाव शिशुर्योऽयं मध्यमः प्राणः (श.१४.५.२.२)} जब सब लोकों में विद्यमान सक्रियतापूर्वक दो प्रकार की गति करते हुए प्रकाशयुक्त अग्नि के परमाणु किरणों के रूप में क्षीण होने लगते हैं। उस समय उत्कृष्ट बलयुक्त व्यान प्राण रश्मियां पंक्तिबद्ध होकर शीघ्र ही अग्नि के परमाणुओं की तीव्रता व

मात्रा को क्षीण करने वाले असुरादि तत्त्वों को नष्ट वा दूर करके द्युलोकों के केन्द्रीय भागों में स्थिरतापूर्वक निरन्तर अग्नि तत्त्व को उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। इसी प्रकार व्यान रश्मियां अग्नि के परमाणुओं को असुरादि रश्मियों के द्वारा भी क्षीण होने से बचाती हैं।

(२१) अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः॥२१॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {श्वान्तः = श्रमु तपसि खेदे च (दिवा.) धातोः क्तः वर्ण व्यत्ययेन रेफस्य वकारः (वै.को. - आ. राजवीर शास्त्री)} जब किसी अग्नि के परमाणुओं की शक्ति व दीप्ति क्षीण होने लगती है, उस समय उसके अन्दर विद्यमान वाग् रश्मियां दीप्ति, कान्ति और गति को निकटता से उत्पन्न करने वाले प्राणापानव्यान और सूत्रात्मा वायु का अनुगमन करती हैं। वे प्राणादि रश्मियां अच्छी प्रकार गमन करती हुई उन वाग् रश्मियों को गति प्रदान करके मन्द दीप्त अग्नि के परमाणुओं को उत्तमता से समृद्ध करती हैं।

(२२) अध त्वमिन्द्र विद्ध्य१स्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ॥२२॥

इसका छन्द पादनिचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियों का पालन करता हुआ इन्द्र तत्त्व वज्ररूप रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होता है। वह परमाणु आदि पदार्थों के विशाल समूहों तथा कमनीय तेजस्वी रश्मियों की रक्षा करता हुआ संयोगादि कर्मों को निर्विघ्न बनाता है।

(२३) अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान्॥२३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित इन्द्र और अग्नि तत्त्व विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संगमन में निरन्तर गतिशील होते जाते हैं। वे दोनों देदीप्यमान होते हुए नाना प्रकार के कर्म करने में समर्थ होते हैं। इन दोनों को ही सर्वाधिक कमनीय बलों से युक्त सूत्रात्मा वायु सब ओर से व्याप्त करता हुआ अपनी सूक्ष्म रश्मियों से सींचता है।

(२४) अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ॥२४॥

इसका छन्द आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ चमकते हुए बाहुरूप तीक्ष्ण बलों से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे परमाणु परस्पर एक-दूसरे को नियन्त्रित करने की शक्ति से पुष्ट होते हुए नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर सहजता से संयुक्त होने लगते हैं। वे विभिन्न गतिशील व्यापक, तेजस्विनी रश्मियों को उत्पन्न करते हुए नाना प्रकार की संयोग-वियोग क्रियाओं में प्रवृत्त होते हैं।

(२५) युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान्।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै॥२५॥

इसका छन्द पादनिचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उत्तम वाग् रश्मियां विभिन्न योषा और वृषा रूप परमाणु आदि पदार्थों में परस्पर संयुक्त होने के लिए पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियों से युक्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के वज्ररूप बलों को प्राप्त करती हैं। सभी द्यु आदि लोकों में इन प्रक्रियाओं को पूर्ण करने के लिए {सूनृता = उषोनाम (निघं.१.८), अन्ननाम (निघं.२.७), वाङ्नाम (निघं.१.११)} उत्तम दीप्ति युक्त संयोज्य वाग् रश्मियां विशेषतः उत्पन्न होती हैं।

(२६) स गृंणानो अद्भिर्देववानितिं सुबन्धुर्नर्मसा सूक्तैः।
वर्धदुक्थैर्वचोंभिरा हि नूनं व्यध्वैंति पयंस उस्रियायाः।।२६।।

इसका छन्द आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापानादि रश्मियों के साथ प्रकाशित एवं कमनीय होता हुआ सबको उत्तमता से बांधने वाला सूत्रात्मा वायु वज्ररूप छन्द रश्मिसमूहों के द्वारा प्रकाशित और समृद्ध होता जाता है। वे चमकते हुए छन्द रश्मिसमूह एकाक्षरा वाग् रश्मियों के द्वारा सब ओर से समृद्ध होकर अन्तरिक्षस्थ विभिन्न किरणों के सूक्ष्मांश को आकाश मार्गों में स्रवित करते हैं। वे सूक्ष्मांश विभिन्न रश्मियों को परस्पर एक-दूसरे से गूंथने व सक्रिय करने में उपयोगी होते हैं।

(२७) त ऊ षु णों महो यंजत्रा भूत देंवास ऊतयें सजोषाः।
ये वाजाँ अनंयता वियन्तो ये स्था निंचेतारो अमूराः।।२७।।

इसका छन्द आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अमूरः = अमूढाः (नि.६.८)} यजनशील विभिन्न देव परमाणु व्यापक रक्षणादि गुणों से सम्पन्न होने के लिए पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करते हैं। इस कारण वे विभिन्न बल एवं छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर भ्रान्ति रहित मार्गों पर गमन करते हुए अच्छी प्रकार संघनित होते हैं।

तदुपरान्त पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ मानव ऋषि प्राण से ऋ.१०.६२ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) ये यज्ञेन दक्षिंणया समंक्ता इन्द्रंस्य सख्यमंमृतत्वमांनश।
तेभ्यों भद्रमंङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिं गृभ्णीत मानवं सुंमेधसः।।१।।

इसका देवता विश्वेदेवा अङ्गिरसो वा एवं छन्द विराड्जगती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राथमिक प्राण एवं सूत्रात्मा वायु विशेष प्रकाशित व विस्तृत होते हुए तीव्रता से संयोग-वियोग की क्रियाएं दर्शाते हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे सुसंगत प्राणादि रश्मियां अनेक बलकारी छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर इन्द्र तत्त्व को निरन्तर प्रकाशित करती हैं। सूत्रात्मा वायु रश्मियां उनको अनुकूलता से संगत करती हुई पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ मानव ऋषि प्राण को आकर्षित करके विभिन्न बन्धनों को दृढ करती हैं।

(२) य उदाजंन्पितरों गोमयं वस्वृतेनाभिंन्दन्परिवत्सरे वलम्।
दीर्घायुत्वमंङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिं गृभ्णीत मानवं सुंमेधसः।।२।।

इसका देवता, छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। उसके अन्य प्रभाव से {परिवत्सरः = सूर्यः परिवत्सरः (तां.१७.१३.१७)। वलम् = मेघनाम (निघं.१.१०), वक्रगतिम् (म.द.ऋ.भा.४.५०.५), बलयुक्तम् (म.द.ऋ.भा.१.६२.४)} वे पालक प्राण रश्मियां छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त करती हैं। वे सूर्यलोकों में अपने नाना प्रकार के संघातों के द्वारा विभिन्न मेघरूप पदार्थों की कुटिल एवं अवांछित गतियों का भेदन करती हैं। सूत्रात्मा वायु रश्मियां पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण रश्मियों के साथ अच्छी प्रकार संयुक्त होकर विभिन्न संघातों को दीर्घायु प्रदान करती हैं।

(३) य ऋतेन सूर्यमारोंहयन्दिव्यप्रंथयन्पृथिवीं मातरं वि।
सुप्रजास्त्वमंङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिं गृभ्णीत मानवं सुंमेधसः।।३।।

उपर्युक्त देवता एवं पादनिचृज्जगती छन्दस्क होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण परन्तु कुछ न्यून तेजस्वी होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां विद्युत् के मेल के द्वारा सूर्यादि लोकों

को आकाश में ऊपर उठाती हुई स्थापित करती हैं, वे ही रश्मियां अन्तरिक्ष और पृथिवी आदि लोकों को फैलाती हुई नाना प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करती हैं। इन कार्यों में वे प्राण रश्मियां पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण रश्मियों के साथ संगत रहती हैं।

(४) अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।।४।।

उपर्युक्त देवता एवं निचृज्जगती छन्दस्क होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् होता है। इसके अन्य प्रभाव से {वल्गुः = वाङ्नाम (निघं.१.११), वलते संवृणोतीति वल्गुः (उ.को.१.१९)} विभिन्न देव परमाणुओं के पालक ऋषि प्राण विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के निकट विद्यमान पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ आवरक सूक्ष्म वाग् रश्मियों को प्रकाशित व गतिशील करते हैं। सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियां उन्हें और भी गति प्रदान करके प्राणापान के संयुक्त रूप किंवा विद्युत् के साथ संयुक्त करके अपने निकटतर लाकर विभिन्न संघातों को दृढ़ता प्रदान करती हैं।

(५) विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः। ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे।।५।।

उपर्युक्त देवता एवं अनुष्टुप् छन्दस्क होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न प्राण एवं सूत्रात्मा वायु पूर्वोत्पन्न सभी छन्द रश्मियों को अधिक सक्रिय और सशक्त वनाते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विविध रूपों वाली विभिन्न ऋषि प्राण रश्मियां गम्भीर क्रियाओं से युक्त अग्नि तत्त्व से नाना किरणों को सव ओर से उत्पन्न करती हैं।

(६) ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि। नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते।।६।।

उपर्युक्त देवता एवं बृहती-छन्दस्क होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु एवं प्राण रश्मियां व्यापक स्तर पर पदार्थ को सम्पीडित और संघनित करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष लोक में अग्नि तत्त्व से विविध रूपों वाली किरणें उत्पन्न होती हैं, जिनमें से कुछ किरणें नौ प्रकार की तो कुछ किरणें दस प्रकार की गतियों से युक्त अति तीव्रगामी होकर विभिन्न प्रकाशित तरंगों के साथ संगत होती हुई गमन करती हैं।

(७) इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम्।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत।।७।।

विश्वेदेवादेवताक एवं विराट् पंक्ति-छन्दस्क होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी प्राण रश्मियां और उनसे प्रेरित विभिन्न पदार्थ विस्तृत क्षेत्र में संयोगादि कर्मों से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {वाघतः = वाघतः वोढारो मेधाविनो वा (नि.११.१६)} सवके वाहक सूत्रात्मा वायु के साथ विशेषतः संयुक्त होकर इन्द्र तत्त्व अनेक आशुगामी किरण समूहों को उत्पन्न करता है। वह इन्द्र तत्त्व अनेक व्यापक क्रियाओं से युक्त होकर नाना परमाणु आदि पदार्थों को विभिन्न प्राणादि रश्मियों में धारण करता है एवं उन्हें प्रकाश आदि गुणों से युक्त करता है।

(८) प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु। यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते।।८।।

सावर्णेर्दानस्तुतिदेवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से एक ही वर्ण वाले पदार्थ की अवस्था से अनेक तीक्ष्ण तेजस्वी वर्ण व वल से युक्त रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से अनेकों वल और वेगयुक्त आशुगामी किरणें त्वरित गति से उत्पन्न होती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां परस्पर संगत होती हुई नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को प्रकृष्टता से उत्पन्न करती हुई अन्तरिक्ष में वड़े वेग के साथ वढ़ाती हैं।

(९) न तमश्नोति कश्चन दिवइव सान्वारभम्। सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे।।९।।

इसका देवता, छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों के केन्द्ररूपी श्रेष्ठ भाग के समान कोई भी क्रिया आरम्भ होते ही सर्वत्र व्याप्त नहीं होती है। समान प्रकार की आकर्षक शक्तियां सूत्रात्मा वायु की गति के तुल्य विशेषरूप से फैलती जाती हैं। यहाँ तात्पर्य यही है कि सर्ग प्रक्रियाएं सहसा सर्वत्र व्याप्त नहीं होती हैं वल्कि वे इस छन्द रश्मि के सहयोग से शनैः-२ विस्तृत होती हैं।

(१०) उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा। यदुस्तुर्वश्च मामहे।।१०।।

उपर्युक्त देवता एवं गायत्री छन्दस्क होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु होता है। इसके अन्य अन्य प्रभाव से {परीणसा = बहुनाम (निघं.३.१)} श्रेष्ठ रूप से प्रेरित विभिन्न छन्दादि रश्मियां विभिन्न क्रियाशील एवं तीव्रगामी परमाणु आदि पदार्थों के साथ संयुक्त होकर उन्हें और अधिक क्रियाशील वनाती हैं।

(११) सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम्।।११।।

उपर्युक्त-देवताक एवं भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दस्क होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण एवं वलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से असंख्य रश्मियों के देने वाले सूर्यादि लोक, जिनके अन्दर विभिन्न प्रकार के पदार्थ संघातरूप में विद्यमान होते हैं तथा जिनके अन्दर अनेक समूहों में छन्दादि पदार्थ प्रवाहित होते हैं, वे ऐसे सूर्यादि-लोक निर्वाध रूप से प्रकाशित होते रहते हैं। वे सूर्यादि लोक समान वर्ण और वल वाले प्रतीत होते हुए अनेक प्रकार की क्रियाओं से युक्त होते हैं। उनके अन्दर **विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियां अविराम व्याप्त और क्रियाशील रहती हैं तथा अनेक प्रकार के तत्त्वों की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है।**

उपर्युक्त दोनों सूक्त रूप रश्मिसमूह सभी प्रकार के देव पदार्थों को सक्रिय करते तथा नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राणरूप रश्मियों से उत्पन्न होते हैं। नाभानेदिष्ठ रश्मियों से उत्पन्न होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में ही २७ विभिन्न त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का एक समूह तथा ४ जगती, ३ अनुष्टुप्, १ वृहती, १ गायत्री एवं १ त्रिष्टुप् कुल ११ छन्द रश्मियों का दूसरा समूह उत्पन्न होता है। इस समय विभिन्न तारों के अन्दर सभी पदार्थ अत्यन्त सक्रिय हो उठते हैं। विभिन्न कणों और तरंगों की ऊर्जा में भारी वृद्धि होती है। तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन की क्रिया तीव्रतर होने लगती है। सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु रश्मियां विभिन्न क्वान्टाज़् को नियमित और नियन्त्रित करती हैं। तारे आदि लोकों में कुछ क्षेत्रों का ताप कम होने से वे कृष्णवर्णी होते हैं, पुनरपि उनके अन्दर विभिन्न प्रकार की विद्युत् चुम्वकीय धाराएं विद्यमान रहती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां विभिन्न कणों और क्वान्टाज़् को सिंचित करके उन्हें वल प्रदान करती रहती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां विद्युत् एवं गुरुत्वाकर्षण वल को उत्पन्न करके आकाश तत्त्व को संकुचित करती हैं, जिससे विभिन्न पदार्थों का संयोग और संघनन होता है। तारों के अन्दर भी सूक्ष्मांश में विद्यमान डार्क एनर्जी से गर्म विद्युत् तरंगों का संघर्ष चलता रहता है और उनके अन्दर गम्भीर ध्वनियां उत्पन्न होती रहती हैं। अग्नि की ज्वलनशीलता के समय विभिन्न प्रकार के कणों का संयोग-वियोग होकर ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। विद्युत् चुम्वकीय तरंगों की गतियां अर्थात् मार्ग अनेक प्रकार के होते हैं। वे तरंगें विभिन्न कणों से संयोग करके उनकी ऊर्जा एवं गति में वृद्धि करती हैं। **प्राण और छन्द रश्मियां मिलकर ही क्वान्टाज़् को उत्पन्न करती हैं। विभिन्न संयोगादि क्रियाओं में सूत्रात्मा वायु रश्मियां आकाश तत्त्व तक को प्रभावित करके सभी कणों और क्वान्टाज़् को नियन्त्रित करती हैं।** विभिन्न सूर्यादि लोकों की घूर्णन गतियों में भी **सूत्रात्मा वायु** आदि रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है। **आकाश तत्त्व के प्रत्येक कर्म में सूत्रात्मा वायु रश्मियों की भूमिका होती है।** विद्युत् चुम्वकीय तरंगों की ऊर्जा को निरन्तरता प्रदान करने तथा तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को डार्क एनर्जी के दुष्प्रभाव से वचाने में व्यान रश्मियों की महती भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त विद्युत् चुम्वकीय तरंगों की ऊर्जा को स्थायित्व प्रदान करने

में प्राणापान एवं सूत्रात्मा रश्मियों की भी भूमिका होती है। **सूत्रात्मा वायु** की सूक्ष्म रश्मियां सभी प्रकार की रश्मियों में विद्यमान होती हैं। विभिन्न कणों व तरंगों के संयोग-वियोग में त्रिष्टुप् रश्मियों के साथ-२ कुछ ऋषि रूप सूक्ष्म प्राण रश्मियों की भी भूमिका होती है। **विभिन्न छन्द रश्मियों के कुछ सूक्ष्म अंश अन्तरिक्ष में स्रवित होकर सभी छन्द रश्मियों को परस्पर सम्बद्ध रखने में सहयोग करते हैं।** विभिन्न तारों के अन्दर अनेक मेघरूप पदार्थ समूह विद्यमान व गतिशील होते हैं, जो परस्पर संयुक्त और वियुक्त भी होते रहते हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां विद्युत् के साथ संयुक्त होकर विभिन्न लोकों को दूर-२ हटाती हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में से कुछ तरंगें ६ प्रकार की, तो कुछ तरंगें १० प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं। **विद्युत् सूत्रात्मा वायु के साथ मिलकर अनेक प्रकार की तरंगों को उत्पन्न करती है।** सृष्टि के अन्दर, विशेषकर तारों के अन्दर होने वाली विभिन्न क्रियाएं अकस्मात् सम्पूर्ण लोक में व्याप्त न होकर धीरे-२ विस्तृत होती हैं। विभिन्न तारे सम्पूर्ण क्षेत्र में एक ही रंग और तापमान वाले प्रतीत होते हुए भी विभिन्न प्रकार के रंग और तापमान वाले क्षेत्रों से युक्त होते हैं, ऐसा उनके अन्दर होने वाली विभिन्न छन्द व प्राणादि रश्मियों की क्रियाओं के कारण होता है।।

ॐ इति २२.८ समाप्तः ॐ

ॐ अथ २२.१ प्रारभ्यते ॐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. नाभानेदिष्ठं शंसति।।
नाभानेदिष्ठं वै मानवं ब्रह्मचर्यं वसन्तं भ्रातरो निरभजन् सोऽब्रवीदेत्य किं मह्यमभाक्तेत्येतमेव निष्ठावमववदितारमित्यब्रुवंस्तस्माद्धाप्येतर्हि पितरं पुत्रा निष्ठावोऽववदितेत्येवाचक्षते।।
स पितरमेत्याब्रवीत्,-त्वां ह वाव मह्यं तताभाक्षुरिति तं पिताऽब्रवीन्मा पुत्रक तदादृथाः,-अङ्गिरसो वा इमे स्वर्गाय लोकाय सत्रमासते, ते षष्ठं षष्ठमेवाहरागत्य मुह्यन्ति, तानेते सूक्ते षष्ठेऽहनि शंसय; तेषां यत्सहस्रं सत्रपरिवेषणं, तत्ते स्वर्यन्तो दास्यन्तीति; तथेति।।

{भ्राता मध्यमोऽस्त्यशनः। भ्राता भरतेर्हरतिकर्मणः। हरते भागं, भर्तव्यो भवतीति वा। तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठोऽस्यायमग्निः (नि.४.२६), भ्राजते दीप्यतेऽसौ भ्राता (उ.को.२.६७)}

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति की चर्चा करने के पश्चात् महर्षि नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण के विषय में विस्तार से चर्चा करते हैं।।

नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण, जिसके विषय में हम संक्षिप्त रूप से पूर्व में चर्चा कर चुके हैं, के विषय में विशेष चर्चा प्रारम्भ करते हैं। 'घृम्' रश्मियों से युक्त प्राण रश्मियों से उत्पन्न होकर यह प्राण रश्मि, ब्रह्मचर्य में वास करती है {ब्रह्म = प्राणापानो ब्रह्म (गो.पू.२.११), ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम (तै.ब्रा.३.६.५.५), तद् इदमन्तरिक्षम् (जै.उ.२.३.३.६)} अर्थात् प्राणापान रश्मियों से युक्त आकाश तत्त्व में 'ओम्' इस सूक्ष्मतम छन्द रश्मि के साथ संयुक्त होकर विचरण करती है। उस समय यह रश्मि सूक्ष्म विद्युत् के रूप में विद्यमान होती है, तभी भ्राता नामक पदार्थ अर्थात् कामनाशील वलों और दीप्ति से युक्त मध्य-स्थानीय वायु अर्थात् अन्तरिक्ष में व्याप्त त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां {मध्यम् = त्रिष्टुप्छन्द इन्द्रो देवता मध्यम् (श.१०.३.२.५)} एवं 'घृम्' रश्मियों के साथ सम्वद्ध हुआ अग्नि इन दोनों भ्रातृ-तत्त्वों के द्वारा वह नाभानेदिष्ठ सूक्ष्म प्राण दूर हटाया अर्थात् प्रतिकर्षित किया जाता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जव नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ ही सदैव संयुक्त रहता है, तव वे त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां ही उसे कैसे पृथक् वा प्रतिकर्षित कर सकती हैं? इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि जव त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां 'घृम्' रश्मियों से संयुक्त अग्नि तत्त्व किंवा प्राण रश्मियों के संपर्क में आती हैं, उस समय नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से कुछ पृथक् रहती हुई आकाश में विचरण करने लगती हैं। उस परिस्थिति में वे त्रिष्टुप् आदि रश्मियां उन नाभानेदिष्ठ रश्मियों को अपने वलादि गुणों से निराकृत कर देती हैं। यहाँ महर्षि ने संवाद की शैली में कहा है, जिसका आशय निम्न प्रकार है- वे नाभानेदिष्ठ ऋषि रश्मियां त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियों से वल प्राप्त करने के लिए उनकी ओर आकर्षित होने का प्रयास करने लगती हैं, तव वे त्रिष्टुवादि रश्मियां उन नाभानेदिष्ठ रश्मियों को 'निष्ठाव' एवं 'अववदिता' नामक पितर की ओर प्रेषित करती है। यहाँ 'निष्ठाव' और 'अववदिता' पितर उन्हीं प्राण तत्त्वों के नाम हैं, जिनसे नाभानेदिष्ठ एवं त्रिष्टुवादि रश्मियों की उत्पत्ति होती है। जैसा कि हम पूर्वखण्ड में लिख चुके हैं कि 'घृम्' रश्मियों से युक्त प्राण रश्मियां ही इन्हें उत्पन्न करती हैं। ये रश्मियां अपने कार्यों में नितराम् दृढ़ होकर असुरादि रश्मियों से सर्वथा अप्रभावित रहते हुए डटी रहती हैं। इस कारण इन्हीं को 'निष्ठाव' कहा गया है। ये रश्मियां ही विभिन्न रश्मियों

को निगृहीत करके गति प्रदान करती हैं, साथ ही ये उनको सक्रिय एवं प्रकाशित भी करती हैं, इस कारण ही इन्हें अववदिता भी कहा गया है। {अववदिता = (अववादः = सहारा, आश्रय - आप्टेकोष)} ये रश्मियां उन रश्मियों को आश्रय भी प्रदान करती हैं। यहाँ हमारा यह भी मत है कि ऐसी स्थिति में इन प्राण रश्मियों में मनस्तत्त्व का भाग विशेष होता है, इसी कारण ये रश्मियां अपनी परिव्याप्ति से सर्वत्र गमनशील रहती हैं अथवा सर्वत्र विद्यमान रहती हैं। इस सृष्टि में सभी प्राणादि रश्मियां अपने पितररूप मनस्तत्त्व एवं 'घृम्' रश्मियों से युक्त प्राण नामक प्राथमिक प्राण रश्मियों की ओर उन्मुख रहती हैं और वे ही मनस्तत्त्व के गुण व प्रभावों को अति सूक्ष्म स्तर पर व्यक्त करने का साधन होती हैं।।+।।

इस कण्डिका में भी नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण रश्मियों और इनकी पितररूप प्राण रश्मियों के मध्य संवाद दर्शाया गया है, जिसका हिन्दी अनुवाद करते हुए डॉ. सुधाकर मालवीय ने लिखा है-

"वह (नाभानेदिष्ठ) पिता के पास आकर वोले - हे तात! मेरे भाइयों ने सभी कुछ सम्पत्ति का भाग वांट लिया है और मेरा भाग आपके पास है, उसे दे देवें। उससे पिता (मनु) वोले - हे वालक! भाइयों के वचन का आदर मत करो {मेरे पास तुम्हारा भाग नहीं है, तुम्हारे भाइयों के द्वारा सभी ले लिया गया है। तुम्हारे लिए धन प्राप्त्यर्थ में एक उपाय वताता हूँ-} 'ये अङ्गिरा नामक महर्षि {समीपवर्ती देश में} स्वर्ग लोक के लिए सत्र का अनुष्ठान कर रहे हैं। वे पुनः-२ सत्र का उपक्रम करके {उस-२ समय प्राप्त} उस-२ षष्ठ अहः में आकर {मन्त्रवाहुल्य के कारण} भ्रान्त हो जाते हैं {अतः सत्र का उपसंहार नहीं कर पाते}। उन महर्षियों को षष्ठ अहः में तुम जाकर इन दो {इदमित्था' और 'ये यज्ञेन'} सूक्त का शंसन कराओ। उन {ऋषियों} की जो सहस्र संख्याक सत्र की दक्षिणा है, उसे {सत्रावसान के वाद} स्वर्गलोक को प्राप्त करते हुए वे तुम्हें {अवशिष्ट धन} दे देंगे। {उसने कहा-} ठीक है।।"

इस प्रकार का संवाद प्रस्तुत करके कठिन विषय को सरलता से समझाने की शैली अनेक ऋषियों की रही है। इसी शैली का यह एक उत्तम उदाहरण है, जिसका वास्तविक रहस्य निम्नानुसार है-

पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण रश्मियां, जो त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों एवं 'घृम्' रश्मिमिश्रित अग्नि तत्त्व द्वारा दूर हटायी गई थीं, वे अपनी उत्पादिका 'घृम्' रश्मियों एवं मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण रश्मियों की ओर उन्मुख होती हैं। इसके प्रभाव से नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियां अपनी प्रतिकर्षक त्रिष्टुवादि रश्मियों के प्रतिकर्षण वल की उपेक्षा वा तिरस्कार करने में समर्थ होने लगती हैं। इसके साथ ही वे नाभानेदिष्ठ रश्मियां विभिन्न द्युलोकों की निर्माण प्रक्रिया में उत्पन्न हो रही विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने वाली प्राण एवं सूत्रात्मा वायु की ओर उन्मुख हो जाती हैं। इस षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में जो छन्द रश्मियां उत्पन्न हो रही होती हैं, वे अनेक देवता एवं अनेक ऋषि प्राणों से उत्पन्न होने तथा संख्या में वहुत अधिक होने के कारण प्रायः भ्रान्त एवं अव्यवस्थित हो जाती हैं। उनमें परस्पर कई वार असंगति उत्पन्न हो जाती है, उस स्थिति में नाभानेदिष्ठ, देवदत्त प्राण एवं उसके उत्कर्षकाल में उत्पन्न होने वाली विभिन्न छन्द रश्मियों की ओर प्रवाहित होता है। उसके पश्चात् ही पूर्व खण्ड की अन्तिम कण्डिका में वर्णित-

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन्।।१।।

इत्यादि ऋ.१०.६१. सूक्त एवं

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।।१।।

इत्यादि ऋ.१०.६२ सूक्त रूप छन्द रश्मिसमूहों की उत्पत्ति इसी नाभानेदिष्ठ प्राण से होती है। इस विषय को अगली कण्डिका में विशेषतया प्रस्तुत किया है। यहाँ इनके संकेत का तात्पर्य यह है कि इन सूक्त रूप रश्मिसमूहों को उत्पन्न करने की प्रेरणा नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण की पूर्वोक्त पितररूप रश्मियों से ही मिलती है। इन रश्मियों के कारण ही असंख्य प्रकार की सृजन व संयोग प्रक्रियाएं सव ओर व्याप्त होती हुई द्युलोकों के केन्द्रीय भाग रूपी स्वर्गलोक को उत्पन्न करने में सहयोग करती हैं।।

विशेष- इसका वैज्ञानिक भाष्यसार खण्ड के अन्त में एक साथ किया जाएगा।

२. तानुपैत्प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधस इति; तमब्रुवन्, किंकामो वदसीतीदमेव वः षष्ठमहः प्रज्ञापयानीत्यब्रवीदथ यद्वा, एतत्सहस्रं सत्रपरिवेषणं, तन्मे स्वर्यन्तो दत्तेति; तथेति; तानेते सूक्ते षष्ठेऽहन्यशंसयत्,-ततो वै ते प्र यज्ञमजानन् प्र स्वर्गं लोकम्।।
तद्यदेते सूक्ते षष्ठेऽहनि शंसति, यज्ञस्य प्रज्ञात्यै, स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै।।
तं स्वर्यन्तोऽब्रुवन्नेतत् ते ब्राह्मण सहस्रमिति तदेनं समाकुर्वाणं पुरुषः कृष्णशवास्युत्तरत उपोत्थायाब्रवीन्मम वा इदं मम वै वास्तुहमिति, सोऽब्रवीन्मह्यं वा इदमदुरिति, तमब्रवीत् तद्वै नौ तवैव पितरि प्रश्न इति; स पितरमैत् तं पिताऽब्रवीन्ननु ते पुत्रकादूश्रित्यदुरेव म इत्यब्रवीत् तत्तु मे पुरुषः कृष्णशवास्युत्तरत उपोदतिष्ठन्मम वा इदं मम वै वास्तुहमित्यादितेति; तं पिताऽब्रवीत तस्यैव पुत्रक तत्तु स तुभ्यं दास्यतीति; स पुनरेत्याब्रवीत्-तव ह वाव किल भगव इदमिति मे पिताऽऽहेति सोऽब्रवीत्-तदहं तुभ्यमेव ददामि य एव सत्यमवादीरिति।।
तस्मादेवंविदुषा सत्यमेव वदितव्यम्।।
स एष सहस्रसनिर्मन्त्रो यन्नाभानेदिष्ठः।।
उपैनं सहस्रं नमति प्र षष्ठेनाह्ना स्वर्गं लोकं जानाति य एवं वेद।।६।।

व्याख्यानम्- नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा पूर्वोक्त दोनों सूक्तरूप छन्द रश्मिसमूहों की उत्पत्ति की प्रक्रिया को बतलाते हुए कहते हैं कि सर्वप्रथम नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण पूर्वोक्त देवदत्त आदि अनेक ऋषि प्राण रश्मियों की ओर अग्रसर होते ही

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः।।१।। (ऋ.१०.६२.१)

के भाग "प्रति गृभ्णीत मानवं सुऽमेधसः" की उत्पत्ति सर्वप्रथम करता है। इसके प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां उन नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियों को अपने साथ अच्छी प्रकार संगत करने लगती हैं। इसके साथ ही देवदत्त प्राण एवं उसके उत्कर्ष काल में सभी सक्रिय ऋषि प्राण रश्मियों के साथ भी नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियों का आकर्षण होने लगता है। इसके फलस्वरूप नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियां द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न छन्द रश्मियों की अव्यवस्था एवं असंगतता को दूर करने का प्रयत्न करती हैं। सूत्रात्मा वायु एवं देवदत्त आदि ऋषि प्राण रश्मियों के साथ नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियों का संयोग दृढ़तर और व्यापक करने के लिए ही पूर्वोक्त दोनों सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियों से होती है। इसके कारण वे सभी प्राण रश्मियां सभी प्रकार की सृजन प्रक्रियाओं को सम्यग् रूप से सम्पादित करते हुए द्युलोकों के केन्द्रीय भागों का निर्माण सुगमता से करने लगती हैं। इन दोनों ही सूक्त रूप रश्मिसमूहों के उत्पन्न होने पर ही देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न होने वाली सभी छन्दादि रश्मियां पूर्ण संगति के साथ प्रकाशित होती हुई नाना पदार्थों को उत्पन्न करने में समर्थ हो पाती हैं और फिर इसके कारण ही द्युलोकों के केन्द्रीय भागों में विद्यमान पदार्थ अनुकूल तेज और बल को प्राप्त करके अपनी घूर्णन दिशाओं को भी निर्धारित और व्यवस्थित करने में सहयोग प्राप्त करता है, जिसके कारण कालान्तर में सम्पूर्ण द्युलोक विधिवत् निर्मित और प्रकाशित तथा गतिशील हो पाते हैं। इन सभी क्रियाओं में उपर्युक्त दोनों ही सूक्त रूप रश्मिसमूहों का विशेष योगदान है, जिसके कारण ही सम्पूर्ण पदार्थ में संसर्ग प्रक्रियाएं तीव्रता से होने लगती हैं।।+।।

जब नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण पूर्वोक्त दोनों सूक्त रूप रश्मिसमूहों को उत्पन्न कर देते हैं, तब नाभानेदिष्ठ प्राण तत्त्व का क्या होता है, इस बात को यहाँ स्पष्ट किया गया है। {सहस्रम् = बहुनाम (निघं.३.१), सहस्वत् (नि.३.१०), पशवः सहस्रम् (तां.१६.१०.१२), परमं सहस्रम् (तां.१६.६.२)} षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में जब पूर्वोक्त क्रियाएं सुसंगत और सुव्यवस्थित होने लगती हैं और नाभानेदिष्ठ प्राण रश्मियां अनेक बलवती मरुद् व छन्द रश्मियों को एकत्र करना प्रारम्भ करती हैं, तब कृष्ण-शवासी अर्थात् ऐसे ज्योतिर्मय विकिरण, जो आकर्षण शक्ति से सम्पन्न होते हैं अथवा ऐसे अप्रकाशित परमाणु, जो तीव्र आकर्षण बलों से सम्पन्न होते हैं, उन लोकों की उत्तर दिशा से आती हुई उन बलयुक्त मरुद् वा छन्द रश्मियों को अपनी ओर तीव्रता से आकर्षित करने लगते हैं। वे अनेक प्रकार के विद्युदग्नि सम्पन्न परमाणुओं को भी अपनी ओर आकृष्ट करने लगते हैं, जिसके कारण वे आकृष्ट होते हुए परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राणों के नियन्त्रण से पृथक् होकर कृष्ण-शवासी नामक रश्मियों की ओर द्युलोकों के केन्द्रीय भाग के विपरीत दिशा में चल पड़ते हैं। यहाँ डॉ. सुधाकर मालवीय ने षड्गुरुशिष्य को उद्धृत् करते हुए पाद-टिप्पणी में लिखा है- "कृष्णमित्येव मन्य इति धानंजय्य"। षड्गुरुशिष्य के वचन का आशय आचार्य सायण अथवा डॉ. मालवीय ने कुछ भी नहीं समझा। हमारी दृष्टि में षड्गुरुशिष्य के वचन से यह संकेत मिलता है कि कृष्ण-शवासी नामक रश्मियां वा परमाणु आदि पदार्थ धनंजय प्राण रश्मियों के द्वारा प्रेरित और बलवान् होते हैं। ये कृष्ण-शवासी नामक पदार्थ अतितीव्र होते हैं। इस विषय में एक अन्य ऋषि का कथन है- "ते सुवर्गं लोकं यन्तो य एषां पशव आसन् तानस्मा अददुस्तं पशुभिश्चरन्तं यज्ञवास्तौ रुद्र आऽगच्छत्..." (तै.सं. ३.१.६.५)। इस कथन से स्पष्ट होता है कि महर्षि तित्तिर ने कृष्ण-शवासी नामक पदार्थ को ही यहाँ 'रुद्र' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि यह पदार्थ अति तीक्ष्ण होता है, जो त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की भांति विशेष तीव्र बलों से युक्त होता है। रुद्र को पशुपति भी कहते हैं, जैसा कि कहा गया है- "रुद्र पशुनाम् पते" (तै.ब्रा.३.११.४.२)। इस विषय में ऋषियों का यह भी कथन है- (उदीची) वै रुद्रस्य दिक् (तै.ब्रा.१.७.८.६), एषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् (श.२.६.२.७)। इन प्रमाणों से भी यही संकेत मिलता है कि द्युलोकों के अन्दर इन रुद्ररूप कृष्ण-शवासी पदार्थों का स्थान उत्तर दिशा में ही होता है। इस रुद्र पदार्थ के द्वारा आकर्षित परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ द्युलोक के केन्द्र की ओर स्थित नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण और उत्तर दिशा से आते हुए रुद्ररूप कृष्ण-शवासी दोनों की ओर दोलायमान होने लगते हैं। उसके पश्चात् नाभानेदिष्ठ ऋषि के पितृरूप मनस्तत्त्व एवं 'घृमु' रश्मियों से सम्पृक्त प्राण रश्मियों की प्रेरणा से वह दोलायमान पदार्थ कृष्ण-शवासी पदार्थ के नियन्त्रण में आ जाता है। यहाँ महर्षि ने उस दोलायमान पदार्थ को 'वास्तु' कहा है। इसके विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "अवीर्यम् वै वास्तु" (श.१.७.३.१७)।

इससे संकेत मिलता है कि दोलायमान होते पदार्थ अल्पतर तेज और बलयुक्त होते हैं, जिसके कारण वे नाभानेदिष्ठ और कृष्ण-शवासी दोनों की ओर झूलते रहते हैं। वे नाभानेदिष्ठ की उत्पादिका रश्मियों के बल के कारण ही कृष्ण-शवासी पदार्थ के अधिकार में आते हैं। उसके पश्चात् वे पदार्थ कृष्ण-शवासी पदार्थ से मुक्त होकर नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राणों के नियन्त्रण में आकर अन्य छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर तेजस्वी रूप धारण करते हुए द्युलोकों के केन्द्रीय भागों की ओर गमन करने लगते हैं। ऐसा क्यों होता हैं? इसके उत्तर में कहा गया है कि "सत्यवादी" होने के कारण ही नाभानेदिष्ठ कृष्ण-शवासी पदार्थ से उन पदार्थों को मुक्त कराने में सफल होता है। निघण्टुकार ने 'वद्' धातु का प्रयोग गत्यर्थ में करते हुए कहा है- "वदति गतिकर्मा" (निघं.२.१४)। उधर सत्य के विषय में ऋषियों का कथन है- प्राणा वै सत्यम् (श.१४.५.१.२३), सत्यमया उ देवाः (कौ.ब्रा.२.८)। हमारे मत में यहाँ 'सत्य' का अर्थ मन एवं 'घृमु' रश्मियों से सम्पृक्त प्राण रश्मियां ही है। जब वह दोलायमान पदार्थ कृष्ण-शवासी पदार्थ की ओर जाता है, उस समय नाभानेदिष्ठ ऋषि अपने इन पितृरूप सत्य-संज्ञक प्राण रश्मियों की ओर गमन करने लगता है और उसके पश्चात् वह सत्यमय होकर विशेष प्राणवान् अर्थात् बलयुक्त हो जाता है, जिसके कारण वह कृष्ण-शवासी पदार्थ की ओर जाते हुए परमाणु आदि पदार्थों को मुक्त करके अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम होता है।।

इस सृष्टि में विद्वान् अर्थात् सभी सत्तावान् देव पदार्थ सत्य अर्थात् मनस्तत्त्व एवं 'घृमु' रश्मियों से सम्पृक्त प्राण रश्मियों की ओर गमन करते हुए ही प्रकाशित होने का सामर्थ्य प्राप्त करते हैं अन्यथा कोई भी परमाणु आदि पदार्थ प्रकाशयुक्त अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता।।

नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा जो पूर्वोक्त सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है, उससे निर्माणाधीन द्युलोकों में अनेक छन्द व मरुद् रश्मियां वलवती और सक्रिय होकर सम्पूर्ण प्रक्रियाओं को तीव्र करके असंख्य पदार्थों की उत्पत्ति करने वाली होती हैं। द्युलोकों में षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न छन्दादि रश्मियों की उत्पत्ति के अन्तिम से कुछ पूर्व काल में जव इन दोनों सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति हो जाती है, तव असंख्य प्रकार के वल से युक्त रश्मियां वज्र सम तेजस्वी होकर असंख्य प्रकार के संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। इस कारण ही सम्पूर्ण पदार्थ देदीप्यमान सूर्यादि लोकों एवं उनके और भी अधिक तेजस्वी केन्द्रीय भागों का निर्माण करने में सक्षम होते हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में विभिन्न तारों की उत्पत्ति प्रक्रिया में पूर्वोक्त अनेक प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। उस समय उनके नाना प्रकार के वल एवं गति आदि व्यवहार कार्य करते हैं। उन सवमें अतीव विभिन्नता एवं विविधता होती है। यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होने के कारण अनेक रश्मियां एवं कण आदि पदार्थ अतीव विक्षोभ को प्राप्त होते हैं। इस भारी विक्षोभ के कारण वे कण और तरंगें अस्त-व्यस्त एवं असंगत होते रहते हैं। उनको संगत करने के लिए एक लम्बी प्रक्रिया तारों के अन्दर हुआ करती है। तारों के अन्दर **प्राण, मन** एवं **'घृमृ'** रश्मियों के संयुक्त रूप में एक सूक्ष्म प्राण रश्मि उत्पन्न होती है। वह प्राण रश्मि जव प्राणापान एवं 'ओम्' रश्मियों से युक्त होकर आकाश में अर्थात् तारों के अन्दर विद्यमान पदार्थ में विचरण करती है, तव उनको कुछ रश्मियां प्रतिकर्षित करते हुए दूर-२ हटाने लगती हैं। उसके पश्चात् यह रश्मि अपनी कारण रश्मियों की प्रेरणा से **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में उत्पन्न एवं सक्रिय विभिन्न छन्द रश्मियों की ओर प्रवाहित होती है। तदुपरान्त इस सूक्ष्म रश्मि से पूर्वखण्ड की अन्तिम कण्डिका में दर्शायी हुई ३८ छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती है। ये छन्द रश्मियां पूर्व में उत्पन्न अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त विभिन्न कणों और तरंगों को व्यवस्थित करने में सहयोग करती हैं, इस कारण तारों के अन्दर संलयनीय पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर वढ़ने लगता है परन्तु कुछ पदार्थ न्यून ऊर्जा वाला होने से संलयित नहीं हो पाता और वह तारों के उत्तर दिशा अर्थात् उत्तरी ध्रुव की ओर वहाँ विद्यमान तीव्र विद्युत् चुम्वकीय क्षेत्र की ओर वढ़ने लगता है। उधर तारे के केन्द्र का आकर्षण वल उसे अपनी ओर खींचता है। उपर्युक्त ३८ छन्द रश्मियों की कारणरूप प्राण रश्मियां तीव्र गुरुत्वाकर्षण वल का भी एक कारण वनती हैं। असंलयित पदार्थ दोनों दिशाओं में दोलायमान होने लगता है। ऐसी स्थिति में **मन, प्राण** एवं **'घृमृ'** रश्मियों के तीव्र मिश्रित संयोग से उस पदार्थ की ऊर्जा अत्यधिक वढ़ने लगती है, जो केन्द्रीय गुरुत्वाकर्षण की तीव्रता के रूप में प्रकट होती है। उस गुरुत्वाकर्षण की अति तीव्रता से दोलायमान होता हुआ पदार्थ तारों के केन्द्रीय भागों की ओर पुनः लौटकर नाभिकीय संलयन प्रक्रिया का भाग वनता है।।

❧ इति २२.९ समाप्तः ❧

अथ 22.10 प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

1. तान्येतानि सहचराणीत्याचक्षते,-नाभानेदिष्ठं वालखिल्या वृषाकपिमेवयामरुतं तानि सहैव शंसेत्।।

व्याख्यानम्- महर्षि कहते हैं कि नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण से उत्पन्न पूर्वोक्त दो सूक्तों के साथ-२ वालखिल्य, वृषाकपि एवं एवयामरुत नामक कुल चार प्रकार के सूक्तों की उत्पत्ति होती है। सर्वप्रथम हम वालखिल्य नामक सूक्तरूप रश्मिसमूहों पर विचार करते हैं-

{वालम् = वालं पर्वम् वृणोतेः (नि.11.31)। खिल्यः खण्डः (तु.म.द.ऋ.भा.६.२८.२)। वालखिल्यः = प्रगाथा वै वालखिल्याः (ऐ.६.२८), ये (प्रजापतेः) वालास्ते वाल्यखिल्याः (तै.आ.1.23.4)}

वालखिल्य उन सूक्तों का नाम है, जो संवत्सर रूपी प्रजापति अर्थात् द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया में उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियों रूपी खण्डों को परस्पर पर्व के समान जोड़कर सृजनधर्मिता से परिपूर्ण करते हैं। ये सूक्त रूप रश्मिसमूह उन छन्द रश्मियों वा रश्मिसमूहों द्वारा वरण अर्थात् आकर्षित किये जाते रहते हैं। ऋ.८.४६ से ८.५६ इन कुल 11 सूक्तों को वालखिल्य कहा गया है, ऐसा प्रायः सभी विद्वानों का मत है। अब सर्वप्रथम इनमें से प्रस्कण्वः काण्व ऋषि अर्थात् प्रकृष्टता से {प्रस्कण्वः = (कण गतौ = समीप जाना, छोटा होना। कण निमीलने = आंखे मूंदना)} विभिन्न छन्दादि रश्मियों के निकट गमन करते हुए उन्हें अपने साथ सम्बद्ध करने वाले प्राण विशेष, जो सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न होता है, से इन्द्रदेवताक ऋ.८.४६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(1) अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति।।1।।

इसका छन्द बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से पदार्थ को संघनित और संपीडित करता है। इसके अन्य प्रभाव से पदार्थों का व्यापक वासयिता विभिन्न तेजस्वी परमाणु आदि पदार्थों को अनेक प्रकार के बलों से युक्त करता हुआ अच्छी प्रकार प्रकाशित, सिद्ध और नियन्त्रित करता है।

(२) शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः।।२।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत संयोगादि प्रक्रिया का सम्पादन करता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व असंख्य वज्र रश्मियों से युक्त होकर दृढ़तापूर्वक असुरादि पदार्थों को नष्ट करता हुआ देव पदार्थों को अच्छी प्रकार पोषण के द्वारा तृप्त करता है।

(३) आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः। आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं१ सरः पृणन्ति शूर राधसे।।३।।

इसका छन्द विराड्बृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव प्रथम छन्द रश्मि की अपेक्षा अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द व मरुदादि रश्मियों से युक्त सबका सक्रिय कर्त्ता इन्द्र तत्त्व वज्र रश्मियों से युक्त होकर सोम रश्मियों को सम्पीडित करता हुआ विभिन्न परमाणुओं को सब ओर से तृप्त करता है। विभिन्न प्राण रश्मियां महान् द्युलोकों को पूर्ण करती हैं।

(४) अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत्।।४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव द्वितीय छन्द रश्मि की अपेक्षा तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सदैव रक्षणीय होता हुआ विभिन्न पदार्थों को अपने वल से तारता हुआ प्राणादि रश्मियों के मिथुनों को अवशोषित करता है। वह प्रकाशित इन्द्र तत्त्व दृढ़तापूर्वक असुरादि रश्मियों को छिन्न-भिन्न करके दूर प्रक्षिप्त कर देता है।

(५) आ नः स्तोममुपं द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृंभिः।
यं तें स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेंषु रातयः।।५।।

इसका छन्द भुरिग्वृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव प्रथम छन्द रश्मि की अपेक्षा अधिक वलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संयोजक गुणों से सम्पन्न इन्द्र तत्त्व अपनी रश्मियों को सूत्रात्मा वायु रश्मियों में प्रक्षिप्त करता हुआ विभिन्न छन्दादि रश्मियों के युग्म वनाकर आशुगामी किरणों को प्रेरित करता हुआ सव ओर फैलाता है।

(६) उग्रं न वीरं नमसोपं सेदिम विभूंतिमक्षिंतावसुम्।
उद्रीवं वज्रिन्नवतो न सिंञ्चते क्षरंन्तीन्द्र धीतयः।।६।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विविध अक्षय सामर्थ्य के द्वारा सवको वसाता हुआ तीक्ष्ण प्राण रश्मियों से अपनी वज्ररूप किरणों को युक्त करके विभिन्न छन्द रश्मियों में धारक वलों को प्रवाहित करता है।

(७) यद्धं नूनं यद्वां यज्ञे यद्वां पृथिव्यामधिं।
अतों नो यज्ञमाशुभिंर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गंहि।।७।।

इसका छन्द निचृद् वृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव प्रथम छन्द रश्मि की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अन्तरिक्ष में होने वाली विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं में अपनी उग्र शक्ति एवं तीव्र वेग के साथ सव ओर व्याप्त होता है।

(८) अजिरासो हरंयो ये तं आशवो वाताइव प्रसक्षिणः।
येभिरपत्यं मनुंषः परीयंसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे।।८।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व कभी जीर्ण न होने वाली प्राणापानादि हरणशील एवं आशुगामी रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को निरन्तरता और समग्रता प्रदान करता है।

(९) एतावंतस्त ईमह इन्द्रं सुम्नस्य गोमंतः। यथा प्रावो मघवन्मेध्यांतिथिं यथा नीपांतिथिं धनें।।९।।

इसका छन्द निचृद् वृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों में सतत विचरण करता हुआ विभिन्न प्राण रश्मियों से नितराम् व्याप्त होकर नाना छन्दादि रश्मियों को अच्छी प्रकार सहजतया संगत करता है।

(१०) यथा कण्वें मघवन्त्रसदंस्यवि यथा पक्थे दशंव्रजे।
यथा गोशर्ये असंनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरंण्यवत्।।१०।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व पूर्वोक्तानुसार सूत्रात्मा वायु रश्मियों में विचरण करता हुआ हिंसक रश्मि आदि पदार्थों को दूर वा नष्ट करने के लिए समर्थ होता है, उधर दसों प्राथमिक प्राण रश्मियां छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करने के लिए उनके साथ संगत होकर निरापद और तेजस्वी रश्मियों को निर्माण करती हैं।

तदुपरान्त पुष्टिगुः काण्वः ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न ऐसी रश्मि विशेष, जो विभिन्न छन्दादि रश्मियों को पुष्ट करती है, से इन्द्रदेवताक ऋ.८.५० सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती हैं-

(१) प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये। यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते।।१।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण सम्पीडक बलों से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से सम्पीडक और प्रकाशक इन्द्र तत्त्व कमनीय (वसुरूप) गायत्री छन्द रश्मियों को असंख्य मात्रा में बढ़ाता हुआ सम्यग् गति, शक्ति और सिद्धि से युक्त होकर नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों को प्रकाशित करता है।

(२) शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः।।२।।

इसका छन्द पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विस्तृत होकर संयोगादि प्रक्रियाओं को भी विस्तृत करता है। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व की अनेकों अजेय एवं प्रेरक वज्र आदि रश्मियां उत्तम बलयुक्त पदार्थों में विभिन्न प्रकार की गतियों एवं महान् पालक बलों को उत्पन्न करती हैं।

(३) यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः। आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघाइवोप दाशुषे।।३।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सबको बसाने वाला इन्द्र तत्त्व सम्पीडित व प्रेरित सोम तत्त्व को सक्रिय व तृप्त करता हुआ विभिन्न सृजन क्रियाओं के पूरक प्राण तत्त्व को सर्वत्र धारण करता है।

(४) अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे।।४।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां अहिंस्य व आकर्षणीय इन्द्र तत्त्व को धारण करके विविध कर्म व दीप्तियों को उत्पन्न करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मिसमूहों में आकर्षणादि बलों को अधिकता से धारण करता है।

(५) आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते। यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम्।।५।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से संगमनीय व्यवहारों का उत्तम प्रेरक इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों में व्याप्त होकर सतत गमनशील रश्मियों को उत्सर्जित करता हुआ विभिन्न उद्यमशील संगमनीय रश्मियों से संयुक्त करके लोकों में विद्यमान सम्पूर्ण पदार्थ को छन्दादि रश्मियों से युक्त करता है।

(६) प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः। उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे।।६।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सबको कंपाने वाला एवं बाधक पदार्थों को पृथक् करने वाला इन्द्र तत्त्व वस्तुमात्र में व्याप्त होकर महान् कर्मों को सिद्ध एवं तृप्त करता है।

(७) यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि। युजान इन्द्र हरिभिर्महिमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि।।७।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह

महान् इन्द्र तत्त्व दूर-२ तक प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों में व्याप्त होकर अपनी संयोजक तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा सबको संगत करता है।

(८) रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे।।८।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव दूसरी छन्द रश्मि की अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व रमणीय, अहिंसनीय एवं कमनीय रश्मियों से युक्त होकर शुद्ध और तेजयुक्त पदार्थों में असुर तत्त्व के प्रभावों को नष्ट करके प्राण रश्मियों के ओज और बल से उन्हें पूर्ण करता हैं।

(९) एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः। यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे।।९।।

इसका छन्द विराड् बृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव प्रथम छन्द रश्मि की अपेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह सबका वासयिता इन्द्र तत्त्व अपने तेज को सभी परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त करके दसों प्राण रश्मियों के आश्रय में स्थित पदार्थों की प्रकृष्ट रूप में रक्षा करता है।

(१०) यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम्।।१०।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व संगमनीय सूत्रात्मा वायु और अहिंसनीय एवं व्यापक रूप से वहन करने वाली प्राणापान रश्मियों में स्थित होकर विभिन्न छन्दादि रश्मियों को प्रेरित व तीक्ष्ण करता है। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त होकर नाना कमनीय गुणों से समृद्ध होता है।

तदुपरान्त श्रुष्टिगुः काण्व ऋषि {श्रुष्टिः = क्षिप्रनाम (नि.६.१२)} अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न आशुगामी रश्मि विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.५१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्। नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा।।१।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व पूर्वोक्त **नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण के कारणरूप मनु अर्थात् मनस्तत्त्व एवं 'घृम्' रश्मियों से सम्पृक्त प्राण रश्मियों** से आच्छादित होकर सम्पीडित वा प्रेरित सोम रश्मियों का पान करता है। वह सूत्रात्मा वायु एवं प्राण रश्मियों में सतत गमन करने वाली छन्द व मरुद् रश्मियों को संरक्षित करके उन्हें शीघ्रगामी बनाता हुआ सब ओर बरसाता है।

(२) पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम्।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः।।२।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वाणः = वाङ्नाम (निघं.१.११)। जिव्रिः = जिव्रयः जीर्णाः (नि.३.२१)। वृकः = वज्रनाम (निघं.२.२०)। त्वोतः = त्वां कामयमान (म.द.ऋ.भा.३.१६.३)} द्युलोक निर्माण प्रक्रिया में जीर्ण, अस्थिर एवं शिथिल कुछ 'वाक्' रश्मियां जब पूर्वोक्त प्रस्कण्व प्राण रश्मियों को दबाने का प्रयास करती हैं, उस समय इन्द्र तत्त्व द्वारा प्रेरित वज्ररूप प्राथमिक प्राण रश्मियां उन अनिष्ट वाक् रश्मियों को दूर करने के लिए अनेक प्रकार की रश्मियों का सिंचन करती हैं।

(३) य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः। इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे।।३।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से ऋषि अर्थात् प्राणापानादि प्राण रश्मियों से प्रेरित सबका नियन्त्रक वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्द रश्मियों द्वारा प्रकट होता है। वह अहिंस्य रूप धारण करके विभिन्न नवीन-२ उत्पन्न दीप्तियुक्त भोग्य मरुद् रश्मियों के द्वारा विशेष प्रकाशित और गतिशील होता है।

(४) यस्मां अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे।
स त्वि१मा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम्।।४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मुख्यतः ७ रश्मियों से युक्त सूर्यादि लोक उत्कृष्ट स्वरूप को प्राप्त करने के लिए ३ प्रकार के पदार्थों अर्थात् प्रकाशित एवं अप्रकाशित कण एवं छन्द, प्राणादि रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होते हैं। वे सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से भी युक्त होते हैं। वे ऐसे सभी लोक निरन्तर गर्जना करते हुए महान् बलों को उत्पन्न करते हैं।

(५) यो नों दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम्। विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे।।५।।

इसका छन्द विराड् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व उत्तम पदार्थों को उत्पन्न करता हुआ विभिन्न रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होता है। वह नवीन-२ मरुद् व छन्दादि रश्मियों के मार्गों पर गमन करता है।

(६) यस्मै त्वं वंसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते।
तं त्वां वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे।।६।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के संसर्ग से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अनेक छन्द व मरुदादि रश्मियों से पुष्ट अर्थात् बलवान् होते हैं। वह इन्द्र तत्त्व भी स्वयं इन्हीं के द्वारा प्रकाशित व आकर्षित होता है।

(७) कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषें। उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते।।७।।

इसका छन्द बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {स्तरीः = स्वभावाच्छादकः (म.द.य.भा.८.२)} सब परमाणु आदि पदार्थों को बल प्रदान करने हेतु स्वाभाविक रूप से इन्द्र तत्त्व से सदैव आच्छादित करके प्रकाशित गुणों से अधिकाधिक मात्रा में सम्पृक्त किया जाता है।

(८) प्र यो नंनक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन्।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः।।८।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {क्रिविः = कूपनाम (निघं.३.२३), कृणोति हिनस्ति येन तत् (म.द.य.भा.१०.२०)} इन्द्र तत्त्व पृथिव्यादि लोकों को दूर-२ फैलाता हुआ द्युलोकों को थामता और अन्तरिक्ष में विविध कार्यों व बलों को उत्पन्न करता है। वह शोषक वज्र रश्मियों द्वारा घोष करते हुए हिंसक व बाधक पदार्थों को अपने बलों से व्याप्त करके दबा देता है।

(९) यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः। तिरश्चिदर्ये रुशमे पवींरवि तुभ्येत्सो अंज्यते रयिः।।९।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शेवधिः = निधिः शेवधि (नि.२.४), (शेवः = सुखनाम - निघं.३.६), रुश हिंसायाम्} वह इन्द्र तत्त्व सम्पूर्ण पदार्थ को व्याप्त व नियन्त्रित करता हुआ विभिन्न कर्मों का सम्पादक एवं बाधक पदार्थों का विध्वंसक होकर विभिन्न क्रियाओं की स्वाभाविकता की रक्षा करता है। वह वज्ररूप रश्मियों से युक्त होकर हिंसक

पदार्थों का नाशक सबके भीतर अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहता है।

(१०) तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः।।१०।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अति तीव्रगामी सूत्रात्मा एवं अन्य प्राण रश्मियों से युक्त 'घृमृ' रश्मियों से ओत-प्रोत होकर सूर्यादि लोकों में प्रकाशित होता है। वह उन लोकों में विभिन्न वर्षक बलों से युक्त छन्दादि रश्मियों एवं सोम रश्मियों के द्वारा प्रेरित होता है।

तदनन्तर आयुः काण्व ऋषि द्वारा इन्द्रदेवताक ऋ.८.५२ सूक्त रूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम्। यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा।।१।।

इसका छन्द निचृद् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्व सूक्तों के अनुसार समझें। इसके अन्य प्रभाव से {आयुः = अन्ननाम (निघं.२.७), यज्ञो वा आयुः (तां.६.४.४), वरुण एवायुः (श.४.१.४.१०)} वह शक्तिशाली इन्द्र तत्त्व मनस्तत्त्व एवं 'घृमृ' रश्मियों से सम्पृक्त प्राण रश्मियों में सोम रश्मियों को प्रक्षिप्त करके उन तीनों प्रकार की रश्मियों के बल एवं प्रकाश को अपने साथ संगत करके अति सक्रिय हो उठता है।

(२) पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः। यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि।।२।।

इसका छन्द पादनिचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शिप्राः = उष्णिषः (म.द.ऋ.भा.५.५४.११)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों के प्रेरक, सूक्ष्म सम्पीडक अन्तरिक्ष में शयन करने वाले विभिन्न पदार्थों की आच्छादक १० प्राण रश्मियों, जो अपने-२ सामर्थ्यानुसार अनिष्ट तत्त्वों को दूर रखती हैं तथा सबमें तन्तु के समान व्याप्त होकर विभिन्न व्यवहारों को सरलता से सम्पादित करती हैं, के साथ सोम रश्मियों को संगत व तृप्त करता है।

(३) य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत्। यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः।।३।।

इसका छन्द बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विशुद्ध छन्द रश्मियों को धारण करके सोम रश्मियों का पान करता है। उस इन्द्र तत्त्व के लिए विष्णु अर्थात् व्यापिका विद्युत् आकर्षण आदि गुणों के द्वारा तीन रूपों को प्राप्त करती है।

(४) यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः।।४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बलों का धारक असंख्यकर्मा इन्द्र तत्त्व जिन तेजस्वी छन्दादि रश्मियों में आकर्षित होता है, उन रश्मियों के संयोजक गुणों को सुगमतापूर्वक परिपूर्ण करके नानाविध परमाणुओं का यजन करता है।

(५) यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत्। अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः।।५।।

इसका छन्द बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अति उग्र होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नाना बल प्रदान करके उनकी रक्षा करता और उनके मार्ग में आये हुए अनिष्ट पदार्थों को उग्रतापूर्वक नष्ट करके अनेक आशुगामी रश्मियों को उन पदार्थों में व्याप्त करता है।

(६) यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति। वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे।।६।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के कारण ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अनेक छन्दादि रश्मियों के द्वारा पुष्ट होते हुए नाना प्रकार की देदीप्यामान किरणें उत्पन्न करके अनेक प्रकार की क्रियाओं और बलों को प्राप्त करते हैं।

(७) कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी। तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि।।७।।

इसका छन्द निचृद्बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आदित्य लोक छन्दों में चतुर्थ छन्द अर्थात् बृहती रश्मियों के द्वारा पदार्थ की सम्पीडित अवस्था के कारण अक्षय बल और तेज में स्थित होते हैं। दोनों प्रकार के लोक (प्रकाशित एवं अप्रकाशित) विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को संरक्षित रखते हुए कभी अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

(८) यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम्।।८।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बल एवं पदार्थों का दाता, विभिन्न छन्दादि रश्मियों से आकर्षण करने योग्य वह इन्द्र तत्त्व जिन पदार्थों को बल आदि प्रदान करता है, वे पदार्थ विभिन्न छन्दादि रश्मियों से प्रदीप्त होकर सूत्रात्मा वायु रश्मियों से युक्त होते हुए उसके समान ही परस्पर सम्बद्ध होते हुए गमन करते हैं।

(९) अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत। पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत।।९।।

इसका छन्द विराड् बृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {मन्म = मन्म मनः (नि.६.२२)} सनातन, व्यापक एवं सबका प्रकाशक मनस्तत्त्व इन्द्र तत्त्व को प्रेरित व प्रकाशित करता है। विभिन्न बृहती छन्द रश्मियां प्रकाशक मनस्तत्त्व के साथ संगत होकर इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित करती हुई सम्पीडक बलों को उत्पन्न करती हैं।

(१०) समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः।।१०।।

इसका छन्द निचृद् पंक्ति होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व बृहती छन्द रश्मियों के द्वारा कांपता अथवा उनको कंपाता हुआ द्यु, पृथिवी और आकाश आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार कंपाता है। वह पराक्रमयुक्त पवित्र सोमादि रश्मियों का पान करके तीव्रता से सक्रिय और बलयुक्त होता है।

तदुपरान्त मेध्यः काण्व ऋषि अर्थात् विभिन्न पदार्थों को अच्छी प्रकार मिश्रित करने में सक्षम सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.८.५३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम्। पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे।।१।।

इसका छन्द विराड् बृहती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को उत्तमता और निकटता से मापता हुआ श्रेष्ठ बलवर्षक आसुर पदार्थ के समूहों को छिन्न-भिन्न करने वाला विभिन्न रश्मियों का प्रापक और सबका नियन्त्रक होकर नाना पदार्थों को व्याप्त और समृद्ध करता है।

(२) य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे। तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे।।२।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्रत्येक प्रकाशित पदार्थ को समृद्ध करता हुआ विभिन्न प्राणादि रश्मियों से युक्त संयोज्य परमाणुओं व तीव्र वज्ररूप रश्मियों को सतत गमनकर्ता व्यापक सूत्रात्मा वायु के साथ विशेष संयुक्त करके कमनीय वलों से युक्त कर अनेकों क्रियाओं को सम्पन्न कराने में उन्हें अधिक समर्थ वनाता है।

(३) आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः। ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः।।३।।

इसका छन्द आर्ची स्वराड् वृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व की प्रेरणा से सोम रश्मियां, जो दुर्वल तथा दूर-२ विखरी होती हैं, वे विभिन्न प्राण रश्मियों में सम्पीडित व प्रेरित होकर आशुगामी एवं वलवती होने लगती हैं। विभिन्न छन्द रश्मियां उन सोम रश्मियों में व्यापक प्राण रश्मियों के तेज को सिंचित करती हैं।

(४) विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि।।४।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से जव इन्द्र तत्त्व प्रकाशित और नियन्त्रित सोम रश्मियों की सक्रिय सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा तृप्त होता है, उस समय संयोगादि प्रक्रियाओं में वाधक वनने वाले सव पदार्थ दूर होकर विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ उचित संयोग-वियोगादि प्रक्रियाओं को प्राप्त होते हैं।

(५) इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः। आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।५।।

एवं

(६) आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम्।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक्।।६।।

इन दोनों छन्द रश्मियों का प्रभाव हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं।

(७) यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते। वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे।।७।।

इसका छन्द विराड् वृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संग्रामों एवं संघातों में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सुरक्षित गति प्रदान करता हुआ सिद्ध करता है। विभिन्न प्रकार की छन्द एवं प्राण रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र तत्त्व को ही प्रकाशित करते हैं।

(८) अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः। त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम्।।८।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ कमनीय रश्मियों से युक्त महान् इन्द्र तत्त्व के साथ वल की इच्छा एवं विभिन्न संघात वा संग्राम में रक्षण, कान्ति, गति आदि गुणों के लिए व्याप्त होते हैं। वे विभिन्न मन्थन क्रियाओं में इन्द्र तत्त्व को अपने अग्र भाग में धारण करके आशुगति एवं वलादि गुणों को प्राप्त करते हैं।

तदुपरान्त मातरिश्वा काण्व ऋषि अर्थात् अन्तरिक्ष में शयन करने वाला सूत्रात्मा वायु युक्त प्राण नामक प्राण तत्त्व से ऋ.८.५४ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः। ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः।।१।।

इसका देवता इन्द्र एवं छन्द निचृद् वृहती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित रश्मियों के तेज और वल को अपनी सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा प्रदीप्त करता है। लोकों में विद्यमान विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अपनी धारणा शक्तियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व की रश्मियों को ग्रहण करते एवं तेज और वल को सव ओर से प्राप्त करते हुए व्याप्त होते हैं।

(२) नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे। यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व।।२।।

उपर्युक्त देवता एवं निचृद् पंक्ति छन्दस्क होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न उत्पन्न पदार्थ रक्षणादि गुणों के लिए अपनी अच्छी धारणा शक्तियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व को प्राप्त करके अति सक्रियता पूर्वक संघनित होने लगते हैं। इस क्रिया में निर्वल परमाणु आदि पदार्थ भी सवल सम्पीडक वलों से युक्त हो जाते हैं।

(३) आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम्।।३।।

विश्वेदेवा-देवताक एवं वृहती-छन्दस्क होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के प्रभाव से सभी प्राण रश्मियां वसुरूप गायत्री और रुद्ररूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां एवं विभिन्न प्रकार की मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में उनकी रक्षा एवं वलशीलता आदि के लिए व्याप्त होने लगती हैं।

(४) पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम्।।४।।

उपर्युक्त देवता पूर्वोक्त एवं निचृत् पंक्ति छन्दस्क होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सवको पुष्ट करने वाली व्यापक विद्युत् एवं ७ प्रकार की छन्द रश्मियों से युक्त ज्वालामयी वाग् रश्मियों में संरक्षित रहता हुआ सम्पूर्ण अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि तत्त्व विभिन्न मेघरूप पदार्थ एवं पृथिवी आदि लोकों में प्रवाहित होता रहता है।

(५) यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम। तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन्।।५।।

इन्द्रदेवताक एवं निचृद् वृहती-छन्दस्क होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वलवानों में श्रेष्ठ वह इन्द्र तत्त्व सभी प्रकार के पदार्थों को सिद्ध करने के लिए आसुर मेघों को नष्ट करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को परस्पर संगत करने के लिए समुचित मात्रा में साथ-२ सक्रिय करता है।

(६) आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे।।६।।

उपर्युक्त देवता एवं निचृत् पंक्ति छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न संग्राम एवं संघात आदि क्रियाओं का रक्षक विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों द्वारा पालित सुकर्मा इन्द्र तत्त्व ही विभिन्न संयोज्य पदार्थों को सव ओर से वहन करते हुए विभिन्न प्राण रश्मियों से व्याप्त आदान-प्रदान क्रियाओं के द्वारा अनेक वल आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त कराके प्रसिद्ध होता है।

(७) सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम्। अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।।७।।

उपर्युक्त देवता एवं विराड् वृहती छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों के विभिन्न प्रकार के वल एवं आयु को इन्द्र तत्त्व

ही नियन्त्रित करता है। वह उन पदार्थों को अपनी सूक्ष्म प्रेरणाओं से अति निकटता से व्याप्त होकर परिपूर्ण करता रहता है।

(८) वयं तं इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो।
महिं स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय।।८।।

उपर्युक्त देवता एवं छन्द निचृत् पंक्ति होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {स्तोमः = प्राणा वै स्तोमा (श.८.४.१.३), स्तोमो हि पशुः (तां.५.१०.८), अन्नं वै स्तोमाः (श.६.३.३.६)। विधेम = परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} असंख्यकर्मा उस इन्द्र तत्त्व के चारों ओर परिक्रमण करती हुई मरुद् व प्राण रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होकर सतत और स्थिर संयोगादि क्रियाओं को सिद्ध करती रहती हैं।

तदुपरान्त कृशः काण्व ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म व न्यून वलयुक्त प्राण रश्मि विशेष से प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिदेवताक ऋ.८.५५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं१ व्यख्यमभ्यायति। राधस्ते दस्यवे वृक।।१।।

इसका छन्द पादनिचृद् गायत्री होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से पूर्वोक्त प्रस्कण्व ऋषि प्राण विशेष वल और तेज से युक्त होकर तीक्ष्ण होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रस्कण्व ऋषि प्राण इन्द्र तत्त्व को प्रभूत मात्रा में तेजस्वी वनाता हुआ वाधक असुरादि रश्मियों का छेदन करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ के सम्मुख प्रस्तुत होता है।

(२) शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते। मह्ना दिवं न तस्तभुः।।२।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्रस्कण्व ऋषि प्राण असंख्य प्रवृद्ध वलों का सेचन करता हुआ सुशोभित होता है। वह विभिन्न द्युलोकों में विभिन्न पदार्थों को तारता हुआ अपनी महिमा के द्वारा आकाश तत्त्व को थामता है।

(३) शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि। शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम्।।३।।

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {वेणुः = तेजो वै वेणुः (तै.आ.५.२.४), (वेण+उण्) (वेनति कान्तिकर्मा - निघं.२.६)। स्तुकः = ग्रन्थि - आप्टेकोष। बल्वज = गौर्यत्राधिष्कन्ना न्यमेहत् ततो बल्वजा उदतिष्ठन् (तै.सं.२.२.८.२)। शतम् = एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यच्छतम् (तां.२०.१५.१२)। म्लातम् = (म्लै = ओझल होना, थक जाना, नष्ट होना - आप्टेकोष)} द्युलोकों की निर्माण प्रक्रिया में प्रस्कण्व ऋषि प्राण के प्रभाव से सैकड़ों प्रकार की तेजस्विनी रश्मियां उत्पन्न होती हैं एवं अनेक प्रकार की सूक्ष्म प्राण रश्मियां, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के ऊपर अदृश्य आच्छादकों का कार्य करती हैं। अनेक प्रकार की छन्दादि रश्मियां सम्पीडित वा ग्रन्थित होकर अरुण रंग में चमकती हुई चार विविध मात्राओं में संयुक्त वा संघनित होकर वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी आदि पदार्थों के रूप में प्रकट होती हैं। इसका दूसरा आशय यह भी है कि उपर्युक्त चारों पदार्थ विविधता धारण किये हुए अन्त में अरुणवर्णीय द्युलोकों में परिवर्तित होते हैं।

(४) सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः। अश्वासो न चङ्क्रमत।।४।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तेजोमयी वलवती छन्द रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों से उत्पन्न विभिन्न रश्मियों के साथ विचरण करती हुई श्रेष्ठ प्राण रश्मियों में व्याप्त होकर आशुगामिनी होती हैं।

(५) आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः। श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन संनशे।।५।।

इसका छन्द अनुष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राण तत्त्व के द्वारा पूर्णता को प्राप्त सातों छन्द रश्मियों का वल व्यापक रूप से धारण करके विभिन्न अप्रकाशित पदार्थ प्रकाशित होकर नाना प्रकार के मार्गों को पार करके विविध कर्म करने में सक्षम होते हैं।

तदुपरान्त पृषध्रः काण्व ऋषि अर्थात् नाना सेचक वलों से युक्त सूत्रात्मा वायु से ऋ.८.५६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्रति॑ ते दस्यवे वृक राधो॑ अदर्श्यह्र॒यम्। द्यौर्न प्र॑थिना शवः॑।।१।।

प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिदेवताक एवं विराड्गायत्री-छन्दस्क होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रस्कण्व ऋषि रश्मियां असुर रश्मियों को काटती हुई विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं को निरापद रूप से सक्रियतापूर्वक सिद्ध करती तथा अपने वल से सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त करती हैं।

(२) दश मह्यं॑ पौतक्रतः सहस्रा दस्य॑वे वृकः॑। नित्या॑द्रायो अ॑मंहत।।२।।

उपर्युक्त देवता एवं गायत्री छन्दस्क होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रस्कण्व रश्मियां असुर रश्मियों को काटती हुई निरन्तर पवित्र कर्मों को करने के लिए विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों को दस सहस्र अर्थात् दस वलवान् प्राण रश्मियों के साथ संगत करके नाना पदार्थों को प्रदान करती हैं।

(३) शतं मे॑ गर्दभाना॑ शतमूर्णा॑वतीनाम्। शतं दासाँ अति स्रजः॑।।३।।

उपर्युक्त देवताक एवं विराड्गायत्री छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {गर्दभः = गर्दयति शब्दं करोतीति गर्दभः (उ.को.३.१२२), भस्मन एव गर्दभोऽसृज्यत (जै.ब्रा.३.२६४), वृषा ह्येष (गर्दभः) वृषाऽग्निः (तै.सं.५.१.५.७), (भस्म = प्रदीपकं तेजः - म.द.य.भा.१२.३५)} वे प्रस्कण्व रश्मियां अनेकों प्रकार की वलवती तेजस्विनी आग्नेय रश्मियों (विविध ध्वनियुक्त), जो विभिन्न कणों को आच्छादित करती हुई अनेक प्रकार के कर्मों को सम्पन्न करती हैं, को उत्पन्न करती हैं।

(४) तत्रो अपि प्राणी॑यत पूतक्र॑तायै व्य॑क्ता। अश्वा॑नामिन्न यूथ्या॑म्।।४।।

उपर्युक्त देवता एवं छन्द वाली होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रस्कण्व रश्मियां पवित्र और गतिशील कर्मों को करने के लिए विभिन्न रश्मियों को समूह रूप में संगत करके व्यक्त एवं वलवती आशुगामी किरणों को उत्पन्न करती हैं।

(५) अचे॑त्यग्निश्चि॑कितुर्हव्यवाट् स सुमद्र॑थः।
अग्निः शुक्रेण॑ शोचिषा॑ बृहत्सूरो॑ अरोचत दिवि सूर्यो॑ अरोचत।।५।।

अग्निसूर्यदेवताक एवं निचृत् पंक्ति-छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व जागृत वा सक्रिय होता हुआ विभिन्न संयोज्य परमाणुओं का सर्वत्र वहन करता है। वह रमणीय प्रकाशयुक्त अग्नि तीव्र और शुद्ध ज्वालाओं के साथ द्युलोकों में सवका प्रेरक वनकर अन्तरिक्ष में तेजस्विनी रश्मियों को उत्सर्जित करता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त मेध्यः काण्वः ऋषि रश्मियों से अश्विनौ-देवताक ऋ.८.५७ सूक्त रूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) युवं दे॑वा क्रतु॑ना पूर्व्येण॑ युक्ता रथे॑न तविषं॑ यजत्रा।
आगं॑च्छतं नासत्या शचीभि॑रिदं तृतीयं सव॑नं पिबाथः।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थ विशेष तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से पूर्व में उत्पन्न अविनाशी प्राण रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को अपने रमणीय तेज और क्रिया से युक्त करके वलवान् वनाकर नानाविध संगत करती हैं। वे अपनी तेजस्वी रश्मियों के द्वारा जगती छन्द रश्मियों का पान करते हुए प्रकाशित लोकों में व्याप्त होती हैं।

(२) युवां देवास्त्रयं एकादशासः सत्याः सत्यस्यं ददृशे पुरस्तांत्।
अस्माकं यज्ञं सवंनं जुषाणा पातं सोमंमश्विना दीद्यंग्नी।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा तीक्ष्ण परन्तु न्यून तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {सत्यम् = असावादित्यः सत्यम् (तै.ब्रा.२.१.११.१), तद् यत् सत्यम्। असौ स आदित्यः (श.६.७.१.२)} विभिन्न अविनाशी प्राण रश्मियां सवकी तारक एकादशाक्षरा देदीप्यमान त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ मिलकर प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं के द्वारा सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करती हैं। उन लोकों में प्रदीप्त अग्नि नाना प्रकार के सवनों को उत्पन्न करके संगमनीय परमाणुओं को संरक्षित करती हैं।

(३) पनाय्यं तदंश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजंसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसां उत ये गविंष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उपं याता पिबंध्यै।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी आदि लोकों में वलवर्धक प्राणापान रश्मियों का व्यवहार प्रस्कण्व ऋषि प्राण रश्मियों द्वारा विशेषरूप से प्रकाशित किया जाता है। वे प्राणापान वा प्राणोदान रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों के साथ संगत होकर उन्हें अवशोषित करके अनेक प्रकार की तेज रश्मियों से सभी लोकों को व्याप्त करती हैं।

(४) अयं वां भागो निहिंतो यजत्रेमा गिरों नासत्योपं यातम्।
पिबंतं सोमं मधुंमन्तमस्मे प्र दाश्वांसंमवतं शचींभिः।।४।।

इसका छन्द पादनिचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अविनाशी प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों में स्थित होकर उनका पान करती हुई उन्हें तेजस्वी रश्मियों के रूप में प्रकट करके सुरक्षित रखती हैं। वे प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों के भीतर स्थित हो जाती हैं।

तदुपरान्त पूर्वोक्त मेध्यः काण्व ऋषि से ऋ.८.५८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) यमृत्विजों बहुधा कल्पयंन्तः सचेंतसो यज्ञमिमं वहंन्ति।
यो अंनूचानो ब्राह्मणो युक्त आंसीत्का स्वित्तत्र यजंमानस्य संवित्।।१।।

इसका देवता विश्वेदेवा ऋत्विजो वा देवताक एवं भुरिक् त्रिष्टुप् छन्द होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अनूचानः = ऋषीणां निधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः (श.१.७.२.३)} सूर्यादि लोकों में विभिन्न ऋतु रश्मियां, विभिन्न देव पदार्थों के साथ संगत होकर उन्हें वहु प्रकार से सक्रिय और समर्थ वनाती हुई वहन करती हैं। विभिन्न ऋषि रश्मियों की रक्षक व्यापक प्राणापान रश्मियां उन ऋतु रश्मियों से युक्त होकर सृजन प्रक्रियाओं को सम्यग् रूप से संचालित करती हैं।

(२) एकं एवाग्निर्बंहुधा समिंद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूंतः।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बंभूव सर्वम्।।२।।

इसका देवता विश्वेदेवा एवं छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से एक ही विद्युत् अनेक रूपों में प्रकट और प्रकाशित होती हुई एक ही सूर्य के अन्दर

अनुकूलता से व्याप्त और संचरित होती है। वही विद्युत् ऊष्मा और प्रकाश के रूप में चमकती हुई सभी लोकों को व्याप्त व प्रकाशित करती है।

(३) ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै॥३॥

उपर्युक्त देवताक एवं त्रिष्टुप्-छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सर्वोत्कृष्ट प्रकाशमान और प्रेरक होकर तीनों लोकों में प्रवाहित होता हुआ रमणीय रश्मियों के रूप में सुस्थित होता है। वह अतिशय वरणीय वलों से युक्त सवको अपने साथ लीन करके विचित्र रूपों में प्रकाशित होता है।

तदुपरान्त सुपर्णः काण्व ऋषि अर्थात् सुन्दर पालक क्रियाओं से संपन्न इन्द्रावरुणोदेवताक ऋ.८.५९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम्।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः॥१॥

इसका छन्द जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {महे = महे महते (नि.६.२७)} इन्द्रावरुण अर्थात् प्राण एवं व्यान रश्मियां किंवा विद्युत् और अग्नि तत्त्व विभिन्न गुणों से युक्त होकर प्रकृष्ट एवं महान् सृजन कर्मों में सम्पीडित पदार्थों के अन्दर संचरित होते हैं। वे सोमादि रश्मियों को सम्पीडित करते हुए प्रत्येक संयोगादि क्रियाओं में शीघ्रतापूर्वक प्रेरित करके लोकों के निर्माण की प्रक्रिया को वहुविध सम्पादित करते हैं।

(२) निष्षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते॥२॥

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक आकाश तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों के द्वारा ऊष्णता को मर्यादित करता हुआ इन्द्र और व्यान रश्मियों के द्वारा महान् तेज को प्राप्त करता है। इन्द्र तत्त्व और व्यान रश्मियां प्रकाशमय मार्ग को व्याप्त करती हुई सूर्यादि लोकों में निरापद गमन करती हैं।

(३) सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः॥३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्रावरुण अर्थात् प्राणोदान रश्मियां दोनों मिश्रित होकर सात छन्द रश्मियों को तीक्ष्णता प्रदान करने के लिए निरन्तर प्राणवती ऊर्मियों के रूप में परिपूर्ण करती हैं। विद्युत् और प्रकाश रश्मियां मिलकर दीप्तियों को संरक्षित करती हुई विभिन्न परमाणुओं की संयोगादि प्रक्रिया को अपने तेज द्वारा सव ओर से संरक्षित करती हैं।

(४) घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम्॥४॥

इसका छन्द विराड् जगती होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणोदान रश्मियां अग्नि तत्त्व के सदन अर्थात् सूर्यादि लोकों में 'घृम्' रश्मियों से पूर्ण होकर सातों छन्द रश्मियों से संयुक्त सोम तत्त्व को सक्रिय करके दीर्घायु परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। वे उन छन्द रश्मियों को तेज से पुष्ट करते हुए संयोगादि क्रियाओं में प्रेरित करती हैं।

(५) अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम्।

अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {त्वेषम् = दीप्तिमन्तम् (म.द.ऋ.भा.५.५८.२)} वे दीप्तिमयी प्राण एवं उदान रश्मियां व्यापक एवं सम्यक् सृजन क्रियाओं के लिए निरन्तर महान् बल को प्रकाशित करती हैं। वे तेजस्विता की रक्षिका 'घृम्' रश्मियों से युक्त होकर सात छन्द रश्मियों, ७-७ मरुद् रश्मियों के समूहों एवं स्वयं के साथ अपान, व्यान, समान, धनंजय वायु इन सभी समूहों के द्वारा सूर्यादि लोकों की रक्षा व उत्पत्ति करती हैं।

(६) इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम्।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणोदान रश्मियां विभिन्न ऋषि प्राण रश्मियों को मनस्तत्त्व के द्वारा प्रेरित वाग् रश्मि, दीप्ति और गति आदि प्रदान करती है। वे अग्रगामी होकर सबको धारण करते हुए विभिन्न स्थानों में पदार्थ को मर्यादित वा नियन्त्रित करके संयोगादि कर्मों को विस्तृत करती हैं। इसके द्वारा वे स्थान तप और तेज के द्वारा प्रकाशित होते रहते हैं।

(७) इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम्।
प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासु धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः।।७।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राण और उदान रश्मियां मनस्तत्त्व से अच्छी प्रकार पूर्ण होकर विभिन्न प्रकाशित लोकों में अदृप्त अर्थात् अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों में पुष्ट छन्दादि रश्मियों का आधान करती हैं किंवा उन छन्दादि रश्मियों के अप्रकाशित स्वरूप को धारण करके उन्हें पुष्टि और बल प्रदान करके नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर उत्पन्न करती हुई सूर्यादि लोकों को आयु प्रदान करती हैं।

इस प्रकार इन उपर्युक्त ११ सूक्त रूप वालखिल्य नामक रश्मिसमूहों की उत्पत्ति के पश्चात् वृषाकपि {वृषाकपिः = आत्मा वै वृषाकपिः (ऐ.६.२९; गो.उ.६.८)} ऋषि अर्थात् विशेष बलवर्षक और सबको कंपाने वाले सूत्रात्मा वायु के विशेष स्वरूप से इन्द्रदेवताक ऋ.१०.८६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है। {ऋग्वेद संहिता में इसका ऋषि वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि इस परिस्थिति में सूत्रात्मा वायु योषा और वृषा दोनों ही रूपों में वाक् एवं मनस्तत्त्व की प्रधानता से युक्त होकर विशेष तेजयुक्त होता है।}

(१) वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत। यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न सूर्यादि लोकों के निर्माण के लिए अनेक प्रकार की रश्मियों की उत्पत्ति होती है पुनरपि प्रारम्भ में इन्द्र रूप सूर्यादि का समुचित प्रकाशन नहीं होता। जब पूर्वोक्त वृषाकपि नामक तीक्ष्ण सूत्रात्मा वायु सक्रिय होकर विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को प्रकाशित व पुष्ट करता है, तब सूर्यादि लोक सर्वोत्तम अवस्था को प्राप्त होते हैं।

(२) परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः। नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।२।।

इसका छन्द पादनिचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से निर्माणाधीन सूर्यादि लोक उपर्युक्त वृषाकपि ऋषि प्राण रश्मियों के कारण अति कम्पायमान होते हुए दूर-२ तक गतिशील होते हैं। उन सूर्यादि लोकों में जब सोम तत्त्व विधिवत् प्रकाशित व सम्पीडित होकर अग्नि तत्त्व के साथ व्याप्त होता है, उस समय सूर्यादि लोक सबसे उत्तम अवस्था को प्राप्त होते हैं।

(३) किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।३।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को आकृष्ट करती हुई गमनशीला पूर्वोक्त वृषाकपि रश्मियां सूर्यादि लोकों के निर्माण में नानारूप धारण करती हुई विभिन्न पोषक गायत्री आदि रश्मियों को व्याप्त करती हैं। उस समय सूर्यादि लोक सब प्रकार से उत्कृष्ट क्रियाओं से युक्त होते हैं।

(४) यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि। श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।४।।

इसका छन्द विराट्पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वराहः = वराहो मेघो भवति वराहारः, वरमाहारमाहार्षीः इति च ब्राह्मणम् (नि.५.४), पशूनां वा एष मन्युः यद्वराहः (तै.ब्रा.१.७.६.४), (मन्युः = मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणो वधकर्मणो वा मन्यन्त्यस्माद् इषवः - नि. १०.२६)} इन्द्र तत्त्व अर्थात् मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुनरूप पूर्वोक्त वृषाकपि ऋषि रश्मियों की सब ओर से रक्षा करता है। इस कारण वे रश्मियां अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए अन्तरिक्ष में शयन करने वाले वायु तत्त्व के समान तेजस्वी मरुद् रश्मियों को आकर्षित और संगत करके सूर्यादि लोकों में विद्युत् को उत्कृष्ट रूप में उत्पन्न करती हैं।

(५) प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत्।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।५।।

इसका छन्द पादनिचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {तष्टा = (तक्षू तनूकरणे, तक्षति करोतिकर्मा - नि.४.१६)। राविषम् = लुनीयाम् (स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक वेदभाष्य)} पूर्वोक्त वृषाकपि रश्मियां संयोगादि कर्मों को काटने वा क्षीण करने वाले व्यक्त असुरादि तत्त्वों को विकृत करके उनके हिंसक बल को काट देती हैं। वे उस विकृत असुरादि तत्त्व की तीक्ष्ण गतियों को बाधित वा असमर्थ करके {इन्द्रः = इन्द्रो वै यजमानः (श.२.१.२.११)} सर्ग यज्ञ में संयोज्य परमाणुओं को सर्वोत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

(६) न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत्।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।६।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {स्त्री = स्त्री सावित्री (जै.उ.४.१२.१.१७), स्त्यायति शब्दयति गुणान् गृह्णाति वा सा स्त्री (उ.को.४.१६७)} सक्रियतमा वृषाकपि संज्ञक रश्मियां स्त्रीरूप व्यवहार करने वाली सभी रश्मियों की अपेक्षा अधिक संगमनीय तथा सक्रिय होती हैं। वे रश्मियां वृषारूप रश्मियों के साथ सर्वाधिक निकट तक जाने में सक्षम होने से अपनी संयोज्य सूक्ष्म रश्मियों को उठाकर उन्हें अपने साथ संगत करती हैं। इनके कारण ही यजनकर्म सर्वोत्कृष्ट उत्तम अवस्था को प्राप्त करते हैं।

(७) उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।७।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अम्ब = अमति प्रेमभावेन प्राप्नोति (म.द.य.भा.६.३६) (अम गतिशब्दसंभक्तिषु)} पूर्वोक्त वृषाकपि रश्मियां अम्बरूप होकर प्रवाहित होती हुई विभिन्न रश्मियों को अवशोषित करके अतिशीघ्रगामी सुन्दर रूपों को प्राप्त कराती हैं। वे रश्मियां इन्द्र तत्त्व की माता के समान समर्थ होती हैं। वे इन्द्र तत्त्व के साथ जंघा के समान संयुक्त होती हुई उसे तीव्र तेजयुक्त तीक्ष्णता से पुष्ट करती हैं, जिससे वह इन्द्र तत्त्व सभी पदार्थों में बलवत्तम होता है। इसके साथ ही ये वृषाकपि रश्मियां इन्द्र तत्त्व को समर्थ बनाकर तारों के

नाभिकीय क्षेत्र तथा शेष क्षेत्र को जंघाओं के समान धारण करने वाले उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के मध्य अक्ष का निर्माण करने में सहयोग करती हैं।

(८) किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।८।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {जघनम् = हन्ति येन यद् वा हन्यते तत् जघनम् (उ.को.५.३२)। शूरः = शूरः शवतेर्गतिकर्मणः (नि.४.१३)} सुन्दर आकर्षक व धारक बलों से युक्त सूक्ष्म रश्मिरूप अंगों वाली व्यापक, प्रापक और प्रकाशक गुणों वाली रक्षण और गति आदि से युक्त वे वृषाकपि रश्मियां बाधक रश्मियों को सब ओर से ताड़ित व प्रतिकर्षित करके इन्द्ररूप सृजन कर्मों को व्यापक उत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

(९) अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते। उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।९।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शरारुः = आक्रमणशीलः (स्वामी ब्रह्ममुनि वेदभाष्य)} पूर्वोक्त वृषाकपि रश्मियां सब ओर से गमन करती हुई विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को निष्कम्प होकर सहज भाव से प्रकाशित व प्रेरित करती हैं। वे विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों तथा मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर इन्द्र तत्त्व की पत्नी अर्थात् रक्षिका रूप में प्रकट होकर विद्युत् के श्रेष्ठ रूप को उत्पन्न करती हैं।

(१०) संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नारी = यज्ञनाम (निघं.३.१७)। होत्रं = ऋतवो वाव होत्राः (गो.उ.६.६), वाङ्नाम (निघं.१.११)} विभिन्न क्रियाओं में सर्वप्रथम संयोज्य रूप वृषाकपि रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म दैवी छन्द रश्मियों किंवा ऋतु रश्मियों में व्याप्त व संगत होती हैं। तदुपरान्त वे {वेधाः = इन्द्रो वै वेधाः (ऐ.६.१०; गो.उ.२.२०), वेधसे विधात्रे (नि.१०.६)} विभिन्न संयोग प्रक्रियाओं के लिए धारक इन्द्र तत्त्व को उत्पन्न करके उनकी रक्षा करती हुई उस इन्द्र तत्त्व को सबसे महान् बनाती हैं।

(११) इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।११।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त वृषाकपि रश्मियां सभी संयोज्य रश्मियों में सर्वाधिक संगमनीय होती हैं। इनके संयोग से वृषारूप रश्मि आदि पदार्थ प्राण रश्मियों से विहीन होकर नष्ट नहीं होते हैं, बल्कि वे पदार्थ विशेष तेजस्वी होकर सर्वाधिक शक्तिशाली होते हैं।

(१२) नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१२।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व वृषाकपि रश्मियों के बिना क्रियाशील नहीं होता है। उन रश्मियों के संयोग से ही वह इन्द्र तत्त्व व्यापक कमनीय हविरूप प्राण रश्मियों में व्याप्त होता है, इसी कारण वह उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त होता है।

(१३) वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।

घसत्त इन्द्रं उक्षणः प्रियं कांचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१३।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियां पालिका प्राण रश्मियों से युक्त पावक 'ओम्' रश्मि किंवा 'घृम्' रश्मियां वृषाकपि नामक रश्मियों की पत्नी अर्थात् रक्षिका होती हैं। वे सबकी कमनीय हविरूप रश्मियों से सिंचित करने वाली सहजतापूर्वक इन्द्ररूप विभिन्न वाग् आदि रश्मियों को उत्कृष्टता प्रदान करती हैं।

(१४) उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से पञ्चदश अर्थात् दस प्राथमिक प्राण, सूत्रात्मा वायु एवं 'हिम्', 'भूः' 'भुवः', 'स्वः', रश्मियां अपने सेचक गुणों के साथ विंशति अर्थात् १२ मास रश्मियां ६ ऋतु रश्मियां, मनस्तत्त्व एवं ओम्कार रूपी वाक् रश्मियों के साथ मिलकर परस्पर पुष्ट और विस्तृत होती हैं। ये इन्द्र तत्त्व के दोनों पार्श्वों को पूर्ण करती हुई उसके अन्दर समा जाती हैं। इन सबके कारण वह इन्द्र तत्त्व उत्कृष्ट स्वरूप प्राप्त करता है।

(१५) वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽ न्तर्यूथेषु रोरुवत्।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१५।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण तेजस्वी रश्मियों एवं विभिन्न सेचक बलों से युक्त होकर विभिन्न लोकों वा परमाणु समूहों के भीतर गर्जना करता हुआ उन पदार्थों को सम्पीडित व प्रेरित करता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व सूर्यादि लोकों रूपी हृदय को सम्यग् रूपेण नियन्त्रित करता हुआ उनको उत्कृष्ट रूप प्रदान करता है।

(१६) न सेशे यस्य रम्बतेऽ न्तरा सक्थ्या३ कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१६।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कपृत् = क+पृत्, पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम्' (वा.अष्टा. ६.१.६३) से 'पृतना' को 'पृत्' आदेश)। रोमशः = लोमशः (रेफस्य लत्वम्)। लोम = छन्दांसि वै लोमानि (श.६.४.१.६)। रम्बते = लम्बते (रेफस्य लत्वम्)} जब सूर्यादि लोकों में उनके अक्षरूप भाग, जो उनके केन्द्रीय एवं शेष भाग को कुछ दूरी पर निकटता से थामे रखते हैं, में विद्यमान वृषाकपि आदि प्राण रश्मियों की धाराएं दुर्बल होती हैं, तब उस लोक में अस्थिरता की आशंका रहती है। उस समय इस छन्द रश्मि के प्रभाव से उस भाग में विभिन्न छन्दादि रश्मियां सुदृढ़ता से सक्रिय होते हुए अक्षरूप भागों को थामे रखने में समर्थ होती हैं। इस कार्य में सर्वोत्कृष्ट विद्युत् रश्मियों की महती भूमिका होती है।

(१७) न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽ न्तरा सक्थ्या३ कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से जब कभी सूर्यादि लोकों के अक्षरूप भाग में प्रवाहित होने वाली छन्दादि रश्मियां बिखरने लगती हैं, उस समय वे लोक अस्थिर होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में इस छन्द रश्मि के प्रभाव से वृषाकपि सहित विभिन्न प्राण रश्मियां उन छन्दादि रश्मियों को संगत करके सुदृढ़ और सर्वोत्कृष्ट इन्द्र तत्त्व के स्वरूप को प्रकट करती हैं, जिनके प्रभाव से सूर्यादि लोक स्थायित्व को प्राप्त करते हैं।

विशेष– उपर्युक्त दोनों छन्द रश्मियों के विषय में प्रश्न यह उठता है कि इन ऋचाओं में सूर्यादि लोकों को अस्थिर करने के प्रभाव वाला भाग भी विद्यमान है और स्थिर करने का भी, तब क्या ये ऋचाएं

अक्षों को अस्थिर भी करती हैं? इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि **सूर्यादि लोकों के अक्ष व केन्द्रीय व शेष भाग सदा स्थिर न रहकर दोलायमान होते रहते हैं। इनके दोलन में इन दोनों ही ऋचाओं की भूमिका होती है।**

(१८) अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत्।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१८।।

इसका छन्द पंक्ति होने से देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {असिः = वज्रो वा असिः (श.३.८.२.१२)। सुना = हिंसा (तु.म.द.ऋ.भा.१.१६१.१०), प्रसूता (तु.म.द.य.भा. २५.३६), प्रेरिता (तु.म.द.ऋ.भा.१.१६२.१३)। अनः = यज्ञो वा अनः (श.१.१.२.७), अन्तरिक्षस्वरूपमिव वा एतद् यदनः (काश.४.३.४.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)। चरु = मेघनाम (निघं.१.१०), चरुर्मृच्चयो भवति, चरतेर्वा समुच्चरन्त्यस्मादापः (नि.६.११)} पूर्वोक्त वृषाकपि रश्मियां इन्द्र तत्त्व की वज्र रश्मियों एवं नवीन-२ तन्मात्राओं को उत्पन्न करके प्रकाशमान मेघरूप पदार्थों को सब ओर से पूर्ण करती वा संचित करती हैं। वे विभिन्न क्रियाशील परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के हरण करने वाले असुरादि पदार्थों को नष्ट करने में सहायक होती हैं।

(१९) अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम्।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।१९।।

इसका छन्द विराट् पंक्ति होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। वह इन्द्र तत्त्व वृषाकपि रश्मियों का चयन करता हुआ विशेषरूपेण प्रकाशित होकर विभिन्न कर्मशील परमाणु आदि पदार्थों को नियन्त्रित करने का सामर्थ्य प्राप्त करता है। वह पवित्र पदार्थों को अवशोषित करता हुआ धारक बलों को सर्वतः प्रकाशित करके सर्वोत्कृष्ट रूप को प्राप्त करता है।

(२०) धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।२०।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {कृन्तत्रम् = कृन्तति छिनत्ति येन तत् कृन्तत्रम् (उ.को.३.१०६)} वे वृषाकपि रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के निकट संयुक्त होकर उन गृहरूप पदार्थों में व्याप्त हो जाती हैं किंवा उनके परमाणु आदि के अन्दर अपनी सूक्ष्म रश्मियों को प्रक्षिप्त करती रहती हैं। फिर वे उन रश्मि वा परमाणुओं को परस्पर संयुक्त वा सम्पीडित करने हेतु सर्वोत्कृष्ट ऐन्द्री बलों को उत्पन्न करती हैं।

(२१) पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।२१।।

इसका छन्द, छान्दस व देवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे वृषाकपि रश्मियां परमाणु व रश्मि आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उत्पादन कर्मों को समर्थ बनाती हैं। इनके प्रभाव से विभिन्न सूक्ष्म रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों की निष्क्रियता दूर होकर सक्रियता बढ़ती तथा वे पुनः-२ वृषाकपि रश्मियों के साथ संसर्ग करके वैद्युत बलों को उत्कृष्ट बनाकर सूर्य्यादि लोकों को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं।

(२२) यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन।
क्व१ स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।२२।।

इसका छन्द, छान्दस व देवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वृषाकपि रश्मियों से समृद्ध इन्द्रतत्त्व द्युलोकों के ऊर्ध्व (केन्द्र) भागों में विशेषतया अवस्थित होकर विभिन्न प्राण रश्मियों को विक्षुब्ध करने वाले शीघ्रगामी पदार्थों का अन्त करके सहज संयोग क्रियाओं को व्याप्त करके केन्द्रीय भागों को

उत्कृष्ट रूप प्रदान करता है।

(२३) पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम्।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।२३।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {भद्रः = अन्नं वै भद्रम् (तै.ब्रा.१.३.३.६), श्रीर्वै भद्रम् (जै.ब्रा.३.१७२), भजनीयः (म.द.य.भा.१५.३८)} वे भजनीय सबकी आश्रयरूप वृषाकपि रश्मियां मनस्तत्त्व एवं 'घृम्' रश्मियों से संगत प्राण रश्मियों के तीक्ष्ण रूप, बारह मास, छः ऋतु रश्मियों, मनस्तत्त्व व 'ओम्' रश्मियों तक के साथ मिश्रित होकर संयोग-सम्पीडन आदि की सहजावस्था को उत्पन्न करती हैं। इसके कारण सूर्य्यादि लोकों के सम्पूर्ण भाग में इन्द्र तत्त्व सर्वोत्कृष्ट रूप धारण करता हुआ उन लोकों को उत्तम रूप प्रदान करता है।

इन सभी २३ छन्द रश्मियों के अन्तिम भाग में "विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः" पदों की विद्यमानता होने से यह सूक्त समानोदर्क होता है। इस कारण ये रश्मियां सम्पूर्ण लोक में एकरस व्याप्त होकर इन्द्र तत्त्व को विशेष तीक्ष्ण व उत्कृष्ट बनाती हैं।

वृषाकपि संज्ञक इस उपर्युक्त ऐन्द्री सूक्त की उत्पत्ति के पश्चात् एवयामरुदात्रेय ऋषि {एवयामरुत् = य एवान् प्रापकान् यान्ति तेषां यो मरुत् (म.द.ऋ.भा.५.८७.१), प्रतिष्ठा वा एवयामरुत् (ऐ.६.३०, गो.पू.६.८)} अर्थात् सतत गन्ता सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न प्रापक एवं आश्रयादि गुणों से युक्त एक सूक्ष्म रश्मि विशेष से मरुद्-देवताक ऋ.५.८७ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे।।१।।

इसका छन्द अति जगती होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां तीव्ररूपेण फैलती तथा संयोग वियोगादि कर्मों को समृद्ध करती हैं। अन्य प्रभाव से विभिन्न विशाल मेघरूप पदार्थों के अन्दर अनेक मरुद् रश्मियों से सम्पन्न विशाल द्युलोकों की उत्पत्ति होती है। इन लोकों में विभिन्न प्रापक प्रकाशित मरुद् रश्मियां विभिन्न सृजनकर्मों को बलयुक्त करने के लिए तथा विभिन्न सहज संयोगादि क्रियाओं की प्राप्ति के लिए व्याप्त होकर सम्पूर्ण पदार्थ को अपने बल से कम्पाती हुई नाना कर्मों को सम्पादित करती हैं।

(२) प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः।।२।।

इसका छन्द स्वराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किञ्चिद् मृदु व न्यून विस्तारयुक्त परन्तु अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां अपनी व्याप्ति व दीप्ति से विभिन्न पदार्थों को विशेष प्रकाशित व प्रेरित करती हैं। वे रश्मियां शीघ्रता से सभी प्रापक मरुद् रश्मियों के द्वारा क्रियाशीलता एवं व्यापक संयोजक व प्रेरक बलों को प्राप्त करके विविध बाधक रश्मि आदि पदार्थों को दबाने में समर्थ होती हैं। वे रश्मियां नाना छन्द व प्राणादि रश्मियों के साथ-२ बलवती होकर अहिंस्य स्वरूप प्राप्त करती हैं।

(३) प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम्।।३।।

इसका छन्द भुरिग् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न शुद्ध व समर्थ मरुद् रश्मियां द्युलोकों में प्राण रश्मियों के साथ व्याप्त व प्रकाशित होकर कम्पनादि क्रियाओं से पदार्थों को प्रवाहित करते हुए विभिन्न छन्द रश्मियों को अग्नि के परमाणुओं में परिवर्तित करती हैं। ये विभिन्न मरुद् रश्मियां प्रापणादि गुणों से सम्पन्न होकर सबको साथ-२ संयुक्त व प्रेरित करके नाना सृजन कर्मों को सम्पन्न करती हैं।

(४) स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः।।४।।

इसका छन्द निचृदति जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से वे प्रापक मरुद् रश्मियां व्यापक गति सम्पन्न होकर समान क्षेत्रों से प्रवाहित होकर सूत्रात्मा वायु के साथ संयुक्त होती हैं। वे विभिन्न आशुगामी प्रकाशित मरुद् रश्मियों के साथ विशेष प्रकार से अन्योऽन्य क्रियाएं करती हुई सहजता से व्यापक वल व दीप्ति आदि गुणों को प्राप्त करती हैं।

(५) स्वनो न वोऽमवान्रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः।।५।।

इसका छन्द स्वराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां ध्वनियुक्त वल, गति व प्रकाश से युक्त होकर प्रापक मरुद् रश्मियों को कम्पाती हैं। इसके कारण विभिन्न वल, प्रकाश व स्थिरता से युक्त हरणशील रश्मियां अपने वज्र रूपों के द्वारा नाना प्रकार के आकर्षण वलों व क्रियाओं को सिद्ध करती हैं।

(६) अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः।।६।।

इसका छन्द भुरिग् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। विभिन्न प्रापक मरुद् रश्मियों के वल से प्रकाशित अग्नि तत्त्व समृद्ध व स्थिर वल को प्राप्त करके अपार महानता को प्राप्त करता है। वह अग्नि तत्त्व उन मरुद् रश्मियों के प्रकृष्ट वन्धन के कारण तीव्र ताप व प्रकाशयुक्त रूप को प्राप्त करके सवको दर्शनीय वनाता है।

(७) ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत्।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम्।।७।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त प्रापक मरुद् रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से युक्त होकर अग्नि तत्त्व को महान् तेज व वल से युक्त करती हैं। वे आसुर तत्त्वों के साथ संग्राम में पार्थिव वा आग्नेय परमाणुओं को व्यापक व तीव्र वल व तेज प्रदान करके उनके संयोग आदि कर्मों को विस्तृत करती हैं।

(८) अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत्।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः।।८।।

इसका छन्द स्वराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से जो मरुद् रश्मियां प्रापक एवयामरुद् रश्मियों के समान पूर्णतः प्रतिकर्षण वल से मुक्त होकर नाना वाग् रश्मियों को व्याप्त करती हैं, वे संयोजक वलों से युक्त होकर सूर्यादि लोकों में विद्युत् को व्यापक रूप से सक्रिय करती हैं। वे विभिन्न प्रतिकर्षक वा वाधक पदार्थों को दूर करके नाना सृजन कर्मों को सम्पादित करती हैं।

(९) गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत्।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः।।९।।

इसका छन्द छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न संगमनीय प्रापक मरुद् रश्मियां संयोगादि कर्मों को प्रकट करती हैं। वे श्रेष्ठ कर्मों व आदान प्रदानादि क्रियाओं को गति व रक्षण प्रदान करती हैं। वे सूर्यादि लोकों के नियन्त्रण क्षेत्र में विभिन्न श्रेष्ठ मेघादि पदार्थों को प्रकाशित व प्रेरित

करके अनिष्ट पदार्थों को निराकृत करती हैं।

यहाँ ग्रन्थकार सभी वेदवेत्ताओं के मत के साथ सहमत होते हुए कहते हैं कि इस कण्डिका में वर्णित उपर्युक्त सभी तेरह सूक्त पूर्व में वर्णित नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण रश्मिसमूहों के साथ-२ ही प्रकाशित होते हैं। ये सभी छन्द रश्मियां साथ-२ ही गमन करती हैं। यहाँ इन चार प्रकार सूक्तों (कुल १५ सूक्त) का सहचरण इस प्रकार होता है कि सर्वप्रथम नाभानेदिष्ठ प्राण से उत्पन्न रश्मिसमूह तीव्र वलों को उत्पन्न करके भ्रान्त व अव्यवस्थित रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को व्यवस्थित करते हैं। तदुपरान्त वालखिल्य संज्ञक ११ सूक्त रूप रश्मिसमूह विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़े रखने में सहयोग करते हैं। अग्रिम क्रम में वृषाकपि रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों को तीक्ष्ण वनाकर विभिन्न वन्धनों को और सुदृढ़ वनाती हैं और अन्त में एवयामरुत् संज्ञक रश्मियां सूक्ष्मतम मरुद् रश्मियों को परस्पर व्याप्त कर देती हैं। इस प्रकार इनका परस्पर समन्वय वना रहता है और द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया तीव्र व चरम अवस्था को प्राप्त करती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में पूर्वोक्त ३८ छन्द रश्मियों के साथ-२ व्याख्यान भाग में दर्शाई गई अनेक छन्द रश्मियां तेरह समूहों में उत्पन्न होती हैं। ये तेरह समूह भी तीन समूहों में वर्गीकृत होते हैं। जिनमें से प्रथम समूह में ग्यारह रश्मिसमूह तथा शेष दो अन्य रश्मिसमूह होते हैं। प्रथम महासमूहस्थ छन्द रश्मियां विभिन्न रश्मियों को परस्पर जोड़ने का कार्य करती हैं, तो दूसरे समूह विभिन्न वन्धनों को सुदृढ़ता प्रदान करने में सहायक होते हैं। इस समय निर्माणाधीन तारों का संकुचन होकर केन्द्रीय ताप व दाव वढ़ने लगता है। डार्क एनर्जी का दुष्प्रभाव समाप्त वा नियन्त्रित होता है। इस कारण नाभिकीय संलयनादि प्रक्रियाएं तीव्र होने लगती हैं। तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार के वल व विद्युत् चुम्वकीय धाराएं तीव्र होने लगती हैं। इन तारों में नाभिकीय संलयन के अतिरिक्त नाना प्रकार के आयनों के मध्य विविध संयोग होने से नाना नवीन-२ आयनों की उत्पत्ति होने लगती है। इस समय विद्युत् वलों के विविध रूपों द्वारा सूर्य्यादि लोकों एवं तारों के मध्य दूरी वढ़ने लगती है। विभिन्न छन्द रश्मियां इसमें अपनी भूमिका निभाती हैं। इन लोकों में धन, ऋण व उदासीन, तीनों प्रकार की वैद्युत तरंगें विद्यमान होती हैं। विभिन्न संलयन व संयोजन क्रियाओं में विद्युत् की सर्वाधिक भूमिका होती है। वृहती छन्द रश्मियों के कारण समृद्ध हुआ गुरुत्वाकर्षण वल लोकों की सीमाओं को सुनिश्चित करता है। **इन लोकों की गतियां भी विभिन्न छन्दादि रश्मियों पर निर्भर रहती हैं। विभिन्न कणों की गति, दीप्ति व रक्षण आदि क्रियाओं में विद्युत् ही की भूमिका होती है। इस सृष्टि में ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जिसमें विद्युत् की विद्यमानता न हो।** विद्युदावेशित सूक्ष्म कणों के चारों ओर विभिन्न प्रकार की प्राण व मरुद् रश्मियां चक्कर लगाती रहती हैं। **विद्युत् सूक्ष्म मरुद् रश्मियों के द्वारा आकाश तत्त्व का संकुचन करती है, जिसके कारण ही आवेशित कणों में आकर्षण वा प्रतिकर्षण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। प्रत्येक कण वा क्वाण्टा के चारों ओर विभिन्न प्रकार की प्राण व मरुद् रश्मियां अदृश्य रूप से उन्हें आच्छादित किए रहती हैं।** इन्हीं के कारण उन कणों वा क्वाण्टाज् के सभी प्रकार के गुणों का प्राकट्य होता है। सूक्ष्म छन्द व प्राण रश्मियों के विविध संगम व सम्पीडन के कारण ही आकाश, ऊर्जा, विभिन्न कण तथा उनसे वने सभी प्रकार के ठोस, तरल व गैसीय पदार्थों की उत्पत्ति विभिन्न चरणों में होती है। **विभिन्न कण विभिन्न प्रकार की प्राण व छन्द रश्मियों के साथ क्रिया करके ऊर्जा में परिवर्तित हो जाते हैं। विभिन्न क्वाण्टाज् विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों के सम्पीडित रूप ही होते हैं।** विद्युत् चुम्वकीय तरंगों की आवृत्ति उनके क्वाण्टाज् में प्राण व छन्द रश्मियों की मात्रा पर निर्भर करती है। विभिन्न क्वाण्टाज् का भी आकाश तत्त्व के साथ आकर्षण होता है। इस कारण ही क्वाण्टाज् की मर्य्यादा निर्धारित रहती है। विभिन्न तारे प्रारम्भ में विभिन्न छन्द रश्मियों से सम्पृक्त विद्युद् वलों के द्वारा अस्थिर होकर यत्र-तत्र कम्पायमान होते रहते हैं। विभिन्न संयोग तथा संलयन कर्मों में **सूत्रात्मा वायु** का तीक्ष्णतम रूप अन्तिम स्तर तक प्रभावी होता है। आकाश तत्त्व का संकुचन तो अन्तिम स्थिति है। **तारों के उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों को जोड़ने वाले अक्षरूप भाग में विभिन्न छन्द रश्मियों युक्त विद्युत् आवेशित तरंगों की तीक्ष्ण धाराएं विद्यमान होती हैं।**

संधि अक्ष में दो विशेष विराट् पंक्ति रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं। इनके कारण ही तारे के दोनों भाग अर्थात् केन्द्रीय भाग के ऊपर तारे का शेष विशाल भाग फिसलता रहकर परिक्रमण करता रहता है। केन्द्रीय भाग तथा शेष विशाल भाग दोनों का अक्ष पर घूर्णन पृथक्-२ गति से होता है। दो विराट् पंक्ति रश्मियों के प्रभाव से दोनों भाग एक-दूसरे की ओर दोलायमान होते रहते हैं अर्थात् ऊपरी

भाग ऊपर नीचे विशेष संधि अक्ष के सहारे झूलता रहता है। इसके साथ ही सम्पूर्ण तारे का अक्ष भी सर्वथा स्थिर नहीं होता, बल्कि वह भी अपने स्थान पर कम्पन (दोलन) करता रहता है। इसमें भी उपर्युक्त दोनों विराट् पंक्ति रश्मि विशेषों की भूमिका होती है। सभी प्रकार की सूक्ष्म तरंगों व छन्दादि रश्मियों में **'ओम्'** तथा **'घृम्'** रश्मियां विद्यमान रहकर उन्हें सब प्रकार से परस्पर जोड़े व प्रकाशित रखती हैं। **'ओम्'** रश्मि सब में अनिवार्यतः विद्यमान होती है, जिसके बिना इस ब्रह्माण्ड में किसी भी क्रिया एवं बल आदि का होना सम्भव नहीं है। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक सूक्ष्म रश्मियों की भी महती भूमिका होती है। प्रत्येक कण वा क्वाण्टा के साथ सूक्ष्म ध्वनि तरंगें अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती हैं। इस समय तारे के केन्द्रीय भागों का लगभग पूर्ण विकास होने से तारों की उत्पत्ति प्रक्रिया लगभग अन्तिम स्थिति में होती है। इस विषय में विशेष परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग अवश्यमेव पठनीय है।
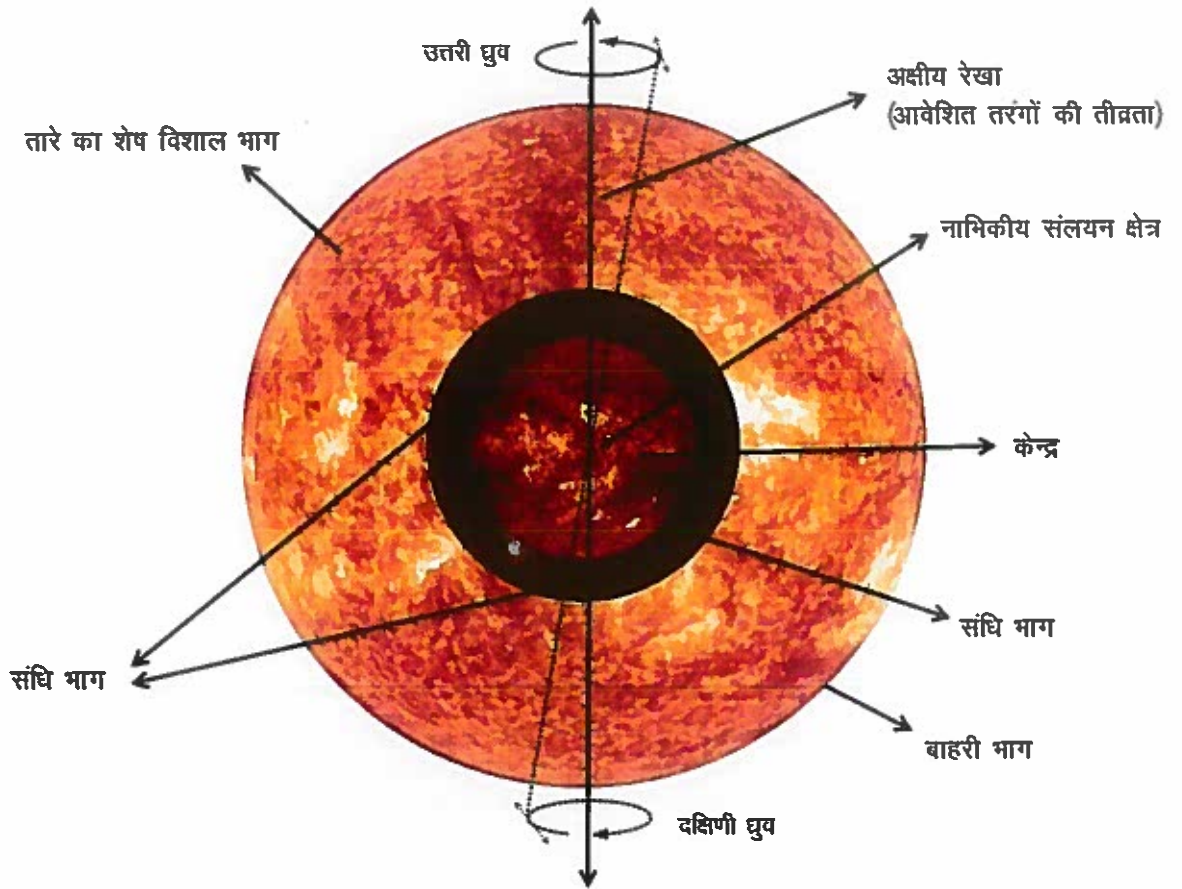
चित्र २२.४ तारे की संरचना

२. यदेषामन्तरियात् तद् यजमानस्यान्तरियात्।।

यदि नाभानेदिष्ठं, रेतोऽस्यान्तरियाद्, यदि वालखिल्याः, प्राणानस्यान्तरियाद्; यदि वृषाकपि, मात्मानमस्यान्तरियाद्; यद्येवयामरुतं, प्रतिष्ठाया एनं च्यावयेद्देव्यै च मानुष्यै च।।

नाभानेदिष्ठेनैव रेतोऽसिञ्चत्, तद्वालखिल्याभिर्व्यकरोत्, सुकीर्तिना काक्षीवतेन योनिं व्यहापयदुरौ यथा तव शर्मन् मदेमेति, तस्माज्ज्यायान् सन् गर्भः कनीयांसं सन्तं योनिं न हिनस्ति; ब्रह्मणा हि स क्लृप्त एवयामरुतैतवै करोति, तेनेदं सर्वमेतवै कृतमेति यदिदं किंच।।

व्याख्यानम्- यहाँ महर्षि कहते हैं कि पूर्व कण्डिका में वर्णित नाभानेदिष्ठ, वालखिल्य वृषाकपि एवं एवयामरुत् संज्ञक चारों छन्द रश्मिसमूहों में से यदि एक प्रकार का रश्मिसमूह लुप्त हो जाए किंवा उसकी उत्पत्ति ही न होवे, तो यजमान अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष की सभी क्रियाएं विनाश को प्राप्त हो जाएंगी। इसका फल यह होगा कि द्युलोकों के निर्माण का कार्य बाधित हो जाएगा और ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ बिखरा ही पड़ा रहेगा। उसमें तीव्र प्रकाश व ऊष्मा आदि की विद्यमानता भी नहीं होगी। उपर्युक्त चारों रश्मिसमूहों में से किस-२ समूह के विलुप्त वा अनुत्पन्न होने से क्या-२ परिणाम होगा? यह स्पष्ट करते हुए महर्षि अगली कण्डिका में लिखते हैं।।

यदि पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि प्राण द्वारा उत्पन्न दोनों सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति न हो अथवा उत्पन्न होकर विलुप्त हो जाए, तो द्युलोक निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया मानो वीर्यहीन, बीजविहीन हो जाएगी। जैसा कि हम पूर्व में लिख चुके हैं कि ये छन्द रश्मियां भ्रान्त व अव्यवस्थित छन्द रश्मियों को व्यवस्थित करती हैं। इनके विलुप्त वा अविद्यमान रहने पर यह कार्य नहीं हो पाने से सभी छन्द रश्मियां अव्यवस्थित व भ्रान्त ही रहने से तेजहीन हो जाएंगी, जिसके कारण सृजन कर्म सम्पादित नहीं हो पायेंगे।

यदि वालखिल्य संज्ञक पूर्वोक्त ११ सूक्त रूप रश्मिसमूह विलुप्त हो जाएं किंवा उत्पन्न ही न हों, तो इनकी अविद्यमानता में मानो द्युलोक निर्माण प्रक्रिया प्राणविहीन हो जाए। ये वालखिल्य संज्ञक रश्मिसमूह ही विभिन्न रश्मियों को परस्पर जोड़ने में सहायक होते हैं। इनके न होने से विभिन्न छन्दादि रश्मियां बिखरी हुई बलहीन अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं, यही इनका प्राणविहीन होना है।

यदि वृषाकपि ऋषि से उत्पन्न छन्द रश्मिसमूह विलुप्त हो जाए अथवा उत्पन्न ही न हो, तो द्युलोक का निर्माण कर्म आत्मा से ही विहीन हो जाएगा, जैसा कि हम लिख चुके हैं कि यह रश्मिसमूह सूत्रात्मा वायु के तीक्ष्ण बन्धक स्वरूप से उत्पन्न होकर उसे ही समृद्ध करके विद्युत् अर्थात् इन्द्र तत्त्व को पुष्ट करता है। {इन्द्रः = इन्द्र उ वै वेनः (कौ.ब्रा.८.५), (वेनः = आत्मा वै वेनः - कौ.ब्रा.८.५)} इसका तात्पर्य यह है कि इस वृषाकपि ऋषि प्राण से उत्पन्न छन्द रश्मिसमूह के विलुप्त होने अथवा अविद्यमान रहने पर इन्द्र तत्त्व ही विलुप्त हो जाता है। इसका आशय यह है कि सूत्रात्मा वायु रश्मियां अतिक्षीण हो जाती हैं, जिसके कारण लोक निर्माण की प्रक्रिया ही क्षीण हो जाती है।

इसी प्रकार जब एवयामरुत् ऋषि प्राण रश्मियों से उत्पन्न रश्मिसमूह विलुप्त अथवा अविद्यमान होता है, तो दैवी और मानुषी दोनों प्रकार की प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जाती है। जैसा कि हम लिख चुके हैं कि ये छन्द रश्मियां विशेष प्रापक गुणों से युक्त एवं सभी छन्दादि रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें आधार प्रदान करती हैं। इस कारण इसके अविद्यमान वा विलुप्त होने पर विभिन्न रश्मियों एवं विभिन्न सृजन क्रियाओं की आधार रूप प्रतिष्ठा ही विनाश को प्राप्त हो जाती है। दैवी और मानुषी प्रतिष्ठा से तात्पर्य यह है कि इन छन्द रश्मियों के विलुप्त होने पर दैवी अर्थात् प्राण रश्मियों एवं मानुषी अर्थात् मरुद् रश्मियों का आधार क्षीण होने लगता है, जिसके कारण वे उपर्युक्त सभी प्रकार की क्रियाओं को दुर्बल कर देती हैं और इन लोकों के निर्माण की प्रक्रिया संकट में पड़ जाती हैं।।

अब पूर्वोक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि जिस समय षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न छन्द रश्मियां अन्य रश्मियों से नाना प्रकार की क्रियाएं करती हैं, उस समय वे रश्मियां विविध प्रकार की होने तथा संख्या में भी बहुत अधिकता में विद्यमान होने से परस्पर एक-दूसरे के साथ समन्वित नहीं हो पातीं। इस विषय को हम पूर्वखण्ड में विस्तार से लिख चुके हैं। उस समय पूर्वोक्त नाभानेदिष्ठ ऋषि से उत्पन्न दो सूक्त रूप रश्मिसमूह उन अव्यवस्थित और असमन्वित छन्द रश्मियों में अपने तीव्र व व्यापक तेज और बल के द्वारा समन्वय और सामंजस्य उत्पन्न करते हैं। यही तेज और बल लोक निर्माण की प्रक्रिया में बीजवपन का कार्य करता है। उसके पश्चात् वालखिल्य संज्ञक ११ सूक्त रूप रश्मिसमूह बिखरी हुई छन्द रश्मियों को परस्पर संगत करते हुए नाना प्रकार से विकृत करते हैं अर्थात् उन रश्मिसमूहों को संकुचित और संपीडित करके विविध प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं, जिसके कारण लोक निर्माण की प्रक्रिया और आगे बढ़ने लगती है। इस प्रकार लोकों की आकृतियों का निर्माण होने लगता है। उस समय काक्षीवतः सुकीर्तिः ऋषि अर्थात् ऐसे सूक्ष्म प्राण, जो अच्छी प्रकार शब्द करने वाले तथा जो अपने सामर्थ्य से नाना प्रकार के रश्मि आदि पदार्थों को उत्पन्न

करने में समर्थ होते हैं, से ऋ.१०.१३१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अप प्राचं इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराचं उरौ यथा तव शर्मन्मदेम।।१।।

इसका देवता इन्द्र व छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विशेष तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व सभी अनिष्ट असुरादि रश्मियों को सब ओर से नष्ट वा नियन्त्रित करके द्युलोकों, विशेषकर उनके केन्द्रीय भागों को व्यापक रूप से संयोगादि कर्मों में समर्थ बनाता है। वह उस क्षेत्र से असुरादि रश्मियों को दूर करता हुआ विभिन्न छन्दादि रश्मियों को पारस्परिक संयोग वा सम्पीडन आदि क्रियाओं के लिए सुगम और विस्तृत क्षेत्र प्रदान करता है।

(२) कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः।।२।।

उपर्युक्त देवता एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कुवित् = बहुनाम (निघं.३.१)} वह शीघ्रकारी एवं व्यापक स्तर पर संयोग-वियोगादि कर्मों का कर्त्ता इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं परमाणुओं को अनुक्रम से पृथक्-२ करता हुआ फिर यथायोग्य रूप से उन्हें संयुक्त करता है। वह विभिन्न संयोज्य पदार्थों को धारण करके विभिन्न छन्द वा मरुदादि रश्मियों को आकर्षित व संकुचित करता है, न कि उन्हें व्याप्त करता है।

(३) नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।।३।।

उपर्युक्त देवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए मन्द गति से युक्त पदार्थों, जो विस्तृत क्षेत्र में फैल जाने के कारण परस्पर संगत होने में असमर्थ होते हैं, को बलवान् और आशुगामी बनाता है।

(४) युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्।।४।।

अश्विनौ देवताक एवं निचृदनुष्टुप् छन्दस्क होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {नमुचिः = पाप्मा वै नमुचिः (श.१२.७.३.४), न मुञ्चति स्वकीयं कर्म यस्तस्मिन् (म.द.य.भा.१०.३३)। सुरा = सुरा सुनोतेः (नि.१.११), अनृतं पाप्मा तमः सुराः (श.५.१.२.१०)} विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित कण प्राणापान एवं प्राणोदान के साथ विशेष संगत होकर देदीप्यमान होते हुए आसुर पदार्थों से ग्रस्त विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के अन्धकार को दूर करते हुए विभिन्न क्रियाओं में इन्द्र तत्त्व को कमनीय बनाते हैं।

(५) पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्।।५।।

उपर्युक्त देवताक एवं पादनिचृत्त्रिष्टुप्-छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी पालक रूप प्राणापान वा प्राणोदान रश्मियों के तेजस्वी कर्मों के द्वारा सदैव रक्षित रहता हुआ अपने तीक्ष्ण कर्मों के द्वारा असुरादि रश्मियों के अन्धकार को विलीन करके ज्वालामयी आग्नेय अवस्था को उत्पन्न करता है।

(६) इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम।।६।।

इन्द्रदेवताक एवं पाद निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न क्रियाओं का श्रेष्ठ रक्षक, सामर्थ्यवान् एवं सर्वत्र व्याप्त इन्द्र तत्त्व अपनी रक्षण आदि क्रियाओं के द्वारा प्रतिकर्षक बाधक बलों को दूर करके विभिन्न पदार्थों को अपने तेज व पराक्रम से युक्त करता है।

(७) तस्यं वयं सुमतौ यज्ञियस्यापिं भद्रे सौमनसे स्याम।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह रक्षक व समर्थ इन्द्र तत्त्व दूरस्थ आसुर पदार्थों को भी नष्ट वा निराकृत करके सभी संगमनीय परमाणु आदि पदार्थों को सहजतापूर्वक संगत करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद "उरौ यथा तव शर्मन् मदेम" के प्रभाव से द्युलोकों के अन्दर केन्द्रीय भाग, जो प्रारम्भ में अतिसूक्ष्म विन्दु रूप ही होते हैं, धीरे-२ विस्तृत होकर बड़े हो जाते हैं। उस क्षेत्र में विभिन्न पदार्थों का संगम आसुर रश्मियों की बाधा से रहित सुगमतापूर्वक होता रहता है, इस कारण वह केन्द्रीय क्षेत्र एक निर्बाध संलयन क्षेत्र का रूप धारण कर लेता है। {गर्भः = प्रजा वै पशवो गर्भः (श.१३.२.८.५), गर्भः समित् (श.६.६.२.१५)} उस समय बड़ी मात्रा में विभिन्न परमाणु व रश्मि आदि पदार्थ तेजी से केन्द्रीय मार्ग में प्रवेश करते हैं। पुनरपि वे पदार्थ बाहरी भाग की अपेक्षा केन्द्रीय भाग के संकुचित होने पर भी उस केन्द्रीय भाग को कोई क्षति नहीं पहुँचाते, बल्कि उसमें यथाक्रम संकुचित व सम्पीडित होकर जमा होते जाते हैं। इसके साथ ही अग्नि के परमाणु भी विशाल मात्रा में बहिर्गमन करते हुए उस क्षेत्र की परिधि को क्षति नहीं पहुँचाते। इसका कारण यह है कि ब्रह्मा अर्थात् 'ओम्' रश्मि से युक्त प्राणापान रश्मियां इस उपर्युक्त सूक्त की सात रश्मियों, विशेषकर प्रथम छन्द रश्मि को समर्थ बनाती हैं, साथ ही पूर्वोत्पन्न एवयामरुत् संज्ञक पूर्वोक्त छन्द रश्मियों के द्वारा उन बहिःस्थ पदार्थ को केन्द्रीय भाग की ओर सुगमतापूर्वक प्रवेश करने में सहयोग करती हैं। इस कारण विभिन्न संयोज्य व संलयनीय परमाणु आदि पदार्थ केन्द्रीय भाग में सुगमतापूर्वक जाने में समर्थ होते हैं। ये 'ओम्'-मय प्राणापान रश्मियां सम्पूर्ण लोक में भी पदार्थ को इतस्ततः सुगमतापूर्वक विचरण करने में भी समर्थ बनाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त क्रियाओं का यहाँ पुनः वर्णन किया गया है। पूर्वोत्पन्न सभी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति तारों के निर्माण में अनिवार्य होती है। किस-२ छन्द रश्मिसमूह के अभाव में क्या हानि होती है? तारों के निर्माण की प्रक्रिया कैसे विनाश को प्राप्त होती है? यह जानने हेतु व्याख्यान भाग ही पठनीय है। **जब किसी तारे के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, तब सर्वप्रथम उसका केन्द्र सूक्ष्म बिन्दु रूप ही होता है।** यह विन्दु रूप कैसे प्रारम्भ होकर बढ़ता जाता है, इसकी कुछ चर्चा पूर्व में हम कर चुके हैं। इस विषय में खण्ड **२.१** तथा अन्यत्र आए इसी प्रसंग को देखें। विभिन्न तारों का केन्द्रीय भाग सम्पूर्ण तारे का एक छोटा सा भाग होता है। जैसा कि हम **२.१७.३** में गणना कर चुके हैं कि **हमारे सूर्य के केन्द्रीय भाग की त्रिज्या वैदिक विज्ञान की दृष्टि से १,५०,५४५ किमी होती है,** जबकि आधुनिक विज्ञान इस विषय में पूर्ण निश्चित नहीं है। इधर आधुनिक विज्ञान सूर्य की कुल त्रिज्या ६,९६,००० किमी मानता है। इस प्रकार केन्द्रीय भाग की त्रिज्या सूर्य की कुल त्रिज्या की २१.६३ प्रतिशत है, तब केन्द्रीय भाग का आयतन और सम्पूर्ण पृष्ठ, सम्पूर्ण सूर्य के आयतन और सम्पूर्ण पृष्ठ की अपेक्षा अत्यल्प है, जिसमें बाहर से संलयनीय पदार्थ, विशेषकर हाइड्रोजन के नाभिक भारी संख्या में प्रबल वेग से केन्द्रीय भाग की ओर प्रवाहित होते हैं। सम्पूर्ण तारे में विद्यमान पदार्थ की भारी हलचल भी उस केन्द्रीय भाग को कोई क्षति नहीं पहुंचाती। इसका कारण यह है कि ६ त्रिष्टुप् और १ अनुष्टुप् छन्द रश्मियां **'ओम्'** रश्मिमय प्राणापान रश्मियों के द्वारा प्रेरित होकर उस केन्द्रीय क्षेत्र की रक्षा करती हैं।।

३. अहश्च कृष्णमहरर्जुनं चेत्याग्निमारुतस्य प्रतिपदहश्चाहश्चेति पुनरावृत्तं पुनर्निनृत्तं षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।

'मध्वो वो नाम मारुतं यजत्रा इति' मारुतं बह्वभिव्याहृत्यमन्तो वै बह्वन्तः षष्ठमहः षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण किंवा सूत्रात्मा वायु मिश्रित प्राथमिक प्राण से वैश्वानरदेवताक ऋ.६.९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अह॑श्च कृ॒ष्णमह॒रर्जु॑नं च॒ वि व॑र्तेते॒ रज॑सी वे॒द्याभि॑ः।
वै॒श्वा॒न॒रो जाय॑मानो॒ न राजावा॑तिर॒ज्ज्योति॑षा॒ग्निस्तमां॑सि।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अर्जुनम् = रूपनाम (निघं.३.७), अर्जुनं शुक्लम् (नि.२.२१)। रजसी = द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)} द्युलोकों के अहन् रूपी केन्द्रीय भागों में किंवा सम्पूर्ण द्युलोक में अप्रकाशित और आकर्षणादि वलों से युक्त कण एवं शुद्ध प्रकाशित व्यापक क्षेत्र में फैलने वाले अग्नि के परमाणु, ये दोनों ही प्रकार के पदार्थ क्रमशः पृथिवी और द्यौ रूप होकर विविध प्रकार के व्यवहार करते हैं। इसमें से प्रकाशशील अर्थात् अग्नि के परमाणु उत्पन्न होते हुए सव पदार्थों के वाहक होकर अपने तेज से द्युलोक के अन्दर विद्यमान सभी पदार्थों को तेजयुक्त करते हैं।

(२) नाहं तन्तुं॒ न वि जा॑नाम्योतुं॒ न यं वय॑न्ति समरेऽत॑मानाः।
कस्य॑ स्वित्पु॒त्र इ॒ह वक्त्वा॑नि प॒रो व॑दा॒त्यव॑रेण पि॒त्रा।।२।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों के अन्दर भीषण संग्राम में वे पूर्वोक्त दोनों प्रकार के पदार्थ घूमते हुए व्याप्त होते हैं। इनके केन्द्रीय भागों में वे परमाणु आदि पदार्थ एक-दूसरे को परस्पर बुनते हुए व्याप्त होते हैं। इनमें से अग्नि के परमाणु, पार्थिव परमाणुओं को गतिमान् और प्रकाशमान् करते हुए विभिन्न क्रियाओं के विस्तार और रक्षण में सहयोग करते हैं। पदार्थों के विशेष संगम की प्रक्रिया सम्पूर्ण तारे में नहीं होती है।

(३) स इत्तन्तुं॒ स वि जा॑नात्योतुं॒ स वक्त्वा॑न्यृतु॒था व॑दाति।
य ईं॒ चिके॑तद॒मृत॑स्य गो॒पा अ॒वश्चर॑न्प॒रो अ॒न्येन॒ पश्य॑न्।।३।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्दादि रश्मियों का पालक व रक्षक प्राण नामक प्राण तत्त्व अन्य अर्थात् सूत्रात्मा वायु के द्वारा सवको आकर्षित करता हुआ सम्पूर्ण द्युलोक में प्रत्येक वस्तु को अपने साथ संगत करके सम्पूर्ण विस्तार को रक्षण, कान्ति व गति आदि गुणों से युक्त करता है। वह प्राण तत्त्व ऋतु रश्मियों के साथ भी सव परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है।

(४) अ॒यं होता॑ प्रथ॒मः पश्य॑तेम॒मि॒दं ज्योति॑र॒मृतं॒ मर्त्ये॑षु।
अ॒यं स ज॑ज्ञे ध्रु॒व आ निष॒त्तोऽम॑र्त्यस्त॒न्वा॒३ वर्ध॑मानः।।४।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से सम्पूर्ण **सृष्टि में परमात्मतत्त्व निरपेक्ष, नित्य व सर्वप्रमुख होता रूप है। उसी की प्रेरणा से मन व वाक् तत्त्व वा वाक् एवं प्राणों के मिथुन होता का कार्य करते हैं। इनमें परमात्म-तत्त्व की ही ज्योति कार्य करती है।** यह सर्वव्यापक तत्त्व पूर्ण अविनाशी होकर प्रत्येक पदार्थ के गुण, कर्म एवं स्वभावों में प्रकट होता है। इसी से सम्पूर्ण सृष्टि प्रकट होती है। द्युलोकों में भी प्रत्येक क्रिया में मूलतः ईश्वरीय प्रेरणा ही कार्य करती है। **इस रश्मि का सम्पर्क ईश्वरतत्त्व तक होता है।**

(५) ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त ईश्वरतत्त्व सहज ज्योति से युक्त सर्वत्र व्याप्त व सर्वक्रियारक्षक मनस्तत्त्व, जो जड़ पदार्थों में सर्वत्र व्याप्त तथा अतिवेगवान् होता है, को प्रेरित व प्रकाशित करता है। उस मनस्तत्त्व से संयुक्त होकर व उसी में निवासरत नाना प्राण रश्मियां एकाकी रूप में भी सम्यक् क्रियाशील होती हैं।

(६) वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से इस उपर्युक्त व्यवस्था से अर्थात् ईश्वर-प्रेरित मनस्तत्त्व की प्रेरणा से प्राण रश्मियों की सभी क्रियाएं, वल तथा दीपनादि गुण मनस्तत्त्व वा वाक् तत्त्व के ही अनुकूल विचरण करते हुए सूर्यादि रूप हृदय में सव ओर से क्रियाशील व दीप्त होकर विशेषतः प्रकट व सक्रिय होते हैं। वह मनस्तत्त्व ही अति शीघ्रता से उन प्राण रश्मियों को सतत क्रियायुक्त व प्रकाशित वनाए रखता है।

(७) विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम्।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः।।७।।

इसका छन्द भुरिगार्ची जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से सर्वोपरि **अग्रणी परमात्व-तत्त्व अन्धकाररूप प्रकृति-मूल पदार्थ में स्थित होकर सभी प्राण, मन, वाक् आदि को** कम्पाता हुआ अपने साथ संगत करता है। **वह चेतन तत्त्व सबमें व्याप्त व सबका प्रकाशक होकर सबको अविनाशी बल, रक्षण, गति व प्रकाशादि गुणों से युक्त करता हुआ सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, संचालन, धारण व रक्षण करता है।**

ग्रन्थकार ने इस उपर्युक्त सूक्त को अग्निमारुत शस्त्र का 'प्रतिपद्' रूप कहा है। इसका तात्पर्य है कि अग्रिम मरुद् एवं जातवेद अग्नि-देवताक सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति के पूर्व इस सूक्त की उत्पत्ति होती है। इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'अहः' पद को वार आवृत्त हुआ है, इस कारण यह रश्मि पूर्वोक्तवत् पुनर्निनृत्त के रूप में व्यवहार करती है। इसके पुनर्निनृत्त रूप होने से इसकी उत्पत्ति षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। इसके साथ ही इस पद की आवृत्ति से प्राण नामक प्राथमिक प्राण विशेष सक्रिय रहकर सम्पूर्ण प्रक्रिया को प्राणवती वनाता है।।

तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राण-तत्त्व से मरुद्-देवताक ऋ.७.५७ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। {मधु = मिथुनं वै मधु (ऐ.आ.१.३.४), विज्ञातं मार्गम् (तु.म.द.ऋ.भा.४.४५.३), प्राणो वै मधु (श.१४.१.३.३०)। उत्सः = आपो वा ऽउत्सः (श.६.७.४.४), वीर्यसेचको वृषभः (तु.म.द.य.भा.१३.४६)} अन्य प्रभाव से कुछ मरुद् रश्मियां प्राण नामक प्राण रश्मियों के साथ मिथुन वनाकर प्रकाशित मार्गों पर गमन करती हैं। वे ऐसी मरुद् रश्मियां उग्र रूप को प्राप्त करके संगमनीय गुणों से युक्त होकर प्रकाशित तथा अप्रकाशित कणों वा लोकों को सींचती व कम्पाती हैं। वे संयोगादि कर्मों में अपने वल से संयोज्य पदार्थों को वल प्रदान करती हैं।

(२) निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म।

अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः॥२॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। दूसरी मरुद् रश्मियां ऐसी होती हैं, जो पदार्थ को एकत्र करने अर्थात् उनके संघनन की क्रिया में विशेष उपयोगी होती हैं। ये रश्मियां द्युलोक आदि के निर्माण हेतु सभी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को मनस्तत्त्व की प्रेरणा से प्रेरित व प्रकाशित करके विभिन्न प्रकार के कर्मों को सम्पादित तथा अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न छन्दादि रश्मियों को आकर्षित करती हुई उन्हें व्याप्त करती हैं।

(३) नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम्॥३॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीसरे प्रकार की मरुद् रश्मियां {रुक्मः = रुक्मो वै समुद्रः (श.७.४.२.५), (समुद्रः = अन्तरिक्षनाम - निघं. १.३; आपो वै समुद्रः - श.३.८.४.११), वीर्यं रुक्मः (श.६.७.१.६)} आकाश तत्त्व को व्याप्त एवं प्रकाशित करने वाली विस्तृत तेज रूपी वज्र रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होती हैं। ये रश्मियां विभिन्न परमाणुओं को विखण्डित करती और सुन्दर दीप्तियुक्त प्राणादि रश्मियों के साथ संगत करके प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के कणों को व्यक्त रूप प्रदान करती हैं।

(४) ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा॥४॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से चतुर्थ प्रकार की मरुद् रश्मियां असुरादि रश्मियों की वाधा को अपने तीव्र संयोजक वलों से दूर, मनस्तत्त्व से विशेष संगत एवं संयोगादि प्रक्रिया को विशेष समृद्ध करके प्रकाशित करती हैं।

(५) कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः॥५॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पांचवें {अनवद्यः = प्रशस्यनाम (निघं.३.८)} प्रकार की मरुद् रश्मियां अपने श्रेष्ठ दीप्तिमय स्वरूप के द्वारा विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को शुद्ध करके विभिन्न प्रकार के आकर्षण एवं प्रतिकर्षण आदि वलों में रमण करती हुई संयोज्य कणों के मध्य विद्यमान होती हैं। वे उन वलों को रक्षण व पोषण प्रदान करती हैं।

(६) उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि॥६॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सूनृता = सूनृतानि धर्मेण संपादितानि (म.द.भा.), वाङ्नाम (निघं.१.११), अन्ननाम (निघं.२.७), उषोनाम (निघं.१.८)} छठे प्रकार की मरुद् रश्मियां आशुगामी स्वरूप वाली होती हैं। वे व्यापक छन्द रश्मियों का आदान-प्रदान करके उन्हें प्रकाशित पदार्थों में व्याप्त करती हैं। वे सूक्ष्म और नित्य अन्य मरुद् रश्मियों के संघातों का भेदन करके उन्हें वाहर उत्सर्जित करने में सहायक होती हैं।

(७) आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से ये सातवें प्रकार की मरुद् रश्मियां

प्राण और अपान रूप में इन्द्र तत्त्व के साथ संगत होकर ऊष्णतायुक्त विकिरणों को धारण करने वाले अग्नि तत्त्व एवं अन्तरिक्ष में विशेषरूप से विद्यमान होती हैं। ये रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित करते हुए सूक्ष्म असुरादि रश्मियों से सुरक्षित रखती हैं।

इस उपर्युक्त सूक्त में मरुद् रश्मियों के बहुत से गुणों को व्यापक रूप से दर्शाया गया है। इस कारण ये रश्मियां भी व्यापक क्षेत्र में कार्य करती हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं- "अन्तो वै बहन्तः" अर्थात् इनका बहुत्व ही अन्त के समान है, क्योंकि ये इन्हीं बहुरूपों एवं बहुगुणों के कारण ब्रह्माण्ड के अन्तिम सिरे तक व्याप्त होती हैं। इस कारण यह सम्पूर्ण सूक्त ही अन्तवत् कहलाता है। इसका अन्तवत् होना ही इसकी उत्पत्ति को षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक बनाता है।।

यह अच्युत ऋचा होने से इसका व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्वोक्त **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में प्रथम समूह में ४ त्रिष्टुप, १ जगती तथा २ पंक्ति, द्वितीय समूह में ७ त्रिष्टुप् तथा १ अन्य त्रिष्टुप्, ये कुल पन्द्रह छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से तारों में सभी प्रकार की पूर्वोक्त क्रियाएं समृद्ध होकर ऊष्मा व प्रकाश की मात्रा व तीक्ष्णता में वृद्धि करती हैं। **तारों में विभिन्न प्रकार के कण व आयन निरन्तर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के साथ संगत होते हुए सम्पूर्ण लोक में स्वच्छन्द विचरण करते हैं, परन्तु तारों के केन्द्रीय भागों में ऐसा नहीं होता है। वहाँ विभिन्न संलयित कण परस्पर मानो जाल की भांति बुने रहते हुए उस भाग को बहुत भारी बना देते हैं। इस भाग में ताप व दाब दोनों की ही चरम सीमा होती है।** तारों के सम्पूर्ण क्षेत्र किंवा **सम्पूर्ण सृष्टि में संचालित सभी क्रिया तथा बलों के पीछे निरपेक्ष तथा मूल प्रेरक ईश्वर ही होता है। ईश्वर तत्त्व से प्रेरित मनस्तत्त्व प्राण, मरुत् एवं छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करता है।** उसके पश्चात् ही सृष्टि की सभी क्रियाएं क्रमशः संचालित होती हैं। **ईश्वर तत्त्व सम्पूर्ण सृष्टि का मूल व सर्वोपरि निमित्त कारण है।** इस ब्रह्माण्ड में सात प्रकार की मरुद् रश्मियां विद्यमान होती हैं, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर प्रत्येक क्रिया में अपनी भूमिका निभाती हैं। इन मरुद् रश्मियों के विषय में विशेष ज्ञान हेतु व्याख्यान भाग पठनीय है। डार्क एनर्जी के नियन्त्रण व विभिन्न प्रकार के बलों को उत्पन्न करने में किस प्रकार की मरुद् रश्मियां कार्य करती हैं, यह व्याख्यान में ही द्रष्टव्य है। इनमें से एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि विभिन्न क्रियाओं को तारने में सहायक होती है।।

४. 'स प्रत्नथा सहसा जायमान इति' जातवेदस्यं, समानोदर्कं, षष्ठेऽहनि षष्ठस्याह्नो रूपम्।।
धारयन् धारयन्निति शंसति, प्रस्रंसाद्वा अन्तस्य बिभाय; तद्यथा-पुनराग्रन्थं पुनर्निग्रन्थमन्तं बध्नीयान्मयूखं वाऽन्ततो धारणाय निहन्यात् तादृक्तद्यद्धारयन् धारयन्निति शंसति, संतत्यै।।
संततैस्त्र्यहैरव्यवच्छिन्नैर्यन्ति य एवं विद्वांसो यन्ति, यन्ति।।१०।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त आङ्गिरसः कुत्स ऋषि अर्थात् तीक्ष्ण वज्रतुल्य सूत्रात्मा वायु के एक विकार विशेष से जातवेदो-देवताक (महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसका देवता 'द्रविणोदा अग्निः शुद्धोऽग्निर्वा' माना है।) एवं त्रिष्टुप्-छन्दस्क ऋ.१.९६ सूक्त, जिसका दैवत व छान्दस प्रभाव पाठक पूर्ववत् समझ सकते हैं, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्।।१।।

इसके प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित परमाणु {द्रविणम् = बलनाम (निघं.२.९), बलं वा द्रविणं यदेनेनाभिद्रवन्ति (नि.८.१)} आदि पदार्थ विविध प्रकार के बल प्रदान करने वाले अग्नि के परमाणुओं को धारण करके नाना क्रियाओं को सिद्ध करते हैं। {धिषणा = वाङ्नाम (निघं.१.११)} इस

कार्य में व्यापक प्राण और वाग् रश्मियां भी अपने सनातन वलों के साथ प्रकट होकर सभी क्रान्तदर्शी परमाणु आदि पदार्थों को धारण करती हैं।

(२) स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अंजनयन्मनूंनाम्।
विवस्वंता चक्षंसा द्यामपश्चं देवा अग्निं धांरयन्द्रविणोदाम्।।२।।

इसके प्रभाव से {काव्यम् = त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः (श.८.५.२.४)} सनातन छन्द वा मरुदादि रश्मियों तथा 'घृम्' रश्मि एवं मनस्तत्त्व मिश्रित प्राण रश्मियों के मेल से सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। सवको वसाने वाले द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और विभिन्न वलदाता अग्नि तत्त्व पूर्वोक्त प्राणादि पदार्थों के द्वारा ही धारण किये जाते हैं।

(३) तमींळत प्रथमं यंज्ञसाधं विश आरीराहुंतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भंरतं सृप्रदांनुं देवा अग्निं धांरयन्द्रविणोदाम्।।३।।

इसके प्रभाव से सृष्टि में सर्वप्रथम संगमनीय और सिद्ध होने वाले सव ओर से संयोग-वियोगादि क्रियाओं से परिपूर्ण, सवमें व्यापक, सवके धारक और पोषक तथा सवको गति और वल प्रदान करने वाले विभिन्न प्राण तत्त्व भी अग्नि के परमाणुओं को धारण करते हैं।

(४) स मांतरिश्वां पुरुवारंपुष्टिर्विदद् गातुं तनंयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जंनिता रोदंस्योर्देवा अग्निं धांरयन्द्रविणोदाम्।।४।।

इसके प्रभाव से ईश्वर तत्त्व के निमित्त कारण से सृष्टि के विस्तार के लिए सर्वप्रथम 'ओम्' वाग् रश्मि उत्पन्न होती है। इसके साथ ही विभिन्न व्यवहारों की साधिका अन्य वाग् रश्मियां एवं अन्तरिक्ष में व्याप्त प्राण रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये सभी रश्मियां सभी प्रकाशित और अप्रकाशित कणों वा लोकों को उत्पन्न करती हैं। इसके साथ ही वे रश्मियां विभिन्न वलों की प्राप्ति के लिए मूलरूप से मनस्तत्त्व और अन्तिम निरपेक्ष मूल ईश्वर तत्त्व को सदैव धारण किये रहती हैं अथवा उसके द्वारा धारण की जाती हैं।

(५) नक्तोषासा वर्णमामेम्यांने धापयेंते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामां रुक्मो अन्तर्वि भांति देवा अग्निं धांरयन्द्रविणोदाम्।।५।।

इसके प्रभाव से {आमेम्याने = पुनः पुनरहिंसन्त्यौ (म.द.भा.)। धापयेते = पालयतः (म.द.य.भा.१२.२)} उस ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा से सृष्टि और प्रलय एवं द्युलोक तथा पृथिवी लोक के स्वरूप को यथावत् रखते हुए विभिन्न संगत पदार्थ नियन्त्रित अवस्था को प्राप्त कर उत्पन्न व धारण किये जाते हैं। प्रकाशमान प्राण रश्मियां सवके भीतर विशेष प्रकार से प्रकाशित होती हुई विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को वल प्रदान करने में अग्रणी होकर सम्पूर्ण प्रकाशित पदार्थों को धारण करती हैं।

(६) रायो वुध्नः संगमंनो वसूंनां यज्ञस्यं केतुर्मन्मसाधंनो वेः।
अमृतत्वं रक्षंमाणास एनं देवा अग्निं धांरयन्द्रविणोदाम्।।६।।

इसके प्रभाव से {अमृतम् = आदित्योऽमृतं (श.१०.२.६.१६)} विभिन्न कमनीय छन्द एवं मरुद् रश्मियां विशाल अन्तरिक्ष में वसु संज्ञक अनेकों प्राण रश्मियों के साथ अच्छी प्रकार संगत होकर द्युलोक के विविध गुण वा कर्मों को सुरक्षित रखती हैं। वे प्रकाशित प्राण वा छन्दादि रश्मियां वल देने वाले विद्युत् तत्त्व को धारण करती हैं।

(७) नू चं पुरा च सदंनं रयीणां जातस्यं च जायंमानस्य च क्षाम्।
सतश्चं गोपां भवंतश्च भूरेर्देवा अग्निं धांरयन्द्रविणोदाम्।।७।।

इसके प्रभाव से विभिन्न देव अर्थात् प्राण रश्मियां सृष्टि के प्रथम चरण से लेकर अन्त तक इस अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुए वा उत्पन्न होते हुए पार्थिव आदि कणों में व्याप्त होकर एवं विभिन्न वाग् रश्मियों को अपने साथ संगत रखते हुए वलदात्री विद्युत् को धारण करके सभी लोकों का संचालन करती हैं।

(८) द्रविणोदा द्रविंणसस्तुरस्यं द्रविणोदाः सनंरस्य प्र यंसत्।
द्रविणोदा वीरवंतीमिषं नो द्रविणोदा रांसते दीर्घमायुः।।८।।

इसके प्रभाव से **सम्पूर्ण बल के मूल ईश्वर-तत्त्व की प्रेरणा से** सभी प्रकार के वलों को सर्वोत्कृष्ट रूप से नियन्त्रित करता हुआ वलवान् मनस्तत्त्व विभिन्न विभागों को प्राप्त होकर वलवान् प्राण रश्मियों को अपनी कामना के द्वारा उत्पन्न करता है। व्यापक रूप से उत्पन्न होने वाली वलवती छन्दादि रश्मियां सभी पदार्थों को प्राणवान् वनाकर जीवन प्रदान करती हैं। इसमें 'द्रविण' शव्द की वार-२ आवृत्ति होने से वलों एवं परमाणु आदि पदार्थों की मात्रा एवं संख्या में भारी वृद्धि होती है।

(९) एवा नों अग्ने समिधां वृधानो रेंवत्पांवक श्रवंसे वि भांहि।
तन्नों मित्रो वरुंणो मामहन्तामदिंतिः सिन्धुंः पृथिवी उत द्यौः।।९।।

इसके प्रभाव से वह सवका नियामक, पालक एवं सर्वोपरि अग्रणी ईश्वर तत्त्व विभिन्न छन्द, मरुद् एवं प्राणादि रश्मियों को सम्यक् प्रकाशित एवं समृद्ध करते हुए विभिन्न प्रकार के वलों एवं संयोज्यता गुण को विशेषरूप से प्रकट करता है। प्राण, अपान, उदान, व्यान आदि प्राण रश्मियां, विभिन्न वाग् रश्मियां, सवको वांधने वाला सूत्रात्मा वायु, पृथिवी, द्यौ एवं अन्तरिक्ष लोक सवको वही ईश्वर तत्त्व संचालित और उत्पन्न करता है।

इस सूक्त की छन्द रश्मियों का प्रभाव विशेषकर ईश्वर तत्त्व तक प्रकट होता है अर्थात् ईश्वर तत्त्व से होने वाली उपर्युक्त सभी क्रियाएं विशेषरूप से सक्रिय होती हैं। इस सूक्त की प्रथम सात ऋचाओं के अन्तिम अर्थात् चतुर्थ पाद "देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्" होने से यह सूक्त समानोदर्क कहलाता है। इस कारण इस सूक्त की सभी रश्मियां षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में अव तक वर्णित सभी रश्मि आदि पदार्थों में एकरस व्याप्त होकर उन सभी रश्मि आदि पदार्थों को विशेषरूप से धारण करती हैं। इस कारण पूर्वोक्त सभी रश्मियों का जो-जो भी प्रभाव द्युलोकों की उत्पत्ति प्रक्रिया में वतलाया गया है, वह ईश्वर तत्त्व की विशेष प्रेरणा के कारण इन रश्मियों के द्वारा विशेषरूप से समृद्ध एवं व्यापक हो जाता है, जिससे द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया अच्छी प्रकार सम्पन्न होती है। इस सूक्त रूप रश्मिसमूह का समानोदर्क होना ही षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

पूर्वोक्त प्रकार से निर्मित द्युलोक {अन्तः = मध्ये (म.द.ऋ.भा.५.६२.५), सर्वस्य मध्ये (म.द.ऋ.भा.१.६६.५), अभ्यन्तरम् (नि.१०.१९)} का मध्य भाग निरन्तर अस्थिर होके कम्पन करता रहता है, जिससे सम्पूर्ण लोक की अस्थिरता की आशंका वनी रहती है। इस समस्या के समाधान के लिए अर्थात् द्युलोकों के निरापद और स्थिर निर्माण के लिए ही पूर्वोक्त अन्तिम सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। उस रश्मिसमूह में 'धारयन्' पद की वार-२ आवृत्ति होती है, जिसके प्रभाव से ईश्वर तत्त्व की विशेष प्रेरणा से पूर्वोक्त प्रकारेण सभी प्राण व छन्दादि रश्मियों का उपर्युक्त प्रकार से धारण होकर लोकों के मध्य भाग, पुनः सम्पूर्ण लोक का अव्यवस्थित्व एवं अस्थायित्व दूर होकर उनकी सभी क्रियाओं की निरन्तरता वनी रहती है। यह सव प्रक्रिया कैसे होती है? इसको स्पष्ट करते हुए ऋषि लिखते हैं कि 'धारयन्' पदरूप सूक्ष्म रश्मि के द्वारा द्युलोकस्थ विभिन्न रश्मियां एवं परमाणु आदि पदार्थ सव ओर से ग्रन्थित होने लगते है। पुनः 'धारयन्' के प्रभाव से वे वन्धन और भी अधिक दृढ़ होने लगते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया सतत चलते रहने से द्युलोकस्थ विभिन्न रश्मियां केन्द्रीय भागस्थ रश्मिसमूहों के साथ पूर्णतः संगत वा ग्रन्थित होने लगती हैं, जिसके कारण केन्द्रीय भाग सम्पूर्ण द्युलोक से उन रश्मियों के द्वारा कसकर वंध जाता है, मानो वे सभी रश्मियां असंख्य रश्मियों की भाँति उस केन्द्रीय खूंटे से वंध जाती हैं। इसी कारण सम्पूर्ण लोक में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के स्वतन्त्र विचरण करते रहने पर भी सम्पूर्ण लोक एक स्थायी आकृति में वंधा हुआ रहता है।।

इस प्रकार इस अन्तिम सूक्त के द्वारा मध्यम त्र्यह अर्थात् पृथिवी एवं द्यु लोकों का निर्माण अविच्छिन्न रूप से निरन्तर होता रहता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल में ६ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके उत्पन्न होने से पूर्व तारों में होने वाली विभिन्न क्रियाएं एवं पदार्थ कुछ अस्थिर एवं अव्यवस्थित होते हैं। उनकी निरन्तरता में भी वार-२ विघ्न आता है, परन्तु इन छन्द रश्मियों के उत्पन्न होते समय सर्वप्रेरक, सर्वकर्त्ता एवं सर्वशक्तिमान् ईश्वर तत्त्व क्रमशः मनस्तत्त्व, प्राण एवं छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करता हुआ सभी प्रकार के पदार्थों एवं उनके वल तथा क्रियाओं को एकसूत्र में वांधकर व्यवस्थित करता हुआ तारों का केन्द्रीय भाग, जो अस्थिर होकर कम्पायमान हो रहा होता है, वह विभिन्न प्रकार के तीक्ष्ण वलों के उत्पन्न होने से सम्पूर्ण तारे को अपने साथ वांधने में सक्षम होता है। इस समय तारों के अन्दर ऊष्मा, प्रकाश एवं विद्युत् चुम्वकीय आदि वलों की मात्रा में अतिशय वृद्धि होती है।।

॥ इति २२.१० समाप्तः ॥

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

"आकाश में विद्यमान प्राण व छन्द रश्मियां वर्तमान विज्ञान द्वारा परिकल्पित Vacuum Energy के रूप में विद्यमान होती हैं, जो विभिन्न परिस्थितियों में संघनित होकर Mediator Particles को प्रकट करती हैं और उनका अपने में लय भी करती हैं।"

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

तारों में अति तीक्ष्ण विकिरण और उनका नियंत्रण। तारों की विभिन्न क्रियाओं की निरन्तरता।

२३.४ विद्युत् का स्वरूप। आकर्षण-प्रतिकर्षण वलों का विज्ञान। तारों में विद्युत् के कार्य। गुरुत्व वल और विद्युत् का सम्वन्ध। विद्युत् आवेश का संरक्षण। तारों में काले धव्वे। तारों में पदार्थ की धाराएं और कूपनुमा गड्ढे। तारे आदि लोकों में विद्युत् के कार्य। विभिन्न लोकों के बीच उचित दूरी में छन्द रश्मियों की भूमिका। Vacuum Energy का वैदिक विज्ञान। Mediator Particles की उत्पत्ति। तारे, ग्रहादि लोकों की अनेक प्रकार की क्रियाऐं। लोकों के घूर्णन और परिक्रमण। सूक्ष्म कॉस्मिक मेघों का अन्तरिक्ष में स्वच्छन्द विचरण। 1543

ॐ अथ २३.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. यद्वा एति च प्रेति च तत्सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
यद्ध्येव प्रथममहस्तदेवैतत् पुनर्यत्सप्तमम्।।
यद्युक्तवद्यद्रथवद्यदाशुमद्यत्पिबवद्, यत्प्रथमे पदे देवता निरुच्यते, यदयं लोकोऽभ्युदितः।।
यज्जातवद्यदनिरुक्तम्।।
यत्करिष्यद्यत्प्रथमस्याह्नो रूपमेतानि वै सप्तमस्याह्नो रूपाणि।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त दो त्र्यह की चर्चा करने के पश्चात् तृतीय त्र्यह के प्रथम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। आचार्य सायण ने इस त्र्यह का नाम 'छन्दोम' दिया है। छन्दोम के विषय में ऋषियों का कथन है-
(१) तद्यच्छन्दोभिर्मितास्तस्माच्छन्दोमाः। (कौ.ब्रा.२६.७)
(२) तद्यच्छन्दोभ्यो निरमिमत तच्छन्दोमानां छन्दोमत्वम्। (जै.ब्रा.३.१७३)
(३) दिशश्छन्दोमाः। (जै.ब्रा.३.३१८)
(४) धीता इवैते यच्छन्दोमास्तृतीयसवनायतनाः। (जै.ब्रा.३.२२३)
इन आर्ष वचनों से यह संकेत मिलता है कि इस त्र्यह के तीनों अहन् में विभिन्न दिशाएं निश्चित व स्थिर हो जाती हैं अर्थात् उस समय तक विभिन्न लोकों के अक्ष और घूर्णन आदि सब स्थायित्व को प्राप्त करते हैं। ये सब क्रियाएं विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा ही सम्पन्न होती हैं। इन छन्द रश्मि रूप ऋचाओं में 'आङ्' एवं 'प्र' उपसर्गों की विद्यमानता होती है। इस प्रथम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल का वही स्वरूप होता है, जो प्रथम त्र्यह के प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल का स्वरूप था। 'आङ्' और 'प्र' दोनों उपसर्गों का प्रभाव प्रथम अहन् के प्रभाव के समान ही खण्ड ४.२६ में देखें।।+।।

इस काल में उत्पन्न ऋचाओं में अन्य भी अनेक समानताएं प्रथम अहन् के समान ही होती हैं। इस कण्डिका के व्याख्यान को ४.२९.२ में देख सकते हैं। हम इसका पिष्टपेषण नहीं कर रहे हैं।।

इस चरण में उत्पन्न ऋचाओं में 'जनी' धातु की विद्यमानता होती है, जिसके कारण विभिन्न लोकों में नाना प्रकार के तत्त्वों का निर्माण तेजी से होने लगता है। इसके साथ ही इनमें देवता अनिरुक्त होता है। {निरुक्तम् = परिमितं वै निरुक्तम् (श.५.४.४.१३)} इसका तात्पर्य यह है कि इन छन्द रश्मियों का प्रभाव अपरिमित रूप से व्यापक होता है, साथ ही इस काल में उत्पन्न ऋचाएं अनेक देवताओं वाली होने से उनके प्रभाव भी अनेक प्रकार के होते हैं।।

प्रथम अहन् की भाँति इस सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में भी 'कृ' धातु भविष्यत् काल में रूप में विद्यमान होती है। प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में 'कृ' धातु के भविष्यत् काल के रूप के प्रभाव से लोकों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ ही होती है। षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल के अन्त तक विभिन्न लोकों का निर्माण पूर्ण होने लगता है। यहाँ 'कृ' धातु के भविष्यत् काल के रूप के प्रभाव से द्युलोकों तथा पृथिवी आदि लोकों में आगामी क्रियाएं प्रारम्भ होने लगती हैं। यही इस क्रियारूप का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी प्रभाव प्रथम अहन् में दिखाई देते हैं, वे सभी इस काल में भी उत्पन्न होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् भी अनेक क्रियाएं उसी प्रकार उन तारों में होती है, जो विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रथम प्रक्रिया अर्थात् **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल में होती हैं। इस समय तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन आदि की प्रक्रियाएं तेज होती हैं। विभिन्न लोकों के धूर्णन एवं परिक्रमण की क्रियाएं भी इसी काल में स्थिर होना प्रारम्भ होती हैं।।

२. 'समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदिति' सप्तमस्याह्न आज्यं भवत्यनिरुक्तं, सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
वाग्वै समुद्रो; न वै वाक्क्षीयते, न समुद्रः क्षीयते; तद्यदेतत्सप्तमस्याह्न आज्यं भवति, यज्ञादेव तद्यज्ञं तन्वते, वाचमेव तत्पुनरुपयन्ति, सन्तत्यै।।
सन्ततैस्त्र्यहैरव्यवच्छिन्नैर्यन्ति य एवं विद्वांसो यन्ति।।
आप्यन्ते वै स्तोमा, आप्यन्ते छन्दांसि षष्ठेऽहनि, तद्यथैवाद आज्येनावदानानि पुनः प्रत्यभिघारयन्त्ययातयामताया, एवमेवैतत् स्तोमांश्च च्छन्दांसि च पुनः प्रत्युपयन्त्ययातयामतायै यदेतत्सप्तमस्याह्न आज्यं भवति।।
तदु त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्प्रातःसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राथमिक प्राण से अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा धृतं वा देवताक ऋ.४.५८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती हैं-

(१) समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट्। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से अग्नि तत्त्व, समस्त सूर्यादि लोक विभिन्न प्राण, छन्द एवं 'घृम्' रश्मियां तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {समुद्र = आपो वै समुद्रः (श.३.८.४.११), मनो वै समुद्रः (श.७.५.२.५२), वाग्वै समुद्रः (तां.७.७.६)} आदित्य लोक रूपी अमृत में व्याप्त विभिन्न प्रकार की किरणें एवं प्राणादि रश्मियां मन, वाक् एवं विभिन्न प्राणादि रश्मियों से युक्त आकाश तत्त्व में विभिन्न प्रकाशित रश्मियां उत्तमता से व्याप्त होने लगती हैं। 'घृम्' रूप सूक्ष्म रश्मि गुप्त रूप से विभिन्न रश्मियों के साथ संगत होकर उन्हें तेजस्विनी वनाती हैं। ये रश्मियां कारणरूप प्राण रश्मियों के केन्द्र के समान एवं विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं की जिह्वा के समान हैं, जिनकी सहायता से वे प्रकाशित रश्मियां सूक्ष्म प्राणादि रश्मियों का भक्षण करती हैं।

(२) वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत्।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचिद् मृदु होता है। इसके अन्य प्रभाव से {शृङ्गः = शृङ्गं श्रयतेर्वा। शृणातेर्वा। शम्नातेर्वा। शरणायोद्गतमिति वा। शिरसो निर्गतमिति वा (नि.२.७)। शिरः = प्राणोऽग्निः शीर्षम् (कौ.ब्रा.८.१)} इस सृष्टि में मुख्यतः ४ प्रकार के वल कार्य करते हैं, ये वल ही ब्रह्म कहलाते हैं क्योंकि इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि का विस्तार होता है। सृष्टि की सभी क्रियाएं इन्हीं पर आश्रित होती हैं तथा विभिन्न वाधक रश्मियां भी इन्हीं के द्वारा नष्ट होती हैं। ये वल छन्द रश्मियों में रमण करते हुए प्रकट करते हैं। इन लोकों के अन्दर 'घृम्' रश्मियां वज्र रूप रश्मियों को धारण करती हैं।

(३) चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से देवता पद से संगत करके पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वृषभः = एष (आदित्यः) ह्येवाऽऽसाम्प्रजानाम् ऋषभः (जै.उ.१.६.२.८), स एष (आदित्यः) सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् (ऋ.२.१२.१२; जै.उ.१.६.१.२)} विशाल प्रकाशमान वृषभ रूपी आदित्य लोक विभिन्न मरुद् रश्मियों से व्याप्त होकर महान् घोष उत्पन्न करते रहते हैं। ये आदित्य लोक पूर्वोक्त चार प्रकार के बलों से युक्त होते हैं। इनके तीन पाद होने का तात्पर्य यह है कि ये त्रिविमीय मार्गों पर गति करते हैं। सभी आदित्य लोक उत्तरी और दक्षिणी इन दो ध्रुवों से युक्त एवं सात छन्द रश्मियों किंवा प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु इन सात मुख्य प्राण रश्मियों से युक्त होकर दोनों ध्रुवों एवं केन्द्रीय भाग से बंधे रहते हैं। यह छन्द रश्मि इन सभी को प्रभावित करती है।

(४) त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां अपने प्रकाश और बल आदि व्यवहारों से 'घृम्' रश्मियों को गुप्तरूप से विभिन्न छन्द रश्मियों में तीन प्रकार से धारण कराती हैं। वे प्राण रश्मियां {स्वधाः = अन्ननाम (निघं.२.७), द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} विभिन्न प्रकार के संयोजक बलों को उत्पन्न करके पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्यु आदि लोकों को निरन्तर विस्तृत करती हैं। इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु एवं सर्वव्यापक 'ओम्' रश्मि के द्वारा विभिन्न विकारों को प्राप्त करके विभिन्न प्रकार की प्रकाशादि रश्मियों को उत्पन्न करता है।

(५) एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्।।५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वेतसः = कमनीयः (म.द.भा.)} पूर्वोक्त प्राण रश्मियों के मध्य कमनीय और तेजस्वरूप अनेकों प्रकार की गतियों से युक्त 'घृम्' रश्मियों की धाराएं आदित्य एवं अन्तरिक्ष लोकों को व्याप्त करके अप्रकाशित रश्मियों को दूर कर सबको प्रकाशित करती हैं।

(६) सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः।।६।।

इसका छन्द छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से आदित्य लोकों के भीतर मनस्तत्त्व के द्वारा गति करती एवं पवित्र होती हुई विभिन्न वाग् रश्मियां धाराओं के रूप में सम्यग् विचरण करती हैं। उनके भीतर 'घृम्' रश्मियां प्रेरणा करती एवं आकर्षित होती हुई उन्हें व्याप्त करती चलती हैं। ये 'घृम्' रश्मियां उन वाग् रश्मियों को खोज-२ कर अपने साथ आकर्षित करती रहती हैं।

(७) सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शूघनासः = क्षिप्रनाम (निघं.२.१५), आशुगन्त्र्यः (म.द.भा.)} विभिन्न सूत्रात्मा वायु रश्मियां धनंजय प्राण रश्मियों से युक्त होकर अतिशीघ्रगामी रूप धारण करके व्यापक वायु तत्त्व को मापती हुई सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में सबको बांधती और रक्षित करती हैं। 'घृम्' रश्मियों की धाराएं विभिन्न रूपवान् छन्द रश्मियों की काष्ठा {काष्ठा = संग्रामनाम (निघं.२.१७), सुवर्गो वै लोकः काष्ठाः (तै.ब्रा.१.३.६.५)} अर्थात् संघातों का भेदन करके सूर्यादि लोकों के केन्द्रीय भाग को तेजस्वी बनाती हैं।

(८) अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य१ः स्मयमानासो अग्निम्।

घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से 'घृम्' रश्मियों की धाराएं विभिन्न प्रकाशित प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर अग्नि तत्त्व को प्राप्त वा उत्पन्न करती हैं। इस प्रक्रिया में उस समय विभिन्न योषारूप रश्मियां अपने तुल्य वा अनुकूल प्रकाशित वृषा रश्मियों से मेल करके जातवेदा अग्नि को उत्पन्न करती हैं।

(९) कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न 'घृम्' रश्मियों की धाराएं सोम रश्मियों के साथ संगत होकर कमनीय किरणों को प्रकट वा वहन करने के लिए नाना प्रकार की क्रियाओं को सब ओर से पवित्रता व गति प्रदान करती हैं।

(१०) अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से 'घृम्' रश्मियों की धाराएं प्राण रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न छन्द रश्मियों के संघात वा संग्रामों में अनुकूलतापूर्वक विभिन्न बलों को धारण वा उत्पन्न करती हैं। इससे द्युलोकों में नाना प्रकार की सृजन क्रियाएं उत्पन्न होती हैं।

(११) धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ।।११।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष में विद्यमान आदित्य लोकों के मध्य संगतीकरण की प्रक्रिया में प्राण रश्मियों के सेवा व संघातों में सम्पूर्ण पदार्थों का निर्माण आश्रित होता है।

ये सभी पदार्थ और उनकी नाना क्रियाएं ईश्वर तत्त्व रूपी धाम में विद्यमान प्राणादि रश्मियों की व्याप्ति पर ही निर्भर हैं।

इस सूक्त रूप रश्मिसमूह को ग्रन्थकार ने आज्यशस्त्र कहा है। इसका तात्पर्य है कि यह रश्मिसमूह आगामी रश्मिसमूहों को प्रेरित व प्रकाशित करता है। इसके देवता अनेक व अस्पष्ट होने से इसका प्रभाव अपरिमित होता है। इसके इस अनिरुक्तदेवताक होने से इसकी उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष की सूचक हैं।।

वाक् तत्त्व {वाक् = वागेव संस्तुत छन्दः (श.८.५.२.५)} समुद्र रूप होते हैं। इसका तात्पर्य है कि विभिन्न सक्रिय व प्रकाशित छन्द व मरुद् रश्मियां अन्तरिक्ष रूपी समुद्र में व्याप्त होती तथा उसका कारण भी होती हैं। ये छन्द रश्मियां क्षीण नहीं होती हैं और न अन्तरिक्ष वा आकाश तत्त्व ही क्षीण होता है। सृष्टि काल में इन छन्दादि रश्मियों व आकाश तत्त्व में विकार वा परिवर्तन तो होता रहता है परन्तु इनका क्षय अर्थात् विनाश नहीं होता। इसी प्रकार मनस्तत्त्व एवं प्राण तत्त्व रूपी समुद्र भी विकारवान् होते हुए भी कभी क्षीण नहीं होते। उपर्युक्त आज्य संज्ञक सूक्त रूप रश्मिसमूह, जो सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न छन्दादि रश्मियों की उत्पत्ति का प्रारम्भ करता है अथवा उनसे पूर्व उत्पन्न होता है, इस समूह की छन्द रश्मियां परस्पर संगत होती हुई अन्य छन्द रश्मियों के बीच प्रक्षिप्त होकर उनको भी संगत करती हुई विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं का विस्तार करती हैं। ये सभी छन्द रश्मियां निरन्तर अन्य छन्द रश्मियों में व्याप्त और संगत होती रहती हैं, इससे इन सभी रश्मियों की एक शृंखला निरन्तर चलती रहती है। सभी लोकों का निर्माण, स्वरूप तथा उनमें निरन्तर होने वाली अनेक प्रकार की क्रियाएं इन छन्द, प्राणादि रश्मियों की पारस्परिक संगति का ही

परिणाम है। सम्पूर्ण सृष्टि काल तक यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। इस प्रकार इस उपर्युक्त सूक्त रूप रश्मिसमूह के उत्पन्न व सक्रिय होने पर द्युलोकों के अन्दर नाना प्रकार की क्रियाएं अविच्छिन्न रूप से संचालित करने के लिए इस त्र्यह अर्थात् इस सप्तम अहन् के साथ-२ आगामी दो अहन् में होने वाली विभिन्न क्रियाएं भी निर्वाध और अविराम गति से चलती रहती हैं।।+।।

प्राक् वर्णित षष्ठ अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल तक उत्पन्न विभिन्न प्रकार की छन्द एवं प्राणादि रश्मियां सम्पूर्ण अवकाश रूप आकाश में व्याप्त हो जाती हैं। सभी स्तोम जैसे त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, त्रिणव एवं त्रयस्त्रिंशत्, जिनके विषय में पूर्वोक्त ६ अहन् अर्थात् ६ चरणों में विस्तार से चर्चा की गई है, वे सभी अन्तरिक्ष में पूर्णतः व्याप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न छन्द रश्मियां, जैसे गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, अतिच्छन्द एवं उष्णिक् आदि भी देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल तक सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। {अवदानम् = तदवदानैरेवाव दयते, तदवदानानामवदानत्वम् (तै.सं.६.३.१०.५), तदेनांस्तदवदयते यद्यजतेऽथ यदग्नौ जुहोति तदेनांस्तदवदयते तस्माद्यत्किञ्चाग्नौ जुह्वति तदवदानं नाम (श.१.७.२.६)। अयातयामतायै गतसारत्वपरिहारायेति सायणः} इस दीर्घकाल में विभिन्न छन्दादि रश्मियों का परस्पर हवन होता रहता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में अनेक छन्दादि रश्मियों के तेज व वलों में किञ्चित् क्षीणता भी आती रहती है। यद्यपि रश्मियां कभी पूर्णतः नष्ट नहीं होती परन्तु उनकी तीव्रता मन्द होती रहती है। इस समस्या के समाधानार्थ ही विभिन्न चरणों में आज्यरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती रहती है। ये रश्मियां अपने-२ अहन् अर्थात् चरण विशेष में क्षीण होती छन्द रश्मियों पर निरन्तर सिंचित होती रहकर उन्हें वल और प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं। इसके कारण विभिन्न सृजन प्रक्रियाएं अविराम संचालित होती रहती हैं। इसी प्रकार सप्तम अहन् में भी उपर्युक्त आज्य रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये रश्मियां विभिन्न प्रकार की क्षीण होती रश्मियों पर सिंचित होती हैं, जिससे छन्द रश्मियां पुनः-२ सशक्त और सतेज होती रहकर द्युलोकों के अन्दर नाना प्रकार की क्रियाओं को वल एवं प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं तथा कोई भी छन्द रश्मि दुर्वल अर्थात् क्षीण नहीं हो पाती। इन सव आज्य छन्द रश्मियों के कारण विभिन्न स्तोम अर्थात् त्रिवृत्, पञ्चदश... आदि तथा विभिन्न गायत्री, त्रिष्टुप् आदि छन्द रश्मियां पुनः-२ वल और प्रेरणा पाकर हवि योग्य वनती रहती हैं, जिसके कारण विभिन्न लोकों में विभिन्न प्रकार की क्रियाएं सतत संचालित रहती हैं। ध्यातव्य है कि ये सभी प्रकार की आज्य छन्द रश्मियां केवल एक वार ही उत्पन्न नहीं होती, वल्कि ये रश्मियां वार-२ उत्पन्न वा आवृत्त होकर विभिन्न संगमनीय छन्दादि रश्मियों को अपने तेज से सिंचित करती रहती हैं। इस कारण विभिन्न परमाणु एवं रश्मि आदि पदार्थों में निरन्तर सक्रियता वनी रहती है। उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के तृतीय पाद में विद्यमान 'घृतस्य नाम गुह्यम्' से यह संकेत भी मिलता है कि ये आज्य संज्ञक छन्द रश्मियां परोक्षरूप से सभी छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें उत्तेजित और प्रेरित करती रहती हैं।।+।।

ये उपर्युक्त आज्य छन्द रश्मियां त्रिष्टुप्-छन्दस्क हैं। इस कारण इस अन्तिम त्र्यह का प्रथम अहन् अर्थात् समान प्राण का उत्कर्ष काल त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों से ही प्रारम्भ होता है। यह चरण इस त्र्यह का प्रथम अहन् होने से उसके प्रातःसवन के समान माना गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल में ११ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जिनके कारण विभिन्न तारों में ऊष्मा और प्रकाश में वृद्धि होती है। चारों प्रकार के मूल वलों में भी वृद्धि होती है। सभी तारे आदि लोक अपने उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों को केन्द्र से वांधे हुए एक स्थायी आकार को प्राप्त कर अपने त्रिविमीय आकाश में गति करते हैं। सभी तारों में गम्भीर विस्फोट और ध्वनियां उत्पन्न होती रहती हैं। तारों में विद्यमान विभिन्न रश्मियां **'ओम्'** रश्मि के द्वारा परस्पर वंधी रहती हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में जहां कहीं भी ऊर्जा की क्षीणता होने लगती है, तव ये त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर पुनः नया वल और ऊर्जा प्रदान करती हैं, जिसके कारण तारों में नाभिकीय संलयन आदि सभी क्रियाएं सतत चलती रहती हैं।।

३. 'आ वायो भूष शुचिपा उप नः' 'प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा, नो नियुद्भिः

शतिनीभिरध्वरं' 'प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्', ये वायव इन्द्रमादनासो 'या वां शतं नियुतो याः सहस्रं' 'प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्ना, गोमता नासत्या रथेनाऽऽ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्' 'प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्' 'प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषेति' प्रउगमेति च प्रेति च सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपं, तदु त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्प्रातःसवन एष त्र्यहः।।
'आ त्वा रथं यथोतय' इदं वसो सुतमन्ध इन्द्र नेदीय एदिहि प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरग्निर्नेता त्वं सोम क्रतुभिः पिन्वन्त्यपः प्र व इन्द्राय बृहत इति प्रथमेनाह्ना समान आतानः सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– तदनन्तर वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से वायुदेवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

आ वा॑यो भूष शुचिपा उप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार।
उपो॑ ते अन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॑र्वपेयम्।।१।। (ऋ.७.९२.१)

की उत्पत्ति होती है, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु तत्त्व तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वायु तत्त्व विभिन्न तेजस्वी ज्वालाओं का वरण करता हुआ उनका पालन और रक्षण करता है। वह विभिन्न प्रकार के वलों को नियन्त्रित व नियुक्त करता हुआ नाना संयोज्य परमाणुओं को विशेष क्रियाशील करके धारण करता हुआ विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को सव ओर से सुभूषित करता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से वायुदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

प्र याभि॒र्यासि॑ दा॒श्वांस॒मच्छा॑ नि॒युद्भि॑र्वायवि॒ष्टये॑ दुरो॒णे।
नि नो॑ र॒यिं सु॒भोज॑सं युवस्व॒ नि वी॒रं गव्य॒मश्व्यं॑ च॒ राधः॑।।३।। (ऋ.७.९२.३)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् मृदु परन्तु अधिक तेजयुक्त होता है। {दुरोणे = गृहनाम (निघं.३.४)} इसके अन्य प्रभाव से वायु तत्त्व विभिन्न नियन्त्रक वलों के द्वारा गृहरूप लोकों में व्याप्त होकर नाना प्रकार की आशुगामी प्राण एवं छन्द रश्मियों एवं परमाणु आदि पदार्थों को संगत करके अन्य सुन्दर पदार्थों को उत्पन्न करता है।

तदनन्तर पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाली आर्षी त्रिष्टुप् छन्दस्क-

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रं स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि य॒ज्ञम्।
वायो॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने मादयस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः।।५।। (ऋ.७.९२.५)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह वायु तत्त्व अपने सैकड़ों व हजारों रूपों और शक्तियों के द्वारा प्रत्येक संयोगादि कर्म में निकटता से विद्यमान होकर उन कर्मों को सक्रियता और सुरक्षापूर्वक सतत सम्पादित करता है।

तदनन्तर उपर्युक्त वसिष्ठ ऋषि से इन्द्रवायूदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

प्र सोता॑ जी॒रो अ॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्सोम॒मिन्द्रा॑य वा॒यवे॒ पिब॑ध्यै।
प्र यद्वां॒ मध्वो॑ अग्नि॒यं भर॑न्त्यध्व॒र्यवो॑ देव॒यन्तः॒ शची॑भिः।।२।। (ऋ.७.९२.२)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से इन्द्र एवं वायु तत्त्व विशेष तेज और वल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न अहिंस्य प्राण रश्मियां नाना प्रकार के निरापद संयोग कर्मों में सोम रश्मियों को धारण करती हैं। वे इन्द्र और प्राण रश्मियां विभिन्न तेजस्वी कर्मों के द्वारा

उन सोम रश्मियों को अवशोषित और धारण करके प्राण रश्मियों के साथ संगत करती हैं।

तदनन्तर पूर्वोक्त ऋषि, वायु देवता एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्द वाली

ये वा॒यव॑ इन्द्र॒माद॑नास॒ आदे॑वासो नि॒तोश॑नासो अ॒र्यः।
घ्नन्तो॑ वृ॒त्राणि॑ सू॒रिभिः॑ ष्याम सास॒ह्वांसो॑ यु॒धा नृभि॑र॒मित्रा॑न्॥४। (ऋ.७.९२.४)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नितोशनम् = (नितोशते वधकर्मा - निघं.२.१९)} वायु तत्त्व विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं तथा इन्द्र तत्त्व को प्रकाशित वा सक्रिय करता है तथा अपनी तेजस्वी रश्मियों के द्वारा हिंसक रश्मि आदि पदार्थों को नियन्त्रित वा नष्ट करता है। वह विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रतिकर्षक बाधक रश्मियों को भी नष्ट करता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त ऋषि से इन्द्रवायु-देवताक एवं आर्षी त्रिष्टुप् छन्दस्क-

या वां॑ श॒तं नि॒युतो॒ याः स॒हस्र॒मिन्द्र॑वायू वि॒श्ववा॑राः॒ सच॑न्ते।
आभि॑र्यातं सुवि॒दत्रा॑भिर॒र्वाक्पा॒तं न॑रा॒ प्रति॑भृतस्य॒ मध्वः॑॥६॥ (ऋ.७.९१.६)

ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र और वायु तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को आकर्षित करते हुए सैकड़ों, हजारों प्रकार से उनको नियुक्त और संगत करते हैं। सबके वाहक वे इन्द्र और वायु तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के सम्मुख व्याप्त होकर उन्हें अनुकूल मार्गों पर गमन कराते हैं।

तदनन्तर **भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि** अर्थात् सूत्रात्मा वायु एवं प्राण नामक प्राण तत्त्व के मिश्रित रूप से मित्रावरुणौ-देवताक ऋ.६.६७.९-११ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र यद्वां॑ मि॒त्रावरुणा स्पूर्ध॒न्प्रि॒या धाम॑ यु॒वधि॑ता मि॒नन्ति॑।
न ये दे॒वास॒ ओह॑सा॒ न मर्ता॒ अय॑ज्ञसाचो॒ अप्यो॒ न पु॒त्राः॥९॥

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु एवं अग्नि तत्त्व प्रकाशित और विस्तृत होने लगते हैं। इसके अन्य प्रभाव से प्राणोदान रश्मियां परस्पर स्पर्धा करती हुई विभिन्न आकर्षण बलों को उत्पन्न करके {ओहसा = प्राप्तेन बलेन वेगेन वा (म.द.भा.)} वायु और अग्नि तत्त्व की रक्षा करती हैं। विभिन्न प्राण रश्मियां संयोज्य बलविहीन मरुद् रश्मियों को क्रियाशील करके उनकी रक्षा करते हैं।

(२) वि यद्वाचं॑ की॒स्तासो॒ भर॑न्ते॒ शंस॑न्ति॒ के चि॑न्नि॒विदो॑ मना॒नाः।
आद्वां॑ ब्रवाम स॒त्यान्यु॒क्था नकि॑र्दे॒वेभि॑र्यतथो महि॒त्वा॥१०॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा किंचित् न्यून तेजस्वी परन्तु अधिक बलयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {कीस्तासः = मेधाविनाम (निघं.३.१५)} वे प्राणोदान रश्मियां अपनी महिमा से विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ सक्रिय रहती हुई अनेक छन्द रश्मिसमूहों को निरन्तर सब ओर से प्रकाशित व सक्रिय करती हैं। सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न वाग् रश्मियों को धारण करती हैं। विभिन्न निविद् रश्मियां अनेकों देदीप्यमान रश्मियों को तीक्ष्णतर बनाती हैं।

(३) अवो॒रित्था वां॑ छ॒र्दिषो॑ अ॒भिष्टौ॑ यु॒वोर्मि॑त्रावरुणा॒वस्कृ॑धोयु।
अनु॒ यद्गाव॑: स्फु॒रानृ॑जि॒प्यं धृ॒ष्णुं यद्रणे॒ वृष॑णं यु॒नज॑न्॥११॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु और अग्नि तत्त्व तीक्ष्ण तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से {कृधु = ह्रस्वनाम (निघं.३.२)} वे प्राणोदान रश्मियां विभिन्न वाग् रश्मियों को दृढ़ और बलिष्ठ बनाकर तीव्र और सरल संयोग प्रक्रियाओं एवं विभिन्न संघर्षों

में युक्त करती हैं। वे प्राणोदान रश्मियां सदैव व्यापक स्तर पर नाना संयोगादि कर्मों में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के भी सदैव अनुकूल वर्त्तती हैं।

तदनन्तर पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से अश्विनौ देवताक एवं निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क ऋ.७.७२.१-३ तृच, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थ तीक्ष्ण तेज और वल से युक्त होते हैं, की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती हैं-

(१) आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना।।१।।

इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न आशुगामी वायु रश्मियों, जो व्यापक तेज और वाहक वल से युक्त होती हैं, से युक्त होकर विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ सब ओर व्याप्त व प्रवाहित होते हैं। वे पदार्थ व्यापक प्राणादि रश्मियों से देदीप्यमान होते हुए विभिन्न कमनीय वलों से युक्त होकर नाना क्रियाओं में नियुक्त और संगत होते हैं।

(२) आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक्सजोषसा नासत्या रथेन।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम्।।२।।

इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ अनेक तीक्ष्ण, देदीप्यमान एवं अविनाशी प्राणादि रश्मियों के द्वारा सब ओर गमन करते हुए समान वलयुक्त परमाणु आदि पदार्थों के साथ वंधन करते हुए पालित और प्रकाशित होते हैं।

(३) उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति।।३।।

इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ परस्पर संगति करते हुए सुन्दर प्रकाशयुक्त छन्दादि रश्मियों से सब ओर से व्याप्त होते हैं। वे इन रश्मियों को द्यु और पृथिवी लोकों में फैलाते हुए सुन्दर प्रकाशयुक्त किरणों को उत्पन्न करते हैं।

तदुपरान्त वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.७.३०.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सुन्दर वज्र रश्मियों, तीक्ष्ण वल एवं प्रकाशादि से युक्त इन्द्र तत्त्व अपने संयोजक वलों के द्वारा समस्त परमाणु समुदाय में समृद्ध और व्याप्त होता है। वह अपने वल के द्वारा विभिन्न पदार्थों का व्यापक भेदन करता है।

(२) हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान वाधक आसुर रश्मियों को अपनी तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा विदीर्ण करके प्रकाश रश्मियों को फैलाने में सहयोग करता है। वह अपनी तीक्ष्णता से संयोज्य पदार्थों का उचित विभाग व वितरण करके विपरीत रश्मियों वाले परमाणुओं को परस्पर संगत करता है।

(३) अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु।

न्य१ग्निः सीदद॑सुरो न होता॑ हुवानो अत्र॑ सुभगा॑य देवान्।।३।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {असुरः = मनो वा असुरम्। तद्ध्यसुषु रमते (जै.उ.३.६.७.३)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संघातों में नाना प्रकाशित परमाणुओं की विभिन्न संयोग प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए असुर तत्त्व को नियन्त्रित करता है। इसके साथ ही वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों में रमण करते हुए होतारूप वनकर नाना हवियों को उत्पन्न करके अग्नि तत्त्व के साथ संगत होता है। वह विभिन्न प्रकाशित प्राणादि रश्मियों को नाना संघातों में विशेष रूप से धारण करता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से विश्वेदेवा-देवताक ऋ.७.४३.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र वो॑ यज्ञेषु॑ देवयन्तो॑ अर्चन्द्यावा नमो॑भिः पृथिवी इषध्यै॑।
येषां॑ ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्व॑ग्वियन्ति॑ वनिनो न शाखाः॑।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्तरिक्ष में सोई हुई अर्थात् व्याप्त सूत्रात्मा वायु रश्मियां असमान वलों से युक्त किरणों से संगत परमाणुओं को अनुकूलतापूर्वक व्याप्त करती हैं। वे प्रकाशित व अप्रकाशित परमाणुओं के विभिन्न संघात-संगमों में अपने संयोज्य वलों को प्रकाशित करते हुए उन परमाणुओं को प्रदीप्त करती हैं।

(२) प्र यज्ञ ए॑तु हेत्वो न सप्तिरुद्य॑च्छध्वं समन॑सो घृताचीः॑।
स्तृणीत वर्हिर॑ध्वराय॑ साधूर्ध्वा शोचींषि॑ देवयून्य॑स्थुः।।२।।

इसका छन्द भुरिक् पङ्क्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से {हेत्वः = प्रवृद्धो वेगवान् (म.द.भा.) (हि गतौ वृद्धौ च)। सप्तिः = वायुः सप्तिः (तै.ब्रा.१.३.६.४), अश्वनाम (निघं.१.१४), सप्तेः सरणस्य (नि.६.३)} विभिन्न देव परमाणु एवं समान रूप से प्रकाशित एवं आशुगामी परमाणु परस्पर सृजन क्रियाओं को समृद्ध करते हैं। द्युलोकों के केन्द्रीय भाग से उठती हुई तेजस्विनी रश्मियां नाना प्रकार के संसर्ग कर्मों को करती हुई अप्रकाशित आकाश को सम्यग् रूपेण प्रकाशित और आच्छादित करती हैं।

(३) आ पु॒त्रासो॑ न मातरं॑ विभृ॒त्राः सानौ॑ देवासो॑ वर्हिषः॑ सदन्तु।
आ विश्वाची॑ विदथ्या॑मनक्त्वग्ने मा नो॑ देवता॑ता मृध॑स्कः।।३।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व सभी परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त एवं उनके साथ पुनः-२ संघात करके उनको प्रकाशित करता है। वह अग्नि तत्त्व हिंसक रश्मियों को दूर करता हुआ द्युलोकों के वहिर्भागों की ओर गमन करते हुए नाना प्रकार की प्राण रश्मियों को विशेष रूप से धारण करता हुआ उनसे विशेष रूप से पुष्ट होता हुआ अन्तरिक्ष में व्याप्त हो जाता है।

तदुपरान्त पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से ऋ.७.९५.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती हैं-

(१) प्र क्षोद॑सा धाय॑सा सस्र एषा सर॑स्वती धरुणमाय॑सी पूः।
प्रबाब॑धाना रथ्ये॑व याति विश्वा॑ अपो म॑हिना सिन्धु॑रन्याः।।१।।

सरस्वती देवताक एवं पादनिचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {क्षोदसा = (क्षोदति गतिकर्मा - निघं.२.१४; क्षुदिर् सम्प्रेषणे)} द्युलोकों के अन्दर देदीप्यमान ज्वालाओं के मध्य विभिन्न वायु रश्मियां तेजस्वी रूपों को धारण करती हुई विभिन्न हिंसक गतियुक्त धाराओं के विभिन्न क्षेत्रों का निर्माण करती हैं। वे अत्यन्त वेग के साथ वाहर की ओर अनवरत प्रवाहित होती हुई अन्तरिक्ष में सवको व्याप्त करती हैं।

(२) एकांचेतत्सरंस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ संमुद्रात्।
रायश्चेतंन्ती भुवंनस्य भूरेर्घृतं पयों दुदुहे नाहुंषाय।।२।।

उपर्युक्त देवताक एवं आर्षी त्रिष्टुप्-छन्दस्क होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {नदी = (पुरुषो वै नदस्तस्मात् पुरुषो वदन्सर्वः सनदतीव - ऐ.आ.१.३.५; प्राणो वै नदस्तस्मात्प्राणो नदन्सर्वः सन्नदतीव - ऐ.आ.१.३.८)} विभिन्न आदित्य लोकों में ज्वालामयी वाग् रश्मियां एकरस रूप से सक्रिय होती हुई संयोज्य पदार्थ को निगलने वाले केन्द्रीय भागों से बाहरी अन्तरिक्ष की ओर सब ओर से बहिर्गमन करती हैं। वे विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को प्रेरित, उत्तेजित और शुद्ध करती हुई सम्पूर्ण लोक को प्राण एवं 'घृम्' रश्मियों से पूर्ण करती हुई बांधे रखती हैं।

(३) स वांवृधे नर्यो योषंणासु वृषा शिशुंर्वृषभो यज्ञियांसु।
स वाजिनं मघवंद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत।।३।।

सरस्वान् देवताक एवं विराट् त्रिष्टुप्-छन्दस्क होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से {सरस्वान् = स्वर्गो लोकः सरस्वान् (तां.१६.५.१५)} द्युलोकों के केन्द्रीय भाग विविध रूप से प्रकाशित होते हुए तीक्ष्ण रूप से सक्रिय होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों के केन्द्रीय भाग विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में विद्यमान योषारूप रश्मियों का विस्तार करके नाना प्रकार के संगत धर्मों को समृद्ध और बलयुक्त करते हैं, जिससे वह तीक्ष्ण होते हुए नाना किरणों की वृष्टि करके समस्त लोक में विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों को छन्दादि रश्मियों के माध्यम से बल प्रदान करके नाना प्रकार के संयोग-वियोगादि कर्मों से सम्पूर्ण लोक को विस्तृत और गतिशील करते हैं।

इन सभी छन्द रश्मियों को महर्षि ने प्रउग कहा है। प्रउग शस्त्र के विषय में पूर्ववत् समझें। इन छन्द रश्मियों में 'प्र' और 'आङ्' उपसर्ग विद्यमान होने से इन सभी रश्मियों की उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। इन छन्द रश्मियों में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की विशेष प्रधानता होने से इस सप्तम अहन् का प्रारम्भिक चरण अर्थात् प्रातःसवन त्रिष्टुप् रश्मियों से युक्त ही होता है।।

इस कण्डिका में विद्यमान सभी ऋचाएं खण्ड ४.२६ में विभिन्न कण्डिकाओं में वर्णित और व्याख्यात हैं। विज्ञ पाठक इनका व्याख्यान वहीं देख सकते हैं। ये ऋचाएं प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल में भी उत्पन्न होती हैं। यह इस सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की प्रथम अहन् से समानता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल में १७ त्रिष्टुप् एवं ४ विभिन्न पंक्ति छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो विभिन्न प्रकार के बलों को विशेषरूप से उत्पन्न करती हैं। इनके कारण तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार की क्रियाएं तेजी से होती रहती हैं तथा उनमें निरन्तरता बनी रहती है। विद्युत् चुम्बकीय बल आदि विशेषरूप से समृद्ध होते हैं। डार्क एनर्जी का नियन्त्रण वा विनाश होता रहता है। केन्द्रीय भागों में नाभिकीय संलयन की क्रिया निरन्तर होती रहकर तीव्र विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती रहती है। ये तरंगें तारों के विशाल क्षेत्र में विभिन्न कणों के साथ उत्सर्जित और अवशोषित होती हुई अनेक दुरूह मार्गों पर गमन करती हुई दीर्घकाल तक उस पदार्थ में ही भटकती रहती हैं। उसके पश्चात् अन्तरिक्ष में उत्सर्जित हो जाती है। इस अवधि में इनके संयोग और वियोग से नाना प्रकार के नये-२ आयन बनते और बिगड़ते रहते हैं। कुछ तीक्ष्ण विद्युत् चुम्बकीय अथवा विद्युत् तरंगों का संघर्ष डार्क एनर्जी से भी होता रहता है। इन तारों में ऊंची-२ अग्नि की ज्वालाएं अत्यन्त वेग के साथ ऊपर उठती रहती हैं। इन तारों में सभी प्रकार की क्रियाएं अति तीव्र वेग और तीक्ष्णता के साथ होती हैं। दूसरी कण्डिका का वैज्ञानिक भाष्यसार खण्ड ४.२६ में ही देखें।।

४. 'कया शुभा सवयसः सनीळा' इति सूक्तं, न जायमानो न शतेन जात इति जातवत्सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

तदु कयाशुभीयम्, एतद्वै संज्ञानं सन्तनि सूक्तं, यत्कयाशुभीयमेतेन ह वा इन्द्रोऽगस्त्यो मरुतस्ते समजानत, तद्यत्कयाशुभीयं शंसति संज्ञात्या एव।।
तद्वायुष्यं तद्योऽस्य प्रियः स्यात् कुर्यादेवास्य कयाशुभीयम्।।
तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधाराऽऽयतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर अगस्त्य ऋषि अर्थात् निरापद मार्गों पर गमन करने वाली एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१६५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती हैं-

(१) कया॑ शु॒भा सव॑यसः॒ सनी॑ळाः समा॒न्या म॒रुतः॒ सं मि॑मिक्षुः।
कया॑ म॒ती कुत॒ एता॑स ए॒तेऽर्च॑न्ति शु॒ष्मं वृष॑णो वसू॒या।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से समान तेज और समान स्थान वाली मरुद् रश्मियां अपने तुल्य क्रिया वाली प्राण रश्मियों के साथ अच्छी प्रकार संगत होकर नाना प्रकार के सेचक बलों तथा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। इनके कारण ही विभिन्न अवशोषक बल भी उत्पन्न होते हैं।

(२) कस्य॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषु॒र्युवा॑नः॒ को अ॑ध्व॒रे म॒रुत॒ आ व॑वर्त।
श्ये॒नाँ इ॑व॒ ध्रज॑तो अ॒न्तरि॑क्षे॒ केन॑ म॒हा मन॑सा रीरमाम।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां संयोज्य प्राणादि रश्मियों के साथ संयुक्त होकर नाना प्रकार की संयोग क्रियाओं को निरापद रूप से सब ओर वर्तमान करती हैं। वे प्राण और मनस्तत्त्व के द्वारा प्रवृद्ध वेग और बल से युक्त होकर अन्तरिक्ष में सर्वत्र रमण करती हैं।

(३) कुत॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किं त॑ इ॒त्था।
सं पृ॑च्छसे समरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ अ॒स्मे।।३।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राणों का पालक महान् इन्द्र तत्त्व प्राण तत्त्व से ही उत्पन्न होकर प्राणरूप ही होता है। वह विभिन्न कमनीय रश्मियों से युक्त अच्छे प्रकार से व्याप्त होता हुआ विभिन्न देदीप्यमान वाग् रश्मियों के द्वारा अथवा उनके साथ नाना क्रियाओं और बलों को प्रकाशित करता है।

(४) ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शं सु॒तासः॒ शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्थेमा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से आकर्षण-विकर्षण बलों का वाहक इन्द्र तत्त्व विभिन्न बलवान् छन्द व प्राणादि रश्मियों को प्रभृत मात्रा में धारण करता हुआ सोम रश्मियों को सम्पीडित व प्रकाशित करके नाना प्रकार के संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करता है। वह इन्द्र तत्त्व अनेक छन्द रश्मिसमूहों के प्रति आकर्षणशील होता है।

(५) अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्युजा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व१ः॒ शुम्भ॑मानाः।
महो॑भि॒रेताँ॒ उप॑ युज्महे॒ न्विन्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को अनुकूल सामर्थ्य प्रदान करता हुआ अपने नियन्त्रण के द्वारा परस्पर संयुक्त और प्रदीप्त करता हुआ नाना प्रकार के सृजन कर्मों को विस्तृत और महान् बनाता है।

(६) क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये।
अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः।।६।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आसुर मेघ के हनन करने के लिए विभिन्न मरुद् रश्मियों को अच्छी प्रकार धारण करके देदीप्यमान होकर संयोजक गुणों को धारण करता है। वह तीक्ष्ण वलयुक्त होकर सभी हानिकारक तीक्ष्ण रश्मियों को नष्ट करता है।

(७) भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वलों का वर्षक इन्द्र तत्त्व तुल्य संयोज्यता वाले पदार्थों और वलों के द्वारा नाना प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है। इन सभी कार्यों के लिए वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार की मरुद् रश्मियों को आकर्षित करता हुआ विभिन्न वलों का अर्जन करता है।

(८) वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान्।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {भामः = क्रोधनाम (निघं.२.१३), भाति येन सः (म.द.य.भा.२०.६)} विभिन्न वज्र रश्मियों रूपी वाहु से युक्त मरुद् रश्मियों का पालक इन्द्र तत्त्व विशाल आसुर मेघों को अपने तीव्र तेज और व्यापक वल के द्वारा नष्ट वा नियन्त्रित करके नाना प्रकार की क्रियाओं को सुगम वनता है। वह व्यापक तेजयुक्त मनस्तत्त्व 'घृम्' रश्मियों से संयुक्त प्राण रश्मियों को निरन्तर धारण करता है।

(९) अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नशत् = व्याप्तिकर्मा (निघं.२.१८)} विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व सवसे वलवत्तर होकर विभिन्न उत्पन्न वा उत्पन्न होने वाले पदार्थों में एकरस व्याप्त नहीं होता है, वल्कि वह प्रकृष्ट वल और वेग के साथ उनको अनुकूलता से धारण करता है।

(१०) एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम्।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर व्यापक ओज, वल से युक्त होता है। वह मनस्तत्त्व के द्वारा प्रेरित होता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त और नियन्त्रित करता है।

(११) अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः।।११।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां नाना व्यापक छन्द रश्मिसमूहों के तेजस्वी रूप द्वारा इन्द्र तत्त्व को सक्रिय करती हैं। वे आशुगामी मरुद् रश्मियां सुन्दर संयोगादि कर्मों के लिए वलवान्, व्यापक और प्रकाशित इन्द्र तत्त्व को विस्तृत करती हैं।

(१२) एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम्।।१२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों को आकर्षित व धारण करता हुआ उनके तेज के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को तेज और गति से युक्त करके तेजस्वी रश्मियों के द्वारा आच्छादित करता है।

(१३) को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखींरच्छा सखायः।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम्।।१३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उन उपर्युक्त मरुद् रश्मियों को सर्वत्र ही प्राण तत्त्व तेजयुक्त करता है। वे दोनों प्रकार की रश्मियां मिलकर अद्भुत् सामर्थ्य प्राप्त करके मनस्तत्त्व के सान्निध्य से आशुगति प्राप्त करके नाना व्यवहारों को सम्पादित करती हैं।

(१४) आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओ षु वर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत्।।१४।।

इसका छन्द, भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां एक-दूसरे का परिक्रमण करके संचरित होती हुई सूत्रात्मा वायु रश्मियों को सब ओर से धारण करके विभिन्न क्रियाशील तेजस्वी रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। इन रश्मियों का संग्रह करके इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशित होता हुआ नाना पदार्थों को प्रकाशित करता है।

(१५) एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्।।१५।।

इसका छन्द पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न तेजस्विनी मरुद् रश्मियां प्रकाशित और सतत-कर्मा इन्द्र तत्त्व से सतत संगत रहती हैं। वे विभिन्न बल और क्रियाओं के विस्तार के लिए सब पदार्थों में व्याप्त होकर उनमें नाना प्रकार के वर्जक बल उत्पन्न करके उन्हें दीर्घायु प्रदान करती हैं।

इस उपर्युक्त सूक्त की नवमी ऋचा के तृतीय पाद "न जायमानो नशते न जातो" में 'जनी प्रादुर्भावे' धातु विद्यमान होने से इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

उपर्युक्त सूक्त "कया शुभा" पदों के प्रारम्भ होने से कारण 'कया शुभीयम्' कहलाता है। इस सूक्त की रश्मियां विशेषरूप से प्रकाशित होती हुई नाना परमाणु और रश्मि आदि पदार्थों को संगत और विस्तृत करती हैं, जिससे नाना प्रकार की सृजन प्रक्रियाएं विस्तृत होती हैं। इस कारण इस सूक्त को 'संज्ञान' एवं 'सन्तनि' कहा गया है। इस सूक्त के प्रभाव से इन्द्र तत्त्व, विभिन्न मरुद् रश्मियां एवं अगस्त्य संज्ञक ऐसे परमाणु, जो विभिन्न असुरादि रश्मियों की बाधा से मुक्त हो चुके होते हैं, परस्पर विशेष रूप से संगत होते हैं। वस्तुतः विभिन्न लोकों के अन्दर चल रही विभिन्न क्रियाओं को निरन्तरता प्रदान करने के लिए इन उपर्युक्त इन्द्र, मरुदादि पदार्थों को संगत और समन्वित रखने के लिए ही इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इन सूर्यादि लोकों में जो भी क्रियाएं हो रही होती हैं, उनमें किसी भी विसंगति व निष्क्रियता आदि दोषों को दूर करने के लिए ही इन रश्मियों की उत्पत्ति होती है।।

यह उपर्युक्त सूक्त आयुष्य है, इसका तात्पर्य यह है कि इसकी सहायता से विभिन्न संयोज्य परमाणु नाना प्रकार की प्राण रश्मियों को धारण करने और उनके साथ संगत होने में समर्थ होते हैं।

इस कारण जो भी संयोज्य परमाणु किसी अन्य परमाणु वा प्राण रश्मियों को धारण वा आकर्षित करना चाहते हैं अथवा अपनी क्रियाओं को निरन्तरता प्रदान करना चाहते हैं, तब इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल में दस (१०) विविध त्रिष्टुप् और ५ पंक्ति रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से सूर्यादि लोकों में विभिन्न बलों, विशेषकर विद्युत् चुम्बकीय बलों एवं नाभिकीय बलों को संरक्षित करने में विशेष सहयोग मिलता है। तारों के अन्दर होने वाली नाभिकीय संलयन एवं अन्य विभिन्न प्रकार की क्रियाओं तथा इनमें कार्यरत विभिन्न प्रकार के बलों में किसी भी क्षीणता की आशंका को दूर करने के लिए ही ये छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। तारों के अन्दर भी डार्क एनर्जी का यत्किंचित् प्रभाव रहता ही है, जो विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को बाधित कर सकता है। उस बाधा को दूर करने के लिए ये छन्द रश्मियां इन्द्र तत्त्व को बल प्रदान करके उस प्रभाव को दूर करती हैं। किसी भी तारे के अन्दर विद्युदावेशित कणों का घनत्व समान नहीं होता, बल्कि यह कहीं सघन और कहीं विरल होता हुआ विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों के नाना समूह और धाराओं को उत्पन्न करता है। विभिन्न मरुद् रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होकर नाना प्रकार की तेजस्विनी रश्मियों को उत्पन्न करती हैं, जिसके कारण विद्युत् बलों और धाराओं में वृद्धि व निरन्तरता बनी रहती है।।

५. 'त्यं सु मेषं महया स्वर्विदमिति' सूक्तमत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिति रथवत् सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
तदु जागतं, जगत्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति, तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते, तस्माज्जगतीषु निविदं दधाति।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते,-त्रैष्टुभानि च जागतानि च, मिथुनं वै पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।

व्याख्यानम्- आङ्गिरसः सव्य ऋषिः अर्थात् सूत्रात्मा वायु से सम्पीडित प्राण रश्मि विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.५२ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः।।१।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के साथ असंख्य मरुद् रश्मियां अपनी विविध सामर्थ्य और क्रियाओं के द्वारा आशुगामी रक्षणादि क्रियाओं के लिए नाना प्रकार की मास रश्मियों को प्रवाहित करती हैं, जिससे वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार की रमणीय वज्ररूप रश्मियों से व्याप्त होकर सब ओर विविध प्रकार की क्रियाओं को सम्पादित करता है।

(२) स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।
इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न धारक बलों से सम्पन्न पदार्थों में अच्युत इन्द्र तत्त्व पदार्थ की धाराओं को धारण करता हुआ आसुर मेघों को नष्ट करता है। वह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को बार-२ बलों से पूर्ण करते हुए बढ़ाता हुआ विभिन्न संयोज्य पदार्थों को सक्रिय व संयुक्त करता है।

(३) स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {द्वरः = यो द्वरति आवृणोति सः (म.द.भा.)। वव्रः = कूपनाम (निघं.३.२३)} सुप्रकाशित लोकों में वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार के आवरक व्यवहारों में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आवृत्त व सक्रिय करता हुआ सुन्दर तेजयुक्त छन्दादि रश्मियों को संयोजक बलों से पूर्ण करता है। वह वरणीय दीप्तियों के द्वारा उत्तम क्रियाओं में नाना पदार्थों को युक्त करता है।

(४) आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ः स्वा अभिष्टयः।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सद्म = संग्रामनाम (निघं.२.१७), गृहनाम (निघं.३.४)} **विभिन्न सूक्ष्म मरुद् रश्मियां अवकाश रूप आकाश में निष्कम्प परन्तु समर्थ संघात के रूप में समुद्र अर्थात् आकाश तत्त्व के रूप में स्थिर होती हैं।** यह आकाश तत्त्व कुटिलतारहित रक्षण, गति आदि से युक्त होकर शोषक बल सम्पन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा विभिन्न संयोग क्रियाओं में इन्द्र तत्त्व को संगत और पूर्ण करने के लिए अनुकूलता से स्थित होता है।

(५) अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः।।५।।

इसका छन्द जगती होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से बलवान् वज्र रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व असुर रश्मियों के साथ संघर्ष करते हुए {बलः = मेघनाम (निघं. १.१०)} आसुर मेघों के ऊपर विद्यमान आकाश तत्त्व आदि की तीन परिधियों को सब प्रकार से विदीर्ण करता है, जिसके कारण आसुर मेघ से आच्छादित देव पदार्थ सुरक्षित प्रवाहित होने लगता है।

(६) परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम्।।६।।

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के बल और दीप्ति प्रत्येक पदार्थ का सेवन करते हुए उसे प्रकाशित करते हैं। आकाश में विशाल आसुर मेघ विभिन्न तन्मात्राओं को अवरुद्ध कर देता है, उसे इन्द्र तत्त्व नष्ट वा छिन्न-भिन्न करके तन्मात्राओं को मुक्त करता है।

(७) ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम्।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सबकी वर्धक प्राणापान रश्मियों को जलाशय की तरंगों की भांति पूर्ण रूप से प्राप्त करता है। वह तीक्ष्ण वज्र रश्मियों से विभिन्न पदार्थों का छेदन करके उन्हें संयोज्य परमाणुओं के रूप में विभक्त करता है।

(८) जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे।।८।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न क्रिया और बलों का धारक इन्द्र तत्त्व आसुर मेघों को नष्ट करके विभिन्न प्राण रश्मियों और सूत्रात्मा वायु को पार्थिव परमाणुओं के साथ संगत करके उनमें आकर्षण प्रतिकर्षण बलों को धारण करता है।

वह तेजस्वी वज्र रश्मियों को धारण करके आकाश में सूर्यादि लोकों को उत्पन्न व क्रियाशील करने के लिए नाना प्रकार के व्यवहार करता है।

(९) बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु॥९॥

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अमः = गृहनाम (निघं.३.४)} शुद्ध तेजयुक्त परमाणुओं के साथ संगत आशुगामी मरुद् रश्मियां इन्द्र तत्त्व में व्याप्त होकर व्यापक तेजयुक्त द्युलोकों के केन्द्रीय भाग को विविध छन्द रश्मियों के द्वारा प्रकाशित करती हैं। विभिन्न पदार्थ कम्पन करते हुए उन केन्द्रीय भागों की ओर आरोहण करके उनके तेज की रक्षा करते हैं।

(१०) द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः॥१०॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित पदार्थ को रोकने वाले आसुर मेघों को अपनी वलकारिणी तीव्र गर्जनायुक्त वज्र रश्मियों से कंपाता हुआ पृथिवी और द्यु आदि लोकों को सक्रिय करता है।

(११) यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत्॥११॥

इसका छन्द विराड् जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {बर्हणा = सर्वसुखप्रापिकया क्रियया (म.द.भा.)। मघम् = मंहतेर्दानकर्मणः (नि.१.७)} १० प्राण रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार की संयोग क्रियाओं से सम्पन्न होकर अपनी वलयुक्त प्रापक क्रियाओं से द्यु तथा पृथिवी आदि लोकों को अनुकूलतापूर्वक प्रकट करता है। वह विभिन्न आकर्षक और प्रतिरोधक वलों को विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं में व्याप्त करता है।

(१२) त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्॥१२॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सर्वोपरि नियन्त्रक इन्द्र तत्त्व अति तीक्ष्ण मनस्तत्त्व से सम्पन्न होकर अपने ऐश्वर्य के द्वारा आकाश में व्याप्त लोकों की रक्षा एवं उत्पत्ति करता है। वह विभिन्न वलों को मापता हुआ अनुकूलता से धारण करता है।

(१३) त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्॥१३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व बृहती रश्मियों के साथ मिलकर पृथिवी और आकाश आदि लोकों का परिमाण करता एवं महान् वलों का पालन करता है। वह अन्तरिक्ष में विद्यमान सभी लोकों को अपनी नित्य व्याप्ति से वल आदि के द्वारा परिपूर्ण करता है।

(१४) न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥१४॥

इसका छन्द जगती होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह विशेष

क्रियाशील इन्द्र तत्त्व अपनी अनुकूल व्याप्ति के द्वारा द्यु एवं पृथिवी आदि लोकों की परिधियों के बाहर भी व्याप्त होता है। वह अपनी बल रश्मियों के द्वारा संघर्षरत परमाणु आदि पदार्थों के अन्दर व्याप्त होकर उन्हें गतिशील करता हुआ सभी सृजन क्रियाओं में अनुकूलता से व्याप्त करता है।

(१५) आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ।।१५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तेजस्विनी रश्मियों के प्रहार से आसुर तत्त्वों के बलों का हरण करता और विभिन्न संघात संघर्ष क्रियाओं में विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा सभी प्रकाशित परमाणुओं को नित्य प्रकाशित करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा के तृतीय पाठ "अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथम्" पद विद्यमान होने से यह सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मि-समूह 'रथवत्' माना गया है। इसका 'रथवत्' होना ही इसकी उत्पत्ति को सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष का सूचक सिद्ध करता है।।

यहाँ ग्रन्थकार महर्षि ने उपर्युक्त सूक्त को 'जागत' कहा है। इसका कारण यह है कि इसमें ९ जगती और ६ त्रिष्टुप् ऋचाएं हैं। इस कारण प्रधानता के आधार पर इसे जागत कहा गया है। ये जगती छन्द रश्मियां इस अन्तिम त्र्यह के मध्यन्दिन सवन की वाहक हैं अर्थात् **ये जगती रश्मियां इस त्र्यह में विद्यमान सभी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का वहन करती हैं।** जैसा कि हम पूर्व त्र्यह में लिख चुके हैं कि उस काल में त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को गायत्री छन्द रश्मियां वहन करती हैं और उन वाहिका गायत्री छन्द रश्मियों के अन्दर निविद रश्मियां व्याप्त होती हैं। **इसी प्रकार इस चरण में ये निविद् रश्मियां त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की वाहिका जगती छन्द रश्मियों में व्याप्त होती हैं।** त्रिष्टुप् रश्मियों का वहन करना और निविद् रश्मियों की व्याप्ति के विषय में पूर्व त्र्यह के समान होती है। इस कारण पूर्व प्रकरण अवश्यमेव पठनीय है, जहां गायत्री छन्द रश्मियों द्वारा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के वहन का विधान किया गया है।।

यहाँ ग्रन्थकार का मत है कि विभिन्न सूक्त मिथुन रूप में प्रकाशित होते हैं। इसका आशय है कि विभिन्न सूक्तस्थ छन्द रश्मियां परस्पर विशेष रूप में व्यवस्थित व संयुक्त होकर प्रकाशित व कार्यशील होती हैं। उपर्युक्त सूक्त में विद्यमान त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियां मिथुन रूप में ही प्रकाशित होती हैं। ये मिथुन छन्दोम अवस्था का रूप होते हैं और ये छन्दोम रूप ही पशु अर्थात् हव्यरूप उत्पन्न करते हैं। इस विषय में एक अन्य तत्त्ववेत्ता ऋषि को उद्धृत करना अति आवश्यक समझते हैं-

"पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकादशभिः स एकया, चतुर्दशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स दशभिः, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकादशभिः स एकया स तिसृभिः"।।१।। (तां.३.९.१)

"चतुर्दशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स दशभिस्स एकया, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स एकादशभिः, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकादशभिस्स एकया स तिसृभिर्न्निर्मध्या"।। (तां.३.१०.१)

"पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स एकादशभिस्स एकया, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स एकादशभिश्चतुर्दशभ्यो हिङ्करोति स दशभिः स एकया स तिसृभिः"।। (तां.३.११.१)

इन कण्डिकाओं में उपर्युक्त सूक्त में वर्णित त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के प्रकाशित होने के तीन भिन्न-२ प्रकारों का वर्णन है। इस कारण ६ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां कुल ३ प्रकार से प्रकाशित होकर १८ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट होती है। इन तीनों कण्डिकाओं का अभिप्राय क्रमशः निम्नानुसार है-

(१) त्रिष्टुप् छन्द रश्मि १५, १४ एवं १५ अक्षर रूप अवयवों के तीन विभागों के रूप में प्रकाशित होती है। इसका भी प्रकार यह है कि तीन अक्षरों के पश्चात् एक 'हिम्' रश्मि, पुनः ११ अक्षर के पश्चात् १ 'हिम्' रश्मि पुनः १ अक्षर के पश्चात् १ 'हिम्' रश्मि का एक भाग। पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १० अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह दूसरा भाग।

पुनः ११ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह तीसरा भाग।

(२) द्वितीय रूप में त्रिष्टुप् छन्द रश्मि १४, १५, एवं १५ अक्षरों के तीन विभागों से युक्त होती है, जो इस प्रकार है- प्रथम तीन अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १० अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि एवं १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह प्रथम भाग। पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ११ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह द्वितीय भाग। पुनः ११ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह तीसरा भाग।

(३) तृतीय रूप में त्रिष्टुप् छन्द रश्मि १५, १५ एवं १४ अक्षरों के विभाग रूप में उत्पन्न होती है, जो इस प्रकार है- प्रथम ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ११ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह प्रथम भाग। १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ११ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह दूसरा भाग। १० अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह तीसरा भाग।

अब जगती छन्द रश्मियों के विभिन्न प्रकार से प्रकाशित होने के विषय में उपर्युक्त महर्षि के वचन को पुनः उद्धृत करते हैं-

"षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स द्वादशभिः स एकया, षोडशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स द्वादशभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स द्वादशभिस्स एकया स तिसृभिः"।। (तां.३.१२.१)

"षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स दशभिस्स तिसृभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभिस्स दशभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स दशभिः स तिसृभिः स तिसृभिर्न्नेदीयः संक्रमा"।। (तां.३.१३.१)

इन कण्डिकाओं से स्पष्ट होता है कि पूर्वोक्त सूक्त की ६ जगती रश्मियां २ भिन्न-२ प्रकारों से प्रकाशित होकर कुल १८ रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं। ये दो भिन्न-२ प्रकार निम्नानुसार हैं-

(१) इस रूप में जगती छन्द रश्मि १६, १६, १६, अक्षर के तीन भागों में इस प्रकार विभाजित होती हैं- सर्वप्रथम ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १२ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह प्रथम भाग। पुनः १ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १२ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह दूसरा भाग। पुनः १२ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः१ अक्षर के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह तृतीय भाग।

(२) जगती छन्द रश्मि १६, १६, १६ के तीन भागों में अन्य प्रकार से प्रकाशित होती है। प्रथम ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १० अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह प्रथम भाग। पुनः ३ के पश्चात् 'हिम्' रश्मि पुनः ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः १० अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह द्वितीय भाग। पुनः १० अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि पुनः ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, पुनः ३ अक्षरों के पश्चात् 'हिम्' रश्मि, यह तीसरा भाग।

हमारे मत में ताण्ड्य महाब्राह्मण के उपर्युक्त वचनों से यह भी संकेत मिलता है कि द्यौ लोकों में 'चतुश्चत्वारिंश' एवं 'अष्टाचत्वारिंश' स्तोमरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति भी इसी प्रकार 'हिम्' रश्मियों के साथ होती है और इन स्तोमों में वे ही गायत्री छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं, जिनका वर्णन खण्ड ४.१६ में त्रिवृत् आदि स्तोमों में किया गया है। इन स्तोमों के भी छन्द रश्मियों की भांति मिथुन उत्पन्न होते हैं। ये स्तोम भी क्रमशः त्रिष्टुप् और जगती छन्द रश्मियों के समान प्रभाव वाले होते हैं। उपर्युक्त १८, १८ त्रिष्टुप् और जगती के रूपों से एक-२ करके कुल १८ मिथुन उत्पन्न होते हैं। वे मिथुन भी छन्द रूप ही होते हैं तथा **वे मिथुन छन्दोम अर्थात् दिग् रूप होते हैं** अर्थात् इन उपर्युक्त छन्द रश्मियों के प्रभाव से दूसरी अनेक छन्द वा मरुदादि रश्मियों के साथ क्रिया करके विभिन्न लोकों की घूर्णन एवं परिक्रमण गतियां निर्मित होने लगती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही ९ जगती एवं ६ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर तारों के अन्दर इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् धाराओं एवं विद्युत् बलों को तीक्ष्ण करती हैं। इन तारों के अन्दर विद्युत् कणों एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के अवशोषण और उत्सर्जन की प्रक्रिया सतत तीव्र बनी रहती है। डार्क एनर्जी का भी दृश्य पदार्थ से संघर्ष चलता रहता है। **विद्युदावेशित कणों के चारों ओर प्राणापान के रूप में विद्युत् क्षेत्र कई आवरणों के रूप में विद्यमान होता है। सूक्ष्म मरुद् रश्मियां जब निष्कम्प होकर संघात के रूप में प्रकट होती हैं, वे ही आकाश (space) का रूप धारण करती हैं।** विभिन्न आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों में आकाश तत्त्व विद्युत् के साथ क्रिया करके सरल गतियों को प्राप्त करता है। जब गर्म विद्युत् तरंगों का डार्क एनर्जी के ऊपर प्रहार होता है, उस समय डार्क एनर्जी के ऊपर आकाश तत्त्व की तीन परतों को विदीर्ण किया जाता है। उसके पश्चात् डार्क एनर्जी के बन्धन से दृश्य पदार्थ मुक्त होता है। विभिन्न विद्युत् बलों के द्वारा नाना प्रकार के आयन टूटते और बनते रहते हैं। विद्युत् तरंगों में अर्थात् **विद्युदावेशित कणों के ऊपर प्राणापान रश्मियां तालाब (समुद्र) में जल की लहरों के समान कम्पन करती रहती हैं।** विद्युत् बलों की क्रियाविधि में सूत्रात्मा वायु की भी अनिवार्य भूमिका होती है। विभिन्न मरुद् रश्मियां विभिन्न विद्युदावेशित कणों को कंपाती हुई तारों के केन्द्रीय भाग की ओर ले जाती हैं। सभी प्रकार के बलों (गुरुत्वाकर्षण बल सहित) में विद्युत् की अनिवार्य भूमिका होती है। **विद्युत् के साथ बृहती छन्द रश्मियां मिलकर गुरुत्वाकर्षण बल को उत्पन्न करती हैं। तारों के अन्दर जगती रश्मियां त्रिष्टुप् रश्मियों के वाहन का कार्य करती हैं।** तारों के अन्दर उपर्युक्त ९ जगती छन्द रश्मियां दो प्रकार के रूपों अर्थात् कुल १८ रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं। इसी प्रकार ६ त्रिष्टुप् रश्मियां ३ प्रकार अर्थात् कुल १८ रूपों में प्रकट होकर जगती रश्मियों के रूपों के साथ मिलकर कुल १८ मिथुनों का निर्माण करती हैं। इन रूपों और मिथुनों के विषय में व्याख्यान भाग अवश्य द्रष्टव्य है। इन विविध रूपों के कारण विभिन्न लोकों के घूर्णन और परिक्रमण मार्गों के निर्माण में सहायता मिलती है।।

६. त्वामिद्धि हवामहे, त्वं ह्येहि चेरव इति बृहत्पृष्ठं भवति सप्तमेऽहनि।।
यदेव षष्ठस्याह्नस्तत्।।
यद्वै रथन्तरं, तद्वैरूपं, यद्बृहत्, तद्वैराजं; यद्रथन्तरं, तच्छाक्वरं; यद्बृहत्, तद्रैवतम्।।
तद्यद्बृहत्पृष्ठं भवति, बृहतैव तद् बृहत्प्रत्युत्तभ्नुवन्त्यस्तोमकृन्तत्राय।।
यद्रथन्तरं स्यात् कृन्तत्रं स्यात्।।
तस्माद् बृहदेव कर्तव्यम्।।
'यद्वावानेति' धाय्याऽच्युता।।
'अभि त्वा शूर नोनुम इति' रथन्तरस्य योनिमनु निवर्तयति, राथन्तरं ह्येतदहरायतनेन।।
पिबा सुतस्य रसिन इति' सामप्रगाथ; पिबवान् सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
त्य मू षु वाजिनं देवजूतमिति ताक्ष्यो॑ऽच्युतः।।१।।

व्याख्यानम्-

त्वामिद्धि हवा॑महे साता वाज॑स्य का॒रवः॑।
त्वां वृ॒त्रेष्वि॑न्द्र सत्प॑तिं नर॒स्त्वां काष्ठा॒स्वर्व॑तः।।१।।

स त्वं न॑श्चित्र वज्रहस्त धृष्णु॒या म॒हः स्त॑वा॒नो अ॑द्रिवः।
गामश्वं॑ र॒थ्य॑मिन्द्र सं कि॑र स॒त्रा वाजं॒ न जि॒ग्युषे॑।।२।। (ऋ.६.४६.१-२)

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये।।७।।

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे।।८।। (ऋ.८.६१.७-८)

इन दोनों प्रगाथ रश्मियों के विषय में ४.३१.६ द्रष्टव्य है। इन दोनों प्रगाथ रश्मियों को 'बृहत्पृष्ठ' कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि ये चारों छन्द रश्मियां सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों में व्यापक रूप से प्रवाहित होती हुई उन्हें आधार प्रदान करती हैं। आचार्य सायण ने इन चारों रश्मियों को निष्केवल्य शस्त्र कहा है। इधर ग्रन्थकार ने अन्यत्र लिखा है- "आत्मा यजमानस्य निष्केवल्यं" (ऐ.८.२)। इससे सिद्ध होता है कि ये चारों छन्द रश्मियां सम्पूर्ण द्युलोक में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में आत्म-रूप होकर सतत गमन करती रहती हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब सप्तम अहन् का स्वरूप प्रथम अहन् के स्वरूप के समान कहा गया है, तब इस काल में प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल के समान रथन्तर संज्ञक रश्मियां न उत्पन्न होकर बृहत् संज्ञक पृष्ठ रश्मियां क्यों उत्पन्न होती हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि षष्ठ अहन् के समान ही "त्वामिद्धि हवामहे.... इत्यादि प्रगाथ रश्मियां यहाँ भी बृहत्पृष्ठ रूप से उत्पन्न होती हैं। यह इसका प्रथम अहन् से भेद है।।+।।

इस कण्डिका के विषय में ४.१३.२ देखें।।

उपर्युक्त बृहत्पृष्ठ संज्ञक छन्द रश्मियों के प्रभाव को दर्शाते हुए कहते हैं कि जो ये बृहत्पृष्ठ संज्ञक छन्द रश्मियां होती हैं, वे विभिन्न छन्द रश्मियों को आधार प्रदान करती हुई सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। इनको इस व्याप्ति से पूर्व अहन् अर्थात् देवदत्त प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न बृहत रश्मियां, जो सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल तक दुर्बल हो जाती हैं, पुनः वे सक्रिय हो उठती हैं किंवा उनके स्थान पर पुनः ये रश्मियां उत्पन्न हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि पूर्वोत्पन्न अनेक प्रकार के स्तोम रूप छन्द रश्मिसमूह, जो नाना बाधक तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा छिन्न-भिन्न होने की स्थिति को प्राप्त होने लगते वा लग सकते हैं, इन बृहत् छन्द रश्मियों के प्रभाव से इस बाधा से बच जाते हैं वा बच सकते हैं। हम पूर्व में अवगत हो चुके हैं कि द्वितीय त्र्यह के प्रथम अहन् अर्थात् चतुर्थ अहन् में भी इसी बृहत् पृष्ठ रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है, जहाँ इन्हें विभिन्न छन्द रश्मियों की योनि अर्थात् कारण वा निवास स्थान कहा है। यहाँ ये रश्मियां अन्य रश्मियों का आधार रूप होती हैं, जो उनकी सुरक्षा भी करती हैं। यहाँ महर्षि कहते हैं कि यदि यहाँ बृहत् रश्मियों के स्थान पर रथन्तर रश्मियों की उत्पति होवे, तब षष्ठ अहन् व सप्तम अहन् के मध्य विच्छेद हो जाता है, जिससे द्यु आदि लोकों के अन्दर विभिन्न क्रियाओं में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। इस कारण दोनों चरणों के मध्य व्यवधान उत्पन्न न होने देने के लिए रथन्तर के स्थान पर बृहत् संज्ञक रश्मियां ही उत्पन्न होती हैं, जिससे सभी क्रियाओं व छन्दादि रश्मियों की निरन्तरता व सक्रियता बनी रहती है।।+।।+।।

यह रश्मि अच्युत होने से इसका व्याख्यान पूर्व में द्रष्टव्य है।।

इसका व्याख्यान ५.१.७ में देखें।।

इस साम प्रगाथ का व्याख्यान ४.२६.८ में देखें। इस प्रगाथ में 'पा' धातु विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

यह अच्युत सूक्त पूर्व में अनेकत्र व्याख्यात है। अतः इसका व्याख्यान वहीं देखें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- समान प्राण के उत्कर्ष काल में पूर्वकाल के समान सूर्यादि लोकों में अनेक प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर सभी प्रक्रियाओं को यथावत् बनाए रखती हैं। इन प्रक्रियाओं में नाभिकीय संलयन ऊर्जा का उत्सर्जन आदि सभी क्रियाएं सम्मिलित हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग

अवश्य पढ़ें।।

ॐ इति २३.१ समाप्तः ॐ

꧁ अथ २३.२ प्रारभ्यते ꧂

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचमिति' सूक्तं, प्रेति सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।। तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।
'अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिति' सूक्तं; यद्वाव प्रेति तदभीति सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- इस सूक्त का व्याख्यान ३.२४.४ में देखें। इस सूक्त में 'प्र' उपसर्ग विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.१३.३ में देखें।।

इस सूक्त का व्याख्यान ४.१६.४ में देखें। इस सूक्त में 'प्र', 'अभि' उपसर्ग के विषय में ग्रन्थकार का मत है-
"यद्वाव प्रेति तदभीति" अर्थात् जो 'अभि' उपसर्ग है, वह 'प्र' उपसर्ग के समान प्रभावकारी होता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि 'अभि' उपसर्ग के प्रभाव से विभिन्न क्रियाएं 'अभितः' अर्थात् सब ओर से होने लगती हैं और सब ओर से होना प्रकृष्ट रूप से होने के समान ही है। इस कारण 'अभि' उपसर्गयुक्त यह सूक्तरूप रश्मिसमूह 'प्र' उपसर्ग युक्त के समान प्रभावी होता है। इस सूक्त के 'प्र' उपसर्गयुक्त होने से इसकी उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल में १५ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का १ समूह तथा ६ त्रिष्टुप् एवं ६ जगती छन्द रश्मियों को दूसरा समूह उत्पन्न होता है। इनके प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के समृद्ध होने से तारों के अन्दर विद्युत् चुम्बकीय एवं नाभिकीय बलों में अति तीव्रता से वृद्धि होने लगती हैं किंवा इन बलों में क्षीणता नहीं आने पाती है। नाभिकीय संलयन तथा अन्य अनेक प्रकार की क्रियाएं इन तारों के अन्दर संरक्षित होती हैं। इन तारों के अन्दर डार्क एनर्जी से संघर्ष सदैव चलता रहता है। **तारों के आकार को सुनिश्चित रखने के लिए भी विद्युत् और गुरुत्व बल सदैव कार्यरत रहते हैं।** विद्युत् के कारण ही तारों में सदैव विस्फोट एवं घोर गर्जन होते रहते हैं तथा विद्युदावेशित पदार्थ की धाराएं उनके अन्दर सतत बहती रहती हैं। **तारों के अन्दर डार्क एनर्जी और डार्क मैटर अपनी सूक्ष्म अवस्था में अपने कारणरूप मनस्तत्त्व में व्याप्त तथा शिथिल अवस्था में रहते हैं।** ये सभी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न विभिन्न क्रियाओं को दृढ़ता से धारण करती रहती हैं। इस समय विद्युत् के विशेष तीव्र होने के कारण तारों के अन्दर होने वाली क्रियाएं मन्द नहीं पड़ती। तारों के घूर्णन और परिक्रमण की गति भी यथावत् बनी रहती है। उनके परिक्रमण व घूर्णन के मार्ग भी नियत बने रहते हैं। **इस प्रकार सभी तारे विद्युत् के आश्रय में ही विद्यमान होते हैं।।**

२. तदु जागतं, जगत्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति; तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माज्जगतीषु निविदं दधाति।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते,-त्रैष्टुभानि च जागतानि च; मिथुनं वै पशवः पशवश्छन्दोमाः पशूनामवरुद्ध्यै।।
'तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देव सवितरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ; राथंतरेऽहनि

सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- प्रथम दोनों कण्डिकाओं का व्याख्यान पूर्वखण्ड में देखें। यहाँ भी पूर्वखण्ड की भांति १५ छन्द रश्मियों, जिनमें ६ जगती और ६ त्रिष्टुप् विद्यमान हैं, का सूक्त प्रधानता के आधार पर जागत कहा गया है, पूर्वखण्ड में भी इन छन्द रश्मियों का यही अनुपात था। पूर्वखण्ड में जिस प्रकार जगती व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के नाना रूप और मिथुन दर्शाये गये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी इनके नाना रूप और मिथुन उत्पन्न होते हैं। विशेष वहीं द्रष्टव्य है।।+।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.८.३ में द्रष्टव्य है। भेद केवल यह है कि वहाँ यह राथन्तरी तृचद्वय पञ्चम अहन् अर्थात् व्यान प्राण के उत्कर्ष का सूचक है और यहाँ ये ही तृच सप्तम अहन् के सूचक हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- भाष्यसार व्याख्यान भाग में दर्शाये हुए पूर्व प्रकरणों के अनुसार समझें।।

३. 'अभि त्वा देव सवितरिति' सावित्रं, यद्वाव प्रेति तदभीति, सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
'प्रेतां यज्ञस्य शंभुवेति' द्यावापृथिवीयं; प्रेति सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
'अयं देवाय जन्मनः' इत्यार्भवं जातवत्सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- आजीगर्तिः शुनःशेपः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातिः ऋषि से सविता भगो वा देवता वाले ऋ. १.२४.३-५ तृच की उत्पत्ति होती है। आजीगर्तिः शुनःशेपः के स्वरूप के विषय में ५.१२.८ द्रष्टव्य है। इस ऋषि प्राण के अतिरिक्त ऐसी क्रियाशील वायु रश्मियां, जो विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिलती हुई होती हैं अथवा उनको उत्पन्न करने में समर्थ होती हैं, से इस तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन्भागमीमहे।।३।।

इसका छन्द गायत्री होने से इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से वायु और विद्युत् रूपी सविता का विशेष संगम और संवर्धन होता है। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् परस्पर संगत और प्रकाशित होकर वरणीय पार्थिव आदि परमाणुओं को नियन्त्रित और आकर्षित करते हैं।

(२) यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {शशमानः = अर्चतिकर्मा (निघं. ३.१४)} वे वायु और विद्युत् प्रतिकर्षण वलविहीन होकर प्रकाशित होते हुए अपनी हरणशील रश्मियों के द्वारा नाना परमाणुओं को धारण और संगत करते हैं।

(३) भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् संयोज्य परमाणुओं का यथायोग्य संयोग और विभाग करने के लिए उनमें उत्कृष्टता से व्याप्त होकर अपने रक्षण, कान्ति और गति आदि से विभिन्न उत्तम छन्द व मरुद् रश्मियों को प्रवृत्त करते हैं।

इस तृच की प्रथम ऋचा में "अभि" उपसर्ग विद्यमान है, जो पूर्वोक्तानुसार 'प्र' उपसर्ग के समान प्रभाव वाला होता है। इस कारण इस तृच रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर गृत्समद ऋषि अर्थात् प्राणापान के संयुक्त रूप से द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा देवताक ऋ.२.४१.१९-२१ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्रेतां यज्ञस्यं शंभुवां युवामिदा वृंणीमहे। अग्निं चं हव्यवाहंनम्।।१९।।

इसका छन्द गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से विभिन्न हविरूप रश्मियों को धारण करने वाले विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित कण वा लोक तीव्र तेज और बल से युक्त होते हैं। इसके अन्य प्रभाव से **विभिन्न प्रकार के परमाणु आकाश तत्त्व के साथ सहजता से संगत होकर अग्नि के परमाणुओं को सब ओर से उत्पन्न करते हैं।**

(२) द्यावां नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशंम्। यज्ञं देवेषु यच्छताम्।।२०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {सिध्रम् = साधनम् (नि.६.३८), शीघ्रताम् (म.द.ऋ.भा.१.१७३.११)} वे प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु आकाश तत्त्व के साथ सम्बद्ध होते हुए विभिन्न प्राणादि रश्मियों से शीघ्रतापूर्वक संगत होते हैं।

(३) आ वांमुपस्थंमद्रुहा देवाः सींदन्तु यज्ञियांः। इहाद्य सोमंपीतये।।२१।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों के अन्दर विद्युत् और आकाश तत्त्व नाना प्रकार के पदार्थों को संयुक्त करने के लिए प्रतिकर्षण बल से रहित होकर प्राण रश्मियों के द्वारा निकटता से संगत और व्याप्त होते हैं।

इस तृच में 'प्र' उपसर्ग विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से ऋभवो-देवताक ऋ.१.२० सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अयं देवाय जन्मंने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकांरि रत्नधातंमः।।१।।

इसका छन्द गायत्री होने से इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से {आसया = मुखेन (म.द.भा.)} सूत्रात्मा वायु रश्मियां अपने मुखरूप सूक्ष्म भागों से नाना प्रकार की प्राण रश्मियों को प्रकट करने के लिए अतिशय रमणीय मनस्तत्त्व के द्वारा प्रकाशित व संगत होती हैं।

(२) य इन्द्रांय वचोयुजां ततक्षुर्मनंसा हरीं। शमीभिर्यज्ञमांशत।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां मनस्तत्त्व एवं वाग् रश्मियों से युक्त होकर हरणशील बलों को तीक्ष्ण करके विभिन्न व्यवहारों के द्वारा परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को संगत व नियन्त्रित करती हैं।

(३) तक्षन्नासंत्याभ्यां परिंज्मानं सुखं रथंम्। तक्षंन्धेनुं संबर्दुघाम्।।३।।

इसका छन्द विराड् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से {सबर्दुघा = सर्वान् कामान् प्रपूरिका (म.द.ऋ.भा.३.५५.१६)। सुखम् = शोभनं खं विस्तृतमन्तरिक्षं स्थित्यर्थं यस्मिंस्तम् (म.द.भा.)} अविनाशी प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियों के साथ संगत सब ओर गमन करता हुआ सूत्रात्मा वायु वज्ररूप तथा विभिन्न छन्दादि रश्मियों को विस्तृत और तीक्ष्ण करता है।

(४) युवांना पितरा पुनंः सत्यमंन्त्रा ऋजूयवंः। ऋभवो विष्ट्यंक्रत।।४।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्वापेक्षा अधिक तीक्ष्ण परन्तु न्यून तेजयुक्त होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु सरलता से गति करने वाली अविनाशी सूक्ष्म छन्द रश्मियों के रूप में विद्यमान होकर संयोजक एवं वियोजक प्राणापान रश्मियों को धारण करता है।

(५) सं वो मदा॑सो अग्मतेन्द्रे॑ण च मरुत्व॑ता। आदित्येभिश्च राज॑भिः।।५।।

इसका छन्द पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव लगभग पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह सूत्रात्मा वायु विभिन्न मरुद् रश्मियों एवं अविनाशी प्रकाशित प्राण रश्मियों के साथ संगत इन्द्र तत्त्व के द्वारा सक्रिय और व्याप्त होता है।

(६) उत त्यं च॑मसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृ॑तम्। अक॑र्त चतुरः पुनः।।६।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण प्रकाशित सूत्रात्मा वायु के द्वारा धारित नवीन-२ रश्मियां अपने विभिन्न व्यवहारों से पृथिवी, जल, अग्नि और वायु आदि सभी प्रकार के परमाणुओं के व्यवहारों को सिद्ध करती हैं।

(७) ते नो रत्ना॑नि धत्तन त्रिरा साप्ता॑नि सुन्वते। एक॑मेकं सुशस्तिभिः।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे **सूत्रात्मा वायु रश्मियां सात प्रकार की छन्द रश्मियों को एक-२ करके तीन प्रकार से सम्पीडित करती हैं।** ऐसा करके वे अनेक प्रकार की सुन्दर क्रियाओं के द्वारा नाना रमणीय **रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न व धारण करती हैं।** यहाँ सम्पीडन के तीन प्रकारों में सत्व, रजस् एवं तमस् की प्रधानता की गणना करनी चाहिए।

(८) अधा॑रयन्त वह्नयोऽभ॑जन्त सुकृत्यया॑। भागं देवेषु यज्ञियम्।।८।।

इसका छन्द पिपीलिका मध्यानिचृद्गायत्री होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सबको वहन करने वाली वह्निरूप सूत्रात्मा वायु रश्मियां अनेक प्रकार की श्रेष्ठ क्रियाओं के द्वारा विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों में विचरण करती हुई नाना प्रकार के संगम और नियन्त्रण शक्तियों से युक्त होती हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'जन्मने' पद 'जनीप्रादुर्भावे' धातु से युक्त होने के कारण सम्पूर्ण सूक्तरूप रश्मिसमूह 'जातवत्' माना गया है। इसका 'जातवत्' होना ही इसकी उत्पत्ति के सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक होने का प्रमाण है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- समान प्राण के उत्कर्ष काल में ३-३ तथा ८ गायत्री छन्द रश्मियों के तीन समूहों की उत्पत्ति होती है। इसके कारण विभिन्न प्राण रश्मियों एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों की वृद्धि होकर विद्युत् बलों, विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं विभिन्न कणों की शक्ति में वृद्धि होती है। तारों के अन्दर इनके कारण नाना प्रकार की क्रियाओं के साथ-२ नाभिकीय संलयन की क्रिया में भी वृद्धि होती है। तारों के केन्द्रीय भागों में इन रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न आयनों का समान आवेश होते हुए भी संलयन होने में सहायता मिलती है। तारों के केन्द्रीय भाग में मनस्तत्त्व की भी भूमिका विशेष होती है। इस क्षेत्र में सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ विभिन्न छन्द और प्राण रश्मियों का विशेष सम्बन्ध रहता है, जिसके कारण विद्युत् बलों में भारी वृद्धि होती है। सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को संपीडित करके धनावेशित, ऋणावेशित एवं उदासीन, तीन प्रकार की विद्युत् तरंगों को उत्पन्न करती हैं। सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न प्राण और छन्द रश्मियों के साथ मिलकर सभी प्रकार की क्रियाओं और बलों पर नियन्त्रण रखती हैं।।

४. 'आ याहि वनसा सहेति' द्विपदाः शंसति; द्विपाद्वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै; तद् यद्द्विपदाः शंसति, यजमानमेव तद् द्विप्रतिष्ठं

चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति।।
'ऐभिरग्ने दुवो गिर इति' वैश्वदेवमेति सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
तान्यु गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर आङ्गिरसः संवर्तः ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सम्यक् प्रकार से नाना व्यवहार करने वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष से उषा-देवताक एवं पिपीलिकामध्यागायत्री-छन्दस्क ऋ.१०.१७२ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से {पिपीलिका = पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणः (दै.३.६)} ऊष्मायुक्त कान्ति तीव्र तेज और वल से युक्त होती हुई व्याप्त होती है।

(१) आ यांहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः।।१।।

इसके प्रभाव से ऊष्मा और प्रकाश की विविध रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित सभी प्रकार के परमाणुओं के पृष्ठों को सींचती हैं।

(२) आ यांहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः।।२।।

इसके प्रभाव से वे ऊष्मा एवं प्रकाश रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वसाती हुई सव ओर व्याप्त होकर अपनी विभिन्न क्रियाओं के द्वारा विशाल सूर्यादि लोकों के जीवन काल तक नाना प्रकार के पदार्थों को संगत करती रहती हैं।

(३) पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि।।३।।

इसके प्रभाव से वे उषा रश्मियां विभिन्न संयोज्य परमाणुओं किंवा ऋतु रश्मियों को धारण करते हुए अपनी आदान-प्रदान क्रियाओं को विस्तृत करती हैं। वे उन रश्मि आदि पदार्थों को पुनः-२ धारण करती हुई नाना पदार्थों को संगत करती हैं।

(४) उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता।।४।।

इसके प्रभाव से वे उषा रश्मियां अपने तेज और पराक्रम के द्वारा निष्क्रियता एवं अन्धकार को दूर हटाती हुई नाना प्रकार के व्यवहारों को सम्यग् रूप से संचालित करती हैं।

इन चारों छन्द रश्मियों में दो-२ पाद विद्यमान हैं। इस कारण ये रश्मियां दो प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं। इसी प्रकार पुरुष अर्थात् संयोज्य कण अथवा सूर्यादि लोक भी दो प्रकार की गतियों से युक्त होते हैं। इस कारण ये द्विपदा रश्मियां इन कणों के साथ विशेष रूप से संगत होती हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियां चतुष्पदा होती हैं अर्थात् वे चार प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं। ये मरुद् रश्मियां ही विभिन्न प्रकार के छन्दोम अर्थात् दिशाओं का निर्माण करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि **ये मरुद् रश्मियां विभिन्न लोकों के घूर्णन और परिक्रमण को नियन्त्रित वा संचालित करने में विशेष भूमिका निभाती हैं।** इसी प्रकार ये विभिन्न प्रकार के **परमाणुओं के घूर्णन और परिक्रमण** में भी विशेष भूमिका निभाती हैं। इस वात को ही यहाँ "पशूनामवरुद्ध्यै" से इंगित किया है। इन उपर्युक्त चारों छन्द रश्मियों की उत्पत्ति से दो प्रकार की गतियों से युक्त विभिन्न परमाणु अथवा विभिन्न लोक चार प्रकार की गतियों से युक्त विभिन्न मरुद् रश्मियों में प्रतिष्ठित होते हैं।।

तदनन्तर काण्वो मेधातिथिऋषिः अर्थात् सूत्रात्मा वायु से विश्वेदेवा-देवताक एवं गायत्री छन्दस्क, जिसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सभी देव पदार्थ तीव्र तेज और वल से युक्त होते हैं, उस ऋ.१.१४ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये। देवेभिर्याहि यक्षि च।।१।।

इसके प्रभाव से अग्नि के विभिन्न परमाणु सभी प्रकार की प्राण, छन्द और सोम रश्मियों में व्याप्त होकर द्युलोकों में सब ओर विचरण करते हैं।

(२) आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः। देवेभिरग्न आ गहि।।२।।

इसके प्रभाव से विभिन्न सूत्रात्मा वायु रश्मियां अग्नि के परमाणुओं को प्रकाशित करते हुए अन्य रश्मियों को आकर्षित करती हैं। वे अग्नि के परमाणु नाना प्रकार की प्राण रश्मियों के साथ व्याप्त व उनके द्वारा क्रियाशील होकर नाना प्रकार के कर्मों को प्रकाशित करते हैं।

(३) इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान् मारुतं गणम्।।३।।

इसके प्रभाव से वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां, विद्युत् और वायु तत्त्व, सबके पालक और पोषक प्राण तत्त्व, अग्नि तत्त्व, विभिन्न मास रश्मियों और मरुद् रश्मियों के समुदाय को आकर्षित, संगत और प्रकाशित करती हैं।

(४) प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः। द्रप्सा मध्वश्चमूषदः।।४।।

इसके प्रभाव से {द्रप्सः = स्तोको वै द्रप्सः (गो.उ.२.१२), द्रप्सः संभृतप्सानीयो भवति (नि.५.१४)} प्राण रश्मियों से युक्त विशेष सक्रिय वाग् रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को विशेष सक्रिय करने के लिए उनके द्वारा धारित और भक्षित होकर उन्हें तीव्र बलों से युक्त समूह में परिवर्तित करती हैं। विभिन्न सोम रश्मियां भी उन प्राणयुक्त वाग् रश्मियों को अच्छी प्रकार धारण करती हैं।

(५) ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः। हविष्मन्तो अरङ्कृतः।।५।।

इसके प्रभाव से सभी प्रकार के देव परमाणु नाना प्रकार की हवि रश्मियों से युक्त होकर सुशोभित होते हुए अपने स्वरूप को संरक्षित करते हैं। वे उन विभिन्न छन्दादि रश्मियों, जो सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ संगत होती हैं, के द्वारा प्रकाशित होते हैं।

(६) घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः। आ देवान्त्सोमपीतये।।६।।

इसके प्रभाव से {देवः = ऋतवो वै देवाः (श.७.२.४.२६)} विभिन्न हवि रश्मियों के वाहक अग्नि के परमाणु मनस्तत्त्व से युक्त होकर 'धृम्' रश्मियों को आधार बनाते हुए नाना प्रकार के सोम परमाणुओं का पान करते हैं। वे विभिन्न ऋतु रश्मियों से भी सब ओर से व्याप्त होते हैं।

(७) तान् यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि। मध्वः सुजिह्व पायय।।७।।

इसके प्रभाव से अग्नि के परमाणु संगमनीय परमाणुओं को ऋतु रश्मियों के साथ बढ़ाते हुए उनको विभिन्न पालिका शक्तियों से युक्त करते हैं, जिससे वे प्रकाशित सुन्दर ज्वालाओं से युक्त होकर उत्तम मार्गों पर गमन करते हैं।

(८) ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया। मधोरग्ने वषट्कृति।।८।।

इसके प्रभाव से वे संगमनीय प्रकाशित परमाणु नाना प्रकार की वाग् रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों का पान करके तीव्र और वज्ररूप अग्नि से युक्त होते हैं।

(९) आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः। विप्रो होतेह वक्षति।।९।।

इसके प्रभाव से प्राण तत्त्वरूप होता सूत्रात्मा वायु एवं विभिन्न छन्द रश्मियों में व्याप्त होता हुआ सूर्यादि लोकों के अन्दर ऊष्मा व प्रकाशादि रश्मियों को उत्पन्न करता है।

(१०) विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः।।१०।।

इसके प्रभाव से अग्नि के परमाणु इन्द्र एवं वायु तत्त्व के साथ संगत होकर नाना प्राण रश्मियों को भी साथ में ग्रहण करते हुए सूर्यादि लोकों के सभी स्थानों में नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।

(११) त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज।।११।।

इसके प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व मनु अर्थात् 'हिम्' रश्मि एवं मनस्तत्त्व युक्त प्राण रश्मियों में स्थित होता हुआ नाना प्रकार की आदान-प्रदान क्रियाओं से संयुक्त होकर विभिन्न संयोगादि कर्मों में व्याप्त तथा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का निर्बाध रूप से यजन करता है।

(१२) युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः। ताभिर्देवाँ इहा वह।।१२।।

इसके प्रभाव से {रथम् = रमणीयं सूर्यलोकम् (म.द.ऋ.भा.६.४४.२४)} वह अग्नि तत्त्व सूर्यलोकों के अन्दर ऊंची उठती हुई हरी और लाल रंग की ज्वालाओं के मेल से नाना प्रकार की रश्मियों को अच्छी प्रकार उत्पन्न करता है।

इस उपर्युक्त सूक्त का देवता विश्वेदेवा होने से यह सूक्त अनिरुक्त देवता वाला माना गया है। इस कारण इस अनिरुक्त-देवताक सूक्त की उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस अहन् में

"तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि।।१।।" (ऋ.५.८२.१)

से लेकर इस उपर्युक्त सूक्त तक सभी छन्द रश्मियां वैश्वदेव शस्त्र रूप मानी गई हैं। इनमें से

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि।।१।। (ऋ.५.८२.१)

के अतिरिक्त अन्य सभी छन्द रश्मियां गायत्री छन्दस्क हैं। इस कारण यह सम्पूर्ण वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूह 'गायत्र' माना गया है। इस कारण इस त्र्यह के प्रथम अहन् का तृतीय सवन अर्थात् अन्तिम (वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक) चरण गायत्री छन्द प्रधान होता है। यहाँ ग्रन्थकार ने अहन् के स्थान पर त्र्यह का प्रयोग इस कारण किया है क्योंकि आगामी अहन् में भी यह शस्त्र गायत्री छन्द प्रधान ही है और इसकी इस प्रधानता के कारण ही द्युलोकों के अन्दर सभी पदार्थ तीव्र तेज और बल से युक्त होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- समान प्राण के उत्कर्ष काल में ही १६ विविध प्रकार की गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय तारों के अन्दर इनके प्रभाव से ऊष्मा एवं प्रकाश की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है और सभी प्रकार के पदार्थ इनसे युक्त होते रहते हैं। तारों के जीवनकाल तक ये क्रियाएं यथावत् चलती रहती हैं। इनमें से कुछ छन्द रश्मियां दो प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं तथा तारों और विभिन्न कणों की भी दो प्रकार की ही गतियां होती हैं, जबकि मरुद् रश्मियां ४ प्रकार की गतियों से युक्त होती हैं। **तारों के ऊपर उठने वाली ज्वालाओं में ऋतु रश्मियों की विशेष विद्यमानता होती है।** हरे और लाल रंग की ज्वालाएं मिलकर अन्य कई रंगों की ज्वालाओं को उत्पन्न करती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

५. वैश्वानरो अजीजनदित्याग्निमारुतस्य प्रतिपज्जातवत्, सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

'प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषमिति' मारुतं, प्रेति सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "वैश्वानरो अजीजनदित्येका....... प्रयद्वस्त्रिष्टुभं दूतं व इत्याग्निमारुतम्।" (आश्व.श्रौ.८.६७) महर्षि आश्वलायन के इसी वचन तथा ग्रन्थकार महर्षि ऐतरेय महीदास के मतानुसार पूर्वोक्त वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों की उत्पत्ति के पश्चात् आग्निमारुत शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। इस क्रम में सर्वप्रथम विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से, वैश्वानर अग्नि-देवताक स्वराट्-पंक्तिश्छन्दस्क, जिसके देवत एवं छान्दस प्रभाव से सबका वाहक अग्नि तत्त्व विशेष प्रकाशित और विस्तृत होता है।

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम्।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते।।१३।। (ऋ.३.२९.१३)

की उत्पत्ति होती है। इसके प्रभाव से प्राणापानादि १० तेजस्विनी रश्मियां परस्पर यथायोग्य मिश्रण करके अग्रगामी होती हुई विभिन्न पदार्थों को अपने व्यापक बलों के द्वारा नाना क्रियाओं में प्रवृत्त करती हैं। {वीळुः = बलनाम (निघं.२.९)} वे रश्मियां मरुद् रश्मियों में स्थित होकर अविनाशी तारक बलों से सम्पन्न नित्य विद्युत् को उत्पन्न करती हैं।

यह छन्द रश्मि आग्निमारुत शस्त्र की 'प्रतिपत्' अर्थात् प्रारम्भिक रश्मि है। इसमें विद्यमान 'अजीजनत्' पद 'जनी-प्रादुर्भावे' धातु से युक्त होने के कारण इसकी उत्पत्ति सप्तम अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। इस अग्निदेवताक 'प्रतिपद्' ऋचा के पश्चात् आगामी कण्डिका में वर्णित मरुद्-देवताक सूक्त की उत्पत्ति होती है।।

इस क्रम में पुनर्वत्सः काण्व ऋषि अर्थात् {वत्सः = स्वव्याप्त्या सर्वाऽऽच्छादकः (म.द.ऋ.भा.१.६५.४)} सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न ऐसे सूक्ष्म प्राण, जो बार-२ विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को आच्छादित व संयुक्त करता है, से मरुद्-देवताक ऋ.८.७ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत्। वि पर्वतेषु राजथ।।१।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को तीन प्रकार से बांधती हुई विभिन्न मरुद् रश्मियों के साथ उन्हें चलायमान करके नाना प्रकार के संधि कर्मों में प्रकाशित करती हैं।

(२) यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम्। नि पर्वता अहासत।।२।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न दीप्तियुक्त मरुद् रश्मियां शीघ्रतापूर्वक विभिन्न बलों के द्वारा आकर्षित होते हुए नाना प्रकार के मार्गों का निर्धारण करके विभिन्न मेघरूप पदार्थों में कम्पन उत्पन्न करती हैं।

(३) उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः। धुक्षन्त पिप्युषीमिषम्।।३।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पृश्निमातरः = पृश्निमातरो हि मरुतः (मै.२.५.७), मरुतः पृश्निमातर इति वा आहुः (जै.ब्रा.२.१७६)। वाश्राः = वत्सान् कामयमानाः (म.द.ऋ.भा.१.६५.६)। पिप्युषी = प्रवृद्धा, वर्धयित्री वर्द्धयती वा (तु.म.द.ऋ.भा.२.३२.३)} मनस्तत्त्व रूपी वत्स को आकर्षित करती हुई विभिन्न रूपों वाली मरुद् रश्मियां वायु तत्त्व के साथ प्रेरित होती हुई नाना प्रकार के बलों को समृद्ध और परिपूर्ण करती हैं।

(४) वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान्। यद्यामं यान्ति वायुभिः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ मिलकर गति करती हुई नाना प्रकार के सेचक बलों को उत्पन्न करके मेघरूप पदार्थों को कंपाती हैं।

(५) नि यद्यामा॑य वो गि॒रिर्नि सिन्ध॑वो॒ विध॑र्मणे। म॒हे शुष्मा॑य येमि॒रे॥५॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विरुद्ध धर्म वाली प्राण रश्मियों के साथ मिलकर शोषक बलों को उत्पन्न करके सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा नियन्त्रित होती हुई नाना मेघरूप पदार्थों को नियन्त्रित करती हैं।

(६) यु॒ष्माँ उ॒ नक्त॑मू॒तये॑ यु॒ष्मान्दिवा॑ हवामहे। यु॒ष्मान्प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे॥६॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के पदार्थों और अवस्थाओं में नाना प्रकार की गतियों के साथ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित व संगत करती हैं।

(७) उदु॒ त्ये अ॑रु॒णप्स॑वश्चि॒त्रा यामे॑भिरीरते। वा॒श्रा अधि॒ ष्णुना॑ दि॒वः॥७॥

इसका छन्द गायत्री होने से छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {स्नुना = व्याप्तेन (म.द.ऋ.भा.४.२८.२)} वे मरुद् रश्मियां विभिन्न प्रकार के विचित्र अरुण वर्णों को उत्पन्न करके नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करती हुई विभिन्न मार्गों से द्युलोकों के ऊपरी भाग में स्थित अन्तरिक्ष में गमन करती हैं।

(८) सृ॒जन्ति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे। ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे॥८॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां सूर्य की रश्मियों को गमन कराने के लिए अपने बल के द्वारा व्यापक मार्ग को उत्पन्न करती हैं। इसके साथ ही वे प्राणरूप भानु रश्मियों के द्वारा सूर्य की किरणों को आधार भी प्रदान करती हैं।

(९) इ॒मां मे॑ मरुतो॒ गिर॑मि॒मं स्तोम॑मृभुक्षणः। इ॒मं मे॑ वनता॒ हव॑म्॥९॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {ऋभुक्षणः = ऋभुक्षा इति महन्नाम (निघं.३.३), (ऋभुः मेधाविनाम - निघं.३.१५)} सूत्रात्मा वायु रश्मियों में व्याप्त मरुद् रश्मियां विभिन्न प्रकाशित छन्दादि रश्मियों को सब ओर से आकर्षित और संगत करती हैं।

(१०) त्रीणि॒ सरां॑सि॒ पृश्न॑यो दुदु॒ह्रे व॒ज्रिणे॒ मधु॑। उत्सं॒ कव॑न्धमु॒द्रिण॑म्॥१०॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {उद्रिणम् = उदकवन्तम् (म.द.ऋ.भा.२.२४.४)} विभिन्न रूपों वाली मरुद् रश्मियां वज्ररूप तीक्ष्ण शक्ति उत्पन्न करने के लिए तीन प्रकार के उदक स्थानों को संगत और परिपूर्ण करती हैं। {कबन्धम् = कबन्धम् मेघम्। कवनमुदकं भवति तदस्मिन् धीयते। उदकमपि कबन्धमुच्यते बन्धिरनिभृतत्त्वे कमनिभृतं च (नि.१०.४)। उत्सः = आपो वा ऽउत्सः (श.६.७.४.४), कूपनाम (निघं.३.२३)} वे उदक स्थान विभिन्न धाराओं, मेघों व अन्य सामान्य स्थिति वाले हो सकते हैं।

(११) मरु॑तो॒ यद्ध॑ वो दि॒वः सु॑म्ना॒यन्तो॒ हवा॑महे। आ तू न॒ उप॑ गन्तन॥११॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां आकाश तत्त्व को अनुकूलता से आकर्षित करती हुई सब ओर व्याप्त हो जाती हैं।

(१२) यू॒यं हि ष्ठा सु॑दानवो॒ रुद्रा॑ ऋभुक्षणो॒ दमे॑। उ॒त प्रचे॑तसो॒ मदे॑॥१२॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां घोररूप धारण करने के लिए महान् दमनशील व तेजस्वी प्रेरक बलों से युक्त होती हैं।

(१३) आ नो॑ र॒यिं म॑द॒च्युतं॑ पुरु॒क्षुं वि॒श्वधा॑यसम्। इय॑र्ता मरुतो दि॒वः॥१३॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां तीक्ष्ण बाधक रश्मियों को दूर हटाने वाली तथा अनेक संयोज्य परमाणुओं से युक्त सबको धारण करने वाली विभिन्न छन्दादि रश्मियों को आकाश तत्त्व से व्याप्त व आकृष्ट करती हैं।

(१४) अधी॑व य॒द्गि॒रीणां॒ यामं॑ शुभ्रा॒ अचि॑ध्वम्। सु॒वा॒नैर्म॑न्दध्व॒ इन्दु॑भिः॥१४॥

इसका छन्द निचृद्गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे देदीप्यमान मरुद् रश्मियां मेघरूप पदार्थों के मध्य नाना प्रकार के मार्गों को बनाती हुई विभिन्न सम्पीडित सोम रश्मियों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय करती हैं।

(१५) ए॒ताव॑तश्चिदेषां सु॒म्नं भि॑क्षेत॒ मर्त्यः॑। अदा॑भ्यस्य॒ मन्म॑भिः॥१५॥

इसका छन्द पादनिचृद् गायत्री होने से छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अहिंस्य और सहजकर्मा रूप धारण करने के लिए मनस्तत्त्व के साथ विशेष रूप से संगत होती हैं।

(१६) ये द्र॒प्सा इ॑व॒ रोद॑सी॒ धम॒न्त्यनु॑ वृ॒ष्टिभिः॑। उत्सं॑ दु॒हन्तो॒ अक्षि॑तम्॥१६॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अक्षीण प्राण रश्मियों को परिपूर्ण करते हुए अपने कमनीय बलों की वृष्टि से पृथिवी और द्यु लोकों में नाना प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करती हैं।

(१७) उदु॑ स्वा॒नेभि॑रीरत॒ उद्रथै॒रुदु॑ वा॒युभिः॑। उत्स्तोमैः॒ पृश्नि॑मातरः॥१७॥

इसका छन्द गायत्री होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां सूक्ष्म ध्वनियों को उत्पन्न करती हुई रमणीय वाहक रश्मियों के रूप में प्रवाहित होती हैं। वे वायु तत्त्व अर्थात् प्राण रश्मियों एवं नाना प्रकार की देदीप्यमान छन्द रश्मियों के साथ संगत होती हुई गमन करती हैं।

(१८) येना॑व तु॒र्वशं॒ यदुं॒ येन॒ कण्वं॑ धन॒स्पृत॑म्। रा॒ये सु तस्य॑ धीमहि॥१८॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {तुर्वशम् = तुरा शीघ्रतया परपदार्थान् वष्टि काङ्क्षति तम् (म.द.ऋ.भा.१.३६.१८)। यदुः = प्रयतमानः (तु.म.द.ऋ.भा.६.४५.१)} वे मरुद् रश्मियां त्वरित आकर्षण बल और प्रयत्न से युक्त परमाणु आदि पदार्थों की रक्षा करती हैं। वे विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करती हुई सूत्रात्मा वायु एवं छन्दादि रश्मियों की रक्षा तथा धारण करती हैं।

(१९) इ॒मा उ॑ वः सुदानवो घृ॒तं न पि॒प्युषी॒रिषः॑। वर्धा॑न्का॒ण्वस्य॒ मन्म॑भिः॥१९॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मि की दीप्तियों के द्वारा 'घृम्' रश्मियों के समान प्रवृद्ध होती हुई विभिन्न दान आदि क्रियाओं के द्वारा नाना संयोजक बलों को समृद्ध करती हैं।

(२०) क्व॑ नू॒नं सु॑दानवो॒ मद॑था वृक्तबर्हिषः। ब्र॒ह्मा को वः॑ सपर्यति॥२०॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से

{सपर्यति = परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} सुन्दर दान आदि क्रियाओं से युक्त वे मरुद् रश्मियां आकाश तत्त्व से मुक्त होकर व्यापक प्राण रश्मियों के साथ संयुक्त होती हुई अति सक्रिय हो उठती हैं।

(२१) नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः। शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ।।२१।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे ऐसी उपर्युक्त मरुद् रश्मियां अपने तेज के द्वारा अग्नि के परमाणुओं के वल को वढ़ाती हैं।

(२२) समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम्। सं वज्रं पर्वशो दधुः।।२२।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां व्यापक प्राण रश्मियों, {क्षोणी = द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०)} आकाश तथा पार्थिव परमाणुओं और सूर्य रश्मियों के साथ-२ भेदक शक्तिसम्पन्न विद्युत् तरंगों के साथ संयुक्त रहती हैं।

(२३) वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः। चक्राणा वृष्णि पौंस्यम्।।२३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {राजी = पंक्ति - आप्टेकोष} स्वतन्त्र विचरण करती हुई तीक्ष्ण वलों से युक्त रश्मियां आसुर मेघों को व्याप्त करके उनका भेदन करती है।

(२४) अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम्। अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये।।२४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां आसुर मेघ के साथ संग्राम में संघर्षरत तारक छन्द रश्मियों के अनुकूल वर्तते हुए इन्द्र तत्त्व के शोषक वलों की रक्षा करती हैं।

(२५) विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः। शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये।।२५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से हरणशील विद्युद् रश्मियां सब ओर से सक्रिय होकर श्रेष्ठ तेजस्विनी मरुद् रश्मियों को अपने अग्रभाग में धारण करके विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ प्रकाशित होती हैं।

(२६) उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन। द्यौर्न चक्रदद्भिया।।२६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय वलों से युक्त वे मरुद् रश्मियां {रन्ध्रम् = बलहीन स्थान - आप्टेकोष} विभिन्न सेचक मेघरूप पदार्थों के रिक्त अर्थात् न्यून वल वाले भाग में व्याप्त होकर दूर से ही सम्पूर्ण मेघ को कंपाते और आन्दोलित करते हुए द्युलोक के समान प्रदीप्त करती हैं।

(२७) आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः। देवास उप गन्तन।।२७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकाशित मरुद् रश्मियां अपनी तेजयुक्त व्यापक शक्तियों के साथ विभिन्न संयोज्य कणों वा रश्मियों की संयोग क्रिया में सब ओर से व्याप्त होती हैं।

(२८) यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः। यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः।।२८।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां तेजस्वरूप में विद्यमान होकर विभिन्न रश्मियों को आकर्षित करती हुई अपने सेचक वलों के

साथ विभिन्न देदीप्यमान प्राण रश्मियों को व्याप्त एवं वहन करती हैं।

(२९) सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति। ययुर्निचक्रया नरः।।२९।।

इसका छन्द आर्षीविराड् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शर्यणावति = शर्यणोऽन्तरिक्षदेशस्तस्याऽदूरभवे (म.द.ऋ.भा.१.८४.१४)। ऋजीका = देशाः (सायण वेदभाष्य)। पस्त्यम् = गृहनाम (निघं.३.४)} वे आशुगामी मरुद् रश्मियां अन्तरिक्षस्थ सोम रश्मियों में अपना आश्रय बनाकर चक्राकार प्रवाहित होती हैं।

(३०) कदा गंच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम्। मार्डीकेभिर्नाधमानम्।।३०।।

इसका छन्द गायत्री, छान्दस एवं दैवत प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {नाधमानाः = याचमानाः (नि.४.३)} वे मरुद् रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों को आकर्षित करती हुई किंवा उनके द्वारा आकर्षित होती हुई सहजतापूर्वक सर्वत्र प्रवाहित होती रहती हैं।

(३१) कर्द्ध नूनं कंधप्रियो यदिन्द्रमजहातन। को वः सखित्व ओंहते।।३१।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {कधप्रियः = ये कथाभिः कथाभिः प्रीणयति सः (तु.म.द.ऋ.भा.१.३८.१)} विभिन्न 'वाक्' रश्मियों को आकर्षित करने वाली प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व से उत्सर्जित होकर मरुद् रश्मियों के साथ संयुक्त होती हैं।

(३२) सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः। स्तुषे हिरण्यवाशीभिः।।३२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर तीक्ष्ण वज्ररूप तेजस्वी वाग् रश्मियों के साथ मिलकर अग्नि तत्त्व को प्रकाशित करती हैं।

(३३) ओ षु वृष्णः प्रयंज्यूना नव्यंसे सुवितायं। ववृत्यां चित्रवांजान्।।३३।।

इसका छन्द आर्षी विराड् गायत्री, छान्दस एवं दैवत प्रभाव लगभग पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बलवर्षक मरुद् रश्मियां प्रकृष्ट रूप से संयोजक गुणों से युक्त विचित्र छन्द रश्मियों, बलों एवं संयोज्य परमाणुओं को निरन्तर उत्पन्न करने के लिए सब ओर प्रवर्त्तमान होती हैं।

(३४) गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः। पर्वताश्चिन्नि येमिरे।।३४।।

इसका छन्द गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पर्शानासः = पीडमानाः (सायण वेदभाष्य)} मरुद् रश्मियों द्वारा ताडित व सम्पीडित आकाशीय मेघ चमकने और कांपने लगते हैं। इसके साथ ही वे उन मरुद् रश्मियों द्वारा ही नियन्त्रित भी होते हैं।

(३५) आक्ष्णयावांनो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः। धातारः स्तुवते वयः।।३५।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अन्तरिक्ष में वेगपूर्वक वहन करती हुई नाना प्रकार की तेजस्विनी और बलवती रश्मियों को पुष्ट करती हैं।

(३६) अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा। ते भानुभिर्वि तस्थिरे।।३६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व देदीप्यमान मरुद् रश्मियों और छन्द रश्मियों के द्वारा उत्पन्न होकर तेजस्वी किरणों के रूप में प्रकट होता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'प्र' उपसर्ग विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल में ही १ पंक्ति तथा ३६ विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय तारों के अन्दर विभिन्न प्रकार की मरुद् रश्मियां तीव्र रूप से सक्रिय होकर नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के उत्सर्जन की प्रक्रिया को तीव्र करती हैं। नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया में सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न कणों को संलयित करने के लिए तीन प्रकार से बांधती हैं। तारों के अन्दर भी अनेक प्रकार के मेघरूप पदार्थ समूह विद्यमान होते हैं, जो नाना प्रकार की मरुद् रश्मियों से उत्पन्न विद्युत् तरंगों के द्वारा निरन्तर कम्पित और विदीर्ण होते रहते हैं। **विभिन्न मरुद् रश्मियां ही तारों के केन्द्रीय भाग से विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को बाहर तक लाने और उन्हें आधार प्रदान करते हुए अन्तरिक्ष में उत्सर्जित और गतिशील रखने के लिए विशेष भूमिका निभाती हैं।** तारों के अन्दर कुछ पदार्थ मेघरूप समूहों, कुछ नदीतुल्य धाराओं और कुछ सामान्य रूप से विद्यमान रहता है। इस पदार्थ में अनेकत्र कूपतुल्य विवर भी विद्यमान होते हैं। विभिन्न मरुद् रश्मियों का आकाश तत्त्व से विशेष सम्बन्ध रहकर प्रत्येक आवेशित और द्रव्यमानयुक्त कणों की गतिविधियों में अनिवार्य योगदान रहता है। विभिन्न मरुद् रश्मियों पर डार्क एनर्जी का कोई दुष्प्रभाव नहीं होता है। ये रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न लोकों में सूक्ष्म ध्वनियां उत्पन्न करती रहती हैं। प्रत्येक कण और विकिरणों के साथ सूत्रात्मा वायु, छन्द एवं प्राण रश्मियों सहित सदैव संयुक्त रहता है। तारों से जब विद्युत् चुम्बकीय तरंगें उत्पन्न होती हैं, उस समय उनके साथ संगत मरुद् रश्मियां गुरुत्व बल के विपरीत विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को ले जाती हुई अति वेगवती हो उठती हैं। ये मरुद् रश्मियां तारों से उत्सर्जित होने वाले विभिन्न कणों के साथ भी यही क्रिया करके उन्हें तीव्रगामी बनाती हैं। इन आवेशित तरंगों के अग्रभाग में मरुद् रश्मियां विद्यमान होकर उन कणों को अपने साथ खींचती हुई वेगपूर्वक ले जाती हैं। कॉस्मिक मेघों के केन्द्रीय भाग में प्रविष्ट हुई मरुद् रश्मियां सम्पूर्ण मेघ को प्रकाशित करती हैं। ये मरुद् रश्मियां छन्द एवं प्राण रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न अस्थायी कणों को उत्पन्न करती हैं।।

६. 'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।
'दूतं वो विश्ववेदसमिति' जातवेदस्यमनिरुक्तं सप्तमेऽहनि सप्तमस्याह्नो रूपम्।।
तान्यु गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यहः।।२।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदुपरान्त वामदेव ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राथमिक प्राण से अग्निदेवताक ऋ.४.८ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्। यजिष्ठमृञ्जसे गिरा।।१।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि के परमाणु विभिन्न वाग् रश्मियों से युक्त होकर नाना परमाणु आदि पदार्थों में विद्यमान होते हुए उनको संयुक्त वा वियुक्त करके दूर-२ तक निरन्तर वहन करने में सिद्ध होते हैं।

(२) स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः। स देवाँ एह वक्षति।।२।।

इसका छन्द गायत्री होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु द्युलोकों के केन्द्रीय भाग को बांधने और विभिन्न परमाणुओं को धारण करने में समर्थ होने के लिए विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों को सब ओर से प्राप्त करते हैं।

(३) स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे। दाति प्रियाणि चिद्वसु।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह दमकता और अति बलशाली अग्नि तत्त्व प्राणादि रश्मियों को सब ओर से संगत करता हुआ द्युलोकों के केन्द्रीय भाग में अति कमनीय परमाणुओं को विशेष प्राणवान् करके संगत करता है।

(४) स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते। विद्वाँ आरोधनं दिवः।।४।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व होतारूप होकर द्युलोकों के केन्द्रों में नाना प्रकार के प्रकाशित परमाणुओं को रोकता और अवांछित रश्मियों को पृथक् करता हुआ विशेष प्रकाशमान होता है।

(५) ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः। य ईं पुष्यन्त इन्धते।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार की प्राणादि रश्मियां संयोज्य परमाणुओं को संयुक्त करके अग्नि तत्त्व के साथ-२ अन्य सभी परमाणु आदि पदार्थों को पुष्ट और प्रकाशित करती हैं।

(६) ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे। ये अग्ना दधिरे दुवः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से जो प्राणादि रश्मियां अग्नि के परमाणुओं में सतत परिचरण करती और व्याप्त होती हैं। वे नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को उत्तम तेज और बलों से व्याप्त करती हैं।

(७) अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः। अस्मे वाजास ईरताम्।।७।।

इसका छन्द गायत्री होने से इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि के परमाणु विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा निरन्तर आकर्षित होते हुए सब ओर विचरते हैं। वे उन परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार के बलों से युक्त करके प्रेरित करते और कंपाते हैं।

(८) स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम्। अति क्षिप्रेव विध्यति।।८।।

इसका छन्द भुरिग्गायत्री होने से इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विशेष प्रकाशित अग्नि के परमाणु अपने बल के द्वारा विभिन्न अल्पप्रकाशित परमाणुओं को अतिशीघ्रता से ताडित वा विखण्डित करते हैं।

इस सूक्तरूप रश्मिसमूह को जातवेदस्य कहा गया है। इसका कारण यह है कि इस रश्मिसमूह के प्रभाव से अग्नितत्त्व सम्पूर्ण द्युलोक के सभी पदार्थों में व्याप्त हो जाता है अर्थात् विस्तृत होने लगता है। यहाँ ग्रन्थकार ने इस सूक्त को अनिरुक्त कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि इसका देवतावाची अग्नि तत्त्व न केवल द्युलोकों के अन्दर अपितु वहाँ से बाहर सुदूर अन्तरिक्ष में भी इसके प्रभाव से व्याप्त होने लगता है। इसका अनिरुक्त देवताक होना ही सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **समान प्राण** के उत्कर्ष काल के अन्त में १ पंक्ति तथा ८ विविध गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके प्रभाव से विद्युत् चुम्बकीय तरंगें और धनावेशित कण विशेष रूप से सक्रिय होते हैं। तारों के केन्द्रीय भाग में इलेक्ट्रॉन्स की सक्रियता नगण्य होती है। विभिन्न क्वाण्टाज् नाना प्रकार के आयन्स से टकराकर उन्हें दूर-२ ले जाते हैं। इलेक्ट्रॉन्स के साथ संयोग करके भी ये

क्वान्टाज़् उन्हें सम्पूर्ण तारे के अन्दर प्रवाहित करते रहते हैं। तारों के केन्द्रीय भागों की सीमाएं स्पष्टतर और दृढ़तर होती जाती हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगें तारों के अन्दर अनेक प्रकार के कणों से टकराती हुई उनके द्वारा उत्सर्जित और अवशोषित होती हुई एक दीर्घकाल के पश्चात् ही बाहर की ओर उत्सर्जित होती हैं। जिन कणों में जितनी अधिक ऊर्जा की मात्रा होती है, वे क्वान्टाज़् से टकराकर उतनी ही शीघ्रता से विखण्डित होते हैं। ये ८ गायत्री रश्मियां सम्पूर्ण तारे के साथ-२ बाहरी अन्तरिक्ष में भी व्याप्त होकर विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्सर्जित एवं गतिशील करने में विशेष सहयोग करती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग देखें।।

❧ इति 23.2 समाप्तः ❧

ௐ अथ २३.३ प्रारभ्यते ௐ

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. यद्वै नेति न प्रेति, यत्स्थितं, तदष्टमस्याह्नो रूपम्।।
यद्ध्येव द्वितीयमहस्तदेवैतत्पुनर्यदष्टमम्।।
यदूर्ध्ववद्यत्प्रतिवद्यदन्तर्वद्यद्वृषण्वद्यद्वृधन्वद्यन्मध्यमे पदे देवता निरुच्यते यदन्तरिक्ष-मभ्युदितम्।।
यद्व्यग्नि यन्महद्वद्यद्विहूतवद्यत्पुनर्वद्यत्कुर्वत्।।
यद्द्वितीयस्याह्नो रूपमेतानि वा अष्टमस्याह्नो रूपाणि।।
अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा इत्यष्टमस्याह्न आज्यं भवति; द्व्य-ग्न्यष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्प्रातःसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्- 'आङ्' एवं 'प्र' उपसर्ग, जो सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक हैं, वे अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक नहीं होते, वल्कि इस काल में उत्पन्न ऋचाओं में 'स्था' धातु के विविध रूपों की विद्यमानता होती है। 'स्था' धातु के प्रभाव से विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ अपने-२ कार्यों में दृढ़ता के साथ डटे रहते हैं। विभिन्न छन्दादि रश्मियां एक-दूसरे का अनुकूल आश्रय लेती हुई नाना प्रकार की क्रियाओं में संलग्न रहती हैं। पूर्वकाल में उत्पन्न विभिन्न वल और क्रियाओं में स्थिरता व निरन्तरता वनी रहती है।।

द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के समान ही अधिकांश क्रियाएं इस अष्टम अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में भी होती हैं, मानो वे ही क्रियाएं पुनः दोहरायी जा रही हों। इस पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए आगामी कण्डिकाओं में लिखते हैं।।

इस काल में उत्पन्न ऋचाओं में 'ऊर्ध्व', 'प्रति', 'अन्तः', 'वृषन्' एवं 'वृधन' शब्दों की विद्यमानता होती है तथा इन ऋचाओं में देवता सूचक पद मध्य में विद्यमान होता है। 'ऊर्ध्व' आदि शब्दों की विद्यमानता का प्रभाव द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्द रश्मियों के प्रभाव, जो खण्ड ४.३१ में वर्णित हैं, के समान ही समझें। इन ऋचाओं में देवतावाची शव्द मध्य भाग में विद्यमान होने से यह संकेत मिलता है कि देवतावाची पदार्थ इस काल में अकस्मात् ही प्रखर नहीं होते, वल्कि उनमें धीरे-२ सक्रियता स्थायित्व को प्राप्त होती रहती है। उन देवतावाची पदार्थों की व्याप्ति पृथिवी अथवा द्युलोकों तक ही सीमित नहीं होती, वल्कि उनके मध्य विद्यमान अन्तरिक्ष तक होती है। इस समय विभिन्न लोकों के मध्य कहीं कुछ मेघरूप पदार्थ विद्यमान होते हैं, वे भी उन लोकों के द्वारा आकर्षित होकर अन्तरिक्ष को समृद्ध करते हैं।।

इस काल में उत्पन्न ऋचाओं में अग्नि तत्त्व द्वय से युक्त होता है अर्थात् एक ही ऋचा में दो वार 'अग्नि' शव्द का प्रयोग होता है। इन ऋचाओं में 'महत्' और 'पुनः' शव्द भी विद्यमान होते हैं, साथ ही इन ऋचाओं में कहीं दो देवतावाची पदों की भी विद्यमानता होती है। इसके साथ ही इनमें 'कृ' धातु के वर्तमान काल का रूप विद्यमान होता है। इनके प्रभाव क्रमशः निम्नानुसार होते हैं-
(१) ऊष्मा, प्रकाश एवं विद्युत् में विशेष वृद्धि होती है।
(२) इन ऋचाओं का प्रभाव तीनों लोकों में व्यापक स्तर पर और वार-२ आवृत्त होता रहता है।

(३) दो देवतावाची होने से इनका प्रभाव दोनों देवताओं के अनुसार यथासमय होता रहता है।
(४) इनका प्रभाव सभी लोकों में सतत हो रहा होता है। ये रश्मियां अन्य रश्मियों को अपने साथ धारण करती हुई प्रखर वेग से क्रियाशील रहती हैं।।

इस प्रकार इस अष्टम अहन् में अधिकांश लक्षण और प्रभाव द्वितीय अहन् के समान ही होते हैं।।

इस चरण में उत्पन्न ऋचाओं के क्रम में सर्वप्रथम वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से अग्निदेवताक ऋ.७.३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों में निरन्तर स्थित एवं समान रूप से संगत होकर अपने उत्कृष्ट ताप के द्वारा विभिन्न पदार्थों का भेदन करता है। वह संदीप्त तेज से सम्पन्न एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को शुद्ध एवं संगत करके नाना प्रकार के पदार्थों का सृजन और अनिष्ट पदार्थों का विसर्जन करता है।

(२) प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद् व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति।।२।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {प्रोथत् = शब्दं कुर्वन् (म.द.भा.) (प्रोथृ पर्याप्तौ)} वह विद्युदग्नि व्यापक रूप से प्रकाशित होता और वायु तत्त्व के द्वारा गति करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित और गतिशील करता है। वह उनमें व्याप्त होकर उन्हें शीघ्रगामी बनाता हुआ विभिन्न संयोगादि कर्मों में व्याप्त एवं ध्वनियुक्त करता है।

(३) उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अरुषः = अश्वनाम (निघं.१.१४), रूपनाम (निघं.३.७), अग्निर्वा अरुषः (तै.ब्रा.३.६.४.१)} अग्नि की नित नवीन उत्पन्न होती हुई बलवान् रश्मियां जीर्णतारहित होकर प्रकाशयुक्त होती हुई द्युलोकों से ऊपर उठती रहती हैं। वे आशुगामी और रूपवती रश्मियां अन्तरिक्ष में कांपती हुई विभिन्न प्राण रश्मियों से व्याप्त होकर गमन करती हैं।

(४) वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि।।४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि रश्मियां निर्बाध गति से अन्तरिक्ष में व्याप्त होती हुई अपने संयोजक बलों से विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को युक्त करके अन्तरिक्ष में नाना प्रकार के पदार्थों का सृजन करती हैं। वे इसके लिए समूह रूप में गमन करती हुई विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार बांधती, उन्हें विकृत करती वा पृथक् करती हैं। उस विद्युदग्नि के बल को अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न पार्थिव परमाणु त्वरित गति से धारण करते हैं।

(५) तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।

निशिशा॑ना अति॑थिमस्य योनौ॑ दीदाय॑ शोचिराहु॑तस्य वृष्णः॑ ॥५॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित अवस्थाओं में अग्नि तत्त्व को निरन्तर तीक्ष्ण और शुद्ध करती हुई आकर्षण व प्रतिकर्षण वलों से युक्त करती हैं। वे मरुद् रश्मियां अग्नि के कारणभूत द्युलोकों के केन्द्रीय भाग में उस अग्नि तत्त्व को तीव्रता से सतत प्रकाशित करती और गमन कराती हैं।

(६) सुसंदृक्ते॑ स्वनीक प्रती॑कं वि यद्रुक्मो न रोच॑स उपाके।
दिवो न ते॑ तन्यतुरे॑ति शुष्म॑श्चित्रो न सूरः प्रति॑ चक्षि भानुम् ॥६॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह विद्युदग्नि समूह रूप में गमन करता हुआ सूर्य रश्मियों के समान विभिन्न परमाणुओं के निकट विशेष रूपवान् प्रतीत होता है। वह सूर्य रश्मियों के समान दर्शयिता और अन्तरिक्ष में विस्तार से गमन करता हुआ आश्चर्यजनक वलों एवं रूपों से युक्त होता है॥

(७) यथा॑ वः स्वाहाग्नये दाशे॑म परीळा॑भिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
तेभि॑र्नो अग्ने अमि॑तैर्महो॑भिः शतं पूर्भिराय॑सीभिर्नि पा॑हि ॥७॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे अग्नि की रश्मियां 'घृम्' रश्मियों रूपी हव्य से युक्त होकर नाना प्रकार की वाग् रश्मियों के साथ मिलकर अनेक प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करती हैं। वे विभिन्न तेजस्वी लोकों को अपने अमित वलों के द्वारा रक्षा प्रदान करती हैं।

(८) या वा॑ ते सन्ति॑ दाशुषे अधृ॑ष्टा गिरो॑ वा याभि॑र्नृवती॑रुरुष्याः।
ताभि॑र्नः सूनो सहसो नि पा॑हि स्मत्सूरी॑ञ्जरितॄ॑ञ्जातवेदः ॥८॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वस्तुमात्र में विद्यमान अग्नि तत्त्व वलवान् वायु तत्त्व से उत्पन्न होकर तीक्ष्ण छन्द रश्मियों से युक्त होता है। वह अग्नि तत्त्व उन छन्द रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के परमाणुओं को सुरक्षित और प्रकाशित करता हुआ निरन्तरता प्रदान करता है।

(९) निर्यत्पूतेव स्वधि॑तिः शुचि॑र्गात्स्वया॑ कृपा तन्वा॒३॑ रोच॑मानः।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनि॑ष्ट देवयज्या॑य सुक्रतु॑ः पावकः ॥९॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {स्वधितिः = वज्रनाम (निघं.२.२०)} पवित्र और प्रज्वलित वज्ररूप रश्मियां निरन्तर व्याप्त होती, अपने सामर्थ्य को विस्तृत करती हुई द्यु और अन्तरिक्ष लोकों को निरन्तर प्रकाशित करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों के संयोग द्वारा नाना प्रकार की क्रियाओं के साथ सव ओर प्रकट होती हैं।

(१०) एता नो॑ अग्ने सौभ॑गा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेत॑सं वतेम।
विश्वा॑ स्तोतृभ्यो॑ गृणते च॑ सन्तु यूयं पा॑त स्वस्तिभिः सदा॑ नः ॥१०॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के संगम और नियन्त्रण में निरन्तर प्रकाशित होता हुआ नाना क्रियाओं को उत्तेजित करता है। वह विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को प्रकाशित और व्याप्त करता हुआ विभिन्न क्रियाओं को सुगम और संरक्षित करता है।

इस सूक्तरूप रश्मिसमूह को ग्रन्थकार ने आज्य शस्त्र कहा है। इस कारण ये रश्मियां इस चरण

में होने वाली अन्य सभी रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें बल और तेज प्रदान करती हैं। आज्य शस्त्र के विषय में विशेष जानकारी पूर्ववत् समझें। इस सूक्त की प्रथम और सप्तम ऋचा में दो-२ बार 'अग्नि' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस कारण इस सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

उपर्युक्त सूक्त में ८ विभिन्न प्रकार के त्रिष्टुप् एवं १ स्वराट् पंक्ति, जो विराट् त्रिष्टुप् के समान माना जा सकता है तथा १ भुरिक् पंक्ति छन्द विद्यमान है। इस कारण यह सूक्त प्रधानता के आधार पर त्रैष्टुभ माना गया है। इस कण्डिका का शेष व्याख्यान ५.१६.२ के समान समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न तारों और ग्रहादि लोकों में पूर्वोत्पन्न क्रियाएं निरन्तरता को प्राप्त होती हैं। तारों के अन्दर ऊर्जा के उत्पादन, उत्सर्जन और अवशोषण आदि क्रियाएं निरन्तरता और संरक्षण प्राप्त करती हैं। तारों से विभिन्न प्रकार की विद्युदावेशित तरंगें भी निरन्तर उत्सर्जित होती रहती हैं। इस समय ६ त्रिष्टुप् और १ पंक्ति छन्द रश्मिसमूह उत्पन्न होकर तारों और लोकों को निरन्तर सक्रिय करके ऊर्जा को सम्पूर्ण अन्तरिक्ष आदि लोकों में व्याप्त करते हैं। विभिन्न प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अनेक कॉस्मिक कणों से क्रिया करके उनसे नाना प्रकार के अन्य कणों को उत्पन्न करती हैं। अन्तरिक्ष में विभिन्न कण विभिन्न क्वान्टाज् से युक्त होकर उन्हें नाना प्रकार से सक्रिय करके अनेक प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में सक्षम बनाती हैं। तारों से उत्सर्जित विद्युत् चुम्बकीय तरंगें अक्षय रूप धारण करके सुदूर तक गमन करती रहती हैं और वे विभिन्न ग्रह आदि लोकों के वायुमण्डल में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार के परिवर्तन करके विभिन्न प्रकार के नवीन कणों को उत्पन्न करती हैं। विभिन्न विद्युदावेशित तरंगें प्रकाश रश्मियों की भांति सूक्ष्म प्रकाश से युक्त होकर पदार्थ को दिखाने में सहायक होती हैं। ये सभी प्रकार की तरंगें विभिन्न प्राण और छन्द रश्मियों से उत्पन्न और व्याप्त होती हैं।।

२. कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः, पीवो अन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः, उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा, उशन्ता दूता न दभाय गोपा, यावत् तरस्तन्वो३ यावदोजः, प्रति वां सूर उदिते सूक्तै, र्धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना, ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वान्, ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्, उत स्या नः सरस्वती जुषाणेति प्रउगं प्रतिवदन्तर्वद्, द्विहूतवदूर्ध्ववदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। तदु त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्प्रातःसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर प्रउग शस्त्र, जिसके विषय में पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं, संज्ञक रश्मिसमूह की निम्नानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से वायुदेवताक एवं विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

कुविदङ्ग नम॑सा ये वृधास॑ः पुरा देवा अ॑नवद्यास आस॑न्।
ते वायवे मन॑वे बाधितायावा॑सयन्नुषस॑ं सूर्ये॑ण।।१।। (ऋ.७.९१.१)

की उत्पत्ति होती है, जिसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सनातन प्राणादि रश्मियां, जो निरापद रूप से सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त होती हैं, व्यापक और त्वरित संयोजक गुणों के द्वारा प्रकाशित वायु तत्त्व के रूप में प्रकट होकर ऊष्मा और प्रकाश रश्मियों के रूप में परिवर्तित होती हैं।

(२) उपर्युक्त ऋषि और देवता वाली एवं निचृद् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः।।३।। (ऋ.७.९१.३)

इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों को समृद्ध और संयुक्त करके विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को सींचती हुई बढ़ाती हैं। वे विभिन्न प्राण रश्मियों को सब ओर से नियमित करती हुई वायु तत्त्व के रूप में प्रकट करके विभिन्न प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करती हैं।

(३) उपर्युक्त ऋषि, देवता और छन्द वाली

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः।।४।। (ऋ.७.९०.४)

इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अरिप्रम् = निष्पापम् (म.द.ऋ.भा.७.४७.१)} वायु तत्त्व आसुर रश्मियों से मुक्त होकर सबमें व्याप्त होता हुआ प्रकाश और ऊष्मा के रूप में प्रदीप्त होता है। वह अनुकूलता से सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा सम्पीडित होता हुआ प्रकृष्ट द्युलोक और विविध रश्मियों की सृष्टि करता है।

(४) पूर्वोक्त ऋषि और देवता वाली एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क-

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम्।।२।। (ऋ.७.९१.२)

इसका देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वायु और इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करते हुए और अनिष्ट पदार्थों को नष्ट करते वा दूर ले जाते हुए विभिन्न रश्मियों की रक्षा करते हैं। शरद् ऋतु संज्ञक प्राण में विद्यमान सनातन मास रश्मियां विभिन्न रश्मियों को अच्छी तरह प्रकाशित और व्याप्त करती हुई {पाथः = पाथोऽन्तरिक्षम्.....अन्नमपि पाथ उच्यते पानादेव (नि.६.७)} संयोज्य परमाणुओं के निकटस्थ आकाश तत्त्व को सहजतापूर्वक आकर्षित व संगत करती हैं।

(५) पूर्वोक्त ऋषि से उत्पन्न इन्द्रवायुदेवताक (ऋ.७.९१.४-५)

(क) यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम्।।४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु तत्त्व आकाश तत्त्व में व्याप्त होकर सम्पूर्ण पदार्थजगत् को तारते और विस्तृत करते हैं। विभिन्न ओजरूप बलों एवं दीप्तियुक्त अग्नि और सोम रश्मियों को पवित्रता एवं रक्षण प्रदान करते हैं।

(ख) नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से देवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु तत्त्व विभिन्न आकर्षक परमाणु आदि पदार्थों को अपनी तेजस्वी रश्मियों के द्वारा व्याप्त करके नाना प्रकार के कर्मों में नियुक्त करते हैं। इस क्रिया में विभिन्न प्राण रश्मियां इन्द्र तत्त्व के अग्र भाग में विद्यमान रहकर संयोज्य परमाणुओं को असुरादि रश्मियों से मुक्त करती हैं।

(६) पूर्वोक्त ऋषि से मित्रावरुणौ-देवताक (ऋ.७.६५.१-३) तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अपने प्रकाश द्वारा उत्कृष्टता से व्याप्त द्युलोक पवित्र बल वाले प्राणापान किंवा प्राणोदान रश्मियों के प्रति नाना छन्द रश्मिसमूहों की संगति से उत्पन्न होते हैं। उन प्राणादि रश्मियों का बल अपरिमित तथा छन्दादि रश्मियां सब ओर से संगृहीत होकर प्राणादि रश्मियों में विचरण करती हुई विभिन्न बाधक रश्मियों को नियन्त्रित करती हैं।

(ख) ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य विद्यमान प्राणापान वा प्राणोदान से नियन्त्रित असुर रश्मियां पृथिव्यादि लोकों को बल प्रदान करती हैं। वे प्राणापानादि रश्मियां द्यु एवं पृथिवी लोकों में विद्यमान छन्दादि रश्मियों को सतत समृद्ध करती रहती हैं।

(ग) ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान रश्मियां अग्नि के परमाणुओं के मार्ग पर अन्तरिक्ष में नौका के समान वर्तमान होकर अनिष्ट रश्मियों से रक्षा करती हैं। वे प्राणापान रश्मियां उन अग्नि के परमाणुओं को विभिन्न मरुद् रश्मियों तथा व्यापक सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ सम्बद्ध करने तथा अन्य बाधक तीक्ष्ण रश्मियों से मुक्त करने एवं अनियमित गति एवं बलों को नियमित बनाने के लिए सेतु के समान कार्य करती हैं।

(७) विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से अश्विनौ-देवताक ऋ.३.५८.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से शुद्ध मार्गों पर गमन करता हुआ वाक् तत्त्व सनातन प्राण तत्त्व के आकर्षण बल से पूर्ण होकर {दक्षिणा = अन्नं दक्षिणा (ऐ.६.३), दक्षिणा समुद्रः (मै.४.७.८)} व्यापक अन्तरिक्ष में अपनी विभिन्न क्रियाओं से उत्पन्न पुत्ररूप द्युलोकों के मध्य विचरता है। इन लोकों में प्राणापान वा प्राणोदान रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित सभी प्रकार के परमाणुओं को प्रकाशित करके उन्हें ऊष्मा आदि से व्याप्त करती हैं।

(ख) सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक्।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से देवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान और प्राणोदान रश्मियां अविनाशी सूत्रात्मा रश्मियों के साथ अच्छी प्रकार संयुक्त होकर विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के ऊर्ध्व भाग में व्याप्त होकर उन परमाणुओं को पालित और प्रकाशित करती हैं। वे सूत्रात्मा वायु के संगमनीय व्यवहार को प्राप्त करके उन परमाणुओं के आभ्यान्तर भागों तक व्याप्त होती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण परमाणु संरक्षित रहता है।

(ग) सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।

किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ।।३ ।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे प्राणापान और प्राणोदान रश्मियां तीव्र गतिशील और परस्पर उत्तम रीति से संयुक्त होकर सूक्ष्म असुर रश्मियों को नियन्त्रित वा नष्ट करती हैं। वे अपने तीव्र तेज के द्वारा विभिन्न छन्दादि रश्मियों को प्रेरित करती हैं। वे अत्यन्त व्याप्त पूर्वोत्पन्न सूत्रात्मा वायु रश्मियों के प्रति अव्याप्त होती हैं।

(८) पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से इन्द्रदेवताक ऋ.७.२८.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सबको प्रक्षिप्त करने वाला व्यापक संयोज्य परमाणुओं को अपनी सत्ता से व्याप्त करता है। वह अधोगामी कमनीय रश्मियों को विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त करके संगमनीय और समर्थ बनाता है।

(ख) हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम्।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळहः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अनेक बलों से युक्त उग्र इन्द्र तत्त्व अपनी व्यापकता के कारण विभिन्न संयोज्य परमाणुओं में व्याप्त होता है। {ऋषिः = ऋषय आदित्य-रश्मयः (नि.१२.३७)} वही आदित्य रश्मियों की रक्षा करता है। वह वज्र रश्मियों से युक्त होकर घोरकर्मा असुर रश्मियों को नियन्त्रित करके नाना कर्मों को प्रकट करता है।

(ग) तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नृन्न रोदसी निनेथ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽ तूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत्।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व भेदक बलों को उत्पन्न करता हुआ अनिष्ट भेदक रश्मियों को नष्ट करता है। अहिंसक अर्थात् अनुकूल रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को पृथिवी और द्यु लोक आदि में व्याप्त करके नाना प्रकार के पदार्थों को वहन करता है।
(९) पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से विश्वेदेवादेवताक ऋ.७.३९.१-३ तृच की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती हैं-

(क) ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {जूर्णिः = क्षिप्रनाम (निघं.२.१५), क्रोधनाम (निघं.२.१३)। प्रतीची = प्रतीची अभिमुखी (नि.३.५)} श्रेष्ठ और आशुगामी अग्नि विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के अभिमुख गमन करती हुई उन्हें सृजन कर्मों हेतु सम्यक् तेज प्रदान करता है। इससे वे परमाणु रमणीय तेज से युक्त होकर विभिन्न मार्गों पर गति करते हुए नाना प्रकार के संयोज्य बलों को प्राप्त करके विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।

(ख) प्र वांवृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्।।२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि

पदार्थों को अन्तरिक्ष में व्याप्त करके सुन्दर व स्पष्ट रूप प्रदान करके अपने साथ पूर्णरूपेण आकर्षित व संगत किए रहता है। सबका पोषक वायु सब परमाणु आदि पदार्थों को सुगमता से तृप्त करते हुए अन्तरिक्षस्थ समस्त क्रियाओं को तृप्त करता है।

(ग) ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य।।३।।

इसका छन्द स्वराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। अन्य प्रभाव से व्यापक आशुगामिनी वसु संज्ञक विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियां वा प्राण रश्मियां विशाल अन्तरिक्ष एवं भूमि में वा इनमें स्थित विभिन्न पदार्थों में रमण करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को गति प्रदान करने के साथ-२ उन्हें शुद्ध करती हुई नाना प्रकार से तृप्त व सक्रिय करती हैं।

(१०) पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से सरस्वतीदेवताक ऋ.७.९५.४-६ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः।।४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {मितज्ञुः = मितानि जानूनि येषान्ते मितज्ञवः (तु.म.द.ऋ.भा.३.५९.३), (जानु = जायन्तेऽस्मात् तत् जानु उ.को.१.३)} ज्वालामय अग्नि द्युलोक रूपी यज्ञ में विभिन्न वाग् व प्राण रश्मियों का सेवन करता हुआ, साथ ही उनके संयमित स्वरूप से उत्पन्न होकर नाना संगमादि कर्मों को सम्पादित करता है। इसके साथ वह उनके द्वारा ही संगमनीय, प्रकाशित वज्ररूप को प्राप्त करता है।

(ख) इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम्।।५।।

इसका छन्द आर्षी त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ परस्पर एक-दूसरे के साथ संगत होते हुए अपनी संयोज्यता के द्वारा वाग् रश्मियों से व्याप्त होते हैं। वे एक-दूसरे से उत्सर्जित रश्मियों का सेवन करते हुए अपने तीव्र आकर्षण में एक-दूसरे की परिधियों को धारण करते हुए संगत होते हैं।

(ग) अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से प्राण नामक प्राथमिक प्राण अपान के सहाय से विभिन्न छन्द रश्मियों के संसर्ग कर्मों को उचित अवकाश द्वारा सुरक्षित करता है। वह उनको बल प्रदान करता हुआ सुगमता से प्रकाशित करके समृद्ध करता है।

उपर्युक्त कुल २१ प्रउग शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों में विद्यमान

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम्।।५।। (ऋ.७.९५.५)

में 'प्रति' शब्द विद्यमान है।

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः।।१।। (ऋ.३.५८.१)

में 'अन्तः' पद विद्यमान है तथा कई ऋचाओं में दो देवताओं की विद्यमानता है, जैसे इन्द्रवायू, मित्रावरुणौ एवं अश्विनौ आदि। इन तीनों लक्षणों के कारण इन सभी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।।

इस प्रउग शस्त्र में विद्यमान उपर्युक्त २१ ऋचाओं में से २० त्रिष्टुप् छन्दस्क है, इस कारण इस शस्त्ररूपी रश्मिसमूह को त्रैष्टुभ् कहा गया है। यह रश्मिसमूह इस त्र्यह के प्रातःसवन अर्थात् प्रथम चरण का रूप है। इसी प्रकार सप्तम और नवम अहन् में भी प्रउग शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूह त्रिष्टुप् छन्द प्रधान है। विशेष पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कूर्म प्राण** के उत्कर्ष काल में विभिन्न प्रक्रियाओं को वल प्रदान करने के लिए १ पंक्ति और २० त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके कारण विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियां विशेष सक्रिय होकर विद्युत् चुम्वकीय वलों एवं तरंगों को अधिक ऊर्जा प्रदान करती हैं। सूत्रात्मा वायु रश्मियां नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को सम्पीडित करके विद्युत् चुम्वकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। डार्क एनर्जी से भी विभिन्न तीक्ष्ण तरंगों का संघर्ष होता रहता है। **दो कणों के मध्य संलयन वा आकर्षण की प्रक्रिया में मास रश्मियों की भी भूमिका होती है। वे सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ मिलकर आकाश तत्त्व का आकुंचन करके नाभिकीय संलयन में सहयोग करती हैं। विभिन्न आवेशित किरणों के अग्र भाग में प्राणापान रश्मियां विद्यमान रहकर डार्क एनर्जी को दूर हटाती जाती हैं।** प्राणादि रश्मियों का वल अपरिमित अर्थात् मानव तकनीक से अज्ञेय होता है। **आकाश में गमन करती हुई विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को सुरक्षित मार्ग प्रदान करती हुई प्राणापान रश्मियां उनकी अग्रगामिनी होती हैं।** विभिन्न रश्मियों को सूत्रात्मा वायु के साथ संवद्ध करने तथा अनियमित गति को नियमित करने में ये प्राणापान रश्मियां सेतु का कार्य करती हैं। किसी कण वा क्वान्टाज् के आकार वा रूप के निर्धारण में प्राणापान रश्मियां सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियों के साथ मिलकर अनिवार्य भूमिका निभाती हैं। विभिन्न क्वान्टाज् की रक्षा में इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् की भी भूमिका होती है। विद्युत् जहां विध्वंसक पदार्थों को नष्ट करती है, वहीं सृजन प्रक्रियाओं को सम्पन्न करती है। **विद्युत् के विना संसार में किसी भी पदार्थ की सृष्टि नहीं होती और इसके अभाव में कहीं भी प्रकाश और ऊष्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती, लेकिन विद्युत् की उत्पत्ति का कारण भी ये प्राणापान आदि रश्मियां ही होती हैं।** गायत्री छन्द रश्मियां सवसे प्रमुख एवं प्रारम्भिक छन्द रश्मियां होती हैं। जव दो कणों का परस्पर संयोग होता है, तव उनका परिधि भाग विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों के द्वारा विकृत होकर एक-दूसरे को आकर्षित करता हुआ संयुक्त हो जाता है। विभिन्न छन्द रश्मियों के पारस्परिक संयोग में प्राण रश्मियां संयोजक का कार्य करते हुए उनके मध्य स्थित होती हैं।।

३. विश्वानरस्य वस्पतिमिन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्र नेदीय एदिह्युत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पतेऽग्निर्नेता त्वं सोम क्रतुभिः पिन्वन्त्यपो बृहदिन्द्राय गायतेति द्वितीयेनाह्ना समान आतानोऽष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा इति सूक्तं महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका में वर्णित सभी ऋचाएं द्वितीय अहन् अर्थात् खण्ड ४.३१ में वर्णित हो चुकी हैं। आचार्य सायण ने यहाँ कुछ ऋचाओं को द्वितीय अहन् में वर्णित प्रगाथ के स्थान पर एकल रूप से ग्रहण किया है। हमारे मत में महर्षि ऐतरेय महीदास अष्टम अहन् को द्वितीय अहन् अर्थात् उदान प्राण के उत्कर्ष काल के समान मानते हैं, तव इन ऋचाओं का भी ग्रहण द्वितीय अहन् के समान ही मानना चाहिये। इस कारण हमारा मत है कि यहाँ भी मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक वे सभी छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जो द्वितीय अहन् में होती हैं। इनका पुनः उत्पन्न होना ही अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है। इस काल में भी ये सभी छन्द रश्मियां 'आतान' रूप होकर सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त हो जाती हैं। मरुत्वतीय शस्त्र के स्वरूप आदि को पूर्ववत् समझें।।

तदनन्तर विश्वामित्र ऋषि अर्थात् वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ.३.४६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {विभ्वतष्टम् = विभुना जगदीश्वरेण निर्मितम् (म.द.भा.)} मनस्तत्त्व अथवा वायु के अन्दर विद्यमान सोमपा इन्द्र तत्त्व सभी आकर्षणयुक्त परमाणु आदि पदार्थों में आकर्षण गुण उत्पन्न करता है। सम्पूर्ण जगत् का नियंत्रक और निर्माता मनस्तत्त्व ईश्वरप्रेरित होकर विशाल आवरक आसुर मेघों को उत्पन्न करता है। वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित सभी कणों वा लोकों में नाना प्रकार की क्रियाओं को करता हुआ प्राणादि रश्मियों के द्वारा उत्पन्न होता है। ये सभी पदार्थ इस रश्मि के द्वारा विशेष एवं व्यापक रूप से सक्रिय होते हैं।

(२) यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व कमनीय तेजस्विनी रश्मियों में स्थित अतिशय नायक स्वप्रकाशरूप एवं रश्मिसमूह के रूप में तथा सदैव दो रूपों में विद्यमान रहता है। यह अत्यन्त समर्थ तीव्र वेगयुक्त शोषक बलों के द्वारा विध्वंसक पदार्थों के बल का हरण करता है।

(३) सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान्।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों के संग्राम में बल एवं आशुगति से युक्त होकर संयोज्य पदार्थों को तारता है। वह सभी लोकों में व्याप्त होता हुआ नाना प्रकार की क्रियाओं में बल रश्मियों का सेचन करके नाना संयोगादि कर्मों को संपन्न करता है। वह विभिन्न प्राण रश्मियों को सुन्दर रूप से धारण करके सबको प्रकाशित करता हुआ उनकी रक्षा करता है।

(४) धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान्।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम्।।४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशस्वरूप सूर्यादि लोकों को उत्पन्न करके धारण करता हुआ अपने आकर्षण के द्वारा रमणीय रश्मियों को उत्कृष्टता से उत्सर्जित करने वाला वायुरूप होता है। वह प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही पदार्थों को आच्छादित करने वाला वाग् रश्मियों के समान विभिन्न बलों का विभाग और नियमन करने वाला होता है।

(५) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणुओं के संग्राम में उनके बलों के अनुकूल विभाजन के द्वारा उनकी रक्षा करता है। महान् नियन्त्रण शक्ति से सम्पन्न अतिशय नायक वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण असुर रश्मियों को भेदता हुआ सृजन क्रियाओं को सहजतापूर्वक सम्पन्न करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'महान्' शब्द विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इनमें से प्रथम कण्डिका का सार खण्ड ४.३१ के समान समझें। द्वितीय कण्डिका का सार इस प्रकार है- **कूर्म प्राण** के उत्कर्ष काल में ५ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् बलों और विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में भारी वृद्धि करती हैं। तारों के अन्दर होने वाली विभिन्न क्रियाएं यथावत् और तीक्ष्ण होती हैं। धन और ऋण दोनों प्रकार के आवेशों से युक्त तरंगें तारों तथा अन्तरिक्ष में अनेक कणों का भेदन करके नवीन कणों का सृजन करती हैं। यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है। सृष्टि में चलने वाली सभी क्रियाओं में यत्किंचित् विद्युत् की भूमिका रहती ही है।।

४. 'महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतानिति' सूक्तं, महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। 'पिबा सोममभि यमुग्र तर्द:' इति सूक्तमूर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्रेति महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर अगस्त्य ऋषि अर्थात् निरापद और निर्बाध रूप से कार्य करने में सक्षम एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१६९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता।
स नों वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वंनुष्व तव हि प्रेष्ठां।।१।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मरुद् रश्मियों के व्यापक उत्सर्जन के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकृष्ट करता है। उन मरुद् रश्मियों को भी अत्यन्त आकर्षक और प्रेरक सूत्रात्मा वायु सहजतापूर्वक सामर्थ्य प्रदान करता है।

(२) अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळहस्य प्रधनस्य सातौ।।२।।

इसका छन्द पंक्ति होने से छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मरुद् रश्मियों के साथ व्याप्त होकर अनिष्ट रश्मियों को दूर हटाता हुआ {मीळहः = संग्रामनाम (निघं. २.१७)। स्वः = देवा वै स्वः (श.१.९.३.१४)} विभिन्न प्राणादि रश्मियों से संयुक्त पदार्थों के संग्राम में प्रकृष्ट रूप से उनका विभाग करता हुआ समुचित आकर्षणादि बलों से युक्त करता है। वे प्राणादि युक्त पदार्थ विभिन्न मरुत् समूहों से युक्त होकर विशेष सक्रिय हो उठते हैं।

(३) अम्यक्सा तं इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतों जुनन्ति।
अग्निश्चिद्धि ष्मांतसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधंति प्रयांसि।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सनेमि = पुराणनाम (निघं.३.२७)} वह इन्द्र तत्त्व सनातन एवं परोक्ष मरुद् रश्मियों को प्राप्त करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सहज गतियां प्रदान करता है। वह तेजस्वी और पावक अग्नि रूप होकर अपने दोनों ओर विद्यमान प्राण एवं अपान रश्मियों के द्वारा अन्य प्राणादि रश्मियों को निरन्तर आकर्षित व धारण करता रहता है।

(४) त्वं तू नं इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम्।
स्तुतश्च यास्तें चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः।।४।।

इसका छन्द ब्राह्म्युष्णिक् होने से दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने ऋजुगामी एवं घोरकर्मा वलों के द्वारा नाना प्रकार की छन्द व मरुद् रश्मियों को संयुक्त वा वियुक्त करता है। वे मरुद् रश्मियां वायु तत्त्व को प्रकाशित करके विभिन्न संयोज्य कणों को आकर्षित और तृप्त करती हैं।

(५) त्वे राय॑ इन्द्र तोशत॑माः प्रणेतारः कस्य॑ चिदृतायोः।
ते षु णो॑ मरुतो॑ मृळयन्तु ये स्मा॑ पुरा गा॑तूयन्ती॑व देवाः।।५।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मरुद् रश्मियों के द्वारा रक्षित प्राण रश्मियों द्वारा प्रेरित और प्रकाशित होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को तृप्त और क्रियाशील करता है।

(६) प्रति प्र या॑हीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थि॑वे सद॑ने यतस्व।
अध यदे॑षां पृथुबुध्नास एता॑स्तीर्थे नार्यः पौंस्या॑नि तस्थुः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व {बुध्नम् = इदमपीतरद् बुध्नमेतस्मादेव बद्धा अस्मिन् धृताः प्राणा इति (नि.१०.४४)} विभिन्न प्राण रश्मियों को व्यापक स्तर पर धारण करने वाले आकाश तत्त्व से युक्त होकर विभिन्न तारक वलों से सम्पन्न नाना नियंत्रण आदि कर्मों में स्थित होता है। विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के संघर्ष में मरुद् रश्मियों को प्रक्षिप्त करके व्यापक पार्थिव आदि कणों को वल प्रदान करता है।

(७) प्रति॑ घोराणामेता॑नामयासां॑ मरुतां॑ शृण्व आयतामु॑पब्दिः।
ये मर्त्यं॑ पृतनायन्तमूमै॑र्ऋणावानं न पतय॑न्त सर्गैः।।७।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {उपब्दिः = वाङ्नाम (निघं.१.११), महाशब्दकर्ता (म.द.ऋ.भा.१.७४.७)} घोर शब्द करता हुआ इन्द्र तत्त्व अपने साथ संगत और दूर से आती हुई तीक्ष्ण मरुद् रश्मियों को सतत आकर्षित करता है। वह विभिन्न प्रापक मरुद् रश्मियों को समूह में युक्त करता हुआ रक्षण और संसर्ग आदि कर्मों में नियुक्त करता है।

(८) त्वं मानें॑भ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा॑ मरुद्भिः शुरुधो गोअ॑ग्राः।
स्तवा॑नेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं॑ वृजनं॑ जीरदा॑नुम्।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व {मानम् = माने निर्माणे (नि.२.२२)} विभिन्न पदार्थों के निर्माण और प्रकाशन के लिए तेजयुक्त मरुद् रश्मियों एवं सवकी जननी प्राण रश्मियों के द्वारा अपने अग्र भाग में तीक्ष्ण रश्मियों को धारण करता है। वह संयोजक एवं धारक वलों के साथ वर्तमान होकर नाना परमाणु आदि पदार्थों को प्रकट करता है।

इस सूक्त की प्रथमा और षष्ठी ऋचा में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से ये रश्मियां न केवल सम्पूर्ण सूक्त रूप रश्मिसमूह अपितु अन्य पदार्थों में भी व्याप्त होकर प्रभावित करती हैं। इस सूक्त का 'महत्' शब्द से युक्त होना अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

तदनन्तर भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से संयुक्त प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.६.१७ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) पिबा सोम॑मभि यमु॑ग्र तर्द॑ ऊर्वं गव्यं॑ महि॑ गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधि॑षो वज्रहस्त विश्वा॑ वृत्रम॑मित्रिया शवो॑भिः।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वज्ररूप रश्मियों

से युक्त वह सुदृढ़ इन्द्र तत्त्व अपने बल के द्वारा विशाल आसुर मेघों एवं सभी प्रतिकर्षक अनिष्ट रश्मियों को नष्ट करके विभिन्न छन्दादि रश्मियों को प्रकाशित करते हुए संयोगादि कर्मों में विभिन्न अनिष्ट आवरणों को नष्ट करता है और सोम रश्मियों को अवशोषित भी करता है।

(२) स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान्।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {गोत्रः = मेघनाम (निघं.१.१०) (गुङ् अव्यक्ते शब्दे)} वह इन्द्र तत्त्व ऋजुगामी एवं असुर तत्त्व से मुक्त पदार्थों का पालन करता है। वह विभिन्न वर्षक बलों से युक्त वज्र रश्मियों को धारण करता हुआ अव्यक्त शब्द करते हुए मेघरूप पदार्थों को भेदता है तथा विचित्र बलों से युक्त होकर पदार्थों को तीव्र आकृष्ट करके बाधक पदार्थों को सब ओर से छिन्न-भिन्न करता है।

(३) एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व {प्रत्नथा = प्रत्न इव (नि.३.१६), (प्रत्नः = स्वर्गो वै लोकः प्रत्नः - तै.सं.१.५.७.१)} द्युलोकों के केन्द्रीय भागों के बलों की व्यापक रूप से रक्षा करता है। वह उनके द्वारा सम्पन्न और प्रेरित क्रियाओं को बढ़ाता हुआ नाना छन्द रश्मियों के साथ युक्त होकर विभिन्न संयोज्य परमाणुओं को संयुक्त करके प्रकाश रश्मियों को प्रकट करता तथा असुरादि रश्मियों को दूर करता है।

(४) ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हषन्त प्रसाहम्।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {स्वधा = द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं. ३.३०)} विद्युत् और आकाश तत्त्व से युक्त इन्द्र तत्त्व प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को अवशोषक और सक्रियतावर्धक बलों, व्यापक तेज, नियंत्रक और प्रतिरोधी सामर्थ्य आदि से युक्त करके अति क्रियाशील बनाता है।

(५) येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत्।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात्।।५।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अपनी रश्मियों के द्वारा सूर्य की प्रकाश व ऊष्मायुक्त रश्मियों तथा विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को सब प्रकार से बसाता वा रचता है। वह विशाल आसुर मेघों को अपने प्रभाव क्षेत्र से दूर जाने हेतु प्रेरित करता है। वही विभिन्न पदार्थों की दृढ़ता को बल प्रदान करता है।

(६) तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान्।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व के विभिन्न भेदन आदि कर्मों के द्वारा अपरिपक्व पदार्थ परिपक्वता प्राप्त करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व अपनी तेजस्विनी किरणों के द्वारा परमाणु आदि पदार्थों के मार्गों एवं स्थानों को आच्छादित व धारण करता है। वह पार्थिव परमाणुओं को सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियों से विशेष कर रचता एवं दृढ़ बनाता है।

(७) पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः।

अधा॑रयो रोद॑सी देवपु॑त्रे प्रत्ने मा॒तरा॑ य॒ह्वी ऋ॒तस्य॑ ।।७।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व महान् भेदक कर्मों से विस्तृत पृथिवी और द्युलोकों को निकटता से विस्तृत और परिपूर्ण करता है। वह महान् लोकों को थामता और अग्नि वा प्राण तत्त्व से उत्पन्न उन दोनों प्रकार के लोकों को प्रारम्भ से ही धारण करता है।

(८) अध॑ त्वा॒ विश्वे॑ पु॒र इ॑न्द्र दे॒वा एकं॑ त॒वसं॑ दधिरे॒ भरा॑य।
अदे॑वो यद॒भ्यौहि॑ष्ट दे॒वान्त्स्व॑र्षाता वृणत॒ इन्द्र॒मत्र॑ ।।८।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {औहिष्ट = (अभि+उह वितर्के = ढकना - आप्टे कोश)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न देव परमाणुओं के संग्राम के लिए विशेष वल को अग्रभाग में धारण करता है और अप्रकाशित परमाणुओं को ढकता हुआ देव परमाणुओं में वलों का उचित विभाग करता है। सभी सृजन कार्यों में सभी प्रकार के परमाणु इन्द्र तत्त्व का ही वरण करते हैं।

(९) अध॒ द्यौश्चि॑त्ते॒ अप॒ सा नु वज्रा॑द् द्वि॒तान॑मद्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः।
अहिं॒ यदिन्द्रो॑ अ॒भ्योह॑सानं॒ नि चि॑द्वि॒श्वायुः॑ श॒यथे॑ ज॒घान॑ ।।९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मेघरूप पदार्थों को सव ओर से ढकता हुआ छिन्न-भिन्न करके उसमें निरन्तर व्याप्त रहता है। वज्र रश्मियों के प्रभाव से कम्पायमान विद्युत् दो प्रकार के रूप धारण करती है। उन रश्मियों के तेज द्वारा विद्युत् के ये दो रूप उत्पन्न होते हैं।

(१०) अध॒ त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र॒ वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृतच्छ॒ताश्रि॑म्।
निका॑म॒मर॑मणसं॒ येन॒ नव॑न्त॒महिं॒ सं पि॑णगृजीषिन् ।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे वज्र रश्मियां ऋजुगामिनी अनेक भेदक एवं धारक वलों से युक्त वाधक रश्मिरहित कमनीय रूप वाली होती हैं। ऐसी ही तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा विभिन्न आकाशीय मेघों का विखण्डन होता है।

(११) वर्धा॒न्यं विश्वे॑ म॒रुतः॑ स॒जोषाः॒ पच॑च्छ॒तं म॑हि॒षाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्य॑म्।
पू॒षा विष्णु॒स्त्रीणि॒ सरां॑सि धावन्वृत्र॒हणं॑ मदि॒रमं॒शुम॑स्मै ।।११।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा समृद्ध होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संयुक्त और पुष्ट करता हुआ व्यापक विद्युत् रूप में प्रकट होकर तीनों लोकों में गतिमान् होता है। वह अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से आवरक आसुर मेघ को नष्ट करके अनेकों महान् वल एवं पदार्थों को परिपक्व एवं विस्तृत करता है।

(१२) आ क्षोदो॒ महि॑ वृ॒तं न॒दीनां॒ परि॑ष्ठितमसृज ऊ॒र्मिम॒पाम्।
तासा॒मनु॑ प्र॒वत॑ इन्द्र॒ पन्थां॒ प्रार्द॑यो॒ नीची॑र॒पसः॑ समु॒द्रम् ।।१२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व द्युलोकों की निर्माण प्रक्रिया में सव ओर वर्तमान तरल पदार्थ की धाराओं में नाना प्रकार की तरंगों को उत्पन्न करके अन्तरिक्ष में केन्द्रीय भाग की ओर प्रकृष्ट रूप से गमन कराता है।

(१३) ए॒वा ता विश्वा॑ चकृ॒वांस॒मिन्द्रं॑ म॒हामु॒ग्रम॑जु॒र्यं स॑हो॒दाम्।

सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात्।।१३।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व महान् तेजस्वी और कभी मन्द न होने वाली, सब ओर से प्रहार और प्रतिरोध करने वाली, उत्तम प्राण रश्मियों से युक्त भूरिकर्म-कर्त्री वज्र रश्मियों से सम्पन्न होकर सब ओर से रक्षणादि कर्मों को करके नवीनोत्पन्न पदार्थों को भी समृद्ध करता है।

(१४) स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र।।१४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्रकाश से युक्त होकर वेग और संयोजक बलों से सम्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को धारण करने के लिए सूत्रात्मा वायु रश्मियों, विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों एवं प्रकाशक प्राण रश्मियों को आकाश तत्त्व के साथ धारण करता है।

(१५) अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः।।१५।।

इसका छन्द आर्च्युष्णिक् होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {हिमम् = हिमं पुनर् हन्तेर्वा हिनोतेर्वा (नि.४.२७)} उस इन्द्र तत्त्व की वज्र रश्मियां देव पदार्थ की प्रेरक एवं असुर पदार्थ की विध्वंसक सुन्दर प्राण रश्मियों से युक्त संयोज्य पदार्थों में बलों का अनुकूल विभाजन व संवर्धन करती हैं।

इस उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद 'ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र' में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इस शब्द के द्वारा ये सभी छन्द रश्मियां व्यापक विस्तार वाली होकर विभिन्न पदार्थों को विस्तृत करती हैं। इसका 'महत्' शब्द से युक्त होना ही अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में १३ त्रिष्टुप्, १ पंक्ति एवं १ उष्णिक् छन्द रश्मियों का एक समूह एवं ५ पंक्ति, १ उष्णिक् और १ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का दूसरा समूह उत्पन्न होता है। इनके प्रभाव से विभिन्न तारों एवं अन्तरिक्ष आदि लोकों में विद्युत् चुम्बकीय तरंगों एवं बलों का विशेष संवर्धन होता है। सूत्रात्मा वायु के द्वारा अन्य प्राण एवं छन्द रश्मियां विशेष सक्रिय और तीक्ष्ण हो उठती हैं। नवनिर्मित तारों और ग्रहादि लोकों में विभिन्न क्रियाएं तीव्रता से होती हैं। गमन करती हुई विद्युदावेशित तरंगें अपने दोनों ओर अन्तरिक्ष में विद्यमान विभिन्न प्राण रश्मियों को आकर्षित करती हुई चलती हैं। विद्युदावेशित तरंगें एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगें प्राण एवं मरुद् रश्मियों द्वारा प्रेरित और संरक्षित रहती हैं। जब ये तरंगें किसी कण आदि पर प्रहार करती हैं, तो उनके अग्रभाग में स्थित प्राण रश्मियों के द्वारा ही करती है। लोकों के बनने की प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में विशाल कॉस्मिक मेघों पर ऐसी ही तीक्ष्ण तरंगों का प्रहार होता है। वे तीक्ष्ण तरंगें उन मेघों को परिधि रूप से घेरकर अन्दर प्रविष्ट होकर उसका भेदन करती हैं। विद्युत् के ही द्वारा तारों के केन्द्रीय भागों में नाभिकीय संलयन की क्रिया सम्पन्न होती, डार्क एनर्जी का प्रभाव नष्ट होता और केन्द्रीय भाग की परिधि की रक्षा होती है। विभिन्न प्रकार के आणुविक बन्धन विद्युत् के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। इस क्रिया में सूत्रात्मा वायु की विशेष भूमिका होती है। **प्राणापान रश्मियों से निर्मित सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व ही सूक्ष्म मूल कणों को धनावेशित एवं ऋणावेशित मूलकणों में विभक्त करता है।** इसके पूर्व ब्रह्माण्ड में विद्युदावेशित कण नहीं होते, बल्कि निरावेशित अत्यन्त सूक्ष्म कण ही उत्पन्न होते हैं। ये सभी प्रकार के कण विभिन्न लोकों एवं आकाश आदि में व्याप्त रहते हैं। जब कॉस्मिक मेघ तरल पदार्थ वा गैसीय रूप धारण करके निर्माणाधीन तारों के केन्द्रीय बिन्दु की ओर बढ़ता है, तब उनकी धाराओं को पूर्व में विद्युत् बल ही प्रेरित करते हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि में विद्युत् की विशेष भूमिका है।।

५. 'महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा इति सूक्तं', महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि से इन्द्रदेवताक ऋ.६.१९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्।।१।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् इन्द्र रूप सूर्य, आकाश एवं वायु तत्त्व से बढ़ता हुआ नाना प्रकार की रश्मियों से व्याप्त होता है। वह बहुत व्यापक क्रियाओं और बलों से युक्त होकर नाना प्रकार के तेजस्वी कर्मों के लिए आशुगामी मरुद् रश्मियों द्वारा सब ओर से परिपूर्ण हो जाता है।

(२) इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूर्यादि लोक विभिन्न वाग् रश्मियों के द्वारा नाना पदार्थों के विभाग और विस्तार करने के लिए अजीर्ण, आकर्षक, प्रतिकर्षक एवं प्रतिरोधक बलों से युक्त सर्वत्र व्याप्त इन्द्र तत्त्व को धारण करके नाना क्रियाओं को त्वरित सम्पन्न करता है।

(३) पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {करस्ना = यौ करान् कर्तॄन् स्नापयतश्शोधयतस्तौ (म.द.भा.)} वे सूर्यादि लोक विद्युत् के व्यापक और हरणशील बलों के द्वारा शुद्ध हुए विभिन्न दृश्य कणों के समूहों एवं उनके बलों को अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं। वे अपने अन्दर विद्यमान पदार्थ में हो रहे व्यापक संघर्षों को इन्द्र तत्त्व वा विद्युत् के द्वारा ही नियन्त्रित रखते हैं।

(४) तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः।।४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शाकः = शक्तिविशेषः (तु.म.द.भा.)} द्युलोकों के अन्दर वह इन्द्र तत्त्व सनातन अहिंस्य एवं प्रकाशक प्राण व मरुद् रश्मियों की शक्तियों के द्वारा प्रकाशित और बलवान् होकर नाना प्रकार के बलों एवं परमाणु आदि पदार्थों को ग्रहण करता है।

(५) धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {यादमानाः = अभिगच्छन्त्यः (म.द.भा.)} सूर्यादि लोकों में सब ओर से विशाल आकाश में बहती हुई धाराओं के समान पदार्थ का प्रवाह चलता रहता है। उस पदार्थ में नाना प्रकार के परमाणु एवं विभिन्न छन्द रश्मियां सोम रश्मियों के साथ समृद्ध होती हुई नाना प्रकार के संयोजक बलों से युक्त होती हैं।

(६) शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम्।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अतिशय वलिष्ठ इन्द्र तत्त्व हरणशील तीक्ष्ण रश्मियों से युक्त होकर, अनिष्ट शक्तियों को नियंत्रित करके विभिन्न पदार्थों को तेज और वल के द्वारा धारण करता है। वह प्रकाशित और शुद्ध पदार्थ को नाना प्रकार के सेचक वलों से निरन्तर सक्रिय करता रहता है।

(७) यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्।
येन तोकस्य तनयस्य साता मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण आसुर रश्मिसमूहों का प्रतिरोध और नियन्त्रण करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को निरापद रूप से प्रकाशित और रक्षित करता हुआ उचित संयोग और विभाग से युक्त करता है। वह उनके अन्दर व्याप्त होकर उनको सव ओर से धारण करता है।

(८) आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन्।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् होने से दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपने वर्षक और शोषक वलों से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को पूर्ण रूप से तृप्त और सवल वनाकर सव ओर से धारण करता है। वह विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं के लिए अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थ समूहों का उचित विभाग करता है।

(९) आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे।।९।।

इसका छन्द पंक्ति है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के सव ओर विद्यमान रहता हुआ विभिन्न प्राणादि रश्मियों के शोषक और सेचक वलों से उन पदार्थों को युक्त करते हुए सतत धारण करता है।

(१०) नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं वृहन्तम्।।१०।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रकाशित होता हुआ इन्द्र तत्त्व सर्वाधिक तीव्रगामी धनंजय आदि प्राण रश्मियों के द्वारा विभिन्न प्रकार की गति, कान्ति आदि क्रियाओं से विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों के समान वलों वा पदार्थों का विभाग करता है। वह विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को व्यापक स्तर पर स्थिरता से धारण करते हुए नियन्त्रित करता है।।

(११) मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों की व्यापक वृष्टि करता हुआ असुरादि रश्मियों की विभिन्न वाधाओं का प्रतिरोध करता हुआ तीव्र वलों से युक्त होकर सवको नियन्त्रित व संगत करता है।

(१२) जनं॑ वज्रिन्महि॑ चिन्मन्य॑मानमेभ्यो॑ नृभ्यो॑ रन्धया॒ येष्व॑स्मि॑।
अधा॑ हि त्वा॑ पृथि॒व्यां शूर॑साता॒ हवा॑महे॒ तन॑ये॒ गोष्व॒प्सु॥१२॥

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {जनम् = एष ह वै पद्भ्यां पापं करोति यो जनमेति (जै.ब्रा.२.१३५)} वज्र रश्मियों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व {रन्धया = (रध हिंसासंराध्योः = शुद्ध होना)} आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा अपने मार्गों में असुरादि रश्मियों से आक्रान्त वा धारित, प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को शुद्ध अर्थात् निरापद करता है। वह पार्थिव कणों, छन्द वा प्राणादि रश्मियों के विस्तार और विभिन्न तीक्ष्ण बलों के विभाजन में भी नाना प्रकार से सक्रिय रहता है।

(१३) वयं त॑ एभिः॑ पुरुहूत स॒ख्यैः शत्रोः॑शत्रो॒रुत्त॑र इत्स्या॑म।
घ्नन्तो॑ वृत्राण्यु॒भया॑नि शूर राया म॑देम बृह॒ता त्वोता॑ः॥१३॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक रूप से प्रकाशित तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व सब ओर से बाधक असुरादि रश्मियों को नष्ट व व्याप्त करके {वृत्रम् = वृत्रो वै सोम आसीत् (श.३.४.३.१३)} प्रकाशित और अप्रकाशित पदार्थों में व्याप्त सोम रश्मियों को नाना प्रकार की छन्द वा प्राण रश्मियों के द्वारा रक्षित व सक्रिय करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इस सम्पूर्ण सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में ही ४ पंक्ति एवं ६ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इससे इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् चुम्बकीय बलों और विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता और तीक्ष्णता में वृद्धि होती है। इन्हीं बलों के द्वारा तारों के अन्दर विभिन्न स्थानों पर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र स्थापित होते और पदार्थ की विभिन्न तीव्र धाराओं को जन्म देते हैं। ये सभी धाराएं विद्युदावेशित कणों की होती हैं। उन धाराओं में भी डार्क एनर्जी से संघर्ष भी चलता रहता है। विद्युत् की विभिन्न तीव्रगामी क्रियाओं में, विशेषकर उसको तीव्र गति प्रदान करने में धनंजय रश्मियों का ही विशेष योगदान होता है।।

६. 'तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसेति' सूक्तं, यदैत् कृण्वानो महिमानमिन्द्रियमिति, महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
तदु जागतं, जगत्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति, तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माज्जगतीषु निविदं दधाति।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते, त्रैष्टुभानि च जागतानि च; मिथुनं वै पशवः, पशवश्छन्दोमाः; पशूनामवरुद्ध्यै।।
महद्वन्ति सूक्तानि शस्यन्ते; महद् वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षस्याऽऽप्त्यै।।
पञ्च सूक्तानि शस्यन्ते; पञ्चपदा पंक्तिः, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।

व्याख्यानम्– तदनन्तर वैरूपः शतप्रभेदनः ऋषि अर्थात् विविध रूपों से युक्त एवं अनेक प्रकार के सूक्ष्म भेदक बलों से सम्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१०.११३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है–

(१) तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम्।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत।।१।।

इसका छन्द जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व के शोषक वलों का अनुगमन करके प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ प्रेरित होकर अपने विभिन्न प्रकार के गुण और कर्मों की रक्षा करते हैं। उस इन्द्र तत्त्व के व्यापक प्रभाव को धारण करके विभिन्न उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों का पालन और संवर्धन होता है।

(२) तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः।।२।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस इन्द्र तत्त्व की प्राण रश्मियों को धारण करता हुआ सूर्यरूप विष्णु उसके महान् व्यापक वल के द्वारा विशेष प्रकाशित होता है। वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित परमाणुओं के साथ गमन व उनका आच्छादन करते हुए असुर तत्त्व को नष्ट करता है।

(३) वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम्।।३।।

इसका छन्द निचृज्जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से जव इन्द्र तत्त्व का असुर पदार्थ के साथ संघर्ष होता है, तव इन्द्र तत्त्व के साथ संगत वज्ररूप मरुद् रश्मियां सहसा ही तीक्ष्ण और महान् वल से युक्त होकर इन्द्र तत्त्व को दृढ़ और समृद्ध वना देती हैं।

(४) जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम्।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम्।।४।।

इसका छन्द पादनिचृज्जगती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व उत्पन्न होते ही स्पर्धा करते हुए अन्य वलों को दवाता हुआ अपने महान् वल को प्रकट करके विभिन्न पदार्थों को कंपाता है। वह विभिन्न पदार्थ समूहों को छिन्न-भिन्न करके आदित्य लोकों को अपने रक्षक एवं धारकवलों के द्वारा सम्भालता और सुरक्षित रखता है।

(५) आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत।
अवाभरद् धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे।।५।।

इसका छन्द जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न वलवती रश्मियों को नियन्त्रित करके द्युलोकों वा पृथिवीलोकों के अन्दर विद्यमान पदार्थ को मथता और विलोडित करता है। वह स्वर्ण वर्ण की वज्र रश्मियों को धारण करने के लिए प्राणापान वा प्राणोदान रश्मियों के तीक्ष्ण स्वरूप को धारण व प्रक्षेपित करता है।

(६) इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो बिभ्रतं तमसा परीवृतम्।।६।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् इन्द्र तत्त्व विभिन्न वाधक रश्मियों को नष्ट करता हुआ विभिन्न परमाणुओं को सवल और सतेज वनाने के लिए वेगपूर्वक गति करता है। वह उग्ररूप होकर अन्धकार रूप आसुर पदार्थ, जो देव पदार्थ को आच्छादित कर रहा होता है, को नष्ट करता है।

(७) या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत।।७।।

इसका छन्द आर्ची विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से देव और असुर पदार्थों के परस्पर संघर्ष में जब प्रमुख देव पदार्थ असुर तत्त्व द्वारा आक्रान्त होता है, उस समय इन्द्र तत्त्व देव पदार्थ के द्वारा आकृष्ट होकर असुर पदार्थ को नष्ट करके देव पदार्थ को अपने अधीन करता है।

(८) विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत्।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से असुर तत्त्व के नियन्त्रण के पश्चात् इन्द्र तत्त्व के विभिन्न बल सोम एवं प्राण रश्मियों के द्वारा प्रेरित होकर विभिन्न देव परमाणुओं को प्रेरित और प्रकाशित करते हैं तथा छिन्न-भिन्न हुआ असुर तत्त्व आकाश तत्त्व में विलीन हो जाता है। इस प्रक्रिया में देव पदार्थ में अग्नि की ज्वालायें तीव्र हो उठती हैं।

(९) भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये।।९।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अनेक बलवान्, समान रूप से प्रकाशित होने वाली छन्दादि रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के प्रकाश एवं संगम आदि गुणों को व्यापक रूप से प्रकाशित करता है। {चुमुरिम् = चोरम् (म.द.ऋ.भा. ७.१९.४)} वह इन्द्र तत्त्व कंपाने वाले तीक्ष्ण विकिरणों और अत्यन्त आकर्षण बल के द्वारा विभिन्न क्रियाओं में बाधक बनने वाले अन्य तीक्ष्ण विकिरणों को {श्रद्धा = श्रद्धा वा आपः (तै.ब्रा.३.२.४.१), तेज एव श्रद्धा (श.११.३.१.१)} तेजस्वी प्राण रश्मियों के द्वारा नष्ट कर देता है।

(१०) त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन्।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य।।१०।।

इसका छन्द पाद् निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक एवं आशुगामी बलों को धारण एवं अच्छी प्रकार व्याप्त करके वाग् रश्मियों के द्वारा सम्पूर्ण बाधक तत्वों को नियन्त्रित करता है। वह अनेक तीव्र गतियों के द्वारा विभिन्न लोकों के अन्दर पदार्थ का आलोडन करता हुआ व्याप्त होता है।

उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के तृतीय पाद "यद्वैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियम्" में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इस सूक्त की रश्मियां व्यापक स्तर पर इन्द्र तत्त्व को समृद्ध करती हैं। इन रश्मियों का 'महत्' शब्द से युक्त होना ही अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इन कण्डिकाओं का व्याख्यान पूर्वखण्ड में देखें।।+।।

उपर्युक्त मरुत्वतीय शस्त्र संज्ञक विशाल रश्मिसमूहों में विद्यमान ५ रश्मिसमूह (सूक्त) 'महत्' शब्द से युक्त होने पर इनकी प्रशंसा करते हुए महर्षि लिखते हैं कि अन्तरिक्ष भी महान् अर्थात् व्यापक होता है। इस कारण उस अन्तरिक्ष की प्राप्ति के लिए ही इन पांच सूक्त रूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति होती है। इन रश्मिसमूहों के प्रभाव से विभिन्न लोक अपनी दिशाओं को नियत करने के लिए आकाश तत्त्व को अच्छी प्रकार व्याप्त व संगत करते हैं। इस प्रक्रिया में इस 'महत्' शब्द का विशेष योगदान रहता है।।

यहाँ महर्षि उपर्युक्त सूक्तों की संख्या की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि पंक्ति छन्द रश्मियां पंचपदा होती हैं। इस कारण ये उपर्युक्त पांचों सूक्त रूप रश्मिसमूह पञ्चपदा पंक्ति छन्द रश्मियों के

समान व्यवहार करते हैं अर्थात् ये पंक्ति रश्मियों के समान तीनों लोकों में व्याप्त होकर व्यापक सृजन-संयोग क्रियाओं को सम्पादित करते हैं। शेष भाग का व्याख्यान ५.४.२ के समान समझें। यहाँ 'पशवश्छन्दोमाः' का तात्पर्य यह है कि विभिन्न मरुद् व छन्दादि रश्मियों के द्वारा ही 'छन्दोम' अर्थात् दिशाओं का निर्धारण व निर्माण होता है अर्थात् इनके कारण ही विभिन्न लोकों की घूर्णन और परिक्रमण गतियां सुनिश्चित व निर्मित होती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में ही ६ जगती एवं १ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इनके प्रभाव से विभिन्न तारों, अन्तरिक्ष एवं पृथिव्यादि लोकों में विद्युदावेशित कणों व तरंगों के उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया तीव्र होती है। इस प्रक्रिया के कारण ही सम्पूर्ण लोक प्रकाशित होते हैं। इन रश्मियों के द्वारा भी डार्क एनर्जी पर विद्युत् रश्मियों का तीव्र प्रहार होता है। विद्युत् वल इतना प्रवल होता है कि वह अन्य सभी वलों को दवा देता है। अन्तरिक्ष में विद्यमान यत्र-तत्र छितराये हुए कॉस्मिक मेघों को तीव्र विद्युदावेशित तरंगें छिन्न-भिन्न करती हैं। विभिन्न लोकों की गतियों को भी सम्भालने व सुरक्षित रखने में इन छन्द रश्मियों के साथ विद्युत् की भी भूमिका होती है। इन छन्द रश्मियों के द्वारा विद्युत् विभिन्न तारों तथा गैसीय एवं तरल अवस्था में विद्यमान विभिन्न लोकों के पदार्थ को मथता रहता है। विभिन्न आवेशित तरंगें सुनहरे रंग की होकर तीक्ष्ण वलों से युक्त नाना प्रकार की तीव्र क्रियाएं करती हैं। इन तीव्र विद्युत् तरंगों के द्वारा छिन्न-भिन्न हुआ डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी आकाश तत्त्व में ही विलीन हो जाती है और तारों के अन्दर विभिन्न संयोगादि क्रियाएं सम्पन्न होते हुए तीव्र ज्वालाएं उठने लगती हैं। विभिन्न तारों के अन्दर कुछ ऐसे भी तीक्ष्ण विकिरण होते हैं, जो अत्यन्त आकर्षक अथवा भेदक शक्तिसम्पन्न होते हैं एवं जो विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को वाधित करते हैं। ये दोनों ही प्रकार के विकिरण तीव्र ऊष्ण विद्युत् तरंगों के द्वारा नियंत्रित होते हैं। **इन छन्द रश्मियों के द्वारा ब्रह्माण्ड में लोकों की घूर्णन और परिक्रमण गतियां व दिशाएं स्थिर होने लगती हैं।।**

७. 'अभि त्वा शूर नोनुमोऽभि त्वा पूर्वपीतय इति' रथन्तरं पृष्ठं भवत्यष्टमेऽहनि।।
'यद्वावानेति' धाय्याऽच्युता।।
'त्वामिद्धि हवामह इति' बृहतो योनिमनु निवर्तयति बार्हतं ह्येतदहरायतनेन।।
'उभयं शृणवच्च न इति' सामप्रगाथो यच्चेदमद्य यदु च ह्य आसीदिति बार्हतेऽहन्यष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति' तार्क्ष्योऽच्युतः।।३।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका का व्याख्यान ४.२६.७ के समान समझें। यहाँ भेद केवल यह है कि वहाँ इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति प्रथम अहन् अर्थात् नाग प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है, जवकि यहाँ उनकी उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इन दोनों कण्डिकाओं का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।+।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ४.३१.६ में देखें। भेद केवल यह है कि वहाँ इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति द्वितीय अहन् की सूचक थी, जवकि यहाँ यह अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में व्याख्यान भाग में वर्णित विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इन सभी के प्रभाव से विद्युत् चुम्वकीय वलों व तरंगों की तीव्रता व तीक्ष्णता समृद्ध होती है। न्यून ऊर्जा वाले कणों की ऊर्जा में वृद्धि होकर वे तारों के केन्द्रीय भाग की ओर वढ़ने लगते

हैं। नाभिकीय संलयन की क्रिया तीव्र होती है। इनमें से अन्तिम ३ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां विभिन्न भ्रान्त रश्मियों को अनुकूल दिशा और गति प्राप्त कराती हैं, जिसके कारण तारे एवं विभिन्न ग्रहों में होने वाली विभिन्न क्रियाएं सम्यग् रूप से होती रहती हैं। सभी प्रकार की छन्द रश्मियां एक-दूसरे के साथ उचित रीति से सम्बद्ध होकर विभिन्न लोकों और अन्तरिक्ष में होने वाली विभिन्न क्रियाओं जैसे- ऊर्जा की उत्पत्ति, विविध क्रियाओं द्वारा ऊर्जा का तारों से बाहर आना, अन्तरिक्ष में ऊर्जा का गमन, आवेशित विद्युत् तरंगों के द्वारा विभिन्न ग्रहों के वायुमण्डल में विभिन्न अणुओं वा परमाणुओं का भेदन करके अन्य कणों को उत्पन्न करना, ऊर्जा का उत्सर्जन व अवशोषण, तारों में पदार्थ का तीव्र प्रवाह, विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र एवं धाराओं का निर्माण आदि क्रियाओं को सम्यग् रूप से संचालित करती हैं।।

॥ इति 23.3 समाप्तः ॥

ॐ अथ २३.४ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मा इति सूक्तं, महे वीराय तवसे तुरायेति महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपं; तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वेति सूक्तं, महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपं; त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैरिति सूक्तं, महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपं; त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा इति सूक्तं; महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त 'महत्' शब्द से युक्त चार अन्य सूक्तों का विधान करते हुए कहते हैं कि सर्वप्रथम सुहोत्र ऋषि {होत्रम् = अङ्गानि वाव होत्राः (गो.उ.६.६.), ऋतवो वाव होत्राः (गो.उ.६.६), रश्मयो वाव होत्राः (गो.उ.६.६)} अर्थात् शीघ्रतापूर्वक आकर्षणादि का भाव रखने वाली सूत्रात्मा वायु मिश्रित ऋतु रश्मियों से इन्द्रदेवताक ऋ.६.३२. सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम्।।१।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व नवीन-२ उत्पन्न, व्यापक रूप से नियंत्रण शक्ति सम्पन्न छन्दादि रश्मियों को तीक्ष्ण और व्यापक वनाकर, विभिन्न शीघ्रगामी पदार्थों को कंपाने वाली, अति तीक्ष्ण वज्र रूप रश्मियों का व्यापक प्रक्षेपण करता है।

(२) स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम्।।२।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी तेजस्वी तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा विभिन्न मेघरूप पदार्थों को छिन्न-भिन्न करता है। विभिन्न द्युलोकों की तीक्ष्ण वैद्युत रश्मियां भी मेघरूप पदार्थों को छिन्न-भिन्न करती हैं। आदित्य लोकों के कारणरूप वायु व अन्तरिक्ष को वसाने में भी मन, वाक् एवं प्राण रूप सूक्ष्मतम इन्द्र तत्त्व की भूमिका होती है। वह इन्द्र अपनी धारक छन्दादि रश्मियों के द्वारा नाना पदार्थों को प्रकाशित व आकर्षित करता हुआ विभिन्न किरणों को उत्पन्न व उत्सर्जित करता है।

(३) स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन्।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी सघन भेदक छन्द रश्मियों तथा वहन सामर्थ्ययुक्त क्रान्तदर्शी मरुद् रश्मियों के द्वारा गर्जना करता हुआ, समान रूप से प्रकाशित व संगत मरुद् रश्मियों के द्वारा सवको प्रकाशित व संगत करता हुआ आसुर मेघों व अन्य मेघरूप पदार्थों का अपने सुदृढ़ वल के द्वारा भेदन करता है। वह विभिन्न किरणों के वीच निरन्तर गमन करता हुआ व्यापक प्रभाव से वाधक तत्त्वों को नियन्त्रित करता है।

(४) स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि।।४।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व नाना छन्द रश्मियों से युक्त सेचक बलसम्पन्न होकर अपने प्रापणीय संयोजक बलों से युक्त, व्यापक शोषकधर्म व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को कम्पाने वाली प्राण रश्मियों से सम्पन्न क्रियाओं के द्वारा विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को प्रेरित व उत्पन्न करता हुआ विभिन्न लोकों में प्रकृष्ट रूप से सब ओर व्याप्त होता है। प्रकाशित परमाणुओं में भी वह व्यापक रूप से व्याप्त होता है।

(५) स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम्।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {तक्तः = (तक सहने इत्येके - सं.धा.को. - पं.युधिष्ठिर मीमांसक)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रतिरोधी बलों से सम्पन्न होकर नाना कर्मों को प्रकट करता है। वह अति वेगवान् तथा बलवान् पदार्थों से उत्पन्न बलों के द्वारा हिंसक पदार्थों का प्रतिरोध तथा बाधक पदार्थ का अच्छी प्रकार से प्रतिरोध करने में अयोग्य पदार्थों को व्याप्त करता है। इससे ऐसे देव पदार्थों की नानाविध सृष्टि वा समृद्धि होती है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद 'महे वीराय तवसे तुराय' में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष की सूचक है।

तदनन्तर वामदेव्यो बृहदुक्थ ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राथमिक प्राण, जो व्यापक रूप से प्रकाशित हो रहा होता है, से इन्द्रदेवताक ऋ.१०.५४ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम्।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह प्रशंसित इन्द्र तत्त्व अपनी महती प्रकाशित छन्दादि रश्मियों के द्वारा कम्पन करते हुए प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं अथवा लोकों को आकृष्ट व नियंत्रित करता है। वह प्रकाशित परमाणुओं की रक्षा करता हुआ विध्वंसक रश्मि आदि पदार्थों को नष्ट करता है तथा सभी परमाणु आदि पदार्थों को ऋजुगामी बल प्रदान करता है।

(२) यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी व्याप्ति के साथ-२ बलों को समृद्ध करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें प्रकाशित करता है। वह विभिन्न पदार्थों के साथ संघर्ष में अपनी माया अर्थात् प्रज्ञापिका विद्युत् के द्वारा विभिन्न तीक्ष्ण, हिंसक व बाधक रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें नियंत्रित कर लेता है।

(३) क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः।।३।।

इसका छन्द आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सम = समस्य सर्वस्य (नि.५.२३)} इन्द्र तत्त्व के व्यापक विस्तार में सूक्ष्म ऋषि अर्थात् प्राथमिक प्राणादि रश्मियां पूर्णतः व्याप्त रहती हैं। इसी व्याप्ति के द्वारा वह इन्द्र तत्त्व पृथिवी और द्यु आदि लोकों को साथ-२ उत्पन्न करता है।

(४) चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {महिषा = प्राणा वै महिषा (श. ६.७.४.५), महिषाः महान्तः (नि.७.२६), ऋत्विजो वै महिषाः (श.१२.८.१.२)} महान् प्राण रश्मियां चार प्रकार की होती हैं- (१) प्राण रश्मियां, (२) ऋतु रश्मियां, (३) छन्द रश्मियां, (४) मरुद् रश्मियां। ये चारों प्रकार की रश्मियां नाम अर्थात् वाग् रूप ही होती हैं। ये रश्मियां मन रूपी असुर में रमण करने वाली एवं उसी से उत्पन्न होती हैं, साथ ही ये अहिंस्य होती हैं। ये सभी आशुगामी रश्मियां सबमें व्याप्त होकर, इन्द्र तत्त्व के रूप में प्रकट होकर नाना प्रकार के कर्मों को सम्पादित करती हैं।

(५) त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता।।५।।

इसका छन्द पादनिचृत् त्रिष्टुप् है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सभी असहाय अर्थात् हीनवल परमाणु आदि पदार्थों को संरक्षण प्रदान करते हुए आकाश तत्त्व के साथ धारण करता है। उन परमाणु आदि पदार्थों को अपने कमनीय और प्रकाशक वलों के द्वारा विशेष सामर्थ्य प्रदान करके तारता है अर्थात् वे सभी सृजन प्रक्रियाओं को सम्पन्न करने में समर्थ होते हैं।

(६) यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि।।६।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्रकाशित लोकों वा कणों के मध्य प्रकाश को धारण वा स्थापित करता है। वह प्राणवान् पदार्थों में प्राण रश्मियों को संयुक्त करता है। वह कमनीय शोषक रश्मियों को उनके व्यापक तेज, जो प्राणापान रश्मियों से उत्पन्न होता है, को प्रकाशित व सक्रिय करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'महत्' शव्द विद्यमान होने से इस सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।

तदनन्तर गौतमो नोधा ऋषि अर्थात् अतिशय गमनकर्त्ता और प्रकाशक एक सूक्ष्म प्राण विशेष (हमारे मत में सूक्ष्म वाक् तत्त्व मिश्रित धनंजय प्राण को गौतम नोधा ऋषि कहा जा सकता है) से इन्द्रदेवताक ऋ.१.६३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळहासः किरणा नैजन्।।१।।

इसका छन्द भुरिगार्षी पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप में प्रसिद्ध होकर अपने शोषक वलों के द्वारा अन्तरिक्ष रूपी गृह में द्यु और पृथिवी आदि लोकों वा परमाणुओं को धारण करता है। उसके नित्य सामर्थ्य के द्वारा ही इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न विशाल मेघरूप पदार्थ एवं नाना प्रकार की किरणें अपने मार्ग पर दृढ़ता से स्थिति और गति को प्राप्त होती हैं।

(२) आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात्।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अविचल कर्मों का कर्त्ता होकर व्यापक रूप से पदार्थों को आकृष्ट करता है। वह नाना प्रकार के नियमित कर्मों को करने वाली हरणशील दो प्रकार की रश्मियों को प्राप्त करता है। उन रश्मियों

के द्वारा संयोजक बल विरोधी रश्मि आदि पदार्थों के विशाल समूह को नियन्त्रित करता हुआ अपने बाहुरूप बलों के द्वारा वज्र आदि रश्मियों को धारण व प्रकाशित करता है।

(३) त्वं स॒त्य इ॑न्द्र धृ॒ष्णुरे॒तान्त्वमृ॑भु॒क्षा नर्य॒स्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं॑ वृ॒जने॑ पृ॒क्ष आ॒णौ यूने॒ कुत्सा॑य द्यु॒मते॒ सचा॑हन्॥३॥

इसका छन्द विराट् पंक्ति है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {आणौ = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} इन्द्र तत्त्व इस सृष्टि में निरन्तर दृढ़ रहते हुए व्यापक एवं आशुगामी मरुद् रश्मियों में स्थित होकर विभिन्न संग्रामों में विरुद्ध बलों को प्रतिरुद्ध करता है। इस प्रक्रिया में विभिन्न रश्मियों को एकत्र व संयुक्त करता हुआ शोषक बलयुक्त देदीप्यमान वज्र रश्मियों को उत्पन्न करके विरुद्ध बलयुक्त पदार्थों का हनन करता है।

(४) त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र चोदीः॒ सखा॑ वृ॒त्रं यद्व॑ज्रिन्वृषकर्मन्नु॒भ्नाः।
यद्ध॑ शूर वृषमणः परा॒चैर्वि दस्यूँ॒र्योना॒वकृ॑तो वृथा॒षाट्॥४॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वज्र रश्मियुक्त इन्द्र तत्त्व वृत्ररूप आसुर मेघों को अपने प्रेरक बल-प्रहार से दूर धकेल वा फैंक देता है। वह बलपूर्वक कर्मकर्मा इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण हिंसक बाधक रश्मियों को काटता और अपने अनुकूल पदार्थों को यथावत् प्रकाशित व सक्रिय करता है। वह तीक्ष्ण मनस्तत्त्व सम्पन्न {उभ्ना = प्रपूर्द्धि (म.द.भा.)} सहज स्वभाव से प्रतिरोधी बलों को निरुद्ध करके द्युलोकों के अन्दर अनुकूल पदार्थों की पूर्ति करता है।

(५) त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्रारि॑षण्यन्दृ॒ळ्हस्य॑ चि॒न्मर्ता॑नामजु॑ष्टौ।
व्य१॒॑स्मदा काष्ठा॒ अर्व॑ते व॒र्घने॑व व॑ज्रिञ्छ्नथिह्य॒मित्रा॑न्॥५॥

इसका छन्द भुरिगार्षी जगती है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। वह इन्द्र तत्व देवपदार्थ को निरापद रूप से आशुगति प्रदान करता है। विभिन्न अनावश्यक व बाधक प्रतिकर्षण बलों को विभिन्न दिशाओं में ताडित करके मरुद् रश्मियों को सुदृढ़ बनाता वा उनके द्वारा स्वयं दृढ़ होता है तथा देवपदार्थ को घनीभूत करता है।

(६) त्वां ह॒ त्यदि॑न्द्रार्ण॑साते॒ स्व॑र्मीळ्हे॒ नर॑ आ॒जा ह॑वन्ते।
तव॑ स्वधाव इ॒यमा स॑मर्य ऊ॒तिर्वाजे॑ष्वत॒साय्या॑ भूत्॥६॥

इसका छन्द स्वराडार्षी बृहती है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। वह आशुगामी तथा नाना प्रकार के संयोज्य बलों से युक्त इन्द्रतत्त्व {अर्णा = उदकनाम (निघं.१.१२), नदीनाम (निघं.१.१३)। अतसाय्या = अतन्ति निरन्तरं सुखानि गच्छन्ति यथा सा (म.द.भा.)} द्युलोकों के अन्दर विभिन्न प्रकार से पदार्थों की धाराओं का विभाजन करता है तथा वह विभिन्न प्राणादि रश्मियों के सेचक संग्राम-संघात में सबको आकर्षित करता है। वह इन संग्रामों में विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संयोजक बलों एवं संयोज्य परमाणुओं की सहजतया रक्षा करता है।

(७) त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र स॒प्त युध्य॒न्पुरो॑ वज्रिन्पु॒रुकु॑त्साय दर्दः।
ब॒र्हिर्न यत्सु॒दासे॒ वृथा॒ वर्गं॒हो रा॑जन्वरि॑वः पू॒रवे॑ कः॥७॥

इसका छन्द भुरिगार्षी पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। {अंहोः = प्राप्तस्य प्राप्तव्यस्य वा राज्यस्य (म.द.भा.)} वह प्रकाशित वज्र रश्मियुक्त इन्द्र तत्त्व सात छन्द रश्मियों तथा प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, सूत्रात्मा व धनंजय इन सात प्राण रश्मियों के द्वारा सात प्रकार की आसुर रश्मियों से युद्ध करता हुआ उनके विशाल समूहों को विदीर्ण करता है। वह व्यापक वज्र रश्मियों को परिपूर्ण करके प्राप्त देव पदार्थ का परिचरण-परिक्रमण वा सेवन करता हुआ {कः = करोषि (म.द.भा.

)} उसे अन्तरिक्ष में सहजतया संयुक्त व संपीडित करता है।

(८) त्वं त्यां न॑ इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पींपयः परिंज्मन्।
यया॑ शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षर॑ध्यै।।८।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण प्रकाशित इन्द्र तत्त्व असुरादि वाधक व प्रतिकर्षक पदार्थों को सव ओर से नष्ट वा नियन्त्रित करता हुआ समस्त देव पदार्थ को धारण करता है। वह विभिन्न वाधक सूक्ष्म असुर रश्मियों द्वारा सूत्रात्मा वायु अथवा लोकों की अस्थिरता को नियन्त्रित करता हुआ अद्भुत कमनीय वलों से उन पदार्थों को वार-२ परिपूर्ण करता है।

(९) अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमंसा हरिंभ्याम्।
सुपेश॑सं वाजमा भ॑रा नः प्रातर्मक्षू धियाव॑सुर्जगम्यात्।।९।।

इसका छन्द, छान्दस व दैवत प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी अतिशय तीव्रगामी रश्मियों, वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों तथा आकर्षण व धारक वलों के द्वारा विभिन्न संयोज्य कणों को सव ओर से प्रेरित व धारण करता है। वह उनको विभिन्न कर्मों में वसाता तथा उत्तम रूप वाले वलों से शीघ्रतापूर्वक पुनः-२ युक्त करके सव ओर से धारण करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'महत्' शव्द विद्यमान होने से इस सूक्त रूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।

तदनन्तर वामदेव अर्थात् मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राण तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ. ४.१७ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) त्वं महाँ इ॑न्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना॑ मन्यत द्यौः।
त्वं वृत्रं शव॑सा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिं॑ना जग्रसानान्।।१।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {जग्रसानान् = शत्रुसेनाग्रसमानान् (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण पार्थिव परमाणुओं को अपने महान् तेज व वल के द्वारा प्रकाशित करके उन्हें द्युलोकों में अनुकूलता प्रदान करता है। वह उन परमाणुओं को प्रकाशित आग्नेय परमाणुओं के अनुकूल तेजयुक्त वनाने के साथ-२ अनुगामी भी वनाता है। वह देव पदार्थ के आच्छादक आसुर मेघ को छिन्न-भिन्न करके, अन्य मेघरूप पदार्थ समूहों को नदीरूप धाराओं के रूप में परिवर्तित करके उन्हें अपने वल से आसुर वाधक पदार्थ की अपेक्षा अग्रगामी वनाता है।

(२) तव॑ त्विषो जनि॑मन्रेजत द्यौ रेजद्भूमि॑र्भियसा स्वस्य॑ मन्योः।
ऋघायन्त॑ सुभ्व१ः पर्वतास आर्द॒न्धन्वा॑नि सरयन्त आपः।।२।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से प्रशस्त प्राणादि रश्मियों से जन्मे इन्द्र तत्त्व के कम्पाने वाले ताप से द्यु व पृथिव्यादि लोक कम्पित होते हैं। विभिन्न आसुर व अन्य मेघरूप पदार्थ उस इन्द्र तत्त्व के ज्वलित रूप के द्वारा विदीर्ण होते तथा उनसे देव पदार्थ की धाराएं अन्तरिक्ष में प्रवाहित होती हैं।

(३) भिनद्गिरिं शव॑सा वज्र॑मिष्णन्नाविष्कृण्वानः संहसान ओज॑ः।
वधी॑द् वृत्रं वज्रे॑ण मन्दसानः सरन्नापो जव॑सा हतवृ॑ष्णीः।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न आवरक-आच्छादक आसुर मेघ छिन्न-भिन्न होकर, देव पदार्थ के विशाल मेघसमूह रूप पदार्थ विदीर्ण होकर विभिन्न वेगवती धाराओं के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उस इन्द्र तत्त्व से वल एवं सक्रियता आदि गुण प्रकट होकर वज्र रश्मिसमूह सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं।

(४) सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम।।४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {द्यौः = आपो वै द्यौः (श.६.४.१.६)} इन्द्र के उत्पादक श्रेष्ठ बलसम्पन्न प्राण तत्त्व प्रकाशित होकर अतीव उत्तम क्रियाओं से सम्पन्न होते हैं। वे प्राण तत्त्व अपने बल व क्रिया से अच्युत होकर वज्र रश्मिओं को उत्पन्न करते हैं। ऐसे प्राण तत्त्व ही विभिन्न लोकों, विशेषकर द्युलोकों में विशेष रूप से प्रतिष्ठित होते हैं।

(५) य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से आकर्षण बलयुक्त विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा व्यापक रूप से कमनीय इन्द्र तत्त्व अकेला ही सभी बाधक पदार्थों को कम्पाता है। वह विभिन्न पदार्थों से युक्त होकर प्रकाशित होकर गरजता हुआ सभी प्रकाशित लोकों को प्राणादि रश्मियों से परिपूर्ण करके अनुकूलता से सक्रिय करता है।

(६) सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का पालक और नियंत्रक इन्द्र तत्त्व प्राणादि रश्मियों से सम्पन्न होकर सभी आकर्षक बलयुक्त परमाणुओं को धारण करता है। वह विभिन्न सोम रश्मियों के अवशोषण से अतिशय सक्रिय और व्यापक होकर द्युलोकों के अन्दर नाना क्रियाओं को निरन्तरता एवं अक्षुण्णता प्रदान करता है।

(७) त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः।।७।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व द्युलोकों के केन्द्रीय भाग में {अमम् = भयं बलं वा (नि.१०.२१)। अमा = गृहनाम (निघं.३.४)} कंपाने वाले विभिन्न बलों के साथ उत्पन्न होता हुआ सभी संयोज्य परमाणुओं को व्यापक रूप से धारण करता है। इसके पश्चात् द्युलोकों के अन्य बाहरी भागों में व्याप्त सूक्ष्म असुर रश्मियों को अपनी वज्र रश्मियों से विदीर्ण करता है।

(८) सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः।।८।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व असुर रश्मियों को नष्ट करते हुए विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के बलों का उचित विभाग करके उन्हें अच्छी प्रकार सिद्ध और संचित करता है। वह विभिन्न प्राणादि रश्मियों के साथ संगत होता हुआ निरन्तर अपार तीक्ष्ण, महान् प्रेरक और बलवर्षक वज्र रश्मियों को सब ओर प्रक्षिप्त करता है।

(९) अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम।।९।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {चततीति गतिकर्मा (निघं.२.१४)} वह इन्द्र तत्त्व अपने साथ संगत परमाणुओं को गति प्रदान करता

हुआ विभिन्न संग्राम वा संघातों में उनको सम्यग्रूप से व्याप्त व प्रकाशित करता हुआ पुष्ट करता है। वह विभिन्न संयोज्य परमाणुओं के बलों का विभाजन करते हुए उन्हें अनुकूलता से संगत और प्रकाशित करता है।

(१०) अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात्।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व असुरादि रश्मियों का नाश करके विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को प्रकृष्टता से क्रमबद्ध धारण करता है एवं उनके नानाविध सहयोग से अनेक पदार्थों का निर्माण करता है। वह विभिन्न प्राण रश्मियों को उत्पन्न करता हुआ सुदृढ़ और ज्वलनशील होकर लोकों में नाना प्रकार से कम्पन उत्पन्न करता है।

(११) समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्वः।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा अतिशय सक्रिय और बलवान् होकर विभिन्न परमाणुओं को नियंत्रित करता है। वह आशुगामी तेजस्वी रश्मियों एवं पूर्वोत्पन्न अन्य अनेक पदार्थों को भी नियंत्रित करता है। यह अपनी शक्तियों से विभिन्न पदार्थों का विभाग भी करता है और संघात भी।

(१२) कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः।।१२।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका छान्दस एवं देवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कियत् = अल्प सामर्थ्यः (तु.म.द.ऋ.भा.४.५.६)} वह इन्द्र तत्त्व अपने बल से बार-२ गर्जना करता हुआ विभिन्न मेघरूप पदार्थों को वेगवती प्राण रश्मियों के समान व्याप्त व नियंत्रित करता है। वह अल्प सामर्थ्यवान् होने पर अन्तरिक्षरूपी माता और प्राणापानादि रश्मियों रूपी जनिता के साथ अधिकता से व्याप्त होकर पुनः तीक्ष्ण रूप प्राप्त करता है।

(१३) क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम्।
विभञ्जनुरशनिमाँइव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात्।।१३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {रेणुः = रिणाति गच्छति हिनस्ति हन्यते वा स (उ.को.३.३८)। क्षियन्तम् = (क्षियति गतिकर्मा - निघं.२.१४)} वह इन्द्र तत्त्व संगत होते हुए परमाणु आदि पदार्थों को वसुरूप लोकों में धारण करता है। वह वायु एवं तीक्ष्ण विद्युत् के समान अथवा उसके रूप में शक्तिशाली होकर विभिन्न तीक्ष्ण अनिष्ट पदार्थों को नष्ट करता हुआ गतिहीन एवं गतिशील सभी पदार्थों को धारण करके छिपे हुए तीव्रगामी हिंसक पदार्थों को व्याप्त व नियन्त्रित करता है।

(१४) अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम्।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ।।१४।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूर्यादि लोकों एवं उनकी रश्मियों में व्याप्त होकर उन्हें निरन्तर आशुगति से चलाता है। वह प्रकाश रश्मियों वा लोकों को आकर्षित करके मार्ग भ्रष्ट करने वाली रश्मियों को नष्ट करता है। वह विभिन्न लोकों की परिधिरूप विद्यमान वाग् रश्मियों को उनके गृहरूप अन्तरिक्ष में रमण कराता है।

(१५) असिक्न्यां यजमानो न होता।।१५।।

इसका छन्द याजुषी पंक्ति है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से {याजुषी = सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत् (तै.ब्रा.३.१२.६.१)} इन्द्र तत्त्व सर्वत्र गमन करता हुआ नाना प्रकार के संगम कर्मों को विस्तृत करता है। इसके अन्य प्रभाव से {असिक्नीः = रात्रिनाम (निघं.१.७), असिक्न्यशुक्लाऽसिता (नि.६.२६)} इन्द्र तत्त्व द्युलोकों में विद्यमान कृष्णवर्णी क्षेत्रों में विभिन्न पदार्थों को संगत करता हुआ {होता = आत्मा वै यज्ञस्य होता (कौ.ब्रा.६.६)} उनको इतस्ततः निरन्तर गमन कराता रहता है।

(१६) गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रां अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽ वते न कोशम्।।१६।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अवतः = कूपनाम (निघं.३.२३) (अव रक्षणादिषु धातोरतच्) - वै.को. आ.राजवीर शास्त्री} विभिन्न परमाणु आशुगामिनी बलवती संयोजनीया वाग् रश्मियों को आकर्षित करते हुए सूत्रात्मा वायु की अक्षीणा सृजनधर्मिणी रश्मियों के साथ प्रकाशित व संगत होते हैं। वे द्युलोकों में विद्यमान नाना प्रकार के मेघरूप पदार्थों और रक्षक कूपतुल्य विवरों में इन्द्र तत्त्व के साथ सब ओर विचरण करते हैं।।

(१७) त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः।।१७।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को आकृष्ट करते और दर्शाते हुए उनमें व्याप्त होकर उनकी रक्षा और सुगमता पूर्वक उनको संगत करता है। वह सोम रश्मियों और ऋतु रश्मियों के द्वारा पालित विभिन्न लोकों के निर्माण के लिए विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियों को धारण करके सब पदार्थों में कमनीय बल उत्पन्न करता है।

(१८) सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र।।१८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सबके साथ संगत होते हुए उन्हें और प्रकाशित करता हुआ उनमें प्राण एवं छन्दादि रश्मियों को धारण कराता है। वह इन क्रियाओं से व्यापक होता हुआ तेज और बलों से सबको सम्पन्न करके विलोडित व प्रकाशित करता है।

(१९) स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः।।१९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {शर्म = वाग्वै शर्म (ऐ.२.४०), गृहनाम (निघं.३.४), सुखनाम (निघं.३.६)} वाग् रश्मियों के आश्रय में स्थित कमनीय और प्रकाशित इन्द्र तत्त्व परोक्षरूप आसुर मेघों को नष्ट करता है। उस इन्द्र तत्त्व को अविनाशी वा विनाशी अर्थात् अल्पायु वा दीर्घायु कोई भी तीक्ष्ण पदार्थ बाधित नहीं कर सकते हैं।

(२०) एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे।।२०।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह व्यापक इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु रश्मियों को धारण करता हुआ मन्दगामी परन्तु प्रकाशित अवस्था में भी विभिन्न कार्यों को निरन्तर करता है। वह विभिन्न संयोजनीय परमाणुओं के बड़े-२ समूहों को जन्म

देता एवं प्रकाशित व धारण करता है।

(२१) नू ष्टुत इंन्द्र नू गृंणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।२१।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय रश्मियों से समृद्ध और प्रकाशित इन्द्र तत्त्व आदित्य लोकों में विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की धाराओं को प्रकाशित करते हुए संयोजक वलों से युक्त करके समृद्ध करता है। वह विभिन्न रमणीय एवं वाहक गुणों से युक्त नाना प्रकार की नित नवीन उत्पन्न रश्मियों के द्वारा निरन्तर समृद्ध और क्रियाशील होता है।

इस सूक्त की प्रथमा एवं अष्टमी ऋचा में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इस सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कूर्म प्राण** के उत्कर्ष काल में ४ समूहों में कुल ४१ छन्द रश्मियां उत्पन्न होती है। जिनमें से पंक्ति- १४, त्रिष्टुप्- २५, जगती- १ एवं १ वृहती है। इनके प्रभाव से विभिन्न तारों में विद्युत् चुम्बकीय वल एवं तरंगों की मात्रा एवं तीव्रता में वृद्धि होती है, जिसके कारण विद्युत् के विभिन्न प्रकार के पूर्वोक्त कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न होते हैं। डार्क एनर्जी से भी पूर्ववत् संघर्ष चलता रहता है। विद्युत् के अन्दर सभी प्राण रश्मियां सदैव विद्यमान रहती हैं, जिनमें छन्द एवं मरुद् रश्मियां भी सम्मिलित हैं। **विद्युत् चुम्बकीय बल जब किसी कण को आकर्षित वा प्रतिकर्षित करते हैं, तब वे उस कण के चारों ओर विद्यमान आकाश तत्त्व को सम्पीडित वा प्रसारित करते हैं। विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की गति और मार्ग के निर्माण में भी विद्युत् की भूमिका होती है।** तारों के अन्दर पदार्थ की विभिन्न धाराओं के निर्माण और प्रवाह में विद्युत् की ही भूमिका होती है। जव डार्क एनर्जी किसी कण वा तरंग पर अपना प्रक्षेपक प्रभाव डालती है, तव वह इस प्रक्रिया में उस कण, क्वान्टा अथवा लोक के चारों ओर विद्यमान सूत्रात्मा वायु रश्मियों को अस्थिर करती है। उस समय तीक्ष्ण विद्युत् तरंगें ही उस डार्क एनर्जी को नियंत्रित करती हैं। विद्युत् के प्रभाव से ही तारे एवं पृथिवी आदि लोकों में सदैव कम्पन होता रहता है। ज्ञातव्य है कि गुरुत्वाकर्षण वल भी विद्युत् का ही एक विशेष रूप है, जिसके विषय में हम अनेकत्र चर्चा कर चुके हैं। कॉस्मिक मेघों से पदार्थ की नाना धाराएं उत्पन्न होकर लोकों के निर्माण की प्रक्रिया भी विद्युत् के ही कारण सम्भव होती है। विभिन्न लोकों के अन्दर होने वाली सभी क्रियाओं को निरन्तर संचालित रखने में भी विद्युत् की ही भूमिका होती है। **विद्युत् के ही कारण तारों के केन्द्रीय भाग सतत कम्पित होते रहते हैं।** विभिन्न क्रियाओं में वलों के उचित विभाजन में भी विद्युत् की ही भूमिका होती है। पदार्थ के विस्फोट और संघात, तारों के विस्फोट और निर्माण दोनों में ही विद्युत् और डार्क एनर्जी की भूमिका होती है। **आकाश और प्राण रश्मियों के कारण विद्युत् की सबलता बनी रहती है। इनके कारण ही इस ब्रह्माण्ड में आवेश का संरक्षण बना रहता है।** सूर्यादि तारों के अन्दर कम तापयुक्त स्थान काले धव्वे के रूप में विद्यमान होते हैं, जो विद्युत् चुम्वकीय वलों के कारण अपना स्थान सतत परिवर्तित करते रहते हैं। तारों के अन्दर सूक्ष्म गैसीय पदार्थ अनेक विशाल मेघ समूहों के रूप में विद्यमान होता है। विद्युत् के कारण उनके निरन्तर वनने और विगड़ने की क्रियाएं चलती रहती हैं। इन तारों के अन्दर गहरे कूपनुमा क्षेत्र भी विद्यमान रहते हैं। ये मेघ और कूप विद्युत् चुम्वकीय वलों के कारण सम्पूर्ण तारे के अन्दर इधर-उधर गतिशील रहते हैं। इनमें पदार्थ का भारी विक्षोभ चलता रहता है। **मन्द गति वाले विभिन्न आवेशित कण तारों के अन्दर नाना प्रकार के पदार्थ समूहों को जन्म देते हैं।।**

२. 'दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इति' सूक्तमिन्द्रं न मह्नेति महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
तदु जागतं, जगत्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति; तद्वैतच्छन्दो

वहति, यस्मिन्निविद्धीयते; तस्माज्जगतीषु निविदं दधाति।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते,-त्रैष्टुभानि च जागतानि च; मिथुनं वै पशवः; पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।
महद्वन्ति सूक्तानि शस्यन्ते; महद्वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षस्याप्त्यै, पञ्च पञ्च सूक्तानि शस्यन्ते; पञ्चपदा पङ्क्तिः, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।
तानि द्वेधा पञ्चान्यानि पञ्चान्यानि दश संपद्यन्ते; सा दशिनी विराळन्नं विराळन्नं पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर आङ्गिरसः सव्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न सम्पीडक एवं प्रेरक एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.५५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः।।१।।

इसका छन्द जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्व अपनी श्रेष्ठता से प्रकाश रश्मियों को अन्तरिक्ष में फैलाता हुआ पृथिवी आदि लोकों में उनका उचित विभाग करता और तपाता है। वह पृथिवी आदि लोकों वा परमाणुओं के प्रति जाती हुई प्रकाश रश्मियों को अपनी वज्र रश्मियों के द्वारा तीक्ष्ण व सूक्ष्म करता है।

(२) सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते।।२।।

इसका छन्द निचृज्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों के अवशोषण के लिए किंवा सोम रश्मियों का अवशोषण करके बलवान् और प्रहारक रूप धारण करता है। उस इन्द्र तत्त्व में आश्रित पदार्थों की विभिन्न धाराएं विशेष प्राणवती होकर अपने श्रेष्ठ बलों के द्वारा निरन्तर नौका के समान अभीष्ट पदार्थों का संग्रहण करती रहती हैं।

(३) त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः।।३।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {इरज्यति = ऐश्वर्यकर्मा (निघं.२.२१), परिचरणकर्मा (निघं.३.५)} वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण प्रकाशित होता हुआ परमाणु आदि पदार्थों को अपने सम्मुख धारण करके विशाल मेघरूप पदार्थों को अपने तेज से व्याप्त करता है। वह विभिन्न परमाणुओं और उनकी धारक रश्मियों को अतिशय नियंत्रक बल से युक्त करके सभी प्रकार की क्रियाओं के लिए प्रेरित करता है।

(४) स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति।।४।।

इसका छन्द जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न रश्मियों एवं परमाणुओं को सुन्दरता से तीक्ष्ण बनाता एवं आकर्षित करता हुआ उन्हें समर्थ बनाता है। वह बलवान् और स्वप्रकाशित इन्द्र तत्त्व बलवान् और प्रकाशित छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर रक्षा करता है एवं वही इन्द्र तत्त्व वज्र रश्मियों के द्वारा सर्वत्र प्रकाशित होता है।

(५) स इन्महानि समियानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम्।।५।।

इसका छन्द निचृज्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {समिथम् = समिथे संग्रामनाम (निघं.२.१७)} वह इन्द्र तत्त्व अपने सम्पीडक वल के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को महान् संघातों में समर्थ करता है। वह वज्र रश्मियों के प्रहार से नाना पदार्थों का भेदन करता है। वह सव पदार्थों को नियन्त्रित करने के लिए देदीप्यमान प्राण रश्मियों को धारण करता है।

(६) स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत्।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह श्रेष्ठकर्मा इन्द्र तत्त्व अपने सम्पीडक वलों के द्वारा पार्थिव परमाणुओं को वढ़ाता हुआ उनको संगत करने के लिए संयोजक वलों को उत्पन्न करके उन्हें गति प्रदान करता है। वह उनके मार्गों को निर्वाध करता हुआ विविध तन्मात्राओं को प्रकाशित करते हुए अन्धकार आदि का विनाश करता है।

(७) दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व मनस्तत्त्व से विशेष युक्त, प्रकाशित व प्रेरित होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को संगमनादि क्रियाओं में विशेष प्रेरित करता है। वह परस्पर अभिमुख गमन करती हरणशील रश्मियों को पुष्ट व नियमित-नियन्त्रित करता है। वह विभिन्न वाहक रश्मियों से युक्त होकर {केतः = केतो अग्निः (मै.१.६.१), अन्नं केतः (श.६.३.१.१६)} संयोजक वा संयोज्य अग्नि परमाणुओं को सव ओर से धारण करता हुआ अजेय होता है।

(८) अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः।।८।।

इसका छन्द विराड्जगती है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सवको वसाता व प्रकाशित करता हुआ अक्षीण वल को सम्पूर्ण पदार्थ के विस्तार में अपने हरणशील आकर्षक व धारक वलों के द्वारा धारण करता है। वह विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सव ओर से धारण व आच्छादित करता एवं प्रकाशित पदार्थों को अपनी विविध क्रियाओं के द्वारा उस व्यापक पदार्थ में धारण करता वा कराता है।

इस उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद में 'इन्द्रं न मह्ना' में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इस सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। आचार्य सायण ने इस जगती छन्दस्क सूक्त के अतिरिक्त उपर्युक्त त्रिष्टुप् छन्दस्क चार सूक्तों को निष्केवल्य शस्त्र कहा है। इससे हमारा आशय है कि ये पांचों सूक्त रूप रश्मिसमूह सभी लोकों के अन्दर सतत प्रवाहित होते रहते हैं। यहाँ भी मरुत्वतीय शस्त्र की भाँति प्रथम चार सूक्त त्रिष्टुप् छन्दस्क एवं अन्तिम जगती छन्दस्क है।।

इन दोनों कण्डिकाओं का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।+।।

यह कण्डिका पूर्व खण्ड में दो भागों में विभक्त होकर विद्यमान है। इस कारण इसका व्याख्यान पूर्व खण्ड में ही देखें।।

पूर्वोक्त मरुत्वतीय और निष्केवल्य दोनों प्रकार के ५-५ सूक्तरूप रश्मिसमूह 'महत्' शब्द से युक्त हैं, ऐसा हम लिख चुके हैं। इस प्रकार इन दोनों ही शस्त्ररूप १० सूक्त रश्मिसमूहों का विभिन्न लोकों में व्यापक स्तर पर प्रभाव होता है। ये कुल १० सूक्त रूप रश्मिसमूह मिलकर विराट् छन्द रश्मियों का प्रभाव दर्शाते हैं। इसी कारण ऋषि ने कहा है- "सा दशिनी विराट्"। अन्यत्र भी कहा गया है "दशाक्षरा वै विराट्" (श.१.१.१.२२), "दशाक्षरा विराट्" (तै.सं.२.६.१.२; तां.३.१३.३; जै.ब्रा.१.३४०)। विराट् संज्ञक रश्मियां अन्नरूप होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इन रश्मियों में संयोज्यता गुण विशेष होता है। विभिन्न मरुदादि रश्मियां भी संयोज्यता गुणों के कारण अन्नरूप कहलाती हैं। विराट् रश्मियों के विषय में कुछ तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कहा है- "विराड् वै यज्ञः" (श.१.१.१.२२), "वैराजो यज्ञः" (गो.पू.४.२४; गो.उ.६.१५)। इन वचनों का भी यही तात्पर्य है कि ये रश्मियां विशेष संगमनीय होकर विभिन्न पदार्थों को विविध रूप में संगत करती हैं। ये रश्मियां विभिन्न छन्दादि रश्मियों को अधिकाधिक प्रकाशित करती हैं तथा सभी प्रकार के देव पदार्थ और सभी प्रकार की छन्द रश्मियां, जो पूर्व में उत्पन्न हो चुकी हैं, विशेष प्रकाशित हो उठती हैं। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- सर्वदेवत्यं वा एतच्छन्दो यद् विराट् (श.१३.४.१.१३), विराड् वै छन्दसां ज्योतिः (तां.६.३.६), विराड्ढि छन्दसां ज्योतिः (तां.१०.२.२)। ये विराड् रश्मियां विभिन्न लोकों को अत्यन्त प्रदीप्त करके 'अग्निष्टोम' संज्ञक द्युलोकों के केन्द्रों का निर्माण करने में सक्षम होती हैं। यद्यपि द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में ही पूर्ण हो चुकी होती है, पुनरपि यहाँ उन्हीं प्रक्रियाओं को सुचारु रूप से निरन्तरता प्रदान करने के लिए विभिन्न क्रियाओं का वर्णन किया गया है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कूर्म प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ विभिन्न जगती रश्मियां उत्पन्न होती हैं। विभिन्न तारों में नाना प्रकार की पूर्वोक्त क्रियाएं तीव्रता से होने लगती हैं। विद्युत् वलों एवं तरंगों की तीव्रता व तीक्ष्णता बढ़ती है। **विद्युत् के ही कारण विद्युत् चुम्बकीय तरंगें आकाश में गति करती, तारों में उत्पन्न और उत्सर्जित होती, पृथिवी आदि लोकों के द्वारा अवशोषित, विसरित एवं परावर्तित होती है।** तारों के अन्दर बहने वाली विभिन्न पदार्थ धाराएं अपने समीपवर्ती पदार्थ को भी अपने साथ बहाती हुई ले जाती हैं।।

३. विश्वो देवस्य नेतुस्,तत्सवितुर्वरेण्य, मा विश्वदेवं सत्पतिमिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ बार्हतेऽहन्यष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। 'हिरण्यपाणिमूतय इति' सावित्रमूर्ध्ववदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। मही द्यौः पृथिवी च न इति द्यावापृथिवीयं, महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।। युवाना पितरा पुनरित्यार्भवं, पुनर्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदुपरान्त आगामी वैश्वदेवशस्त्र संज्ञक छन्द रश्मिसमूहों की "प्रतिपत्" संज्ञक निम्न तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) स्वस्त्यात्रेय ऋषि अर्थात् सुगमतापूर्वक निरापद रूप से गमन करने वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष, जो सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न होता है, से विश्वेदेवादेवताक एवं स्वराडुष्णिक् छन्दस्क-

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम्। विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॑।।१।। (ऋ.५.५०.१)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सभी मरुद् रश्मियां अग्रणी प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करती हैं। वे रश्मियां नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए तीक्ष्ण व पुष्ट रूप धारण करके प्रवाहित होती हैं।

(२) विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से उत्पन्न सवितृदेवताक एवं निचृद् गायत्री छन्दस्क-

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि। धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त्॥१०॥ (ऋ.३.६२.१०)

इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ वायु और विद्युत् रूप सविता की आकर्षक एवं तेजस्वी रश्मियों को धारण करके विभिन्न सृजन और संगम प्रक्रियाओं के लिए अच्छी प्रकार प्रेरित होते हैं।

(३) उपर्युक्त ऋषि, देवता एवं छन्द वाली

दे॒वस्य॑ सवि॒तुर्व॒यं वा॑ज॒यन्तः॒ पुरं॑ध्या। भग॑स्य रा॒तिमी॑महे॥११॥ (ऋ.३.६२.११)

इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् विभिन्न विशाल लोकों को धारण एवं उन्हें नाना प्रकार के वल प्रदान करते हुए उनके अन्दर विद्यमान परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा निरन्तर आकर्षित किये जाते रहते हैं।

इस प्रकार यह तृच आगामी वैश्वदेव शस्त्र रूपी रश्मिसमूह की 'प्रतिपत्' कहलाती है। इसका तात्पर्य यह है कि ये तीनों छन्द रश्मियां उन वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूहों के पूर्व उत्पन्न होती हैं। इनके पश्चात् तथा वैश्वदेव शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूहों के पूर्व एक अन्य तृच इस तृच का अनुकरण करती हुई 'अनुचर' रूप से उत्पन्न होती है। वह 'अनुचर' रूप तृच (ऋ.५.८२.७-९) निम्न क्रमानुसार सवितृदेवताक श्यावाश्व आत्रेय ऋषि अर्थात् धारण-आकर्षण वल से संयुक्त सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से निम्न क्रमानुसार उत्पन्न होती है-

(१) आ वि॒श्वदे॑वं॒ सत्प॑तिं सू॒क्तैर॒द्या वृ॑णीमहे। स॒त्यस॑वं सवि॒तार॑म्॥७॥

इसका छन्द गायत्री है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मिसमूह सवके प्रकाशक, विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के रक्षक व पालक, उनके निरन्तर प्रेरक वायु और विद्युत् रूपी सविता को सव ओर से आकृष्ट करने लगते हैं।

(२) य इ॒मे उ॒भे अह॑नी पु॒र एत्यप्र॑युच्छन्। स्वा॒धीर्दे॒वः स॑वि॒ता॥८॥

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वे वायु व विद्युत् रूप सविता उत्तम धारक गुणों से सम्पन्न होकर अविराम प्राणापान रश्मियों को अग्रगामी वनाकर गमन करते हैं। इससे वे विशेष प्रकाशमान व कमनीय होते हैं।

(३) य इ॒मा विश्वा॑ जा॒तान्या॑श्रा॒वय॑ति॒ श्लोके॑न। प्र च॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता॥९॥

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् विभिन्न छन्द रश्मियों के द्वारा सभी उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों को सव ओर से प्रेरित व गतिमान् करते हैं।

इन उपर्युक्त दोनों तृच रूप रश्मिसमूहों को ग्रन्थकार ने वार्हत कहा है। इसका तात्पर्य है कि इनका प्रभाव वार्हत साम रश्मियों के समान होता है। इस कारण इन तृचरूप रश्मिसमूहों की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है॥

तदनन्तर काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से सवितृदेवताक (ऋ.१.२२.५-८) चतुर्ऋच रूप छन्द रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये। स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम्॥५॥

इसका छन्द गायत्री है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वे सवितृरूप वायु और विद्युत् तेजस्वी व हरणशील व्यवहारों से युक्त होकर नाना परमाणु आदि पदार्थों के द्वारा रक्षण,

कान्ति व गत्यादि गुणों की प्राप्ति के निमित्त उप अर्थात् निकटता से आकर्षित किये जाते हैं। वे दोनों वायु व विद्युत् उन परमाणु आदि पदार्थों को प्रेरित व प्रकाशित करते हैं।

(२) अपां नपातमवसे सवितारमुपं स्तुहि। तस्य व्रतान्युश्मसि।।६।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न क्रियाओं व तन्मात्राओं के प्रेरक निजकार्य में अविचल वायु व विद्युत् उन तन्मात्राओं को निकटता से प्रकाशित करते हैं। {व्रतम् = कर्मनाम (निघं.२.१)} वे वायु व विद्युत् विभिन्न कर्मों को कमनीय बलों से सम्पन्न करते हैं।

(३) विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम्।।७।।

इसका छन्द गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न आशुगामिनी मरुद् व प्राण रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होने वाले, विभिन्न परमाणु व प्राणादि रश्मियों का यथावत् विभाग करके नाना पदार्थों को सिद्ध करने वाले वायु और विद्युत् सभी पदार्थों द्वारा आकर्षित किये जाते हैं।

(४) सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः। दाता राधांसि शुम्भति।।८।।

इसका छन्द पिपीलिका मध्यानिचृद् गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वे वायु और विद्युत् परस्पर संगत रहकर सब ओर स्थित होते हैं। वे प्रकाशित सिद्ध पदार्थों के दाता सबको पवित्र व देदीप्यमान बनाते हैं।

इस चतुर्ऋच को ग्रन्थकार ने 'ऊर्ध्ववत्' माना है। इन ऋचाओं में कहीं भी 'ऊर्ध्व' शब्द विद्यमान नहीं है। इससे यह संकेत मिलता है कि इन छन्द रश्मियों का प्रभाव ऊर्ध्व अर्थात् उत्कृष्ट कोटि का होता है। इन ऋचाओं में विद्यमान 'उप' तथा 'नि' शब्द निकटता से नितराम् अर्थात् सम्पूर्ण प्रभाव को निकटता से दर्शाते हैं। इस कारण इसका उत्कृष्ट प्रभाव प्रकट होता है। इसी प्रभाव के कारण ग्रन्थकार ने इस चतुर्ऋच को 'ऊर्ध्ववत्' कहा है। इसका ऊर्ध्ववत् होना ही इसकी उत्पत्ति के अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

तदुपरान्त उपर्युक्त ऋषि से (ऋ.१.२२.१३-१५) तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) मही द्यौः पृथिवी चं न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः।।१३।।

द्यावापृथिव्यौ देवताक एवं गायत्री छन्दस्क ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसका अन्य प्रभाव ४.१०.५ में देखें।

(२) तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रां रिहन्ति धीतिभिः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे।।१४।।

उपर्युक्त देवताक एवं छन्दस्क ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न ऋषि प्राण किंवा सूत्रात्मा वायु रश्मियां अपने धारण और आकर्षण बलों के द्वारा विभिन्न प्रकाशित एवं अप्रकाशित कणों को अन्तरिक्ष में विद्यमान सबके धारक वायु तत्त्व में विचरण कराती हुई 'घृम्' रश्मियों के समान नाना प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों से युक्त करती रहती हैं।

(३) स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः।।१५।।

पृथिवीदेवताक एवं विराड्गायत्री छन्दस्क ऋचा की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अनृक्षरा = अविद्यमाना ऋक्षरा दुःखप्रदाः कण्टकादयो यस्यां सा (म.द.भा.)} अन्तरिक्ष विभिन्न लोक आदि पदार्थों को सुगमतापूर्वक प्रवेश और आश्रय प्रदान करने के लिए विस्तृत होता है अर्थात् इस छन्द रश्मि के प्रभाव से विभिन्न लोकों के मध्य उचित दूरी का निर्माण

होकर असुर पदार्थ के नियंत्रण की क्रिया समृद्ध होती है।

इस तृच की प्रथम ऋचा में 'मही' पद 'महत्' रूप है। इस कारण ये रश्मियां सृष्टि के व्यापक स्तर पर अपना प्रभाव दर्शाती हैं। इस तृच का 'महत्' शब्द से युक्त होना अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

तदनन्तर पूर्वोक्त ऋषि प्राण द्वारा ऋभवो-देवताक (ऋ.१.२०.४-६) तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) युवा॑ना पि॒तरा॒ पुन॑: स॒त्यम॑न्त्रा ऋजू॒यव॑:। ऋ॒भवो॑ वि॒ष्ट्य॑क्रत।।४।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सतत प्रेरक सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित कणों अथवा वायु एवं आकाश तत्त्व को सरलतापूर्वक संयुक्त और वियुक्त करने के लिए उनमें निरन्तर व्याप्त रहती हैं।

(२) सं वो॒ मदा॑सो अग्म॒तेन्द्रे॑ण च म॒रुत्व॑ता। आ॒दि॒त्येभि॑श्च॒ राज॑भिः।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व तथा प्रकाशित मास वा प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर नाना परमाणुओं को विशेष सक्रिय करती हैं।

(३) उ॒त त्यं च॑म॒सं नवं॒ त्वष्टु॑र्दे॒वस्य॒ निष्कृ॑तम्। अक॑र्त च॒तुर॒: पुन॑:।।६।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध व तीक्ष्ण वह इन्द्र तत्त्व नवीन क्रियाओं को पुनः-२ उत्पन्न करके वायु, अग्नि, जल एवं पृथिवी इन चारों पदार्थों को नाना प्रकार से विकृत करके नाना पदार्थों को सिद्ध करता रहता है।

इस तृच की प्रथम और अन्तिम ऋचा में 'पुनः' शब्द विद्यमान होने से ये छन्द रश्मियां वार-२ क्रियाओं को आवृत्त करती रहती हैं, जिसके कारण विभिन्न लोकों में होने वाली क्रियाएं तीव्रतर होने लगती हैं। इस तृच में 'पुनः' शब्द विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कूर्म प्राण** के ही उत्कर्ष काल में कुल १५ गायत्री एवं १ उष्णिक् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इस समय तारे व ग्रहादि लोकों में होने वाली पूर्वोक्त क्रियाएं समृद्ध होती हैं। विद्युत् चुम्बकीय वल तथा तरंगों की मात्रा व तीव्रता में वृद्धि होती है। **विभिन्न विद्युत् तरंगों के अग्र भाग में प्राणापान रश्मियां गमन करती हैं। इन्हीं के कारण आवेशित तरंगों में आकर्षण-प्रतिकर्षण का गुण विद्यमान होता है।** विभिन्न लोकों के बीच उचित दूरी वनाये रखने में सहायता मिलती है। ये रश्मियां सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त होती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

४. इमा नु कं भुवना सीषधामेति द्विपदाः शंसति; द्विपाद्वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै, तद्यद् द्विपदाः शंसति, यजमानमेव तद् द्विप्रतिष्ठं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति।।
देवानामिदवो महदिति वैश्वदेवं महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
तान्यु गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर आप्त्योभुवन ऋषि अर्थात् विभिन्न लोकों में नाना क्रियाओं में व्याप्त एक सूक्ष्म प्राण विशेष से विश्वेदेवादेवताक तथा द्विपदा त्रिष्टुप्, जिनका दैवत व छान्दस प्रभाव सुधीपाठक यथावत्

समझ सकते हैं, छन्दस्क ऋ.१०.१५७ सूक्त की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।।१।।

इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व सभी देव परमाणुओं को अपने अनुकूल बनाता हुआ लोकों में संचालित नाना प्रकार की सृजन-संयोग क्रियाओं को समुचितरीत्या सिद्ध करने में सक्षम होता है।

(२) यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ।।२।।

इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न कारण प्राण व मास रश्मियों द्वारा सभी लोकों में व्याप्त परमाणु आदि पदार्थों को विशेष सम्बल प्रदान करता है।

(३) आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।।३।।

इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों एवं मरुद् समूहों के संयुक्त रूप के प्रभाव से विस्तृत पदार्थ समूह को रक्षण कान्ति व गति आदि से युक्त करता है।

(४) हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ।।४।।

इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ इन्द्र तत्त्व के द्वारा असुर रश्मियों को नष्ट वा नियन्त्रित करके प्रकाशित और कमनीयतादि गुणों से सम्पन्न होकर संगत होने लगते हैं।

(५) प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।।५।।

इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न देव पदार्थ अपने तेजयुक्त कर्मों के द्वारा आदित्य लोकों {अर्कः = वज्रनाम (निघं.२.२०), अन्ननाम (निघं.२.७)} में संयोज्य परमाणुओं की ओर वज्ररश्मियों को प्रेषित करके उन्हें सब ओर से आकर्षित करते हैं।

कण्डिका के शेष भाग का व्याख्यान ५.१७.४ के समान समझें।।

तदनन्तर कुसीदी काण्व ऋषि {कुसीदी = (कुस् = आलिंगन करना, घेरना)} अर्थात् विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को घेर कर संगत करने वाले सूत्रात्मा वायु के एक विशेष रूप द्वारा विश्वेदेवादेवताक ऋ.८.८३ सूक्तरूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये ।।१।।

इसका छन्द गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से उपर्युक्त ऋषि प्राण विभिन्न बलवर्धक देव परमाणुओं को रक्षण व गत्यादि प्रदान करने के लिए व्यापक रूप से सर्वतः आकर्षित करते हैं।

(२) ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा। वृधासश्च प्रचेतसः ।।२।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से प्राणापान, प्राणोदान व प्राणव्यान नियन्ता (अर्यमा) विद्युत् के रूप में समृद्ध होकर विभिन्न पदार्थों को सतत प्रेरित, संगत व संवर्धित करते हैं।

(३) अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ। यूयमृतस्य रथ्यः ।।३।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {विष्पितः = विष्पितो विप्राप्तः (नि.६.२०)} अग्नि तत्त्व के रमणीय वाहक प्राण तत्त्व नौका के समान व्यापक स्तर पर नाना कर्मों को सम्पन्न करते हैं।

(४) वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम्। वामं ह्यावृणीमहे।।४।।

इसका छन्द पादनिचृद्गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से सबका नियन्ता इन्द्र तत्त्व श्रेष्ठ उदान व व्यान प्राणों के साथ संगत वा उनसे सम्पन्न होकर तीक्ष्ण तेजस्वी स्वरूप से युक्त होता है।

(५) वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः। नेमादित्या अघस्य यत्।।५।।

इसका छन्द गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न कारणरूप प्राण रश्मियां तेजस्वी व तीक्ष्णरूप से युक्त होकर श्रेष्ठ नियन्त्रक का रूप प्राप्त करके असुरादि बाधक रश्मियों से विभिन्न पदार्थों को मुक्त रखती हैं।

(६) वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना। देवा वृधाय हूमहे।।६।।

इसका छन्द, दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत्। अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अपने निकट बसे हुये प्राणादि तत्त्वों के उत्तम बल आदि के दान से आकाश में गमन करते व व्याप्त होते हैं।

(७) अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना।।७।।

इसका छन्द आर्ची स्वराड् गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से व्यापक इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् एवं प्राणापान रश्मियों से सम्पन्न होकर समान रूप से वा साथ-२ उत्पन्न होने वाले परमाणु आदि पदार्थों के ऊपर व्याप्त होता है। इससे प्रकाशित व अप्रकाशित सभी पदार्थ समृद्ध व सक्रिय होते हैं।

(८) प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या। मातुर्गर्भे भरामहे।।८।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के धारण पोषण के साथ-२ प्रदीपन एवं प्रजनन आदि दोनों प्रकार के गुणों को अन्तरिक्ष में गर्भरूप में धारण किए रहती हैं।

(९) यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः। अधा चिद्व उत ब्रुवे।।९।।

इसका छन्द गायत्री है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से विभिन्न संयोज्य परमाणु इन्द्र तत्त्व के संरक्षण में ज्येष्ठता प्राप्त करके सब ओर से दीप्तियुक्त और विशेष क्रियाशील होते हैं।

इस उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा में 'महत्' शब्द विद्यमान है। इस कारण इस सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.१७.४ में द्रष्टव्य है। यहाँ पाठक तद्वत् ही समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल में ५ द्विपदा त्रिष्टुप् और ९ गायत्री रश्मियों के दो समूहों की उत्पत्ति होती है। इनसे विभिन्न प्रकार के कण और विकिरणों की तीव्रता व तीक्ष्णता में वृद्धि होती है। तारों में दृश्य पदार्थ और डार्क एनर्जी में संघर्ष चलता है और डार्क एनर्जी को नियंत्रित किया जाता है। विभिन्न विद्युदावेशित कणों के परिधि भाग में सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ-२ प्राणापान रश्मियां भी विद्यमान होती हैं। **आकाश में विद्यमान प्राण व छन्द रश्मियां वर्तमान विज्ञान द्वारा परिकल्पित vacuum energy के रूप में विद्यमान होती हैं, जो विभिन्न परिस्थितियों में संघनित होकर mediator particles को प्रकट करती हैं और उनका अपने में लय भी करती हैं।** ये सभी रश्मियां सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त रहती हैं।।

५. ऋतावानं वैश्वानरमित्याग्निमारुतस्य प्रतिपदग्निर्वैश्वानरो महानिति महद्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
क्रीळं वः शर्धो मारुतमिति मारुतं; जम्भे रसस्य वावृध इति वृधन्वदष्टमेऽहन्यष्टमस्याह्नो रूपम्।।
जातवेदसे सुनवाम सोममिति जातवेदस्याऽच्युता।।
'अग्ने मृळ महाँ असीति' जातवेदस्यं महद्वदष्टमेऽहन्यमष्टमस्याह्नो रूपम्।।
तान्यु गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यहः, एष त्र्यहः।।४।।

व्याख्यानम्- इस विषय में हम सर्वप्रथम महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करते हैं-

"ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं धर्ममीमहे। दिविं पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो महान्। ज्योतिषा बाधते तमः। अग्निः प्रत्नेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राळेको विराजति"। (आश्व. श्रौ.८.१०.३)

इस सूत्र को दृष्टिगत रखते हुए हमारा मत है कि आगामी 'आग्निमारुत शस्त्र' की 'प्रतिपत्' तृच के रूप में निम्नलिखित तीन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) "ऋतवानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं धर्ममीमहे"- यह ऋचा वैश्वानरदेवताक एवं जगती छन्दस्क-

ऋतावा॑नं वैश्वान॒रमृ॒तस्य॒ ज्योति॑ष॒स्पति॑म्। अज॑स्रं घ॒र्ममी॑महे।
उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वैश्वान॒राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्वैश्वान॒राय॑ त्वा।।६।। (यजु.२६.६)

का पूर्वार्ध भाग है। इस कारण इसका देवता वैश्वानर एवं छन्द गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व को आकर्षित एवं विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को वहन करने वाली मरुद् रश्मियां प्रकाशित प्राण रश्मियों के द्वारा पालित व रक्षित होकर निरन्तर ऊष्मा को उत्पन्न करती हैं।

(२) "दिविं पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो महान्। ज्योतिषा बाधते तमः।" - यह ऋचा

दि॒वि पृ॒ष्टोऽअ॑रोचता॒ग्निर्वै॑श्वान॒रो बृ॒हन्।
क्ष्म॒या॑ वृधा॒नऽओज॑सा॒ चनो॑हितो॒ ज्योति॑षा बाधते॒ तमः॑।।६२।। (यजु.३३.९२)

ऋचा का परिवर्तित रूप है। यजुर्वेद में इसका देवता वैश्वानर एवं छन्द निचृद् बृहती है जबकि यहाँ इसका देवता वैश्वानर ही है परन्तु छन्द निचृद् गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से आकाश में विभिन्न मरुद् रश्मियां अपने सेचन के द्वारा पार्थिव परमाणुओं के वल का विस्तार करती हैं। वे अपने तेज के द्वारा उन पार्थिव परमाणुओं को अन्धकार से मुक्त कर प्रकाशित करती हैं।

(३) अग्निः प्रत्नेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राळेको विराजति।

यह ऋचा किसी भी संहिता आदि में उपलब्ध नहीं है। हमारे मत में इसका देवता अग्नि और छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व सनातन परमाणुओं में अकेला सम्यक् प्रकाशित होता हुआ सदा ही कमनीय वलों से युक्त होकर नाना प्रकार की सृजन क्रियाओं को प्रकाशित करता है।

इस उपर्युक्त तृच की द्वितीय ऋचा में 'वैश्वानरो महान्' शब्द विद्यमान होने से यह तृच 'महद्वत्' है। इस कारण इसकी उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। यह तृच

'प्रतिपत्' संज्ञक होने से आगामी आग्निमारुत संज्ञक सूक्तों की उत्पत्ति के ठीक पूर्व उत्पन्न होती है।।

तदनन्तर घौरः कण्व ऋषि अर्थात् तीक्ष्ण हुई सूत्रात्मा वायु रश्मियों से मरुद्-देवताक ऋ.१.३७ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत।।१।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न सूत्रात्मा वायु रश्मियां मन्दगामी मरुद् रश्मिसमूहों के बल को सब ओर से प्रेरित करके, उन्हें रमणीय वाहक रश्मियों में परिवर्तित करके नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में प्रकाशित करती हैं।

(२) ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अपने व्यापक सेचन, प्रकाशन और आकर्षण कर्मों के द्वारा स्वप्रकाशित अनेक रश्मियों को साथ-२ उत्पन्न करती हैं।।

(३) इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते।।३।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कशा = वाङ्नाम (निघं.१.११), चेष्टासाधनरज्जुवन्नियमप्रापिकाः क्रियाः (म.द.भा.)। ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा (नि.६.२१)} वे रज्जु के समान प्रापक मरुद् रश्मियां विभिन्न हस्तरूप आकर्षण, प्रतिकर्षण और धारण आदि बलों में प्रकाशित व गतिशील होती हुई विभिन्न विचित्र मार्गों को प्रसिद्ध करती हैं।

(४) प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत।।४।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विभिन्न बलवान् एवं संघर्षरत परमाणु आदि पदार्थों तथा शोषक बलयुक्त प्रकाशित परमाणुओं को अन्य वायु एवं प्राणापान रश्मियों के साथ मिलकर अच्छी प्रकार प्रकाशित और सक्रिय करती हैं।

(५) प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे।।५।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां अहिंस्य रूप होकर नाना प्रकार की क्रियाओं के निमित्त विभिन्न पार्थिव परमाणुओं के नाना विकारों में बीजरूप बलों को समृद्ध और तीक्ष्ण करती हैं।

(६) को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ।।६।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे कंपाने वाली वाहक मरुद् रश्मियां विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं के सब ओर स्थित बाधक रश्मि आदि पदार्थों को कंपाकर नष्ट करती हुई उन्हें श्रेष्ठता प्रदान करती हैं।

(७) नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {गिरिः = गिरिर्वै रुद्रस्य योनिः (मै.१.१०.२०), यो गिरति जलादिकं गृणाति महतः शब्दान्वा सः (म.द.भा.)} तीक्ष्ण मरुद् रश्मियां घोर गर्जनायुक्त मेघरूप पदार्थों को छिन्न-भिन्न करती हैं। फिर वे पदार्थ नियन्त्रित और प्रकाशित होकर उन मरुद् रश्मियों द्वारा उग्रतापूर्वक धारण किये जाते हैं।

(८) येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँइव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां पृथिवी आदि लोकों को उनके मार्गों पर कंपाते हुए गमन कराती हैं। उन **मरुद् रश्मियों का व्यवहार जीर्ण हुए इन्द्र तत्त्व के समान होता है।**

(९) स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः।।९।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से शव्द-स्पर्श गुणों एवं आकर्षण और धारण वलों से युक्त वायु रश्मियां अपने आश्रय स्थल आकाश तत्त्व में सव ओर से निरन्तर गमन करती हुई अनुकूल और निरन्तर तेज एवं वलों को उत्पन्न करती हैं।

(१०) उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे।।१०।।

इसका छन्द पिपीलिकामध्या निचृद् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पदार्थों को उत्पन्न करने वाली, विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को सम्मुख भाग से ग्रहण करने वाली मरुद् रश्मियां शव्द करती हुई छन्द रश्मियों के रूप में विभिन्न दिशाओं में गमनागमन मार्गों को विस्तृत करती हैं।

(११) त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्र च्यावयन्ति यामभिः।।११।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। **इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें।** इसके अन्य प्रभाव से वे **सेचन गुणों से युक्त मरुद् रश्मियां विभिन्न मार्गों पर गमन करती हुई दृढ़ एवं विशाल मेघरूप पदार्थों को चलायमान वा छिन्न-भिन्न करती हैं।**

(१२) मरुतो यद्ध वो वलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन।।१२।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां आकाशीय मेघों को तथा द्यु आदि लोकों में विद्यमान मेघरूप पदार्थों को इतस्ततः भ्रमण कराती रहती हैं।

(१३) यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम्।।१३।।

इसका छन्द पादनिचृद् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां ब्रह्माण्ड में विविध मार्गों पर गमन करती हुई किन्हीं-२ प्राण रश्मियों के साथ मिलकर विशेष सक्रिय और प्रकाशित होती हैं।

(१४) प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै।।१४।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शीभम् = क्षिप्रनाम (निघं.२.१५)} वे मरुद् रश्मियां सूत्रात्मा वायु रश्मियों में परिचरण करती हुई आशुगामी रूप धारण करके अपनी आशु क्रियाओं से प्रकृष्टतापूर्वक सक्रिय होती हैं।

(१५) अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्। विश्वं चिदायुर्जीवसे।।१५।।

इसका छन्द पिपीलिका मध्या निचृद् गायत्री है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे मरुद् रश्मियां विशेष सक्रिय और दीर्घायु होने के लिए नाना प्रकार की प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को निरन्तर वल आदि प्रदान करती हैं।

इस उपर्युक्त सूक्त की पांचवीं ऋचा के अन्तिम पाद "जम्भे रसस्य वावृधे" में 'वावृधे' पद

'वृधू' धातु से युक्त होने के कारण इस सूक्त की उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। 'वावृधे' पद के प्रभाव से ये छन्द रश्मियां पूर्व में उत्पन्न सभी प्रकार की क्रियाओं को व्यापक और समृद्ध करती हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदुपरान्त पूर्वोक्त वामदेव ऋषि से अग्निदेवताक ऋ.४.९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्। इयेथ बर्हिरासदम्।।१।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु प्राण रश्मियों के साथ संगत होते हुए अग्नि के तुल्य प्रकाशमान होकर आकाश में स्थित होते हैं। वे सब प्रकार की महान् छन्दादि रश्मियों से भी व्याप्त होते हैं।

(२) स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः। दूतो विश्वेषां भुवत्।।२।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अविनाशी अग्नि तत्त्व विभिन्न व्याप्त छन्दादि रश्मियों से व्याप्त होकर शुद्ध संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों में प्रकृष्ट रूप से व्याप्त होता है। वह बाधक रश्मि आदि पदार्थों से अपराजेय रहता हुआ परमाणु आदि पदार्थों को दूर-२ ले जाता है।

(३) स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु। उत पोता नि षीदति।।३।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां पावक होता रूप धारण करके नाना प्रकार की दिव्य संगमनीय क्रियाओं में निरन्तर स्थित होकर अन्तरिक्ष में सब ओर व्याप्त होती हैं।

(४) उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे। उत ब्रह्मा नि षीदति।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न बलों का पालक अग्नि तत्त्व विभिन्न वाग् रश्मियों में निरन्तर स्थित होकर नाना प्रकार की सृजन प्रक्रियाओं में गृहरूप परमाणु आदि पदार्थों को सतत बल प्रदान करता है।

(५) वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम्। हव्या च मानुषाणाम्।।५।।

इसका छन्द त्रिपाद् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व विभिन्न रश्मियों में वर्तमान परमाणु आदि पदार्थों को निकटता से गतिशील करते हुए उनमें संयोजक गुणों को उत्पन्न करके नाना प्रकार की संगति आदि क्रियाओं में व्याप्त होता है।

(६) वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम्। हव्यं मर्तस्य वोळहवे।।६।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व देश-देशान्तर में गमन करने योग्य संगमनीय परमाणुओं को निरापद रूप से संयुक्त करता और वहन करता हुआ व्याप्त होता है। ऐसी क्रियाएं संयोग-वियोग के चक्र के रूप से निरन्तर चलती रहती हैं।

(७) अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः। अस्माकं शृणुधी हवम्।।७।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सूत्रात्मा वायु आदि रश्मियों से युक्त अग्नि तत्त्व विभिन्न संगम आदि क्रियाओं में परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संगत करता हुआ नाना प्रकार के कमनीय वलों को निरापद स्वरूप प्रदान करता है।

(८) परि॑ ते दूळभो रथोऽस्माँ अ॑श्नोतु विश्वतः॑। येन रक्ष॑सि दाशुषः॑॥८॥

इसका छन्द, छान्दस एवं देवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व संयोग-वियोगादि क्रियाओं में भाग लेने वाले परमाणुओं की सव ओर से रक्षा करता है। ऐसा वह अग्नि तत्त्व दुर्गम परन्तु रमणीय रश्मियों के द्वारा सव ओर से सवमें व्याप्त होता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'महत्' शब्द विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। इस सूक्त को ग्रन्थकार ने जातवेदादेवताक माना है। अग्नि तत्त्व भी जातवेदा रूप ही होता है क्योंकि यह सभी उत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होता है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **कूर्म प्राण** के उत्कर्ष काल में ३ समूहों में १८ विविध गायत्री रश्मियां उत्पन्न होती है। इनके प्रभाव से तारे आदि लोकों के अन्दर ऊष्मा, प्रकाश आदि की तीव्रता वढ़ती है। विभिन्न कणों की भी ऊर्जा में वृद्धि होती है। तारों के अन्दर पूर्वोक्त विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में समृद्धि और निरन्तरता वनी रहती है। ग्रह आदि लोकों में भी विभिन्न रासायनिक एवं भूगर्भीय क्रियाओं में वृद्धि होती है। विभिन्न लोकों की घूर्णन और परिक्रमण गतियां भी इन रश्मियों से प्रभावित होकर उन्हें कंपित करती रहती हैं अर्थात् वे लोक गतिशील होते हुए कम्पन भी करते रहते हैं। तारों के अन्दर एवं वाहर कॉस्मिक मेघ जैसे पदार्थ छिन्न-भिन्न होकर तारे आदि लोकों में विलीन होते रहते हैं। कुछ मेघरूप पदार्थ विलीन न होकर अन्तरिक्ष में इतस्ततः भ्रमण करते रहते हैं। ये रश्मियां आवेशित विभिन्न प्रकार के कणों को निरन्तर सूक्ष्म वल प्रदान करती रहती हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

ॐ इति 23.४ समाप्तः ॐ

ॐ इति त्रयविंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

चतुर्विंशोऽध्यायः

ईश्वर तत्त्व

ओम् रश्मियां

मूल प्रकृति

मनस्तत्त्व

भूः

भूवः

स्वः

प्राण व छन्दादि रश्मियां

ऊर्जा
(दृश्य एवं अदृश्य)

आकाश

द्रव्य
(दृश्य एवं अदृश्य)

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

कारण-मनस्तत्त्व व इसका क्रिया विज्ञान, छन्द रश्मियों की संगति का विज्ञान, क्वाण्टाज़् तथा मूल कणों की उत्पत्ति का विज्ञान, अन्य कणों की उत्पत्ति।

२४.४	सर्पराज्ञी। उत्पन्न छन्द रश्मियों की बलहीनता, पुनः बलवती होने का विज्ञान, क्वाण्टा व कणों का तथा व्यानयुक्त ऋतु रश्मियों का छन्द रश्मियों से आकर्षण, क्वाण्टाज़् की संरचना, मूलकणों व क्वाण्टाज़् की उत्पत्ति। मनस्तत्त्व द्वारा कण व रश्मियों को गति प्रदान करना, मनस्तत्त्व में वाक् तत्त्व की उत्पत्ति, कण व रश्मियों का विज्ञान।	1621
२४.५	उदुम्बर-औदुम्बरी। मूलकणों व अन्यकणों की उत्पत्ति, Unified Force की उत्पत्ति, क्वाण्टाज़् की उत्पत्ति, डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी की उत्पत्ति व स्वरूप। प्रलय क्रिया का विज्ञान।	1625
२४.६	चतुर्होता दश पद। आकाश तत्त्व की धारणाशक्ति। विद्युत् व वि.द्यु.त. की उत्पत्ति। बल व क्रियाओं का कार्य क्षेत्र। तेरह विशेष तत्त्व। ग्रह-प्रजापतेस्तनू-ब्रह्मोद्य-छः युग्मों के बारह तत्त्व। सूत्रात्मा वायु द्वारा विभिन्न प्राण रश्मियों व कण-क्वाण्टाज़् का नियन्त्रण, सभी मूल बलों में सूत्रात्मा की भूमिका, छः युग्मों की भूमिका व स्वरूप। गृहपति, तीनों लोकों के गृह व गृहपति। प्रत्येक पदार्थ की मन एवं वाक् तत्त्व से उत्पत्ति, लोकों व कणों के मार्ग व गति का वाक् तत्त्व के द्वारा नियन्त्रण, विद्युत् के अधिष्ठान-कण, वायु तत्त्व की व्यापकता, मन की सर्वाधारकता।	1631

अथ २४.१ प्रारभ्यते

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. यद् वै समानोदर्कं तन्नवमस्याह्नो रूपम्।।
यद्ध्येव तृतीयमहस्तदेवैतत् पुनर्यन्नवमम्।।
यदश्ववद्यदन्तवद्यत् पुनरावृत्तं यत्पुनर्निनृत्तं यद्रतवद्यत्पर्यस्तवद्यत्त्रिवद्यदन्तरूपं यदुत्तमे पदे देवता निरुच्यते यदसौ लोकोऽभ्युदितः।।
यच्छुचिवद् यत्सत्यवद् यत्क्षेतिवद् यद्गतवद् यदोकवत्।।
यत्कृतं यत्तृतीयस्याह्नो रूपमेतानि वै नवमस्याह्नो रूपाणि।।
अगन्म महा नमसा यविष्ठमिति नवमस्याह्न आज्यं भवति; गतवन्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्प्रातःसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्– अष्टम अहन् अर्थात् कूर्म प्राण के उत्कर्ष काल के वर्णन के पश्चात् नवम अन्तिम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस काल में उत्पन्न ऋचाएं समानोदर्क होती हैं। जो लक्षण तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में विद्यमान होते हैं, वे ही लक्षण इस नवम अहन् में भी प्रकट होते हैं। इनमें से कुछ लक्षण आगामी कण्डिका में वर्णित हैं।।+।।

इसका व्याख्यान ५.१.१ की तृतीय कण्डिका के अनुरूप समझें।।

इस चरण में उत्पन्न ऋचाओं में 'शुचि', 'सत्य', 'क्षेति', 'ओक', शब्द तथा 'गम्' धातु की विद्यमानता होती है। इनके कारण इन रश्मियों का निम्नानुसार प्रभाव प्रकट होता है–
(१) शुचि = {शुचिः शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः (नि.६.१)}। इस पद के प्रभाव से द्युलोकों में ज्वलन एवं प्रकाशन प्रक्रिया तीव्र होती है।
(२) सत्यम् = {असावादित्यः सत्यम् (तै.ब्रा.२.१.११.१), तद् यत् सत्यम्। असौ स आदित्यः (श.६.७.१.२), सत्यं वै शुक्रम् (श.३.९.३.२५), इयं (पृथिवी) एव सत्यमियं ह्येवैषां लोकानामद्धा तमाम् (श.७.४.१.८)}। इस पद के प्रभाव से द्यु एवं पृथिवी लोक सभी अपने-२ स्पष्ट और सक्रिय रूप में प्रकट होते हैं। इस समय द्युलोकों की तेजस्विता भी विशेष होती है।
(३) क्षेति = (क्षि निवासगत्योः)। इस पद के प्रभाव के कारण विभिन्न लोकों की स्थिति एवं गति स्पष्ट होने में सहयोग मिलता है। वे लोक अधिकांश पदार्थ के निवास वा भण्डार का कार्य करते हैं।
(४) 'गम्' धातु = इसके प्रभाव से विभिन्न लोकों की गति परिष्कृत होने में सहयोग मिलता है तथा वे लोक अपने आकर्षक वलों के द्वारा परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होने में सहयोग प्राप्त करते हैं।
(५) ओकः = (अव = रक्षण - गति - कान्ति - प्रीति - तृप्ति - अवगम - प्रवेश - श्रवण - स्वामी - अर्थ - याचन - क्रिया - इच्छा - दीप्ति - अवाप्ति - आलिंगन - हिंसा - आदान - भाववृद्धिषु)। इसके प्रभाव से विभिन्न गति, रक्षण, कान्ति, आकर्षण, नियंत्रण, संगमन आदि क्रियाएं समृद्ध और व्यापक होती हैं।।

इस काल में उत्पन्न ऋचाओं में 'कृ' धातु के भूतकाल का प्रयोग विद्यमान होता है। इसके प्रभाव के विषय में ५.१.१ की द्वितीय कण्डिका ही देखें। इसके अतिरिक्त तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण

के उत्कर्ष काल के अन्य लक्षण भी इस काल में विद्यमान होते हैं।।

तदनन्तर वसिष्ठ ऋषि अर्थात् प्राण नामक प्राथमिक प्राण से अग्निदेवताक ऋ.७.१२ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अग॑न्म म॒हा नम॑सा॒ यवि॑ष्ठं॒ यो दी॒दाय॒ समि॑द्धः॒ स्वे दु॑रो॒णे।
चि॒त्रभा॑नुं॒ रोद॑सी अ॒न्तरु॒र्वी स्वा॑हुतं वि॒श्वतः॑ प्र॒त्यञ्च॑म्।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से द्यु एवं पृथिवी लोकों के अन्दर, विशेषकर उनके केन्द्रीय भाग में अग्नि तत्त्व विशेष रूप से प्रकाशित होता है। वे अग्नि के परमाणु विचित्र रूपों वाले, सब ओर से बाहर की ओर गमन करने वाले विभिन्न परमाणुओं द्वारा आकर्षित होते एवं पदार्थों का अतिशय विभाग करने वाले होते हैं। उनके संयोग और वियोग की प्रक्रिया तीव्र होती है।

(२) स म॒ह्ना विश्वा॑ दुरि॒तानि॑ सा॒ह्वान॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः।
स नो॑ रक्षिषद् दुरि॒ताद॑व॒द्याद॒स्मान्गृ॑ण॒त उ॒त नो॑ म॒घोनः॑।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका छान्दस एवं देवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों में अग्नि तत्त्व सर्वत्र तीक्ष्ण रूप में विद्यमान होकर संयोगादि कर्मों में बाधक बनने वाले विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों को दूर करता है। इसमें इन्द्र तत्त्व भी अग्नि के साथ संयुक्त होकर विभिन्न संलयन, संयोजन आदि क्रियाओं को सम्पन्न कराता है।

(३) त्वं वरु॑ण उ॒त मि॒त्रो अ॑ग्ने॒ त्वां व॑र्धन्ति म॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः।
त्वे वसु॑ सुषण॒नानि॑ सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः।।३।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से द्युलोकों में विभिन्न प्रकाशित प्राणादि रश्मियां अग्नि तत्त्व को समृद्ध करती हुई विभिन्न पदार्थों के अनेक प्रकार के विभाग करती हैं। प्राणापान, प्राणोदान एवं प्राणव्यान आदि रश्मियां लोकों में सम्पन्न होने वाली विभिन्न क्रियाओं की रक्षा करती हैं।

ग्रन्थकार ने इस सूक्त को आज्य शस्त्र कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां इस काल में उत्पन्न होने वाली सभी रश्मि आदि पदार्थों को विशेष क्रियाशील एवं तेजस्वी बनाती हैं। इस सूक्त की प्रथम ऋचा के 'अगन्म' पद में 'गमृ' धातु विद्यमान होने से इस सूक्त की उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां विभिन्न तारे और गृहादि लोकों में सूक्ष्म रूप में व्याप्त हो जाती हैं। इस समय अनेक क्रियाएं व लक्षण **कृकल प्राण** के उत्कर्ष काल के समान प्रकट होते हैं। इस समय उत्पन्न विभिन्न छन्द रश्मियां आशुगामी होती हुई वार-२ आवृत्त होती रहती हैं, जिसके कारण विभिन्न लोकों में होने वाली क्रियाएं अति विस्तृत आशुगामी और तीव्र होती हैं। तारों में होने वाली विभिन्न क्रियाओं की तीव्रता बढ़ने से वे अधिक प्रकाश और ऊष्मा से युक्त होते हैं। उनकी परिधियां अपेक्षाकृत स्पष्ट होती हैं। उनकी परिक्रमण और घूर्णन गतियां भी अपेक्षाकृत सुव्यवस्थित होने लगती हैं। वे परस्पर गुरुत्व बल के द्वारा अधिक समन्वित और संतुलित होने लगते हैं। इस काल में उत्पन्न होने वाली विभिन्न छन्द रश्मियों के प्रारम्भ में दो त्रिष्टुप् और १ पंक्ति छन्द रश्मि उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से तारों के अन्दर होने वाली नाभिकीय संलयन एवं ऊर्जा उत्सर्जन एवं अवशोषण आदि क्रियाएं तीव्र होती हैं। डार्क एनर्जी का दुष्प्रभाव भी दूर होता है।।

२. प्र वीरया शुचयो दद्रिरे ते, ते सत्येन मनसा दीध्याना, दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्या, मा विश्ववाराऽश्विना गतं नो, ऽयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व, आ तु, प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त, सरस्वतीं देवयन्तो हवन्त, आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा, सरस्वत्यभि नो नेषि वस्य इति प्रउगं, शुचिवत्सत्यवत्क्षेतिवद्गतवदोकवन्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।

तदु त्रैष्टुभं त्रिष्टुप्प्रातःसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्- यहाँ सर्वप्रथम महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करते हैं-

"तृतीयस्यागन्म महेत्याज्यं प्रवीरया शुचयो दद्रिरेते ते सत्येन मनसा दीध्याना दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यामा विश्ववाराऽश्विनागतं नोऽयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आतु प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त सरस्वतीं देवयन्तो हवन्त आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वत्यभि नो नेषि वस्य इति प्रउगम्"।। (आश्व.श्रौ.८.११.१)

महर्षि आश्वलायन के इस सूत्र का समर्थन करती हुई इस कण्डिका के अनुसार निम्नलिखित छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है-

(१) पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से वायुदेवताक ऋ.७.९०.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वायु रश्मियां अप्रकाशित परमाणु आदि पदार्थों को विशेष सक्रिय करने के लिए उनमें अच्छी प्रकार व्याप्त होती हैं। वे उनको कंपाने वाले विभिन्न तेजस्वी प्राण तत्त्वों के द्वारा तीक्ष्ण गति प्रदान करते हुए सम्पीडित और ज्वलनशील रूप प्रदान करती हैं। ऋग्वेद संहिता में 'दद्रिरे ते' के स्थान पर 'दद्रिरे वाम्' पाठ है।

(ख) ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से तेजस्विता की रक्षिका वायु रश्मियां तेजस्वी सोम रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न विनाशशील पदार्थों को तीक्ष्ण बनाती हैं। वे उन प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों के द्वारा नियंत्रण, आकर्षण एवं धारण आदि अनेक बलों को उत्पन्न करती हैं।

(ग) राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोक अपनी समृद्धि के लिए विभिन्न देदीप्यमान प्राण एवं वाग् रश्मियों को धारण करते हैं। वे सभी रश्मियां परस्पर संगत होकर निरापद श्वेतवर्णीय रूप धारण कर नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को धारण करती हैं।

तदनन्तर उपर्युक्त ऋषि से इन्द्रवायुदेवताक ऋ.७.९०.५-७ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(क) ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते।।५।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु तत्त्व सभी लोकों को नियंत्रित करने के लिए अपनी सूक्ष्म रश्मियों के द्वारा उनको सिंचित और संगत करते हैं। वे लोक रमणीय, तेजस्वी और कंपाने वाले वलों से युक्त मनस्तत्त्व से संयुक्त प्राण रश्मियों के द्वारा उनको सिंचित और संगत करते हैं। वे लोक रमणीय, तेजस्वी और कंपाने वाले वलों से युक्त मनस्तत्त्व से संयुक्त प्राण रश्मियों के द्वारा सतत देदीप्यमान होते हैं। इसके साथ ही वे लोक नाना प्रकार के संयोग वियोगादि कर्मों से पूर्णतः व्याप्त होते हैं।

(ख) ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु तत्त्व नियंत्रक शक्तिसम्पन्न होकर नाना प्रकार की आशुगामी छन्द रश्मियों एवं तेजस्वी प्राण रश्मियों के द्वारा सुनहरे रंग के पदार्थों को धारण करते हैं। वे तेजस्वी प्राण रश्मियां आशुगामी एवं तीक्ष्ण मरुदादि रश्मियों के द्वारा आसुरी रश्मियों के समूहों को नष्ट करके विभिन्न लोकों को दीर्घायु प्रदान करती हैं।

(ग) अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।७।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे इन्द्र और वायु वलों से युक्त होते हुए नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को अपने साथ संगत करके उत्तम क्रियाओं से उनकी रक्षा करते हैं। वे सुन्दर दीप्तिमयी रश्मियों के द्वारा संयोज्य परमाणुओं को आकर्षित करते हुए अतिशय श्रेष्ठतापूर्वक लोकों में वसाते हैं।

तदनन्तर पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से मित्रावरुणौ देवता एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क, जिसका दैवत और छान्दस प्रभाव पाठक यथावत् समझ सकते हैं, ऋ.७.६४.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त।।१।।

इसके प्रभाव से वे प्राणापान, प्राणोदान किंवा प्राण-व्यान रश्मियां प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों वा परमाणुओं में निवास करती हुई 'घृम्' रश्मियों के मेल से नाना प्रकार के रूपों को उत्पन्न करती हैं। वे संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को उत्पन्न करती, उनका यथायोग्य छेदन-भेदन करती तथा नाना प्रकार से नियंत्रण करती हैं।

(२) आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू।।२।।

इसके प्रभाव से वे प्रकाशित प्राणापानादि रश्मियां महान् अग्नि तत्त्व की रक्षा एवं विभिन्न पदार्थों के छेदन-भेदन के द्वारा अन्तरिक्षरूपी सिन्धु का पालन करती हैं। वे विभिन्न संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों की वृष्टि के द्वारा द्युलोकों को शीघ्र ही व्याप्त करती हैं।

(३) मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः।।३।।

इसके प्रभाव से वे प्राणापानादि रश्मियां प्रकाशक और नियंत्रक गुणों से सिद्ध होकर नाना प्रकार के मार्गों में व्याप्त होती हैं। वे नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों से युक्त होकर विभिन्न प्रकाशित परमाणुओं वा लोकों की रक्षा करती हैं। वे उत्तम प्रापणीय एवं दानादि क्रियाओं के लिए सव पदार्थों को प्रकाशित

करती हैं।

तदनन्तर पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से अश्विनौ-देवताक ऋ.७.७०.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न वरणीय प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणु अन्तरिक्ष वा पृथिवी लोकों के अन्दर वायु तत्त्व में आश्रित होकर सब ओर व्याप्त होते हैं। वे अपने कारणरूप उस वायु तत्त्व में स्थित होकर बल और वेग के साथ सर्वत्र गमन करते हैं।

(२) सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {चनः = अन्नादिकमैश्वर्यम् (म.द.ऋ.भा.७.३८.३)} वे संयोजक गुणों से युक्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणु अतिशय रूप से सक्रिय होते हुए विभिन्न संयोगादि प्रक्रियाओं को सूत्रात्मा वायु रश्मियों द्वारा सिक्त करते हैं। वे विभिन्न लोकों के केन्द्रीय भागों में अतितप्त होकर विभिन्न धाराओं के रूप में बहते हुए उन लोकों को पूर्ण करते हैं। {एतग्वाः = अश्वनाम (निघं.१.१४)} लोकों के अन्दर वे परमाणु अति तीव्रगति वाले नहीं होते हैं।

(३) यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणु, जिन प्रकाश और ऊष्मायुक्त महान् लोकों में विद्यमान होते हैं, उन लोकों में विद्यमान मेघरूप पदार्थ समूहों के बाहरी भागों में स्थित होकर वे विभिन्न कणों में अपेक्षाकृत अधिक वैद्युत प्रभाव को उत्पन्न करते हैं।

तदनन्तर पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से इन्द्रदेवताक ऋ.७.२९.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः।।१।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न कमनीय रश्मियों वाला इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों से सिक्त और तृप्त होकर विभिन्न द्यु आदि लोकों में व्याप्त होता है। वह सुन्दर और सम्पीडित परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त करता हुआ उनका निरन्तर विनिमय करता है।

(२) ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम्।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सबको कंपाने वाला वह महान् इन्द्र तत्त्व प्राणापान एवं विद्युत् को धारण करता हुआ अपनी कमनीय रश्मियों के द्वारा नवीनोत्पन्न परमाणु आदि पदार्थों में शीघ्र ही व्याप्त होता है। वह विभिन्न संयोगादि कर्मों में संयोज्य परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को निकटता से अच्छी प्रकार प्रेरित और सक्रिय करता

है।

(३) का ते॑ अस्त्यरं॑कृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते॑ मघवन्दाशेम।
विश्वा॑ मतीरा त॑तने त्वायाधा॑ म इन्द्र शृणवो हवेमा।।३।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राण रश्मियों से अलंकृत होकर विभिन्न छन्द रश्मिसमूहों के द्वारा नाना प्रकार की तेजस्विनी रश्मियों को उत्पन्न और विस्तृत करता है।

तदनन्तर पूर्वोक्त वसिष्ठ ऋषि से विश्वेदेवादेवताक ऋ.७.४२.१-३ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र ब्रह्माणो अङ्गि॑रसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्न॑भन्य॑स्य वेतु।
प्र धेनव॑ उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री॑ अध्वरस्य पेशः।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से महान् प्राण तत्त्व नाना परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करता हुआ अन्तरिक्ष में नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाओं को सुन्दर रूप प्राप्त कराता है। वह विभिन्न वाग् रश्मियों को सिंचित करके उन्हें विशेष प्रकाशित और गतिशील करता हुआ मेघादि पदार्थ समूहों में प्रकृष्टता से व्याप्त व संगत करता है।

(२) सुगस्ते॑ अग्ने सन॑वित्तो अध्वा॑ युक्ष्वा सुते हरितो॑ रोहित॑श्च।
ये वा सद्म॑न्नरुषा वी॑रवाहो॑ हुवे देवानां॑ जनि॑मानि सत्तः।।२।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व {हरितः = दिङ्नाम (निघं.१.६), रोहितः = नदीनाम (निघं.१.१३)} सब ओर व्याप्त दिशाओं एवं आशुगमन करती हुई नदियों के समान रक्तवर्णीय रश्मियों से युक्त और प्राणादि रश्मियों से व्याप्त होता है। वह विभिन्न प्रकाशित पदार्थों को उत्पन्न और प्रेरित करता हुआ उन्हें शीघ्रगामी बनाता है। वह अग्नि तत्त्व अपने सनातन वेग से प्राप्त विभिन्न मार्गों से उन परमाणुओं को युक्त करता है।

(३) समु वो यज्ञं म॑हयन्नमो॑भिः प्र होता॑ मन्द्रो रि॑रिच उपाके।
यज॑स्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरम॑तिं ववृत्याः।।३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अनेक रश्मिसमूहों से युक्त वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न देव परमाणुओं को अच्छे प्रकार संगत करता है और संगमनीय गति वा वलों में उन परमाणुओं को सब ओर से प्रवृत्त करके उन्हें होतारूप प्रदान करता हुआ बाधक पदार्थों से पृथक् रखता है। वह विभिन्न वज्र रश्मियों वा संयोज्य परमाणुओं के द्वारा विभिन्न संगमनीय कर्मों को समृद्ध करता है।

तदनन्तर यामायनो देवश्रवा ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व प्रेरित नियन्त्रित मार्गों पर गमन करने वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष से सरस्वती-देवताक तथा निचृत् त्रिष्टुप् छन्दस्क, जिसके दैवत व छान्दस प्रभाव को विज्ञ पाठक यथावत् समझ सकते हैं,

सर॑स्वतीं देवयन्तो॑ हवन्ते सर॑स्वतीमध्वरे तायमाने।
सर॑स्वतीं सुकृतो॑ अह्वयन्त सर॑स्वती दाशुषे वार्यं दात्।।७।। (ऋ.१०.१७.७)

की उत्पत्ति होती है। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ मनस्तत्त्व रूपी देव की कामना करते हुए सूक्ष्म वाग् रश्मियों के द्वारा प्रकाशित होते हैं। वे परमाणु आदि पदार्थ विस्तृत होते हुए सर्गयज्ञ अर्थात् द्यु आदि लोकों में विभिन्न छन्द रश्मियों को अपने साथ संगत करते हुए ज्वालामयी वाग् रश्मियों

को समृद्ध करते हैं। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां वरणीय वल व तेज को प्रकट करती हैं।

तदनन्तर अत्रि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से विश्वेदेवादेवताक एवं त्रिष्टुप् छन्दस्क

आ नो॑ दि॒वो बृ॑ह॒तः पर्व॑ता॒दा सर॑स्वती यज॒ता ग॑न्तु य॒ज्ञम्।
ह॒वं दे॒वी जु॑जुषा॒णा घृ॒ताची॑ श॒ग्मां नो॒ वाच॑मुश॒ती शृ॑णोतु॥११॥ (ऋ.५.४३.११)

इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न छन्द रश्मियां व्यापक प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न पालन आदि कर्मों में सव ओर से व्याप्त और गतिशील होती हैं। वे 'घृमु' रश्मियों से युक्त होती हुई नाना प्रकार के वल और तेज से सम्पन्न होकर सूक्ष्म वाग् रश्मियों के द्वारा सव ओर से प्रेरित होती हैं।

तदनन्तर बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक सूक्ष्म प्राण विशेष से सरस्वती-देवताक एवं पंक्ति छन्दस्क

सर॑स्वत्य॒भि नो॑ नेषि॒ वस्यो॒ माप॑ स्फरी॒: पय॑सा॒ मा न॒ आ ध॑क्।
जु॒षस्व॑ नः स॒ख्या वे॒श्या॑ च॒ मा त्वत्क्षेत्रा॒ण्यर॑णानि गन्म॥१४॥ (ऋ.६.६१.१४)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे छन्द रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आच्छादित करके उनकी अनावश्यक वृद्धि को नियंत्रित करती हैं। वे रश्मियां अपने तेज और पराक्रम से उन परमाणुओं में प्रविष्ट होकर उन्हें नष्ट नहीं करती हैं, वल्कि उन्हें तेजस्वी बनाकर नाना प्रकार के संघात और संयोगादि क्रियाओं में सक्षम वनाती हैं।

उपर्युक्त सभी ऋचाओं के समूह को ग्रन्थकार ने प्रउग शस्त्र कहा है। प्रउग शस्त्र के विषय में पाठक यथावत् विचार लेवें। इन ऋचाओं में से

प्र वी॒रया॒ शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तास॑:।
वह॑ वायो नि॒युतो॑ याह्य॒च्छा पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य। (ऋ.७.९०.१)

में 'शुचि' शब्द विद्यमान है।

ते स॒त्येन॒ मन॑सा॒ दीध्या॑नाः॒ स्वेन॑ यु॒क्तास॒: क्रतु॑ना वहन्ति।
इन्द्र॑वायू वीर॒वाहं॒ रथं॑ वामीशा॒नयो॑र॒भि पृक्ष॑: सचन्ते॥५॥ (ऋ.७.९०.५)

में 'सत्य' शब्द विद्यमान है।

दि॒वि क्षय॑न्ता॒ रज॑सः पृथि॒व्यां प्र वां॑ घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिजो॑ ददीरन्।
ह॒व्यं नो॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सु॒जातो॒ राजा॑ सुक्ष॒त्रो वरु॑णो जुषन्त॥१॥ (ऋ.७.६४.१)

में 'क्षि निवासगत्योः' विद्यमान है।

आ वि॑श्ववाराश्विना ग॒तं नः॒ प्र तत्स्थान॑मवाचि वां पृथि॒व्याम्।
अश्वो॒ न वा॒जी शु॒नपृ॑ष्ठो अस्था॒दा यत्से॒दथु॑र्ध्रु॒वसे॒ न योनि॑म्॥१॥ (ऋ.७.७०.१)

में 'गमु' धातु विद्यमान है।

अ॒यं सोम॑ इन्द्र॒ तुभ्यं॑ सुन्वे॒ आ तु प्र या॑हि हरिव॒स्तदो॑काः।
पिबा॒ त्व१॒॑स्य सुषु॑तस्य॒ चारो॒र्दद॑ो म॒घानि॑ मघवन्निया॒नः॥१॥ 'तदोकाः' (ऋ.७.२९.१)

में 'ओक' शब्द विद्यमान है।

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः।।२।। (ऋ.७.४२.२)

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु।।११।। (ऋ.५.४३.११)

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म।।१४।। (ऋ.६.६१.१४)

में 'गमु' धातु विद्यमान है। इस कारण इन सभी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल में १८ त्रिष्टुप् एवं ३ पंक्ति छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर आगामी उत्पन्न होने वाली विभिन्न क्रियाओं व पदार्थों में विशेष बल को बीजारोपित करती हैं। इस समय विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियां विद्युत् बल एवं तरंगें ऊष्मा एवं प्रकाशादि की तीव्रता बढ़ाती है। विभिन्न प्रकार के अल्पायु कणों के बल तथा ऊर्जा में भी वृद्धि होती है। तारों का रंग श्वेत होने लगता है। इसके साथ ही कुछ लोकों में सुनहरे रंग के प्रकाश की अधिकता होती है। इन लोकों में डार्क एनर्जी का प्रभाव और भी कम हो जाता है। कई तारे अन्य रंगों में भी प्रकट होते हैं। प्राण और अपान रश्मियां आकाश तत्त्व पर नियंत्रण करके नाना प्रकार के संयोग और वियोग कर्मों को प्रभावी बनाती हैं। विभिन्न क्वान्टाज् अपनी कारणरूप प्राण रश्मियों में व्याप्त होकर विशेषकर धनंजय प्राण रश्मि के कारण अतिशय आशुगामी होते हैं। **जब दो कणों का परस्पर संयोग होता है, तब वे परस्पर एक-दूसरे के ऊपर सूत्रात्मा वायु रश्मियों की वर्षा करते हैं। विभिन्न तत्त्वों के नाभिक और इलेक्ट्रॉन्स आदि की तारों के अन्दर धाराएं सर्वत्र बहती रहती हैं।** केन्द्रीय भागों की ओर भी पदार्थ धाराओं के रूप में ही गमन करता है। तारों के अन्दर पदार्थ मेघरूपों में भी विद्यमान रहता हुआ इधर-उधर गमन करता रहता है। उन मेघरूप क्षेत्रों के बाहरी भागों में विद्युत् आवेशयुक्त क्षेत्र विद्यमान होता है। विभिन्न लोकों से उत्सर्जित विद्युत् चुम्बकीय तरंगें सभी दिशाओं को व्याप्त करती हुई निश्चित वेग से गमन करती हैं। कुछ सूक्ष्म छन्द रश्मियां विभिन्न कण और क्वान्टाज् के परिधि भाग में विद्यमान रहकर उनके आकार को सुनिश्चित करती हैं, तो अन्य कुछ रश्मियां उनमें आकर्षण-प्रतिकर्षण आदि बलों को उत्पन्न करती हैं।।

३. 'तं तमिद्राधसे महे', त्रय इन्द्रस्य सोमा, इन्द्र नेदीय एदिहि, प्र नूनं ब्रह्मणस्पति, रग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यपो, नकिः सुदासो रथमिति, तृतीयेनाह्ना समान आतानो नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
'इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम इति' सूक्तमन्तो वै स्वाहाकारोऽन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
गायत्साम नभन्य यथा वेरिति' सूक्तमर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वदित्यन्तो वै स्वरन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका में वर्णित सभी ऋचाएं तृतीय अहन् अर्थात् कृकल प्राण के उत्कर्ष काल में भी यथाक्रम उत्पन्न होती हैं। इस कारण इस कण्डिका का व्याख्यान खण्ड ५.१ के समान समझें।

वहां यह कण्डिका चार कण्डिकाओं में विभक्त होकर वर्णित है। इन छन्द रश्मियों का प्रभाव लोक निर्माण प्रक्रिया के चरणभेद के अनुसार किंचित् भेद से विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। ये सभी छन्द रश्मियां पूर्ववत् मरुत्वतीय शस्त्र कहलाती हैं।।

तदनन्तर इसी क्रम में विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ.३.५० सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्व१ः काममृध्याः।।१।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह {तुम्रः = आहन्ता (म.द.भा.), सत्कर्मसु प्रेरकः (तु.म.द.ऋ.भा.४.१८.१०)} मरुद् रश्मियों से युक्त बलवान् इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से सोम रश्मियों का आहरण करता है। वह उन अन्नरूप सोम रश्मियों को व्याप्त और अवशोषित करके सम्पूर्ण विस्तृत पदार्थ में नाना प्रकार के कमनीय बलों को पूर्ण सिद्ध करता है।

(२) आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण बल और सुन्दर गति से सम्पन्न वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्रकाशित पदार्थों की त्वरित रक्षा करता हुआ बड़े वेग से उनके साथ **संयुक्त होता है। विभिन्न हरणशील परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र तत्त्व को धारण करके सुन्दर प्रेरक रश्मियों को सब ओर से अवशोषित करते हैं।**

(३) गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ सहजतया गति करने और प्रकाशित होने के लिए विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा इन्द्र तत्त्व को धारण करके श्रेष्ठतापूर्वक विविध बाधाओं से मुक्त होकर नाना क्रियाओं को सम्पन्न करते हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न सोम रश्मियों को अनेक प्रकार से अवशोषित करता हुआ नाना प्रकार की रश्मियों वा कणों को प्रेरित करता है।

(४) इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्।।४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {कुशिकासः = शब्दायमानाः (म.द.ऋ.भा.३.३०.२०), उत्कर्षं प्राप्ताः (म.द.ऋ.भा.३.२६.१५)। कुशिक = क्रोशतेः शब्दकर्मणः क्रंशतेर्वा स्यात् प्रकाशयतिकर्मणः साधु विक्रोशयितार्थानामिति वा (नि.२.२५)} व्यान रश्मियों से युक्त वाहक सूत्रात्मा वायु रश्मियां सूक्ष्म शब्द और प्रकाश को उत्पन्न करती हुई इन्द्र तत्त्व के बलों को उत्पन्न करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व आशुगामी कणों वा तरंगों के द्वारा कमनीय तेजस्वी रूप में सिद्ध और विस्तृत होता है।

(५) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।५।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न

परमाणुओं के संघात और संघर्षण में विभिन्न बलों के विभाजन और व्याप्ति में अति सक्रिय इन्द्र तत्त्व बाधक और उग्र असुर रश्मि आदि पदार्थों को नियंत्रित वा नष्ट करता है। वह विभिन्न प्रकार के परमाणुओं को उत्तम प्रकार से नियन्त्रित करता हुआ अन्तरिक्षस्थ वायु तत्त्व में विभिन्न प्रकार से संगत करता है।

यहाँ महर्षि का कथन है- "अन्तो वै स्वाहाकारः" उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा में 'स्वाहा' शब्द विद्यमान होने से यह ऋचा एवं सम्पूर्ण सूक्त ही 'अन्तवत्' सिद्ध होता है। इधर महर्षि याज्ञवल्क्य का भी कथन है- "अन्तो वै यज्ञस्य स्वाहाकारः" (श.१.५.३.१३), "यज्ञो वै स्वाहाकारः" (श.३.१.३.२७), "अहुतमिवैतद् यदस्वाहाकृतम्" (श.४.५.२.१७)। इन वचनों से भी यह प्रकट होता है कि 'स्वाहा' पद के प्रभाव से इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों के संयोग को पूर्णता वा अन्तिम रूप प्रदान करता है। इसी कारण 'स्वाहा' को 'अन्त' के समान कहा गया है। इस कारण इस सूक्त की उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर अगस्त्य ऋषि अर्थात् निर्बाध और निर्दोष रूप से गति करने वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१७३ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) गायत्साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत्।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान्।।१।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आकाश एवं द्युलोकों में व्याप्त होकर व्यान रश्मियुक्त विद्युत् से सम्पन्न अत्यन्त वर्धमान होता हुआ नाना प्रकार की भेदन आदि क्रियाओं में सक्रिय और प्रकाशित होता है। अन्तरिक्ष में व्याप्त विभिन्न अहिंस्य छन्दादि रश्मियां एवं पार्थिव आदि परमाणुओं की अच्छी प्रकार परिचर्या करता हुआ उन्हें प्रकाशित करता है।

(२) अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात्।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {स्वेदुहव्यैः = स्वेन प्रकाशितदानाऽऽदानैः (म.द.भा.)} अपने बलों से व्याप्त वह इन्द्र तत्त्व स्वप्रकाशित मरुद् रश्मियों के द्वारा तीक्ष्ण और संगमनीय होता हुआ अतीव सक्रिय होता है। वह विभिन्न परमाणु वा रश्मियों के मिथुनों को प्रकृष्ट रूप से सक्रिय और प्रकाशित करता है।

(३) नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक्।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शरत् = अन्नं वै शरद् (मै.१.६.६), श्रोत्रं शरद् .... आदित्यश्शरद् (जै.ब्रा.२.५१)} वह होतारूप इन्द्र तत्त्व आदित्य एवं पृथिवी लोकों के गर्भ (केन्द्र) भाग को उचित परिमाण से युक्त करके सब ओर से पूर्ण करता है। वह आशुगामी सेचक बलों से युक्त छन्द रश्मियों के समान ध्वनि करता हुआ नाना प्रकार के पदार्थों का वाहक बनकर इन दोनों ही लोकों के बीच विचरण करता है।

(४) ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः।।४।।

इसका छन्द बृहती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {च्यौत्नम् = बलनाम (निघं.२.६)। दस्मः = मूर्त्तद्रव्याणामुपक्षयिता (म.द.ऋ.भा.३.३.२)} वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न कमनीय पदार्थों की कामना करता हुआ जिन अतीव गति और बल से युक्त परमाणु आदि पदार्थों को धारण करता है, वे पदार्थ बाधक पदार्थों के बीच विद्यमान रहते हुए भी प्रकाशित और तीव्र गतिशील

होकर परस्पर नित्य संगत होते हैं।

(५) तमु॑ ष्टुही॒न्द्रं यो ह॒ सत्वा॒ यः शूरो॑ म॒घवा॒ यो र॑थे॒ष्ठाः।
प्र॒ती॒चश्चि॒द्योधी॑या॒न्वृष॑ण्वान्ववव्रु॒षश्चि॒त्तम॑सो विह॒न्ता॥५॥

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण वलयुक्त इन्द्र तत्त्व तेजोमयी रश्मियों में स्थित होकर अति संघर्षशील विभिन्न परमाणुओं के प्रति प्रवाहित होकर उनको अति सक्रिय और तेजस्वी वनाता है।

(६) प्र यदि॒त्था म॑हि॒ना नृभ्यो॒ अस्त्य॒रं रोद॑सी क॒क्ष्ये॒३ नास्मै॑।
सं वि॑व्य॒ इन्द्रो॑ वृ॒जनं॒ न भूमा॒ भर्ति॑ स्व॒धावाँ॑ ओप॒शमि॑व॒ द्याम्॥६॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {ओपसमिव अत्यन्तं सम्बद्धम् (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व अपने वारक वा धारक वलों के द्वारा विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अच्छी प्रकार आकृष्ट करता एवं संयोजक वलों से युक्त होकर प्रकाश रश्मियों के साथ अत्यन्त सम्वद्ध होकर उन्हें धारण करता है। वह अपनी कक्षाओं में स्थित हुए पृथिवी और द्युलोकों को परिपूर्ण करता तथा आशुगामी मरुद् रश्मियों को भी समर्थ वनाता है।

(७) स॒मत्सु॑ त्वा शूर स॒ताामु॑रा॒णं प्र॑प॒थिन्त॑मं परितंस॒यध्यै॑।
स॒जोष॑स॒ इन्द्रं॒ मदे॑ क्षो॒णीः सू॒रिं चि॒द्ये अ॑नु॒मद॑न्ति॒ वाजैः॑॥७॥

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {परितंसयध्यै = (तसि अलंकारे)। उराणः = उरु कुर्वाणः (नि.६.१७), 'उरु उपपदे', 'अन प्राणने' अदा. धातोरण्, वर्णव्यत्ययेनोकारस्याकारः (वै.को. आ. राजवीर शास्त्री)} वह इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण परन्तु सवके साथ समान व्यवहार करता हुआ विभिन्न पदार्थों के संघर्ष-संघातों में विभिन्न परमाणुओं को सव ओर से अलंकृत अर्थात् सन्नद्ध करने हेतु उन्हें व्यापक वलवान् व क्रियाशील वनाता है। वह पार्थिव परमाणुओं को भी प्रकाशित अग्नि के परमाणुओं के समान वेगादि से युक्त करके अनुकूलता से अति सक्रिय करता है।

(८) ए॒वा हि ते॒ शं सव॑ना समु॒द्र आपो॒ यत्त॑ आ॒सु मद॑न्ति दे॒वीः।
विश्वा॑ ते॒ अनु॒ जोष्या॑ भूद् गौः सू॒रीँश्चि॒द्यदि॑ धि॒षा वेषि॒ जना॑न्॥८॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष में विभिन्न तन्मात्राएं इन्द्र तत्त्व की प्रेरणा से नियन्त्रित होती हैं। विभिन्न वाग् रश्मियां उन्हें सक्रिय व तृप्त करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व अपनी तेजस्वी रश्मियों के द्वारा विभिन्न तेजस्वी परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करता तथा समस्त वाग् रश्मियों को अनुकूलता से अपने साथ संगत करता है।

(९) असा॑म॒ यथा॑ सुष॒खाय॑ एन स्वभि॒ष्टयो॑ न॒रां न शंसैः॑।
अ॒सद्यथा॑ न॒ इन्द्रो॑ वन्दने॒ष्ठास्तु॒रो न कर्म॒ नय॑मान उ॒क्था॥९॥

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सुन्दर तेज एवं संयोज्यतादि गुणों को समृद्ध करने हेतु उत्तम मरुद् रश्मियों के द्वारा समर्थ होता है। वह नाना प्रकार की छन्द रश्मियों में स्थित होकर शीघ्रकारी क्रियाओं का वहन करता हुआ प्रकाशित होता है।

(१०) विष्प॑र्धसो न॒रां न शंसै॑र॒स्माका॑सदिन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः।
मि॒त्रा॒युवो॒ न पूर्प॑तिं॒ सुशि॑ष्टौ मध्या॒युव॒ उप॑ शिक्षन्ति य॒ज्ञैः॥१०॥

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {मध्यम् = त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रो देवता मध्यम् (श.१०.३.२.५)} हस्तरूप वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को उत्तेजित करता है, जिससे वे पदार्थ विशेष रूप से आकर्षण-प्रतिकर्षण वलों से युक्त होकर अन्तरिक्षस्थ त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों को आकर्षित करते हुए उत्तम नियंत्रण के साथ संगत होते हैं।

(११) यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन्।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा।।११।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {यज्ञः = यज्ञो वै मैत्रावरुणः (कौ.ब्रा.१३.२), वाग्वै यज्ञः (ऐ.५.२४), आत्मा वै यज्ञः (श.६.२.१.७)} कुछ प्राणापानादि रश्मियां सूत्रात्मा वायु और मनस्तत्त्व के साथ संगत होकर इन्द्र तत्त्व को समृद्ध और कुटिल गतियों से सम्पन्न करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न तारक वलों और गतियों को सव ओर से प्राप्त करता हुआ तीव्र संयोजक वलों से सम्पन्न पदार्थों को शीघ्रतापूर्वक मार्ग तथा व्यापक आश्रय प्रदान करता है।

(१२) मो षू णं इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः।।१२।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न संघर्ष और संघातों में अच्छी प्रकार व्याप्त होता है। वह शोषक वलों से युक्त होकर {अवयाः = योऽवयजते विनिगृह्णाति सः (म.द.य.भा.३.४६)} विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करके नाना वल रश्मियों का सेचन करता है। वह अनेक प्रकार की हविरूप मास आदि रश्मियों से युक्त होकर मिश्रणामिश्रणधर्मयुक्त मरुदादि रश्मियों के द्वारा व्यापक रूप से प्रकाशित होता है।

(१३) एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः।
आ नो ववृत्याः सुवितायं देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्।।१३।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से कमनीय रश्मियों से युक्त प्रकाशित इन्द्र तत्त्व तेजस्वी किरणों के रूप में पार्थिव परमाणुओं को प्राप्त करता है। वह उन परमाणुओं को प्रेरित करने के लिए तथा नाना प्रकार के वारक वलों से निरन्तर उनको युक्त करने के लिए उन परमाणुओं के चारों ओर चक्राकार व्याप्त हो जाता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद "अर्चाम् तद्वावृधानं स्वर्वत्" में 'स्वः' पद विद्यमान है। यहाँ ग्रन्थकार का कथन है- "अन्तो वै स्वः"। इसका कारण यह है कि स्वर्ग लोक अर्थात् द्युलोकों के केन्द्रीय भाग किंवा द्युलोक स्वयं पृथिवी आदि लोकों के अन्त में उत्पन्न होते हैं और द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया में सर्वोच्च तेजस्वी और वलयुक्त भाग उन लोकों के केन्द्र (मध्य) में ही विद्यमान होता है। इसी कारण कहा है- "अन्तो वै स्वः"। इस प्रकार यह सूक्त अन्तवत् होने से इसकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल में विभिन्न प्रकार की कुल ३३ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इस समय विभिन्न तारे आदि लोकों में विद्युत् वलों एवं तरंगों में विशेष वृद्धि होती है। डार्क एनर्जी का प्रभाव और भी कम होने लगता है। इस समय मरुद् रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं। विभिन्न परमाणुओं की ऊर्जा में वृद्धि होती है। विद्युत् चुम्बकीय वलों में व्यान एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों की विद्यमानता होती है। तारे और पृथिवी आदि लोकों के केन्द्रीय भाग के परिमाण का निर्धारण गुरुत्व वल के साथ-२ विद्युत् वलों के द्वारा भी होता है। विभिन्न मूलकण अथवा द्वितीयक कण विद्युत् के वल के कारण ही अति तीव्र वेग से गमन करते हैं। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पठनीय है।।

४. 'तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमानेति', सूक्तमन्तो वै स्थितमन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
'इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोरिति' सूक्तं, धियो रथेष्ठामित्यन्तो वै स्थितमन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर विश्वामित्र ऋषि अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से इन्द्रदेवताक ऋ.३.३५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती हैं-

(१) तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय।।१।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व कमनीय प्राणापान रश्मियों के साथ संगत होता हुआ वज्ररूप रश्मियों में सब ओर से विद्यमान होता है। वह विभिन्न प्राण रश्मियों के साथ मिश्रित और अमिश्रित होते हुए विभिन्न परमाणुओं को विशेष सक्रिय करने के लिए अपनी सूक्ष्म वाग् रश्मियों के द्वारा उनको आच्छादित करता है।

(२) उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि।
द्रवद्यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम्।।२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राणापान एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों के द्वारा संगमनीय इन्द्र तत्त्व सब ओर गति करता हुआ नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को वहन करता है। वह उन परमाणुओं को शीघ्र प्रक्षेपण सामर्थ्य से युक्त आकर्षण और प्रतिकर्षण बलों से सम्पन्न करता हुआ नाना प्रकार की रमणीय रश्मियों के रूप में प्रकट करता है।

(३) उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {धानाः = धीयन्ते यासु ता दीप्तयः (म.द.ऋ.भा.१.१६.२), धारकाः (म.द.य.भा.८.११)} वह वर्षक बलों से युक्त एवं अनेक संयोजक परमाणुओं से सम्पन्न इन्द्र तत्त्व तपते हुए रक्त वर्ण, बलवान् एवं आशुगामी लोकों को अपने नियंत्रण में गमन कराता है। वह प्रत्येक वस्तु को समान रूप से धारण करता हुआ नित्य वहन करता है।

(४) ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम्।।४।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {ब्रह्म = प्राणापानौ ब्रह्म (गो.पू.२.११), ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम (तै.ब्रा.३.६.५.५), तद् (ब्रह्म) इदमन्तरिक्षम् (जै.उ.२.३.३.६)} वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान एवं वाग् रश्मियों के मिथुन तथा आकाश तत्त्व के संयोग से शीघ्रगामी हरणशील बल रश्मियों को समान रूप से प्रकाशित करता हुआ परस्पर संगत करता है। वह आकाश में दृढ़ता से तेजस्विनी रश्मियों पर अधिष्ठित होकर विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को व्याप्त करता है।

(५) मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः।।५।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व संगमनीय परमाणुओं को बलिष्ठ हरणशील रश्मियों के व्यापक आधार में रमण कराता तथा उन्हें बड़े वेग से गतिशील करता है। वह निरन्तर सम्पीडित सोम रश्मियों के द्वारा परमाणु आदि पदार्थों को धारण एवं नाना रूप प्रदान करता है।

(६) तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र।।६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका छान्दस व दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {इन्दुः = यज्ञनाम (निघं.३.१७), सोमो वा ऽइन्दुः (श.२.२.३.२३)} इन्द्र तत्त्व के अधोभाग में सोम रश्मियां निरन्तर वर्तमान रहती हैं। वह इन्द्र तत्त्व आकाश में विद्यमान विभिन्न छन्दादि रश्मियों के संगमनीय व्यवहार में निरन्तर प्रकाशित होता हुआ उन क्रियाओं की रक्षा करता है। वह संगमनीय सोम रश्मियों को अपने मध्य भाग में भी धारण करता है।

(७) स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम्।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व को आच्छादित करने वाली छन्द व सोम रश्मियां धारक बलों से युक्त दीप्तिमयी रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। वे दो प्रकार की हरणशील रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों से युक्त अनेक प्रकार के बलों और गतियों से सम्पन्न होकर नाना प्रकार की रश्मियों एवं परमाणुओं को संगत करती हैं।

(८) इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन्।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः।।८।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् एवं व्याप्त इन्द्र तत्त्व विभिन्न छन्दादि रश्मियों एवं पार्थिव परमाणुओं के साथ आकाश एवं मेघरूप पदार्थों को अच्छी प्रकार धारण और प्रकाशित करता है। वह विभिन्न पदार्थ समूहों वा परमाणु आदि को व्याप्त करके अनुकूलतापूर्वक प्रकाशित करता वा निर्धारित मार्गों पर चलाता है।

(९) याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र।।९।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के समूह को अच्छी प्रकार संगत करके अपने नियंत्रक बलों को समृद्ध करता है। वह ऐसा इन्द्र तत्त्व विभिन्न पदार्थों को समान रूप से आकर्षित करता हुआ अग्नि की ज्वालाओं को सोम रश्मियों से युक्त करता है।

(१०) इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से संगन्ता एवं शक्तिशाली इन्द्र तत्त्व अग्नि की ज्वालाओं के साथ नाना प्रकार के संयोज्य परमाणुओं के द्वारा विभिन्न सोम रश्मियों का पान करता है। वह प्राणापान रश्मियों के संगमनीय कर्मों से रक्षित होकर अपनी

हरणशील रश्मियों के द्वारा विभिन्न हवनीय परमाणुओं वा मास रश्मियों के साथ संगत होता है।

(११) शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न संग्राम वा संघातों में आच्छादक बाधक असुर तत्त्व को अपने उग्र बलों के द्वारा नष्ट वा नियंत्रित करके विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में रक्षण, गति, कान्ति आदि गुणों को समृद्ध करता है। वह पदार्थ के नाना प्रकार के विभाग करके उनके परमाणुओं को सहज और सक्रियतम रूप प्रदान करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'तिष्ठ' पद में 'स्था' धातु विद्यमान है। इस धातु के विषय में ग्रन्थकार का कथन है- "अन्तो वै स्थितम्"। द्यु आदि लोकों में पदार्थ का केन्द्रीय भागों की ओर गमन कर्म उस मध्य भाग में अर्थात् अन्त में स्थिरता को प्राप्त होता है। इसी कारण कहा है- "अन्तो वै स्थितम्"। इस कारण यह सूक्त भी अन्तवत् कहलाता है। इस कारण इसकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से विशेष सम्पृक्त प्राण नामक प्राथमिक प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.६.२१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या।।१।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां अतिशय क्रियाशील इन्द्र तत्त्व के साथ संगत होने वाले परमाणु आदि पदार्थों को आकर्षित करती हैं। वे रश्मियां विभिन्न रमणीय रश्मियों के संगमनीय कर्मों में क्रियाशील अतिशय नवीन परन्तु अजीर्ण मरुदादि रश्मियों को ऐश्वर्यवान् बनाती हैं।

(२) तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम्।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ नाना छन्दादि रश्मियों के द्वारा छन्द रश्मियों को वहन करके संयोगादि कर्मों को विस्तृत और प्रकाशित करने वाले इन्द्र तत्त्व को प्राप्त करते हैं। वे ऐसे परमाणु महान् प्रज्ञापिका विद्युत् को समृद्ध करते और बढ़ाते हैं, जिससे अन्तरिक्षस्थ विभिन्न लोक विशेष प्रकाशित होते हैं।

(३) स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः।।३।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वयुनम् = प्रशस्यनाम (निघं.३.८), वयुनं वेतेः कान्तिर्वा प्रज्ञा वा (नि.५.१५), वीयते गम्यतेऽत्रेति वयुनम् (उ.को.३.६१)} वह इन्द्र तत्त्व अपनी तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा बाधक असुरादि रश्मियों के बलों को नष्ट करता है तथा देव परमाणु आदि पदार्थों को प्रकाश एवं कमनीय बलों से युक्त करता हुआ विस्तृत करता है। वह विभिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित परमाणुओं को आदित्य लोकों में धारण करता हुआ संयोग-वियोग कर्मों में नानाविध प्रवृत्त करता है।

(४) यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता।।४।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियां विभिन्न सूक्त रूप छन्द रश्मिसमूहों में विचरती हुई उनको परमाणु रूप में प्रकट करती हैं। वे प्राण रश्मियां श्रेष्ठ और प्रकाशित अन्य रश्मियों के साथ संगत होकर नाना वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्त्व एवं आदित्य रश्मियों वा लोकों को प्रकट करती हैं।

(५) इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व व्यापक रूप से क्रियाशील और प्रकाशित पूर्वोत्पन्न एवं वर्तमान में उत्पन्न हो रहे नाना प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को व्याप्त व उत्तेजित करता है।

(६) तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम्।।६।।

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह विक्रान्त इन्द्र तत्त्व नवीन और पुरातन, निकटस्थ और दूरस्थ सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलता से नियंत्रित और प्रकाशित करता है। वह प्राणापान रश्मियों को वहन करता हुआ नाना प्रकार के संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त और वहन करता है।

(७) अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व।।७।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् और तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व वलपूर्वक असुर रश्मियों के सम्मुख तेजस्वी वज्र रश्मियों का प्रहार करता हुआ दूर हटाता है तथा विभिन्न परमाणुओं को अच्छी प्रकार संगत करता है।

(८) स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः।
त्वं ह्यापिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ।।८।।

इसका छन्द स्वराड् बृहती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व विभिन्न क्रियाशील परमाणुओं के द्वारा धारण किया हुआ नवीन-२ संयोगादि क्रियाओं में सुन्दर आकर्षण वल को निरन्तर प्रकट करता है। वह संयोज्य परमाणुओं को प्रकृष्टता प्रदान करता हुआ उनमें वलों की व्याप्ति करता है।

(९) प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च।।९।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राण, अपान, उदान, व्यापक व्यान, धनंजय एवं मरुदादि रश्मियों को अच्छी प्रकार धारण करके सवके धारक सूत्रात्मा वायु के साथ सम्वद्ध होकर अग्नि तत्त्व ऊष्मायुक्त विभिन्न मेघरूप पदार्थ एवं सूर्यादि लोकों को अच्छी प्रकार धारण करता है।

(१०) इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति।।१०।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकाशिका छन्द एवं प्राणादि रश्मियां प्रकृष्ट रूप से संगत होकर व्यापक सामर्थ्यवान् इन्द्र तत्त्व को सव ओर से देदीप्यमान करती

हैं। वह इन्द्र तत्त्व अहिंस्य और अविनाशी होकर नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों को आकर्षित व संगत करता है।

(११) नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय॥११॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {उपरम् = मेघनाम (निघं.१.१०), समीपे रममाणम् (तु.म.द.ऋ.भा.५.२६.५)} वह इन्द्र तत्त्व बलवान् प्राण रश्मियों से उत्पन्न होता और वाग् रश्मियों में निकटता से व्याप्त होता है। वह अग्नि की ज्वालाओं में पूर्णतः संसक्त होकर सभी संगमनीय परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों के द्वारा आसुर मेघों के समीप से उन पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट वा नियंत्रित करके देव परमाणुओं को सृजनादि क्रियाओं में नियुक्त करता है।

(१२) स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः।
ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम्॥१२॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्रगामी इन्द्र तत्त्व सुगम और दुर्गम मार्गों और क्रियाओं में विभिन्न परमाणुओं को प्राप्त व सक्रिय करता है। वह अविराम रूप से उन्हें श्रेष्ठतापूर्वक वहन करता हुआ नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों एवं बलों से सब ओर से युक्त करता है।

उपर्युक्त सूक्त की प्रथम ऋचा के तृतीय पाद में 'धियो रथेष्ठाम्' में 'स्था' धातु विद्यमान है। यहाँ ग्रन्थकार का पूर्ववत् कथन है- 'अन्तो वै स्थितम्'। जिसका भाव एवं शेष भाग का व्याख्यान पूर्व कण्डिका के समान समझें॥

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें॥

वैज्ञानिक भाष्यसार- **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल में ६ त्रिष्टुप् एवं २ पंक्ति छन्द रश्मियों का एक रश्मिसमूह एवं १० त्रिष्टुप्, १ पंक्ति एवं १ बृहती छन्द रश्मि का द्वितीय समूह उत्पन्न होता है। इनके प्रभाव से विभिन्न तारे आदि लोकों में विद्युत् बलों और तरंगों की तीव्रता व तीक्ष्णता में वृद्धि होती है, जिसके कारण उन लोकों में चल रही क्रियाएं निर्बाध रूप से चलती रहती हैं। **दो विद्युदावेशित कण जब परस्पर संगत होते हैं, तब वे एक-दूसरे को सूक्ष्म मरुद् रश्मियों से आच्छादित करते हैं।** विभिन्न लोकों की घूर्णन और परिक्रमण गतियां गुरुत्व बल के साथ-२ विभिन्न विद्युत् बलों से भी प्रभावित होती हैं। **विद्युत् चुम्बकीय तरंगें आकाश से दृढ़ता से युक्त होती हुई गमन करती हैं।** विद्युदावेशित कणों के अधः तथा मध्य भाग में सोम रश्मियां विद्यमान होती हैं। विभिन्न प्रकार के atom, molecule एवं मूलकणों की गति और बल को विद्युत् ही प्रेरित व नियंत्रित करती है। अग्नि की ज्वालाओं में सोम रश्मियां विद्यमान होती हैं। तारों अथवा पृथिवी आदि लोकों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ उसी क्षेत्र में सीमित रहता है अर्थात् वह कभी बहिर्गमन नहीं करता। विभिन्न कण और क्वान्टाज् के पारस्परिक संयोग में भी विद्युत् की ही भूमिका होती है। **विभिन्न छन्द रश्मियां सूत्रात्मा वायु आदि प्राण रश्मियों के द्वारा सम्पीडित होकर कणों के रूप में प्रकट होती हैं, फिर वे सभी कण व्यापक रूप से विद्युत् द्वारा ही नियन्त्रित होते हैं।** यहाँ भी डार्क एनर्जी का प्रभाव निरन्तर नियंत्रित किया जाता है। विद्युदावेशित कण वा क्वान्टाज् में लगभग सभी प्राथमिक प्राण रश्मियां और मरुद् रश्मियां विद्यमान होती हैं। अन्तरिक्ष में गमन करते हुए विद्युदावेशित कण नाना प्रकार की छन्द रश्मियों को आकर्षित करते हैं॥

५. 'प्र मन्दिने पितुमदर्चता वच इति' सूक्तं समानोदर्कं, नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्॥

तदु जागतं, जगत्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति, तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते, तस्माज्जगतीषु निविदं दधाति।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते, त्रैष्टुभानि च जागतानि च, मिथुनं वै पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।
पञ्च सूक्तानि शस्यन्ते; पञ्चपदा पङ्क्तिः, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर आङ्गिरस कुत्स ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक तीक्ष्ण प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१०१ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।१।।

इसका छन्द निचृज्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व वर्धमान होती हुई मरुदादि रश्मियों के द्वारा विभिन्न असुरादि रश्मियों को नियंत्रित वा नष्ट करता हुआ देव परमाणु आदि पदार्थों को व्याप्त करता है। वह विभिन्न ऋतु रश्मियों से युक्त होकर द्युलोकों में तेजस्विनी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय करता है। वह उन लोकों के प्रबल आकर्षणयुक्त गर्भरूप केन्द्रों की रक्षा करने तथा उन्हें सतत तेजस्वी बनाये रखने के लिए तीक्ष्ण सेचक बलयुक्त मरुद् रश्मियों से निरन्तर संगत होता है।

(२) यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।२।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी तीक्ष्ण ज्वलनशील और सक्रिय रश्मियों के द्वारा व्यापनशील मेघरूप पदार्थों को खण्ड-२ करता है। वह निष्क्रिय परमाणु आदि पदार्थों को सक्रिय पदार्थों से पृथक् रखता तथा विभिन्न मरुद् रश्मियों से सम्पन्न विशेष बलयुक्त पदार्थों को प्रकाशित व आकर्षित करता है।

(३) यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।३।।

इसका छन्द भुरिक् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व का महान् बल एवं क्रिया आदि अन्तरिक्ष एवं पृथिवी लोकों में व्याप्त होता है। विभिन्न चंद्र और सूर्यादि लोकों तथा उनके अन्दर पदार्थ की विभिन्न धाराओं में भी इन्द्र तत्त्व की बलवान् मरुद् रश्मियां व्याप्त होती हैं।

(४) यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।४।।

इसका छन्द निचृज्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आशुगामी रश्मियों के द्वारा विभिन्न पार्थिव आदि परमाणुओं का पालक और नियंत्रक होकर लोकों में होने वाली विभिन्न क्रियाओं में स्थिरता से व्याप्त होता है। वह विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं में बाधक बनने वाली बलवान् रश्मियों को नष्ट करके नाना प्रकारेण विभिन्न पदार्थों को प्रकाशित करता है।

(५) यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।५।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राणापान रश्मियों के द्वारा विभिन्न रश्मि वा परमाणुओं को व्याप्त और विस्तृत करता तथा तीक्ष्ण हानिकारक रश्मि आदि पदार्थों को दूर करके सभी गति एवं बलयुक्त परमाणुओं को अपनी मरुद् रश्मियों के द्वारा आकर्षित करके पालता और प्रकाशित करता है।

(६) यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि सन्दधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।६।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से तीक्ष्ण बलों से युक्त संयोज्य परमाणु कम्पन करते हुए एवं तीव्र गतिशील नियंत्रक बलयुक्त परमाणु आदि पदार्थ इन्द्र तत्त्व को प्राप्त करके सभी लोकों को अच्छी प्रकार धारण करते हैं। वे पदार्थ इन्द्र तत्त्व की मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रकाशित और संगत होते हैं।

(७) रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।।७।।

इसका छन्द विराड्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {ज्रयति गतिकर्मा (निघं.२.१४)। ज्रयः = अति तेजोमयः (म.द.ऋ.भा.४.५२.५)} वह इन्द्र तत्त्व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा प्रेरित होकर व्यापक प्रकाशयुक्त प्रताप और गति को प्राप्त होता है। वह वृषारूप त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के द्वारा योषारूप अनुष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ संयुक्त होकर अपने तेज को विस्तृत करता हुआ विभिन्न पदार्थों को तेजयुक्त करता है।

(८) यद् वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः।।८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा निरन्तर सिद्ध होता हुआ द्युलोकों के अत्यन्त उत्कृष्ट केन्द्रीय भागों एवं अन्य सभी विशाल लोकों में व्याप्त होकर नाना प्रकार के वर्जक और धारक बलों के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थ को विशेष सक्रिय करता है। वह इन लोकों में होने वाली विभिन्न संयोगादि क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए नाना प्रकार की मास रश्मियों को अपने साथ धारण करता है।

(९) त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन् यज्ञे बर्हिषि मादयस्व।।९।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सोम रश्मियों को प्राप्त करके उत्तम बलयुक्त होकर संयोज्य परमाणुओं का वहन करता है। {नियुत्व = समर्थः (म.द.भा)} वह समर्थ इन्द्र तत्त्व विभिन्न मरुद् रश्मिसमूहों के साथ संयोज्य परमाणुओं को हविरूप बनाकर इस अन्तरिक्ष में नाना प्रकार की सृजन क्रियाएं सम्पादित करता है।

(१०) मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन् हव्यानि प्रति नो जुषस्व।।१०।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व संयोजक एवं भेदक तेजस्विनी रश्मियों के साथ नाना प्रकार की किरणों वा परमाणुओं को

निरन्तर व्याप्त करता है। वह अपनी हरणशील रश्मियों को सब ओर प्रक्षिप्त करता हुआ नाना प्रकार के संयोज्य पदार्थों को संगत करता है।

(११) मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।११।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से मरुद् रश्मियों से प्रकाशित वारक बलों से युक्त अनेक रश्मियों का स्वामी इन्द्र तत्त्व विभिन्न बलों और छन्दादि रश्मियों का उचित विभाग करता है। वह प्राण, अपान, उदान, व्यान, सूत्रात्मा वायु एवं वाग् रश्मियों से युक्त होकर पृथिवी एवं द्यु लोकों को पुष्ट और प्रकाशित करता है।

इस सूक्त की प्रारम्भिक ७ ऋचाओं का चतुर्थ पाद "मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे" होने से यह सम्पूर्ण सूक्त ही समानोदर्क माना गया है। इस कारण यह सूक्त रूप रश्मिसमूह सभी लोकों में एकरस व्याप्त होकर इन्द्र तत्त्व को विशेष तेजस्वी और संगमनीय बनाता है। इस सूक्त का समानोदर्क होना ही इसकी उत्पत्ति के नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक होने का प्रमाण है।।

इस उपर्युक्त सूक्त में ६ ऋचाएं जगती तथा ५ ऋचाएं त्रिष्टुप् छन्दस्क हैं। ग्रन्थकार ने इस सूक्त को जगती छन्दस्क माना है। हमारे मत में इस सूक्त को केवल प्रधानता के आधार पर ही जागत कहना उचित प्रतीत नहीं होता। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि ये पांचों त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के अग्रलिखित व्यवहारों को प्रकट करती है। यह इस प्रकार सम्भव है- सूक्त में दर्शायी हुई ५ विभिन्न त्रिष्टुप् ऋचाएं २ भुरिग् जगती, १ निचृद् जगती एवं १ स्वराड् जगती के रूप में प्रकट होकर २४ अक्षर शेष रहते हैं, जो जगती ऋचा के अर्द्ध भाग के समान व्यवहार करके सम्पूर्ण सूक्त में सभी ऋचाएं **जगती छन्द रश्मियों के रूप में प्रकट हो जाती हैं। इसी कारण इस सूक्त को ग्रन्थकार ने जगती छन्दस्क कहा है। इस कारण इसे जागत मानकर इस कण्डिका एवं अगली दो कण्डिकाओं का व्याख्यान** ५.१८.६ **के समान समझें।।+।।+।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल में ६ जगती एवं ५ जगती प्रभाव वाली त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इनके प्रभाव से विद्युत् चुम्बकीय एवं विद्युदावेशित तरंगों का उत्सर्जन और अवशोषण विभिन्न लोकों में व्यापक रूप से बढ़ने लगता है। उनमें से कुछ तीक्ष्ण और अति ऊष्ण विद्युदावेशित तरंगें डार्क एनर्जी को भी नियंत्रित करती हैं। कुछ रश्मियों के कारण तारों के केन्द्रीय भाग सुरक्षित और तेजस्वी बने रहते हैं, तो कुछ रश्मियां तारों वा अन्तरिक्ष के अन्दर अथवा ग्रहादि लोकों में मेघरूप पदार्थों को छिन्न-भिन्न करती हैं तथा अतिसक्रिय एवं निष्क्रिय परमाणुओं को पृथक्-२ करती हैं। विभिन्न लोकों में कुछ विकिरण अत्यन्त तीक्ष्ण होकर विभिन्न प्रकार की क्रियाओं में बाधक बनते हैं। वे तीक्ष्ण विकिरण भी इन छन्द रश्मियों के द्वारा नियंत्रित होते हैं। ये सभी छन्द रश्मियां विभिन्न लोकों में विद्यमान असंख्य रश्मियों में एकरस व्याप्त होकर विद्युत् बलों व तरंगों में विशेष वृद्धि करती हैं। अन्य तीनों कण्डिकाओं का भाष्यसार ५.१८.६ के समान समझें।।

६. 'त्वामिद्धि हवामहे' 'त्वं ह्येहि चेरव इति' बृहत्पृष्ठं भवति नवमेऽहनि।। 'यद्वावानेति' धाय्याऽच्युता, ऽभि त्वा शूर नोनुम इति रथन्तरस्य योनिमनु निवर्तयति; राथन्तरं ह्येतदहरायतनेनेन्द्र त्रिधातु शरणमिति सामप्रगाथस्त्रिवान्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपं; 'त्यमू षु वाजिनं देवजूतमिति तार्क्ष्योऽच्युतः।।१।।

व्याख्यानम्- इस कण्डिका का व्याख्यान ५.१८.६ में देखें। भेद केवल यह है कि वहां ये ऋचाएं सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न होती हैं और यहाँ ये ऋचाएं नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल में उत्पन्न हो रही हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.१.७ की अन्तिम चार कण्डिकाओं के व्याख्यान के समान समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इन कण्डिकाओं का सार विज्ञ पाठक व्याख्यान भाग में दर्शाये हुए पूर्व प्रसंगों के समान स्वयं समझ सकते हैं। प्रकरण के अनुकूल किंचिद् भेद भी पाठक अपनी बुद्धि में विठा लेवें।।

ॐ इति २४.१ समाप्तः ॐ

꧁ अथ २४.२ प्रारभ्यते ꧂

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. 'सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीरिति' सूक्तं, गतवन्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
'कदा भुवन् रथक्षयाणि ब्रह्मेति' सूक्तं, क्षेतिवदन्तरूपं, क्षेतीव वा अन्तं गत्वा नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषीति सूक्तं, सत्यवन्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर शुनहोत्र ऋषि अर्थात् सहजता से संगत होने में समर्थ एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.६.३४ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का।।१।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अविनाशी छन्दादि रश्मियों में पूर्ण रूप से व्याप्त होकर उन्हें अच्छी प्रकार संगत करता है। श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त मनस्तत्त्व से प्रेरित अनेक ऋषि रूपी सूक्ष्म प्राण रश्मियां उन छन्दादि रश्मियों के साथ मिलकर नाना प्रकार की दीप्तियों और बलों को उत्पन्न करती हैं। वह इन्द्र तत्त्व उन रश्मियों को और भी अधिक दीप्तियुक्त करता है।

(२) पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः।
रथो न महे शवसे युजानो३ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत्।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा रश्मियों एवं अनेक मरुदादि रश्मियों के साथ संगत होता हुआ महान् बल से युक्त तेजस्वी रश्मियों के रूप में विभिन्न पदार्थों द्वारा व्यापक रूप से आकृष्ट एवं अत्यन्त क्रियाशील होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलता से क्रियाशील करता है।

(३) न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {धीतिः = प्रज्ञानाम (निघं.१०.४१), धीतिभिः कर्मभिः (नि.२.२४), प्रजा (नि.१०.४० - वै.को. से उद्धृत)} इन्द्र तत्त्व की दीप्ति, कर्म एवं उससे उत्पन्न अनेक रश्मि आदि पदार्थ तथा विभिन्न प्रकार की वाग् रश्मियां अहिंस्य रूप प्राप्त करके वर्धमान होती हुई सब ओर व्याप्त होती हैं। वे रश्मियां विभिन्न मरुद् रश्मियों के द्वारा असंख्य प्रकार से संयुक्त वा विभक्त होती हुई नानाविध प्रकाशित होती हैं।

(४) अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः।।४।।

इसका छन्द विराड् त्रिष्टुप् है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष में होने वाले इन्द्र तत्त्व के विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में तेजस्विनी मास रश्मियां अपने संयोजक बलों के साथ निरन्तर वर्धमान होती हैं। अन्तरिक्ष में विभिन्न परमाणु व प्राणादि पदार्थ सब

ओर से बढ़ते हुए सोम रश्मियों में निरन्तर व्याप्त होते हैं।

(५) अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च॥५॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {मतिः = मेधाविनाम (निघं.३.१५), वाग्वै मतिर्वाचा हीदं सर्वं मनुते (श.८.१.२.७)} वह इन्द्र तत्त्व सूत्रात्मा वायु युक्त वाग् रश्मियों के द्वारा व्यापक रूप से विभिन्न पदार्थों को प्रकाशित और व्याप्त करता है। वह आच्छादक आसुर मेघों के साथ देव पदार्थ के संघर्ष में देव पदार्थ में गति, रक्षण, कान्ति एवं नाना प्रकार की बल रश्मियों को समृद्ध करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'जग्मुः' पद में 'गम्' धातु विद्यमान है। इस कारण यह सूक्त नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है। इस पद के प्रभाव से यह सूक्त रूप रश्मिसमूह पदार्थ में विशेष रूप से व्याप्त होता है॥

तदनन्तर नर ऋषि अर्थात् विशेष आशुगामी मरुद् रश्मियों से इन्द्रदेवताक ऋ.६.३५ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः॥१॥

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व वज्ररूप तीक्ष्ण रश्मियों के क्षीण होने पर उन्हें आश्रयरूप प्राण रश्मियों से युक्त करता है। वह विभिन्न नाना प्रकार की प्रकाशन और तेजन क्रियाओं में असंख्य प्रकार से पोषक प्राणापान रश्मियों को प्रदान करता है। वह विभिन्न छन्द व मरुदादि रश्मियों एवं नाना प्रकार के परमाणुओं को तेजस्वी रूप से प्रकट करता है। वह रमणीय बलों और क्रियाशील छन्दादि रश्मियों को प्राण रश्मियों से युक्त करता है। हमारे मत में 'कदा' शब्द के प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राण रूपी 'क' को प्रदान करता है।

(२) कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे॥२॥

इसका छन्द पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से दसों प्राण रश्मियों एवं आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा अन्य प्राण रश्मियों और आशुगामी मरुद् रश्मियों को प्रकाशित करके विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को नियंत्रित करता है। वह उन पार्थिव परमाणुओं में तेजयुक्त प्राण, छन्द एवं मरुद् रश्मियों के तेज को धारण कराके नाना प्रकार के संघातों को सम्पन्न करता है।

(३) कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः॥३॥

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अतिशय बलवान् इन्द्र तत्त्व सम्पूर्ण आकाश को प्राणापान एवं विद्युत् आदि से परिपूर्ण और प्रकाशित करता है। वह विभिन्न पार्थिव परमाणुओं के पारस्परिक संयोग में होने वाली विभिन्न धारण आदि क्रियाओं को प्राणादि रश्मियों से युक्त करता है।

(४) स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः॥४॥

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व आशुगामी तेजस्वी पार्थिव परमाणुओं को और अधिक प्रकाशित करने के लिए नाना प्रकार की बलवती छन्द व मरुदादि रश्मियों की उन पर विशेष वृष्टि करके धारण करता है। वह विभिन्न वाग् रश्मियों को अवशोषित करके नाना प्रकार के बलों को धारण करने के लिए उत्तम दीप्तियों से परिपूर्ण

विभिन्न पार्थिव परमाणुओं को विशेष कमनीय बलों से युक्त करता है।

(५) तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से शक्तिशाली सूत्रात्मा वायु रश्मियां अपने वारक बलों के द्वारा इन्द्र तत्त्व को तीक्ष्ण करती हुई {दुरः = वृष्टिर्वै दुरः (ऐ.२.४), (वृष्टि = दुष्टानां शक्तिर्बन्धिका शक्तिः - म.द.ऋ.भा.१.१५२.७)} नाना प्रकार की शक्तियों को पुष्ट करती हैं। शीघ्र व्याप्त होने वाली विभिन्न छन्द रश्मियां प्राणापानादि रश्मियों के द्वारा विशेष समर्थ होती हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'क्षि निवासगत्योः' धातु के विद्यमान होने से यह सूक्त 'क्षेतिवत्' कहा गया है। यह 'क्षेतिवत्' ही 'अन्तवत्' प्रभाव वाला होता है। इसका कारण बताते हुए महर्षि लिखते हैं कि गमन करती हुई विभिन्न रश्मियों में जब क्षीणता आने लगती है, तब वे अन्त में अपने आश्रयभूत इन्द्र तत्त्व के द्वारा ही पुनः बलवती होती हैं। इस कारण वह आश्रय 'अन्तवत्' ही होता है। इसलिए यह सूक्त 'क्षेतिवत्' होने के साथ-२ 'अन्तवत्' भी सिद्ध होता है। ये दोनों ही लक्षण नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक हैं।।

तदनन्तर पूर्वोक्त वामदेव ऋषि प्राण से इन्द्रदेवताक ऋ.४.१६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः।।१।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व गर्जता हुआ श्रेष्ठ बलों को उत्पन्न करके नाना पदार्थों को प्रेरित व सम्पीडित करता है। उसकी सरलगामिनी हरणशील रश्मियां नित्य प्राण रश्मियों में व्याप्त होती हुई परमाणु आदि पदार्थों को निकटता से व्याप्त और गतिशील करती हैं।

(२) अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म।।२।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व विभिन्न सर्ग प्रक्रियाओं में परमाणु आदि पदार्थों को विशेष सक्रिय करने के लिए कमनीय सूत्रात्मा वायु रश्मियों एवं अनेक प्रकार की छन्दादि रश्मियों के द्वारा तेजस्वी बनाता है। वह असुरादि रश्मियों में गमन करने वाले पदार्थों को सक्रिय रखने और असुरादि रश्मियों को अवरुद्ध करने के लिए विशेष उद्यम करता है।

(३) कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः।।३।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु आदि ७ प्राण रश्मियों एवं गायत्री आदि ७ छन्द रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार की तेजस्विता और क्रियाओं को धारण करता है। वह इस प्रकार सेचक और उत्पादक बलों से युक्त {विदथम् = विदथेषु यज्ञेषु (नि.८.१२), यज्ञनाम (निघं.३.१७)} नाना प्रकार की संगम आदि क्रियाओं को सिद्ध और रक्षित करता हुआ प्रकाशयुक्त रश्मियों को उत्पन्न करता है।

(४) स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ।।४।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अति समृद्ध, अच्छी प्रकार दर्शनीय, वैद्युत ज्योति से सम्पन्न होकर प्रकाशयुक्त किरणों को

प्रकट करके अन्धकार को दूर करता है। वह वाहक गुणों से अत्यन्त सम्पन्न सब ओर से संगमनीय रश्मियों को भी धारण करता है।

(५) ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव।।५।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह महान् इन्द्र तत्त्व विशेष प्रकाशमान होता हुआ प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के लोकों को व्याप्त करके धारण करता है। वह सरलगामी होकर असीमित क्षेत्र में व्याप्त होता हुआ अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है।

(६) विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः।।६।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विभिन्न मेघरूप पदार्थ समूहों को विदीर्ण करके नाना रश्मियों से युक्त कमनीय पदार्थों को विशेष रूप से आकृष्ट करता है। वह उन्हें अपनी नित्य कमनीय एवं प्रकाशित रश्मियों के द्वारा अति सामर्थ्यवान् होकर आशुगामी मरुद् रश्मियों से युक्त सभी प्रकार की अनिष्ट छन्दादि रश्मियों से अनुकूलतापूर्वक पृथक् करता है।

(७) अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो।।७।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से दृढ़, तीक्ष्ण और प्रेरक बल से युक्त वज्र रश्मियों का स्वामी इन्द्र तत्त्व देव पदार्थ को आच्छादित करने वाले वृत्ररूप आसुर मेघ पदार्थ को छिन्न-भिन्न करता हुआ पार्थिव और जलीय परमाणुओं को रक्षित और प्रेरित करता है।

(८) अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः।।८।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {सरमा = या सरति सा सरला नीतिः (म.द.भा.), सरमा सरणात् (नि.११.२५), या सरान् गतिमतः पदार्थान् मिनोति सा (म.द.ऋ.भा.३.३१.६)} अतिशय प्रकाशित इन्द्र तत्त्व की तीव्र प्रक्षेपक गति प्रकट होकर अनिष्ट पदार्थों को नष्ट करती है, साथ ही विभिन्न लोकों में मेघरूप पदार्थों एवं उनके खण्डों को छिन्न-भिन्न करती हुई अग्नि तत्त्व को सब ओर से प्रकाशित करती है।

(९) अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम्।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा प्रकाशित और व्यान रश्मियों को मध्य भाग में धारण करने वाला इन्द्र तत्त्व अपनी रक्षण, कान्ति एवं गति आदि क्रियाओं से नाना प्रकाशित संगत कर्मों में छन्दादि रश्मियों के द्वारा नियंत्रण सामर्थ्य प्राप्त करता है। वह क्रान्तदर्शी प्रज्ञापिका विद्युत् से सम्पन्न {ब्रह्म = असौ वा ऽआदित्यो ब्रह्म (श.७.४.१.१४)} इन्द्र तत्त्व आदित्य रश्मियों से विहीन विध्वंसक असुरादि रश्मियों को नष्ट करता है।

(१०) आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी।।१०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से

समान रूपों वाली आशुगामी मरुद् रश्मियां विभिन्न प्राण रश्मियों को अपने साथ संगत करती हुई मनस्तत्त्व से सम्पन्न होकर सूक्ष्म असुर रश्मियों को नष्ट वा नियंत्रित करके सब ओर से व्याप्त होती वा गमन करती हैं। वे विभिन्न पदार्थों को प्रकाशित व संगत करने के लिए अपनी वज्र रश्मियों को प्रक्षिप्त करते हुए अपने आश्रय स्थल इन्द्र तत्त्व में निवास करती हैं।

(११) यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अपनी वज्र रश्मियों के साथ गमन करता हुआ विभिन्न अनिष्ट रश्मि आदि पदार्थों को नष्ट करके संयोज्य परमाणुओं की रक्षा करता हुआ दो प्रकार की हरणशील रश्मियों का स्वामी होता है। वह सरल गतियों, आकर्षण और संयोजन बलों को प्रखर करता हुआ अपनी तीक्ष्णता से विशाल मेघरूप पदार्थों को विदीर्ण करके देव पदार्थ को सुभूषित करता है।

(१२) कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके।।१२।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व सूर्यादि लोकों में व्याप्त होकर अवांछित, तीक्ष्ण क्रियाओं एवं विभिन्न संगमनीय पदार्थों को शोषित वा बाधित करने वाले पदार्थों को पूर्ण रूप से दूर करता है। वह अपनी तीक्ष्ण रश्मियों के द्वारा सूर्य लोकों में ऐसे विध्वंसक पदार्थों का निकटता से छेदन करता रहता है।

(१३) त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः।।१३।।

इसका छन्द स्वराट् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {अत्कम् = अतति व्याप्नोति तं वायुम् (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार के सरल संसर्ग कर्मों में व्याप्त होकर बलों से समृद्ध क्रियाओं को खोजकर उन्हें नष्ट करने वाली असुरादि रश्मियों को नष्ट करता है। वह सतत प्रवाहित एवं व्यापक प्रकाशित वायु तत्त्व के समान अपने सम्मुख ५० विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों एवं उनसे उत्पन्न असंख्य प्रकार की अन्य आकर्षक रश्मियों को विस्तार प्रदान करते हुए बाधक रश्मियों को नष्ट करता है।

(१४) सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत्।।१४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व विस्तृत तेज को धारण करता हुआ आदित्यरूपी अमृत के समान रूप वाला, आकर्षणीय वा प्रक्षेपणीय पदार्थों को खोजता हुआ दो प्रकार के हरणशील बलों से युक्त तीक्ष्ण रूप से कंपाने वाली वज्र रश्मियों को धारण करके बल और ऊष्मायुक्त रश्मिसमूहों के द्वारा प्रकाशित होता है।

(१५) इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः।।१५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार के परमाणुओं को आकर्षित करता हुआ विभिन्न संसर्ग संघात कर्मों में प्रकाशित व सक्रिय करके अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों के द्वारा देदीप्यमान होता है। वह नाना प्रकार की शोभनीय पोषक रश्मियों का निवास रूप होकर निरन्तर बल आदि से सम्पन्न रहता है।

(१६) तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः।।१६।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से आकर्षण वलों एवं प्रकाशादि से सम्पन्न वह इन्द्र तत्त्व संयोज्य परमाणुओं वा छन्द रश्मियों को शीघ्र धारण करता है। वह अनेक आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा अनेक प्रकार के हवनीय पदार्थों को संयोग-वियोगादि कर्मों में नियुक्त करता है।

(१७) तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिंश्चिच्छूर मुहुके जनानाम्।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः।।१७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {समृति = युद्धम् (म.द.भा.)} वह इन्द्र तत्त्व भयंकर तीक्ष्ण और नियंत्रक वलसम्पन्न होकर नाना प्रकार के संग्रामों में समर्थ होता है। वह विभिन्न पदार्थों के बीच होने वाली अनेकों क्रियाओं में तीक्ष्ण विद्युत् के रूप में बार-२ प्रकट होकर उन क्रियाओं के विस्तार को प्रेरित करते हुए उनकी रक्षा करता है।

(१८) भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः।।१८।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से सबका धारक इन्द्र तत्त्व विभिन्न संग्राम और संघातों में प्राण नामक प्राथमिक प्राण एवं सूत्रात्मा वायु से सम्पन्न पदार्थों की रक्षा करता है। वह उन पदार्थों को संगत और प्रकाशित करता हुआ नाना प्रकार की प्रशस्त क्रियाओं में व्याप्त करता है।

(१९) एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः।।१९।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व अनेक प्रकार के परमाणुओं एवं आशुगामी मरुद् रश्मियों के द्वारा आकर्षित किया जाता हुआ विभिन्न प्रकाशित किरणों के समान नाना प्रकार के संघात और संग्रामों में {क्षपः = उदकनाम (निघं. १.१२), रात्रिनाम (निघं.१.७)। शरद् = अन्नं वै शरद् (मै.१.६.६), स्वधा वै शरद् (श.१३.८.१.४)} पूर्वोत्पन्न अप्रकाशित उदक परमाणुओं एवं अन्य संयोज्य परमाणुओं को सब ओर से सक्रिय करता है।

(२०) एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम्।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः।।२०।।

इसका छन्द भुरिक् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र अपने साथ संगत पदार्थों को विशेष रूप से धारण करता हुआ विभिन्न व्यापक लोकों की तेजस्विता की सतत रक्षा करता है। वह उनके उत्पादक नियंत्रक वलों तथा प्रकाशमान तेजस्विनी रश्मियों को व्यापक रूप से धारण करता है।

(२१) नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।।२१।।

इसका छन्द निचृत् पंक्ति है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से कमनीय रश्मियों से युक्त इन्द्र गर्जता हुआ द्युलोकों में विभिन्न संयोज्य परमाणुओं की धाराओं को प्रकाशित और समृद्ध करता है। वह उस विशाल पदार्थ को अनेक प्रकार की क्रियाओं एवं वाहक वलों से युक्त करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'सत्यः' पद विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। इस पद के प्रभाव से विभिन्न आदित्य लोक अपनी तेजस्विता के कारण और भी अधिक समृद्ध होते हैं तथा उनमें होने वाली विभिन्न क्रियाएं निरन्तरता को प्राप्त करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल में ५ त्रिष्टुप् रश्मियों का एक समूह, ४ त्रिष्टुप् एवं १ पंक्ति का दूसरा समूह, ११ त्रिष्टुप् एवं १० पंक्ति छन्द रश्मियों का तीसरा समूह उत्पन्न होता है। इनके प्रभाव से विभिन्न लोकों में विद्युत् चुम्बकीय बलों और तरंगों के साथ-२ विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता व तीक्ष्णता में वृद्धि होती है। अनेक प्रकार की ऋषि प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों के साथ मिलकर विभिन्न प्रकार के बलों और विद्युत् चुम्बकीय तरंगों को उत्पन्न करती हैं। ब्रह्माण्ड में जहाँ कहीं भी डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के द्वारा आच्छादित और अवरुद्ध दृश्य पदार्थ विद्यमान् होता है, उसे तीव्र विद्युत् तरंगें मुक्त करके नाना प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करने में सहयोग करती हैं। अन्तरिक्ष में गमन करती हुई विद्युत् चुम्बकीय तरंगें निरन्तर प्राण और अपान रश्मियों के द्वारा बल प्राप्त करके अपनी ऊर्जा को संरक्षित करती हैं। कुछ क्वाण्टाज् विभिन्न छन्द वा मरुद् रश्मियों से युक्त होकर नाना प्रकार के कणों के रूप में प्रकट होते हैं तथा **विभिन्न प्राण रश्मियां छन्द एवं मरुद् रश्मियों के साथ सम्पीडित होकर क्वान्टाज् के रूप में प्रकट होती हैं। विभिन्न प्राण और मरुद् रश्मियां विद्युत् के रूप में प्रकट होकर विभिन्न कणों को नियंत्रित करती हैं और वे कण इन्हीं रश्मियों की प्रेरणा से नाना प्रकार के बड़े कणों का निर्माण करते हैं। विभिन्न प्रकार के कण विभिन्न छन्द व मरुद् रश्मियों के प्रहार से क्वान्टाज् के रूप में परिवर्तित होते हैं।** ब्रह्माण्ड में दृश्य पदार्थ और दृश्य ऊर्जा को डार्क मैटर और डार्क एनर्जी के प्रहार से इन्द्र तत्त्व अर्थात् विशेष प्रकार की विद्युत् ही बचाती है। विद्युत् के द्वारा ही ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार की छन्द व मरुद् रश्मियां नाना प्रकार के संयोग और विभाग को प्राप्त करके नाना पदार्थों को सिद्ध करती हैं। इस ब्रह्माण्ड में **विद्युत् के बिना विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती है।** विद्युदावेशित कणों में व्याप्त प्राण एवं अपान रश्मियों को व्यान रश्मियां परस्पर संगत और सुरक्षित रखती हैं। जहाँ कहीं भी डार्क एनर्जी और डार्क मैटर दृश्य ऊर्जा वा दृश्य पदार्थ पर प्रहार करते हैं, वहाँ तीव्र ऊर्जा वाली विद्युदावेशित तरंगें ५० प्रकार की सूक्ष्म रश्मियों को उत्सर्जित करती हैं, फिर वे रश्मियां अन्य असंख्य प्रकार की रश्मियों में प्रकट होकर डार्क मैटर और डार्क एनर्जी से दृश्य पदार्थ की रक्षा करती हैं। इस प्रकार इन दोनों ही दृश्य और अदृश्य पदार्थों में निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। विद्युत् के द्वारा ही सभी लोकों का निर्माण, संचालन, धारण, प्रकाशन और गमन आदि सम्भव होता है और यह विद्युत् विभिन्न प्रकार की प्राण रश्मियों से उत्पन्न होती है।।

२. तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरिति सूक्तमन्तो वै परममन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
तदु त्रैष्टुभं, तेन प्रतिष्ठितपदेन सवनं दाधारायतनादेवैतेन न प्रच्यवते।।
'अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरिति' सूक्तमहं धनानि संजयामि शश्वत इत्यन्तो वै जितमन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
तदु जागतं,-जगत्यो वा एतस्य त्र्यहस्य मध्यन्दिनं वहन्ति; तद्वैतच्छन्दो वहति, यस्मिन्निविद्धीयते, तस्माज्जगतीषु निविदं दधाति।।
मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते;-त्रैष्टुभानि च जागतानि च; मिथुनं वै पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै पञ्च पञ्च सूक्तानि शस्यन्ते; पञ्चपदा पङ्क्तिः, पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै, तानि द्वेधा पञ्चान्यानि पञ्चान्यानि दश संपद्यन्ते; सा दशिनी विराळन्नं विराळन्नं पशवः, पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर आङ्गिरसः कुत्स ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु से उत्पन्न एक तीक्ष्ण प्राण विशेष से इन्द्रदेवताक ऋ.१.१०३ सूक्त रूप रश्मिसमूह की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्। क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः।।

इसका छन्द निचृत् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पराचैः = दूरनाम (निघं.३.२६)} विभिन्न आदित्य लोक उस इन्द्र तत्त्व के प्रवल तेज और वल को प्रारम्भ से ही दूर-२ तक धारण करते हैं। विभिन्न पृथिवी एवं अन्तरिक्ष आदि लोक एवं इनमें विद्यमान जलीय परमाणु अपने नाना प्रकार के कार्यकलापों में इन्द्र तत्त्व से ही युक्त होते हैं।

(२) स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः।।२।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इन्द्र तत्त्व से सम्पन्न द्युलोक पार्थिव लोकों को धारण करता हुआ अपने तेज को सर्वत्र फैलाता है। वह अपनी तीक्ष्ण किरणों के द्वारा नाना प्रकार की तन्मात्राओं और जलों को उत्पन्न करता है। वह इन्द्र तत्त्व मेघरूप पदार्थों में व्याप्त होकर उसे रक्तवर्ण वनाकर नाना प्रकार से विदीर्ण करता है। रोहिणी रूप पदार्थ के विषय में खण्ड ३.३३ द्रष्टव्य है।

(३) स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र।।३।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह वज्र रश्मियों से युक्त इन्द्र तत्व विभिन्न उत्पन्न पदार्थों को धारण करता एवं नित्य पदार्थों से भी युक्त होकर असुरादि पदार्थ समूहों को विदीर्ण करता हुआ नाना कर्म करते हुए विचरता है। वह विभिन्न नियंत्रक, संपीडक और प्रतिरोधक वलों एवं विद्युदादि तेज को वढ़ाता हुआ व्याप्त होता है।

(४) तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे।।४।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह वज्री इन्द्र तत्त्व प्राण रश्मियों से उत्पन्न होता तथा विभिन्न प्रकार की वलवती रश्मियों को उत्पन्न करके तीक्ष्ण अनिष्ट पदार्थों को नष्ट करता एवं शुद्ध तेजस्वी पदार्थों को परस्पर संगत और धारण करता है। वह विभिन्न सूक्ष्म वाग् रश्मियों को धारण करके अनेकों कर्मों को सम्पादित करता है।

(५) तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि।।५।।

इसका छन्द निचृत्त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह विभिन्न प्रकार के पार्थिव, आग्नेय और जलीय परमाणुओं को व्याप्त करके उन्हें अत्यधिक तेजस्वी और पुष्ट करता हुआ धारण करता है।

(६) भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह तीक्ष्ण वलयुक्त परमाणुओं को प्रेरित करता, वाधक तीक्ष्ण परमाणुओं को पृथक् करता, संयोजक वलविहीन परमाणुओं को व्याप्त करके उन्हें वलवान् वनाता एवं सोम रश्मियों को अपने नित्य वलों से प्रेरित व सम्पीडित करता है।

(७) तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणावोधयोऽहिम्।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा।।७।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह इन्द्र

तत्त्व शान्त, शिथिल मेघरूप पदार्थों को अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से प्रेरित करके उनमें वल और तेज प्रकट करके तीव्र हलचल उत्पन्न करता है। इन्द्र तत्त्व की रक्षिका 'भूः', 'भुवः', 'स्वः' आदि सूक्ष्म छन्द रश्मियां एवं सभी प्राण रश्मियां उसे निरन्तर सक्रिय करती हैं।

(८) शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह वलवान् इन्द्र अनिष्ट रूप से संगत पदार्थ समूहों को व्याप्त करके छिन्न-भिन्न करता है। प्राण, अपान, व्यान, सूत्रात्मा वायु एवं विभिन्न वाग् रश्मियां उस इन्द्र तत्त्व को वल प्रदान करते हुए नाना लोकों को समृद्ध करते हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'परमम्' पद विद्यमान है, जिसके प्रभाव से इन्द्र तत्त्व अति व्यापक प्रभाव वाले वल से युक्त होकर विभिन्न लोकों की अन्तिम सीमा तक व्याप्त होता है। इसी कारण ग्रन्थकार ने कहा है- 'अन्तो वै परमम्'। इस कारण इस सूक्त को 'अन्तवत्' माना गया है। इसका 'अन्तवत्' होना ही नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदनन्तर वैकुण्ठः इन्द्र ऋषि अर्थात् {वैकुण्ठः = वायाविन्द्रो वैकुण्ठः (शां.आ.६.२; कौ.ब्रा.४.२)} वायु तत्त्व में आश्रित विशेष रेतः स्वरूप वाग् रश्मियों से {(इन्द्रः = रेत इन्द्रः - श.१२.६.१.१७), वाग् इन्द्रः (श.८.७.२.६)} वैकुण्ठ इन्द्रदेवताक ऋ.१०.४८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्।।१।।

इसका छन्द पादनिचृज्जगती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से वायु तत्त्व में आश्रित विशेष रूप से उत्पादक तेज वलों से युक्त विशेष सृजनधर्मिणी वाग् रश्मियां तीक्ष्ण रूप से विस्तृत होती हुई संयोग-वियोगादि क्रियाओं से विशेष रूप से युक्त होती हैं। ये रश्मियां एक विशेष प्रकार के इन्द्र तत्त्व का रूप ही होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वह ऐसा इन्द्र तत्त्व सनातन अहंकार तत्त्व को विशेष रूप से वसाता और पालता है। {शश्वत् = बहुनाम (निघं.३.१)} वह ऐसा विशेष इन्द्र उस सूक्ष्म अहंकार तत्त्व के द्वारा ही अनेकों परमाणु आदि पदार्थों वा रश्मियों को सम्यग् रूप से नियंत्रित करता और नाना प्रकार की प्राण रश्मियों को आकर्षित करता है। साथ ही वह विभिन्न पदार्थों में वलों का नाना प्रकार से विभाजन करता है।

(२) अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन्दधीचे मातरिश्वने।।२।।

इसका छन्द जगती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वक्षः = वक्षो भासः (नि.४.१६)। दधीचः = ये दधीन् वाय्वादीनञ्चन्ति तान् (म.द.ऋ.भा.१.८४.१३)} वह पूर्वोक्त अहंकारयुक्त विशेष इन्द्र तत्त्व अथर्वा अर्थात् निश्छल आकाश तत्त्व में व्याप्त होकर उसे निरुद्ध करता है, साथ ही उसके सूक्ष्म तेज को आवृत्त करता है। {अहिः = उदकनाम (निघं.१.१२), अही गोनाम (नि.२.११), द्यावापृथिव्योर्नाम (निघं.३.३०)} वह पार्थिव, जलीय और आग्नेय परमाणुओं को उत्पन्न करने के लिए सूक्ष्म वाग् रश्मियों को प्रकट करता है। वह आसुर मेघों से नाना प्रकार के पदार्थों को सव ओर से ग्रहण करके अन्तरिक्ष में विद्यमान नाना प्रकार की वायु रश्मियों में व्याप्त मेघरूप पदार्थों को प्रदान करता है।

(३) मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम्।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च।।३।।

इसका छन्द पादनिचृज्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से इस ग्रन्थ में वहुत्र वर्णित तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व इस सूक्ष्म विशेष इन्द्र तत्त्व के द्वारा ही तेजस्विनी वज्र रश्मियों को तीक्ष्ण व प्रकट करता है। विभिन्न प्राण रश्मियां भी इसी के कारण नाना प्रकार की क्रियाओं को करने में समर्थ होती हैं। इसकी समूहवद्ध रश्मियां सवको प्रेरित व गतिशील करने वाली अत्यन्त तीक्ष्ण रूप धारण करके नानाविध कर्मों को प्रकट करती हैं।

(४) अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम्।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः।।४।।

इसका छन्द निचृज्जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह उपर्युक्त सूक्ष्म विशेष इन्द्र तत्त्व नाना सोम रश्मियों को अनेकों व्यापक कर्मों में प्रेरित करता है। वह विभिन्न छन्द आशुगामी रश्मियों को पूर्ण वल और तेजयुक्त करता हुआ दृश्य और तीक्ष्ण रूप प्रदान करता है।

(५) अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन।।५।।

इसका छन्द विराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह उपर्युक्त विशेष इन्द्र तत्व सर्वथा अपराजित रहता हुआ सभी प्रकार के पदार्थों को सदैव व्याप्त करता है। किसी भी सूक्ष्म वा स्थूल असुरादि रश्मियों द्वारा कभी भी नष्ट न होने योग्य वह इन्द्र तत्त्व सूक्ष्म सोम रश्मियों को प्रेरित करता हुआ गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा संगत होते हुए विभिन्न सूक्ष्म पदार्थों को अपने साथ संगत करता है।।

(६) अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळहा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः।।६।।

इसका छन्द आर्ची स्वराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से निरन्तर प्राणवान् होता हुआ प्रसिद्ध इन्द्र तत्त्व प्राण एवं अपान किंवा प्राण एवं मरुद् रश्मियों के मिथुनों को विभिन्न संग्राम और संघातों में प्रक्षिप्त करता है। वह विरोधी तीक्ष्ण असुरादि पदार्थों को इनके कारण ही नष्ट करता है। अन्य उपर्युक्त सूक्ष्म विशेष इन्द्र तत्त्व प्रसिद्ध इन्द्र तत्त्व की वज्र रश्मियों तथा विना वज्र रश्मियों के भी अपने दृढ़ तेज और गति के द्वारा सूक्ष्म स्तर पर असुरादि वाधक रश्मियों को नष्ट करता है।

(७) अभी३दमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान्प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽ निन्द्राः।।७।।

इसका छन्द विराट् त्रिष्टुप् है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {खलः = उत्तरवेदिः (तां.१६.१३.७), (उत्तरवेदिः = तेजो वा उत्तरवेदिः - तै.आ.५.१०.२), द्यौरुत्तरवेदिः (श.७.३.१.२७)} वह उपर्युक्त सूक्ष्म इन्द्र विशेष एक, दो अथवा तीन दिशाओं में एक साथ सूक्ष्म प्राण रश्मियों को प्रक्षिप्त करता हुआ पूर्ण रूप से प्रतिरोधक वलों से युक्त सामर्थ्यवान् होता है। वह विभिन्न तेजयुक्त द्युलोकों में अपनी सूक्ष्म संचक रश्मियों को व्यापक स्तर पर नाना पदार्थों के प्रति संगत करता है। उस इन्द्र तत्त्व से विहीन {शत्रुः = शमयिता शातयिता वा (नि.२.१६)} विभिन्न शामक वा विध्वंसक पदार्थ उस इन्द्र तत्त्व के कार्यों को वाधित नहीं कर पाते हैं।

(८) अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम्।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि।।८।।

इसका छन्द जगती है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह सूक्ष्म इन्द्र विशेष विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त अव्यक्त छन्द रश्मियों को धारण करने के लिए नाना संयोजक बलों से युक्त अतिथि रूप सूत्रात्मा वायु में व्याप्त होता है। आसुर आच्छादक मेघों को छिन्न-भिन्न करने, अनेक पालक प्राण रश्मियों को प्राप्त करने तथा अनिष्ट क्रियाओं को त्यागने में वह सूक्ष्म इन्द्र विशेष प्रखरता से प्रकट होता है।

(९) प्र मे नमीं साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषें सख्या कृणुत द्विता।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम्।।९।।

इसका छन्द आर्ची स्वराड् जगती है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से उस सूक्ष्म इन्द्र विशेष की ओर आते हुए व्यापक सूक्ष्म प्राणादि पदार्थ प्रभूत मात्रा में वाग् रश्मियों को प्राप्त करते हैं। वे प्राण तत्त्व उन वाग् रश्मियों को दो प्रकार से धारण करके, नाना प्रकार के संग्राम व संघातों में विविध दीप्तियों को प्रकट करके अनेक प्रकार की छन्द रश्मियों को नानाविध तीक्ष्ण व क्रियाशील करते हैं।

(१०) प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन्द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः।।१०।।

इसका छन्द त्रिष्टुप् है। दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से {नेमः = अन्ननाम (निघं.२.७)} संयोज्य परमाणुओं में कुछ सोम रश्मियां अन्दर गुप्त रहती हुई कमनीय बलों को उत्पन्न करती हैं, जबकि कुछ रश्मियां बाहर प्रकटावस्था में विद्यमान रहती हैं। वह सूक्ष्म विशेष इन्द्र तत्त्व तीक्ष्ण परन्तु अतिसूक्ष्म वर्षक बलों को व्याप्त करता हुआ उन संयोज्य परमाणुओं के अन्दर बहुलता से प्रकट होकर बाधक रश्मियों के बन्धक वा प्रक्षेपक बलों के प्रति प्रतिरोधी बलों के साथ विद्यमान रहता है।

(११) आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळहम्।।११।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह सूक्ष्म विशेष इन्द्र तत्त्व विभिन्न गायत्री, त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द रश्मियों और प्राथमिक प्राण रश्मियों के आश्रयभूत परमाणु आदि पदार्थों को सुरक्षित रखता हुआ उन्हें अपराजित, अहिंसित, अतिरस्कृत करता हुआ नाना प्रकार के सूक्ष्म परन्तु तीक्ष्ण बलों से युक्त करता है।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद "अहं धनानि सं जयामि शश्वतः" के 'जयामि' पद में 'जि जये' धातु विद्यमान है। इन्द्र तत्त्व एवं असुर तत्त्व के संग्राम में इन्द्र तत्त्व के विजयी होने के साथ ही संग्राम का अन्त हो जाता है। इसी कारण ग्रन्थकार ने लिखा है- "अन्तो वै जितम्"। इस कारण यह सूक्त 'अन्तवत्' सिद्ध होता है। जिससे इस सूक्त की उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.१९.२ में विद्यमान इसी कण्डिका के व्याख्यान के समान समझें।।

इस कण्डिका का भाष्य ५.१९.२ में किंचित् परिवर्तन के साथ चार कण्डिकाओं के व्याख्यान की भांति विज्ञ पाठक समझ लेवें। वह परिवर्तन यह है कि उनमें से द्वितीय कण्डिका में "महद्वन्ति सूक्तानि शस्यन्ते; महद्वा अन्तरिक्षमन्तरिक्षस्याप्त्यै" भाग अतिरिक्त है। इस कारण इस भाग के व्याख्यान के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण व्याख्यान के समान ही वहाँ भी समझा जा सकता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- उपर्युक्त कण्डिकाओं में से द्वितीय, चतुर्थ और पंचमी कण्डिकाओं का वैज्ञानिक भाष्यसार व्याख्यान भाग में दर्शित पूर्व प्रसंगों में प्रयुक्त इन्हीं कण्डिकाओं के सार के समान समझ सकते हैं। अन्य दो कण्डिकाओं का भाष्यसार निम्नानुसार है- **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल में ८ त्रिष्टुप्

रश्मियों का एक समूह और ८ जगती एवं ३ त्रिष्टुप् रश्मियों का द्वितीय समूह उत्पन्न होता है। इससे पूर्ववत् विद्युत् बल एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की तीव्रता और तीक्ष्णता में वृद्धि होती है। तारों के अन्दर अति विस्तृत दूरगामी विद्युत् चुम्बकीय धाराएं सक्रिय होती हैं। तारों से आने वाली विद्युत् चुम्बकीय तरंगें विभिन्न ग्रह आदि लोकों पर नाना प्रकार के बादलों और उनसे जल आदि नाना पदार्थों की वृष्टि करती हैं। आकाशीय मेघरूप पदार्थों में जब विद्युदावेशित तरंगों का तीक्ष्ण प्रहार होता है, तो वे पदार्थ लालिमायुक्त चमकते हुए बिखरने लगते हैं। विद्युत् जहाँ हानिकारक पदार्थों का भेदन करती है, वहीं सृजनधर्मी पदार्थों को परस्पर संगत भी करती है। विद्युत् आवेश के कारण ही विभिन्न प्रकार के बलों की उत्पत्ति एवं विभिन्न अणुओं व परमाणुओं का भी निर्माण होता है। सम्पूर्ण लोकों के निर्माण में भी इसी की विशेष भूमिका होती है। **विद्युत् को विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियां सदैव प्रेरित करती रहती हैं। यह ऐसी विद्युत् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।** यद्यपि वर्तमान विज्ञान विद्युत् के स्वरूप को अभी तक नहीं जान पाया है, जैसा कि अमेरिकी वैज्ञानिक Richard P. Feynman ने अपनी पुस्तक Lectures on Physics के Volume I के पृष्ठ संख्या ५६३ पर लिखा है-

"We could say that we do not yet know the laws of electricity."

इसका कारण यह है कि **विद्युत् जिन प्राण एवं छन्द रश्मियों से उत्पन्न होती है, उनको किसी भी भौतिक तकनीक द्वारा अनुभूत नहीं किया जा सकता।** वैदिक विज्ञान में एक विशेष प्रकार की तीक्ष्ण विद्युत् को इन्द्र कहते हैं परन्तु इस इन्द्र से भी सूक्ष्म विद्युत् **वैकुण्ठ इन्द्र** नाम से जानी जाती है, जिसका सम्बन्ध अति सूक्ष्म अहंकार तत्त्व से भी होता है और उसी के द्वारा ही यह प्राणादि रश्मियों में प्रकट होती है। वर्तमान विज्ञान गुरुत्वाकर्षण के बारे में space curvature की धारणा प्रस्तुत करता है। ब्रिटिश भौतिक शास्त्री Arthur Beiser ने Concepts of Modern Physics के पृष्ठ ३३ पर लिखा है-

"Gravity is a wrapping of space-time."

इससे यह सिद्ध होता है कि वर्तमान विज्ञान द्रव्यमान के द्वारा उत्पन्न गुरुत्व बल से space का curve होना मानते हैं, परन्तु वे गुरुत्व बल और space दोनों के ही स्वरूप को परिभाषित नहीं कर पाये हैं। हमारे मत में यह **वैकुण्ठ इन्द्र रूपी सूक्ष्म विद्युत् ही गुरुत्वाकर्षण बल रश्मियों में विद्यमान होकर space को प्रभावित करती है। वर्तमान ज्ञात विद्युत् के हर प्रभाव के पीछे इसी वैकुण्ठ इन्द्र रूपी विद्युत् का बल कार्य करता है।** यही कारण है कि विद्युत् आवेश के द्वारा भी space का distort होना वर्तमान विज्ञान स्वीकार करता है। जैसा कि Richard P. Feynman ने अपनी इसी उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ १७ पर लिखा हैं-

"The existence of the positive charge, in some sense, distorts, or creates a "condition" in space, so that when we put the negative charge in, it feels a force: This potentiality for producing a force is called an electric field."

इस प्रकरण से इस ग्रन्थ में **हमारा अनेकत्र व्यक्त मत कि गुरुत्व बल विद्युत् का ही एक विशिष्ट रूप है अथवा दोनों का अति निकट सम्बन्ध है, की ही पुष्टि होती है।** यह सूक्ष्म विद्युत् प्राण रश्मियों के नाना व्यवहारों को भी प्रेरित और प्रभावित करती है। यही विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की आवृत्ति के अनुसार उनके रूप और रंग में परिवर्तन का कारण होती है। विद्युत् आवेश के मूल में भी इसी की भूमिका होती है। यह सूक्ष्म विद्युत् एक, दो अथवा तीन दिशाओं में आवश्यकतानुसार गमन करती है। यह विभिन्न अव्यक्त छन्द रश्मियों और सूत्रात्मा वायु रश्मियों को धारण करती है। **वर्तमान विज्ञान द्वारा जिस unified force की कल्पना की जा रही है। वह वस्तुतः इसी वैकुण्ठ इन्द्र अर्थात् सूक्ष्म विद्युत् का ही बल है। यद्यपि वैदिक भाषा में यह बल भी मूल बल नहीं है। विद्युत्, आकाश एवं गुरुत्व बल के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान हेतु पूर्वपीठिका अवश्य पढ़ें।**

३. तत्सवितुर्वृणीमहे,ऽद्या नो देव सवितरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ राथन्तरेऽहनि नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
दोषो आगादिति सावित्रमन्तो वै गतमन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
प्र वां महि द्यवी अभीति, द्यावापृथिवीयं; शुची उप प्रशस्तय इति शुचिवन्नवमेऽहनि

नवमस्याह्नो रूपम्।।
इन्द्र इषे ददातु नस्ते नो रत्नानि धत्तनेत्यार्भवं, त्रिरा साप्तानि सुन्वत इति त्रिवन्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।

व्याख्यानम्– इस कण्डिका का व्याख्यान ५.१७.२ में देखें। भेद केवल यह है कि वहाँ इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति सप्तम अहन् अर्थात् समान प्राण के उत्कर्ष काल में होती है, जबकि यहाँ इनकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल में होती है।।

तदनन्तर

दोषो गा॑य बृ॒हद्गा॑य द्यु॒मद्धे॑ह्याथर्वण। स्तु॒हि दे॒वं स॑वि॒तार॑म्।।१।।
तमु॑ ष्टुहि॒ यो अ॒न्तः सिन्धौ॑ सू॒नुः स॒त्यस्य॒ यु॒वान॑म्। अद्रो॑घवाचं सु॒शेव॑म्।।२।।
स घा॑ नो दे॒वः स॑वि॒ता सा॑विषद॒मृता॑नि॒ भूरि॑। उ॒भे सु॑ष्टु॒ती सु॒गात॑वे।।३।। (अथर्व.६.१.१-३)

तृचरूप छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है– ध्यातव्य है कि अथर्ववेद संहिता में "आगाद्" पद के स्थान पर 'गाय' पद विद्यमान है।

यहाँ ग्रन्थकार ने इस ऋचा को 'सावित्र' और 'गतमन्त' कहा है। अथर्ववेद संहिता में विद्यमान 'गाय' पद 'गतमन्त' नहीं है बल्कि यह 'गै शब्दे' धातु से निष्पन्न होता है। इस कारण हमारा मत है कि इस कण्डिका में विद्यमान यह ऋचा ही सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया के इस चरण में उत्पन्न होती है, न कि 'गाय' पद युक्त अथर्ववेद संहिता में उपलब्ध ऋचा, परन्तु सृष्टि प्रक्रिया पर प्रभाव की दृष्टि से दोनों में लगभग समानता है। असमानता केवल यह है कि इस ऋचा अथवा तृच के 'गतवन्त' होने से अर्थात् इसमें 'गम्' धातु विद्यमान होने से यह तृचरूपी रश्मिसमूह प्रत्येक पदार्थ के अन्दर तक व्याप्त हो जाता है। इसी कारण ग्रन्थकार ने कहा है– 'अन्तो वै गतम्'। इसका 'अन्तवत्' होना ही नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है। इस तृच के विषय में ५.१३.४ द्रष्टव्य है।।

तदनन्तर पूर्वोक्त वामदेव ऋषि प्राण से द्यावापृथिव्यौ-देवताक ऋ.४.५६.५-७ तृच की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है–

(१) प्र वां॒ महि॒ द्यवी॑ अ॒भ्युप॑स्तुतिं भरामहे। शुची॒ उप॒ प्रश॑स्तये।।५।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के परमाणु तीक्ष्ण अवस्था में पवित्र और महान् प्रकाश को धारण करते हैं। अप्रकाशित परमाणु भी प्रकाशमान होकर अन्य पदार्थों को प्रकाशित करने में समर्थ होते हैं। यहाँ प्रकाशित का अर्थ अग्नि तथा अप्रकाशित का अर्थ पार्थिव परमाणु समझना चाहिये।

(२) पु॒ना॒ने त॒न्वा॑ मि॒थः स्वेन॒ दक्षे॑ण राजथः। ऊ॒ह्याथे॑ स॒नादृ॒तम्।।६।।

इसका छन्द विराट् गायत्री है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे आग्नेय एवं पार्थिव परमाणु अपने व्यापक बलों के द्वारा शुद्ध रूप में विद्यमान रहकर नित्य प्राण रश्मियों के द्वारा परस्पर प्रकाशित होते हैं। यहाँ प्रकाशित होने का अर्थ आकर्षित और प्रेरित भी समझना चाहिए।

(३) म॒ही मि॒त्रस्य॑ साधथ॒स्तर॑न्ती॒ पिप्र॑ती ऋ॒तम्। परि॑ य॒ज्ञं नि षे॑दथुः।।७।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे आग्नेय और पार्थिव परमाणु सभी लोकों को पूर्ण करते हुए विभिन्न प्रकार की सृजन क्रियाओं को तारते अर्थात्

सम्पादित करते हुए अग्नि वा प्राण के आश्रय में ही विद्यमान रहकर नाना प्रकार के संयोगादि कर्मों को सिद्ध करते हैं।

इस तृच की प्रथम ऋचा के अन्तिम पाद "शुची उप प्रशस्तये" में 'शुची' पद विद्यमान है। इस कारण यह सम्पूर्ण तृच 'शुचिवत्' मानी गयी है। इसका 'शुचिवत्' होना ही नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल का सूचक है। इस पद के प्रभाव से विभिन्न लोकों की तेजस्विता में वृद्धि होती है।।

तदनन्तर सुकक्ष ऋषि अर्थात् उत्तम तेज और वलयुक्त एक सूक्ष्म प्राण विशेष से इन्द्र और ऋभु देवता वाली एवं गायत्री छन्दस्क-

इन्द्रं इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्। वाजी ददातु वाजिनम्।।३४।। (ऋ.८.९३.३४)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। अन्य प्रभाव से वह इन्द्र तत्त्व नाना प्रकार के संयोज्य पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए व्यापक आधार वाली धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों से युक्त मरुद् रश्मियों को प्रकट करके नाना प्रकार के वलों से युक्त छन्द रश्मियों को उत्पन्न वा प्रकट करता है।

तदनन्तर काण्वो मेधातिथि ऋषि अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों से ऋभवो-देवताक ऋ.१.२०.७-८ प्रगाथ रूप रश्मिद्वय की उत्पत्ति निम्न क्रमानुसार होती है-

(१) ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते। एकमेकं सुशस्तिभिः।।७।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सूत्रात्मा वायु रश्मियां तीन प्राण अर्थात् प्राण, अपान एवं व्यान को एक-२ करके तीक्ष्ण करती हुई ७ प्रकार की छन्द रश्मियों को सम्पीडित व प्रेरित करके नाना प्रकार की रमणीय रश्मियों को धारण करती हैं।

(२) अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञियम्।।८।।

इसका छन्द पिपीलिकामध्यानिचृद् गायत्री है। इसका छान्दस एवं दैवत प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे सूत्रात्मा एवं धनंजय वायु रश्मियां सव रश्मि आदि पदार्थों को वहन करती हुई अपनी श्रेष्ठ क्रियाओं के द्वारा विभिन्न देव पदार्थों में संयोजक वलों को धारण करती हैं, जिसके कारण वे प्रत्येक सृजन कार्य में नाना रश्मि आदि पदार्थों को संगत करती हैं।

इस प्रकार ये कुल ३ ऋचाएं तृच के रूप में प्रकट होती हैं। इनमें से द्वितीय ऋचा के "त्रिरासाप्तानि" में 'त्रिः' पद विद्यमान है। इस कारण इसका त्रिवत् होना ही इसकी उत्पत्ति के नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल के सूचक होने का लक्षण है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- प्रथम कण्डिका का वैज्ञानिक भाष्यसार व्याख्यान भाग में दर्शाये अनुसार पूर्व प्रसंगों में पाठक देख सकते हैं। **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल में २ उष्णिक और १ गायत्री का एक रश्मिसमूह एवं ३ गायत्री का दूसरा समूह तथा २ गायत्री का तीसरा समूह उत्पन्न होता है। इस समय विभिन्न प्राण रश्मियां और विद्युत् के प्रखर होने से विभिन्न कणों और विकिरणों की ऊर्जा में वृद्धि होती है। **विभिन्न कण जब अधिक ऊर्जा से युक्त होते हैं, तो वे भी तरंगों की भांति व्यवहार करते हुए प्रकाशित होते तथा अन्य पदार्थों को प्रकाशित करने में सहयोग करते हैं।** सम्पूर्ण सृष्टि में जो भी पदार्थ विद्यमान हैं, वे विभिन्न प्रकार के कणों और विकिरणों से ही उत्पन्न और प्रकाशित होते हैं। जव सूत्रात्मा वायु रश्मियां छन्द रश्मियों को सम्पीडित करके विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का निर्माण करती हैं, उस समय वे इस कार्य में प्राण, अपान और व्यान रश्मियों को एक-२ करके तीक्ष्ण वनाती हैं।।

४. बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवेति द्विपदाः शंसति; द्विपाद्वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवः,

पशवश्छन्दोमाः, पशूनामवरुद्ध्यै, तद्यद्द्विपदाः शंसति, यजमानमेव तद् द्विप्रतिष्ठं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति।।
'ये त्रिंशति त्रयस्पर इति' वैश्वदेवं त्रिवन्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
तान्यु गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यहः।।

व्याख्यानम्– तदनन्तर मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीच ऋषि अर्थात् खण्ड ५.१३ में वर्णित मनु नामक विशेष प्रकार की वासयित्री रश्मियों तथा कूर्म प्राण के संयोग से उत्पन्न विशेष प्रकार की रश्मियों से विश्वेदेवादेवताक ऋ.८.२६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम्।।१।।

इसका छन्द आर्ची गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {बभ्रुः = सोमो वै बभ्रुः (श.७.२.४.२६), बभ्रुः पिङ्गलो भवति (मै.२.५.१), धारकः पोषको वा (म.द.ऋ.भा.५.३०.१४)} पिङ्गल वर्णयुक्त सोम पदार्थ व्यापक रूप से गमन करता हुआ विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का उत्तम वाहक बनकर नानाविध संयोगादि को प्राप्त होकर सुवर्ण रंग को प्रकट करता है।

(२) योनिमेक आ संसाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियों किंवा प्रकाशित परमाणुओं में स्वप्रकाशस्वरूप एक सूत्रात्मा वायु सबके आधार आवास रूप में विद्यमान होता है। दूसरी ओर विभिन्न लोकों के केन्द्रीय भाग में अति प्रकाशशील पदार्थ विद्यमान रहता है। उसके अन्दर सूत्रात्मा वायु एवं मनस्तत्त्व की विशेष प्रधानता से नाना प्रकार के परमाणुओं की उत्पति निरन्तर होती है।

(३) वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः।।३।।

इसका छन्द आर्चीस्वराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {वाशी = वाङ्नाम (निघं.१.११)} विभिन्न लोकों के केन्द्रीय भाग, जिसमें पदार्थ प्रायः स्थिर होता जाता है, वे एक ही स्थान पर स्थिर रहकर अपनी हरणशील तेजस्वी रश्मियों में नाना प्रकार की वाग् रश्मियों को धारण करते हैं।

(४) वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से लोकों का वह अकेला केन्द्रीय भाग अति उत्कृष्ट हरणशील बलों में उत्पन्न होकर तीक्ष्ण वज्र रश्मियों से आसुर रश्मियों का पूर्ण हनन करता है।

(५) तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः।।५।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {जलाषम् = उदकनाम (निघं.१.१२)। भेषजम् = सुखनाम (निघं.३.६), शान्तिर्वै भेषजमापः (कौ.ब्रा.३.६)} उन लोकों के केन्द्रीय भाग तीक्ष्ण तेज से युक्त सहज नियन्त्रित तरल पदार्थ के रूप में विद्यमान होते हैं और उनमें तीक्ष्ण वज्र रश्मियां सर्वत्र व्याप्त होती हैं।

(६) पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम्।।६।।

इसका छन्द आर्ची भुरिग्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से

{तस्करः = तत्करो भवति। करोति यत् पापकमिति नैरुक्ताः। तनोतेर्वा स्यात् सन्ततकर्मा भवति। अहोरात्रकर्मा वा (नि.३.१४)। निधिः = पृथिवी ह्येष निधिः (श.६.५.२.३)} एक अर्थात् सबमें व्याप्त हुआ इन्द्र तत्त्व पृथिवी आदि लोकों के मार्गों की असुरादि बाधक रश्मियों से रक्षा करता हुआ वर्तमान होता है।

(७) त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति।।७।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से व्यापक रूप से प्रकाशित प्रत्येक द्युलोक, विभिन्न प्रकाशित पदार्थों वा प्राणादि रश्मियों का विशाल गृहरूप होकर तीन प्रकार की गतियों से युक्त होता है।

(८) विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः।।८।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से लोकों के केन्द्रीय व अन्य शेष विशाल क्षेत्र ये दोनों भाग पृथक्-२ बल और गति द्वारा घूर्णन करते हैं, परन्तु इस रश्मि के द्वारा वे दोनों भाग साथ मिले रहकर साथ-२ परिक्रमण करते हैं।

(९) सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {उपमम् = उपमे अन्तिकनाम (निघं.२.१६)} वे दोनों भाग परस्पर निकट रहते हुए सम्यग् रूप से प्रकाशमान सब ओर से प्राणादि रश्मियों से प्रेरित होते हुए अन्तरिक्ष लोक में अपने निवास और मार्ग बनाते हैं।

(१०) अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन्।।१०।।

इसका छन्द आर्ची स्वराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {मन्वत = मन्यन्ते (म.द.ऋ.भा.४.१.१६)} उन लोकों के उस केन्द्रीय भाग में विभिन्न साम अर्थात् तीक्ष्ण रश्मियां व्यापक रूप से प्रकाशित होकर सम्पूर्ण लोक को देदीप्यमान करती हैं।

इस कण्डिका के शेष भाग का व्याख्यान ५.१७.४ में "आ याहि वनसा सहेति द्विपदा........" कण्डिका में वर्णित इसी भाग के समान समझें।।

तदनन्तर पूर्वोक्त मनुर्वैवस्वत ऋषि प्राण से विश्वेदेवादेवताक ऋ.८.२८ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्। विदन्नह द्वितासनन्।।१।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से द्यु आदि लोकों में प्राणापानादि दस प्राण रश्मियां एक सूत्रात्मा वायु, बारह मास रश्मियां, छः ऋतु रश्मियां, 'घृम्' एवं 'हिम्', मरुद् एवं छन्द रश्मियां, आकाश तत्त्व में व्याप्त होती हुई सदैव प्रकाशित रहती हैं। ये ही रश्मियां इन लोकों को विभिन्न बल आदि प्रभावों के द्वारा दो भागों में विभक्त करती हैं। इस छन्द रश्मि का इन सभी ३३ रश्मियों से सम्बन्ध रहता है।

(२) वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः। पत्नीवन्तो वषट्कृताः।।२।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से उपर्युक्त पदार्थों में से प्राण, अपान, उदान, व्यान और सूत्रात्मा वायु पदार्थ विशेष क्रियाशील होकर श्रेष्ठ दान आदि कर्मों के द्वारा विभिन्न प्रकार के अग्नि तत्त्वों एवं उनकी रक्षिका सूक्ष्म मरुद् रश्मियों को विशेष क्रियाशील बनाते हैं।

(३) ते नों गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यंक्। पुरस्तात्सर्वया विशा।।३।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त सभी रश्मि आदि पदार्थ विभिन्न लोकों के सभी परमाणु आदि पदार्थों में व्याप्त होकर उनकी सब ओर से रक्षा करते हैं।

(४) यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत्। अरावा चन मर्त्यः।।४।।

इसका छन्द विराडुष्णिक् है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे पूर्वोक्त रश्मि आदि पदार्थ विभिन्न परमाणुओं को कान्ति, गति आदि प्रदान करते हुए नाना प्रकार के कर्मों को निरापद रूप से सम्पादित करते हैं। इनके अभाव वा न्यूनता में दानादि क्रिया सम्पन्न न होने से लोकों में होने वाली क्रियाएं नष्ट हो जाती हैं।

(५) सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम्। सप्तो अधि श्रियों धिरे।।५।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से ७ छन्द रश्मियां ७ ऋषिरूप प्राण अर्थात् अपान, समान, उदान, व्यान, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु के द्वारा सतेज होती हैं एवं इनमें ही सात-२ मरुद् रश्मियों के समूह ७ के समुदाय में विद्यमान वा आश्रित होते हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'त्र्यह' पद विद्यमान होने से इसकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल में १० द्विपदा गायत्री रश्मियों का एक समूह एवं ५ गायत्री रश्मियों का दूसरा समूह उत्पन्न होता है। तारों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ, जो संलयन क्रिया से उत्पन्न होता है, वह उस तारे के अन्दर विद्यमान अन्य समस्त पदार्थ की अपेक्षा स्थिर और तेजस्वी होता है। इसके साथ ही केन्द्रीय भाग सर्वाधिक ताप, दाव और गुरुत्व वल से युक्त होता है। तारों के केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी और डार्क पदार्थ प्रायः नगण्य मात्रा में विद्यमान रहते हैं। तारों के केन्द्रीय भाग में विद्यमान पदार्थ गैसीय अथवा ठोस अवस्था में विद्यमान नहीं होता है, वल्कि अत्यन्त घनत्वयुक्त तेजस्वी तरल पदार्थ के रूप में विद्यमान होता है। विभिन्न लोकों के परिक्रमण मार्ग में डार्क एनर्जी और डार्क मैटर के प्रतिरोध से इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् ही सुरक्षा प्रदान करती है। वर्तमान विज्ञान विभिन्न तारों को दो प्रकार की गतियों से युक्त मानता है, जिनमें से एक गति उसके अक्ष पर घूर्णन और दूसरी गति उसके आकाशगंगा के केन्द्र के चारों ओर परिक्रमण के रूप में होती है परन्तु, वैदिक विज्ञान तारों में तीन प्रकार की गति का होना मानता है। इस सम्वन्ध में हमारा मत यह है कि **सभी गैलेक्सियां भी ब्रह्माण्ड के किसी अति विशाल लोक के चारों ओर परिक्रमण करती हैं।** वह गति ही प्रत्येक तारे के साथ जुड़ी हुई होती है। इस कारण तारों की यही तीसरी गति है। **तारों तथा विभिन्न लोकों की ये सभी गतियां सरल गति न होकर कम्पन करती हुई होती हैं।** तारों के केन्द्र और शेष भाग पृथक्-२ गति करते हुए भी परस्पर जुड़े रहकर एक साथ परिक्रमण करते हैं। उस समय एक गायत्री छन्द रश्मि दोनों भागों में व्याप्त रहती है, जो इन दोनों भागों को परस्पर जोड़े रखने में सहायक होती है। दोनों भागों के पृथक्-२ घूर्णन की गति और मार्गों को भी विभिन्न प्राणादि रश्मियां नियन्त्रित और निर्मित करती हैं। विभिन्न तारे आदि लोकों में व्याख्यान भाग में दर्शायी गयी ३३ प्रकार की सूक्ष्म प्राण रश्मियां सदैव सक्रिय रहती हैं। इनके कारण ही तारे आदि लोकों की समस्त गतिविधियां संचालित और नियन्त्रित होती हैं। व्याख्यान भाग में प्रथम कण्डिका का एक वड़ा भाग तथा चतुर्थ कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझना दर्शाया गया है। इस कारण इन भागों का वैज्ञानिक भाष्यसार भी तत्-तत् प्रसंगों में समझें।।

५. वैश्वानरो न ऊतय इत्याग्निमारुतस्य प्रतिपदा प्र यातु परावत इत्यन्तो वै परावतोऽन्तो नवममहर्नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
'मरुतो यस्य हि क्षय इति' मारुतं, क्षेतिवदन्तरूपं; क्षेतीव वा अन्तं गत्वा नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्याऽच्युता।।
'प्राग्नये वाचमीरयेति' जातवेदस्यं समानोदर्कं; नवमेऽहनि नवमस्याह्नो रूपम्।।
स नः पर्षदति द्विषः, स नः पर्षदति द्विष इति शंसति; बहु वा एतस्मिन्नवरात्रे, किंच किंच वारणं क्रियते, शान्त्या एव; तद्यत्स नः पर्षदति द्विषः, स नः पर्षदति द्विष इति शंसति, सर्वस्मादेवैनांस्तदेनसः प्रमुञ्चति।।
तान्यु गायत्राणि गायत्रतृतीयसवन एष त्र्यहः।।२।।

व्याख्यानम्- यहाँ हम महर्षि आश्वलायन को उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं-

"वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप। वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेन वाहसा। वैश्वानरो अङ्गिरोभ्यः स्तोम उक्थं च चाकनत्। एषु द्युम्नं स्वर्यमत्। मरुतो यस्य हि प्राग्नये वाचमित्याग्निमारुतम्।।" (आश्व.श्रौ.८.११.४)

महर्षि आश्वलायन का यह सूत्र भी इन्हीं कण्डिकाओं के साथ संगति रखता है। अब आगामी आग्निमारुत शस्त्र संज्ञक रश्मिसमूहों से पूर्व कौशिक ऋषि {कुशिकः = क्रोशतेः शब्दकर्मणः क्रंशतेर्वा स्यात् प्रकाशयतिकर्मणः साधु विक्रोशयितार्थानामिति वा (नि.२.२५)} अर्थात् प्रकाश और ध्वनि को अति सूक्ष्म रूप में उत्पन्न करने वाले एक सूक्ष्म प्राण विशेष से वैश्वानरदेवताक एवं गायत्री छन्दस्क निम्नलिखित तृच की उत्पत्ति होती है-

(१) वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टुतीरुप। (अथर्व.६.३५.१)

की उत्पत्ति होती है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझ सकते हैं। इसके अन्य प्रभाव से सबका नायक अग्नि तत्त्व द्युलोकों के केन्द्रीय भागों से बाहर की ओर आता हुआ सम्पूर्ण पदार्थ को प्रकाशित करता है।

(२) वैश्वानरो न आगमदिमं यज्ञं सजूरुप। अग्निरुक्थेन वाहसा।।२।।

की उत्पत्ति होती है। अथर्ववेद ६.३५.२ में यही ऋचा कुछ पाठभेद से विद्यमान है। वहां अन्तिम पाद इस प्रकार है- "अग्निरुक्थेष्वंहसु"। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह सबका वाहक अग्नि विभिन्न तेजस्विनी रश्मियों के द्वारा नाना प्रकार के पदार्थों को संगत करता हुआ नवीन-२ तत्त्वों को उत्पन्न करता हुआ सब ओर व्याप्त होता है।

(३) वैश्वानरो अङ्गिरोभ्यः स्तोमं उक्थं च चाकनत्। ऐषु द्युम्नं स्वर्यमत्।।

की उत्पत्ति होती है। अथर्ववेद ६.३५.३ में यह ऋचा कुछ पाठभेद के साथ विद्यमान है। यहाँ अन्तिम पाद समान है परन्तु पूर्व भाग इस प्रकार है- "वैश्वानरोऽङ्गिरसां स्तोममुक्थं च चाक्लृपत्"। {चाकनत् = कान्तिकर्मा (निघं.२.६), पश्यतिकर्मा (निघं.३.११)} इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह सबका वाहक अग्नि तत्त्व विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मिसमूहों के द्वारा बल और तेज से युक्त होने में समर्थ होता है। यह व्यान रश्मियों के द्वारा अपने तेज को सब ओर से संगठित रखता है।

इस उपर्युक्त तृचरूप रश्मिसमूह को आगामी आग्निमारुत रश्मिसमूह की 'प्रतिपत्' तृच कहा है।

इसका तात्पर्य यह है कि यह उस रश्मिसमूह से ठीक पूर्व उत्पन्न होता है। इस तृच की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद 'आ प्रयातु परावतः' में 'परावतः' पद विद्यमान है, जिसके लिए निघण्टुकार ने कहा है- 'परावतः दूरनाम' (निघं.३.२६)। अन्यत्र कहा है- परावतः प्रेरितवताः, परागताः (नि.११.४८)। इससे सिद्ध है कि इस पद के प्रभाव से यह रश्मिसमूह दूर-२ तक व्याप्त होकर सबको प्रेरित करता है। इसी कारण ग्रन्थकार ने कहा है- "अन्तो वै परावतः"। इससे यह तृच 'अन्तवत्' सिद्ध होती है। 'अन्तवत्' होने से इसकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

तदनन्तर पूर्वोक्त राहूगणो गोतम ऋषि अर्थात् धनंजय प्राण से मरुद्देवताक ऋ.१.८६ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः।।१।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका देवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियां अपने व्यापक प्रभावों के द्वारा विभिन्न लोकों में विद्यमान पदार्थ की अनेकविध रक्षा करती हैं। इस रश्मि के प्रभाव से वे और भी अधिक प्रभावी होती हैं।

(२) यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मरुतः शृणुता हवम्।।२।।

इसका छन्द पिपीलिका-मध्या-निचृद्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां सूत्रात्मा वायु एवं मनस्तत्त्व के साथ नाना प्रकार की संगतीकरण क्रियाएं करके नाना प्रकार के संयोज्य पदार्थों को उत्पन्न करती हैं।

(३) उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत। स गन्ता गोमति व्रजे।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से {तक्षति करोतिकर्मा (नि.४.१९)} विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियां छन्द रश्मियों से युक्त मार्गों में व्याप्त होकर तेजस्वी किरणों को उत्पन्न करती हैं।

(४) अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु। उक्थं मदश्च शस्यते।।४।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से अन्तरिक्ष में विद्यमान सम्पीडित सोम रश्मियां प्राण रश्मियों के द्वारा विविध रूपों में संगत होकर विशेष सक्रिय व तीक्ष्ण किरणों के रूप में प्रकट होती हैं।

(५) अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि। सूरं चित्सस्रुषीरिषः।।५।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से प्राण तत्त्वों की ओर गमन करते हुए विभिन्न पार्थिव परमाणु सब ओर से प्रकाशमान होकर विभिन्न प्रकार की संयोज्य रश्मि वा कणों के रूप में प्रकट होते हैं।

(६) पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम्। अवोभिश्चर्षणीनाम्।।६।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न मरुद् रश्मियां अपने से पूर्व उत्पन्न शरद् आदि ऋतु रश्मियों के साथ व्याप्त होती हुई नाना प्रकार के तेज को उत्पन्न करती हैं।

(७) सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः। यस्य प्रयांसि पर्षथ।।७।।

इसका छन्द पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य

प्रभाव से अच्छी प्रकार संयोजनीय मरुद् रश्मियां विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सींचती हुई उन्हें विशेष तेज एवं संयोजक वलों से युक्त करती हैं।

(८) शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः। विदा कामस्य वेनतः।।८।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {शशमानः = अर्चतिकर्मा (निघं.३.१४), शशमानः शंसमानः (नि.६.८)। स्वेदः = पुरुषार्थेन जायमानः (म.द.भा.)} विभिन्न आशुगामी मरुद् रश्मियां नित्य कमनीय वलों से युक्त तेजस्वी तीक्ष्ण मरुद् रश्मियों की विशेष सक्रियता और कमनीयता से उत्पन्न होती हैं।

(९) यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः।।९।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वे नित्य वलों से युक्त विभिन्न मरुद् रश्मियां महान् प्राण रश्मियों के साथ मिलकर विद्युत् को प्रकट करती हैं और उस विद्युत् के द्वारा वाधक असुरादि रश्मियों को दूर वा नष्ट करती हैं।

(१०) गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि।।१०।।

इसका छन्द निचृद्गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वे ऐसी मरुद् रश्मियां अदृश्य रहती हुई सम्पूर्ण अन्धकार को दूर करके प्रकाश को प्रकट करती हैं।

इस सूक्त की प्रथम ऋचा में 'क्षये' पद विद्यमान है। इस कारण यह सूक्त 'क्षेतिवत्' माना गया है। 'क्षेतिवत्' का 'अन्तवत्' होना हम पूर्व में भी स्पष्ट कर चुके हैं। इस कारण इस सूक्तरूप रश्मिसमूह की उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

तदनन्तर आग्नेयो वत्स ऋषि {वत्सः = स्वव्याप्त्या सर्वाऽऽच्छादकः (म.द.ऋ.भा.१.६५.४)} अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व रूपी अग्नि से उत्पन्न सवका आच्छादक सूक्ष्म प्राण विशेष, जो सूत्रात्मा वायुमिश्रित व्यान प्राण हो सकता है, से अग्निदेवताक ऋ.१०.१८७ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है-

(१) प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम्। स नः पर्षदति द्विषः।।१।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व पार्थिव परमाणुओं को अपने साथ संगत करके उन्हें तेज और वलयुक्त करने के लिए वाग् रश्मियों के द्वारा प्रेरित करता और प्रतिरोधी वाधक रश्मियों को दूर करता है।

(२) यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते। स नः पर्षदति द्विषः।।२।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व वाधक रश्मियों को दूर करता हुआ अन्तरिक्ष में दूर-२ तक विस्तृत होकर अतिशय प्रकाशित होता है।

(३) यो रक्षांसि निजूर्वत्यग्निस्तिग्मेन शोचिषा। स नः पर्षदति द्विषः।।३।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से अग्नि तत्त्व की तीक्ष्ण तेजयुक्त श्वेत किरणें वाधक रश्मि आदि पदार्थों को दूर करती हैं।

(४) यो विश्वाभि विपश्यंति भुवना सं च पश्यंति। स नः पर्षदति द्विषः।।४।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि तत्त्व बाधक रश्मियों को दूर करता हुआ सभी लोकों को बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त और प्रकाशित करता है।

(५) यो अस्य पारे रजंसः शुक्रो अग्निरजांयत। स नः पर्षदति द्विषः।।५।।

इसका छन्द, छान्दस एवं दैवत प्रभाव पूर्ववत्। इसके अन्य प्रभाव से वह अग्नि विभिन्न लोकों को तेजस्वी करता हुआ अग्रणी रूप में विद्यमान होता है और इसके लिए वह सभी बाधक पदार्थों को दूर करता है।

इस सूक्त की सभी ऋचाओं का अन्तिम पाद "स नः पर्षदति द्विषः" होने से यह सूक्त समानोदर्क कहलाता है। इस कारण इसकी उत्पत्ति नवम अहन् अर्थात् धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल की सूचक है। समानोदर्क होने से ये छन्द रश्मियां सम्पूर्ण लोकों में विशेषकर द्युलोकों के केन्द्रीय भाग में एकरस व्याप्त हो जाती हैं और इस कारण वे इन केन्द्रीय भागों में असुरादि रश्मियों को अतिशय रूप से नियन्त्रित वा नष्ट करने में सक्षम होती हैं।।

उपर्युक्त समानोदर्क सूक्त की प्रत्येक ऋचा का अन्तिम पाद "स नः पर्षदति द्विषः" बार-२ आवृत्त होता है। इसका प्रभाव यह होता है कि पूर्वोक्त ६ अहनों वा चरणों में अनेक क्रियाएं, जो अब तक वर्णित की गयी हैं, संचालित होती हैं। उनमें जो-२ भी विघ्न वा रुकावट आती है, वे इस पाद के बार-२ आवृत्त प्रभाव से दूर होती हैं। वह प्रभाव इस प्रकार होता है कि जब कोई भी क्रिया हो रही होती है, उस समय बाधक असुरादि रश्मियां विघ्न डालती हैं। उस समय "स नः पर्षदति द्विषः" रूप छन्द रश्मि का अवयव बार-२ उन असुरादि रश्मियों के ऊपर उत्सर्जित होता है, जो उन रश्मियों के प्रतिरोधी प्रभाव को नष्ट करके उन्हें दूर धकेल देता है। इस कारण सृजन क्रियाएं निर्विघ्न रूप से संचालित होती रहती हैं। इसलिए लोकनिर्माण की प्रक्रिया के इस नवम चरण में इन पांच गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है।।

इस कण्डिका का व्याख्यान पूर्ववत् समझें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न लोकों के निर्माण की प्रक्रिया के अन्तिम चरण में तीन गायत्री रश्मियों, पुनः १० गायत्री रश्मियों, पुनः ५ गायत्री रश्मियों के कुल ३ समूह उत्पन्न होते हैं। इस समय सभी लोकों में मरुद् रश्मियां विशेष सक्रिय होकर ऊष्मा और ताप की मात्रा को बढ़ाती हैं। तारों के केन्द्रीय भाग पूर्ण सक्रिय और शक्तिशाली हो जाते हैं। सभी लोकों में होने वाली विभिन्न क्रियाएं विशेष तेजयुक्त हो जाती हैं। इस समय भी लोकों के अन्दर नाना प्रकार की छन्द व प्राण रश्मियों के मिलने से विद्युत् आवेशित कण उत्पन्न होते हैं। कुछ गायत्री छन्द रश्मियां तारों के केन्द्रों में होने वाली क्रियाओं को निरापद बनाने के लिए बार-२ डार्क एनर्जी पर प्रहार करके दूर हटाती वा नष्ट करती हैं। ये ऐसी गायत्री रश्मियां तारों के केन्द्र में एकरस व्याप्त होकर उन्हें बल और तेज प्रदान करती हैं।।

ॐ इति २४.२ समाप्तः ॐ

अथ २४.३ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

{**ज्ञातव्य** = १९ वें अध्याय में प्रथम खण्ड से ही **'द्वादशाहः'** की चर्चा की गयी है। आदित्य लोकों एवं लोकों के निर्माण प्रक्रिया को **'द्वादशाहः'** माना गया है। **'द्वादशाहः'** का अर्थ वताया गया है- प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और सूत्रात्मा वायु- ये कुल ११ प्राण रश्मियां, जिनमें से प्राण, अपान के अतिरिक्त अन्य ९ प्राण रश्मियों की चर्चा तीन त्र्यह के रूप में अध्याय २० में प्रारम्भ करके पूर्व खण्ड तक की गयी है। ४.२३.२ में प्राण और अपान को लोक निर्माण प्रक्रिया के दो पक्ष के रूप में माना है। यहाँ **द्वादशाह का बारहवां भाग मन और वाक् तत्त्व का मिथुन रूप होता है, उसी को इस खण्ड में दशम अहन् नाम से सम्बोधित किया है। जबकि प्राणापान को पूर्व में अतिरात्र कहा गया है तथा मन एवं वाक् तत्त्व के मिथुन रूप दशम अहन् को मर्यादा नाम दिया गया है,** जिसे हम उन्नीसवें अध्याय में पढ़ चुके हैं। अव यहाँ **दशम अहन्** की चर्चा निम्न कण्डिकाओं के प्रकाश में प्रारम्भ करते हैं। हाँ, व्याख्यान से पूर्व यह भी बतलाना आवश्यक है कि पूर्वोक्त नौ अहन् में से छः अहन् अर्थात् **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल से लेकर **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल तक के छः अहन् अर्थात् छः प्राण रश्मियों के उत्कर्ष का काल **पृष्ठ्य** कहलाता है। इसे **पृष्ठ्य षळह** भी कहते हैं। इस षळह काल में विभिन्न लोक अपना आकार व रूप ग्रहण कर लेते हैं। इस कारण ही इस काल को **पृष्ठ्य** कहा गया है, क्योंकि लोकों की सम्पूर्ण आधारभूत रचना इसी काल में हो जाती है। इसके बाद का अन्तिम त्र्यह अर्थात् **समान, कूर्म एवं धनंजय प्राणों के उत्कर्ष काल को छन्दोम कहा गया है,** क्योंकि इस काल में लोकों की दिशाएं अर्थात् घूर्णन गतियां आदि निश्चित हो पाती हैं।}

१. पृष्ठ्यं षळहमुपयन्ति; यथा वै मुखमेवं पृष्ठ्यः षळहस्तद्यथाऽन्तरं मुखस्य जिह्वा तालु दन्ताः, एवं छन्दोमाः, अथ येनैव वाचं व्याकरोति, येन स्वादु चास्वादु च विजानाति, तद्दशममहः, ।।
यथा वै नासिके एवं पृष्ठ्यः षळहस्तद्यथाऽन्तरं नासिकयोरेवं छन्दोमा, अथ येनैव गन्धान् विजानाति तद्दशममहः ।।
यथा वा अक्ष्येवं पृष्ठ्यः षळहस्तद्यथाऽन्तरमक्ष्णः कृष्णमेवं छन्दोमा, अथ यैव कनीनिका, येन पश्यति, तद्दशममहः ।।
यथा वै कर्ण, एवं पृष्ठ्यः षळहस्तद्यथाऽन्तरं कर्णस्यैवं छन्दोमा, अथ येनैव शृणोति, तद्दशममहः ।।

व्याख्यानम्- उपर्युक्त पृष्ठ्य नामक षळह, जिनके बारे में हम विस्तार से अवगत हो चुके हैं, लोक निर्माण प्रक्रिया के छः चरण मुख के समान होते हैं। इसके साथ ही वह छः चरणों वाली प्रक्रिया पृष्ठ्य कहलाने के कारण अन्य चरणों के लिए आधाररूप होती है। मुख के समान होने का अर्थ यह है कि

ब्रह्माण्ड में जो भी पदार्थ विद्यमान है, उसका मुख्य प्रतीक ये लोक समूह ही हैं, अन्य पदार्थ तो अदृश्य रूप में सर्वत्र भरा रहता है। इसका संकेत महर्षि याज्ञवल्क्य के वचन में भी मिलता है, जिसमें कहा गया है- "मुखं प्रतीकम्" (श.१४.४.३.७)। मुख का स्थान शरीर में सर्वोपरि होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थ में भी ये लोक मण्डल ही श्रेष्ठ और प्रमुख हैं। ये ही सृष्टिकर्ता चेतन परमात्मा और मूल पदार्थ प्रकृति के अस्तित्त्व का उसी प्रकार प्रमाण और ज्ञापक है, जिस प्रकार कोई भी मनुष्य की पहचान मुख से ही होती है।

पूर्वोक्त तृतीय त्र्यह अर्थात् समान, कूर्म एवं धनंजय के उत्कर्ष काल का भाग, जिसको कि हम छन्दोमा कह चुके हैं, वे मुख के अन्दर जिह्वा, तालु और दांत के समान होते हैं। {तालु = तालु तरतेः। तीर्णतममङ्गम्। ललतेर्वा स्याद्विपरीतात्। यथा तलम्। लतेत्यविपर्ययः (नि.५.२६), अवक्रन्देन तालुम् (तै.सं.५.७.११.७; मै.३.१५.१)। जिह्वा = जोहुवा (नि.५.२६)। दन्तः = दाम्यत्युपशाम्यति यो येन वा स दन्तः, दशनो वा (उ.को.३.८६)} इसका आशय यह है कि जिस प्रकार मुख के अन्दर जिह्वा आहार को ग्रहण करती है, उसी प्रकार उपर्युक्त त्र्यह में उत्पन्न अनेक छन्द रश्मियां विभिन्न सूक्ष्म पदार्थों को ग्रहण करती हुई लोक निर्माण प्रक्रिया में सहयोग करती हैं अर्थात् पदार्थों की आपूर्ति करती रहती हैं। मुख में जिस प्रकार तालु व्यापक रूप से फैला हुआ होता है और जिसके विना उच्चारण क्रिया भी सम्भव नहीं होती है, उसी प्रकार इस अन्तिम त्र्यह में उत्पन्न अनेक छन्द रश्मियां पूर्वोत्पन्न षळह रूप लोकों में दूर-२ तक व्याप्त होती हैं। इनके कारण विभिन्न लोकों में इन्द्र तत्त्व के गर्जनादि की क्रियाएं प्रखर होने लगती हैं। जिस प्रकार मुख के अन्दर दांत भोजन को चवाते हैं और किसी भी पदार्थ को पकड़ते और नियन्त्रित रखने में सक्षम होते हैं, उसी प्रकार इस अन्तिम त्र्यह में उत्पन्न अनेक छन्दादि रश्मियां लोक निर्माण की प्रक्रिया में विभिन्न पदार्थों का छेदन-भेदन करते हुए जिह्वारूप छन्द रश्मियों के सहयोग से यथायोग्य मिश्रण करने में सहायक होती हैं। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां अन्य रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने और नियन्त्रित करने में भी सहायक होकर लोक निर्माण एवं **उनकी गतियों की प्रक्रिया को नियन्त्रित करने में सहायक होती हैं। इसके अनन्तर महर्षि लिखते हैं-** {दशममहः = अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः (तै.ब्रा.२.२.६.१), कृत्स्नं प्रजापतिमाप्नोति दशममहः (ऐ.५.२५), प्रजापतिरेव दशममहः (जै.ब्रा.३.३०८), प्रतिष्ठा दशममहः (कौ.ब्रा.२७.२)} जिस प्रकार मुख के अन्दर जिस तत्त्व के द्वारा वाणी उच्चारण करती है एवं जिसके द्वारा स्वाद और अस्वाद का प्राणी अनुभव करता है, उस तत्त्व के समान दशम अहन् की स्थिति होती है। उस तत्त्व का संकेत उपरि उद्धृत प्रमाणों से भी स्पष्ट होता है कि मनस्तत्त्व के उत्कर्ष में होने वाली क्रियाएं एवं उत्पन्न छन्दादि रश्मियां ही दशम अहन् हैं और यह मनस्तत्त्व ही सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया का अन्तिम एवं सूक्ष्मतम उत्पन्न पदार्थ है। मनस्तत्त्व, जिसे इस ग्रन्थ में सांख्यदर्शन के महत् व अहंकार के समान ही माना जा सकता है, से सूक्ष्म पदार्थ केवल प्रकृति है, जो निरपेक्ष रूप से नित्य है। **सम्पूर्ण सृष्टि सर्वप्रथम चेतन तत्त्व परमात्मा पुनः मूल उपादन प्रकृति और उसके पश्चात् मनस्तत्त्व वा महत् में ही प्रतिष्ठित होती है, साथ ही निर्मित भी होती है।** इसी मनस्तत्त्व को ग्रन्थकार ने अनेकत्र प्रजापति भी कहा है क्योंकि सम्पूर्ण सृष्टि का जड़, उत्पादक, पालक एवं रक्षक यह मनस्तत्त्व ही है।

इस कण्डिका पर अन्य प्रकार से भी विचार करते हैं कि जैसा {मुखम् = मुख्य ज्योतिर्मयं भक्षणरूपम् (तु.म.द.य.भा.३१.१२), मुखं वै वायव्यम् (पात्रम्) (मै.४.५.७), मुखं साम्नः (जै.ब्रा.१.८५)} प्रज्वलित ज्वालासमूह विभिन्न द्यु आदि लोकों में होता है, वैसे उनके अन्दर विभिन्न भेदक और संधानक शक्तिसम्पन्न वायु रश्मिसमूह होते हैं। उनके आधार पर ही वेदवित् विद्वान् पूर्वोक्त षळह की क्रियाओं और रश्मियों के विषय में जान लेते हैं अर्थात् कार्य को देखकर कारण का अनुमान लगाते हैं। **द्यु आदि लोकों के अन्दर जितनी प्रकृष्ट ज्वाला = जिह्वा रूप ध्वनि करते हुए, तैरते हुए व्यापक, नियंत्रक एवं छेदक शक्तिसम्पन्न प्राणादि रश्मिसमूह विद्यमान होते हैं, वैसे ही उन लोकों में छन्दोमा अर्थात् उनकी घूर्णन आदि गतियां भी होती हैं।** अन्त में कहा है कि जिससे सम्पूर्ण पदार्थ को तेज और शक्ति प्राप्त होती है, जिससे स्वाद और अस्वाद को {स्वादु = मिथुनं वै स्वादु (ऐ.आ.१.३.४)} अर्थात् विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों का संयोग और असंयोग होता है, वह मनस्तत्त्व के उत्कर्ष में होने वाली क्रियाएं एवं उत्पन्न छन्दादि रश्मियां ही दशम अहन् रूप है। यहाँ दशम अहन् की तुलना वाक् एवं रसना इन्द्रिय से भी की गयी है।।

इसी प्रकरण को अन्य प्रकार से प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार का कथन है, {नासिका = नासिकेऽ३

वै प्राणस्य पन्थाः (श.१२.६.१.१४), मध्यमेतत्प्राणानां यन्नासिके (श.१३.४.४.६), नसते गतिकर्मा (निघं. २.१४) (नस कौटिल्ये)} कि जिस प्रकार शरीर में नासिका होती है, उसी प्रकार लोक निर्माण की प्रक्रिया में पूर्वोक्त षळह अर्थात् **नाग प्राण से लेकर देवदत्त प्राण तक के उत्कर्ष काल** में उत्पन्न विभिन्न पदार्थ होते हैं। जैसे शरीर में नासिका सम्पूर्ण शरीर को प्राणवान् बनाती है, वैसे ही सम्पूर्ण सृष्टि को ये लोक समूह ही प्राणवान् बनाते हैं और इन्हीं लोक समूहों में ही समस्त प्राणियों की सृष्टि होती है। जिस प्रकार शरीर में नासिका के दो नासारन्ध्र होते हैं और उनके माध्यम से ही नासिका अपना कार्य सहजतया कर पाती है, उसी प्रकार लोक निर्माण प्रक्रिया में अंतिम त्र्यह में उत्पन्न विभिन्न पदार्थों के माध्यम वा सहयोग से ही पूर्वोक्त षळह की सभी प्रक्रियाएं सम्पन्न होकर सम्पूर्ण सृष्टि को प्राणवती बनाती हैं और शरीर में जिस प्रकार नासिका के माध्यम से मनस्तत्त्व विभिन्न प्रकार की गन्ध का ग्रहण करता है, उसी प्रकार लोकनिर्माण प्रक्रिया में मनस्तत्त्व ही सब पदार्थों और क्रियाओं को संचालित करता है। इस पर दूसरे ढंग से विचार करते हैं, {नासिका = नासिका ह वा ऽएषा यज्ञस्य यदुत्तरवेदिः (श. ३.५.१.१२), (उत्तरवेदिः = पशवो वा उत्तरवेदिः - तै.सं.५.२.५.७; काठ.२०.४), योषा वाऽउत्तरवेदिः (श.३.५.१.३३)} कि जिस प्रकार लोक निर्माण की प्रक्रिया में प्राण रश्मियों के वक्र मार्ग होते हैं एवं जिस प्रकार विभिन्न मरुद् रश्मियों के समूह विद्यमान होते हैं, षळह के अन्तर्गत उसी प्रकार की विभिन्न क्रियाएं उत्पन्न होकर लोक निर्माण को आधार प्रदान करती हैं। इस काल में जिस प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न व सक्रिय होती हैं, उसी प्रकार के लोकों का निर्माण हुआ करता है अर्थात् उन लोकों का तेज, बल, आकार, रूप आदि इन्हीं सब छन्द रश्मियों पर निर्भर होता है। {मध्यम् = प्रजा वै पशवो मध्यम् (श.१.६.१.१७)} पुनः महर्षि कहते हैं कि जैसे उन पूर्वोक्त प्राण रश्मियों एवं मरुद् रश्मियों के मिथुनों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार की छन्दादि रश्मियां अन्तिम त्र्यह में नाना क्रियाएं करके द्युलोकों के अन्दर अपनी पूर्वोक्त भूमिका निभाती हैं। इसका सार यह है कि सभी छन्द रश्मियों की नाना प्रकार की क्रियाएं प्राण एवं मरुद् रश्मियों के मिथुनों के स्वरूप आदि पर निर्भर करती हैं। इस **सम्पूर्ण प्रक्रिया में विभिन्न गतियों और रश्मियों को धारण और प्रेरित करने में मनस्तत्त्व ही समर्थ होता** है और इसी **मनस्तत्त्व की उत्कर्ष अवस्था को दशम अहन् कहते हैं।** यहाँ दशम अहन् में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थों की नासिका के अन्दर विद्यमान घ्राण इन्द्रिय से भी तुलना की जा सकती है।।

अब ग्रन्थकार एक अन्य दृष्टान्त से समझाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार शरीर में आंख होती है, उसी प्रकार सृष्टि में इन लोकों का स्थान होता है, क्योंकि इन लोकों के द्वारा ही परमेश्वर और प्रकृति की रचनारूप इस सृष्टि को देखा जा सकता है और यह रचना पूर्वोक्त षळह रूपी क्रियाओं और पदार्थों में ही विद्यमान वा आश्रित होती है। जिस प्रकार आंख में काला भाग विद्यमान होता है, उसी प्रकार लोक निर्माण की प्रक्रिया में पूर्वोक्त छन्दोमा संज्ञक अन्तिम त्र्यह में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थ होते हैं। आंख के अन्दर यह काला भाग ही प्रकाश रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करके आंख के लैन्स, जिसको वैदिक वाङ्मय में कनीनिका नाम से सम्बोधित किया गया है, की ओर केन्द्रित करता है। लोक निर्माण की प्रक्रिया में भी अन्तिम त्र्यह सूक्ष्म पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित करता हुआ सृष्टि निर्माण प्रक्रिया की ओर केन्द्रित वा प्रेरित करता है। आचार्य सायण ने ऐतरेय आरण्यक २.७.५.५ को उद्धृत् करते हुए लिखा है- "त्रिवृदिव वै चक्षुः शुक्लं कृष्णं कनीनिका"। 'कृष्णम्' पद का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द अपने ऋग्वेद भाष्य १.५८.४ में लिखते हैं- "कर्षति विलिखति येन ज्योतिः समूहेन तम्"। वामन आप्टे ने संस्कृत - हिन्दी कोश में 'कृष्' धातु के अर्थ "खींचना, घसीटना, प्राप्त करना, किसी की ओर खींचना" आदि भी किये हैं। इन सबसे हमारे उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है कि आंख का काला भाग अपने वैद्युत प्रभाव से प्रकाश रश्मियों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। इसके पश्चात् ग्रन्थकार का कथन है कि आंख में जो स्थान कनीनिका का होता है, वही स्थान दशम अहन् का होता है।

आंख के काले भाग के मध्य भाग में विद्यमान सूक्ष्म काला बिन्दु, जो प्रकाश रश्मियों को आन्तरिक भाग में प्रेषित करता है, उसे कनीनिका कहते हैं। इसी प्रकार दशम अहन् अर्थात् मनस्तत्त्व के विशेष उत्कर्ष काल में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थ एवं उनकी क्रियाएं लोक निर्माण प्रक्रिया में अन्तिम त्र्यह में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थों को अपनी ओर केन्द्रित करके सृजन कार्यों में नियुक्त करती हैं। 'कनीनिका' शब्द 'कनी दीप्तिकान्तिगतिषु' धातु से निष्पन्न होता है। इससे यह भी संकेत मिलता है कि दशम अहन् में उत्पन्न विभिन्न रश्मि आदि पदार्थ आकर्षित रश्मि आदि पदार्थ को दीप्ति व गति भी

प्रदान करते हैं। इस कण्डिका से दूसरा आशय इस प्रकार प्रतीत होता है कि लोक निर्माण की प्रक्रिया में उत्पन्न प्राणादि रश्मियां जैसी व्यापक एवं आशुगामिनी होती हैं, तदनुकूल ही लोकों का षळह रूप प्रकट वा निर्मित होता है। लोकों के रूप के लिए उन प्राणादि रश्मियों की तीव्रता और मात्रा आदि ही उत्तरदायी होती हैं। **उन प्राण रश्मियों के अन्दर विद्यमान आकर्षण आदि बल जिस स्तर व स्वरूप वाले होते हैं, उसी प्रकार से विभिन्न छन्दोमा = दिशाओं अर्थात् विभिन्न लोकों की घूर्णन व परिक्रमण गतियों का निर्धारण वा निर्माण होता है।** तदुपरान्त कहते हैं कि जैसी उन प्राणादि रश्मियों की दीप्ति वा तेजस्विता होती है, वह दशम अहन् अर्थात् मनस्तत्त्व एवं वाक् के मिथुन द्वारा ही उत्पन्न होती है।।

अब ग्रन्थकार पुनः एक और दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे शरीर में कान का स्थान होता है, वही स्थान पूर्वोक्त पृष्ठ्यरूप षळह में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थ का होता है। इस ब्रह्माण्ड में ध्वनि तरंगें सर्वत्र विद्यमान हैं परन्तु हम अपने कानों से उन्हीं तरंगों को ग्रहण कर पाते हैं, जिनको ग्रहण करने का सामर्थ्य हमारे कानों का होता है। हमारे शरीर से टकराने वाली वे ही तरंगें हम ग्रहण कर पाते हैं, जो हमारे कानों तक पहुँच कर टकराती हैं। यहाँ कर्ण का तात्पर्य बाहरी कान की रचना से है। यह बाहरी भाग ही ध्वनि तरंगों को ग्रहण करके उन्हें कर्णछिद्र की ओर केन्द्रित करता है। इसके साथ शरीर में यही दृष्टिगोचर होता है तथा शेष भाग दृष्टि ओझल रहता है। इसी प्रकार लोक निर्माण प्रक्रिया में षळह रूप काल में उत्पन्न पदार्थ ही दृश्य लोकों का रूप ग्रहण करते हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्यमान वाग् रश्मियां केवल इन लोकों में ही श्रव्य ध्वनि तरंगों के रूप में अभिव्यक्त हो पाती हैं।

जैसे कानों के मध्य एक छिद्रनुमा भाग होता है, वैसे ही लोक निर्माण प्रक्रिया में छन्दोमा संज्ञक अन्तिम त्र्यह में उत्पन्न छन्द रश्मि आदि पदार्थ होते हैं। जैसे कान का मध्य भाग ध्वनि तरंगों को कर्ण इन्द्रिय तक पहुँचाकर श्रव्यरूप प्रदान करता है, वैसे ही लोक निर्माण प्रक्रिया में अन्तिम त्र्यह में उत्पन्न **छन्दादि रश्मियां विभिन्न लोकों में छन्दादि रश्मियों को श्रव्यरूप प्रदान करती हैं। इसके साथ ही ये छन्द रश्मियां कान के मध्य भाग की भांति अन्य रश्मि आदि पदार्थों को दशम अहन् वा मन के उत्कर्ष काल में उत्पन्न विभिन्न छन्दादि रश्मियों तक पहुँचाने में भी** सहायक होती हैं और वह दशम अहन् अर्थात् मनस्तत्त्व के उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्दादि रश्मियां ही मूलतः उन रश्मियों को श्रव्यरूप प्रदान करती हैं, साथ ही उनकी गति वा बल आदि को प्रकृष्ट रूप प्रदान करती हैं।

अब इस कण्डिका पर अन्य प्रकार से विचार करते हैं। {कर्णः = कर्णः कृन्ततेः। निकृत्तद्वारो भवति। ऋच्छतेरित्याग्रायणः। ऋच्छन्तीव खे उद्गन्ताम् इति ह विज्ञायते (नि.१.६), येन कार्याणि कुर्वन्ति सः (तु.म.द.य.भा.२४.३)। अन्तरम् = यदन्ते समीपे रमते तत् (म.द.ऋ.भा.६.७५.१६)। द्वारः = द्वारो जवतेर्वा। द्रवतेर्वा। वारयतेर्वा (नि.८.६)} लोकनिर्माण प्रक्रिया में उत्पन्न प्राण रश्मियां जितनी अधिक सक्रिय होती हैं, शीघ्रगामिनी होकर मरुदादि रश्मियों का अनुसरण करते हुए उन्हें रोकने और बांधने में सक्षम होती हैं एवं उत्पन्न होती हुई आकाश तत्त्व में व्याप्त होकर उत्कृष्ट गमन करने वाली होती हैं, उसी प्रकार की षळह रूप छन्दादि रश्मियां उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार ही लोकों के आकार प्रकट होते हैं। वे रश्मियां आकाश तत्त्व के निकट जैसा रमण करती हैं अर्थात् **आकाश और उन प्राणादि रश्मियों के पारस्परिक संयोग के स्वरूप पर ही दिशाओं अर्थात् लोकों के घूर्णन का स्वरूप निर्भर रहता है। इन सब की भी मूल प्रेरक मनस्तत्त्व है,** जिसके उत्कर्ष काल में उत्पन्न विभिन्न छन्दादि रश्मियां दशम अहन् कहलाती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि का सम्पूर्ण पदार्थ सर्वत्र दृश्य वा अदृश्य रूप में विद्यमान रहता है, जिसमें से अदृश्य पदार्थ अर्थात् डार्क मैटर और डार्क एनर्जी से किसी भी प्रकार के आकाशीय लोक और इनमें विद्यमान कोई भी पदार्थ उत्पन्न नहीं होता परन्तु सृष्टि रचना में एवं लोकों के धारण में इनका उपयोग अवश्य होता है। इस बात को हम इस ग्रन्थ में पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं। डार्क एनर्जी की प्रक्षेपण और प्रतिकर्षक क्षमता सृष्टि रचना में अनिवार्य है। सभी गैलेक्सी आदि लोकसमूह दृश्य पदार्थ से ही निर्मित होते हैं, जिनकी प्रारम्भिक रचना पूर्वोक्त **नाग प्राण** के उत्कर्ष काल से लेकर **देवदत्त प्राण** के उत्कर्ष काल तक होने वाली विभिन्न क्रियाओं व उत्पन्न पदार्थों द्वारा होती है। इसके पश्चात् **समान प्राण** से लेकर **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल तक उत्पन्न होने वाले रश्मि आदि पदार्थ सभी निर्माणाधीन लोकों में सर्वत्र व्याप्त होकर बाहरी ब्रह्माण्ड के अदृश्य व सूक्ष्म भाग से नाना प्रकार की

प्राणादि रश्मियों को आकर्षित करके पूर्ति करते रहते हैं। ये पदार्थ ही निर्माणाधीन लोकों में विद्यमान पदार्थ में छेदन-भेदन की क्रियाओं को गति प्रदान करते, नाना मिश्रणों को उत्पन्न करते और लोकों के घूर्णन आदि की प्रक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। उच्च कोटि के तत्त्ववेत्ता योगी इन लोकों का गम्भीर अध्ययन करके उनके कारणरूप रश्मि आदि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इनकी कारणरूप रश्मियां जितनी तेज और बलयुक्त होंगी, उतनी ही उत्कृष्टता से लोकों का निर्माण होता है। **समान प्राण** के उत्कर्ष काल से लेकर **धनंजय प्राण** के उत्कर्ष काल तक उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थ विभिन्न लोकों में विद्यमान पदार्थ और क्रियाओं को निरन्तर सक्रिय और सबल बनाये रखते हैं। विभिन्न लोकों में हो रही क्रियाएं विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियों के पारस्परिक संयोग के स्वरूप पर भी निर्भर रहती हैं और इन्हीं पर ही लोकों के घूर्णन आदि कर्म भी निर्भर रहते हैं। यद्यपि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अति सूक्ष्म ध्वनि तरंगें सर्वत्र विद्यमान रहती हैं परन्तु उनको किसी भी भौतिकी तकनीक से ग्रहण किया नहीं जा सकता। ग्रहण करने योग्य ध्वनि तरंगें केवल गैलेक्सियों आदि में ही विद्यमान होती हैं और इन ध्वनि तरंगों को ग्राह्य बनाने में भी **समान प्राण से लेकर धनंजय प्राण के उत्कर्ष काल** तक उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थों की ही भूमिका होती है। प्राण और मरुद् रश्मियों के साथ आकाश तत्त्व का संयोग विभिन्न लोकों के निर्माण, घूर्णन और परिक्रमण को सुनिश्चित करता है। इन सभी प्रकार की क्रियाओं का मूल जड़ प्रेरक मनस्तत्त्व होता है, **जो स्वयं सर्वोच्च सत्ता ईश्वर तत्त्व द्वारा प्रेरित व नियंत्रित होता है**। विशेष जानकारी के लिए व्याख्यान भाग अवश्य पढ़ें।।

२. श्रीर्वै दशममहः,-श्रियं वा एत आगच्छन्ति, ये दशममहरागच्छन्ति, तस्माद्दशममहरविवाक्यं भवति, मा श्रियोऽववादिष्मेति दुरववदं हि श्रेयसः।।
ते ततः सर्पन्ति।।
ते मार्जयन्ते।।
ते पत्नीशालां संप्रपद्यन्ते।।
तेषां य एतामाहुतिं विद्यात् स ब्रूयात् समन्वारभध्वमिति, स जुहुयात्।।

व्याख्यानम्- प्राक्वर्णित दशम अहन्, जो मनस्तत्त्व ही होता है किंवा मनस्तत्त्व के विशेष उत्कर्ष काल में उत्पन्न छन्दादि पदार्थ 'श्री' भी कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि समस्त सृष्टि मनस्तत्त्व एवं उसके विशेष उत्कर्ष काल में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थों में ही आश्रय लिए रहती है। उसी के द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि के सभी सूक्ष्म वा स्थूल पदार्थ प्रेरित एवं बलवान् होते हैं। मनस्तत्त्व इस सम्पूर्ण सृष्टि को बाहर-भीतर से व्याप्त किए हुए है। {श्रीः = श्रीर्वै वरुणः (कौ.ब्रा.१८.६), श्रीः पृष्ठ्यानि (कौ.ब्रा.२१.५), श्रीर्देवाः (श.२.१.४.६)} इस मनस्तत्त्व को वरुण भी कहा गया है। इसका कारण यह है कि **यह तत्त्व उत्पन्न जड़ पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है। यह सब सूक्ष्म से लेकर स्थूल पदार्थों को आच्छादित किए हुए रहता तथा सबके द्वारा आकृष्ट एवं सबको आकृष्ट करने वाला होता है। यह पृष्ठ्यरूप होकर सबको आधार प्रदान करता है। सभी पदार्थ इसी में उत्पन्न होते, इसी में नाना कार्य करते और इसी में लीन हो जाते हैं**। सृष्टि के सभी पदार्थ इसी से प्रकाशित होते, इसी से गति करते और इसी के द्वारा ही बलवान् होकर इस सृष्टि का निर्माण करते है। इस प्रकार यह समस्त सृष्टि मनस्तत्त्व द्वारा ही उत्पन्न, संचालित व नष्ट होती है। लोक निर्माण की प्रक्रिया में जब इस दशम अहन् अर्थात् मनस्तत्त्व के विशेष उत्कर्ष की अवस्था प्राप्त होती है, उस समय सभी रश्मि व कण आदि पदार्थ श्री को प्राप्त करते हैं अर्थात् विभिन्न लोकों में संचालित सभी प्रकार की क्रिया व पदार्थ एक सुदृढ़ आधार व बल प्राप्त कर लेते हैं, जिससे लोकों में होने वाली सभी क्रियाएं पूर्वापेक्षा दृढ़ता से निरन्तरता को प्राप्त करती हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि मनस्तत्त्व के विशेष उत्कर्ष काल का आशय क्या है? क्या पूर्व में मनस्तत्त्व विद्यमान वा सक्रिय नहीं होता है? इसके उत्तर में हमारा मत यह है कि **सर्वव्यापक मनस्तत्त्व में जब 'ओम्', 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' आदि दैवी रश्मियां विशेष रूप से जितनी-२ मात्रा में उत्पन्न होती हैं, मनस्तत्त्व उतना-२ सक्रिय होने लगता है**। उसी सक्रियता की ही यहाँ चर्चा समझनी चाहिए। बिना मनस्तत्त्व व वाक् तत्त्व के मिथुन के किसी भी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ का अस्तित्व वा

सक्रियता का होना कथमपि सम्भव नहीं है। इस मनस्तत्त्व वा एतद्द्वारा सम्पन्न दशम अहन् में उत्पन्न रश्मि आदि पदार्थों के विषय में ग्रन्थकार का कथन है कि यह पदार्थ अविवाक्यम् होता है। इसका तात्पर्य {विवाक् = संग्रामनाम (निघं.२.१७)} है कि **मनस्तत्त्व इस सृष्टि में कहीं व कभी भी संघात वा ढेर रूप में अर्थात् कहीं सघन एवं कहीं विरल रूप में विद्यमान नहीं होता, बल्कि एकरस अवस्था में ही सर्वत्र विद्यमान होता है**। इसके साथ ही मनस्तत्त्व किसी रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ को क्षति नहीं पहुँचाता है।

अब महर्षि कहते हैं कि श्रीरूप इस मनस्तत्त्व से विशेष सम्पृक्त पदार्थों की सृजनात्मक गतियां एवं बल अवरुद्ध एवं पृथक्-२ अर्थात् असमन्वित नहीं होते, क्योंकि विशेष सक्रिय मनस्तत्त्व से सम्पृक्त परमाणु आदि पदार्थों को कोई भी विरोधी तत्त्व वा उसका बल बाधित नहीं कर सकता। इस कारण इस काल में सभी क्रियाएं निरन्तर एवं निरापद हो जाती हैं।।

सभी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ मनस्तत्त्व की प्रेरणा वा बल के द्वारा ही सर्पण अर्थात् गति करते हैं। **सृष्टि में गति सर्वत्र ही मनस्तत्त्व द्वारा ही सम्भव होती है**। इसी के द्वारा वे परमाणु आदि पदार्थ अपने मार्गों को शुद्ध करते हैं किंवा उनका निर्माण करते हैं। यह कार्य कैसे होता है? इसके उत्तर में कहा कि वे परमाणु आदि पदार्थ पत्नीशाला को प्राप्त करते हैं, इसका तात्पर्य यह है कि वे परमाणु-पदार्थ अपनी गति आदि हेतु अपनी रक्षिका शक्तियों (पूर्वोक्त दैवी छन्द रश्मियों) से युक्त हो जाते हैं। उसके पश्चात् ही वे अपने सभी प्रकार के कार्य व गुणों से युक्त होते हैं। यहाँ यह संकेत मिलता है कि सद्योनिर्मित परमाणु-पदार्थ विशेष शक्ति व गति आदि से युक्त नहीं होते हैं। जब वे सक्रिय अर्थात् दैवी छन्द रश्मियों से युक्त मनस्तत्त्व से संगत हो जाते हैं, तभी वे प्रेरित व शक्ति सम्पन्न होकर सक्रिय हो उठते हैं। यद्यपि वे पदार्थ मनस्तत्त्व से ही उत्पन्न होते हैं, पुनरपि वे मनस्तत्त्व व वाक् तत्त्व के मिथुन से ही प्रेरित होकर कार्य करने में सक्षम होते हैं।।+।।+।।

उन परमाणु आदि पदार्थों में से जो पदार्थ मनस्तत्त्व से विशेष रूप से प्रदीप्त हो जाते हैं, वे मानो अन्य परमाणुओं को अपना अनुगमन करने के लिए कहते हैं। इसका आशय यह है कि वे अन्य पदार्थों को अपने साथ संगत करने लगते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ में शृंखलाबद्ध संसर्ग प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यह किस-२ प्रकार होती है, इसका स्पष्टीकरण अगली कण्डिकाओं में दिया गया है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में सभी प्रकार की ऊर्जा तथा द्रव्य की उत्पत्ति विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों के द्वारा होती है। इन प्राण व छन्दादि रश्मियों की उत्पत्ति मनस्तत्त्व द्वारा होती है। ये सभी प्रकार के पदार्थ मनस्तत्त्व द्वारा ही बने व सृष्टि चेतन परमात्म तत्त्व की प्रेरणा से उसी में विद्यमान रहकर नाना प्रकार की क्रियाऐं निरन्तर करते रहते हैं। मनस्तत्त्व भी तब तक क्रियाशील नहीं होता, जब तक कि ईश्वर तत्त्व द्वारा उसे स्पन्दित करके सर्वप्रथम **'ओम्'** पुनः **'भूः'**, **'भुवः'** एवं **'स्वः'** रूप सूक्ष्म छन्द रश्मियां अर्थात् वाक् तत्त्व की उत्पत्ति नहीं होती। वस्तुतः **मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुन ही सक्रिय मनस्तत्त्व कहलाता है**। यह सक्रिय मनस्तत्त्व ही इस ब्रह्माण्ड के सूक्ष्मतम प्रत्येक कण वा विकिरण और इनसे भी सूक्ष्म प्राणादि रश्मियों का उपादान कारण एवं प्रेरक है। **प्रलय के समय सम्पूर्ण द्रव्य व ऊर्जा सक्रिय मनस्तत्त्व में विलीन होकर अन्त में प्रकृतिरूपी अन्तिम उपादान में लीन हो जाती है। इस ब्रह्माण्ड में मनस्तत्त्व सर्वत्र एकरस भरा रहता है, कहीं सघन व कहीं विरल रूप में नहीं रहता। सघन वा विरल तो उसके अन्दर वाक् तत्त्व होता रहता है** और इसी कारण इस वाक् तत्त्व का मनस्तत्त्व के साथ मिथुन अवश्य ही परिवर्तनीय होने से सघन-विरल होता रहता है। इस कारण सक्रिय मनस्तत्त्व सघन-विरल होते रहकर स्थान-२ पर भिन्न रचनाओं एवं क्रिया-बल आदि को प्रकट करता रहता है। यदि ऐसा नहीं होता तो सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ ही नहीं होता। इस **सक्रिय मनस्तत्त्व का बल ही सर्वाधिक सूक्ष्म बल है**। अन्य सभी बल इसी एक बल से क्रमशः उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक बल के भीतर यह बल सदैव सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है और इसी से सभी बल प्रेरित व संचालित होते हैं। ध्यातव्य है कि **मूल बल के पीछे भी चेतन तत्त्व परमात्मा का बल कार्य करता है,** जो नित्य ही मनस्तत्त्व को स्पन्दित करके वाक् तत्त्व को उत्पन्न करता रहता है। फिर इस वाक् तत्त्व से युक्त मनस्तत्त्व को ही सक्रिय मनस्तत्त्व के रूप में प्रकट करके इस मूल बल को उत्पन्न करता है। वर्तमान

विज्ञान एक unified force की परिकल्पना कर रहा है, वस्तुतः **यह बल ही unified force है परन्तु इसे किसी भौतिक तकनीक से नहीं जाना जा सकता।**

इस सृष्टि में जब कोई मूल कण वा तरंग आदि पदार्थ उत्पन्न होता है, तब वह निष्क्रिय ही होता है परन्तु तुरन्त ही सक्रिय मनस्तत्त्व उसे आच्छादित करके नाना प्रकार के प्राण तत्त्वों से युक्त कर उसे सक्रिय व बलवान् बना देता है। यह क्रिया इतनी शीघ्रता से होती है कि उस कण को उत्पन्न होते ही बल क्रिया आदि से पूर्णतः सम्पन्न ही माना जाता है। ऐसा वह परमाणु वा क्वाण्टा सक्रिय मनस्तत्त्व के सूक्ष्म बल वा प्राण-बलों के द्वारा अन्य परमाणु व क्वाण्टाज् को अपने साथ संगत करने लगता है। प्राणादि रश्मियां भी इसी प्रकार परस्पर इस सक्रिय मनस्तत्त्व द्वारा ही संगत होती हैं। इससे सम्पूर्ण सृष्टि में श्रृंखलाबद्ध रूप से सृजन प्रक्रिया चलती रहती है।।
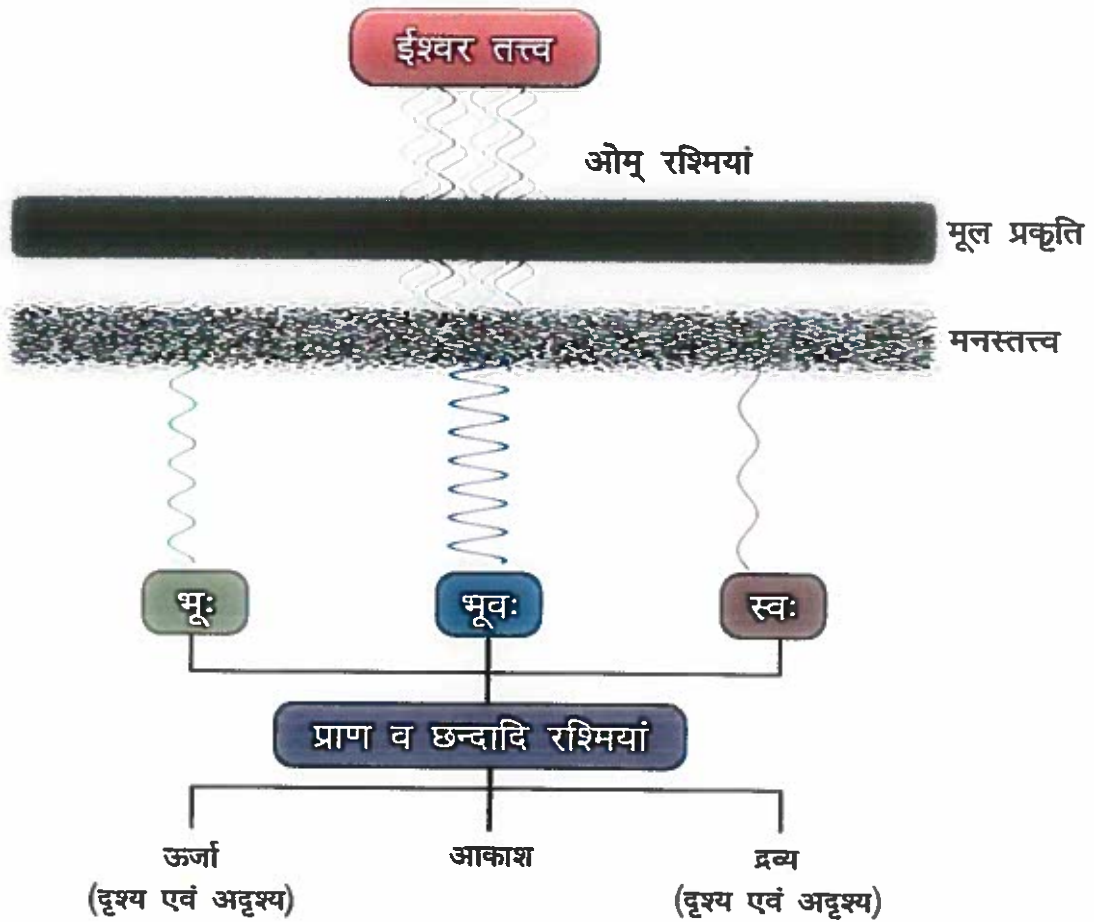
चित्र २४.१ ईश्वर प्रेरणा से सूक्ष्म पदार्थों का निर्माण

३. इह रमेह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिरग्नेऽवाट् स्वाहाऽवाळिति।।
स यदिह रमेत्याहास्मिन्नेवैनांस्तल्लोके रमयतीह रमध्वमिति यदाह प्रजामेवैषु तद्रमयतीह धृतिरिह स्वधृतिरिति यदाह प्रजां चैव तद्वाचं च यजमानेषु दधात्यग्नेऽवाळिति रथन्तरं स्वाहाऽवाळिति बृहत्।।
देवानां वा एतन्मिथुनं यद्बृहद्रथंतरे, देवानामेव तन्मिथुनेन मिथुनमवरुन्धते; देवानां मिथुनेन मिथुनं प्रजायन्ते, प्रजात्यै।।
प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद,।।

ते ततः सर्पन्ति, ते मार्जयन्ते, त आग्नीध्रं संप्रपद्यन्ते; तेषां य एतामाहुतिं विद्यात् स ब्रूयात् समन्वारभध्वमिति स जुहुयात्।।
उपसृजन् धरुणं मातरं धरुणो धयन्, रायस्पोषमिषमूर्जमस्मासु दीधरत् स्वाहेति।।
रायस्पोषमिषमूर्जमवरुन्ध आत्मने च यजमानेभ्यश्च यत्रैवं विद्वानेतामाहुतिं जुहोति।।३।।

व्याख्यानम्- दशम अहन् अर्थात् मनस्तत्त्व के उत्कर्ष काल में "इह रमेह रमध्वम्...... अवाट्" छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह ऋचा किसी भी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं है। यजुर्वेद ८.५१ के पूर्वार्ध में किंचित् पाठ भेद से यह इस प्रकार विद्यमान है- "इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा"। हमारे मत में इस कण्डिका में दर्शायी हुई ऋचा इस प्रकरण में ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होती है। यह भी यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र की भांति रति देवा ऋषि अर्थात् मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व के मिथुन से उत्पन्न होती है। इसका देवता प्रजापति और छन्द आर्ची निचृद् गायत्री है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व का मिथुनरूप तीव्र तेज और बल से युक्त होता है अर्थात् पूर्वोक्त सक्रिय मनस्तत्त्व तीक्ष्ण रूप धारण करता है। इसके अन्य प्रभाव से यह सक्रिय मनस्तत्त्व लोक निर्माण प्रक्रिया में नाना प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को नानाविध क्रीड़ा कराता हुआ अपने तेज में धारण करते हुए सर्वत्र वहन करता रहता है, जिससे वे पदार्थ विभिन्न उत्तम क्रियाओं के द्वारा नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियों को उत्पन्न करते हुए अग्नि रूप में प्रकट करते हैं।।

इस कण्डिका में उपर्युक्त छन्द रश्मि का प्रभाव स्वयं ग्रन्थकार विस्तार से बताते हुए कहते हैं कि "इह रमेत्" के प्रभाव से यह सक्रिय मनस्तत्त्व सर्वप्रथम सूक्ष्म प्राण व छन्द रश्मियों को क्रीड़ा कराता है और प्रारम्भ में उनकी गति अति तीव्र एवं व्यापक न होकर सीमित क्षेत्र में कम्पनों के रूप में होती है। परमाणु व क्वाण्टाज् की अवस्था में भी प्रारम्भिक गति इसी प्रकार की होती है। इसके पश्चात् धीरे-२ गति की तीव्रता बढ़ती हुई विद्युदग्नि प्रकट होकर आकर्षण-प्रतिकर्षण बलों को उत्पन्न करती है। यह प्रक्रिया "इह रमध्वम्" के प्रभाव से होती है। इस सृष्टि में प्राण एवं अन्न इन दो रूपों में पदार्थ प्रकट होते हैं। {रथंतरम् = अपानो रथन्तरम् (तां.७.६.१४), अग्निरेष यद्रथन्तरम् (जै.ब्रा.१.३३०,३३२)। बृहत् = प्राणो बृहत् (तां.७.६.१४), प्राणो बृहतः (रूपम्) (ऐ.आ.३.१.६), इन्द्रस्य बृहत् (साम) (मै.२.३.७)} इसके पश्चात् "इह धृतिरिह स्वधृतिः" इन पदों के प्रभाव से सक्रिय मनस्तत्त्व सभी प्रकार के परमाणु व रश्मि आदि पदार्थों को धारण करता हुआ बांधता है और उन परमाणुओं का व्यान तत्त्व प्रखर होकर प्राणापान के साथ विद्युदग्नि को प्रकट करता है, जिसके कारण वे परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ स्थायी रूप से बल आदि व्यवहारों से युक्त हो जाते हैं। इसी के कारण विभिन्न संयोज्य परमाणुओं में नाना प्रकार की छन्दादि रश्मियां भी समाने लगती हैं, जिससे वे परमाणु आदि पदार्थ तीव्र तेज और बलों से युक्त होने लगते हैं। इसके पश्चात् "अग्नेऽवाट्" इस पदद्वय के प्रभाव से रथन्तर रूप प्रकट होता है अर्थात् ये पद ही रथन्तर रूप हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इन दोनों पदों के प्रभाव से अपान तत्त्व समृद्ध होता हुआ अग्नि तत्त्व को भी समृद्ध करता है। अपान और अग्नि का सम्बन्ध बताते हुए एक तत्त्ववेत्ता ऋषि का कथन है- अग्निरपानः (जै.उ.४.११.१.६)। इस अपान के प्रभाव से परमाणु आदि पदार्थों में गति समृद्ध होती है। इसी गुण के कारण यह रथन्तर रूप होकर विभिन्न रश्मियों को तेजस्विनी बनाकर तारक गुणों से सम्पन्न बनाता है। इसके पश्चात् "स्वाहाऽवाट्" का प्रभाव बतलाते हुए महर्षि लिखते हैं कि यह पदद्वय बृहत् रूप होता है, जिसके प्रभाव से यह प्राण तत्त्व को समृद्ध करता हुआ सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व को भी समृद्ध और व्यापक बनाता है। जैसा कि हम जानते हैं कि इन्द्र सभी बलों में श्रेष्ठ होता है, इस कारण इसके प्रभाव से परमाणु आदि पदार्थ बल गुण से विशेष युक्त होते हैं।।

ये उपर्युक्त बृहत् एवं रथन्तर रूपी "स्वाहाऽवाट्" एवं "अग्नेऽवाट्" देवों के मिथुनरूप हैं, मानो ये मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व के मिथुनरूप अर्थात् सक्रिय मनस्तत्त्व का रूप होकर इन्द्र और अग्नि के मिथुन को उत्पन्न करते हैं किंवा बल और गति दोनों को ही एक साथ उत्पन्न करते हैं। इसके कारण ही प्रत्येक बलसम्पन्न परमाणु आदि पदार्थ में गति गुण विद्यमान होता है और प्रत्येक गतिशील

पदार्थ में वल गुण अवश्य विद्यमान होता है। इस कारण सक्रिय मनस्तत्त्व से प्रेरित होकर विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ गति और क्रीड़ा करते हुए प्रदीप्त होकर परस्पर नानाविध संघात करते हैं। सृष्टि रचना के लिए गति और वल दोनों की ही विद्यमानता अनिवार्य होती है। अग्नि और इन्द्र वा गति और वल के मिथुन के कारण ही नाना प्रकार के मिथुन उत्पन्न होते हैं। इन सवमें प्राण एवं अपान की अनिवार्य भूमिका होती है। इन दोनों के युग्म भी सक्रिय मनस्तत्त्व द्वारा ही उत्पन्न होते हैं और फिर इसी प्रकार मरुद् रश्मियों, छन्द रश्मियों, नाना प्रकार के परमाणुओं के युग्म वनने की श्रृंखला चल पड़ती है। जव इस प्रकार की स्थिति इस ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होती है, तव नाना प्रकार की रश्मियों और परमाणुओं के द्वारा नाना प्रकार के नवीन-२ युग्म उत्पन्न होकर अनेकों पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।।+।।

तदुपरान्त उपर्युक्त सभी प्रकार के युग्म पुनः गतिशील होते हैं एवं उनके मार्ग, गति एवं वल आदि और अधिक शुद्ध होते जाते हैं। {आग्नीध्रम् = द्यावापृथिव्यो वा ऽएष यदाग्नीध्रः (श.१.८.१.४१), वसन्त आग्नीध्रस्तस्माद् वसन्ते दावाश्चरन्ति तद् ह्यग्निरूपम् (श.११.२.७.३२), अन्तरिक्षमाग्नीध्रम् (तै. ब्रा.२.१.५.१)} इस समय वे रश्मि युग्म आग्नीध्र को प्राप्त करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय वसन्त ऋतु रश्मियां, जो मधु और माधव नामक दो मास रश्मियों का युग्म होती हैं, की उत्पत्ति होती है। ये रश्मियां सन्धानकारिणी एवं दीप्ति उत्पन्न करने वाली होती हैं और इनका युग्म वसन्त ऋतु रश्मि के रूप में नाना प्रकार के रश्मि आदि पदार्थों को वसाता हुआ प्रकाशित एवं अप्रकाशित परमाणुओं के साथ-२ आकाश तत्त्व को भी धारण करता है। इस समय अग्नि और इन्द्र तत्त्व के साथ-२ उनसे संयुक्त होते हुए पार्थिव एवं जलीय परमाणु भी उत्पन्न होते हैं। ये सव परमाणु वसन्त ऋतु रश्मियों की आहुति से देदीप्यमान होकर अन्य परमाणुओं को भी अपना अनुगामी वनाते हुए इस संयोग सृजन की प्रक्रिया को श्रृंखलावद्ध रूप से आगे वढ़ाते हैं।।

तदनन्तर "उपसृजन् धरुणं मातरं धरुणो धयन्, रायस्पोषमिषमूर्जमस्मासु दीधरत् स्वाहा" की उत्पत्ति होती है। यह ऋचा किसी भी वेद संहिता में उपलव्ध नहीं है। यजुर्वेद ८.५१ में जगती छन्द के अन्तिम दो पाद इस प्रकार विद्यमान हैं-

"उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा"।

हमारे मत में कण्डिका में दर्शायी गयी ऋचा भी उपर्युक्त यजुर्मन्त्र की भांति पूर्वोक्त रति देवा ऋषि से उत्पन्न होती है तथा इसका देवता भी प्रजापति है। इसका दैवत एवं छान्दस प्रभाव पूर्ववत् समझें। ध्यातव्य है कि इसका छन्द निचृदनुष्टुप् है। इस कारण यह छन्द रश्मि पूर्वोत्पन्न विभिन्न छन्दादि रश्मियों को अनुकूलतापूर्वक थामती हुई तेज और वल की दृष्टि से और भी समृद्ध करती है। इसके अन्य प्रभाव से पूर्वोक्त सक्रिय मनस्तत्त्व वसन्तादि रश्मियों को अन्य रश्मियों के साथ संयोजित करता हुआ आकाश तत्त्व को अवशोषित वा संकुचित करता है। इसके साथ ही सभी परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार की छन्द और मरुद् रश्मियों से पुष्ट करता हुआ उनमें संयोजक वलों को विशेष रूप से धारण कराता है, जिसके कारण वे पदार्थ सभी प्रकार की क्रियाओं को उत्तम रीति से करने में समर्थ होते हैं।।

इस प्रकार की स्थिति वनने पर सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ नाना प्रकार की मरुद् और छन्द रश्मियों के द्वारा समृद्ध और पुष्ट होकर अपने स्वयं के लिए और अपने साथ संगत होने वाले अन्य परमाणु आदि पदार्थों को नाना प्रकार के वल और दीप्तियों से समृद्ध करने हेतु सृष्टि प्रक्रिया को गति देते हैं। वे अपने आकर्षण व धारक वलों के द्वारा एक-दूसरे को रोकते, थामते और वांधते हुए नाना प्रकार के नवीन-२ पदार्थों को उत्पन्न करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- तदनन्तर **मनस्तत्त्व** के उत्कर्ष काल में एक गायत्री और एक अनुष्टुप् रश्मि उत्पन्न होती है। इस समय **मनस्तत्त्व** और भी अधिक सक्रिय होकर विभिन्न प्रकार की **प्राण** रश्मियों के मरुद् और छन्द रश्मियों के साथ युग्म वनाता है। ये युग्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सर्वत्र फैलकर नाना

प्रकार की क्रीड़ाएं करने लगते हैं। इसके साथ ही नाना प्रकार की छन्द रश्मियां भी परस्पर युग्म बनाने लगती हैं। साथ ही इनके नाना प्रकार के समूह भी उत्पन्न होकर इस श्रृंखला को निरन्तर आगे बढ़ाते रहते हैं। इसी श्रृंखला में **अपान प्राण की प्रधानता से क्वाण्टाज़् उत्पन्न होते हैं और प्राण नामक प्राण तत्त्व की प्रधानता से इन्द्र तत्त्व अर्थात् विद्युत् की उत्पत्ति होती है।** ये दोनों ही प्रकार के कण अर्थात् क्वाण्टाज़् एवं विद्युदावेशित मूल कण दोनों ही बल और गति से भी युक्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् धीरे-२ ये सभी कण और क्वान्टाज़् पारस्परिक संयोग और संघात करने लगते हैं, जिससे अन्य कणों की उत्पत्ति भी होने लगती है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विद्युत् चुम्बकीय तरंगें और विद्युदावेशित तरंगें व्याप्त हो जाती हैं।।

ॐ इति २४.3 समाप्तः ॐ

अथ २४.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. ते ततः सर्पन्ति; ते सदः संप्रपद्यन्ते; यथायथमन्य ऋत्विजो व्युत्सर्पन्ति; संसर्पन्त्युद्गातारस्ते सर्पराज्ञ्या ऋक्षु स्तुवते।।
इयं वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञीयं वा अलोमिकेवाग्र आसीत् सैतं मन्त्रमपश्यदाऽयं गौः पृश्निरक्रमीदिति; तामयं पृश्निर्वर्ण आविशन्नानारूपो यं यं काममकामयत, यदिदं किंचौषधयो वनस्पतयः सर्वाणि रूपाणि।।
पृश्निरेनं वर्ण आविशति, नानारूपो यं यं कामं कामयते य एवं वेद।।

{सदः = छेद्यं वस्तु (म.द.ऋ.भा.५.६१.२), सदसी द्यावापृथिवीनाम (निघं.३.३०), ऐन्द्रं हि सदः (श.३.६.१.२२), प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः (तां.६.४.११)। उद्गाता = प्राण उद्गाता (कौ.ब्रा.१७.७)}

व्याख्यानम्– तदनन्तर वे पूर्वोक्त परमाणु आदि पदार्थ पुनः अग्रिम अवस्था को प्राप्त करने लगते हैं। वे सदः अर्थात् प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के परमाणुओं की नानाविध संयोगादि क्रियाओं को व्यापक रूप से गति देने लगते हैं। इस समय वे परमाणु इन्द्र तत्त्व से तीव्रता से सम्पन्न होते हैं। इस समय विभिन्न प्रकार की ऋतु रश्मियां भी अनुकूलता के साथ सक्रिय होकर अपने-२ उचित मार्गों पर विशेष रूप से प्रवाहित होने लगती हैं। इन ऋतु रश्मियों के साथ-२ विभिन्न प्रकार की प्राण एवं छन्दादि रश्मियां भी मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व के मिथुन रूपों के द्वारा अच्छी प्रकार गतिशील हो उठती हैं। उन सब रश्मियों को विशेष प्रकाशित और सक्रिय करने के लिए सार्पराज्ञी ऋषि {सार्पराज्ञी = वाग्वै सार्पराज्ञी (कौ.ब्रा.२७.४)} अर्थात् चमकती हुई गमन करने वाली सूक्ष्म वागू रश्मियों से सार्पराज्ञी सूर्यदेवताक ऋ.१०.१८९ सूक्त की निम्न क्रमानुसार उत्पत्ति होती है–

(१) आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः।।१।।

इसका छन्द निचृद् गायत्री है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से ये ऋषि प्राण रश्मियां और विभिन्न प्रकार की प्रकाश रश्मियां तीव्र तेज और बल से युक्त होती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न पार्थिव परमाणु गमन करते हुए प्रकाशित पालक परमाणुओं की ओर अग्रसर होकर विविध रूप धारण करके माता रूपी आकाश तत्त्व में स्थित होते हैं, इसके साथ ही विभिन्न वागू रश्मियां व्यान रश्मियुक्त ऋतु रश्मियों की ओर अग्रसर होकर आकाश तत्त्व में स्थित होती हैं।

(२) अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम्।।२।।

इसका छन्द विराड् गायत्री है। इसका दैवत व छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्रकाश रश्मियों की दीप्ति प्राण से अपान की ओर सतत विचरण करती हुई अग्नि के परमाणुओं को व्यापक आकाश में प्रकाशित करती है। इसका तात्पर्य यह है कि अग्नि के परमाणुओं में तेज सूक्ष्म रूप में प्राणापान के मध्य सतत विचरण करता है।

(३) त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभिः।।३।।

इसका छन्द गायत्री है। इसका देवत एवं छान्दस प्रभाव यथावत् समझें। इसके अन्य प्रभाव से {पतंगाः = अश्वनाम (निघं.१.१४), प्राणो वै पतंगः (कौ.ब्रा.८.४)। धाम = अंगानि वै धामानि (काश.४.३.४.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} वाक् तत्त्व सात प्रकार की छन्द रश्मियों, ग्यारह प्रकार की प्राण रश्मियों एवं बारह प्रकार की मास रश्मियों, इन कुल ३० रूपों वा अंगों वाला होकर विविध प्रकार से प्रकाशित होता है। वह नाना प्रकार की आशुगतियों को धारण करके प्रकाशित और अप्रकाशित सभी प्रकार के परमाणुओं को अपनी दिव्यता से उत्पन्न करता है।

ये तीनों छन्द रश्मियां विभिन्न प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को विशेष सक्रिय और प्रकाशित करती हैं।।

{लोम = छन्दांसि वै लोमानि (श.६.४.१.६), लोमैव हिंकारः (जै.उ.१.१२.२.६), पशवो वै लोम (तां.१३.११.११)} अब महर्षि लिखते हैं कि ये वाग् रश्मियां ही सर्पराज्ञी कहलाती हैं, क्योंकि ये विभिन्न प्रकार के गमन करते हुए परमाणु आदि पदार्थों की स्वामिनी होती हैं अर्थात् उनका नियंत्रण व संचालन वाग् रश्मियों के द्वारा ही होता है। यहाँ महर्षि वाग् रश्मियों के पूर्ण स्वरूप के विषय में लिखते हैं कि ये रश्मियां पहले लोमरहित होती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये रश्मियां पहले 'हिम्' रश्मिरूप सूक्ष्म मरुद् रश्मियों से विहीन होती हैं, जिसके कारण ये विशेष तेजयुक्त नहीं होती। 'हिम्' रश्मियों के विषय में तत्त्ववेत्ताओं का कथन है- "वज्रो वै हिङ्कारः (कौ.ब्रा.३.२), रश्मय एव हिङ्कारः (जै.उ.१.११.१.६), हिङ्कारः एव अहोरात्राणि (ष.३.१)। इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि 'हिम्' रश्मियों से विहीन वाग् रश्मियां विशेष शक्तिशाली नहीं होती। उस समय उपर्युक्त तृच रूप छन्द रश्मिसमूह की उत्पत्ति होती है। उसके प्रभाव से ये छन्द रश्मियां विभिन्न प्रकार के रूप और रंग धारण करके आकाश में सर्वत्र प्रविष्ट होती हैं। उसके पश्चात् ये औषधि अर्थात् ऊष्मा को धारण करती हुई एवं विभिन्न प्रकाश रश्मियों का उत्पादन व पालन करती हुई सभी प्रकार के रूपों में प्रकट होकर अन्तरिक्ष को भर देती हैं। इस कार्य के लिए वे 'हिम्' रश्मियों के साथ-२ प्राणापान रश्मियों को भी नाना प्रकार से आकर्षित करके अपने साथ संगत करती रहती हैं।।

ब्रह्माण्ड में इस प्रकार की स्थिति बनने पर सम्पूर्ण आकाश नाना प्रकार के रूप रंगों से युक्त नाना प्रकार की रश्मियों से व्याप्त हो जाता है। इन सभी क्रियाओं के पीछे **चेतन ईश्वर तत्त्व की सृष्टि प्रयोजनानुसार** कामना ही मुख्य निमित्त कारण होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- मनस्तत्त्व के उत्कर्ष काल में ही ३ गायत्री छन्द रश्मियों का एक समूह उत्पन्न होता है। इन छन्द रश्मियों के उत्पन्न होने के पूर्व ब्रह्माण्ड में उत्पन्न सभी छन्दादि रश्मियां हीन बलयुक्त होती हैं। उस समय ये तीन गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होकर उन्हें प्राण, अपान एवं **'हिम्'** रश्मियों से युक्त करके उन सभी रश्मियों को तीव्र तेज और बल से युक्त कर देती हैं। आकाश में गमन करने वाली विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगें, विभिन्न मूल कणों वा अन्य कणों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं और उधर व्यानयुक्त ऋतु रश्मियां वाग् रश्मियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। विभिन्न विद्युत् चुम्बकीय तरंगों में प्राण और अपान दोनों ही रश्मियां विद्यमान होती हैं और उन दोनों के मध्य सूक्ष्म तेज सतत विचरण करता रहता है। **छन्द एवं प्राण रश्मियां मास रश्मियों के साथ संगत होकर विभिन्न मूल कणों और क्वाण्टाज् को उत्पन्न करती हैं।** सभी प्रकार की विद्युत् चुम्बकीय तरंगें और विद्युदावेशित तरंगें विभिन्न छन्दादि रश्मियों के द्वारा ही नियन्त्रित और संचालित होती हैं। इस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ सूक्ष्म रूप से विभिन्न रूप, रंगों से युक्त सूक्ष्म पदार्थ से भर जाता है।।

२. मनसा प्रस्तौति, मनसोद्गायति, मनसा प्रतिहरति, वाचा शंसति।।
वाक्च वै मनश्च देवानां मिथुनं; देवानामेव तन्मिथुनेन मिथुनमवरुन्धते, देवानां मिथुनेन मिथुनं प्रजायन्ते, प्रजात्यै, प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद।।
अथ चतुर्होतॄन् होता व्याचष्टे, तदेव तत् स्तुतमनुशंसति।।
देवानां वा एतद् यज्ञियं गुह्यं नाम, यच्चतुर्होतारस्तद्यच्चतुर्होतॄन् होता

व्याचष्टे,-देवानामेव तद् यज्ञियं गुह्यं नाम प्रकाशं गमयति।।
तदेनं प्रकाशं गतं प्रकाशं गमयति, गच्छति प्रकाशं य एवं वेद।।
यं ब्राह्मणमनूचानं यशो नर्छेदिति ह स्माऽऽहारण्यं परेत्य दर्भस्तम्बानुद्ग्रथ्य दक्षिणतो ब्रह्माणमुपवेश्य चतुर्होतॄन् व्याचक्षीत।।
देवानां वा एतद् यज्ञियं गुह्यं नाम, यच्चतुर्होतारस्तद्यच्चतुर्होतॄन् व्याचक्षीत देवानामेव तद् यज्ञियं गुह्यं नाम प्रकाशं गमयति; तदेनं प्रकाशं गतं प्रकाशं गमयति, गच्छति प्रकाशं य एवं वेद।।४।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त सभी परमाणु आदि पदार्थ मनस्तत्त्व द्वारा ही {प्र+स्तु = आरम्भ करना, उपक्रम करना, कारण बनना, पैदा करना} अपनी गति आरम्भ करके नाना सृजन क्रियाओं के कारण बनते हैं। मन की प्रेरणा से ही वे उत्कृष्ट रूप से प्रकाशित होते हैं तथा नाना प्रकार की ध्वनि तरंगों को उत्पन्न करते हैं। मन के द्वारा ही प्रेरित होकर वे एक दूसरे को अवरुद्ध करते एवं परस्पर आक्रमण, प्रत्याक्रमण करते हैं। वे परमाणु आदि पदार्थ वाक् तत्त्व के द्वारा तीक्ष्ण छेदक और भेदक सामर्थ्य को प्राप्त करते है। **वस्तुतः वाक् तत्त्व एवं मनस्तत्त्व दोनों के द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि प्रेरित और निर्मित है।।**

ये मन और वाक् तत्त्व दोनों ही देवों के मिथुन हैं अर्थात् सभी देव पदार्थ इन दोनों के युग्म रूप के द्वारा ही उत्पन्न होते तथा इनके द्वारा ही सभी प्रकार के बल और क्रियाएं प्राप्त करते हैं। मन और वाक् दोनों के गुण उपर्युक्तानुसार ही हैं। **मन अपरिमिति क्षेत्र में व्याप्त पदार्थ होता है, जबकि वाक् तत्त्व परिमित विस्तार वाला होता है। मनस्तत्त्व प्रायः एकरसवत् होता है, जबकि वाक् तत्त्व में सघनता वा विरलता, तीक्ष्णता वा मृदुता के चक्र आवश्यकतानुसार चलते रहते हैं।** वाक् तत्त्व के इस उतार-चढाव के द्वारा ही सृष्टि उत्पत्ति हो पाती है। शेष भाग का व्याख्यान पूर्व खण्ड के समान समझें।।

तदनन्तर मन और वाक् तत्त्व रूपी होता चतुर्होतृ ऋचाओं को उत्पन्न करते हैं। उन ऋचा रूप रश्मियों के उत्पन्न होने पर सब कुछ प्रकाशमान वा सक्रिय हो उठता है। इन ऋचाओं को अगले खण्ड में दर्शाया गया है।।

ऋषि इन चार छन्द रश्मियों के विषय में कहते हैं कि ये चारों छन्द रश्मियां सर्ग यज्ञ प्रक्रिया की गुप्त वज्र रश्मियों के रूप में होती हैं। इस कारण इन चतुर्होतृ रश्मियों के प्रकाशित वा प्रकट होने पर सभी प्रकार के देव पदार्थ (नाना परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ) वज्र एवं प्रकाश रूप को प्राप्त करते हैं अर्थात् हर प्रकार का पदार्थ इनके योग से और अधिक प्रकाशित व सक्रिय हो उठता है। इस विषय में अन्य ऋषियों का भी कथन है-

(१) एतद्वै देवानां परमं गुह्यं ब्रह्म यच्चतुर्होतारः (तै.ब्रा.२.२.१.४; २.२.६.३)
(२) एतद्वै देवानां ब्रह्मानिरुक्तं यच्चतुर्होतारः (काठ.६.१६)
(३) एतान्य उ ह वै देवानां गुह्यानि नामानि यच्चतुर्होतारः (जै.ब्रा.३.३०६)

इन सबसे प्रामाणित होता है कि लोक निर्माण की प्रक्रिया में इन छन्द रश्मियों की अनिवार्य भूमिका होती है और ये रश्मियां व्यापक परन्तु अव्यक्त रूप में होती हैं। एक अन्य ऋषि ने इनको सर्ग यज्ञ का कारण बताते हुए कहा है- "चतुर्होतारो वै यज्ञस्य योनिः" (मै.१.९.७)। इस प्रकार इन चतुर्होतृ रश्मियों के उत्पन्न होने पर प्रत्येक रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थ स्वयं प्रकाशित होकर अन्यों को भी प्रकाशित करने लगते हैं।।+।।

{अनूचानः = अनु+वच्+कान (आप्टेकोश)। दर्भः = मेध्या वै दर्भाः (श.३.१.३.१८), पवित्रं वै दर्भाः (तै.ब्रा.१.३.७.१), दर्भो वा ओषधीनामपहतपाप्मा (ऐ.आ.१.२.३)। स्तम्बः = ढेर (आप्टे कोष)। अरणः = संग्रामरहितः (म.द.ऋ.भा.६.७५.१९), अरममाणः (म.द.ऋ.भा.७.४.८), प्रेरितः (तु.म.द.ऋ.

मा.३.५३.२४)। यशः = यशो वै हिरण्यम् (ऐ.७.१८), पशवो यशः (श.१२.८.३.१), यशो वै सोमो राजा (ऐ.१.१३), प्राणा वै यशः (श.१४.५.२.५), अन्ननाम (निघं.२.७)। ब्राह्मणः = गायत्रो वै ब्राह्मणः (ऐ.१.२८)} अब महर्षि कहते हैं कि पूर्वोक्त सार्पराज्ञी ऋषि प्राण से उत्पन्न गायत्री तृच रश्मियों के द्वारा प्रेरित और प्रकाशित परमाणु आदि पदार्थ, जो अपने पीछे-२ अन्य परमाणु आदि पदार्थों को भी प्रकाशित करते हैं, वे अनुगामी परमाणु यदि पर्याप्त तेजस्वी नहीं हो पाते हैं अर्थात् वे प्राण और मरुद् रश्मियों से प्रचुरता से युक्त नहीं हो पाते हैं, साथ ही वे संयोज्य रूप भी धारण नहीं कर पाते हैं, तब वे ऐसे परमाणु आदि पदार्थ तेजयुक्त परमाणुओं से प्रेरित होते हुए भी नाना प्रकार के संघातों को सम्पन्न करने के सामर्थ्य से रहित ही होते हैं। उस समय वे सूक्ष्म असुरादि रश्मियों से मुक्त पवित्र आग्नेय रश्मियों के समूह से अपने को बांधते हुए तेजस्वी प्रेरक परमाणुओं के दक्षिणी भाग में व्याप्त होते हैं। उस समय ही इनसे पूर्वोक्त चतुर्होतृ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ये रश्मियां ही पूर्वोक्तानुसार नाना प्रकर के तेज, बल और क्रियाओं को समृद्ध करती हैं।।

इस कण्डिका का व्याख्यान विज्ञ पाठक पूर्वोक्तानुसार यथावत् समझ लेवें।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म कण एवं क्वाण्टाज् और इनसे सूक्ष्म रश्मियां वाक् एवं मनस्तत्त्व द्वारा ही गति, बल और प्रकाश को प्राप्त करती हैं। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक क्रिया और बल के पीछे मन एवं वाक् तत्त्व का युग्म ही उत्तरदायी है। **मनस्तत्त्व** सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के उत्पन्न पदार्थों में सबसे सूक्ष्म और व्यापक है। यह **तत्त्व सर्वत्र एकरस भरा रहता है। वाक् तत्त्व मनस्तत्त्व के विशाल सागर में तरंगों की भांति यथासमय, यथोचित मात्रा में ईश्वरीय तत्त्व द्वारा उत्पन्न किया जाता है** अर्थात् यह मनस्तत्त्व में उतार-चढ़ाव के रूप में उत्पन्न होता है। ये दोनों चार सूक्ष्म छन्द रश्मियों को उत्पन्न करते हैं, जिनका वर्णन अगले खण्डों में किया जायेगा। वे चारों सूक्ष्म छन्द रश्मियां ही सृष्टि प्रक्रिया को संचालित करने में प्रारम्भिक एवं अनिवार्य भूमिका निभाती हैं। इन रश्मियों के उत्पन्न होने की परिस्थिति इस प्रकार है-

जब पूर्वोक्त तीन गायत्री छन्द रश्मियों से प्रेरित और प्रकाशित विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ अन्य पदार्थों को प्रकाशित और संगत करने का प्रयत्न करते हैं, तब उनमें से कुछ ऐसे भी परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ रह जाते हैं, जो दुर्बल निस्तेज और कुछ निष्क्रिय होते हैं। उस समय वे ऐसे परमाणु शुद्ध विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के क्वाण्टाज् के दक्षिणी भाग में संगत होने का प्रयास करते हुए पूर्वोक्त चार सूक्ष्म छन्द रश्मियों को प्राप्त करते हैं, जिनके कारण वे सक्रिय और समृद्ध हो उठते हैं।।

❀ इति २४.४ समाप्तः ❀

꧁ अथ २४.५ प्रारभ्यते ꧂

**** तमसो मा ज्योतिर्गमय ****

१. अथौदुम्बरीं समन्वारभन्ते।।
इषमूर्जमन्वारभ इति।।
ऊर्ग्वा अन्नाद्यमुदुम्बरः।।
यद्वैतद्देवा इषमूर्जं व्यभजन्त, तत उदुम्बरः समभवत्, तस्मात् स त्रिः संवत्सरस्य पच्यते।।
तद्यदौदुम्बरीं समन्वारभन्त, इषमेव तदूर्जमन्नाद्यं समन्वारभन्ते।।
वाचं यच्छन्ति, वाग्वै यज्ञो यज्ञमेव तद् यच्छन्ति।।
अहर्नियच्छन्त्यहर्वै स्वर्गो लोकः; स्वर्गमेव तं लोकं नियच्छन्ति।।
न दिवा वाचं विसृजेरन् यद्दिवा वाचं विसृजेरन्नहर्भ्रातृव्याय परिशिंष्युः।।

व्याख्यानम्- तदनन्तर औदुम्बरी संज्ञक पूर्वोक्त चतुर्होतृ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है। चतुर्होता विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है-

"ब्रह्मवादिनो वदन्ति। किं चतुर्होतॄणां चतुर्होतृत्वमिति। यदेवैषु चतुर्धा होतारः। तेन चतुर्होतारः। तस्माच्चतुर्होतारः उच्यन्ते। तच्चतुर्होतॄणां चतुर्होतृत्वम्।" (तै.ब्रा.२.३.१.१)

इससे संकेत मिलता है कि जिस पदार्थ में चार होता रूप पदार्थों की विद्यमानता होती है, वह पदार्थ 'चतुर्होता' कहलाता है। इससे आगे इसी ग्रन्थ का कथन है- "इन्द्रो वै चतुर्होता" (तै.ब्रा.२.३.१.३) अर्थात् इन्द्र तत्त्व ही चतुर्होता है। इसमें चार होता कौन-२ से होते हैं, इस विषय में हमारा मत है कि इन्द्र तत्त्व में सूत्रात्मा वायु, प्राण-तत्त्व, वाक्-तत्त्व एवं मनस्तत्त्व रूप होता विद्यमान होते हैं। होता के विषय में वेद तत्त्व मनीषियों का कथन है-

"आत्मा वै यज्ञस्य होता" (कौ.ब्रा.६.६)
"प्राणो वै होता" (ऐ.६.८)
"मनो होता" (तै.ब्रा.२.१.५.६)
"वाग्वै होता" (कौ.ब्रा.१३.६)

ये चारों होता ही मिलकर सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व को उत्पन्न करते हैं। इनमें भी वाक् तत्त्व प्रधान होता है, ऐसा हमारा मत है। चतुर्होत्री छन्द रश्मियां सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व का ही रूप होती हैं अर्थात् ये मरुद् रश्मियों के रूप में विद्यमान होती हैं।

औदुम्बरी का तात्पर्य यह है कि इन छन्द रश्मियों से उदुम्बर की उत्पत्ति होती है। "उदुम्बर" शब्द का तात्पर्य एवं इस पदार्थ का स्वरूप अग्रिम कण्डिकाओं में पठनीय है।।

इस क्रम में सर्वप्रथम "इषमूर्जमन्वारभ" इस ऋचा रूप छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह ऋचा प्राजापत्या गायत्री छन्दस्क है। यह ऋचा औदुम्बरी कहलाती है। इसी कारण कहा गया है- "प्राजापत्यो वा उदुम्बरः" (तां.६.४.१)। हमारे मत में इस ऋचा का देवता उदुम्बर है। इसी कारण इसे औदुम्बरी कहा गया है। इस छन्द रश्मि के प्रभाव से उदुम्बर तीव्र तेज और बलयुक्त होता हुआ नाना प्रकार की सृजन क्रियाओं को प्रारम्भ करता है। अनेक प्रकार के संयोजक बल उत्पन्न होकर संयोज्य परमाणुओं की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। औदुम्बरी के विषय में कुछ तत्त्ववेत्ताओं का कथन है- "असावौदुम्बरी" (द्यौः) (तै.सं.५.२.७.३; काठ.२०.५)। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस छन्द

रश्मि के प्रभाव से वैद्युत तेज उत्पन्न होता है।।

उदुम्बर संज्ञक पदार्थ के विषय में ग्रन्थकार का कथन है- {ऊर्ज् = ऊर्ज् अन्नं च रसं च (नि. ६.४३), ऊर्ग्वा आपो रसः (कौ.ब्रा.१२.१)} ऐसा संयोज्य गुण, जो इस छन्द रश्मि के प्रभाव से उत्पन्न होकर एक से दूसरे में संचरित होता हुआ व्याप्त हो जाता है। इसके कारण सूक्ष्म परमाणु आदि पदार्थ संयोजक वलों से युक्त होकर पारस्परिक संयोगादि क्रियाएं तीव्रता से करने लगते हैं। ऐसे वे सूक्ष्म परमाणु आदि पदार्थ भी उदुम्बर कहलाते हैं। उदुम्बर के विषय में अन्य कुछ तत्त्ववेत्ताओं का कथन है-

(१) अथास्य (प्रजापतेः) इन्द्र ओज आदायोदङ्ङुदक्रामत्स उदुम्बरोऽभवत् (श.७.४.१.३६)
(२) उदुम्बर ऊर्जा (त्वावत्) (तै.सं.७.४.१२.१)
(३) देवा यत्रोर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरा उदतिष्ठत्। (मै.१.६.५; ३.१.६)
(४) माँसेभ्य एवास्योर्गस्रवत्स उदुम्बरोऽभवत्। (श.१२.७.१.६)

मनस्तत्त्व से उत्पन्न ओज वा सूक्ष्मतम इन्द्र तत्त्व विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को लेकर उत्कृष्टता से उन्हें तारता है, इस कारण वह उदुम्बर कहलाता है। यहाँ ऐसा भी संकेत मिलता है कि यह सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व रूप उदुम्वर मास रश्मियों से भी स्रवित होता हुआ विभिन्न परमाणुओं में वलों को वांटता हुआ प्रकट होता है। ये दोनों एक ही पदार्थ के रूप हैं। मनस्तत्त्व से उत्पन्न होता हुआ पदार्थ ही मास रश्मियों के रूप में प्रकट वा प्रवाहित होता हुआ ऊर्जारूप प्रसिद्ध होता है। इसमें विभिन्न देव अर्थात् मन एवं वाक् तत्त्व के मिथुनों के साथ-२ प्राथमिक प्राण रश्मियों की भी भूमिका होती है। यह सूक्ष्म इन्द्ररूप उदुम्बर तत्त्व विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को तीन प्रकार से विस्तृत करता है, साथ ही यह पदार्थ उन परमाणु आदि पदार्थों को तीन चरणों में परिपक्व किंवा पूर्ण सतेज और सक्षम वनाता है। इसके साथ ही यह अपने तेज और वल के द्वारा उन परमाणु आदि पदार्थों का संप्लावक होता है। इस कारण उपर्युक्त औदुम्वरी ऋचा से संयोज्य वलों का प्रारम्भ होता है अर्थात् उन वलों को उत्पन्न करने के लिए ही इस छन्द रश्मि के द्वारा चतुर्होतृ संज्ञक छन्द रश्मियों का प्रारम्भ होता है और नाना प्रकार की संयोगादि क्रियाएं यहीं से विशेष रूप से प्रारम्भ होती हैं।।+।।+।।

इस उपर्युक्त औदुम्वरी छन्द रश्मि के द्वारा विभिन्न वाग् रश्मियों का आदान-प्रदान व नियमन किया जाता है। सभी परमाणु आदि पदार्थों में विभिन्न छन्द रश्मियों का विविध व्यवहार इसी छन्द रश्मि के द्वारा सम्भव व प्रारम्भ होता है और उनका नियन्त्रण भी इसी के द्वारा प्रारम्भ होता है। इस सृष्टि में विभिन्न वाग् रश्मियांयज्ञरूप ही हैं अर्थात् ये ही परस्पर विविध रूपों में संगत होकर नाना परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों को संगत करती हैं। इसके पश्चात् ही वे परमाणु आदि पदार्थ उत्पन्न होकर अपने-२ विविध कार्यों में नियुक्त व प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार वाग् रश्मियों के द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन व नियमन होता है। ध्यातव्य है कि नियन्त्रित छन्द रश्मियां ही विविध रूपों में प्रकट होकर इस सृष्टि को उत्पन्न करती हैं।।

{अहनु = अहर्वै वियच्छन्दः (श.८.५.२.५)} प्रारम्भ में विभिन्न छन्द रश्मियां परस्पर वियुक्तावस्था में विद्यमान होती हैं। उस ऐसी वियुक्तावस्था में ही उपर्युक्त छन्द रश्मियों द्वारा उन्हें नियन्त्रित किया जाता है। इनके नियमन से ही स्वर्गलोक की उत्पत्ति होती है अर्थात् इससे ही आकाश तत्त्व एवं प्रकाशादि से सम्पन्न अवस्था की उत्पत्ति होती है। यह अवस्था अपरिमित क्षेत्र में व्याप्त होती है, जिसमें व्यान प्राण की भी विशेष सक्रियता होती है। वह व्यान प्राण प्राणापान के साथ भी पूर्ण नियमित हो जाता है। आकाशतत्त्व का भी विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ के साथ नियमन हो जाता है। इसके साथ ही प्राण तत्त्व के साथ विभिन्न छन्द रश्मियों का नियमन व संगमन हो जाता है। यहाँ 'अहनु' का अर्थ देव पदार्थ भी है, इससे यह सिद्ध होता है कि **देव पदार्थ में वाक् तत्त्व का प्राण तत्त्व के साथ नियन्त्रित होना अनिवार्य है, अन्यथा देव पदार्थ की उत्पत्ति सम्भव नहीं होगी।।**

देव पदार्थ अग्नितत्त्व में वाक् तत्त्व का प्राण तत्त्व से वियोग नहीं होता अर्थात् ये सदैव मिथुन रूप में ही विद्यमान रहते हैं। यदि इनका परस्पर वियोग हो जाए। {परिशिष्युः = दध्युरिति सायणः} तव वे वाग् रश्मियां भ्रातृव्यरूप को ही उत्पन्न करती है। यहाँ भ्रातव्य पदार्थ असुर पदार्थ ही है, जो देव पदार्थ

का हरण करके उसे दूर प्रक्षिप्त वा प्रतिकर्षित करने हेतु सदैव प्रयासरत रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि **वाग् रश्मियों से विहीन प्राण रश्मियां ही आसुर रश्मियों का रूप धारण करती हैं** तथा वाक् तत्त्व के साथ मिथुनरूप प्राण रश्मियां देव पदार्थ के रूप में प्रसिद्ध होती हैं। इसी कारण महर्षि जैमिनी का कथन है-

"तद्वै दैव्यं मिथुनं यद् वाक् च प्राणश्च।" (जै.ब्रा.१.३०६)

अन्य महर्षि का कथन है- "प्राणानां वाग् ज्योतिः" (तै.सं.५.३.२.३)

अन्यत्र कहा है- "प्राणानां वाग् उत्तमा।" (तै.सं.५.१.६.१)

इन वचनों से भी सिद्ध होता है कि वाग् रश्मियों के विना प्राण रश्मियां ज्योतिर्विहीन ही होती हैं। इसी वात को ग्रन्थकार ने अन्य ग्रन्थ में इस प्रकार कहा है-

"वाग्वै माता, प्राणः पुत्रः।" (ऐ.आ.३.१.६) एवं "वाक् प्राणेन संहिता।" (ऐ.आ.३.१.६)

इस प्रकार प्राथमिक प्राण नामक प्राण तत्त्व का वाक् तत्त्व के साथ मिथुन सृष्टि की अनिवार्यता है अन्यथा सम्पूर्ण पदार्थ असुर पदार्थ का ही रूप हो जाएगा।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सर्वप्रथम एक प्राजापत्या गायत्री छन्द रश्मि उत्पन्न होती है। इसके प्रभाव से ब्रह्माण्ड की एक प्राथमिक अवस्था में विद्यमान विभिन्न रश्मि आदि पदार्थ तेज एवं संयोज्य वलों से युक्त होने लगते हैं। इसके साथ ही विभिन्न मूल कणों की उत्पत्ति होने लगती है। इसके साथ ही उन मूल कणों का भी पारस्परिक संयोग होकर द्वितीयक कणों का भी निर्माण होने लगता है। विद्युत् का सर्वाधिक सूक्ष्म रूप भी इसी काल में प्रकट होता है। क्वाण्टाज् की उत्पत्ति भी इसी समय होती है। इन सव कार्यों में विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियों की भूमिका होती है। इनके मिलन से ही ऊर्जा एवं द्रव्य की उत्पत्ति होती है। **जब प्राण रश्मियों के मरुद् वा छन्द रश्मियों के साथ उपयुक्त मिथुन बन जाते हैं, तब उनसे दृश्य पदार्थ व दृश्य ऊर्जा की उत्पत्ति होती है और जब प्राण रश्मियों का छन्दादि रश्मियों के साथ उपयुक्त मिथुन नहीं बन पाते हैं, तब डार्क मैटर व डार्क एनर्जी का रूप प्रकट होता है।** इससे सिद्ध होता है कि डार्क मैटर व डार्क एनर्जी या तो छन्दादि रश्मियों से विहीन प्राण रश्मियों का रूप होते हैं अथवा उनमें वाक् तत्त्व से प्राण रश्मियों के उपयुक्त मिथुन विद्यमान न होने से दोनों पृथक्-२ यदृच्छया अथवा परस्पर असम्बद्ध रूप में विद्यमान होते हैं।।

२. न नक्तं वाचं विसृजेरन्, यन्नक्तं वाचं विसृजेरन् रात्रीं भ्रातृव्याय परिशिंष्युः।।
समयाविषितः सूर्यः स्यादथ वाचं विसृजेरंस्तावन्तमेव तद् द्विषते लोकं परिशिंषन्ति।।
अथो खल्वस्तमित एव वाचं विसृजेरंस्तमोभाजमेव तद् द्विषन्तं भ्रातृव्यं कुर्वन्ति।।
आहवनीयं परीत्य वाचं विसृजेरन् यज्ञो वा आहवनीयः, स्वर्गो लोक आहवनीयो, यज्ञेनैव तत्स्वर्गेण लोकेन स्वर्गं लोकं यन्ति।।
यदिहोनमकर्म यदत्यरीरिचाम प्रजापतिं तत्पितरमप्येत्विति वाचं विसृजन्ते।।
प्रजापतिं वै प्रजा अनु प्रजायन्ते, प्रजापतिरूनातिरिक्तयोः प्रतिष्ठा, नैनानूनं नातिरिक्तं हिनस्ति।।
प्रजापतिमेवोनातिरिक्तान्यभ्यत्यर्जन्ति य एवं विद्वांस एतेन वाचं विसृजन्ते।।
तस्मादेवं विद्वांस एतेनैव वाचं विसृजेरन्।।५।।

व्याख्यानम्- महर्षि कहते हैं कि जिस प्रकार प्राण नामक प्राथमिक प्राण का वाक् तत्त्व से सदैव संयुक्त रहना सृष्टि रचना हेतु अनिवार्य है, उसी प्रकार रात्रिरूप अपान तत्त्व का भी वाक् तत्त्व से संयुक्त रहना सृष्टि प्रक्रिया हेतु अनिवार्य है। यदि अपान रश्मियों का वाग् रश्मियों से पार्थक्य हो जाता है वा रहता है, तव अपान तत्त्व भी पूर्ववत् अर्थात् प्राणतत्त्ववत् असुर तत्त्व का रूप धारण कर लेता है। अपान तत्त्व का वाक् तत्त्व से सम्वन्ध वतलाते हुए एक महर्षि का कथन है-

"वाच्यपानो नियतः वाचैव तदपानं दधार" (जै.ब्रा.१.२७५)। यहाँ 'नक्तम्' पद रात्रिवाचक है-

"नक्तमिति रात्रिनाम" (निघं.१.७) तथा 'रात्रि' के विषय में ग्रन्थकार ने अन्यत्र कहा है- "अहरेव प्राणो रात्रिरपानः" (ऐ.आ.२.१.५)।

इन वचनों से सिद्ध होता है कि वाक् तत्त्व द्वारा संगत व नियन्त्रित अपान रश्मियां ही देव पदार्थ का भाग होती हैं, अन्यथा वे भी असुर तत्त्व का भाग वा उत्पादिका बन जाती हैं।।

प्रलय प्रक्रिया

{विषितः = विषिते विमुक्ते (नि.६.३६)} अब प्राण अपानादि रश्मियों से वाक् तत्त्व के मुक्त होने की परिस्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि समा अर्थात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों से जब सूर्य्य अर्थात् विभिन्न प्राणापानादि रश्मियां मुक्त होने लगती हैं, उस समय उन प्राणादि रश्मियों से वाक् तत्त्व का विसर्जन होता है। **इस प्रकार की स्थिति महाप्रलय काल में होती है।** जब वह काल आता है, उस समय सर्वप्रथम विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में से प्राणादि रश्मियों का विसर्जन होने लगता है। तदुपरान्त वा तत्काल ही उन प्राणादि रश्मियों से वाक् तत्त्व विसर्जित होने लगता है। इसके कारण सभी लोक अर्थात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थ एवं विशाल लोक असुर पदार्थ के नियन्त्रण में आकर तीव्र प्रक्षेपक व प्रतिकर्षण बल के प्रभाव से बिखरने लगते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि में बिखराव की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। ध्यातव्य है कि यह **सम्पूर्ण प्रक्रिया समुचित प्रयोजनानुसार सर्वनियन्ता व सर्वकर्ता ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा से ही होती है।।**

इसके अनन्तर वे प्राणादि रश्मियां अस्तवत् हो जाती हैं अर्थात् शान्त जैसी हो जाती हैं। उस समय उनसे वाग् रश्मियां भी पूर्णतः मुक्त हो जाती हैं, उस समय असुर रश्मियां व असुर पदार्थ भी तमोभूत प्रकृति का भाग बनने लगता है। हाँ, इस प्रक्रिया में पहले वह असुर तत्त्व मनस्तत्त्व में विलीन होता है, **तदुपरान्त वह तथा अन्य समस्त पदार्थ (मनस्तत्त्व भी) प्रकृति पदार्थ में विलीन होकर सर्वथा** अन्धकार व **निष्क्रियता** में समाने लगता है।।

वाक् तत्त्व का विसर्जन कहाँ-२ होता है, यह बताते हुए कहते हैं कि सम्पूर्ण आहवनीय क्षेत्र में व्याप्त वाक् तत्त्व का विसर्जन होता है। 'आहवनीय' का अर्थ है कि सम्पूर्ण तेजस्वी लोक तथा इनके अतिरिक्त भी अन्य सभी लोक आदि स्थूल व सूक्ष्म पदार्थ जो-जो भी इस सृष्टि में कार्यरूप में उत्पन्न हुए होते हैं, इन सभी में प्राण एवं वाक् तत्त्व का ही व्यापार चलता है किंवा वाक् तत्त्व एवं प्राण तत्त्व से ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुयी है। इनके मेल से सृष्टि बनती है और इनके वियोग से प्रलय होती है। प्रलय की प्रक्रिया भी इस क्रम से होती है कि लोकों में सर्वप्रथम सूर्यादि लोकों के अन्दर प्राण तत्त्व का वाक् तत्त्व से वियोग होता है और उनका अस्तित्त्व समाप्त होता वा होने लगता है। उसके उपरान्त अन्य लोकों में यह प्रलय प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। जैसा कि हम जानते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि नाना पदार्थों के मेल से ही उत्पन्न होती है और यह मेल प्राण व वाक् तत्त्व के मेल से होता है। इस कारण प्रलय भी इसके विपरीत क्रम से होती है। इसी प्रकार सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति सब लोकों के पश्चात् होती है, इस कारण उनका प्रलय सर्वप्रथम प्रारम्भ होता है। प्राण व वाक् तत्त्व के वियोग से सभी छन्दादि रश्मियों का भी पारस्परिक वियोग होने लगता है। उसके पश्चात् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों का वियोग होकर प्रलयावस्था का प्रारम्भ हो जाता है। यह प्रक्रिया किसी एक क्षेत्र में नहीं बल्कि यह सम्पूर्ण सृष्टि में होती है और सम्पूर्ण सृष्टि का ही एक साथ विनाश प्रारम्भ होता है।।

वाक् तत्त्व के प्राण तत्त्व से वियोग की प्रक्रिया कैसे प्रारम्भ होती है? इसके उत्तर में ग्रन्थकार का कथन है कि इस प्रक्रिया के लिए निम्न छन्द रश्मि उत्तरदायिनी होती है-

"यदिहोनमकर्म यदत्यरीरिचाम प्रजापतिं तत्पितरमप्येतु।"

यह ऋचा किसी भी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं है। हमारे मत में यह ऋचा दो ऋचाओं का सम्मिलित रूप प्रतीत होता है। वे दो ऋचाएं १४ अक्षर वाली निचृद् आसुरी गायत्री तथा ११ अक्षर वाली भुरिग् आसुरी त्रिष्टुप् ये कुल मिलाकर २५ अक्षर होते हैं। इन दोनों रश्मियों (आसुरी) के प्रभाव से इतना प्रचण्ड आसुर प्रभाव उत्पन्न होता है कि विभिन्न देव पदार्थों में विद्यमान वाक् व प्राण तत्त्वों का पृथक्करण प्रारम्भ हो जाता है। इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से विभिन्न पृथक्करण कर्मों में प्रत्येक

न्यूनता वा अव्यवस्थितता दूर होकर सम्पूर्ण पार्थक्य प्रक्रिया व्यवस्थित व क्रमिक ढंग से होती है।

इसके साथ सभी पदार्थ सबके पितृरूप मनस्तत्त्व में समाने लगते हैं। यह बात हम पूर्व में भी लिख चुके हैं कि सम्पूर्ण पदार्थ स्वयं प्राण एवं वाक् तत्त्व भी पहले मनस्तत्त्व में विलीन होते हैं, तदुपरान्त प्रकृति अवस्था प्राप्त होती है। यहाँ 'प्रजापति' **शब्द का आशय परमात्म तत्त्व भी है।** इससे सिद्ध होता है कि **प्रकृति सहित सम्पूर्ण पदार्थ भी परमात्म तत्त्व में ही आश्रित रहता है। वही अन्तिम आश्रय है, वही सर्वप्रेरक व नियन्ता है।।**

सभी प्रजा अर्थात् उत्पन्न पदार्थ प्रजापति रूप मनस्तत्त्व के पीछे ही उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रकृति पदार्थ से सर्वप्रथम मनस्तत्त्व ही उत्पन्न होता है, तदुपरान्त मनस्तत्त्व से अन्य पदार्थ क्रमशः उत्पन्न होते हैं। **इस सृष्टि प्रक्रिया में पदार्थ की जो भी न्यूनाधिकता होती रहती है, उसका आश्रय वा समाधान मनस्तत्त्व ही प्रदान करता है अर्थात् न्यूनता की पूर्ति मनस्तत्त्व से होती है और अतिरिक्त पदार्थ मनस्तत्त्व में ही विलीन हो जाता है। इस मनस्तत्त्व की कुल मात्रा सदैव स्थिर रहती है।** उसमें न्यूनता वा अधिकता कभी नहीं होती। इससे सिद्ध होता है कि मनस्तत्त्व जब प्रकृति से उत्पन्न होता है, उसके पश्चात् महाप्रलय अवस्था के पूर्व तक उसकी कुल मात्रा स्थिर रहती है। मनस्तत्त्व का कुछ भाग विकृत होकर सृष्टि के रूप में प्रकट होता है और शेष भाग उस सृष्टि को न केवल आधार व प्रेरणा प्रदान करता है, अपितु सृष्टि प्रलय की नाना क्रियाओं व पदार्थों की क्षतिपूर्ति भी मनस्तत्त्व द्वारा ही निरन्तर होती है। इसके लिए मनस्तत्त्व अवस्थान्तर को निरन्तर प्राप्त होता रहता है। इसमें यह भी एक तथ्य है कि **मनस्तत्त्व स्वयं अपने उपादान कारणभूत प्रकृति पदार्थ तथा अन्त में अपने प्रेरक व सर्वतोनियन्त्रक परमात्म तत्त्व में सदैव आश्रित रहता है। यह परमात्मा तत्त्व सदैव एकरस व निर्विकार रहता है।।**

इस प्रकार आसुर रश्मि युग्म के प्रभाव से सभी प्रकार की उपर्युक्त क्रियाएं मनस्तत्त्व को लक्ष्य करके निरन्तर होती रहती हैं। **मनस्तत्त्व द्वारा** नाना रूप धारण करके **पदार्थ की आपूर्ति वा लय निरन्तर** चलते रहते हैं और प्राण एवं वाक् तत्त्व **परस्पर** वियुक्त होते रहकर प्रलय की **नाना क्रियाएं प्रारम्भ** व संचालित होती हैं। इस कारण उपर्युक्त आसुर रश्मिद्वय की उत्पत्ति अनिवार्यतः होती है। इनके अभाव में वाक् तत्त्व तथा प्राण तत्त्व का वियोग व्यवस्थित व क्रमबद्ध ढंग से नहीं हो सकेगा तथा पदार्थों का मनस्तत्त्वादि में विलय भी अव्यवस्थित ही होगा। इस कारण इनकी उत्पत्ति अनिवार्य रूप से होती है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- अपान रश्मियों के छन्द रश्मियों से पृथक् रहने वा होने पर भी विभिन्न रश्मियां डार्क मैटर एवं डार्क एनर्जी में परिवर्तित हो जाती हैं। जब विभिन्न प्राण रश्मियों का विभिन्न छन्द रश्मियों से वियोग होना होता है, उस समय आसुरी गायत्री व आसुरी त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के युग्म की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण प्राण व छन्द रश्मियों का वियोग होने लगता है। इससे सभी छन्दादि रश्मियां भी परस्पर वियुक्त होने लगती हैं। दृश्य पदार्थ का पतन तथा डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी का भारी उत्कर्ष होने लगता है। **इसके कारण मूल कण तथा क्वाण्टाज् की आन्तरिक संरचना से लेकर बड़े-२ लोक लोकान्तरों की संरचना में विक्षोभ होना प्रारम्भ होता है। शनैः-२ वे लोक लोकान्तर बिखरने लगते हैं। उनमें विद्यमान अणु, एटम्स व उनसे भी सूक्ष्म कणों व तरंगों की प्रकृति व संरचना अस्त-व्यस्त होने लगती है। बलों के स्वरूप व स्वभाव परिवर्तित हो जाते हैं, जिससे आकर्षण व धारण बलों का ह्रास, पुनः शनैः-२ पूर्ण विनाश हो जाता है तथा प्रतिकर्षण व प्रक्षेपक बलों में निरन्तर भारी वृद्धि होने लगती है। इनसे ही तारे, ग्रह, उपग्रह आदि से लेकर सूक्ष्म कण तक सभी पदार्थों में विस्फोट व बिखराव की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।** अन्ततः सम्पूर्ण सृष्टि में डार्क पदार्थ व डार्क एनर्जी का ही साम्राज्य हो जाता है। इसके कारण सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ के अतिरिक्त सम्पूर्ण डार्क मैटर व डार्क एनर्जी भी अपने कारणभूत मनस्तत्त्व में विलीन हो जाती है। **सम्पूर्ण सृष्टि की आयु में मनस्तत्त्व सदैव एकरस तथा निश्चित मात्रा में ही विद्यमान होता है।** उसमें न्यूनता वा अधिकता नहीं आने पाती। मनस्तत्त्व का बहुत बड़ा भाग सृष्टि रचना की प्रक्रिया में डार्क मैटर, डार्क एनर्जी, दृश्य रूप सम्पूर्ण कण वा विकिरण में परिवर्तित हो जाता है। सृष्टि काल में मनस्तत्त्व विकृत होकर जहाँ पदार्थ की न्यूनता की पूर्ति करता रहता है, वहीं अतिरिक्त पदार्थ का अपने में विलय भी करता रहता है। सृष्टि के सभी सूक्ष्मतम कणों

से लेकर स्थूलतम लोकों तथा तरंगों का निर्माण व विनाश कर्म मनस्तत्त्व की प्रेरणा से उसी के अन्दर सतत होते रहते हैं। अन्त में यह मनस्तत्त्व भी समस्त पदार्थ जगत् के साथ अपने वा सम्पूर्ण जड़ पदार्थ के मूल उपादान कारण प्रकृति में विलीन हो जाता है और **प्रकृति स्वयं सदैव चेतन सर्वकर्ता ईश्वर तत्त्व में आश्रित होती है।।**

☙ इति २४.५ समाप्तः ❧

अथ २४.६ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. अध्वर्यो इत्याह्वयते चतुर्होतृषु वदिष्यमाणस्तदाहावस्य रूपम्।।
ओं होतस्तथा होतरित्यध्वर्युः प्रतिगृणात्यवसितेऽवसिते दशसु पदेषु।।
तेषां चित्तिः स्रुगासी३त्।।
चित्तमाज्यमासी३त्।।
वाग् वेदिरासी३त्।।
आधीतं बर्हिरासी३त्।।
केतो अग्निरासी३त्।।
विज्ञातमग्नीदासी३त्।।
प्राणो हविरासी३त्।।
सामाध्वर्युरासी३त्।।
वाचस्पतिर्होतासी३त्।।
मन उपवक्तासी३त्।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व की उत्पादिका औदुम्वरी ऋचा जव उत्पन्न व प्रकाशित होती है, उस प्रकरण को विस्तार देते हुए कहते हैं कि उन छन्द रश्मियों को तीव्रता प्रदान करने हेतु मनस्तत्त्व एवं वाक् तत्त्व का मिथुनरूप होता 'अध्वर्यो' इस पद को सूक्ष्म रश्मिरूप में वार-२ उत्पन्न करता है। यह पदरूप सूक्ष्म छन्द रश्मि आहाव रूप होती है। अध्याय १० में जैसे 'शोंसावोम्' पद को आहाव कहा है, उसी प्रकार यहाँ 'अध्वर्यो' पद आहाव का कार्य करता है। ये दोनों ही आहाव संज्ञक पद त्र्यक्षर ही हैं अर्थात् ये दोनों ही दैवी अनुष्टुप् छन्द रश्मिरूप हैं। इस कारण ये दोनों ही विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को अनुकूलता से थाम कर उन्हें तीव्र तेज एवं वल से युक्त करते हैं। यहाँ केवल 'अध्वर्यो' पद का ही प्रसंग है। यह पदरूप छन्द रश्मि निरापद रूप से रश्मि आदि पदार्थों को संगत करने में विशेष सहायक होती है।।

जव मनस्तत्त्व से 'अध्वर्यो' आहावरूप रश्मि वार-२ उत्पन्न होती है, उसकी प्रतिक्रियास्वरूप 'ओं होतः तथा होतः' इस छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। यह जगती दैवी छन्दरूप रश्मि है। इसके कारण 'अध्वर्यो' यह आहाव रश्मि समस्त पदार्थसमूह में फैलती जाती है। इससे होता रूप मन एवं 'ओम्' वाग् रश्मि का मिथुन अर्थात् सक्रिय मनस्तत्त्व सूक्ष्म इन्द्र तत्त्व (पूर्वोक्त उदुम्वररूप) को तीव्रता प्रदान करता जाता है। उस समय नाना पदरूप लघु छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती जाती है तथा प्रत्येक लघु छन्द रश्मि के अन्त में यही जगती छन्द रश्मि उत्पन्न होकर उसे विस्तार प्रदान करने के साथ-२ संयोग-वियोग क्रिया को भी तीव्रता प्रदान करती है। इसे ही यहाँ अवसान के अन्त में उत्पन्न होना कहा है। ये लघु छन्द रश्मियां दस प्रकार की होती हैं, जिनको आगामी दस कण्डिकाओं के रूप में क्रमशः दर्शाया गया है। आचार्य सायण ने अपने आधियाज्ञिक भाष्य में आगामी कण्डिकाओं में दर्शाये पदों के अवसान के पश्चात् 'ओं होतः तथा होतः' के स्थान पर 'ओं होतः' के ही पाठ का विधान माना है, जवकि सवसे प्रारम्भ में 'ओं होतः तथा होतः' के पाठ का विधान माना है। हमें यह भी उचित प्रतीत होता है कि पदों अर्थात् आगामी लघु छन्द रश्मियों के प्रारम्भ में एक वार पूर्वोक्त दैवी जगती,

पुनः प्रत्येक लघु छन्द रश्मि के पश्चात् **'ओं होतः'** यह दैवी अनुष्टुप् की ही उत्पत्ति होती है। इसके प्रभाव से ये लघु रश्मियां मनस्तत्त्व रूप होता के साथ अनुकूलता से वंधी रहकर तेजस्विनी वनी रहती हैं। अव उन लघु ऋचाओं को क्रमशः दर्शाते हैं।।

यह दैवी जगती छन्द रश्मि है। इसके प्रभाव से मन एवं वाक् तत्त्व का परस्पर संचय व जागरण स्रुग् रूप होता है। स्रुक् के विषय में महामति याज्ञवल्क्य का कथन है-

"योषा वै स्रुग् वृषा स्रुवः" (श.१.३.१.६), "वाहू वै स्रुचौ" (श.७.४.१.३६)

इससे संकेत मिलता है कि मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' वाग् रश्मियों के प्रकट होने पर पदार्थ में योषा एवं वृषा रूप प्रकट होने लगते हैं। वे दोनों रूप वाहुरूप अर्थात् वलरूप में कार्य करने लगते हैं। **इस सृष्टि में सर्वप्रथम वल की उत्पत्ति होना आवश्यक है।** जगती छन्द होने से यह रूप तीव्रता से सर्वत्र फैलता जाता है।।

यह दैवी त्रिष्टुप् छन्द रश्मि है। इसके प्रभाव से चित्त अर्थात् सवका प्रेरक मनस्तत्त्व आज्य रूप होता है अर्थात् वह सम्पूर्ण रूप से संदीप्त तेज से युक्त हो जाता है। उस तेज से ही सम्पूर्ण पदार्थ में गति, क्षेपण आदि क्रियाओं की उत्पत्ति होती है। वल की तीव्रता वा तीक्ष्णता वढ़ने लगती है। तथा सभी रश्मि आदि पदार्थ इसी मनस्तत्त्व के द्वारा प्रेरित होते हैं। {आज्यम् = प्राणो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.८.१५.२,३), रेतो वाऽआज्यम् (श.१.६.२.७), छन्दांसि वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.३.५.३), यज्ञो वा आज्यम् (तै.ब्रा.३.३.४.१)} इस मनस्तत्त्व द्वारा विभिन्न प्राण व छन्द आदि रश्मियां संगमनीय रूप धारण करके सृजन कर्मों का वीजारोपण करती हैं।।

यह दैवी पंक्ति छन्द रश्मि होने से पूर्वोत्पन्न पदार्थों एवं कर्मों का विस्तार करती है। इसके द्वारा सभी छन्दादि रश्मियां वेदी रूप होकर नाना प्रकार से एक दूसरे में आहुत होने लगती हैं।।

यह दैवी जगती छन्द रश्मि है। यह पूर्वोक्त प्रक्रिया को दूर-२ तक फैलाती है। इससे सवको सव ओर से धारण करने वाला **'वर्हिः'** अर्थात् आकाश तत्त्व प्रकट होता है। यह आकाश तत्त्व ही सव पदार्थों का आधार वन जाता है। उस आकाश तत्त्व में नाना प्रकार की मरुद् एवं छन्दादि रश्मियां भर जाती हैं।।

यह दैवी त्रिष्टुप् छन्द रश्मि है। इससे सवका प्रज्ञापक अग्नि तत्त्व उत्पन्न होता है। विद्युत्, प्रकाशादि रूप में उत्पन्न अग्नि ही सृष्टि की नाना क्रियाओं का सूचक व प्रवर्तक रूप होता है। इस समय विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों की तीक्ष्णता एवं वल आदि की वृद्धि होती है। वस्तुतः विभिन्न छन्द व प्राणादि रश्मियों का सघन व तीक्ष्ण रूप ही अग्निरूप में प्रकट होता है। इसी कारण तत्त्ववेत्ताओं का कथन है-

"वागेवाग्निः" (श.३.२.२.१३), "मन एवाग्निः" (श.१०.१.२.३), "प्राणो वा अग्निः" (श.६.५.१.६८)

अर्थात् इन सव सूक्ष्म तत्त्वों के संगम व सम्पीडन से ही अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति होती है।।

यह दैवी जगती छन्द रश्मि है। इसके प्रभाव से पूर्वोत्पन्न पदार्थ तेजी से फैलते व परस्पर संयुक्त-वियुक्त होने लगते हैं। इससे अग्नि तत्त्वादि पदार्थ विविध रूप से प्रकाशित होने लगते हैं। उन पदार्थों का सम्प्रेषण भी विविध रूपों में होने लगता है।।

यह दैवी त्रिष्टुप् छन्द रश्मि है। इससे पूर्वोत्पन्न पदार्थ तीव्र तेज व वल से युक्त होते हैं। विभिन्न हविरूप मास रश्मियां प्राणवती होकर नाना प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने में गतिशील होती हैं। ये रश्मियां विभिन्न प्राणादि रश्मियों की हवियों से होने वाले होम को समृद्ध करती हैं।।

यह भी दैवी त्रिष्टुप् छन्द रश्मि है। इससे प्राणापान रश्मियों रूपी अध्वर्यु निरापद रूप से सामरूप को प्रकट करने लगता है अर्थात् नाना प्रकार की छेदन-भेदन की क्रियाएं तीव्र व सतेज होती हैं। नाना प्रकार की छन्द व प्राणादि रश्मियां परस्पर संधि व भेद करने लगती हैं।।

यह दैवी जगती छन्द रश्मि है। इससे सूत्रात्मा वायु रूप वाचस्पति और भी विस्तृत होने लगता है किंवा वह नाना पदार्थों का संगम तेजी से करने लगता है।।

यह भी दैवी जगती छन्द रश्मि है। इससे पूर्वोक्त पदार्थ व कर्म और भी विस्तृत होने लगते हैं। इससे मनस्तत्त्व प्रत्येक रश्मि आदि पदार्थों से निकटता से संगत होकर गति व प्रकाशादि से विभिन्न पदार्थों को और अधिक समृद्ध करता है। इसके साथ ही प्रेरक बल और भी तीव्र व विस्तृत होते हैं। मनस्तत्त्व सूत्रात्मा वायु के विशेष निकट रहता है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- पूर्व अध्याय में वर्णित प्राजापत्या गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति के पश्चात् तेरह विभिन्न प्रकार की दैवी छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। जिनमें से दस का पृथक् समूह होता है। इस सूक्ष्म स्तर पर मन, प्राण, विविध छन्द रश्मियों, मास रश्मियों व सूत्रात्मा वायु का व्यापार समृद्ध होता है। आकाश तत्त्व की धारणा शक्ति की उत्पत्ति भी इस काल में होती है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म क्रियाओं से विद्युत् तथा विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म पदार्थों में संयोग-वियोग का व्यवहार होता है। स्थूल पदार्थों के मध्य होने वाली क्रियाओं में भी इन सूक्ष्म रश्मियों का व्यापार अनिवार्य होता है, क्योंकि प्रत्येक स्थूल पदार्थ और उसकी स्थूल क्रियाएं उनके कारणभूत सूक्ष्मतम पदार्थ एवं उनकी क्रियाओं तक प्रभावी होती हैं, इस कारण इन सूक्ष्म छन्दादि रश्मियों का व्यवहार यहाँ दर्शाया गया है। लोक निर्माण प्रक्रिया के प्रकरण में सूक्ष्म तत्त्वों की विवेचना का यही कारण है। विशेष ज्ञान के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है।।

२. ते वा एतं ग्रहमगृह्णत; वाचस्पते विधे नामन्, विधेम ते नाम, विधेस्त्वमस्माकं नाम्ना द्यां गच्छ, यां देवाः प्रजापतिगृहपतय ऋद्धिमराध्नुवंस्तामृद्धिं रात्स्यामः।।
अथ प्रजापतेस्तनूरनुद्रवति ब्रह्मोद्यं च।।
अन्नादा चान्नपत्नी चान्नादा तदग्निरन्नपत्नी तदादित्यः।।
भद्रा च कल्याणी च; भद्रा तत्सोमः, कल्याणी तत्पशवः।।
अनिलया चापभया चानिलया तद्वायुर्न ह्येष कदा च नेलयत्यपभया तन्मृत्युः सर्वं ह्येतस्माद् बीभाय।।
अनाप्ता चानाप्या चानाप्ता तत्पृथिव्यनाप्या तद् द्यौः।।
अनाधृष्या चाप्रतिधृष्या चानाधृष्या तदग्निप्रतिधृष्या तदादित्यः।।
अपूर्वा चाभ्रातृव्या चापूर्वा तन्मनोऽभ्रातृव्या तत्संवत्सरः।।
एता वाव द्वादश प्रजापतेस्तन्व एष कृत्स्नः प्रजापतिस्तत्कृत्स्नं प्रजापतिमाप्नोति दशममहः।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त प्रकरण को विस्तार देते हुए कहते हैं कि उस समय अनेक परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ एक धारक बलसम्पन्न छन्द रश्मि का ग्रहण करके धारक बलसम्पन्न होने लगते हैं। वह छन्द रश्मि "वाचस्पते विधे नामन्................रात्स्यामः" है। यह किसी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं है। इसका छन्द भुरिग्जगती है। इसका देवता वाचस्पति प्रतीत होता है। इस कारण इसके दैवत व छान्दस प्रभाव से सूत्रात्मा वायु रश्मियों का व्यापार समृद्ध व विस्तृत होता है। इसके अन्य प्रभाव से वह वाक् पति सूत्रात्मा वायु {नाम = नामानि (प्राणस्य) दामानि (ऐ.आ.२.१.६), (दाम = दमनसाधनम् - म.द.ऋ.भा.१.१६२.८)} विभिन्न प्राणादि रश्मियों का दमन-नियन्त्रण करके परमाणु आदि पदार्थों को बांधता है। वह उन्हें बांध कर विशेष रूप से धारण करता है और उसी के कारण नाना वाग् रश्मियां भी प्रसिद्ध वा प्रकाशित होती हैं। इसी के कारण नाना प्राणादि रश्मियां संयोज्य पदार्थों को विशेष रूप से धारण करती हैं किंवा वे परमाणु आदि पदार्थ उस सूत्रात्मा वायु रश्मियों के संयोजक बलों को विशेष रूप से धारण करते वा वे रश्मियां उन पदार्थों को अपने संयोजक बलों से सिंचित करती हैं।

वह सूत्रात्मा वायु उन परमाणु आदि पदार्थों के साथ संगत वा विद्यमान वाग् रश्मियों के साथ दिव्यता को प्राप्त करता है अर्थात् सूत्रात्मा वायु के विना देव पदार्थों की उत्पत्ति सम्भव नहीं। विभिन्न वलों के पालक व कारण विभिन्न छन्द व प्राण रश्मियां एवं मनस्तत्त्व जिस स्तर पर समृद्ध होते हैं, उसी स्तर के वल विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार इस छन्द रश्मि के प्रभाव से नाना धारक वल सूक्ष्म स्तर पर समृद्ध होते हैं। तदनन्तर सभी रश्मि आदि पदार्थ सर्गयज्ञ रूपी प्रजापति के विस्तार एवं वलों के ऊर्ध्व गमन अर्थात् उत्कर्ष की ओर वढ़ते हैं। इसके लिए मन एवं वाक् तत्त्व के मिथुन वनने की प्रक्रिया विस्तृत होती है और इसके साथ नाना प्रकार के वलों की समृद्धि प्राणादि रश्मियों की समृद्धि के साथ-२ होने लगती है। अव छः युग्मों (पदार्थों के जोड़े) का वर्णन करते हैं, जो सर्गयज्ञ के विस्तार में प्रकट होते हैं वा अनिवार्य होते हैं। यह वर्णन आगामी कण्डिकाओं में क्रमशः दिया गया है।।+।।

इस सर्ग प्रक्रिया में 'अन्नाद' एवं 'अन्नपत्नी' नामक दो प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यहाँ अग्नि को अन्नाद तथा आदित्य को अन्नपत्नी कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि अग्नि तत्त्व ही संयोज्य परमाणुओं वा रश्मियों का भक्षण करता है, इस कारण इसे अन्नाद कहा गया है। उधर संयोज्य परमाणु आदि पदार्थों के संयोजक गुण प्राण वा मास रश्मियों के कारण ही उत्पन्न व संरक्षित रहते हैं, इस कारण प्राण व मास रश्मियों रूपी आदित्य को अन्नपत्नी कहा गया है। यह अग्नि तथा प्राण-मास रश्मियां मनस्तत्त्वरूपी प्रजापति के ही स्थूल रूप हैं तथा उसी के विस्तार में आश्रय पाते हुए सर्गयज्ञ रूपी प्रजापति का विस्तार करने के कारण प्रजापतिस्तनू कहलाते हैं।।

इसके अतिरिक्त 'भद्रा' एवं 'कल्याणी' नामक दो प्रकार के पदार्थ होते हैं। यहाँ सोमतत्त्व को भद्रा तथा पशु को कल्याणी कहा गया है। {भद्रा = भाजनवती (नि.१२.१७)} यहाँ सोम तत्त्व का अर्थ **प्रत्येक मूर्तिमान् पदार्थ है। सभी मूर्तिमान् पदार्थ विभक्त होने योग्य होते हैं तथा वे अमूर्तिमान् पदार्थों का आधार भी होते हैं।** 'पशु' शब्द का अर्थ मरुद् व छन्दादि रश्मियां हैं। ये रश्मियां ही कल्याणी अर्थात् कमनीय होती हैं। इन्हीं के आकर्षण-विकर्षण के द्वारा ही सभी मूर्तिमान् पदार्थ परस्पर संयुक्त वा वियुक्त होते रहते हैं। इन्हीं के मध्य मरुद् आदि रश्मियों का विनिमय चलता रहता है।।

तदुपरान्त एक अन्य युग्म की चर्चा करते हैं। वह युग्म 'अनिलया' तथा 'अपमया' नामक पदार्थों का होता है। यहाँ ग्रन्थकार ने वायु तत्त्व को 'अनिलया' तथा मृत्यु को 'अपमया' कहा है। वायु तत्त्व के अनिलया होने का आशय है कि यह तत्त्व न तो छिपता है और न यह रुक कर कहीं अपना आवास वनाता है, वल्कि वह सतत गतिशील रहकर सर्वत्र व्याप्तवत् रहता है। वायु तत्त्व अप्रतिहत गति से सतत चलता रहता है। {मृत्युः = तमो मृत्युः (काठ.१०.६; क.११.१० - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)} तमोरूप प्रकृति पदार्थ ही मृत्यु है, जिसमें कोई भी कम्पनादि क्रियाएं कभी नहीं होती, वल्कि उसमें विद्यमान पदार्थों में सभी क्रियाएं होती हैं। प्रत्येक पदार्थ में जो भी गति आदि क्रियाएं होती हैं, वे आकाश की विद्यमानता में ही होती हैं और आकाश तत्त्व स्वयं प्रकृति में विद्यमान रहता है। यदि अवकाश रूप आकाश का ग्रहण किया जाए, तो सम्पूर्ण अवकाश में प्रकृति पदार्थ एकरस होकर व्याप्त है और सभी क्रियाएं उसके अन्दर होती हैं परन्तु वह पदार्थ स्वयं निष्कम्प रहता है। इसी प्रकार इससे भी **सूक्ष्म तत्त्व ईश्वर सदैव निष्कम्प परन्तु सभी कम्पनों का मूल प्रेरक व आधार है।।**

अगला युग्म 'अनाप्ता' एवं 'अनाप्या' का है। यहाँ ग्रन्थकार ने पृथिवी को 'अनाप्ता' तथा द्यौ को 'अनाप्या' कहा है। पृथिवी अर्थात् अप्रकाशित मूर्तिमान् पदार्थ किसी में व्याप्त नहीं होते, वल्कि आकाश, वायु, अग्नि आदि तत्त्वों में व्याप्य होते हैं अर्थात् ये आकाशादि पदार्थ पृथिवी तत्त्व से सूक्ष्म होने के कारण उनमें व्याप्त होते हैं। इसी प्रकार द्यौ अर्थात् आकाश, अग्नि आदि तत्त्व किसी में व्याप्य नहीं होते, वल्कि वे पृथिवी आदि पदार्थों में व्याप्त होते हैं। इस प्रकार पृथिवी व द्यौ का सम्वंध व्याप्य व व्यापक का है। यहाँ इन दोनों पदार्थों को लोक मान कर इस प्रकार सम्वंध है कि द्युलोक पृथिवी लोक के द्वारा आप्य अर्थात् ग्राह्य नहीं है, वल्कि वह पृथिव्यादि अप्रकाशित लोकों को अपने प्रवल आकर्षण वल से प्राप्त व आकर्षित किए रहता है। इस प्रकार द्युलोक व पृथिवी लोकों का सम्वन्ध धारक व धृत का है।।

अगला युग्म 'अनाधृष्या' एवं 'अप्रतिधृष्या' का है। यहाँ अग्नि को अनाधृष्या तथा आदित्य को अप्रतिधृष्या कहा है।

{अनाधृष्यः = अन्यैर्धर्षितुमयोग्यः (म.द.य.भा.२७.७)। अप्रतिधृष्यः = अधर्षितुं योग्यान् प्रति वर्तमानः (तु.म.द.य.भा.३८.७)। अग्निः = गायत्री वा अग्निः (श.१.८.२.१३), गायत्रोऽग्निः (तै.सं.५.१.४.५), गायत्रो ह्यग्निः (मै.३.६.५)। आदित्यः = जागतोऽसावादित्यः (जै.ब्रा.२.३६), त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः (तां.४.६.२३)} इसका तात्पर्य है कि यह युग्म गायत्री तथा त्रिष्टुप् वा जगती का है। गायत्री छन्द रश्मियां अजेय होती हैं तथा त्रिष्टुप् छन्द रश्मियां उन गायत्री छन्द रश्मियों के द्वारा वहन की जाती हैं। ये दोनों ही छन्द रश्मियां सबसे अधिक तेज व वल से युक्त होती है। इसी कारण कहा गया है- "एते वाव छन्दसां वीर्यवत्तमे यद् गायत्री च त्रिष्टुप् च" (तां.२०.१६.८)।।

अव अन्तिम युग्म की चर्चा करते हैं। यह युग्म 'अपूर्वा' एवं 'अभ्रातृव्या' का है। यहाँ मनस्तत्त्व को 'अपूर्वा' तथा संवत्सर को 'अभ्रातृव्या' कहा गया है। मनस्तत्त्व को 'अपूर्वा' कहने का कारण यह है कि इस तत्त्व के पूर्व कोई भी उत्पन्न पदार्थ नहीं था, वल्कि प्रकृति रूप अनुत्पन्न तथा निरपेक्ष अनादि उपादान तत्त्व ही था। इस कारण उत्पन्न पदार्थों में मनस्तत्त्व ही आद्य पदार्थ है। {संवत्सरः = वाक् संवत्सरः (तां.१०.१२.७)} दूसरा पदार्थ है संवत्सर अर्थात् सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व। इसे अभ्रातृव्या इस कारण कहा है, क्योंकि इस सूक्ष्मतत्त्व को कोई भी असुरादि रश्मि किसी प्रकार की वाधा पहुँचा ही नहीं सकती। वस्तुतः इस स्तर पर कोई वाधक रश्मि न तो पहुँच पाती है और न ही इसकी उत्पत्ति के समय उत्पन्न होती है। मन वा वाक् का मिथुन सर्वत्रैव प्रसिद्ध है। ग्रन्थकार ने इसी ग्रन्थ में कहा है- "वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम्" (ऐ.५.२३)।।

यहाँ वाक् तत्त्व का तात्पर्य 'ओम्' आदि दैवी गायत्री छन्द रश्मियां ही ग्रहण करना योग्य है। ये कुल मिलाकर छः युग्मों में वारह तत्त्वों की चर्चा की गयी है। ये सभी पदार्थ सर्गयज्ञ रूपी प्रजापति का विस्तार करते हैं, साथ ही ये सभी तत्त्व स्वयं मनस्तत्त्व रूपी प्रजापति का ही विस्तार रूप होते हैं। सभी मनस्तत्त्व के ही विविध विकार होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रजापति रूपी लोकसमूह दशम अहन् अर्थात् मनस्तत्त्व के उत्कर्ष काल में उत्पन्न नाना पदार्थों को ही प्राप्त वा उनमें ही व्याप्त होता है। यह दशम अहन् की क्रियाएं ही लोक निर्माण की सर्वाधिक (पूर्वोक्त नव अहन् की क्रियाओं की अपेक्षा) सूक्ष्म व व्यापक होती हैं। प्रत्येक क्रिया के भीतर इनकी व्यापकता सदैव रहती है। इसी कारण तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कहा-

"अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः।" (तै.ब्रा.२.२.६.१), "स्वर्गो ह्येष लोको यद् दशममहः।" (जै.ब्रा.३.२८३)।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **दशम अहन्** अर्थात् मनस्तत्त्व के उत्कर्ष काल में ही विभिन्न प्राण तत्त्व एक जगती छन्द रश्मि से युक्त होते हैं। यह सूत्रात्मा वायु रश्मियों को विशेष समृद्ध व सक्रिय करती है। सूत्रात्मा रश्मियां प्राण रश्मियों को नियन्त्रित करके विभिन्न कण व क्वाण्टाज् को मर्यादित करती हैं। सभी प्रकार के मूल वलों की समृद्धि होती है। **कोई भी मूल बल सूत्रात्मा वायु के बिना समृद्ध नहीं हो सकता।** इन सवके पूर्व मन एवं सूक्ष्म वाक् तत्त्व, विशेषकर **'ओम्'** छन्द रश्मि का युग्म सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ वा गुण-कर्मों के लिए अनिवार्यतः उत्तरदायी होता है। इस सम्पूर्ण सृष्टि में कुल वारह प्रकार के पदार्थ छः प्रकार के युग्मों के रूप में विद्यमान वा क्रियारत रहते हैं। वे युग्म इस प्रकार हैं-

(१) अग्नि और आदित्य अर्थात् विद्युत् एवं प्राण-मास रश्मियों का युग्म। सभी वलों का मुख्य कारण विद्युत् है। यही तत्त्व सबको आकर्षित व अवशोषित करता है। नाना प्रकार के संयोग एवं वियोग की क्रियाएं विद्युत् के ही कारण होती हैं परन्तु विद्युत् की उत्पत्ति **प्राण व अपानादि** रश्मियों के कारण होती है। ये रश्मियां ही **विद्युत् आवेश को संरक्षित भी रखती हैं।**

(२) सभी प्रकार के द्रव्य कण व क्वाण्टाज् एवं छन्दादि रश्मियां। सभी कणों का निरन्तर छेदन-भेदन होता रहता है और वे सभी कण छन्दादि रश्मियों का ही सघन रूप होते हैं। उन कणों के मध्य कार्यरत वलों में छन्दादि रश्मियों की ही भूमिका होती है।

(३) वायु तत्त्व अर्थात् प्राण व छन्दादि रश्मियां एवं मूल प्रकृति। वायु रश्मियां सतत निर्वाध रूप से सर्वत्र गमन करने में सदैव समर्थ होती हैं तथा मूल प्रकृति में कभी कोई गति नहीं होती। वह एकरस

शान्त तथा पूर्ण निष्क्रिय-अंधकार रूप होती है। हाँ, सभी प्रकार के पदार्थ प्रकृति में ही निवास करते, उसी में गति व प्रकाश आदि कर्मों को करते हैं, पुनरपि मूल प्रकृति अक्षोभ अवस्था में ही रहती है। **ईश्वर तत्त्व प्रकृति का भी आवास व आश्रय होता है।**
(४) सभी प्रकार के कण एवं आकाश-विद्युत् आदि रश्मियां। सभी कणों में आकाश, विद्युत् व प्राणादि रश्मियां सदैव व्याप्त रहती हैं किंवा वे सभी कण इन्हीं के सघन रूप होते हैं। उधर सभी तारे व ग्रहादि लोकों का युग्म। सभी तारे अपने-२ परिवार के ग्रहों को अपने आकर्षण से धारण किए रहते हैं। किसी अप्रकाशित लोक के द्वारा कोई प्रकाशित लोक इस ब्रह्माण्ड में कहीं धारण नहीं किया जाता।
(५) सभी छन्द रश्मियों में गायत्री व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों का युग्म इस सृष्टि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण छान्दस युग्म है। गायत्री रश्मियां त्रिष्टुप् रश्मियों को वहन करती हैं।
(६) मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुन। यह सर्वाधिक सूक्ष्म युग्म है। सभी उत्पन्न पदार्थों में मन सर्वाधिक सूक्ष्म व आद्यतत्त्व है। इस युग्म को सृष्टि का कोई भी सूक्ष्म व तीक्ष्ण पदार्थ वाधा नहीं पहुँचा सकता। ये कुल वारह पदार्थ ही समग्र सृष्टि का विस्तार व उत्पादन करते हैं।।

३. अथ ब्रह्मोद्यं वदन्त्यग्निर्गृहपतिरिति हैक आहुः, सोऽस्य लोकस्य गृहपतिर्वायुर्गृहपतिरिति हैक आहुः, सोऽन्तरिक्षलोकस्य गृहपतिरसौ वै गृहपतिर्योऽसौ तपत्येष पतिर्ऋतवो गृहाः। येषां वै गृहपतिं देवं विद्वान् गृहपतिर्भवति, राध्नोति स गृहपती, राध्नुवन्ति ते यजमानाः। येषां वा अपहतपाप्मानं देवं विद्वान् गृहपतिर्भवत्यप स गृहपतिः पाप्मानं हतेऽप ते यजमानाः पाप्मानं घ्नतेऽध्वर्यो अरात्स्मारात्स्म।।६।।

व्याख्यानम्- {ब्रह्म = वाग् ब्रह्म (गो.पू.२.११), वाग्घि ब्रह्म (ऐ.२.१५), ब्रह्मैव वाचः परमं व्योम (तै.ब्रा.३.९.५.५), वागिति तद् ब्रह्म (जै.उ.२.३.३.६)} मनस्तत्त्व के विस्तार की चर्चा के उपरान्त अव व्यापक ब्रह्मरूप वाक् तत्त्व की महिमा का वर्णन करते हैं। यह वाक् तत्त्व अग्नि रूप है और ऐसा अग्निरूप वाक् तत्त्व गृहपति है, ऐसा कुछ वेदवेत्ताओं का मत है। अन्यत्र भी कहा गया है- "या वाक् सोऽग्निः" (गो.उ.४.११), "वाग्वाऽअग्निः" (श.६.१.२.२८)

इसका तात्पर्य है कि अग्नि तत्त्व ही विभिन्न पदार्थों का आवास-आधार एवं उनके वलों का पालक व रक्षक है। यहाँ वे वेदवेत्ता कहते हैं कि अग्नि तत्त्व इस लोक अर्थात् पृथिवी लोक का आधार व उसके वलों का स्वामी वा नियन्त्रक है। अग्नि तत्त्व से ही इन लोकों का निर्माण होता है तथा अग्नि तत्त्व इन लोकों में व्याप्त होता है। इस कारण अन्य मनीषियों का कथन है-

"आग्नेयी पृथिवी" (जै.ब्रा.३.१८६; तां.१५.४.८), "अग्निगर्भा पृथिवी" (श.१४.९.४.२१)

निरुक्त ने भी अग्नि का स्थान पृथिवी माना है। पुनः अन्य तत्त्वदर्शियों का कथन प्रस्तुत करते हैं कि वाक् तत्त्व वायुरूप है तथा वायु गृहपति है। वाक् तत्त्व के वायु तत्त्व से सम्वंध को दर्शाते हुए कहा गया है- "वाग्वै वायुः" (तै.ब्रा.१.८.८.१; तां.१८.८.७) वस्तुतः वायु तत्त्व ही सभी वलों का आश्रय स्थल वा पदार्थों का पालक व रक्षक है। इस वायु के विषय में कहा गया है- "यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः" (श.४.१.३.१९)

इधर इन्द्र को वलपति के रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध माना गया है। यह इन्द्ररूप वायु अन्तरिक्ष लोक का स्वामी है। महर्षि यास्क ने भी वायु को मध्यम अर्थात् अन्तरिक्षस्थानी माना है। वायु के विषय में ग्रन्थकार का अन्यत्र कथन है- "वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं न समृच्छति" (ऐ.२.४१)

अन्यत्र कहा गया है- "वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः" (तै.ब्रा.३.२.१.३)

आकाश तत्त्व वायु रश्मियों से भरा हुआ है और अन्तरिक्षस्थ सभी पदार्थों में वायु का ही वल कार्य करता है। यह विभिन्न ग्रहों अर्थात् वलों के अतिरिक्त लोकों, मार्गों व द्वारों का भी पालक व रक्षक है। ये सभी पदार्थ अन्तरिक्ष में ही स्थित होते हैं। आकाश तत्त्व के विभिन्न क्रियाकलापों में भी वायु तत्त्व की भूमिका है। यहाँ वायु तत्त्व का तात्पर्य विभिन्न छन्द रश्मियां भी है। ये रश्मियां ही आकाश तत्त्व का निर्माण भी करती हैं और उसे वल प्रदान भी करती हैं। पुनः कहा कि वागू रश्मियां असौ अर्थात् आदित्यरूप भी हैं। इस विषय में कहा है-

"सा या सा वागसौ स आदित्यः" (श.१०.५.१.४), "वागिति द्यौः" (जै.उ.४.२२.११)

ये लोक वा कण गृहपति हैं। यहाँ आदित्य का अर्थ प्राणतत्त्व भी ग्रहण करना चाहिएं, क्योंकि यह तत्त्व ही सभी वलों का पालक व रक्षक है तथा ऋतु संज्ञक प्राण रश्मियां गृह हैं। इसका तात्पर्य है कि विभिन्न ऊष्मा व प्रकाशयुक्त कण वा लोक विभिन्न गृहरूप ऋतु रश्मियों के पालक, रक्षक वा आधार हैं। ऋतु रश्मियां उन्हें आदित्य वा प्रकाशित स्वरूप प्रदान करने में सहयोग करती हैं। इसी कारण कहा है- "ऋतवो वै देवाः" (श.७.२.४.२६), "ऋतवो वै वाजिनः" (कौ.ब्रा.५.२; श.२.४.४.२२) ये द्यु आदि लोक वा कण इन ऋतु रश्मियों के कारण ही तपते हैं।

अव महर्षि लिखते हैं कि इन पूर्वोक्त तीनों प्रकार के गृहपति अर्थात् वल व आश्रयस्थान के रक्षक व पालक पदार्थों को जो भी परमाणु आदि पदार्थ प्राप्त कर लेते हैं, वे स्वयं भी गृहपति वन जाते हैं अर्थात् उपर्युक्त अग्नि, वायु तथा आदित्य के संसर्ग से सभी पदार्थ विभिन्न वलों से युक्त व समृद्ध हो जाते हैं। वे सभी पदार्थ विभिन्न संसर्ग, सृजन कर्मों को समृद्ध करते हैं। विभिन्न संघात व संघातों से उत्पन्न पदार्थ भी समृद्ध होते हैं। इस प्रकार सभी पदार्थ वाक् तत्त्व से ही सिद्ध होते हैं। जो पदार्थ आसुर वाधक आवरण से मुक्त हो जाते हैं, वे प्रकाशित एवं तीव्र सक्रिय होकर गृहपतिरूप हो जाते हैं अर्थात् नाना वलों के पालक व रक्षक होते हैं। वे ऐसे पदार्थ अन्य आसुर तत्त्व से गृहीत पदार्थों को भी मुक्त करने में समर्थ वा सहयोगी होते हैं। इस प्रकार वाक् तत्त्व के कारण ही सम्पूर्ण सर्ग प्रक्रिया वाधक असुरादि पदार्थों के वाधा से मुक्त होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण सर्गयज्ञ वाक् तथा प्राणापानरूप अध्वर्यु के द्वारा निर्विघ्न रूप से सम्पन्न व समृद्ध होता है। यहाँ लोक निर्माण प्रक्रिया का ही ग्रहण करना चाहिए।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस ब्रह्माण्ड में विभिन्न वाग् अर्थात् छन्द रश्मियों के द्वारा ही विद्युत्, प्रकाश, ऊष्मा आदि विद्युत् चुम्वकीय तरंगों एवं नाना प्रकार के कणों की उत्पत्ति होती है। आकाश तत्त्व भी इन्हीं के द्वारा निर्मित व नियन्त्रित होता है। विभिन्न लोकों की गति व मार्गों का नियन्त्रण व निर्माण भी इनके द्वारा ही होता है। सृष्टि में जहाँ कहीं भी डार्क एनर्जी तथा डार्क मैटर का प्रतिरोध व प्रतिकर्षक वलों की वाधा होती है, वह विद्युत् आदि के द्वारा ही दूर होती है। विद्युत् व विद्युत् चुम्वकीय तरंगों के संयोग से विभिन्न पदार्थ ऊर्जासम्पन्न होकर नाना प्रकार के कार्य करने में सक्षम होते हैं। विद्युत् आवेश किन्हीं कणों में ही आश्रित रहता है। कणविहीन विद्युत् की कल्पना सम्भव नहीं। **इन्द्र तत्त्व, जो वायुमिश्रित विद्युत् का रूप है, वह अन्तरिक्षस्थ पदार्थों में तथा छन्दादि रश्मियां आकाश तत्त्व में भी व्याप्त व सक्रिय रहती हैं। इनका किसी कण वा क्वाण्टाज् में आश्रित होना आवश्यक नहीं है।** प्राण रश्मियां सर्वत्र वल का विशिष्ट कारण होती हैं। ये सभी पदार्थ मनस्तत्त्व में ही आश्रित व उसी से निर्मित होते हैं।।

ॐ इति २४.६ समाप्तः ॐ

ॐ इति चतुर्विंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ
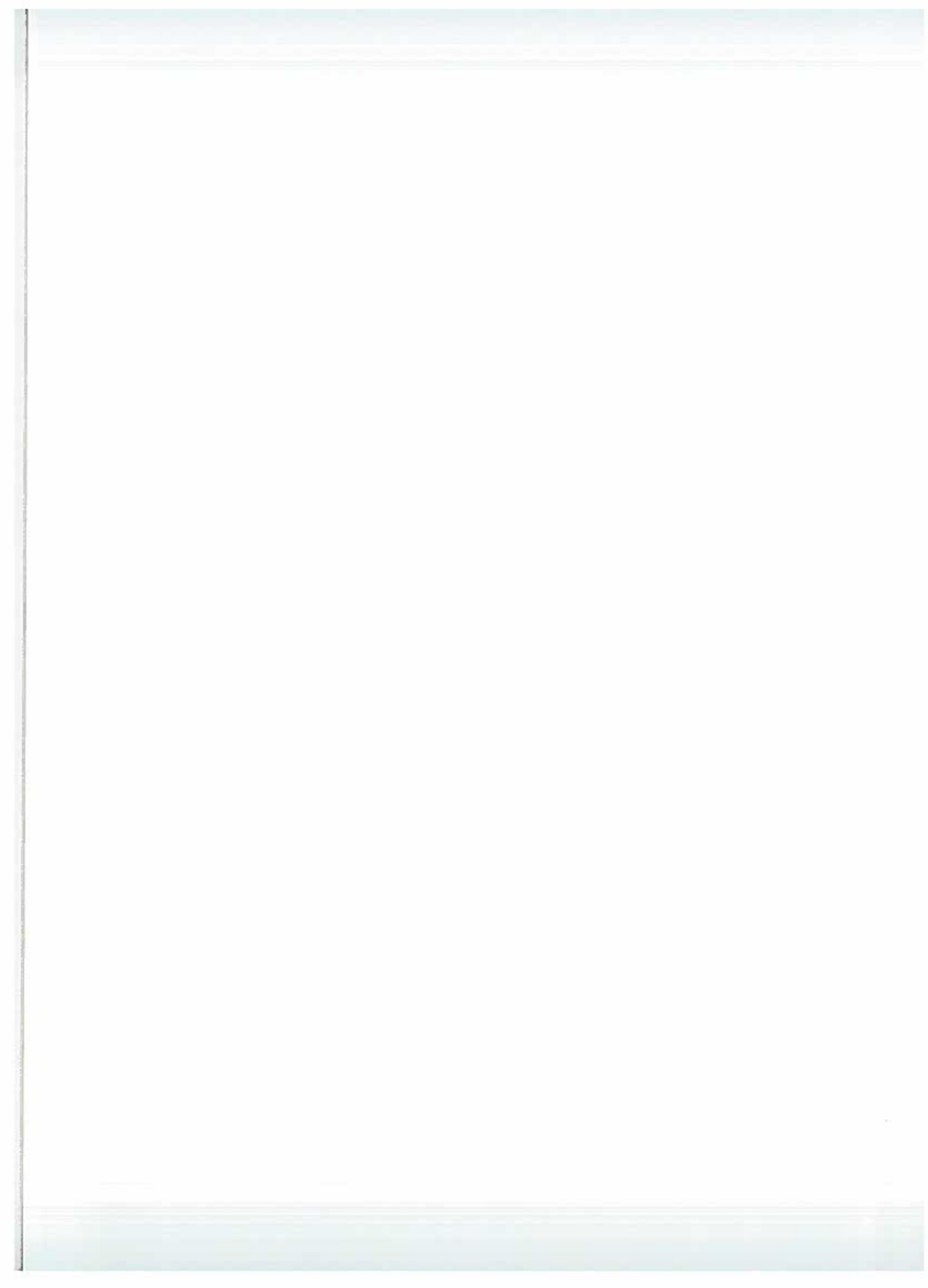
पञ्चविंशोऽध्यायः

ईश्वर तत्त्व से प्रेरित मनस्तत्त्व

प्राण व छन्दादि रश्मियां

सूत्रात्मा वायु + प्रति सूत्रात्मा वायु (विपरीत गुण वाला)

मनस्तत्त्व

।। ओ३म् ।।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्नऽआ सुव।।

अनुक्रमणिका

ॐ अथ २५.१ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. उद्धराहवनीयमित्यपराह्ण आह; यदेवाह्ना साधु करोति, तदेव तत्प्राङ्उद्धृत्य तदभये निधत्ते।।
उद्धराहवनीयमिति प्रातराह; यदेव रात्र्या साधु करोति; तदेव तत्प्राङुद्धृत्य तदभये निधत्ते।।
यज्ञो वा आहवनीयः, स्वर्गो लोक आहवनीयः।।
यज्ञ एव तत् स्वर्गे लोके स्वर्गं लोकं निधत्ते य एवं वेद।।

व्याख्यानम्- इस विषय में हम सर्वप्रथम अग्निहोत्र के व्याख्यान में आपस्तम्ब श्रौतसूत्र ६.१.४ को उद्धृत करना उपयुक्त समझते हैं-

"उद्धरेत्येव सायमाह यजमानः। उद्धरेति प्रातः"। अग्निहोत्र के विषय में तत्त्ववेत्ता ऋषियों का कथन है- "गौर्वा अग्निहोत्रम्" (तै.ब्रा.२.१.६.३), "प्राण एव अग्निहोत्रम्" (श.११.३.१.८), यज्ञमुखं वाऽअग्निहोत्रम् (तै.सं.१.६.१०.२), सृष्टिर् वा एतद्यदग्निहोत्रम् (काठ.६.७)। इससे स्पष्ट है कि इस अध्याय में अग्निहोत्र का प्रकरण प्रारम्भ किया गया है। वस्तुतः प्राण एवं छन्दादि रश्मियों का परस्पर विविध प्रकार का संगम ही अग्निहोत्र कहलाता है और इस अग्निहोत्र से ही इस सृष्टिरूपी अग्निहोत्र की उत्पत्ति होती है। यद्यपि अब तक इन रश्मियों के संगम की चर्चा सर्वत्र होती रही है, परन्तु यहाँ वही चर्चा विशेष रूप से प्रारम्भ की जा रही है। इसी अग्निहोत्र से सृष्टि के सभी उत्पादन कर्मों का संचालन होता है। इसलिए कहा गया है- प्रजननं वा एतद् यदग्निहोत्रम् (काठ.६.७)। इस अग्निहोत्र अर्थात् संसर्ग प्रक्रिया में मुख्य भूमिका वाक् तत्त्व की ही होती है। इसलिए कहा गया है- वाग्वा अग्निहोत्री (जै.ब्रा.१.१६)। {अपराह्णः = रात्रिरपराह्णः (जै.ब्रा.२.६८)। साधु = अन्तरिक्षं साधु (तै.आ.५.३.७ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)}

यहाँ वाक् तत्त्व के द्वारा विभिन्न रश्मियों के यज्ञ को दर्शाते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि अपराह्ण अर्थात् अपान प्राण में आहवनीय अर्थात् संगतीकरण की प्रक्रिया का उद्धार वा उत्कर्ष किया जाता है। महर्षि आश्वलायन के पूर्वोक्त सूत्र में 'अपराह्ण' के स्थान पर 'सायम्' शब्द का प्रयोग है। हमने अपराह्ण से रात्रि अर्थात् अपान का ग्रहण किया है। महर्षि जैमिनी के मत से भी हमारे मन्तव्य की पुष्टि होती है। उनका कथन है- "एष उ वै रात्रेः पूर्वार्धो यत् सायम्" (जै.ब्रा.१.१६६)। उस समय अहन् अर्थात् प्राण तत्त्व के द्वारा आकाश तत्त्व के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इस प्रक्रिया में उदान आदि रश्मियों का भी सहयोग रहता है। इस विषय में खण्ड ४.७ भी द्रष्टव्य है। आहवनीयः = यज्ञो वा आहवनीयः स्वर्गो लोकः (ऐ.५.२४), स्वर्गो वै लोक आहवनीयः (ष.१.५; तै.ब्रा.१.६.३.६), द्यौराहवनीयः (काठ.८.६; क.७.२ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत)। उस समय वाक् तत्त्व आकाश तत्त्व सहित प्राण नामक प्राथमिक प्राण को उत्कृष्ट रूप में व्यक्त करते हुए उसे अभय अर्थात् संत्रासविहीन, संगमनीय एवं विशेष अव्यक्त दीप्तियुक्त अवस्था में प्रतिष्ठित करता है। इस प्रकार जहाँ एक ओर अपान तत्त्व संयोगार्थ उद्यत होता जाता है, वहीं दूसरी ओर प्राण तत्त्व भी अपने परितः आकाश तत्त्व को प्रकट करता हुआ अत्यन्त सूक्ष्म दीप्ति को उत्पन्न करता है। यहाँ पाठकों को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि दीप्ति अर्थात् तेज, अग्नि तत्त्व का ही गुण है, तब अग्नि तत्त्व की उत्पत्ति के पूर्व आकाश अथवा प्राण तत्त्व में यह गुण कैसे उत्पन्न होता है? ध्यातव्य है कि यह सूक्ष्म तेज आग्नेय तेज से भिन्न अव्यक्त रूप होता है, जो प्रकृति के सत्त्व गुण के कारण उत्पन्न होता है। प्राण रश्मियों को तेजयुक्त बताते हुए ग्रन्थकार का मत है- "प्राणा वै समिधः" (ऐ.२.४)। अन्यत्र भी कहा है- "प्राणा वै स्तोमाः" (जै.ब्रा.२.१३३; श.८.४.१.३), प्राणो वै ज्योतिः (श.८.३.२.१४)। प्राणों की यह ज्योति वाक्

तत्त्व के कारण ही उत्पन्न होती है। वाक् प्राणानां ज्योतिरुत्तमम् (काठ.२०.११)। इसी कारण प्राणादि रश्मियों से निर्मित आकाश तत्त्व भी सदैव अव्यक्त तेजयुक्त होता है।।

पुनः वाक् तत्त्व द्वारा प्राण तत्त्व के {प्रातः = देवस्य सवितुः प्रातः प्रसवः प्राणः (तै.ब्रा.१.५.३.१)} के प्रकट होने पर उसकी संयोज्यता समग्र रूप से प्रकट होने लगती है। **उस समय अपान तत्त्व के द्वारा आकाश तत्त्व के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। उस प्रक्रिया में भी उदानादि रश्मियों का सहयोग रहता है।** उस समय वाक् तत्त्व आकाश तत्त्व सहित अपान नामक प्राथमिक प्राण को उत्कृष्टरूपेण व्यक्त करते हुए उसे अभय अर्थात् विक्षोभरहित, संगमनीय और विशेष सूक्ष्म दीप्तियुक्त बनाता है। इस प्रकार जहाँ एक ओर प्राण तत्त्व संयोगार्थ उद्यत होता है, वहीं दूसरी ओर अपान तत्त्व भी अपने परितः आकाश तत्त्व को प्रकट करता हुआ अत्यन्त सूक्ष्म दीप्ति को उत्पन्न करता है। अपान तत्त्व को दीप्ति कहने का संकेत करते हुए कहा गया है- "अपाने वैद्युतम् (प्रजापतिरावेशयत्)" (शां.आ.११.१)। इसकी संयोज्यता को बताते हुए कहा है- "अपानो यजमानः" (ष.२.६)

इसी कारण अपान रश्मियों से निर्मित आकाश तत्त्व भी संयोज्य स्वभाव वाला एवं सूक्ष्म दीप्तियुक्त होता है।।

यह जो आहवनीय अर्थात् प्राणापानादि रश्मियों की वाक् तत्त्व के द्वारा जो सब ओर संगतीकरण की प्रक्रिया होती है, वही सम्पूर्ण सर्गयज्ञ का कारण होती है और वही स्वर्ग लोक की उत्पत्ति का भी कारण होती है। यहाँ स्वर्ग लोक का तात्पर्य आकाश तत्त्व है। कालान्तर में इसी प्रक्रिया से द्युलोकों रूपी स्वर्ग लोकों का भी निर्माण होता है। ग्रन्थकार ने "ओमिति वै स्वर्गो लोकः" (ऐ.५.३२) कहकर यह भी संकेत दिया है कि 'ओम्' रश्मियां सदैव सबके साथ हवनीय होकर मूल व सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व के रूप में सबके साथ संगत होकर सम्पूर्ण सर्ग प्रक्रिया का प्रारम्भिक एवं सतत कारण होती हैं। यहाँ जिस **वाक् तत्त्व की चर्चा की गयी है, वह** 'ओम्' रश्मिरूप **वाक्** तत्त्व ही है।।

इस प्रकार इस वाक् तत्त्व के द्वारा उपर्युक्त प्राणापानादि रश्मियों को पूर्वोक्त प्रकारेण धारण व उन्हें नानाविध संगत करने से आकाश तत्त्व व तेजस्वी लोकों में तेज की स्थापना होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सम्पूर्ण सृष्टि **'ओम्'** रूपी वाग् रश्मियों द्वारा मनस्तत्त्व के साथ मिलकर विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों के पारस्परिक संगतीकरण का परिणाम है। इसी से कालान्तर में सभी मूलकणों, ऊर्जा, विद्युत् चुम्बकीय व गुरुत्वादि बलों की उत्पत्ति होती है। प्राणादि रश्मियों का व्यवहार व कार्य कभी भी किसी भौतिक तकनीक से जाना वा अनुभव नहीं किया जा सकता। इसका अनुभव कोई सिद्ध योगी ही कर सकता है। **प्राण, अपान व उदान रश्मियों के संयोग से space की उत्पत्ति होना प्रारम्भ होती है, जिसमें कुछ छन्द रश्मियों का भी योग रहता है। 'ओम्'** रश्मि क्रमशः प्राण व अपान रश्मियों को प्रकट करके उन्हें अव्यक्त सूक्ष्मतम दीप्ति से युक्त करके निरापद रूप से आकाश तत्त्व के साथ संगत व अभिव्यक्त करती है। ये प्राणापान रश्मियां अपने परितः आकाश तत्त्व को आवेष्टित करके परस्पर संगत होने लगती हैं। प्राण तत्त्व एवं space भी अतिसूक्ष्म अव्यक्त दीप्ति से सम्पन्न होते हैं। **'ओम्'** रश्मि के अभाव में कोई भी प्राणादि रश्मि एवं अन्य कोई भी पदार्थ बल, तेज आदि से युक्त नहीं हो सकता। इस कारण इसके विना सृष्टि का प्रारम्भ होना ही सम्भव नहीं। यह रश्मि सदैव सर्वत्र अपनी भूमिका निभाती है।।

२. यो वा अग्निहोत्रं वैश्वदेवं षोळशकलं पशुषु प्रतिष्ठितं वेद; वैश्वदेवेनाग्निहोत्रेण षोळशकलेन पशुषु प्रतिष्ठितेन राध्नोति।।

रौद्रं गविसद् वायव्यमुपावसृष्टमाश्विनं दुह्यमानं, सौम्यं दुग्धं, वारुणमधिश्रितं, पौष्णं समुदयन्तं, मारुतं विष्यन्दमानं, वैश्वदेवं बिन्दुमत्, मैत्रं शरोगृहीतं, द्यावापृथिवीयमुद्वासितं, सावित्रं प्रकान्तं, वैष्णवं ह्रियमाणं, बार्हस्पत्यमुपसन्नमग्नेः, पूर्वाहुतिः, प्रजापतेरुत्तरैन्द्रं हुतम्।।

एतद्वा अग्निहोत्रं वैश्वदेवं षोळशकल पशुषु प्रतिष्ठितम्।।
वैश्वदेवेनाग्निहोत्रेण षोळशकलेन पशुषु प्रतिष्ठितेन राध्नोति य एवं वेद।।१।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त अग्निहोत्र प्रक्रिया अर्थात् विभिन्न प्राण रश्मियों की पारस्परिक संयोगादि क्रियाएं जव विभिन्न मरुद् एवं छन्दादि रश्मियों में प्रतिष्ठित हो जाती हैं, तव उनके द्वारा वे सृजन प्रक्रियाएं १६ खण्डों में सम्पन्न होती हुई नाना प्रकार के संवत्सर लोकों में प्रतिष्ठित होकर उन्हें समृद्ध करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये प्रक्रियाएं १६ विभिन्न चरणों में सम्पन्न होती हैं, जिनको अगली कण्डिका में स्पष्ट किया गया है।।

अव हम १६ चरणों पर क्रमशः विचार करते हैं-

(१) रौद्रं गविसत्- जव सर्गयज्ञ प्रक्रिया वाक् तत्त्व एवं मनस्तत्त्व के मध्य उद्भूत हो रही होती है, उस समय रौद्ररूप में ही होती है। हमने यहाँ 'गौ' शव्द से वाक् तत्त्व के साथ-२ मनस्तत्व का भी ग्रहण किया है। महर्षि जैमिनी का कथन है- "वागिति मनः" (जै.उ.४.११.१.११)। रुद्र के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति। तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति" (श.११.६.३.७)। इसी प्रकार का मत महर्षि जैमिनी का भी है- "दश पुरुषे प्राणा इति होवाच। आत्मैकादशः। ते यदोत्क्रामन्तो यन्त्यथ रोदयन्ति। तस्माद्रुद्रा इति" (जै.ब्रा.२.७७)। इन दोनों आर्ष वचनों में दस प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं एक आत्म तत्त्व को मिलाकर ११ पदार्थों को रुद्र कहा गया है। हमारी दृष्टि में इस प्रसंग में 'आत्मा' शव्द से सूत्रात्मा वायु का ग्रहण करना समीचीन है। इस प्रकार ये ११ प्राण रश्मियां ही रुद्र कहलाती हैं। निघण्टुकार ने ३.१६ में 'रुद्र' पद को स्तोतृ नामों में पढ़ा है। ये ११ प्राण रश्मियां ही सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया को प्रकाशित करने वाली होने से रुद्र कहलाती हैं। ये ११ रश्मियां ही सर्वप्रथम मन एवं वाक् तत्त्व के मेल से उत्पन्न होती हैं। इस कारण यह अवस्था 'रौद्रि गविसत्' कहलाती है।

(२) वायव्यमुपावसृष्टम्- यह द्वितीय चरण है। {अव+सृज् = विखेरना, वूंद-२ टपकाना, ढीला छोड़ना, वोना (आप्टे कोश)। उप+सृज् = संसक्त करना, संयुक्त करना, क्रियान्वित करना - आप्टे कोश} इसे वायव्य इस कारण कहा जाता है, क्योंकि यह प्रक्रिया वायु तत्त्व अर्थात् प्राणापान आदि ११ उपर्युक्त प्राण रश्मियों के अन्दर भी प्रारम्भ हो जाती है। मन एवं वाक् तत्त्व का संयुक्त रूप इन प्राण रश्मियों से क्रिया करके उन्हें संसिक्त करता हुआ नाना प्रकार की संसर्ग क्रियाओं को उत्पन्न करता है। 'मन' और 'ओम्' रश्मि रूपी वाक् तत्त्व का मिथुन उन रश्मियों के ऊपर निरन्तर रिसता हुआ सा उन्हें तेजस्वी वनाता हुआ उनमें विविध वलों को उत्पन्न करता है। इस कारण वे विभिन्न प्राण रश्मियां परस्पर एक-दूसरे से संयुक्त होती हुई अन्य छन्द वा मरुद् रश्मियों को नानाविध उत्पन्न करने लगती हैं। इससे इस चरण में पूर्वापेक्षा अधिक सक्रियता होते हुए अधिक तेजस्विता भी उत्पन्न होती है।

(३) आश्विनं दुह्यमानम्- {अश्विनौ = अहोरात्रे वा अश्विनौ (मै.३.४.४), वायु विद्युती (म.द.ऋ.भा.३.५८.४), व्यापिनौ प्राणोदानौ (तु.म.द.ऋ.भा.७.३५.४), व्यापनशीले द्यावान्तरिक्षे (म.द.ऋ.भा.६.६२.१)। आश्विनः = आश्विनः श्रोत्रम् (मै.४.५.६)} इस अवस्था को आश्विन कहते हैं। इसका कारण यह है कि प्राणापान एवं प्राणोदान रश्मियां विशेष सक्रिय होकर अन्य छन्द वा मरुदादि रश्मियों से विशेष क्रिया करके सूक्ष्म विद्युत् एवं आकाश तत्त्व को उत्पन्न करती हैं। इस अवस्था को 'दुह्यमान' कहने का तात्पर्य यह है कि इस अवस्था में ये प्राण रश्मियां तथा अन्य छन्दादि रश्मियां मन एवं वाक् तत्त्व के मिथुनरूप का दोहन करके अर्थात् उनका उपभोग करके नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण करने लगती हैं। इस समय प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों का सूक्ष्म रूप उत्पन्न होने लगता है और ये दोनों ही प्रकार के पदार्थ अवकाशरूप आकाश में सर्वत्र व्याप्त होकर उसे परिपूर्ण करते हैं।

(४) सौम्यं दुग्धम्- {सोमः = वृत्रो वै सोम आसीत् (श.३.४.३.१३)} तदुपरान्त सोम तत्त्व से परिपूर्ण

अवस्था का निर्माण होता है। यहाँ सोम तत्त्व का तात्पर्य सबका आवरक असुर तत्त्व है, जो पूर्वोक्त विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों से मानो दुहकर उत्पन्न किया जाता है अर्थात् यह असुर पदार्थ पूर्वोत्पन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों के सम्पीडन के समय रिसता हुआ अप्रकाशित रूप में प्रकट होता है। इसके साथ ही अप्रकाशित सूक्ष्म एवं मन्दगामी मरुद् रश्मियां भी सोम कहलाती हैं, जो नाना क्रियाओं के द्वारा तेज, बल एवं तीव्रगति को भी प्राप्त करती हैं।

(५) वारुणमधिश्रितम्- {वारुणः = वारुणोऽग्निः (जै.ब्रा.२.२३२), वारुणो वै सोमः (काठ.२४.६; क. ३७.७), वारुणमश्वम् (श.६.२.१.५)} इस अवस्था को वारुणी कहते हैं, क्योंकि यह अवस्था अग्नि और सोम तत्त्वों से व्याप्त होती है। इस समय प्राण, अपान एवं उदान रश्मियां विशेष सक्रिय होती हैं, जो नाना प्रकार के रश्मि एवं परमाणु आदि पदार्थों को परस्पर बांधने वा संगत करने में समर्थ होती हैं। इसमें सूत्रात्मा वायु का भी विशेष योग रहता है। इसके द्वारा ही नाना प्रकार के पदार्थों के योग से अग्नितत्त्व विशेष रूप से प्रकट होने लगता है। व्यान रश्मियों को भी वरुण कहते हैं। ये रश्मियां सूत्रात्मा वायु के साथ मिलकर प्राण एवं अपान रश्मियों को संगत करती हुई नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को प्रकट करती हैं। नाना संयोगों से उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान विभिन्न सूक्ष्म परमाणु कभी भी परस्पर पूर्णतः स्पर्श नहीं करते, बल्कि वे अपान रूपी वरुण तत्त्व के द्वारा एक निश्चित दूरी अवश्य बनाये रखते हैं। अपान रश्मियां विभिन्न परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थों में आश्रित होती हैं।

(६) पौष्णं समुदयन्तम्- {पूषा = वृषा पूषा (श.२.५.१.११), पृथिवीनाम (निघं.१.१), असौ वै पूषा योऽसौ (सूर्यः) तपति (कौ.ब्रा.५.२), प्रजननं वै पूषा (श.५.२.५.८)} यह अवस्था पौष्णी कहलाती है। इसमें विभिन्न रश्मि एवं परमाणु आदि पदार्थों में संयोज्य और धारक बलों की वृद्धि होकर विभिन्न प्रजनन वा सृजन कर्मों का सम्यग् उदय होता है। इस समय विभिन्न परमाणुओं में पार्थक्य, वियोजन, प्रसारण और प्रकाशन आदि गुणों का समुचित विस्तार होता है। इस समय प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के पदार्थों की समृद्धि और पुष्टि होती है। नाना प्रकार के पदार्थ विविध वर्षक बलों से युक्त होते हैं।

(७) मारुतं विष्यन्दमानम्- {मरुत् = मरुत् हिरण्यनाम (निघं.१.२), मरुत् रूपनाम (निघं.३.७), मरुतो मितराविणो वा मितरोचिनो वा महद् द्रवन्तीति वा (नि.११.१३), मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः (कौ.ब्रा.७.८), ओजो वै वीर्यं मरुतः (जै.ब्रा.३.३०६)} यह अवस्था मारुति कहलाती है। इसमें विभिन्न मरुदादि रश्मियां मन्द ध्वनि और प्रकाश को उत्पन्न करती हुई अन्तरिक्षस्थ नाना पदार्थों को व्याप्त करके उन्हें तेज, बल और रूप प्रदान करती हैं। इसी अवस्था में दृश्य रूप प्रकट होता है। {मरुत् = ऋत्विङ्नाम (निघं.३.१८)} इस समय विभिन्न ऋतु रश्मियों के समृद्ध होने से नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ उत्सर्जन और अवशोषण आदि गुणों से युक्त होकर विशेष सक्रिय और सबल हो उठते हैं और ब्रह्माण्डस्थ समूचा पदार्थ मरुद् रश्मियों के प्रभाव से अन्तरिक्ष में विशेष रूप से गमन करने लगता है।

(८) वैश्वदेवं बिन्दुमत्- {बिन्दुः = विदि अवयवे+उ (आप्टेकोश)} इस अवस्था में सम्पूर्ण देव पदार्थ नाना प्रकार के असंख्य अवयवों अर्थात् बिन्दु रूपों में प्रकट होता है। इसके साथ ही वह पदार्थ प्रकाशित होता हुआ चहुं ओर व्याप्त हो जाता है। उस पदार्थ के सूक्ष्म अवयव दीप्तियुक्त होते हुए आकर्षण और विकर्षण बलों से सम्पन्न होकर नाना प्रकार की क्रीड़ाओं को प्रकृष्ट बनाते जाते हैं। वे सभी सूक्ष्म पदार्थ एक-दूसरे को नियंत्रित करने के लिए तत्पर होकर नाना क्रीड़ाएं करते हुए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विचरण करते हैं।

(९) मैत्रं शरोगृहीतम्- यह अवस्था मैत्री कहलाती है। {मित्रः = अथ यत्र नितरामर्चयो भवन्ति तर्ह्य (अग्नि) मित्रो भवति (काश.३.१.१.१ - ब्रा.उ.को. से उद्धृत), प्राणो मित्रम् (जै.उ.३.१.३.६), मित्रेण वा इमाः प्रजाश्शान्ता वरुणेन विधृताः। (काठ.२५.१०; क.४०.३)} इस समय प्राण नामक प्राण रश्मियां विशेष रूप से सक्रिय होकर विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को सम्यग् रूप से नियन्त्रित करती हैं। इस अवस्था में अग्नि तत्त्व तीव्रता से प्रकाशित और प्रखर होता हुआ समृद्ध होने लगता है। नाना प्रकार के परमाणु वा रश्मि आदि पदार्थ तीक्ष्ण बलों से युक्त होकर पारस्परिक संघर्ष और संघातों को तीव्रता

से सम्पन्न करते हैं।

(१०) द्यावापृथिवीयमुद्वासितम्- इस अवस्था में द्यावापृथिवी अर्थात् प्रकाशित और अप्रकाशित कण तथा आकाश तत्त्व तीव्रता से प्रकट होने लगते हैं अर्थात् इस अवस्था में विभिन्न परमाणुओं की उत्पत्ति सहसा ही समृद्ध होने लगती है, जो पूर्वोत्पन्न नाना प्रकार की छन्द वा प्राणादि रश्मियों के सम्पीडन से होती है। यहाँ 'उद्वासित' शब्द से यह संकेत मिलता है कि **विभिन्न परमाणु अकस्मात् ही उत्पन्न होते हैं।** यद्यपि दोनों ही प्रकार के परमाणुओं की उत्पत्ति पूर्व में ही हो चुकी होती है पुनरपि इस अवस्था में उनकी मात्रा में अकस्मात् ही भारी वृद्धि हो जाती है।

(११) सावित्रं प्रकान्तम्- इस अवस्था में अनेक परमाणु प्रकृष्ट तेज और विद्युत् वल से सम्पन्न होते हैं, जो कालान्तर में सूर्यादि लोकों के निर्माण में मुख्य उपादान कारण के रूप में प्रकट होते हैं। इनमें विशेष संयोज्य वल एवं तेज की प्रधानता होती है। इनके अन्दर प्राण एवं मरुदादि रश्मियां विशेष संयोज्य वलों से समृद्ध होकर वैद्युत वलों को समृद्ध करती हैं, साथ ही इस समय मास एवं ऋतु रश्मियां भी प्रचुर मात्रा में प्रकट होकर विभिन्न कमनीय वलों को तीव्रतर वनाती हैं।

(१२) वैष्णवं ह्रियमाणम्- {विष्णुः = वैष्णवो हि यूपः (श.३.६.४.१), वैष्णवं हि हविर्धानम् (श.३.५.३.१५)} यह अवस्था वैष्णवी कहलाती है। इस अवस्था में द्युलोकों के निर्माण के लिए विभिन्न उपयोगी पदार्थों को एकत्र करने के साथ-२ बाधक पदार्थों को नियन्त्रित किया जाता है। इस समय नाना प्रकार की यूप रूप वज्र रश्मियों की उत्पत्ति होती है, जो खण्ड २.१ के वर्णन अनुसार द्युलोकों के केन्द्रीय भागों के निर्माण की प्रक्रिया को प्रारम्भ करती हैं। इस प्रक्रिया को समझने के लिए उसी खण्ड को पढ़ें। इस समय पदार्थ का संघनन तेजी से होता हुआ द्युलोकों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस अवस्था को ह्रियमाण इस कारण कहा जाता है, क्योंकि इस अवस्था में दूरस्थ पदार्थ का हरण करके केन्द्रीय भाग की ओर निरन्तर आकर्षित किया जाता रहता है।

(१३) बार्हस्पत्यं उपसन्नम्- {उपसदः = इमे लोका उपसदः (श.१०.२.५.८), तपो ह्युपसदः (श.३.६.२.११), वज्रा वा ऽउपसदः (श.१०.२.५.२), ऋतव उपसदः (श.१०.२.५.७), मासा उपसदः (श.१०.२.५.६)} यह अवस्था 'उपसन्ना बार्हस्पत्या' कहलाती है। इस समय वज्ररूपी रश्मियां विशेष समृद्ध होकर निर्माणाधीन लोकों के ताप को वढ़ाती हैं तथा मास एवं ऋतु रश्मियां समृद्ध होकर पदार्थ के सम्पीडन व संघनन को समृद्ध करती हैं। इस समय सूत्रात्मा वायु रश्मियां भी विशेष समृद्ध और सक्रिय होती हुई सम्पूर्ण पदार्थ में संगमन, सम्पीडन वा संघनन कर्मों को तीव्र करती हैं, इसके साथ ही विद्युदग्नि और सभी प्राण रश्मियां भी अति सक्रिय होकर विखरे हुए पदार्थ को निर्माणाधीन द्युलोकों के केन्द्रीय भाग की ओर तीव्रता से आकृष्ट करती हैं।

(१४) आग्नेयी पूर्वाहुति- तदनन्तर विभिन्न प्रकार की संसर्ग आदि क्रियाएं सव ओर से पूर्णता प्राप्त करती हैं, जिससे अग्नि तत्त्व की भारी समृद्धि होती है। अग्नि तत्त्व के सभी गुण, जैसे रूप, दाह, प्रकाश, छेदन, धारण आकर्षण, प्रतिकर्षण एवं वेग प्रखर हो उठते हैं। उन लोकों के केन्द्रीय भागों में असुरादि रश्मियों की वाधा दूर होकर देव पदार्थ की प्रखरता वढ़ने लगती है।

(१५) प्राजापत्या उत्तरा :- {प्रजापतिः = प्रजापतिः यज्ञनाम (निघं.३.१७), प्राणो हि प्रजापतिः प्रजापतिं ह्येवेदं सर्वमनु (प्रजायते) (श.४.५.५.१३), प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः (श.६.२.२.५), सर्वाणि छन्दांसि प्रजापतिः (श.६.२.१.३०), प्रजननं प्रजापतिः (श.५.१.३.१०)} पूर्वोक्त अवस्था के उत्तरकाल में उत्पन्न इस अवस्था में विभिन्न प्राण और छन्दादि रश्मियों की परस्पर संगति होकर तेजस्वी द्युलोक वा द्युलोकसमूह की उत्पत्ति होती है। इन लोकों के अन्दर नाना प्रकार के सृजन कर्मों का विस्तार होता है। यह अवस्था पूर्वापेक्षा उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट होती है।

(१६) ऐन्द्रं हुतम्- जव पूर्वोक्त प्रक्रियाओं में होने वाले संगमन आदि कर्म पूर्णता को प्राप्त होते हैं अर्थात् विखरा हुआ पदार्थ निर्माणाधीन केन्द्रीय भागों की ओर तेजी से आता हुआ पूर्ण रूप से संघनित हो जाता है, तव वे द्युलोक ऐन्द्री अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय विद्युत् और मरुदादि रश्मियां

चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती हैं। इस कारण वे लोक विद्युत्, प्रकाश, ऊष्मा आदि की दृष्टि से परिपूर्ण हो जाते हैं।।

इस प्रकार पूर्वोक्त अग्निहोत्ररूपी यज्ञ अर्थात् नाना प्रकार की प्राण एवं छन्दादि रश्मियों का परस्पर विविध रूपों में संगम होकर उपर्युक्त १६ चरणों से गुजरता हुआ संवत्सररूपी पशुओं के रूप में प्रतिष्ठित होता है अर्थात् विभिन्न प्रकार के दृश्यमान द्युलोकों की उत्पत्ति हो जाती है।।

इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर १६ चरणों के द्वारा लोक निर्माण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न प्राण और मरुद् रश्मियों की प्रारम्भिक संगतीकरण की क्रियाओं से लेकर तारों के निर्माण तक की प्रक्रिया १६ चरणों में पूर्ण होती है, जो इस प्रकार है-

(१) मन एवं **'ओम्'** रश्मि का युग्म सर्वप्रथम प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय एवं सूत्रात्मा वायु को उत्पन्न करके उनके साथ संगत होता है। यहाँ वाक् तत्त्व से **'ओम्'** रश्मि के साथ-२ व्याहृति रश्मियों का भी ग्रहण करना अपेक्षित है।

(२) उपर्युक्त ११ प्राणादि रश्मियों के मध्य पारस्परिक संगतीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होकर विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती है। इसमें मनस्तत्त्व एवं **'ओम्'** रश्मि का युग्म सर्वत्र शाश्वत भूमिका निभाता है।

(३) इस समय विद्युत् और आकाश तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसके अतिरिक्त दृश्य पदार्थ और डार्क एनर्जी का सूक्ष्म रूप भी उत्पन्न होकर सम्पूर्ण आकाश को भर देता है।

(४) दृश्य पदार्थ और डार्क मैटर, साथ-२ डार्क एनर्जी की भी व्यापक रूप से उत्पत्ति हो जाती है। सोम तत्त्व भी उत्पन्न होता है।

(५) विभिन्न सूक्ष्म पदार्थों का पारस्परिक संयोग होने लगता है। ब्रह्माण्ड के कोई भी सूक्ष्मतम दो पदार्थ परस्पर सर्वथा स्पर्श नहीं करते, बल्कि वे अपान रश्मियों के आच्छादन द्वारा पारस्परिक एक विशेष दूरी बनाये रखते हैं। इतना होने पर भी वे व्यान एवं सूत्रात्मा वायु रश्मियों के अतिरिक्त बृहती छन्द रश्मियों के द्वारा परस्पर बंधे भी रहते हैं।

(६) इस समय विभिन्न पदार्थों के मध्य संयोग और वियोग की प्रक्रिया तीव्र होती तथा विविध बलों का विस्तार होने लगता है, जिसके कारण नाना प्रकार के कण और विकिरणों की उत्पत्ति प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

(७) इस चरण में दृश्य प्रकाश उत्पन्न होकर पदार्थ को विविध रूप रंगों से युक्त करता है। इस समय प्रकाशादि विद्युत् चुम्बकीय तरंगों के उत्सर्जन और अवशोषण की प्रक्रिया तीव्र होती है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वह चमकता हुआ पदार्थ स्वच्छन्द तैरता हुआ सा प्रतीत होता है।

(८) इस समय विभिन्न प्रकार के कण अधिक स्पष्ट बलों से युक्त होकर चमकते हुए तीव्रता से अन्योन्य क्रियाएं करते हुए स्वच्छन्द विचरण करते हैं।।

(९) पदार्थ का ताप और प्रकाश दोनों ही प्रखर हो जाते हैं और विभिन्न कणों की पारस्परिक क्रियाएं और भी तीव्र हो जाती हैं।

(१०) इस चरण में विभिन्न कण और क्वान्टाज् की मात्रा में अकस्मात् भारी वृद्धि होती है, जो नाना प्रकार की छन्द और प्राण रश्मियों के सम्पीडन के द्वारा होती है।

(११) इस समय विद्युत् चुम्बकीय बलों और प्रबल नाभिकीय बलों में वृद्धि होकर विभिन्न atoms की उत्पत्ति होती है।

(१२) इस समय तारों के केन्द्रीय भागों का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। उसका प्रकार खण्ड २.१ में देख सकते हैं। ब्रह्माण्ड में बिखरा हुआ पदार्थ केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षित होने लगता है।

(१३) इस समय गुरुत्व बल प्रबल होकर पदार्थ को तेजी से संपीडित और संघनित करने लगता है।

(१४) निर्माणाधीन तारों के केन्द्रीय भाग में डार्क एनर्जी का प्रभाव नष्ट वा नियंत्रित होकर गुरुत्व बल और विद्युत् चुम्बकीय आदि बल प्रबल होने लगते हैं।

(१५) विभिन्न तारों की उत्पत्ति पूर्णता की ओर बढ़ते लगती है और अनेकों लोक निर्मित होने वाले होते हैं।

(१६) उन लोकों में नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है और तारे पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

❧ इति २५.१ समाप्तः ❧

ॐ अथ २५.२ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमानोपविशेत् का तत्र प्रायश्चित्तिरिति तामभिमन्त्रयेत।।
यस्माद् भीषा निषीदसि, ततो नो अभयं कृधि। पशून्नः सर्वान् गोपाय नमो रुद्राय मीढूषे इति।।
तामुत्थापयेत्।।
उदस्थाद्देव्यदितिरायुर्यज्ञपतावधात्। इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय चेति।।

व्याख्यानम्– {प्रायश्चित्तिः = यज्ञो हि यज्ञस्य प्रायश्चित्तिः (मै.१.८.३), (प्रायः = प्र+अय्+घञ् = अपगमन - आप्टेकोश)। चित्तिः = चित्तिभिः कर्मभिः (नि.२.६), चित्तिः स्रुक् (मै.१.६.१)} इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है–

"यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमानोपविशेत्तामभिमन्त्रयेत यस्माद्भीषा निषीदसि ततो नो अभयं कृधि। पशून्नः सर्वान्गोपाय नमो रुद्राय मीढूषे इति"।। (आश्व.श्रौ.३.११.१)

"अथैनामुत्थापयेदुदस्थाद्देव्यदितिरायुयज्ञपतावधात्। इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय चेति।।" (आश्व.श्रौ.३.११.२)

पूर्वोक्त लोक निर्माण की चरणबद्ध प्रक्रिया में प्रश्न उपस्थित करते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि 'उपावसृष्टं वायव्यम्' तथा 'आश्विनं दुह्यमानम्' इन दोनों चरणों किंवा वायव्यम् से आश्विन अवस्था में आते-२ विभिन्न वाग् रश्मियां स्थिर हो जाएं अथवा दुर्बल निष्क्रिय हो जाएं, तब इस विपरीत परिस्थिति में कौनसी रश्मियां अपने कर्मों के द्वारा उन वाग् रश्मियों को सक्रिय और सबल करती हैं? इसका उत्तर देते हुए महर्षि कहते हैं कि उन दुर्बल निष्क्रिय वा स्थिर हुई वाग् रश्मियों को सक्रिय और सबल करने के लिए अगली कण्डिका में वर्णित एक छन्द रश्मि सब ओर से प्रकट होने लगती है।।

यह छन्द रश्मि निम्नलिखित ऋचा के रूप में प्रकट होती है– "यस्माद् भीषा निषीदसि, ततो नो अभयं कृधि। पशून्नः सर्वान् गोपाय नमो रुद्राय मीढूषे"। यह ऋचा किसी भी वेद में उपलब्ध नहीं है। इसका देवता रुद्र तथा छन्द अनुष्टुप् है। इसके छान्दस और दैवत प्रभाव से प्राणापानादि पूर्वोक्त ११ रुद्र रश्मियां अन्य छन्दादि रश्मियों को अनुकूलता से थामती हुई प्रकाशित और सक्रिय करती हैं। इसके अन्य प्रभाव से विभिन्न प्राण रश्मियां कम्पायमान होती हुई पूर्ण रूप से अपने कर्मों में स्थिर होकर वाग् रश्मियों को अविचल वा निरापद रूप से धारण करती हैं अर्थात् उनके साथ स्थिरता से संयुक्त हो जाती है। सभी मरुद् और छन्द रश्मियां सृजन प्रक्रिया की रक्षा करने के लिए उन बलवर्धक प्राण रश्मियों के द्वारा वज्ररूप तीक्ष्णता प्राप्त करती हैं। उस तीक्ष्णता से सभी निष्क्रिय और दुर्बल हुई विभिन्न छन्दादि रश्मियां ऊर्ध्व दिशा की ओर अथवा उत्कृष्ट गति के साथ क्रियाशील होने लगती हैं। उसी समय एक अन्य ऋचा (यह आगामी कण्डिका में दर्शायी गयी है) अर्थात् छन्द रश्मि प्रकट होती है।।+।।

वह ऋचा इस प्रकार है– "उदस्थाद्देव्यदितिशयुर्यज्ञपतावधात्। इन्द्राय कृण्वती भागं मित्राय वरुणाय च"। इसका छन्द निचृदनुष्टुप् है तथा देवता अदिति प्रतीत होता है। इसके दैवत और छान्दस प्रभाव से विभिन्न वाग् रश्मियां अनुकूलतापूर्वक अपने कार्यों में स्थिरता से डटी रहती हैं। इसके अन्य प्रभाव से वे वाग् रश्मियां नाना प्रकार से संगत होती हुई सक्रिय हो उठती हैं। इससे वे प्राणापानोदान रश्मियों के साथ संगत होती हुई इन्द्र तत्त्व को उत्पन्न करती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार– लोक निर्माण की प्रक्रिया के चलते जब कभी विभिन्न छन्द रश्मियों में शिथिलता आ जाती है, उस समय आकाश तत्त्व एवं विद्युत् के निर्माण की प्रक्रिया रुक जाती है। तब दो अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की उत्पत्ति होती है। इन छन्द रश्मियों के प्रभाव से प्राथमिक प्राण रश्मियों के संयोग से विभिन्न छन्द रश्मियों की उत्पत्ति पुनः प्रारम्भ होकर आकाश तत्त्व एवं विद्युत् की उत्पत्ति की प्रक्रिया पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इसके पश्चात् दृश्य पदार्थ एवं डार्क एनर्जी का निर्माण भी प्रारम्भ हो जाता है।।

२. अथास्या उदपात्रमूधसि च मुखे चोपगृह्णीयादथैनां ब्राह्मणाय दद्यात्, सा तत्र प्रायश्चित्तिः,।।
यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमाना वाश्येत, का तत्र प्रायश्चित्तिरित्यशनायां ह वा एषा यजमानस्य प्रतिख्याय वाश्यते, तामन्नमप्यादयेच्छान्त्यै, शान्तिर्वा अन्नं, 'सूयवसाद्भगवती हि भूया' इति; सा तत्र प्रायश्चित्तिः।।
यस्याग्निहोत्र्युपावसृष्टा दुह्यमाना स्पन्देत, का तत्र प्रायश्चित्तिरिति; सा यत्तत्र स्कन्दयेत्तदभिमृश्य जपेत्,।।
यदद्य दुग्धं पृथिवीमसृप्त, यदोषधीरत्यसृपद्यदापः। पयो गृहेषु अघ्न्यायां, पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयीति,।।
तत्र यत्परिशिष्टं स्यात्' तेन जुहुयाद् यद्यलं होमाय स्यात्,।।
यद्यु वै सर्वं सिक्तं स्यादथान्यामाहूय तां दुग्ध्वा तेन जुहुयादा त्वेव श्रद्धायै होतव्यं; सा तत्र प्रायश्चित्तिः,।।
सर्वं वा अस्य बर्हिष्यं, सर्वं परिगृहीतं य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।।२।।

व्याख्यानम्– {मुखम् = मुखं वै वायव्यम् (पात्रम्) (मै.४.५.७)} पूर्वोक्त प्रसंग को विस्तृत करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त अनुष्टुप् छन्द रश्मि, जो वाक् तत्त्व को उत्तेजित करती है, के पाद अवयवरूप रश्मियां 'ऊधः' अर्थात् सौम्य दुग्ध अवस्था (इसके विषय में पूर्व खण्ड द्रष्टव्य है) की आधाररूप पूर्वोक्त आश्विन अवस्था, जिसे दुह्यमान भी कहा गया है एवं मुख अर्थात् वायव्य अवस्था में विद्यमान रश्मियों के साथ संगत होती हैं। यहाँ वायव्य अवस्था से प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं दैवी गायत्री छन्द रश्मियों का ग्रहण करना चाहिए। इसी कारण कहा गया है– 'वायुर्वै प्राणः' (कौ.ब्रा.८.४), 'वायुर्हि प्राणः' (ऐ.२.२६), 'मुखं गायत्री' (तां.७.३.७)। तदुपरान्त वे पादरूप छन्द रश्मियां ब्राह्मणरूप रश्मियों के साथ संगत होती हैं अर्थात् वे रश्मियां अन्य उत्पन्न गायत्री छन्द रश्मियों के साथ संगत होने लगती हैं। गायत्री रश्मियों के विषय में महर्षि जैमिनी कहते हैं– 'ब्राह्मणो गायत्री छन्दाः' (जै.ब्रा.१.६८)। महर्षि तित्तिर का भी कथन है– "गायत्रच्छन्दा वै ब्राह्मणः" (तै.ब्रा.१.१.९.६), गायत्रो हि ब्राह्मणः (तै.सं.५.१.४.५)। इसके कारण दुर्बल वा निष्क्रिय हुई सभी रश्मियां सतेज और सक्रिय हो उठती हैं और सर्ग प्रक्रिया यथावत् आगे बढ़ने लगती है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का भी कथन है–

"अथास्या ऊधसि च मुखे चोदपात्रमुपोद्गृह्य दुग्ध्वा ब्राह्मणं पाययेद्यस्याभोक्ष्यन्स्याद्यावज्जीवं संवत्सरं वा" (आश्व.श्रौ.३.११.३) इसका आशय भी उपर्युक्त कण्डिका के समान है। ध्यातव्य है कि यहाँ तथा उपर्युक्त कण्डिका में 'उदपात्रम्' का तात्पर्य पूर्वोक्त प्रेरक अनुष्टुप् छन्द रश्मियों की पादरूप रश्मियां ग्रहण किया है। ये रश्मियां विभिन्न रश्मियों को सक्रिय करने हेतु उनको अपनी अक्षररूप अति सूक्ष्म रश्मियों से सिंचित करती हैं, इसी कारण इन्हें उदपात्र अर्थात् उदकरूपी पात्र कहा गया है।।

{अशनाया = अशनाया हि मृत्युः (श.१०.६.५.१)। वाश्रृ = क्रन्दन करना, दहाड़ना (आप्टेकोश)। वाशी = वाङ्नाम (निघं.१.११)} पुनः अन्य सम्भावित स्थिति के विषय में बतलाते हुए कहते हैं कि यदि पूर्वोक्त वे वाग् रश्मियां पूर्वोक्त उपावसृष्टा वायव्य एवं दुह्यमान आश्विन रूपों वा चरणों के मध्य अर्थात् पूर्वोक्त दुह्यमान आश्विन रूप प्राप्त करते ही अति तीव्रता से सक्रिय हो उठें और वे वाग् रश्मियां केवल

वाग् रश्मियों के रूप में प्रखर हो उठें अर्थात् वे प्राणादि प्राण रश्मियों के साथ न हो सकें, तव सम्पूर्ण संगतीकरण प्रक्रिया कैसे संचालित हो पायेगी? इस प्रसंग में ग्रन्थकार का मत है कि ऐसी विकृति उत्पन्न होने पर वे प्राण रश्मियां अशनाया अर्थात् मृत्युरूप को ही प्राप्त कराने वाली होंगी। हम ५.२४.२ में लिख चुके हैं कि विभिन्न प्राण रश्मियां जव वाग् रश्मियों के साथ संयुक्त होती हैं, उसी समय वे सर्ग प्रक्रिया में उपयोगी होती हैं, अन्यथा वे असुर तत्त्व को ही उत्पन्न करती हैं। केवल असुर तत्त्व की उत्पत्ति से सर्ग प्रक्रिया का विनाश हो जाता है। इसी कारण यहाँ कहा गया है कि वाग् रश्मियां जव अपने ही स्वरूप को प्रखर करके प्राण रश्मियों से पृथक् रहती हैं, तव सर्ग प्रक्रिया वंद हो जाती है। उस स्थिति में फिर सर्गप्रक्रिया को कैसे पुनः प्रारम्भ किया जाता है? इसका उत्तर देते हुए ग्रन्थकार का कथन है कि तव उन गौ अर्थात् वाग् रश्मियों {अन्नम् = अन्नं वा आदित्याः (तै.सं.५.३.४.३), अन्नं वा ऊर्गुदुम्वरः (श.३.२.१.३३; ३.३.४.२७)} को अन्न अर्थात् कारणरूप प्राथमिक प्राण रश्मियों एवं ५.२४.१ में वर्णित औदुम्वरी छन्द रश्मि के साथ संगत किया जाता है। यहाँ (अन्न) शब्द के साथ "अपि" भी वर्तमान है {अपि = अपीति संसर्गम् (नि.१.३)}। इस कारण हमने अन्नरूप रश्मियों की संगति की वात कही है। इस विषय में महर्षि आश्वलायन का कथन है- "वाश्यमानायै यवसं प्रयच्छेत्सूयवसाद्भगवती हि भूया इति" (आश्व.श्रौ.३.११.४)। इसका तात्पर्य यह है कि उन वाग् रश्मियों को यव संज्ञक पदार्थ के साथ संगत किया जाता है। यव के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "वरुण्यो यवः" (श.४.२.१.११)। इसका तात्पर्य है कि उन छन्द रश्मियों को वरुण अर्थात् प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियों के साथ विशेष रूप से संगत किया जाता है। वरुण के सम्वन्ध में ऋषियों का कथन है- यः प्राणः स वरुणः (गो.उ.४.११), व्यानो वरुणः (श.१२.६.१.१६), अपानो वरुणः (श.८.४.२.६)। ये तीनों प्राण रश्मियां रज्जु के समान कार्य करती हैं अर्थात् वे सभी वाग् रश्मियों को जोड़ती और वांधती हुई सम्पूर्ण पदार्थ में व्याप्त हो जाती हैं। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "वरुण्यो वै ग्रन्थिः" (श.१.३.१.१६), "वरुण्या वै यज्ञे रज्जुः" (श.६.४.३.८)। ये प्राण रश्मियां अन्नरूप होकर सृष्टि प्रक्रिया को शान्त वा नियन्त्रित रखती हैं, इसी कार्य के लिए उस समय "सूयवसाद्भगवती हि भूया" की उत्पत्ति होती है। यह त्रिष्टुप् प्राजापत्य छन्द रश्मि है। इसका देवता विश्वेदेवा प्रतीत होता है। इसके प्रभाव से सभी प्राण एवं छन्द रश्मियां तीक्ष्ण तेज और संयोज्य वल से संगत होकर उन प्राणापानादि रश्मियों के साथ मिलकर सर्ग प्रक्रिया की उपर्युक्त विकृति को दूर करती हैं। ११ (ग्यारह) अक्षरों वाली यह प्राजापत्या त्रिष्टुप् ऋचा ऋग्वेद १.१६४.४० विराट् त्रिष्टुप् छन्दस्क-

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिव शुद्धमुदकमाचरन्ती।।४०।।

का प्रथम पाद है। इस प्रकार इस प्राजापत्या त्रिष्टुप् रश्मि एवं प्राणापानादि के साथ वाग् रश्मियों के संगत होने पर सर्ग प्रक्रिया यथावत् संचालित होने लगती है।।

अव पुनः महर्षि कहते हैं कि उपर्युक्त वायव्य उपावसृष्टा तथा दुह्यमान आश्विन अवस्थाओं के मध्य विभिन्न वाग् रश्मियां अपने मार्ग वा कार्यों से विचलित हो जाएं अर्थात् उनकी गति और वल में परिवर्तन आ जाये तथा उनसे उत्पन्न सोम पदार्थ अर्थात् मन्दगामी मरुद् रश्मियां एवं सूक्ष्म असुर तत्त्व स्पन्दन करता हुआ सर्वत्र फैलने लगे, तव सर्ग प्रक्रिया का संचालन कैसे होता है? यहाँ इस प्रश्न का उत्पन्न होना इस कारण स्वाभाविक है, क्योंकि छन्दादि रश्मियों की गति और मार्ग का विचलन तथा असुर पदार्थ का उत्पन्न होना आदि लक्षण एक साथ उत्पन्न होना सर्ग प्रक्रिया में वाधक है। इसका समाधान करते हुए ऋषि ने लिखा है- {जपः = ब्रह्म वै जपः (कौ.ब्रा.३.७)} उस समय उन मन्दगामी मरुद् रश्मियों एवं असुर रश्मियों को सम्पीडित करने हेतु सब ओर से व्यापक रूप से आच्छादित करती हुई एक विराट् त्रिष्टुप् अथवा स्वराट् पंक्ति छन्द रश्मि समृद्ध होती हुई उत्पन्न होती है। उस छन्दरश्मिरूपी ऋचा को अगली कण्डिका में दर्शाया गया है।।

वह ऋचा इस प्रकार है- "यदद्य दुग्धं पृथिवीमसृप्त, यदोषधीरत्यसृपद्यदापः। पयो गृहेषु अघ्न्यायां, पयो वत्सेषु पयो अस्तु तन्मयि"। यह ऋचा पयोदेवताक प्रतीत होती है। इसके दैवत एवं छान्दस प्रभाव से सोम अर्थात् मन्दगामी मरुद् रश्मियां तीव्र तेज और वल से युक्त होकर असुर रश्मियों को दूर तक

फैलाकर दुर्वल वना देती हैं। इसके अन्य प्रभाव से यह छन्द रश्मि अन्तरिक्ष में विसृत हुई मरुद् रश्मियों रूपी सोम तत्त्व, {ओषधिः = ओषधयो बर्हिः (ऐ.५.२८), ओषधो वै सोमो राजा (ऐ.३.४०)} सतेज हुआ सोम तत्त्व, विभिन्न छन्दादि रश्मियां एवं प्राण रश्मियों में मिश्रित हुए सोम तत्त्व को अविनाशी सूक्ष्म वाग् रश्मियों एवं मनस्तत्त्व रूपी वत्स नामक सर्वाच्छादक तत्त्व के साथ पुनः-२ संगत करती हैं, जिसके कारण सभी छन्दादि रश्मियां प्राणवती एवं तेजवती हो उठती हैं, क्योंकि कहा गया है- "प्राणः पयः" (श.६.५.४.१५) एवं "पयः ज्वलतोनाम" (निघं.१.१७)। इस प्रकार वे सोम रश्मियां सर्ग प्रक्रिया में पुनः सक्रिय हो उठती हैं।।

इधर कहा कि मन्दगामी मरुद् रश्मियों रूपी उपर्युक्त सोमपदार्थ, जो वायव्य व आश्विन अवस्था से दूर हो गया था, के पृथक् होने के उपरान्त भी उस वायव्य एवं आश्विन अवस्था में यदि पर्याप्त सोम तत्त्व विद्यमान रहता है, तव वह प्राणादि रश्मियों के साथ संगत होकर सर्ग प्रक्रिया को यथावत् चालू रखता है। यदि वह सोम तत्त्व अपर्याप्त होता है, तव सोम तत्त्व को उपर्युक्त प्रक्रिया के अनुसार वापिस प्राप्त होने पर ही सर्ग प्रक्रिया प्रारम्भ हो पाती है।।

अव महर्षि लिखते हैं कि उपर्युक्त अवस्था में जव सोम तत्त्व अर्थात् मन्दगामी मरुद् रश्मियां पूर्ण रूप से सर्ग प्रक्रिया से पृथक् हो जाए, तव रौद्री अवस्था अर्थात् प्राथमिक प्राण रश्मियों के मन एवं वाक् तत्त्व के मेल से अन्य मरुद् रश्मियां उत्पन्न होने लगती हैं और वे मरुद् रश्मियां वायव्य एवं आश्विन चरणों में गुजरती हुई सर्ग प्रक्रिया को वनाये रखती हैं। {श्रद्धा = श्रत्+धा (श्रत् = सत्यनाम - निघं.३.१०), 'श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः' (ऐ.७.१०), 'श्रद्धा वा आपः' (तै.ब्रा.३.२.४.१)} अन्य मरुद् रश्मियों के उत्पन्न होने तक श्रद्धारूपी उन प्राण रश्मियों में संसर्ग क्रियाएं होती रहती हैं, साथ ही उन प्राण रश्मियों की पत्नीरूप रक्षिका शक्तियों अर्थात् दैवी गायत्री छन्द रश्मियों में संसर्ग प्रक्रिया चलती रहती है। इससे उस स्तर पर सर्ग प्रक्रिया की निरन्तरता वनी रहती है, जो अन्ततः आश्विन और सौम्य अवस्था तक सर्ग यज्ञ को वनाये रखता है।।

इस प्रकार विभिन्न प्रायश्चित्त संज्ञक उपर्युक्त प्रक्रियाओं के चलते अन्तरिक्ष में विद्यमान सभी प्रकार की रश्मियों का परिग्रहण करके अग्निहोत्र अर्थात् लोक निर्माण यज्ञ प्रक्रिया सम्यग् रूप से निरन्तर चलती रहती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया के पूर्वोक्त १६ चरणों में कभी-२ अनेक वाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिनमें से एक वाधा का उल्लेख उपर्युक्त से पूर्व कण्डिकाओं में दिया गया है। अन्य वाधाएं भी आती रहती हैं, उस समय एक अनुष्टुप् छन्द रश्मि के अवयव तृतीय और चतुर्थ चरण में विद्यमान रश्मियों के साथ संगत होकर द्वितीय चरण की रश्मियों के साथ क्रिया करके सभी रश्मियों को सक्रिय करती है। कभी-२ कुछ छन्द रश्मियां अति तीव्र होकर प्राण रश्मियों से संयुक्त नहीं हो पाती हैं, जिससे वे प्राण रश्मियां डार्क एनर्जी में परिवर्तित हो जाती हैं। उस समय प्राण, अपान और व्यान रश्मियां तीक्ष्ण रूप धारण करके तीव्र छन्द रश्मियों को वलपूर्वक वांधती और नियन्त्रित करती हैं, जिससे वे प्राण रश्मियों के साथ मिलकर दृश्य पदार्थ एवं दृश्य ऊर्जा को उत्पन्न करने लगती हैं। उस समय एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि भी उत्पन्न होकर इस कार्य को और तीव्रता से करती है। कभी-२ विभिन्न छन्द रश्मियां दुर्वल होकर सृष्टि रचना में भाग लेने में असमर्थ हो जाती हैं। यह दुर्वलता कभी-२ डार्क एनर्जी के प्रभाव से भी उत्पन्न हो जाती है, उस समय एक त्रिष्टुप् छन्द रश्मि उत्पन्न होकर डार्क एनर्जी को नियन्त्रित करके दृश्य ऊर्जा और पदार्थ को उत्पन्न करने में सहायक होती है और वह डार्क एनर्जी अन्तरिक्ष में दूर-२ तक फैलकर दुर्वल हो जाती है तथा दृश्य ऊर्जा सवल होने लगती है। जव कभी सृष्टि रचना में उपयोगी विभिन्न रश्मियों की मात्रा में न्यूनता हो जाती है, तो सूक्ष्म प्राण एवं छन्द रश्मियां परस्पर संसर्ग क्रियाएं करती हुई नई-२ रश्मियों को उत्पन्न करती रहती हैं, जिससे सृष्टि प्रक्रिया की निरन्तरता सदैव वनी रहती है।।

इति २५.२ समाप्तः

ॐ अथ २५.३ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

सृष्टि व प्रलय क्रम

१. असौ वा अस्यादित्यो यूपः, पृथिवी वेदिरोषधयो बर्हिर्वनस्पतय इध्मा, आपः प्रोक्षण्यो, दिशः परिधयः।।
यद्ध वा अस्य किंच नश्यति, यन्म्रियते, यदपाजन्ति, सर्वं हैवेनं तदमुष्मिँल्लोके यथा बर्हिषि दत्तमागच्छेदेवमागच्छति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति,।।
उभयान् वा एष देवमनुष्यान् विपर्यासं दक्षिणा नयति, सर्वं चेदं यदिदं किंच,।।
मनुष्यान् वा एष सायमाहुत्या देवेभ्यो दक्षिणा नयति सर्वं चेदं यदिदं किंच त एते प्रलीना न्योकस इव शेरे, मनुष्या देवेभ्यो दक्षिणा नीताः,।।
देवान् वा एष प्रातराहुत्या मनुष्येभ्यो दक्षिणा नयति सर्वं चेदं यदिदं किंच, त एते विविदाना इवोत्पतन्त्यदोऽहं करिष्येऽदोऽहं गमिष्यामि{मी}ति वदन्तः।।

व्याख्यानम्- {ओषधिः = ओषधयः खलु वै वाजः (तै.ब्रा.१.३.७.१)। वनस्पतिः = अग्निर्वै वनस्पतिः (कौ.ब्रा.१०.६)। आपः = सौम्या ह्यापः (ऐ.१.७)} इस सर्गयज्ञ में आदित्य अर्थात् कारणरूप प्राथमिक प्राण रश्मियां, मन एवं सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व यूप का कार्य करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस सृष्टि में संयोग-वियोग का व्यापार सम्पूर्ण रूप से इन्हीं के द्वारा चलता है। इस सृष्टि यज्ञ के मूलभूत यजमान ये पदार्थ ही हैं अथवा ये ऐसे स्तम्भ रूप हैं कि जिनसे समस्त रश्मिजगत् सदैव वंधा रहता है। इनके विना सृष्टि की कोई भी आगामी क्रिया सम्भव नहीं होती। पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष ही इस सृष्टि यज्ञ की वेदि के समान है, जिसमें समस्त पदार्थ भरा रहता है और साथ ही नाना प्रकार की संयोग-वियोगादि क्रियाएं करते रहकर निरन्तर नवीन पदार्थों को उत्पन्न करता रहता है। औषधि अर्थात् नाना प्रकार की छन्द रश्मियां वाज अर्थात् संयोज्य वलों से युक्त होकर अन्नरूप होती हैं अर्थात् वे रश्मियां प्राण रश्मियों के साथ वलवती होकर निरन्तर नानाविध संगत होती रहती हैं। वनस्पति अर्थात् विभिन्न रश्मियों की पालक और रक्षक विद्युत् ईंधन का कार्य करती है। इसका तात्पर्य यह है कि यह विद्युत् विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों को नानाविध प्रकाशित और परिपक्व करती है। विभिन्न आपः अर्थात् सोम रश्मियां प्रोक्षणीरूप होती हैं, जो निरन्तर विद्युदग्नि के अन्दर अपनी आहुति प्रदान करती रहती हैं। इनके द्वारा ही विद्युदग्नि निरन्तर प्रकाशित और वलवान् होता रहता है। दिशाएं ही विभिन्न परमाणु आदि पदार्थों की परिधियों के समान होती हैं। दिशा के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "दिशो वै परिभूश्छन्दः" (श.८.५.२.३)। महर्षि जैमिनी का कथन है- "दिशो वै पृष्ठानि" (जै.ब्रा.२.२१)। इनका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक परमाणु आदि पदार्थ को आच्छादित करने वाली छन्द रश्मियां ही दिशारूप होकर परिधि का कार्य करती हैं और ये ही उनका आधार भी होती हैं। इससे उनकी घूर्णन आदि क्रियाएं निर्धारित और संचालित होती हैं।।

पूर्व खण्ड में सर्ग प्रक्रिया के दौरान जो-२ भी पदार्थ पृथक् हो जाता है, नष्ट हो जाता है, विकृत गतियों को प्राप्त हो जाता है अथवा प्राणविहीन होकर दुर्वल हो जाता है, वह सव कुछ इस अवकाशरूपी अन्तरिक्ष में विद्यमान आदित्यरूप कारण प्राण रश्मियों में वापिस लौट आता है। इसके पश्चात् वह पुनः सर्ग प्रक्रिया का भाग उसी प्रकार वन जाता है, जैसा कि पूर्व खण्ड के साथ-२ उपर्युक्त कण्डिका से स्पष्ट होता है। इसके साथ ही ग्रन्थकार का कथन है कि विभिन्न प्रकार के उपर्युक्त पदार्थ

जिस प्रकार छन्द और मरुद् रश्मियों के साथ संगत होकर अथवा उनके रूप में अभिव्यक्त होकर सृजन कर्मों को करने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार कारणरूप प्राण रश्मियों में मिलकर सर्ग प्रक्रिया को सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। इस विषय में पूर्व खण्ड भी पठनीय है।।

उपर्युक्त सर्ग प्रक्रिया को प्रकारान्तर से समझाते हुए कहते हैं कि इस सृष्टि में जो कुछ भी है, वह देव एवं मनुष्य अर्थात् मनस्तत्त्व एवं सूत्रात्मा वायु के बल के कारण ही है। इनके कारण ही विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियां बलयुक्त होकर नाना प्रकार के परमाणु आदि पदार्थों को बलयुक्त करती हैं। ये दोनों पदार्थ प्राथमिक भूमिका निभाते हैं, साथ ही ये पदार्थ सर्वाधिक व्यापक होते हैं। इनमें भी मनस्तत्त्व सर्वाधिक व्यापक और सबसे प्राथमिक प्राण है तथा यही सृष्टि के समस्त पदार्थों का आधार भी है। इसी से सभी पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं, जिनमें से वाक् तत्त्व को छोड़कर सूत्रात्मा वायु सर्वप्रथम उत्पन्न होता है। यहाँ 'विपर्यास' शब्द से यह संकेत मिलता है कि मनस्तत्त्व एवं सूत्रात्मा वायु की विभिन्न पदार्थों में आहुतियां उलटफेर कर दी जाती हैं। इस सृष्टि में जो कुछ भी है, वह सब इसी प्रकार से निर्मित वा नष्ट होता है। इस विषय को अगली दो कण्डिकाओं में स्पष्ट किया गया है। यहाँ 'विपर्यास' शब्द से दूसरा संकेत यह मिलता है कि ये मन और सूत्रात्मा वायु रश्मियां विभिन्न रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को सब ओर से व्याप्त किये रहती हैं तथा ऐसा करके उन पदार्थों को अपने दक्षिण अर्थात् श्रेष्ठ बल से युक्त करती हैं।।

इस सृष्टि में जो भी पदार्थ वर्तमान हैं, वे सब अपने जीवन के अन्तिम काल अर्थात् प्रलय आने के समय मनुष्य अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों को ग्रहण कर देव अर्थात् मनस्तत्त्व के लिए समर्पित कर देते हैं। वे सभी पदार्थ स्वयं भी सूत्रात्मा वायु के साथ-२ मनस्तत्त्व में समर्पित व विलीन होने लगते हैं और ऐसा करते समय वे पदार्थ अपने बल और तीक्ष्ण गति को प्राप्त करके अपने कारण गृहरूप **मनस्तत्त्व में लीन** होकर **मानो प्रसुप्तावस्था प्राप्त कर लेते हैं**। उन **पदार्थों की सम्पूर्ण सत्ता** व सामर्थ्य भी विनाश को **प्राप्त** करके अपने **कारणरूप मनस्तत्त्व में समा** जाती है।।

इसके विपरीत जब सर्गारम्भ का काल आता है, तब **सभी** पदार्थ, जो **प्रकृतिरूप सूक्ष्मतम** एवं गुणों की साम्यावस्था से युक्त पदार्थ में लीन हुए होते हैं, वे **देव अर्थात्** मनस्तत्व के रूप **में** प्रकट होकर पुनः मनुष्य अर्थात् सूत्रात्मा वायु रश्मियों के रूप से **प्रकट होते हैं** अर्थात् **मनस्तत्त्व की** सामर्थ्य और गति सूत्रात्मा वायु में समर्पित हो जाती है। ऐसा करके वह उपादानभूत पदार्थ दक्षिणा **अर्थात्** अपने गुण, कर्म, स्वभाव की दक्षता को प्राप्त करने में समर्थ होता है। **यहाँ** स्पष्ट है कि **सृष्टि प्रक्रिया** में प्रथम मनस्तत्त्व की उत्पत्ति होती है, फिर सूक्ष्म वाक् तत्त्व के **संयोग से** सूत्रात्मा वायु **की** उत्पत्ति होती है। यद्यपि यहाँ सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि **की चर्चा** नहीं की गयी है, **पुनरपि** ग्रन्थ में अनेकत्र इस रहस्य को उद्घाटित किया गया है। **उसके पश्चात्** मन एवं 'ओम्' **छन्दरश्मिरूपी** वाक् तत्त्व की आहुति सूत्रात्मा वायु में दी जाती है, **तब आगामी प्राण** एवं छन्दादि **रश्मियों की रचना** एवं उनकी दक्षता प्राप्त होती है। उसके पश्चात् सभी परमाणु वा **रश्मि आदि** पदार्थ गति करते **एवं** प्रकाशित वा सक्रिय होते हुए विभिन्न प्रकार के कर्मों को करने हेतु **उद्यत** होकर परस्पर **प्रतिस्पर्धा करते हैं।** इसका तात्पर्य यह है कि उस समय सम्पूर्ण परमाणु **आदि पदार्थ विक्षोभ** को प्राप्त होकर **परस्पर** अन्योन्य क्रियाएं तीव्रता से करने लगते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत **होता है** कि उन परमाणु **आदि** पदार्थों में एक-दूसरे से टकराने की होड़ लगी हो और इसी प्रकार की **क्रियाओं** के निरन्तर **चलने से** अग्रिम पंक्ति के पदार्थों की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि की उत्पत्ति के समय एवं उसके पश्चात् भी हर प्रकार की संयोग और वियोग की प्रक्रिया मनस्तत्त्व एवं सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व, तदुपरान्त प्राण रश्मियों में होती है। सम्पूर्ण सृष्टि में एवं उसके सम्पूर्ण काल में ऐसा कोई बल वा क्रिया आदि विद्यमान नहीं हो सकता, जो इन तत्त्वों से पृथक् रह सके। इस प्रकार ये पदार्थ ही सम्पूर्ण सृष्टि रचना के केन्द्र होते हैं। यहाँ हम अनादि और शाश्वत पदार्थ प्रकृति एवं ईश्वर तत्त्व की चर्चा नहीं कर रहे हैं। **अवकाशरूप आकाश इस सम्पूर्ण सृष्टि यज्ञ के लिए वेदी के समान है तथा विद्युत् ईंधन के समान।** यह विद्युत् ही विभिन्न कणों और विकिरणों को प्रकाशित करती है। विभिन्न मरुद रश्मियां विद्युत् को सबल बनाती रहती हैं। कुछ सूक्ष्म

छन्द रश्मियां विभिन्न कण एवं क्वान्टाज् को पूर्ण रूप से आच्छादित करके उनके घूर्णन की गति और दिशा निश्चित करती हैं। सृष्टि रचना के समय कुछ पदार्थ दुर्बल वा निष्क्रिय होकर अन्तरिक्ष में रिस जाता है, वह पदार्थ भी विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियों के सम्पर्क में आकर पुनः सक्रिय होकर सृष्टि प्रक्रिया में भाग लेने लगता है। इस सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न तत्त्व मनस्तत्त्व होता है, जो सभी उत्पन्न पदार्थों की अपेक्षा व्यापक एवं उन सबका आधार व प्रेरक भी होता है। प्राथमिक प्राण रश्मियों में सबसे अधिक व्यापक और सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला पदार्थ सूत्रात्मा वायु होता है। ध्यातव्य है कि यहाँ मनस्तत्त्व का अर्थ मन एवं वाक् का मिथुन अर्थात् सक्रिय मनस्तत्त्व ही ग्रहण करना चाहिए। ये मन एवं सूत्रात्मा वायु दोनों ही पदार्थ सभी पदार्थों को बल एवं आश्रय प्रदान करते हुए बांधने वा संगत करने वाले होते हैं। जब सृष्टि उत्पत्ति का प्रारम्भ होता है, उस समय सक्रिय मनस्तत्त्व ही सूत्रात्मा वायु रश्मियों के रूप से प्रकट होता है और वह सूत्रात्मा वायु को बल, प्रेरणा एवं आश्रय भी प्रदान करता है। उसके पश्चात् ये दोनों ही पदार्थ मिलकर विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियों को उत्पन्न, संचालित एवं नियन्त्रित करते हैं और ये ही उन सबको नाना प्रकार से विकृत करके पदार्थान्तरों को उत्पन्न करते हैं। जब सृष्टि का प्रलयकाल प्रारम्भ होता है, तब स्थूल पदार्थ अपने-२ कारणरूप सूक्ष्म पदार्थों में विलीन होते जाते हैं। इसी क्रम में विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां अपनी शक्ति और गति के साथ क्षीण होती हुई सूत्रात्मा वायु में विलीन हो जाती हैं। तदनन्तर सूत्रात्मा वायु रश्मियां मनस्तत्व में विलीन हो जाती हैं। **अन्त में ईश्वर तत्त्व की प्रेरणा से ही वह मनस्तत्व भी अन्तिम उपादान कारणभूत पदार्थ प्रकृति में विलीन हो जाता है।** सृष्टि और प्रलय का यही क्रम निश्चित समयानुसार चलता रहता है।।
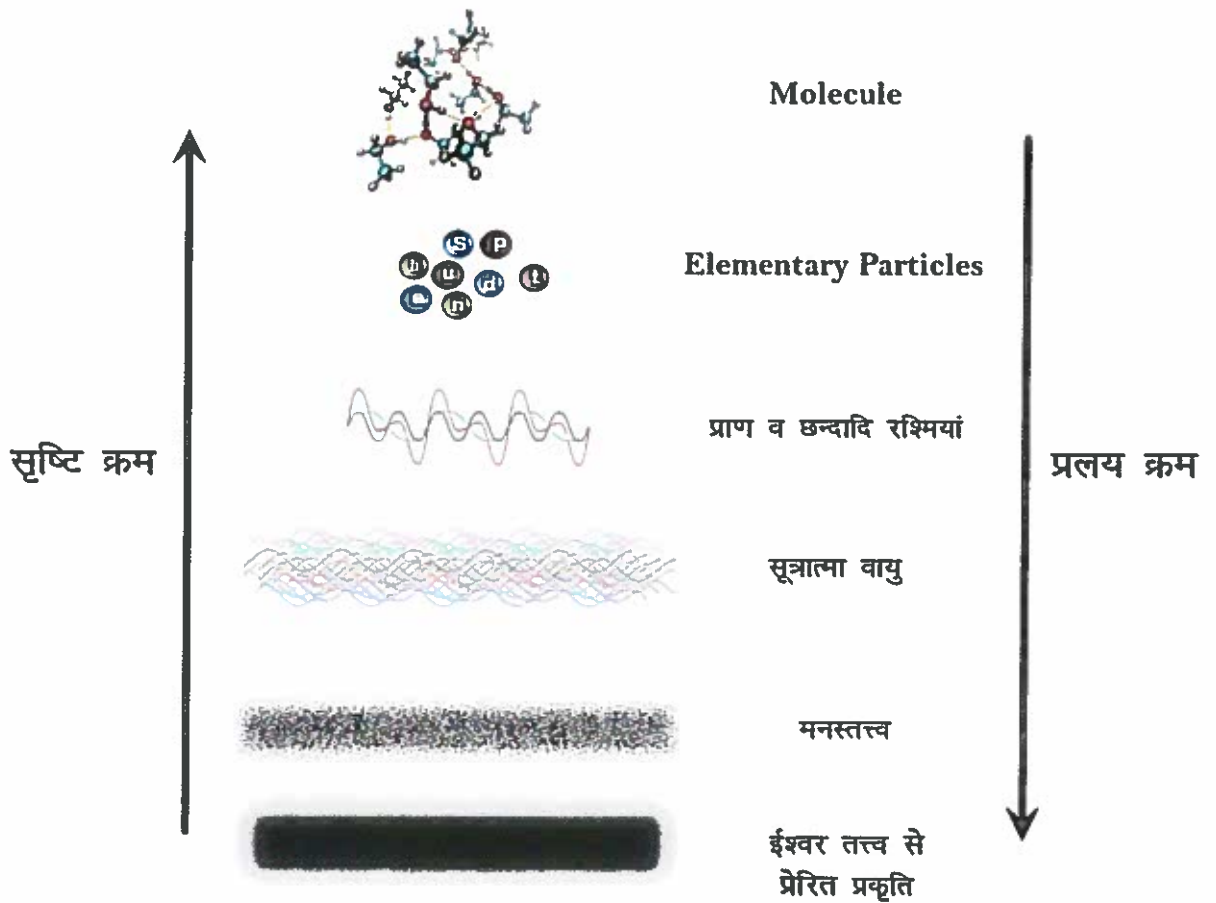
चित्र २५.१ सृष्टि तथा प्रलय का क्रम

२. यावन्तं ह वै सर्वमिदं दत्त्वा लोकं जयति, तावन्तं ह लोकं जयति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।।

अग्नये वा एष सायमाहुत्याऽऽश्विनमुपाकरोति, तद्वाक् प्रतिगृणाति वाग्वागिति।।
अग्निना हास्य रात्र्याश्विनं शस्तं भवति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।।

व्याख्यानम्– उपर्युक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि उस समय विद्यमान पदार्थ सूत्रात्मा वायु को ग्रहण करके उसे मनस्तत्व को जितने अंशों में सौंप देता है अथवा मनस्तत्व को ग्रहण करके उसे सूत्रात्मा वायु को जितने अंशों में सौंप देता है, उतने ही भाग में वह पदार्थ अपने-२ पूर्वोक्त कार्य को करने में सक्षम होता है। इसका आशय यह है कि तत्त्व परिवर्तन की यह क्रिया ही लोकसृजन वा लोकप्रलय की क्रियाओं को निर्धारित करती है। जब पदार्थ का सम्पूर्ण रूप से समर्पण हो जाता है, तब सम्पूर्ण रूप से सृष्टि वा प्रलय का कार्य भी सम्पन्न हो पाता है। यहाँ यह संकेत भी मिलता है कि **प्रलय अथवा सृजन के कार्य सहसा ही सम्पूर्ण पदार्थ में एक साथ सम्पन्न नहीं होते, बल्कि उसमें धीरे-२ विस्तार होता हुआ पूर्णता को प्राप्त होते हैं।** यद्यपि इस कण्डिका में सृजन प्रक्रिया की ओर ही संकेत है परन्तु हमने पूर्व प्रसंग को दृष्टिगत रखकर प्रलय क्रम को भी दर्शाया है।।

प्रलय क्रम के अन्तर्गत पुनः लिखते हैं कि उस समय विद्यमान सभी प्रकार के परमाणु आदि पदार्थ और ५.२६.२ में वर्णित आश्विन अवस्था, जिसमें विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियों का संगतीकरण होता है, उन प्राण एवं छन्द रश्मियों को अग्नि अर्थात् मन एवं वाक् तत्त्व के मिथुन को समर्पित करने का उपक्रम प्रारम्भ होता है अर्थात् वे प्राण एवं छन्द रश्मियां सूत्रात्मा वायु में परिवर्तित होती हुई मन एवं वाक् तत्त्व में लीन होने लग जाती हैं। उस समय सक्रिय मनस्तत्व से 'वाक्' रश्मि विपरीत गति और स्वरूप में प्रकट होती है। खण्ड ५.३-५ में हम पढ़ चुके हैं कि 'वाक्' रश्मि सूत्रात्मा वायु ही होती है। **इससे यह सिद्ध होता है कि प्रलय के क्रम में सूत्रात्मा वायु जब मनस्तत्व में विलीन होने को होता है, उस समय मनस्तत्व से विपरीत स्वभाव वाला सूत्रात्मा वायु उत्पन्न होकर उस सूत्रात्मा वायु, जिसमें विभिन्न प्राण एवं छन्द रश्मियों का लय हो चुका होता है, को अपने साथ संयुक्त करके उसके आकर्षण व धारण बल को नष्ट करके मनस्तत्त्व में विलीन कर देता है, जिससे सृष्टि के समस्त पदार्थ मनस्तत्त्व में लीन होकर अन्त में मूल प्रकृति में विलीन हो जाते हैं।।**
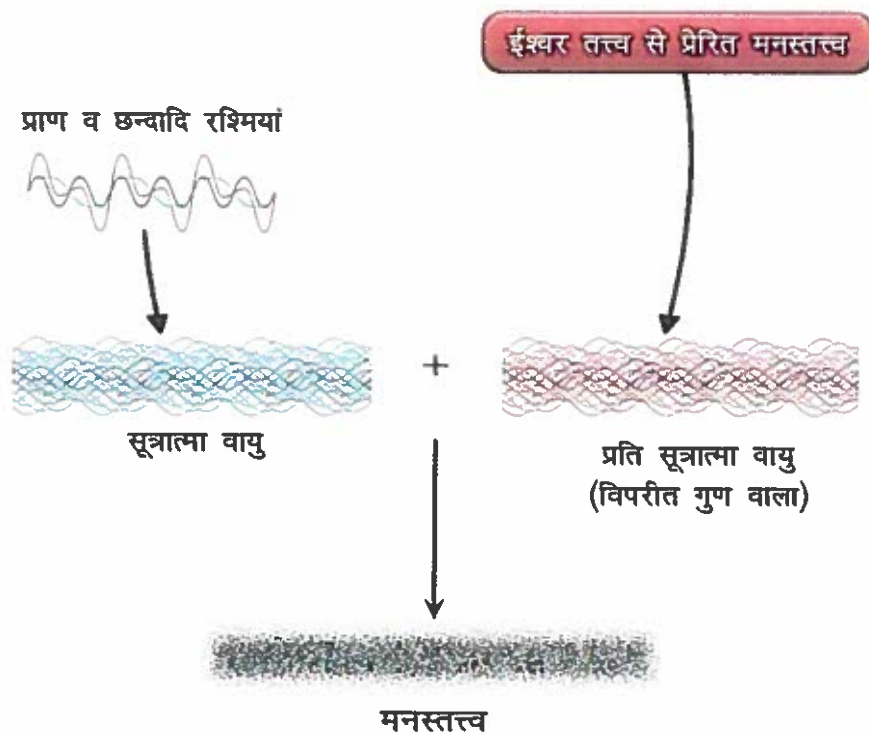
चित्र २५.२ महाप्रलय की प्रक्रिया

इस प्रकार की परिस्थिति बनने पर आश्विन चरण में विद्यमान पदार्थ नष्ट होकर मन एवं वाग् रूप अग्नि में विलीन हो जाते हैं और मन और वाग् रूप अग्नि के द्वारा ही वे सक्रिय और सतेज होकर सृष्टि को उत्पन्न भी करते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि के प्रारम्भ में मनस्तत्त्व का जितना भाग परिवर्तित होकर सूत्रात्मा वायु के रूप में प्रकट होता है, उसी अनुपात में मात्रा और गति के साथ सृष्टि रचना प्रारम्भ होती है।

इसी प्रकार प्रलयकाल में सूत्रात्मा वायु का जितना भाग मनस्तत्त्व में विलीन हो जाता है, उसी अनुपात में प्रलय क्रिया भी होने लगती है। जब विभिन्न छन्द और प्राण रश्मियां प्रलयकाल आने पर सूत्रात्मा वायु में परिवर्तित होने लगती हैं, उस समय मनस्तत्त्व से ईश्वर प्रेरणा पर एक सर्वथा विपरीत गुण वाले सूत्रात्मा वायु की उत्पत्ति होती है, जो उस सूत्रात्मा वायु को अपने साथ संगत करके तत्काल ही मनस्तत्त्व में परिवर्तित कर देता है। इसके पश्चात् वह मनस्तत्त्व प्रकृतिरूपी मूल उपादान कारण में विलीन हो जाता है, इसे ही महाप्रलय कहते हैं।।

३. आदित्याय वा एष प्रातराहुत्या महाव्रतमुपाकरोति, तत्प्राणः प्रतिगृणात्यन्नमन्नमिति।।
आदित्येन हास्याह्ना महाव्रतं शस्तं भवति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति।।
तस्य वा एतस्याग्निहोत्रस्य सप्त च शतानि विंशतिश्च संवत्सरे सायमाहुतयः; सप्त चो एव शतानि विंशतिश्च संवत्सरे प्रातराहुतयस्तावत्योऽग्नेर्यजुष्मत्य इष्टकाः।।
संवत्सरेण हास्याग्निना चित्येनेष्टं भवति य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोतिः।।३।।

व्याख्यानम्- जब सृष्टि प्रक्रिया आरम्भ होती है, तब उसकी चर्चा प्रकारान्तर से प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि उस समय आदित्य अर्थात् सक्रिय मनस्तत्व एवं प्राथमिक प्राण रश्मियां (सूत्रात्मा वायु सहित) अकस्मात् वेगपूर्वक परस्पर संगत होकर, विशेषकर सूत्रात्मा वायु के साथ संगत होकर महाव्रत संज्ञक २४ छन्द रश्मियों को उत्पन्न करना प्रारम्भ करती हैं। महाव्रत संज्ञक २४ छन्द रश्मियों के विषय में ४.१४.१ द्रष्टव्य है। उस समय वे २४ छन्द रश्मियां सृष्टि प्रक्रिया के आत्मा के रूप में सर्वत्र व्याप्त एवं प्रवाहित होने लगती हैं। इन महाव्रत रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है- "तस्य (संवत्सरस्य) एष आत्मा यन्महाव्रतम्" (शां.आ.१.१), "शिरो वा एतद्यज्ञस्य यन्महाव्रतम्" (जै.ब्रा.२.३०४)। इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए प्राण तत्त्व विशेषकर सूत्रात्मा वायु 'अन्नम्-अन्नम्' इन पदरूप छन्द रश्मियों को व्यापक रूप से उत्पन्न करने लगता है, जिसके कारण सम्पूर्ण पदार्थ जगत् में संयोजक बलों में भारी वृद्धि होती है और सृष्टि रचना तीव्रता से प्रारम्भ हो जाती है।।

उपर्युक्त स्थिति उत्पन्न होने पर प्राण नामक प्राथमिक प्राण रूपी आदित्य रश्मियों के द्वारा उत्पन्न हुई महाव्रत संज्ञक २४ छन्द रश्मियां तीक्ष्ण हो उठती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया तीव्र होती है।।

{यजुः = प्राण एव यजुः (श.१०.३.५.४), यजूंषि वै ब्रह्मणोऽपानः (काठ.संक.४.२)। इष्टकाः = अहोरात्राणि वा इष्टकाः (श.६.१.२.१८), पशवो वा इष्टकाः (मै.३.२.३)} इस सर्ग यज्ञ रूपी अग्निहोत्र {प्रातः = तं देवाः प्राणयन्त स प्रणीतः प्रातायत प्रातायीतीइँ तत्प्रातरभवत् (ऐ.आ.२.१.५), देवस्य सवितुः प्रातः प्रसवः प्राणः (तै.ब्रा.१.५.३.१)} अर्थात् सर्ग प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरण में कुल ७२० प्रकार की छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं और इस सृष्टि के अन्तिम काल में भी इतनी ही प्रकार की छन्द रश्मियां इस प्रकार प्रकट होती हैं कि उनमें परस्पर संगति का सर्वथा अभाव होने लगता है, जिसके कारण विभिन्न पदार्थ अपने-२ कारण पदार्थों में लीन होने लगते हैं। इन छन्द रश्मियों को परस्पर संयुक्त वा वियुक्त करने के लिए भी प्राण, अपान वा अन्य सूक्ष्म मरुद् रश्मियों की उत्पत्ति होती है। जैसा कि हम पूर्व में अनेकत्र लिख चुके हैं कि विभिन्न छन्दादि रश्मियों को परस्पर संयुक्त करने के लिए प्राण, अपान, व्यान, सूत्रात्मा वायु, 'हिम्' रश्मि एवं मास आदि रश्मियां उत्तरदायी होती हैं। इनकी अनुपस्थिति

में कोई भी सृष्टि प्रक्रिया सम्भव नहीं है। ये प्राणापान आदि सभी संयोजक रश्मियां यजुष्मती होती हैं। इसका तात्पर्य यह भी है कि ये सभी रश्मियां मनस्तत्त्व के साथ निरन्तर संगत रहती हैं, इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "मन एव यजूंषि" (श.४.६.७.५), "मनो वै यजुः" (श.७.३.१.४०)। इन्हीं सूक्ष्म रश्मियों के कारण विभिन्न छन्दादि रश्मियों में गति आदि उत्पन्न होती हैं। इसी कारण महर्षि तित्तिर का कथन है- सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत् (तै.ब्रा.३.१२.६.१)। हमारे मत में सृष्टि के प्रारम्भ तथा प्रलयकाल के प्रारम्भ में उत्पन्न होने वाली छन्दादि रश्मियां एवं प्राणापानादि रश्मियां विपरीत गुणकर्म स्वभाव वाली उत्पन्न होती हैं। इस कारण ही समान नाम से जानी जाने वाली रश्मियां विपरीत गुण और कर्म को प्रदर्शित करती हैं। यह उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार हम पूर्वोक्त कण्डिकाओं में विपरीत गुण वाले सूत्रात्मा वायु की चर्चा कर चुके हैं।।

इस प्रकार की स्थिति वनने पर विभिन्न प्राणादि रश्मियों के संगमन आदि कर्म समुचित रूप से सम्पन्न होकर सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। इस सृष्टि के विभिन्न चरणों के लिए आवश्यक विभिन्न क्रियाएं एवं वल निरन्तर अपेक्षानुसार उत्पन्न होते रहते हैं। इसके लिए मनस्तत्त्व एवं सूक्ष्म वाक् तत्त्व ही सर्वाधिक उत्तरदायी होते हैं। हाँ, इससे अधिक **इन सबका प्रेरक ईश्वर तत्त्व उत्तरदायी होता है परन्तु वह केवल निमित्त मात्र होता है।।**

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भ में मनस्तत्त्व एवं प्राण, अपान आदि रश्मियां तीव्र वेग से सूत्रात्मा वायु रश्मियों के साथ २४ विशेष छन्द रश्मियों को उत्पन्न करती हैं। तदुपरान्त वे २४ छन्द रश्मियां सर्वत्र ही विचरण करती हुई विविध प्रकार से परस्पर संगत होना प्रारम्भ करती हैं। ये रश्मियां प्राण, अपान आदि प्राण रश्मियों के साथ संगत होकर निरन्तर तीव्र और संयोजक बलों से युक्त होती जाती हैं। इन २४ छन्द रश्मियों के विभिन्न प्रकार के परस्पर संगत होते हुए ७२० प्रकार की विभिन्न छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। ये छन्द रश्मियां भी मनस्तत्त्व से सम्पन्न प्राणापानादि एवं मास रश्मियों के साथ संगत होकर नाना प्रकार के धारक और संयोजक बलों को उत्पन्न करती हैं। इस कारण इन रश्मियों के द्वारा विभिन्न मूलकणों और विकिरणों की उत्पत्ति होती है। **जब सृष्टि का प्रलयकाल प्रारम्भ होता है, तब इन्हीं प्रकार की सभी रश्मियों का एक सर्वथा विपरीत गुण वाला स्वरूप प्रकट होता है। इस कारण उत्पन्न हुई वे छन्दादि रश्मियां धारक और संयोजक गुणों के स्थान पर प्रक्षेपक और प्रतिकर्षक बलों को उत्पन्न करती हैं, जिसके प्रभाव से विभिन्न लोक, अणु, परमाणु, क्वान्टाज् आदि सभी धीरे-२ अपने-२ कारणरूप सूक्ष्म पदार्थ में विलीन होकर महाप्रलय को उत्पन्न करते हैं।।**

इति २५.३ समाप्तः

अथ २५.४ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. वृषशुष्मो ह वातावत उवाच जातूकर्ण्यो वक्तास्मो वा इदं देवोभ्यो यद्वैतदग्निहोत्रमुभयेद्युरहूयतान्येद्युर्वाव तदेतर्हि हूयत इति।।
एतदु हैवोवाच कुमारी गन्धर्वगृहीता वक्तास्मो वा इदं पितृभ्यो यद्वैतदग्निहोत्रमुभयेद्युरहूयतान्येद्युर्वाव तदेतर्हि हूयत इति।।
एतद्वा अग्निहोत्रमन्येद्युर्हूयते यदस्तमिते सायं जुहोत्यनुदिते प्रातरथैतदग्निहोत्रमुभयेद्युर्हूयते, यदस्तमिते सायं जुहोत्युदिते प्रातः।।
तस्माद् उदिते होतव्यम्।।

व्याख्यानम्- {जतुः = जायते प्रादुर्भूयतेऽनेनेति जतुः (उ.को.१.१८)। द्युः = अहर्नाम (निघं.१.६), (अहनि = रात्रिदिने - म.द.ऋ.भा.१.१२३.७; अहोरात्रे - नि.३.२२)} प्राचीन काल में वतावत महर्षि के पुत्र वृषशुष्म नामक ऋषि ने कहा था कि जातुकर्ण्य अर्थात् प्रत्येक पदार्थ का उत्पादक और प्रेरक मनस्तत्त्व सभी देव पदार्थों किंवा प्राण रश्मियों को गति और तेज प्रदान करता है। यहाँ "वक्तास्मः" क्रियापद में व्यत्यय मानना चाहिये। यह क्रिया वर्तमान अर्थ में प्रयुक्त है तथा 'वद्' धातु गति अर्थ में प्रयुक्त है (वदति गतिकर्मा - निघं.२.१४)। मनस्तत्त्व की प्रेरणा और तेज के द्वारा ही अग्निहोत्र अर्थात् सृष्टियज्ञ सम्पन्न होता है लेकिन यह प्रक्रिया भी तभी सम्पन्न हो पाती है, जब प्राण, अपान दोनों ही तत्त्वों का पारस्परिक पूर्ण समन्वय होता है। इसके कारण ही अग्निरूपी अहन् और सोमरूपी रात्रि का समन्वय हो पाता है। {रात्रिः = सोमो रात्रिः (श.३.४.४.१५), अग्निर्वाऽहः (श.३.४.४.१५)} जब अन्येद्युः अर्थात् प्राण एवं अपान अथवा अग्नि एवं सोम में से एक की ही प्रधानता होती है, उस समय सृष्टि यज्ञ प्रक्रिया सम्पादित नहीं हो पाती है। सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया को संचालित वा उत्पन्न करने के लिए इन दोनों ही युग्मों का संतुलित अवस्था में होना अनिवार्य है। जब कभी यह असंतुलन होता भी है, तब मनस्तत्त्व अप्रधान पदार्थ को विशेष प्रेरित करके युग्मों को समन्वित करता है, जिससे मन्द वा बन्द हुई सर्ग प्रक्रिया पुनः प्रारम्भ हो जाती है। प्राणापान का अग्नि और सोम से सम्बन्ध बतलाते हुए ग्रन्थकार ने कहा है- "प्राणापानावग्नीषोमौ" (ऐ.१.८)। इसके अतिरिक्त अन्य ऋषि का भी कथन है- "प्राणापाना एवाग्नीषोमाभ्यां सम्भरति" (काठ.२३.८)। इससे स्पष्ट होता है कि प्राण और अपान के उचित समन्वय से ही अग्नि और सोम का उचित समन्वय होकर सृष्टि रचना हो पाती है।।

उपर्युक्त कथन के साथ ही वृषशुष्म ऋषि का अन्य कथन है कि गन्धर्वगृहीता कुमारी अर्थात् {पितरः = मासा वै पितरो बर्हिषदः (तै.ब्रा.१.६.८.३), षड्वा ऋतवः पितरः (श.६.४.३.८), प्राणो वै पिता (ऐ.२.३८), मनः पितरः (श.१४.४.३.१३)} सूक्ष्म वाक् तत्त्व विभिन्न मास रश्मियों, प्राण रश्मियों, ऋतु रश्मियों यहाँ तक कि मन को भी प्रेरित करता है। जैसा कि हम पूर्व में भी अनेकत्र लिख चुके हैं कि 'ओम्' छन्द रश्मियों से युक्त मनस्तत्त्व ही सृष्टि प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है। इस 'ओम्' छन्द रश्मिरूप सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व के अभाव में सृष्टि में कोई क्रिया नहीं हो सकती है। पूर्व कण्डिका में मनस्तत्त्व को प्रेरक कहा है और इस कण्डिका में इस सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व को। यहाँ 'कुमारी' का अर्थ हमने वाक् तत्त्व ग्रहण किया है, इसी को १.२७.१ में महानग्ना 'वाक्' कहा है। यह वाक् रश्मि गन्धर्वगृहीत कैसे होती है, इस विषय में वही खण्ड द्रष्टव्य है। यहाँ भी ऋषि का पुनः कथन है कि सृष्टिप्रक्रियारूपी अग्निहोत्र को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए प्राण एवं अपान तथा अग्नि एवं सोम का पूर्ण सामंजस्य अनिवार्य है। इन दोनों के असामंजस्य से सृष्टि प्रक्रिया कदापि सम्भव

नहीं है। इस विषय में विशेष परिज्ञान के लिए पूर्वकण्डिका विचारणीय है।।

यहाँ ग्रन्थकार ने प्राणापान एवं अग्नि-सोम के असांमजस्य एवं सामंजस्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि जब प्राण रश्मि के अनुदित अर्थात् सक्रिय होने से पूर्व ही अपान रश्मियों का प्रक्षेपण प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् अपान प्राण ही अधिक सक्रिय रहता है, उस समय विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियों के संगमन और संयोजन का क्रियारूपी अग्निहोत्र ही अन्येद्यु कहा जाता है अर्थात् इस प्रकार की क्रिया असमन्वित और फलहीन होती है। इसके विपरीत प्राण रश्मियों के उदित अर्थात् सक्रिय होने पर अपान रश्मियों का प्रक्षेपण होता है, उस समय उन दोनों के समन्वय के कारण सृष्टियज्ञरूपी अग्निहोत्र की सभी क्रियाएं समुचित रूप से सम्पन्न होती हैं। इसी प्रकार अग्नि तत्त्व के निष्क्रिय वा अनुत्पन्न रहते केवल सोम रश्मियों की उत्पत्ति और विस्तार से इन दोनों तत्त्वों का युग्म असमन्वित होता है। ऐसे असमन्वित रूप से सृष्टियज्ञरूपी अग्निहोत्र का सम्पन्न होना सम्भव नहीं है। जब अग्नि तत्त्व के सक्रिय होने के साथ सोम रश्मियों का भी उस अग्नि तत्त्व में प्रक्षेपण होता है, तभी वे दोनों परस्पर समन्वित होकर सृष्टिप्रक्रियारूपी अग्निहोत्र को सम्पन्न वा संचालित कर पाते हैं। इस अग्निषोमीय सृष्टि के विषय में तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने कहा है- "अग्नीषोमाभ्यां यज्ञश्चक्षुष्मान्" (काठ.५.१), "अग्नीषोमाविदं सर्वं यदन्नं चान्नादश्च, सोमो ऽन्नमग्निरन्नादः" (काठ.संक.१.४०)। इन वचनों से स्पष्ट है कि अग्नि और सोम दोनों के समन्वय से ही यह सृष्टि यज्ञ प्रकाशित होता है तथा इनके समन्वय से ही इस सृष्टि में संयोज्य पदार्थ एवं संयोजक बल उत्पन्न और सक्रिय होकर इस सृष्टि को प्रकाशित वा उत्पन्न करते हैं, इस कारण अग्नि वा प्राण तत्त्व के उत्पन्न व सक्रिय होने पर ही सृष्टिरचनारूपी अग्निहोत्र सम्पन्न होता है।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया में मन प्रत्येक सूक्ष्म व स्थूल पदार्थ का उत्पन्न आद्य कारण है, यही सभी का प्रेरक भी है। इस सृष्टि में प्राण और अपान दोनों ही तत्त्वों का पारस्परिक समन्वय अनिवार्य होता है। इनमें भी **प्राण तत्त्व प्रथम प्रकट होता है, उसके पश्चात् मन एवं वाक् तत्त्व उस प्राण तत्त्व के ऊपर अपान तत्त्व का प्रक्षेपण करते हैं।** इसी प्रकार प्राण एवं मरुद् रश्मियों का भी परस्पर समन्वित होना अनिवार्य है। इनमें भी प्राण रश्मियां प्रथम उत्पन्न होती हैं, तदुपरान्त उनके साथ मरुद् रश्मियां संयुक्त होती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि में विभिन्न कण और क्वान्टाज् अर्थात् द्रव्य एवं ऊर्जा, सभी में पूर्ण समन्वय रहता है। इनमें भी **ऊर्जा की उत्पत्ति प्रथम होती है तथा द्रव्य की उत्पत्ति उसके पश्चात् ही होती है। इन दोनों से पूर्व भी विभिन्न प्राण एवं मरुद् रश्मियों की उत्पत्ति होती है।।**

२. चतुर्विंशे ह वै संवत्सरेऽनुदितहोमी गायत्रीलोकमाप्नोति; द्वादश उदितहोमी; स यदा द्वौ संवत्सरावनुदिते जुहोत्यथ हास्यैको हुतो भवत्यथ य उदिते जुहोति, संवत्सरेणैव संवत्सरमाप्नोति, य एवं विद्वानुदिते जुहोति, तस्मादुदिते होतव्यम्।।
एष ह वा अहोरात्रयोस्तेजसि जुहोति, योऽस्तमिते सायं जुहोत्युदिते प्रातरग्निना वै तेजसा रात्रिस्तेजस्वत्यादित्येन तेजसाऽहस्तेजस्वत्।।
अहोरात्रयोर्हास्य तेजसि हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति।।
तस्मादुदिते होतव्यम्।।४।।

व्याख्यानम्- {संवत्सरः = एतावान्वै संवत्सरो यदहोरात्रे (कौ.ब्रा.१७.५)} उपर्युक्त प्रसंग को आगे बढ़ाते हैं कि यदि प्राण नामक प्राण तत्व के उत्कर्ष के बिना ही अपान के प्राधान्य में ही प्राणादि रश्मियों के संगतीकरण की प्रक्रिया होवे, तो इसके लिए चौबीस अहोरात्र का चक्र पूर्ण होने पर ही गायत्री लोक अर्थात् {लोकः = छन्दांसि वै सर्वे लोकाः (जै.ब्रा.१.३३२)} गायत्री छन्द रश्मियां प्रकट हो पाती हैं, जबकि यदि अपान के साथ प्राण रश्मियां भी उत्कृष्ट अवस्था में उत्पन्न व व्यक्त हो जाएं, तब बारह अहोरात्र के चक्र पूर्ण होने पर ही गायत्री छन्द रश्मियां प्रकट हो जाती हैं। इस विषय में ज्ञातव्य है कि

२.२६.१ में **प्राण रश्मि की उत्पत्ति छः सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियों से तथा अपान रश्मि की उत्पत्ति चार सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियों के मेल से होती है।** यह भी जानना आवश्यक है कि अनुदित प्राण रश्मि की अवस्था में क्या केवल अपान रश्मियों के ही चौबीस चक्र चलते हैं? यदि ऐसा माना जाए, तब 'संवत्सर' शब्द, जो अहोरात्र रूप कहा गया है, की सार्थकता नहीं हो पाएगी। तब प्राण नामक प्राण तत्त्व के उदित = उत्कर्ष तथा अनुदित = अनुत्कर्ष का तात्पर्य क्या है? इस विषय में **हमारा मत है कि प्राण तत्त्व के अनुत्कर्ष की अवस्था में भी दो सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियां अनुत्कृष्ट प्राण का कार्य करती हैं तथा प्राण रश्मि की उत्कृष्टावस्था में छः सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियां विद्यमान होती हैं।** इस प्रकार इस अवस्था वाले अर्थात् अनुत्कृष्ट प्राण के रहते अहोरात्र के एक चक्र में कुल छः सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियां होती हैं। इनके चौबीस चक्र पूर्ण होने पर कुल १४४ सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियां प्रकट होकर गायत्री छन्द रश्मियों को प्रकट करती हैं।

यहाँ प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि आर्षी गायत्री छन्द रश्मि में कुल २४ अक्षर ही होते हैं तथा २.२६.१ के अनुसार सूक्ष्मतम ऋतु रश्मि एकाक्षरा ही होती है। वैसे भी एकाक्षरा से लघु रश्मि का होना सम्भव नहीं है, तब आर्षी गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति हेतु क्यों कुल १४४ अक्षरों वाली १४४ सूक्ष्मतम ऋतु रश्मियों की उत्पत्ति आवश्यक है? इस विषय में हमारा मत है कि सभी छन्द रश्मियां एक साथ वा क्रमवद्ध रूप से इन १४४ अक्षरों अर्थात् उन ऋतु रश्मियों से उत्पन्न होती हैं। इसका प्रकार यह है-

१४४ ऋतु रश्मियों, जो १४४ दैवी गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में विद्यमान होती हैं, से १४४÷२४ = छः आर्षी गायत्री, १४४÷८ = १८ प्राजापत्या, १४४÷६ = २४ याजुषी, १४४÷१८ = ८ आर्ची, १४४÷१२ = १२ साम्नी गायत्री तथा १४४÷३६ = ४ ब्राह्मी गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। आसुरी गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति इन १४४ अक्षरों से इस प्रकार हो सकती है- ६० अक्षरों से ४ आसुरी, ४८ अक्षरों से ४ साम्नी तथा ३६ अक्षरों से ६ याजुषी गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति **होती है। यहाँ यह स्पष्ट हो रहा है कि सभी गायत्री छन्द रश्मियां सम संख्या में ही उत्पन्न हो रही हैं। विषम संख्या में इनकी** उत्पत्ति ७२ अक्षरों से अर्थात् १२ अहोरात्र के चक्र से भी हो जाती, इससे यह संकेत मिलता है कि **ये छन्द रश्मियां किंवा इसी प्रकार अन्य त्रिष्टुबादि छन्द रश्मियां भी सदैव युग्म रूप में ही उत्पन्न होती हैं।** इसी वात को स्पष्ट करने हेतु चतुर्विंश संवत्सर की अनिवार्यता अनुदित प्राण हेतू तथा उदित प्राण हेतु द्वादश संवत्सर की पर्याप्तता दर्शायी गयी है।

अव हम प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के साथ अपान तत्त्व की सक्रियता की वारह वार आवृत्ति पर विचार करते हैं। इस स्थिति में प्राण तत्त्व की छः तथा अपान तत्त्व की चार कुल मिलाकर एक अहोरात्र चक्र में १० ऋतु रश्मियां होती हैं। इस प्रकार १२ चक्रों में कुल १२० ऋतु अर्थात् १२० अक्षर रश्मियां होती हैं। इनसे विभिन्न गायत्री छन्द रश्मियों की सम्भावित उत्पत्ति क्रम निम्न प्रकार है-

१२० ऋतु रश्मियां १२० दैवी गायत्री छन्द रश्मियों के रूप में स्पष्टतः हैं ही। इनसे १२०÷१५ = ८ आसुरी गायत्री, ८ अक्षर वाली अर्थात् प्राजापत्या गायत्री १२ की संख्या में + १२ अक्षर वाली साम्नी गायत्री २ की संख्या में उत्पन्न होती हैं। ६ अक्षर वाली याजुषी २० गायत्री, १८ अक्षर वाली ४ आर्ची गायत्री + २४ अक्षर वाली २ आर्षी गायत्री, २४ अक्षर वाली ४ आर्षी गायत्री + १२ अक्षर वाली २ साम्नी गायत्री एवं ३६ अक्षरों वाली २ ब्राह्मी गायत्री + २४ अक्षरों वाली २ आर्षी गायत्री छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं।

यहाँ भी सभी प्रकार की गायत्री छन्द रश्मियां सम संख्या में ही उत्पन्न हो रही हैं। इस प्रकार के अन्य युग्म भी सम संख्या वाली गायत्री छन्द रश्मियों के हो सकते हैं।

इस प्रकार सुस्पष्ट होता है कि जव प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के साथ अपान की सक्रियता होने पर इनके कुल १२ चक्रों में ही विभिन्न प्रकार की गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति हो जाती है, जवकि यदि प्राण तत्त्व का पूर्ण उत्कर्ष न हो और उस परिस्थिति में अपान सक्रिय हो जाए, तव इससे दो गुने चक्रों की अनिवार्यता होती है। **हम जानते हैं कि कोई भी क्रिया चाहे, वह जड़ पदार्थ में होवे अथवा चेतन में, वह यथासम्भव सरल वा सहज मार्ग वा विधि द्वारा ही होती है।** यही सृष्टि का सार्वत्रिक एवं शाश्वत नियम है। इस कारण गायत्री छन्द रश्मियों की उत्पत्ति हेतु प्राण व अपान दोनों ही तत्त्वों का साथ-२ ही उत्कर्ष वा सक्रियपन प्रकट होता है।।

यहाँ ग्रन्थकार पुनः पूर्वोक्त मत को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि जब प्राण तत्त्व के उत्कर्ष को

प्राप्त होने पर अपान तत्त्व का प्रक्षेपण किया जाता है, तब वे दोनों अर्थात् प्राण व अपान तत्त्व तेज का ही परस्पर एक दूसरे में हवन करते हैं। **यह रात्रि अर्थात् अपान तत्त्व मनस्तत्त्व रूपी अग्नि के तेज से तथा अहन् अर्थात् प्राण तत्त्व वाक् तत्त्व के सूक्ष्मतम रूप आदित्य के तेज से तेजस्वी होते हैं।** {वाक् = सा या सा वागसौ स आदित्यः (श.१०.५.१.४)। मनः = मन एवाग्निः (श.१०.१.२.३)} वाक् तथा मनस्तत्त्व के विषय में हम पर्याप्त जान चुके हैं। उपर्युक्त कण्डिका से भी स्पष्ट है कि प्राण तत्त्व में ६ अक्षर वाक् तत्त्व तथा अपान तत्त्व में ४ अक्षर वाक् तत्त्व विद्यमान होने से प्राण तत्त्व में वाक् तत्त्व की प्रधानता अपान तत्त्व की अपेक्षा अधिक है। यद्यपि २.२६.१ में यह भी दर्शाया है कि अपान तत्त्व ४ एकाक्षरा अक्षरा ऋतु रश्मियों की ४ आवृत्तियों अर्थात् कुल १६ एकाक्षरा रश्मियों से निर्मित होता है परन्तु प्राण तत्त्व ६ एकाक्षरा ऋतु रश्मियों की मात्र एक आवृत्ति से उत्पन्न होता है। तब प्राण तत्त्व को क्यों वाक् तत्त्व प्रधान एवं अपान तत्त्व को क्यों मनस्तत्त्व प्रधान कहा है? अन्यत्र भी कहा गया है- "मनसा ह्यपानो धृतः" (काठ.२७.२; क.४२.२)

यहाँ अपान तत्त्व को मनस् तत्त्व द्वारा धारित व पोषित कहा गया है। यह महर्षि ऐतरेय महीदास के कथन कि अपान तत्त्व मनस्तत्त्वरूपी अग्नि के तेज से तेजस्वी होता है, के अनुकूल ही है।

उधर महर्षि याज्ञवल्क्य का प्राण तत्त्व के विषय में कथन है- "प्राणो वै वाचस्पतिः" (श.४.१.१.९)

इससे सिद्ध है कि प्राण तत्त्व वाक् तत्त्व द्वारा ही विशेष रूप से पालित व रक्षित होता है। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि किसी छन्द रश्मि की आवृत्ति का वह महत्व नहीं है, जो छन्द रश्मि के विविधत्व का होता है, इसी कारण छः प्रकार की ऋतुरूप छन्द रश्मियों से उत्पन्न प्राण तत्त्व को चार प्रकार की ऋतुरूप छन्द रश्मियों से उत्पन्न अपान तत्त्व की अपेक्षा अधिक वाक् तत्त्व प्रधान माना है, भले ही अपान में आवृत्ति की दृष्टि से छन्द रश्मियों की संख्या सोलह क्यों न हो। यह बात यहाँ विशेष महत्व की है।।

इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के पश्चात् अपान तत्त्व के सक्रिय होने से वे दोनों ही तत्त्व तेजस्वी होकर नाना क्रियाओं को तेजयुक्त करने में समर्थ होते हैं अर्थात् वे दोनों ही क्रमशः वाक् व मनस्तत्त्व के द्वारा तेजस्वी होकर सम्यक् प्रकार से परस्पर संगत होते एवं अन्य प्राणादि रश्मियों को भी संगत करके सर्गयज्ञरूपी अग्निहोत्र को सतेज करते हैं। इस कारण प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के साथ वा पश्चात् ही अपान तत्त्व का उद्भव वा उत्कर्ष होता है। हम यह जानते ही हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि वाक् एवं मनस्तत्त्व के मिथुन से ही सम्पन्न होती है। किसी एक के ही समृद्ध होने से सृष्टि प्रक्रिया का सम्पादन सम्भव नहीं है, उसी प्रकार प्राण व अपान दोनों ही तत्त्वों के योग से ही सर्ग रचना सम्भव है, केवल एक के समृद्ध होने से नहीं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में प्राण तथा अपान दोनों प्रकार की रश्मियां एक साथ प्रकट व सक्रिय होती हैं। बिना प्राण के अपान रश्मियां सृजन प्रक्रिया को संचालित वा उत्पन्न नहीं कर सकती। इसी प्रकार मन तथा वाक् दोनों ही तत्त्वों का प्रकट व उत्कृष्ट रूप प्राप्त करना अनिवार्य है। जिस प्रकार **'ओम्'** रश्मि की उत्पत्ति के साथ ही मनस्तत्त्व सक्रिय रूप धारण करता है, उसी प्रकार प्राण तत्त्व के उत्पन्न व प्रकट होने के उपरान्त वा साथ ही अपान तत्त्व सक्रिय हो पाता है। प्राण तत्त्व में **'ओम्'** रूपी वाक् तत्त्व की विशेष प्रधानता होती है, तो अपान तत्त्व में मनस्तत्त्व की प्रधानता होती है। इन दोनों के सम्यक् संयोग से ही सृष्टि की सभी क्रियाओं का संचालन तथा सभी तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। विशेष परिज्ञानार्थ व्याख्यान भाग अवश्यमेव पठनीय है।।

इति २५.४ समाप्तः

अथ २५.५ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. एते ह वै संवत्सरस्य चक्रे यदहोरात्रे, ताभ्यामेव तत् संवत्सरमेति; स योऽनुदिते जुहोति, यथैकतश्चक्रेण यायात्तादृक्तदथ य उदिते जुहोति, यथोभयतश्चक्रेण यान् क्षिप्रमध्वानं समश्नुवीत तादृक्तत्।।
तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते।।
बृहद्रथन्तराभ्यामिदमेति युक्तं, यद्भूतं भविष्यच्चापि सर्वम्। ताभ्यामियादग्नीनाधाय धीरो दिवैवान्यज्जुहुयान्नक्तमन्यदिति।।

व्याख्यानम्- पूर्वोक्त संवत्सर अर्थात् सृष्टियज्ञरूपी रथ के प्राण एवं अपान दोनों ही रश्मियां दो चक्र की भांति व्यवहार करती हैं। विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियां एवं छन्द रश्मियां भी अपनी परस्पर संगतीकरण की यात्रा इन्हीं दोनों चक्रों के द्वारा पूर्ण करती हैं। इन दोनों के अभाव अथवा इनमें से किसी एक प्राण रश्मि के भी अभाव में सृष्टि की यात्रा संभव नहीं होती, यह बात हम पूर्व में भी स्पष्ट कर चुके हैं। प्राण रश्मि के अनुत्कर्ष की स्थिति में अपान रश्मि के सक्रिय होने पर सभी प्रकार की संगतीकरण की क्रियाएं, उसी प्रकार अवरुद्ध हो जाती हैं, जैसे कोई रथ केवल एक पहिये से यात्रा करने में असमर्थ हो जाता है। जब प्राण रश्मि के उत्कर्ष के साथ अपान रश्मि सक्रिय होती है, तब सृष्टि की यात्रा उसी प्रकार शीघ्रता और चारुता से सम्पन्न होती है, जिस प्रकार कोई रथ दोनों पहियों के द्वारा अपनी यात्रा को सफलतापूर्वक सम्पन्न करता है। जिस प्रकार रथ के पहिये दोनों साथ-२ गमन करते हैं, उसी प्रकार प्राण एवं अपान भी सदैव साथ-२ गमन करते हैं। इस विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है-

"प्राणापानौ संचरतः" (तै.सं.५.२.१०.६), "योगक्षेम इति प्राणापानयोः" (तै.आ.६.१०.२; तै.उ.३.१०.२)

द्वितीय वचन से भी यही प्रमाणित होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया के योगक्षेम के लिए प्राण एवं अपान दोनों का संगमन अनिवार्य होता है।।

इस विषय में प्राचीन ऋषियों ने एक यज्ञगाथा गायी है। इस कथन से ग्रन्थकार का तात्पर्य यही है कि प्राण और अपान के परस्पर संगमन के विषय में प्राचीन वेदवेत्ता भी ऐसा ही मत रखते हैं। उनका मत ग्रन्थकार ने अगली कण्डिका में प्राचीन गाथा के रूप में यथावत् उद्धृत् किया है।।

इस सृष्टि में जो कुछ भी अब तक उत्पन्न हुआ है एवं जो भविष्य में उत्पन्न होगा, वह सब कुछ बृहद् और रथन्तर साम रश्मियों से युक्त होकर ही प्रवर्तित है। इन दोनों ही साम रश्मियों के विषय में इस ग्रन्थ में अनेकत्र चर्चा की गयी है। विज्ञ पाठक तदनुसार यथावत् समझ सकते हैं। पुनरपि हम इस प्रसंग में कुछ विशेष लिखना आवश्यक समझते हैं। इनके विषय में विभिन्न ऋषियों का कथन है-

(१) "पुंसो वा एतद् रूपं यद् बृहत्, स्त्रियै रथन्तरम्" (जै.ब्रा.२.४०७)
(२) "मनो वै बृहद् वाग् रथन्तरम्" (जै.ब्रा.३.१२)
(३) "रथन्तरेणैवाग्नि श्रेष्ठतामगच्छद् बृहतेन्द्रः" (जै.ब्रा.२.१३२)
(४) "वृषा वै बृहद् योषा रथन्तरम्" (ऐ.आ.१.४.२)

इन आर्ष वचनों से यह स्पष्ट होता है कि मनस्तत्त्व प्रथम वृहत् तथा सूक्ष्मतम वाक् तत्त्व प्रथम रथन्तर रूप है। यह वृहद् रूप मनस्तत्त्व पुरुषरूप और वाक् रूप रथन्तर स्त्रीरूप में व्यवहार करता है। मन एवं वाग् रूप युग्म की भांति ही अग्नि एवं इन्द्र तत्त्व इस सृष्टि के अनिवार्य अंगभूत युग्म हैं। इस प्रकार इन सभी रथन्तर और वृहद् पदार्थों के द्वारा ही समस्त सृष्टि उत्पन्न और संचालित होती है। इनमें से मन एवं वाक् तत्त्व इस सृष्टि का सबसे सूक्ष्म वृहद्रथन्तररूप मिथुन है। इनके द्वारा ही सर्वप्रथम संयोग प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। ये दोनों ही दिवारूप प्राण तत्त्व और रात्रिरूप अपान तत्त्व को उत्पन्न और सक्रिय करते हैं। फिर इन प्राण और अपान का द्वितीय युग्म उत्पन्न हो जाता है, जो सृष्टि प्रक्रिया में द्वितीय महत्वपूर्ण युग्म होता है। मन एवं वाक् तत्त्व के युग्म के साथ-२ इस प्राणापान के युग्म की भी इस सृष्टि प्रवर्तन में महती भूमिका होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि की उत्पत्ति विभिन्न जोड़ों के उत्पन्न होने के कारण होती है। जब तक जोड़े बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ नहीं होगी, तब तक सृष्टि प्रक्रिया उत्पन्न ही नहीं हो सकती। सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया में सबसे प्रथम मन एवं वाक् तत्त्व का जोड़ा उत्पन्न होता है, उसके पश्चात् जो अगला जोड़ा उत्पन्न होता है, वह प्राण और अपान का होता है। इनमें से एक के भी उत्पन्न न होने पर इस प्रकरण में, विशेषकर प्राण तत्त्व के उत्पन्न वा उत्कृष्ट न होने पर सृष्टि प्रक्रिया उसी प्रकार अवरुद्ध हो जाती है, जिस प्रकार किसी रथ का एक पहिया टूट जाने पर उस रथ की गति अवरुद्ध हो जाती है। इन दोनों जोड़ों के अतिरिक्त अग्नि एवं सोम, अग्नि एवं इन्द्र, प्राण एवं छन्द रश्मियां आदि अनेक जोड़े विद्यमान होते हैं। इसी प्रकार विद्युत् के धन एवं ऋणावेश, द्रव्यमान एवं ऊर्जा, काल एवं आकाश, दृश्य एवं अदृश्य पदार्थ, जड़ एवं चेतन पदार्थ भी अनिवार्य जोड़े हैं। इनमें से भी किसी भी एक जोड़े अथवा किसी भी एक जोड़े के एक भाग की अनुपस्थिति में सृष्टि रचना सम्भव नहीं है।।

चित्र २५.३ सृष्टि के महत्वपूर्ण युग्म

२. राथंतरी वै रात्र्यहर्बार्हतमग्निर्वै रथन्तरमादित्यो बृहदेते ह वा एनं देवते ब्रध्नस्य विष्टपं स्वर्गं लोकं गमयतो य एवं विद्वानुदिते जुहोति, तस्मादुदिते होतव्यम्।।
तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते।।
यथा ह वाऽस्थूरिणैकेन यायादकृत्वाऽन्यदुपयोजनाय। एवं यन्ति ते बहवो जनासः, पुरोदयाज्जुह्वति येऽग्निहोत्रमिति।।

व्याख्यानम्- {ब्रध्नः = असौ वा आदित्यो ब्रध्नः (तै.ब्रा.३.६.४.१), महन्नाम (निघं.३.३), ब्रध्नातीति ब्रध्नः (उ.को.३.५), अश्वनाम (निघं.१.१४)। विष्टपम् = व्याप्तिम् (म.द.य.भा.१४.२३)} यहाँ महर्षि कहते हैं कि रात्रि अर्थात् अपान तत्त्व रथन्तररूप तथा अहन् अर्थात् प्राण तत्त्व बृहद्रूप व्यवहार करता है। {अग्निः = अग्निर्हि गायत्री (जै.ब्रा.३.१८४,१६१), (गायत्री = पुंसो वा एतद्रूपं यद् बृहत्, स्त्रियै गायत्री - जै.ब्रा.३.१८६)। आदित्यः = बार्हतो वासावादित्यः (जै.ब्रा.२.३६), त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः (तां.४.६.२३)।} अब महर्षि रथन्तर एवं बृहत् रश्मियों को अन्य रूप में व्याख्यात करते हुए कहते हैं कि अग्नि अर्थात् गायत्री छन्द रश्मियां ही रथन्तर रूप होती हैं एवं बृहती त्रिष्टुप् रश्मियां बृहत् रूप होती हैं। इन छन्द रश्मियों की विद्यमानता के साथ-२ प्राण और अपान रश्मियों के पूर्वोक्त सम्यक् संगमन के द्वारा सूर्यादि लोकों में व्याप्त अर्थात् उनके मध्य भाग में विद्यमान स्वर्गलोक रूपी तेजस्वी भागों की उत्पत्ति होती है। यह तभी सम्भव होता है, जब प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के साथ ही अपान रश्मियों की सक्रियता वा उत्पत्ति होती है। इस कारण इन तारे आदि लोकों के निर्माण के लिए अपान तत्त्व के उत्कर्ष के ठीक पूर्व वा साथ-२ प्राण तत्त्व का उत्कर्ष अवश्य होता है।।

इस विषय में भी पुनः पुरातन ऋषियों की एक गाथा को प्रस्तुत करते हैं, जो अगली कण्डिका के रूप में उद्धृत की है।।

{जनः = प्राणः (तु.म.द.य.भा.२५.२३), एष ह वै पद्भ्यां पापं करोति यो जनमेति (जै.ब्रा.२.१३५)।} यहाँ गाथाकार ऋषि का कथन है कि जिस प्रकार कोई रथी एक अश्व को छोड़ कर केवल एक अश्व को ही रथ में जोत कर अपने मार्ग पर गमन करता वा करने का प्रयास करता है, उसका रथ अस्थिर होकर पतित हो जाता है अर्थात् अपनी यात्रा को सम्पन्न नहीं कर पाता, उसी प्रकार जब इस सृष्टि में बिना प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के अपान तत्त्व सक्रिय होता है, तब अन्य विविध जनास अर्थात् प्राण रश्मियां अपने मार्ग व व्यवहारों के द्वारा पाप को उत्पन्न करती हैं {पापः = पापत्यमानोऽवाङेव पततीति वा पापत्यतेर्वा स्यात् (नि.५.२)} इसका आशय है कि वे प्राण रश्मियां (यहाँ प्राण रश्मियों का तात्पर्य प्राण नामक प्राण रश्मियों के अतिरिक्त अपान, उदानादि प्राण रश्मियां समझना चाहिए।) बार-२ पतित होती रहती वा अस्थिर, अनियन्त्रित व अनुपयोगी रूप में डांवाडोल अवस्था को प्राप्त होती हैं। यहाँ यह संकेत भी है कि इस परिस्थिति में विभिन्न प्राण रश्मियां वाक् तत्त्व से संगत होने में असमर्थ होकर असुर पदार्थ में परिवर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार प्राण तत्त्व के अनुत्कर्ष के चलते अपान तत्त्व के सक्रिय होने से सृष्टि प्रक्रिया बंद पड़ जाती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- विभिन्न तारों के निर्माण की प्रक्रिया में प्राण नामक प्राण रश्मियों के उत्कर्ष के साथ वा उपरान्त ही अपान रश्मियों के सक्रिय होने से विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों की समुचित, पारस्परिक वा पृथक्-२ संगति होकर उस पदार्थ में तथा निर्माणाधीन तारों के भीतर गायत्री छन्द रश्मियों की बृहती व त्रिष्टुप् छन्द रश्मियों के साथ उचित संगति के कारण केन्द्रीय संलयन क्षेत्रों का निर्माण हो पाता है। यदि गायत्री रश्मियों का बृहती व त्रिष्टुप् रश्मियों के साथ उचित मेल नहीं होगा, तो तारों के केन्द्रीय भागों का निर्माण नहीं हो सकेगा तथा इन छन्द रश्मियों का मेल तब तक नहीं हो पाएगा, जब तक कि विभिन्न प्राथमिक प्राण रश्मियों का परस्पर संगम व सामंजस्य न होवे और इसके लिए प्राण तत्त्व का अपान तत्त्व से ठीक पूर्व वा साथ-२ उत्कर्ष अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं होता है, तो सभी प्राण रश्मियां अपने सृजन मार्ग से भ्रष्ट हो जाती हैं। इससे वे वाक् तत्त्व से समुचित संयोग नहीं कर पाती हैं तथा डार्क मैटर व डार्क एनर्जी के स्वरूप में परिवर्तित हो जाती हैं। तब दृश्य पदार्थ तथा लोकों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ भी नहीं हो पाती है।।

३. तां वा एतां देवतां प्रयतीं सर्वमिदमनुप्रैति यदिदं किंचैतस्यै हीदं देवताया अनुचरं सर्वं यदिदं किंच, सैषाऽनुचरवती देवता।।
विन्दते ह वा अनुचरं भवत्यस्यानुचरो य एवं वेद।।
स वा एष एकातिथिः, स एष जुह्वत्सु वसति।।

तद्यददो गाथा भवति।।
अनेनसमेनसा सोऽभिशस्तादेनस्वतो वाऽपहरादेनः। एकातिथिमप सायं रुणद्धि, बिसानि स्तेनो अप सो जहारेति।।
एष ह वै स एकातिथिः, स एष जुह्वत्सु वसत्येतां वाव स देवतामपरुणद्धि, योऽलमग्निहोत्राय सन्नाग्निहोत्रं जुहोति; तमेषा देवताऽपरुद्धा-ऽपरुणद्ध्यस्माच्च लोकादमुष्माच्चोभाभ्यां योऽलमग्निहोत्राय सन्नाग्निहोत्रं जुहोति।।
तस्माद्योऽलमग्निहोत्राय स्याज्जुहुयात्।।
तस्मादाहुर्न सायमतिथिरपरुध्य इति।।

व्याख्यानम्- अब प्राण नामक प्राण तत्त्व के पालक वाक् रूपी आदित्य देवता की महिमा को वर्णित करते हुए कहते हैं कि यह वाक् तत्त्व देवरूप अर्थात् विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों का प्रकाशक, नाना प्रकार की क्रीड़ा करता हुआ, विविध कमनीय बलों के द्वारा सबका नियामक बनकर प्रकृष्टतया सर्वत्र सतत गति करता रहता है। इस सम्पूर्ण सृष्टि में जो भी कुछ है, वह इसी वाक् तत्त्व और इसके द्वारा पालित व रक्षित प्राण नामक प्राण तत्त्व के साथ-२ ही गमन करता है। सभी प्राण व छन्दादि रश्मियां इसी वाक् तत्त्व के द्वारा प्रेरित होकर सतत इसके साथ-२ संगत रहते हुए गमन करती हैं अर्थात् वाक् तत्त्व व प्राण नामक प्राण तत्त्व का ही सभी रश्मि आदि पदार्थ अनुगमन करते हैं। इस प्रकार मनस्तत्त्व के अतिरिक्त सभी प्राण व छन्दादि रश्मियां इसी वाक् तत्त्व की अनुचरी होती हैं। इस प्रकार वाक् तत्त्व असंख्य अनुचरी रश्मियों से युक्त सतत सर्वत्र निर्बाध गमन करता रहता है तथा जो पदार्थ वाक् तत्त्व के साथ संयुक्त हो जाते हैं, वे भी अन्य पदार्थों को अपना अनुचर बनाने में समर्थ होते हैं किन्तु जब तक कोई भी रश्मि वाक् तत्त्व के साथ संगत नहीं होती, तब तक वह न तो स्वयं कोई विशेष क्रिया करने में समर्थ हो सकती है और न ही अन्य रश्मियों को प्रेरित करके अपनी अनुचरी ही बना सकती है।।+।।

यह वाग्रूप आदित्य अतिथि के समान है, जो निरन्तर विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों के भीतर गमन करता रहता है। यह कभी विश्राम नहीं करता तथा जिस प्रकार लोक में अतिथि का गृहस्थों के गृह में आगमन बिना नियत तिथि के अर्थात् उसका काल अज्ञात होता है, उसी प्रकार **वाक् तत्त्व विभिन्न रश्मियों में सर्वथा अज्ञेय व अनिश्चित रूप से निरन्तर गमन करता रहता है।** इसी प्रकार वाक् तत्त्व से प्रेरित प्राण नामक प्राण तत्त्व भी सभी रश्मि आदि पदार्थों के साथ सतत संगत होता हुआ सर्वत्र विचरण करता है। इसके संगमन आदि कर्मों को भी कोई भी सर्वथा नहीं जान सकता। ये वाक् तत्त्व व प्राण नामक प्राणतत्त्व विभिन्न संगत होते पदार्थों में सतत निवास करते हैं अर्थात् संयोग प्रक्रिया में इन तत्त्वों का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, साथ ही इन तत्त्वों के कारण ही संयोगादि बल व प्रक्रिया की उत्पत्ति होती है। इस विषय में पुरातन वेदद्रष्टा वैज्ञानिक एक यज्ञगाथा प्रस्तुत करते हैं, जो अग्रिम कण्डिका के रूप में उद्धृत है।।+।।

वह गाथा इस प्रकार है- {बिसम् = यानि बिसानि तान्यस्यै (पृथिव्यै रूपम्) (श.५.४.५.१४), बिसं बिस्यतेर्भेदनकर्मणो वृद्धिकर्मणो वा (नि.२.२४)। स्तेनम् = स्तेनः कस्मात् संस्त्यानमस्मिन्पापकमिति नैरुक्ताः (नि.३.१६), स्तेनं मनोऽनृतवादिनी वाक् (मै.४.५.२)} स्तेन रूप मनस्तत्त्व, जो समस्त पदार्थ जगत् का हरण करने वाला होता है, उस पदार्थ में ही सभी पदार्थ विद्यमान भी होते हैं। मनस्तत्त्व उत्पन्न सभी पदार्थों का मूल प्रेरक और प्रकाशक है। कोई भी पदार्थ उससे मुक्त कभी नहीं रह सकता। देव और असुर दोनों प्रकार के पदार्थ इसी के अन्दर विद्यमान और कार्यरत रहते हैं। मनस्तत्त्व के विषय में ऋषियों का कथन है- 'मनो वा असुरम्' (जै.उ.३.६.७.३), 'मनो देवः' (गो.पू.२.११)। इन वचनों से प्रमाणित है कि ये दोनों प्रकार के पदार्थ ही मनस्तत्त्व से उत्पन्न होते और उसी में निवास भी करते हैं। मनस्तत्त्व ही वाग् रश्मियों का उत्पादक और प्रक्षेपक होता है। यहाँ 'अपजहार' का यही अर्थ है कि यह तत्त्व पूर्वोक्त सतत गन्ता अतिथिरूप वाक् तत्त्व को उत्पन्न वा प्रक्षिप्त करता एवं

विभिन्न प्राणादि रश्मियों को उस वाक् तत्त्व से युक्त करके सक्रिय और सतेज करता है और यही मनस्तत्त्व विशेष परिस्थितियों में अथवा प्रलयकाल के प्रारम्भ होने पर विभिन्न प्राण वा छन्दादि रश्मियों से वाक् तत्त्व को वापिस खींचकर पृथक् भी कर सकता है। यहाँ वाग् रश्मियों को अनृतवादिनी इस कारण कहा है, क्योंकि इसकी गति अनियमित और विचलन भरी होती है। ये रश्मियां अस्थिर और अनिश्चित परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में निश्चित एवं ज्ञात गति से सदैव कम्पन करती रहती हैं। जब कभी यह मनस्तत्त्व अतिथिरूप वाक् तत्त्व को अपान प्राण में निरुद्ध करता है अर्थात् उसमें प्रक्षिप्त वा संगत करता है, तब वह मनस्तत्त्व 'बिस' अर्थात् पार्थिव परमाणुओं को दूर-२ प्रक्षिप्त करने लगता है अथवा वह बलपूर्वक आकृष्ट और संगत भी करने लगता है। यह मनस्तत्त्व "एनस्वती" अर्थात् आसुरी वाग् रश्मियों से सम्पन्न पदार्थ से उन असुर रश्मियों को अपहृत करके, जो पदार्थ असुर पदार्थ से मुक्त हो चुके हैं अथवा जो असुर पदार्थ से पूर्व में कभी संगत नहीं हुए हैं, उनको उस असुर पदार्थ के साथ संगत करके सब ओर से हिंसक और प्रक्षेपक भी बना देता है। इससे दो तथ्य प्रकट होते हैं- एक तो यह कि मनस्तत्त्व सतत गन्ता वाग् रश्मियों के द्वारा पदार्थों में संयोजक और धारक बल उत्पन्न करके सृष्टि में संयोग-सृजन की क्रियाओं को सम्पादित करता है और दूसरा यह कि यह मनस्तत्त्व ही विभिन्न पदार्थों पर असुर रश्मियों का प्रहार करके उन्हें प्रक्षिप्त, प्रतिकर्षित और विस्फोटित भी करता है। ये दोनों प्रकार की क्रियाएं इस ब्रह्माण्ड में सतत चलती रहती हैं। सृष्टि काल में प्रथम प्रभाव प्रधान होता है और प्रलयकाल के निकट आने पर द्वितीय प्रभाव प्रधान हो जाता है। इन दोनों ही क्रियाओं में पूर्वोक्त अतिथिरूप वाक् तत्त्व विभिन्न रूपों में सतत विचरण करते हुए सक्रिय रहता है। इसके साथ ही इसके द्वारा प्रेरित प्राण तत्त्व भी विविध रूपों में क्रियाशील रहता है।।

वह पूर्वोक्त अतिथिरूप सतत गन्ता वाक् तत्त्व एवं उससे रक्षित और पालित प्राण नामक प्राण तत्त्व अतिथिरूप होकर सभी संयोज्य पदार्थों के अन्दर निरन्तर संचरित होता और बसता है। जो **प्राणादि रश्मियां विभिन्न प्रकार के संसर्ग वा प्रजनन कर्मों में समर्थ होती हैं परन्तु जब वे ही वाग् देवता अर्थात् सूक्ष्म वाक् तत्त्व से पृथक् रहती हैं, तब वे सृजन व प्रजनन कार्यों को सम्पादित नहीं कर सकती हैं। इस सृष्टि में जहां कहीं संयोग सृजन का कार्य नहीं हो रहा होता है, वहाँ यही स्पष्ट होता है कि विविध प्राणादि रश्मियां मनस्तत्त्व के द्वारा वाक् तत्त्व से पृथक् कर दी गयी हैं। ऐसी वे प्राणादि रश्मियां समर्थ होते हुए भी असमर्थ ही सिद्ध होती हैं।** इसके कारण वे रश्मियां दोनों ही प्रकार के लोकों अर्थात् प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों के निर्माण प्रक्रिया से पृथक् हो जाती हैं और यदि वे उन लोकों के अन्दर विद्यमान हों, तो उन लोकों का क्षय प्रारम्भ हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान **समस्त प्राण तत्त्व, जो सम्पूर्ण बल का मूल जड़ कारण है, वह भी अपने बलों को व्यक्त तब तक नहीं कर पाता है, जब तक कि मनस्तत्त्व की प्रेरणा से वाक् तत्त्व का उसके साथ उचित संयोग न होवे।** इसलिए ही ऋषियों ने वाक् और प्राण तत्त्व का मिथुन अनिवार्य बताते हुए कहा है- "वाक् च वै प्राणश्च मिथुनम्" (श.१.४.१.२)

इस प्रकरण को दूसरे प्रकार से भी समझा जा सकता है। इस सन्दर्भ में निम्न आर्ष वचनों पर भी मनन आवश्यक है-

"गौर्वा अग्निहोत्रम्" (तै.ब्रा.२.१.६.३), "अग्निहोत्रं वै दशहोता" (मै.१.८.५)

इनको दृष्टिगत रखते हुए इस कण्डिका से यह संकेत भी मिलता है कि, जो मनस्तत्त्व दस प्राथमिक प्राण रश्मियों के साथ वाक् तत्त्व को संगत करने में समर्थ होते हुए भी संगत नहीं करता है, तब वह मनस्तत्त्व विभिन्न देवताओं के सृजन कार्य को अवरुद्ध कर देता है। देवता विषय में ऋषियों का कथन है- "देवता वै विश्वाधामानि" (काठ.२४.७)।

इस कथन से पूर्वोक्त मत और भी पुष्ट होता है कि प्राणतत्त्व के साथ वाक् तत्त्व के संगत न होने पर सभी प्रकार के लोकों के निर्माण की प्रक्रिया रुक जाती है और रचे हुए लोक भी क्षय को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार वाक् तत्त्व से रक्षित व पालित प्राण नामक प्राण तत्व के अन्य प्राण रश्मियों के साथ संगमन की भी अनिवार्यता होती है।।

इस कारण समर्थ मनस्तत्त्व के द्वारा विभिन्न प्राण रश्मियों में वाक् तत्त्व एवं प्राणनामक प्राणतत्त्व का संगमन वा हवन अनिवार्य रूप से होता है। प्रलय काल निकट आने पर ही यह प्रक्रिया मन्द होती हुई शनैः-२ बन्द हो जाती है, अन्यथा सम्पूर्ण सृष्टिकाल तक यह प्रक्रिया विभिन्न स्तरों पर भिन्न-२

मात्रा में होती रहती है।।

इसी प्रकार ग्रन्थकार का कथन है कि सायं अर्थात् अपान तत्त्व भी अतिथि रूप वाक् तत्त्व एवं प्राण तत्त्व के साथ सदैव ही संयुक्त रहता है। यद्यपि वाक् तत्त्व सभी प्राण रश्मियों के साथ सदैव संगत रहता है परन्तु अपान तत्त्व के साथ विशेष कथन का प्रयोजन यह है कि इस सृष्टि में प्राण तत्त्व तथा अपान तत्त्व के युग्म की अधिक और विशेष भूमिका होती है। इसी भूमिका को स्पष्ट करते हुए ऋषियों ने कहा है-

(१) प्राणापानाभ्यां वाक् परिगृहीता (जै.ब्रा.३.२८६)
(२) प्राणापानौ सं चरतः। (तै.सं.५.२.१०.६)
(३) योगक्षेम इति प्राणापानयोः (तै.आ.६.१०.२; तै.उ.३.१०.२)
(४) वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः (ऐ.३.८; गो.उ.३.६)

इन सभी प्रमाणों से वाक् तत्त्व का अन्य प्राण रश्मियों की अपेक्षा प्राण और अपान रश्मियों के साथ विशेष सम्बन्ध सिद्ध हो रहा है। यही उपर्युक्त सहित दो कण्डिकाओं का प्रयोजन है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में **'ओम्'** छन्द रश्मि सतत विचरती हुई विद्यमान रहती है। विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों के मध्य होने वाली विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न एवं उत्पन्न करने में इसी रश्मि की मूल भूमिका होती है। विभिन्न प्राण रश्मियों में से प्राण नामक प्राण रश्मि दूसरी प्रमुख रश्मि है, जो सर्वत्र विचरती हुई नाना संयोगादि क्रियाओं को सम्पन्न व संचालित करती है। इसके वाद तीसरा स्थान अपान रश्मि का आता है। इनमें से **'ओम्'** छन्द रश्मि प्राण और अपान को प्रेरित करती हुई उनके द्वारा नाना प्राण और छन्द रश्मियों को सक्रिय करके सम्पूर्ण सृष्टि की विभिन्न क्रियाओं को संचालित व नियन्त्रित करती है। इस सृष्टि में विभिन्न मूलकणों, विद्युत् चुम्बकीय तरंगों, atoms, molecules एवं इनसे स्थूल कणों से लेकर विशाल लोक-लोकान्तरों तक जो भी संयोग-वियोग की असंख्य क्रियाएं अनवरत हो रही हैं, उनमें इन रश्मियों की प्राथमिक भूमिका होती है। इस सृष्टि में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जो इनसे बना वा प्रेरित न हो परन्तु मनस्तत्त्व इनसे भी मूल और आद्य जड़ प्रेरक तत्त्व है। **इन सबके ऊपर चेतन ईश्वर तत्त्व, जिसका ही वाचक 'ओम्' है, आद्य एवं सबका मूल अधिष्ठाता एवं संचालक होता है।** इस तत्त्व की विवेचना करना इस ग्रन्थ का विषय नहीं है, इस कारण हमने इसकी चर्चा कहीं-२ वह भी सांकेतिक ही की है। इस सृष्टि में समस्त दृश्य पदार्थ, दृश्य ऊर्जा, डार्क मैटर और डार्क एनर्जी सभी मनस्तत्त्व से उत्पन्न एवं प्रेरित होते तथा इसी में निवास करते हैं। **'ओम्'** छन्द रश्मियां इसी में उत्पन्न होकर इसी के द्वारा विभिन्न प्राणादि रश्मियों के साथ संयुक्त होकर सभी क्रियाओं को सम्पादित करती हैं। प्रलयकाल आने पर यह मनस्तत्त्व **'ओम्'** छन्द रश्मि को अन्य रश्मियों से पृथक् करके सभी प्रकार की संयोग क्रियाओं को वन्द करने लगता है। यह कार्य वस्तुतः सर्वप्रेरक ईश्वर तत्त्व द्वारा किया जाता है। इस समय आकर्षण और धारक वल धीरे-२ समाप्त होते और प्रतिकर्षण व प्रक्षेपक वल समृद्ध होकर सृष्टि के सभी पदार्थों में क्षरण की प्रक्रिया को तीव्र करके सभी पदार्थ नष्ट होकर मनस्तत्त्व में ही विलीन हो जाते हैं। विभिन्न छन्दादि रश्मियां और **'ओम्'** छन्द रश्मि की गति अनियमित और अज्ञेय होती है। पदार्थों की क्षरण प्रक्रिया के समय विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियों से वाग् रश्मियों का विच्छेद हो जाता है, जिससे डार्क एनर्जी और डार्क मैटर की शक्ति अत्यन्त बढ़कर विभिन्न लोकों को नष्ट कर देती है।।

४. एतद्ध स्म वै तद् विद्वान् नगरी जानश्रुतेय उदितहोमिनमैकादशाक्षं मानुतन्तव्यमुवाच,- प्रजायामेनं विज्ञातास्मो यदि विद्वान् वा जुहोत्यविद्वान् वेति; तस्यो हैकादशाक्षे राष्ट्रमिव प्रजा बभूव; राष्ट्रमिव ह वा अस्य प्रजा भवति, य एवं विद्वानुदिते जुहोति; तस्मादुदिते होतव्यम्।।५।।

व्याख्यानम्- {नगरी = न + गम्लृ + र (उणादि सूत्र "ऋच्छेररः" - उ.को.३.१३१), से बहुल करके 'र' प्रत्यय = गरः = गच्छतीति, तस्मात् न गच्छतीति नगरः तस्माच्च नगरी} इस समस्त सृष्टि को जानने वाले एवं स्वयं गतिहीन रहते हुए मन सहित समस्त प्राणादि रश्मियों को सतत गति प्रदान करने वाला एवं इसके साथ ही समस्त देव और असुर पदार्थ को गति और प्रेरण प्रदान करने वाला जानश्रुतेय नामक परमात्म तत्त्व एकादशाक्ष अर्थात् दश प्राण एवं ग्यारहवें सूत्रात्मा वायु के आधार मनस्तत्त्व से उत्पन्न ऐकादशाक्ष संज्ञक विभिन्न प्राण व छन्द रश्मियां, जो मनुतन्तु अर्थात् 'घृम्' रश्मियों से युक्त प्राण रश्मियों (खण्ड ५.१४ में 'मनु' पद का वैज्ञानिक भाव देखें) को गति और प्रेरणा प्रदान करती हैं, को मूल गति व वल प्रदान करता है। यहाँ जनश्रुतिः = जनानां श्रुतिः (श्रु गतौ) मन, प्राण, वागादि प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ की गतिशीलता वा उसके कारणरूप परमात्मा को कहा है। इस 'जनश्रुतिः' से स्वार्थ में तद्धित होकर 'जानश्रुतेयः' पद व्युत्पन्न होता है, को मूल गति व वल प्रदान करता है। यहाँ "उवाच" क्रिया पद गति, प्रेरणा और प्रकाश करने अर्थ में प्रयुक्त है, ऐसा हमारा मत है। यह सर्वविदित है कि विभिन्न छन्दादि रश्मियों में भी निरपेक्ष मूल रूप से ईश्वर तत्त्व ही गति और प्रेरणा प्रदान करता है। विशेषकर सर्गारम्भ में गति, वल आदि की उत्पत्ति ईश्वर तत्त्व द्वारा ही होती है। यहाँ 'मानुतन्तव्यम्' का आशय है- मनु अर्थात् 'घृम्' रश्मियुक्त प्राण रश्मियों के विस्तार में विद्यमान प्राण वा छन्दादि रश्मि आदि पदार्थ। वह ईश्वर तत्त्व ही सभी प्रजारूप रश्मि आदि पदार्थों, जो चाहे संसर्ग प्रक्रिया में विशेष सक्रिय हैं अथवा सक्रिय नहीं है, उन सवको पूर्णरूप से विशेषकर जानता है, साथ ही वह उन्हें प्रेरित और प्रकाशित भी करता है। जैसा हम जानते हैं कि मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुन ही सवका प्रेरक और प्रकाशक है। इस कारण ईश्वर तत्त्व इस मिथुन को ही प्रेरित करके सभी पदार्थों को निरन्तर प्रेरित करता है, न कि केवल सर्गारम्भ में ही। वही ईश्वर तत्त्व 'उदितहोमी' अर्थात् वाक् अथवा प्राण नामक प्राण तत्त्व के उत्कर्ष के साथ अपानादि प्राण रश्मियों के उत्कर्ष से सक्रिय पूर्वोक्त सभी रश्मियों अथवा वाक् तत्त्व किंवा प्राण तत्त्व के अनुत्कर्ष में ही अपानादि रश्मियों के सक्रिय होने पर असुर पदार्थ का रूप धारण की हुई उन प्राण वा छन्द रश्मियों को भी गति प्रदान करता है। {राष्ट्रम् = क्षत्रं हि राष्ट्रम् (ऐ.७.२२), राष्ट्राणि वै विशः (ऐ.८.२६), श्रीर्वै राष्ट्रम् (श.६.७.३.७), असौ वा आदित्यो राष्ट्रम् (काठ.३७.११)} वाक् तत्त्व के प्राण अथवा अपान को क्रमशः सक्रिय करने से मनरूप एकादशाक्ष से उत्पन्न सभी प्रकार की प्राण वा छन्द रश्मियां तीक्ष्ण और तेजस्वी रूप धारण करके सम्पूर्ण अवकाशरूप आकाश में व्याप्त हो जाती हैं। इसके पश्चात् अनेक प्रकार की क्रियाओं को करते हुए वे शनैः-२ आदित्य आदि लोकों को प्रकट करती हैं। सर्गारम्भ में भी वे ही प्राण एवं छन्द रश्मियां सक्रिय और सामर्थ्यवान् होती हैं और उनसे उत्पन्न विभिन्न प्रकार के पदार्थ भी उन्हीं के समान सक्रिय और सामर्थ्यवान् होते हैं। इस कारण वाक् तत्त्व एवं क्रमशः प्राण और अपान तत्त्व के सक्रिय होने से ही सभी प्राण व छन्द रश्मियां सक्रिय हो पाती हैं, अन्यथा नहीं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- एक निश्चल और सर्वव्यापक ईश्वर तत्त्व सृष्टि के सभी गतिशील पदार्थों को गति प्रदान करता हुआ नाना प्रकार के वल और चेष्टाओं का सर्वप्रमुख एवं आद्य कारण है। यह चेतन तत्त्व न केवल सृष्टि के प्रारम्भ होते समय इस कार्य को करता है, अपितु सृष्टि की प्रत्येक क्रिया और वल के पीछे उसके ही स्वाभाविक ज्ञान, वल और क्रिया कार्य करते रहते हैं। इस सृष्टि का जहां-२ भी विस्तार है, वहां-२ तक मन और वाक् तत्त्व के साथ-२ इनसे उत्पन्न प्राण और छन्द रश्मियों का भी विस्तार है। वह ईश्वर तत्त्व एवं मनस्तत्त्व, दृश्य पदार्थ और दृश्य ऊर्जा के साथ-२ डार्क मैटर और डार्क एनर्जी को भी गति प्रदान करता है। दृश्य पदार्थ और दृश्य ऊर्जा आदि पदार्थ विभिन्न तारों एवं ग्रहादि लोकों के साथ-२ समस्त पिण्ड समुदाय के निर्माण में काम आते हैं। डार्क एनर्जी और डार्क मैटर सृष्टि प्रक्रिया में होने वाले विभिन्न विध्वंसक और तीव्र प्रक्षेपक कार्यों के साथ-२ दृश्य पदार्थ से वने लोकों के धारण में भी उपयोगी होते हैं। इन सभी कार्यों में वाक् एवं मनस्तत्त्व की अनिवार्य भूमिका सदैव रहती है।।

इति २५.५ समाप्तः

ॐ अथ २५.६ प्रारभ्यते ॐ

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. उद्यन्नु खलु वा आदित्य आहवनीयेन रश्मीन् संदधाति; स योऽनुदिते जुहोति, यथा कुमाराय वा वत्साय वाऽजाताय स्तनं प्रतिदध्यात्तादृक्तदथ य उदिते जुहोति, यथा कुमाराय वा वत्साय वा जाताय स्तनं प्रतिदध्यात् तादृक्तत्, तमस्मै प्रतिधीयमानमुभयोर्लोकयोरन्नाद्यमनु प्रतिधीयतेऽस्माच्च लोकादमुष्माच्चोभाभ्याम्।। स योऽनुदिते जुहोति, यथा पुरुषाय वा हस्तिने वाऽप्रयते हस्त आदध्यात् तादृक्तदथ य उदिते जुहोति, यथा पुरुषाय वा हस्तिने वा प्रयते हस्त आदध्यात् तादृक्तत्, तमेष एतेनैव हस्तेनोर्ध्वं हृत्वा स्वर्गे लोक आदधाति, य एवं विद्वानुदिते जुहोति, तस्मादुदिते होतव्यम्।।

व्याख्यानम्- {आहवनीयः = अपान आहवनीयः (जै.ब्रा.१.६१), प्राण आहवनीयः (श.२.२.२.१८)} पूर्वोक्त प्रकरण को प्रकारान्तर से स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि वाक् तत्त्व रूपी आदित्य के उदित वा उत्कर्ष के साथ प्राण और अपान रश्मियां अन्य प्राण एवं छन्दादि रश्मियों को अच्छी प्रकार से धारण करने में समर्थ होती हैं। उधर इनके उत्कर्ष के विना विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों का प्राण और अपान रश्मियों के द्वारा धारण किया जाना उसी प्रकार असम्भव हो जाता है, {स्तनम् = स्तनयद्वा इन्द्रस्य रूपम् (ऐ.आ.१.२.१)। वत्सः = अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः (जै.उ.२.५.१.१), अयमेव वत्सो योऽयं (वायुः) पवते (श.१२.४.१.११)} जिस प्रकार कुमार अर्थात् अति चपल एवं वेगवान् अग्नि एवं वायु तत्त्व के उत्पन्न हुए विना इन्द्ररूप का प्रकट होकर घोर गर्जना करना असम्भव होता है। उधर वाक् तत्त्व के उत्कृष्ट रूप प्राप्त होने के साथ-२ जब प्राण और अपान रश्मियों का उत्कृष्ट रूप होकर अन्य प्राण एवं छन्द रश्मियों के साथ संगमन होना उसी प्रकार सहज होता है, जिस प्रकार वेगवान् चपल अग्नि और वायु तत्त्व के उत्पन्न और प्रकृष्ट रूप धारण करने पर तीक्ष्ण इन्द्र तत्त्व प्रकट होकर घोर गर्जना करता है। वाक् तत्त्व के उत्कृष्ट रूप प्राप्त करने पर ही जहां विभिन्न प्राण रश्मियां उत्पन्न और सक्रिय होती हैं, वहीं वे विभिन्न छन्द, मरुद् एवं मास आदि रश्मियों को उत्पन्न व संगत करने में भी समर्थ होती हैं। इस प्रकार वाक् तत्त्व को धारण करके प्राण एवं अपान रश्मियों का युग्म अन्य प्राण व छन्दादि रश्मियों के साथ संगत होकर प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही प्रकार के परमाणुओं को उत्पन्न करके उसमें विभिन्न संयोजक बलों को सम्पादित करती हैं, जिससे कालान्तर में द्यु और पृथिवी आदि दोनों ही लोक उत्पन्न होते तथा परस्पर एक-दूसरे को धारण व संगत भी करते हैं।।

{पुरुषः = पुरुषः प्रजापति (श.६.२.१.२३; ७.१.१.३७), पशवः पुरुषः (तै.ब्रा.३.३.८.२), पुरुष एव सविता (जै.उ.४.१२.१.१७)। हस्तिनः = किरणः (म.द.ऋ.भा.१.६४.७)} पुनः उसी प्रकरण को व्याख्यात करते हुए कहते हैं कि वाक् तत्त्व के पूर्ण अभ्युदय के विना प्राणादि रश्मियों का परस्पर संगमन उसी प्रकार असम्भव होता है, जैसे मनस्तत्त्व प्राण वा छन्दादि रश्मियों अथवा विद्युत् में हस्त अर्थात् आकर्षण, प्रतिकर्षण एवं धारण आदि बलों वा गति के उत्पन्न वा समृद्ध = विस्तृत हुए विना वे किसी कार्य को नहीं कर सकते। उधर, वाक् तत्त्व के उत्कर्ष होने पर सर्गयज्ञ उसी प्रकार सफल होता है अर्थात् विभिन्न प्राणादि रश्मियां परस्पर संगत होने में उसी प्रकार समर्थ होती हैं, जैसे विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां एवं विद्युत् अपने आकर्षण-प्रतिकर्षण और धारण बलों के प्रकट होने पर अपने नाना कार्यों को करने में समर्थ होती हैं। स्थूल लौकिक उदाहरण के द्वारा इसे इस प्रकार समझाया गया

है कि जिस प्रकार लोक में कोई मनुष्य अपने हाथ फैलाये विना तथा कोई हाथी अपनी सूंड को उठाये व फैलाये विना कोई भी कार्य करने में समर्थ नहीं होता है, उसी प्रकार प्राणापान रश्मियों के साथ यदि वाक् तत्त्व संयुक्त न हो, तो वे रश्मियां अपना कोई भी कार्य करने में असमर्थ होती हैं। यहाँ वाक् की तुलना मनुष्य के हाथ और हाथी की सूंड से की गयी है, जिस प्रकार ये इन प्राणियों के विशेष करण हैं, उसी प्रकार **प्राणापान रश्मियों का भी वाक् तत्त्व विशेष करण रूप होता है।** लोक में भी कोई मनुष्य अपना हाथ और हाथी अपनी सूंड को जितना अधिक फैलाता है, उतना ही वह वल उत्पन्न करके अपने कार्यों को सम्पन्न कर सकता है अथवा इनका जितना-२ प्रसारण होता है, उतने-२ क्षेत्र में ये अपने वल का प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार प्राणापानादि रश्मियों में वाक् तत्त्व का जितना-२ उत्कर्ष और विस्तार होता है, उतना-२ ही उन प्राणादि रश्मियों के वलों का विस्तार होता है। इस प्रकार इस वाक् तत्त्व के उत्कृष्ट रूप धारण करने पर ही प्राणापान आदि रश्मियां परस्पर संगत होकर अन्य प्राण एवं छन्दादि रश्मियों को अपने साथ संगत करने में समर्थ होती हैं। उसका प्रकार यह है कि जव प्राणादि रश्मि वाक् तत्त्व के उदित होने पर संयोग आदि क्रिया करती है, तव वह अपने हस्त अर्थात् वल को ऊर्ध्व अर्थात् अपने से वाहर की ओर खींचकर उसे अपने स्वर्ग अर्थात् अपनी चरम सीमा में स्थापित कर देती है। इसी प्रकार उसकी गति भी चरमावस्था को प्राप्त कर लेती है। इसका भाव यह है कि वाक् तत्त्व के उदित और संगत होने पर प्राणापान रश्मियों के वल और गति की उत्कृष्ट अवस्था उत्पन्न होती है और इनकी उत्कृष्ट अवस्था के पश्चात् ही अन्य प्राण, छन्दादि रश्मियां एवं उसके पश्चात् अन्य पदार्थों के वल और गति की भी उत्कृष्ट अवस्था उत्पन्न होती है। इस कारण वाग् रूप आदित्य के उदित होने पर ही सर्ग प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **इस सृष्टि की उत्पत्ति प्रक्रिया में 'ओम्' छन्द रश्मि के उत्पन्न हुए विना विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां उसी प्रकार अपने कार्य करने में असमर्थ होती हैं, जिस प्रकार विना विद्युत् के मेघों में गर्जन उत्पन्न होना असम्भव होता है। "ओम्" छन्द रश्मि के प्राण और अपान रश्मियों को वल प्रदान करने के पश्चात् उत्पन्न होने वाली अन्य रश्मियां एवं कण तथा विकिरण आदि सभी पदार्थ वलवान् और सक्रिय हो उठते हैं। इसके पश्चात् ही लोक निर्माण की प्रक्रिया भी प्रारम्भ होती है। यह 'ओम्' छन्द रश्मि विभिन्न प्राण एवं छन्दादि रश्मियों के वल का प्रधान कारण है, जैसे कि मनुष्य के वल का कारण उसके हाथ और हाथी के वल का कारण उसकी सूंड होती है। ये अपने हाथ अथवा सूंड को जितना अधिक फैलाते हैं, उतने ही क्षेत्र में वे अपने वल के द्वारा किसी पदार्थ का आदान-प्रदान करने में समर्थ होते हैं, इसी प्रकार प्राण आदि रश्मियों में वाक् तत्त्व जितना विस्तृत होता है, उतना ही उन रश्मियों में वल और क्रियाओं का विस्तार होता है। वाक् तत्त्व जितना अधिक उत्कृष्ट रूप में उत्पन्न और संगत होता है, उतना-२ वे प्राणादि रश्मियां उत्कृष्ट वल को प्राप्त करती हैं। इस कारण 'ओम्' छन्द रश्मि के विना सृष्टि प्रक्रिया न तो प्रारम्भ हो सकती है और न संचालित ही।।**

२. उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति, तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते; प्राणे हास्य सम्प्रति हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति; तस्मादुदिते होतव्यम्।।
एष ह वै सत्यं वदन् सत्ये जुहोति, योऽस्तमिते सायं जुहोत्युदिते प्रातर्भूर्भुवः स्वरो३मग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति सायं जुहोति; भूर्भुवः स्वरों३ सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य इति प्रातः; सत्यं हास्य वदतः सत्ये हुतं भवति य एवं विद्वानुदिते जुहोति; तस्मादुदिते होतव्यम्।।
तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते।।
प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति, पुरोदयाज्जुह्वति येऽग्निहोत्रम्। दिवाकीर्त्यमदिवा कीर्तयन्तः सूर्यो ज्योतिर्न तदा ज्योतिरेषामिति।।६।।

व्याख्यानम्- उत्कर्ष को प्राप्त वाक् तत्त्व रूपी आदित्य सभी भूत अर्थात् उत्पन्न प्राणादि रश्मियों को वास्तव में उनका प्राणत्व प्रदान करता है अर्थात् उनमें बल, चेष्टा और गति को उत्पन्न करता है। इस कारण **वाक् तत्त्व को भी प्राण कहा है**। अन्य ऋषियों का भी कथन है- वाक् प्राणः (मै.४.६.४), वाक् प्राणानामुत्तमा (काठ.१६.१०; क.३०.८), प्राणो वै वाक् (मै.३.२.८)। इसलिए जब वाक् तत्त्व की उत्पत्ति एवं उत्कृष्टता हो जाती है, तभी सभी प्राणादि रश्मियों में पारस्परिक संगतीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो पाती है। इस कारण वाक् तत्त्व का उत्कर्ष को प्राप्त करना सृष्टि प्रक्रिया की उत्पत्ति और संचालन के लिए अनिवार्य है। यहाँ 'सम्प्रति' शब्द का अर्थ आचार्य सायण ने "सम्यक्" किया है, जो यहाँ उचित ही है।।

{सत्यम् = प्राणा वै सत्यम् (श.१४.५.१.२३)} जब अपान तत्त्व का प्राणादि रश्मियों पर प्रक्षेपण होता है और उसके ठीक पूर्व प्राण नामक प्राण का उत्कर्ष हो जाता है, उस समय विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां परस्पर संगत होने लगती हैं तथा उस समय छन्द रश्मियां उत्पन्न भी होती हैं। उस समय सत्य अर्थात् विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियां प्रकाशित व गतिशील होती हुई सत्य अर्थात् अविनाशी मनस्तत्त्व व वाक् तत्त्व में आहुत होती हैं, मानो वाक् तत्त्व में उन रश्मियों का होम होने लगता है। वाक् तत्त्व को वेदी बताते हुए अन्य महर्षि का भी कथन है- "वाग् वेदिः" (मै.१.६.१; तै.आ.३.१.१)

वाक् तत्त्व स्वयं मनस्तत्त्व में स्थित होता है, इस कारण यह मनस्तत्त्व सबकी वेदीरूप होता है। जिस समय वाक् तत्त्व अपान तत्त्व के साथ संयुक्त होकर उसे अनुप्राणित वा सक्रिय करता है, उस समय {ओम् = ओमिति मनः (जै.उ.१.२.२.२), वागेतत्परममक्षरम् (तै.आ.२.११.४)। सूर्यः = सूर्यो वा इन्द्रः (काठ.७.४)। प्राणः = प्राणो हि सोमः (काठ.३५.१६; तां.६.६.१), प्राण एव सविता (गो.पू.१.३३)। अग्निः = अग्निरपानः (जै.उ.४.११.१.६)} 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः' किंवा प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियां ओम् अर्थात् मनस्तत्त्व में अपना हवन करने लगती हैं। उस समय वे अग्निरूप मनस्तत्त्व के साथ ज्योतिर्मय होती हुई अग्नि नामक अन्य तत्त्व को कालान्तर में उत्पन्न करके ज्योतिर्मय करती हैं। अग्नि तत्त्व का अपान से विशेष सम्बन्ध उपर्युक्त एक प्रमाण में बताया गया है। यहाँ प्रथम 'अग्नि' पद मनस्तत्त्व का विशेषण है, क्योंकि यही सबसे अग्रणी होता है। 'अग्नि' पद का विवेचन करते हुए ऋषियों ने कहा है- अग्निः प्रजापतिः (काठ.२२.७,१०), अग्निः प्रजनयिता (काठ.६.७; क.६.५), अग्निः प्रथम इज्यते (मै.३.८.१), अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः (काठ.१६.२०), अग्निर्वै सर्वमाद्यम् (तां.२५.६.३)। इन सभी वचनों से सिद्ध है कि मनस्तत्त्व को 'अग्नि' इसलिए कहा जाता है, क्योंकि प्रकृति से उत्पन्न यह प्रथम विशेष क्रियाशील तत्त्व है। इस प्रकार प्राणापानव्यान रश्मियां इस मनस्तत्त्व में आहुत होकर अग्रगामी अर्थात् विशेष क्रियाशील हो उठती हैं। इन तीन प्राण रश्मियों के क्रियाशील होते ही अन्य सभी प्राण रश्मियां क्रियाशील होकर विभिन्न छन्द रश्मियों की रचना करके उनमें भी संयोज्यता और सक्रियता आदि गुणों को उत्पन्न करती हैं। यहाँ दूसरा तात्पर्य यह है कि वाक् तत्त्व के साथ संयुक्त होकर अपान तत्त्व के सक्रिय होने पर 'भूः', 'भुवः', और 'स्वः', ये तीनों सूक्ष्म छन्द रश्मियां वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि के साथ संगत होकर मनरूपी अग्नि में ये सभी रश्मियां आहुत होकर विशेष क्रियाशीलता उत्पन्न करके कालान्तर में अग्नितत्त्व को ज्योतिर्मय करती हैं।

जब प्राण नामक प्राण तत्त्व वाक् तत्त्व के साथ संगत होकर उत्कर्ष को प्राप्त होता है, उस समय 'भूः', 'भुवः', 'स्वः' किंवा प्राणापान एवं व्यान, ये तीनों ही प्राण रश्मियां सबके प्रेरक सूर्य अर्थात् वाक् तत्त्व ('ओम्' छन्द रश्मि) के साथ संगत होकर विशेष सक्रियता उत्पन्न करके सभी प्राण रश्मियों रूपी सूर्य किंवा इन्द्ररूपी सूर्य को कालान्तर में ज्योतिर्मय करती हैं। यहाँ भी उपर्युक्तवत् 'भूः' 'भुवः' एवं 'स्वः' छन्द रश्मियां 'ओम्' छन्द रश्मि के साथ संगत होकर सोम तत्त्व अर्थात् विभिन्न मरुद् एवं प्राण रश्मियों को ज्योतिर्मय करके अन्ततः सूर्य किंवा इन्द्र तत्त्व को ज्योतिर्मय करती हैं। यहाँ हमने 'अग्नि' शब्द से मन एवं 'सूर्य' शब्द से 'वाक् तत्त्व' का ग्रहण किया है। मनस्तत्त्व ही वाक् तत्त्व की योनि अर्थात् कारण और निवास स्थान है। इसी कारण कहा गया है- अग्निस्सूर्यस्य (योनिः) (काठ.७.४)। ये दोनों ही तत्त्व एक ही उपादान कारण 'महत्' वा प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और साथ-२ ही निवास भी करते हैं। इसी कारण कहा है-

"समाने वै योना आस्ताᳪ सूर्यश्चाग्निश्च (काठ.६.३)" {सत्यम् = तद् यत् सत्यम्। असौ स आदित्यः (श.६.७.१.२), इयं (पृथिवी) एव सत्यम् (श.७.४.१.८)} इस प्रकार प्राण एवं अपान की

उपर्युक्तानुसार उत्कृष्टता होने पर सभी प्रकार की प्राणादि रश्मियां गतिशील और प्रकाशित होकर अपनी विभिन्न संगतीकरण की क्रियाओं के द्वारा सत्य अर्थात् पृथिवी और आदित्य लोकों को शनैः शनैः विभिन्न चरणों के द्वारा उत्पन्न करती हैं। इस कारण वाक् तत्त्व के उत्कर्ष और संगम के द्वारा प्राण और अपान रश्मियों का संगम और उत्कर्ष अवश्य होता है।।

इस सम्वध में प्राचीन ऋषियों ने एक गाथा इस प्रकार गायी है-

जव आदित्य अर्थात् वाक् तत्व के उत्कर्ष के पूर्व ही सर्ग प्रक्रिया प्रारम्भ होने लगे अर्थात् वाक् तत्त्व के द्वारा प्राण और अपान रश्मियों के उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त किये विना सर्ग प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, तो प्रातः अर्थात् प्राण रश्मियां अनृत अर्थात् अनियमित रूप को प्राप्त करती हैं, जिसके कारण वे प्राण रश्मियां असुर तत्त्व का रूप धारण कर लेती हैं। इसी कारण कहा गया है- ते देवाः सत्यमभवन् अनृतमसुराः (मै.१.६.३), भ्रातृव्यायानृतं वदेत् (काठ.२७.८)। उस समय {दिवाकीर्त्यम् = प्राण एव दिवाकीर्त्यम् (जै.ब्रा.२.३७), यजमाना वै दिवाकीर्त्यम् (तै.सं.७.३.१०.२), अथो हैतत्प्राणस्यैव रेतो निर्मितं यद् दिवाकीर्त्यम् (जै.ब्रा.२.३६)} वाक् तत्व के द्वारा प्राणतत्त्व के ज्योतिर्मय न होने के कारण सभी प्राण रश्मियां अदिवा अर्थात् अप्रकाशित रूप ही धारण करती हैं, जवकि ये प्राण रश्मियां दिवाकीर्त्य अर्थात् संगमनीय गुणों से युक्त होकर सभी प्राण रश्मियों में विभिन्न वलों का वीजारोपण करने में समर्थ होती हैं। इनके उस सामर्थ्य के अभाव में इन्द्र और सोम तत्त्व ज्योतिर्मय न हो पाने के कारण सर्ग प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है, क्योंकि उस समय उपरि कण्डिका में वर्णित दोनों ही प्रकार की क्रियाएं सम्भव नहीं हो पाती हैं।।+।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **'ओम्'** छन्द रश्मि रूपी वाक् तत्त्व सभी प्राण रश्मियों को उत्कृष्ट रूप से क्रियाशील करने के लिए उन्हें वल और गति प्रदान करता है, यहाँ तक कि उन प्राण रश्मियों की उत्पत्ति भी इस छन्द रश्मि से ही होती है। इस कारण इस छन्द रश्मि को भी प्राण रश्मि कहा जाता है। यह इस सृष्टि की सबसे सूक्ष्म प्राण एवं वाग् रश्मि है। इसके संयोग के विना स्वयं मनस्तत्त्व भी क्रियाशील नहीं हो पाता। जब इस छन्द रश्मि के द्वारा प्राणादि रश्मियां सक्रिय होती हैं, तव उन प्राणादि रश्मियों के साथ मनस्तत्त्व एवं यह **'ओम्'** छन्द रश्मि व्यापक रूप से संगत हो जाती है। **अपान रश्मियों का विशेष सम्बन्ध विद्युत् चुम्बकीय तरंगों तथा प्राण रश्मियों का विशेष सम्बन्ध विद्युदावेशित कणों के साथ होता है।** यहाँ सामान्य सम्वन्ध दोनों ही प्राण रश्मियों का दोनों ही पदार्थों से होता है। प्राण एवं अपान रश्मियों के साथ व्यान रश्मि संगत होकर उन दोनों के बीच संधि का कार्य करती है। **'ओम्' छन्द रश्मि के पश्चात् सर्वप्रथम 'भूः', 'भुवः', एवं 'स्वः' छन्द रश्मियां उत्पन्न होती हैं। उसके पश्चात् अन्य प्राणादि रश्मियां उत्पन्न होती हैं। 'ओम्' छन्द रश्मि के संगत हुए विना सभी प्राण रश्मियां डार्क एनर्जी में परिवर्तित हो जाती हैं।** यद्यपि डार्क एनर्जी और डार्क मैटर में भी प्राण एवं **'ओम्'** तथा अन्य छन्द रश्मियां विद्यमान होती हैं परन्तु उनका विशेष और उपर्युक्त संगम नहीं होता। उस उपर्युक्त संगम के द्वारा ही दृश्य पदार्थ और दृश्य ऊर्जा की उत्पत्ति होती है।।

इति २५.६ समाप्तः

꧁ अथ २५.७ प्रारभ्यते ꧂

*** तमसो मा ज्योतिर्गमय ***

१. प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वेमाँल्लोकानसृजत-पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं, ताँल्लोकानभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निरेव पृथिव्या अजायत, वायुरन्तरिक्षावादित्यो दिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्, तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त,-ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्; तान् वेदानभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त,-भूरित्येव ऋग्वेदादजायत, भुव इति यजुर्वेदात्, स्वरिति सामवेदात्।।

व्याख्यानम्- यहाँ प्रकारान्तर से सृष्टि उत्पत्ति का व्याख्यान करते हुए महर्षि लिखते हैं कि सबका पालक परमात्मा प्रकृति की साम्यावस्थारूप महाप्रलय में अकेला ही तत्त्व जाग्रत रहता है। यहाँ ग्रन्थकार ने जीवों के विषय में कोई संकेत इस कारण नहीं दिया है, क्योंकि उनकी इस प्रकरण अथवा इस ग्रन्थ में विशेष प्रासंगिकता नहीं है। प्रलयावस्था में ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी क्रियाशील पदार्थ की सत्ता नहीं होती है। प्रकृति सर्वथा निष्क्रिय अवस्था में होती है। इस अवस्था का बहुत सुन्दर वर्णन भगवान् मनु ने इस प्रकार किया है-

"आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः।" (मनु.१.५)

अर्थात् "उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड महाप्रलय के रूप में परिणत था। वह अत्यन्त अंधकार से ढका हुआ, जो किसी के भी द्वारा न जाना गया, न जानने योग्य, बिना लक्षण वा चिह्न वाला, तर्क न करने योग्य तथा सब ओर से सोया हुआ सा था।"

इस स्थिति में ईश्वर तत्त्व में यह कामना होती है कि पदार्थ की जो एकरस प्रकृति अवस्था है, उसको बहुरूप किया जाये अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाये। क्योंकि एकरस, अव्यक्त, प्रकृतिरूपी पदार्थ में स्वयं किसी क्रिया को करने का सामर्थ्य नहीं होता, इस कारण क्रिया एवं बल आदि का प्रारम्भ ईश्वर तत्त्व द्वारा ही सम्भव होता है। इस तत्त्व की विवेचना इस ग्रन्थ का विषय न होने से ग्रन्थकार ने कहीं भी प्रत्यक्ष विशेष संकेत नहीं किया है। इस विषय में हम अपने इस व्याख्यान में अनेकत्र ईश्वर तत्त्व के कार्यों का संकेत करते रहे हैं। इस विषय में विशेष जानकारी के लिए पूर्वपीठिका अवश्यमेव पठनीय है। उस सर्वथा एवं गहन अन्धकारयुक्त प्रकृति में ईश्वर की कामना के विषय में वेद में कहा है-

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।।४।। (ऋ.१०.१२९.४)

अर्थात् सर्वप्रथम उस चेतन ब्रह्म में सृष्टि निर्माण की इच्छा का जागरण होता है। उसकी इच्छा, ज्ञान, बल, क्रिया सभी स्वाभाविक होते हैं। इस सबके लिए उसे कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वही ऐसी शक्ति है, जिसमें ये सब स्वाभाविक होते हैं। इसे ही एक ऋषि ने कहा है-

"स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च" (श्वेताश्वतर उप.६.८) अपनी इस स्वाभाविक ज्ञान, बल व क्रिया से वह ईश्वर तत्त्व तप करता है। इसका आशय यह है कि वह विभिन्न क्रियाओं के द्वारा तीन

लोकों को रचता है। वे लोक हैं- पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक। इनकी उत्पत्ति प्रक्रिया स्थान-२ पर हम इस ग्रन्थ में बतलाते आये हैं। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम मनस्तत्त्व की उत्पत्ति होती है, जिसे महर्षि कपिल ने सांख्य दर्शन में 'महत्' नाम दिया है। महर्षि जैमिनी ने मन को ही तप कहते हुए लिखा है- 'मनो ह वाव तपः' (जै.ब्रा.३.३३४)। यह सबसे प्रथम उत्पन्न वह पदार्थ है, जिसमें क्रिया और बलों को ईश्वर द्वारा सर्वप्रथम स्थापित किया जाता है अर्थात् इसी में बल और क्रिया का प्रारम्भ होता है। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- तपो दीक्षा (श.३.४.३.२)। इस मनस्तत्त्व को तप इस कारण कहते हैं, क्योंकि यह इस सृष्टि को तेजस्वी बनाते हुए स्वयं विकारों को प्राप्त होता रहता है। इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "एतत् खलु वाव तप इत्याहुर्यः स्वं ददातीति" (तै.सं.६.१.६.३) "एतद् वा तपो यत्स्वं ददाति" (क.३७.१)। जहां यह मनस्तत्त्व प्रथम उत्पन्न तत्त्व है, वहीं ये तीनों लोक इस सृष्टि की चरमावस्था हैं। जब पार्थिव लोक उत्पन्न हो रहे होते हैं और इस क्रिया के लिए पदार्थ घनीभूत हो रहा होता है, उस समय उस पदार्थ में अग्नि तत्त्व की, विशेषकर ऊष्मा की उत्पत्ति होती है। आकाश तत्त्व की परिपक्व अवस्था में वायु तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसका तात्पर्य यह है कि इस आकाश तत्त्व में सदैव वायु अर्थात् विभिन्न प्राण व छन्दादि रश्मियों का प्रवाह बना रहता है और उपर्युक्त पृथिवी आदि लोकों के गर्भ में ऊष्मा तथा उसके सभी परमाणु विद्युदग्नि से सदैव परिपूर्ण रहते हैं। वे विद्युदग्नि के द्वारा ही नाना प्रकार के बन्धन उत्पन्न करके इन लोकों का रूप प्राप्त करते हैं। उधर द्युलोक जब परिपक्व अवस्था को प्राप्त करते हैं, तब उनमें आदित्य अर्थात् अग्नि तत्त्व विकिरण के रूप में सतत निर्मित होकर बाहर उत्सर्जित होता रहता है। इसी कारण यहाँ ग्रन्थकार ने अग्नि को पृथिवी की ज्योति, वायु को अन्तरिक्ष की ज्योति एवं आदित्य को द्युलोकों की ज्योति कहा है। इस कथन से यह भी संकेत मिलता है कि **प्रत्येक पार्थिव परमाणु वा लोक अग्नि तत्त्व की सूक्ष्म ज्योति से भी सदैव ज्योतित रहता है, भले ही उस ज्योति को अपने नेत्रों से न देख पायें,** जबकि द्युलोकों की ज्योति को हम अपने नेत्रों से देख सकते हैं। आकाश तत्त्व भी छन्द व प्राणादि रश्मियों के कारण सदैव अव्यक्त और अदृश्य दीप्ति से ज्योतित रहता है। यहाँ 'ज्योति' शब्द से हम एक सूक्ष्म विद्युत् का भी ग्रहण कर सकते हैं, जो इन तीनों ही लोकों में सदैव अपने भिन्न-२ रूपों में ज्योतित रहती है। अब आगे ग्रन्थकार का कथन है कि इन तीनों ज्योतियों से त्रिविध वेदों की उत्पत्ति होती है। इस क्रम में अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद एवं आदित्य से सामवेद उत्पन्न होता है। इस विषय में हमारा मत यह है कि **पार्थिव लोक वा परमाणुओं में ऋग्वेद की ऋचाएं प्रधानता के आधार पर विद्यमान होती हैं और इन लोक वा कणों से ये ऋचाएं ही विशेष उत्सर्जित भी होती रहती हैं। इन ऋचाओं के द्वारा ही ब्रह्माण्ड में समस्त मूर्तिमान् पदार्थ उत्पन्न होते वा हुए हैं।** इसी कारण ऋषियों ने कहा है- "ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्तिमाहुः" (तै.ब्रा.३.१२.९.१), ऋग् वा अयं (पृथिवी) लोकः सामासौ (द्युलोकः) (जै.ब्रा.२.३८०) इन लोकों में प्रकाश की मात्रा नगण्य होने से कहा है- "कृष्णमृक्" (काठ.२३.३) आकाश तत्त्व विशेषकर उन छन्द रश्मियों से निर्मित होता है, जो यजुः रूप होती हैं, जिन्हें ही यहाँ यजुर्वेद कहा गया है। ये ऋचाएं पदार्थों के आवागमन में विशेष सहायक होती हैं। इसे ही ऋषियों ने कहा है- "सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्" (तै.ब्रा.३.१२.९.१)। इस विषय में अन्य ऋषि का भी कथन है-

"अन्तरिक्ष लोको यजुर्वेदः" (ष.१.५)। महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं- "अन्तरिक्षं यजुषा" (जयति) (श.४.६.७.२) अब आदित्य लोक की चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस लोक में साम रश्मियों की प्रधानता होती है, जिसके कारण इन लोकों में तीव्र प्रकाश एवं छेदन-भेदन की क्रियाएं तीव्रता से होती रहती हैं। साम रश्मियों का तेजस्विता से सम्बन्ध बतलाते हुए, साथ ही सूर्यादि लोकों से सम्बन्ध के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अर्चि सामानि" (श.१०.५.१.५), "तदाहुस्संवत्सर एव सामेति" (जै.उ.१.१२.१.१), "सर्वं तेजः सामरूप्यं ह शश्वत्" (तै.ब्रा.३.१२.९.२)

ध्यातव्य है कि किसी भी लोक में सर्वथा एक ही प्रकार की छन्द रश्मियां विद्यमान नहीं होती, बल्कि सभी प्रकार की छन्द रश्मियां सभी लोकों में विद्यमान होती हैं। यहाँ जो वर्गीकरण किया गया है, वह प्रधानता के आधार पर है, न कि निरपेक्षता के आधार पर ।

अब महर्षि लिखते हैं कि इन तीन प्रकार की छन्द रश्मियों से तीन महाव्याहृतियों 'भूः' 'भुवः' और 'स्वः' की उत्पत्ति होती है और यह उत्पत्ति इन तीनों प्रकार की छन्द रश्मियों के अभितप्त होने

पर उनके शुक्र रूप में प्रकट होती है। इस विषय में हमारा मन्तव्य है कि ये तीनों ही महाव्याहृतिरूप सूक्ष्म रश्मियां दैवी छन्द रश्मियों का ही रूप हैं, जो सृष्टि प्रक्रिया में बहुत पहले ही उत्पन्न हो जाती हैं। इसे हम इस ग्रन्थ में अनेकत्र लिख भी चुके हैं। पुनरपि, यहाँ इस कथन का तात्पर्य यह है कि **ऋग्वेद की छन्द रश्मियों में भूः नामक छन्द रश्मि की विशेष प्रधानता होती है। यह दैवी छन्द रश्मि इन ऋग्रूप छन्द रश्मियों की विशेष पालिका और रक्षिका शक्ति के रूप में विद्यमान होती हैं।** ऋग्रूप छन्द रश्मियों के अति सक्रिय होने पर यह दैवी छन्द रश्मि विशेष क्रियाशील और उत्सर्जित होती रहती है। यह क्रिया पार्थिव लोकों वा परमाणुओं में विशेष रूप से होती है। उधर **आकाश में बहुलता से विद्यमान यजुः छन्द रश्मियों में "भुवः" दैवी छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है।** यजुः रश्मियों के अति सक्रिय होने पर ये दैवी छन्द रश्मियां उन यजुः रश्मियों से विशेषतः उत्सर्जित होती हैं। ये दैवी छन्द रश्मियां उन यजुः रश्मियों एवं आकाश तत्त्व की पालिका एवं रक्षिका भी होती हैं। इसी प्रकार विभिन्न **साम रश्मियों में 'स्वः' दैवी गायत्री छन्द रश्मि की प्रधानता होती है। साम रश्मियों के विशेष सक्रिय होने पर ये 'स्वः' छन्द रश्मियां उनमें से अधिकता से उत्सर्जित होने लगती हैं।** ये रश्मियां ही साम रश्मियों के साथ-२ विभिन्न आदित्य लोकों के रक्षण और पालन में विशेष भूमिका निभाती हैं। यहाँ इन दैवी छन्द रश्मियों की पृथक्-२ लोकों एवं वेदों से सम्बन्ध की चर्चा का अभिप्राय यह नहीं है कि ये उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित होती हैं, वल्कि इनकी विद्यमानता सर्वत्र होती है। यहाँ पृथक्-२ दर्शाने की चर्चा प्रधानता के आधार पर ही समझनी चाहिए। इस प्रकरण से यह भी विदित होता है कि ये तीनों दैवी छन्द रश्मियां सृष्टि के समस्त पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, पालन एवं संचालन आदि में महती भूमिका निभाती हैं और सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त भी रहती हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व समस्त मूल उपादान पदार्थ सर्वत्र एकरस भरा हुआ सर्वथा शान्त और अन्धकार युक्त होता है। यह सभी प्रकार के लक्षणों से रहित होने के कारण पूर्णतः अज्ञेय होता है। सभी प्रकार के वल आदि गुणों एवं क्रियाओं का सर्वथा अभाव होता है। वर्तमान विज्ञान द्वारा परिकल्पित वा सिद्ध आकाश, ऊर्जा, द्रव्य आदि का उस समय अभाव रहता है। इस अवस्था को वैदिक भाषा में प्रकृति कहते हैं। **सर्व नियन्ता चेतन तत्त्व ईश्वर, प्रकृति के बाहर और भीतर सर्वत्र विद्यमान रहता हुआ एकमात्र जाग्रत तत्त्व होता है। सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ करने के लिए सर्वप्रथम वही ईश्वर तत्त्व उस प्रकृति में अति सूक्ष्म क्रिया और बल उत्पन्न करके उसे स्पन्दित करता है** और इस स्पन्दन से सर्वप्रथम जो पदार्थ उत्पन्न होता है, उसे **मन** कहते हैं। इसी पदार्थ में सर्वप्रथम वल और क्रिया आदि गुणों एवं लक्षणों का प्रारम्भ होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का यही सबसे प्रथम उत्पन्न कारण पदार्थ है। इसी से सभी तारे, ग्रह-उपग्रह आदि अप्रकाशित लोक, आकाश, सम्पूर्ण द्रव्य और ऊर्जा आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। ये सभी उत्पन्न पदार्थ मनस्तत्त्व से उत्पन्न होकर उसी में व्याप्त भी रहते हैं। विभिन्न प्रकार की सृजन प्रक्रियाओं के पश्चात् जव अप्रकाशित आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति होती है, तव जैसे-२ वे अपने गुरुत्वीय वल के प्रभाव से संघनित होते जाते हैं, वैसे-२ उनके अन्दर का पदार्थ गर्म होता जाता है। ऐसे सभी लोकों और विभिन्न प्रकार के कणों में ही विद्युत् आवेश भी विद्यमान होता है। विभिन्न निर्माणाधीन तारे जव अपनी परिपक्व अवस्था में पहुंचते हैं, तव उनमें विद्युत् चुम्वकीय तरंगों का उत्पादन और वाहर उत्सर्जन होने लगता है। व्यापक आकाश के अन्दर विभिन्न प्राण और छन्द रश्मियों का सतत प्रवाह होता रहता है।

इस सृष्टि के **सभी मूलकणों एवं उनसे उत्पन्न एटम आदि कणों से भी एक अदृश्य प्रकाश सदैव उत्सर्जित होता रहता है। सम्पूर्ण स्पेस (space) में भी एक सूक्ष्म, अव्यक्त और अज्ञेय ज्योति विद्यमान रहती है। सृष्टि के सभी पदार्थों में सूक्ष्म विद्युत् भी सदैव व्याप्त रहती है।** सृष्टि के सभी कणों में **'ऋक्'** संज्ञक छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है, शेष छन्द रश्मियां इनमें गौण होती हैं। आकाश में **'यजु'** संज्ञक छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है, जवकि अन्य छन्द रश्मियां गौण होती हैं। उधर तारे आदि लोकों में **'साम'** संज्ञक छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है। अन्य छन्द रश्मियां गौण होती हैं। **'ऋक्'** संज्ञक सभी छन्द रश्मियों में **'भूः'** छन्द रश्मियों की प्रधानता होती है एवं अन्य दैवी छन्द रश्मियां गौण होती हैं। यह **'भूः'** छन्द रश्मि ब्रह्माण्ड के सभी कणों और अप्रकाशित लोकों की उत्पत्ति, स्थिति और रक्षा में विशेष भूमिका निभाती है। **'यजुः'** संज्ञक छन्द रश्मियों में **'भुवः'** दैवी छन्द रश्मि की प्रधानता होती है, अन्य दैवी छन्द रश्मियां गौण होती हैं। यह **'भुवः'** छन्द रश्मि सम्पूर्ण आकाश की

उत्पत्ति और स्थिति में प्रधानता से भूमिका निभाती है। **'साम'** संज्ञक छन्द रश्मियों में **'स्वः'** दैवी छन्द रश्मि की प्रधानता होती है, शेष दैवी छन्द रश्मियां गौण होती हैं। विभिन्न तारों एवं विद्युत् चुम्बकीय तरंगों की उत्पत्ति सहित विभिन्न क्रियाओं में इस दैवी छन्द रश्मि की विशेष भूमिका होती है। ये तीनों ही प्रकार की दैवी छन्द रश्मियां इस सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त होती हुई अपनी विशेष और सूक्ष्म भूमिका निभाती हैं। विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और बलों के पीछे इनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।।

चित्र २५.४ सृष्टि के महत्वपूर्ण त्रिक

२. तानि शुक्राण्यभ्यतपत्; तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति; तानेकधा समभरत् तदेतदो३मिति, तस्मादोमोमिति प्रणौत्योमिति वै स्वर्गो लोक ओमित्यसौ योऽसौ तपति।।
स प्रजापतिर्यज्ञमतनुत; तमाहरत्; तेनायजत; स ऋचैव होत्रमकरोद्, यजुषाऽऽध्वर्यवं साम्नोद्गीथं यदेतत्त्रय्यै विद्यायै शुक्रं, तेन ब्रह्मत्वमकरोत्।।
स प्रजापतिर्यज्ञं देवेभ्यः संप्रायच्छत्, ते देवा यज्ञमतन्वत, तमाहरन्त, तेनायजन्त, त ऋचैव हौत्रमकुर्वन् यजुषाऽऽध्वर्यवं, साम्नोद्गीथं, यदेवैतत् त्रय्यै विद्यायै शुक्रं, तेन ब्रह्मत्वमकुर्वन्।।

व्याख्यानम्- वेदों की विभिन्न ऋचाओं के तपाने से अर्थात् उनके अतिसक्रिय होने पर जो 'भूः', 'भुवः', और 'स्वः' नामक दैवी छन्द रश्मियां उत्पन्न हुई थीं, उनके अतिसक्रिय वा तप्त होने पर क्रमशः 'अ' 'उ' 'म्' अक्षरों रूप रश्मियों की उत्पत्ति होती है। ये तीनों अक्षररूप रश्मियां ही संगृहीत होकर 'ओम्' छन्द रश्मि के रूप में प्रकट होती हैं। 'ओम्' छन्द **रश्मि प्रकृष्ट रूप से स्तुत अर्थात् प्रकाशित**

होती है। इस सृष्टि में जो-२ भी जहाँ-२ भी प्रकाश है, उसकी उत्पत्ति में 'ओम्' छन्द रश्मि की विशेष भूमिका होती है। इस रश्मि को यहाँ स्वर्ग लोक कहा गया है। स्वर्गलोक के विषय में ऋषियों का कथन है-

"अपरिमितो वै स्वर्गो लोकः" (ऐ.६.२३), "अनन्तोऽसौ (स्वर्गः) लोकः" (तां.१७.१२.३), "वाजो वै स्वर्गो लोकः" (तां.१८.७.१२), "स्वर्गो वै लोको यज्ञः" (कौ.ब्रा.१४.१)

इन वचनों से सिद्ध है कि 'ओम्' छन्द रश्मि का विस्तार अनन्त है। सृष्टि की प्रत्येक छन्द वा प्राण रश्मि और उनके संयोग-वियोगादि की क्रियाएं एवं वल जहां-२ भी विद्यमान हैं, वहाँ-२ 'ओम्' छन्द रश्मि की अनिवार्य और सवसे मूल भूमिका है। यह 'ओम्' छन्द रश्मि सभी दैवी छन्द रश्मियों के अतिरिक्त अन्य सभी छन्द रश्मियों के रस के समान वा शुक्र के समान वीजरूप पदार्थ है। इस विषय में महर्षि जैमिनी का भी कथन है-

"तासामभिपीडितानां (व्याहृतीनाम्) रसः प्राणेदत्। तदेतदक्षरमभवदोमिति यदेतद्" (जै.उ.१.७.१.७)

ब्रह्माण्ड में प्रकाशित सभी सूर्यादि लोक, जो भी प्रकाश, ऊष्मा आदि उत्पन्न करते हैं, उन सभी क्रियाओं और प्रकाशादि गुणों के पीछे 'ओम्' छन्द रश्मि की ही मूल भूमिका है। सम्पूर्ण सृष्टि ही मानो 'ओम्' छन्द रश्मि का ही विस्तार है। इसे ही महर्षि जैमिनी ने कहा है- "एतद्ध (ओमिति) वा इदं सर्वमक्षरम्" (जै.ब्रा.२.१०)

महर्षि तित्तिर का भी कथन है- "ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳसर्वम्" (तै.आ.७.८.१; तै.उ.१.८.१)।

यह 'ओम्' छन्द रश्मि जहां सृष्टि के समस्त वल, तेज और क्रिया का मूल कारण है, वहीं यह छन्द रश्मि अन्य छन्द व प्राणादि रश्मियों को धागे के समान परस्पर वांधे रहती है, मानो सभी रश्मियां 'ओम्' रूपी धागे से वंधी हुई हैं। इसी कारण महर्षि जैमिनी का कथन है-

"यथा सूच्या पलाशानि संतृण्णानि स्युरेवमेतेन (ओमिति) अक्षरेणेमे लोकास्सन्तृण्णाः।" (जै.ब्रा.२.१०; जै.उ.१.२.३.३)।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि हम सर्वत्र 'ओम्' छन्द रश्मि को सवसे सूक्ष्म छन्द रश्मि मानते आये हैं, तव इसकी अवयव रूप 'अ', 'उ', और 'म्' अक्षर रश्मियां कैसे हो सकती हैं? इस विषय में हमारा मत यह है कि ये 'अ' 'उ' तथा 'म्' अक्षर इतने सूक्ष्म होते हैं कि ये रश्मिरूप में प्रकट नहीं होते, साथ ही ये स्वतन्त्र अवस्था में भी नहीं रह सकते। इसी कारण रश्मिरूप में 'ओम्' ही सवसे सूक्ष्म और व्यापक छन्द रश्मि है। इसके मात्रा रूप तीन अक्षरों के विषय में एक अन्य महर्षि का कथन है-

"अकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेः" (माण्डू.उ.९)
"उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति" (माण्डू.उ.१०)
"मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा" (माण्डू.उ.११)

इन वचनों से संकेत मिलता है कि अकार अक्षर के कारण 'ओम्' छन्द रश्मि व्यापकता गुण से युक्त होती है। उकार अक्षर के कारण निरन्तर उत्कर्ष को प्राप्त करती हुई 'ओम्' रश्मि के अन्य दोनों अक्षरों को परस्पर जोड़े रखती है। यहाँ उत्कर्ष से तात्पर्य यह है कि इसके कारण 'ओम्' रश्मि अन्य रश्मि आदि सूक्ष्म पदार्थों को उत्कृष्टता से सदैव आकर्षित और संगत करती रहती है। मकार अक्षर के कारण 'ओम्' छन्द रश्मि {अपीतिः = अपीति संसर्गम् (अपि+इण्+क्तिन्) (नि.१.३), विनाशः (तु.म.द.ऋ.भा.१.१२१.१०)} सभी सूक्ष्म रश्मियों को मापती अर्थात् आच्छादित करती, सवके साथ संगत रहती और उनसे विमुख होकर उनका विनाश भी करती तथा दो पदार्थों को परस्पर वियुक्त भी करती है। इस प्रकार 'ओम्' छन्द रश्मि में इन तीनों अक्षरों के सभी गुण एक साथ विद्यमान होते हैं। इस 'ओम्' रश्मि के विषय में भगवान् मनु का कथन है-

"अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः। वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च।।" (मनु.२.२७६)

इसका तात्पर्य यह है कि यह रश्मि सभी छन्द रश्मियों एवं प्राण रश्मियों का सार वा वीजरूप है।।

{होता = महाहविर्होता (मै.१.६.१; काठ.६.६; क.८.१२), नाभिर्वा एषा यज्ञस्य यद् होता (काठ.२६.१; क.४०.४)} पूर्वोक्त प्रकरण को आगे वढ़ाते हुए कहते हैं कि प्रजापति परमात्मा से प्रेरित

मनस्तत्त्व सर्गयज्ञ का विस्तार करता है। इसके लिए वह विभिन्न छन्द और प्राण रश्मियों को उत्पन्न करके अपने अधीन करता है अर्थात् **सभी रश्मियों पर सक्रिय मनस्तत्त्व का अर्थात् मन एवं वाक् तत्त्व के मिथुन का पूर्ण नियन्त्रण रहता है।** वह मनस्तत्त्व उन रश्मियों का विविध प्रकार से यजन करता है। इस क्रम में ऋक् रूपी छन्द रश्मियों को होता के रूप में धारण करता है। ये रश्मियां बल और दीप्ति को धारण करने वाली होती हैं तथा ये ही सृष्टि यज्ञ में विभिन्न छन्द रश्मियों के मध्य होता का कार्य करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये छन्द रश्मियां ही सृष्टि यज्ञ में विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों के आदान-प्रदान वा संयोग-वियोग में विशेष भूमिका निभाती हैं। ये ऋक् छन्द रश्मियां न केवल अन्य छन्द रश्मियों रूपी हवियों का आदान-प्रदान करती हैं अपितु स्वयं भी महा हविरूप होती हैं अर्थात् इस सृष्टि प्रक्रिया में ये स्वयं ही सबसे बड़ी हवि होती हैं। इस कारण इनको सर्ग यज्ञ की नाभि अर्थात् केन्द्र कहा गया है। ये छन्द रश्मियां अति बलशालिनी भी होती हैं। इसके पश्चात् वह सक्रिय मनस्तत्त्व 'यजुः' छन्द रश्मियों को अध्वर्यु के रूप में धारण करता है। जैसा कि हम पूर्व कण्डिका के व्याख्यान में लिख चुके हैं कि यजुः छन्द रश्मियां सभी प्रकार की छन्द रश्मियों को गतिशील करती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे अन्य छन्द रश्मियों को गतिशील बनाने में विशेष सहयोग करके विभिन्न छन्द रश्मियों के आवागमन और संयोग-वियोग को निर्बाध बनाती हैं। ऐसा करने के लिए ये छन्द रश्मियां मानो विभिन्न संसर्ग क्रियाओं को धारण कर लेती हैं। इसी कारण कहा गया है-

"अध्वर्युणा वै यज्ञो विधृतः" (मै.३.८.१०)

वस्तुतः इन अध्वर्यु संज्ञक छन्द रश्मियों में प्राणापान एवं सक्रिय मनस्तत्त्व की प्रधानता होती है। इस कारण कहा गया है-

"प्राणापानावेवाध्वर्य्यू" (गो.पू.२.११), "मनो वा ऽअध्वर्य्युः" (श.१.५.१.२१)

विभिन्न छन्द एवं मरुद् रश्मियां तथा विभिन्न तन्मात्रायें इन अध्वर्यु संज्ञक यजुः छन्द रश्मियों का अनुगमन करते हुए सर्वत्र गमन करती है। इस विषय में एक ऋषि का कथन है- "पशवो ह्यध्वर्युमनु वर्त्तते" (ष.२.८)

ध्यातव्य है कि सृष्टि उत्पत्ति के लिए जहां बल की आवश्यकता होती है, वहाँ गति की भी आवश्यकता होती है। इसलिए जहां ऋक् छन्द रश्मियां बलप्रदात्री होती हैं, वहीं ये यजुः छन्द रश्मियां गति प्रदान करती हैं। अब अन्य रश्मियों की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि साम संज्ञक छन्द रश्मियां उद्गीथरूप होती हैं। इस विषय में महर्षि जैमिनी का भी कथन है- 'साम्नोद्गीथः (क्रियते)' (जै.ब्रा.१.३५८)। हमारे मत में यहाँ उद्गीथ पद उद्गाता अर्थ में प्रयुक्त है। इस विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है- "उद्गीथ एवोद्गातृणामृचः" (तै.सं.३.२.६.५-६)

इस कथन से हमारे मत की पुष्टि होती है। ये साम छन्द रश्मियां उद्गाता वा उद्गीथ संज्ञक होने से उत्कृष्ट रूप से तेजस्विनी होती हैं। ये अन्य छन्द रश्मियों के ऊपर स्थित होकर उनको भी उत्कृष्ट रूप से दीप्तियुक्त करती हैं। इसी की ओर संकेत करते हुए महर्षि जैमिनी का कथन है- उदङ्ङासीन उद्गायति (जै.ब्रा.१.७२)। इसके पश्चात् इन तीनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों की शुक्ररूप 'भूः', 'भुवः', और 'स्वः', व्याहृतिरूप दैवी छन्द रश्मियां इस सर्गयज्ञ में ब्रह्मा का कार्य करती हैं। ब्रह्मा के विषय में महर्षि तित्तिर का कथन है- बलं वै ब्रह्मा (तै.ब्रा.३.८.५.२), ब्रह्मैता व्याहृतयः (तै.सं.१.६.१०.२)। इस प्रकार ये दैवी छन्द रश्मियां इस सृष्टि यज्ञ में अन्य छन्द रश्मियों के ऊपर विराजमान होकर सबको बल प्रदान करती हुई सतत प्रेरित करती रहती हैं। ये उन सभी छन्द रश्मियों का रक्षण और पालन करती हुई उनको संचालित करती रहती हैं।।

ईश्वररूपी प्रजापति से प्रेरित मन एवं वाक् तत्त्व रूपी प्रजापति इस सर्गयज्ञ को देवों को सौंप देते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यह सर्ग प्रक्रिया सर्वप्रथम प्राथमिक प्राण रश्मि रूपी देवों में प्रारम्भ होती है। इसके पश्चात् वे प्राण रश्मियां पूर्वोक्त विभिन्न छन्द रश्मियों में पूर्वोक्तानुसार ही संगतीकरण की क्रियाओं का विस्तार करती हैं। यहाँ सम्पूर्ण प्रक्रिया पूर्वोक्त कण्डिका के अनुसार ही है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकरण में यह पुनरुक्ति दोष क्यों है? वस्तुतः यह दोष नहीं है, अपितु दो चरणों का स्पष्टीकरण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर तत्त्व द्वारा सर्वप्रथम मनस्तत्त्व के अन्दर 'ओम्' छन्द रश्मि को उत्पन्न करके उसे प्रेरित और सक्रिय किया जाता है। तदुपरान्त मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुन, जिसे सक्रिय मनस्तत्त्व भी कहते हैं 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' आदि दैवी छन्द रश्मियों एवं सूत्रात्मा वायु सहित दस प्राथमिक प्राण रश्मियों में सर्ग प्रक्रिया का प्रारम्भ करता है। इसके उपरान्त वे

प्राण रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों में वही क्रियाएं उत्पन्न करती हैं, जिनकी चर्चा उपरि कण्डिका में की गयी है। उस कण्डिका में सभी प्रकार की क्रियाओं का कर्त्ता मनस्तत्त्व को बतलाया गया है और यहाँ उन्हीं क्रियाओं में प्राण रश्मियों का कर्त्तापन दर्शाया गया है। क्रियाएं सभी पूर्ववत् ही हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- **'भूः'**, **'भुवः'** और **'स्वः'** सूक्ष्म छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों का बीजरूप होती हैं। ये ही उन छन्द रश्मियों को सदैव प्रेरणा और बल प्रदान करती हैं। इन तीनों छन्द रश्मियों का मूल बीज **'ओम्'** छन्द रश्मि होती है। यह छन्द रश्मि सभी प्रकार के बलों का मूल कारण है। विस्तार की दृष्टि से यह सबसे बड़ी व्यापक छन्द रश्मि है और सूक्ष्मता की दृष्टि से भी इससे सूक्ष्म रश्मि इस ब्रह्माण्ड में कोई नहीं होती है। **इस सृष्टि की प्रत्येक क्रिया, बल, गति एवं प्रकाश आदि गुणों के लिए मूलरूप से यही छन्द रश्मि उत्तरदायिनी होती है। यह सूक्ष्म छन्द रश्मि अन्य सभी छन्द रश्मियों को परस्पर उसी प्रकार जोड़े रखती है, जिस प्रकार किसी धागे में मोती पिरोए होते हैं** अथवा सुई और धागे से जैसे वस्त्रों को सिला जाता है, वैसे ही यह रश्मि विभिन्न रश्मियों को एक-दूसरे के साथ संगत करती है। यह **"ओम्"** छन्द रश्मि **'अ'**, **'उ'** और **'म्'** अक्षरों (अवयवों) का संयुक्त रूप होती है। ये अक्षर अवयव कभी स्वतन्त्र अवस्था में नहीं रह सकते और न ये रश्मिरूप ही होते हैं। इस कारण **'ओम्'** रश्मि ही सबसे सूक्ष्म और मूल रश्मि मानी जाती है। इसके विशेष गुणों के परिज्ञान के लिए व्याख्यान भाग पठनीय है। सृष्टि उत्पत्ति के प्रारम्भ में ईश्वर तत्त्व मनस्तत्त्व के अन्दर **'ओम्'** छन्द रश्मि को ब्रह्माण्ड के सबसे सूक्ष्म कम्पन के रूप में उत्पन्न करके मनस्तत्त्व को सक्रिय करता है। फिर यह सक्रिय मनस्तत्त्व **ऋक्** छन्द रश्मियों को प्रेरित करता है। ये छन्द रश्मियां अन्य रश्मियों को संयुक्त वियुक्त करने में विशेष भूमिका निभाती हैं, साथ ही ये छन्द रश्मियां ही परस्पर सर्वाधिक संगत होकर मूलकणों से लेकर बड़े-२ लोकों के निर्माण में उपादान द्रव्य का रूप होती हैं। यजुः रश्मियां सक्रिय मन द्वारा प्रेरित होकर आकाश में सर्वत्र विचरती हुई **ऋक्** आदि अन्य छन्द रश्मियों को निरापद गति प्रदान करती हैं। उधर **साम** छन्द रश्मियां अन्य छन्द रश्मियों के ऊपर आच्छादित होकर उन्हें तेज प्रदान करती हैं तथा **'भूः'**, **'भुवः'**, और **'स्वः'** रूपी सूक्ष्म छन्द रश्मियां सक्रिय मनस्तत्त्व द्वारा प्रेरित होकर सभी छन्द रश्मियों के बल, गति और तेज आदि गुणों को सम्यग् रूपेण नियन्त्रित करती रहती हैं। सक्रिय मनस्तत्त्व द्वारा विभिन्न छन्द रश्मियों को प्रेरित व सक्रिय करने में प्राणापान आदि प्राथमिक प्राण रश्मियों और सूत्रात्मा वायु की मध्यस्थ की भूमिका होती है।।

३. ते देवा अब्रुवन् प्रजापतिं,-यदि नो यज्ञ ऋक्त आर्तिः स्यात्, यदि यजुष्टो यदि सामतो यद्यविज्ञाता सर्वव्यापद्वा का प्रायश्चित्तिरिति; स प्रजापतिरब्रवीद्देवान्-यदि वो यज्ञ ऋक्त आर्तिर्भवति, भूरिति गार्हपत्ये जुहवाथ, यदि यजुष्टो, भुव इत्याग्नीध्रीयेऽन्वाहार्यपचने वा हविर्यज्ञेषु, यदि सामतः, स्वरित्याहवनीये; यद्यविज्ञाता सर्वव्यापद्वा भूर्भुवः स्वरिति सर्वा अनुद्रुत्याऽऽहवनीय एव जुहवाथेति।।
एतानि ह वै वेदानामन्तःश्लेषणानि यदेता व्याहृतयस्तद् यथाऽऽत्मनाऽऽत्मानं संदध्याद् यथा पर्वणा पर्व, यथा श्लेष्मणा चर्मण्यं वाऽन्यद्वा विश्लिष्टं संश्लेषयेदेवमेवैताभिर्यज्ञस्य विश्लिष्टं संदधाति; सैषा सर्वप्रायश्चित्तिर्यदेता व्याहृतयस्तस्मादेषैव यज्ञे प्रायश्चित्तिः कर्तव्या।।७।।

व्याख्यानम्- {गार्हपत्यः = प्राणो वै गार्हपत्यः (जै.ब्रा.१.६१), पशवो वै गार्हपत्यः (काठ.६.४; क.४.३)। आग्निध्रः = अन्तरिक्षमाग्निध्रम् (काठ.२१.८; तै.ब्रा.२.१.५.१), त्रैष्टुभमाग्निध्रम् (मै.३.४.४; काठ.२१.१२)} अन्वाहार्य पचनः = व्यानोऽन्वाहार्यपचनः (श.२.२.२.१८), अन्तरिक्षलोकोऽन्वाहार्यपचनः (जै.ब्रा.१.५१), अन्वाहार्यपचनः यजुः (तै.आ.१०.६३.१)। आहवनीयः = उदान आहवनीयः (श.२.२.२.१८)} यहाँ ग्रन्थकार ने मनरूप प्रजापति एवं प्राथमिक प्राण रश्मि रूप देवों के बीच संवाद के द्वारा चर्चा करते हुए सृष्टि प्रक्रिया की कुछ विशेष स्थितियों की चर्चा की है। वे प्रथम स्थिति की चर्चा करते

हुए कहते हैं कि यदि पूर्वोक्त प्रक्रियाओं में से ऋक् छन्द रश्मियों के संगमन की क्रियाएं कुछ विकृत हो जायें, तब क्या होता है? इसका समाधान बतलाते हुए ग्रन्थकार का कहना है कि उस परिस्थिति में प्राण नामक प्राथमिक प्राण रश्मियों तथा उन ऋक् छन्द रश्मियों में 'भूः' दैवी छन्द रश्मि की आहुति दी जाती है। इसके प्रभाव से ऋक् छन्द रश्मियों की संगतीकरण की प्रक्रिया में आने वाली विकृति दूर हो जाती है। जब 'यजुः' छन्द रश्मियों में होने वाली क्रियाओं में कोई विकृति उत्पन्न होती है, तब उस समय व्यान रश्मियों एवं उन 'यजुः' छन्द रश्मियों, जो आग्नीध्र संज्ञक अन्तरिक्ष में व्याप्त होती हैं, के अन्दर 'भुवः' छन्द रश्मि की आहुति दी जाती है। इसके प्रभाव से व्यान रश्मियां सक्रिय होकर उन विकृत हुई 'यजुः' छन्द रश्मियों की संसर्ग क्रियाओं को उचित प्रेरणा प्रदान करती हैं, जिसके कारण वे प्रक्रियाएं समुचित रूप से संचालित होने लगती हैं। जब साम छन्द रश्मियों की प्रक्रियाओं में कोई विकृति वा निष्क्रियता उत्पन्न हो जाती है, उस समय उन साम रश्मियों एवं उदान रश्मियों में 'स्वः' छन्द रश्मियों की आहुति प्रदान की जाती है। इससे उदान छन्द रश्मियां सक्रिय होकर साम छन्द रश्मियों की विकृत होने वाली प्रक्रियाओं को समुचित रूप प्रदान करती हैं। यदि तीनों प्रकार की छन्द रश्मियों की क्रियाओं में विकृति एक साथ आ जाये, तो उदान प्राण रश्मियों के साथ-२ तीनों प्रकार की छन्द रश्मियों के अन्दर 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' इन तीनों दैवी छन्द रश्मियों की आहुति दी जाती है। इसके प्रभाव से उदान रश्मियां सक्रिय होकर सभी प्रकार की विकृतियों को दूर करती हैं। इस प्रकार इन तीनों व्याहृतिरूप छन्द रश्मियों के प्रक्षेपण से सर्ग प्रक्रिया की विकृति दूर होती है। इसी कारण महर्षि जैमिनी ने कहा है- "एता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयः सर्वप्रायश्चित्तयः" (जै.ब्रा.१.५३,६०; जै.उ.३.४.३.३)

इसी प्रकरण को महर्षि आश्वलायन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है-

ऋक्तश्चेद्भूरिति गार्हपत्ये यजुष्टो भुव इति दक्षिण आग्नीध्रीये सोमेषु (आश्व.श्रौ.१.१२.३२)
सामतः स्वरित्याहवनीये सर्वतोऽविज्ञाते भूर्भुवः स्वरित्याहवनीय एव। (आश्व.श्रौ.१.१२.३३)

इन सूत्रों का भी वही भाव है, जो ग्रन्थकार ने इस कण्डिका में व्यक्त किया है। छान्दोग्योपनिषद् में भी यह प्रकरण निम्न प्रकार वर्णित है-

"तद्यद्यृक्तो रिष्येद् भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति।।

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद् भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति।।

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति।।" (छां.उ.४.१७.४-६)

इन वचनों से भी यह सिद्ध होता है कि व्याहृति नामक तीनों छन्द रश्मियां क्रमशः प्राण, व्यान और अपान रश्मियों तथा ऋक्, यजुः, और साम रश्मियों में प्रक्षिप्त वा संगत होकर उन्हें तेज और बल से विशेष युक्त कर देती हैं, जिसके प्रभाव से वे छन्द रश्मियां स्वयं ही विकृति से मुक्त हो जाती हैं। इसके साथ ही सर्ग प्रक्रिया पुनः समुचित रूप से चलने लगती है। ध्यातव्य है कि ये सब क्रियाएं मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मि रूपी वाक् तत्त्व के नियन्त्रण में सम्पन्न होती हैं।।

अब इन व्याहृति रूपी छन्द रश्मियों की अन्य प्रकार से चर्चा करते हुए कहते हैं कि ये तीनों भूः, भुवः और स्वः छन्द रश्मियां वेदों अर्थात् ऋग्, यजुः एवं साम रूप छन्द रश्मियों के आन्तरिक निबन्ध की साधन हैं अर्थात् ये सूक्ष्म छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों में अन्दर तक प्रविष्ट होकर उन्हें बांधे रखती हैं। यहाँ 'अन्तः' शब्द से यह संकेत मिल रहा है कि ये सूक्ष्म छन्द रश्मियां प्रत्येक छन्द रश्मि के भीतर तक प्रविष्ट होकर पहले उसे बांधे रखती हैं, पुनः उसे अन्य छन्द रश्मियों के साथ जोड़े रखने में सहायक होती हैं, जैसे आत्मा अर्थात् सूत्रात्मा वायु अपनी सूक्ष्म संयोजी रश्मियों के द्वारा अन्य सूत्रात्मा वायु की संयोजी रश्मियों को सम्यग् रूप से धारण करके दो पदार्थों को जोड़ती हैं। जैसे शरीर में अस्थियों की विभिन्न संधियां अंगों को जोड़े रखती हैं, जैसे शरीर में चर्म अपने संधानक गुण से सभी अंगों को जोड़े और बांधें रखती है अथवा सृष्टि में कोई भी पदार्थ किसी संधानक पदार्थ से जैसे परस्पर जुड़े रहते हैं, वैसे ही ये व्याहृति संज्ञक छन्द रश्मियां सृष्टि की सभी छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़ती, बांधती और धारण किये रहती हैं, जिसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया इनके द्वारा सम्यग् रूप से धारण की जाती है। यहाँ चर्म के उदाहरण से यह संकेत मिलता है कि न केवल ये रश्मियां उन छन्द रश्मियों के पदों वा पद समूहों के सिरे पर स्थित होकर उन्हें जोड़ती हैं, अपितु उन्हें आच्छादित भी किये रहती हैं। इस प्रकार ये न केवल जोड़ने वाली रस्सी के समान कार्य करती हैं,

अपितु शरीर के सभी अंगों को ढकने वाली चर्म के समान आच्छादित करने वाली भी होती हैं। इसके कारण विभिन्न छन्द रश्मियों की विविध क्रियाओं की विकृति दूर होकर न केवल वे छन्द रश्मियां सुरक्षित रहती हैं, अपितु सर्ग प्रक्रिया भी सम्यग् रूप से संचालित होती रहती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सृष्टि प्रक्रिया के चलते कभी-२ उनमें कुछ विकृतियां भी आ जाती हैं। जब **ऋक्** छन्द रश्मियों की क्रियाओं से मूल कणों तथा बड़े-२ पृथिवी आदि अप्रकाशित लोकों के निर्माण प्रक्रिया में कोई विकृति आती है, उस समय **'भूः'** छन्द रश्मि प्रकट होकर प्राण नामक प्राण रश्मियों एवं **ऋक्** छन्द रश्मियों में व्याप्त हो जाती है। इसके कारण प्राण नामक प्राण रश्मि और **ऋक्** छन्द रश्मियां सक्रिय होकर अपनी क्रियाओं की विकृति को दूर करके मूल कणों आदि पदार्थों के निर्माण की प्रक्रिया को उचित रूप प्रदान करती हैं। जब आकाश में विद्यमान यजुः रश्मियों की क्रियाएं विकृत होकर आकाश तत्त्व विकृत होने लगता है तथा इसके दुष्प्रभाव से आकाश में विभिन्न रश्मि आदि पदार्थों के आवागमन की गति और मार्ग भी विकृत होने लगते हैं, उस समय ईश्वर तत्त्व प्रेरित मन एवं **'ओम्'** छन्द रश्मि **'भुवः'** छन्द रश्मि को प्रकट करती है, जो व्यान प्राण रश्मियों एवं यजुः छन्द रश्मियों में व्याप्त होकर उनकी विकृतियों को दूर करके आकाश तत्त्व एवं उसमें होने वाले विभिन्न पदार्थों के गमनागमन कर्मों की विकृति को दूर करती है। इसी प्रकार जब सूर्यादि तेजस्वी लोकों और उसमें **साम** छन्द रश्मियों की क्रियाएं विकृत होने लगती हैं, तब सक्रिय मनस्तत्त्व **'स्वः'** छन्द रश्मियों को प्रकट करके उदान रश्मियों एवं **साम** छन्द रश्मियों में प्रक्षिप्त करता है, जिसके कारण वे रश्मियां सक्रिय होकर सभी विकृतियों से मुक्त हो जाती हैं। इस प्रकार तारों के अन्दर नाभिकीय संलयन और ऊर्जा उत्सर्जन आदि प्रक्रियाएं सम्यग् रूप से होने लगती हैं। ये **'भूः'**, **'भुवः'** और **'स्वः'** छन्द रश्मियां सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर जोड़े और बांधे रखती हैं। ये छन्द रश्मियां उन सबको आच्छादित करती हुई सुरक्षित मार्ग, गति एवं बल प्रदान करती हैं। इस कारण सृष्टि प्रक्रिया में इनकी महती भूमिका होती है।।

ॐ इति २५.७ समाप्तः ॐ

अथ २५.८ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्महावदा३ः, यदृचैव होत्रं क्रियते, यजुषाऽऽध्वर्यवं, साम्नोद्गीथं, व्यारब्धा त्रयी विद्या भवत्यथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात्।।
अयं वै यज्ञो योऽयं पवते, तस्य वाक् च मनश्च वर्तन्यौ; वाचा च हि मनसा च यज्ञो वर्तत, इयं वै वागदो मनस्तद्वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुर्वन्ति, मनसैव ब्रह्मा संस्करोति।।
ते हैके ब्रह्माण उपाकृते प्रातरनुवाके स्तोमभागाञ्जपित्वा भाषमाणा उपासते तद्धैतदुवाच ब्राह्मण उपाकृते प्रातरनुवाके ब्रह्माणं भाषमाणं दृष्ट्वाऽर्धमस्य यज्ञस्यान्तरगुरिति; तद्यथैकपात्पुरुषो यन्नेकतश्चक्रो वा रथो वर्तमानो भ्रेषं न्येत्येवमेव स यज्ञो भ्रेषं न्येति,-यज्ञस्य भ्रेषमनु यजमानो भ्रेषं न्येति।।
तस्माद् ब्रह्मोपाकृते प्रातरनुवाके वाचंयमः स्यादोपांश्वन्तर्यामयोर्होमादुपाकृतेषु पवमानेष्वोदृचोऽथ यानि स्तोत्राणि सशस्त्राण्या तेषां वषट्काराद् वाचंयम एव स्यात्; तद्यथोभयतःपात् पुरुषो यन्नुभयतश्चक्रो वा रथो वर्तमानो न रिष्यत्येवमेव स यज्ञो न रिष्यति,-यज्ञस्यारिष्टिमनु यजमानो न रिष्यति।।८।।

व्याख्यानम्- आचार्य सायण के भाष्य में 'महावदा' शब्द के अर्थ के विषय में गोविन्द स्वामी के मत को पाद-टिप्पणी के रूप में इस प्रकार दिया है-

"महच्छब्देन ब्रह्मोच्यते। ब्रह्म च वेदः। तं ये वदन्ति (अभिधीय) ते महावदाः।"

हमारी दृष्टि में यह अर्थ सर्वथा उचित है। यहाँ ग्रन्थकार ने इस पूर्वोक्त प्रसंग में कुछ वेदवेत्ताओं के प्रश्न को उपस्थित करते हुए कहा है, जैसा कि पूर्वखण्ड में लिख चुके हैं कि सृष्टि यज्ञ में ऋक् छन्द रश्मियां होता, यजुः छन्द रश्मियां अध्वर्यु, और साम छन्द रश्मियां उद्गाता का कार्य करती हैं। यहाँ होता आदि के रूप में तीनों विद्याओं (ऋक्, यजुः और साम) की विवेचना की जा चुकी है। तब प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मा का कार्य कौन करता है? यहाँ विद्या से तात्पर्य वे सभी छन्द रश्मियां हैं, जिनसे सृष्टि का निर्माण हुआ है। इस विषय में वेदवेत्ता महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है-

त्रयी वै विद्या। ऋचो यजूंषि सामानि (श.४.६.७.१),
त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि (श.१०.४.२.२२)।

इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि शैली एवं सृष्टि प्रक्रिया पर प्रभाव की दृष्टि से वैदिक छन्द तीन ही प्रकार के होते हैं। इसी कारण कुछ विद्वानों को वेद की संख्या चार (४) होने में शंका रही है। वस्तुतः अथर्ववेद चतुर्थ वेद है, ही जिसमें तीनों शैलियों के मन्त्र विद्यमान है। इस कारण वेदों को चार ही मानना चाहिये परन्तु विद्या एवं छन्द रश्मियां मुख्यतः तीन प्रकार की ही होती हैं। इन वचनों से यह भी प्रमाणित होता है कि सृष्टि के सभी उत्पन्न पदार्थ इन तीन प्रकार की छन्द रश्मियों में ही विद्यमान रहते तथा इन्हीं से ही उत्पन्न होते हैं। सृष्टि प्रक्रिया में ब्रह्मा के विषय में एक अन्य ऋषि का कथन है- "एष ह वै विद्वान्सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वङ्गिरोविद्" {अथर्ववेदविद्} (गो.पू.२.१८; ५.११)

यहाँ अथर्ववेदविद् **को ही सर्वविद् कहा है।** इससे भी प्रमाणित होता है कि अथर्ववेद में ऋक्, यजु एवं साम तीनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों का मिश्रण है। इसी कारण ग्रन्थकार ने त्रयी विद्या को ही इस सृष्टि प्रक्रिया का ब्रह्मा बतलाया है। महर्षि जैमिनी भी इससे सहमत होते हुए लिखते

हैं-

"अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति।
अनया (ऋग्यजुः सामाख्यया) त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात्।" (जै.ब्रा.१.३५८)
"नैवैषा (सुब्रह्मण्या) ऋङ् न यजुर् न साम। सर्वमिवैव सर्वमिव ह्येव ब्रह्म" (जै.ब्रा.२.८०)

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार लोक में यज्ञ का ब्रह्मा सर्ववेदवित् होना चाहिए, उसी प्रकार सृष्टि यज्ञ में भी ब्रह्मा का कार्य कोई एक प्रकार की छन्द रश्मियां नहीं कर सकती, बल्कि तीनों ही प्रकार की छन्द रश्मियां परस्पर एक-दूसरे के साथ संगत होकर ब्रह्मा का कार्य करती हैं अर्थात् समस्त सर्ग प्रक्रिया को संचालित व नियन्त्रित करती हुई सर्वत्र व्याप्त होती हैं। इन तीनों प्रकार की छन्द रश्मियों को परस्पर संश्लिष्ट करने का कार्य 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' रूप छन्द रश्मियां करती हैं। यह बात हम पूर्वखण्ड में लिख चुके हैं। यहाँ एक अन्य ऋषि की भी साक्षी इस प्रकार है-

"एवमेवैता (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयस्त्रय्यै विद्यायै संश्लेषण्यः।" (कौ.ब्रा.६.१२)

इन व्याहृतियों के विषय में महर्षि जैमिनी का कथन है- "भूर्भुवस्स्वरिति सा त्रयी विद्या" (जै.उ.२.३.३.७)।

इस विषय में हमारा मत यह है कि ये व्याहृतिरूप छन्द रश्मियां त्रयी विद्या संज्ञक तीनों प्रकार की छन्द रश्मियों को परस्पर बांधती और जोड़ती हैं। वे न केवल उनको पृथक्-२ भी बांधे रखती हैं, अपितु एक-२ छन्द रश्मि को भी बांधे रखती हैं। इस कारण इनके अभाव में त्रयी विद्या का अस्तित्त्व रह ही नहीं सकता। इसी बात को दृष्टिगत रखकर महर्षि जैमिनी ने इन व्याहृति रश्मियों को ही त्रयी विद्या कहा है और इसी कारण पूर्वखण्ड में त्रयी विद्या की शुक्ररूप व्याहृति छन्द रश्मियों को ब्रह्मा कहा है। **इस प्रकार त्रयी विद्या के ब्रह्मा होने और व्याहृतियों के ब्रह्मा होने में अन्तर्विरोध नहीं है, बल्कि पारस्परिक समानता ही है।।**

अब इसी प्रंसग को अन्य प्रकार से विस्तार देते हुए कहते हैं कि इस सृष्टि में जो भी वायु वह रहा है अर्थात् जो भी प्राण एवं छन्द रश्मियां विद्यमान हैं, वे यज्ञरूप ही हैं। इसका आशय यह है कि सम्पूर्ण सर्गयज्ञ इन छन्द एवं प्राण रश्मियों के प्रवाह एवं मेल से ही उत्पन्न होकर सतत गतिशील है। सृष्टि का उत्पन्न प्रत्येक पदार्थ न केवल सतत गतिशील है, अपितु वह सतत परिवर्तनशील भी है। {वर्तनी = गमनागमन सत्क्रिया......वर्त्तते यया क्रियया सा (म.द.ऋ.भा.१.५३.८)}

इस सर्ग यज्ञ में विद्यमान सभी रश्मियों के गमनागमन कर्मों व मार्गों का निर्धारण और संचालन मनस्तत्त्व एवं 'ओम्' छन्द रश्मियों द्वारा होता है। इसके साथ ही ये दोनों सभी छन्द रश्मियों को बल और तेज प्रदान करते हुए उन रश्मियों के वाहक बनकर उनका मार्ग भी बनते हैं अर्थात् ये दोनों तत्त्व ही विभिन्न प्राण और छन्द रश्मियों के प्रेरक, संचालक और वाहन भी हैं, साथ ही ये मार्ग भी हैं। इन दोनों में से 'ओम्' छन्द रश्मि 'इयम्' अर्थात् सर्गयज्ञ में प्रत्यक्ष भूमिका निभाती है, जबकि मनस्तत्त्व की भूमिका परोक्ष होती है। इसका आशय यह है कि 'ओम्' छन्द रश्मि अन्य सभी सूक्ष्म छन्द वा प्राणादि रश्मियों से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है और उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित भी करती है परन्तु मनस्तत्त्व की प्रेरणा और संगति परोक्ष ही होती है। इस प्रकार इस 'ओम्' छन्द रश्मि से संगत त्रयी विद्या अर्थात् तीनों प्रकार की छन्द रश्मियां और उनकी सारभूत व्याहृतिरूप सूक्ष्म रश्मियों रूप इस सृष्टि का एक {पक्षः = पणायति स्तौति व्यवहरति वा येन यत्र वा स पक्ष; मासार्द्धः पार्श्वभागः साध्यविरोधः समूहो बलं मित्रसहायो वा। (उ.को.३.६६)} पक्ष संस्कृत होता है। इसका आशय यह है कि इन 'ओम्' छन्द रश्मियों के द्वारा संश्लिष्ट व्याहृतिरूप तीन छन्द रश्मियों की सहायता से ही सभी छन्द एवं प्राणादि रश्मियां तथा इनसे उत्पन्न सम्पूर्ण सृष्टि के सभी प्रकार के गुण, क्रिया और बल सम्पादित होते हैं तथा इन्हीं के कारण ही सम्पूर्ण सृष्टि के संघातों की उत्पत्ति होती है। इसी से इन व्याहृति छन्द रश्मियों को ब्रह्मा कहा जाता है। इन सूक्ष्म रश्मियों का 'ओम्' छन्द रश्मियों के साथ संगत होना अनिवार्य होता है। इसके अतिरिक्त महर्षि कहते हैं कि वे ब्रह्मा संज्ञक तीनों व्याहृति छन्द रश्मियां परोक्ष रूप से कार्य करने वाले मनस्तत्त्व के सहयोग से ही इस सृष्टि को उत्पन्न व संचालित कर पाती हैं। इस विषय में ऋषियों का कथन है-

"मनसा वा अग्रे कीर्तयति तद् वाचा वदति।।" (शां.आ.७.२)
"मनसा हि वाग्धृता" (तै.सं.६.१.७.२; काठ.२४.३)
"मनो वै पूर्वमथ वाक्" (जै.ब्रा.१.१२८,३२६; ३.१२; तु.जै.ब्रा.२.६)

इन वचनों से भी प्रमाणित होता है कि इस सृष्टि की सभी सूक्ष्म से स्थूल तक क्रियाओं में सर्वप्रथम प्रेरणा मन की ही होती है लेकिन हम यह भी पूर्व में लिख चुके हैं कि मनस्तत्त्व भी 'ओम्' छन्द रश्मि के योग से ही सक्रिय होता है, फिर यह सक्रिय मनस्तत्त्व वाक् अर्थात् व्याहृतिरूप सूक्ष्म रश्मियों को प्रेरित करके सभी छन्द एवं प्राणादि रश्मियों को धारण व सक्रिय करता है। यह द्वितीय पक्ष कहाता है।।

{जपः = ब्रह्म वै जपः (कौ.ब्रा.३.७)। उपाकृतः = (उपा+कृ = सौंपना, प्रारम्भिक संस्कार संपन्न करना, आरम्भ करना, उठा लाना - आप्टे कोश)} पूर्व प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए महर्षि लिखते हैं कि प्रातरनुवाक अर्थात् सृष्टि की पूर्वोक्त प्रारम्भिक स्थिति में जब ब्रह्मा संज्ञक कोई व्याहृति छन्द रश्मि अपना कार्य प्रारम्भ करते समय स्तोम भाग संज्ञक छन्द रश्मियों को ब्रह्मयुक्त करके अर्थात् उन्हें बलवती बनाकर मनस्तत्त्व के अन्दर ही अभिव्यक्त होने के उपरान्त ही सहसा प्रकाशित होती हुई अतिसक्रिय होकर स्तोमभाग छन्द रश्मियों के निकट स्थित हो जाती हैं। उन छन्द रश्मियों की संगतीकरण की क्रियाएं "अन्तरगुः" अर्थात् भिन्न प्रकार की वाग् रश्मियों के रूप में प्रकट होती हैं। वे नवीन प्रकट वाग् रश्मियां सर्ग प्रक्रिया को धारण वा संचालित करने में असमर्थ हो जाती हैं। यहाँ एक ब्राह्मण द्वारा ब्रह्मा को देखकर यह बात कहने की ग्रन्थकार की अपनी एक शैली है। हमारी दृष्टि में इस संवाद का भी अपना एक विज्ञान है, जो इस प्रकार है कि जब कोई व्याहृति संज्ञक छन्द रश्मि उपर्युक्त प्रकार से अधिक उत्तेजित होकर सर्ग प्रक्रिया की साधिका बनने के स्थान पर बाधा ही बन जाती है, तब अन्य व्याहृति छन्द रश्मि उस अधिक उत्तेजित व्याहृति छन्द रश्मि को अपनी ओर आकर्षित करती है वा करने का प्रयत्न करती हैं। ऐसा होने पर भी वे दोनों व्याहृति छन्द रश्मियां सर्ग प्रक्रिया संचालन के लिए सम्यग् सामंजस्य उत्पन्न न कर सकने के कारण सर्ग प्रक्रिया को संचालित करने में समर्थ नहीं हो पाती हैं, ऐसा हमारा मत है। स्तोमभाग मन्त्र ताण्ड्य ब्राह्मण में निम्न प्रकार दर्शाए हैं-

(१) रश्मिरसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(२) प्रेतिरसि धर्म्मणे त्वा धर्म्मं जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(३) अन्वितिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व सविपृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(४) सन्धिरस्यन्तरिक्षाय त्वांतरिक्षं जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(५) प्रतिधिरसि पृथिव्यै त्वा पृथिवीञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(६) विष्टम्भोसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(७) प्राचोस्यहे त्वाहर्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(८) अन्वासि रात्रौ त्वा रात्रिञ्जिन्व सवितृप्रसविताबृहस्पतये स्तुत।।
(९) उशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसून् जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१०) प्रकेतोसि रुद्रेभ्यस्त्वा रुद्राञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(११) सुदीतिरस्यादित्येभ्यस्त्वादित्याञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१२) ओजोसि पितृभ्यस्त्वा पितृञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।। (तां.१.६.१-१२)
(१३) तन्तुरसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजा जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१४) रेवदस्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्ज्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१५) पृतनाषाड़सि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१६) अभिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्ततये स्तुत।।
(१७) अधिपतिरसि प्राणाय त्वा प्राणञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१८) धरुणोस्यपानाय त्वाऽपानञ्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(१९) ससर्पोसि चक्षुषे त्वा चक्षुर्जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(२०) वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्व सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(२१) त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा, सवृदसि सवृते त्वा, प्रवृदसि प्रवृते त्वानुवृदस्यनुवृते त्वा सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(२२) निरोहासि निरोहाय त्वा सरोहोसि सरोहाय त्वा, प्रोरोहोसि प्ररोहाय त्वानुरोहोस्यऽनुरोहाय त्वा, सवितप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।
(२३) वसुकोसि वस्यष्टिरसि वेषश्रीरसि सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।।

(२४) आक्रमोस्याक्रमाय त्वा, संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्युत्क्रमायत्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वा सवितृप्रसूताबृहस्पतये स्तुत।। (तां.१.१०.१-१२)

इन २४ मन्त्रों को ही स्तोमभाग मन्त्र कहा जाता है, आचार्य सायण ने ऐसा स्वीकार किया है। इन स्तोम भाग रश्मियों के विषय में ऋषियों का कथन है-

"प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः स्तोमभागैर् एवासृजत, यदेत उपधीयन्ते, प्रजननाय" (काठ.२१.२)

"बृहस्पतिर्वा एतां यज्ञस्य प्रतिष्ठामपश्यद्यत् स्तोमभागाः" (तै.सं.५.३.५.५)

"यज्ञेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत, ताः स्तोमभागैरेवासृजत" (तै.सं.५.३.५.४)

इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि ये २४ मन्त्र, जो किसी वेद संहिता में उपलब्ध नहीं है, सर्ग यज्ञ को प्रतिष्ठित और प्रारम्भ करने में महती भूमिका निभाते हैं। इन छन्द रश्मियों में गायत्री छन्द की प्रधानता है। इस कारण ये तीव्र तेज और बल से सम्पन्न होती हैं। इन छन्द रश्मियों की उत्पत्ति 'जप' अर्थात् व्यापक रूप से मनस्तत्त्व के अन्दर ही प्रायः कम तीव्रता के साथ होती है। यदि ये अति तीव्रता के साथ प्रारम्भ में ही उत्पन्न हों, तो सम्पूर्ण सृष्टि यज्ञ उसी प्रकार विकृत वा भ्रष्ट हो जाता है, जैसे लोक में एक पैर से चलने वाला मनुष्य अथवा एक पहिये पर चलने वाला रथ भ्रष्ट हो जाता है। उस सर्ग यज्ञ के भ्रष्ट हो जाने के साथ-२ उसमें भाग लेने वाली विभिन्न छन्दादि रश्मियां भी भ्रान्त हो जाती हैं। ये छन्द रश्मियां गद्यात्मक होने से 'यजुः' छन्द रश्मियों जैसा प्रभाव दर्शाती हैं। इससे संकेत मिलता है कि ये छन्द रश्मियां आकाश तत्त्व की उत्पत्ति से विशेष सम्बन्धित होती हैं। इस कारण इनका 'भुवः' छन्द रश्मि के साथ विशेष सम्बन्ध होता है किंवा ये छन्द रश्मियां 'भुवः' छन्द रश्मि से ही उत्पन्न होती हैं। ये छन्द रश्मियां अपेक्षाकृत कम उत्तेजित अवस्था में उत्पन्न होने के कारण आकाश तत्त्व की उत्पत्ति में विशेष सहायक होती हैं। इन स्तोमभाग मन्त्रों को डॉ. सुधाकर मालवीय ने भी अपने परिशिष्ट में 'यजुः' छन्द रश्मियों के समान माना है किन्तु ये छन्द रश्मियां ताण्ड्य महाब्राह्मण, जो सामवेद का ब्राह्मण है, में विद्यमान होने के कारण इनका सम्बन्ध निश्चित ही आदित्य लोक से भी है। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य का कथन है- "आदित्यः स्तोमभागा (श.८.५.४.२)"। आदित्य के साथ इनका सम्बन्ध होने से इनकी उत्पत्ति का सम्बन्ध 'स्वः' छन्द रश्मि से भी निःसन्देह सिद्ध होती है।।

{अन्तर्यामः = अपानोऽन्तर्यामः (काठ.२७.३; क.४२.३), उदान एवाऽन्तर्यामः (श.४.१.१.१)। उपांशुः = प्राण उपांशुः (क.४१.८), यदुपांशु स प्राणः.....तत् (उपांशु) तिर इव, तिर इव ह्यशरीरमशरीरो हि प्राणः। (ऐ.आ.२.३.६)} उपर्युक्त कारण से महर्षि लिखते हैं कि सृष्टि के प्राथमिक चरणों में तीनों व्याहृति संज्ञक छन्द रश्मियां, जो पूर्वोक्तानुसार ब्रह्मा का कार्य करती हैं, अपना कार्यारम्भ करते समय विभिन्न छन्द रश्मियों को नियन्त्रित वा अनुत्तेजित अवस्था में ही मनस्तत्त्व के अन्दर ही अभिव्यक्त करती हैं। पूर्वकण्डिका में स्तोमभाग संज्ञक कुल २४ छन्द रश्मियों की उत्पत्ति इसी प्रकार बतलायी है। इसके पश्चात् कुछ स्थितियों में इस प्रकार से उत्पत्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'उपांशु' और 'अन्तर्याम' अर्थात् सबका तारक एवं अतिव्यापक प्राण तथा उदान एवं अपान तत्त्व जब परस्पर संगत होते हैं, उस समय उनकी पूर्ण संगति तक उत्पन्न ऋचाएं उत्तेजित अवस्था को प्राप्त नहीं करती हैं। हमारे मत में ऐसा करते समय पूर्ण उत्तेजित अवस्था प्राप्त करने से उन छन्द रश्मियों की प्राण, अपान एवं उदान रश्मियों के साथ संगति अनुकूलता से नहीं हो पायेगी, जिसके कारण वे छन्द रश्मियां इन प्राण रश्मियों के मेल से विभिन्न सृजन प्रक्रियाओं को उत्पन्न व संचालित नहीं कर पायेंगी। इसके अतिरिक्त दूसरी परिस्थिति बतलाये हुए महर्षि {ओदृचः = उत्तमा समाप्तिकालीना येयमृगस्ति, तत्समाप्तिपर्यन्तम् (सायणभाष्य)} लिखते हैं कि बहिष्पवमान (इसके विषय में २.२२.१ द्रष्टव्य है), माध्यन्दिन एवं आर्भव पवमानों (इनके विषय में ३.१४.३ द्रष्टव्य है) के रूप में वर्णित विभिन्न छन्द रश्मियों और उनके साथ संगत होने वाली विभिन्न शस्त्र संज्ञक छन्द रश्मियों के समुचितरूपेण प्रकाशित और सक्रिय होने तक पूर्वोक्त स्तोमभाग छन्द रश्मियां पूर्वोक्तवत् अनुत्तेजित अवस्था में ही विद्यमान रहती हैं। इस अवस्था में ही वे सम्यग् रूप से नियन्त्रित रहती हैं, ऐसा होने पर सर्ग प्रक्रिया और उसमें भाग लेने वाली विभिन्न छन्दादि रश्मियां उसी प्रकार भ्रान्त और भ्रष्ट नहीं होती हैं, जिस प्रकार दोनों पैरों से चलने वाला व्यक्ति अथवा दोनों पहियों से चलने वाला रथ अपने मार्ग से भ्रष्ट नहीं होते हैं।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- इस सृष्टि में मन एवं **'ओम्'** छन्द रश्मि से प्रेरित **'भूः'**, **'भुवः'** और **'स्वः'** छन्द रश्मियों से नियन्त्रित व संगत विभिन्न प्रकार की छन्द रश्मियों के पारस्परिक समन्वय से ही सभी प्रकार की क्रियाएं उत्पन्न होकर नाना प्रकार के पदार्थों का निर्माण होता है। वे सभी छन्द रश्मियां सामूहिक रूप से इस सृष्टि का संचालन करती हैं और इन सबको परस्पर संगत और समन्वित रखने में **'भूः'**, **'भुवः'**, **'स्वः'** छन्द रश्मियों की महती भूमिका होती है। इस कारण इन तीन छन्द रश्मियों को सृष्टि की नियन्त्री माना जाता है। इस सृष्टि में सभी छन्द रश्मियां सतत संगत होती हुई गतिशील और परिवर्तनशील होती रहती हैं। इनके गमन और आगमन का पूर्ण संचालन मूल रूप से **'ओम्'** छन्द रश्मि और मनस्तत्त्व के ऊपर निर्भर होता है, जिसमें **'ओम्'** छन्द रश्मि की भूमिका प्रत्यक्ष और मनस्तत्त्व की भूमिका परोक्ष होती है। ये दोनों ही मिलकर सृष्टि की सभी क्रियाओं और पदार्थों को उत्पन्न व संचालित करते है। सृष्टि के प्रारम्भिक चरण में **'भूः'**, **'भुवः'**, **'स्वः'** छन्द रश्मियों के अतिरिक्त २४ तेजस्विनी गायत्री छन्द प्रधानता वाली रश्मियां उत्पन्न होती हैं, जिनको व्याख्यान भाग में दर्शाया गया है। इन छन्द रश्मियों को **'भूः'**, **'भुवः'** आदि छन्द रश्मियां कम तीव्रता के साथ ही उत्पन्न व सक्रिय करती हैं। यदि ये उत्पन्न होते ही तीव्रता से सक्रिय हो जाएं, तो वे अन्य छन्द रश्मियों के साथ संगत होकर सृष्टि प्रक्रिया को संचारित करने में असमर्थ हो जाती हैं। इन २४ छन्द रश्मियों के सम्यक् क्रियाशील होने पर ही सृष्टि प्रक्रिया अग्रसर होती है। इन छन्द रश्मियों का **आकाश एवं क्वान्टाज् की उत्पत्ति में विशेष योगदान रहता है**। ये २४ छन्द रश्मियां प्राण, अपान एवं उदान रश्मियों के परस्पर संगत होने तक कम तीव्रता की अवस्था में ही रहती हैं, अन्यथा उनका प्राणादि से समुचित संयोग न हो पाने के कारण सृष्टि प्रक्रिया अवरुद्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त व्याख्यान भाग में दर्शायी हुई अन्य छन्द रश्मियों के समुचित रूप से प्रकाशित और सक्रिय होने तक भी ये २४ छन्द रश्मियां मनस्तत्त्व के अन्दर कम तीव्रता के साथ ही विद्यमान रहती हैं।।

इति २५.८ समाप्तः

अथ २५.९ प्रारभ्यते

तमसो मा ज्योतिर्गमय

१. तदाहुर्यद् ग्रहान्मेऽग्रहीत् प्राचारीन्म आहुतीर्मेऽहौषीदित्यध्वर्यवे दक्षिणा नीयन्त उदगासीन्म इत्युद्गात्रेऽन्ववोचन् मेऽशंसीन्मेऽयाक्षीन् म इति होत्रे, किंस्विदेव चक्रुषे ब्रह्मणे दक्षिणा नीयन्तेऽकृत्वाऽऽहोस्विदेव हरता इति।।
यज्ञस्य हैष भिषग् यद् ब्रह्मा; यज्ञायैव तद्भेषजं कृत्वा हरति।।
अथो यद् भूयिष्ठेनैव ब्रह्मणा छन्दसां रसेनाऽऽर्त्विज्यं करोति यद् ब्रह्मा; तस्माद् ब्रह्माऽर्धभाग्घ वा एष इतरेषामृत्विजामग्र आस यद् ब्रह्माऽर्धमेव ब्रह्मण आसार्धमितरेषामृत्विजाम्।।
तस्माद् यदि यज्ञ ऋक्त आर्तिः स्याद्, यदि यजुष्टो यदि सामतो यद्यविज्ञाता सर्वव्यापद्वा, ब्रह्मण एव निवेदयन्ते, तस्माद् यदि यज्ञ ऋक्त आर्तिर्भवति, भूरिति ब्रह्मा गार्हपत्ये जुहुयाद्; यदि यजुष्टो भुव इत्याग्नीध्रीयेऽन्वाहार्यपचने वा हविर्यज्ञेषु; यदि सामतः स्वरित्याहवनीये; यद्यविज्ञाता सर्वव्यापद्वा भूर्भुवः स्वरिति सर्वा अनुद्रुत्याऽऽहवनीय एव जुहुयात्।।
स प्रस्तोतोपाकृते स्तोत्र आह ब्रह्मन्स्तोष्यामः प्रशास्तरिति, स भूरिति ब्रह्मा प्रातःसवने ब्रूयादिन्द्रवन्तः स्तुध्वमिति भुव इति माध्यंदिने सवने ब्रूयाद् इन्द्रवन्तः स्तुध्वमिति; स्वरिति तृतीयसवने ब्रूयाद् इन्द्रवन्तः स्तुध्वमिति; भूर्भुवः स्वरित्युक्थ्ये वाऽतिरात्रे वा ब्रूयाद् इन्द्रवन्तः स्तुध्वमिति।।
स यदाहेन्द्रवन्तः स्तुध्वमित्यैन्द्रो वै यज्ञ, इन्द्रो यज्ञस्य देवता, सेन्द्रमेव तदुद्गीथं करोतीन्द्रान्मागात्, इन्द्रवन्तः स्तुध्वमित्येवैनांस्तदाह तदाह।।६।।

व्याख्यानम्- पूर्व खण्ड में वर्णित सृष्टि यज्ञ के विभिन्न ऋत्विजों अर्थात् होता, अध्वर्यु, उद्गाता एवं ब्रह्मा के कार्यों की चर्चा करते हुए एक प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि अध्वर्यु अर्थात् 'यजुः' प्राण रश्मियां अन्तरिक्ष में विभिन्न बलों को ग्रहण करके उन बलों तथा बलयुक्त रश्मि वा परमाणु आदि पदार्थों को प्रकृष्ट गति प्रदान करती हैं। इसके साथ ही ये रश्मियां ही मास आदि रश्मियों की हवियों को ग्रहण करके विभिन्न छन्द रश्मियों को परस्पर संगत भी करती हैं। इन कार्यों के द्वारा ये 'यजुः' रश्मियां सृष्टि यज्ञ को दक्षता अर्थात् बल और सक्रियता प्रदान करती हैं। उद्गाता संज्ञक साम छन्द रश्मियां विभिन्न छन्द रश्मियों को उत्कृष्ट रूप से प्रकाशित करती हैं। इससे वे भी सृष्टि यज्ञ को दक्षता अर्थात् बल और सक्रियता प्रदान करती हैं। उधर होता संज्ञक ऋग् रश्मियां सभी छन्द रश्मियों को अपने बल के द्वारा प्रेरणा और बल प्रदान करके उन्हें तीक्ष्ण एवं संगमनीय बनाती हैं। इस प्रकार से वे भी सृष्टि यज्ञ को दक्षता अर्थात् बल और सक्रियता प्रदान करती हैं। वे स्वयं भी परस्पर संगत होकर हविरूप धारण करके सर्ग प्रक्रिया का मुख्य भाग बनती हैं। इन तीनों ही प्रकार की छन्द रश्मियों की इस सृष्टि में भूमिका बतलाते हुए प्रश्न यह उठाया जाता है कि ब्रह्मा संज्ञक 'भूः', 'भुवः', 'स्वः' छन्द रश्मियां इस सृष्टि प्रक्रिया को दक्षता प्रदान करने अर्थात् सबल और सक्रिय बनाने के लिए क्या काम करती हैं? ये बिना कोई कार्य किये कैसे सृष्टि को दक्षता प्रदान कर सकती हैं?।।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं कि सृष्टि यज्ञ की ब्रह्मा रूप व्याहृति संज्ञक तीनों छन्द रश्मियां इस सृष्टि प्रक्रिया की चिकित्सक रूप होती हैं, क्योंकि ये सृष्टि प्रक्रिया में आयी हर विकृति को दूर करने में सक्षम होती हैं। ये सृष्टि की प्रत्येक प्रक्रिया को नियन्त्रित और प्रेरित करती हुई निरापद रूप से संचालित करती हैं। संयोगवश यदि कहीं कोई त्रुटि हो जाती है, तो उसे ये ही रश्मियां दूर करती हैं। इस कारण यह कहना कि ब्रह्मा रूप ये छन्द रश्मियां सृष्टि में कोई कार्य नहीं करती, उचित नहीं है।।

यहाँ ब्रह्मा रूप व्याहृति संज्ञक छन्द रश्मियों की महत्ता वतलाते हुए कहते हैं कि ये छन्द रश्मियां सभी प्रकार की छन्द रश्मियों {अर्धम् = हरतेर्विपरीतात्, धारयतेर्वा स्याद् उद्धृतं भवति, ऋध्नोतेर्वा स्यात्, ऋद्धतमो विभागः (नि.३.२०)} की रसरूप होती हैं, साथ ही ये {रसः = रस ओमुकारः (जै.ब्रा.२.७८)} सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वमूल रसरूप 'ओम्' छन्द रश्मि से प्रत्यक्ष संगत होकर अपने सभी यजन कार्यों को सम्पन्न करती हैं। **यह 'ओम्' छन्द रश्मि ही सर्वोपरि ब्रह्मरूप होती है। उसके प्रत्यक्ष मेल के कारण ही तीनों व्याहृति छन्द रश्मियां ब्रह्मा कहलाती हैं और** इस कारण ही वे अपनी वल और क्रियाओं को सभी प्रकार की छन्द रश्मियों में फैलाती हुई उनसे नाना कार्य कराती हैं। इस कारण इस सृष्टि के सम्पूर्ण वल का आधा भाग मानो इन्हीं छन्द रश्मियों का होता है। इसके साथ ही 'अर्द्धभाक्' से यह भी संकेत मिलता है कि ये ब्रह्मा संज्ञक रश्मियां सभी छन्द रश्मियों को धारण और समृद्ध करती हुई उन सवका ही सेवन करती हैं अर्थात् उनके साथ सदैव संगत रहती हैं। इसके पश्चात् ही ऋग्, यजुः, साम आदि छन्द रश्मियां सृजन प्रक्रिया को आगे वढ़ाती हैं। इस प्रकार इस सृष्टि में मानो आधी भूमिका व्याहृति संज्ञक छन्द रश्मियों की होती है और शेष भूमिका ऋक्, यजुः, साम छन्द रश्मियों की होती है। यहाँ 'ओम्' छन्द रश्मि की भूमिका व्याहृति संज्ञक छन्द रश्मियों के साथ माननी चाहिए।।

इस कण्डिका का व्याख्यान ५.३२.३ की कण्डिका "ते देवा अब्रुवन् प्रजापतिं...." के समान विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं। यहाँ इस प्रकरण की पुनरुक्ति इस कारण की गयी है, क्योंकि यहाँ ब्रह्मा संज्ञक छन्द रश्मियों की महत्ता का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। कुछ भेद यह भी है कि वहां सृष्टि यज्ञ की विभिन्न विकृतियों को दूर करने, विशेषकर विकृतियां उत्पन्न न हो पाएं, ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए मन एवं वाक् तत्त्व का मिथुन किंवा सक्रिय मनस्तत्त्व ही व्याहृति छन्द रश्मियों के माध्यम से विकृति निवारक विभिन्न प्रक्रियाओं को सम्पन्न कराता है, जवकि इस कण्डिका में मुख्य प्रयोजन यह है कि ऋग्, यजुः, साम रश्मियों की नाना क्रियाओं में जव कोई विकृति आ भी जाती है, तो ये छन्द रश्मियां ही व्याहृतिसंज्ञक ब्रह्मा रूप छन्द रश्मियों से विशेष संगत होकर उन्हें इस विकृति को दूर करने के लिए प्रेरित करती हैं। क्रियाएं दोनों ही परिस्थितियों में समान होती हैं। वहाँ मूल से प्रेरणा होती है और यहाँ व्याहृति छन्द रश्मियों की कार्यरूप ऋग्, यजुः, और साम छन्द रश्मियों की ओर से प्रेरणा होती है। यही भेद है। जैसे लोक में किसी पीड़ित व्यक्ति की सहायता के लिए उसके पिता को उसका भी पिता प्रेरित करे, यह प्रथम स्थिति है, जवकि वह पीड़ित व्यक्ति स्वयं अपने पिता से सहायता की विनती (प्रेरणा) करे, यह द्वितीय स्थिति है, जिसे इस कण्डिका में दर्शाया गया है।।

{प्रस्तोता = अपानः प्रस्तोता (कौ.ब्रा.१७.७; गो.उ.५.४)} ब्रह्मा संज्ञक व्याहृति छन्द रश्मियों के कार्यारम्भ होने तथा पूर्वोक्त स्तोमभाग संज्ञक छन्द रश्मियों के प्रकाशित होने से ठीक पूर्व प्रस्तोता संज्ञक अपान प्राण से 'ब्रह्मन्स्तोष्यामः प्रशास्तः' इस प्राजापत्या गायत्री छन्द रश्मि की उत्पत्ति होती है। इसके कारण सवको प्रकाशित करने वाली व्याहृति छन्द रश्मियां पूर्वोक्त स्तोमभाग छन्द रश्मियों को उत्पन्न करने लगती हैं। उस समय 'भूः' छन्द रश्मि सर्वप्रथम स्तोमभाग मन्त्र में विद्यमान गायत्री छन्द रश्मियों के अन्दर "इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्" याजुषी छन्द रश्मि को उत्पन्न व प्रक्षिप्त करती है। इसके प्रभाव से वे स्तोमभाग संज्ञक गायत्री रश्मियां इन्द्र तत्त्व से युक्त होती हुई प्रकाशित वा तीव्र होने लगती हैं। यहाँ इन्द्र तत्त्व का अर्थ प्राण नामक प्राण रश्मि है। इसी कारण महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है- "प्राण एवेन्द्रः" (श.१२.९.१.१४)। तदुपरान्त 'भुवः' छन्द रश्मि माध्यंन्दिन सवन अर्थात् स्तोमभाग मन्त्रों में विद्यमान त्रिष्टुप् छन्द रश्मि के अन्दर "इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्" इस याजुषी गायत्री छन्द रश्मि को प्रक्षिप्त करती है। इसके कारण वह त्रिष्टुप् छन्द रश्मि इन्द्र तत्त्व अर्थात् अपान प्राण से युक्त होकर प्रकाशित वा तीव्र होने लगती है। यहाँ इन्द्र तत्त्व का अर्थ अपान रश्मि है। इसी कारण महर्षि तित्तिर का कथन है-

"ऐन्द्रोऽपानः" (तै.सं.६.३.११.२)। तदुपरान्त 'स्वः' छन्द रश्मि तृतीय सवन अर्थात् स्तोम मन्त्रों में विद्यमान जगती छन्द रश्मि के अन्दर "इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्" इस याजुषी गायत्री छन्द रश्मि को प्रक्षिप्त करती है। यहाँ इन्द्र का अर्थ व्यान प्राण सिद्ध होता है, क्योंकि व्यान के सम्बन्ध में ऋषियों का कथन है- "इन्द्रियं वै व्यानः" (काठ.२७.३; क.४२.३)। 'इन्द्र' शब्द के सम्बन्ध के अतिरिक्त भी 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः' छन्द रश्मियों का क्रमशः प्राण, अपान एवं व्यान रश्मियों से साक्षात् सम्बन्ध है, यह सर्वविदित तथ्य है। इसके पश्चात् 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः' तीनों रश्मियां मिलकर उक्थ्य और अतिरात्र {उक्थ्यम् = आत्मा यज्ञस्योक्थ्यः (काठ.२७.१०), पशव उक्थ्यानि (कौ.ब्रा.२१.५)। अतिरात्रः = प्राणो वै पूर्वोऽतिरात्रोऽपान उत्तरः (काठ.३४.८), स कृत्स्नो विश्वजिद्योऽतिरात्रः (कौ.ब्रा.२५.१४), (विश्वजित् = सर्वं विश्वजित् - कौ.ब्रा.२५.१४)} अर्थात् सूत्रात्मा वायु से सम्पृक्त सभी छन्द रश्मियों तथा सभी प्राण रश्मियों में "इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्" याजुषी गायत्री छन्द रश्मि को प्रक्षिप्त करती हैं। यहाँ 'इन्द्र' शब्द का अर्थ वाक् तत्त्व है, इसके कारण ये तीनों व्याहृति छन्द रश्मियां सभी प्राण और छन्दादि रश्मियों के अन्दर वाक् तत्त्व अर्थात् 'ओम्' छन्द रश्मि को प्रक्षिप्त करके उन सभी को सक्रिय बनाती हैं, जिसके कारण इन व्याहृतियों के प्रभाव से सभी प्रकार की रश्मियां सक्रिय और बलवती होकर सर्ग प्रक्रिया को समृद्ध करती हैं।।

उपर्युक्त प्रकरण में "इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्" इस याजुषी छन्द रश्मि की बार-२ प्रत्येक चरण में उत्पत्ति होती है, जिसके कारण इन्द्र संज्ञक नाना प्रकार के उपर्युक्त पदार्थ प्रकाशित और सक्रिय होते हैं। वस्तुतः यह सृष्टि ही इन्द्र तत्त्व का कार्य है। इन प्राणादि रश्मियों वा 'ओम्' छन्द रश्मि से लेकर {इन्द्रः = ओमितीन्द्रः (जै.उ.१.२.२.२)} स्थूल इन्द्र तत्त्व तक सभी बलरूप ही हैं। इसी कारण ऋषियों का कथन है- "इन्द्रो बलं बलपतिः" (श.११.४.३.१२; तै.ब्रा.२.५.७.४) इसी कारण इन्द्र तत्त्व को सृष्टि यज्ञ का देवता अर्थात् प्रकाशक और कर्त्ता कहा है। वे व्याहृति छन्द रश्मियां इन्द्र नामक उपर्युक्त सभी पदार्थों को उत्कृष्ट रूप से प्रकाशित करती हैं। वे विभिन्न छन्दादि रश्मियों को इन्द्र संज्ञक पदार्थों से पृथक् नहीं करती हैं। इसी कारण "इन्द्रवन्तः स्तुध्वम्" की बार-२ आवृत्ति होती है।।

वैज्ञानिक भाष्यसार- सम्पूर्ण सृष्टि प्रक्रिया में भाग लेने वाली विभिन्न छन्द रश्मियों में जब कभी भी कोई विकृति वा दुर्बलता आती है, तब **'भूः', 'भुवः', 'स्वः'** छन्द रश्मियां **'ओम्'** छन्द रश्मि के द्वारा बल प्राप्त करके तत्काल दूर करती हैं। यह **'ओम्' छन्द रश्मि इस सृष्टि की सर्वोच्च नियंत्रक छन्द रश्मि है।** सम्पूर्ण सृष्टि में जितने प्रकार के बल विद्यमान हैं, उन सबका जड़ मूल कारण ये चार सूक्ष्म छन्द रश्मियां ही हैं। विभिन्न छन्द रश्मियों के दुर्बल होने पर वे छन्द रश्मियां स्वयं ही इन चार सूक्ष्म छन्द रश्मियों को अपनी सहायता के लिए प्रेरित करती हैं। सृष्टि के प्रारम्भिक काल में उत्पन्न पूर्वोक्त गायत्री प्रधान २४ छन्द रश्मियों के अन्दर ये सूक्ष्म छन्द रश्मियां कुछ अन्य लघु रश्मियों को उत्पन्न करके प्राण, अपान, व्यान, एवं सूत्रात्मा वायु के साथ संगत कर उन्हें बलयुक्त करती हैं। **इसके साथ ही सूक्ष्म विद्युत् का प्रादुर्भाव हो जाता है।।**

ॐ इति २५.९ समाप्तः ॐ

ॐ इति पञ्चविंशोऽध्यायः समाप्तः ॐ

इति "ऐतरेयब्राह्मणे" पञ्चमपञ्चिका समाप्ता।।५।।

इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की पांचवीं पञ्चिका का वैज्ञानिक व्याख्यान पूर्ण हुआ।।५।।

इति परब्रह्मणः सच्चिदानन्देश्वरस्याऽनुपमकृपाभाजेन, प्रखर वेदोद्धारकस्य परिव्राजकाचार्यप्रवरस्य श्रीमन्महर्षिदयानन्दसरस्वतिनः प्रवलार्यानुयायिवंशप्रवर्त्तकस्य भारतवर्षस्योत्तरप्रदेशस्थ-हाथरसमण्डलान्तर्गतस्य ऐंहनग्रामाभिजनस्य सिसोदिया-कुल-वैजपायेणगोत्रोत्पन्नस्य तत्रभवतः श्रीमतो देवीसिंहस्य प्रपौत्रेण, श्रीघनश्यामसिंहस्य पौत्रेण श्रीमतोः ओम्वतीदेवीन्द्रपालसिंहयोस्तनूजेन वीरप्रसवितुर्राजस्थानप्रान्तस्य जालोरमण्डलान्तर्गत-प्रकाण्डगणितज्ञ-ब्रह्मगुप्त-महाकविमाघजन्मभूर्भीनमाल-निकटस्थभागलभीमग्रामस्थ श्रीवैदिकस्वस्तिपन्थान्यास-संस्थापकेन (वेद-विज्ञान-मन्दिर-वास्तव्येन) आचार्याऽग्निव्रतनैष्ठिकेन विरचित-वैज्ञानिकभाष्यसारसमेतैतरेयब्राह्मणस्य वैज्ञानिक-व्याख्यानस्य (वेदविज्ञान-आलोकस्य) पञ्चम पञ्चिका समाप्यते।

वेदविज्ञान-आलोकः™

(महर्षि ऐतरेय महीदास प्रणीत - ऐतरेय ब्राह्मण की वैज्ञानिक व्याख्या)

इस ग्रन्थ को क्यों पढ़ें

- आधुनिक सैद्धान्तिक भौतिकी (Theoretical physics) की विभिन्न गम्भीर समस्याओं विशेषकर Cosmology, Astrophysics, Quantum field theory, Plasma physics, Particle physics एवं String theory से सम्बन्धित अनेक वास्तविक समस्याओं का आश्चर्यजनक समाधान इस ग्रन्थ के गहन अध्ययन से सम्भव है। इसके साथ ही इन क्षेत्रों में नये-२ अनुसंधान करने के लिए आगामी लगभग 100 वर्ष के लिए पर्याप्त सामग्री इस ग्रन्थ में विद्यमान है।
- इस ग्रन्थ से विकसित वैदिक सैद्धान्तिक भौतिकी (Vaidic theoretical physics) भविष्य में आश्चर्यजनक एवं निरापद टैक्नोलॉजी के अनुसंधान को जन्म दे सकेगी तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं में भी कुछ विशेष परिवर्तन भविष्य में हो सकते हैं।
- विश्वभर के धर्माचार्यों व अध्यात्मवादियों को ईश्वर के अस्तित्व व स्वरूप की वैज्ञानिकता के विस्तृत ज्ञान तथा इसके द्वारा संसार में एक धर्म, एक भाषा, एक भावना को स्थापित करने में यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण साधन है।
- वर्तमान भौतिक वैज्ञानिकों को यह जानने कि ईश्वर तत्व के ज्ञान के विना भौतिक विज्ञान समस्याग्रस्त ही रहेगा तथा धर्माचार्यों को यह जानने हेतु कि ईश्वर के कार्य करने की प्रणाली (Mechanism) क्या है, यह ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक का कार्य करेगा। इसके साथ ही उन्हें इस वात का भी वोध होगा कि धर्म, ईश्वर आदि आस्था व विश्वासों का विषय नहीं है वल्कि सत्य विज्ञान पर आधारित वास्तविकता है, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिए एक समान ही है।
- भारत के प्रवुद्ध वर्ग में नये राष्ट्रिय स्वाभिमान, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक गौरव एवं वौद्धिक स्वतंत्रता का भाव भरने में यह ग्रन्थ एक क्रान्तिकारी दिशा देगा।
- यह ग्रन्थ वेदों तथा संस्कृत भाषा का ऐसा यथार्थ स्वरूप संसार के समक्ष प्रस्तुत करेगा, जिसकी कल्पना विश्व के सम्भवतः इस समय किसी भी वेदज्ञ एवं संस्कृतज्ञ को नहीं होगी।
- यह ग्रन्थ विश्वभर के मनुष्यों को अहिंसा, सत्य, ईमानदारी, प्रेम, करुणा, न्याय आदि मानवीय सद्गुणों की ओर ले जाने में समर्थ होगा तथा भय, हिंसा, आतंक, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, मिथ्या छलकपट व वेईमानी से मुक्त करने में सहयोग करेगा।

-आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास

(वेद विज्ञान मन्दिर)

वैदिक एवं आधुनिक भौतिक शोध संस्थान